श्रम समस्यायें

एवं

समाज कल्याण

लेखक

आर० सी० सक्सेना

एम० ए०, बी० ए० (आनर्स), पी-एच० डी०

प्रोफेसर, मानवशास्त्र,

रीजनल इन्जीनियरिंग कालिज, कुरुक्षेत्र

भूतपूर्व अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग,

मेरठ कालिज, मेरठ।

जय प्रकाश नाथ एण्ड कम्पनी,

पुस्तक प्रकाशक ...... मेरठ।

परमपूज्य पिताजी

स्वर्गीय प्रोफेसर विश्वेश्वरचरण लाल

को

सादर समर्पित

चतुर्थ हिन्दी संस्करण की भूमिका

श्रम समस्याओं पर मेरी इस हिन्दी पुस्तक का स्वागत विद्यार्थियों तथा अध्यापकों द्वारा उसी प्रकार हुआ, जिस प्रकार इस विषय पर मेरी अंग्रेजी पुस्तक का स्वागत हुआ है, जिसके अब तक *बारह संस्करण प्रकाशित* हो चुके हैं। इसके लिये मैं विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा विद्वानों का अत्यन्त आभारी हूँ। हिन्दी संस्करण की मांग निरन्तर आती रही है और इस विषय मे मुझे अनेक पत्र भी प्राप्त हुए हैं तथा सुझाव आये हैं। इस सस्करण की तैयारी मे मैंने इन सुझावों का विशेष रूप से ध्यान रखा है। इस सस्करण में भी स्थान-स्थान पर पारिभाषिक शब्दों के साथ-साथ अंग्रेजी के शब्द दे दिये गये है। इस संस्करण में भी मैंने यथासम्भव उन शब्दों का प्रयोग किया है जो कि भारत सरकार की अर्थशास्त्र विषयक पारिभाषिक शब्दावली तैयार करने वाली विशेष समिति ने स्वीकार किये है, जिसका मैं कई वर्षों तक सदस्य रहा हूँ।

पुस्तक के इस चतुर्थ सस्करण मे कई स्थानों पर पूर्ण रूप से सशोधन किया गया है और श्रम क्षेत्र मे जो भी हाल के वर्षों मे परिवर्तन हुए हैं उनका तथा श्रम से सम्बन्धित नवीनतम तथ्यों एव आकडो का समावेश किया गया है। चतुर्थ पचवर्षीय आयोजना की रूपरेखा का भी विस्तृत विवरण दिया गया है। पचवर्षीय आयोजनाओं मे श्रम-नीति तथा श्रम-सम्बन्धी सुझावों पर प्रकाश डाला गया है। कुछ महत्वपूर्ण विषयों (उदाहरणत., श्रमिक प्रबन्धक सहयोग, अनुशासन संहिता, आचरण संहिता, शिकायत निवारण क्रियाविधि, प्रबन्ध मे श्रमिकों का हाथ, औद्योगिक विरामसन्धि प्रस्ताव आदि) का उल्लेख परिशिष्ट 'ग' मे किया गया है। आशा है कि प्रस्तुत सस्करण पाठकों के लिये पहले से भी अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

हिन्दी के इस संस्करण की तैयारी एव इसके सशोधन मे मुझे श्री बसन्त लाल जैन, प्रिंसिपल जैन कॉलिज, सरधना का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है, जिसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

कुरुक्षेत्र
जनवरी, १९६९

आर० सी० सक्सेना

प्रथम हिन्दी संस्करण की भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक 'लेबर प्रोब्लम्स एण्ड सोशल वेलफेयर' नामक मेरी अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद है। अनेक भारतीय विश्वविद्यालयों मे हिन्दी भाषा ही अब अधिकाधिक रूप मे शिक्षा का माध्यम होती जा रही है। विद्यार्थियों, अध्यापको तथा अन्य पाठको की यह निरन्तर माँग रही है कि मैं अपनी अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी सस्करण भी प्रकाशित करूँ। अंग्रेजी पुस्तक की लोकप्रियता के विषय मे मुझे कुछ नही कहना है। आठ वर्षों मे ही उसके आठ सस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और सभी क्षेत्रो मे उसका काफी स्वागत किया गया है। इसके लिय मैं विद्यार्थीगण, अध्यापको, विभिन्न समाचार-पत्रो व पत्रिकाओ और प्रमुख व्यक्तियो (जैसे—स्व० डा० एल० सी० जैन तथा श्री वी० वी० गिरि, राज्यपाल केरल) का आभारी हूँ जिन्होने मेरी अंग्रेजी पुस्तक की प्रशसा की है। मैं आशा करता हूँ कि मेरी हिन्दी पुस्तक भी वैसी ही उपयोगी सिद्ध होगी जैसी इस विषय की मेरी अंग्रेजी पुस्तक सिद्ध हुई है।

अंग्रजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद करने मे हिन्दी के प्रमाणिक व उपयुक्त शब्दो की समस्या प्राय सामने आती है। इस पुस्तक म यथासम्भव मैंने उन शब्दों का प्रयोग किया है जो कि भारत सरकार की पारिभाषिक शब्दावली की अर्थशास्त्र विशेषज्ञ समिति न स्वीकार किये है जिसका मैं कई वर्षो स सदस्य भी हूँ।

इस पुस्तक के अनुवाद म मुझे काफी समय लगा है। बीच-बीच मे अंग्रेजी पुस्तक के सस्करण की माँग क कारण मैं अनुवाद के कार्य की ओर अधिक ध्यान नही द पाया हूँ। यह हिन्दी सस्करण कुछ शीघ्रता म ही प्रकाशित किया जा रहा है। इस कारण इस सस्करण मे कहीं-कही त्रुटियाँ आ गई है जो ठीक नही हो पाई हैं। मुझे आशा है कि पाठकगण इसके लिये मुझे क्षमा करेंगे। अगले सस्करण मे भाषा, शब्दावली तथा छपाई की जो भी त्रुटियाँ होगी उन्हे दूर करने का प्रयत्न करूँगा।

इस सस्करण की तैयारी और अनुवाद मे मुझे अनेक व्यक्तियो का सहयोग मिला है तथा सहायता प्राप्त हुई है। इस सम्बन्ध म श्रीमती कोकिला सक्सेना, श्री सुरेन्द्र सिंगल तथा कुमारी प्रीति सक्सेना के नाम विशेष उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त श्री सन्तोषकुमार गुप्ता, श्री हर्षकुमार जैन, श्री पी० के० जैन, श्री राजेन्द्र पाठक, श्री सुरेश पाठक, श्री राजेन्द्र कसल, श्री राजकुमार त्यागी, श्री परमहस लाल मेहता तथा श्री राजकुमार गुप्ता ने भी अनेक रूपो मे सहायता की है। श्रीमती शकुन सक्सेना, कुमारी हेम सक्सेना, श्री बलराजनारायण तथा अरुण, अजली व इन्दु का सहयोग भी प्रशसनीय रहा है। मैं इन सबका आभारी हूँ।

मेरठ **आर० सी० सक्सेना**

दिसम्बर, १६६०

अंग्रेजी पुस्तक के प्रथम संस्करण की भूमिका

श्रम आज का एक मुख्य विषय है। औद्योगिक प्रणाली और देश के भावी आयोजित विकास के लिये श्रम की महत्ता को सबने स्वीकार किया है, परन्तु इस विषय पर काफी अस्पष्टता है। प्रकाशित सूचनाओं की बहुलता के कारण कई बार जनता मे श्रम समस्याओं को ठीक-ठीक समझने के स्थान पर भ्रम ही उत्पन्न हो जाता है। अतः विभिन्न श्रम-समस्याओं को स्पष्ट रूप से समझने की अत्यधिक आवश्यकता है।

भारत के लगभग सभी विश्वविद्यालयों में श्रम-समस्याये एव समाज-कल्याण अध्ययन का विषय है। स्नातकोत्तर कक्षाओं मे अधिकतर विद्यार्थी इस विषय का अध्ययन कर रहे है। एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता काफी समय से अनुभव की जाती रही है जिसमें श्रम-समस्याओं के विषय में विस्तारपूर्वक सूचनायें, सभी विचार तथा तथ्य और आंकड़े प्राप्त हो सकें। इस विषय पर जो कुछ साहित्य मिलता भी है वह या तो सरकार द्वारा प्रकाशित बड़ी-बड़ी रिपोर्टें है अथवा श्रम विषय के विभिन्न रूपो पर विशिष्ट अध्ययन हैं। साधारण छात्रों के लिये, विशेषकर पढाई के साथ-साथ नौकरी करने वाले छात्रो के लिये, ऐसी रिपोर्टों और साहित्य को पाना कठिन हो जाता है। परिणामस्वरूप विद्यार्थी या तो अध्यापक से प्रार्थना करते है कि कक्षा मे कुछ नोट्स दे दिये जाये अथवा परीक्षा के दृष्टिकोण से अपना अध्ययन कुछ विशेष प्रश्नों तक ही सीमित रखते हैं। इस प्रकार श्रम-समस्याओं का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने का प्रयत्न नही किया जाता।

प्रस्तुत पुस्तक इस कठिनाई को दूर करने के लिये ही लिखी गई है। पुस्तक मे इस बात का प्रयत्न किया गया है कि श्रम-विषय से सम्बन्धित तथ्य और विचारों को उचित दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया जा सके। इस बात की ओर विशेष ध्यान रखा गया है कि पुस्तक की विषय-सामग्री को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाये कि विद्यार्थियों को श्रम-समस्याओं पर विचार करने और अधिक अध्ययन करने की प्रेरणा मिले। महत्वपूर्ण समस्याओं के सैद्धांतिक आधार का भी विवेचन किया गया है। अतः मैं इस बात का दावा नही करता कि इस पुस्तक मे कोई मौलिक सामग्री प्रस्तुत की गई है। जो भी तथ्य और विचार दिये गये है वे विभिन्न रिपोर्टों, पत्रिकाओं, समाचारपत्रों तथा विषय से सम्बन्धित विशिष्ट व ख्यातिप्राप्त लेखकों के लेखो और पुस्तकों से लिये गये हैं। सत्य तो यह है कि स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिये तैयार किये गये नोट्स के आधार पर इस पुस्तक को तैयार किया गया है। अतः कई स्थानों पर सरकारी रिपोर्टों तथा ख्यातिप्राप्त लेखकों के लेखों का पुस्तक मे उपयोग किया गया है। (अंग्रेजी की पुस्तक के परिशिष्ट 'D' मे ऐसी सभी किताबों की सूची दी गई है जिनसे इस किताब के लिखने मे सहायता मिली है)।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के प्रकाशन, रॉयल श्रम आयोग तथा श्रम अनुसन्धान समिति की रिपोर्टें, 'इण्डियन लेबर ईयर बुक्स', डा० राधाकमल मुकर्जी की पुस्तक "इण्डियन वर्किंग क्लास" तथा श्री ए० एन० अग्रवाल की पुस्तक "इण्डियन लेबर प्रोब्लम्स" का विशेष रूप से इस सम्बन्ध में उल्लेख किया जा सकता है। मैं इन सभी प्रकाशनों तथा अन्य पुस्तकों के प्रति, जिनका नाम सूची में दिया गया है, अपना आभार प्रदर्शित करता हूँ। इंगलैण्ड की श्रम समस्याओं के लिये मैसर्स जी० डी० एच० कोल तथा रिचर्डसन की पुस्तकें बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

श्रम समस्याओं में रुचि मुझे १९३९ से ही रही है। जब अपने बड़े भाई श्री एच० सी० सक्सेना, आई० ए० एस०, ... के निर्देशन में, जो उस समय पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर में लेक्चरार थे, मैंने इस विषय को एम० ए० में लिया था। उसके पश्चात् पिछले कई वर्षों से स्नातकोत्तर कक्षाओं को यह विषय पढ़ाने, तथा श्रम-विषयों पर अनुसन्धान का पर्यवेक्षण करने के कारण इस विषय पर मेरी रुचि सदा बनी रही है। उत्तर भारत के अधिकांश औद्योगिक और खनिज क्षेत्रों को स्वयं देखने का मुझे अवसर मिला है। अतः मैंने इस पुस्तक में कोई ऐसी बात नहीं लिखी है जो मेरे व्यक्तिगत अध्ययन पर आधारित न हो या जिसमें मुझे पूर्ण विश्वास न हो।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे कई विद्यार्थियों, जैसे—सर्वश्री गोपीचन्द हैलन, वीरेश्वर त्यागी, ओ० पी० कुकरेजा, आर० डी० जैन, बी० डी० शर्मा, आदि ने कई रूपों में सहायता की है। ' इन सबको मैं धन्यवाद देता हूँ ... प्रो० पी० सी० माथुर, प्रो० ए० एम० गर्ग और प्रो० एस० के० मुकर्जी के सहयोग तथा ... डा० के० के० शर्मा ने इस पुस्तक में जो रुचि दिखाई है उसके लिये मैं अपना आभार प्रदर्शित करता हूँ प्रो० नन्दलाल भटनागर, अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, मेरठ कालिज का आभार प्रकट करने के लिये मेरे पास उपयुक्त शब्द नहीं है। इस किताब को लिखने का विचार सर्वप्रथम प्रो० भटनागर ने ही दिया था और इस वर्ष तो उनका यह 'आदेश' मिल गया था कि मैं इस किताब को पूर्ण कर दूँ। उनके स्नेह और प्रोत्साहन के कारण ही यह पुस्तक लिखी जा सकी है।

मेरठ
जनवरी, १९५२

आर० सी० सक्सेना

विषय-सूची

अध्याय | विषय | पृष्ठ

१—विषय-प्रवेश : १–१६

श्रम की विशेषतायें, श्रम सम्बन्धी समस्याओं की उत्पत्ति, भारतवर्ष में उद्योगों की उन्नति, सरकार की भूतपूर्व औद्योगिक नीति, कारखानों का विकास, उद्योग सम्बन्धी कुछ आंकड़े, प्राचीन भारत में श्रम-जीवी, वर्तमान समय की समस्यायें, पंचवर्षीय आयोजनाओं में श्रम-नीति।

२—भारतीय श्रमिकों में प्रवासिता : १७–२७

प्रवासिता का अर्थ, नगरों की जनसंख्या में वृद्धि, श्रमिक सम्भरण का उद्गम स्थान, प्रवासिता का स्वभाव, प्रवासिता के कारण, दुष्परिणाम, प्रवासिता के लाभ, उपसंहार, भावी नीति।

३—औद्योगिक श्रमिकों की भर्ती की समस्यायें : २८–६५

प्रारम्भिक इतिहास, भर्ती प्रणाली में मध्यस्थों का स्थान, मध्यस्थों के दोष, वर्तमान स्थिति और भविष्य, विभिन्न उद्योगों में भर्ती की प्रणाली, ठेके के श्रमिक, गोरखपुर श्रम संस्था, श्रमिकों का स्थायीकरण, भर्ती की कुछ अन्य पद्धतियाँ।

रोजगार दफ्तर, उसकी परिभाषा, कार्य तथा महत्व, अन्य देशो में रोजगार दफ्तर, भारत में राष्ट्रीय रोजगार सेवा, ऐतिहासिक रूपरेखा, रोजगार दफ्तरों का संगठन; श्रमिकों की प्रशिक्षण व्यवस्था, शिवाराव समिति की रिपोर्ट, राष्ट्रीय रोजगार सेवा के कार्यों का मूल्यांकन, पंचवर्षीय आयोजनाओं मे सुझाव।

४—अनुपस्थिति, श्रमिकावर्त तथा वेतन सहित छुट्टियाँ : ६६–८४

अनुपस्थिति, परिभाषा, उसकी व्यापकता, उसके प्रभाव, कारण, अनुपस्थिति को दूर करने के उपाय।

श्रमिकावर्त, परिभाषा, उसके प्रभाव, मापने मे कठिनाइयाँ, श्रमिकावर्त की व्यापकता, उसके कारण, श्रमिकावर्त को कम करने के उपाय।

सवेतन छुट्टियाँ और अवकाश, छुट्टियों की आवश्यकता तथा महत्व, भारतीय उद्योगों मे छुट्टियाँ और अवकाश, सम्बन्धित विधान, विभिन्न अधिनियमो में उपबन्ध, वर्तमान स्थिति, छुट्टियो की न्यूनतम संख्या, पर्वों पर छुट्टियाँ।

अध्याय विषय पृष्ठ

५—भारतीय श्रमिक संघ आन्दोलन ८५–११८

श्रमिक संघ की परिभाषा, विभिन्न मत, श्रमिक संघवाद का विकास, श्रमिक संघों के कार्य, श्रमिक संघों से हानि और लाभ, श्रमिक संघों का मजदूरी पर प्रभाव, श्रमिक संघों के विभिन्न रूप, उनके विकास के लिये आवश्यक तत्व।

भारतीय श्रमिक संघ आन्दोलन का इतिहास, प्रारम्भिक इतिहास, आधुनिक श्रम संघों के विकास का इतिहास, संघ सम्बन्धी आँकडे, संघों की आय तथा व्यय, श्रमिक संघ विधान, १९२६ का श्रमिक संघ अधिनियम, १९६० व ६४ में संशोधन, १९५० का विधेयक, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन तथा श्रमिक संघ, व्यापार संघों का आकार, भारतीय श्रमिक संघों के दोष और कठिनाइयाँ, उपसंहार और सुझाव, पंचवर्षीय आयोजनायें और संघ।

६—इंगलैण्ड में श्रमिक संघवाद ११९–१३७

मध्ययुग में दस्तकारी श्रेणियाँ, आधुनिक श्रमिक संघों का विकास, संसद् का विरोधी व्यवहार, संगठन के विरुद्ध विधान, श्रमिक संघों का प्रारम्भ, १८७१ का अधिनियम, टैफवेल रेलवे कम्पनी और ऑसबोर्न के मुकदमे, युद्ध और संघ, वर्तमान स्थिति, इंगलैण्ड में संगम, ब्रिटिश श्रमिक संघों की उपलब्धियाँ, श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन, अन्य देशों में श्रमिक संघ, अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ, भारत और इंगलैण्ड के श्रमिक संघों की तुलना।

७—भारतवर्ष में औद्योगिक विवाद १३८–२२४

विवादों के मूल कारण, भारत में औद्योगिक विवादों का इतिहास, प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् औद्योगिक विवाद, १९२९ व १९३९ के पश्चात् विवाद, औद्योगिक विवाद सम्बन्धी आँकडे, औद्योगिक विवादों का वर्गीकरण, प्रो० पीगू के विचार, औद्योगिक विवादों के कारण, हड़तालों का प्रभाव, हड़ताल करने का अधिकार।

भारतवर्ष में औद्योगिक विवादों को रोकने और सुलझाने के उपाय, विवादों की रोकथाम, शक्तिशाली श्रमिक संघ, मालिक मजदूर समझौते, नवीन प्रवृत्तियाँ, मालिक-मजदूर समितियाँ, उनका महत्व और वाय, उनके कार्यों में बाधायें, भारत में मालिक मजदूर समितिया, औद्योगिक विवाद और श्रमिकों की आर्थिक स्थिति, स्थायी आदेश, १९४६ का अधिनियम, अधिनियम में संशोधन, सुझाव।

भारतवर्ष में औद्योगिक विवाद विधान, १९२९ का व्यवसाय विवाद अधिनियम, १९३४ व १९३८ के अधिनियम, १९३८ का

अध्याय | विषय | पृष्ठ

बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम, युद्ध-काल में औद्योगिक विवाद विधान, १९४७ का औद्योगिक विवाद अधिनियम, उसमें कियेगये विभिन्न संशोधन, १९५० का औद्योगिक विवाद (अपीलीय न्यायाधिकरण) अधिनियम, औद्योगिक विवाद (संशोधन) अधिनियम, १९५३; औद्योगिक विवाद (संशोधन तथा विविध उपबन्ध) अधिनियम, १९५६, १९५७, १९६४ तथा १९६५ में संशोधन ; राज्यों के अधिनियम, सन् १९४६ का बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम, १९४७ का उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, मध्य प्रदेश औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम, १९६० ; औद्योगिक विवाद विधान की संक्षिप्त समीक्षा, कार्यान्वित व्यवस्था, १९५० का श्रम सम्बन्ध विधेयक, पंचवर्षीय आयोजनाओं में औद्योगिक सम्बन्ध, त्रिदलीय श्रम व्यवस्था, १९४७ का औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव, उसे लागू करने के लिये उठाये गये पग, १९६२ का विराम-सन्धि प्रस्ताव।

सुलह तथा विवाचन पर टिप्पणी ; समझौता, विवाचन और मध्यस्थता ; प्रो० पीगू के विचार, अवपीड़क हस्तक्षेप, विभिन्न अधिनियमों में सुलह और विवाचन, सुलह व्यवस्था, अनिवार्य सुलह, विवाचन विधि, ऐच्छिक एवं अनिवार्य, श्री गिरि के विचार, उपसंहार, समस्या का समाधान।

८—ग्रेट ब्रिटेन में औद्योगिक सम्बन्ध : | २२५–२३८

सामूहिक सौदाकारी, इंगलैण्ड में औद्योगिक विवाद और श्रमिक संघ, औद्योगिक विवादों के कारण, औद्योगिक विवाद सम्बन्धी विधान, विवादों के निपटारे का ऐच्छिक आधार, संयुक्त औद्योगिक परिषदें, मालिक-मजदूर समितियाँ, मजदूरी को नियन्त्रित करने वाली व्यवस्था, राज्य द्वारा सुलह और विवाचन व्यवस्था, औद्योगिक शांति को स्थापना के लिये की गई व्यवस्था की प्रमुख विशेषतायें, ग्रेट ब्रिटेन के अनुभव और भारत।

९—औद्योगिक श्रमिकों की आवास समस्या : | २३९–२६४

आवास की महत्ता और आवश्यकता, जनसंख्या में वृद्धि, श्रमिकों के आवास की सामान्य दशायें, विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों में आवास की दशायें ; खानों, बागानों, रेलों, नगरपालिकाओं आदि में बुरी आवास व्यवस्था के परिणाम।

आवास व्यवस्था की राजकीय योजनायें, सरकार की उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना, उसमें संशोधन, अन्य आवास

अध्याय | विषय | पृष्ठ

योजनायें, निम्न आय तथा मध्यम आय वाले वर्गो एव सरकारी कर्मचारियो के लिये कोयला खान व अभ्रक खान श्रमिको के लिये आवास योजना, बम्बई तथा उत्तर प्रदेश मे आवास योजनायें, उत्तर प्रदेश मे चीनी मिल श्रमिको के लिये आवास योजनायें, अन्य राज्यो मे आवास योजनायें, बागान मे आवास व्यवस्था, श्रमिक सघो की आवास योजनाये, औद्योगिक आवास अधिनियम।

आवास व्यवस्था और उसके उत्तरदायित्व का प्रश्न, किराये की समस्या, आवास और स्थानीय निकाय, आवास और उद्योगो का विकिरण, आवास सम्बधित कुछ समस्यायें, जैसे—परिवहन, दूकानें, भूमि का नियतन व अभिग्रहण, वित्त की समस्या गन्दी बस्तियो की समस्या, पचवर्षीय आयोजनाओ मे आवास व्यवस्था, उपसहार।

१०—ब्रिटेन मे आवास समस्या ... २६५–३०७

समस्या की गम्भीरता, प्रारम्भ मे आवासो का अनियोजित विकास, उन्नति के प्रयत्न, गन्दी बस्तियो की सफाई के लिए अधिनियम, १६०६ का अधिनियम, युद्ध कालीन अवस्था, युद्ध के पश्चात् आवास निर्माण, १६१६ व १६२३ की योजनायें, १६२४ का ह्विटले अधिनियम, वर्तमान दशा, आवासो का प्रशासन, नगर तथा ग्राम नियोजन आवास स्तर, वित्त व्यवस्था, सस्ते मकान, किरायो का नियन्त्रण, स्काटलैण्ड तथा आयरलैण्ड मे आवास योजनायें, उपसहार। आवास व्यवस्था तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन।

११—श्रम कल्याण कार्य ... ३०८–३६१

श्रम कल्याण की परिभाषा और क्षेत्र, कल्याण कार्यों का वर्गीकरण, उनका उद्देश्य, भारत मे श्रम कल्याण कार्यों की आवश्यकता, उनका उद्गम सरकार द्वारा सम्पादित श्रम कल्याण कार्य, कारखाना अधिनियमो मे कल्याण सम्बन्धी उपबन्ध, श्रम कल्याण निधियाँ, रेलवे तथा बन्दरगाहो आदि मे श्रम कल्याण कार्य, बम्बई, उत्तर प्रदेश व चीनी कारखानो तथा पश्चिमी बगाल एव अन्य राज्यो मे कल्याण कार्य, सरकार के कार्यों का आलोचनात्मक मूल्याकन, मालिको द्वारा कल्याण कार्य, विभिन्न उद्योगों मे कल्याण कार्य, सूती वस्त्र मे, जूट उद्योग मे, कानपुर मे, इजीनियरिंग उद्योग मे, कागज व सीमेंट उद्योग आदि मे, बागान मे कल्याण कार्य, कोयला खानो मे कल्याण कार्य, १६४७ का अधिनियम, अभ्रक की खानो में श्रम कल्याण कार्य, १६४६ का अधिनियम, कोलार की सोने की खानो

अध्याय	विषय	पृष्ठ

तथा अन्य खानों में श्रम कल्याण कार्य, कच्चे लोहे की खानों मे, १९६१ का अधिनियम, खान शिशुगृह नियम, मालिकों के कल्याण कार्यों का आलोचनात्मक मूल्यांकन ; समाज सेवा संस्थाओं, नगरपालिकाओं, श्रमिक संघों द्वारा श्रम कल्याण कार्य।

कल्याण कार्यो के कुछ विशेष पहलू, कैंटीनें, शिशु-गृह, मनोरंजन सुविधायें, चिकित्सा सुविधायें, नहाने-धोने की सुविधायें, शिक्षा की सुविधायें, श्रमिक शिक्षा कार्यक्रम तथा बोर्ड, अनाज की दुकानों की सुविधायें, कुछ सुझाव, कल्याण कार्य और उनका उत्तरदायित्व, उपसहार।

१२—भारत में सामाजिक सुरक्षा : ३६२–४५५

सामाजिक सुरक्षा का अर्थ, सामाजिक बीमे की परिभाषा, उसके मुख्य लक्षण, सामाजिक बीमे व व्यावसायिक बीमे में अन्तर, व्यावसायिक बीमा तथा सामाजिक सहायता मे अन्तर, सामाजिक सुरक्षा का क्षेत्र तथा विभिन्न विधियाँ, सामाजिक सुरक्षा के विचार की उत्पत्ति और विकास, भारत में इस विचार की उत्पत्ति और विकास, भारत में श्रमिकों के लिए सामाजिक बीमे की आवश्यकता, विभिन्न विपत्तियाँ, श्रमिकों की सामान्य दशायें, सामाजिक बीमे के लाभ, उसकी विभिन्न व्यवस्थायें, भारत में सामाजिक सुरक्षा की वर्तमान अवस्था।

भारत में श्रमिकों के लिये क्षतिपूर्ति की व्यवस्था, क्षतिपूर्ति की आवश्यकता, क्षतिपूर्ति के लिये कुछ प्रारम्भिक व्यवस्थायें, १९२३ का श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, इसमे सशोधन, अधिनियम के मुख्य उपवन्ध, आलोचनात्मक मूल्यांकन, अधिनियम के मुख्य दोष, सुधार के सुझाव, श्रमिक क्षतिपूर्ति और बीमा, व्यक्तिगत चोट (क्षतिपूर्ति बीमा) अधिनियम, १९६३।

भारत में मातृत्व-कालीन लाभ, मातृत्व-कालीन लाभ का महत्व, विभिन्न राज्यो मे मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम तथा उनके मुख्य उपबन्ध, १९६१ का केन्द्रीय अधिनियम, अधिनियमो का आलोचनात्मक मूल्यांकन, मातृत्व-कालीन लाभ और बीमा।

भारत मे बीमारी बीमा, इसकी वांछनीयता, इसके विचार की उत्पत्ति, प्रोफेसर अदारकर की स्वास्थ्य बीमा योजना, १९४८ का कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, इसका क्षेत्र, प्रशासन, वित्त तथा अंशदान, १९५१ मे संशोधन, लाभ, अर्हता की शर्तें, इस अधिनियम को लागू करने की तैयारियां तथा विलम्ब, मालिकों की आपत्तियो

अध्याय	विषय	पृष्ठ
	न्यूनतम मजदूरी, इसकी वाछनीयता, इसके उद्देश्य, न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने में कठिनाइयाँ, भारत में न्यूनतम मजदूरी की समस्या, १९४८ का न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, इसमें संशोधन, इसका कार्यान्वित होना, अधिनियम का आलोचनात्मक मूल्यांकन, आदर्श सिद्धान्त, कृषि श्रमिकों के लिये न्यूनतम मजदूरी तथा इसकी बाधाएँ।	
	उचित मजदूरी की समस्या, उचित मजदूरी के बारे में विभिन्न विचार, पर्याप्त, न्यूनतम एवं उचित मजदूरी, उचित मजदूरी कैसे निश्चित की जाये, उद्योग की भुगतान क्षमता, उत्पादकता तथा लागत से सम्बन्धित मजदूरी की समस्या, उचित मजदूरी और आधार वर्ष की समस्या मजदूरी निश्चित करने की व्यवस्था, १९५० का उचित मजदूरी विधेयक, पंचवर्षीय आयोजनायें तथा मजदूरी।	
	मजदूरी अन्तर और मजदूरी का समानीकरण, समानीकरण की आवश्यकता, विभिन्न उद्योगों में मजदूरी का समानीकरण, समान कार्य के लिये समान मजदूरी, पुरुषों एवं स्त्रियों की मजदूरी, मजदूरी और निर्वाह खर्च।	
	मजदूरी अदायगी का तरीका, १९३६ का मजदूरी अदायगी अधिनियम व १९५७ व ६४ के संशोधन तथा इसके मुख्य उपबन्ध, मजदूरी से से कटौतियाँ, अधिनियम का विस्तार तथा प्रशासन, इसका कार्य तथा सीमाएँ बोनस अदायगी, बोनस कमीशन, बोनस अदायगी अधिनियम, १९६५।	
	भारत में लाभ सहभाजन योजना, लाभ सहभाजन का अर्थ, इसकी वांछनीयता, इसमें बाधाएँ, उपसंहार, श्रमिक सह-साभेदारी, भारत में लाभ सहभाजन के विचार का विकास, १९४८ की लाभ सहभाजन समिति, लाभ सहभाजन का आलोचनात्मक मूल्यांकन।	
६—औद्योगिक श्रमिकों की ऋण-ग्रस्तता :		६२४–६३४
	ऋण-ग्रस्तता की व्यापकता, विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों में ऋण-ग्रस्तता, इसके कारण, दुष्परिणाम, समस्या को सुलझाने के उपाय, मजदूरों की कुर्की के विरुद्ध लिये गये पग, ऋण हेतु कारावास के विरुद्ध उपाय, ऋण अपाकरण के उपाय, औद्योगिक सस्थानों को घेरने के विरुद्ध उपाय, अधिनियमों का मूल्यांकन, उपसंहार एवं सुझाव, सहकारी ऋण।	

अध्याय | विषय | पृष्ठ

१७ जीवन-स्तर : ६३५–६५०

जीवन स्तर की परिभाषा एवं अर्थ, जीवन स्तर और उसको निर्धारित करने वाले तत्व, जीवन स्तर किस प्रकार ज्ञात होता है, पारिवारिक बजट सम्बन्धी पूछताछ, पूछताछ की कठिनाइयाँ, पूछताछ के निष्कर्ष, व्यय की विभिन्न मदें, उपसंहार, निम्न जीवन स्तर के कारण, निर्वाह खर्च सूचकांक, जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के प्रयत्न, कुछ अन्य सुझाव, उपसहार।

१८—औद्योगिक श्रमिकों का स्वास्थ्य और उनकी कार्य कुशलता : ६५१–६७८

श्रमिकों के स्वास्थ्य की समस्या, असन्तोषजनक स्वास्थ्य पर कुछ रिपोर्टें, खानों और बागान में श्रमिकों का स्वास्थ्य, बुरे स्वास्थ्य के मुख्य कारण और उनको दूर करने के लिए सरकार के प्रयत्न, सुझाव, व्यवसायजनित रोग।

श्रमिको की कार्य-कुशलता और उसका अर्थ, कार्य-कुशलता पर प्रभाव डालने वाले तत्व, कार्यकुशल श्रमिको के लाभ, भारतीय श्रमिको की कार्य-कुशलता, अकुशलता के कारण, क्या भारतीय श्रमिक वास्तव मे कार्य-अकुशल है। गत वर्षों मे कार्य-अकुशलता की शिकायतो के कारण, उत्पादकता, परिभाषा, माप, विभिन्न उत्पादकता प्रायोजनाये, राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद्, सुझाव।

१९—भारत तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ६७९–७०३

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का प्रारम्भ, इसके आधारभूत सिद्धान्त, इससे पूर्व श्रमिक दशाओं के लिये अन्तर्राष्ट्रीय नियमन, इस सगठन का सविधान, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय, अन्तरग सभा, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन, सम्मेलन के अभिसमय और उसकी सिफारिशें, फिलाडेलफिया की घोषणा, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन तथा सयुक्त राष्ट्र सघ, सगठन की विभिन्न समितियाँ, इसके क्षेत्रीय श्रम सम्मेलन तथा एशियाई कार्य, क्षेत्रीय सम्मेलनों का महत्व तथा उनसे लाभ, भारत द्वारा अपनाये गये अभिसमय, अन्य अभिसमयों का प्रभाव, अधिक अभिसमय न अपनाये जाने के कारण, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का भारतीय श्रम विधान पर प्रभाव, श्रम आन्दोलन पर प्रभाव, सगठन के कार्यों का मूल्यांकन, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठनों के कार्यों मे भारत का योगदान।

२०—भारत में श्रम विधान : ७०४–७५९

श्रम विधान का सामान्य सर्वेक्षण—इतिहास, प्रथम विश्व-युद्ध

अध्याय	विषय	पृष्ठ

के पश्चात् श्रम विधान, राज्यों में श्रम विधान, हाल के वर्षों में श्रम विधान।

भारत में कारखाना विधान, प्रारम्भिक प्रयत्न, १८८१ का प्रथम कारखाना अधिनियम, १८९१ का अधिनियम, १९११, १९२२ तथा १९३४ के कारखाना अधिनियम, १९४६ मे कारखाना अधिनियम मे सशोधन, १९४८ का कारखाना अधिनियम, इसके मुख्य उपबन्ध, अनियन्त्रित कारखानो अथवा कार्यशालाओं के सम्बन्ध मे विधान, बीड़ी श्रमिकों के लिये विधान, भारत मे कारखाना विधान का आलोचनात्मक मूल्यांकन।

खानो मे श्रम विधान, १९२३ का भारतीय खान अधिनियम, १९५२ का भारतीय खान अधिनियम, १९५९ का खान (सशोधन) अधिनियम, खानो के लिये अन्य विधान, १९३९ तथा १९५२ मे कोयला खान बचत तथा सुरक्षा अधिनियम।

बागान श्रम विधान, बागान के श्रमिक, उनके लिये प्रारम्भ मे उठाये गये कुछ पग, १९३२ का चाय क्षेत्र परावासी श्रमिक अधिनियम, १९५१ का बागान श्रमिक अधिनियम, १९६० का सशोधन।

यातायात श्रम विधान, रेलवे श्रम विधान, १९३० मे सशोधित १८९० का भारतीय रेलवे अधिनियम, १९५६ का सशोधित अधिनियम, न्यायाधीश राजाध्यक्ष का विवाचन निर्णय, जहाज सम्बन्धी श्रम विधान, १९२३ का भारतीय व्यापारी जहाज अधिनियम, १९५८ का अधिनियम, गोदी श्रमिक विधान, प्रारम्भ मे उठाये गये कुछ पग, १९४८ का गोदी श्रमिक (रोजगार विनियमन) अधिनियम, मोटर यातायात के श्रमिकों के लिये विधान। १९६१ का मोटर यातायात श्रमिक अधिनियम।

अन्य श्रम विधान, दुकान और वाणिज्य संस्थानो के श्रमिको के लिये विधान, अन्य अधिनियमो की ओर संकेत, १९४२ तथा १९५३ के सांख्यिकी अधिनियम, श्रम-जीवी पत्रकारो के लिये १९५५ का अधिनियम, श्रमजीवी पत्रकार (वेतन दर निर्धारण) अधिनियम, १९५८, तथा १९६२ मे सशोधन, १९६१ का शिक्षुता अधिनियम, व्यक्तिगत क्षति (संकटकालीन व्यवस्था) अधिनियम, १९६२, भवन तथा निर्माण श्रमिको के लिये विधान, ठेका श्रमिक विधेयक, १९६६।

श्रम विधान का आलोचनात्मक मूल्यांकन, छोटे पैमाने के उद्योगों के लिये तथा अन्य विधान की आवश्यकता, औद्योगिक आवास अधिनियम तथा अन्य अधिनियमों की आवश्यकता, सुझाव और उपसंहार।

अध्याय | विषय | पृष्ठ

२१—ब्रिटेन में श्रम विधान : ७६०–७७३

प्रारम्भिक इतिहास और अधिनियम, कारखानों में घोर शोचनीय दशायें, बाल श्रमिक और उनकी दयनीय स्थिति, वैधानिक सुरक्षा प्रदान करने के विचार का विकास, १८०२ का प्रथम कारखाना अधिनियम, १८१६ का अधिनियम, १८२० और १९०० के बीच के अधिनियम, १९०१, १९३७ तथा १९४८ व १९५९ के अधिनियम, खानो के सम्बन्ध में विधान, जन स्वास्थ्य अधिनियम, दुकान अधिनियम, बालकों के सम्बन्ध में विधान, मजदूरी विनियमन अधिनियम, अन्य श्रम विधान, ऐच्छिक समझौते तथा प्रयत्न, उपसहार।

२२—बाल तथा स्त्री श्रमिक : ७७४–७९८

बालको को रोजगार पर लगाने की समस्या, उसके कारण, बागान मे बाल श्रमिक, कारखानो मे बाल श्रमिक, खानो में बाल श्रमिक, *अनियन्त्रित कारखानों आदि तथा कृषि में बाल श्रमिक,* बाल श्रमिकों की कार्य करने की दशाये, उनको मजदूरी, आयु तथा कार्य घण्टे, १९३३ का बाल (श्रम अनुबन्ध) अधिनियम, अनुबन्धन के सम्बन्ध मे स्थिति, १९३८ का बाल श्रमिक रोजगार अधिनियम, निष्कर्ष तथा सुझाव।

उद्योगो मे स्त्री श्रमिक, स्त्री श्रमिको के रोजगार की समस्या, हाल मे हुए एक सर्वेक्षण के निष्कर्ष, स्त्री श्रमिको के कार्य की प्रकृति, स्त्री श्रमिकों की मजदूरी, उनकी आय तथा उनके लिये लाभ, स्त्रियो के लिये खानो के भीतर कार्य करने की समस्या, स्त्री श्रमिक तथा सामाजिक वातावरण, स्त्री श्रमिक तथा सघ, उपसहार।

२३—भारतीय कृषि श्रमिक : ७९९–८३१

कृषि श्रमिको की सख्या, कृषि श्रमिको के प्रकार, कृषि-कार्यों की प्रकृति तथा रोजगार, कृषि श्रमिको की दशाये, उनके कार्य घण्टे, कृषि मे अपूर्ण रोजगार, कृषि श्रमिकों की मजदूरी, उनका जीवन-स्तर, उनकी ऋणग्रस्तता, उनके मकानों की दशायें, उनका सगठन, कृषि भूमि सुधार, कृषि श्रमिकों के लिये न्यूनतम मजदूरी, न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण, सरकार द्वारा की गई कृषि श्रमिक पूछताछ, व्यावसायिक ढांचा, रोजगार व बेरोजगारी, मजदूरी, पारिवारिक आय, उपभोग तथा निर्वाह लागत खर्च, ऋणग्रस्तता, बेगार की समस्या, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन तथा कृषि श्रमिक, कृषि श्रमिको की दशाओं में उन्नति करने के कार्यक्रम, उपसहार।

अध्याय	विषय	पृष्ठ
२४—श्रम और सहकारिता		८३२–८४९
	सहकारिता का अर्थ और उसके सिद्धान्त, संगठन के अन्य प्रकार तथा सहकारिता, सहकारिता के विचार का विकास, सहकारिता के अनेक प्रकार, विभिन्न देशों में सहकारिता आन्दोलन, सहकारिता के लाभ, भारत में सहकारी आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास, भारत में सहकारी आन्दोलन के दोष, सहकारिता आन्दोलन का ढाँचा, सहकारिता एवं श्रम, सहकारी उत्पादन, श्रम सह साभेदारी समितियाँ, श्रम सहकारी कार्य समितियाँ, उनकी विशेषताएँ, उत्पादन सहकारिता एवं छोटे पैमाने के उद्योग, अन्य क्षेत्रों में सहकारिता, सहकारिता और श्रमिकों की ऋणग्रस्तता, सहकारिता और आवास, सहकारिता एवं कैंटीन, उपभोक्ता सहकारी भण्डार, उपसंहार, श्रमिकों के लिये सहकारिता का महत्व।	
२५—श्रम प्रशासन ✓		८५० ८६१
	१९३५ का भारत सरकार अधिनियम, युद्ध काल और इसके बाद से केन्द्रीय निर्णय, युद्ध काल में श्रम सम्मेलन, त्रिदलीय श्रम व्यवस्था, भारत सरकार का श्रम और रोजगार मंत्रालय, राज्यों में श्रम प्रशासन, उत्तर प्रदेश में श्रम प्रशासन, वर्तमान संविधान में श्रम विषय, उपसंहार।	
२६—पंचवर्षीय आयोजनायें और श्रम		८६२–९४२
	अबन्ध नीति का सिद्धान्त, आयोजना के विचार का विकास, आयोजना का अर्थ और उसकी परिभाषा, आयोजना के कुछ आवश्यक तत्व, भारत में आयोजना के विचार का विकास, विभिन्न आयोजनाओं की संक्षिप्त रूपरेखा, भारतीय राष्ट्रीय आयोजना समिति, बम्बई आयोजना, जन आयोजना, गाँधीवादी आयोजना, भारत सरकार की योजनायें, १९५० का आयोजना आयोग, कालम्बो आयोजना, प्रथम पंचवर्षीय आयोजना का प्रारम्भ, प्रथम पंचवर्षीय आयोजना की प्रगति, द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना, तृतीय पंचवर्षीय आयोजना, दस वर्ष, वित्तीय साधन, मूल्य नीति, तृतीय आयोजना की प्रगति, चतुर्थ पंचवर्षीय आयोजना, पंचवर्षीय आयोजनाओं में श्रम, आलोचनात्मक मूल्यांकन, उपसंहार।	
परिशिष्ट (क)—उपभोक्ता मूल्य सूचकांक		९४३–९५१
	सूचकांक का अर्थ तथा उसका महत्व, सूचकांक की निर्माण विधि, उपभोक्ता मूल्य सूचकांक तथा उनकी सीमाएँ, भारत में	

अध्याय	विषय	पृष्ठ
	उपभोक्ता मूल्य सूचकांक, भारत में उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के दोष, भारत सरकार की योजना, विभिन्न स्थानों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक।	
परिशिष्ट (ख)—बेरोजगारी :		९५२–९८३
	बेरोजगारी का अर्थ व परिभाषा, बेरोजगारी पर विभिन्न विचार तथा उसके सिद्धान्त, बेरोजगारी के कारण, बेरोजगारी के प्रभाव, बेरोजगारी के उपचार, भारत में बेरोजगारी तथा उसके विभिन्न प्रकार, भारत में बेरोजगारी का विस्तार, विभिन्न अनुमान, बेरोजगारी के कारण देश को हानि, भारत में बेरोजगारी का उपचार, रोजगार और आयोजनाएँ, पूर्ण रोजगार की समस्या : मन्दी के काल तथा उसके प्रभाव का सामना करने के लिये मालिकों द्वारा उपाय, बेरोजगारी बनाम अल्पकाल।	
परिशिष्ट (ग)		९८४–१०२७
	कार्मिक प्रबन्ध तथा मानवी सम्बन्धों पर एक टिप्पणी।	
	उत्तर प्रदेश कारखाना कल्याण अधिकारी नियम, १९५५।	
	अन्तर्कार्य प्रशिक्षण की योजना।	
	रिक्शा चलाने का उन्मूलन।	
	उद्योग में अनुशासन संहिता, कार्यकुशलता और कल्याण कार्य संहिता, संघों को मान्यता प्रदान करने के लिए शर्तें।	
	आचरण संहिता।	
	शिकायत-निवारण-क्रियाविधि।	
	श्रमिक-प्रबन्धक सहयोग।	
	प्रबन्ध में श्रमिकों का भाग।	
	औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव, १९६२।	
	श्रम के क्षेत्र में अनुसन्धान।	
	श्रम पर राष्ट्रीय आयोग।	
	कुछ नवीनतम तथ्य तथा आँकड़े।	
परिशिष्ट (घ) :		१०२८–१०३४
	पारिभाषिक शब्दावली।	

श्रम अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो के विषयो की सूची
(पृष्ठ कोष्टक मे देखिये)

श्रम की विशेषताये तथा श्रम समस्याओ की उत्पत्ति (१–३), रोजगार दफ्तर (४७), श्रम की कार्यकुशलता (६५६), कार्य के घण्टे तथा राष्ट्रीय लाभांश (५०३)।

औद्योगिक सम्बन्ध (क) प्रो० पीगू द्वारा औद्योगिक विवादो का वर्गीकरण (१५१), (ख) सामूहिक सौदाकारी (२२६), (ग) सुलह विवाचन तथा मध्यस्थता (२०५), (घ) अवपीडक हस्तक्षेप (Coercive Intervention) (२०६), ऐच्छिक समझौते (२१६)।

श्रम कल्याण (३०८) श्रमिक सह साभेदारी (६१७), कार्मिक प्रबन्ध तथा मानवीय सम्बन्ध (६८४), विवेकीकरण (५२४)।
सामाजिक सुरक्षा (३६२), श्रमिक सघवाद (८५)।
बेरोजगारी (६५२), बेरोजगारी तथा कम समय योजना (६८१)।

मजदूरी (क) उचित मजदूरी (५८०) (ख) मजदूरी भुगतान की पद्धतियां (५३८), (ग) राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी (५६६), (घ) लाभ सहभाजन (६१४), (ङ) समयानुसार मजदूरी (५३८), (च) मजदूरी के सिद्धान्त (५४३), (छ) उद्योग की भुगतान क्षमता (५८४), (ज) पुरुषों एव स्त्रियो की मजदूरी (६००)।

"मैं इस विचार का हृदय से समर्थन करता हूँ कि कोई भी ऐसी आयोजना जिसके अन्तर्गत देश के कच्चे माल का उपयोग तो होता है परन्तु अधिक सम्भाव्य शक्तिशाली मानव शक्ति की अवहेलना होती है, एकपक्षीय आयोजना है और देश के मनुष्यों में परस्पर समानता लाने के लिए सहायक सिद्ध नहीं हो सकती।"

—महात्मा गांधी

"किसान और मजदूर राष्ट्र की रीढ़ हैं।"

—श्री जगजीवन राम

"जब कि सम्पूर्ण राज्य यह प्रयत्न कर रहा है कि जनता के साथ उचित न्याय हो तब राज्य यह सहन नहीं कर सकता कि समाज के दुर्बल वर्ग के व्यक्तियों के साथ—चाहे वे औद्योगिक श्रमिक हों, कृषि श्रमिक हों अथवा किसी अन्य वर्ग के व्यक्ति हों—अन्याय होता रहे।"

—श्री खंडूभाई देसाई

"उद्योग केवल उद्देश्य की पूर्ति का एक साधन है तथा स्वयं उद्योग को उद्देश्य नही माना जा सकता। मनुष्य का स्थान सबसे प्रथम है। मानव के जीवन को ही—कार्य करते समय भी तथा कार्य न करते हुए भी—वास्तव मे सबसे अधिक महत्ता देनी चाहिए, विशेषकर ऐसे देश मे जो प्रजातन्त्र का दम भरता है।"

—प्रिंस फिलिप, ड्यूक आफ एडिनबरा

"अर्थशास्त्री सदैव इस बात पर बल देते हैं कि श्रम ही वह स्रोत है जिससे सब धन उत्पन्न होता है। प्रकृति के बाद श्रम का ही स्थान है। प्रकृति श्रम को सामग्री प्रदान करती है और श्रम द्वारा इस सामग्री को धन मे परिवर्तित कर दिया जाता है। परन्तु श्रम युग-युगान्तर से इससे भी अधिक महत्वपूर्ण रहा है। मानव के अस्तित्व का मूल आधार श्रम ही है और वह भी इस सीमा तक कि यह भी कहा जा सकता है कि मानव का निर्माण श्रम द्वारा ही हुआ है।"

—फ्रेडरिक एन्जिल्स

१

विषय-प्रवेश

श्रम की विशेषतायें (Peculiarities of Labour)

उत्पत्ति के साधनों मे श्रम को सदैव पृथक् और महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कोई भी शारीरिक अथवा मानसिक कार्य जो आर्थिक दृष्टिकोण से किया जाता है, अर्थशास्त्र मे 'श्रम' कहलाता है। श्रम का महत्व क्या है और उत्पादक तथा अनुत्पादक श्रम मे क्या अन्तर है, इस पर अर्थशास्त्रियों मे सदैव मतभेद रहा है, जिसका उल्लेख करना यहाँ पर आवश्यक नही है। परन्तु यह निश्चित है कि कुशल श्रम के बिना उत्पादन सम्भव नही। श्रम उत्पादन के अन्य उपादानों से पूर्णतया भिन्न उपादान है और उसकी कुछ विशेषताओं के कारण ही समस्त देशो मे श्रम सम्बन्धी अनेक समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। श्रम एक जीवित तत्व है और यही अन्य उपादानों से इसकी भिन्नता का मुख्य आधार है। प्रथम विशेषता यह है कि श्रम को श्रमिक से पृथक् नही किया जा सकता, अर्थात् श्रम बेचने के लिए श्रमिक को स्वय उसी स्थान पर जाना पड़ता है जहाँ श्रम की माँग है। अतः वे परिस्थितियाँ तथा वातावरण जिनमें श्रमिक को कार्य करना पड़ता है बहुत महत्वपूर्ण हैं। श्रम की दूसरी विशेषता यह है कि श्रमिक केवल अपना श्रम बेचता है परन्तु अपने गुणों का स्वामी स्वयं ही रहता है। अतः श्रम मे निवेश (investment), अर्थात् श्रमिक की शिक्षा और कार्य-कुशलता, अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। तीसरी विशेषता यह है कि श्रम नाशवान् है। जो दिन बीत जाता है, वह फिर नही लौटता। श्रम को अन्य वस्तुओं की भाँति भविष्य के लिए संचय नही किया जा सकता, अर्थात् इसका संचित मूल्य शून्य है (*no reserve price*) जिससे श्रमिकों मे प्रतीक्षा शक्ति का अभाव रहता है। परिणामस्वरूप श्रमिक मे मालिक की अपेक्षा मोल भाव करने की शक्ति कम होती है। चौथे, श्रम की मजदूरी कम हो जाने पर भी श्रम की पूर्ति तुरन्त कम नही की जा सकती। इसी प्रकार श्रम की पूर्ति में शीघ्रतापूर्वक वृद्धि भी नही की जा सकती, क्योंकि बच्चों के पालन-पोषण में तथा श्रमिकों को प्रशिक्षण देने मे समय लगता है। अतः श्रम की माँग तथा पूर्ति मे सन्तुलन शीघ्र स्थापित नही हो पाता। पाँचवें, पूंजी, जो उत्पत्ति मे श्रम का एक सहायक साधन है, श्रम की अपेक्षा अधिक उत्पादक है। श्रमिक आधुनिक मशीन की उत्पादन-शक्ति की समता नही कर सकता। अतः स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था

मे पूँजीपति राष्ट्रीय आय का, श्रमिक की अपेक्षा, अधिक भाग ले जाते हैं। छटे, श्रम पूँजी के समान गतिशील भी नही है। परिस्थिति, फैशन, आचार-विचार प्रकृति और भाषा आदि मे विभिन्नता होने के कारण मनुष्य विभिन्न स्थानो पर घूमने की अपेक्षा घर रहना ही अधिक पसन्द करते हैं। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि श्रम उत्पादन का केवल उपादान या साधन मात्र ही नही है वरन् श्रम को उत्पादन का अन्तिम ध्येय (end) भी कहा जा सकता है। जीवन स्तर निर्वाह खर्च, निर्धनता आदि जो श्रमिक की उपभोक्ता के नाते, आर्थिक समस्याएं हैं वह श्रम अर्थशास्त्र का महत्वपूर्ण विषय है। इसके अतिरिक्त यह बात भी महत्वपूर्ण है कि श्रमिक एक मानव साधन है और इस कारण न केवल आर्थिक, वरन् वे समस्त नैतिक तथा सामाजिक समस्यायें जिनका प्रभाव मानव पर पड़ता है, श्रम सम्बन्धी समस्याओ के अध्ययन मे महत्वपूर्ण हो जाती हैं। इस प्रकार श्रम समस्याओ का अध्ययन आर्थिक राजनैतिक मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, वैधानिक, ऐतिहासिक आदि विभिन्न दृष्टिकोणो को ध्यान मे रखकर करना चाहिए।

श्रम सम्बन्धी समस्याओ की उत्पत्ति (Rise of Labour Problems)

उपरोक्त विशेषताओ के कारण अनेक श्रम सम्बन्धी समस्यायें उत्पन्न हो जाती है। चाहे कैसी भी आर्थिक तथा राजनैतिक व्यवस्था क्यो न हो इन समस्याओं का उचित समाधान न होने पर प्रत्येक देश म उत्पादन क्षमता का ह्रास हो जाता है। जो व्यक्ति यह समझते है कि श्रम की समस्याय केवल पूंजीवाद मे ही उत्पन्न होती हैं, और समाजवादी या नियन्त्रित अर्थ व्यवस्था म समाप्त हो जाती है वे वास्तव म भूल करते हैं। जब तक श्रम उत्पादन का पृथक् उपादान रहेगा और इसकी पूर्ति एक पृथक् वर्ग द्वारा होगी श्रम सम्बन्धी समस्याय सदैव बनी रहेगी, परन्तु इतना अन्तर अवश्य है कि विभिन्न आर्थिक प्रणालियो मे इन समस्याओ की तीव्रता तथा गम्भीरता भिन्न होती है।

इसका अर्थ यह है कि छोटे पैमाने के उद्योग-धन्धो मे श्रम सम्बन्धी समस्याये उत्पन्न नही हो पाती क्योकि उनमे कोई मालिक या कोई मजदूर नही होता और उत्पत्ति के विभिन्न उपादानो की पूर्ति एक ही व्यक्ति द्वारा की जाती है। प्रत्येक देश म श्रम सम्बन्धी आन्दोलन बडे पैमाने के उद्योग धन्धो की स्थापना के पश्चात् ही उत्पन्न हुये है, अर्थात् श्रम सम्बन्धी समस्यायें औद्योगिक क्रान्ति की ही देन है, क्योकि अब उत्पत्ति के विभिन्न उपादानो की पूर्ति विभिन्न साधको द्वारा होती है। प्रत्येक साधक (agent) की अभिलाषा उत्पत्ति के लाभ मे अधिक से अधिक अंश स्वय प्राप्त करने की होती है। अत पारस्परिक मतभेद तथा संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं यह मतभेद स्वतन्त्र व पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे अधिक तीव्र होते हैं। इसका कारण यह है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था म अधिक लाभ प्राप्त करना ही एकमात्र उद्देश्य होता है और यदि श्रमिक शक्तिशाली श्रमिक सघो मे

अवसर तथा सांस्कृतिक व मनोरंजन की सुविधायें आदि। काम करने का वातावरण ऐसा होना चाहिये कि मजदूर व्यावसायिक रोगों तथा अन्य संकटों से सुरक्षित रहे और उसके स्वास्थ्य को हानि न पहुँचे। प्रबन्धकों को श्रमिकों का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये और उचित सुविधा व व्यवहार न मिलने पर श्रमिकों की किसी ऐसी संस्था तक पहुँच होनी चाहिये जो निष्पक्ष हो। मजदूर को इस बात की भी पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वह अपना संगठन बना सके तथा अपने अधिकारों व लाभों की सुरक्षा व वृद्धि के लिए न्यायसंगत साधन अपना सके।" द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में आयोजना आयोग ने कहा है, "श्रम सम्बन्धी नीति के बारे में प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में जो कुछ भी कहा गया है वह भविष्य नीति की आधारशिला मानी जा सकती है। परन्तु द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में श्रम-सम्बन्धी नीति में कुछ उपयुक्त परिवर्तन आवश्यक हैं, क्योंकि द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना एक समाजवादी व्यवस्था को स्थापित करने के उद्देश्य से बनाई गई है। समाजवादी व्यवस्था का निर्माण केवल मुद्रा-सम्बन्धी प्रयत्नों व प्रलोभनों पर ही आधारित नहीं है वरन् ऐसी व्यवस्था में समाज के प्रति एक ऐसी सेवा की भावना उत्पन्न होती है जिसका मूल्य समाज समझता है। इस सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि श्रमिक यह अनुभव कर सके कि वह एक उन्नतिशील राज्य के बनाने में एक महत्वपूर्ण सहायक के रूप में कार्य कर रहा है। अतः समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए औद्योगिक प्रजातन्त्र का निर्माण प्रथम आवश्यकता है।" दूसरी पंचवर्षीय आयोजना में जो श्रम सम्बन्धी कार्यक्रम चालू किये गये थे तीसरी पंचवर्षीय आयोजना के मुख्य कार्यक्रम उन्हीं से सम्बन्धित हैं। तीसरी पंचवर्षीय आयोजना में कहा गया है "भारत में श्रम नीति, उद्योग और श्रमिक-वर्ग से सम्बन्धित परिस्थितियों की विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही बनाई गई है और यह नीति ऐसी होनी चाहिये जो आयोजित अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुकूल हो।" तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में श्रम की महत्ता का इन शब्दों में उल्लेख किया गया है: "पूर्ण रोजगार के स्तर को प्राप्त करने के लिए तथा लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा उठाने के लिए यह आवश्यक है कि आर्थिक प्रगति की रफ्तार काफी तेज हो। प्रगति के फलों का समन्यायपूर्ण रीति से वितरण हो तथा इस सम्बन्ध में समाज का आर्थिक एवं सामाजिक संगठन इस प्रकार किया जाए कि वह समाजवादी समाज की विचारधारा के अनुकूल हो। इन लक्ष्यों की प्राप्ति में श्रमिक वर्ग का योगदान तथा उत्तरदायित्व बड़ा महत्वपूर्ण है और औद्योगीकरण की गति जितनी तीव्र होगी इसका महत्व उतना ही बढ़ता जायेगा।" चौथी पंचवर्षीय आयोजना की रूपरेखा में "स्वतन्त्रता के पश्चात् बने श्रम-कानूनों तथा सरकार, श्रमिकों तथा मालिकों के प्रतिनिधियों के बीच हुए समझौतों" पर जोर दिया गया है। इसमें आगे कहा गया है कि "उत्पादकता की वृद्धि में श्रम को बड़ा महत्वपूर्ण योगदान करना है और प्रबन्धकों को भी चाहिए कि वे ऐसी दशाएँ

उत्पन्न करें जिनके अन्तर्गत श्रमिक उक्त लक्ष्य की पूर्ति मे अपना अधिकतम योगदान दे सकें। अब तक मुख्य रूप से श्रम नीति ऐसी रही है कि सगठित उद्योगो मे काम करने वाले श्रमिको को सरक्षण प्रदान किया गया है। आगामी वर्षों मे श्रम नीति तथा श्रम-कार्यक्रमो को धीरे धीरे अधिक बढाना है जिससे कि कृषि श्रमिको तथा असगठित मजदूरो के विभिन्न वर्गों के लिए भी यथेष्ट व्यवस्थाएँ हो सकें, जैसे कि ठके पर काम करने वाल श्रमिक, निर्माण कार्य करने वाले श्रमिक, स्त्री श्रमिक तथा सफाई आदि के काम मे लगे मजदूर। इन कथनो से हमारे देश मे श्रम सम्बन्धी समस्याओ की महत्ता स्पष्ट हो जाती है। अत इन सब समस्याओ को भलीभाति समझना अत्यन्त आवश्यक है।

2

भारतीय श्रमिकों में प्रवासिता

MIGRATORY CHARACTER OF THE INDIAN LABOUR

प्रवासिता का अर्थ (Meaning of the Migratory Character)

भारतीय श्रमिकों का एक मुख्य लक्षण उनकी प्रवासिता है। श्रमिकों की प्रवासिता का अर्थ यह है कि *औद्योगिक श्रमिक वास्तव में उस स्थान के स्थायी निवासी नहीं होते जहाँ रहकर वे काम करते हैं।* दूसरे शब्दों में पश्चिमी देशों के फैक्ट्री श्रमिकों की भाँति भारतवर्ष में कोई भी श्रमिक-वर्ग नहीं है। पश्चिमी देशों में, जहाँ कि औद्योगीकरण की गहरी जड़ें जम चुकी है, बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्र स्थापित हो गये हैं और मजदूरों का एक स्थायी वर्ग बन गया है जिनका कृषि से कोई सम्बन्ध नहीं होता। वे बड़े-बड़े औद्योगिक नगरों में रहते है, वहीं पलते हैं और मजदूरी ही उनके जीवन-निर्वाह का एकमात्र साधन है। परन्तु भारत में अधिकांश अनिपुण औद्योगिक श्रमिक आस-पास के गाँव से आते हैं और अपने गाँव के घरों से सम्पर्क बनाये रखते हैं। इस प्रकार औद्योगिक नगरों के श्रमिकों को वास्तविक अर्थ में 'प्रवासी' न कहकर 'आवासी' भी कहा जा सकता है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की प्रवृत्ति नैमित्तिक (casual) मजदूरों में ही अधिक पाई जाती है। अन्य प्रकार के श्रमजीवी तो साधारणतया एक ही स्थान पर अथवा एक ही उद्योग में काम करना अधिक पसन्द करते हैं, विशेषकर उन स्थानों में जहाँ मजदूरी अधिक होती है, जैसे जमशेदपुर तथा अहमदाबाद, या जिन उद्योगों में अत्यन्त निपुण श्रमिकों की आवश्यकता होती है। *भारतीय श्रमिकों की प्रवासिता से वास्तव में तात्पर्य यह है कि भारत में कोई स्थायी औद्योगिक जनसंख्या नहीं है जो औद्योगिक नगरों को अपना घर समझती हो।* अधिकांश श्रमिक ग्रामों से आते हैं और समस्या यह है कि उनकी यह प्रवासिता स्थायी न होकर अस्थायी है।

नगरों की जनसंख्या में वृद्धि

श्रमजीवियों के उद्गमस्थान (source) के सम्बन्ध में हुई अनेक जाँचों तथा अनुसंधानों के पश्चात् इस तथ्य में संदेह नहीं रह जाता कि अधिकांश औद्योगिक श्रमिक ग्रामीण ही हैं। वर्तमान शताब्दी में बम्बई तथा कलकत्ता जैसे विशाल औद्योगिक नगरों की जनसंख्या दुगनी व तिगुनी हो गई है। मद्रास, मदुरा, नागपुर कानपुर आदि नगरों की जनसंख्या भी अत्यन्त वेग से बढ़ रही है। अनेक नये नगर

भी बस गये हैं। १९५१ की जनगणना के आँकडो के अनुसार १९४१ तथा १९५१ के १० वर्षों में ऐसे ७५ नगरो की जनसख्या, जिनमे १ लाख या अधिक आबादी थी, ४३.८ प्रतिशत बढ गई थी। नई दिल्ली मे १९७.७ प्रतिशत, मद्रास मे ८३.९ प्रतिशत, बम्बई मे ६६.१ प्रतिशत, कलकत्ता मे २०.६ प्रतिशत, उत्तर प्रदेश के १६ नगरो मे ३३.७ प्रतिशत जनसख्या की वृद्धि हुई थी। जनसख्या का यह आकस्मिक विकास ग्रामीण जनता के औद्योगिक नगरों में आने के कारण तथा देश के विभाजन के पश्चात् विस्थापितो के आगमन के कारण हुआ है। १९६१ की जनगणना के अनुसार पिछले दस वर्षों मे शहरी जनसख्या मे लगभग ३६.२५ प्रतिशत वृद्धि हुई है। यह वृद्धि ग्रामीण जनसख्या मे वृद्धि (१८.८४ प्रतिशत) से लगभग दुगनी है। देहली की जनसख्या में ५१.६ प्रतिशत की वृद्धि हुई और २० हजार अथवा इससे अधिक आबादी वाले नगरो की जनसख्या मे लगभग ४० प्रतिशत की वृद्धि हुई।

श्रमिक सभरण का उद्गम स्थान[1] (Sources of Labour Supply)

साधारणतया छोटे-छोटे औद्योगिक केन्द्र आस पास के गाँवो से मजदूर प्राप्त करते हैं। बम्बई, कलकत्ता और जमशेदपुर जैसे औद्योगिक केन्द्रो मे मजदूरो की पूर्ति अपेक्षाकृत विस्तृत क्षेत्र से होती है। कलकत्ता की जूट मिलो मे ८० प्रतिशत से अधिक श्रमिक बगाली न होकर बिहार, उत्तर-प्रदेश, उडीसा तथा आन्ध्र के रहने वाले हैं। बम्बई की सूती कपडा मिलो मे श्रमजीवी अधिकतर निकट के कोकण, सतारा तथा शोलापुर आदि जिलो से आते हैं, परन्तु दक्षिण तथा उत्तर प्रदेश से भी कुछ श्रमिक आते है। जमशेदपुर के यन्त्रकारी उद्योग के श्रमिक बिहार, बगाल, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उडीसा तथा मद्रास के रहने वाले है और अब लगभग स्थायी रूप से अपने काम के स्थान पर ही रहने लगे हैं। बिहार व बगाल की कोयले की खानो के मजदूर साधारणतया आस पास के गाँवो के ही रहने वाले हैं, यद्यपि युद्ध के दिनो मे कुछ श्रमिक गोरखपुर से भी भर्ती किये गये थे। कोलार की सोने की खानो मे भी ९० प्रतिशत श्रमिक मैसूर से बाहर के हैं। बागान के श्रमिक अधिकतर बिहार, उडीसा और मध्य प्रदेश के रहने वाले हैं। भोपाल के बीडी उद्योग मे अधिकाश श्रमिक मध्य प्रदेश के और जबलपुर (विन्ध्य प्रदेश) के है। हैदराबाद की कोयला खानो के श्रमिक गोरखपुर से आते हैं, और मैसूर के काफी उद्यानो के श्रमिक मद्रास के दक्षिण कनारा के रहने वाले हैं। उत्तर प्रदेश और पजाब मे बहुत से श्रमिक पहाडी हैं जो सदियो मे आते हैं और गर्मियो मे घर चले जाते हैं। उत्तर प्रदेश और बिहार की चीनी मिलो मे काम करने वाले श्रमिक एक राज्य से दूसरे राज्य मे आते-जाते रहते हैं। उडीसा की हीराकुड योजना में अधिकाश श्रमिक आध्र के हैं। देहली मे इमारती काम मे लगे हुए श्रमिक राजस्थान और पजाब के हैं। १९११ की जनगणना की रिपोर्ट ने यह भी बताया था कि

1. The Indian Labour Year Book 1964 pages 38 39

वाराणसी मे एक भी ऐसा परिवार नही था जिसका कोई न कोई सदस्य बिहार, बंगाल या आसाम में काम के लिये न गया हो।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि औद्योगिक केन्द्रो मे श्रमिक अन्य जिलों तथा अन्य प्रान्तों से आते है। कुछ कारखानो तथा खानों मे श्रमिक आस-पास के गाँवो से भी आते है। काम पाने के लिये दूसरे नगरों मे प्रवास कम होता है। भारतीय कुटीर-उद्योगों के पतन तथा १८३० मे अंग्रेजी उपनिवेशो मे दास प्रथा की समाप्ति के पश्चात् ही भारतीय श्रमिक लंका, मलाया, बर्मा आदि दूसरे देशों में नौकरी की खोज मे जाने लगे। बाद में यह प्रवास लंका तक ही सीमित हो गया। १९५७ मे लगभग ३,२७५ श्रमिकों ने काम के लिए अन्य देशों में प्रवास किया। इसके बाद कुछ देशों की सरकारों की नीति के कारण (जैसे लंका) प्रवास कम होता चला गया है। १९४७ मे देश के विभाजन के पश्चात् भी भारत व पाकिस्तान के बीच लोगों का आवास-प्रवास हुआ, परन्तु इसका कारण भिन्न ही था।

प्रवासिता का स्वभाव (Nature of Migration)

यद्यपि श्रमजीवी गाँव से आता है परन्तु यह आवश्यक नही कि वह किसान ही हो, और अपना कृषि का काम कुछ दिनों के लिये छोड़कर अपनी आय बढाने के लिए औद्योगिक नगर मे नौकरी करने के लिए आया हो। ऐसे श्रमजीवी जिनकी रुचि कृषि की ओर अधिक रहती है केवल सामयिक या मौसमी उद्योगो तथा खानों में अधिक पाये जाते हैं। निरन्तर चालू कारखानों मे अब मालिक इस बात के लिये विवश नही रह गये है कि वे ऐसे श्रमिकों को काम पर लें जो कुछ महीने काम करने के पश्चात् फसल काटने व बोने के लिये गाँव वापिस चले जायें। श्रम अनुसधान समिति ने अपने अन्वेषणों के आधार पर यह बताया था कि अधिकाश मिल-मजदूर यद्यपि गाँव से आते हैं परन्तु खेती में ही उनकी पूँजी नही लगी होती तथा उसी पर वे निर्भर नही होते। कभी-कभी जब वह गाँव जाते भी हैं तो खेती के कार्य के लिये नही वरन् आराम तथा स्वास्थ्य सुधारने के उद्देश्य से जाते हैं। खेती मे उनकी थोडी-बहुत रुचि केवल इसलिये होती है कि वे ऐसे सम्मिलित परिवार के सदस्य होते है जिनके पास भूमि होती है या उनके निकट सम्बन्धी कृषक होते है। वास्तव मे मिल मजदूरों के कृषक-स्वभाव के सम्बन्ध मे केवल इतनी सत्यता है कि उनमे से अधिकाश हृदय से ग्रामीण होते हैं। वे गाँव मे जन्म लेते है और उनका बचपन गाँव मे ही व्यतीत होता है। वे ग्रामीण परम्परा के अधीन होते है और अधिकाश अपने परिवार को गाँव में ही छोड आते हैं। कुछ श्रमिक यदि अपनी स्त्रियों को साथ लाते भी है तो भी प्रसूति के समय उन्हे गाँव भेज देते है। श्रमिक अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर अथवा कार्यवश गाँव जाते रहते हैं। साधारणतया सामाजिक उत्सवो तथा सस्कारों के समय या परिवार की किसी जटिल समस्या का समाधान करने या बीमारी के समय या गाँव के मकान की

मरम्मत आदि के समय तथा अपने परिवार के सदस्यों से मिलने के लिए वे गाव जाते रहते हैं। कुछ श्रमिक गाँव में पर्याप्त भोजन व वस्त्र मिलने पर अथवा कार्य मिलने पर उद्योग-धन्धों में काम छोडकर गाँव वापिस जाने के लिए भी तैयार रहते हैं और बहुत से श्रमिकों में यह तीव्र इच्छा पाई जाती है कि अवकाश ग्रहण करने के बाद स्थाई रूप से अपने गाँव वापिस जाकर बस जायें। कई बार श्रमिकों का गाव से सम्बन्ध केवल इतना ही रह जाता है कि वे गाँव के महाजन या अपने कुटुम्ब के सदस्यों को रुपया भेजते रहते हैं, इसके अतिरिक्त मजदूरों का गाव से कोई विशेष लगाव नहीं रहता। एक बार जब वे उद्योग धन्धों में काम करने के लिए आ जाते हैं तो काफी समय तक उसी में काम करते रहते हैं। गाव वापिस जाने के लिये सभी श्रमिक बहुत इच्छुक भी नहीं रहते। जैसा रॉयल श्रम आयोग ने कहा है, कुछ श्रमिकों के साथ तो गाँव का सम्बन्ध घनिष्ठ तथा निरन्तर रहता है, और कुछ के साथ यह सम्बन्ध क्षणिक तथा सामयिक होता है तथा कुछ के साथ तो यह सम्बन्ध वास्तविक न होकर केवल एक प्रेरणा मात्र रह जाता है।[2] कुछ भी हो इस तथ्य में सन्देह नहीं कि भारत में अभी तक कोई स्थायी औद्योगिक जनसंख्या नहीं बन पाई है और श्रमिकों का प्रवास अस्थायी है।

प्रवासिता के कारण—

प्रवासिता के अनेक कारण हैं जिनमें सबसे मुख्य कारण यह है कि कुटीर उद्योग धन्धों के पतन तथा जनसंख्या के बढ जाने से भूमि पर जनसंख्या का दबाव अधिक हो गया है, अर्थात् भूमि इतने लोगों का जीवन निर्वाह नहीं कर पाती जितने उस पर निर्भर रहते हैं। परिणामस्वरूप किसानों के खेत छोटे छोटे हो जाते हैं और उनके जीवन में निर्धनता, बेकारी तथा ऋण की समस्यायें आ जाती हैं। इसके अतिरिक्त गाँव में एक भूमिहीन मजदूर वर्ग भी पाया जाता है जो कि कठिनाई से अपना जीवन निर्वाह करता है, और बुरे वर्षों में तो उनकी अवस्था और भी अधिक शोचनीय हो जाती है। इस वर्ग में वृद्धि होती रही है क्योंकि ऋण के कारण तथा जमींदारों के अत्याचारों के कारण अथवा आपसी झगड़ों के कारण बहुत से किसान अपनी भूमि खो बैठे हैं। इन भूमिहीन श्रमजीवियों की अवस्था इतनी शोचनीय हो जाती है कि वे गाँव छोडकर जीविकोपार्जन के लिए नगरों में काम ढूढने आ जाते हैं। यातायात के साधनों में उन्नति होने के कारण गाँव छोडने में कठिनाई भी नहीं होती। कुछ स्थानों में किसानों की भूमि इतनी कम है कि वे उस पर रहकर अपना जीवन निर्वाह नहीं कर सकते। अतः उन्हें प्रत्येक वर्ष जीविका की खोज में गाव से नगरों में आना पड़ता है। संयुक्त परिवार प्रथा होने के कारण गाँव छोडने में आसानी होती है क्योंकि वे अपनी भूमि तथा घर की सुरक्षा का भार परिवार के अन्य सदस्यों पर छोड देते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक बार कृषक नगरों में रुपया कमाने इसलिए जाते हैं कि वे पशु और भूमि

2 Report of the *Royal Commission on Labour*, page 13

खरीद सकें। कुछ लोग गाँव के महाजनों से बचने के लिए नगरों में चले जाते हैं। गाँव के अनेक कारीगरों को भी, जो पहले ग्रामनिवासियों के लिए सामान बनाते थे, विदेशी माल की प्रतिस्पर्धा के कारण अपना धन्धा छोड़ना पड़ा और परिस्थितिवश उनको गाँव से नगरों में जीविका की खोज में आना पड़ा। इसके अतिरिक्त दलित वर्ग के व्यक्ति यह अनुभव करते हैं कि उनके प्रति नगरों में गाँव की अपेक्षा अधिक अच्छा व्यवहार होता है और उनका इतना अनादर नहीं होता। औद्योगिक नगरों में जात-पांत का बन्धन काफी ढीला होता है। यह देखा गया है कि कानपुर में बड़े उद्योग-धन्धों में महिला श्रमिकों में से ६० प्रतिशत पिछड़ी हुई तथा दलित जाति की है, जैसे—कोरी, खेल, पासी और भंगी। इसी प्रकार पुरुष तथा मजदूरों में से ३० प्रतिशत दलित जाति के हैं जिनमें से लगभग आधे कोरी हैं।[3] कुछ ग्रामवासी अनेक अन्य कारणों से भी गाँव छोड़कर नगरों में आ जाते हैं, जैसे—घरेलू झगड़ों तथा चिन्ताओं से छुटकारा पाने के लिये अथवा सामाजिक बहिष्कार के कारण या किसी नैतिक पतन के दंड से बचने के लिये या किसी प्रेम-सम्बन्ध के कारण।

अब हमें यह देखना है कि यह प्रवासिता अस्थायी क्यों है और श्रमजीवी गाँवों से अपना सम्बन्ध क्यों बनाये रखते हैं। श्रमजीवी नगरों में अधिक मजदूरी मिलने के प्रलोभन से आते हैं परन्तु अपने व्यवसाय की अनिश्चितता, मकानों की कमी, किराये की ऊँची दर तथा काम करने व रहने की विषम परिस्थितियों के कारण वे स्थायी रूप से नगरों में रहना या अपने परिवार को लाना पसन्द नहीं करते। रॉयल श्रम आयोग के शब्दों में . "प्रवासिता की मुख्य प्रेरणा केवल एक ओर से ही होती है, अर्थात् गाँव की ओर से। औद्योगिक श्रमिक शहरी जीवन के प्रलोभन से अथवा किसी आकांक्षा से प्रोत्साहित होकर नहीं आते। नगरों में उनके लिये कोई आकर्षण नहीं होता। गाँव छोड़ते समय उनमें केवल जीवन-निर्वाह के लिये आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करने के अतिरिक्त अन्य कोई अभिलाषा नहीं होती। गाव में ही पर्याप्त भोजन व वस्त्र मिलने पर उद्योगों में काम करने के लिये कम ही मनुष्य जाना पसन्द करेंगे। मजदूर नगरों में आकर्षित होकर नहीं, विवश होकर आते हैं।"[4] क्योंकि मजदूर नगरवासियों से भिन्न होता है इसलिये अपने आपको नगरों के अनुकूल नहीं पाता और उसमें हीन भावना आ जाती है। नगरों में उसको गवार और अशिक्षित समझा जाता है और उसको वह आदर व सम्मान प्राप्त नहीं होता जो उसे गाँव में मिलता है। शहरी जीवन गाँव के जीवन से भिन्न होता है। गाँव का जीवन सामूहिक जीवन है; सुख-दुख के सब साथी होते हैं, परन्तु नगरों में व्यक्तिगत जीवन होता है। सहायता देना तो दूर रहा कोई

3. R. Mukerjee: *Indian Working Class*, page 9.

4. " .. they are pushed, not pulled to the city."—Report of the *Royal Commission on Labour*, page 16.

ग्रामीणो से बात तक करना पसन्द नही करता। काम करने की स्थिति मे भी गांव और नगरो मे बड़ा अन्तर है। गांव मे काम खुली हवा मे अपने साथियो के साथ ही होता है। खेती का काम भी नियमित रूप से नही होता, परन्तु नगरो मे मजदूरो को कारखानो म काम करना पडता है जहाँ बडा अनुशासन होता है। ऐसे लोगो के अधीन कार्य करना पडता है और उनका कहना मानना पडता है जिन्हे वे जानते तक नही। कार्य को समझने मे भी कठिनाई होती है। परिणामस्वरूप जब ग्रामनिवासी अपने को कार्य के अनुकूल नही बना पाता तो उसे अपने घर की याद आने लगती है और वह गाँव वापिस जाना चाहता है। नगरो मे रहने की स्थिति भी गाव से भिन्न होती है। मकानो के अभाव के कारण औद्योगिक नगरो म अनेक श्रमिक परिवारो को एक ही मकान मे रहना पडता है। फलस्वरूप मजदूरो की गन्दी वस्तिया उत्पन्न हो जाती है जिससे पारिवारिक जीवन सुखमय नही बन पाता। जब पुरुष व नारी प्रत्येक कार्य के लिये एक ही कमरे मे रहते हैं तो लज्जा व सस्कृति का लोप हो जाता है। किसी प्रकार का भी एकान्त नहीं रहता और जीवन के सब कार्य जन्म, मरण, रोग, आदि एक ही कमरे मे सबके सामने होते है। आत्म-सम्मानी मजदूर ऐसी स्थिति मे अपने परिवार को लाना पसन्द नहीं करते। अत वे परिवार को गाँव म छोड आते हैं और नगर मे अकेले रहते हैं। नगरो मे स्त्री व बच्चो के लिय काम भी कठिनाई से मिलता है, परन्तु गाँव मे उनको कुछ न कुछ काम मिल ही जाता है और रहन-सहन भी इतना महँगा नहीं होता। इसके अतिरिक्त नगरो म मनुष्यो का नैतिक आदर्श बहुत गिर गया है। इस कारण श्रमिक अपनी युवा स्त्री व कन्या को गाँव मे रखना अधिक पसन्द करते हैं क्योकि नगरो म नैतिक पतन का भय बना रहता है। जब परिवार गाँव म रहता है तब श्रमिको का सम्बन्ध गाँव से बना ही रहता है। इसके अतिरिक्त सयुक्त परिवार प्रथा के कारण भी मजदूर अपने गाँव म पूर्वजो के घरो से सम्बन्ध स्थापित रखता है। ऐसे श्रमिको को भी, जो कम भूमि के कारण या उससे कम उपज होने के कारण नगरो मे आ जाते हैं, अपना सम्बन्ध भूमि से रखना ही पडता है जिससे भूमि से थोडी बहुत जो भी आय हो जाय वही अच्छा है। इन सब कारणो से औद्योगिक नगरो म एक स्थायी श्रमिक वर्ग का निर्माण कठिन हो जाता है।

प्रवासिता के दुष्परिणाम

श्रमिक जब ग्रामो स नगरो मे आते हैं तो स्वय को अत्यन्त भिन्न वातावरण मे पाते हैं। रीति-रिवाज, परम्परा और भाषा तक भिन्न होती है। गाँव का सामूहिक जीवन और उसके अन्तर्गत प्राप्त सुविधायें समाप्त हो जाती हैं। नगरो के जीवन मे रीति-रिवाजो का महत्व कम हो जाता है और जीवन व्यक्तिगत हो जाता है। इन बातो का श्रमिक की मन स्थिति पर गहरा प्रभाव पडता है। उसका स्वास्थ्य बिगड जाता है और उसकी कार्य-कुशलता कम हो जाती है। श्रमिक के स्वास्थ्य पर कई कारणो से बुरा प्रभाव पडता है, जैसे जलवायु व कार्य करने के

वातावरण मे अन्तर, खराब भोजन, अधिक भीड, सफाई का न होना और परिवार से विवश होकर अलग रहना, आदि । नगरों में रहने तथा कार्य करने का वातावरण गाँव से भिन्न होता है । गाँव मे कार्य अनियमित रूप से होता है और विश्राम का अवसर काफी मिलता है, परन्तु नगरों में श्रमिक स्वय को कारखानो को चारदीवारी मे बन्द अनुभव करता है और मशीनों की ध्वनि से उसके कान के पर्दे फटने से लगते हैं । उसे घंटों लगातार मेहनत करनी पड़ती है और कार्य भी कडे अनुशासन मे करना पडता है । इन बातो से श्रमिकों के शरीर व मस्तिष्क पर काफी भार पडता है और उनकी कार्य-कुशलता कम हो जाती है । नगरो मे भोजन भिन्न होने के कारण भी श्रमिक के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है । शुद्ध दूध, घी और दही जिनका वह अभ्यस्त होता है, नगरों मे उसे प्राप्त नही हो पाते । गाँव में तो उन्हे अपनी पत्नियो से बना बनाया भोजन घर पर या खेत पर प्राप्त हो जाता था, परन्तु नगरो मे उन्हें बासी और खराब भोजन मिलता है जो वे या तो स्वयं संध्या समय उल्टा सीधा बना लेते है या महँगे दामों पर दूसरों का बनाया हुआ भोजन मोल लेकर खाते हैं । ग्रामवासी इतने स्वच्छ भी नही होते और उनके स्वच्छ न रहने की आदत घने बसे नगरो मे गाव की अपेक्षा अधिक हानिकारक सिद्ध होती है । उनका स्वास्थ्य इस कारण भी गिर जाता है कि अनेक श्रमिक अपनी पत्नियो को गाव छोड़ आते है और जब उन्हे परिवार का आनन्दमय जीवन नही मिल पाता तो वे बुरी प्रवृत्तियो के, जैसे शराब, वेश्यागमन और जुआ आदि, जो औद्योगिक केन्द्रों मे काफी मात्रा मे पाये जाते है, आसानी से शिकार हो जाते हैं । उनको कई गन्दी बीमारियाँ भी लग जाती है जो कि उनके गाव जाने पर वहाँ तक फैल जाती है । व्यभिचार से पारिवारिक जीवन मे भी कड़वाहट आ जाती है । फलत इसके कई दुष्परिणाम उत्पन्न हो जाते है । इन अनेक बातो से श्रमिक को पहले तो घबराहट सी होती है और फिर जब बीमारी घेर लेती है और उसको कोई सहारा नही दिखाई देता तो नगर मे दु.ख और यातनाये भोगने की अपेक्षा वह अपने गाव जाना अधिक पसन्द करता है ।

४ प्रवासिता का श्रमिकों की कार्यकुशलता पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है । प्रथम तो श्रमिक को अपने कार्य मे पूर्ण प्रशिक्षण प्राप्त नही हो पाता और जब वह गाँव वापिस चला जाता है तो जो कुछ भी प्रशिक्षण कारखानो मे मालिक दे पाते है वह भी समाप्त हो जाता है । श्रमिक स्वय भी लगकर अनुशासन मे कार्य नही करते क्योकि हर समय वे गाँव जाने की बात ही सोचते रहते है । निकाल दिये जाने की धमकी भी उन पर अधिक प्रभाव नही डालती क्योकि उनके सामने अपने गाँव वापिस लौट जाने का रास्ता खुला रहता है ।

५) श्रमिको की प्रवासिता का प्रभाव औद्योगिक सगठन तथा श्रमिक सघों पर भी पड़ता है । श्रमिक सघ भली-भांति प्रगति नही कर पाते । संघों के बनाने मे अनेक श्रमिक न तो कोई रुचि दिखाते है और न चन्दा ही देते हैं क्योकि वे यह

समझते हैं कि वे स्थायी रूप से नगरो मे रहने के लिये नही आये है । इसके अतिरिक्त उन्हे एक दूसरे पर भरोसा भी नही होता, क्योंकि श्रमिक देश के विभिन्न भागो से आते हैं और उनकी जाति, भाषा तथा धर्म भिन्न-भिन्न होते है । इन्ही कारणो से श्रमिको मे से ही उनके नेता नही बन पाते । श्रमिक बराबर स्थानान्तरित होते रहते है और उनका सम्पर्क भी बदलता रहता है । इसके अतिरिक्त श्रमिको के बार-बार गाँव जाने से और काम पर अनुपस्थित रहने के कारण मिल-मालिक और मजदूरो मे आपसी सम्पर्क नही हो पाता और दोनो मे मेल मिलाप नही बढता। साथ ही गाँव से लौटने पर यह निश्चित नही होता कि श्रमिक को फिर काम पर लगा लिया जायगा । फिर से काम पाने के लिये उसे मध्यस्थ को रिश्वत देनी पडती है । इसके अतिरिक्त मिल-मालिक श्रमिको की प्रवासिता का बहाना बना कर उनको अनेक ऐसी सुविधाओ से वंचित रखते है जो कि पश्चिमी देशो मे श्रमिक को प्रदान की जाती है ।

प्रवासिता के लाभ

प्रवासिता के अस्थायी होने के कुछ लाभ भी है। मजदूरो की बीमारी, हडताल, बेकारी, वृद्धावस्था आदि में जब भी कठिनाइयाँ होती हैं तो उन्हे गाँव मे अपना घर होने से सहारा मिल जाता है । इस विश्वास से ही कि यह सहारा उन्हे सदैव मिलता रहेगा, उनमे पर्याप्त शक्ति व आशा का सचार हो जाता है । भारत मे अभी तक किसी विस्तृत सामाजिक सुरक्षा योजना अथवा मजदूरो के लिये अभाव व दुर्घटनाओ के समय मे कोई सरकारी सहायता की व्यवस्था नही है । इसलिये यदि गाँव से सम्बन्ध न रहे तो अनेक श्रमिको की अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो जायगी ।

जब श्रमिक छुट्टी लेकर गाँव जाता है तो उसके स्वास्थ्य पर भी अच्छा असर पडता है और जब गाँव की प्राकृतिक स्वच्छन्दता मे रहकर वह वापिस आता है तो उसकी कार्यक्षमता मे वृद्धि हो जाती है ।

गाँव और कृषि को भी प्रवासिता से लाभ पहुँचता है । कारखानो मे काम मिल जाने से गाँव की बहुत सी जनसख्या बाहर चली जाती है और भूमि पर जनसख्या का दबाव कम हो जाता है । उद्योग धन्धे कृषि की अनिश्चितता के प्रति एक प्रकार के बीमे का कार्य करते है। श्रमिक अपनी आय का कुछ भाग गाव मे भी भेजता रहता है जो कभी कभी खेती की उन्नति मे सहायक होता है । १९४२ मे डाकघरो से जाँच करने के पश्चात् यह ज्ञात हुआ था कि पटसन की मिलो मे काम करने वाला प्रत्येक मजदूर प्रति वर्ष लगभग ८२ रुपये गाँव भेजता था जो गाँवो का स्तर देखते हुए एक बहुत बडी धन राशि थी ।[5] इसके अतिरिक्त जैसा रॉयल श्रम आयोग ने कहा है, नगर का जीवन मनुष्यो को खराब तो कम करता है, परन्तु

5. Ministry of Information and Broadcasting *Labour in India*, page 11.

अधिकांश व्यक्तियों का दृष्टिकोण शहरी जीवन में रहने से विस्तृत हो जाता है और उनकी बुद्धि का विकास होता है। श्रमजीवी जब गाँव जाते हैं तो अपने साथ स्वतन्त्र विचार भी ले जाते हैं जिनके कारण गाव में अनेक सामाजिक सुधार सम्भव हो सके हैं और ग्राम-निवासियों ने स्वयं को अनेक पुराने रीति-रिवाजों से स्वतन्त्र कर लिया है।

उपसंहार

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या इस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि ऐसे श्रमजीवी वर्ग का विकास हो जो पूर्ण रूप से औद्योगिक क्षेत्रों में ही रहता हो और जिसका गाँव से कोई सम्बन्ध न हो ? या गाँव से श्रमिकों का जो वर्तमान सम्बन्ध रहता है, उसे बनाये रखने और प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है ? रॉयल श्रम आयोग का मत यह था कि जो भी तत्कालीन अवस्था थी उसमें कोई परिवर्तन सम्भव नहीं था। आयोग के शब्दों में "चाहे कोई भी मत क्यों न लिया जाय उद्योग-धन्धों को काफी समय तक श्रमिकों के लिए गाँव पर निर्भर रहना पड़ेगा और इस बात से कि श्रमजीवियों ने बिना किसी प्रोत्साहन के गाव से अब तक सम्बन्ध स्थापित रखा है, यह प्रमाणित होता है कि उनका यह सम्बन्ध काफी दृढ़ हो चुका है। अतः हमारा स्पष्ट मत है कि वर्तमान स्थिति देखते हुये गाव से सम्बन्ध स्थापित रखना लाभप्रद ही है और इसलिए हमारा उद्देश्य इस सम्बन्ध को समाप्त करने का न होकर इसे प्रोत्साहित करने का होना चाहिये और जहाँ तक सम्भव हो, इसको नियमित करने का प्रयत्न करना चाहिये।"[6]

डॉ० राधा कमल मुखर्जी का मत यह है कि उद्योग-धन्धों का विकास एक नियन्त्रित योजना के आधार पर तथा देश में उनके क्षेत्रीय पुनर्वितरण को दृष्टि में रखते हुए करना चाहिये जिससे गाव से सम्बन्ध बनाये रखने के जो भी लाभ है वह प्राप्त होते रहें। उनका कहना है कि 'अगर भारत को योजनाहीन औद्योगिक विकास के सामाजिक दुष्परिणामों से बचना है और जनसंख्या को कुछ घने बसे औद्योगिक नगरों में केन्द्रित होने से रोकना है तो हमारी भविष्य की औद्योगिक नीति यह होनी चाहिये कि उद्योगों को ऐसे स्थानों पर स्थापित किया जाय जहा कच्चे माल और श्रमजीवियों की प्राप्ति की सुगमता हो।"[7] डॉ० मुकर्जी ने रूस, *जर्मनी, बेलजियम, हालैंड, जैकोस्लोवाकिया, जापान आदि देशों का उदाहरण दिया* है जहाँ बड़े उद्योगों का विकास शहरों से दूर हुआ। श्रमिकों को गांव से कारखानों तक लाने और वापिस ले जाने के लिये छोटी रेलों, बसों व स्टीमरों आदि का प्रबन्ध हो सकता है। इस प्रकार डॉ० मुकर्जी उद्योगों के विकेन्द्रीकरण के पक्ष में है। उनका मत है कि कुटीर व विकेन्द्रित उद्योगों और बड़े-बड़े उद्योगों का आपस में सम्पर्क होना चाहिये। इस प्रकार वे श्रमजीवियों के ग्रामीण स्वभाव को बनाये

6. *Royal Commission on Labour*, Page 20
7. R. Mukerjee : *Indian Working Class*, page 13.

रखने के पक्ष मे है। परन्तु औद्योगिक नगरो की त्रुटियो का दूर करने के लिये विकेन्द्रीकरण (Decentralization) को भी आवश्यक समझते है।

हम इन मतो स पूर्णतया सहमत नही ह। विकेन्द्रीकरण अन्य दृष्टिकोणो से लाभदायक हो सकता है परन्तु प्रवासिता की समस्या केवल भविष्य म स्थापित होन वाले उद्योगो से ही सम्बन्धित नही है। यह समस्या उन श्रमिको स भी सम्बन्ध रखती है जो पूर्णतया स्थापित उद्योगो मे काम करत ह। इस बात का भी ध्यान रखना है कि स्थायी औद्योगिक जनसख्या के विकास के लक्षण उत्पन्न हो चुके हैं। ऐस श्रमिक जो दूर स्थानो से आते है नगरो मे स्थायी रूप से रहन लग है। दलित वर्गो के श्रमिक भी गाव वापिस जाना नही चाहते। भूमि-हीन श्रमिक भी नगरो मे ही स्थायी रूप से रहना पसन्द करते है। इस प्रकार परिवर्तित परिस्थितियो को देखते हुय रायल श्रम आयोग का यह मत ठीक प्रतीत नही होता कि गाँव से सम्बन्ध अवश्य स्थापित रखना चाहिये। हम अपनी निजी खोज के आधार पर कह सकते है कि अधिकाश श्रमिक नगर के जीवन के अब अभ्यस्त हो गये है और शहरी जीवन के आकर्षण, जैसे-सिनेमा बिजली बच्चो के स्कूल आदि उनके जीवन म काफी प्रवेश कर चुके हैं। अत उन्ह गाव क जीवन से बहुत लगाव नहीं रह गया है। इसलिये अब यह अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि औद्योगिक केन्द्रो की अवस्था म उन्नति की जाय और वे सब कारण, जो श्रमिको का गाव जाने के लिये विवश करते हैं दूर किय जाय।

श्रम अनुसधान समिति[8] के विचारानुसार श्रमिक एक स्थान पर स्थायी रूप स तभी रह सकते हैं जब उनकी रहन और काम करन की दशाओ म सुधार तथा उन्नति की जाय। इस सम्बन्ध मे इस समिति न अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कॉंग्रेस तथा अनेक मिल मालिको का मत दिया है। सब इस बात स सहमत है कि स्थायी श्रमिक वर्ग उद्योगो के लिय बहुत लाभप्रद सिद्ध होग। परन्तु श्रमिको की प्रवासिता को रोकन के लिय यह आवश्यक है कि उनके मकानो की अवस्था म मजदूरी म उनके काम करने और रहने की स्थिति मे तथा उनके कल्याण क कार्यो म सुधार किया जाय। श्रम समिति क विचार म अधिकतर औद्योगिक श्रमिक भूमिहीन मजदूर होत है और वे गाव कभी कभी केवल आराम मनोरजन तथा सामाजिक उत्सवो व सस्कारो के अवसर पर जाते है। इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि मजदूर के दृष्टिकोण से तो बार बार गाव जान की बहुत आवश्यकता नही है। गाँव मे व्यवसाय की, मजदूरी की, तथा मकानो की अवस्था नगरो से अधिक अच्छी नही कही जा सकती। परन्तु इसम कोई सदेह नही कि गाँव और सयुक्त परिवार प्रथा श्रमजीवियो के लिए एक सामाजिक सुरक्षा योजना का आधार है। इसलिय वर्तमान अवस्था मे जब तक श्रमिको के लिए एक सामाजिक सुरक्षा योजना का प्रबन्ध नही हो जाता जो रोग, बेकारी, वृद्धावस्था

8 *Labour Investigation Committee Report*, pages 77–78.

आदि मे उनको सुरक्षा प्रदान करें तब तक श्रमिकों के लिए गावों को एक आराम और सुरक्षा का स्थान मानना ही पड़ेगा। सूती कपड़ा मिल मजदूर संघ के इस मत से श्रम-समिति सहमत नही है कि औद्योगिक नगरों मे नौकरियों का अभाव तथा श्रमजीवियो की संख्या अधिक होने के कारण श्रमिकों का गाँव से शहर में आना बन्द कर दिया जाय। अनेक ग्रामनिवासी झूठी सूचना पाकर और अच्छी नौकरी व वेतन की झूठी आशा लिये नगरों मे आते है और जब वह नगरों मे आ जाते है तो उनको निराश होना पडता है और दुःख उठाने पड़ते हैं। फिर भी इन समस्याओ का उपचार प्रवासिता को रोकने से नही होगा; वरन् यह चाहिये कि नवीन व्यवसाय स्थापित किये जाये, श्रमिकों की दशा मे सुधार किये जायें और श्रमिकों को उचित नौकरी दिलाने मे सहायता की जाय।

भावी नीति

जहाँ तक भविष्य की नीति का प्रश्न है हम श्रम समिति के इस मत से सहमत है कि गाँव से सम्बन्ध स्थापित रखने की समस्या को दो दृष्टिकोणों से देखना चाहिये। एक दृष्टि से तो गांवो को श्रमजीवियों के अल्प समय के लिए मनोरंजन का उपयुक्त स्थान माना जा सकता है, द्वितीय दृष्टि से गांव को श्रम-जीवियो के लिए एक सुरक्षा का स्थान माना जा सकता है। जहाँ तक पहले दृष्टिकोण का प्रश्न है, इसमे कोई संदेह नही कि श्रमिकों को गाव जाने के लिए हर प्रकार की सुविधायें देनी चाहियें, जैसे—सस्ते वापसी टिकट तथा छुट्टी आदि, परन्तु श्रम अनुसंधान समिति इस बात से सहमत नही है कि भविष्य मे श्रमजीवियों की सुरक्षा के दृष्टिकोण से गावो से सम्बन्ध स्थापित रहना चाहिये। निःसन्देह उपाय यही है कि औद्योगिक नगरों की दशा मे उन्नति की जाय और श्रमिको के लिये सामाजिक सुरक्षा योजना, मकान, मजदूरी, अच्छा भोजन आदि का उचित प्रबन्ध किया जाय और कारखानों मे काम करने के वातावरण मे उन्नति की जाय। इस बात से अब सब सहमत है कि गाव मे संयुक्त परिवार प्रथा और जाति-बन्धनो का ह्रास होता जा रहा है जो अब तक आर्थिक दृष्टि से मजदूरों की सुरक्षा के साधन थे और श्रमिक इस समय ऐसी परिवर्तनशील अवस्था मे है, जबकि धीरे-धीरे उनका गावों से तो सम्बन्ध टूटता जा रहा है, परन्तु अभी तक वे औद्योगिक नगरों के पूर्णतया स्थायी निवासी नही बन सके हैं। अतः ऐसी स्थिति मे श्रमिक को गाँव से आने से रोकना या उसको गांव वापिस जाने के लिये विवश करना, समस्या का समयानुकूल समाधान न होगा।[9]

---

9. *Labour Investigation Committee Report*, page 78.

३

औद्योगिक श्रमिकों की भर्ती की समस्याएँ

THE PROBLEMS OF RECRUITMENT OF THE INDUSTRIAL WORKERS

प्रारम्भिक इतिहास (Early History)

श्रमिका के रोजगार म सर्वप्रथम समस्या उनकी भर्ती की है। उद्योगो मे जिन पद्धतियो और सगठनो द्वारा श्रमजीविया को भर्ती किया जाता है उन पर व्यवसाय की सफलता अथवा विफलता बहुत कुछ निर्भर करती है। यदि काम के अनुकूल श्रमिक काम पर नही लगाया जाता तो उत्पादन और कायकुशलता पर बुरा प्रभाव पडता ह। भारत मे बडे उद्योगो की स्थापना के प्रारम्भिक काल म कारखाना और बागान के मालिको को श्रमिक भरती करने म अनेक कठिनाइया का सामना करना पडा। इसका कारण यह था कि श्रमिक अपना गाव छोडकर कारखानो और बागान के नये तथा विभिन्न वातावरण मे जान के लिय तैयार नही थ। कारखाना मे काम करने की स्थिति भी वतमान समय से अधिक खराब थी। १८९६ की प्लेग तथा १९१८ की इन्फ्लूएन्जा की महामारी के कारण भी श्रमिका का अभाव हो गया था। इनका प्रभाव यह पडा कि मालिको को मजदूर भर्ती करने के लिये अच्छे बुरे सब प्रकार के तरीको को अपनाना पडा और भर्ती मध्यस्था (Intermediaries) तथा ठकेदारा (Contractors) द्वारा होने लगी। यह प्रणाली आज भी प्रचलित है यद्यपि पिछले कुछ वर्षो से अब भर्ती सीधा प्रणाली द्वारा होने लगी ह। इसका कारण यह है कि अब श्रमिक काफी सख्या म उद्योग धन्धो म आने लगे है क्योकि जनसख्या की वृद्धि के कारण और कृषि पर जनसख्या का अधिक दबाव होने के कारण जीविका की खोज म लोगो को गाव छोडना पडा है। यातायात के साधनो मे उन्नति हो जाने के कारण उन्हे नगरो मे आने मे कठिनाई भी नही होती। फिर भी प्रारम्भ मे श्रमिको के अभाव और उनकी प्रवासिता (Migratory character) के कारण भर्ती की प्रणाली सोच विचार कर प्रारम्भ नही की गई और श्रमिको के प्रशासन तथा व्यवस्था मे कोई सैद्धान्तिक तरीका नही अपनाया गया। क्योकि शहरी क्षेत्रो मे श्रमिक स्थायी रूप से नही रहते हैं और जैसा पिछले अध्याय मे बताया जा चुका है अधिकतर श्रमिक गाव से ही आते हैं और उनसे अपना सम्बन्ध बनाये रखते है इसलिये भर्ती प्रणाली पर भी

श्रमिकों की इस प्रवासिता का प्रभाव पड़ा है और श्रमिको को प्राप्त करने के लिए भर्ती की अनेक दोषपूर्ण पद्धतियां काम मे लाई गई हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि श्रमिकों की प्रवासिता ने भर्ती प्रणाली पर अपना काफी प्रभाव डाला है।

भर्ती प्रणाली में मध्यस्थों का स्थान (The Role of Intermediaries)

संगठित व असंगठित दोनों प्रकार के उद्योगो मे श्रमिकों को गाँव से नगरों मे लाने के लिये अधिकतर मध्यस्थों पर निर्भर रहा गया है। प्रायः श्रमिको को अच्छा वेतन, सुविधाजनक व्यवसाय आदि का प्रलोभन देकर नगरों की ओर आकर्षित किया जाता है। मध्यस्थों को श्रमिक लाने के लिए अच्छा कमीशन मिलता रहा है।

मध्यस्थो द्वारा श्रमिको की भर्ती बहुत समय से अनेक भारतीय उद्योगों का मुख्य लक्षण रहा है, यद्यपि पिछले वर्षों मे इस प्रणाली मे कुछ परिवर्तन हुआ है। मध्यस्थों अथवा मिस्त्रियो को भारत के विभिन्न उद्योग-धन्धो मे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है, जैसे—सरदार, मिस्त्री, मुकद्दम, टिन्डेल, चौधरी, कगनी आदि। मध्यस्थ एक महत्वपूर्ण व्यक्ति है जो अनेक कार्य करता है। बड़े-बड़े उद्योगो मे प्रधान मध्यस्थ और नारी मध्यस्थ भी, जिन्हे नायकिन या मुकद्दमिन कहते हैं, पाये जाते है। मध्यस्थ या सरदारो को श्रमजीवियों मे से ही चुना जाता है। यह कोई बाहर के व्यक्ति नही होते। जो श्रमिक अनुभवी हो जाते है और मालिकों की कृपा-दृष्टि प्राप्त कर लेते हैं उनको इस पद पर नियुक्त कर दिया जाता है। इन सरदारों पर अनेक कामो का भार सौंप दिया जाता है। श्रमिकों की नियुक्ति, प्रशिक्षा, पदोन्नति, बरखास्तगी, दण्ड, छुट्टी और आवश्यकता के समय उन्हे रुपये उधार देना आदि सभी प्रकार के कार्य मध्यस्थ करते है। कारखानो मे मशीनो की देखभाल मे वे मिस्त्रियो की सहायता भी करते हैं। श्रमिक उन्हें अपने अधिकारो का सरक्षक भी समझते है, जिनके बिना उनका निर्वाह कठिन हो जाता है। मालिक भी मजदूरो की इच्छाओं तथा माँगो आदि के बारे मे मध्यस्थो से ही जानकारी प्राप्त करते है और यदि उनको मजदूरो के पास कोई सदेश भेजना हो तो यह कार्य भी मध्यस्थो द्वारा ही सम्पन्न होता है। उन उद्योगो मे जो विदेशी मालिकों के हाथो मे थे, जिन्हे भारतीय भाषा नही आती थी, मध्यस्थ और भी अधिक शक्तिशाली बन गये थे।

मध्यस्थों के दोष (Evils of Intermediaries)

मध्यस्थो द्वारा श्रमिकों की भर्ती की प्रणाली सदैव से ही अत्यन्त दोषपूर्ण सिद्ध हुई है। रॉयल श्रम आयोग के शब्दों मे "मध्यस्थ का पद अत्यन्त प्रलोभनीय है और यदि ये लोग इन अवसरो से लाभ न उठायें तो यह आश्चर्यजनक होगा। ऐसे थोड़े से ही कारखाने है जिनमें श्रमिकों की सुरक्षा कुछ सीमा तक मध्यस्थो के हाथ मे न हो। अनेक कारखानो मे तो मध्यस्थों को श्रमिको की नियुक्ति तथा

बरखास्तगी का अधिकार भी है। इस बात मे कोई सदेह नही कि मध्यस्थ अपने अधिकारो से साधारणतया लाभ उठाते रहते हैं। यह दोष कुछ उद्योगो मे कम और कुछ उद्योगो मे अधिक मात्रा मे पाये जाते हैं। यह प्रथा तो बहुत प्रचलित है कि किसी को नया रोजगार देने या फिर से रोजगार पर लगाने के बदले मे कुछ कीमत वसूल की जाय। बहुधा यह देखा गया है कि श्रमिको को अपने मासिक वेतन का एक अश भी नियमित रूप से देना पडता है। श्रमिको को समय-समय पर नशीले पेय पदार्थ या दूसरे उपहारो द्वारा भी मध्यस्थो को प्रसन्न करते रहना पडता है। कभी-कभी स्वय मध्यस्थ को भी प्रधान मध्यस्थ की जेब भरनी पडती है और ऐसा सुनने मे आया है कि अन्य निरीक्षकगण (Supervisory staff) भी कभी कभी इसमे से कुछ भाग पाते हैं।" इसके अतिरिक्त अनेक अवसरो पर इन मध्यस्थो द्वारा श्रमिको का गलत ढग से प्रतिनिधित्व होने के कारण बहुधा मालिको और श्रमिको के बीच झगडे उत्पन्न होते रहते हैं, और फिर यह भी आवश्यक नही है कि वे कुशल श्रमिक को ही भर्ती करे। ये तो उसी को भर्ती करते हैं जो उन्हे अधिक कमीशन देता हो या जिसमे वह दूसरे कारणो से दिलचस्पी रखते हो। इस प्रकार धन प्राप्त करने की लालसा के कारण अनेक श्रमिक मध्यस्थो द्वारा अन्यायपूर्वक बरखास्त कर दिये जाते हैं और इससे श्रमिकावर्त (Labour turnover) अधिक हो जाता है। मध्यस्थ सदैव स्थानो को रिक्त करने के प्रयत्न मे रहते हैं जिसमे नई भर्ती करके अपनी जेबें भर सकें। वे श्रमिको को उनके वेतन की जमानत पर ऊँची ब्याज दर पर ऋण भी देते हैं। अनेक मध्यस्थ बेईमानी करके ऋण के हिसाब मे ऐसी गडबडी कर देते हैं जिससे मजदूरो को हानि होती है। महिला श्रमिको का महिला मध्यस्थों द्वारा और भी अधिक शोषण होता है क्योकि महिला मध्यस्थ अधिकतर अच्छे चरित्र की नही होती हैं। अच्छे चरित्र की स्त्रियां इस पद को इसलिए स्वीकार नहीं करती क्योकि यह पद सम्मानित नही समझा जाता है। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जबकि इन नायकिनो के कारण महिला श्रमिको को अनैतिक जीवन व्यतीत करना पडा है।

वर्तमान स्थिति और भविष्य

मध्यस्थो द्वारा भर्ती की प्रथा को सब लोग अत्यन्त असतोषजनक तथा अवाछनीय समझते हैं। पिछले कुछ वर्षो से सभी जगह मध्यस्थो की शक्ति तथा अधिकारो को कम करने का प्रयत्न किया गया है, जिससे घूसखोरी व भ्रष्टाचार का अन्त हो सके। बम्बई सूती कपडा श्रम जाच समिति का कथन है कि बम्बई और शोलापुर जैसे केन्द्रो मे भी, जहाँ पर श्रमिको, विशेष रूप से 'बदली' के श्रमिको, की भर्ती करने मे थोडा बहुत नियन्त्रण लागू कर दिया गया है, अभी तक मध्यस्थ न तो हटाय ही जा सके हैं, और न उनका प्रभाव ही कम हो सका है। 'उत्तरी भारत मालिक सघ' ने भी स्वीकार किया है कि भर्ती मे सम्बन्धित भ्रष्टाचार और घूसखोरी अब भी प्रचलित है। परन्तु इस सघ ने इस विवशता की

ओर भी संकेत किया है कि वह एक ऐसी पद्धति को जडमूल से नही समाप्त कर सकते जो कि उद्योग-धन्धो मे भर्ती की दृष्टि से मान्य हो गई हैं।[1] श्रम अनुसंधान समिति का भी यही मत है कि भारतीय श्रमिक अपनी विकास और गतिशीलता की उस सीमा पर अभी तक नही पहुँच सका है कि भर्ती के लिये मध्यस्थों को आसानी से अलग किया जा सके। वर्तमान परिस्थितियों मे भर्ती के अन्य साधनों के न होने के कारण मध्यस्थ एक अनिवार्य सा साधन प्रतीत होता है। इस प्रणाली के कुछ लाभ भी है। मध्यस्थ उन गाँवों और जिलों से निकटता का सम्पर्क रखता है, जहाँ से श्रमिक भर्ती किये जाते हैं। अत वह श्रमिकों की आदतों, आशाओं और आशकाओं को भली-भाँति समझता है और अपने व्यवहार में उनका ध्यान रखता है, जबकि अन्य सीधी भर्ती करने वाली सस्थाओ का इन श्रमिको से कोई भी निकट सम्पर्क नहीं होता। यही कारण है कि मध्यस्थों की स्थिति इन सस्थाओं की अपेक्षा अधिक लाभदायक सिद्ध हुई है। यह बात उल्लेखनीय है कि युद्ध के समय मे फौज तथा लडाई की अन्य योजनाओं मे भर्ती के लिये सरकार को भी मध्यस्थो की सहायता लेनी पडी थी और उनको कुछ कमीशन भी देना पडा था। फिर भी मध्यस्थो की अनिवार्यता को स्वीकार करने का तात्पर्य यह नही होना चाहिये कि इस प्रणाली को नियमित बनाने की ओर कोई भी प्रयत्न न किया जाये या भर्ती का कोई सैद्धान्तिक तरीका न अपनाया जाय। इस प्रणाली को सुधारने के लिए विभिन्न सुझाव प्रस्तुत किये जा चुके है और कुछ ठोस कदम भी उठाये जा चुके है। इस समय सरकार द्वारा स्थापित विभिन्न केन्द्रो मे रोजगार दफ्तर भर्ती की प्रणाली के दोष दूर करने मे सहायक सिद्ध हुये हैं तथा स्थायीकरण (Decasualisation) की योजनायें भी कई केन्द्रो मे लागू हैं। इस प्रकार विभिन्न केन्द्रो और उद्योगो मे भर्ती की प्रणाली इस समय एक समान नहीं है।

विभिन्न उद्योगों में भर्ती की प्रणाली

फैक्टरी उद्योगो मे कही कुछ श्रमिकों की और कहीं सभी श्रमिको की भर्ती साधारणतया सीधी प्रणाली द्वारा होती है। बम्बई, मद्रास, पजाब, बिहार व उड़ीसा के राज्यों में सीधी (Direct) भर्ती प्रणाली अधिक प्रचलित है। इसका तरीका यह है कि फैक्टरी के फाटक पर एक नोटिस लगा दिया जाता है कि अमुक सख्या मे श्रमिको की आवश्यकता है। इसके पश्चात् जनरल मैनेजर स्वय या कोई अन्य अधिकारी या श्रम अधीक्षक (Superintendent) फाटक पर आकर आवश्यक श्रमिकों का चनाव कर लेता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि रिक्त स्थानों की सूचना काम पर लगे श्रमिकों को दे दी जाती है, जो उसका विज्ञापन अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों मे कर देते हैं। इस प्रकार नियत दिन पर बहुत बडी सख्या मे प्रार्थी फैक्टरी के फाटक पर एकत्रित हो जाते है। किसी-किसी स्थान पर तो प्रात:

1. Report of the Kanpur Labour Enquiry Committee.

बात ही काम के इच्छुक लोग लम्बी पंक्तियों में खड़े दिखाई देते हैं। लेकिन यह प्रणालियाँ साधारणतया अनिपुण (Unskilled) या बदली के श्रमिकों को प्राप्त करने में ही अधिक लाभप्रद सिद्ध हुई हैं। निपुण (Skilled) या अर्द्धनिपुण (Semi skilled) श्रमिकों की भर्ती अधिक कठिन है। इनकी भर्ती दो प्रकार से की जा सकती है—प्रथम, तो कुशल श्रमिकों की पदोन्नति करके, दूसरे, प्रार्थना पत्र मंगाकर आवश्यक परीक्षाओं के बाद योग्य श्रमिकों का सीधा चुनाव करके। बीड़ी, लाख तथा जूट की चटाइयों की भाँति कुछ अनियमित उद्योगों में भी भर्ती सीधी प्रणाली द्वारा ही होती है। फिर भी, मध्यस्थों को पूर्ण रूप से हटाया नहीं जा सका है।

मध्यस्थों द्वारा भर्ती के दोषों को दूर करने के लिए रॉयल श्रम आयोग ने सिफारिश की थी कि जनरल मैनेजर के अधीन ऊँचे वेतन देकर श्रम अधिकारी (Labour Officers) रखे जायें। ये अफसर ईमानदार, प्रभावशाली व्यक्तित्व और दूसरे व्यक्तियों को ठीक से समझ सकने की योग्यता रखने वाले होने चाहिये। अधिकतर उद्योगों में अब ऐसे अफसर नियुक्त किये जा चुके हैं और बहुधा श्रमिकों की भर्ती उन्हीं के द्वारा की जाती है। वे श्रमिकों की शिकायतों आदि की जाँच पड़ताल करके अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त वे मालिकों और श्रमिकों के बीच सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कराते हैं। कभी-कभी ये अफसर आस-पास के गाँवों में श्रमिकों की भर्ती के लिए जाते हैं। ऐसे अफसर बम्बई की लगभग ५० प्रतिशत सूती कपड़ा मिलों, कलकत्ता की बाटा शू कम्पनी, विशाखापत्तनम् के सिन्धिया जहाजी बेड़ा, डिगबोई की आसाम तेल कम्पनी और बंगाल की जूट मिलों में पाये जाते हैं। कानपुर की अनेक मिलों में भी ऐसे अफसर नियुक्त किये गये हैं, परन्तु व्यावहारिक रूप में यह देखा गया है कि इन अफसरों पर श्रमिकों का इतना भरोसा नहीं होता जितना भरोसा वे मध्यस्थों पर करते हैं। अतः इन श्रम अधिकारियों की आड़ में मध्यस्थ प्रणाली अब भी प्रचलित है।

अहमदाबाद में भर्ती साधारणतया मध्यस्थों और विभागीय अध्यक्षों द्वारा की जाती है। मद्रास की बकिंघम और कर्नाटक मिल में श्रमिक एक विशेष 'भर्ती पदाधिकारी' द्वारा भर्ती किये जाते हैं। कुशल नौकरियों के लिए परीक्षायें भी ली जाती हैं। मद्रास की मिलों में मिल-मालिकों और श्रमिक संघों के बीच में यह समझौता है कि रिक्त स्थानों की सूचना संघों को दी जायगी, जो कि श्रमिकों के बेरोजगार सम्बन्धियों और कारखाने के पूर्व अस्थायी (Temporary) श्रमिकों की सूची रखते हैं। संघ रिक्त स्थानों के लिए कुछ श्रमिकों के नामों की सिफारिश करता है। श्रमिकों का चुनाव अधिकतर प्रबन्धकर्त्ताओं द्वारा ही उसी सूची से किया जाता है। इस प्रकार से दोनों पक्ष के लोग सन्तुष्ट रहते हैं। हैदराबाद में भी ऐसी ही व्यवस्था है। कोयम्बटूर में भर्ती करने की कोई भी विशेष संस्था नहीं है। कानपुर में श्रम-अधिकारियों के अतिरिक्त सन् १९३८ से उत्तरी भारत मालिक

संघ द्वारा स्थापित किया हुआ श्रम ब्यूरो (Labour Bureau) भी चल रहा है। कानपुर में अब एक स्थायीकरण (Decasualisation) योजना चल रही है जिसके अन्तर्गत रोजगार के दफ्तर श्रमिकों की एक संचित सूची रखते है। योजना में सहयोग देने वाले उद्योग-धन्धों मे श्रमिकों की भर्ती रोजगार के दफ्तरों द्वारा इसी संचित सूची से की जाती है। इसके पूर्व एक बदली नियन्त्रण योजना थी जिसके अन्तर्गत नित्य के आकस्मिक रिक्त स्थानों की पूर्ति, छटनी किये हुए श्रमिकों द्वारा होती थी। टाटा की लोहा व इस्पात कम्पनी ने तथा विहार की कुछ बडी-बडी फैक्ट्रियों ने भर्ती के लिए अपने स्वयं के ब्यूरो खोल रखे हैं। जमशेदपुर की टिन-प्लेट कम्पनी तथा अहमदाबाद, बम्बई, शोलापुर और कोयम्बटूर की सूती कपड़ा मिलो मे भी स्थायीकरण योजनायें चल रही हैं। बंगाल की जूट की मिलों में श्रम अधिकारियो की नियुक्ति करके, उनको श्रम ब्यूरो का अधिकारी बना दिया गया है। भर्ती के कार्य के लिए एक बदली रजिस्टर रखा जाता है। यदि रिक्त स्थानों के लिए श्रमिकों की फिर भी कमी रहती है तब फैक्ट्री के फाटक पर ही सीधी प्रणाली द्वारा भर्ती कर ली जाती है। यद्यपि यह प्रणाली मध्यस्थों को हटाने के लिए चालू की गई थी, परन्तु इन मध्यस्थों का प्रभाव अब भी काफी है।

इस प्रकार हम देखते है कि अधिकतर फैक्ट्रियों मे भर्ती सीधी प्रणाली और मध्यस्थों द्वारा होती है। पिछले कुछ वर्षो से अब हम भर्ती के तरीकों मे काफी उन्नति पाते हैं। कई स्थानों पर स्थायीकरण की योजनायें लागू हो चुकी हैं। रोजगार के दफ्तरो द्वारा भी अब भर्ती काफी मात्रा मे होने लगी है।

चीनी के कारखानों मे जहाँ कार्य सामयिक (Seasonal) होता है, कुछ निरीक्षकों और तकनीकी विशेषज्ञो (Technicians) को छोड कर सभी मजदूर मौसम या समय समाप्त होने पर निकाल दिये जाते हैं, तथा मौसम फिर आरम्भ होने पर उनको सूचित किया जाता है। यदि वे निश्चित समय पर उपस्थित हो जाते हैं तो उनकी नियुक्ति फिर से हो जाती है। सामयिक या मौसमी श्रमिकों के सम्बन्ध मे उत्तर प्रदेश की सरकार विशेष आज्ञायें जारी करती है।

रेलवे के विभिन्न विभागों मे भरती की प्रणालियां भिन्न-भिन्न हैं। रेलवे विभाग के उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति या तो प्रत्यक्ष रूप से सीधी प्रणाली द्वारा हो जाती है, या दूसरे और तीसरे दर्जे की नौकरियों से पदोन्नति के द्वारा। तीसरे दर्जे के पदों पर भर्ती रेलवे सेवा आयोग द्वारा होती है जो कलकत्ता, बम्बई, इलाहाबाद और मद्रास मे हैं। साधारणतया अकुशल और निम्न श्रेणी के श्रमिको की भर्ती सीधी प्रणाली द्वारा की जाती है। रेलवे मे ठेकेदारो के श्रमिक भी काफी संख्या मे पाए जाते हैं। १९५९ मे सरकार ने चौथी श्रेणी के कर्मचारियों की पदोन्नति के लिए नियुक्त की हुई समिति की सिफारिशो को स्वीकार कर लिया है।

खानो मे अधिकतर श्रमिक ठेकेदारों द्वारा ही भर्ती किये जाते हैं। अन्य

काल ही काम के इच्छुक लोग लम्बी पंक्तियो मे खडे दिखाई देते हैं। लेकिन यह प्रणालियाँ साधारणतया अनिपुण (Unskilled) या बदली के श्रमिको को प्राप्त करने मे ही अधिक लाभप्रद सिद्ध हुई हैं। निपुण (Skilled) या अर्द्धनिपुण (Semi-skilled) श्रमिको की भर्ती अधिक कठिन है। इनकी भर्ती दो प्रकार से की जा सकती है—प्रथम, तो कुशल श्रमिको की पदोन्नति करके, दूसरे, प्रार्थना पत्र मगाकर आवश्यक परीक्षाओ के बाद योग्य श्रमिको का सीधा चुनाव करके। बीडी, लाख तथा जूट की चटाइयो की भांति कुछ अनियमित उद्योगो मे भी भर्ती सीधी प्रणाली द्वारा ही होती है। फिर भी, मध्यस्थो को पूर्ण रूप से हटाया नही जा सका है।

मध्यस्थो द्वारा भर्ती के दोषो को दूर करने के लिए रॉयल श्रम आयोग ने सिफारिश की थी कि जनरल मैनेजर के अधीन ऊँचे वेतन देकर श्रम-अधिकारी (Labour Officers) रखे जाये। ये अफसर ईमानदार, प्रभावशाली व्यक्तित्व और दूसरे व्यक्तियो को ठीक से समझ सकने की योग्यता रखने वाले होने चाहिये। अधिकतर उद्योगों मे अब ऐसे अफसर नियुक्त किये जा चुके हैं और बहुधा श्रमिको की भर्ती उन्ही के द्वारा की जाती है। वे श्रमिको की शिकायतो आदि की जाँच पडताल करके अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त वे मालिको और श्रमिको के बीच सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कराते हैं। कभी-कभी ये अफसर आस-पास के गांवो मे श्रमिको की भर्ती के लिए जाते हैं। ऐसे अफसर बम्बई की लगभग ५० प्रतिशत सूती कपडा मिलो, कलकत्ता की बाटा शू कम्पनी, विशाखापतनम् के सिन्धिया जहाजी बेडा, डिगबोई की असम तेल कम्पनी और बगाल की जूट मिलो मे पाये जाते है। कानपुर की अनेक मिलो मे भी ऐसे अफसर नियुक्त किये गये हैं, परन्तु व्यावहारिक रूप मे यह देखा गया है कि इन अफसरो पर श्रमिको को इतना भरोसा नही होता जितना भरोसा वे मध्यस्थो पर करते हैं। अत इन श्रम अधिकारियो की आड मे मध्यस्थ प्रणाली अब भी प्रचलित है।

अहमदाबाद मे भर्ती साधारणतया मध्यस्थो और विभागीय अध्यक्षों द्वारा की जाती है। मद्रास की बकिंघम और कर्नाटक मिल मे श्रमिक एक विशेष 'भर्ती पदाधिकारी' द्वारा भर्ती किये जाते है। कुशल नौकरियो के लिए परीक्षाये भी ली जाती हैं। मद्रास की मिलो मे मिल-मालिकों और श्रमिक सघो के बीच मे यह समझौता है कि रिक्त स्थानो की सूचना सघो को दी जायेगी, जो कि श्रमिको के बेरोजगार सम्बन्धियो और कारखाने के पूर्व अस्थायी (Temporary) श्रमिको की सूची रखते हैं। सघ रिक्त स्थानो के लिए कुछ श्रमिको के नामो की सिफारिश करता है। श्रमिको का चुनाव अधिकतर प्रबन्धकर्त्ताओ द्वारा ही उसी सूची से किया जाता है। इस प्रकार से दोनो पक्ष के लोग सन्तुष्ट रहते है। हैदराबाद मे भी ऐसी ही व्यवस्था है। कोयम्बटूर मे भर्ती करने की कोई भी विशेष सस्था नही है। कानपुर मे श्रम अधिकारियो के अतिरिक्त सन् १६३८ से उत्तरी भारत मालिक

संघ द्वारा स्थापित किया हुआ श्रम ब्यूरो (Labour Bureau) भी चल रहा है। कानपुर मे अब एक स्थायीकरण (Decasualisation) योजना चल रही है जिसके अन्तर्गत रोजगार के दफ्तर श्रमिकों की एक संचित सूची रखते है। योजना में सहयोग देने वाले उद्योग-धन्धों में श्रमिकों की भर्ती रोजगार के दफ्तरों द्वारा इसी संचित सूची से की जाती है। इसके पूर्व एक बदली नियन्त्रण योजना थी जिसके अन्तर्गत नित्य के आकस्मिक रिक्त स्थानों की पूर्ति, छटनी किये हुए श्रमिकों द्वारा होती थी। टाटा की लोहा व इस्पात कम्पनी ने तथा बिहार की कुछ बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों ने भर्ती के लिए अपने स्वयं के ब्यूरो खोल रखे है। जमशेदपुर की टिन-प्लेट कम्पनी तथा अहमदाबाद, बम्बई, शोलापुर और कोयम्बटूर की सूती कपड़ा मिलो मे भी स्थायीकरण योजनायें चल रही हैं। बंगाल की जूट की मिलो मे श्रम अधिकारियों की नियुक्ति करके, उनको श्रम ब्यूरो का अधिकारी बना दिया गया है। भर्ती के कार्य के लिए एक बदली रजिस्टर रखा जाता है। यदि रिक्त स्थानों के लिए श्रमिकों की फिर भी कमी रहती है तब फैक्ट्री के फाटक पर ही सीधी प्रणाली द्वारा भर्ती कर ली जाती है। यद्यपि यह प्रणाली मध्यस्थों को हटाने के लिए चालू की गई थी, परन्तु इन मध्यस्थों का प्रभाव अब भी काफी है।

इस प्रकार हम देखते है कि अधिकतर फैक्ट्रियों मे भर्ती सीधी प्रणाली और मध्यस्थों द्वारा होती है। पिछले कुछ वर्षों से अब हम भर्ती के तरीकों में काफी उन्नति पाते है। कई स्थानों पर स्थायीकरण की योजनाये लागू हो चुकी हैं। रोजगार के दफ्तरों द्वारा भी अब भर्ती काफी मात्रा मे होने लगी है।

चीनी के कारखानों मे जहाँ कार्य सामयिक (Seasonal) होता है, कुछ निरीक्षकों और तकनीकी विशेषज्ञों (Technicians) को छोड़ कर सभी मजदूर मौसम या समय समाप्त होने पर निकाल दिये जाते हैं, तथा मौसम फिर आरम्भ होने पर उनको सूचित किया जाता है। यदि वे निश्चित समय पर उपस्थित हो जाते हैं तो उनकी नियुक्ति फिर से हो जाती है। सामयिक या मौसमी श्रमिकों के सम्बन्ध मे उत्तर प्रदेश की सरकार विशेष आज्ञायें जारी करती है।

रेलवे के विभिन्न विभागों मे भरती की प्रणालियाँ भिन्न-भिन्न हैं। रेलवे विभाग के उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति या तो प्रत्यक्ष रूप से सीधी प्रणाली द्वारा हो जाती है, या दूसरे और तीसरे दर्जे की नौकरियों से पदोन्नति के द्वारा। तीसरे दर्जे के पदों पर भर्ती रेलवे सेवा आयोग द्वारा होती है जो कलकत्ता, बम्बई, इलाहाबाद और मद्रास मे हैं। साधारणतया अकुशल और निम्न श्रेणी के श्रमिकों की भर्ती सीधी प्रणाली द्वारा की जाती है। रेलवे मे ठेकेदारों के श्रमिक भी काफी संख्या में पाए जाते है। १९५६ मे सरकार ने चौथी श्रेणी के कर्मचारियों की पदोन्नति के लिए नियुक्त की हुई समिति की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया है।

खानो मे अधिकतर श्रमिक ठेकेदारों द्वारा ही भर्ती किये जाते हैं। अन्य

देशों के विपरीत भारतवर्ष में खान के श्रमिकों का कोई पृथक वर्ग नहीं है। अधिकतर कृषक वर्ग से ही श्रमिकों की भर्ती की जाती है। ऐसे श्रमिक समय आने पर कृषि सम्बन्धी कार्यों के हेतु अपने गावों को लौट जाते हैं। कोयले की खानों में जमींदारी प्रथा भर्ती की सबसे पुरानी प्रथा थी। इसके अन्तर्गत श्रमिकों को यह प्रलोभन दिया जाता था कि उनको बिना कीमत के या नाममात्र लगान पर ही खेत दिए जायगे। श्रमिकों का इन भूमियों पर अधिकार रहने की यह शर्त थी कि वे खानों में काम करते रहें। परन्तु बहुत जल्दी ही कोयले की खानों के पास कृषि योग्य भूमि का अभाव अनुभव होने लगा और ऐसे श्रमिक अधिक उपयुक्त भी नहीं सिद्ध हुए। इस प्रकार से यह प्रथा सफल न हो सकी। रायल श्रम आयोग ने भी यह कहकर इस प्रथा का खंडन किया है कि इस प्रकार की संविदा (Contract) अवाञ्छनीय है। यद्यपि हाल ही में कुछ खानों ने अपने प्रतिनिधि बाहर भेजकर सीधी भर्ती की प्रणाली अपना ली है परन्तु अब भी ठेकेदारों द्वारा श्रमिकों की भर्ती करने की प्रणाली प्रचलित है। भर्ती के लिये कई प्रकार के ठेकेदार होते हैं। बहुत सी खानें केवल भर्ती करने वाले ठेकेदार (Recruiting Contractors) रखती हैं जो श्रमिकों की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार से भर्ती किये गये श्रमिकों को प्रबन्धकगण नौकर रखकर वेतन देते हैं। कुछ खानें प्रबन्धक ठेकेदार (Managing Contractors) रखती हैं जो केवल श्रम की पूर्ति ही नहीं करते वरन् खान की समृद्धि तथा उन्नति के लिये भी उत्तरदायी होते हैं और इस प्रकार से प्रबन्धकगण में अन्तर्गत ही आ जाते हैं। सर्वकार्य ठेकेदारों (Raising Contractors) द्वारा भर्ती की प्रथा सबसे अधिक प्रचलित है। ये ठेकेदार न केवल श्रमिकों की भर्ती करते हैं और उनके खर्चों को सहन करते हैं वरन् इनके साथ ही कोयले को काटने तथा लादने के लिये भी उत्तरदायी होते हैं। इनके लिये इन्हें प्रति टन की दर से कुछ पैसा मिलता है। युद्ध के दिनों में कोयले की तीव्र आवश्यकता तथा श्रमिकों की कमी के कारण स्वयं सरकार ने अकुशल श्रमिकों की पूर्ति के लिये ठेकेदारों का काम किया था।

१९४८ की कोयला खान औद्योगिक समिति ने ठेके की प्रथा को कोयला खानों में समाप्त करने पर विचार किया था। उसके सुझावों के अनुसार केवल दो को छोड़कर अन्य रेलवे के लिए कोयला खानों में इस प्रथा की समाप्ति कर दी गई। अन्य खानों में भी इस प्रथा को तब तक चालू रखने का निश्चय हुआ जब तक इस बारे में कुछ और सोच विचार न कर लिया जाय। राजकीय तथ्य जांच समिति (सन् १९५७) ने भी असम की खानों में ठेके की प्रथा को समाप्त करने की सिफारिश की थी और हैदराबाद की कोयले की खानों में भी इस प्रथा को बुरा बताया गया है। १९५१ में कोयला खानों के लिये कार्य दल (Working Party) के श्रमिक प्रतिनिधियों ने भी ठेके की प्रथा समाप्त करने की जोरदार सिफारिश की और कोयला खान भर्ती संगठन (Coal Fields Recruiting

Organisation), जिसके द्वारा अनेक कोयले की खानों के मालिक गोरखपुर से श्रमिको की भर्ती करते हैं, को भी समाप्त करने पर बल दिया। भारतीय श्रम सम्मेलन १९५४ की सिफारिशों के अनुसार एक त्रिदलीय समिति बनाई गई थी। उसने भी ठेकेदारो प्रथा के दोषों को कम करने तथा ठेके के श्रमिकों को अन्य श्रमिको के स्तर पर लाने के लिए कई बातो की सिफारिश की। कोयला खानों से सम्बन्धित औद्योगिक समिति (Industrial Committee) की सिफारिशों के फलस्वरूप सरकार ने नवम्बर १९६० में एक जाँच समिति (Court of Enquiry) की नियुक्ति की। इसका कार्य यह था कि कोयला खानो मे ठेके के श्रमिकों की पद्धति को समाप्त करने पर विचार करे जिससे उत्पादकता पर बुरा प्रभाव न पड़े और इस बात की सिफारिश करे कि यह पद्धति किस-किस स्थान पर और किस समय तक समाप्त हो सकती है तथा ठेके के श्रमिक यदि समाप्त नहीं किये जा सकते तो उनके लिये उचित मजदूरी और उचित कार्य की दशायें देने के लिये क्या पग उठाने चाहिएँ। इस समिति ने जिसके श्री एल० पी० देव एकमात्र सदस्य थे दिसम्बर १९६१ मे अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और यह सिफारिश की है कि ठेके के श्रमिको की प्रथा ३० सितम्बर १९६२ तक धीरे-धीरे समाप्त कर दी जाय। केवल सात प्रकार के रोजगारो मे यह प्रथा अभी चालू रह सकती है परन्तु उनमें भी इस प्रथा को जहाँ तक सम्भव हो समाप्त कर देना चाहिए। ठेके के श्रमिको की शर्तों का नियमन करने के लिए सन् १९६४ में एक बिल तैयार किया था जो कि ससद् के समक्ष विचाराधीन है। गोरखपुर मे कोयले की खानो मे श्रमिको को भर्ती करने के लिये जो सस्था बनाई हुई थी (Coal Fields Recruiting Organisation) उसको भी १ अप्रैल १९६१ से रोजगार दफ्तरो के निदेशालय के अन्तर्गत हस्तान्तरित कर दिया गया है। कोयला खानो के लिए ६ रोजगार दफ्तर भी खोल दिये गये है। गोरखपुर जाने के बजाय अब श्रमिक भर्ती के लिये इन रोजगार दफ्तरो मे अपने को पजीकृत करा सकते है। ऐसे दफ्तर ३ मध्य प्रदेश मे, २ प० बगाल मे और १ बिहार मे खोले गये हैं।

अन्य खानो मे भर्ती करने के तरीके कुछ भिन्न है। कच्चे लोहे की खानों में *बहुधा सीधी प्रणाली द्वारा ही श्रमिक भर्ती किये जाते हैं। कभी-कभी काम पर लगे* हुए श्रमिको की सहायता से निकट के गांवों से भी श्रमिको की भर्ती होती है। मूल्यवान पत्थरो की खानो मे ठेके के काम के लिये श्रमिकों की भर्ती 'सरदार' या 'उप-ठेकेदारों' द्वारा की जाती है। अभ्रक की खानो मे 'सरदार' निकट के गांवों मे भेजे जाते हैं, जिससे वे इच्छुक श्रमिको को पेशगी पैसा देकर भर्ती कर सकें। भर्ती करने वाले सरदारो को कोई कमीशन नहीं मिलता। उनकी मजदूरी भर्ती किये गए श्रमिको की सख्या पर निर्भर करती है। जो खानें जमीदारों के अधिकार मे हैं उनके लिए श्रमिक काश्तकारो मे से ही प्राप्त कर लिए जाते हैं। १९५८ मे की गई एक तदर्थ जाच से यह पता लगता है कि अभ्रक की खानो मे इस समय लगभग

८२·६ प्रतिशत श्रमिक सीधी प्रणाली द्वारा भर्ती किये जा रहे है और शेष १७·४% श्रमिको की भर्ती ठेकेदारो द्वारा होती है। मैंगनीज की खानो मे ४२ प्रतिशत श्रमिको की भर्ती ठकेदारो द्वारा होती है और शेष सीधी प्रणाली द्वारा भर्ती किये जाते है। लगभग ५० प्रतिशत श्रमिक आदिवासी वर्ग के होते है। बम्बई राज्य मे, शिवराजपुर की खानो मे भर्ती 'टिन्डैलो" द्वारा की जाती है। सन्दूर राज्य मे लगभग ५० प्रतिशत श्रमिको का बाहर से आगमन होता है और उनको खानो के निकट बसाया जाता है। बाकी श्रमिक पांच या दस मील की दूरी के गाँवो से प्रतिदिन आते हैं। सोने की खानो मे श्रमिक "समय-कार्यालय" (Time Office) के द्वारा भर्ती होते है। प्राप्त सूचना के अनुसार अब अधिकाश खानो म श्रमिको की पूर्ति पर्याप्त है और श्रमिक स्थानीय क्षेत्रो से ही भर्ती कर लिये जाते है।

बागान के श्रमिक जो लगभग १२·५ लाख की सख्या मे है, अपनी एक विशेषता रखते है। बागान इतने दूर तथा ऐसे स्थानो पर पाये जाते है, जहाँ की जलवायु अत्यन्त नम है, तथा वातावरण स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। श्रमिक वहाँ जाना पसन्द नही करते इसलिये आरम्भ मे वहाँ भर्ती की समस्या एक विकट समस्या थी और इसके कारण बहुत सी आपत्तिजनक प्रथाये अपनानी पडीं। अनेक मध्यस्थ नौकर रखे गये जो श्रमिको को ऊँचे दर की मजदूरी तथा अन्य सुविधाओ का लोभ दिखाकर बागान के क्षेत्रो मे ले आते थे। परन्तु एक बार वहाँ पहुँच जाने पर श्रमिक को वापिस लौटने या अपने परिवार के लोगो से सम्बन्ध रखने की आज्ञा नही थी। श्रमिको को नशा करा कर बहका लाने या बालको का अपहरण जैसे आपत्तिजनक तरीको द्वारा भी श्रमिक प्राप्त किये जाते थे। श्रमिको की भर्ती बागान मे अत्यन्त महँगी रही है।

बागान मे श्रमिको की भर्ती से सम्बन्धित बुराइयो के कारण समय-समय पर बहुत से कानून बनाये गये, जिनमे १९३२ का 'चाय क्षेत्र परावासी श्रमिक अधिनियम' (Tea Districts Emigrant Labour Act) सबसे बाद का कानून है। यह केवल श्रमिको की भर्ती से ही सम्बन्धित है। बागान के श्रमिको से सम्बन्धित दूसरे मामले १९५१ के बागान श्रमिक अधिनियम (Plantation Labour Act) द्वारा नियन्त्रित होते हैं, परन्तु १९३२ का अधिनियम केवल प्रवेश करने वाले लोगो को आगे भेजने अथवा भर्ती करने पर ही नियन्त्रण रखता है, और वह भी केवल असम के चाय के बागान पर ही लागू है। यह अधिनियम इस बात को भी सुनिश्चित करता है कि परावासियो पर कोई अनुचित रोक न लगाई जाय। इस अधिनियम म केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण के साथ ही स्थानीय सरकारो को अब यह अधिकार मिल गया है कि वह श्रमिको के बागान मे प्रवेश करने पर कोई भी नियन्त्रण लगा दे और यदि आवश्यक हो तो श्रमिको की भर्ती पर भी नियन्त्रण लगा दें। इस अधिनियम को लागू करने के लिए १९३३ मे नियम बनाये गये जिनमे १९५४ व १९५६ म सशोधन हुआ। मालिको पर भी यह रोक लगा दी गई है कि

वे प्रमाणित बागान के सरदारों या लाइसेंस प्राप्त भर्ती करने वालों के अतिरिक्त किसी और साधन से भर्ती न करें। १६ साल से कम उम्र वाले किशोर उस समय तक नहीं भेजे जा सकते जब तक कि वे अपने माता-पिता अथवा संरक्षकों के साथ न हों, तथा स्त्रियाँ अपने पति की अनुमति के बिना भर्ती नहीं की जा सकती। असम में प्रवेश करने की तिथि से तीन वर्ष की अवधि समाप्त होने पर, या कुछ विशेष परिस्थितियों में, जैसे बुरा स्वास्थ्य होने पर, इससे पूर्व भी प्रत्येक परावासी तथा उसके परिवार को स्वदेश लौटने का अधिकार है जिसका व्यय भी मालिकों को सहन करना पड़ता है। वापिस भेजने का ब्योरा प्रवासी श्रमिक नियन्त्रक को देना होता है। श्रमिकों की भर्ती के लिये कुछ क्षेत्र निश्चित कर दिये गये हैं, जिनको "भर्ती के नियन्त्रित परावासी क्षेत्र" कहा जाता है। ऐसे क्षेत्रों के अन्तर्गत निम्नलिखित राज्य आते हैं—पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा मद्रास। इन क्षेत्रों में से जो भी लोग भर्ती किये जाते हैं उनको सबसे निकट के आगे भेजने वाले स्थानीय अभिकर्त्ता के सम्मुख उपस्थित होना पड़ता है और फिर वे एक निश्चित रास्ते से असम भेज दिये जाते हैं। ये रास्ते भारत की सीमा में ही होने चाहिये। इन रास्तों पर अनेक डिपो होते हैं, जहाँ पर इनको विश्राम, भोजन, सोने का स्थान तथा आवश्यकता होने पर चिकित्सा सहायता दी जाती है। दस वर्ष से कम आयु के बच्चों को दूध भी दिया जाता है। साधारणतया अब भर्ती निम्न प्रकार से की जाती है-(क) सरदारी प्रथा, (ख) स्थानीय भर्ती करने वालों द्वारा, तथा (ग) पूल पद्धति द्वारा। सरकारी प्रथा के अन्तर्गत बागान से चुने हुए कुछ श्रमिक आगे भेजने वाले स्थानीय अभिकर्त्ताओं के द्वारा उन जिलों में भेज दिये जाते हैं, जहाँ से उनको भर्ती होती है। कुछ बागान स्थानीय भर्ती करने वालों को ही श्रमिक भर्ती करने के लिए नौकर रख लेते हैं। अतः किसी सरदार या मध्यस्थ को भेजने की आवश्यकता नहीं रहती। पूल प्रथा के अन्तर्गत श्रमिक स्वयं ही अपने को आगे भेजने वाले स्थानीय अभिकर्त्ताओं के डिपो में भर्ती के लिये प्रस्तुत कर देते हैं। फिर वे उन बागान में भेज दिये जाते हैं, जहाँ उनकी आवश्यकता होती है। इस प्रकार यह कानून केवल भर्ती किये हुए श्रमिकों को असम भेजने पर ही नियन्त्रण रखता है। भर्ती के साधनों या पद्धतियों पर इसका नियन्त्रण नहीं है। यह कानून केवल उपरोक्त ६ राज्यों के लिये ही है जो कि नियन्त्रण परावासी क्षेत्र कहलाते हैं। लगभग समस्त भर्ती चाय-बागान श्रमिक परिषदों द्वारा की जाती है, जो कि भर्ती किये हुए श्रमिकों को आगे भेजने का प्रबन्ध करती है। परन्तु वास्तविक भर्ती मध्यस्थों द्वारा ही की जाती है जिनको इसके लिए कमीशन मिलता है। इस संघ के द्वारा एक वयस्क परावासी की भर्ती में १९५८ में १४१ रु० ३८ न० पैसे औसत व्यय होते थे। चाय बागान श्रमिक परिषद् ने अपने कार्यों को पहली दिसम्बर १९६० से समाप्त कर दिया है। अगस्त १९६० में बागान औद्योगिक समिति ने असम के चाय-संघों में श्रमिकों की भर्ती की नीति का अवलोकन कर यह निश्चित

किया कि केन्द्रीय सरकार की अनुमति के बिना राज्य के क्षेत्र से बाहर कोई नई भर्ती न की जाय, तथा असम राज्य में ही, ऐसे क्षेत्रों में से जहाँ श्रमिक अधिक हों श्रमिकों को ऐसे क्षेत्रों में भेजने के लिए जहाँ श्रमिक कम हों, एक विशेष रोजगार दफ्तर की स्थापना की जाय। चाय बागान श्रमिक परिषद् के बन्द हो जाने पर श्रमिकों को असम में एक केन्द्रीय स्थान से अनुरक्षकों (Escorts) के साथ प्रत्येक ऐसे राज्य में जहाँ से भर्ती की जाती थी सुविधाजनक स्थान पर भेज दिया जाय। ऐसे श्रमिकों का 'निर्वाह भत्ता' भी प्रति वयस्क डेढ़ रुपये से ढाई रुपये और प्रति बालक ७५ न० पै० से १ रु० ७५ न० पै० तक बढ़ा दिया जाय। बागान मालिक भी इस बात पर सहमत हो गये हैं कि कठियार, राँची, गोहाटी और विजयानगरम् में चार विश्रामगृह खोले जायें। इन निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक पग उठाये जा रहे हैं। 'चाय क्षेत्र परावासी श्रमिक अधिनियम' में संशोधन करने पर विचार किया जा रहा है ताकि इस अधिनियम के अपवचन को रोका जा सके और मालिकों को अवैध रूप में श्रमिक भर्ती करने पर दण्ड दिया जा सके। इस प्रश्न पर चाय बागान औद्योगिक समिति ने अक्तूबर १९६४ में विचार किया था। तत्पश्चात् यह निश्चय किया गया कि इस अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित परावासी श्रमिक नियन्त्रक, शिलांग के संगठन को समाप्त कर दिया जाए।

परावासी श्रमिकों के अतिरिक्त असम के बागान में 'फालतू' या 'बस्ती' श्रमिक भी होते हैं, जो कि निकट के गाँवों में आते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे श्रमिक भी होते हैं जिन्होंने किसी समय बाहर से असम में प्रवेश किया था और अब बागान में आकर बस गये हैं। ऐसे श्रमिक आवासित (Settled) श्रमिक कहलाते हैं।

पश्चिमी बंगाल में चाय के बागान में साधारणतया श्रमिकों की कमी रहती है। इसलिये भर्ती पर कोई नियन्त्रण नहीं है। चाय उद्योगों के विभिन्न परिषदों, जैसे "भारतीय चाय परिषद्", "भारतीय चाय बागान नियोजक परिषद्" तथा "चाय बागान श्रमिक परिषद्" अपने बागान के लिए श्रमिकों की भर्ती स्वयं करते हैं। दार्जिलिंग में भर्ती की कोई समस्या नहीं है, क्योंकि वहाँ स्थानीय श्रमिक ही पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो जाते हैं। बिहार के चाय बागान में भर्ती साधारणतया बागान के सरदारों द्वारा होती है। वे श्रमिकों को आगे भेजने वाले अभिकर्त्ताओं के समक्ष उपस्थित करते हैं और ये अभिकर्त्ता उनको बागान में भेज देते हैं, परन्तु इससे पहले वह इस बात से आश्वस्त हो लेते हैं कि ये श्रमिक नौकरी की तथा कार्य की अवस्थाओं से परिचित हैं और वे अपनी इच्छा से काम करने आये हैं, उनका स्वास्थ्य ठीक है और उन्होंने चेचक का टीका आदि लगवा लिया है, कुछ श्रमिक भेजने वाले अभिकर्त्ताओं के सम्मुख सीधे ही आ जाते हैं। यात्रा का समस्त व्यय बागान-नियोजक ही देते हैं। पंजाब व त्रिपुरा के बागान उद्योगों में मालिक स्वयं सीधी प्रणाली द्वारा श्रमिक भर्ती कर लेते हैं अथवा भर्ती मध्यस्थों द्वारा कराते हैं.

जिनको पजाब मे "चौधरी" कहते है। केरल राज्य के बागान मे ऐसे श्रमिक जिनको थोडे समय के लिये ही काम पर लगाया जाता है, बागान की श्रमिक-टोलियो द्वारा भर्ती कर लिये जाते हैं।

दक्षिणी भारत के बागान मे भर्ती "कगनियो" के द्वारा होती थी। साधारणतया यह कंगनी बागान के श्रमिकों मे से ही होते थे। इन कगनियों के कमीशन की मात्रा श्रमिको की मजदूरी के आधार पर निश्चित की जाती थी। इसलिये भर्ती के पश्चात् भी ये श्रमिकों से अपना सम्पर्क बनाए रहते थे। कगनियों द्वारा भर्ती करने की इस प्रणाली के बहुत से दुष्परिणाम प्रकट हुये। नवम्बर १६५० मे बागान औद्योगिक प्रायोग तथा फरवरी १६५१ की त्रिदलीय गोष्ठी ने इस प्रणाली का विरोध किया। परिणामस्वरूप भारतीय सरकार ने प्रत्येक कगनी के अन्तर्गत श्रमिको की सख्या ४० तक सीमित कर दी है। जनवरी १६६० से इस कगनी प्रणाली को समाप्त कर दिया गया है। कॉफी व रबर के बागान में श्रमिको की भर्ती के लिये पेशेवर व्यक्ति नियुक्त किये जाते है, जो दक्षिण भारत के सयुक्त बागान परिषद् के श्रम विभाग द्वारा पजीकृत होते हैं। यह सस्था इन लोगो को भर्ती के काम मे सहायता भी देती है।

बागान मे भर्ती की पद्धति मे उल्लेखनीय बात यह है कि भर्ती परिवार के आधार पर होती है, यद्यपि यह प्रथा खानों और दूसरे उद्योगो मे भी कुछ सीमा तक प्रचलित है।

बन्दरगाहो मे, बहुत समय तक, सामान उतारने और चढाने वाले सभी श्रमिकों की भर्ती छोटे-छोटे ठेकेदारो के द्वारा की जाती थी जो "तोलीवाला" कहलाते थे। परन्तु अप्रैल १६४८ से इस प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया है। अब बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के बन्दरगाहो पर सामान चढाने व उतारने वाले श्रमिको की भर्ती १६४८ के एक अधिनियम "बन्दरगाह श्रमिक रोजगार नियन्त्रण अधिनियम" (Dock Workers' Regulation of Employment Act) के द्वारा नियमित कर दी गई है। यह अधिनियम बन्दरगाह के श्रमिको की उन कठिनाइयो को जो उनके आकस्मिक (Casual) रोजगार के कारण उत्पन्न होती है, दूर करने का प्रयत्न करता है। यह अधिनियम श्रमिको के रोजगार को अधिक नियन्त्रित बनाने के लिये श्रमिकों को पजीकृत होने मे सुविधा प्रदान करता है। उसी के साथ-साथ यह अधिनियम सारे श्रमिकों के रोजगार की तथा उनके रोजगार की अवस्थाओं को, जैसे कार्य के घण्टे, छुट्टियाँ और वेतन आदि, नियमित करता है। उसी के साथ-साथ उनके स्वास्थ्य-सुरक्षा और कल्याण के कार्य का भी प्रबन्ध करता है। सरकार द्वारा इस कानून को लागू कराने के लिये एक सलाहकार समिति नियुक्त की गई थी और उसी समिति की रिपोर्ट के आधार पर योजनायें बनाकर बम्बई (जनवरी १६५१), कलकत्ता (अक्टूबर १६५१) और मद्रास (मार्च १६५२) मे लागू की गई है। ऐसी ही योजनायें विशाखापतनम् (जुलाई १६५६) और कोचीन (जून १६५६)

मे भी लागू कर दी गई है। ये योजनाये जो इस अधिनियम के अन्तर्गत बनी है, इस बात का प्रयत्न करती हैं कि सामान चढाने व उतारने वाले श्रमिको को नौकरी नियमित रूप से मिलती रहे और जहाज पर से सामान उतारने व चढाने के कार्य के लिये पर्याप्त मात्रा मे श्रमिक मिलते रहे। इन योजनाओ को लागू करने के लिये बम्बई (अप्रैल १६५१), कलकत्ता (सितम्बर १६५२) व मद्रास (जुलाई १६५३), कोचीन (जुलाई १६५६) तथा विशाखापतनम् (नवम्बर १६५६) मे कुछ ऐसे बोर्डों की स्थापना कर दी गई है जिनमे सरकार, मालिक तथा श्रमिक तीनो के प्रतिनिधि सम्मिलित हैं (Dock Labour Boards)। बम्बई व मद्रास मे इस योजना के दैनिक प्रबन्ध का उत्तरदायित्व "स्टेवडोर्स परिषद्" (Stevedores' Associations) नाम की सस्थाओ पर है। इस योजना के अन्तर्गत श्रमिको का एक मासिक रजिस्टर तथा एक सरक्षित पूल रजिस्टर भी बनाया गया है। मालिको के लिये भी एक रजिस्टर है। इस योजना मे उन नियमो का भी स्पष्टीकरण कर दिया गया है, जिनके आधार पर किसी श्रमिक या मालिक का नाम रजिस्टर पर लिखा जा सकता है। इस योजना के अनुसार पजीकृत श्रमिको को पजीकृत मालिको के बीच बाँट दिया जाता है। जिन श्रमिको को जिस मालिक के साथ काम करना हाता है, व उसके अतिरिक्त किसी अन्य मालिक के साथ कार्य नही कर सकते और न ही वह मालिक किन्ही अन्य पजीकृत (Registered) श्रमिको को अपने यहाँ कार्य पर लगा सकता है। सरक्षित पूल रजिस्टरो मे जिन श्रमिको का नाम होता है, उनका इस योजना के अनुसार एक माह मे कम से कम १२ दिन की मजदूरी व महँगाई भत्ता मिलने का आश्वासन रहता है। जिन दिनो वे काम के लिये तैयार हो और उन्हे काम न मिल उन दिनो के लिये भी इस योजना के अन्तगत श्रमिको को कुछ मजदूरी मिल जाती है जिसको 'हाजरी की मजदूरी या निराश होने की मजदूरी कहा जाता है। अनुशासनहीनता तथा दुर्व्यवहार के कारण श्रमिको को बर्खास्त किया जा सकता है। इस अधिनियम को १६६२ मे सशोधित किया गया है। इसके अनुसार मालिको से अब एक रजिस्ट्री शुल्क लिया जाता है लखा परीक्षको (Auditors) की नियुक्ति कर दी गई है और गोदी श्रमिक सलाहकार समितियो मे जहाज सम्बन्धित अन्य व्यक्तियों को प्रतिनिधित्व दिया गया है।

जनवरी १६५८ मे सरकार ने इन योजनाओ के कार्य की जाँच तथा सुधार के लिये एक जाँच समिति की नियुक्ति की। इस समिति ने सितम्बर १६५५ मे अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और अनेक सिफारिश की, जैसे मजदूरी और उत्पत्ति का सम्बन्ध स्थापित करना, बोनस देना, माह मे आश्वासित दिनो की सख्या १२ से २१ तक बढा देना, 'बन्दरगाह श्रमिक बोर्ड' के चेयरमैन के अधिकारो मे वृद्धि जिससे अनुशासन रखा जा सके, आदि। इन सिफारिशो के आधार पर सरकार ने मार्च १६५६ मे एक सशोधित योजना प्रकाशित की जिसे नवम्बर १६५६ मे कार्यान्वित किया गया। सगठित श्रमिको को अब माह मे २१ दिन की न्यूनतम मजदूरी की

गारन्टी दी जाती है। अब श्रमिकों को हाजिर होने पर १ रु० ५० न० पै० प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी मिल जाती है (Attendance Wage) और काम न होने पर आधी मजदूरी मिलती है (Disappointment Money)। श्रमिकों को वर्ष मे ८ दिन का सवेतन अवकाश भी मिल जाता है। कई प्रकार के श्रमिको की भर्ती रोजगार दफ्तरों द्वारा भी होती है। निम्न श्रेणी के श्रमिकों की तथा नैमित्तिक श्रमिको की भर्ती पहले एक केन्द्रीय ऐजेन्सी द्वारा कुछ बन्दरगाहो मे की जाती थी, परन्तु इस विधि को अक्टूबर १९५९ से समाप्त कर दिया गया है। कई बन्दरगाहों मे विज्ञापन द्वारा सीधी भर्ती की प्रणाली भी पाई जाती है। सन् १९६४ मे इस बात की भी जाँच की गई थी कि गोदी श्रमिको को कौन-कौन कल्याण सम्बन्धित सुविधाएँ प्राप्त हैं।

कलकत्ता व बम्बई के बन्दरगाहो मे नाविकों (Seamen) की भर्ती बहुत समय तक मध्यस्थों के द्वारा होती रही। इस व्यवसाय मे श्रमिको की पूर्ति अधिक होने के कारण इनकी भर्ती प्रणाली मे बहुत से दोष आ गये। १९४७ मे सरकार ने एक 'त्रिदलीय सामुद्रिक सलाहकार समिति" (Tripartite Maritime Labour Advisory Committee) स्थापित की और उसकी सिफारिशो के आधार पर नाविको के फिर से रजिस्ट्रेशन और उनको अलहदगी के सार्टीफिकेट प्रदान करने पर नियन्त्रण लगा दिया गया। केवल अनुभवी श्रमिक ही अब फिर से पजीकृत हो सकते हैं। कलकत्ता और बम्बई मे ऐसे बोर्ड भी स्थापित किये गये है जो ऐसे प्रमाणित नाविको का एक रजिस्टर रखते है, जो युद्ध काल मे जहाज पर काम कर चुके थे। बन्दरगाहो पर नाविको के रोजगार दफ्तर स्थापित करने के लिये और उनकी भर्ती को नियमित बनाने के लिये सरकार ने १९४९ के 'भारतीय व्यापारी जहाज अधिनियम' (Indian Merchant Shipping Act) मे कुछ सशोधन किये। कलकत्ता (१९५५) और बम्बई (१९५४) मे ऐसे रोजगार दफ्तर खोल दिये गये है और उनको सलाह देने के लिये त्रिदलीय रोजगार बोर्डों की भी स्थापना कर दी है। मद्रास मे जहाज पर काम करने वालों की भर्ती स्थानीय रूप से होती है। 'व्यापारी जहाज अधिनियम' के अनुसार किसी भी भारतीय, ब्रिटिश या विदेशी जहाज पर श्रमिक केवल जहाज के सयोजक द्वारा ही नियुक्त किये जा सकते है और यह नियुक्ति विशेष नियमों के अन्तर्गत और जहाज के नियन्त्रक (Master) की उपस्थिति मे ही हो सकती है।

ट्राम्वे मे कर्मचारियों की भर्ती विभिन्न नगरों मे विभिन्न प्रकार से होती है। कलकत्ते में भर्ती या तो सीधी प्रणाली के द्वारा श्रमिकों के सम्बन्धियों मे से होती है, या रोजगार दफ्तरों के द्वारा। बम्बई में रिक्त स्थानों की पूर्ति प्रार्थना-पत्र मँगा कर तथा रोजगार दफ्तरों द्वारा की जाती है।

ठेके के श्रमिक (Contract Labour)

कई उद्योग-धन्धों मे ठेके के श्रमिक भी अत्यधिक मात्रा मे पाये जाते हैं।

पिछले युद्ध की आकस्मिक आवश्यकताओ के कारण इस प्रणाली को बहुत प्रोत्साहन मिला। इजीनियरिंग, सीमेट कागज तथा अहमदाबाद क सूती कपडे के उद्योग-धन्धो म तथा खानो व बन्दरगाहो के उद्योगो मे और केन्द्रीय व राजकीय जन निर्माण व रेलवे विभागो मे अधिकतर ठके के श्रमिक ही पाये जात है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, खानो मे अधिकतर श्रमिक ठके के ही श्रमिक होते है और यह प्रथा बागान म भी फैल चुकी है। अहमदाबाद म लगभग १०% और सीमट, कागज तथा जूट की चटाइयो के उद्योगो मे लगभग २० से २५% ठके के हा श्रमिक ह। कोलार की सोन की खानो म एक तिहाई श्रमिक तथा बगाल मे बन्दरगाहो के लगभग ४३% श्रमिक ठकेदारो के द्वारा ही रोजगार पात है।

ठके के श्रमिको की प्रथा के प्रचलन के अनेक कारण है। कई बार ऐसा होता है कि काय को जल्दी समाप्त करने के लिये कुछ श्रमिको की एकाएक आवश्यकता आ पडती है। श्रमिक कई बार मिलते भी नही है। हमारे देश म रोजगार के दफ्तरा की स्थापना हुए भी बहुत दिन नही हुए है। कारखानो म पयवेक्षण कम चारियो की भी कमी रही है। इन अनेक कारणो स ठक के श्रमिको का ही काम पर लगाना अधिक सुविधाजनक रहता है परन्तु इस प्रथा के पक्ष म चाहे जितने भी तर्क क्यो न दिये जाय यह स्पष्ट है कि इस प्रथा स लाभ के स्थान पर हानिया ही अधिक है। सवप्रथम तो श्रमिको के हित के लिय बनाय गये अनेक कानून जैसे— कारखाना अधिनियम मजदूरी अधिनियम मातृत्व हित लाभ अधिनियम आदि ठके के श्रमिको पर लागू नही होते और श्रमिक अनेक लाभो व सुविधाओ स बचित रह जाते है। ठक के श्रमिक अधिकतर प्रवासी होते है। अत इनके लिय कानूनो को लागू करना कठिन हो जाता है। केवल श्रमिक क्षति पूर्ति अधिनियम ही इन पर लागू होता ह। रायल श्रम आयोग ने ठके के श्रमिको की प्रथा का अ य त बुराई की है और सिफारिश की है कि श्रमिको की भर्ती उनके काम के घण्टा तथा उनके वेतन आदि पर प्रबन्धको का पूरा नियन्त्रण होना चाहिय। इसी प्रकार स बिहार की श्रम जाच समिति न ठकेदारो द्वारा भर्ती की प्रथा का खण्डन किया है क्योकि ठकेदार अपने श्रमिको की ओर कोई नैतिक दायित्व नही मानत है और उनकी असहाय स्थिति का अनुचित लाभ उठात हैं। बम्बई की कपडा श्रम जाच समिति ने भी इस प्रथा के बहुत से दोषो की ओर सकेत किया है। ठकेदार अपना ठका सबस कम बोली पर पाता है इसलिये उसके लिये यह स्वाभाविक है कि वह श्रमिको को कम से कम मजदूरी देने का प्रयत्न करे अन्यथा उसे लाभ न होगा। इस प्रथा का एक अन्य दोष यह है कि मालिको पर ठके के श्रमिको के कल्याण कार्यो का कोई उत्तर दायित्व नही होता और इस प्रकार ठकेदारो द्वारा श्रमिको को काम पर लगाने से उनको आर्थिक लाभ होता है। ठके की भर्ती की प्रणाली तो मध्यस्थ द्वारा भर्ती की प्रणाली से भी अधिक दोषपूर्ण है क्योकि मध्यस्थ श्रमिका मे से ही एक होता है परन्तु ठकेदार तो बिल्कुल बाहरी व्यक्ति होता है।

इन विचारों को ध्यान में रखते हुये यह अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि ठेके के श्रमिकों की प्रथा के स्थान पर सीधी भर्ती की प्रणाली अपनाई जाये। जन-निर्माण-विभाग जैसी कुछ जगहों में जहाँ ठेके के श्रमिकों की प्रथा का पूर्णतया त्याग नहीं किया जा सकता, वहाँ यह प्रथा नियमित कर दी जानी चाहिये। श्रमिक सम्बन्धी सभी कानून, जैसे—फैक्टरी अधिनियम, खान अधिनियम तथा मजदूरी भुगतान अधिनियम आदि ठेके के श्रमिकों पर पूर्णरूप से लागू होने चाहियें। किसी भी स्थिति में कोई भी ठेकेदार कानून द्वारा निश्चित न्यूनतम मजदूरी से कम मजदूरी न दे। इसके अतिरिक्त जहा कहीं भी सम्भव हो, ठेके के श्रमिकों की प्रथा के उन्मूलन का प्रयत्न किया जाना चाहिये। कई औद्योगिक समितियों ने भी इस प्रथा को समाप्त करने की सिफारिश की है। इस प्रथा को कोयला खानों में समाप्त करने के लिये सरकार ने एक जाँच समिति की नियुक्ति की थी जिसके एकमात्र सदस्य श्री एल० पी० देव थे। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट दिसम्बर १९६१ में दी और इस प्रथा को सितम्बर १९६२ तक समाप्त करने की सिफारिश की। केवल सात प्रकार के कार्यों में ठेके के श्रमिक लगाये जा सकते थे, परन्तु उनमें भी धीरे-धीरे इस प्रथा को समाप्त कर देने की सिफारिश थी। ठेके के श्रमिकों को काम पर लगाने की शर्तों का नियमन करने के लिए अब एक अधिनियम (Act) पास किया जा रहा है।

जनवरी १९५१ में उत्तर प्रदेश की सरकार ने तीन-चार बड़े-बड़े श्रमिक डिपो चलाना निश्चित किया और जन-निर्माण विभाग के ठेकेदारों के लिये यह अनिवार्य कर दिया कि वह केवल उन्हीं डिपो में से श्रमिक भर्ती करें। गोरखपुर और लखनऊ में रोजगार दफ्तरों द्वारा चलाये जाने वाले श्रमिक डिपो को अपने अधिकार में लेकर सरकार ने इस योजना को कार्यान्वित किया। वह श्रमिक जो किसी निश्चित काल तक कार्य करने का आश्वासन देते है, भर्ती कर लिये जाते हैं, और उनके प्रारम्भिक प्रशिक्षण, भोजन और कपड़े का प्रबन्ध किया जाता है। काम करने वाले श्रमिकों को भोजन, कपड़ा और थोड़ा सा जेबखर्च दिया जाता है। उनके वेतन में से लागत काट कर शेष वेतन उनके परिवारों को भेज दिया जाता है। इस प्रकार से श्रमिक मध्यस्थों व ठेकेदारों के अनुचित व्यवहार से बच जाता है और उसका पर्याप्त वेतन सुरक्षित हो जाता है।

गोरखपुर श्रम-संस्था

गोरखपुर में एक भर्ती का डिपो १९४२ में खोला गया जिसका उद्देश्य यह था कि लड़ाई से सम्बन्धित सामान बनाने के लिये जो संस्थायें थी उनमें श्रमिकों की कमी न रहे। इस डिपो ने शीघ्र ही एक बड़ी संस्था का रूप धारण कर लिया और इसके द्वारा लगभग ५०,००० श्रमिक भर्ती होने लगे। इस संस्था का नाम 'गोरखपुर श्रम संस्था' (Gorakphur Labour Organisation) पड़ गया। स्थानीय श्रमिकों की कमी के कारण यह संस्था बिहार व बंगाल की कोयले की खानों के लिए भी श्रमिकों की पूर्ति करने लगी। लड़ाई समाप्त होने पर भी खान

उद्योग की प्रार्थना पर यह सस्था कोयले की खानो के लिये श्रमिकों की पूर्ति करती रही, परन्तु भर्ती का व्यय अब खान उद्योग वहन करने लगा। खानो मे श्रमिकों की भर्ती के लिये इस प्रकार यह एक सगठन बन गया जिसका नाम 'कोयला क्षेत्र भर्ती सगठन' पड गया (Coal Fields Recruiting Organisation)। भर्ती के आरम्भ का व्यय तो केन्द्रीय सरकार करती है और बाद मे कार्य पर लगाने वाली खानो से उनमें श्रमिकों की भर्ती के अनुसार व्यय ले लिया जाता है। १९५६ मे विभिन्न कोयला खानो मे गोरखपुर के श्रमिको की सख्या १५,८६७ थी, परन्तु इस योजना के विरुद्ध कई शिकायतें प्राप्त हुईं और १९५८ मे इनके बारे मे जाँच की गई। कोयला खानो की औद्योगिक समिति ने फरवरी १९५९ म इस बात का निर्णय किया कि गोरखपुर के श्रमिको और अन्य श्रमिको मे कोई भेद नही होना चाहिए और गोरखपुर की सस्था का सम्बन्ध केवल भर्ती से ही रहना चाहिए। अगस्त १९५९ म समिति द्वारा अन्तिम रूप से यह निर्णय किया गया कि गोरखपुर की श्रम सस्था बिलकुल ही बन्द कर दी जाये और इसके जो भर्ती के कार्य हैं वे रोजगार दफ्तरों को सौंप दिये जायें। ससद् के दस सदस्यो की एक समिति भी इस सम्बन्ध म बना दी गई थी। इस समिति ने अप्रैल १९६० मे अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसकी सिफारिशो को लागू करने के लिए एक विशेष त्रिदलीय समिति की नियुक्ति की गई। परिणामस्वरूप गोरखपुर श्रम सस्था का प्रशासन जो अब तक सरकार क हाथ म था १ अप्रैल, १९६१ से रोजगार दफ्तरो के निदेशालय को सौंप दिया गया। अब गोरखपुर श्रम सस्था राष्ट्रीय रोजगार सेवा का एक अग बन गई है। ६ कोयला खानो के रोजगार दफ्तर भी स्थापित कर दिये गये है, इनम स ३ मध्य प्रदेश म, २ पश्चिमी बगाल मे व १ बिहार मे है। अब श्रमिक गोरखपुर ज़िले के स्थान पर भर्ती के लिए इन रोजगार दफ्तरो मे पजीकृत हो सकते हैं। गोरखपुर श्रम सस्था के जो कल्याणकारी कार्य थे उनकी देखभाल अब कोयला खान कल्याण निधि धनबाद के आयुक्त (Commissioner) द्वारा की जाती है। गोरखपुरी और स्थानीय श्रमिको मे अब कोई भेद नही किया जाता। गोरखपुरी श्रमिकों क रहने के लिए अब विभिन्न कार्य-स्थानो पर होस्टल खोल दिये गये है। श्रमिको की इच्छा पर यह बात छोड दी गई है कि वे चाहे तो अपनी पूरी मजदूरी कार्य-स्थान पर ही ले लें या गोरखपुर श्रम-सस्था द्वारा जो आस्थगित भुगतान (Deferred payment) की सुविधा दी जा रही है, उससे लाभ उठायें। विभिन्न खानो के लिए गोरखपुर श्रम सस्था द्वारा जो श्रमिक भेजे गये थे उनकी सख्या फरवरी १९६१ मे ११,८१० थी। फरवरी १९६२ मे यह सख्या २१,३३५ थी। जनवरी १९६५ से ३० नवम्बर १९६५ तक डिपो द्वारा, कोयला क्षेत्रो, कच्चे लोहे की खानो, उत्तरी पूर्वी रेलवे तथा उत्तर प्रदेश के सार्वजनिक निर्माण विभाग मे काम करने के लिए १२९८५ श्रमिक भर्ती करके भेजे गये।

श्रमिकों का स्थायीकरण (Decasualisation of Labour)

श्रमिको की भर्ती को नियमित करने के लिए कुछ कारखानो ने बदली के श्रमिकों के नियन्त्रण की रीति अपनाई है। इस योजना को बदली नियन्त्रण प्रथा अथवा बदली श्रमिकों का स्थायीकरण कहते है। इस योजना को दो उद्देश्यो से अपनाया गया है। प्रथम, बदली के श्रमिको के रोजगार को नियमित बनाना और दूसरा, श्रमिकों की भर्ती मे मध्यस्थों के प्रभाव को मिटाना। इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक माह की पहली तारीख को कुछ चुने हुये लोगों को एक विशेष बदली कार्ड दिया जाता है, जिन्हे प्रतिदिन प्रात.काल मिल के फाटक पर हाजिरी देनी होती है। अस्थायी रिक्त स्थानों की पूर्ति इन्ही लोगों मे से की जाती है। जब तक बदली के कार्ड प्राप्त श्रमिक पर्याप्त होते है, किसी अन्य श्रमिक को भर्ती नही किया जा सकता और रिक्त स्थानों की पूर्ति प्रवरता (Seniority) के अनुसार की जाती है। इस कार्य के लिये एक रजिस्टर रखा जाता है। अहमदाबाद मे केन्द्रीय सरकार की सहायता से सितम्बर १९४८ मे इस योजना को सूती कपडा मिल के श्रमिको के लिये आरम्भ किया गया था और बाद मे यह योजना बम्बई शहर और शोलापुर मे भी लागू कर दी गई। इस योजना के अन्तर्गत बम्बई राज्य मे सूती मिलो मे काम करने वाले ३,६७,००० श्रमिक आते हैं। यह योजना बम्बई व अहमदाबाद के मिल मालिक सघो के सहयोग से ऐच्छिक रूप से चालू है। इस योजना का उद्देश्य यह है कि बदली श्रमिको का स्थायीकरण किया जाय, तथा अनुपस्थिति और श्रमिकावर्त की दरो व मांग के आधार पर बदली श्रमिको के पूल को विनियमित किया जाय। इसके अतिरिक्त अधिक व अच्छा उत्पादन करना, भर्ती के दोष तथा रिश्वत को समाप्त करना, और श्रमिकों को प्रशिक्षण देना आदि भी इस योजना के उद्देश्य है।। पंजीकृत श्रमिकों को प्रमाण-पत्र दिये जाते है और नौकरी दिलाने मे नौकरी कर चुकने की अवधि का विचार रखा जाता है। कोयम्बटूर की कपडा मिलो मे भी यह योजना लागू कर दी गई है। बन्दरगाहो के श्रमिको के रोजगार को नियन्त्रण मे लाने के लिये जो १९४८ का अधिनियम है उसके अन्तर्गत बम्बई व कलकत्ता, मद्रास, कोचीन तथा विशाखापतनम् मे श्रमिको के स्थायीकरण की योजनायें लागू है। ऐसी स्थायीकरण योजना जमशेदपुर की लोहे की चादर की कम्पनी मे भी लागू है। इन योजनाओ के अन्तर्गत फैक्ट्री के प्रत्येक विभाग मे श्रमिको के पूल बना लिये गये है और प्रत्येक पारी (Shift) मे आवश्यकतानुसार श्रमिको को काम पर लगा लिया जाता है। श्रमिकों की अनुपस्थिति के कारण जो स्थान रिक्त हो जाते है उनको भी इन्ही पूल के श्रमिको से भर लिया जाता है। इन्दौर मे भी सूती कपडों के कारखानो मे श्रमिकों की भर्ती के लिए १९५३ मे एक केन्द्रीय बदली नियन्त्रण कमेटी की स्थापना की गई थी, परन्तु यह योजना अधिक दिनों तक न चल सकी।

जनवरी १९५० मे छँटनी के श्रमिकों का पूल बनाने तथा श्रमिकों के

स्थायीकरण के लिये उत्तर प्रदेश की सरकार द्वारा एक योजना बनाई गई थी। यह योजना पहले छ माह, फिर एक वर्ष तक चलाने का विचार था, परन्तु फिर इसकी सफलता को देखकर इसको जारी रखने का निश्चय किया गया है। प्रयोगात्मक रूप से यह योजना कानपुर मे प्रारम्भ की गई और ग्वालटोली, कालपी रोड, जूही तथा कूपरगज मे रोजगार दफ्तर के उप-कार्यालय खोले गये। यद्यपि इस योजना की पूर्ण प्रगति में कुछ प्रारम्भिक कठिनाइयाँ थी, फिर भी इस योजना का प्रारम्भ सफल रूप से हुआ, परन्तु नैनीताल मे हुए त्रिदलीय श्रम सम्मेलन मे इस बात का निर्णय किया गया कि इस योजना को १ जुलाई १९५४ से समाप्त कर दिया जाये। परन्तु उसके पश्चात् राज्य सरकार ने यह निणय किया कि रोजगार दफ्तरो से सम्बन्धित शिवाराव समिति की सिफारिशो पर कोई अन्तिम निश्चय होने तक इस योजना को कुछ दिनो तक अस्थायी रूप से चालू रक्खा जाए। केवल कूपरगज कार्यालय बन्द कर दिया गया। हमारे विचार म इस योजना को समाप्त नही करना चाहिये क्योकि भर्ती के तरीके मे जो पक्षपात व भ्रष्टाचार आ गया था, वह इस योजना से काफी सीमा तक समाप्त हो गया। यह योजना रोजगार के दफ्तरो और उत्तरी भारतवर्ष के मालिक सघ के मध्य हुये सम्मानित समझौते पर आधारित है। इस योजना के अन्तगत जो काय अब तक हुआ है वह भी काफी सराहनीय कहा जा सकता है। यह योजना कानपुर की ऊनी सूती कपडा और तल मिलो म लागू है। १९६४ म २८८५२ श्रमिको को नौकरियाँ भी दिलाई गई। इस अवधि म २५९२३ रिक्त स्थानो की सूचना मिली जिनमे से २२२७९ स्थानो पर लोगो को लगा भी दिया गया।

भर्ती की कुछ अन्य पद्धतिया

एक स्थायी श्रमिक वर्ग तैयार करने के उद्देश्य से अनेक सस्थाय रोजगार म लगे हुय श्रमिको के सम्बन्धियो को ही भर्ती मे प्रथम अवसर दती है। यह कहा जाता है कि एस लोग सरलता से कारखाने के अनुशासन को स्वीकार कर लेते हैं। अत अब वकर्त्ताओ क अनुकूल भी होते है। फिर भी यह रीति दोषरहित नही है। यदि शेष बातें सामान्य हो अर्थात प्रार्थी पूणरूप म योग्य हो तो इसम कोई हानि नही वरन् यह वाछनीय है कि रोजगार म लगे हुय तथा रोजगार मे पहले रह चुके लोगा के पुत्र तथा सम्बन्धियो को प्रथम अवसर दिया जाये। परन्तु व्यवहारिक रूप म यह रीति पक्षपात साम्प्रदायिकता तथा जातीयता का प्रोत्साहन देती है और बहुत से अकुशल लोग नौकरिया पा लत हैं। अत भर्ती करने मे केवल वैज्ञानिक सिद्धा तो का ही पालन होना चाहिय और इसमे किसी भी प्रकार का पक्षपात नहीं होना चाहिये।

सम्भवत भर्ती की प्रचलित बुराइयो को दूर करने और उस वैज्ञानिक रूप से चलाने का एक यह ही उपाय है कि रोजगार के दफ्तरो म वृद्धि करक उनका अधिकतम उपयोग किया जाय।

रोजगार दफ्तर
(Employment Exchanges)

परिभाषा

रोजगार दफ्तर एक विशेष प्रकार की वह संस्था है, जिसका मुख्य कार्य कार्य-इच्छुक लोगों को उनकी योग्यतानुसार उपयुक्त कार्य दिलाना तथा मालिकों को योग्य और अच्छे श्रमिक प्राप्त करने में सहायता देना है। इस प्रकार वे कार्य इच्छुक लोगों और मालिकों को शीघ्रतम सम्पर्क में लाने का कार्य करते है। प्रत्येक श्रमिक जो कार्य ढूढने में सहायता चाहता है, अपने घर के निकटतम रोजगार दफ्तर में प्रार्थना-पत्र देता है। वहाँ उसका नाम, योग्यताएँ, अनुभव तथा विशेष रुचि आदि का विवरण लिख लिया जाता है। इसी प्रकार मालिक जिनको श्रमिकों की आवश्यकता होती है, रोजगार दफ्तरों को यह सूचित करते है कि उनके पास कौन से स्थान रिक्त है और उन्हे किस योग्यता के श्रमिको की आवश्यकता है। यह सारे विवरण रोजगार दफ्तर में सुव्यवस्थित रूप से रखे जाते है। जब भी कोई नौकरी रिक्त होने की सूचना मिलती है, तो रोजगार दफ्तर कार्य-इच्छुक व्यक्तियों में से उस नौकरी के लिये उपयुक्त योग्यता रखने वालों को चुन लेता है, और उनके नाम मालिकों के सम्मुख विचारार्थ भेज देता है और यदि आवश्यकता हुई तो दोनों पक्षों के बीच समालाप (Interview) का प्रबन्ध कर देता है। अन्तिम निर्णय मालिकों पर निर्भर करता है। जिन व्यक्तियों का चुनाव नही हो पाता है, उनके लिये रोजगार दफ्तर तब तक प्रयत्न करता रहता है, जब तक वे योग्य व्यवसाय नहीं पा लेते। इस प्रकार रोजगार दफ्तर श्रमिकों की माँग और पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करते है, और प्रत्येक कार्य पर उपयुक्त व्यक्तियों की नियुक्ति करने में सहायक होते है।

रोजगार दफ्तरों का कार्य तथा महत्व

राज्य द्वारा सचालित रोजगार दफ्तरों के महत्व को १९१९ में विश्वव्यापी मान्यता प्रदान की गई, जबकि वाशिंगटन में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने एक अभिसमय (Convention) द्वारा इस बात पर जोर दिया कि प्रत्येक सदस्य देश को जनता के लिए एक निःशुल्क रोजगार दफ्तर स्थापित करना चाहिये जो कि एक केन्द्रीय अधिकार के नियंत्रण में रहे। यह विषय १९४७ में जेनेवा में हुए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के तीसवें अधिवेशन की कार्य-सूची पर फिर से रखा गया और सदस्य सरकारों से रोजगार दफ्तरों के संगठनों के बारे में सूचना माँगी गई। यह सूचना अनेक देशों से प्राप्त हुई, जिनमें भारत भी था। इसके आधार पर १९४८ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने सान-फ्रांसिस्को में होने वाले ३१ वे वार्षिक अधिवेशन में एक अभिसमय पास किया और एक सिफारिश भी की। इस अभिसमय में रोजगार दफ्तरों के कार्यों और कर्तव्यों की रूप-रेखा दी गई है, और इनको सफल बनाने के लिये मालिक और मजदूरों के सहयोग का अनुरोध किया गया है।

रोजगार दफ्तरो के कार्य अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। एक सुसचालित औद्योगिक व्यवस्था मे इनका एक विशेष स्थान है। राष्ट्रीय लाभाश (National dividend) की अधिकतम वृद्धि दो बातो पर निर्भर है। प्रथम तो श्रमिको को अनैच्छिक (Involuntary) बेकारी से बचाना। दूसरे, प्रत्येक श्रमिक को उसकी योग्यतानुसार कार्य देना। रोजगार दफ्तर इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। इसमे सन्देह नही कि रोजगार दफ्तर नवीन व्यवसायो का निर्माण नही कर सकते। इनका मुख्य कार्य श्रम की माँग व पूर्ति मे पूर्ण रूप से सन्तुलन स्थापित करना है। श्रमिको और उनकी नौकरियो मे उचित प्रकार का सन्तुलन स्थापित न हो पाने का एक कारण यह भी है कि श्रमिको को रिक्त नौकरियों की और मालिको को बेरोजगार मजदूरो की सूचना नही मिल पाती। ऐसी स्थिति मे रोजगार दफ्तर दोनो को उपयुक्त सूचना दे सकते हैं। यह बहुत आश्चर्य की बात होगी कि जब निवेश तथा अन्य अनेक महत्वपूर्ण वस्तुओ के लिये तो सगठित बाजार काफी समय से पाये जाते हैं श्रम के लिये कोई ऐसी व्यवस्था न हो, विशेषकर जब श्रम का मोलभाव भी ससार म अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अत श्रम को रोजगार दिलाने के लिये भी किसी उचित व्यवस्था का होना अत्यधिक आवश्यक है।

यह तो सरकार का कर्तव्य है कि वह जन निर्माण कार्यों से, उद्योग-धन्धो को प्रोत्साहन दकर, कृषि मे उन्नति करके तथा देश मे धन का समान वितरण आदि करके लोगो के लिये अधिक नौकरियाँ उपलब्ध करे। रोजगार दफ्तरो का यह उत्तरदायित्व होता है कि वे इस बात का ध्यान रक्खे कि रिक्त स्थानो पर वही मनुष्य नियुक्त किये जायें, जो उनके सर्व-उपयुक्त हो। इस प्रकार रोजगार दफ्तरो के द्वारा श्रमिको को सर्व-उपयुक्त नौकरी और मालिको को सर्व-उपयुक्त कर्मचारी मिल जाते है। इस प्रकार हर नौकरी पर उचित व्यक्ति की ही नियुक्ति होती है। जो समय स्थानो के रिक्त होने तथा उनके भरने के समय तक व्यर्थ जाता है, वह भी यथा-सम्भव कम हो जाता है। मध्यस्थो द्वारा भर्ती के दोष आदि भी रोजगार दफ्तरो के होने से दूर हो जाते है। रोजगार दफ्तर इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि आवश्यकतानुसार निपुण श्रमिक बाजार मे प्राप्त होते रहे और उनका उचित रूप से उत्पादन की विभिन्न शाखाओ मे वितरण हो जाये। वे कार्य योग्य मनुष्यो, नौकरियो बेरोजगारी तथा व्यवसाय आदि के बारे में सूचना भी देते रहते है जो कि जनता और सरकार के लिये अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध होती है। वे विस्थापित (Displaced) व्यक्तियो, शरणार्थियो तथा पूर्व सैनिको (Ex-servicemen) को बसाने म भी सहायता देते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि रोजगार दफ्तर नौकरियाँ निर्मित नही कर सकते और जब तक कोई स्थान खाली न हो वह किसी का काम पर नही लगा सकते, फिर भी एक सीमा तक रोजगार दफ्तर बेरोजगारी कम करन म सहायक सिद्ध होते है। अनेक बार ऐसा होता है कि एक स्थान पर तो बेकारी होती है और अन्य स्थानो पर श्रमिको का अभाव होता है।

ऐसी अवस्था दो कारणों से उत्पन्न हो सकती है—एक तो नौकरी के सम्बन्ध में बेरोजगार मनुष्यों की पूर्ण अनभिज्ञता के कारण, दूसरे, उचित प्रशिक्षण के अभाव-स्वरूप उस स्थान के लिये अयोग्यता के कारण। ऐसी अनेक अवस्थाओं में रोजगार दफ्तर बेकारी कम करने में अत्यधिक सहायक सिद्ध हो सकते हैं। वे केवल आवश्यक सूचना देने का साधन ही नहीं होते, वरन् नौकरियों के लिये उपयुक्त प्रशिक्षण देने का कार्य भी करते हैं। इस प्रकार रोजगार दफ्तर श्रम बाजार में श्रमिकों की माँग व पूर्ति के संतुलन में जो विलम्ब होता है, उसको कम कर देते हैं। इस प्रकार यद्यपि कुल रोजगार की वृद्धि करने में उनका अधिक हाथ नहीं होता, तथापि बेरोजगारी के दोषों को दूर करने में वे सहायक होते हैं।

लोगों का यह विचार भी भ्रमपूर्ण है कि रोजगार दफ्तरों से सब लाभ केवल श्रमिकों को ही होते हैं। ये दफ्तर मालिकों के लिये भी अत्यन्त लाभदायक हैं। प्रत्येक मालिक के लिये रिक्त स्थान का शीघ्र से शीघ्र भर जाना बहुत महत्व रखता है। मालिक यह भी समझते हैं कि रिक्त नौकरियों का भर जाना ही काफी नहीं है, अपितु प्रत्येक नौकरी के लिये उपयुक्त मनुष्य का होना भी आवश्यक है। रोजगार दफ्तर इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। जब श्रमिक अनायास ही भर्ती के लिये आ जाते हैं, तो या तो मालिक को उपयुक्त श्रमिक पाने के लिये काफी प्रतीक्षा करनी पड़ती है, या उन्हें नये श्रमजीवियों को बहुत बड़ी संख्या में शिक्षा देनी पड़ती है। परन्तु मालिक के लिये यह दोनों ही बातें दुष्कर होती हैं और परिणामस्वरूप अनुपयुक्त लोगों की भर्ती अधिक हो जाती है। इसका फल यह होता है कि श्रमिकों का श्रमिकावर्त्त बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त मालिकों को और भी खर्च करने पड़ते हैं, जैसे–रिक्त स्थानों का विज्ञापन या भर्ती के लिये एक विशेष विभाग का संचालन आदि। यदि मालिकों को रोजगार दफ्तरों के द्वारा श्रमिक मिल जायें तो यह सब कठिनाइयाँ तथा व्यय दूर हो सकते हैं।

यह सर्वमान्य है कि रोजगार दफ्तर बेरोजगार मनुष्यों के लिये अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुये हैं। इनके न होने से काम की खोज में श्रमिक को प्रार्थना-पत्र लिये हुये स्थान-स्थान पर घूमना पड़ता है। ऐसी स्थिति में यह संयोग पर ही निर्भर है, कि, भाग्यवश श्रमिक ऐसे स्थान पर पहुँच जाये जहाँ उसे नौकरी मिल जाये। अधिकतर श्रमिकों को ऐसा सुसंयोग बहुत दिनों तक नहीं मिल पाता। एक बड़े नगर में एक श्रमिक एक दिन में कुछ ही स्थानों पर जा सकता है और इस अवस्था में यह सम्भव है कि वह जगह पाने के लिये घूमता फिरता रहे जबकि उसी नगर के किसी ऐसे स्थान पर, जहाँ पर वह संयोगवश न जा पाया हो, स्थान रिक्त हो। इस प्रकार समय व श्रम का नष्ट होना श्रमिक, मालिक तथा समाज सभी के दृष्टिकोण से हानिकारक होता है, और यदि नौकरी की खोज में कहीं दूर जाना पड़ता है तो व्यय और भी बढ़ जाता है। रोजगार दफ्तरों की सहायता से वे सब

हानियाँ जो असैद्धान्तिक रूप से नौकरियाँ खोजने के कारण उत्पन्न हो जाती हैं, दूर हो सकती हैं ।

संक्षेप में रोजगार दफ्तरों के कार्य निम्नलिखित कहे जा सकते है —(१) ये मालिकों तथा श्रमिकों के बीच मध्यस्थ का काम करते है और नौकरी का आपसी निर्णय उन्हीं दोनों पर छोड़ देते हैं। इस प्रकार यह श्रम की माँग व पूर्ति में सतुलन स्थापित करते हैं। (२) उस स्थान में जहाँ श्रमिक अधिक हों ये श्रमिकों को उस स्थान पर भेज देते हैं जहा उनकी कमी हो। इस प्रकार ये श्रम की गतिशीलता को बढ़ाते है, और सूचना के अभाव के कारण उत्पन्न हुये श्रम के असमान वितरण में समानता लाते है। (३) उनके कारण भर्ती में प्रचलित रिश्वत और भ्रष्टाचार दूर हो जाते हैं, क्योंकि वे सबको निःशुल्क समान सहायता देते हैं। उनके कारण सर्व-उपयुक्त व्यक्तियों की ही नियुक्ति होती है। (४) वे कार्य-योग्य मनुष्यों तथा बेरोजगारी के आँकड़ों को एकत्रित करते है और इस प्रकार देश में श्रमिकों की वास्तविक स्थिति ज्ञात हो जाती है। (५) वे अनेक योजनाओं को लागू करने व चलाने में सहायता देते है, जैसे—बेरोजगारी बीमा योजना, स्थानीयकरण योजना तथा विस्थापित व्यक्तियों को बसाने तथा उनको कार्य पर लगाने की योजना आदि। (६) वे श्रमिकों को प्रशिक्षण की सुविधायें देते हैं तथा बच्चों के माता पिता व अभिभावकों को व्यवसाय सम्बन्धी तथा व्यापार सम्बन्धी परामर्श व निर्देशन देते हैं। (७) वे नौकरियों के खाली होने और उनके भरने के बीच के समय को कम कर देते है और इस प्रकार अनैच्छिक बेकारी को कम करने में सहायक होते हैं, यद्यपि यह सत्य है कि वे रोजगार की उत्पत्ति नहीं कर सकते।

अन्य देशों की भाँति रोजगार दफ्तरों का महत्व हमारे देश मे भी सामाजिक सुरक्षा और आर्थिक उन्नति की योजनाओं मे अत्यधिक है। इनका सगठन हुए अभी अधिक वर्ष नहीं हुए हैं और इनकी सेवायें निःशुल्क तथा ऐच्छिक रूप से होती है। यदि इनको व्यापारिक दृष्टि से देखा जाय, जैसी कुछ अन्य देशों में इनकी स्थिति है, तो यह भारत में सफल नहीं हो सकते। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ का अभिसमय भी इसी बात की सिफारिश करता है कि रोजगार के दफ्तर निःशुल्क सेवा देते रहें। इनको एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय और समाजसेवी संस्था समझना चाहिये, परन्तु इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि इनके अन्दर भी सरकारी कार्यालयों की भाँति केवल कागजी कार्यवाही की ही प्रधानता न रहे। यदि रोजगार दफ्तर कार्य के लिए उपयुक्त व्यक्तियों को ढूढने मे अधिक समय लगायेंगे तो मालिकों के लिए श्रमिकों की प्रतीक्षा करना कठिन हो जायेगा। इसी प्रकार जिन श्रमिकों को काम की आवश्यकता है वह बार-बार रोजगार के दफ्तरों के ही चक्कर नहीं काट सकते, जब कि उनके घरों में खाने का भी अभाव हो। इसलिये रोजगार दफ्तरों को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये शीघ्रता, कुशलता और व्यापारिक रूप से कार्य करना चाहिये।

अन्य देशों में रोजगार दफ्तर

रोजगार दफ्तरों की आवश्यकता औद्योगिक विकास के प्रारम्भ में ही अनुभव की जाने लगी थी। प्रारम्भ में यह व्यापारिक दृष्टि से लाभ उठाने के लिए व्यक्तिगत संस्था के रूप में अथवा कुछ दानी संस्थाओं, जैसे युवक क्रिश्चियन संघ (Y. M. C. A.), द्वारा निर्मित समाजसेवी संस्था के रूप में प्रचलित हुये। राज्य द्वारा नियन्त्रित रोजगार दफ्तरों का बाद मे विकास हुआ और न्यूजीलैंड में इनको १८६१ में प्रथम बार प्रारम्भ किया गया। जर्मनी मे पहला रोजगार दफ्तर १८८३ मे बर्लिन मे चालू हुआ, परन्तु उनका राष्ट्रीयकरण १६१८ के बाद हुआ। १६२७ में रोजगार दफ्तरो की एक राष्ट्रीय संस्था और रोजगार दिलाने की एक बीमा योजना का बर्लिन मे प्रारम्भ हुआ। यह एक त्रिदलीय आयोग के नियन्त्रण मे थे। फ्रांस ने सामुदायिक रोजगार कार्यालयों से प्रारम्भ किया, जिनके स्थान पर बाद मे १६१४-१८ के बीच मे विभागीय रोजगार कार्यालयों की स्थापना हुई। आजकल एक तो क्षेत्रीय परिसूचन गृह (Regional Clearing House) है और एक श्रम मन्त्रालय के आधीन केन्द्रीय रोजगार कार्यालय है। फ्रांस के रोजगार दफ्तरों का एक विशेष लक्षण यह है कि वह व्यवसाय के आधार पर विभिन्न खण्डो मे विभाजित हैं और प्रत्येक खण्ड मालिकों और श्रमिको से पूर्णरूप से परामर्श करके अपनी नीति लागू करता है। रूस मे राष्ट्रीय समाजवादी व्यवस्था के अधीन १६३१ मे स्टाफ कार्यालयों की स्थापना हुई जो रोजगार दफ्तरों का कार्य करते हैं और यह सभी संस्थाओं के लिये अनिवार्य है कि वे श्रमिकों को इन दफ्तरों के द्वारा ही भर्ती करे।

अमरीका मे न्यूयार्क शहर के अन्दर प्रथम बार सार्वजनिक रोजगार सेवा १८३४ मे चालू की गई और ऐसे स्थान खोले गये जहाँ मालिक लोग आप्रवासियों (Immigrants) से सम्पर्क स्थापित कर सकते थे। नगरपालिकाओं के रोजगार दफ्तर 'लौस एन्जिल्स' (Los Angeles) और 'सीटल' (Seattle) नामक शहरों मे बाद में खोले गये। विधान द्वारा सार्वजनिक रोजगार दफ्तर १८६० मे 'ओहीओ' (Ohio) नामक राज्य में प्रथम बार स्थापित किया गया। संघीय सरकार द्वारा प्रथम महायुद्ध मे एक राष्ट्रीय रोजगार सेवा चालू की गई जिसका उद्देश्य ऐसे बड़े शहरों मे रोजगार सेवा प्रदान करना था जहाँ राज्यो द्वारा रोजगार सेवायें चालू नही की गई थीं। महायुद्ध के पश्चात् यह राष्ट्रीय दफ्तर भी राज्य सरकारो को दे दिये गये। आर्थिक तथा श्रम रोजगार की समस्यायें क्योंकि अन्तर्राज्य समस्यायें थी इसलिए १६३३ में एक अधिनियम पारित किया गया (Wagner-Peyser Act of 1933) इसके अन्तर्गत समस्त संघीय राज्य मे एक निःशुल्क सार्वजनिक रोजगार सेवा चालू की गई। इसका प्रशासन राज्यों द्वारा किया जाता है। सेवाओं के समन्वय का उत्तरदायित्व संघीय सरकार पर है। समस्त राष्ट्र मे १८६० पूर्ण कालिक स्थानीय दफ्तर इस समय चालू हैं। यह सेवायें स्थानीय, राज्य और संघीय संस्थाओं के

संयुक्त प्रयत्नों का परिणाम है।[1] इनके अतिरिक्त शुल्क लेने वाली निजी रोजगार संस्थायें भी हैं जो ५० से अधिक वर्षों से चालू हैं। इन संस्थाओं में प्रारम्भ में कई दोष थे, परन्तु अब कई राज्यों में इन पर विधान द्वारा नियन्त्रण लागू कर दिया गया है और इनको लाइसेंस लेना पड़ता है। १९१४–१८ के महायुद्ध के दिनों में इन निजी संस्थाओं को बहुत कार्य मिला और इन्होंने बहुत लाभ कमाया।

ग्रेट ब्रिटेन में, जिसके आधार पर भारतीय रोजगार दफ्तर निर्मित किए गए हैं, प्रथम रोजगार दफ्तर १८८५ में ऐग्रम में प्रारम्भ हुआ। इसके द्वारा किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था परन्तु जिनको नौकरी मिल जाती थी, उनसे अंशदान ग्रहण कर लिया जाता था। १९०२ में एक 'श्रम ब्यूरो (लन्दन) अधिनियम' [Labour Bureaux (London) Act] पास हुआ, जिसके अन्तर्गत स्थानीय निकायों (Local Bodies) को रोजगार के दफ्तर स्थापित करने का अधिकार मिल गया। १९०५ में बेरोजगार श्रमिकों के लिए एक अधिनियम पास हुआ जिसके अन्तर्गत पीड़ित मनुष्यों के लिए स्थापित समितियों (Distress Committees) ने २५ रोजगार दफ्तर स्थापित किये, किन्तु इनकी आलोचना की गई। पहला रोजगार दफ्तर १९१० में सरकार ने व्यापार बोर्ड (Board of Trade) के अन्तर्गत स्थापित किया। यह १९०९ में, दरिद्र मनुष्यों के कानून (Poor Laws) के लिए जिस रायल आयोग की नियुक्ति हुई थी उसकी सिफारिशों के परिणामस्वरूप, स्थापित किया गया था। देश को फिर ११ विभागों में विभाजित किया गया और लन्दन में एक केन्द्रीय कार्यालय खोला गया। महीने भर के अन्दर ही रोजगार दफ्तरों की संख्या ६१ से बढ़कर २१४ हो गई और १९१२ में उनकी संख्या ४१४ तक पहुँच गई। १९१६ में जब श्रम मंत्रालय की स्थापना हुई तब इसने श्रम दफ्तरों का प्रशासन भार व्यापार बोर्ड से लेकर स्वयं संभाल लिया और तब से इस संस्था का नाम श्रम दफ्तरों के स्थान पर रोजगार दफ्तर हो गया। १९१९ में इन रोजगार दफ्तरों के कार्यों की जाँच करने के लिए एक समिति की नियुक्ति हुई। इसने यह सिफारिश की कि इनका राष्ट्रीय आधार पर निर्माण किया जाय और राष्ट्रीय बीमा योजना भी इनके ही द्वारा लागू की जाय। परिणामस्वरूप १२० लाख श्रमिकों का, १९२० में बेरोजगारी बीमा अधिनियम के पास होने के पश्चात् रोजगार दफ्तरों के द्वारा बीमा हुआ।

ब्रिटेन में अब श्रम और राष्ट्रीय बीमा मन्त्रालय रोजगार दफ्तरों के संचालन के लिए उत्तरदायी है। इनका क्षेत्र भी धीरे-धीरे विकसित कर दिया गया है और अब ये व्यवसाय सम्बन्धी पथ निर्देशन और प्रशिक्षण का कार्य भी करते हैं। १९४८ में एक रोजगार और प्रशिक्षण अधिनियम भी इनके कार्यों को स्पष्ट करने के लिए पारित हुआ। इस समय ब्रिटेन में ९०० स्थानीय तथा ब्रांच रोजगार दफ्तर

1. The American Workers Fact Book, 1960, page 57.

है जो रोजगार दफ्तरों के समान कार्य करते हैं।[2] मालिकों व श्रमिकों में पूर्ण सहयोग बनाये रखने के लिये स्थानीय रोजगार समितियाँ भी स्थापित की गई हैं। प्रशिक्षण के लिए १४ सरकारी प्रशिक्षण केन्द्र हैं, जिनमें व्यवसाय सम्बन्धी प्रशिक्षण दिया जाता है। दो विशेष रोजगार दफ्तर भी हैं जो युवकों को रोजगार देने और अपाहिज लोगों को बसाने का कार्य करते हैं।

भारत में राष्ट्रीय रोजगार सेवा

ऐतिहासिक रूप-रेखा

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ ने १९१९ में एक अभिसमय द्वारा इस बात की सिफारिश की थी कि एक निःशुल्क रोजगार दफ्तर की स्थापना होनी चाहिये। भारत ने १९२१ में इस अभिसमय को स्वीकार कर लिया था पर १९३८ में उसको अस्वीकृत घोषित कर दिया। १९२९ की मन्दी से उत्पन्न बेकारी की समस्या के विषय में सुझाव प्रस्तुत करते हुए रॉयल श्रम आयोग ने इस बात को स्वीकार नहीं किया था कि रोजगार दफ्तर बेकारी को दूर कर सकते हैं। उसके मतानुसार ऐसे दफ्तर केवल श्रम की गतिशीलता में ही वृद्धि कर सकते हैं। आयोग के शब्दों में "ऐसे कार्यालय उन क्षेत्रों में जहाँ से श्रमिकों को लिया जाता था भूतकाल में तो कुछ उपयोगी सिद्ध हो सकते थे, परन्तु हमारे विचार में ऐसे समय में उनको स्थापित करना बुद्धिमानी नहीं होगी जबकि अधिकतर श्रमिक कारखाने के फाटक पर ही मिल जाते हैं।" किन्तु इस विचार के होते हुये भी श्रमिक और मालिकों के संघों ने तथा अनेक समितियों ने जैसे सप्रू कमेटी, बिहार व कानपुर की श्रम जाँच समिति और श्रम अनुसंधान समिति आदि—ने रोजगार दफ्तरों की स्थापना के पक्ष में ही अपना मत प्रकट किया।

पिछले युद्ध के दिनों में जब कि सरकार ने तकनीकी कर्मचारियों का अभाव अनुभव किया तब युद्ध की सामग्री बनाने वाले कारखानों और फौज के लिए तकनीकी कारीगरों की पूर्ति करने के लिए श्रम विभाग के अन्तर्गत कारीगरों के तकनीकी प्रशिक्षण के लिए एक योजना बनाई गई। केवल इस प्रशिक्षण के लिऐ १९४३-४४ में ९ रोजगार दफ्तरों की स्थापना की गई। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् सेना से निकले हुए सैनिकों और कारीगरों को काम पर लगाने की समस्या उपस्थित हो गई और यह आवश्यक हो गया कि रोजगार दफ्तरों का विस्तार और समन्वय किया जाये। अतः जुलाई १९४५ में एक पुनः स्थापन तथा रोजगार निदेशालय खोला गया और उसके अन्तर्गत देश में ७० रोजगार दफ्तर स्थापित किये गये। आरम्भ में इन दफ्तरों का कार्य केवल यही था कि सेना से निकले हुए सैनिकों और कारीगरों की सहायता करें और उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करें। परन्तु १९४७ में इस संगठन का क्षेत्र विस्तृत करके इनके अन्तर्गत पाकिस्तान से विस्थापित हुए

2 Britain—An Official Hand Book.

लोगों की सहायता का कार्य भी सम्मिलित कर लिया गया और अप्रैल १९४८ में रोजगार दफ्तरों को उन सभी मनुष्यों के लिए, जिनको रोजगार की आवश्यकता हो, खोल दिया गया।

भारत मे रोजगार दफ्तरो का सगठन

१९४७ मे भारत मे ७० रोजगार दफ्तर थे, परन्तु देश के विभाजन के बाद १७ रोजगार दफ्तर पाकिस्तान के अधिकार मे आ गये। फरवरी १९४८ मे पश्चिमी बगाल मे एक नया दफ्तर खोला गया। देहली के केन्द्रीय रोजगार दफ्तर को क्षेत्रीय रोजगार दफ्तर मे परिणत कर दिया गया। यह विभिन्न क्षेत्रो के लिए परिसूचना गृह (Clearing House) का कार्य भी करता रहा। देहली मे एक केन्द्रीय निरीक्षण कार्यालय भी स्थापित किया गया। अप्रैल १९५० म 'ब' श्रेणी के राज्यो के दफ्तरों को भी केन्द्रीय सगठन के अन्तर्गत ले लिया गया। जनवरी १९५५ मे रोजगार दफ्तरो की सख्या १२८ थी जिनमे ९ क्षेत्रीय दफ्तर, ६४ उप-क्षेत्रीय दफ्तर और ५५ जिला दफ्तर थे। १ नवम्बर १९५६ से रोजगार दफ्तरो और प्रशिक्षण केन्द्रो (Training Centres) का प्रशासन राज्य सरकारो को सौंप दिया गया है। प्रत्येक राज्य म अब प्रशिक्षण तथा रोजगार निदेशालय (Directorate of Training and Employment) बना दिये गये हैं। अब केन्द्रीय सरकार का उत्तरदायित्व केवल नीति-सम्बन्धी कार्य, समन्वय (Coordination) तथा देखभाल और व्यवस्था सम्बन्धी व्यय का ६०% खर्चा वहन करने तक ही सीमित रह गया है। केन्द्रीय नियन्त्रण और समन्वय अब रोजगार तथा प्रशिक्षण महानिदेशालय (Directorate-General of Employment and Training) नई देहली द्वारा होता है। इसके दो मुख्य विभाग हैं—रोजगार तथा प्रशिक्षण। अगस्त १९६० से पहले इसका नाम पुन स्थापन (Resettlement) तथा रोजगार महानिदेशालय था। महानिदेशक के अधीन दो निदेशक है जिनसे नीचे उप तथा सहायक निदेशक है तथा अन्य तकनीकी और गैर तकनीकी कर्मचारी हैं। रोजगार दफ्तरो से सम्बन्धित कुछ रोजगार सूचक ब्यूरो तथा कुछ उप दफ्तर भी है। समुद्री और हवाई कर्मचारियो के लिये विशेष दफ्तर हैं। इसके अतिरिक्त देश के विस्तार को ध्यान मे रखते हुए रोजगार दफ्तरो से दूर रहने वाले लोगो के लिये कुछ चलते-फिरते रोजगार दफ्तरा (Mobile Exchanges) की स्थापना की गई है। यह चलते फिरते दफ्तर बडी मोटरो मे होते है और क्षेत्रीय तथा उपक्षेत्रीय दफ्तरो द्वारा सचालित होते है। रोजगार दफ्तरो की सहायता के हेतु केन्द्र, क्षेत्रो तथा उपक्षेत्रो मे, सरकार, मालिक तथा श्रमिको के प्रतिनिधियो से बनी हुई कुछ सलाहकार समितियाँ भी बनाई गई है। अक्तूबर १९५८ से केन्द्रीय श्रम मन्त्री की अध्यक्षता म एक केन्द्रीय रोजगार समिति भी बनाई गई है। विशेष प्रकार के रोजगार की खोज करने वालो के लिए पृथक् पृथक् विभाग हैं, जैसे विस्थापित व्यक्ति, छटनी मे आये हुए सरकारी कर्मचारी, अधिसूचित जाति के लोग, भूतपूर्व सैनिक,

एंग्लो-इण्डियन प्रार्थी तथा स्त्रियाँ। पदाधिकारियों के मार्ग-प्रदर्शन के लिए "पदाधिकारी-प्रशिक्षण-पत्र" निकाले जाते हैं और उनके लिए कई प्रशिक्षण कार्यक्रम भी लागू किये गए हैं। रोजगार सेवा में अनुसंधान तथा प्रशिक्षण के लिए एक केन्द्रीय संस्था स्थापित की गई है जिसमे विभिन्न राज्यों के रोजगार अफसरों को प्रशिक्षण दिया जाता है। यह संस्था अनेक प्रकार के रोजगार से सम्बन्धित अध्ययन तथा सर्वेक्षण भी करती है। नैमित्तिक श्रमिकों के स्थानीयकरण की योजना में भी रोजगार दफ्तर सहायता व सहयोग देते हैं। १९५८-५९ मे रानीगंज और झरिया की कोयले की खानों के लिए अलग से रोजगार दफ्तरों की स्थापना की गई है। अब कोयले की खानों के लिए ७ रोजगार दफ्तर स्थापित हो चुके हैं। विश्वविद्यालय के छात्रों की सहायता के लिए भी दिल्ली विश्वविद्यालय मे एक रोजगार ब्यूरो की स्थापना की गई थी और अब ऐसे ब्यूरो कई विश्वविद्यालयों मे पाये जाते हैं। जुलाई १९६० से नई दिल्ली मे रोजगार तथा प्रशिक्षण महानिदेशालय के अन्तर्गत एक केन्द्रीय रोजगार दफ्तर स्थापित कर दिया गया है। सरकारी संस्थाओं मे २०० रु० प्रतिमाह से अधिक के जो पद रिक्त होते हैं उनकी सूचना इस केन्द्रीय रोजगार दफ्तर को देना आवश्यक है। मालिक भी अपने रिक्त स्थानों की सूचना इस केन्द्रीय रोजगार दफ्तर के द्वारा दूसरे राज्यों मे भेज सकते है। १९५८ से निदेशालय मे एक विशेष विभाग, केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत रिक्त स्थानों की पूर्ति करने और यदि किसी विभाग मे आवश्यकता से अधिक कर्मचारी हो तो उनको अन्य रोजगारों मे लगा देने का प्रयत्न करने हेतु, खोल दिया गया है। नवम्बर १९५९ से घरेलू नौकरों के लिए भी एक विशेष रोजगार दफ्तर देहली मे स्थापित कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों मे रोजगार के लिए इच्छुक व्यक्तियों की सुविधा के लिए कई रोजगार 'सूचना व सहायता ब्यूरो' खोले गये हैं। अगस्त १९६४ मे, पूर्वी पाकिस्तान से आये विस्थापितों की सहायता के लिए एक केन्द्रीय समन्वय अनुभाग तथा समिति की स्थापना की गई थी। रोजगार दफ्तरों के अन्य कार्य निम्नलिखित हैं—रोजगार विषयक जानकारी एकत्रित करना, विभिन्न प्रायोजनाओं मे से निकले हुए कर्मचारियों को पुनः रोजगार दिलाना, मानव-शक्ति का अध्ययन व सर्वेक्षण करना, व्यावसायिक अनुसन्धान और विश्लेषण करना, जीवनवृत्ति सम्बन्धी पुस्तिकायें व किताबों का प्रकाशन करना, व्यावसायिक पथ निर्देशन करना तथा विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाना, आदि। १९५९ मे एक अधिनियम भी पारित किया गया जो १ मई १९६० से लागू कर दिया गया है। इसको 'रोजगार दफ्तर (रिक्त स्थानों की अनिवार्य सूचना) अधिनियम' [Employment Exchanges (Compulsory Notification of Vacancies) Act] कहते है। इस अधिनियम के अन्तर्गत अब मालिकों के लिए अनिवार्य हो गया है कि वे विशेष रिक्त स्थानों की सूचना रोजगार दफ्तरों को दे और नियमित रूप से अपने कर्मचारियों की संख्या भी समय-समय

पर प्रस्तुत करते रहे। १९६५ के अन्त मे रोजगार दफ्तरो की सख्या ३७६ थी और इनके अतिरिक्त ३६ विश्वविद्यालय रोजगार सूचना व निर्देशन ब्यूरो, ७ खान रोजगार कार्यालय, १० प्रायोजना रोजगार कार्यालय और शरीर से अपग लोगों के लिए ८ विशेष रोजगार दफ्तर थे। दिसम्बर १९६६ के अन्त मे, रोजगार दफ्तरो की सख्या बढकर ३९६ और विश्वविद्यालय ब्यूरो की ३७ हो गई। उत्तर प्रदेश मे, रोजगार दफ्तरो की सख्या ५८ थी। इसके अतिरिक्त, दिसम्बर १९६५ के अन्त मे ग्रामीण क्षेत्रो के लिये २३९ रोजगार सूचना तथा सहायता ब्यूरो भी स्थापित थे।

श्रमिको की प्रशिक्षण व्यवस्था (Training of Workers)

श्रमिको के लिए विभिन्न व्यवसायो का प्रशिक्षण अति आवश्यक है। एक सुप्रशिक्षित एव कुशल श्रमिक वर्ग का निर्माण किये बिना देश मे एक दृढ औद्योगिक आधार का निर्माण नही किया जा सकता। फिर, पचवर्षीय योजनाओ मे बहुविधि औद्योगिक विस्तार की जो व्यवस्था की गई है उसकी दृष्टि से तो इस विचार का और भी महत्व है। ऐसा औद्योगिक विस्तार देश के तीव्र आर्थिक विकास का मूलाधार है। अन्य देशो म सरकार द्वारा प्रशिक्षण के अतिरिक्त मजदूर सघो तथा मालिक सघो आदि के द्वारा भी प्रशिक्षण व्यवस्था है। भारत मे प्रशिक्षण का भार केवल सरकार पर ही पडा है क्योकि मजदूर सघो की ऐसी अवस्था नही है कि वे प्रशिक्षण योजनाओ को नियमित रूप से चला सके। मालिको ने भी केवल कुछ सगठित उद्योग-धन्धो को छोडकर, इस ओर कम ही ध्यान दिया है। भारत मे प्रथम प्रशिक्षण योजना वही थी जो कि द्वितीय युद्ध के समय रोजगार दफ्तरो के द्वारा तकनीकी कारीगरो की पूर्ति के लिये आरम्भ की गई थी। युद्ध की समाप्ति के बाद यह योजना चालू रही और इसके अन्तर्गत भूतपूर्व सैनिको तथा विस्थापितो को विभिन्न कलाओ तथा व्यवसायो का प्रशिक्षण दिया जाता था। १९५० मे इस योजना को समाप्त कर दिया गया और इसके स्थान पर मार्च १९५० मे एक व्यापक योजना, जिसको वयस्क लोगो के प्रशिक्षण की योजना कहा गया, आरम्भ की गई। इस योजना का भी १९५४ मे पुनर्गठन किया गया और अब "शिल्पियो के प्रशिक्षण की योजना" (Craftsmen Training Scheme) के नाम से यह योजना चल रही है। आरम्भ मे इसम दस हजार व्यक्तियो के लिए जगह थी। प्रथम योजना के ये स्थान १०,५३४ हो गय। द्वितीय योजना की अवधि मे २६,००० अतिरिक्त स्थानो की व्यवस्था की जानी थी, बाद मे यह लक्ष्य बढाकर ३०,००० कर दिया गया था। द्वितीय योजना के अन्त मे, १६६ औद्योगिक प्रशिक्षण सस्थाएँ थी जिनमे ४२,६८५ व्यक्तियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था थी। तृतीय पचवर्षीय आयोजना मे १५६ और सस्थायें स्थापित करने का कार्यक्रम बनाया गया है और ५८ हजार और व्यक्तियो के लिये प्रशिक्षण की व्यवस्था कर दी जायेगी। इस प्रकार एक लाख शिल्पियो के प्रशिक्षण की व्यवस्था हो जायेगी तथा प्रशिक्षण सस्थाओ की सख्या ३२२ हो जायेगी। तृतीय योजना के

अन्त में, इन स्थानों की संख्या १,१६,५७० हो गई। चौथी योजना में यह संख्या २,१३,००० करने का प्रस्ताव है। इस योजना के अन्तर्गत, प्रवेश सभी के लिए खुला है और १६ से २५ वर्ष तक की आयु के लोगों को ३० इंजीनियरिंग तथा २२ गैर-इंजीनियरिंग व्यवसायों में निःशुल्क प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके पाठ्य-विषय को उद्योग-धंधों की आवश्यकताओं के अनुसार बनाया गया है और जो व्यक्ति प्रशिक्षण समाप्त कर लेते है, उनको एक शिल्पी प्रमाणपत्र दे दिया जाता है। इस प्रमाणपत्र को अनेक राज्य सरकारों ने मान्यता प्रदान की है। एक *"राष्ट्रीय व्यवसाय प्रमाणपत्र बोर्ड"* की भी स्थापना की गई है जो परीक्षाओं का संचालन करता है और डिप्लोमा प्रदान करता है। तकनीकी व्यवसायों में प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण की अवधि एक वर्ष है। इस योजना का उद्देश्य यही है कि उद्योग-धन्धों के लिये निपुण कारीगर मिलते रहें और शिक्षित लोगों में बेकारी कम हो तथा उत्पादन की मात्रा व गुण में वृद्धि हो। मई १९५७ में प्रशिक्षण नीति-निर्धारण में परामर्श देने के लिये तथा स्तरों में एकता लाने के लिए एक व्यावसायिक प्रशिक्षण सम्बन्धी राष्ट्रीय परिषद् की स्थापना की गई।

दूसरी पंचवर्षीय आयोजना काल में कुछ अन्य योजनायें भी चालू की गईं। एक तो शिक्षुता प्रशिक्षण योजना (Apprenticeship Training Scheme) है जिसके अन्तर्गत ७,०५० व्यक्तियों को प्रशिक्षण देने का कार्यक्रम था। दूसरी योजना श्रमिकों के लिए सन्ध्या कक्षाओं के केन्द्र खोलने की थी (Evening Classes for Industrial Workers), जिसके अन्तर्गत ३,०५० व्यक्तियों को शिक्षा देने का कार्यक्रम था। तीसरी पंचवर्षीय आयोजना में शिक्षुता प्रशिक्षण योजना के लिये १४,००० स्थान और सन्ध्या कक्षा योजना के लिये १५,००० स्थान बनाने का कार्यक्रम है। शिक्षुता प्रशिक्षण योजना को अनिवार्य रूप दिया जा रहा है और इस हेतु १९६१ में शिक्षुता अधिनियम (*Apprenticeship Act*) पारित किया गया जिसको मार्च १९६२ से लागू कर दिया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत शिक्षार्थियों के लिये कार्य व रोजगार की दशाओं, प्रशिक्षण अवधि, शिक्षुता संविदा, प्रशिक्षण कार्यक्रम आदि को निर्धारित करने तथा उनको दिये हुए स्तर पर लाने के लिए उपबन्ध हैं। सरकार को इस बात की सलाह देने के लिये कि किन व्यवसायों में प्रशिक्षण दिया जाय, एक केन्द्रीय शिक्षुता परिषद् (Apprenticeship Council) बनाई गई है। तृतीय योजना के अन्त में, औद्योगिक संस्थानों में २६,००० शिक्षार्थी प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे। यह प्रस्ताव था कि चौथी योजना की अवधि में इस शिक्षुता-कार्यक्रम का विस्तार अन्य उद्योगों में भी किया जाए और शिक्षार्थियों की संख्या में तिगुनी वृद्धि की जाए। शिक्षित बेरोजगारों को व्यावसायिक प्रबन्ध, सामुदायिक संगठन तथा सहकारिता आदि का प्रशिक्षण देने की भी एक योजना बनाई गई जिसके लिए

अनेक स्थानों पर शिक्षित बेरोजगारो के लिए काय व अनुस्थापन कन्द्र (Work and Orientation Centres) खोले गये। जनवरी १९६२ मे ऐसे केन्द्रो की सख्या १४ थी, परन्तु १ फरवरी १९६२ से यह योजना समाप्त कर दी गई और इस योजना के ११२४ प्रशिक्षण स्थान (Seats) शिल्पी प्रशिक्षण योजना मे मिला दिय गये। दिसम्बर १९६६ मे ३५४ शिल्पी प्रशिक्षण सस्थाएँ (Craftsmen Training Institutes) थी, १ ३०,२९१ व्यक्ति (३८७६ पुरूष और ६३४ स्त्रियाँ गैर इजीनियरिंग व्यवसायो मे तथा १,२५,७५१ व्यक्ति इजीनियरिंग व्यवसायो म) प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे। औद्योगिक श्रमिको के लिए अशकालिक कक्षाओं (part time classes) का आयोजन करने वाले केन्द्रो की सख्या ३४ थी जिनम २९६५ श्रमिको को शिक्षा दी जा रही थी।

इसके अतिरिक्त 'प्रशिक्षको' के प्रशिक्षण हेतु कई केन्द्रीय सस्थाय (Central Training Institutes for Training Instructors) हैं। पहली सस्था की स्थापना १९४८ मे मध्य प्रदेश मे कोनी बिलासपुर मे हुई थी। इसम २५८ व्यक्तियो को प्रशिक्षण देने का स्थान था। एक और सस्था १९५८ म इसी उद्देश्य से पूना के पास औंध मे स्थापित की गई जिसमे १४४ व्यक्तियो को प्रशिक्षण दने का स्थान था। माच १९६१ क अन्त तक इन सस्थाओ न ३८,०९९ प्रशिक्षको तथा पयवेक्षको को पूर्ण प्रशिक्षण प्रदान किया। कोनी-बिलासपुर की सस्था को १९६१ मे कलकत्ता म और औंध की सस्था को १९६२ म बम्बइ म स्थापित कर दिया गया। जनवरी १९६१ मे कानपुर म भी एक सस्था स्थापित कर दी गई है जिसम १५२ प्रशिक्षको को प्रशिक्षण दिया जायगा। द्वितीय पचवर्षीय आयाजना के अन्त तक इन ३ सस्थाओ की प्रशिक्षण क्षमता ५१२ व्यक्तियो की थी। तीसरी पचवर्षीय आयोजना क अन्त तक यह क्षमता ९७६ तक बढान का कायक्रम है तथा ७,८०० अन्य प्रशिक्षको को प्रशिक्षण दने का कायक्रम है। तृतीय योजना के अन्त म, कलकत्ता, बम्बई, कानपुर, मद्रास, हैदराबाद लुधियाना तथा नई दिल्ली म प्रशिक्षको को ट्रनिग दने की ७ केन्द्रीय सस्थाय थी जिनमे २३८० जगह थी। चौथी योजना म यह प्रस्ताव है कि इनकी प्रशिक्षण क्षमता ३ १०० तक बढा दी जाए और ९ ००० और प्रशिक्षको को ट्रनिग दी जाय। माच १९६६ के अ त तक इनमे ११२०४ प्रशिक्षको (instructors) ने ट्रनिग प्राप्त की। इलाहाबाद म दिसम्बर १९५४ मे एक शगल केन्द्र (Hobby Centre) भी खोला गया जिसका उद्दश्य यह है कि विद्यार्थियो को शारीरिक श्रम की महत्ता का ज्ञान कराया जाय और उनम तक्नीकी तथा व्यावसायिक विषयो के प्रति रुचि उत्पन्न की जाय। इस केन्द्र मे १९५९ म ११२ विद्यार्थी प्रशिक्षण पा रहे थे। इसके अतिरिक्त अनेक राज्या ने और रेलवे विभाग ने भी प्रशिक्षण केन्द्र तथा औद्योगिक विद्यालय खोल रखे हैं। नई दिल्ली मे स्त्रियो के लिए १९५५-५६ से एक औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र की भी स्थापना की गई है। इसमे महिलाओ को कटाई, सिलाई, कढाई और

बुनाई के कार्यो मे प्रशिक्षण दिया जाता है। गोदी कर्मचारियो तथा नाविको के लिये भी प्रशिक्षण योजनायें है। कुछ औद्योगिक संस्थानो मे पर्यवेक्षको (supervisors) के *प्रशिक्षण के लिये भी अग्रगामी योजनायें (pilot programmes)* चालू की गई है। सामुदायिक विकास तथा सहकारिता मन्त्रालय ने ग्रामीण कारीगरो को उनके व्यवसाय की ट्रेनिंग देने के लिए सामूहिक प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किये गये। अब इनको ग्रामीण प्रशिक्षण सस्थाओं के रूप मे पुनर्गठित करने का विचार किया जा रहा है।

राष्ट्रीय रोजगार सेवा के विषय मे शिवाराव समिति की रिपोर्ट

आयोजना आयोग के सुझाव पर सरकार ने नवम्बर १६५२ मे श्री बी० शिवाराव के सभापतित्व मे एक प्रशिक्षण तथा रोजगार सेवा सगठन समिति की नियुक्ति की जिसमे ७ सदस्य थे जिनमे श्रमिको तथा मालिको के प्रतिनिधि भी थे। इसका कार्य रोजगार दफ्तरों के सगठन, पद्धति व कार्य आदि की जाँच करना तथा उनमे उपयुक्त परिवर्तनो मे विषय मे सुझाव देना था। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट २८ अप्रैल १६५४ को सरकार के सम्मुख प्रस्तुत की।

इस समिति ने यह सुझाव दिया कि रोजगार दफ्तरों का उपयुक्त नाम "राष्ट्रीय रोजगार सेवा" होना चाहिये और सिफारिश की कि इन दफ्तरो को स्थायी सस्था का रूप दे देना चाहिये। इस समिति ने ऐसी सरकारी तथा अर्द्ध-सरकारी नौकरियों की सख्या और बढा दी है, जो कि अनिवार्य रूप से रोजगार दफ्तरो द्वारा ही भरी जानी चाहियें, परन्तु यह समिति वर्तमान परिस्थितियो को देखते हुए *इस बात के पक्ष मे नही थी कि रोजगार दफ्तरो द्वारा ही अनिवार्य रूप* से भर्ती की जाये। परन्तु निजी मालिको के लिये यह अनिवार्य कर देने की सिफारिश थी कि वे सभी रिक्त स्थानो की सूचना इस दफ्तर को दें, किन्तु यह बात अस्थायी नौकरियों तथा अनिपुण श्रमिको की भर्ती के लिये लागू नही की गई।

इस रिपोर्ट का एक अन्य मुख्य सुझाव यह था कि इन दफ्तरो का दैनिक प्रशासन राज्यो को सौंप दिया जाये और केवल नीति-निर्धारण, स्तर-निर्धारण और दफ्तरो के समन्वय तथा उनके कार्य की देख-रेख का उत्तरदायित्व केन्द्रीय सरकार पर रहे। नये दफ्तर खोलने अथवा किसी दफ्तर को बन्द करने के लिये भी केन्द्रीय सरकार की पूर्वानुमति अवश्य ली जाये। इन दफ्तरो के खर्च का ६०% भार केन्द्रीय सरकार पर होगा।

रिपोर्ट मे एक अन्य महत्वपूर्ण सिफारिश यह भी थी कि श्रमिक अपने को रोजगार दफ्तरो मे स्वेच्छा से रजिस्टर कराने के लिए स्वतन्त्र हों। मालिकों और रोजगार ढूंढने वालों से रोजगार दफ्तर कोई शुल्क न ले। समिति ने रोजगार दफ्तर के कार्यों को अधिक विस्तृत करने का सुझाव दिया था। उदाहरणत' रोजगार विषयक जानकारी एकत्रित करना, रोजगार के लिये परामर्श देना तथा

व्यावसायिक अनुसधान, विश्लेषण और परीक्षण करना आदि। इस रिपोर्ट मे रोजगार दफ्तरो के सगठन की व्यापक ऐतिहासिक विवेचना, अब तक के किये गये कार्यों की रिपोर्ट तथा इस सगठन के प्रशासन के विषय मे सुझाव और कार्य करने की प्रणाली तथा पद्धति की विवेचना भी सम्मिलित है। इस रिपोर्ट मे पुन स्थापन सस्था द्वारा चलाई गई शिल्पियो और प्रशिक्षको के लिए विभिन्न तकनीकी तथा व्यवसायात्मक प्रशिक्षण योजनाओ का भी अवलोकन किया गया है और इनके सम्बन्ध मे अपनी सिफारिशें भी प्रस्तुत की हैं।

इन सिफारिशो को आधार मानकर द्वितीय पचवर्षीय आयोजना मे रोजगार दफ्तरो के पुनर्गठन के लिये अनेक सुझाव उपस्थित किए गये थे, जिनको अब लागू भी कर दिया गया है। जनता मे राष्ट्रीय रोजगार सेवा की कार्य-विधि पर काफी असन्तोष रहा है। यद्यपि इनकी आवश्यकता तथा महत्व के बारे मे कोई आपत्ति नही उठा सकता, परन्तु इन पर व्यय होने वाली धनराशि को दृष्टि मे रखते हुए यही कहा गया कि इनसे अधिक लाभ नही हुआ था। इसलिए इस विषय मे जाँच करना अति आवश्यक था और आयोजना आयोग ने भी इसकी सिफारिश की थी।

यहाँ यह भी उल्लेख करना अनुचित न होगा कि कुछ लोगो का विचार है कि रोजगार दफ्तरो के नियन्त्रण का विकेन्द्रीकरण करना अधिक लाभदायक सिद्ध न हो क्योंकि इससे राज्य सरकारो का दृष्टिकोण बहुत सकुचित हो जाने का भय है और हो सकता है कि वे अपनी प्रायोजनाओ म कार्य करने वाले श्रमिको को अन्य राज्यो स न बुलाय। इस प्रकार श्रम की गतिशीलता पर बुरा प्रभाव पडेगा जबकि रोजगार दफ्तरो से यह आशा की जाती है कि वह इस गतिशीलता म वृद्धि करेगे। शिवाराव समिति न यह भी कहा था कि रोजगार दफ्तरो के लिये यह अनिवार्य नही होना चाहिये कि वे अनिपुण श्रमिको को भी रजिस्टर करें। इस सुझाव का कारण सम्भवत यह प्रतीत होता है कि ऐसा करने से रोजगार दफ्तरो का कार्य बढ जायगा और कार्य सुचारु रूप से नही चल सकेगा। परन्तु हम इस सुझाव से सहमत नहीं हैं क्योंकि बिना अनिपुण श्रमिको को रजिस्टर किये देश की मानव-शक्ति का ठीक अनुमान नही लगाया जा सकता।

राष्ट्रीय रोजगार सेवा के कार्यों का मूल्याकन

बहुधा ऐसा देखा गया है कि रोजगार दफ्तर अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए अपने कर्मचारियो को कारखानो के फाटको पर भेज देते हैं और वे वहीं पर भर्ती किये गये श्रमिको को रजिस्टर कर लेते हैं और फिर अपने आकडो म यह दिखा देते हैं कि दफ्तर ने इतने अधिक श्रमिको को कार्य पर लगाया है। बहुधा ऐसा भी देखा गया है कि अनेक मालिक तथा सरकारी पदाधिकारी भी किसी विशेष व्यक्ति की या तो पूर्व नियुक्ति कर देते है या नियुक्त करने का निश्चय कर लेते हैं और तब उसे अपने को रोजगार दफ्तर मे रजिस्टर कराने को कह देते हैं। यह सब

बातें अनुचित हैं क्योंकि इनसे रोजगार दफ्तरों का वास्तविक उद्देश्य, अर्थात् उपयुक्त स्थानों पर उपयुक्त श्रमिकों की पूर्ति करना—पूरा नहीं होता और भर्ती की बुराइयाँ दूर नहीं होती। रोजगार दफ्तरों को श्रमिकों को नौकरी दिलाने में पूर्ण तटस्थता दिखानी चाहिये, और अनुचित पक्षपात नहीं करना चाहिये। इसके अतिरिक्त यदि रोजगार दफ्तर वास्तव में लाभप्रद सिद्ध होना चाहते है तो उनको केवल काम ढूंढने वालों का और नौकरियों का रजिस्टर बना लेने से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिये वरन् उनको श्रमिकों को सलाहाकार के रूप में उन्हें श्रम के बाजार की स्थिति का ज्ञान कराने का उत्तरदायित्व भी लेना चाहिये। उन्हें श्रमिकों को बताना चाहिये कि किन क्षेत्रों मे व्यवसाय घट रहे है अथवा बढ रहे है। इसके अतिरिक्त उनको बढते हुए व्यवसायों में श्रमिकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिये; जिससे पुराने कार्य को छोड़कर नये कार्य लेने में श्रमिकों को बाधा न पड़े। रोजगार दफ्तरों के इस प्रशिक्षण तथा मार्ग-प्रदर्शन की सेवाओं का लाभप्रद उपयोग उस समय हो सकता है जबकि किसी भी उद्योग-धन्धे मे विवेकीकरण (Rationalization) किया जाय। यदि विवेकीकरण की योजना के परिणामस्वरूप किसी विशेष उद्योग-धन्धे मे कुछ मजदूर नौकरी से अलग कर दिये जाते हैं तो रोजगार दफ्तरों का यह कर्तव्य है कि वे उनको दूसरी नौकरियाँ दिलाने मे या उन नौकरियों के लिए आवश्यक प्रशिक्षण देने मे सहायक सिद्ध हो। प्रशिक्षण काल मे अपने पूर्व मालिकों से इन श्रमिकों को वेतन मिलता रहना चाहिये।

रोजगार दफ्तर एक अन्य दिशा मे भी अपनी सेवा का विस्तार कर सकते है। कभी-कभी श्रमिकों के पास इतना पैसा नहीं होता कि वे दूरस्थ स्थानो पर नौकरी करने के लिए जा सके या ऐसी नौकरियो के लिए आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें। ऐसी अवस्था मे रोजगार दफ्तर आर्थिक रूप से उनको कुछ सहायता कर सकते हैं। जो भी रुपया इस प्रकार दिया जाये वह बाद मे किश्तो मे वापिस लिया जा सकता है।

इन साधारण रोजगार दफ्तरों के अतिरिक्त कुछ विशेष रोजगार दफ्तर भी खोले जाने चाहिये जिनसे विशेष प्रकार के मजदूर भी लाभ उठा सकें, जैसे—नाविक, गोदी श्रमिक, घरेलू नौकर, बागान तथा खानो मे काम करने वाले श्रमिक आदि। इन विशेष प्रकार की सस्थाओं की आवश्यकता इसलिए है कि इन उद्योगो की अपनी अलग विशेषतायें हैं, उदाहरणार्थ: नाविक एक बार मे केवल निश्चित समय तक के लिये ही नौकर रखे जाते है और समुद्री यात्रा समाप्त होते ही उनका नौकरी का सिलसिला टूट जाता है। अतएव एक जहाज पर जितनी बार भी किसी नाविक की नौकरी की अवधि समाप्त होती है, उतनी ही बार उसे रोजगार दफ्तर की सहायता की आवश्यकता होती है। गोदी श्रमिकों की नौकरी आकस्मिक होती है, अत: श्रमिक की भलाई और उद्योग की कार्यकुशलता के लिए स्थायीकरण योजना का लागू होना आवश्यक है। स्थायीकरण (De-casualisation) का तात्पर्य

है भर्ती को नियमित बनाना और रोजगार दफ्तरो के द्वारा नौकरी दिलाना। इसी प्रकार से कोयले की खानो मे रोजगार ढूंढने वाले मजदूरो तथा उन कोयले की खानो मे जिनको मजदूरों की आवश्यकता होती है, उनके मध्य रोजगार दफ्तर एक कडी का काम करते हैं। कृषि से सम्बन्धित कोयले की खानो मे रोजगार मे जो मौसमी उतार चढाव होते हैं ये रोजगार दफ्तर उन्हे दूर करते है और इससे भर्ती करने की वर्तमान महँगी प्रणाली भी समाप्त हो जाती है। इन दिशाओ मे कार्य आरम्भ हो चुका है, परन्तु इन कार्यों का और विस्तार किये जाने की आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय रोजगार सेवा को सफल बनाने के लिए मालिको का सहयोग अति आवश्यक है। उनको चाहिये कि वे बराबर रिक्त स्थानों की सूचना रोजगार दफ्तरो को देते रहे और उनकी पूर्ति भी उन्ही के द्वारा करवायें। दुर्भाग्यवश मालिको से इस प्रकार का सहयोग अभी तक प्राप्त नही हो सका है और यदि वे इसी प्रकार रोजगार दफ्तरो से अलग रहकर भर्ती करते रहे तो रोजगार दफ्तर अपना कार्य सफलतापूर्वक न कर सकेंगे। अब वह समय आ गया है जबकि मालिको के लिए रोजगार दफ्तरो को प्रयोग मे लाना अनिवार्य हो जाना चाहिये। यदि कुछ मालिक इस विचार को नापसन्द करते है तो केवल अपनी अज्ञानता तथा सन्देह प्रवृत्ति के कारण ही। यह हर्ष का विषय है कि मालिको का एक प्रभावशाली दल इस अनिवार्यता के पक्ष मे है, उदाहरणत अहमदाबाद मिल मालिक सगठन ने कपडा मिल-मजदूर खोज समिति १९३८-४० के सम्मुख यह प्रस्ताव रक्खा था कि श्रमिको की भर्ती रोजगार दफ्तरो द्वारा अनिवार्य होनी चाहिए। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि सोवियत रूस मे इन रोजगार दफ्तरो द्वारा भर्ती अनिवार्य है।

इस सम्बन्ध मे हम डॉ० राधाकमल मुकर्जी के मत से सहमत है कि अब जब कि रोजगार दफ्तर प्रारम्भिक अवस्था पार कर चुके हैं, इनका सगठन एक राष्ट्रीय आधार पर होना चाहिए। भारतीय सरकार को एक रोजगार दफ्तर अधिनियम बनाना चाहिए जिससे श्रम मत्रालय के अन्तर्गत पूरे देश भर मे रोजगार दफ्तरो का एक सुसगठित जाल सा बिछ सके। योरप और अमरीका के अनेक देशो मे रोजगार दफ्तर सम्बन्धी व्यापक कानून बनाये गये हैं और इसके फलस्वरूप उन देशो मे रोजगार दफ्तर काफी सीमा तक उन्नति कर गये है। कोई कारण नही प्रतीत होता कि भारत मे भी हम ऐसे कानून क्यो न बनायें। २०,००० से अधिक आबादी वाले प्रत्येक नगर मे एक रोजगार दफ्तर होना चाहिये। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष उद्योगो और क्षेत्रो मे मालिको के लिए रोजगार दफ्तरो के द्वारा ही भर्ती अनिवार्य कर दी जानी चाहिए। रोजगार ढूंढने वालो के लिए भी यह अनिवार्य होना चाहिये कि वे रोजगार दफ्तरो मे अपने को रजिस्टर करवायें। भारत सरकार तथा अनेक राज्य सरकारो ने ऐसी आज्ञायें घोषित कर रक्खी हैं कि सरकारी नौकरियो के रिक्त होने की सूचना रोजगार कार्यालयो को दी जाये और

उनकी पूर्ति भी उन्ही के द्वारा हो। इस सम्बन्ध मे, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, १९५९ में रोजगार दफ्तर (रिक्त स्थानो की अनिवार्य सूचना) अधिनियम के अन्तर्गत मालिको के लिये अपने कर्मचारियों की संख्या समय-समय पर बताना और रिक्त स्थानो की सूचना रोजगार दफ्तरों को देना अनिवार्य कर दिया गया गया है। यह अधिनियम १ मई १९६० से लागू हो गया है।

यह भी उल्लेखनीय है कि प्रथम पंचवर्षीय आयोजना मे आयोजना आयोग ने मानव-शक्ति का पूर्ण प्रयोग करने मे रोजगार दफ्तरों के महत्व पर काफी बल दिया था। इसके लिये श्रम-शक्ति सम्बन्धी आँकड़े एकत्रित करना, विभिन्न प्रकार के श्रम की माग का पूर्ण ज्ञान होना और श्रमिकों को उचित प्रशिक्षण देना अति आवश्यक है। रोजगार दफ्तरो के सगठन तथा कार्य-विधि की जाँच करने की सिफारिश की गई थी, जिसके परिणामस्वरूप शिवाराव समिति की नियुक्ति हुई थी। उसकी सिफारिशो के अनुसार भारत सरकार ने रोजगार दफ्तरो का प्रशासन १ नवम्बर १९५६ से राज्य सरकारो को दे दिया है। द्वितीय पचवर्षीय आयोजना मे रोजगार दफ्तरों को अधिक लाभदायक बनाने के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये गये थे —

(१) रोजगार दफ्तरो की सख्या मे वृद्धि—आयोजना काल मे १२० नये रोजगार दफ्तर खोले जाने की व्यवस्था थी और इस प्रकार १९५६ मे इनकी सख्या १३६ से बढ़ाकर १९६१ मे २५६ करने का कार्यक्रम था। (२) रोजगार-विषयक अधिक से अधिक जानकारी एकत्रित करना। (३) युवक व्यक्तियो को सलाह देने के लिये एक युवक रोजगार कार्यालय की स्थापना करना। (४) रोजगार दफ्तरों मे नौकरी खोजने वालो को सूचना देने तथा उनके मार्ग-प्रदर्शन के लिये एक 'रोजगार सलाह कार्यालय' की स्थापना तथा उसके द्वारा जीवन वृत्ति के लिये पुस्तको तथा अन्य साहित्य का प्रकाशन करना। (५) व्यवसाय सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दो का समानीकरण करने के लिये एक व्यापक व्यावसायिक शब्द-कोष बनाने के लिये व्यवसाय सम्बन्धी अनुसधान तथा विश्लेषण करना। (६) रोजगार दफ्तरों मे नौकरी खोजने वालो के लिये व्यवसाय सम्बन्धी परीक्षाओं का प्रबन्ध करना।

प्रशिक्षण के सम्बन्ध मे द्वितीय पचवर्षीय आयोजना में निम्नलिखित सुझाव थे—(१) शिल्पियों की वर्तमान प्रशिक्षण योजनाओं मे वृद्धि तथा विस्तार करना। (२) शिल्पियों की एक नियमित रूप से शिक्षुता प्रशिक्षण योजना का चालू करना। (३) मध्य प्रदेश मे कोनी बिलासपुर मे, जो प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये एक केन्द्रीय सस्था थी, उसकी उन्नति और विस्तार करना तथा एक ऐसी ही सस्था की और स्थापना करना।

तृतीय पचवर्षीय आयोजना मे १०० अतिरिक्त रोजगार दफ्तर खोलने का कार्यक्रम है और यह उद्देश्य बनाया गया है कि प्रत्येक जिले मे कम से कम १

रोजगार दफ्तर हो जाय। रोजगार दफ्तरो के कार्यों को विस्तृत करने का भी कार्यक्रम है, विशेषकर रोजगार स्थिति सूचना, ग्रामीण-रोजगार दफ्तर, नवयुवक रोजगार सेवा और परामर्श सम्बन्धी कार्य आदि। प्रशिक्षण के सम्बन्ध मे जो तृतीय पचवर्षीय आयोजना मे कार्यक्रम हैं उनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। चौथी योजना की रूपरेखा मे इन सुविधाओ के और विस्तार का प्रस्ताव है।

इनमे से अधिकतर सुझाव कार्यान्वित हो चुके है व कुछ कार्यान्वित किये जा रहे है और रोजगार दफ्तरों के कार्यों को विस्तृत कर दिया गया है। दिसम्बर १९६६ मे ३९६ रोजगार दफ्तर थे। ३२७६३० प्रार्थी पजीकृत किये गये और ४५५२६१ व्यक्तियों को रोजगार दिलाया गया। २६२२४६० प्रार्थी रोजगार दफ्तर के चालू रजिस्टर मे शेष थे। विश्वविद्यालय रोजगार ब्यूरो की सख्या ३७ थी। उत्तर प्रदेश मे ५८ रोजगार दफ्तर थे। रोजगार दफ्तरो पर लगभग ३७ ६६ लाख रुपया वार्षिक व्यय होता है। रोजगार विषयक जानकारी एकत्रित करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ के एक विशेषज्ञ की देखभाल मे १९५६ मे देहली मे एक अग्रगामी योजना प्रारम्भ हुई जिसके अनुभव के आधार पर यह योजना अन्य राज्यो मे भी लागू कर दी गई है। इसे कार्यान्वित करने के लिये अनेक पदाधिकारियो को प्रशिक्षण दिया जा चुका है। रोजगार विषयक जानकारी कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य यह था कि श्रमिको के रुख, सगठन, व रोजगार के सम्बन्ध मे तथा पेशो के बदलते रूप प्रारूप के सम्बन्ध मे लगातार आँकडे एकत्र किये जायें और विभिन्न प्रकार के कर्मचारियो की प्रकृति तथा उनकी कमी का पता लगाया जाए। सरकारी, अर्द्ध-सरकारी तथा स्थानीय निकायो के सभी सस्थानो से तथा गैर-सरकारी क्षेत्र मे २५ अथवा अधिक व्यक्तियो को काम पर लगाने वाले सभी बडे सस्थानो से त्रैमासिक सूचनाएँ एकत्रित की जा रही है। निजी क्षेत्रो मे ५२ रोजगार क्षत्रो मे जानकारी १ जनवरी १९६० से एकत्रित की जाने लगी है। सितम्बर १९६५ के अन्त तक रोजगार विषयक अध्ययन विभिन्न राज्यो के ३०२ क्षेत्रो मे आरम्भ किये जा चुके थे। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ के अन्तर्गत १९५७ मे नई दिल्ली मे "रोजगार विषयक जानकारी" और व्यावसायिक मार्ग प्रदर्शन और रोजगार परामर्श पर "एशियाई क्षेत्रीय प्रशिक्षण कोर्स' आरम्भ हुआ जिसमे एशिया के अनेक देशो ने भाग लिया, जिनमे भारतवर्ष भी था। अक्तूबर १९६४ मे, 'रोजगार जानकारी तथा मानव-शक्ति के उपयोग' विषय पर एक विचार-गोष्ठी का आयोजन किया गया। युवको को रोजगार सम्बन्धी सलाह देने की योजना भी शुरू हो गई है और ऐसे ६२ केन्द्र खोले जा चुके है और तृतीय आयोजना मे १०० ऐसे और केन्द्र खोले जाने का कार्यक्रम है। १९६१ तक ९२ जीवनवृत्ति (Career) पुस्तिकायें अग्रजी मे और ७५ हिन्दी मे प्रकाशित हो चुकी थी। तीसरी पचवर्षीय आयोजना अवधि मे १०० जीवनवृत्ति पुस्तिकायें प्रकाशित करने का कार्यक्रम है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ के एक विशेषज्ञ की देखभाल मे १३ वर्गों की व्यवसायिक परिभाषायें बन चकी है और अन्य १० वर्गों

पर खोज रही है। देश मे मिलने वाले प्रशिक्षण के सम्बन्ध में अनेक पुस्तिकायें छापी जा चुकी है। रोजगार दफ्तरो में रजिस्टर्ड व्यक्तियो की व्यावसायिक योग्यता जाँचने के लिये एक और योजना भी चालू की गई है जिसे 'व्यावसायिक विशेष वर्णन और समालाप' [Occupational Specification and Interview Aids (O S I A)] का नाम दिया गया है। मानव-शक्ति अध्ययन और रोजगार दफ्तरो के लिए एक कार्य-समिति भी बनाई गई है। एक केन्द्रीय रोजगार समिति की भी स्थापना हुई है जिनमे राज्य सरकारो, मालिको, श्रमिको और संसद् के प्रतिनिधि है। रोजगार दफ्तरो को इस बात का भी विशेष उत्तरदायित्व सौंप दिया गया है कि वे शारीरिक रूप मे असमर्थ व्यक्तियों को काम दिलाने मे सहायता करे और उन्हे ऐसा रोजगार दिलायें जहाँ इनकी असमर्थता से बाधा न पहुँचे। इसके लिए ८ विशेष रोजगार दफ्तर खोले गये है। सामुदायिक विकास खण्डो मे भी रोजगार सूचना तथा सहायता ब्यूरो विशेष-विशेष स्थानो पर स्थापित कर दिये गये है। ये ब्यूरो सूचना एकत्रित करके रोजगार दफ्तरों और ग्रामीण नौकरी खोजने वालो के मध्य एक कडी का कार्य करते हैं। दिसम्बर १९६५ के अन्त मे इनकी सख्या २३६ थी। राष्ट्रीय प्रायोजनाओ (Projects) मे भी ६ रोजगार दफ्तर इस उद्देश्य हेतु स्थापित कर दिये गये हैं कि कार्य की समाप्ति पर श्रमिकों को अन्य स्थानों पर रोजगार दिला सके तथा इन रोजगार दफ्तरो के द्वारा प्रशिक्षित व्यक्ति भी प्राप्त हो सकें। कोयले की खानो मे भी ७ विशेष रोजगार दफ्तर स्थापित कर दिये गये है।

इन सब बातो से स्पष्ट है कि अनेक प्रारम्भिक कठिनाइयाँ होने पर भी हमारे देश मे रोजगार दफ्तरो ने कम सफलता प्राप्त नही की है। यदि मालिक थोडा और सहयोग देने लगें और श्रमिक रोजगार दफ्तरों के कार्य तथा लाभों के विषय में और अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकें तथा पचवर्षीय प्रायोजनाओ के सुझावों को पूर्णतया लागू कर दिया जाय और यदि अधिकारी-वर्ग अधिक सहानुभूति और ईमानदारी से कार्य करे तो हमारे रोजगार दफ्तरो का भविष्य और भी अधिक उज्ज्वल होने की सम्भावना है। अन्त मे हम पडित नेहरू के उन शब्दो को दुहरा सकते है जो उन्होने सितम्बर १९४९ मे हुए रोजगार सगठन के चौथे वार्षिकोत्सव के अध्यक्ष पद से कहे थे, "जिस समय तक समाज का वर्तमान ढाँचा अस्तित्व रखता है, जब तक इसके स्थान पर एक ऐसा ढाँचा नही खडा हो जाता जिसमे प्रशिक्षण और रोजगार नागरिको के लिए स्वाभाविक रूप से सुरक्षित हो जाये उस समय तक रोजगार की सेवाओं का रहना श्रम की माँग तथा पूर्ति मे सन्तुलन स्थापित करने के लिये आवश्यक है।……इसलिए इस सस्था को पूर्णरूप से समाप्त करना गलत और अनुचित होगा।"

४

अनुपस्थिति, श्रमिकावर्त तथा वेतन सहित छुट्टियाँ

ABSENTEEISM, LABOUR TURN OVER AND HOLIDAYS WITH PAY

किसी भी संगठित उद्योग की सफलता श्रमिको की कार्यकुशलता और अनुभव पर निर्भर है। अत किसी उद्योग में श्रमिको की अनुपस्थिति और श्रमिकावर्त जितना भी कम हो सके उतना ही वह उस उद्योग की सफलता के लिए लाभदायक है। परन्तु अधिक समय तक न तो इन शब्दो को उचित परिभाषा ही की गई और न स्पष्ट रूप से इनको समझा ही गया। बहुत कम ऐसी औद्योगिक संस्थायें थीं जिनमे अनुपस्थिति और श्रमिकावर्त के आकडो को एकत्रित करने का प्रयत्न किया गया। ये आकडे भी अधिक विश्वसनीय न थे। पिछले कुछ वर्षों से ही इन आकडो को एकत्रित करने की ओर कुछ ध्यान दिया गया है।

अनुपस्थिति
(Absenteeism)

परिभाषा

अनुपस्थिति शब्द की उचित परिभाषा सबसे पहले भारत सरकार के श्रमिक विभाग के एक परिपत्र द्वारा की गई जिसके अनुसार काम पर आने वाले कुल निर्धारित श्रमिको मे से जितने प्रतिशत श्रमिक काम से अनुपस्थित रहते है उस अनुपात को ही श्रमिको की अनुपस्थिति दर कहा जा सकता है। इस प्रकार यह दर ज्ञात करने के लिए हमे काम पर आने वाले निर्धारित (Scheduled) श्रमिको की संख्या तथा वास्तव मे उपस्थित श्रमिको की संख्या मालूम होनी चाहिये। एक श्रमिक जो किसी पारी के एक भी अश मे उपस्थित हो उसे उपस्थित ही मानना चाहिये। एक श्रमिक तब ही काम करने के लिय निर्धारित समझा जायगा जब मालिक के पास श्रमिक के लिए कार्य विद्यमान हो और श्रमिक भी उससे अवगत हो, तथा जब मालिक को काफी पहले से ही यह ज्ञात न हो कि श्रमिक निर्धारित समय पर उपस्थित न हो सकेगा। निम्नलिखित उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी। एक ऐसा श्रमिक जो नियमित निश्चित छुट्टी पर है उसको न तो काम

पर आने वाला निर्धारित श्रमिक समझना चाहिए और न ही अनुपस्थित। यही बात मिल-मालिकों के द्वारा जबरी छुट्टी (Lay-off) पर भी लागू होती है। इसके विपरीत यदि एक श्रमिक नियमित छुट्टी के काल के अतिरिक्त अवकाश की प्रार्थना करता है तो वह उस समय तक काम पर आने वाले निर्धारित श्रमिकों में से अनुपस्थित समझा जायेगा, जब तक वह लौट न आये या उसकी अनुपस्थिति की अवधि इतनी न हो कि उसका नाम सक्रिय श्रमिकों की सूची में से काटा जा सके। ऐसी तिथि के पश्चात् वह श्रमिक न तो काम करने के लिये निर्धारित समझा जायगा और न ही अनुपस्थित। इसी प्रकार से एक ऐसा श्रमिक जो बिना सूचना दिये हुए नौकरी छोड़ देता है उसको निर्धारित कार्य से उस समय तक अनुपस्थित समझना चाहिए जब तक सक्रिय सूची से उसका नाम हटा न दिया जाय। परन्तु जहाँ तक हो सके, यह अवधि एक सप्ताह से अधिक नहीं होनी चाहिये। यदि कोई हड़ताल चल रही है तो हड़ताली श्रमिकों को न तो कार्य करने के लिए निर्धारित समझना चाहिये और न ही अनुपस्थित, क्योंकि हड़ताल द्वारा नष्ट समय के आँकड़े अन्य प्रकार से एकत्रित किये जाते हैं। अनुपस्थिति दर के आँकडो की गणना मासिक आधार पर होती है।

अनुपस्थिति की व्यापकता (Extent of Absenteeism)

अनुपस्थिति के सम्बन्ध में प्राप्त आँकड़े इतने पर्याप्त नहीं हैं कि उनके आधार पर किसी सामान्य निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके। अनुपस्थिति के आँकड़े एकत्रित करने में किसी सैद्धान्तिक प्रणाली को नहीं अपनाया गया है। संस्थाओं ने आँकड़े एकत्रित करने की जो प्रणालियाँ अपनाई है वह भी समान नहीं है। केवल कोयले की खानों में अनुपस्थिति के आँकडे कानूनी रूप से एकत्रित किये जाते हैं। अन्य स्थानो पर अनुपस्थिति के आँकडे संस्थानों द्वारा स्वयं दी हुई सूची में से ही लिये जाते हैं। यदि कोई संस्था सूची नहीं भेजती है तो उस संस्था के आँकडे छोड दिये जाते है। विश्वसनीय आँकड़े एकत्रित करने मे एक अन्य कठिनाई यह है कि जैसे ही एक श्रमिक अनुपस्थित होता है वैसे ही एक बदली का श्रमिक उसके स्थान पर रख लिया जाता है और अनुपस्थिति कहीं पर अंकित नहीं की जाती। इस प्रकार से प्राप्त आँकडों की सत्यता को पूर्णरूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता।

युद्ध काल में भारत सरकार ने एक विशेष फार्म पर अनुपस्थिति के मासिक आँकडे ऐसे कारखानो से माँगे थे जो इनका हिसाब रखते हों। तब से ऐसे आँकडों की सूचना सब संस्थाओं से श्रमिक ब्यूरों में प्राप्त होती है जहाँ इन आँकडों को एकत्रित किया जाता है। कुछ विशेष उद्योगों के आँकड़े "इण्डियन लेबर जरनल" में प्रकाशित किये जाते हैं। बड़े-बड़े केन्द्रों के विशेष उद्योगों में अनुपस्थिति के आँकडो का हिसाब रखा जाता है। कुछ राज्य सरकारों और खानों के मुख्य निरीक्षक के कार्यालय द्वारा भी यह आँकड़े प्रकाशित किये जाते है। कानपुर के कुछ विशेष

उद्योगो मे अनुपस्थिति के आकडे उत्तरी भारत के मालिक सघ द्वारा भी एकत्रित किये जाते है। परन्तु अनुपस्थिति दर निकालते समय इस बात का ध्यान नही रखा जाता कि श्रमिक की अनुपस्थिति अधिकृत (Authorised) है अथवा अनधिकृत (Unauthorised) है, अर्थात् श्रमिक किसी प्रकार की छुट्टी लेने के कारण अनुपस्थित है या बगैर किसी छुट्टी के काम पर नही आया है। कुछ समय से इस दिशा मे कुछ परिवर्तन हुआ है। औद्योगिक आँकडे अधिनियम (श्रम नियम) [Industrial Statistics Act, (Labour Rules)] के अन्तर्गत अनुपस्थिति के व्यापक आँकडे एकत्रित और प्रकाशित करना सम्भव हो गया है क्योकि इस अधिनियम मे कारखानो, ट्राम्बे बन्दरगाहो तथा बागान से श्रमिको की मासिक अनुपस्थिति के आँकडे अखिल भारतीय आधार पर एकत्रित करने के लिए एक विशेष धारा है।

अक्तूबर १९६६ म सूती कपडा मिल उद्योग मे अनुपस्थिति की प्रतिशत दर इस प्रकार थी[1]–बम्बई १६ ८, अहमदाबाद ७ ६ (औसत १९६४) शोलापुर २५ २, मद्रास १० २, मदुरा १३ ६, कोयमुत्तूर १२ ४, कानपुर १२ ५, (औसत १९६५)। अन्य मिल उद्योगो मे अनुपस्थिति की प्रतिशत दर कुछ मुख्य स्थानो पर इस प्रकार थी – ऊनी मिल (धारीवाल) १२० और (कानपुर) ८ ७ (औसत १९६५)। इजीनियरिंग (बम्बई) १५ ४ और (प० बगाल) १४ २। चमडा (कानपुर) ९.६ (औसत १९६०)। लोहा तथा इस्पात (बिहार) १२ . । फौजी शस्त्र फैक्टरी (उत्तर प्रदेश) १२ ४। सीमेंट (बिहार) ११ ८। दियासलाई (महाराष्ट्र) ११ २। तार विभाग कार्यशाला (प० बगाल) १० ६। ट्राम कार्यशाला (कलकत्ता) ९ ०।

कोयले की खानो म श्रमिको की अनुपस्थिति के बारे मे श्रम मन्त्रालय द्वारा १९४५ की एक जाँच द्वारा ज्ञात हुआ कि हर मौसम मे प्रवासिता के अतिरिक्त खान के श्रमिको मे विशेष रूप से खोदने वाले और कोयला लादने वाले श्रमिको मे अनुपस्थिति की काफी शिकायत थी। जाँचो से यह पता चलता है कि खानो के भीतरी धरातल पर काय करने वाले श्रमिक औसत रूप से प्रति सप्ताह ४ ५ दिन और खानो के ऊपरी धरातल पर काम करने वाले श्रमिक ५ ५ दिन काम करते थे। खानो के मुख्य निरीक्षक की जाच पर आधारित आकडो से पता चलता है कि जुलाई १९६५ मे कोयले की खानो म श्रमिको की अनुपस्थिति दर इस प्रकार थी— खानो के भीतरी धरातल पर १३ ७, खुले मैदान म १४ ४, ऊपरी धरातल पर १० ४, कुल १२ ८। पिछले वर्षों मे कभी कभी यह अनुपस्थिति की दर २५ से २८ तक पहुँच जाती थी। अब अनुपस्थिति की दर कम हाने का कारण सभवत यह है कि सरकार के १९४७ के सुलह बोर्ड की सिफारिशो के अनुसार बगाल और बिहार को कोयला खान के श्रमिकों के वार्षिक बोनस का उनकी उपस्थिति से सम्बन्धित कर,

[1] For detailed figures see Indian Labour Year Book Labour Journals and Indian Labour Statistics 1967

दिया गया है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक दिन की उपस्थिति पर पाव भर चावल बिना मूल्य इनाम के रूप में दिया जाने लगा है।

हैदराबाद की कोयला खान जाँच समिति (१९४९) के अनुसार हैदराबाद मे कोयले की खानो के सभी श्रमिकों को अनुपस्थिति की प्रतिशत दर १९४८ मे १२·६ थी तथा कोयला काटने वाले श्रमिकों की ३०·२ थी। खानों के भीतरी धरातल पर काम करने वाले श्रमिकों की साप्ताहिक औसत उपस्थिति ४·७ दिन थी। बिहार की अभ्रक की खानो के सम्बन्ध मे १९४८ के औद्योगिक अधिकरण ने श्रमिकों की बढती हुई अनुपस्थिति दर की ओर सकेत किया था। ऐसा अनुमान था कि एक श्रमिक औसत रूप मे एक सप्ताह मे ३ या ३½ दिन काम करता है और वर्षा ऋतु मे उपस्थिति १०% तक गिर जाती है। सितम्बर १९४८ मे अभ्रक की खानों मे अनुपस्थिति दर इस प्रकार थी—आन्ध्र प्रदेश १५ ६, बिहार १९·८ तथा राजस्थान ३१ २। अभ्रक की फैक्ट्रियों मे यह दर क्रमश १२·६, १२·७ और २३·४ थी। कोलार की सोने की खानो मे अनुपस्थिति की दर अक्तूबर १९६६ मे ८ २ थी।

बागान के आवासित श्रमिको के नियन्त्रक की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार सितम्बर १९५८ मे असम चाय बागान मे अनुपस्थिति की प्रतिशत दर नैमित्तिक (*Casual*) श्रमिको मे ६·४ और *निवासित (Settled) श्रमिको मे १०·८ थी*। मैसूर के बागान मे अनुपस्थिति की प्रतिशत दर अक्तूबर १९६६ मे १८·५ थी। १९४७ मे श्रमिक ब्यूरो ने भारतीय चाय, कॉफी और रबर के उद्योगो के श्रमिको के पारिवारिक बजट की जाँच पडताल की और उनकी अनुपस्थिति का भी अध्ययन किया। इन जाँच-पडतालो से यह ज्ञात हुआ कि असम मे अनुपस्थिति की प्रतिशत दर पुरुषो मे २२ तथा महिलाओ मे ३० थी। बगाल मे पुरुषो मे अनुपस्थिति की प्रतिशत दर ३६ तथा महिलाओ मे ३४ तक पहुच गई थी। दक्षिण भारतीय चाय बागान मे पुरुषो व महिलाओ दोनो की अनुपस्थिति की प्रतिशत दर लगभग २२ थी, जबकि कहवा के बागान मे यह उससे अधिक थी। मद्रास और कुर्ग मे पुरुषो मे अनुपस्थिति की प्रतिशत दर ३० तथा महिलाओ मे ३५ थी और कोचीन मे पुरुषो मे २१ तथा महिलाओ मे २५ थी। रबर के बागान मे भी अनुपस्थिति की दर बहुत ऊँची थी। मद्रास मे अनुपस्थिति की दर पुरुषो मे २४ तथा महिलाओं मे ३५ थी और कोचीन मे पुरुषो मे २७ तथा महिलाओ मे ३० पाई गई थी।

केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय द्वारा १९६० मे किये गये अध्ययन के अनुसार अनुपस्थिति दर इस प्रकार थी—सूती कपडा उद्योग मे ७ से १८ ५ तक, ऊनी कपडा उद्योग मे ७ ३, इजीनियरिंग मे १२ १, चमडा उद्योग मे ९·४, सोने की खानो मे ९·७, बागान मे २०·५ तथा कोयले की खानो मे १३·२।

अनुपस्थिति के प्रभाव

उपरोक्त आँकडों से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश के सगठित उद्योगों मे श्रमिको की अनुपस्थिति अत्यन्त व्यापक है। इस अनुपस्थिति से

दोहरी हानि होती है। प्रथम तो इससे श्रमिकों को ही स्पष्ट हानि होती है। उपस्थिति में अनियमितता उनकी आय को कम कर देती है क्योंकि "काम नहीं, तो वेतन भी नहीं" ही साधारण नियम है। मालिकों को हानि इससे भी अधिक होती है, क्योंकि अनुपस्थिति से अनुशासन और कार्यकुशलता दोनों को ही क्षति पहुंचती है और उत्पादन कम हो जाता है। इसके अतिरिक्त अनुपस्थिति से एक अन्य दोष यह उत्पन्न हो जाता है कि मालिकों को या तो सदैव कुछ अतिरिक्त श्रमिकों को रखना पड़ता है, जिससे आकस्मिक आवश्यकता के समय उनको काम पर लगाया जा सके या फिर अनुपस्थिति के समय उनको ऐसे श्रमिकों को भर्ती करना पड़ता है जो उनको तत्काल ही प्राप्त हो जाते हैं, यद्यपि ऐसे श्रमिक साधारणतया कुशल नहीं होते। कुछ और अधिक श्रमिक रखने की इस प्रथा के कारण अनेक दोष व जटिल समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। विशेष रूप से मालिक इन अतिरिक्त या बदली श्रमिकों को काम दिलाने के लिए बहुधा काम पर लगे हुए श्रमिकों को जबरी छुट्टी लेने के लिए बाध्य करते हैं, जिससे श्रमिकों में असन्तोष उत्पन्न हो जाता है और वे यह समझते हैं कि यह अतिरिक्त श्रमिक मालिकों द्वारा केवल इस कारण रखे जाते हैं कि हड़ताल आदि के समय म वे इन अतिरिक्त श्रमिकों के द्वारा काम जारी रख कर अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध रख। इसके विपरीत मालिक यह कहते हैं कि अतिरिक्त श्रमिक रखने के अलावा उनके पास कोई और चारा नहीं है क्योंकि श्रमिकों का अनुपस्थित होना उनके लिए एक गम्भीर समस्या बन जाती है, विशेष रूप से जबकि उद्योग के कुछ विभागों में श्रमिकों की प्रतिदिन की आवश्यकता का पहिले से अनुमान लगा लेना कठिन होता है। अत अनुपस्थिति मालिकों और श्रमिकों दोनों ही के लिए हानिकारक है। इससे औद्योगिक जीवन के प्रति श्रमिकों म प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है।

अनुपस्थिति के कारण

श्रमिक अनेक कारणों से अनुपस्थित हो जाते हैं, जिनमें से कुछ ही कारण यथार्थ कहे जा सकते हैं। अधिकतर स्थानों में अनुपस्थिति का कारण बहुधा बीमारी ही होती है। श्रमिक अपनी शारीरिक दुर्बलता तथा गन्दी बस्तियों में रहने के कारण हैजा, चेचक, मलेरिया आदि अनेक बीमारियों के शिकार बन जाते हैं जिनके कारण उनको अपने काम पर से अनुपस्थित होना पड़ता है। इसके अतिरिक्त रात के कार्य में अधिक असुविधायें होने के कारण दिन की पारियों की अपेक्षा रात्रि की पारियों में अनुपस्थिति की प्रतिशत दर अधिक होती है। परन्तु अनेक स्थानों पर, जैसे बम्बई की सूती कपड़ा मिलों में पारी में बदली की प्रथा अपना ली गई है, जिससे रात्रि की पारी में अनुपस्थिति की दर कम हो गई है। श्रमिकों की अनुपस्थिति का सबसे महत्वपूर्ण कारण उनकी समय-समय पर देहात जाते रहने की प्रवृत्ति है, जिसके बारे म हम श्रमिकों में प्रवासिता का वर्णन करते समय बता चुके हैं। फसल काटने के समय अनुपस्थिति बढ़ जाती है। अनुपस्थिति के अन्य कारण

औद्योगिक दुर्घटनायें, सामाजिक और धार्मिक उत्सव, जुआ खेलना तथा शराब पीना, निवास तथा कार्य की बुरी दशायें, मकानों का अभाव, कुछ कार्यों का खतरनाक होना, इत्यादि-इत्यादि हैं। महिला श्रमिकों में पुरुषों की अपेक्षा अनुपस्शिति दर अधिक पाई जाती है क्योंकि उन्हें घरेलू कार्य करने पडते है और गर्भ और प्रसूति की दशा मे वे अनुपस्थित हो जाती हैं। २५ वर्ष से कम आयु के और ४० वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों मे तथा ऐसे व्यक्तियों में जो सपरिवार नही रहते, अनुपस्थिति दर अधिक पाई जाती है। इसके अतिरिक्त वेतन मिलने के फौरन बाद ही अनुपस्थिति तुलनात्मक रूप से अधिक हो जाती है, क्योंकि श्रमिक वेतन पाते ही या तो बहुधा मनोरंजन मे समय व्यतीत करना चाहता है, या वह अपने गाँव को अपने परिवार से मिलने तथा उनकी आवश्यकतायें पूरी करने के लिए चला जाता है। कोयले की खानो मे अधिक अनुपस्थिति होने का कारण यह है कि वहाँ काम करने की दशा अनाकर्षक है और श्रमिक स्वभावत खानों के भीतर काम नही करना चाहते। उनका स्वास्थ्य भी उनको इस ओर अधिक प्रेरित नही करता।

अक्तूबर १९६६ मे कुछ उद्योगो मे विभिन्न कारणों से अनुपस्थिति की दर निम्नलिखित थी—

उद्योग	बीमारी या दुर्घटना	सामाजिक या धार्मिक कारण	अन्य	वेतन सहित	वेतन रहित	योग
लोहा व इस्पात (बिहार)	२ ९	० ६	८·८	८·१	४ २	१२ ३
अस्त्र-शस्त्र उद्योग (उ० प्र०)	६ ६	१·९	३·९	८ ७	३ ७	१२·४
सीमेण्ट (बिहार)	२·८	४ १	४·७	८·५	३ १	११ ६
दियासलाई (महाराष्ट्र)	२·७	०·६	७ ९	५ ४	५ ८	११·२
कपडा मिल — (मद्रास)	४ ८	० ७	४ ७	३ ८	६·४	१० २
(मदुरा)	३·५	२ ९	७·२	३ १	१०·५	१३·६
ऊनी कपडा मिल (धारीवाल)	३ ९	२·०	६·१	६·१	७ ६	१२ ०

अनुपस्थिति को दूर या कम करने के उपाय

जहाँ तक अनुपस्थिति को कम करने के लिए सुझावो का प्रश्न है, बम्बई की कपडा मिल श्रमिक जाँच समिति के सुझाव सबसे अधिक उपयुक्त है और उनसे श्रम अनुसन्धान समिति भी सहमत है। इस समिति के अनुसार अनुपस्थिति को कम करने का प्रभावपूर्ण उपाय यही है कि श्रमिकों के काम करने का वातावरण तथा दशायें सुखकर व स्वास्थ्यप्रद बनाई जायें। उनको पर्याप्त मजदूरी मिले, बीमारी तथा दुर्घटना से बचाव के लिए सामाजिक सुरक्षा का प्रबन्ध हो और विश्राम तथा

स्वास्थ्य के लिए छुट्टियों की व्यवस्था हो। कार्य की शोषित दशायें एवं अत्यधिक श्रान्ति (Fatigue) श्रमिकों में स्वाभाविक रूप से विद्रोह की प्रवृत्ति जगा देती है। अतः यदि हम यह चाहते हैं कि श्रमिक स्थायी रूप से एक स्थान पर काम करता रहे तो उसके कार्य करने की तथा रहने की अवस्थाओं में सुधार करना और उसको संतुष्ट व प्रसन्न रखना ही सबसे उचित नीति होगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनुपस्थिति की समस्या का समाधान करने का सबसे प्रथम व प्रभावशाली उपाय श्रमिकों को वेतन सहित या वेतनरहित छुट्टियाँ देना तथा उन्हें समय समय पर अपनी निजी आवश्यकताओं को पूर्ण करने लिए अवकाश देना है। इस प्रकार से श्रमिकों की अनुपस्थिति नियमित हो जायगी और उनके विरुद्ध अनुशासनीय कार्यवाही करने की आवश्यकता न पड़ेगी। औद्योगिक नगरों में श्रमिकों के रहने के लिए अच्छे मकानों का प्रबन्ध भी उपस्थिति की वृद्धि में काफी सहायक सिद्ध हो सकता है। श्रमिकों को समुचित रूप से शिक्षित एवं संगठित करके और उद्योग एवं उसके प्रबन्ध में उनको साझेदार बनाकर उनमें उत्तरदायित्व की भावना पैदा की जा सकती है। इससे भी उनकी अनुपस्थिति कम होगी। श्रमिकों को कार्य अधिक करने के लिये प्रोत्साहन देने हेतु बोनस देने की योजना से तथा बोनस को उत्पादन से सम्बन्धित करने से भी अनुपस्थिति कम हो जायगी।

श्रमिकावर्त्त
(Labour Turn Over)

परिभाषा

श्रमिकावर्त्त तथा अनुपस्थिति में अन्तर है। श्रमिकावर्त्त तो किसी उद्योग संस्था में कर्मचारियों के हुए परिवर्तन को कहा जाता है और अनुपस्थिति उस अवस्था को कहा जाता है जब श्रमिक अपना नियमित काम करने के लिए उपस्थित नहीं होता। इस प्रकार श्रमिकावर्त्त कर्मचारियों के परिवर्तन की वह दर है जो किसी उद्योग संस्था में एक विशेष समय में पाई जाती है अर्थात् एक समय विशेष में जिस सीमा तक पुराने कर्मचारी किसी संस्था को छोड़ देते हैं और नये कर्मचारी आ जाते हैं उसको श्रमिकावर्त्त कहते हैं।

श्रमिकावर्त्त का प्रभाव

श्रमिकावर्त्त रोजगार की अस्थिरता का कारण भी है और उसका परिणाम भी। कुछ सीमा तक तो श्रमिकावर्त्त अनिवार्य सा हो जाता है जैसे श्रमिकों की माँग न रहने पर श्रमिक कार्य से हटा दिये जाते हैं। कुछ श्रमिकावर्त्त स्वाभाविक भी होता है, जैसे—वृद्धि श्रमिकों के अवकाश ग्रहण कर लेने पर तथा नये श्रमिकों की नियुक्ति होने पर। ऐसा श्रमिकावर्त्त कुछ सीमा तक उचित कहा जा सकता है। परन्तु इस प्रकार के श्रमिकावर्त्त की प्रतिशत दर बहुत थोड़ी है। अधिकतर श्रमिकावर्त्त त्याग पत्र देने तथा बर्खास्तगी के कारण होता है। श्रमिकावर्त्त की ऊँची दर

श्रमिकों की कार्यकुशलता और उत्पादन के परिमाण तथा गुणों की दृष्टि से हानिप्रद है। श्रमिकावर्त्त के कारण श्रमिक अनेक ऐसे लाभों से वंचित रह जाते हैं, जो निरन्तर एक स्थान पर कार्य करने से उन्हें मिल सकते हैं, जैसे क्रमबद्ध वेतन वृद्धि, बोनस, प्रॉविडेन्ट फंड, व छुट्टी इत्यादि। इसके अतिरिक्त भर्ती प्रणाली के दोषपूर्ण होने के कारण उनको बहुधा पुनः नौकरी पाने के लिये कुछ मूल्य भी चुकाना पड़ता है। श्रमिकों के संगठन पर भी श्रमिकावर्त्त का बुरा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि, जब श्रमिक एक उद्योग से दूसरे उद्योग में या एक कारखाने से दूसरे कारखाने में चले जाते हैं तो उनमें एकता कठिन हो जाती है। श्रमिकों को बार-बार काम पर लगाने से कार्यालय में कुछ व्यय भी बढ़ जाता है और जब श्रमिकों को किसी कार्य विशेष के लिए प्रशिक्षण देना होता है तो श्रमिकावर्त्त के कारण ऐसे प्रशिक्षण का व्यय भी अधिक हो जाता है। श्रमिकावर्त्त के कारण देश के मानवीय तथा प्राकृतिक साधनों का पूर्णतया उपयोग नहीं हो पाता, यद्यपि श्रमिकावर्त्त का यह दोष भारत जैसे देश में, जहाँ बेकारी तथा अपूर्ण रोजगार वाले श्रमिकों की संख्या अत्यधिक है, कोई विशेष महत्व नहीं रखता।

श्रमिकावर्त्त को मापने में कठिनाइयाँ

अनुपस्थिति के आँकड़ों की भाँति ही श्रमिकावर्त्त के आँकड़े भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं हैं। श्रमिकावर्त्त को ठीक-ठीक जानना और मापना कठिन भी है। यदि इस बात को मान लिया जाए कि किसी संस्था में नौकरियों की संख्या एकसी ही रहेगी तब श्रमिकावर्त्त को मापने में अधिक कठिनाइयाँ न होंगी क्योंकि तब या तो कुल वियुक्ति दर (Separation Rate) (अर्थात् कितने कर्मचारी एक निश्चित समय में नौकरी छोड़ जाते हैं) को मानकर चल सकते हैं, या कुल नियुक्ति दर (Accession Rate) (अर्थात् कितने कर्मचारियों की एक निश्चित समय में नियुक्ति होती है) को मान सकते हैं; क्योंकि जितने श्रमिक एक संस्था को एक समय में छोड़ते हैं उतने ही श्रमिक साधारणतः उस संस्था में नौकरी पर आ भी जाने चाहियें। कारणों के आधार पर वियुक्ति दर को तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है, जिनको हम त्याग दर, बर्खास्तगी दर, और जबरी छुट्टी दर कह सकते हैं। परन्तु जब व्यवसाय में मन्दी और तेजी होती है तब नौकरियों की संख्या भी बदलती रहती है और फिर यह आवश्यक नहीं है कि वियुक्ति दर और नियुक्ति दर एक ही समान हो। ऐसी अवस्था में श्रमिकावर्त्त की माप कठिन हो जाती है। दूसरी कठिनाई यह है कि जब श्रमिक कुछ दिनों के लिए छुट्टी लेकर अनुपस्थित हो जाते हैं तब तत्काल ही बदली के श्रमिकों से उनके स्थानों की पूर्ति कर दी जाती है। स्थायी श्रमिक न त्यागपत्र देते हैं और न बरखास्त किये जाते हैं, अपितु वे जबरी छुट्टी पर होते हैं। इस प्रकार श्रमिकावर्त्त की दर तो काफी ऊँची मालूम होती है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता। तीसरी कठिनाई यह है कि श्रमिकावर्त्त तथा अनुपस्थिति के पारस्परिक सम्बन्ध को ठीक प्रकार से समझा नहीं जाता।

यदि एक श्रमिक दो या तीन माह छुट्टी पर रहकर वापिस आ जाए तो इस अवधि मे उसकी स्थानपूर्ति हो चुकी होती है। अत श्रमिकावर्त्त की माप कठिन हो जाती है। एक और बात ध्यान मे रखने की यह है कि अगर एक श्रमिक उसी उद्योग-धन्धे मे एक कारखाना छोडकर दूसरे कारखाने मे नौकरी करने चला जाता है, तो दोनो कारखानो मे श्रमिकावर्त्त की दर बढ जाती है। परन्तु इससे श्रमिक की कार्य-कुशलता पर इतना बुरा प्रभाव नही पडता।

इन कठिनाइयो के कारण श्रमिकावर्त्त की अनेक उद्योग-धन्धो मे ऊँची दर होने पर भी उसके ठीक-ठीक आँकडे प्राप्त नही हो पाते। फिर भी अनेक समितियो तथा अनुसधानकर्त्ताओ ने, जो भी आँकडे मिल सके है, एकत्रित किये है जिनके आधार पर विभिन्न उद्योग धन्धो मे श्रमिकावर्त्त की सीमा का अनुमान लग सकता है।

श्रमिकावर्त्त की व्यापकता
(Extent of Labour Turn-over)

रॉयल श्रम आयोग के अनुसार अधिकतर कारखानो मे नए कर्मचारियो की भर्ती प्रत्येक माह कम से कम २% तक होती है। श्रम अनुसधान समिति के अनुसार श्रमिकावर्त्त की मासिक प्रतिशत दर विभिन्न उद्योगो मे इस प्रकार थी—सूती कपडा ० ६, गर्म कपडा ० ४, सीमेंट २ ०, काँच २ १, चावल ३ १ तथा सोने की खानें १ ६। डॉ० मुकर्जी के अनुसार बगाल की जूट की मिलो मे श्रमिकावर्त्त की मासिक प्रतिशत दर ६ २६ है। महाराष्ट्र की सूती कपडा मिलो मे १९६४ मे श्रमिको की औसत नियुक्ति दर प्रति सैकडा १ ७५ थी तथा औसत वियुक्ति दर १ ४७ थी। व्यापक दृष्टि से देखा जाय तो विभिन्न आँकडो द्वारा यह ज्ञात होता है कि श्रमिकावर्त्त की दर महाराष्ट्र की सूती कपडा मिलों मे मदुरा, कलकत्ता और नागपुर की मिलो की अपेक्षा अधिक है। इसका कारण यह है कि महाराष्ट्र मे मिलें अधिक है और श्रमिक एक मिल को छोडकर दूसरी मिल मे नौकरी करते रहते है। सन् १९६४ मे बम्बई मे, सूती वस्त्र उद्योग मे औसत नियुक्ति दर १ ६१ और औसत वियुक्ति दर १ ३१ थी। इजीनियरिंग उद्योग मे श्रमिकावर्त्त की प्रतिशत दर का अनुमान बम्बई म ३ १ तथा मद्रास व बगाल म १ ६ लगाया गया है। काँच के उद्योग मे भी श्रमिकावर्त्त अत्यधिक है क्योकि वहाँ श्रमिक काफी गतिशील हैं। इसका कारण वहाँ प्रशिक्षित श्रमिको की कमी है और मालिक प्रशिक्षित श्रमिको को किसी भी मूल्य पर भर्ती करने के लिए तैयार रहते है। १९५८ मे काँच के कारखानो मे नौकरी छोडने वालो की दर समस्त देश के लिए ३१ ४ आती थी तथा उत्तर प्रदेश मे यह दर ५६ ४ थी। असम के खनिज तेल के उद्योग मे १९५५ मे श्रमिकावर्त्त की दर का अनुमान ६ ६% तथा कागज की मिलो मे १ ७% लगाया गया था। श्रमिकों की भर्ती की अपनी विशेष प्रणाली होने के कारण बागान के सम्बन्ध मे श्रमिकावर्त्त के पर्याप्त आँकडे प्राप्त नही हैं। इस प्रकार

यह कहा जा सकता है कि यद्यपि श्रमिकावर्त्त के कोई नियमित आंकड़े एकत्रित नहीं किये जाते है और न प्रकाशित होते है फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि भारतीय उद्योग-धन्धों में श्रमिकावर्त्त व्यापक है। परन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि श्रमिकावर्त्त की दर अनुपस्थिति दर से कम है और भारतवर्ष में श्रमिकावर्त्त अन्य औद्योगिक देशों की अपेक्षा कम है। इसका मुख्य कारण नगरों मे अत्यधिक बेरोजगारी और गांवों में अपूर्ण रोजगार का होना है, जिसके कारण कोई भी व्यक्ति अपना रोजगार, जहाँ तक सम्भव हो, छोडना नहीं चाहता।

श्रमिकावर्त्त के कारण

श्रमिकावर्त्त के मुख्य कारण त्यागपत्र देना तथा बर्खास्तगी हैं। त्यागपत्र देने के अनेक कारण है, जैसे—कार्य करने के वातावरण तथा अवस्थाओं के प्रति असन्तोष, अपर्याप्त मजदूरी, बुरा स्वास्थ्य, बीमारी, वृद्धावस्था, पारिवारिक समस्यायें तथा कृषि सम्बन्धी कार्यों के लिए गाँव को प्रवास। अनेक उद्योगों, जैसे–खान, बागान, सूती कपड़ा, जूट तथा छोटे उद्योग-धन्ध, जैसे–चपड़ा, चावल कूटना, अभ्रक आदि, के श्रमिकों का गाँव से सम्बन्ध अब भी काफी महत्वपूर्ण है। श्रमिकों को गाँव जाने के लिये लम्बी छुट्टी प्राप्त नहीं होती इसलिए फसल काटने व बोने के समय वे त्यागपत्र देकर चले जाते है। इसके विपरीत बर्खास्तगी श्रमिकावर्त्त के कारणों की दृष्टि से इतनी महत्वपूर्ण नहीं है। बर्खास्तगी के कई कारण होते है। बर्खास्तगी अधिकतर श्रमिकों के प्रति अनुशासनीय कार्यवाही के कारण होती है, जबकि श्रमिक ठीक प्रकार से काम नहीं करते या आज्ञा-उल्लंघन तथा दुर्व्यवहार करते है अथवा हड़तालों में भाग लेते है। बर्खास्तगी का एक कारण यह भी है कि ऐसे श्रमिक, जो श्रमिक संघों में रुचि दिखाते है, मालिकों अथवा मध्यस्थों द्वारा किसी न किसी बहाने से सताये व निकाल दिये जाते है। कभी-कभी उच्च वेतन पाने वाले पुराने श्रमिकों की सेवायें समाप्त कर दी जाती है और अल्प वेतन पाने वाले नये श्रमिक भर्ती कर लिये जाते है ताकि वेतन बिल की धनराशि कम हो सके। अस्थायी श्रमिकों मे श्रमिकावर्त्त इसलिये अधिक होती है कि कार्य-समाप्ति पर श्रमिकों को निकाल दिया जाता है और जब कार्य फिर आरम्भ होता है तो नए श्रमिकों को भर्ती कर लिया जाता है। बदली श्रमिकों को रखने की प्रणाली के कारण भी श्रमिकावर्त्त मे वृद्धि हो जाती है क्योंकि अनेक बार बदली श्रमिकों को कार्य दिलाने के लिये पुराने श्रमिकों को छुट्टी लेने के लिये बाध्य किया जाता है। लड़ाई के दिनों मे श्रमिकावर्त्त इसलिये अधिक हो गया था कि वेतन वृद्धि के आकर्षण तथा अन्य उद्योगों मे प्राप्त अतिरिक्त सुविधाओं के कारण श्रमिकों ने एक कारखाने से दूसरे कारखाने मे या एक उद्योग से दूसरे उद्योग मे जाना आरम्भ कर दिया था। श्रमिकों को पाने के लिये मालिकों में भी पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा आ गई थी और अनेक बार एक कारखाने के श्रमिकों को दूसरे कारखाने के मालिक प्रलोभन देकर बुला लेते थे।

श्रमिकावर्त्त को कम करने के उपाय

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है श्रमिकावर्त्त अवान्छनीय है, क्योंकि इससे कार्य-कुशलता कम होती है और उत्पादन कम हो जाता है। अतः कुछ ऐसे उपाय अपनाने आवश्यक हैं जिनसे श्रमिकावर्त्त कम हो। इसके लिये एक निश्चित नीति तथा कार्यप्रणाली का अनुसरण आवश्यक है। दुर्भाग्यवश अधिकांश मालिक अभी तक श्रमिकों में, विशेष रूप से अनिपुण श्रमिकों में, श्रमिकावर्त्त के कम होने के लाभों को भली भांति समझते नहीं है। साधारणतया शान्तिकाल में अनिपुण श्रमिक काफी सस्ता में प्राप्त हो जाते हैं। इस कारण मालिक कम वेतन पर श्रमिक पाने के लिये एक श्रमिक को निकाल कर दूसरे को भर्ती कर लेते हैं और यदि उन्हें अपनी मजदूरी के बिल में कमी करने का अवसर मिलता है तो श्रमिकावर्त्त को अधिक अच्छा समझते हैं। वह इस बात का अनुभव नहीं करते कि नये श्रमिकों को मशीनों और काम के नये तरीकों से अभ्यस्त होने में कुछ समय लगता है और निरन्तर कार्य करने से अनिपुण श्रमिक भी कुछ कुशलता प्राप्त कर लेते हैं जिससे सबको लाभ होता है। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि श्रमिकावर्त्त की समस्या भर्ती की समस्या से सम्बन्धित है क्योंकि अधिकतर उद्योगों में भर्ती प्रणाली में काफी भ्रष्टाचार तथा रिश्वत प्रचलित है और मध्यस्थ सदा इस बात का प्रयत्न करते हैं कि पुराने कर्मचारी निकाल दिए जायें और नये भर्ती हों जिससे ⸺ह अपनी जब गर्म करने का अवसर मिले। इस प्रकार श्रमिकावर्त्त की समस्या काफी हद तक भर्ती की समस्या से ही सम्बन्धित है। इसलिये भर्ती प्रणाली में सुधार करने से श्रमिकावर्त्त कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त ऐसे उपाय भी अपनाने चाहियें जिनसे श्रमिकों की आर्थिक स्थिति में उन्नति हो, उनकी नौकरी सुरक्षित रहे तथा नगरों में ऐसी सुविधायें प्राप्त होनी चाहिये कि श्रमिक बार बार अपने गांव न जायें। बदली नियन्त्रण योजना भी जो बम्बई आदि अनेक स्थानों पर लागू हो चुकी है श्रमिकावर्त्त को कम कर सकती है। जैसा कि बम्बई की सूती कपड़ा मिल श्रमिक जांच समिति ने भी सकेत किया था, अत्यधिक श्रमिकावर्त्त को कम करने का मुख्य उपाय भर्ती की पद्धतियों में उन्नति करना ही है और इसके लिए कुछ विशेष प्रभावपूर्ण व क्रान्तिकारी उपाय होने चाहिये जैसे- रोजगार दफ्तरों की स्थापना, मध्यस्थों के अधिकारों पर नियन्त्रण तथा कार्मिक (Personnel) विभाग का उचित संगठन, लाभ सहभाजन योजना आदि। एक स्थायी श्रमिक वर्ग की स्थापना के लिए और भी कई बातों की आवश्यकता है, जैसे—कार्य की दशाओं में उन्नति, श्रम कल्याणकारी कार्य, सामाजिक बीमा योजना, सवेतन छुट्टियां तथा अधिक मजदूरी आदि। इसके अतिरिक्त श्रम संघों को प्रोत्साहन देने तथा उनकी उन्नति करने से औद्योगिक नगरों में स्थायी श्रमिक वर्ग की स्थापना हो सकती है।

सवेतन छुट्टियाँ और अवकाश

छुट्टियों की आवश्यकता तथा महत्व

श्रमिकों तथा मालिको के पारस्परिक सम्बन्धो को अच्छा बनाने तथा औद्योगिक कार्य कुशलता को स्थिर रखने तथा उसकी वृद्धि के लिए छुट्टियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भारतीय उद्योग-धन्धो मे अनुपस्थिति तथा श्रमिकावर्त्त की प्रतिशत दर अधिक होने का एक कारण यह भी है कि श्रमिकों को पर्याप्त छुट्टियाँ तथा अवकाश मिलने की सुविधा नही है। बिहार श्रमिक जाँच समिति ने ठीक ही कहा है कि "पश्चिमी देशो की अपेक्षा भारत में छुट्टियों तथा वेतन सहित अवकाश की आवश्यकता अधिक है, क्योंकि यहाँ जलवायु गर्म है, श्रमिकों का भोजन खराब तथा अपर्याप्त है, शारीरिक दृष्टि से वे दुर्बल हैं और उनके रहने का वातावरण अस्वास्थ्यकर (Insanitary) व अनाकर्षक है। अधिकांश श्रमिक गाँवो से आते हैं और वहाँ से अपना सम्बन्ध बनाए रखते हैं। अत: जो भी छुट्टियाँ उन्हें मिलती है वे उन्हे अपने गाँव मे ही बिताने का प्रयत्न करते हे। इससे न केवल उनके स्वास्थ्य को ही लाभ होता है अपितु, चाहे एक वर्ष मे थोडे ही दिनो के लिये जायें, इससे उनके हृदय में प्रसन्नता का सचार होता है।" रॉयल श्रम आयोग ने यह सिफारिश की थी कि मालिकों को छुट्टियों के महत्व तथा आवश्यकता को स्वीकार करना चाहिए और श्रमिको को एक निश्चित काल की छुट्टी लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए और उन्हे यह आश्वासन देना चाहिए कि वापिस आने पर वे अपने पुराने कार्य को पुन: प्राप्त कर सकेंगे। यदि छुट्टियाँ बिना वेतन या भत्ते के भी दी जायेगी, तब भी वर्तमान पद्धति मे एक बहुत बडा सुधार होगा। कानपुर श्रम जाँच समिति तथा बम्बई की कपडा मिल श्रमिक जाँच समिति ने भी वेतन सहित छुट्टियों के महत्व पर जोर दिया है। डॉ० राधाकमल मुकर्जी ने भी औद्योगिक श्रमिकों के लिए छुट्टियो के महत्व और आवश्यकता की ओर सकेत करते हुए इसकी विवेकपूर्ण व्यवस्था पर जोर दिया है।

इस प्रकार औद्योगिक श्रमिकों की प्रवासिता को नियमित बनाने के लिये, वर्तमान भर्ती की पद्धति के कुछ दोषो को दूर करने के लिए, अनुपस्थिति तथा श्रमिकावर्त को कम करने के लिये तथा औद्योगिक श्रमिको की कार्यकुशलता को बढाने और मालिको से सम्बन्ध अच्छे बनाने के लिए छुट्टियो तथा अवकाश का महत्व वास्तव मे बहुत अधिक है। इसके अतिरिक्त यह तो मानना ही पडेगा कि श्रमिक भी मानव है, केवल उत्पादन के उपादान मात्र ही नहीं हैं। किसी भी मनुष्य के लिए, बिना छुट्टी या विश्राम के वर्षों तक निरन्तर काम मे लगे रहना कठिन है। मनुष्य के जीवन में अनेक ऐसे अवसर आते हैं जब बीमारी, आवश्यक पारिवारिक कार्यों तथा सामाजिक उत्सवों आदि के कारण वह अपने काम पर जाने में असमर्थ होता है। ऐसे अवसरों पर उसे छुट्टी अवश्य मिलनी चाहिए। अत.

वेतन सहित अवकाश देने का आन्दोलन जोर पकड चुका है और अनेक औद्योगिक देशो मे या तो कानून द्वारा या श्रमजीवियों व मालिको के पारस्परिक समझौते द्वारा ऐसी छुट्टियो की सुविधा मिल रही है।

भारतीय उद्योगो मे छुट्टियाँ और अवकाश

भारत मे यद्यपि अनेक उद्योगो मे छुट्टियाँ और अवकाश प्रदान किया जाता है परन्तु इन छुट्टियों का महत्व अभी पूर्णरूप से समझा नहीं गया है। छुट्टियाँ व अवकाश देने की रीतियाँ भी विभिन्न उद्योगो मे भिन्न भिन्न है। अत इनके बारे मे कोई सामान्य निष्कर्ष नही निकाला जा सकता। वेतन सहित छुट्टियाँ केवल स्थायी श्रमिको तथा क्लर्कों और सर्वेक्षण कर्मचारियों को ही दी जाती हैं। साधारण तथा दैनिक वेतन पाने वाले, या कार्य के अनुसार वेतन पाने वाले तथा अस्थायी श्रमिको को वेतन सहित छुट्टियाँ नही मिलती। अधिकतर कारखानो मे साधारणत रविवार की छुट्टी होती है और पर्वो पर भी छुट्टी प्रदान की जाती है। कुछ सस्थायें आकस्मिक तथा विशेषाधिकार छुट्टियाँ (Privilege leave) भी प्रदान करती हैं, परन्तु इस सम्बन्ध मे सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं है। फिर भी दक्षिण भारत की मिलें वर्ष मे १० से १५ दिन तक की वेतन सहित छुट्टी देने की सहृदयता दिखाती है। नागपुर की एम्प्रेस मिल मे जो श्रमिक २० वर्ष तक नौकरी कर लेते हैं १२ दिन की वेतन सहित छुट्टियो के अधिकारी हो जाते हैं। १९४३ से जूट के उद्योग मे प्रत्येक श्रमिक को ७ दिन की वेतन सहित छुट्टी मिलती है। बगाल के अधिकाश रासायनिक उद्योगो मे रविवार के अतिरिक्त ११ से २४ दिन तक की सवेतन छुट्टी दी जाती हैं। बम्बई की सूती कपडा मिलें भी अपने कुछ श्रेणियों के श्रमिको को सवेतन छुट्टिया प्रदान करती है। इजीनियरिंग उद्योग मे भी अधिकाश श्रमिको को सवेतन छुट्टिया मिलती है। मद्रास मे स्थायी श्रमिको को २१ दिन की विशेष छुट्टियो का अधिकार है। रेलवे कर्मचारियो को भी आकस्मिक छुट्टियाँ प्रदान की जाती है। टाटा की लोहे और इस्पात की कम्पनी मे मासिक वेतन पाने वाले श्रमिको को एक वर्ष की नौकरी पर एक माह की सवेतन छुट्टियाँ मिलती हैं और ऐसे श्रमिको को, जिनकी मजदूरी दैनिक कार्य के अनुसार निर्धारित होती है परन्तु अदायगी महीने भर बाद होती है, १४ दिन की सवेतन छुट्टिया मिलती हैं। साप्ताहिक मजदूरी पाने वाले श्रमिको को कोई छुट्टी नही मिलती। सोने की खानो मे भीतरी धरातल पर काम करने वाले श्रमिको को २१ दिन की विशेषाधिकार छुट्टी और ऊपरी धरातल पर काम करने वालो को १४ दिन की सवेतन छुट्टी मिलती है। खनिज तेल के उद्योग मे दैनिक वेतन पाने वाले श्रमिको को १४ दिन की सवेतन छुट्टिया तथा २८ दिन की वेतन-रहित छुट्टियो का अधिकार है। पजाव मे मासिक वेतन पाने वाले श्रमिको को १५ दिन की सवेतन छुट्टियो के साथ साथ ६ सवेतन धार्मिक छुट्टियाँ भी मिलती है। अन्य स्थानो तथा सस्थाओ मे भी छुट्टियो व अवकाश का प्रबन्ध है, परन्तु सवेतन या वेतन-रहित छुट्टियाँ प्रदान करने की

कोई नियन्त्रित रीति नही है। विभिन्न संस्थायें अपनी सुविधा के अनुसार छुट्टियाँ प्रदान करती हैं और इस हेतु उन्होंने अपने श्रमिको की भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ बना ली है।[2] कुछ मालिक ३० दिन तक वेतनरहित छुट्टियाँ दे देते है। डाक्टरी प्रमाण-पत्र उपस्थित करने पर मालिक अपनी इच्छानुसार श्रमिकों को सवेतन या वेतन-रहित बीमारी की छुट्टी भी प्रदान कर सकते है। सवेतन पर्वों की छुट्टियो की संख्या भी विभिन्न प्रदेशों मे भिन्न-भिन्न है।

छुट्टियों और अवकाश सम्बन्धी विधान[3]

अवकाश और छुट्टियाँ प्रदान करने के लिये देश मे कुछ वैधानिक सुविधायें भी है। १९३६ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन ने सवेतन छुट्टियों के सम्बन्ध मे एक अभिसमय पास किया था। भारत सरकार द्वारा यह अभिसमय स्वीकार नही हुआ और उसने सन् १९३७ मे यह घोषित किया कि अभिसमय में उल्लिखित सब संस्थाओं पर इसे लागू करना सम्भव नही था। फिर भी फैक्टरी अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले सारे कारखानो मे एक साप्ताहिक छुट्टी प्रदान कर दी गई। केन्द्रीय सरकार ने १९४२ मे साप्ताहिक छुट्टी के लिए एक अधिनियम (Weekly Holidays Act) बनाया, जिसके अन्तर्गत सभी दूकानों के नौकरो को सप्ताह मे एक छुट्टी प्रदान करने की, तथा दुकानो को सप्ताह मे एक दिन बन्द करने की व्यवस्था की गई, परन्तु यह अधिनियम राज्यो को इस प्रकार के अधिनियम पास करने की या लागू करने की केवल अनुमति प्रदान करता है। कुछ राज्यो ने ही इस अधिनियम को अपनाया। इसके अतिरिक्त सभी राज्य सरकारो ने दुकान व वाणिज्य सम्बन्धी कर्मचारियों (Shop & Commercial Establishment Employees) के लिये भी कानून बनाये है। अनेक राज्यों मे समय-समय पर इन अधिनियमों मे संशोधन एव सुधार किये गये है। ये अधिनियम दुकानों तथा वाणिज्य संस्थाओ के नौकरो के काम करने के घण्टों, कार्य करने की दशाओ तथा उनके रोजगार का नियमन करते हैं और उनके लिये अवकाश तथा छुट्टियो की भी व्यवस्था करते है।

यह सभी अधिनियम सप्ताह में एक दिन की सवेतन छुट्टी की व्यवस्था करते हैं, परन्तु बंगाल का अधिनियम इससे भी एक कदम आगे बढ गया है और सप्ताह में डेढ दिन की छुट्टी की व्यवस्था करता है। असम के अधिनियम मे दुकान पर कार्य करने वालों के लिए दो सप्ताह मे १ दिन की छुट्टी तथा अन्य संस्थाओं मे डेढ़ दिन की छुट्टी की व्यवस्था है। असम, हैदराबाद और मद्रास के अधिनियम केवल दुकानों को एक दिन के लिये बन्द करने की व्यवस्था करते हैं तथा बम्बई और देहली के अधिनियमों मे होटलो और थियेटरों का जिक्र नही है। सभी अधिनियमों में हर प्रकार की छुट्टी की व्यवस्था है। १२ माह की निरन्तर नौकरी के बाद पूरे वेतन सहित विशेषाधिकार छुट्टी (Privilege Leave) की व्यवस्था

2. *See Labour Investigation Committee Report* pages 120-21.
3. *See Labour Year Books.*

विभिन्न राज्यो म इस प्रकार है—पश्चिमी बगाल मे १४ दिन, असम मे १६ दिन, आन्ध्र, मद्रास व केरल मे १२ दिन, उत्तर प्रदेश और दहली मे १५ दिन (उत्तर प्रदेश मे चौकीदारो के लिये ३० दिन) और मध्य प्रदेश म एक माह, मैसूर, विहार, उडीसा और पजाब म २० दिन के कार्य पर १ दिन, बिहार एव मैसूर मे बच्चो के लिये १५ दिन के काय पर १ दिन, राजस्थान में १२ दिन के कार्य पर १ दिन, तथा गुजरात व महाराष्ट्र में २१ दिन। ऐसी विशेष छुट्टियाँ एकत्रित भी की जा सकती हैं। पूरे वतन सहित आकस्मिक छुट्टियो (Casual Leave) की व्यवस्था इस प्रकार है—असम, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बगाल मे १० दिन, मद्रास, आन्ध्र, केरल और दहली मे १२ दिन, मध्य प्रदेश म १४ दिन और पजाब में ७ दिन। बीमारी की छुट्टियाँ डाक्टरी प्रमाण-पत्र उपस्थित करने पर ही प्रदान की जाती है। इनकी व्यवस्था विभिन्न राज्यो में इस प्रकार है—असम में एक वर्ष की नौकरी के बाद आधे वेतन पर एक माह, उत्तर प्रदेश में ६ महीने की नौकरी के बाद पूरे वेतन पर १५ दिन, पश्चिमी बगाल में आधे वेतन पर १४ दिन, तथा आन्ध्र, केरल, मद्रास और मैसूर मे पूरे वेतन पर १२ दिन तथा उडीसा मे एक वर्ष की नौकरी के पश्चात् १५ दिन। इसके अतिरिक्त असम में धार्मिक कार्यों के लिए तीन छुट्टीयो की व्यवस्था है। उत्तर प्रदेश के अधिनियम में ३ गजेटेड छुट्टियो की व्यवस्था है। आन्ध्र म समस्त गजेटेड छुट्टियाँ प्रदान करने की व्यवस्था है। पजाब मे २ राष्ट्रीय तथा ४ पर्वो की छुट्टियाँ प्रदान करने की व्यवस्था है। देहली में तीन राष्ट्रीय छुट्टियाँ दी जाती है।

इसके अतिरिक्त सरकार ने एक 'सवेतन छुट्टी अधिनियम' (Holidays with Pay Act) पास किया था जिसको १ जनवरी १९४६ से लागू किया गया था। यह केवल निरन्तर चालू कारखानो पर ही लागू किया गया था। इस अधिनियम क अन्तर्गत प्रत्यक श्रमिक को जो १२ माह तक किसी कारखाने मे निरन्तर काम कर चुका हो, आगामी १२ महीनो मे, अगर वयस्क हो तो १० दिन की और यदि बालक हो तो १४ दिन की लगातार छुट्टी मिल सकती थी। ऐसी छुट्टियाँ दो वर्ष तक जमा की जा सकती थी। छुट्टी के दिनो मे श्रमिको को पिछले तीन महीनो की दैनिक औसत मजदूरी के हिसाब से वेतन मिलने की व्यवस्था थी। आधा वेतन छुट्टी पर जाने से पहले और शेष वेतन वापिस आने पर दिया जा सकता था।

१९४८ के फैक्ट्री अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिको को छुट्टियो की और भी सुविधाये प्रदान की गई है। १२ माह लगातार काम करने के पश्चात् साप्ताहिक छुट्टियो के अतिरिक्त प्रत्येक श्रमिक को निम्नलिखित दरो पर सवेतन छुट्टियाँ पाने का अधिकार दिया गया है—वयस्क—प्रत्येक २० दिन के काम पर एक दिन की छुट्टी, परन्तु कम से कम १० दिन की छुट्टी, बच्चे—१५ दिन के काम पर एक दिन की छुट्टी, परन्तु कम से कम १४ दिन की छुट्टी। इस प्रकार छुट्टियो की व्यवस्था

श्रमिकों के काम करने की अवधि के साथ सम्बन्धित है। १९४८ के फैक्टरी अधिनियम मे श्रमिको को छुट्टियाँ प्रदान करने से पहले जो १२ माह की निरन्तर नौकरी की अवधि रखी गई थी उसका निर्णय करने मे कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इस कारण इस अधिनियम मे १९५४ मे संशोधन किया गया। इसके अन्तर्गत अब छुट्टी लेने से पहले की नौकरी की अवधि को एक कैलेण्डर वर्ष में २४० दिन कर दिया गया है। उन तमाम दिनों को जबकि श्रमिक जबरी छुट्टी, प्रसूतिकाल की छुट्टी अथवा गत वर्ष के कार्य के अनुसार उपार्जित छुट्टी पर हो, ऐसे दिन माने जाते है जब श्रमिक कार्य करता हो, परन्तु श्रमिकों को ऐसे दिनों के आधार पर छुट्टी लेने का अधिकार न होगा। जो श्रमिक १ जनवरी के बाद नौकरी आरम्भ करेंगे, उनको भी छुट्टी प्राप्त करने का अधिकार होगा, यदि वे वर्ष के शेष दो तिहाई दिनों मे कार्य कर लेंगे। यदि किसी श्रमिक को उपार्जित छुट्टी लेने के पहले ही निकाल दिया जाता है तो मालिकों को उपरोक्त दर से छुट्टी के दिनो का वेतन देना पड़ेगा चाहे उसके कार्य की अवधि कितनी ही रही हो। यह छुट्टी अन्य छुट्टियों के अतिरिक्त प्रदान की जाती है, तथा एक वर्ष मे तीन किश्तो से अधिक मे यह छुट्टी नही ली जा सकती।

खानों के श्रमिको को भी अब ऐसी ही सुविधायें प्रदान कर दी गई है। १९५२ के भारतीय खान अधिनियम (१९५९ मे जिसमे संशोधन हुआ) के अन्तर्गत, प्रत्येक श्रमिक को, एक साप्ताहिक छुट्टी के अतिरिक्त, एक कैलेण्डर वर्ष की नौकरी के पश्चात् (जिसका तात्पर्य खान के भीतर काम करने वालो के लिए १९० दिन की हाजिरी तथा खान के ऊपर कार्य करने वालो के लिए २४० दिन की हाजरी है)—निम्नलिखित दर से पूरे वेतन सहित छुट्टी पाने का अधिकार है—खान के भीतर कार्य करने वालो के लिये प्रत्येक १६ दिन के कार्य पर एक दिन की छुट्टी तथा अन्य श्रेणी के श्रमिकों के लिए प्रत्येक २० दिन के कार्य पर एक दिन की छुट्टी। जो श्रमिक १ जनवरी के बाद नौकरी पाते हैं, उनको भी इसी दर से छुट्टी पाने का अधिकार है, यदि वर्ष के शेष दिनो मे से खान के भीतर कार्य करने वालो की आधे दिनो की हाजरी हो और अन्य श्रमिकों की दो-तिहाई दिनो की हाजरी हो। उन तमाम दिनों को जबकि श्रमिक जबरी छुट्टी, प्रसूति काल की छुट्टी, अथवा गत वर्ष के कार्य के अनुसार उपार्जित छुट्टी पर हो, ऐसा दिन माना जाता है जब श्रमिक कार्य करता हो। छुट्टियो को ३० दिनो तक एकत्रित किया जा सकता है। छुट्टियों के दिनो के लिये मजदूरी की दर पिछले एक माह मे दैनिक औसत मजदूरी की दर के बराबर होगी, परन्तु इस औसत मजदूरी मे समयोपरि मजदूरी और बोनस सम्मिलित नही किये जायेंगे।

१९५१ के बागान श्रम अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक को निम्नलिखित दर से वार्षिक सवेतन छुट्टी देने की व्यवस्था है—(क) वयस्क के लिये २० दिन के कार्य पर १ दिन की छुट्टी; (ख) बच्चो तथा किशोरावस्था वालों के लिये १५ दिन

के कार्य पर १ दिन की छुट्टी। श्रमिकों को ३० दिन तक छुट्टी एकत्रित करने का अधिकार है। राज्य सरकारें श्रमिकों की साप्ताहिक छुट्टी के बारे में तथा उस दिन काम करने पर वेतन के बारे में नियम बना सकती है। १९६० में एक संशोधन के अन्तर्गत अब छुट्टियों के दिनों की मजदूरी की दर इस प्रकार है—समयानुसार वेतन पाने वालों के लिए दैनिक मजदूरी तथा अन्य श्रमिकों के लिए पिछले एक कैलेन्डर वर्ष की औसत मजदूरी।

इसी प्रकार, सन् १९६१ के मोटर परिवहन कर्मचारी अधिनियम में भी निम्नलिखित दर से सवेतन वार्षिक छुट्टी देने की व्यवस्था है—वयस्क के लिये २४० दिन काम करने के बाद प्रत्येक २० दिन के कार्य पर एक दिन की छुट्टी और किशोरों को प्रत्येक १५ दिन के काम पर १ दिन की छुट्टी। श्रमिकों को ३० दिन तक छुट्टी एकत्रित करने का अधिकार है।

१९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम के अनुसार प्रत्येक मालिक को यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि वह श्रमिकों को कितनी वेतन सहित या वतन रहित छुट्टियाँ देगा और छुट्टियाँ किस प्रकार दी जायेंगी।

उत्तर प्रदेश में चीनी मिलों के श्रमिकों के सम्बन्ध में नवम्बर १९५७ में एक विशेष नियम बनाया गया जिसके अनुसार, फैक्टरी अधिनियम के अतिरिक्त, छुट्टी, वेतन आदि के सम्बन्ध में निम्नलिखित व्यवस्था की गई है—स्थायी श्रमिक—साल में आकस्मिक छुट्टी ६ दिन, बीमारी की छुट्टी १० दिन, मौसमी श्रमिक—मिलों में चीनी बनने के मौसम में हर महीने पर आधे दिन की आकस्मिक छुट्टी तथा आधे दिन की बीमारी की छुट्टी। यदि किसी माह में १५ दिन से अधिक कार्य हो तो वह पूरा माह समझा जायगा।

१९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में पर्वों की छुट्टियों की व्यवस्था कर दी गई है। १९५० में इनकी संख्या साल में १७ दिन निश्चित की गई जो १९५३ में बढ़ाकर १८ कर दी गई। नवम्बर १९५५ में यह १८ दिन की पर्वों की छुट्टियाँ चीनी मिलों पर भी लागू कर दी गई। अगस्त १९६१ में उत्तर प्रदेश में एक और अधिनियम पास हुआ जिसको औद्योगिक संस्था (राष्ट्रीय छुट्टियाँ) अधिनियम [Industrial Establishments (National Holidays) Act] कहते हैं। इसके अन्तर्गत औद्योगिक श्रमिकों को गणराज्य दिवस, स्वतन्त्रता दिवस तथा गांधी जयन्ती पर सवेतन छुट्टी प्रदान करने की व्यवस्था है।

वर्तमान स्थिति

इन वैधानिक उपबन्धों के होते हुए भी छुट्टियाँ तथा अवकाश देने की व्यवस्था सन्तोषजनक नहीं है। स्वयं अधिनियमों में ही कुछ सुधार सम्भव है, जैसे कि अधिनियम सब कारखानों पर लागू होने चाहिये, छुट्टियों को एकत्रित करने की अवधि भी दो वर्ष से अधिक होनी चाहिये, यह अवधि पाँच वर्ष की हो सकती है, इस बात की सुविधा भी होनी चाहिये कि श्रमिक अपनी सवेतन छुट्टियों की

अवधि को वेतन रहित छुट्टियाँ लेकर आगे बढ़ा सकें। इस प्रकार यदि आवश्यक हो तो अधिकृत (Due) छुट्टियों से दुगुनी छुट्टियाँ तक भी ले सकें। ऐसा भी देखा गया है कि व्यवहार में अधिनियम की धाराओं का न ठीक से पालन होता है और न उनको ठीक से लागू किया जाता है। अधिकतर कारखानों मे "काम नहीं, तो वेतन भी नही" का सिद्धान्त ही अपनाया जाता है, और क्योंकि भारतीय श्रमिक निर्धन होता है और एक काफी बड़े परिवार का भार उस पर होता है, अतः साधारणतः वह उस समय तक वेतन रहित छुट्टी नही लेना चाहता जब तक यह उसके लिए बहुत ही आवश्यक न हो जाये। केवल यही नहीं, वह कभी-कभी छुट्टियों मे भी काम करना चाहता है। ऐसा प्राय मौसमी व अनियमित कारखानों मे देखा जाता है। मालिक भी श्रमिकों से मिलकर छुट्टी वाले दिन कारखाना खुला रखते है। यह इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि कहीं-कहीं हाजिरी के रजिस्टर में तो श्रमिक साप्ताहिक छुट्टी के दिन अनुपस्थित दिखाया गया होता है परन्तु वेतन की बही पर सप्ताह के सातों दिनो का भुगतान मिलता है। अवकाश और छुट्टियाँ भी श्रमिक को उसके अधिकार के रूप मे नही अपितु मालिक की विशेष कृपा के रूप मे प्रदान की जाती है। परिणामस्वरूप अत्यन्त पक्षपात तथा असमान व्यवहार होता है और बहुधा श्रमिक सघ के कार्यकर्ताओं को इस विषय मे दण्डित किया जाता है। बीमारी की छुट्टी के लिये कारखाने के डाक्टर का प्रमाण-पत्र उपस्थित करना पडता है, परन्तु वे सदैव पक्षपात रहित नही होते और बहुधा अवैध घूस भी लेते है। अत. अधिनियमो की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वे किस प्रकार कार्यान्वित किये जा रहे है और यह तभी सम्भव है जब पर्याप्त निरीक्षण और मालिकों का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो। अनेक राज्यों मे ऐसा देखा गया है कि अधिनयमों की धाराओ को ठीक से नही लागू किया जाता। यदि मालिको को अपने श्रमिकों मे एक सन्तोष की भावना पैदा करनी है और उनकी कार्य-कुशलता बढानी है तो उन्हे सवेतन छुट्टियो का मूल्य तथा उनकी महत्ता को भली-भाँति अनुभव करना चाहिये।

छुट्टियों की न्यूनतम सख्या

काँग्रेस की राष्ट्रीय आयोजना समिति की श्रम उपसमिति ने इस बात की सिफारिश की थी कि प्रत्येक औद्योगिक श्रमिक को १२ माह नौकरी करने के बाद १० कार्य के दिनो की सवेतन छुट्टियाँ मिलनी चाहियें, जिनमे सार्वजनिक छुट्टियाँ सम्मिलित नही होनी चाहिये, परन्तु डा० बी० आर० सेठ ने एक नोट मे अपना यह मत प्रकट किया कि श्रमिकों के लिये दस दिन की छुट्टियाँ इतनी पर्याप्त नहीं है कि वह दैनिक मेहनत के बाद कुछ आराम पा सके और अपने स्वास्थ्य को ठीक कर सके जबकि वास्तव मे छुट्टियाँ देने का मुख्य उद्देश्य यही है। श्रमिक अधिकतर छुट्टियाँ अपने घर व्यतीत करना चाहते है और उनका घर साधारणतया औद्योगिक नगरो से काफी दूर होता है। इसलिये थोड़े दिनो के लिये वे यात्रा का व्यय आदि

वहन करना पसन्द नहीं करेंगे। अत. १२ माह की नौकरी के बाद सवेतन छुट्टियों की न्यूनतम संख्या १२ दिन होनी चाहिये और प्रत्येक वर्ष इस संख्या में एक दिन की वृद्धि होनी चाहिए। इस प्रकार अधिकतम छुट्टियों की संख्या ३० दिन तक होनी चाहिये जोकि श्रमिकों को १८ वर्ष की नौकरी के पश्चात् मिल सकें। श्रमिकों को कम से कम दो वर्ष तक अपनी छुट्टियाँ एकत्रित करने की सुविधा होनी चाहिये। मालिकों को असुविधा न हो इसलिये छुट्टियाँ ऐसे समय दी जा सकती हैं जबकि कार्य और व्यापार में कुछ शिथिलता हो। एक समय में दस प्रतिशत से अधिक कर्मचारियों को छुट्टी प्रदान नहीं करनी चाहिये। इस बात का भी सुझाव दिया गया है कि छुट्टियों के दिनों का वेतन मालिकों द्वारा संचित ऐसी निधि से दिया जाना चाहिए जो सार्वजनिक नियन्त्रण में हो। मालिकों को इस निधि में धन, अपने श्रमिकों की संख्या तथा कुल मजदूरी के बिल के अनुसार जमा करना चाहिये। छुट्टियों के दिनों का वतन श्रमिकों को छुट्टी से वापिस आने पर मिलना चाहिये, जिससे श्रमिकावर्त्त के दोष कम हो जायें।

कृषि श्रमिकों के लिए भी सवेतन छुट्टियों की महत्ता स्वीकार कर ली गई है और अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन ने जून १९५२ में अपने ३५वें अधिवेशन में इस सम्बन्ध में एक अभिसमय भी पास किया था। कृषि श्रमिकों के लिए एक वर्ष की नौकरी के बाद कम से कम एक सप्ताह की छुट्टी की सिफारिश की गई है और १८ या १६ वर्ष से कम आयु के लोगों के लिए छुट्टियों की संख्या इससे भी अधिक होनी चाहिये। आशा है कि इस अभिसमय को भारतीय सरकार स्वीकार कर लागू कर देगी।

श्री वी वी गिरि ने राष्ट्रीय तथा पर्वो की छुट्टियों के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किया है। ऐसी छुट्टियों में प्रत्येक राज्य तथा स्थान पर विभिन्नता पाई जाती है, परन्तु विभिन्न उद्योगों तथा कारखानों में छुट्टियों की संख्या में समता अवश्य होनी चाहिये। कुछ संस्थाओं में राष्ट्रीय तथा पर्व सम्बन्धी छुट्टियों की संख्या बहुत है। हमें अत्यधिक अवकाश तथा कम काम की बात ही नहीं सोचनी चाहिये परन्तु इसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि ऐसे लोगों के लिये जिनके जीवन में कोई अन्य सुख और शान्ति नहीं है, हमारे पुराने पर्व ही मनोरंजन तथा विश्राम के सर्व उपयुक्त साधन हैं। अत हमारी अवकाश की इच्छा तथा उत्पादन के प्रति उत्तरदायित्व में एक कार्योचित सामञ्जस्य होना चाहिये, और राष्ट्रीय तथा पर्व सम्बन्धी छुट्टियाँ प्रदान करने के लिये एक समान नीति अपनानी चाहिये। सरकार इस ओर ध्यान दे रही है और इस समस्या पर अनेक श्रम सम्मेलनों में भी विचार किया जा चुका है।

भारतीय श्रमिक संघ आन्दोलन

TRADE UNIONISM IN INDIA

श्रमिक संघ की परिभाषा—विभिन्न मत

श्रमिक सघो के उद्गम पर प्रकाश डालते हुए विभिन्न लेखको ने इन सघों की विभिन्न परिभाषायें दी है। सिडने और बैट्रिस वैब[1] के मतानुसार "एक श्रमिक संघ मजदूरी प्राप्त करने वालों का एक ऐसा निरन्तर समुदाय है जिसका उद्देश्य उनकी कार्मिक जीवन की स्थितियों को सुधारना तथा कायम रखना है।" वैब के अनुसार इन सघों का मूल उद्देश्य "रोजगार की स्थितियों को इस प्रकार सक्रिय रूप से नियमित बनाने का है कि श्रमिको को औद्योगिक प्रतिस्पर्द्धा के बुरे प्रभावो से बचाया जा सके।" इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये सामाजिक विकास की स्थिति के अनुसार पारस्परिक बीमा, सामूहिक सौदाकारी (Collective Bargaining) तथा कानूनी विधि जैसे तरीकों को अपनाया जाता है। उनके मतानुसार प्रजातान्त्रिक समाज मे एक ऐसे श्रमिक सगठन की अत्यन्त आवश्यकता है जिसके द्वारा श्रमिक भी अपने रोजगार की स्थितियों को नियन्त्रित करने मे कुछ योग दे सके। इस प्रकार से श्रमिक सघो के विकास को पूंजीवादी व्यवस्था की एक घटनामात्र नही कहा जा सकता, बल्कि प्रजातन्त्र राज्य मे उनका एक स्थायी महत्व है। एक अन्य विद्वान् के अनुसार "श्रमिक आन्दोलन एक परिणाम है, जिसका मुख्य कारण मशीन है।"[2] मशीन श्रमिको की रोजगार सम्बन्धी सुरक्षा मे बाधक सिद्ध होती है। श्रमिक अपने बचाव के लिये सघों के द्वारा मशीन पर नियन्त्रण पाने का प्रयत्न करता है, और इस प्रकार से ये सघ सामाजिक कल्याण मे सहायक सिद्ध होते है। श्रमिक सघ आन्दोलनो द्वारा वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था के स्थान पर एक औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना करने का प्रयत्न किया जाता है। रॉबर्ट हॉक्सी का विश्वास है कि श्रमिक संगठन सामूहिक मनोविज्ञान (Group Psychology) के कारण उत्पन्न हुए है। श्रमिक संघ ही ऐसी संस्था है, जिसमे श्रम सम्बन्धी अनेक समस्याओं तथा श्रमिकों की उन्नति के कार्यक्रमों पर सामूहिक रूप से विचार किया जाता है। 'सेलिग पर्लमैन' के अनुसार किसी भी देश मे श्रमिक सघ आन्दोलन का स्वरूप उस

1. *History of Trade Unionism* by Sidney and Beatrice Webb

2. Frank Tonnenbaum—Quoted in *Insights into Labour Issues* by Lester and Shister.

देश के बुद्धिमान लोगो के कार्यों, पूंजीवाद से विरोध तथा लोगो मे रोजगार पाने की इच्छाओ के पारस्परिक सामजस्य पर निर्भर करता है। कार्ल मार्क्स के मतानुसार सघ ही सबसे प्रथम तथा सबसे अग्रगामी 'सगठन केन्द्र' (Organising Centre) था।[3] श्रमिकों के सगठित होने का प्रारम्भ इन सघो से ही होता है। सगठन की अनुपस्थिति मे श्रमिक रोजगार पाने के लिये आपस मे ही प्रतिस्पर्द्धी बने रहते थे। श्रमिक सघो के विकास का वास्तविक कारण यही है कि श्रमिक इस स्पर्द्धा को समाप्त कर देना चाहते थे, या इस स्पर्द्धा को इतना सीमित कर देना चाहते थे, कि उनको रोजगार की ऐसी शर्तें प्राप्त हो सकें जिनमे उनका स्तर दासता की श्रेणी से ऊँचा उठ सके। मार्क्स के विचार म श्रमिक सगठन ही एक ऐसा साधन और केन्द्र है जिसके अन्तर्गत कार्य करते हुये श्रमिक वर्ग समाज की व्यवस्था म परिवर्तन कर सकता है। जिस प्रकार मध्य-कालीन नगरपालिकायें तथा समितियां 'बुर्जुआ' वर्ग के सगठन का केन्द्र थी, श्रमिक सघ उसी प्रकार से मजदूर वर्ग (Proletariat) के सगठन के केन्द्र हैं। इस प्रकार से श्रमिक सघो का अपने साधारण कार्यों के अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी है कि वे श्रमिक वर्ग को राजनैतिक मुक्ति के हेतु सगठन का केन्द्र बनें।

श्रमिक सघवाद का विकास

श्रमिक सघवाद का विकास आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था के परिणामस्वरूप ही हुआ है। पहले जब मालिकों तथा श्रमिकों में पारस्परिक सम्पर्क रहता था तब उनके सम्बन्धों को उचित रूप देने के लिए किसी विशेष सगठन की आवश्यकता नही पडती थी। परन्तु आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था मे वह पारस्परिक सहयोग तथा सम्पर्क समाप्त हो गया है और उनके सम्बन्ध अत्यन्त कटु हो गये हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक औद्योगिक जीवन मे मजदूर वर्ग व्यक्तिगत रूप मे सौदा करने मे अपने मालिक की अपेक्षा निर्बल होता है। इसका कारण श्रम की विशेषतायें हैं। श्रम एक नाशवान् वस्तु है। इसको सचित नही किया जा सकता। श्रमिक यदि काम नही करेगा तो उसे भूखा रहना पडेगा। इसके विपरीत मालिक प्रतीक्षा कर सकते हैं। अत श्रमिक मालिको से उचित शर्तों पर सौदा करने मे असमर्थ रहते है, और मालिक अधिक लाभ प्राप्त करने के हेतु उनका शोषण करने मे सफल हो जाते है। व्यक्तिगत रूप से श्रमिक अपना महत्व तथा बाजार मे अपना मूल्य भी ठीक प्रकार से नही आँक पाता। अत प्रत्येक देश म औद्योगिक प्रगति के प्रारम्भ मे ही श्रमिकों को इस सत्य का आभास हो गया कि जब तक वे श्रमिक सघो की सहायता के द्वारा अपनी सौदाकारी की शक्ति को प्रबल न बनायेंगे तब तक वे मालिको के शोषण से अपनी सुरक्षा नही कर सकते। इस प्रकार श्रमिक सघो की उत्पत्ति हुई। उनके विकास की गति तथा कार्यों का स्वरूप प्रत्येक देश की

2 *Marx and the Trade Unions* by A Lazovsky

राजनैतिक, आर्थिक तथा बौद्धिक प्रगति पर निर्भर रहा है। इससे सामाजिक संघर्ष का संकेत मिलता है, परन्तु साथ ही ये सामाजिक उन्नति के परिचायक हैं।

संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि श्रमिक सघ मजदूरो का सगठन है। श्रमिक स्वय को सगठित करते है, चन्दा जमा करते है, तथा अपने सघ को कानून के अनुसार पंजीकृत करवाते हैं, और फिर उनका यह सघ श्रमजीवियों के हित के लिये अनेक कार्य करता है। पारिभाषिक दृष्टि से ट्रेड यूनियन अर्थात् 'व्यापार सघ' मे मालिक तथा मजदूर दोनों ही के संघो को सम्मिलित किया जाता है परन्तु साधारणतया 'व्यापार संघ' का तात्पर्य मजदूरो के सगठन अर्थात् श्रमिक सघ से लिया जाता है।

श्रमिक सघों के कार्य

श्रमिक संघों के कार्यों को तीन विभागो में विभाजित किया जा सकता है.–

(१) अन्तर्मुखी कार्य (Intra-mural Activities)—इनके अन्तर्गत वे सब कार्य आते है जिनके द्वारा श्रमिकों के रोजगार की स्थिति मे उन्नति हो सकती है। इन कार्यो का उद्देश्य यह है कि वे श्रमिकों के लिए पर्याप्त मजदूरी, रोजगार व कार्य की अच्छी स्थितियाँ, मालिको से उचित व्यवहार, काम के घण्टो मे कमी आदि की सुविधा प्राप्त करने का प्रयत्न करें। इसके अतिरिक्त ये सघ इस बात का भी प्रयत्न करते है कि श्रमिको को लाभ-सहभाजन (Profit-sharing) तथा औद्योगिक व्यवस्था के नियन्त्रण मे भाग लेने का अधिकार मिले। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ये सघ सामूहिक सौदाकारी, मालिकों से पारस्परिक वार्तालाप, हड़ताल तथा बहिष्कार जैसे साधनो को अपनाते है। इसीलिये इन कार्यो को कभी-कभी "झगड़े या सघर्ष के कार्य" भी कह दिया जाता है।

(२) बहिर्मुखी कार्य (Extra-mural Activities)—इन कार्यो का उद्देश्य श्रमिको की कार्य-कुशलता मे वृद्धि करना तथा आवश्यकता के समय उनकी सहायता करना होता है। श्रमिक सघ श्रमिकों मे सहकारिता तथा मित्रता की भावना उत्पन्न करते है और उनमें शिक्षा व संस्कृति का प्रसार करते हैं। बीमारी व दुर्घटना तथा बेकारी, हड़ताल व तालाबन्दी के समय ये सघ श्रमिको को हर प्रकार की आर्थिक सहायता देते है। आवश्यकता के समय वे श्रमिको को कानूनी सहायता भी प्रदान करते है। इसके अतिरिक्त श्रमिकों के लिये ये सघ अनेक अन्य कल्याणकारी कार्य भी करते है, जैसे *श्रमिकों के बच्चों के लिये स्कूल खोलना, पुस्तकालय तथा वाचनालयो की व्यवस्था करना,* घर के बाहर व भीतर के खेलो का प्रबन्ध करना और अन्य मनोरजन के साधन प्रदान करना। कुछ सघ तो श्रमिकों के लिए मकानों की व्यवस्था भी करते हैं, और उनके लिये पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित करते है। ऐसे कार्यों को 'बन्धुत्व कार्य' (Fraternal Activities) भी कहते है। इन कार्यो की सफलता श्रमिकों के सफल नेतृत्व तथा उनकी पर्याप्त निधि (Funds) पर निर्भर

करती है, जिसका निर्माण संघ के सदस्यों के चन्दे तथा अन्य लोगों द्वारा दी गई आर्थिक सहायता से होता है।

(३) **राजनैतिक कार्य**—कुछ श्रमिक संघ चुनाव लड़ते हैं और सरकार बनाने का प्रयत्न करते हैं। अनेक देशों में शक्तिशाली श्रमिक दलों का विकास हो चुका है और इंगलैण्ड में तो अनेक बार श्रमिक दल ने सरकार बनाई है। भारत में संघों के राजनैतिक कार्य अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं यद्यपि कभी कभी श्रमिक संघों ने सरकार की श्रम नीति को प्रभावित अवश्य किया है और विधान सभाओं में श्रमिकों का प्रतिनिधित्व भी किया है।

श्रमिक संघों के हानि और लाभ

श्रमिक संघों द्वारा किये हुये कार्य श्रमिकों के लिये इतने महत्वपूर्ण तथा हितकारी हैं कि इन संघों का अस्तित्व उनके लिये वरदानस्वरूप है। परन्तु कई बार इनके कार्य आलोचनात्मक भी हो जाते हैं। श्रमिक संघ विवेकीकरण तथा उत्पादन की अन्य उन्नत पद्धतियों के प्रति साधारणतया एक प्रकार का विरोधात्मक दृष्टिकोण सा बना लेते हैं, क्योंकि ऐसी पद्धतियों से कुछ श्रमिकों को काम पर से हटाने की सम्भावना रहती है। इसके अतिरिक्त कभी कभी वे श्रमिकों को कार्य मन्द नीति अपनाने के लिये प्रेरित करते हैं जिससे औद्योगिक विकास में बाधा पहुँचती है और राष्ट्रीय आय की हानि होती है। अनेक बार अपनी शक्ति के नशे में मामूली बातों पर ही संघ हड़ताल करा देते हैं और इस प्रकार से वे न केवल उत्पादकों तथा समाज को हानि पहुँचाते हैं वरन् स्वयं भी हानि उठाते हैं। अनेक बार संघ मालिकों को इस बात के लिये विवश करते हैं कि श्रमिक उनके द्वारा ही काम पर लगाये जायें। इस प्रकार से वे श्रमिकों की पूर्ति में कृत्रिम (Artificial) अभाव उत्पन्न कर देते हैं परन्तु इन दोषों के होते हुये भी श्रमिक संघ अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुये हैं और उनके विकास ने समय की एक बहुत बड़ी आवश्यकता को पूरा किया है। शक्तिशाली संघ उद्योग धन्धों की स्थिरता तथा औद्योगिक शान्ति के हेतु एक आश्वासन है। अगर कोई भी निर्णय सामूहिक रूप से किया जाय तो वह स्वयं श्रमिकों में अधिक मान्य होता है और मालिक भी ऐसे निर्णयों को आसानी से टाल नहीं सकते। ये संघ अपने कार्यों द्वारा न केवल श्रमिकों की रोजगार तथा मजदूरी की अवस्था में सुधार व उन्नति करते हैं वरन् श्रमिकों की कार्य कुशलता बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध होते हैं और उनमें आत्म सम्मान तथा आत्म विश्वास की भावना उत्पन्न करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन संघों की अनुपस्थिति में श्रमिक वर्ग का क्रूरतापूर्वक शोषण होता जो प्रत्येक राष्ट्र की प्रगति के लिये हानिकारक है।

श्रमिक संघों का मजदूरी पर प्रभाव

इस बात पर भी विचार किया जाना आवश्यक है कि श्रमिक संघों का किसी विशेष व्यापार में मजदूरी की दरों पर और सामान्य मजदूरियों पर क्या

प्रभाव पड़ता है। इस प्रश्न पर विभिन्न प्रकार के मत प्रकट किये जाते रहे है और आर्थिक विचारों के इतिहास में इस पर काफी सैद्धान्तिक वाद-विवाद हुआ है। संस्थापक अर्थशास्त्रियों (Classical Economists) का मत था कि सघ मजदूरी मे स्थायी रूप से वृद्धि नही कर सकते, क्योंकि यदि मजदूरी मे वृद्धि होगी तो लाभ कम हो जायेगा। लाभ कम होने से उद्योग धन्धों की सख्या भी कम हो जायेगी। परिणामस्वरूप श्रमिकों की माँग भी गिर जायेगी। इसलिए या तो मजदूरी कम होगी या श्रमिको को बेरोजगारी का सामना करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त मजदूरी श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity) द्वारा निर्धारित होती है। अत श्रमिक सघों का मजदूरी पर कोई प्रभाव नही पडता।

परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री मजदूरी पर श्रमिक सघों के प्रभाव को स्वीकार करते है। श्रमिक सघ प्रत्यक्ष रूप से तो साधारणतया मजदूरी पर प्रभाव नही डालते, परन्तु उनका प्रभाव उन अनेक आर्थिक शक्तियो पर होता है जिनके कारण मजदूरी स्थायी रूप से बढ सकती है। ऐसा दो प्रकार से हो सकता है—प्रथम तो, सघ इस बात का पूरा ध्यान रखते है कि श्रमिक को उसकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार पूरी मजदूरी मिल जाए। सम्पूर्ण प्रतियोगिता मे मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार तो मिलती है परन्तु वास्तविकता यह है कि सम्पूर्ण प्रतियोगिता कम ही होती है। श्रमिको की सौदा करने की शक्ति मालिको की अपेक्षा कम होती है और उनका शोषण होता है तथा उनको सीमान्त उत्पादकता के अनुसार भी मजदूरी नही मिल पाती। श्रमिक सघ मजदूरो की सौदा करने की शक्ति को बढाकर मजदूरी को सीमान्त उत्पादकता की सीमा तक बढा सकते हैं। दूसरे वे स्वय श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता मे वृद्धि कर सकते है और इस प्रकार मजदूरी को स्थायी रूप से बढा सकते हैं। श्रमिक सघ मालिको द्वारा अच्छी मशीन तथा समुचित सगठन की व्यवस्था कराके तथा स्वय श्रमिको मे शिक्षा तथा कल्याणकारी कार्यों का प्रसार करके उनकी कार्य-कुशलता मे वृद्धि कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त श्रमिक सघ किसी विशेष व्यवसाय मे भी श्रमिको की पूर्ति सीमित करके उनकी मजदूरी बढ़ा सकते है, परन्तु उनका यह प्रयत्न अनेक बातो पर निर्भर करता है। प्रथम तो, जो वस्तु श्रमिकों द्वारा निर्मित की जा रही है किसी अन्य साधन से प्राप्त न की जा सके। दूसरे, उस वस्तु की माँग भी बेलोचदार हो, जिससे उसका मूल्य बढाया जा सके। तीसरे, उस वस्तु के निर्माण मे जो कुल खर्चा आता हो, उसमे मजदूरी का अश कम हो, जिससे कि मजदूरी अधिक देने पर भी वस्तु का मूल्य अधिक न बढ़े। चौथे, उत्पत्ति के अन्य साधन तथा अन्य प्रकार के श्रमिक आसानी से मिलते रहें और वे अपनी पूर्ति को सीमित न करें। इन सभी बातों के होने पर ही किसी विशेष व्यवसाय के श्रमिक अपने संघ की सहायता द्वारा अपनी पूर्ति सीमित करके अपनी मजदूरी को बढा सकते है।

अनेक बार ऐसा भी देखा गया है कि श्रमिक सघ मालिको को इस बात के लिए बाध्य करते हैं कि वे श्रमिको के रोजगार व काम की स्थिति म सुधार कर तथा उनको बोनस व महगाई भत्ता आदि के रूप म समय समय पर लाभ म से भी एक भाग देते रहे। इस प्रकार ये सघ सभरण को सीमित करके न केवल नकद मजदूरी (Nominal Wages) मे ही वृद्धि करते ह वरन् असल मजदूरी (Real Wages) म भी वृद्धि कर सकते हैं।

श्रमिक सघो के विभिन्न रूप

श्रमिक सघ कई प्रकार के होते है। प्रथम तो दस्तकारी सघ (Craft Unions) होते हैं जिनको व्यवसायिक सघ भी कहा जाता है। यह एसे श्रमिको के सगठन होते है जो किसी एक विशेष व्यवसाय या दो तीन सम्बन्धित व्यवसायो म काम पर लगे हो। उदाहरणत रेल इजिन के इजीनियरो का सघ और अहमदाबाद जुलाहा सघ आदि। दूसरे औद्योगिक सघ होते हैं। ये सब एक ही उद्योग म लगे हुये श्रमिको का सगठन होते हैं उनका धधा चाहे कोई भी हो। उदाहरणत कपडा उद्योग म लगे हुए श्रमिको का सघ या रेल कर्मचारियो का सघ आदि। अधिकतर श्रमिक सघ औद्योगिक सघ ही होते है। तीसरी प्रकार सगम (Federation) की है। विभिन्न सघ जब किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये सगठित होकर एक सम्मिलित सघ बना लेते है जो उस सगम कहते हैं। ऐसे सगम या तो स्थानीय होते हैं जसे–अहमदाबाद का सूती कपडा सगम या प्रान्तीय होते है जसे–बम्बइ के रेल डाक कर्मचारियो का सगम या राष्ट्रीय भी होते हे जसे—नेशनल फेडरेशन आफ इण्डियन रेलवेमेन या इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन काग्रेस आदि कुछ अन्तर्राष्ट्रीय सगम भी होते है जसे–इण्टरनेशनल का फेडरेशन आफ ट्रेड यूनियन (स्वतन्त्र श्रमिक सघो का अन्तर्राष्ट्रीय सगम)।

श्रमिक सघो के विकास के लिए आवश्यक तत्व

प्रत्येक देश मे श्रमिक सघो के विकास के लिये कुछ बातो का होना आवश्यक है। प्रथम बात तो देश का औद्योगिक विकास है। श्रमिक सघ आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुये है। बडे पमाने के आधुनिक उद्योग धधो की अनुपस्थिति मे श्रमिक सगठन का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे श्रमिक सघो के विकास के लिये यह भी आवश्यक है कि मजदूरो म असतोष की भावना हो। जब तक श्रमिक शोषित अवस्था मे न होगे वे सगठन बनाने की आवश्यकता को अनुभव न करेंगे अत श्रमिक सघो का विकास न हो पायेगा। यह बात इसस स्पष्ट हो जाती है कि विरोधी दल सरकार की त्रुटियो स लाभ उठाते हैं। साम्यवादी दल की आरम्भ मे कई देशो मे यह नीति रही है कि पूजीवादी व्यवस्था को थोडा सा प्रोत्साहन दिया जाये जिससे कि उसके दोष इतने बढ जाय कि उसे समाप्त करने मे कठिनाई न हो। अत जब तक शोषण न होगा और

श्रमिक भाग्यवादी बने रहेंगे, श्रमिक सघ उन्नति नहीं कर सकते। तीसरे, यह भी आवश्यक है कि श्रमिकों के स्वतन्त्र व्यक्तित्व को स्वीकार किया जाये और उन्हें 'दास' न समझा जाय। उनके सगठन भी समाज द्वारा मान्य हों। एक हिटलर जैसी फासिस्ट अर्थ-व्यवस्था मे हम किसी प्रभावशाली श्रमिक सघ की कल्पना भी नही कर सकते। इसके अतिरिक्त श्रमिक सघो के विकास के लिये यह भी आवश्यक है कि श्रमिक शिक्षित हो, उन्हें अपने अधिकारों तथा सगठन के लाभो का ज्ञान हो, उनकी आय इतनी हो कि वे आसानी से सघो को चन्दा दे सके, जनता और सरकार भी उनके उद्देश्यो से सहानुभूति रखती हो, और संघों के नेता भी श्रमिक वर्ग के ही हों। श्रमिक सघों को अपनी उन्नति के लिये बहिर्मुखी कार्यों की ओर भी अधिक ध्यान देना चाहिये।

सक्षेप मे, एक अच्छे और सफल श्रमिक सघ की विशेषतायें निम्नलिखित हैं—(क) सघ के सदस्यों की सख्या अधिक हो—अर्थात् सम्बधित व्यापार या व्यवसाय के अधिकांश श्रमिको का वह प्रतिनिधित्व करती हो। (ख) उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो। (ग) उसके नेता योग्य, ईमानदार तथा श्रमिक वर्ग के हो। (घ) उसके सदस्य शिक्षित हो और उन्हे अपने अधिकारो और कर्त्तव्यो का पूर्ण ज्ञान हो तथा सघ के कार्यों मे उन्हे पूर्ण रुचि हो। (ङ) सदस्यो मे एकता की भावना हो और उनमे प्रतिद्वन्द्विता तथा पारस्परिक द्वेषभाव न हो। (च) सघ अपने सदस्यो की भलाई के लिये बहिर्मुखी कार्यों पर अधिक समय तथा धन व्यय करे।

भारतीय श्रमिक सघ आन्दोलन का इतिहास

प्रारम्भिक इतिहास

भारतीय श्रमिक सघ आन्दोलन का इतिहास अत्यन्त सक्षिप्त है, परन्तु आन्दोलन के इस सक्षिप्त इतिहास मे ही अनुभव तथा क्रान्तिकारी कार्यों के इतने प्रचुर उदाहरण मिलते है, जितने अन्य देशो के अधिक पुराने तथा विकसित आन्दोलनो मे भी नही मिलते।

अन्य देशो की भाँति भारत मे भी श्रमिक आन्दोलन की उत्पत्ति औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप ही हुई है। पिछली शताब्दी के मध्य मे बड़े उद्योगों के विकास के साथ ही औद्योगिक सगठनो की स्थापना की ओर ध्यान आकर्षित हुआ। परन्तु पहले संगठन मालिको के ही स्थापित हुये, जिन्होंने श्रमिको के विरुद्ध अपने हितो की रक्षा के लिये अपने सघ बनाये। सर्वप्रथम यूरोपियन मालिकों ने अपने संघ बनाये और सन् १८६० में ये एक ऐसा अधिनियम पास करवाने मे सफल हुये, जिसके अन्तर्गत काम छोड़ने वाले श्रमिकों पर मुकदमा चलाया जा सकता था। इसका नाम 'श्रमिक सविदा भंग अधिनियम' (Workmen's Breach of Contract Act) था। इसके बाद से ही मालिकों के संगठन अत्यन्त शक्तिशाली होते चले गये और समय-समय पर इन्होने सरकार की श्रम नीति पर काफी प्रभाव डाला है।

मालिको के ऐसे सगठनो को चेम्बर्स ग्राफ कामर्स कहा जाता है। १६१४–१८ के युद्ध तक श्रमिक सगठनो का विकास परिस्थितिया अनुकूल न होने के कारण समुचित रूप से न हो सका। श्रमिक अत्यन्त निधन व कमजोर थे मालिक अत्यन्त शक्तिशाली थे जनता ऐसी बातो के प्रति उदासीन थी तथा सरकार की भी उनसे कोई सहानुभूति न थी।

परन्तु इसका तात्पर्य यह नही है कि औद्योगिक विकास के प्रारम्भ मे श्रमिको के हितो की ओर कोई ध्यान दिया ही नही गया। वरन् सामाजिक कार्यकर्त्ताओ जन उपकारी व्यक्तियो तथा धार्मिक नेताओ द्वारा मनुष्यता का आधार लेकर इस ओर अनेक प्रयत्न किये गये परन्तु ये सब प्रयत्न मनुष्यता तथा धर्म की भावना से प्रेरित होकर ही किये गये थे। इनमे किसी प्रकार की सामूहिक सौदाकारी न थी। सन १८७२ मे बगाल के श्री पी० सी० मजमदार नामक एक ब्रह्मोपदेशक ने बम्बई नगर मे श्रमिको के लिये आठ रात्रि स्कूल स्थापित किये।[4] सन् १८७८ मे कलकत्ता मे ब्रह्म समाज के अन्तर्गत कर्मचारियो के मिशन की स्थापना हुई जिसने धर्म और नैतिकता सम्बन्धी उपदेश दिये तथा श्रमिको व पिछड़ी जातियो के लिये रात्रि स्कूल स्थापित किये। इसी समय पटसन के काम मे लगे हुए श्रमिको को शिक्षा तथा सामाजिक कल्याण के लिये श्री ससीपद बनर्जी ने बर नगर सस्थान की नीव डाली।

यह बात महत्वपूर्ण है कि इस समय से ही मालिको और मजदूरो मे सघर्ष पैदा हो गया था। सन् १८७७ मे नागपुर की एम्प्रेस मिल मे मजदूरी के प्रश्न पर एक हडताल होने का विवरण मिलता है। सन् १८८२ और १८६० के मध्य मे मद्रास और बम्बई मे २५ हडतालो का विवरण पाया जाता है।[5]

सन् १८७५ मे श्री सोराबजी शापुर्जी बगाली जैसे कुछ जन उपकारी व्यक्तियो ने श्रमिको की दयनीय अवस्था की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिये एक आन्दोलन किया जिसका उद्देश्य श्रमिको (विशेषतया महिला व बाल श्रमिको) का सुरक्षा के हेतु कानून बनवाना था परन्तु यह आन्दोलन अधिक प्रभावपूर्ण नही सिद्ध हो सका। केवल सन् १८८१ का प्रथम फैक्टरी अधिनियम ही पास हुआ परन्तु इसके अन्तर्गत श्रमिको को पूर्ण रूप से सुविधाये न मिली और बम्बई मे श्रमिको ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई। इसी समय श्री नारायण मेघजी लोखाण्डे जनता के सम्मुख आये जिन्हे श्रमिको का प्रथम नेता कहा जा सकता है। इन्होने अपना जीवन एक मजदूर के रूप मे आरम्भ किया था और जीवन भर श्रम आन्दोलनो मे सहयोग देते रहे। सन् १८८४ मे इन्होने बम्बई के फैक्टरी श्रमिको का एक सम्मेलन आयोजित किया जिसमे एक निवेदन पत्र[6] (Memorial)

4 R K Mukerjee *Indian Working Class* pages 352 53
5 Palme Dutt *India Today* page 375
6 R K Dass *Labour Movement in India*

तैयार किया गया। इस निवेदन-पत्र में सप्ताह में एक छुट्टी, काम के घंटों में कमी तथा अन्य असुविधाओं को दूर करने के पक्ष मे प्रस्ताव थे। यह निवेदन-पत्र भारतीय फैक्टरी आयोग के सम्मुख प्रस्तुत किया गया, जिसने इस पर विचार भी किया, परन्तु सरकार ने आयोग की रिपोर्ट पर कोई कार्यवाही न की। कारखानों के लिये कानून बनाने के लिये आन्दोलन जारी रहे और श्रमिक श्री लोखाण्डे के नेतृत्व मे इसमे भाग लेते रहे। सन् १८८९ में गवर्नर जनरल से एक निवेदन-पत्र द्वारा प्रार्थना की गई कि श्रमिकों को सुरक्षा प्रदान की जाय। अप्रैल १८९० मे बम्बई में एक बहुत बडी सभा हुई जिसमें १० हजार श्रमिकों ने भाग लिया और २ महिला श्रमिकों ने भाषण भी दिया इसी वर्ष श्रमिको ने सप्ताह मे एक छुट्टी के लिए प्रार्थना करते हुये एक निवेदन-पत्र बम्बई के मिल-मालिक सघ के सम्मुख प्रस्तुत किया। उनकी मांग आसानी से स्वीकार हो गई। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर सन् १८९० में श्री लोखाण्डे ने 'बम्बई मिल-मजदूर सघ' (Bombay Mill-hands' Association) नामक प्रथम श्रमिक संस्था की स्थापना की और एक श्रमिक पत्रिका भी निकाली जिसका नाम 'दीनबन्धु' अर्थात् "निर्धनों का मित्र" था। श्री लोखाण्डे का प्रभाव इस समय काफी बढ गया था और उनको १८९० के फैक्टरी आयोग के सम्मुख गवाही देने के लिये बम्बई का प्रतिनिधि निर्वाचित किया गया, परन्तु यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि बम्बई मिल मजदूर संघ कोई संगठित श्रमिक सघ न था। इसके सदस्यो की न तो कोई सूची थी, न इसकी कोई निधि थी और न इसके कोई नियम थे। श्री लोखाण्डे को श्रमिक आन्दोलन का अग्रदूत नही कहा जा सकता, क्योकि श्रमिको के हित के लिये तथा उनके लिये कानून बनवाने के लिए उन्होने जो भी कार्य किये उनमे जन-सेवा की भावना ही अधिक प्रबल थी।[7]

सन् १८९१ के फैक्टरी अधिनियम के पास होने के साथ ही श्रमिक आन्दोलन का प्रथम अध्याय समाप्त होता है। इसके बाद केवल कुछ स्थानीय आन्दोलन हुये और कुछ नये सघ भी उत्पन्न हुये, परन्तु प्लेग, अकाल तथा आर्थिक मन्दी आदि के कारण इनकी प्रगति अति धीमी रही। श्री बंगाली तथा श्री लोखाण्डे की मृत्यु के बाद आन्दोलन को नेताओं का अभाव अनुभव होने लगा। सन् १८९७ में यूरोपियन और एंग्लो-इण्डियन रेलवे कर्मचारियों का एक सघ (Amalgamated Society of Railway Servants of India and Burma) 'भारत और वर्मा रेलवे कर्मचारी विलयित समिति' के नाम से स्थापित हुआ और इसको भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत कराया गया। सन् १९२८ में इस सस्था का नाम (National Union of Railway Men) 'रेलवे कर्मचारियो का राष्ट्रीय सघ' हो गया। इस सस्था ने भारतीय श्रमिक आन्दोलन मे कोई विशेष

7. Palme Dutt : *India Today*, page 375.

भाग नहीं लिया और इसका कार्यक्रम मुख्यत श्रमिकों के हित सम्बन्धी कार्यों तक ही सीमित रहा।

सन् १९०५ मे बगाल-विभाजन के समय श्रमिक आन्दोलन ने फिर सिर उठाया। इस विभाजन से राजनीतिक असन्तोष फैला और कुछ राजनीतिक नेताओ ने श्रमिको का पक्ष लिया। स्वदेशी आन्दोलन जो इस समय प्रारम्भ हुआ था उससे भी श्रमिको की अवस्था सुधारने के प्रयत्नो मे सहायता मिली। मन्दी के बाद जब व्यवसाय मे कुछ पुनरुत्थान (Revival) हुआ तो श्रमिको द्वारा अधिक मजदूरी की माँग बढी। इसी समय बम्बई की मिलो मे विद्युत् शक्ति आ जाने से कार्य के घटो म वृद्धि हो गई और सरकार के इस विचार के समर्थन मे कि वयस्क पुरुष श्रमिको के काम के घट कम होने चाहियें श्रमिको ने आन्दोलन आरम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप १९०५ और १९०९ के बीच म हडतालो की एक लहर सी आ गई। उदाहरणत बम्बई की अनेक मिलो मे और उत्तरी बगाल रेलवे मे अनेक हडताले हुई। सबसे बडी हडताल श्री तिलक को १९०८ मे ६ वर्ष के कारावास मिलने के विरोध म हुई। यह राजनीतिक हडताल बम्बई म ६ दिन तक चलती रही। इसी समय श्रमिकों के कुछ सगठन भी बन गये जैसे—१९०५ म कलकत्ते मे मुद्रक-सघ और १९०७ म बम्बई म डाक-कर्मचारी सघ। १९१० मे बम्बई के श्रमिको की दूसरी महत्वपूर्ण सस्था 'कामगर हितवर्द्धक सभा' का निर्माण हुआ। इस सस्था न भी "कामगर समाचार" नामक एक पत्र निकाला। इस सघ ने श्रमिको क रहन-सहन की तथा काम करने की अवस्थाओ मे सुधार करने के लिये, उनके झगडे निपटाने के लिए, उनके कार्य के घण्टे कम करने के लिये तथा उन्हे दुर्घटना की क्षति-पूर्ति दिलाने के लिये अनेक सफल प्रयत्न किये और सरकार को प्रार्थना पत्र दिये। १९११ के फैक्टरी अधिनियम के पास होने के साथ-साथ श्रमिक आन्दोलन का दूसरा अध्याय समाप्त होता है।

इस समय तक श्रमिको के जो भी सगठन बने वे एक निरन्तर सस्था के रूप मे न थे। केवल किसी विशेष उद्देश्य या किसी विशेष कार्य की पूर्ति के लिए ही वे अस्थायी रूप मे बनाये जाते थे। श्रमिक सघो का वास्तविक प्रारम्भ लडाई के उत्तरार्द्ध काल मे हुआ जबकि अनेक कारणवश श्रमिको मे असन्तोष की भावना तथा अरक्षा का भय उत्पन्न हो गया था। असन्तोष की भावना श्रमिको मे लडाई से पहले भी थी परन्तु यह अभी तक प्रगट नहीं हो पाई थी क्योंकि श्रमिक अशिक्षित थे, उनम अनुशासन की कमी थी और उनका न कोई सगठन था और न कोई नेता। इसके अतिरिक्त उनमें धैर्य, सहनशीलता तथा दासत्व की भावना भी थी, तथा असह्य परिस्थितियो मे व गाँव लौट जाते थे। अत उनका असन्तोष दबा ही रहा। सन् १९१४-१८ की लडाई ने इन परिस्थितियो को बिलकुल बदल दिया। युद्ध के कारण सभी म विशेषकर औद्योगिक श्रमिको म, जागृति आ गई। युद्ध से लौटे हुए सैनिको ने दूसरे देशो के श्रमिकों की अच्छी अवस्थाओ का वर्णन किया। इसी

क्रान्ति से अन्य देशों में भी क्रान्ति की लहर सी पैदा हो गई थी, और भारतीय श्रमिक भी इससे प्रभावित हुए बिना न रह सके थे। नवीन विचारों तथा नयी आशाओं का संचार हुआ। असन्तोष तथा विरोध करने की भावना अब दबी न रह सकी। इसके अतिरिक्त कीमतों में वृद्धि होने के कारण निर्वाह-खर्च बढ़ गया था, परन्तु मजदूरी में उतनी वृद्धि नहीं हुई थी। लड़ाई के दिनों में उद्योगपतियों ने बहुत लाभ उठाया था और श्रमिक भी उस लाभ में से अपना भाग प्राप्त करना चाहते थे। देश में फैले हुए राजनीतिक असन्तोष के कारण भी श्रमिकों में अपने अधिकारों के प्रति सजगता आ गई थी। कांग्रेस और मुस्लिम लीग में स्वराज्य पाने के लिए एकता हो गई थी। महात्मा गांधी के 'स्वराज्य आन्दोलन' तथा सरकार द्वारा किये गये अनेक अत्याचारों, जैसे—जलियाँवाला बाग दुर्घटना, 'मार्शल-लॉ', 'रालेट अधिनियम' तथा करों में वृद्धि आदि, से देश में एक असन्तोष तथा अस्थिरता की स्थिति आ गई थी। इसके अतिरिक्त 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन' (International Labour Organization) की स्थापना होने से भी श्रमिकों में आत्मसम्मान की भावना उत्पन्न हो गई थी और उन्हें यह अधिकार मिल गया था कि वे इस संघ के वार्षिक सम्मेलनों में अपना एक प्रतिनिधि भेज सकें। अतः स्पष्ट था कि अपने अधिकारों तथा आत्मसम्मान के प्रति सजग हो जाने के बाद अब श्रमिक पुराने सामाजिक अत्याचारों एवं नई आर्थिक कठिनाइयों को सहन नहीं कर सकते थे। नवीन क्रान्तिकारी विचारों के प्रभाव के कारण उनमें नई सामाजिक व राजनीतिक चेतना आ चुकी थी।[8] परिणामस्वरूप यह विरोध व असन्तोष हड़तालों के रूप में प्रकट हुआ, जो १९१८ में प्रारम्भ हुई और १९१९ व १९२० तक समस्त देश में फैल गई। १९१८ में एक बहुत बड़ी हड़ताल बम्बई की कपड़ा मिलों में आरम्भ हुई और जनवरी १९१९ तक १,२५,००० श्रमिक इस हड़ताल में सम्मिलित हो गये थे। १९१९ में रॉलेट अधिनियम के विरुद्ध जो हड़ताल हुई उससे यह स्पष्ट हो गया कि श्रमिक राजनीतिक आन्दोलन में भाग लेने में पीछे नहीं रहे थे। १९१९ में हड़ताल तमाम देश में फैल गई। सन् १९१९ के अन्त में और १९२० के आरम्भ में हड़ताल-लहर ने एक विराट रूप धारण कर लिया था। १९२० के प्रथम ६ महीनों में २०० हड़तालें हुईं जिनमें लगभग १५ लाख श्रमिकों ने भाग लिया।[9]

आधुनिक श्रम संघों के विकास का इतिहास

इन झगड़ों की परिस्थितियों के अन्तर्गत ही भारत में श्रम संघों का जन्म हुआ। मुख्य उद्योग-धन्धों में और विभिन्न केन्द्रों में जो श्रमिक संघ हैं उनका विकास इसी समय से प्रारम्भ हुआ, यद्यपि परिस्थितियोंवश आरम्भ में श्रमिक

8. R. K. Dass : *The Labour Movement in India*, page 23.
9. Palme Dutt : *India Today*, pages 377–78.

संगठन निरन्तर रूप से चालू न हो सका था। इस संघर्ष काल में ही आधुनिक भारतीय श्रम आन्दोलन की नींव पड़ी।

प्रथम श्रमिक संघ के निर्माण का श्रेय श्री बी० पी० वाडिया को है जिन्होंने श्रीमती बेसेन्ट के साथ भी कार्य किया था। श्री वाडिया ने सन् १९१८ में मद्रास के 'चुलाई' नामक स्थान के कपड़ा उद्योग-धन्धों के श्रमिकों को संगठित किया। एक ही वर्ष में श्रमिक संघों की संख्या चार तक पहुँच गई जिसमें २० हजार सदस्य थे। यह वही समय था जबकि सम्पूर्ण देश में श्रमिक संघों की स्थापना के प्रयत्न किये जा रहे थे। इस बात का भी पता चलता है कि सन् १९१७ में अहमदाबाद के सूती कपड़ा मिलों के श्रमिकों ने कुमारी अनुसूइया बहिन[10] के नेतृत्व में एक संघ बनाया। कुमारी अनुसूइया बहिन ने अहमदाबाद के श्रमिकों की हड़ताल का भी नेतृत्व किया। परन्तु श्रमिक संगठन के लिए जो विधिपूर्वक प्रथम प्रयास हुआ वह श्री वाडिया का ही था। इस संघ की सदस्यता नियमित थी, जिसके लिये शुल्क भी देना पड़ता था। दूसरे उद्योग केन्द्रों ने भी इसका अनुकरण किया और स्थानीय श्रमिकों के संगठन बनने लगे। १९१९ व १९२३ के बीच में अनेक संघों की स्थापना हुई। श्री मिलर के नेतृत्व में पंजाब के रेल कर्मचारियों का एक शक्तिशाली संघ बना। महात्मा गांधी की प्रेरणा से अहमदाबाद में कई व्यवसायिक संघों की स्थापना हुई, जैसे—कातने वालों का संघ और बुनने वालों का संघ आदि। ये सब संघ एक संगम में संयुक्त हो गये, जिसका नाम 'अहमदाबाद कपड़ा मिल मजदूर परिषद्' (Ahmedabad Textile Labour Association) रक्खा गया। यह संगम देश के अधिकांश सफल संघों का एक उदाहरण है और यह वर्ग-शान्ति के आधार पर स्थापित है और आज भी इसका स्थान दूसरे संघों से कुछ ऊँचे स्तर पर है।

प्रारम्भ में ये संघ अधिकतर हड़ताल समितियों की भांति चालू रहे। जैसे ही उनकी मांगें पूरी हो जाती थी संघ भी समाप्त हो जाते थे। ऐसे संघ हड़ताल की पूर्व सूचना कम देते थे और अपनी शिकायतों को ठीक से प्रस्तुत भी नहीं कर पाते थे। कई बार ऐसा होता था कि उनके कार्यों व बातों में दृढ़ता न होती थी और बहुधा वे ऐसी माँगें प्रस्तुत कर देते थे जिनका पूरा करना कठिन होता था। इसके अतिरिक्त ये संघ एक दूसरे से पृथक् भी रहते थे और इनमें एकता नहीं थी। देश में इस समय कोई ऐसा कानून भी न था जिसके अन्तर्गत श्रमिक संघों को मान्यता प्राप्त होती। मालिकों का व्यवहार भी संघों के प्रति विरोधपूर्ण था। मालिकों और संघों में सदा खींचातानी चलती रहती थी। इस खींचातानी के परिणामस्वरूप सन् १९२१ में एक बड़ा झगड़ा हुआ जबकि मद्रास की बकिंघम मिलों में एक तालाबन्दी के बाद हड़ताल घोषित कर दी गई। मालिकों ने हाईकोर्ट से मद्रास श्रमिक संघ के विरुद्ध मजदूरों को हड़ताल के लिए बहकाने के आरोप में

१० यह मिल मालिक संघ के अध्यक्ष श्री अम्बालाल साराभाई की बहिन थी।

एक व्यादेश (Injunction) प्राप्त कर लिया। संघ पर इस अभियोग के परिणाम-स्वरूप ७,००० पौंड का जुर्माना हुआ। श्री वाडिया ने विवश होकर इस शर्त पर कि मिल वाले संघ से जुर्माना वसूल न करें श्रमिक संघ आन्दोलन से अपना सम्बन्ध तोड दिया। इस घटना से यह विदित हो गया कि श्रम आन्दोलन को समाप्त करने के लिये मालिकों के हाथ में एक शक्तिशाली शस्त्र था और श्रमिक नेताओं ने यह अनुभव किया कि श्रमिक संघों के कार्यों को नियमानुसार करने पर भी उन पर मुकदमा चलाया जा सकता था। सन् १९२१ में श्री एन० एम० जोशी ने इस बात का प्रयत्न किया कि एक श्रमिक संघ कानून बनाया जाये और विधान परिषद् में उन्होंने एक विधेयक (Bill) प्रस्तुत किया, परन्तु वह उसे पास कराने में सफल न हो सके।

यही समय था जबकि श्रम संघों में सामंजस्य (Coordination) स्थापित करने के प्रयत्न आरम्भ हुये। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के वार्षिक सम्मेलनों में *श्रमिकों के प्रतिनिधियों के चुनाव की आवश्यकता ने भी इस आन्दोलन को* प्रोत्साहन दिया। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की सन् १९२० में इसी उद्देश्य से स्थापना हुई। यह कांग्रेस पहली अखिल भारतीय संस्था थी जिसने यह स्पष्ट कर दिया कि सम्पूर्ण देश में श्रमजीवियों का ध्येय एक ही है। परन्तु यह बात अर्थपूर्ण है कि इस समय श्रम आन्दोलन में पहिला पग राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने उठाया। यह इस बात से स्पष्ट होता है कि ट्रेड यूनियन कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के सभापति कांग्रेस के अनुभवी नेता लाला लाजपतराय थे और स्वागत समिति के अध्यक्ष दीवान चमनलाल थे। कर्नल वैजवुड बैन जो इंगलैंड के श्रम-नेता थे इस अधिवेशन में उपस्थित थे। बाद में इसके सभापति देशबन्धु चितरंजन दास, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्री सुभाषचन्द्र बोस और श्री वी० वी० गिरि भी हुये। राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी श्रमिकों को संगठित करने और उनके आन्दोलन को शक्तिशाली करने के लिये एक श्रम उप-समिति की स्थापना की। इन सब बातों से स्पष्ट होता है कि श्रम आन्दोलन श्रमिकों की केवल प्रतिदिन की आर्थिक समस्याओं तक ही सीमित नहीं रहा। परन्तु इसमें राजनीतिक रंग भी आ गया। असम में चाय बागान के श्रमिकों की जो इस समय हड़ताल हुई वह इस राजनीतिक रंग का ही द्योतक है। परन्तु इस बात में भी कोई सन्देह नहीं कि ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने श्रमिकों की समस्याओं और उनकी आवश्यकताओं के महत्व पर प्रकाश डालने में बड़ा भारी कार्य किया। सन् १९२४ में 'सुधार समिति' (Reforms Committee) के सामने इस कांग्रेस ने इस बात की माँग रखी कि विधान सभा में श्रमजीवियों के अधिक सदस्य हों। इसने कई प्रस्तावों द्वारा श्रमिकों की दुर्दशा की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया और "श्रमिक संविदा भंग अधिनियम" जैसे कठोर और बुरे कानून को रद्द कराया।

इसी समय सन् १९२२ में रेलवे कर्मचारियों के *अखिल भारतीय संगम* की स्थापना हुई जिससे रेलवे कर्मचारियों के सभी संघ सम्बद्ध हो गये। श्रमिकों के

और कई संगठन जैसे बंगाल के श्रमिक संघों का संगम और बम्बई का केन्द्रीय श्रमिक बोर्ड आदि की स्थापना भी इसी समय हुई।

परन्तु इस समय श्रम आन्दोलन में झगड़ा करने की प्रवृत्ति कुछ अधिक मालूम होने लगी और साम्यवादी लोग (Communists) श्रमिकों में दिखाई देने लगे। इस साम्यवादिता की ओर सरकार का ध्यान सबसे पहले कानपुर में गया, जबकि सन् १६२४ में कुछ साम्यवादी श्रमिकों को षड्यन्त्र के आरोप में बन्दी बना लिया गया और उन पर मुकदमा चलाया गया और भिन्न-भिन्न अवधि के लिये उन्हें दण्डित किया गया। सरकार ने इस नई प्रवृत्ति को रोकने के लिये कई कदम उठाये। सन् १६२१ में बंगाल में और १६२२ में बम्बई में औद्योगिक अशान्ति और विवाद की समस्याओं पर सुझाव देने के लिये समितियाँ नियुक्त की गई। बम्बई और मद्रास में इसी समय श्रम विभागों की भी स्थापना हुई। एक श्रमिक संघ विधेयक भी तैयार किया गया, और लोगों की राय लेने के लिये परिचालित किया गया, जो सन् १६२६ में स्वीकृत होकर अधिनियम बना।

सन् १६२६ का यह अधिनियम श्रमिक संघ आन्दोलन के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत श्रमिक संघों को वैधानिक मान्यता प्राप्त हो गई। प्रारम्भ में संघों ने रजिस्टर कराने में बहुत उत्साह नहीं दिखाया क्योंकि बकिंघम मिल की घटना के बाद से किसी संघ पर अभियोग नहीं चलाया गया था और संघ इस बात पर तैयार नहीं थे कि रजिस्ट्रेशन का खर्चा उठायें और वार्षिक ब्यौरा देने की भी असुविधा अपने ऊपर लें। परन्तु ऐसी भावना अधिक दिन न टिक सकी क्योंकि यदि कोई श्रमिक संघ पंजीकृत न होता था तो मालिकों को उसको मान्यता न देने का बहाना मिल जाता था। पंजीकृत श्रमिक संघों की संख्या अब तीव्र गति से बढ़ने लगी।

सन् १६२६ के बाद से श्रमिक आन्दोलनों का नेतृत्व साम्यवादियों के हाथों में चला गया। ये साम्यवादी श्रमिक संघ आन्दोलन की आड़ में अपना कार्य करते रहे। दूसरे देशों के कुछ साम्यवादी, जैसे—ब्रिटिश साम्यवादी दल के नेता स्प्रट एवं ब्रैडले १६२७ में कानपुर ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेते हुए देखे गए। इन साम्यवादियों ने सन् १६२७ में एक मजदूर और किसान पार्टी की भी स्थापना की जिसका उद्देश्य यह था कि नये श्रमिक संघों की स्थापना हो और जो संघ बन चुके थे उनको सुधारवादियों के नियन्त्रण से निकाल लिया जाये। बम्बई में एक संघ 'गिरनी कामगार संघ' के नाम से चालू किया गया जिसकी सदस्यता ५४,००० तक पहुँच गई।[11] इसने यथेष्ठ धनराशि भी एकत्रित की और सन् १६२८ में एक हड़ताल को छः माह तक चालू रखा। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर साम्यवादियों ने अपना कार्य बंगाल तक फैला दिया और कलकत्ता में एक प्रचार केन्द्र भी खोला। सन् १६२७ में श्री सकलातवाला के आने पर ये

---

11 B Shiva Rao *Industrial Worker in India*, page 152

साम्यवादी एक पृथक् दल के रूप मे सामने आये जिसके कार्य करने के ढंग, कार्यक्रम तथा विचार अलग ही थे। परिणाम यह हुआ कि अशान्ति और हड़तालों का युग देश में व्याप्त हो गया। कई हड़ताले बम्बई की सूती कपडा मिलों में, तेल कारखानो में और जी० आई० पी० रेलवे आदि में हुई। सन् १६२८ में झरिया में साम्यवादियों ने इस बात का पूरा प्रयत्न किया कि अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस पर अधिकार जमा लें। सरकार को उनके बढते हुए प्रभाव से चिन्ता हुई और सरकार ने अपनी इस दोहरी नीति को अपनाया कि एक ओर तो कठोरता से दवाया जाय और दूसरी ओर कुछ सुधार का वचन दिया जाय। कठोरता की नीति का परिणाम तो यह हुआ कि श्रमिक वर्ग में जो प्रमुख साम्यवादी नेता थे उन्हें बन्दी बना लिया गया और उन पर मुकदमा चलाया गया। यह मुकदमा ससार के बहुत बडे और खर्चीले मुकदमो मे से एक था। यह मेरठ मे चार वर्ष तक चलता रहा और 'मेरठ ट्रायल' (*Meerut Trial*) के नाम से मशहूर हुआ। नेताओं को भिन्न-भिन्न अवधि के लिये दण्डित किया गया। सरकार के सुधार के वचन के परिणामस्वरूप रॉयल श्रम आयोग की सन् १६२८ में नियुक्ति हुई जिसका नाम 'ह्निटले कमीशन' भी था। सन् १६२६ में बम्बई में बन्दरगाहो मे काम करने वाले श्रमिकों के लिये एक जाँच समिति की स्थापना हुई। इस समिति ने *अशान्ति और झगडो का दोष 'गिरनी कामगर सघ'* पर लगाया तथा साम्यवादियो के विरुद्ध कठिन कार्यवाही करने के सुझाव दिये। पहला 'व्यवसाय विवाद अधिनियम' (Trade Disputes Act) १६२६ में पारित हुआ।[12]

इसके पश्चात् साम्यवादियों और सुधारवादियों मे अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन कांग्रेस पर अपना आधिपत्य जमाने के लिये खींचातानी प्रारम्भ हुई। *सयमी (Moderate) श्रमिक सघो को साम्यवादियों के प्रभाव से शंका उत्पन्न हो* गई थी। ट्रेड यूनियन कांग्रेस के दसवें अधिवेशन मे, जो नागपुर मे १६२६ में पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुआ, आमूल परिवर्तन चाहने वालो (Radicals) ने कुछ प्रस्ताव पास करा लिये जिनमें से मुख्य प्रस्ताव रॉयल श्रम आयोग का बहिष्कार करने और ट्रेड यूनियन कांग्रेस को मॉस्को की 'तीसरी इन्टरनेशनल' से सम्बद्ध कराने के हेतु थे। इसका परिणाम यह हुआ कि सयमी दल श्री एन० एम० जोशी के नेतृत्व मे, कांग्रेस से पृथक् हो गया और अपनी अलग संस्था बना ली जिसका नाम उन्होंने 'अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन फेडरेशन' रक्खा। ट्रेड यूनियन कांग्रेस को, जिसके नये अध्यक्ष श्री सुभाषचन्द्र बोस चुने गये थे, अपने कार्य मे अब कठिनाई प्रतीत होने लगी। रेल कर्मचारियो का जो सगम था वह इन झगडो से अलग ही रहा। साम्यवादी इतने शीघ्र विभाजन के लिये तैयार न थे। उनका आपस में मतभेद हो गया। कुछ लोग तो मॉस्को की तीसरी इण्टरनेशनल के बताये हुये नियमो पर चलने के पक्ष में थे और कुछ लोग श्री एम० एन० राय के पक्ष मे थे, जो इस समय भारत मे गुप्त रूप से कार्यवाहियाँ कर रहे

12. See under Industrial Disputes Legislation.

थे। श्री राय की गिरफ्तारी तथा सन् १६३० में महात्मा गांधी के सिविल आज्ञा-उल्लंघन आन्दोलन के कारण संगठित रूप से कोई कार्यवाही करना कठिन हो गया। परिणामस्वरूप सन् १६३१ में कलकत्ता में ट्रेड यूनियन कांग्रेस अत्यन्त शोर और गड़बड़ के बाद दो और खण्डों में विभाजित हो गई। और कुछ लोगों ने श्री देशपांडे और श्री रणदिवे के नेतृत्व में एक और संस्था की स्थापना की जिसका नाम 'अखिल भारतीय रैड ट्रेड यूनियन कांग्रेस' रखा।

इसके पश्चात् संघों में राष्ट्रीय कांग्रेस का नेतृत्व फिर से प्रकट होने लगा। सन् १६३१ में समझौते के प्रयत्न आरम्भ हुए और रेलवे कर्मचारियों के संगम के पदाधिकारियों के प्रयत्नस्वरूप एक 'श्रमिक संघ एकता समिति' की स्थापना हुई जिसने एकता लाने के लिये एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया। सन् १६३४ में पंडित हरिहरनाथ शास्त्री की अध्यक्षता में जब ट्रेड यूनियन कांग्रेस का वार्षिकोत्सव हुआ तब उसमें साम्यवादियों से समझौता हो गया और रैड ट्रेड यूनियन कांग्रेस को समाप्त कर दिया गया। सन् १६३८ में श्री वी० वी० गिरि के प्रयत्नस्वरूप ट्रेड यूनियन फैडरेशन भी ट्रेड यूनियन कांग्रेस में सम्मिलित हो गई। इस प्रकार समा-मेलित हुई अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन सन् १६४० में बड़े समारोह के साथ नागपुर में हुआ। इसके सभापति डॉ० सुरेश बनर्जी और जनरल सेक्रेटरी श्री एन० एम० जोशी थे। विभाजन नागपुर में ही हुआ था और नागपुर में ही फिर सब एक हो गये। इस बात से बचने के लिये कि पहिले जैसे विवादों और विभाजन का अवसर न आये, यह निर्णय किया गया कि कोई भी राजनैतिक प्रस्ताव तब तक पास नहीं होगा जब तक कि वह उपस्थित सदस्यों की तीन चौथाई संख्या को मान्य न हो।

इसी समय कलकत्ते में बंगाल श्रम संघ की स्थापना हुई और सन् १६३४ में श्री जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में पटना में समाजवादी दल का जन्म हुआ। 'हिन्दुस्तान मजदूर सेवक संघ' की भी एक श्रम सलाहकार समिति के रूप में स्थापना हुई जिसका सम्बन्ध अहमदाबाद कपड़ा मिल मजदूर परिषद् से था और जिसका उद्देश्य श्रम आन्दोलन को गाँधीवाद के सिद्धान्तों, जैसे—अहिंसा सच्चाई तथा त्याग आदि, पर चलाना था।

परन्तु यह एकता अधिक दिनों न चल पाई। सन् १६३६ में जब लड़ाई प्रारम्भ हुई तब फिर विच्छेद हो गया। कांग्रेसी नेता सब जेल चले गये और अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस में साम्यवादियों का प्रभाव बढ़ गया। इस कांग्रेस ने प्रारम्भ में तो युद्ध के प्रति तटस्थता को अपनाया, परन्तु कुछ लोग श्री एम० एन० राय के नेतृत्व में लड़ाई के प्रयत्नों में पूरा-पूरा सहयोग देने के पक्ष में थे। श्री एम० एन० राय और उनके अनुगामियों ने अलग संस्था बना ली जिसका नाम उन्होंने 'इण्डियन फैडरेशन ऑफ लेबर' रखा। इस संगम को सरकार से आर्थिक सहायता मिलने के कारण जनता का पूर्ण समर्थन प्राप्त न हो सका।

इस प्रकार लड़ाई के दिनों में दो अखिल भारतीय श्रमिक संघ संस्थायें थीं।

एक तो 'अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस' और दूसरी 'इण्डियन फैडरेशन ऑफ लेबर'। १९४४ में भारत सरकार ने इस बात को मान लिया कि इन दोनों ही संस्थाओं को बारी-बारी से अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में प्रतिनिधित्व करने का अधिकार दिया जाय। इसीलिये १९४४ में फैडरेशन से और १९४५ में ट्रेड यूनियन कांग्रेस से प्रतिनिधि भेजने के लिए परामर्श लिया गया। १९४६ में सरकार ने इस बात की जाँच की कि इन दोनों संस्थाओं में से कौनसी संस्था श्रमिकों का अधिक प्रतिनिधित्व करती थी और इस बात की घोषणा की गई कि अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का प्रतिनिधित्व अधिक था।

जून १९४७ में फिर एक विभाजन हो गया। युद्ध के पश्चात् औद्योगिक अशान्ति की एक तीव्र लहर सी सारे देश में फैल गई। जब कांग्रेस ने शासन-भार संभाला तो उसने देखा कि श्रमिकों पर साम्यवादियों का अधिक प्रभाव था। प्रारम्भ में कांग्रेस ने श्रम की समस्याओं को 'हिन्दुस्तान मजदूर सेवक संघ' के द्वारा हल करने की चेष्टा की तथा अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस पर प्रभाव जमाने का प्रयत्न किया। परन्तु अन्त में मई १९४७ में राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रमुख नेताओं ने एक सम्मेलन में, जिसमें हिन्दुस्तान मजदूर सेवक संघ के अध्यक्ष सरदार पटेल और सचिव श्री गुलजारीलाल नन्दा ने भी भाग लिया, एक पृथक् श्रमिक संगम बनाने का निर्णय किया। परिणामस्वरूप भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (Indian National Trade Union Congress) की स्थापना हुई। इस संस्था ने जल्दी ही जोर पकड़ लिया। सन् १९४६ और १९४७ में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में प्रतिनिधि भेजने के लिये अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस को निमन्त्रित किया गया था, परन्तु दिसम्बर १९४७ में भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने भारत में संगठित श्रमिकों का अधिक प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था होने का दावा किया। सरकार ने १९४८ में इस बात की सरकारी जाँच कराई। इससे यह ज्ञात हुआ कि अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की सदस्य-संख्या ८,१५,०११ थी और भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की सदस्य-संख्या ९,७३,१७९ थी। इस प्रकार सरकार ने इस बात को मान लिया कि भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस ही संगठित श्रमिकों का अधिक प्रतिनिधित्व करती थी। तब से इसी संस्था को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में प्रतिनिधित्व दिया जाता रहा है।[13]

दिसम्बर १९४८ में फिर एक विभाजन हुआ। समाजवादी अलग हो गये और उन्होंने 'हिन्द मजदूर सभा' नाम से अपना अलग मजदूरों का संगठन बनाया। श्री एम० एन० राय की जो भारतीय फैडरेशन ऑफ लेबर थी वह इसी में विलीन हो गई। श्रमिकों का एक और संगठन मई १९४९ में प्रोफेसर के० टी० शाह तथा

१३. सन् १९५८ में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने देश में सबसे बड़ी सदस्यता वाली श्रमिक संस्था होने का दावा किया था, परन्तु सरकार ने यह नहीं माना क्योंकि अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस द्वारा दिये गये आँकड़े ठीक नहीं थे। यह मुख्य श्रम कमिश्नर की जाँच द्वारा प्रमाणित हो गई थी।

श्री मृणाल कान्ति बोस ने बनाया जिसका नाम सयुक्त ट्रेड यूनियन काँग्रेस रखा गया (United Trade Union Congress)। अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी सगम मे समाजवादियो का आधिपत्य स्थापित हो गया। उसके सभापति श्री जयप्रकाश नारायण हुए। श्री हरिहरनाथ शास्त्री की अध्यक्षता मे रेलवे कर्मचारियो का एक और सगम बना जिसका नाम भारतीय राष्ट्रीय रेलवे कर्मचारी सगम रखा गया।

अब जनसघ दल भी मैदान मे उतरा है। सन् १९५५ मे इसने भोपाल मे भारतीय मजदूर सघ की स्थापना की। किन्तु अभी तक इसको केवल कुछ राज्यो मे ही मान्यता मिली है। समाजवादी दल ने हिन्द मजदूर पचायत नाम का एक नया सगठन बनाया है लेकिन मजदूरो ने इसे अधिक अपनाया नही।

इस प्रकार आजकल चार केन्द्रीय श्रमिक सगम है जिनको सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काँग्रेस पर तो साम्यवादियो का अधिकार है और यह सस्था उन्ही की विचारधाराओ पर विश्वास रखती है। भारतीय राष्ट्रीय ट्रड यूनियन काँग्रेस पर राष्ट्रीय काँग्रेस का प्रभाव है और इस सस्था का विश्वास इस बात पर है कि झगडो का शान्तिपूर्वक निबटारा किया जाय। इस सस्था ने पचवर्षीय आयोजनाओ के लागू होने मे सरकार को पूर्ण सहयोग दने का भी निर्णय किया है। हिन्द मजदूर सभा समाजवादियो के प्रभाव मे है और उद्योग-धन्धो के राष्ट्रीयकरण तथा देश मे लोकतन्त्रीय समाजवाद की स्थापना मे विश्वास रखती है। इस समय यह प्रजा समाजवादी दल तथा समाजवादी दल दोनो स ही प्रभावित है। सयुक्त ट्रेड यूनियन काँग्रेस राजनीतिक दलबन्दियो से अलग रहती है और इसका झुकाव साम्यवादिता की ओर अधिक है। इसम क्रान्तिकारी समाजवादी दल जैसी सस्थाओ का प्रभाव अधिक है। यह भारत मे किसानो और मजदूरो का शासन स्थापित करना चाहती है और उत्पादन, विनिमय तथा वितरण के राष्ट्रीयकरण मे विश्वास रखती है। इन चार सगमो के अतिरिक्त कुछ अखिल भारतीय सगम भी है जैसे—रेल डाक और तार विभागो के कर्मचारियो क सगम आदि। १९६४ मे ऐसे ब्यौरा दन वाले सगमो की सख्या ६२ थी जिनसे १४६५ सघ सम्बद्ध थे। रेलवे श्रमिको की दो मुख्य सस्थाए अर्थात अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी सगम और भारतीय राष्ट्रीय रेलवे कर्मचारी सगम अप्रैल १९५३ मे आपस मे मिल ही गई और एक नई अखिल भारतीय सस्था बना ली जिसका नाम भारतीय रेलवे कर्मचारियो का राष्ट्रीय सगम रखा गया। परन्तु इनकी यह एकता अधिक दिनो तक नही चल सकी और अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी सगम पृथक् हो गई। नवम्बर १९५७ मे इसने भारतीय राष्ट्रीय रेलवे कर्मचारी सगम से फिर सगठित हो जाने का निर्णय किया। किन्तु यह एकता अभी तक नही आ पाई ह। डाक और तार विभागो के कर्मचारियो के सघ भी एक ही सस्था मे एकत्रित हो जाने के लिये प्रयत्न करते रहे हैं।

संघ सम्बन्धी आँकड़े[14]—

पजीकृत श्रमिक एव मालिक संघों के आँकडो में जो प्रतिवर्ष वृद्धि होती रही है वह निम्नलिखित सूची से स्पष्ट हो जायेगी—

पंजीकृत श्रमिक संघ और उनकी सदस्यता

वर्ष	रजिस्टर्ड श्रमिक संघों की संख्या	ब्यौरा देने वाले संघों की संख्या	ब्यौरा देने वाले संघों की सम्पूर्ण सदस्यता			ब्यौरा देने वाले संघों की सदस्यता की औसत सख्या	महिला सदस्यों की प्रतिशत संख्या
			पुरुष	महिलायें	योग		
१	२	३	४	५	६	७	८
१९२७–२८	२९	२८	९९,४५१	१,१६८	१,००,६१९	३,५९५	१·२
१९३२–३३	१७०	१४७	२,३२,२७९	५,०९०	२,३७,३६९	१,६१५	२·१
१९३९–४०	६६७	४५०	४,९२,५२६	१८,६१२	५,११,१३८	१,१३६	३·६
१९४५–४६	१,०८७	५५५	८,२५,४६१	३८,५७०	८,६४,०३०	१,४८०	४·५
१९४७–४८	२,६६६	१,६२८	१५,६०,६३०	१,०२,२९९	१६,६२,९२९	१,०२१	६·२
१९४९–५०	३,५२२	१,९१९	१६,८८,८८७	१,१९,५६५	१८,२१,१३२	९४९	६·६
१९५०–५१	३,७६६	२,००२	१६,४८,९६६	१,०६,४२४	१७,५६,९७१	८७७	६·१
१९५१–५२	४,६२३	२,५५६	१८,४६,९९२	१,३६,२५७	१९,९६,३११	७८१	६·८
१९५३–५४	६,०२९	३,२९५	१९,२५,४४६	१,७६,४७६	२१,१२,६९५	६४१	८·४
१९५५–५६	८,०९५	४,००६	२०,३४,१९२	२,४०,०४५	२२,७४,७३२	५६८	१० ६
१९५६–५७	८,५५४	४,३९९	२०,९६,६५७	२,८०,१०५	२३,७६,७६२	५४०	११·८
१९५७–५८	१०,०४५	५,५२०	२६,८१,८५८	३,३१,८८२	३०,१५,०५२	५४६	११·०
१९५८–५९	१०,२२८	६,०४०	३२,५४,७९४	३,९२,३८४	३६,४७,१४८	६०४	१०·८
१९५९–६०	१०,८११	६,५८८	३५,३२,०००	३,९१,०००	३९,२३,०००	५९६	१०·०
१९६०–६१	११,३१२	६,८१३	३६,१८,०००	३,९५,०००	४०,१३,०००	५८५	९·८
१९६१–६२	११,६१४	७,०८७	—	—	३९,७७,०००	५६१	—
१९६२–६३	११,८१७	७,२४६	—	—	३६,८१,०००	५०९	—
१९६३–६४	११,८६८	७,१८१	—	—	३९,२०,०००	—	—

सन् १९६३–६४ के आँकडे अस्थायी है क्योंकि सभी राज्यो से विवरण-पत्र प्राप्त नही हो सके। सन् १९६२–६३ मे विभिन्न राज्यों मे, पंजीकृत श्रमिक सघों की सख्या तथा विवरण देने वाले सघों की सख्या (कोष्ठक मे) निम्न प्रकार थी—

आन्ध्र प्रदेश ५५४ (३३६) ; असम १३८ (९९) ; बिहार ६१८ (५३८); गुजरात ४९३ (३४९) , केरल १६८८ (८०४) , मध्य प्रदेश ४३२ (१०२) ; मद्रास ११७० (७६९) ; महाराष्ट्र १४८९ (९११) ; मैसूर ५०६ (२९९) ; उड़ीसा १२८ (९६) , पजाब ६२३ (४४३) ; राजस्थान २४५ (११५) ; उत्तर-प्रदेश १०९९ (९८९) ; पश्चिमी बगाल २१८१ (९६०) ; देहली ३७८ (३१०) ;

14 Indian Labour Year Books, Indian Labour Journals and Annual Review of Activities, Department of Labour, U. P.

हिमाचल प्रदेश १६ (१६), त्रिपुरा ४८ (१८), अण्डमन तथा निकोबार द्वीपसमूह १४ (१२), योग ११८१७ (७२४६), इनमे मालिको के सघो की सख्या २०७ (१३७) तथा श्रमिक सघो की सख्या ११,६१० (७,१०६) थी। सन् १९६३-६४ मे विवरण (ब्यौरा) देने वाले सघो की सख्या केन्द्रीय क्षेत्र मे ३६० तथा राज्य क्षेत्र मे ६७६१ थी।

विभिन्न केन्द्रीय श्रम-सगठनों से सम्बद्ध सघो की सख्या तथा उनकी सदस्यता निम्नलिखित है –

सस्थायें	सम्बद्ध संघों की सख्या			सदस्यता		
	१९५६	१९६०	१९६३	१९५९	१९६०	१९६३
भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस	८८६	८६०	१,२१९	१०,२३,३७१	१०,५३,३८६	१२,६८,३३
अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस	८१४	८८६	९५२	५,०७,६५४	५,०८,९६२	५,००,९६
हिन्द मजदूर सभा	१८५	१९०	२५३	२,४१,६३६	२,८६,२०२	३,२६,९३
सयुक्त ट्रेड यूनियन कांग्रेस	१७२	२२९	२४१	९०,६२९	१,१०,०३४	१,०८,९८
योग	२०५७	२१६५	२,६६५	१८,६३,२९०	१९ ५८ ५८४	२२,०८ २१

सघो की आय तथा व्यय—

सन् १९६३ ६४ म मालिको क सघो की आय ४४ २३ लाख रुपये और व्यय ५० ६५ लाख रुपये था। श्रमिक सघो की आय १९२ ०० लाख रुपये और व्यय १६४ ६० लाख रुपय था। श्रमिक सघो की आय के मुख्य साधन सदस्यो का चन्दा, भट राशि, पत्रिकाओ की बिक्री निवेश पर ब्याज तथा अन्य विविध मदे थी। ७० प्रतिशत आय तो केवल सदस्यो के चन्दे स ही थी। व्यय की मुख्य मदे इस प्रकार थी—कार्यालय सम्बन्धी व्यय, कर्मचारियो का वेतन लेखा परीक्षा तथा कानूनी कार्यो पर व्यय, हडताल और झगडो पर व्यय सदस्यो को आवश्यक समय पर सहायता, पत्रिकाओ की छपाई, विविध मद आदि। व्यय का २५ प्रतिशत तो केवल कार्यालय सम्बन्धी कार्यो पर खर्च हो जाता था तथा ४१ प्रतिशत व्यय विविध मदो पर होता था। इससे यह विदित होता है कि सदस्यो के लिये कल्याण कार्यों पर और उनकी सहायता के लिये बहुत कम धन रह जाता है।

श्रमिक संघ विधान—

प्रथम भारतीय श्रमिक सघ अधिनियम १९२६ म बना, जो १ जून १९२७ से लागू हुआ। १९६० और १९६४ तक इस अधिनियम म कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ, केवल १९२८ व १९४२ मे कुछ साधारण से परिवर्तन किये गये थे। सन् १९४७ मे श्रमिक सघ सशोधन अधिनियम पास किया गया किन्तु उसे लागू नही

किया गया। सन् १६५० का ट्रेड यूनियन विधेयक भी रद्द हो गया। इस समय जैसा कि अधिनियम लागू है, उसके अनुसार उसकी मुख्य धाराएँ निम्नलिखित है–

इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य यह है कि पंजीकृत श्रमिक संघों को कानूनी एवं निगम का दर्जा दिया जाए। अधिनियम में इस बात की भी व्यवस्था थी कि श्रमिक संघ की कार्यकारिणी तथा सदस्यों को इसकी वास्तविक क्रियाओं के सम्पादन के सम्बन्ध मे दीवानी और फौजदारी दायित्व से मुक्त किया जाए। जम्मू तथा कश्मीर को छोड़कर यह अधिनियम सम्पूर्ण भारत मे लागू होता है। जम्मू-कश्मीर के लिए सन् १६५० में अलग अधिनियम बनाया गया था जिसका नाम जम्मू व कश्मीर श्रमिक संघ अधिनियम था।

जहाँ तक रजिस्ट्री कराने का सम्बन्ध है किसी भी श्रमिक संघ के कोई भी सात या अधिक सदस्य संघ को रजिस्टर कराने के लिये श्रमिक संघों के रजिस्ट्रार के पास आवेदन-पत्र दे सकते हैं। यह रजिस्ट्रार अधिनियम के अन्तर्गत नियुक्त होता है। यदि ये सदस्य और उनका संघ अधिनियम के खण्ड ६ मे दी हुई शर्तों को पूरा करते है तो उनको रजिस्ट्रेशन का प्रमाण-पत्र मिल जाता है। कुल पदाधिकारियों (Office Bearers) मे से कम से कम आधी संख्या ऐसे व्यक्तियों की होनी चाहिये जो उस उद्योग मे जिससे संघ सम्बन्धित है, काम करते हो। रजिस्ट्रार को अधिकार है कि कुछ स्थितियों मे वह रजिस्ट्रेशन को वापस ले ले या रद्द कर दे। परन्तु ऐसी स्थिति मे उसके निर्णय के विरुद्ध अपील की जा सकती है।

जहाँ तक रजिस्टर्ड श्रमिक संघों के अधिकारों और विशेषाधिकारों का सम्बन्ध है, उनके सदस्यों और पदाधिकारियों के लिये यह बचाव या सुरक्षा कर दी गई है कि वे अपने संघ के नियमित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये यदि कोई भी कार्य करते है तो उस कार्य के लिये उन पर फौजदारी का मुकदमा नही चलाया जा सकता। सदस्यों को इस बात की भी सुरक्षा दे दी गई है कि अगर वे कोई कार्य करते है जिसका उद्देश्य किसी औद्योगिक विवाद से सम्बन्धित है तो इस बात पर कि उनका यह कार्य किसी अन्य व्यक्ति को रोजगार के संविदा को भंग करने को प्रेरित करता है या उस व्यक्ति के रोजगार, व्यवसाय आदि मे विघ्न डालता है, उन पर दीवानी मुकदमा नहीं चलाया जा सकता।

जहाँ तक रजिस्टर्ड श्रमिक संघों के आबन्धों (Obligations) और दायित्व का प्रश्न है, उनकी सामान्य निधि का व्यय कुछ विशेष उद्देश्यों के लिये सीमित कर दिया गया है। परन्तु संघों को यह अधिकार दिया गया है कि यदि वे चाहे तो ऐच्छिक रूप से ऐसे कार्य के लिये पृथक् निधि जमा कर सकते है जिनका उद्देश्य सदस्यों के नागरिक और राजनैतिक हितों की अभिवृद्धि करना हो। रजिस्टर्ड श्रमिक संघों के लिए यह भी अनिवार्य है कि वह अपना नाम और संघ बनाने के उद्देश्य का ठीक-ठीक वर्णन करें तथा हिसाब खाता रखें और प्रति वर्ष जाँचे हुए लेखे प्रस्तुत करें। हिसाब खाते की जाँच संघ का कोई भी पदाधिकारी या सदस्य

कर सकता है। अगर नाम, नियम और विधान में कोई परिवर्तन किया जावे तो उसकी सूचना रजिस्ट्रार को देनी आवश्यक है।

यह अधिनियम राज्य की सरकार लागू करती है जो व्यापार संघों के रजिस्ट्रारों की नियुक्ति करती है। परन्तु रजिस्ट्रार किसी संघ के बही खाते की जांच नहीं कर सकता था और यह इस अधिनियम का एक दोष था जो अब १९६० के संशोधन अधिनियम द्वारा दूर कर दिया गया है और रजिस्ट्रार को इस सम्बन्ध में अधिकार प्रदान कर दिये गये है।

१९६० में भारतीय श्रमिक संघ अधिनियम में एक महत्वपूर्ण संशोधन हुआ जिस पर २१ सितम्बर १९६० को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई। इस संशोधन के अनुसार श्रमिक संघो के प्रत्येक सदस्य के लिये २५ पै० प्रति माह का चन्दा देना अनिवार्य कर दिया गया है। रजिस्ट्रार या किसी अन्य मान्यता प्राप्त अधिकारी को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह बहीखाता या रजिस्टर या रजिस्ट्रेशन का प्रमाण-पत्र या अन्य कोई भी कागजात जो श्रमिक संघ तथा उनके ब्यौरे से सम्बन्धित हो, उनकी जाच कर सके। इस अधिनियम के अन्तर्गत सरकार अब अतिरिक्त अथवा उप-रजिस्ट्रार भी नियुक्त कर सकती है जिनके अधिकार और कार्य रजिस्ट्रार के ही समान होंगे। एक अन्य धारा इस सम्बन्ध में भी है कि यदि एक बार रजिस्ट्रेशन के लिए प्रार्थना-पत्र स्वीकार कर लिया जाता है तो वह इस कारण रद्द घोषित नहीं किया जा सकता कि कुछ प्रार्थी (यदि उनकी संख्या आधे से अधिक न हो) उसकी सदस्यता छोड चुके है या उन्होंने प्रार्थना-पत्र से अपना नाम वापस ले लिया है।

सन् १९६४ में इस अधिनियम में फिर संशोधन किया गया। सन् १९६४ के भारतीय श्रमिक संघ (संशोधन) अधिनियम को अप्रैल १९६५ में लागू किया गया। इस अधिनियम में इस बात की व्यवस्था कि (क) जो लोग नैतिक अपराध के दोषी पाये गये हो वे पंजीकृत श्रमिक संघो की कार्यकारिणी के पदाधिकारी तथा सदस्य न बन सकें और (ख) पंजीकृत श्रमिक संघ पचाग वर्ष के आधार पर पूर्ण वार्षिक विवरण प्रस्तुत करें।

सन् १९४७ में अधिनियम में जो संशोधन हुआ था वह यद्यपि विधानमण्डल द्वारा पास कर दिया गया था किन्तु सरकार द्वारा लागू नहीं किया गया। इस अधिनियम में कुछ बड़ी महत्वपूर्ण धाराएँ थी। उदाहरण के लिये—मालिकों के लिए यह अनिवार्य होगा कि वह ऐसे संघ को मान्यता दें जो श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करता हो। मालिकों के किसी विशेष संघ को मान्यता देने या न देने पर जो झगड़े उत्पन्न हो उनको सुनने तथा निर्णय देने के लिये श्रम न्यायालयों की भी व्यवस्था की गई थी। श्रम न्यायालयों के किसी आदेश से किसी संघ को तब तक मान्यता प्राप्त नहीं हो सकती जब तक वह कुछ शर्तों को पूरा न करे, जैसे—(१) वह संघ अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड हो। (२) उसके कुल सदस्य एक ही उद्योग या उससे सम्बन्धित उद्योगों में कार्य करते हों। (३) वह उन कुल श्रमिकों का जो कि उस उद्योग में

मालिकों द्वारा काम पर लगाये गये हों प्रतिनिधित्व करता हो। (४) उसके नियम उस उद्योग के किसी श्रमिक को सदस्य होने से नहीं रोकते हों। (५) उसके नियम हड़ताल की घोषणा करने के ढंग का ब्यौरा भी देते हों। (६) उसकी कार्यकारिणी की बैठक ६ माह में कम से कम एक बार होने की व्यवस्था हो। १९४७ का यह संशोधित अधिनियम रजिस्टर्ड श्रमिक संघों के कुछ कार्यों को भी अनुचित घोषित करता था, उदाहरणतया—(१) अधिकांश सदस्यों का किसी अनियमित हड़ताल में भाग लेना। (२) कार्याङ्ग (Executive) का किसी अनियमित हड़ताल के लिये परामर्श या सहायता देना या उसके लिये भड़काना। (३) संघ के किसी पदाधिकारी का ऐसा ब्यौरा प्रस्तुत करना जिसमें असत्य बयान हो। इसी प्रकार संशोधित अधिनियम मालिकों के भी कुछ कार्यों को अनुचित घोषित करता था, जैसे—(१) अपने श्रमिकों के इस अधिकार में किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप करना कि वह अपने संघ को संगठित करें या पारस्परिक सहायता और सुरक्षा के लिये कुछ कार्य करें। (२) किसी भी श्रमिक संघ के बनाने या उसके प्रबन्ध में दखल देना या किसी भी संघ को आर्थिक या किसी और प्रकार की सहायता देना। (३) किसी भी मान्य श्रमिक संघ के पदाधिकारी अथवा श्रमिक को इस बात पर निकाल देना या उनके विरुद्ध कोई भेद की नीति वर्तना कि उसने अधिनियम के अन्तर्गत की गई जाँच में कोई गवाही दी है। (४) किसी भी मान्य संघ से बातचीत करने से इंकार करना या अधिनियम के अन्तर्गत उसको किसी अधिकार या रिआयत से वंचित रखना। कोई मालिक यदि अनुचित कार्य करे तो उस पर १,००० रु० तक जुर्माने के दण्ड की व्यवस्था थी। मान्य संघों के लिए अनुचित कार्य करने पर यह दण्ड नियत किया गया था कि उनकी मान्यता खण्डित कर दी जाये। यदि किसी ऐसे संघ को श्रम न्यायालय मान्यता दे भी देती है जो कोई अनुचित कार्य करता है या श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करना बन्द कर देता है या अधिनियम के अन्तर्गत ब्यौरा देने में असफल रहता है, तो रजिस्ट्रार उस मान्यता को खण्डित करने के लिये आवेदन-पत्र दे सकता था।

सन् १९५० में भारतीय संसद् में एक व्यापार संघ विधेयक (Bill) भी प्रस्तुत किया गया था जिसका उद्देश्य यह था कि श्रमिक संघ सम्बन्धी विभिन्न धाराओं और कानूनों को एक जगह संचित कर दिया जाये। इसमें अनेक नये उपबन्ध भी थे। सब बातों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस विधेयक का उद्देश्य श्रमिक संघों की स्थिति में उन्नति करना तथा अच्छे ढंग से उनका विकास करना था। परन्तु इस विधेयक का यथेष्ट विरोध हुआ और सरकार ने भी इसके स्वीकृत कराने में विलम्ब किया और अन्त में यह व्यपगत (Lapse) हो गया। फिर, जुलाई १९५२ में सरकार ने राज्य सरकारों, मालिकों और श्रमिकों के संघों के पास एक प्रश्नावली परिचालित की जिसमें इस विधेयक की धाराओं के विषय में राय माँगी। जो भी रायें आईं उन पर विचार-विमर्श करने के लिये नैनीताल में एक त्रिदलीय श्रम सम्मेलन बुलाया गया जिसके परिणामस्वरूप एक

नया विधेयक तैयार किया गया। परन्तु इस विधेयक को भी विधान परिषद् में रखने में देर हुई जिसका कारण यह बताया गया कि विभिन्न केन्द्रीय मत्रालयो से राय ली जा रही थी। उसके पश्चात् इस विषय में कुछ ज्ञात नही हुआ। ऐसा जान पड़ता है कि सरकार ने इस प्रकार का अधिनियम बनाना उचित नही समझा और १९६० तथा १९६४ मे पुराने अधिनियम मे केवल संशोधन कर दिया।

सन् १९२६ के श्रमिक सघ अधिनियम मे ऐसी कोई धारा नही थी जिसके अन्तर्गत मालिक श्रमिक संघो को मान्यता दे। किन्तु भारतीय श्रम सम्मेलन के १६वें अधिवेशन मे (जो मई १९५८ में हुआ था) सघो को मान्यता प्रदान करने के सम्बन्ध में कुछ शर्तें बनाई गई थी। ये शर्तें उद्योगो की अनुशासन संहिता (Code of Discipline) मे दी गई है। शर्तो मे यह दिया गया है कि यदि किसी श्रमिक सघ की अवधि एक वर्ष से अधिक है और यदि उसमे सस्था के कुल श्रमिकों में से कम से कम १५ प्रतिशत श्रमिक सदस्य है तो ऐसे सघ को मान्यता दे देनी चाहिये। किन्तु यदि किसी सस्था मे एक ही सघ है तो यह १५ प्रतिशत सदस्यों की शर्त लागू नही होगी। जहाँ बहुत-से सघ हो, वहाँ सबसे अधिक सदस्य सख्या वाले संघ को मान्यता दी जानी चाहिए। (देखिये परिशिष्ट ग म अनुशासन संहिता)।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन और श्रमिक सघ

अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क का भारतीय श्रमिक संघो पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। श्रमिक संघ आन्दोलन का प्रारम्भ और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की स्थापना दोनो साथ साथ ही हुई। इस अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का भारतीय श्रम आन्दोलन पर पर्याप्त मात्रा म प्रभाव पड़ा है। इसने श्रमिको में एकता की भावना उत्पन्न कर उनमें अलग अलग रहने की भावना को दूर कर दिया है। श्रमिको म अपने अधिकारो और विशेषाधिकारो की जानकारी के प्रति जागृति पैदा करने म भी इसने सहायता की है। सामयिक पत्रिकाओं और श्रम रिपोर्टों आदि के द्वारा श्रमिको को अत्यन्त मूल्यवान सूचनायें भी यह देता रहा है। श्रमिको के प्रतिनिधि भी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनो म भाग लेते है और ऐसे श्रम सम्मेलनो के लिए प्रतिनिधि निर्वाचित करने की आवश्यकता के कारण ही कुछ प्रारम्भिक सगमो की स्थापना हुई थी। इसके अतिरिक्त दूसरे देशो के श्रमिक सघो के प्रतिनिधियो ने भी भारतीय श्रमिको में अपना सगठन बनाने के प्रति रुचि उत्पन्न करने मे यथेष्ट सहायता दी है। यह भी देखने मे आया कि ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कॉंग्रेस ने, अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सघो के सगम ने और मास्को की तीसरी 'इण्टर-नेशनल' ने औद्योगिक अशान्ति और हड़ताल के दिनो में भारतीय श्रमिको के लिए आर्थिक सहायता भेजी।[15] इस कारण इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि भारतीय श्रम आन्दोलन को अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क के कारण अच्छी सहायता मिली है। सन् १९४७ और नवम्बर १९५७ मे नई देहली में हुए 'एशियाई क्षेत्रीय श्रम सम्मेलनो'

15 B Shivarao *Industrial Worker in India*, Page 161.

ने भी भारतीय श्रम-आन्दोलन के सही ढंग पर विकास होने में और श्रमिकों में उनकी समस्या पर प्रकाश डालकर एकता की भावना उत्पन्न करने में यथेष्ट सहायता की है। इसके अतिरिक्त श्रमिक-संघ के प्रतिनिधि न केवल अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेते रहे है, वरन् भारतीय सरकार द्वारा स्थापित त्रिदलीय समितियों में श्रम-विधान, श्रम-नीति, श्रम-प्रशासन और अन्य श्रम-सम्बन्धी कार्यों से सम्बन्धित वाद-विवाद में भी भाग लेते रहे है। मिस्टर एलबर्ट रॉबर्ट्स ने, जो कि ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कॉंग्रेस के एक नेता हैं और जो भारत में १९५१ मे आये थे, यह बताया कि ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कॉंग्रेस एशिया मे व्यापार संघों के विकास के लिए १,१०,००० पौंड अंशदान दे चुकी है। 'स्वतन्त्र व्यापार संघों के अन्तर्राष्ट्रीय सगम' (International Federation of Free Trade Unions) ने भी दक्षिणी पूर्वी एशिया में व्यापार-संघों के विकास के लिए एक एशियाई क्षेत्रीय संगठन की स्थापना की है जिसका मुख्य कार्यालय कलकत्ता में है।

व्यापार संघों का आकार (Structure of Trade Unions)

भारत में अधिकांश श्रमिक संघ औद्योगिक संघ हैं। इसका तात्पर्य यह है कि एक ही उद्योग के श्रमिक अपना संघ बनाते हैं—चाहे उनका कोई पेशा हो, किसी प्रकार के कार्य पर लगे हों, चाहे पुरुष हो या स्त्री। इसका एक विशेष अपवाद अहमदाबाद के कपड़ा मिल मजदूर परिषद् में मिलता है जिससे सम्बद्ध सदस्य शिल्पी संघ है। हाल ही में केन्द्रीय श्रमिक संघों का इस ओर झुकाव होने लगा है कि औद्योगिक संघ सम्पूर्ण देश के लिये बनें। इसका उदाहरण हमको रेल कर्मचारियों के राष्ट्रीय सगम में और कपड़ा मिल श्रमिकों के अखिल भारतीय सगम में मिलता है।

श्रमिक संघों ने बम्बई राज्य में विशेष उन्नति की है और यातायात के श्रमिकों का संगठन सबसे अच्छा है। सबसे अधिक शक्तिशाली संघ रेलवे कर्मचारियों तथा डाक, तार और छपाई करने वाले श्रमिकों के हैं क्योंकि ये श्रमिक कुछ पढ़े-लिखे भी होते हैं और उनके अपने ही नेता होते है। भारत में सबसे महत्वपूर्ण श्रमिक संघों के सगम रेलवे कर्मचारियों, डाक और रेल डाक विभाग श्रमिकों के है। सन् १९६४ में रजिस्टर्ड श्रमिक संघों के ६२ सगम थे। अहमदाबाद का कपड़ा मिल मजदूर परिषद् (Ahmedabad Textile Labour Association) जिसे "मजदूर महाजन" कहते है, श्रमिकों के एक ऐसे संगठन का उदाहरण है जो कि अनुपम है। यह सन् १९२० में स्थापित हुई थी। श्री गुलजारीलाल नन्दा इसके प्रथम जनरल सेक्रेटरी थे। इस समय इसके लगभग ३३,००० सदस्य है। यह कई शिल्पी संघों का सगम है, जैसे—जुलाहा संघ, कताई करने वालों का संघ, मशीन चलाने वालों का संघ, कल-पुर्जों में तेल देने वालों का संघ, फायरमैनों का संघ, चौकीदारों का संघ, आदि। यह श्रमिकों के हितार्थ कई अच्छे सामाजिक कल्याणकारी कार्य करता रहता है जो दूसरों के लिए उदाहरणस्वरूप है। इस सगम

की सफलता का मुख्य कारण यह भी रहा है कि महात्मा गाँधी का इससे कई वर्षों तक सम्बन्ध रहा।

यह भी उल्लेखनीय है कि गैर-औद्योगिक कर्मचारियों, जैसे—अध्यापकों, सरकारी तथा गैर सरकारी सेवाओ के क्लर्को मे भी श्रमिक सघवाद आजकल लोकप्रिय होता जा रहा है तथा अपनी जडें जमाता जा रहा है।

भारतीय श्रमिक सघो के दोष और कठिनाइयाँ

श्रमिक सघो के उपरोक्त वर्णन से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है, कि श्रमिक सघ आन्दोलन देश मे अब दृढ रूप से स्थापित हो चुका है और मजदूर-वर्ग की एक शक्तिशाली वर्ग मे गणना होने लगी है। जैसा ऊपर सकेत किया जा चुका है रजिस्टर्ड सघो की सख्या उत्तरोत्तर बढती रही है। इसके अतिरिक्त अनेक औद्योगिक तथा अनौद्योगिक सरकारी तथा अर्द्धसरकारी सस्थाओ मे काम करने वाले श्रमिको के बहुत से ऐसे सघ है जो रजिस्टर्ड नही है और जिनके आँकडे आसानी से प्राप्त नही होते। कई स्थानो पर श्रमिक सघों ने श्रमिको के कल्याण के लिये और उनकी आर्थिक दशा मे उन्नति करने के लिए कई अच्छे कार्य किये है।[16] इन सब बातो के होते हुए भी हम यह देखते हैं कि अन्य देशो की तुलना मे हमारे देश मे श्रमिक सघ आन्दोलन का ठोस आधार पर विकास नही हुआ है। श्री रॉबर्टस ने जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, स्पष्ट कहा है कि भारत मे श्रमिक सघ आन्दोलन इतना शक्तिशाली नही है जितना इसे होना चाहिये। श्री वी० वी० गिरि ने भी कहा है कि भारत मे श्रमिक सघ आन्दोलन अभी तक प्रारम्भिक अवस्था मे ही है और आधुनिक श्रमिक सघ पिछले-तीस-वर्षों से ही कार्य करते हुए पाये गये है। आँकडो से पता चलता है कि औद्योगिक सघो मे केवल लगभग ४० लाख श्रमिक सम्मिलित है जबकि बडे उद्योगो मे ही एक करोड से अधिक श्रमिक कार्य करते है। इस आन्दोलन के इतिहास से यह स्पष्ट पता चलता है कि श्रमिक सघ सगठन मे बहुधा विच्छेद हो चुका है और इस आन्दोलन के निर्माण तथा विकास मे राजनीति का महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। इस आन्दोलन के वास्तविक और ठोस विकास मे कई कारणो से रुकावटें पडी है जिन पर अब हम विचार करेंगे।

(1) प्रथम कठिनाई तो भारतीय श्रमिको की प्रवासिता (Migratory Character) है। श्रमिक जब हर समय गाँव वापिस जाने की ही सोचता रहता है तो वह सघो के कार्यों मे कोई तीव्र और निरन्तर रुचि नही लेता। स्वस्थ सघवाद के लिए यह आवश्यक है कि एक स्थायी औद्योगिक जनसख्या हो। परन्तु ऐसी जनसख्या का हमारे देश मे अभाव है। श्रमिको की यह प्रवृत्ति कि यदि हो सके तो उद्योगो से नौकरी छोड कर अपने गाँव वापिस चले जायें, उनमे सयुक्त प्रयत्नो द्वारा अपनी दशा को सुधारने के उत्साह को कम कर देती है।

16 See Chapter on Welfare Activities

(2) दूसरी कठिनाई यह है कि भारत में मजदूरी बहुत कम है, श्रमिक अत्यन्त निर्धन है और बहुधा वे ऋण मे भी दबे रहते है। यह बात स्वस्थ संगठन के विकास के लिये एक बहुत बडी रुकावट बन जाती है। श्रमिकों के लिये संघ निधि में थोडा सा चन्दा देना भी एक बोझ बन जाता है। सदस्यता का चन्दा नियमित रूप से नही दिया जाता और बहुत से श्रमिक तो सदस्य भी नही बनते। इसका परिणाम यह होता है कि सघो की आर्थिक दशा शोचनीय ही रहती है और किसी बाहरी सहायता के बिना उनके पास यथेष्ट धन नही हो पाता। श्री रॉबर्ट्स[17] ने यह भी बताया था कि उन्हें भारत में कई ऐसे सघ मिले जिनके पास कोई निधि नही थी और जिन्हे केवल 'कागजी सघ' कहा जा सकता था। उन्हें इस बात से भी आश्चर्य हुआ कि बहुत से सदस्य अपना चन्दा नही देते थे, अर्थात् बाकीदार थे। ब्रिटेन में ट्रेड यूनियन कॉंग्रेस के ८० लाख सदस्यों में से प्रत्येक सदस्य प्रति सप्ताह अपना चन्दा नियमित रूप से चुका देता है। तीसरी और चौथी, दोनों ही योजनाओं मे कहा गया है कि देश मे श्रमिक सघ आन्दोलन के पिछड़ेपन का मुख्य कारण साधनों का अभाव है।

तीसरी कठिनाई एक शक्तिशाली संगठन बनाने मे यह है कि श्रमिक अपने वंश, धर्म, भाषा, जाति और स्वभाव के अनुसार प्राय एक दूसरे से पृथक् रहते हैं। यह सब बातें एकता को छिन्न-भिन्न करने वाली हैं और श्रमिकों के आपस में मिलकर बैठने में रुकावटें डालती हैं। मालिक उनकी ऐसी दुर्बलता का प्राय. अनुचित लाभ उठाते है और फूट डालकर के शासन को दृढ बनाये रखने वाली नीति को अपनाते है। खेद है कि देहली, लखनऊ और बगाल में कुछ सघों को साम्प्रदायिकता के आधार पर सगठित किया गया था। परन्तु सन् १९४३ ई० में सरकार ने ऐसे सघो को मान्यता नही दी।[18]

चौथी कठिनाई यह है कि श्रमिकों मे जीवन-स्तर नीचा होने के कारण और कार्य के घण्टे अधिक होने के कारण न तो इतनी शक्ति रहती है और न उन्हे इतना समय मिल पाता है कि वह श्रमिक संघ का कोई कार्य कर सके। जिस गिरी हुई दशा मे हमारे श्रमिक रहते हैं उसे देखते हुए उनसे यह आशा नही की जा सकती कि वे अपने सगठन-कार्य की ओर ध्यान दे पायेंगे।

श्रमिक प्रायः अनपढ और अज्ञानी भी होते है और उनमे प्रजातन्त्रीय उत्साह का अभाव पाया जाता है। पीढियों से उनमे शासित होने का स्वभाव पड गया है और उनमें दासता और हीनता का भाव घर कर गया है। इन्ही कारणों से बहुत से श्रमिक तो सोच भी नही पाते कि वे स्वयं सगठित होकर कोई कार्य कर सकते है।

---

17. Speech of Mr Roberts in a public meeting at Madras on Oct. 30, 1931.

18. R. K. Mukerjee : *Indian Working Class.*

एक और दोष जो देखने में आता है वह यह है कि अधिकांश श्रमिक संघ हड़ताल करने और उसे चालू रखने के अभिप्राय से ही बनाये जाते हैं। वे श्रमिकों के हितार्थ कल्याणकारी कार्य करने में असमर्थ रहते हैं। इस कारण यह देखा गया है कि अधिकांश संघ केवल हड़ताल-समिति ही कहलाये जा सकते हैं। वे स्वस्थ रूप से विकास करने का कोई प्रयत्न नहीं करते।

इसके अतिरिक्त भारतीय श्रमिक संघों के संगठन में एक भारी दोष यह है कि संघों के नेता उनके सदस्यों अर्थात् श्रमिकों में से ही नहीं होते। साधारणतया श्रमिक संघों का आदर्श नेता मध्यम वर्ग का एक वकील या राजनीतिज्ञ होता है जो जन-उपकार की भावना से या राजनैतिक उद्देश्य से अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को श्रमिकों के हितों के लिये लगा देता है। इन व्यक्तियों को उद्योग की विभिन्न तक्नीकी विधियों के विषय में पूर्ण ज्ञान नहीं होता है और इस कारण ये मालिकों के साथ समानता के आधार पर किसी पारस्परिक वार्तालाप में भाग नहीं ले सकते। वे श्रमिकों की वास्तविक कठिनाइयों को और उनकी शिकायतों को भी समझ नहीं पाते। कभी कभी वे इतना अधिक प्रयत्न कर बैठते हैं कि उनका प्रभाव स्वयं कम हो जाता है। फिर ऐसे बहुत से नेता अवसरवादी होते हैं और उनका कुछ निजी स्वार्थ होता है। कई बार वे स्वयं आपस में झगड़ा कर बैठते हैं और श्रमिकों से प्रायः अनुचित लाभ उठाते हैं। वर्तमान समय में ऐसा देखा गया है कि अधिकतर नेता किसी न किसी राजनीतिक दल से सम्बन्ध रखते हैं और श्रमिक संघों की आड़ लेकर अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। स्वस्थ संघवाद का विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक कि उसके नेता मजदूर वर्ग के ही न हों। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि श्रमिक संघों में जो बाहरी नेतृत्व पाया जाता है इसके आने और निरन्तर पाये जाने का उत्तरदायित्व कुछ सीमा तक मालिकों पर भी है। श्रमिकों में यह वास्तविक भय होता है कि अगर उन्होंने संघों का नेतृत्व किया तो उन पर बाद में किसी न किसी प्रकार से अत्याचार होगा। इस कारण मालिक ही श्रमिकों के हृदय में यह भावना उत्पन्न कर सकते हैं कि यदि श्रमिक वर्ग में से ही उनके नेता बनें तो उनका स्वागत होगा। बाहरी नेतृत्व का एक अन्य कारण यह भी है कि राजनीतिक दल श्रमिकों में अपना प्रचार करते हैं और उनके कार्यों में दखल देते हैं। इसके अतिरिक्त श्रमिकों की अज्ञानता और उनमें अनपढ़ होने के कारण भी बाहरी नेतृत्व श्रमिक संघों में पाया जाता है। ईमानदार, सच्चे और कुशल नेता श्रमिकों में से नहीं मिलते। अमरीका और पश्चिमी देशों के श्रमिक संघों की भाँति भारतीय श्रम संघों के पास इतना धन भी नहीं होता कि वे बाहरी व्यक्तियों को पैसा देकर अपने कार्य करा सकें।

एक और कठिनाई यह है कि मध्यस्थ प्रायः संघों के विरोधी होते हैं। श्रमिक संघों के बन जाने से मध्यस्थों के अधिकार छिन जाते हैं। इस कारण ये मध्यस्थ हर उचित और अनुचित उपाय से श्रमिकों में फूट डालने और श्रमिक संघों के उद्देश्यों को विफल बनाने का प्रयत्न करते हैं। इसके अतिरिक्त मालिकों का

व्यवहार भी संघो के प्रति विरोधपूर्ण रहता है। भारत मे अधिकांश मालिक श्रमिकों के संगठन को अपने अधिकारों, शासन और प्रभाव के लिए एक चुनौती समझते है और कुछ हीन प्रवृत्ति के मालिक तो श्रमिकों की एकता तोडने के लिये हर प्रकार के उचित या अनुचित साधन अपनाने से नहीं हिचकते। ऐसी कई घटनायें हुई है जबकि मालिको ने संघ में भाग लेने वाले श्रमिकों पर अत्याचार किये है। वे भेदिया, गुण्डे और हड़ताल-तोड़क आदि व्यक्तियों को संघ कार्यो मे विघ्न डालने के लिये नौकर रखते है। मालिक प्रतिद्वन्द्वी श्रमिक संघों को भी प्रोत्साहन देते हैं और कई बार उन्होने ऐसे श्रमिक संघों को मान्यता देने से इन्कार कर दिया है जिनमे उनकी रुचि के श्रमिक न हों। संघों के पदाधिकारियों को मालिकों द्वारा प्राय. घूस दी जाने की भी शिकायत है। श्रमिको में साम्प्रदायिकता तथा विभिन्न जातियों के कारण उत्पन्न हुए भेदों से लाभ उठाने का प्रयत्न भी किया जाता है। डाक्टर राधाकमल मुकर्जी ने श्रमिको पर अत्याचार होने की कई घटनाओं का उल्लेख किया है।[19] डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद और पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने जो कुछ झगडो के विवाचक थे, अपने निर्णय मे यह लिखा है कि "जमशेदपुर पिछले वर्षो मे अपने गुण्डो के लिये अत्यन्त कुख्यात रहा है। प्रतिद्वन्द्वी संघो के श्रमिको के बीच प्राय मुठ-भेडें हुई है, सभाओं को तोडा गया है। हाथापाई और पत्थर फेकने की घटनाये भी सामान्य थी। कई श्रम-नेताओं और उनके अनुयायियो पर खुल्लम-खुल्ला यह आरोप लगाया गया कि वे मालिको से कुछ धनराशि लेते थे। ऐसी परिस्थिति में कोई शक्तिशाली तथा अनुशासित श्रमिक संघ नहीं पनप सकता था और श्रमिकों के हितों का लालची नेताओं द्वारा बलिदान होता रहा है।" ऐसे अत्याचारो को कई स्थानो मे देखा गया है। सताये जाने का यह भय कोई काल्पनिक भय नही है। सन् १९२६ और १९३६ ई० के बीच में अहमदाबाद कपडा मिल मजदूर परिषद् ने अत्याचार होने पर ४५,००० रुपया सहायता धनराशि के रूप मे बांटे थे। उत्तर-प्रदेश मे भी कानपुर की कपड़ा मिलों मे अत्याचार होने की घटनाओं की जाँच के लिये एक जाँच न्यायालय की स्थापना करनी पडी थी।

इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि बम्बई का सन् १९३८ का औद्योगिक विवाद अधिनियम संघो के कार्यकर्त्ताओ पर अत्याचार होने को एक अपराध घोषित करता था, जिस अपराध के लिये १,००० रुपये तक जुर्माना दिये जाने के दण्ड की व्यवस्था थी जिसका कुछ भाग सताये हुये कार्यकर्त्ता को क्षतिपूर्ति के रूप में दिया जा सकता था। डाक्टर राधाकमल मुकर्जी ने इस बात का सुझाव दिया है कि भारत मे भी अमरीका के सन् १९३५ के 'नेशनल लेबर रिलेशन्स एक्ट' की भाँति एक अधिनियम होना चाहिये। यह अधिनियम अमरीका मे श्रमिको का 'मैगना कार्टा' माना जाता है। इसके अन्तर्गत श्रमिकों को स्वयं संगठित करने के लिये कई अधिकार दिये गये है। मालिकों का संघों में हस्तक्षेप करना, या श्रमिको

19 R. K. Mukerjee: *Indian Working Class*, pages 357-360.

को सघ कार्यों मे भाग लेने से रोकना अपराध घोषित कर दिया है। किसी भी प्रकार का अत्याचार निषेध है। कनाडा मे भी श्रमिको को ऐसे ही अधिकार दिये गये है। भारत में १९४२ मे मैसूर राज्य मे 'मैसूर श्रम अधिनियम' के अन्तर्गत श्रमिको की अत्याचार से रक्षा की गई थी। भारत के श्रमिक सघ अधिनियम के अन्तर्गत सन् १९४७ के संशोधन के अनुसार मालिको के कई कार्यो को अनुचित ठहराया गया था और ऐसे कार्यो के लिये जुर्माने के रूप में दण्ड देने की व्यवस्था थी। परन्तु यह अधिनियम लागू नही किया गया। सुलह अधिकारियो के सम्मुख जो मुकदमे आते है उनसे यह स्पष्ट पता चलता है कि जिन श्रमिको को मालिक कुछ झगडा करने वाला समझते हैं उनको किसी न किसी बहाने नौकरी से अलग कर दिया जाता है।

श्रमिक सघो के सगठन में एक और दोष यह है कि अधिकाश सघो की सदस्यता बहुत कम है। इस कारण इनमें यथेष्ट धन सगठन और नेतृत्व की कमी रहती है। उदाहरणार्थ, १९५९-६० म ब्यौरा देने वाले ७० ३ प्रतिशत सघो की सदस्यता ३०० से कम थी। श्रमिक सघ की औसत सदस्यता केवल ६२० थी। सदस्यता के कम होने का मुख्य कारण यह है कि एक ही उद्योग मे श्रमिको के कई सघ होते है और श्रमिको म आपस म एकता नही है। श्री वी० वी० गिरि ठीक ही इस बात पर जोर देते रहे है कि एक उद्योग म एक ही सघ होना चाहिये। बडे सघ अधिक टिकाऊ होग। उनका नियमित रूप से कार्यालय बन सकता है, समस्त समय के लिये उनम कर्मचारी भी लगाये जा सकते हैं और सौदा करने की शक्ति भी उनम अधिक हो सकती है।

चौथी पचवर्षीय योजना की रूपरेखा में बताया गया है कि यद्यपि पजीकृत श्रमिक सघो की सख्या जो कि सन् १९५१-५२ में ४,६०० थी, सन् १९६३-६४ में बढकर ११ ६०० हो गई तथापि खानो के केवल ५०%, फैक्टरियो के ४०%, रेलो के ७५% और चाय बागान के २०% श्रमिक ही इनमें सम्मिलित हुए। अत नीति यह होनी चाहिये कि श्रमिको को सघो का सदस्य बनने को प्रोत्साहित किया जाये। योजना म इस बात पर भी जोर दिया गया है कि श्रम सघ आन्दोलन को सगठित रूप स चलाने की आवश्यकता है जिसका कि देश में अभाव है।

देश म श्रमिक सघो म जो फूट पडी हुई है और उनम द्वेष भावना से जो प्रतिद्वन्द्विता चल रही है उसका कुछ उत्तरदायित्व राजनीतिक दलो पर भी है। प्रत्येक राजनीतिक दल यह प्रयत्न करता है कि श्रमिक वर्ग उनकी ओर मिल जाएँ और इस प्रयत्न म वह श्रमिको म परस्पर दूषित भावनायें और मतभेद उत्पन्न कर देते है। श्रमिक सघो की इस प्रतिद्वन्द्विता ने इस समय एक जटिल समस्या का रूप धारण कर लिया है और इस कारण उनके स्वस्थ विकास में एक बहुत बडी रुकावट आती है।

उपसंहार और सुझाव

रॉयल श्रम आयोग के अनुसार श्रमिक संघों के पूर्ण प्रभावशाली होने के लिये दो बातों की आवश्यकता है—एक तो प्रजातन्त्रीय भावना और दूसरी शिक्षा। श्रमिकों में प्रजातन्त्रीय उद्देश्य की भावना अभी उत्पन्न करनी है। उससे भी अधिक जो रुकावट है वह शिक्षा का अभाव है। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में बतलाया गया है कि एक ही उद्योग में अनेक श्रमिक संघों का होना, राजनीतिक प्रतिस्पर्धा, धन की कमी तथा श्रमिकों की पारस्परिक फूट इत्यादि ही वर्तमान समय के संघों की दुर्बलता में से कुछ है। एक शक्तिशाली श्रमिक संघ आन्दोलन श्रमिकों के हितों की रक्षा करने के लिये तथा उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इससे संगठित श्रमिकों और मालिकों में अधिकतर सहयोग भी उत्पन्न होगा और औद्योगिक शान्ति भी रहेगी। एक शक्तिशाली संघ श्रमिकों की उस समय सहायता करता है जब वे प्रथम बार गाँव से आते है। इस प्रकार वह प्रवासिता, अनुपस्थिति तथा श्रमिकावर्त को कम करता है और भर्ती के दोषों को दूर करता है। मजदूरी की उचित नीति के निर्धारण में श्रमिक संघ सहायता कर सकते है और प्रबन्धकों के साथ औद्योगिक विराम सन्धि (Truce) के अन्तर्गत समझौते भी श्रमिक संघ ही कर सकते है। इस प्रकार देश के आर्थिक विकास में और आयोजना की सफलता में भी संघों का एक विशेष और महत्वपूर्ण स्थान है। इस समय ऊपर लिखे कई कारणों से श्रमिक संघों में आपस में मतभेद और फूट है। इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रथम तो श्रमिको को शिक्षा और प्रशिक्षण दिया जाय जिससे वे एक शक्तिशाली और स्वस्थ संगठन के लाभों को समझ सकें। श्रमिक संघो को केवल एक हड़ताल समिति की भाँति कार्य नही करना चाहिये, वरन् उनको अपने कार्य श्रमिको की शिक्षा की ओर भी विस्तृत करने चाहिये। ये कार्य वे अधिक सभायें करके, वाद-विवाद करके, भाषण कराके तथा कल्याणकारी कार्य करके कर सकते है। इस ओर निरन्तर प्रयत्न होने चाहियें कि विभिन्न श्रमिक संघो में एकता आ जाय और एक उद्योग में एक ही संघ हो। 'आचरण संहिता' (Code of Conduct) (देखिये परिशिष्ट 'ग') में जो नियम दिये गये है, उनका यदि उचित प्रकार से अनुसरण किया जाय और उनको प्रभावात्मक रूप से लागू किया जाये, तो श्रमिक-संघों में जो आपसी भेदभाव और द्वेषभाव पड़ा हुआ है वह दूर हो सकेगा और विभिन्न संघो के कार्यों में सामंजस्य लाया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त इस बात की भी आवश्यकता है कि श्रम नेता ऐसे हों जो स्वयं श्रमिक रह चुके हों और उनको उचित प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिये। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना ने इस सुझाव के साथ कि श्रमिक संघों में बाहर वालों की संख्या कम हो, यह भी कहा है कि बाहर वालों ने देश में श्रमिक संघ आन्दोलन के निर्माण में यथेष्ट महत्वपूर्ण कार्य किया है और उनके सम्पर्क के बिना यह आन्दोलन इतना शक्तिशाली और विशाल नहीं हो पाता। परन्तु हम यह भी कह सकते हैं कि यदि बाहर वालों का सम्पर्क न होता तो श्रमिक

सघ आन्दोलन का विकास ऐसे अस्वस्थ रूप मे न होता। सघो को इस बात को समझ लेना चाहिये कि यदि वे किसी ऐसे व्यक्ति पर, जो श्रमिक वर्ग का नही है, अधिकतर निर्भर रहेगे तो उनकी अपने को सगठित करने की शक्ति अवश्य कम हो जायेगी। वर्तमान समय की सबसे बडी आवश्यकता यह है कि राजनीतिक दल श्रमिक सघो से अलग रहें और श्रमिक सघो को राजनीति से दूर रखा जाय और वे अपने कार्यों को श्रमिको की भलाई तक ही सीमित रक्खें। इस सम्बन्ध मे यह बात बहुत आवश्यक है कि श्रमिको को सघ-ज्ञान और सघ-विधियो मे प्रशिक्षण दिया जाय। द्वितीय पचवर्षीय आयोजना मे इसके लिये वृत्तियाँ देने की व्यवस्था है। इस बात का सुझाव दिया जा सकता है कि ऐसे श्रमिको के प्रशिक्षण के लिय जो सघ-नेता बनने की आकाक्षा रखते हो अधिकतर सस्थायें खोली जाये। कोलम्बो आयोजना के अन्तर्गत श्रमिक सघो के पदाधिकारियो को प्रशिक्षण के लिय इगलैंड भेजा जा रहा है।

द्वितीय पचवर्षीय आयोजना मे इस बात का भी सुझाव था कि सघो को कुछ शर्तें पूरी करने पर वैधानिक मान्यता दे देनी चाहिये। परन्तु कानून केवल उपशमन (Palliative) का कार्य ही कर सकता है और केवल दोषो को ही दूर कर सकता है। यदि श्रमिक स्वय शक्तिशाली होंगे, तो किसी विधान की आवश्यकता नही होगी। मालिक भी एक शक्तिशाली और पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करने वाले सघ को मान्यता देने मे इन्कार नहीं कर सकते। इस सम्बन्ध मे इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि मई १९५८ मे भारतीय श्रम सम्मेलन के १६वें अधिवेशन मे श्रमिक सघो को मान्यता प्रदान करने के लिये कुछ शर्तें बनाई गई और अब उनको 'अनुशासन सहिता' के परिशिष्ट में जोड दिया गया है। (देखिये परिशिष्ट 'ग')। सघो की अपनी धनराशि मे वृद्धि करने के लिय द्वितीय पचवर्षीय आयोजना मे यह सुझाव दिया गया था कि सघो के नियमो मे यह बात भी आ जानी चाहिये कि कम से कम चार आने मासिक सदस्यता शुल्क होगी। इस नियम के बिना किसी भी सघ को एक मान्य सघ के रूप मे रजिस्टर्ड न किया जाय। शेष धनराशि या बकाया के चुकाने के जो नियम है उनको दृढता से लागू करना चाहिय। १९६० के भारतीय श्रमिक सघ (सशोधित) अधिनियम के अन्तर्गत अब प्रत्येक सदस्य के लिये कम से कम २५ पै० प्रतिमाह का चन्दा देना अनिवार्य कर दिया गया है।

तृतीय पचवर्षीय आयोजना मे कहा गया है कि "मजदूर सघो को औद्योगिक और आर्थिक प्रशासन के ढाँचे का एक अनिवार्य अग माना जाये और इन्हे इन उत्तरदायित्वो को सभालने के लिये तैयार किया जाये। अधिकाधिक मात्रा मे श्रमिको द्वारा ही श्रमिको का नेतृत्व किया जाना चाहिये—श्रमिको के शिक्षा कार्यक्रम मे प्रगति के साथ-साथ यह प्रक्रिया भी तेज हो जायेगी। इस समय श्रमिक सघ अधिकतर अपर्याप्त धन के कारण कई कठिनाइयो का अनुभव करते हैं। अनुशासन सहिता मे मजदूर सघो को मान्यता देने के लिये जो नियम निर्धारित

किये गये हैं उनके फलस्वरूप देश में एक सशक्त और स्वस्थ मजदूर आन्दोलन का विकास होगा ।"

चौथी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा में कहा गया है कि "श्रमिकों को केवल अपने सदस्यों को अच्छी मजदूरी दिलाने तथा काम करने व रहने की समुचित दशाएँ उपलब्ध कराने वाली एजेन्सी के रूप में ही कार्य नहीं करना चाहिए, अपितु देश के विकास में अपना अधिकाधिक महत्वपूर्ण योग देना चाहिये।" इससे स्पष्ट है कि हमारे देश में एक शक्तिशाली श्रम संघ आन्दोलन के विकास में दो मुख्य बाधाएँ हैं एक तो संगठित श्रम संघ आन्दोलन का अभाव तथा दूसरी साधनों की कमी।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि श्रमिकों की आर्थिक दशा में सुधार की बहुत आवश्यकता है। अपने संगठन-कार्यों के लिये जब तक श्रमिकों के पास यथेष्ट समय, शक्ति और धन न होगा, स्वस्थ संघवाद का विकास सम्भव नहीं है। इस कारण स्वस्थ संगठन की समस्या को पृथक् रूप से नहीं सुलझाया जा सकता। इसके लिये सब ओर से तथा हर प्रकार के प्रयत्नों की आवश्यकता है। श्रमिक संघों को यह समझना चाहिये कि उनका कार्य केवल यही नहीं है कि वे मालिकों से झगड़ा करते रहें या केवल श्रमिकों की भलाई व उन्नति के लिये ही कार्य करते रहें। अब उन्हें राष्ट्रीय हित के लिये आत्म-त्याग और सहयोग की भावना से कार्य करने की नीति अपनानी चाहिये। उन्हें श्रमिक संघ अनुशासन की एक संहिता का भी निर्माण करके इस बात का प्रयत्न करना होगा कि सब श्रमिक ठीक राह पर चलें। इस सम्बन्ध में 'अनुशासन संहिता' तथा 'आचरण संहिता' जैसे महत्वपूर्ण पग अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकते हैं। (देखिये परिशिष्ट 'ग')। पिछले कुछ वर्षों से श्रमिकों में अधिक मनोवैज्ञानिक (Psychological) परिवर्तन पाया जाता है। वे अपने अधिकारों से तो अधिकतर परिचित हो गये हैं परन्तु इस परिवर्तन के समय से वे अपने कर्त्तव्यों को भूल गये हैं। हर ओर से मालिकों की ये शिकायतें आती हैं कि श्रमिकों की कार्यकुशलता कम हो गई है। श्रमिक अधिक कार्य करने में कोई रुचि नहीं दिखाते और मालिक उनसे कुछ कह नहीं सकते क्योंकि हड़ताल का हर समय डर लगा रहता है। पिछले दिनों में श्रमिकों की ओर से हिंसात्मक कार्य भी हुये हैं, जैसे—कलकत्ता, खड़गपुर, बम्बई, अहमदाबाद आदि में। अभी हाल के कुछ महीनों में श्रमिकों द्वारा "घिराव" के जो हथकण्डे अपनाये गये हैं, यह बड़ी गम्भीर बात है। 'घिराव' में श्रमिक कारखाने के मालिकों तथा प्रबन्धकों को कारखानों में ही अथवा उनके निवास स्थानों में ही लम्बे समय तक घेरे रहते हैं। कभी-कभी तो इस अवधि में उनको खाना, पानी से भी वंचित कर दिया जाता है। ऐसे अस्वस्थ वातावरण को दूर करने की आवश्यकता है। इसका सबसे अच्छा उपाय यही है कि स्वस्थ श्रमिक संगठन के विकास का प्रयत्न किया जाय। देश में इस बात का

आन्दोलन भी चल पडा है कि श्रमिको को भी प्रबन्ध कार्यों मे भाग दिया जाय। इसका प्रयोग भी सफलतापूर्वक कई स्थानो पर किया गया है। इस आन्दोलन का विस्तार हो सकता है, परन्तु इसकी सफलता के लिये भी यह आवश्यक है कि शक्तिशाली और पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करने वाले श्रमिक सघ हो। यदि हम अपने श्रमिको से अधिक कार्यकुशलता की आशा करते है तथा देश मे अधिक उत्पादन और औद्योगिक शान्ति चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि सघो के समस्त दोषो को दूर करने और स्वस्थ सघवाद के विकास मे उन्नति करने की ओर हमे गम्भीर रूप से प्रयत्न करने चाहियें।

इंगलैण्ड में श्रमिक संघवाद
TRADE UNIONISM IN ENGLAND

मध्ययुग में दस्तकारी श्रेणियाँ
(Craft Guilds in the Middle Ages)

ब्रिटेन के श्रमिक संघ औद्योगिक क्रांति की उपज है। इससे पूर्व अधिकतर उद्योग-धन्धे श्रमिकों के घर पर ही होते थे और श्रमिक कठिनता से ही मिल पाते थे क्योंकि वे अलग-अलग कार्य करते थे। अत. किसी प्रकार के सघ बनाने का अवसर न था। परन्तु मध्ययुग मे श्रमिकों की दस्तकारी श्रेणियों (Craft Guilds) का उल्लेख मिलता है। यह उन कुशल श्रमिको के सघ थे जो एक ही प्रकार की वस्तु के उत्पादन मे सलग्न होते थे। इस प्रकार की श्रेणी या गिल्ड सभी व्यवसायो, जैसे—सीमेंट, यातायात आदि में पाये जाते थे। परन्तु ये दस्तकारी श्रेणियाँ आधुनिक श्रमिक सघों से भिन्न थी। दस्तकारी श्रेणियाँ उन शिल्पियो का सगठन थी जो मालिक होने के साथ-साथ श्रमिक भी थे और यह सम्पूर्ण दस्तकारी को नियत्रित करते थे, परन्तु श्रमिक सघ मे केवल श्रमिक ही होते है। इसके अतिरिक्त यह मध्यकालीन दस्तकारी श्रेणियाँ अधिकतर स्थानीय ही होती थी जबकि आधुनिक श्रमिक सघ अधिक विस्तृत आधार पर संगठित किये जाते हैं। श्रेणियाँ धार्मिक व दान के कार्य भी करती थी जो कि आधुनिक श्रमिक सघो के द्वारा सम्पन्न नही किये जाते। श्रेणिया एक ही व्यवसाय में लगे व्यक्तियो का सगठन होती थी, परन्तु श्रमिक सघों में विभिन्न व्यवसायों के श्रमिक भी हो सकते है। दोनों मे एक अन्य विभिन्नता यह थी कि दस्तकारी श्रेणिया अपने तथा जनता दोनो के ही हितों को ध्यान में रखती थी। आधुनिक श्रमिक सघ सामान्यत मजदूरों के ही हितों का ध्यान रखते है और कभी-कभी जनसाधारण और अपने उद्योग तक की भलाई की परवाह नहीं करते।

आधुनिक श्रमिक सघों का विकास

१. अठारहवी शताब्दी तथा उसके पश्चात् आधुनिक उद्योग-धन्धों के विकास होने के कारण श्रमिक सघो की आवश्यकता अनुभव हुई। कारखाना प्रणाली से श्रमजीवियों के एक नये वर्ग की उत्पत्ति हुई जो अपने निर्वाह के लिये पूर्णतया अपनी मजदूरी पर ही निर्भर था। व्यक्तिवाद (Individualism) के ऐसे युग में जबकि अप्रबन्ध नीति (Laissez-faire) ही सर्वोपरि थी, श्रमिक वर्ग को अनेक

हानिया पहुची । श्रमिको को अनेक कठिनाइयो तथा अन्याय का सामना करना पडता था तथा उनका पूण रूप से शोषण होता था । प्रारम्भिक सगठन इस शोषण के स्वाभाविक परिणाम थ ।

ससद का विरोधी व्यवहार सगठन कानून (Combination Laws)

इस युग से पूव कुछ ऐसे अधिनियम थे जिनके अन्तगत मजदूरी का निर्धारण जस्टिसेज ग्राफ पीस (Justices of Peace) द्वारा होता था । इस प्रकार जब सरकार न श्रमिको की अवस्था पर नियत्रण रखन का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया तब मजदूरी बढाने अथवा श्रम अवस्थाओ म हस्तक्षप करने के लिये श्रमिक सगठनो का कानून द्वारा निषध कर दिया गया । इसी प्रकार के निषध मालिको के लिये भी थे । परन्तु समय की गति के साथ साथ मालिको के लिये राज्य का यह हस्तक्षप निष्क्रिय होता गया । औद्योगिक क्रांति के पश्चात जब उद्योगो का तीव्रगति से विकास हुआ, राज्य के कानूनो का प्रभाव कम हो गया और मजदूरी तथा श्रम की अवस्थाए मालिको द्वारा निर्धारित की जान लगी। परिणामस्वरूप श्रमिको का शोषण हुआ । परन्तु सगठन अब भी अपराध माने जाते थे और षडयन्त्र के कानून (Law of Conspiracy) क अन्तगत दडित होते थे । तत्कालीन आर्थिक सिद्धान्त ने भी श्रमिक सघो के प्रति सरकार के दष्टिकोण पर प्रभाव डाला । मजदूरी निधि सिद्धान्त (Wages Fund Theory) क अनुसार मजदूरी एक निश्चित निधि म स दी जाती है और यदि श्रमिको का कोई सघ किसी एक उद्योग म श्रमिक सघो के माध्यम से अधिक मजदूरी प्राप्त कर लता है तो दूसरे उद्योग म श्रमिको को कम मजदूरी मिलेगी । इसके अतिरिक्त फ्रासीसी क्रान्ति ने भी इगलड म यह भय व्याप्त कर दिया कि कही यह श्रमिक सघ क्रान्तिकारी न हो जाव । अत ससद (Parliament) इन सघो क प्रति विरोधी हो उठी और कई एसे अधिनियम पारित किये गय जिनके अ तगत एक के बाद एक उद्योगो म सगठन अवैध घोषित कर दिये गय । इन सब कानूनो क पश्चात सन् १७९९ और १८०० म सगठन कानून (Combination Laws) के रूप म और भी कठार कदम उठाय गये जिनके अन्तगत तमाम उद्योगो म सगठनो का अवैध घोषित कर दिया गया । इसका परिणाम यह हुआ कि श्रमिको के गुप्त सघ बनन लग । गुप्त तहखानो म सभाय होने लगी तथा सदस्यो के नाम भी गुप्त रखे जाते थे । जब मालिको से सघ प्रत्यक्ष रूप से बात नही कर सकते थे और शातिपूण ढग स समझौता का रास्ता बन्द हो गया था तब परिणामस्वरूप अनेक स्थानो पर हडताल हुइ और श्रमिक हिसा पर उतर आये तथा मशीनो की तोड फोड की गई क्योकि मशीनें श्रमिको द्वारा उनकी निधनता और कठिनाइयो का कारण समझी जाती थी । इस समय कुछ फ्रडली सोसाइटीज अर्थात मित्र समितियाँ बनाइ गइ जो कि १७९२ क फ्रेंडली सोसाइटीज एक्ट (Friendly

Societies Act) के अन्तर्गत पंजीकृत होती थी। इन 'फ्रेंडली सोसाइटीज' ने कुछ लाभपूर्ण कार्य किए, जैसे—श्रमिकों को बेकारी और बीमारी के दिनों में सहायता दी। यह कार्य बाद में श्रमिक संघों द्वारा किए जाने लगे। परन्तु ऐसी संस्थायें श्रमिकों का वैधानिक संगठन नहीं कही जा सकती थी क्योंकि तमाम संस्थायें निषेध थी।

श्रमिक संघों का प्रारम्भ

श्रमिकों में असन्तोष व्याप्त ही रहा परन्तु शिक्षा और तीव्र वृद्धि न होने के कारण वे अनेक वर्षों तक संगठन कानूनों (Combination Laws) को समाप्त न करा सके। सैद्धान्तिक रूप से तो मालिकों के संघ बनाने पर भी प्रतिबन्ध था परन्तु इस प्रतिबन्ध को लागू करने के लिये बहुत ही कम कार्य किया गया जबकि श्रमिकों के लिये 'षड्यन्त्र के कानून' के अन्तर्गत कठोर दण्ड की व्यवस्था थी। कुछ तीव्र बुद्धि वाले श्रमिकों ने संगठन कानूनों को समाप्त कराने के हेतु आन्दोलन किया। 'फ्रांसिस प्लेस' (Francis Place) नामक एक दर्जी ने कई वर्षों तक इन अधिनियमों को समाप्त कराने के लिये कार्य किया और १८२४ में संसद के निम्न भवन (House of Commons) के क्रान्तिकारी नेताओं, विशेषकर जोसेफ ह्यूम, (Joseph Hume) की सहायता से एक ऐसा अधिनियम पारित कराने में सफल हुआ जिसके अन्तर्गत श्रमिकों को मजदूरी और काम के घण्टों के प्रश्न पर मालिकों से बातचीत करने के लिए संघ बनाने की अनुमति प्राप्त हो गई। परन्तु इस अधिनियम के परिणामस्वरूप अनेक हड़तालें हुईं और अव्यवस्था फैली। इसकी प्रतिक्रिया हुई। सन् १८२४ के अधिनियम के द्वारा श्रमिकों को षड्यन्त्र के सामान्य नियम के अन्तर्गत भी दण्डित नहीं किया जा सकता था। इसलिये इसके स्थान पर सन् १८२५ का संशोधित अधिनियम पारित किया गया जिसके अन्तर्गत संघों को वैधानिक रूप तो प्रदान किया गया, परन्तु सामान्य कानून का कोई भी उल्लेख नहीं था। अतः श्रमिक अब किसी भी संगठन के लिये, जिसका उद्देश्य कार्य के घण्टे या मजदूरी के बारे में समझौता कराना नहीं था, सामान्य कानून के अन्तर्गत दण्डित किये जा सकते थे और न ही हड़ताल करने वाले श्रमिक दूसरे मजदूरों को काम पर आने से रोक सकते थे। इससे श्रमिक संघों को काफी क्षति पहुँची और १८२५ के अधिनियम द्वारा इनको केवल वैधानिक मान्यता ही प्राप्त हो सकी। इस अधिनियम के पास होने के साथ ही श्रमिक संघों के इतिहास में निर्माण-काल की समाप्ति हो गई।

सन् १८२४ के पश्चात् श्रमिक संघों का गुप्त रूप से संगठित होना बन्द हो गया और उनकी तथा उनके सदस्यों की संख्या में आशातीत वृद्धि होने लगी। इस समय के अधिकतर संघ केवल हड़ताल समितियों के रूप में थे। जैसे ही हड़तालों को चालू रखने के लिए निधियाँ समाप्त हो जाती थी, श्रमिक काम पर लौट आते थे। स्थानीय छोटे-छोटे श्रमिक संघों को बड़े संगठनों के रूप में परिवर्तित

करने का प्रयत्न भी किया गया। १८३४ मे रावर्ट ओवन के प्रभाव के फलस्वरूप "ग्राड नेशनल कन्सोलिडेटेड ट्रेड यूनियन" की स्थापना हुई। परन्तु यह 'ग्राड नेशनल' सदस्यो की आशाओ को पूर्ण करने मे असमर्थ रही क्योकि इसम आर्थिक पुनर्निर्माण के आदर्श बहुत ऊँचे रखे गये थे जिनको प्राप्त करना कठिन था। इसलिए यह जल्द ही समाप्त हो गई। कुछ वर्षों तक श्रमिको का विश्वास सघवाद से उठ गया और उन्होने अपना ध्यान राजनैतिक कार्यवाहियो की ओर दिया तथा चार्टिस्ट आन्दोलन का समर्थन किया जो कि सन् १८३२ के "सुधार अधिनियम' (Reforms Act) की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप चालू किया गया था। इस अधिनियम के अन्तर्गत मध्य श्रेणी के व्यक्तियो को तो मत देने का अधिकार मिल गया था परन्तु श्रमिक इस अधिकार से वचित ही रहे थे। यह चार्टिस्ट आन्दोलन भी अपने उद्देश्यो की पूर्ति मे असफल रहा। इस प्रकार एक ओर क्रान्तिकारी उपायो तथा दूसरी ओर राजनैतिक क्रियाओ से हताश होकर श्रमिको ने अब अपना ध्यान कम महत्वाकाक्षी तथा अधिक सतर्क (Cautious) और अवसरवादी नीति की ओर लगाया। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १८४३ के पश्चात् श्रमिक सघो के इतिहास म एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। सन् १८५१ मे, एमलगैमेटेड सोसाइटी आफ इजीनियर्स की स्थापना ऐसे दृढ आधारो पर की गई कि वह आज तक चल रही है। धीरे धीरे अन्य कई उद्योगो मे भी सगठित सघ बनाये गये। इस काल म श्रमिक सघो की एक मुख्य विशेषता यह थी कि यह अपने सदस्यो से बहुत अधिक मात्रा म चन्दा लेते थे और उनको हर प्रकार की सहायता देते थे। अत श्रमिक हडताल करना पसन्द नही करते थ क्योकि वह अपने रुपये को जिससे उन्ह बीमारी तथा वेकारी जैसी अवस्था म सहायता मिलती थी, व्यर्थ खर्च नही होने देना चाहते थ। एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि कुशल श्रमिको के सघ तो बन परन्तु अकुशल श्रमिको के हितो की ओर ध्यान नही दिया गया।

सन् १८७१ का श्रमिक सघ अधिनियम (Trade Union Act of 1871) सघो का विकास

सन् १८६०–७० के मध्य श्रमिक सघ पुन सक्रिय हो गये, परन्तु इनकी बढती हुई शक्ति का मालिको ने स्वागत न किया। कभी कभी हडताल और इधर-उधर हिंसा की घटनाए हो जाती थी जिनके लिए श्रमिक सघ उत्तरदायी न थे। परन्तु ऐसी घटनाओ ने सघो को दबाने के लिए मालिको को अच्छा अवसर प्रदान कर दिया। सन् १८६७ मे श्रमिक सघो की जाँच करने के लिए एक रॉयल कमीशन की नियुक्ति हुई और ससद मे यह आशा व्यक्त की गई कि सगठन कानून पुन लागू कर दिये जायें। श्रमिक सघो पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्धो को समाप्त करने, श्रमिको के चरित्र को गिराने, अनावश्यक रूप से हडताल कराने तथा व्यापार की प्रगति में बाधा पहुँचाने के आरोप लगाये गये थ। दूसरी ओर श्रमिक सघो ने यह शिकायत की कि सघो की निधि के रक्षार्थ कोई उचित विधान नही था और

विधान के अन्तर्गत उनके कार्य सीमित थे। यद्यपि रॉयल कमीशन के सदस्यों का इस प्रश्न पर मतभेद था परन्तु कमीशन संघों के पक्ष में ही था। अस्थायी रूप में सन् १८६६ में 'ट्रेड यूनियन प्रोटेक्शन ऑफ फण्ड्स' अधिनियम पारित किया गया और उसके पश्चात् सन् १८७१ ई० में 'ट्रेड यूनियन एक्ट' पारित किया गया जिसने प्रथम बार श्रमिक संघों को वैधानिक मान्यता प्रदान की। सन् १८७१ के इस अधिनियम की मुख्य धारायें निम्न प्रकार थी—(१) किसी भी श्रमिक संघ को केवल इस कारण अवैध घोषित नहीं किया जा सकता था कि उसने उद्योग के हितों के विरुद्ध कार्य किया है। (२) श्रमिक संघों को "फ्रैंडली सोसायटीज" के रजिस्ट्रार के पास अपने को पंजीकृत कराने का अधिकार था और उसके सम्मुख लेखा, पता, नाम आदि प्रस्तुत करने होते थे। (३) कोई भी पंजीकृत संघ भूमि व इमारत को प्राप्त कर सकता था तथा मुकदमों को चला सकता था या उनसे बचाव करने के लिए पग उठा सकता था। (४) संघों की निधि को रक्षा प्रदान की गई। श्रमिक संघों के कोषाध्यक्ष तथा पदाधिकारियों को निधि के दुरुपयोग के कारण दण्डित किया जा सकता था।

सन् १८७१ के इस अधिनियम ने श्रमिकों को संघ बनाने का अधिकार प्रदान तो किया परन्तु इसी समय एक फौजदारी कानून संशोधन अधिनियम (Criminal Law Amendment Act) पारित किया गया जिसमें धरना और धमकी देने वालों के लिये कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई। इस कानून के द्वारा किसी भी प्रभावात्मक हड़ताल का कराना असम्भव सा हो गया। इस कानून के विरोध में आन्दोलन हुआ और इसी कारण सन् १८७४ में ग्लैडस्टन की सरकार को श्रमिक संघों के मत न मिल सके। सन् १८७५ में 'कन्जरवेटिव' या अनुदार सरकार ने एक और अधिनियम पारित कर शान्तिपूर्ण ढंग से धरना देने तथा श्रमिकों का मालिकों से सौदाकारी करने के अधिकार को अवैध घोषित कर दिया। सन् १८६७ में एक संशोधन और हुआ जिसके अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई कि यदि कोई संघ प्रार्थना करे या यदि वह कानून के अनुसार अपना ब्यौरा प्रस्तुत न कर सके अथवा निष्क्रिय या बन्द हो जाये तब उसका पंजीकरण समाप्त किया जा सकता था।

इसके पश्चात् अनेक नये संघों का निर्माण हुआ, परन्तु सन् १८७४ की औद्योगिक मन्दी के परिणामस्वरूप अनेक हड़तालें असफल हुई और छोटे-छोटे संघ समाप्त हो गये परन्तु फिर भी श्रमिक संघों का विस्तार जारी रहा। अब तक यह कुशल श्रमिकों तक ही सीमित था परन्तु अब इसको अकुशल श्रमिकों तक पहुँचाने का प्रयत्न किया गया, यद्यपि इसमें उनकी कम मजदूरी और कम बुद्धि के कारण काफी कठिनाई पड़ी। फिर भी आन्दोलन चलता रहा और बन्दरगाहों, गैस कार्य तथा अन्य अकुशल कर्मचारियों के संघ भी बनाये गये। अगस्त १८८६ में गैस कार्य के कर्मचारी हड़ताल करके अपने कार्य के घन्टे कम कराने में सफल हुए। सन् १८८८ में दियासलाई उद्योग में कार्य करने वाली लड़कियों ने श्रीमती ऐनी बेसेन्ट

के नेतृत्व में एक हड़ताल की। इन लड़कियों का न तो कोई उचित संगठन था और न ही उनके पास धन था। परन्तु जन सहानुभूति इतनी अधिक थी कि उनकी सहायता के लिये धन एकत्रित हो गया और उनको मालिकों से कुछ रियायतें भी मिल गई। सन् १८८६ मे लन्दन के गोदी कर्मचारी हड़ताल के द्वारा न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कराने मे सफल हुए। इस प्रकार अकुशल कर्मचारियों के अनेक संघ बने। इसी समय १८९० ई० मे रेलवे कर्मचारियों का एक सम्मिलित संघ (Amalgamated Society of Railway Servants) बना यद्यपि रेलवे कर्मचारियों के संघ १८७१ से बनने लगे थे। यहाँ इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि १९वीं शताब्दी के अन्त तक श्रमिक संघ अपने सदस्यों को कल्याणकारी लाभ नहीं पहुँचाते थे क्योंकि यह कार्य सरकार का समझा जाता था। सन् १८९३ में श्रमजीवियों की अवस्था को सुधारने के लिये स्वतन्त्र मजदूर दल (Independent Labour Party) का निर्माण किया गया। इस लेबर पार्टी ने कई बार अपनी सरकार बनाई है। इसके बाद से श्रमिक संघों ने स्वतन्त्र रूप से राजनैतिक कार्यों में भाग लिया तथा सामाजिक कानूनों की उन्नति की ओर अधिक ध्यान दिया।

टफवेल रेलवे कम्पनी और ऑस्बोर्न के मुकदमे

वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में इंगलैण्ड के श्रमिक संघ आन्दोलन को दो भारी झटके लगे। सन् १९०० में टफवेल रेलवे कम्पनी के कर्मचारियों ने हड़ताल की। कम्पनी ने रेलवे कर्मचारियों के सम्मिलित संघ (Amalgamated Society) पर क्षतिपूर्ति के लिये मुकदमा दायर किया। संघ का विचार था कि सन् १८७१ और १८७५ के अधिनियमों द्वारा उनको पर्याप्त सुरक्षा प्राप्त थी परन्तु न्यायालय ने संघ को कम्पनी को भारी मात्रा में क्षतिपूर्ति देने का आदेश दिया। इससे यह धारणा बन गई कि संघों का धन मुकदमों में तथा क्षतिपूर्ति देने में ही व्यर्थ नष्ट होता था। सन् १९०६ में व्यापार विवाद अधिनियम (Trade Disputes Act) के अन्तर्गत इस विषय में कुछ अधिकार मिले और न्यायालयों को इस बात के लिए मना कर दिया गया कि वह शान्तिपूर्वक धरना देने वालों तथा संघ के कार्यों के विषय में कोई भी मुकदमा न लें।

श्रमिक संघवाद को दूसरा महत्वपूर्ण झटका अपनी राजनैतिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप लगा। कई श्रमिक संघ अपने सदस्यों से मजदूर दल का समर्थन करने के लिये चन्दा लेते थे। उनके इस अधिकार के विरुद्ध सन् १९०८ में रेलवे कर्मचारियों के सम्मिलित संघ (Amalgamated Society) के एक सदस्य मि० डब्लू० ऑसबोर्न ने आवाज उठाई और उनके इस मत का न्यायालयों ने भी समर्थन किया। इससे मजदूर दल (Labour Party) का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया। अब केवल धनी व्यक्ति ही दल के लिए धन दे सकते थे और श्रमिक ऐसा करने में असमर्थ थे। सन् १९१३ में 'ट्रेड यूनियन एक्ट' पारित किया गया जिसके

अनुसार संघ राजनैतिक कार्यों में भाग ले सकते थे तथा इस कार्य के लिये धन भी एकत्रित कर सकते थे। परन्तु राजनैतिक कार्यों में भाग लेने के लिये आवश्यक था कि उसका समर्थन मतदान द्वारा बहुमत से होना चाहिए तथा राजनैतिक निधि को अन्य निधियों से पृथक् रखा जाय। इसके अतिरिक्त कोई भी व्यक्तिगत सदस्य राजनैतिक निधि में चन्दा देने से मना कर सकता था और उसे इस कार्य के लिए कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता था।

युद्ध और संघ

प्रथम महायुद्ध में श्रमिक संघ आंदोलन का महत्व बढ़ गया। युद्ध काल में हड़तालें स्थगित कर दी गई और श्रमिक संघ व मजदूर दल ने अपने आप को पूर्णतया युद्ध में लगा दिया तथा अपने अनेक अधिकारों का परित्याग कर दिया। परन्तु युद्ध की स्थिति के कारण नई औद्योगिक समस्याएं सामने आई और 'श्रमालय प्रतिनिधि' (Shop Steward) आन्दोलन के रूप में एक नया श्रमिक संघ आन्दोलन उठा। युद्ध के पश्चात् ही आर्थिक मन्दी आई। मजदूरी में कमी कर दी गई और अनेक हड़तालें हुई। १९१९ में रेलवे की हड़ताल में श्रमिकों को सफलता प्राप्त हुई। लन्दन में गोदी कर्मचारी, अर्नेस्ट बेविन के नेतृत्व में, न्यूनतम मजदूरी प्राप्त करने में सफल हुए। सन् १९२६ में एक आम हड़ताल हुई जिसके परिणामस्वरूप सन् १९२७ का श्रमिक संघ अधिनियम पारित किया गया। इसके द्वारा आम हड़तालों को अवैध घोषित कर दिया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत इस बात की भी व्यवस्था थी कि प्रत्येक सदस्य को राजनैतिक निधि में चन्दा देने की अपनी इच्छा को घोषित करना चाहिये और सन् १९१३ के अधिनियम की भाँति यह आवश्यक नहीं रह गया कि प्रत्येक व्यक्ति राजनैतिक निधि में चन्दा दे और जो न देना चाहे वह मना कर दे। इस बात से मजदूर दल में असन्तोष व्याप्त हुआ। परन्तु उस समय की (१९२९–३१) 'लेबर' सरकार ने भी इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। सन् १९४६ के श्रमिक संघ अधिनियम तथा व्यापार विवाद अधिनियम के द्वारा ही सन् १९२७ से पूर्व की इस बात को पुनः लागू किया गया कि प्रत्येक सदस्य को राजनैतिक निधि में चन्दा देना होगा जब तक कि वह छूट के लिए प्रार्थना न करे।

वर्तमान स्थिति तथा संघों का संगठन

इस अवधि के पश्चात् से इंगलैंड में श्रमिक संघ आन्दोलन निरन्तर शक्तिशाली होता जा रहा है और इसने श्रमिकों के कल्याण और हित के लिये अनेक कार्य किये हैं। अधिकतर कर्मचारी, जो उद्योगों में लगे हुए हैं, जिनमें कृषि और यातायात जैसी जनोपयोगी सेवायें भी सम्मिलित हैं, अब श्रमिक संघों में संगठित हैं। इनका विकास स्वतन्त्र रूप से धीरे-धीरे कई वर्षों में हुआ है। यह आन्दोलन २०० वर्ष पूर्व कुशल कर्मचारियों से आरम्भ हुआ था और तत्पश्चात् अकुशल वर्गों में भी फैल गया। द्वितीय विश्व युद्ध के समय में सदस्यों की संख्या २५% और

अधिक बढ़ गई। सन् १९४६ में ब्रिटिश श्रमिक सघो की सदस्यता ८७,१४,००० थी। सन् १९५७ में सदस्य संख्या ९७,००,००० तक पहुँच गई। अब भी ६४७ अलग-अलग सगठन हैं परन्तु दो तिहाई सदस्य १७ ऐसे बड़े-बड़े सघो मे सगठित हैं, जिनमे प्रत्येक मे सदस्यो की संख्या १ लाख से भी अधिक है। सन् १९६२ के अन्त में, श्रमिक सघों की संख्या ६२३ थी और सदस्य संख्या ९८,७२,००० थी जिसमे ७८,५१,००० पुरुष और २०,२१,००० स्त्रियाँ थी। कुछ सघ एक दस्तकारी (Craft) या दस्तकारो के ग्रुप तक सीमित हैं जबकि कुछ दूसरे सघ किसी उद्योग अथवा उद्योगो मे लगे हुये सभी प्रकार के श्रमिक व कर्मचारियो तक फैले हुए हैं। प्रत्येक सघ अपने सगठन मे स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है और इसका आधार ब्राच (Branch) अथवा लॉज (Lodge) है जो स्थानीय क्षेत्रो पर आधारित है। ब्राच' अधिकारियो और समितियो का निर्वाचन करती है और उन सभी विषयो पर विचार करती है जो कि स्थानीय रूप से सुलझाय जा सकते हैं। अधिक महत्व-पूर्ण मामले जिले की अथवा राष्ट्रीय सस्थाओ द्वारा सुलझाये जाते है। अब स्त्रियो तथा हर प्रकार के कर्मचारियो मे भी सघवाद विकसित होता जा रहा है। कई सघो म श्रमालय प्रतिनिधि (Shop Steward) या कर्मचारियो के प्रतिनिधि भी होते हैं। इसके अतिरिक्त व्यापारिक परिषदें (Trade Councils) भी हैं जो विभिन्न उद्योगो मे सगठित श्रमिको के राजनैतिक और औद्योगिक प्रश्नो पर सहयोग देने के लिये हैं। यह प्रत्येक क्षेत्र मे श्रमिक सघो की शाखा का कार्य करती है। इगलैंड मे श्रमिक सघ आन्दोलन कुशल दस्तकारो, जैसे—इञ्जीनियरिंग खानों, वस्त्र उद्योग, रेलवे, यातायात और गोदी कर्मचारियो मे पर्याप्त शक्तिशाली है। इगलैंड मे श्रमिक सघो का एक महत्वपूर्ण कार्य सामूहिक सौदाकारी (Collective Bargaining) के माध्यम से मालिको से बातचीत करना रहा है।

इगलैण्ड मे सगम (Federations in England)

ब्रिटेन मे श्रमिक सघ आन्दोलन की एक प्रमुख विशेषता सगमो की स्थापना है जो नीति सम्बन्धी मामलो पर विचार करते हैं। इगलैंड में श्रमिक सघ आन्दोलन का केन्द्रीय सगठन 'ट्रेड यूनियन कांग्रेस' है जिससे अधिकतर श्रमिक सघ सम्बद्ध हैं। यह ट्रेड यूनियन कांग्रेस सन् १८६८ मे स्थापित की गई थी और यह एक प्रकार से श्रमिको की ससद् है जिसमे अनेक वर्गों का प्रतिनिधित्व मिलता है। इस सस्था को एक सामान्य परिषद् सन् १९२१ मे स्थापित की गई थी जिसका श्रमिक ससार मे महत्वपूर्ण प्रभाव है। सामान्य परिषद् प्रतिवर्ष कांग्रेस द्वारा अपनी कार्यांग (Executive) के रूप मे निर्वाचित की जाती है। यह परिषद् उस सामान्य नीति को कार्यान्वित करती है जो कि सम्बद्ध सघो के प्रतिनिधियो के वार्षिक अधिवेशन द्वारा निश्चित की जाती है। ट्रेड यूनियन कांग्रेस को सरकार द्वारा सरकारी विभागो और श्रमिको के प्रतिनिधियो के बीच परामर्श करने के लिये मान्यता भी प्राप्त है।

ब्रिटिश श्रमिक संघों की उपलब्धियाँ (Achievements)

इंगलैंड मे श्रमिक संघ आन्दोलन ने श्रमिकों की दशा सुधारने और श्रम व सामाजिक कल्याण कार्यो की अवस्थाओ में सुधार करने के लिये महत्वपूर्ण कार्य किया है। श्रमिकों की दशा सुधारने तथा श्रम एवं समाज-कल्याण के कार्यों में वृद्धि करने का काफी श्रेय इंगलैंड के श्रम-आन्दोलन को है। श्रमिक संघो ने मालिको से बातचीत और समय-समय पर रॉयल कमीशन और जाँच-समितियो को गवाही देकर मजदूरी और श्रमिक की अवस्थाओ मे सुधार कराया है। समय-समय पर उन्होने हड़तालें और सीधी कार्यवाहियाँ भी की है परन्तु हड़ताल उनका अन्तिम अस्त्र है जिसका प्रयोग उस समय किया जाता है, जबकि परस्पर समझौते और वार्तालाप के साधन असफल हो जाते है। विकासात्मक और वैधानिक उपायो से ही उद्देश्यो को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। क्रान्तिकारी तरीके इगलैंड के सघ आन्दोलन के नेताओ और साधारण सदस्यो के विचारो के अनुकूल नही है। अनेक श्रमिक सघ अपने सदस्यो के लिये अनेक लाभ प्राप्त करने मे सफल हुए है। सघ न केवल कारखाने, वर्कशाप और खानो में कार्य की शिकायतो पर ही ध्यान देते है वरन् प्रगतिशील निर्माणकारी सुझावो मे सहयोग भी देते है। उनका यह सहयोग छोटी-छोटी बातो से बडी-बडी बातो तक होता है। उदाहरणतया, वह उचित प्रकाश, सवातन तथा सुरक्षा व्यवस्था से लेकर कार्य सगठन की व्यवस्था, विश्राम-समय, कैंटीन व्यवस्था और श्रमिको के मनोरजन एव कल्याण कार्य जैसे प्रश्नों तक में रुचि लेते है। इस कार्य को समायोजित करने और इस ओर निरन्तर विचार करने के लिये श्रमिक संघ काँग्रेस ने एक स्थायी "वर्कमैन्स कम्पनसेशन एण्ड फैक्ट्रीज कमेटी" स्थापित की है। अनेक उद्योगों मे अनुशासन के प्रश्न पर भी सघ विचार करते है। उदाहरणतया, सघ और मालिको की संयुक्त समितियाँ कुछ उद्योगो मे इसलिये बनी हुई हैं कि वह नियमो का उल्लघन करने वाले कर्मचारियों के विरुद्ध आरोपो की सुनवाई कर सकें। कर्मचारियो के मुकदमों में वकालत करने का काम भी सघ करते है। यदि किसी श्रमिक को मुअत्तिल (Suspend) कर दिया जाता है या उसे कोई अन्य दण्ड मिलता है तो श्रमिको की ओर से सघ सफाई पेश करने का कार्य-भार भी सम्भालते है। यहाँ तक कि कई बार श्रमिको की नियुक्ति और बरखास्तगी का निर्णय सघ और मालिक मिल कर स्वय करते है। इसके अतिरिक्त सघ अपने सदस्यो को नकदी के रूप में अनेक प्रकार की सहायता देते हैं जो कि विभिन्न सघो मे भिन्न-भिन्न है। यह सहायता बीमारी, दुर्घटना अथवा मृत्यु की अवस्था में दी जाती है। अन्तिम सस्कार के लिये भी सदस्यो को धन दिया जाता है जो अधिकतर उनकी पत्नी की मृत्यु पर प्रदान किया जाता है। कभी-कभी मातृत्व-हित-लाभ भी प्रदान किये जाते हैं। कुछ सघ बेरोजगारी की अवस्था मे भी सहायता देते है। नकद लाभ का प्रबन्ध इगलैंड में श्रमिक सघो का बहुत पुराना कार्य है और कई प्रारम्भिक श्रमिक सघ वास्तव

मे कल्याण समितियाँ ही थे। राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा अधिनियम के अन्तर्गत भी सदस्यो को जो बीमारी के दिनो में सहायता मिलती है उसको नियोजित करने का कार्य भी सघो द्वारा ही होता है और इसके लिये सघो को मान्यता प्राप्त समितियाँ माना जाता है। कुछ सघ सदस्यो के लिये सेवा सुश्रुषा गृहो (Convalescent Homes) की भी व्यवस्था करते हैं। इसके अतिरिक्त श्रमिक सघ अपने सदस्यो के लिये, जब उन पर कोई मुकदमा चलता है या जब वह दुर्घटना के पश्चात् क्षतिपूर्ति की माँग करते हैं, कानूनी सहायता की भी व्यवस्था करते है। अनेक सघ सदस्यो को शिक्षा सुविधाये प्रदान करने के लिये अनुदान और छात्रवृत्ति भी प्रदान करते है। इन उद्देश्यो के लिये "वर्कर्स एज्यूकेशनल एसोसियेशन्स" तथा "नेशनल कौंसिल ऑफ लेबर कॉलिजेज" स्थापित किये गये है जहाँ अर्थशास्त्र, सामाजिक विज्ञान, सास्कृतिक विषयो और श्रमिक सघवाद का अध्ययन कराया जाता है। कुछ सघ विशेष पाठ्यक्रमो की भी व्यवस्था करते है। उदाहरणतया "ट्रासपोर्ट एण्ड जनरल वरकर यूनियन" ने अपने सदस्यो के लिये दिन के स्कूलो की व्यवस्था की है और 'सघ और युद्ध" या सघ और उसकी समस्याओ पर 'पत्र-व्यवहार कोर्स' की भी व्यवस्था की है। इसके अतिरिक्त श्रमिक सघो और लेबर पार्टी के बीच घनिष्ठ सहयोग रहा है यद्यपि पिछली लेबर सरकार के समय श्रमिक सघो का लेबर पार्टी की सरकार से मतभेद हो गया था जबकि गोदी और इस्पात कर्मचारियो और खान श्रमिको ने हडताल कर दी थी। फिर भी यह कहा जा सकता है कि श्रमिक सघ, लेबर पार्टी और सरकार के बीच एक कडी है और इन्होने लेबर पार्टी पर दबाव डालकर ससद् में श्रमिको के लिये अनेक कानून बनवाय है। श्रमिक सघो ने श्रमिको की आवास समस्या की भी उपेक्षा नही की है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र म ब्रिटिश श्रम-सघवाद ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के माध्यम से श्रम दशाओ का सन्तोषजनक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर स्थापित किया है।

इस प्रकार से इङ्गलैंड में श्रमिक सघ अपने को केवल श्रमिको के जीवन तक ही सीमित नही रखते वरन् ग्रेट ब्रिटेन की औद्योगिक प्रणाली मे उनका अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है। य मालिक मजदूर सम्बन्धो की व्यवस्था का एक भाग हैं, और श्रमिको की ओर से मजदूरी पर बातचीत करने और रोजगार की अवस्थाओ पर विचार करने के लिये श्रमिको की सगठित सस्था है। उन्होने उद्योग मे मधुर सम्बन्ध स्थापित किये है और इस प्रकार एक महत्वपूर्ण जन सेवा की है। उन्होने इङ्गलैंड में श्रमिक विवादो की सख्या कम की है। श्रमिको के सामान्य जीवन के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाने की ओर भी ध्यान दिया है। उन्होने श्रमिको के भौतिक, मानसिक और सास्कृतिक तथा नागरिक उत्तरदायित्व के स्तरो को ऊँचा उठाने में सहायता दी है। पिछले कुछ वर्षों से सघो ने अपने सदस्यों की शिक्षा की ओर भी अधिक ध्यान दिया है। इन कार्यों ने श्रमिको के स्तर और आत्म-सम्मान को बहुत ऊँचा उठाया है। अब सघो से सरकार के द्वारा निरन्तर आर्थिक, सामाजिक और प्रतिरक्षा (Defence) जैसे विषयो पर भी

परामर्श लिया जाता है। श्रमिक संघ आन्दोलन समाज के जीवन का प्रतिबिम्ब है और कोई भी इंगलैंड के १ करोड़ श्रमिकों की उपेक्षा करने का साहस नहीं कर सकता।

श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन (Shop Stewards Movement)[1]

श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन और इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाला श्रमिक समिति आन्दोलन (Workers' Committee Movement) १६१४–१८ के विश्वयुद्ध की देन थे। एक समय तो ऐसा प्रतीत हुआ कि यह आन्दोलन श्रमिक संघों की नीति और संगठन विधि में परिवर्तन ला देंगे परन्तु युद्ध समाप्ति के एक दो वर्ष पश्चात् यह आन्दोलन प्रगति न कर सका।

सन् १६१६ की ह्विटले समिति की सिफारिशों के परिणामस्वरूप ग्रेट ब्रिटेन में संयुक्त औद्योगिक परिषदें (Joint Industrial Councils) स्थापित की गई थीं। ये परिषदें उद्योग की समस्याओं पर विचार करने के लिये थीं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक कार्यालय ही में श्रमिकों और मालिकों के मध्य मतभेद दूर करने के लिये हजारों की संख्या में मालिक-मजदूर समितियां (Workshop Committees) स्थापित हो गई थीं। 'श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन' इसके साथ ही साथ विकसित हुआ।

'श्रमालय प्रतिनिधि' उस श्रमिक को कहते है जो किसी कारखाने में, कारखाने की समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर प्रतिनिधित्व करने के लिये अपने साथियों द्वारा चुन लिया जाता है। इस प्रकार के श्रमालय प्रतिनिधि युद्ध से पूर्व भी थे। इनको बड़ा उपयोगी समझा जाता था, क्योंकि किसी श्रमिक संघ के लिये किसी कारखाने विशेष की समस्याओं पर विचार करना और उसके दिन-प्रति-दिन के मामलों को सुलझाना बड़ा कठिन होता है। श्रमिक संघों के अधिकारी थोड़े ही होते है और वह हर समय हर स्थान पर उपस्थित नहीं हो सकते। श्रमिक संघ तो केवल श्रमिकों के सामान्य हित पर ही विचार करते है। श्रमिकों को कारखाने में भी किसी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है जो तत्कालीन और विशेष समस्याओं को, जैसे ही वह उत्पन्न हों, सुलझा सके। अतः यह उपयुक्त ही है कि प्रत्येक संस्थान में श्रमिक अपने बीच से किसी ऐसे व्यक्ति को चुनें जो उनकी ओर से बोल सके और संघ में विषय विशेष पर उनका प्रतिनिधित्व कर सके। खान-श्रमिक इस कार्य के लिये 'चैकवेमैन' (Checkweighman) की सेवायें प्राप्त करते हैं जिसको कानून के द्वारा उन्हें चुनने का अधिकार है और जिसको श्रमिकों के द्वारा वेतन दिया जाता है। अन्य उद्योगों में इस उद्देश्य के लिये श्रमालय प्रतिनिधि छांटे जाते हैं परन्तु युद्ध से पूर्व वह महत्वपूर्ण नहीं थे। श्रमिक संघ भी उनका समर्थन नहीं करते थे क्योंकि यह विचार था कि वह श्रमिक संघ अधिकारियों के विरोध में आ जायेंगे। इनका सन्देह उचित ही था क्योंकि कई बार मालिकों ने

1. G. D. H. Cole: *British Trade Unionism Today*, page 163.

मालिक-मजदूर समितियाँ बनाई और सघो को दूर रखने के लिये कारखानों के अन्दर ही प्रतिनिधियो का चुनाव कर लिया। अब बहुत समय तक श्रमालय प्रतिनिधियो को श्रमिक सघो के द्वारा किसी प्रकार के सगठनात्मक कार्य नही दिये गये। परन्तु युद्ध से सारी स्थिति ही बदल गई। सर्वप्रथम तो मान्यता प्राप्त श्रमिक सघो की शक्ति ही समाप्त हो गई क्योकि पहले तो उन्होने एच्छिक रूप से ही युद्ध के दिनो मे हड़ताल न करने का सकल्प किया और फिर सन् १९१५ के 'म्यूनिशन ऑफ वार एक्ट' के अन्तर्गत हड़तालो को अवैध घोषित कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ है कि जब कोई शिकायत इतनी गम्भीर हो जाती थी कि हड़ताल करने की स्थिति उत्पन्न हो जाये तो श्रमिको को सघ से बाहर के नेतृत्व की सहायता लेनी पडती थी। इस नेतृत्व की पूर्ति श्रमालय प्रतिनिधियो द्वारा हुई। दूसरे सन् १९१५ के प्रारम्भ से ही अस्त्र-शस्त्रो की तीव्र आवश्यकता के कारण कारखानो की प्रणाली मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। यहाँ तक कि कुशल श्रमिको के स्थान पर अकुशल व अर्धकुशल स्त्री व पुरुष रखे जा रहे थे। निरन्तर होने वाले इस परिवर्तन से सघर्ष उत्पन्न हो गया और श्रमिको के प्रतिनिधियो द्वारा प्रत्यक्ष रूप से बातचीत करना आवश्यक हो गया। इस प्रकार से श्रमालय प्रतिनिधि महत्वपूर्ण हो गये। तीसरे, मार्च १९१६ मे सेना मे अनिवार्य भर्ती लागू हो गई। इसके परिणामस्वरूप अधिक से अधिक सख्या मे कुशल श्रमिको की माँग युद्ध के कारण बहुत बढ़ गई और उनको सेना के लिये भेजना पडा। मार्च १९१७ मे रूसी क्रान्ति के पश्चात्, युद्ध के निरन्तर बढते हुये विरोध के कारण सघर्ष और भी बढ गया। इस विरोध का नेतृत्व भी श्रमालय प्रतिनिधियो ने किया।

इन तीन कारणो के परिणामस्वरूप ही श्रमालय प्रतिनिधियो के आन्दोलन का अभ्युदय और विकास हुआ। आन्दोलन के रूप मे यह क्लाइड मे सन् १९१५ मे इजीनियरो की हड़ताल से प्रारम्भ हुआ था। यह हड़ताल श्रमिक सघो की अनुमति के बिना हुई। इसका नेतृत्व "सैन्ट्रल विदड्रावल ऑफ लेबर कमेटी" (Central Withdrawal of Labour Committee) ने किया जिसमे सघो के द्वारा मान्यता प्राप्त श्रमालय प्रतिनिधि तथा श्रमिको के चुने हुए प्रतिनिधि होते थे। इस हड़ताल के पश्चात् इसने 'क्लाइड वर्कर्स कमेटी' के रूप मे अपने को परिवर्तित कर लिया और प्रत्येक इजीनियरिंग कारखाने मे अनौपचारिक रूप से श्रमिको का सगठन हुआ। क्लाइड का उदाहरण छूत की बीमारी की तरह फैला तथा 'श्रमालय प्रतिनिधि' आन्दोलन और विकसित हुआ। अनेक जिलो मे श्रमिको की समितियाँ स्थापित की गइ। प्रारम्भ मे श्रमालय प्रतिनिधि केवल कुशल श्रमिको के प्रतिनिधि होते थे परन्तु शीघ्र ही आन्दोलन अकुशल श्रमिको मे भी फैल गया। श्रमिको की समितियाँ स्थापित की गई, जिन्होने सघो से भी अधिक प्रभावशाली प्रतिनिधित्व का दावा किया। परन्तु 'श्रमालय प्रतिनिधि' आन्दोलन अकुशल श्रमिको की अपेक्षा कुशल श्रमिको का अधिक प्रतिनिधित्व करता था तथा इसमे स्त्रियो का कोई महत्वपूर्ण प्रतिनिधित्व नही था।

'क्लाइड श्रमिक समिति' युद्ध काल में तो सक्रिय रही परन्तु सन् १९१६ ई० में इसके नेताओं के कारावास और देश-निष्कासन के कारण इसकी शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई तथा नेतृत्व अन्य स्थानों के व्यक्तियों में चला गया। इसके पश्चात् 'शेफील्ड वर्कर्स कमेटी' विकसित हुई। इन्जीनियरों की समिति एक ऐसे कुशल श्रमिक को जिसे सेना मे भर्ती कर लिया गया था, अनौपचारिक हड़ताल द्वारा वापिस बुलाने मे सफल हुई। इसी समय अनेक स्थानीय श्रमालय प्रतिनिधियों के संगठन को राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप मे संगठित करने का प्रयत्न किया गया। एक राष्ट्रीय श्रमालय प्रतिनिधि समिति की स्थापना की गई और जनवरी १९१८ में रूसी क्रान्ति की प्रेरणा से राष्ट्रीय श्रमालय प्रतिनिधि परिषद् पूर्णतया संगठित हो गई। युद्ध काल मे इन्जीनियरों और जहाज-निर्माण श्रमिकों की जो हड़तालें हुईं वह श्रमालय प्रतिनिधियों के द्वारा संचालित की गई थी और यह मान्यता प्राप्त श्रमिक संघो के नेताओं की इच्छा के विरुद्ध हुईं। प्रारम्भ मे उन्होंने मजदूरी जैसे औद्योगिक प्रश्नों तक ही अपने को सीमित रखा परन्तु रूसी क्रान्ति के परिणामस्वरूप वह सेना की नौकरी के विरोध में हो गए और शान्ति-स्थापना तथा पूँजीवाद की समाप्ति के लिये क्रान्तिकारी उपायों में विश्वास करने लगे। परन्तु यहाँ इस बात का उल्लेख कर दिया जाना आवश्यक है कि इस आन्दोलन मे सभी श्रमालय प्रतिनिधि सम्मिलित नहीं थे। इनमे से कई कट्टर श्रम-संघवादी और युद्ध के समर्थक थे। आन्दोलन के क्रान्तिकारी विचारों के कारण सरकार और जनता ने इसका घोर विरोध किया। जब तक युद्ध होता रहा तब तक तो कुशल श्रमिकों की कमी के कारण श्रमालय प्रतिनिधियों से किसी ने कुछ न कहा। परन्तु युद्ध समाप्त होते ही एक नवीन परिस्थिति उत्पन्न हो गई। श्रमिकों की पूर्ति अधिक थी और अब मालिकों के लिए आन्दोलन के नेताओं को बर्खास्त करना सरल हो गया। परिणामस्वरूप श्रमालय प्रतिनिधि का होना ही बर्खास्तगी को निमन्त्रण देना था। अत श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन की गति तीव्रता से क्षीण होती गई। कई सक्रिय नेता साम्यवादी दल में सम्मिलित हो गए और कुछ श्रमिक संघ नेतृत्व के अन्तर्गत आ गए।

यद्यपि श्रमिक संघों के नेता श्रमालय प्रतिनिधि के पक्ष में तो थे परन्तु उनके आन्दोलन का सदैव विरोध करते थे क्योंकि वह इसको संघो के अधिकार और प्रणाली को चुनौती समझते थे। इसके अतिरिक्त श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन ने विभिन्न संघों के अन्तर की ओर ध्यान नहीं दिया और सभी श्रमिकों को, बिना इस बात का विचार किए कि वह किस संघ से सम्बन्धित है, संगठित किया। अतः यह आन्दोलन श्रमिक संघ व्यवस्था से मेल नहीं रख सका, तथापि इसने काफी महत्ता प्राप्त कर ली थी। युद्ध के पश्चात् भी अनेक श्रमिक संघ नेताओं ने इस बात का प्रयत्न किया कि, जैसी युद्ध से पूर्व स्थिति थी, श्रमालय प्रतिनिधियों को श्रम संघों के अधीन कार्य करने दिया जाए। परन्तु आन्दोलन असफल रहा क्योंकि इसने क्रान्तिकारी उपायों और उद्योग पर श्रमिकों के नियन्त्रण में विश्वास

करना प्रारम्भ कर दिया था। इगलैड मे श्रमिक सघ आन्दोलन क्रान्तिकारी आदर्शो के सदैव विरुद्ध रहा है और श्रमिक व्यवस्था मे सुधार के लिए अर्थ-व्यवस्था के वर्तमान रूप मे ही विश्वास करता रहा है। अत श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन उसी समय पुन शक्तिशाली हो सकता है जबकि श्रमिको मे क्रान्तिकारी विचार घर कर जाये। उनका श्रमिक सघो की चुनौती के रूप में होना सन्देहयुक्त ही है। श्रमालय प्रतिनिधि श्रमिक सघ आन्दोलन के साथ अथवा उनके एक भाग के रूप मे ही सर्वोत्तम तरीके से कार्य कर सकते हैं। यद्यपि श्रमालय प्रतिनिधि अब भी अपने को एक अलग श्रेणी के रूप में समझते है तथापि श्रमिक सघ इतने शक्तिशाली हो गये है कि सन् १९१४–१८ के महायुद्ध के समय के श्रमालय प्रतिनिधि जैसे आन्दोलन का विकसित होना कठिन है।

अन्य देशो मे श्रमिक सघ—

श्रम सघवाद विश्वव्यापी आन्दोलन है। प्रत्येक पूंजीवादी देश मे इसका विकास भी पूंजीवाद के विकास के साथ हुआ है और यह पूंजीवादी शोषण के उत्तर के रूप मे आग बढा है। 'सिद्धान्त' अथवा 'आन्दोलन' के कारण नही वरन् श्रमजीवी वर्ग की तीव्र आवश्यकता के कारण ही श्रम सघवाद का अभ्युदय हुआ। अत श्रम सघवाद सब पूंजीवादी देशो म विकसित हुआ है। इटली, जर्मनी और कुछ सीमा तक जापान मे भी श्रम सघो को समाप्त कर दिया गया था क्योकि फासिस्ट सरकार कभी भी श्रमिको की शक्ति मे विश्वास नही करती थी और उसने केवल वही सघ बनाए जो कि सत्ताधारी दल के द्वारा नियन्त्रित हो। ऐसे देशो मे श्रमिको मे अनुशासन बनाए रखने के लिये सघ स्थापित हुए थे। परन्तु चूंकि उन्हे हडताल करने अथवा अपने हितो की रक्षा करने का अधिकार न था। अत इनको श्रमिक सघ नही कहा जा सकता। दूसरी ओर, श्रम सघवाद अमेरिका व ग्रेट ब्रिटेन मे तथा समाजवादी देश रूस मे काफी शक्तिशाली रहा है।

अमेरिका मे श्रमिक सघो का इतिहास काफी पुराना है। स्वतन्त्रता की घोषणा के पूर्व भी दस्तकारी और घरेलू उद्योगो के कारीगरो ने मिलकर कुछ हितकारी समितिया (Benevolent Societies) बना ली थी। ये समितिया इगलैड की 'फ्रडली सोसाइटीज' की भाँति थी। १८०० के आरम्भ मे जब अमेरिका मे उद्योगो का विकास हुआ तब कारखानो और बडे कार्यशालाओ में मालिको और श्रमिको के मतभेद अधिक हो गये और स्वतन्त्र स्पर्धा के अन्तर्गत आर्थिक-हितो का सघर्ष सामने आ गया। उसके पूर्व १७७० में ही अपने आर्थिक हितो की रक्षा के लिए निपुण व्यवसायो में श्रमिको ने कुछ सगठन बना लिए थे। परन्तु ये सगठन अस्थायी थे। श्रमिको का पहला निरन्तर सगठन १७९४ में विकसित हुआ। जब 'फिलेडैलफिया' के जूते बनाने वालो ने सगठित होकर एक हडताल चलाई। उसके पश्चात् अन्य व्यवसायो में भी श्रमिक अपने सगठन बनाने लगे। १८२७ में विभिन्न व्यवसायो के कई सघो न मिलकर 'फिलेडैलफिया' में प्रथम श्रमिक-सगम बनाई।

उसके पश्चात् अन्य सगग और श्रमिक-संघों का भी विकास हुआ। परन्तु हस्तक्षेप न करने की नीति के कारण सरकार की ओर से इनको कोई सहायता न मिली। १८८१ में कुछ सफल दस्तकारी संघों ने सहयोग की एक सामान्य आधार की नीव डाली। उन्होने एक सगठन बनाया जिसका १८८६ मे 'अमेरिकन फेडरेशन आफ लेबर' (A. F. L.) नाम पडा। इस फेडरेशन ने श्रम सघवाद की नीव को मजबूत किया और धीरे-धीरे इसका प्रभाव सरकार की नीति मे भी होने लगा। १६२० तक इसकी सदस्यता ४० लाख तक पहुच गई। १६३३ मे एक अधिनियम (National Industrial Recovery Act) के अन्तर्गत तथा १६३५ में एक अन्य अधिनियम (Wagner Act) के अन्तर्गत श्रमिको को सामूहिक रूप से सौदा करने के अधिकार का आश्वासन मिल गया।

इस समय यह अनुभव किया जाने लगा कि ऐसे श्रमिको के औद्योगिक सघ बनाने भी आवश्यक हैं जो श्रमिक विशाल उद्योगो में कार्य करते हैं और जहाँ अर्ध-निपुण या अनिपुण श्रमिको की सख्या अधिक है, परन्तु जो सघ 'अमेरिकन फेडरेशन ऑफ लेबर' के अन्तर्गत आते थे उन्होने परम्परागत रूप से श्रमिको को दस्तकारी के आधार पर सगठित किया। 'फेडरेशन' ने अपनी दस्तकारी के आधार पर सघ बनाने की नीति मे कोई परिवर्तन नहीं किया। इसका परिणाम यह हुआ कि १६३५ मे जॉन एल लुई (John L. Lewis) के नेतृत्व मे औद्योगिक सघो के समर्थकों ने एक अलग से सगठन बना लिया जिसका नाम 'कमेटी फार इन्डस्ट्रियल आरगेनाइजेशन' रक्खा गया। १६३८ मे इसका नाम 'काँग्रेस ऑफ इन्डस्ट्रियल आरगेनाइजेशन' (C. I. O.) रख दिया गया। १६४२ मे इस काँग्रेस की सदस्यता ४० लाख थी और फेडरेशन की सदस्यता ५५ लाख हो गई थी।

यह दोनो सस्थाये (A. F. L. and C. I. O.) अमेरिकी-श्रमिक-सघ आन्दोलन पर छाई रही है। श्रमिक-सघ की प्रगति उसके बाद तीव्र गति से होती रही है। राष्ट्र के जीवन और समाज मे श्रमिक सघो का काफी प्रभाव है और इन्होने सरकार की नीति और कार्यो मे भी सक्रिय रूप से रुचि ली है। 'फेडरेशन' (A F. L.) और काग्रेस (C. I. O.) के आपसी मतभेदो को समाप्त करने के लिए १६५० के आरम्भ से ही प्रयत्न आरम्भ हो गये थे। दोनो सस्थाओ का आकार और दृष्टिकोण समान ही था। इसलिये उनके नेता एकता के समर्थक बन गये ताकि अमेरिकी श्रमिकों के उद्देश्यो की पूर्ति में सहायता मिले। परिणाम-स्वरूप १६५५ से यह दोनों संस्थायें मिलकर अब एक नई सस्था के नाम से एक हो गई हैं और इसको अब 'अमेरिकन फेडरेशन ऑफ लेबर'–'काग्रेस ऑफ इन्डस्ट्रियल आरगेनाइजेशन' (A. F. L. –C. I. O.) कहा जाता है।

रूस के श्रमिक संघ जिनको व्यावसायिक सघ कहा जाता है अतरिम सरकार की उदारता के कारण तीव्रता से विकसित हुए। यद्यपि सब कारखानों पर सरकार ने अपना अधिकार कर लिया था तथापि इस बात को सबने स्वीकार किया कि श्रमिक सघो का यह मौलिक कार्य कि वह श्रमिकों की अवस्थाओ मे उन्नति लायें

यथावत् बना रहेगा। सन् १९२८ मे श्रमिक सघो को समाजवादी नीति के सा समायोजित किया गया और अब श्रम सघो का केवल श्रमिको की अवस्थाए सुधारना मात्र कार्य नही रह गया है। अब वह श्रम अनुशासन लागू करने और उत्पादन बढाने मे सरकार की सहायक सस्था हो गये है। वे श्रमिको की योग्यता एव कुशलता मे भी वृद्धि करने और कारखानो के विवेकीकरण का प्रयत्न करने में सहयोग प्रदान करते है। श्रमिक सघ उद्योगो के आधार पर सगठित किये जाते हैं। आधार स्तर पर कारखाना अथवा स्थानीय समिति होती है जिसका निर्वाचन उत्पादन अथवा प्रशासन इकाइयो के सभी सदस्यो द्वारा गुप्त मत से होता है। प्रत्येक प्राइमरी समिति जिला सोवियत (District Soviet) के लिये प्रतिनिधियो का निर्वाचन करती है, जहाँ से प्रतिनिधि प्रान्तीय सोवियत (Provincial Soviet) को और प्रान्तीय सोवियत से सवैधानिक गणतन्त्र की श्रम सघ सोवियत (Trade Union Soviet of the Constituent Republic) के लिये भेजे जाते हैं। सबसे ऊपर श्रम सघो की अखिल सघ परिषद् (All Union Council of Trade Unions) की सर्वोच्च सामान्य सभा (Supreme Common Assembly) होती है। यह देश मे सब श्रमिको के लिये काम करती है।[2]

अन्य देशो मे भी श्रम सघ विकसित हुये हैं। फ्रास मे ऐसे अनेक श्रम सघ पाये जाते है जो मालिको के द्वारा समर्थित है और उन्हें उनके द्वारा धन दिया जाता है। एसे सघो को पोषित सघ (Yellow Unions) कहा जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सघ

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे काफी समय से श्रमिक सघ आन्दोलन का प्रतिनिधित्व मुख्यत दो सस्थाओ द्वारा किया गया है। एक है 'इण्टरनेशनल फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन', जिसका प्रधान कार्यालय एमस्टरडम मे है तथा दूसरी है "रेड इण्टर-नेशनल ऑफ लेबर यूनियन" जो मास्को मे सगठित है। दोनो के विचारो मे काफी अन्तर है। अन्तर वैसा ही है जैसा साम्यवाद तथा विभिन्न श्रमिक और सामाजिक प्रजातान्त्रिक दलो के दृष्टिकोण मे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पाया जाता है। यही कारण है कि दोनो को समायोजित करने के अनेक प्रयत्नो मे सफलता नही मिल पाई है। वर्तमान समय मे यह अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाये "वर्ल्ड फैडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन्स", जिसमे साम्यवादियो का प्रभाव है तथा "इण्टरनेशनल फैडरेशन आफ फ्री ट्रेड यूनियन्स" जिसमे साम्यवादी विरोधी देशो के सदस्य है और जिससे ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस भी सम्बद्ध है, के नाम से जानी जाती है। यह अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाये समय-समय पर सब देशो मे श्रमिको के सामान्य हित के ही हेतु सम्मेलन आयोजित करती है। १९४५ मे लन्दन मे वर्ल्ड ट्रेड यूनियन कांग्रेस आयोजित की गई जिसमे ससार की श्रम समस्याओ पर विचार करने के लिये ३८ राष्ट्रो के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ का विकास एक स्वस्थ चिन्ह है परन्तु यह

2. *Russia from A to Z*, pages 546–47

अच्छा होगा कि संसार के सब देशों के श्रमिक संघों का केवल एक ही संगम हो और संसार के सब देशों के श्रमिकों का ध्येय एक ही समझा जाये। यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिये कि श्रमिक संघ आन्दोलन मजदूरी प्रणाली के अन्तर्गत श्रमिकों का आन्दोलन है। अर्थात् यह मालिकों और श्रमिकों की पहले से ही उपस्थिति को मानकर चलता है। अतः श्रमिक संघ आन्दोलन में साम्यवादी विचारों को लाना आन्दोलन को निर्बल करना है और मालिकों में अनावश्यक ही श्रमिकों के प्रति विरोध की भावना उत्पन्न करना है। यदि अर्थ-व्यवस्था को बदलना आवश्यक हो तो अन्य साधनों व उपायों को काम में लाना चाहिये। श्रमिक संघ आन्दोलन को राजनैतिक संघर्षों का अखाड़ा नहीं बनाना चाहिये।

भारत और इंगलैंड के श्रमिक संघों की तुलना

अब हम भारत तथा इङ्गलैंड के श्रमिक संघवाद की विभिन्नताओं का उल्लेख करेंगे। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इंगलैंड में पूर्ण रोजगार है जिसके परिणामस्वरूप श्रम की पूर्ति की कमी है। भारत में स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है। यहाँ अत्यधिक बेरोजगारी है और श्रम की पूर्ति माँग से अधिक है। भारत में मजदूरी भी अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है। हमारे देश में श्रमिक वर्ग के रहन-सहन की दशायें बहुत शोचनीय हैं जबकि अन्य देशों में श्रमिकों की परिस्थितियों में काफी सुधार हुआ है। इंगलैंड में सभी श्रमजीवियों के लिये व्यापक सामाजिक बीमा योजना है जबकि भारत में इस दिशा में प्रारम्भिक पग ही उठाया गया है। अन्य देशों के श्रमिक हमारे श्रमिकों की अपेक्षा अधिक शिक्षित और जागरूक भी हैं। अन्य देशों में जबकि स्थायी औद्योगिक जनसंख्या है भारत के श्रमिकों में प्रवासिता पाई जाती है।

इसके अतिरिक्त श्रम संघों के संगठन में भी अन्तर है। इंगलैंड में श्रमिक संघवाद दस्तकारी श्रेणियों से विकसित हुआ। इंगलैंड और अमेरिका दोनों में ही वह अधिकतर दस्तकारी के अनुसार आयोजित है। भारत में श्रम संघ अधिकतर उद्योगों के अनुसार आयोजित है। इंगलैण्ड और अमेरिका में श्रमिक संघ राष्ट्रीय आधार पर संगठित किये गये हैं। भारत में यह अधिकतर स्थानीय हैं। इसके अतिरिक्त अन्य देशों में श्रमिक संघों की अपनी विशाल निधि होती है, उनके प्रायः अपने भवन होते हैं जिनमें कि उनका कार्य-दक्ष मन्त्रालय तथा सुव्यवस्थित कार्यालय होता है। कुछ राष्ट्रीय श्रमिक संघों के तो अपने छापेखाने भी हैं और अधिकांश राष्ट्रीय संघ अपने समाचार-पत्र भी प्रकाशित करते हैं। इसके विपरीत भारत में अधिकांश संघों के कार्यालय किराये के अव्यवस्थित मकानों में हैं तथा उनके पास धनराशि अल्प मात्रा में होती है। यहां के संघ प्रायः हड़ताल होने की सम्भावना के समय ही अपने लिये धन एकत्रित करते हैं। साधारण स्थिति में चन्दा कम ही एकत्रित होता है। यहाँ के श्रमिक संघों के कार्यालय अव्यवस्थित रूप में हैं और कार्य-दक्ष भी अधिक नहीं है। इसके अतिरिक्त संघों के रचनात्मक कार्यों का अभी

विकास नही हो पाया है और वह अधिकतर आन्दोलन के रूप मे कार्य करते रहे है। अन्य देशो मे, विशेषतया इगलैंड मे, श्रमिक सघो के रचनात्मक कार्यों का यद्यपि काफी विकास हो चुका है तथापि उन्होने अपना आन्दोलन रूप भी बनाये रखा है। इगलैंड के श्रमिक सघो के सामाजिक और कल्याणकारी कार्यों की चर्चा हम ऊपर कर चुके है। दक्षिणी वेल्स की खानो के श्रमिक सिनेमा घर, पुस्तकालय, सार्वजनिक कमरो और स्कूलो का भी आयोजन करते है। अमेरिका मे तो एक सघ अपनी स्वय की बीमा कम्पनी भी चलाता है और कुछ सघो ने स्वय के जगह-जगह विश्राम गृह भी खोल रखे हैं जहाँ सदस्य जाकर ठहर सकते है। इगलैड और अमेरिका मे प्रत्येक सदस्य अपना सदस्यता कार्ड अपने साथ रखता है और दूसरो को दिखलाने में गौरव अनुभव करता है। इस प्रकार की भावना का हमारे श्रमिको म अभाव है। अन्य देशो म हम देखते है कि श्रमिक सदस्यता शुल्क को स्वय ही देना अपना कर्त्तव्य समझते है जो कि कभी-कभी मनी-आर्डर द्वारा भी भेजा जाता है। इसके विपरीत भारत मे सदस्यता शुल्क को एकत्र करने के लिये सघो के पदाधिकारियो को घर-घर फिरना पडता है। शुल्क भी नियमित रूप से नही दिया जाता और चन्दा न देने वालो, अर्थात् बकायादारो की सख्या काफी होती है। भारत की अपक्षा अन्य देशो म सदस्यता शुल्क भी अधिक है और शुल्क साप्ताहिक अथवा मासिक दिया जाता है। इगलैंड म श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन काफी विकसित हुआ है तथा श्रमालय प्रतिनिधि का काफी महत्व है। भारत मे हम प्रत्यक दुकान या सस्थान पर श्रमिको का कोई प्रतिनिधि नही पाते। अन्य देशा म श्रमिक सघो के नेता श्रमिक वर्ग में से ही होत है। भारत म अधिकाश श्रमिक सघो पर बाहरी व्यक्ति छाय रहते है। इगलैंड के श्रमिक सघ राजनैतिक जीवन मे महत्वपूण भाग लते हैं परन्तु भारत मे इस ओर अधिक ध्यान नही दिया गया है। औद्योगिक झगडो को सुलझाने की दृष्टि से भी काफी अन्तर है। भारत के अधिकाश श्रमिक सघो पर राजनैतिक सस्थाये छाई हुई हैं। भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन काँग्रेस वार्तालाप और समझौतो मे विश्वास करती है, जबकि अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काँग्रेस सदैव हडताल को प्रेरित करती है। इसके विपरीत ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रस ने प्रत्येक सघ के लिय यह अनिवार्य कर दिया है कि वह हर प्रकार के झगडे की सूचना केन्द्रीय सस्था को दे। जब समझौते की आशा नही रहती तब ही केन्द्रीय सस्था हस्तक्षेप करती है। मालिक-मजदूरो मे पारस्परिक बात-चीत अधिकतर सामूहिक सौदाकारी पर ही आधारित होती है। भारत में श्रमिको म अविश्वास पाया जाता है और वह किसी भी ऐसी सामूहिक सौदाकारी मे, जिसमें सरकार भी एक पक्ष के रूप में न हो, सम्मिलित होते हुये डरते है। अमेरिका और इगलैंड में हडताल होने से पूर्व मत का लिया जाना आवश्यक है। भारत मे अधिकतर हडतालें अकस्मात् रूप मे हो जाती हैं। हमार देश मे श्रमिक सघ के कार्यकर्त्ताओ को अभी तक सताया भी जाता है और कार्य से अलग भी कर दिया जाता है। परन्तु ऐसी बाते दूसरे देशो में नही पाई जाती। यह भी

उल्लेखनीय है कि भारत में कुछ श्रमिक संघ नैतिक आधार को भी मानते है जबकि यह बात हमे अन्य देशो में नही मिलती। भारत मे श्रमिक सघ अनेक राजनैतिक दलो मे विभक्त है। इसके विपरीत इंगलैंड में श्रमिक सघ आन्दोलन केवल एक राजनैतिक सस्था अर्थात् लेबर-पार्टी का ही अधिकतर समर्थन करता है।

भारत व इङ्गलैंड के श्रमिक संघों में अन्तर होते हुये भी यह कहा जा सकता है कि हमारे देश में गत कुछ वर्षो से श्रमिक सघ आन्दोलन स्थिर और शक्तिशाली होता जा रहा है और अब वह दिन दूर नही जब भारत में भी श्रमिक सघ आन्दोलन उतना ही शक्तिशाली हो जायेगा जितना अन्य देशो मे है और हमारे श्रमजीवी वर्ग के लिये भी ऐसी अवस्थायें प्राप्त करने में सहायता देगा जिससे उनकी उन्नति हो और वह एक स्वस्थ जीवन और अच्छे कार्य की दशाओं को प्राप्त कर सकें।

७

भारत में औद्योगिक विवाद

INDUSTRIAL DISPUTES IN INDIA

१९१४-१८ के महायुद्ध के पश्चात् से हमारे औद्योगिक केन्द्रो मे घोर असन्तोष निरन्तर रूप से व्याप्त हो रहा है। यह असन्तोष इतनी अधिक मात्रा मे बढ गया है कि यह श्रमजीवियो के हित तथा इनकी कार्यक्षमता म रुचि रखने वाले विचारको की चिन्ता का विषय बन गया है। हडतालें न केवल भूतकाल मे हुई हैं वरन वर्तमान समय मे भी अक्सर होती रहती है। अधिकतर हडतालें तो अल्पकालिक और अनियमित रूप से होती है परन्तु कुछ हडताले दीर्घकाल तक चलने वाली होती हैं और उनम कटुता भी आ जाती है। श्रमिको तथा मालिको के बीच की खाई गहरी होती जा रही है और यह बात स्पष्ट है कि मालिक-मजदूरो के ऐसे सम्बन्ध तथा इस प्रकार की अशाति वर्तमान समय मे भारतीय उद्योगो व श्रमिको की एक मुख्य व जटिल समस्या बन गई है और सम्भवत भविष्य मे भी रहेगी। भारत का भावी औद्योगिक विकास तथा पचवर्षीय आयोजनाओ की सफलता इस समस्या के उचित समाधान पर ही निर्भर है। एक ऐसी अर्थव्यवस्था (economy), जिसका निर्माण योजनाबद्ध रीति से उत्पादन तथा वितरण करने के लिए किया गया हो और जिसका उद्देश्य लोगो का कल्याण तथा उनको सामाजिक न्याय प्रदान करना हो, तभी सुचारू रूप से कार्य कर सकती है जबकि देश मे औद्योगिक शान्ति का वातावरण वर्तमान हो।

विवादो के मूल कारण—

पूर्व अध्यायो मे यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि आधुनिक औद्योगिक प्रणाली की मुख्य विशेषता श्रम और पूंजी के बीच का सघर्ष है। आधुनिक उद्योगो मे बडी मात्रा मे पूँजी की आवश्यकता होती है, जिसकी पूर्ति करना निर्धन श्रमिको की शक्ति के बाहर है। परिणामस्वरूप दो विभिन्न वर्ग उत्पन्न हो गये है, एक वर्ग तो पूँजी की पूर्ति करता है तथा दूसरा वर्ग श्रम की पूर्ति करता है। साधारणतया इनको पूंजी-पति व श्रमिक कहा जाता है। इन पूँजीपतियो व श्रमिको के न केवल अपने-अपने वरन् कभी-कभी एक दूसरे के विरोधी हित भी हो जाते है। यही वास्तव मे आधुनिक औद्योगिक अशाति का मूल कारण है। जब तक श्रम और पूँजी एक ही व्यक्ति के हाथो मे रहते हैं तब तक सघर्ष की समस्या उत्पन्न नही होती। परन्तु

जैसे ही श्रम और पूंजी पृथक् हो जाते है, जैसा कि बड़े पैमाने के उद्योगों में होता है, तब शक्तिशाली द्वारा निर्बल का शोषण करने की प्रवृत्ति जागृत हो उठती है और संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार जहाँ भी औद्योगीकरण का विस्तार हुआ है वहीं हमें पारस्परिक असहमति, हड़तालें, तालाबन्दी आदि की समस्याएँ दृष्टिगोचर होती हैं। अतः औद्योगिक सम्बन्धों की समस्या आज जिस रूप मे वर्तमान है वह मुख्यतः बड़े पैमाने के उद्योग की ही उपज है।

हड़ताल उस परिस्थिति को कहते है जबकि श्रमिक उस समय तक काम पर जाने को तैयार नही होते जब तक कि उनकी मांगे स्वीकार न कर ली जायें। औद्योगिक विवाद अधिनियम ने हड़ताल की परिभाषा इस प्रकार दी है—"हड़ताल का अर्थ यह है कि ऐसे व्यक्तियो के एक समूह द्वारा कार्य बन्द कर दिया जाये जो किसी उद्योग मे कार्य पर लगे हुए हे और जो मिल-जुल कर कार्य करते हे, या ऐसे व्यक्तियो द्वारा जो नौकरी पर लगे हैं या लगाये गये हे रोजगार पाने और कार्य करते रहने से एकमत होकर इन्कार कर दिया जाये या सामान्य समझौते के अन्तर्गत इन्कार कर दिया जाये"। तालाबन्दी मालिकों के द्वारा लिया गया वह पग है जिसके द्वारा वह संस्थानो को उस समय तक बन्द रखते है, जब तक कि श्रमिक उनकी शर्तो पर कार्य करने को तैयार न हों। तालाबन्दी की परिभाषा इस प्रकार की गई है—"तालाबन्दी का अर्थ यह है कि जिस जगह कार्य हो रहा है उस स्थान को बन्द कर दिया जाय या कार्य को रोककर स्थगित कर दिया जाये या मालिक द्वारा ऐसे व्यक्तियों को, जो उसके द्वारा काम पर लगाये गये है, नौकरी पर लगाये रखने से इन्कार कर दिया जाये।" दोनो ही परिस्थितियों मे सम्बन्धित पक्षो का उद्देश्य यही होता है कि वह अपने लिये उचित सुविधायें प्राप्त कर सके। इस कारण हड़ताल व तालाबन्दी दोनों ही अस्थायी होते है। इन झगड़ो के कई कारण है, उदाहरणस्वरूप—किसी कर्मचारी को पदच्युत करना, श्रमिको की छटनी तथा अन्य महत्वपूर्ण समस्याएँ, जैसे—मजदूरी, बोनस, अवकाश, कार्य के घंटे, कार्य की दशाएँ आदि। वास्तव मे जब कभी भी श्रमिक किसी कठिनाई का अनुभव करते है या उनको कोई शिकायत होती है तब वे उसके समाधान के लिए संगठित हो जाते है और औद्योगिक अशान्ति उत्पन्न हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप समय-समय पर अनेक हड़तालें होती है। शीघ्र परिवर्तनीय आर्थिक क्रियाओ के समय मे विवाद अधिक गम्भीर हो जाते है और हड़तालें और तालाबन्दी अधिक होने लगती हैं। इन आर्थिक परिवर्तनो का कारण साधारणतया मन्दी, विवेकीकरण, बेरोजगारी, रहन-सहन के व्यय में वृद्धि आदि समस्याओं से सम्बन्धित होता है।

भारत में औद्योगिक विवादों का इतिहास[1]—

पिछली शताब्दी के मध्य मे बड़े पैमाने के उद्योगों की स्थापना के बाद से ही

1. श्रम विवादों के इतिहास के लिए श्रमिक संघो का इतिहास पढना भी आवश्यक है। (इसी पुस्तक के पृष्ठ ८६–१०० देखिए)

भारत मे ऊपर लिखे कारण दृष्टिगोचर होने लगे। परन्तु १९१८-१९ की शरद ऋतु से पूर्व भारतवर्ष मे हडताल सामान्य रूप से नही होती थी क्योकि श्रमिक असगठित थे लोकमत अधिक विचारशील न था और सरकार भी ऐसी समस्याओ मे तटस्थ रहती थी। परन्तु आधुनिक उद्योगो के विकास के प्रारम्भिक समय मे भी छोटे स्तर पर कुछ हडताल हुई। १८५९-६० मे यूरोपियन रेलवे ठेकेदारो तथा उनके भारतीय श्रमिको के बीच एक महत्वपूर्ण सघर्ष हुआ। फलत १८६० मे मालिक एव श्रमिक (विवाद) अधिनियम[2] पारित किया गया। १८७७ मे नागपुर की एम्प्रेस मिल मे मजदूरी दर के प्रश्न पर तथा १८८२ मे बम्बई की सूती वस्त्र मिलो मे महत्वपूर्ण हडतालो का विवरण मिलता है। १८८२ से १८९० के बीच बम्बई तथा मद्रास मे २५ हडतालो का विवरण मिलता है। ऐसी सवप्रथम बडी हडताल जिसका औपचारिक (Official) विवरण मिलता है अहमदाबाद की एक सूती मिल मे १८९५ मे हुई जो साप्ताहिक मजदूरी की अपेक्षा पाक्षिक (Fortnight) रूप से मजदूरी देने के प्रश्न पर थी यद्यपि यह सफल नहीं हुई। दूसरी बडी हडताल १८९७ मे मजदूरो भुगतान के प्रश्न को लेकर बम्बई मे हुई। परन्तु ये हडताल असफल रही। १९०५ मे बम्बई की मिलो मे विद्युत शक्ति आ जाने एव कार्य के घण्टे बढाये जाने के फलस्वरूप हडताले हुई। रेलो मे विशेषतया पूर्वी बगाल स्टेट रेलवे मे भी गम्भीर हडताल हुई। हडतालो की चरम सीमा तब पहुँची जब १९०८ मे श्री तिलक को ६ वर्ष का कारावास मिलने पर बम्बई मे ६ दिन की राजनैतिक आम हडताल हुई। परन्तु युद्ध से पूर्व हडताल कम ही होती थी क्योकि श्रमिको मे सगठन एव नेतृत्व की कमी था जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण निराशापूर्ण था और औद्योगिक जीवन की कटुता से बचने के लिये उनका एकमात्र सहारा यही था कि वह अपने गाँव के घरो को वापिस चले जाय। वास्तव मे उस समय तक श्रमिक भाग्यवादी और सतोषी मनुष्य थे।

प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् औद्योगिक विवाद—

१९१४-१८ के प्रथम विश्वयुद्ध ने इस स्थिति मे महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिया। तब से, विशेषतया युद्ध के अन्त से, श्रमिको और मालिको के सम्बन्ध अधिक कटु हो गये है तथा दोनो के मध्य विवाद भी बढ गये है। विश्वयुद्ध के कारण देश मे जनजागृति उत्पन्न हो गई थी। रूस की क्रांति ने समस्त ससार मे क्रांति की लहर उत्पन्न कर दी थी जिसका प्रभाव भारतीय श्रमिको पर भी पडा। रहन सहन का व्यय बढ रहा था कीमतें लगभग दुगुनी हो गई थी। परन्तु मजदूरी की दर उतनी नही बढ सकी जितनी कीमतें बढ गई थी। पूँजीपतियो का लाभ युद्ध के कारण बहुत बढ गया था और श्रमिक भी इसमे अपना भाग चाहते थे। देश की राजनैतिक अशांति से श्रमिको को भी अपने अधिकारो का भान हुआ। कांग्रेस मुस्लिम लीग एकता प्राप्त कर ली गई थी। महात्मा गाँधी राजनैतिक क्षेत्र मे आ गये थे।

---

2 R Palme Dutt *India Today*, page 375

जलियाँवाला बाग की घटना, सरकार के रॉलट अधिनियम व मार्शल लॉ जैसे अत्याचारी कार्य, करों के बढ़ते हुए भार आदि सभी ने अशांति उत्पन्न कर दी थी। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की स्थापना से श्रमिकों को कुछ प्रतिष्ठा प्राप्त हुई[3]। इन सबका परिणाम यह हुआ कि हड़तालों की जो लहर १९१८ मे आई और १९१९ और १९२० तक सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो गई वह अत्यन्त गम्भीर थी। सन् १९१८ के अन्त मे बम्बई की सूती वस्त्र मिलो में पहली बड़ी हड़ताल हुई और जनवरी १९१९ तक लगभग १,२५,००० श्रमिकों में, जिनमे सभी श्रमिक आ जाते थे, यह हड़ताल फैल गयी। सन् १९१९ मे रॉलट एक्ट के विरोध मे हड़तालें हुई। सन् १९२० के प्रथम ६ मासो मे लगभग २०० हड़ताले हुई जिनमे १५ लाख श्रमिक सम्मिलित थे। जैसे-जैसे देश मे श्रमिक सघ आन्दोलन विकसित होता गया, इनमे से अधिकतर हड़ताले सफल भी होती रही। सन् १९२० की शरद् ऋतु के पश्चात् यद्यपि औद्योगिक अशाति कुछ कम हो गई थी परन्तु इस समय तक अधिकाश श्रमिक हड़ताल के अस्त्र से परिचित हो चुके थे। इस समय की बड़ी हड़तालो मे १९२१ की असम के चाय बागान की हड़ताल उल्लेखनीय है। इस हड़ताल मे असम के बागान के कुलियो ने अपना काम छोडकर बागान से बाहर जाने का प्रयत्न किया, परन्तु चाँदपुर रेलवे स्टेशन पर असहाय एव शातिपूर्ण कुलियो पर गोरखा सिपाहियो द्वारा आक्रमण किया गया। परिणामस्वरूप असम-बगाल रेलवे व स्टीमर्स के श्रमिको ने तत्काल ही सहानुभूति मे हड़ताल कर दी, जो लगभग तीन मास तक चलती रही। परन्तु सगठन के अभाव के कारण कुलियो की हड़ताल असफल रही। सन् १९२२ मे २७८ हड़ताले हुई जिनमे ४,३५,४३४ श्रमिको ने भाग लिया। इसी समय ईस्ट इण्डियन रेलवे के कर्मचारियो ने भी हड़ताल की। सन् १९२४ मे बम्बई नगर मे सामान्य रूप से हड़ताल की गई और लगभग १,६०,००० श्रमिको ने उसमे भाग लिया। अगले वर्ष ही एक और अधिक बड़ी आम हड़ताल हुई, जिसमे लगभग एक करोड दस लाख श्रम दिनो की क्षति हुई। यह कहा जा सकता है कि देश मे औद्योगिक अशाति की प्रथम लहर ही इस समय तक व्याप्त रही। इसका मुख्य कारण युद्ध के समय और उसके पश्चात् के मूल्यो मे वृद्धि और श्रमिको द्वारा उच्च मजदूरी की मांग थी।

१९२९ के पश्चात् औद्योगिक विवाद

१९२८ मे औद्योगिक विवादो की दूसरी लहर आई। आर्थिक मदी प्रारम्भ हो चुकी थी जिससे उद्योगो पर बुरा प्रभाव पड़ा। उद्योगपतियो ने इस मन्दी के प्रभाव को दूर करने के लिये विवेकीकरण, सीमित उत्पादन, मजदूरी मे कमी तथा श्रमिको की छटनी की नीति को अपनाया। स्वभावतः श्रमिकों ने इस नीति का विरोध किया। इस समय तक श्रमिक सघ आन्दोलन दृढ़ हो गया था और देश मे साम्यवादी तत्व भी दृष्टिगोचर होने लगे थे। फलतः देश मे औद्योगिक अशान्ति बढ

3. 'भारतीय श्रमिक सघ आंदोलन का अध्याय' भी देखिये। (पृष्ठ ८६–९०)

गई। १९२८ मे विवेकीकरण लागू करने के विरोध मे बम्बई मे एक बडी हडताल हुई। श्रमिको पर अत्याचार किया गया। परिणामस्वरूप १९२९ मे बम्बई मे पुन एक बडी हडताल हुई जो ६ महीने तक चलती रही और बम्बई के सूती वस्त्र मिलो मे कार्य करने वाले लगभग सभी कर्मचारियो ने इसमे भाग लिया। १९२९ की यह हडताल दो कारणो से अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। प्रथम तो इसी हडताल मे साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव भारतीय श्रमिको पर दृष्टिगोचर हुआ। दूसरे, १९२९ का व्यवसाय विवाद अधिनियम भी इसी हडताल के कारण पारित हुआ। इसके अतिरिक्त बगाल जूट मिलो मे कार्य के घण्टे बढाये जाने के कारण कई हडताले हुई। जमशेदपुर मे भी एक बडी हडताल हुई।

उसके पश्चात् १९३० से १९३७ का समय सापेक्षिक रूप से औद्योगिक शांति का समय रहा यद्यपि बम्बई सूती मिलो मे कुछ अल्पकालिक हडतालें व एक अपूर्ण आम हडताल हुई जो सफल न हो सकी। इस समय अनेक कारणो से श्रमिको को बडी बडी आशाए हो गई थी और इसीलिए उनमे असन्तोष की भावना भी पैदा हो गई थी। इस समय मन्दी का प्रभाव कम हो गया था और साम्यवादी काफी शक्तिशाली हो गए थे और उनका श्रमिको मे प्रचार बढ गया था। १९३३ म मेरठ का मुकदमा समाप्त हो गया था[४] जिसमे साम्यवादी नेताओ को दीर्घकालीन कारावास का दण्ड दिया गया। प्रान्तीय स्वायत्त शासन के अन्तर्गत चुनाव से पूर्व कांग्रेस के घोषणा-पत्र से श्रमिको म बडी-बडी आशाए उत्पन्न हो गई थी और उनका विचार था कि सब प्रकार का शोषण समाप्त हो जायेगा और उनके कार्य व जीवन निर्वाह की दशाओ मे भी परिवर्तन होगा। जब कांग्रेस ने सत्ता ग्रहण की और श्रमिको की अवस्था मे तुरन्त कोई उन्नति होती दिखाई नही दी तो अनेक हडताले हुई। साम्यवादियो ने इस परिस्थिति का लाभ उठाया और श्रमिको म अधिक असन्तोष उत्पन्न कर दिया। अनेक प्रान्तीय सरकारो ने श्रमिको की अवस्था सुधारने के लिये अनेक उपाय किए। उदाहरणस्वरूप, १९३७ मे उत्तर प्रदेश सरकार ने श्रमिको की अवस्था की जाच करने के लिए एक समिति नियुक्त की। समिति न अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिये। परन्तु मालिको के सघो ने न केवल इन सुझावो को मानने से इन्कार कर दिया वरन् सरकार अथवा श्रम सघो द्वारा किसी प्रकार के हस्तक्षेप के लिये भी व तैयार न हुए। कानपुर मिलो मे आम हडतालें हुई तथा बम्बई व बगाल मे भी हडताले हुई। देश म यह औद्योगिक अशांति का समय था। १९३७ और १९३८ म क्रमश ३७९ तथा ३९९ हडताले हुई जो कि उसस पूर्व के वर्षो मे हुई हडतालो म सबसे अधिक थी। इस अवधि म उत्तर प्रदेश की चीनी मिलो मे भी हडताल हुइ।

१९३९ के पश्चात् औद्योगिक विवाद

सितम्बर १९३९ म युद्ध प्रारम्भ हो जाने के पश्चात् मुद्रा स्फीति के कारण कीमतें और बढ गई व श्रमिको की मजदूरी और उसके रहन-सहन के व्यय के बीच

४. कृपया ९८ पृष्ठ देखिए।

बहुत अन्तर आ गया। परिणामस्वरूप अनेक औद्योगिक विवाद हुए और उनकी संख्या १६४० मे ३२२ विवादों से बढ़ते-बढ़ते १६४२ मे ६६४ तक पहुँच गई। उस समय से हमारे देश में औद्योगिक विवाद आम हो गए हैं। युद्ध के प्रारम्भिक वर्षों में अनेक हड़तालो का कारण महंगाई भत्ता था। मार्च १६४० में हड़ताली नेताओं की गिरफ्तारी एवं श्रमिको की पुलिस द्वारा पिटाई पर भी बम्बई के १·७५ लाख सूती वस्त्र मिल के कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी जो ४० दिन तक चालू रही। १० मार्च को सभी कर्मचारियों ने सहानुभूति में हड़ताल की, इससे सारे देश में हड़ताल की लहर व्याप्त हो गई। कानपुर के सूती मिल कर्मचारियों, कलकत्ते के म्यूनिसिपल कर्मचारियों, बगाल और बिहार मे जूट कर्मचारियों, असम में दिग्बोई के तेल कर्मचारियों, धनबाद व भरिया के कोयला खानों के कर्मचारियों, जमशेदपुर के इस्पात उद्योग के कर्मचारियों तथा अन्य श्रमिको ने महगाई भत्ते की मांग की और काम पर नहीं गये। सरकार ने युद्ध का सचालन सफलतापूर्वक करने के लिये इस अशांति को रोकने के विषय मे विचार किया और इसके लिये उसने "भारतीय रक्षा कानून" (Defence of India Rules) बनाए, जिनके अन्तर्गत अनेक आवश्यक उद्योगो मे हडताले अवैध घोषित कर दी गई अथवा अन्य उद्योगो मे चौदह दिन की पूर्व सूचना दिये बिना हडताले या तालाबन्दी करना अवैध घोषित कर दिया गया। इन प्रतिबन्धो का परिणाम यह हुआ कि १६४२ से १६४६ तक के समय मे कोई बडी हडताल अथवा तालाबन्दी नही हुई, यद्यपि छोटे छोटे औद्योगिक विवादो की सख्या मे वृद्धि अवश्य हुई। श्रमिक कोई भी बडी हडताल नही कर सकते थे परन्तु श्रमजीवी वर्ग को इन दिनो अनेक कठिनाइयां झेलनी पड़ी, विशेषतया रेलें, डाक-तार जैसी जन-उपयोगी सेवाओं मे, जहाँ हड़ताल पूर्णतया निषेध थी, उनको काफी मुसीबतो का सामना करना पडा, क्योंकि श्रमिको की मजदूरी मे कोई वृद्धि नही की गई थी, केवल थोड़ा सा महगाई भत्ता अवश्य प्रदान किया गया था। श्रमिक किसी प्रकार का भी विरोध प्रकट नही कर सकते थे। परन्तु जैसे ही युद्ध समाप्त हुआ और श्रमिकों पर से प्रतिबन्ध हटा दिये गए, श्रमिको के हृदय मे धधकती हुई असतोष की अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी और चहुँ ओर हड़ताल की चर्चा चल पड़ी। जुलाई १६४६ मे डाक व तार कर्मचारियो की देशव्यापी हड़ताल हुई और रेलवे कर्मचारियो ने भी हड़ताल की धमकी दी जोकि कुछ राजनैतिक नेताओ के हस्तक्षेप करने के फलस्वरूप रुक गई।

सन् १६४७ मे देश के स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् अनेक महत्वपूर्ण राजनैतिक परिवर्तनो के फलस्वरूप हडतालो की सख्या मे फिर बढोत्तरी हुई। मुद्रा स्फीति तथा युद्ध व युद्ध उपरान्त स्थिति के परिणामस्वरूप वस्तुओ की दुर्लभता के कारण देशवासियो को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड रहा था। कांग्रेस ने सत्ता प्राप्त कर ली थी। परन्तु हैदराबाद, काश्मीर तथा विभाजन की अन्य समस्याओ के कारण वह श्रमिकों की समस्याओं की ओर उचित ध्यान नही दे पा रही थी। साम्यवादियो ने इस अवसर से लाभ उठाया। उनके संघर्षात्मक प्रचार के कारण १६४७ मे देश में

घोर अशांति फैल गई। बम्बई, मद्रास और उत्तर प्रदेश में हड़तालों की संख्या में विशेष वृद्धि हुई। सितम्बर १९४७ में बम्बई की ५८ सूती वस्त्र मिलों में हड़ताल हुई जिसमें १ लाख श्रमिकों ने भाग लिया। एक अन्य महत्वपूर्ण हड़ताल मद्रास में बकिंघम और कर्नाटिक मिल में हुई, जो तीन महीने से भी अधिक चली। इन हड़तालों व तालाबन्दी के अतिरिक्त अनेक सहानुभूतिपूर्ण प्रदर्शन भी हुए, जिनको औद्योगिक विवाद सम्बन्धी आँकड़ों में सम्मिलित नहीं किया गया। १९४७ में सरकार ने औद्योगिक विराम संधि का प्रस्ताव पारित किया परन्तु इसका प्रभाव अधिक उत्साहजनक नहीं हुआ। १९४८ में कोयम्बटूर, नागपुर, कानपुर, बंगाल व बम्बई की सूती वस्त्र मिलों, बंगाल की बड़ी बड़ी जूट मिलों, बम्बई बन्दरगाह, आसनसोल के एल्यूमिनियम उद्योग, बम्बई जी० आई० पी० के इंजीनियरिंग विभाग, बी० एन० रेलवे कार्यशाला अनेक जूट मिलों, बम्बई के बीड़ी उद्योग, कलकत्ता की ट्राम्बे आदि में बड़ी संख्या में हड़तालें हुईं।

१९४९ में मध्य प्रदेश की सूती वस्त्र मिलों में तालाबन्दी घोषित हुई तथा मद्रास, बम्बई एवं बंगाल में हड़तालें हुईं। बम्बई नगर निगम में एक विवाद लगभग ५ मास में समाप्त हुआ। रेलवे में भी हड़ताल करने की धमकी दी गई थी परन्तु हड़ताल रोकने के प्रयत्न सफल हो गए। १९४९-५० में कलकत्ता निगम में आम हड़ताल हुई। कानपुर की म्यूर मिल्स एवं न्यू विक्टोरिया मिल, तथा मदुरा की मीनाक्षी मिलों में तालाबन्दी हुई। बम्बई में बीड़ी उद्योग, हावड़ा की जूट मिलों, नागपुर की मॉडल मिल तथा बी० एन० रेलवे कार्यशाला में भी हड़तालें हुई। अगस्त १९५० में बम्बई के सूती वस्त्र उद्योग में श्रमिकों के बोनस भुगतान के प्रश्न पर महत्वपूर्ण हड़ताल हुई। भारत में उस समय तक हुई हड़तालों में यह सब से बड़ी थी। इसमें लगभग २ लाख श्रमिकों ने भाग लिया और वह ६३ दिन तक चलती रही जिसके परिणामस्वरूप ९४ लाख श्रम दिनों की क्षति हुई। १९५० में कुछ केन्द्रों में श्रमिक संघ विधेयक एवं औद्योगिक सम्बन्ध विधेयक को लेकर कुछ सांकेतिक (Token) हड़तालें हुई। तिलक नगर (बम्बई) की चीनी मिल तथा बिहार व पश्चिमी बंगाल की खानों में भी कुछ सांकेतिक हड़तालें हुईं। १९५१ में रेलवे कर्मचारियों ने हड़ताल की धमकी दी किन्तु खाद्य सामग्री के आवागमन की आवश्यकता एवं पाकिस्तान के साथ उत्तरोत्तर खराब हो रहे सम्बन्धों के कारण राष्ट्रपति ने एक अध्यादेश द्वारा सभी आवश्यक सेवाओं में हड़ताल करना अवैध घोषित कर दिया। तत्पश्चात् परस्पर वार्ता द्वारा इस हड़ताल को टाल दिया गया। उत्तर प्रदेश की चीनी मिलों में न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने के प्रश्न को लेकर एक आम हड़ताल हुई। उच्चतम न्यायालय द्वारा औद्योगिक (बैंक) अधिकरण के निर्वाचन निर्णय को अवैध घोषित कर देने पर बैंक कर्मचारियों ने देशव्यापी हड़तालें की। पचघाटी कोयला क्षेत्रों में व कानपुर, मद्रास तथा नागपुर की सूती वस्त्र मिलों में भी महत्वपूर्ण हड़ताल हुई। किदरपोर की क्लाइव जूट मिलों एवं बम्बई की स्वदेशी मिल में तालाबन्दी हुई तथा बम्बई में होटल के कर्मचारियों ने हड़तालें की। १९५२ में राजकीय आर्डिनेन्स फैक्ट्री

पूना, अहमदाबाद, नागपुर, बम्बई की सूती वस्त्र मिलों, कलकत्ता में जहाजी कर्मचारियों तथा बम्बई के यातायात कर्मचारियों की हड़तालें महत्वपूर्ण थीं। हावड़ा की बंगाल जूट कम्पनी, कलकत्ता की एलन बेरी कम्पनी तथा बम्बई की मेटल रोलिंग वर्क्स में तालाबन्दी हुई। १९५३ में बरनपुर के लोहा एवं इस्पात कारखाने में गम्भीर हड़ताल हुई। असम और ट्रावनकोर कोचीन के चाय बागान में भी कुछ छोटी-छोटी हड़तालें हुईं। १९५४ में रानीगंज की बर्न एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड एवं बम्बई की न्यू चाइना मिल्स में तालाबन्दी एवं आलमबाजार की वेस्टर्न इण्डिया मैच कम्पनी, टीटागढ़ की कागज मिलों में तथा बंगाल की जूट मिल व अमृतसर में कुछ छोटे-छोटे उद्योगों में भी हड़तालें हुईं। १९५५ में कानपुर की सूती वस्त्र मिलों में विवेकीकरण के लागू करने के विरोध में एक बड़ी हड़ताल हुई जो २ मई १९५५ से लेकर २० जुलाई १९५५ तक चालू रही, जिसके परिणामस्वरूप १६,६३,७४७ श्रम दिनों की क्षति हुई। कानपुर की एक जूट मिल में सात मास तक तालाबन्दी रही। दिल्ली के होटल कर्मचारियों, बम्बई के यातायात कर्मचारियों व पश्चिमी बंगाल के जूट और किलिक उद्योग आदि में अनेक हड़तालें हुईं।

१९५६ में बम्बई, अहमदाबाद व कलकत्ता में राज्यों के पुनर्गठन के प्रश्न को लेकर आम हड़तालें हुईं। इसमें कुछ हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ भी उत्पन्न हो गईं। इसी वर्ष नागपुर, खड़गपुर व पश्चिमी बंगाल की ३० खानों, किरकी में प्रतिरक्षा कारखानों, आदि में भी हड़तालें हुईं। १९५७ में केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों एवं डाक-तार विभाग की आशंकित हड़ताल को सफलतापूर्वक टाल दिया गया परन्तु पश्चिमी बंगाल तथा बिहार की खानों व पश्चिमी बंगाल की बैंकिङ्ग कम्पनियों आदि में हड़तालें हुईं। मोदीनगर की कताई व बुनाई मिल में तालाबन्दी हुई। उड़ीसा की हिराखण्ड रामपुर खान में भी श्रमिकों के द्वारा मैनेजर के मारे जाने पर तालाबन्दी हुई। कानपुर की म्यूर मिल में भी हड़ताल व तालाबन्दी हुई। १९५८ में मैसूर की कपिला टैक्सटाइल मिल, बन्दरगाहों में गोदी कर्मचारियों, बम्बई के नगर निगम कर्मचारियों, जमशेदपुर के टाटा, लोहा व इस्पात के कारखानों में, बिहार व देहली के केन्द्रीय ट्रेक्टर संस्थानों, कलकत्ता की ट्राम्वे कम्पनी में और केरल के बागान में महत्वपूर्ण हड़तालें हुईं। हिन्दुस्तान वायुयान उद्योग, बंगलौर में भी हड़ताल और तालाबन्दी हुई। बम्बई की प्रीमियर आटोमोबाइल कम्पनी, कलकत्ता की बंगाल कैमीकल वर्क्स में, मद्रास की तथा कानपुर की बंकिघम और कर्नाटक मिल्स तथा बर्नपुर की आयरन वर्क्स में हड़तालें और तालाबन्दी हुईं। १९५९ में महत्वपूर्ण औद्योगिक झगड़े निम्नलिखित स्थानों पर हुए—कोलार की सोने की खानों में, रामपुर की रजा चीनी मिल में, धनबाद कोयला खानों में, उत्तरी आरकोट के बीडी कारखानों में, राउरकेला के लोहे के कारखाने के तकनीकी विशेषज्ञों में, कलकत्ते की आई० जी० एन० रेलवे कम्पनी में, इलाहाबाद में स्वदेशी सूती कपड़ा मिलों में, मदुरा मिल कम्पनी में, शोलापुर की विष्णु सूती वस्त्र मिलों में, मध्य प्रदेश की चिरमीरी

खानो मे सुन्दरगढ की उडीसा सीमेट मे, कलकत्ता के मशीन निर्माण कम्पनी मे, नागपुर की मोडिल मिल्स में, बम्बई निगम मे आदि आदि। कई स्थानो पर श्रमिक द्वारा मारपीट के भी समाचार मिले। केन्द्रीय क्षेत्र मे १६५६ मे ४१ हडतालें गोदी, कर्मचारियो की, ६ रेलो मे, ७७ कोयला खानो मे, ७१ अन्य खानो मे, ८८ बैंको मे, तथा ४ जीवन बीमा निगम मे हुई। १६६० मे महत्वपूर्ण झगडे निम्नलिखित थे— खारदा कम्पनी मे, हावडा मिल्स म लुडलो जूट क० हावडा म, कनकिनारा जूट मिल मे, केदारनाथ जूट मिल हावडा मे, झालिदा के बीडी के कारखाने म, कलकत्ता मे काच के कारखाने म, हिन्दुस्तान इलैक्ट्रिक कम्पनी हावडा म, कोहनूर रबर वर्क्स कलकत्ता म, विशाखापतनम और कठियार की जूट मिलो मे, गगापुर की कपडा मिलो मे, कलकत्ता की क्लाइव मिल्स मे, हिन्द साइकिल्स बम्बई मे मद्रास की बकिंघम एण्ड कर्नाटिक मिल्स म आदि आदि। केन्द्रीय क्षेत्र मे ४१ हडताल गोदी कर्मचारियो की, १ रेल म, ७१ कोयला खानो म, ५३ अन्य खाना म ४३८ अन्य बैंको म तथा ५ जीवन बीमा निगम म हुइ। जुलाई ११, १६६० से केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियो की भी एक हडताल हुई जो पाच दिन तक चलती रही। कर्मचारियो की मुख्य माँग यह थी कि उनको १२५ रु० माह का न्यूनतम वेतन दिया जाय और महगाई भत्ता 'निवाह खर्च सूचकाक से सम्बद्ध कर दिया जाए। इस हडताल से रेल, डाक और तार जैसी आवश्यक सेवाओ पर भी प्रभाव पडा जिसके कारण जनता इस हडताल के अधिक पक्ष म न थी। इस हडताल के परिणामस्वरूप सरकारी कर्मचारियो से सघ बनाने का अधिकार छीन लिया गया जिसके कारण काफी वाद विवाद उत्पन्न हो गया। यह हडताल असफल रही। इसके विषय मे ससद और भारतीय श्रम सम्मेलन मे भी बहस हुई। सरकारी कर्मचारियो के सगठन तथा हडताल करने के अधिकार को सीमित कर दिया गया। इससे भी काफी विवाद उत्पन्न हुआ।

१६६१ म महत्वपूर्ण औद्योगिक विवाद निम्नलिखित सस्थाओ मे हुए—आंध्र की राष्ट्रीय तम्बाकू कम्पनी तथा अन्य तम्बाकू कारखानो मे, गन्तूर की जूट मिलो मे, असम के जल परिवहन मे, गोहाटी को तेल परिष्करण शाला (Refinery) मे, असम व केरल के चाय बागान मे, टाटा के इन्जीनियरिंग व रेल इजन कारखाने मे, फैरोक (केरल) की खपरैल (Tile) कारखाने मे, घवरा की ग्वालियर चीनी कारखाने मे, मध्य प्रदेश के बीडी के कारखाने मे, भोपाल के भारी विद्युत उद्योग (Heavy Electricals) म, मद्रास के दियासलाई कारखाने मे, गगापुर की चीनी मिलो मे, बम्बई की स्टैंडर्ड बैटरीज कारखाने मे, मैसूर के रुई के कारखानो मे, रूरकेला के इस्पात कारखाने म, उडीसा के कपडा कारखानो म, सोनपुर के एटलस साइकिल कारखाने मे, देहरादून के चाय बागान मे, बरेली के केसर चीनी मिल म, कानपुर के चर्म शोधक कारखाने मे, कानपुर की स्वदेशी काटन मिल म, वाराणसी निगम मे, कानपुर के जे० के० रेयन मिल मे, कलकत्ता की जूट मिलो मे, हावडा नगरपालिका मे, कलकत्ता के इलैक्ट्रिक सप्लाई कारखाने मे, बम्बई व विशाखापतनम की बन्दरगाहो मे, आदि। जनवरी १६६१ से फरवरी १६६२ तक कोयला खानो मे ६४

हड़तालें हुई और अन्य खानो मे ७७ हड़तालें हुई। १९६२ में महत्वपूर्ण औद्योगिक विवाद निम्नलिखित स्थानों मे हुए—नागपुर के रुई की गाठों के कारखाने मे, पूना के ब्रिक फैक्ट्री में, हाथरस की बिजली कॉटन मिल मे, बम्बई के गोदी कर्मचारियों की, कोठागोडियम की कोयला खानों में, कलकत्ता की बन्दरगाह कार्यशाला में, पश्चिमी बंगाल की जूट मिलों में, कोयम्बटूर की कम्बोडिया मिल मे, बम्बई के रंगाई कारखाने मे, दरभगा की जूट मिलों मे, रामपुर की रजा कपड़ा मिल मे, बैंलूर के रुई कारखाने मे, नई दिल्ली के हिन्दुस्तान हाउसिंग फैक्ट्री मे, आदि।

१९६३ मे महत्वपूर्ण औद्योगिक विवाद निम्नलिखित स्थानो मे हुए—कानपुर की म्यूर मिल्स मे, मद्रास के बन्दरगाहों में, बरौनी की तेल परिष्करण-शाला मे, पटेल इजीनियरिंग कम्पनी मे, हुगली की टैक्सटाइल मिल मे, कानपुर की जूट मिलों मे, डनलप रबर कम्पनी हुगली मे, भिलवानी की पजाब क्लाथ मिल मे, कानपुर की एलगिन मिल मे, सिंहभूमि की तांबा निगम मे, कानपुर की विक्टोरिया मिल्स मे, कुमारहट्टी की जूट मिलो मे, बगलौर के मोटर कारखाने मे, पश्चिमी बगाल की जूट मिलो मे, रामपुर और फरूखाबाद के बीडी कारखानों मे, चितरन्जन के रेल इंजन कारखाने मे, फिरोजाबाद के चूडी के कारखाने मे, देहली के अशोका होटल मे, कानपुर की जे० के० काटन मिल में, फरूखाबाद, कानपुर के विक्टोरिया मिल्स मे, श्री दुर्गा सूती वस्त्र मिल काडी गुजरात मे, बीमोर सीमेंट वर्क्स मध्य प्रदेश मे, बकिंघम कर्नाटक मिल्स मद्रास मे, बम्बई नगर पालिका निगम मे, जय इजीनियरिंग वर्क्स कलकत्ता मे, चितरन्जन इजन वर्कशाप में, हैवी इलैक्ट्रिकल्स भोपाल मे आदि आदि। १९६४ मे महत्वपूर्ण औद्योगिक विवाद निम्नलिखित स्थानो पर हुए—टाटा इजीनियरिंग कम्पनी जमशेदपुर मे, जे० के० जूट मिल्स कानपुर मे, कलकिनारा जूट मिल्स मे, हावडा निगम पालिका मे, विशाखापत्तनम के बन्दरगाह मे, टीटागढ जूट मिल में, केरल के बागान मे, कृष्णा मिल्स बिवावर मे, पटना नगर पालिका निगम मे, तथा जय इन्जीनियरिंग वर्क्स कलकत्ता मे, हेस्टिंग्स मिल रिशरा, पश्चिमी बगाल, कलकत्ता निगम मे आदि आदि।

सन् १९६५ मे, महत्वपूर्ण विवाद निम्न स्थानो मे हुए—घोरी कोयला खान बिहार में, केरल की अनेक काजू फैक्ट्रियों तथा चाय क्षेत्रो मे, बीडी सस्थान मद्रास, व महाराष्ट्र मे, महालक्ष्मी ग्लास वर्क्स बम्बई मे, महाराष्ट्र के सूती वस्त्र उद्योग के श्रमिकों मे, हुट्टी की सोने की खानों मे, मैसूर की कोलार की सोने की खानो मे, बगलौर की ऊनी मिल मे, सूती व रेशमी मिल क० मे, हिन्द लेम्प्स शिकोहाबाद उ० प्र० मे, कानपुर की न्यू विक्टोरिया मिल मे, पश्चिमी बगाल की जूट मिलों में, मुर्शिदाबाद के बीडी व्यापारियो मे, गगा मैन्यूफैक्चरिंग क० हुगली मे, बगाल टैक्सटाइल मिल मुर्शिदाबाद मे, तथा दिल्ली की नगर निगम में आदि आदि। सन् १९६६ के महत्वपूर्ण विवाद इस प्रकार थे—इण्डियन केबिल क० जमशेदपुर, नागियामूरी चाय बागान जलपाईगुडी मे, हेस्टिंग मिल हुगली मे, वैलिंगटन जूट मिल हुगली मे,

बड एण्ड क० कलकत्ता म आगरा की २५ जूट फैक्टरियो मे दमन्गा चाय बागान जलपाईगुडी और गुलमा चाय बागान सिलीगुडी मे अम्बिका जूट मिल बलूर और लुडलो जट मिल हावडा मे जूट मिल टीटागढ मे रिलायन्स जूट मिल प० बगाल मे दक्षिणी पूर्वी रेलवे वाल्टेयर मे रोहतास इण्डस्ट्रीज और अशोका सीमेंट डालमिया नगर म न्यू भोपाल टैक्सटाइल्स भोपाल मे सोमासुन्दर मिल तथा कम्बोडिया मिल कोयम्बटूर म एल्गिन मिल कानपुर म सिंगरैनी कोयला खान आन्ध्र प्रदेश म चाय बागान आसाम केरल और पश्चिमी बगाल म कोचीन मद्रास और कलकत्ता की गोदियो म रबर फैक्टरी हुगली म बवबान की कोयला खानो मे बगाल पौटरीज कलकत्ता म माम क० दुर्गापुर म मदुरा मिल और मद्रास रबड फक्टरी म रानीपत की मद्यशाला तथा बीना के कारखाना म सतम का मगनसाइट की खाना म आर्डिनेन्स फक्टरी कल्यान म भारतीय सांख्यिकीय सस्था कलकत्ता म केरल की काज फैक्टरिया म हुकमचन्द मिल इन्दौर म कानपुर विद्युत प्रशासन मे लखनऊ म राज्य सरकार के उद्यमो म बडौदा के रेयन कारखानो मे उडीसा की लोहे की खानो म फिरोजाबाद के काच के कारखानो म दुर्गापुर स्टील सयन्त्र म एसोसियेटड बैटरीज कलकत्ता म बिजली काटन मिल हाथरस मे ज० के० काटन तथा जूट मिल कानपुर म ग्लोस्टर इण्डस्ट्रीज हावडा म बगाल केमिकल वर्क्स म जीवन बीमा निगम बम्बई म स्टेट्समन कलकत्ता म मद्रास की कपडा मिलो म उडीसा की लोह की खाना म प० बगाल की बगसारी काटन मिल म जे० के० स्टील हुगली म अशान्ति आदि।

औद्योगिक विवादो के इस इतिहास से स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश मे औद्योगिक अशान्ति काफी बढ गई है और हाल मे हडताल फिर महत्वपूर्ण हो गई है।

औद्योगिक विवाद सम्बन्धी आकडे

निम्न तालिका मे १९२१ के बाद होने वाले औद्योगिक विवाद सम्बन्धी आँकडे प्रस्तुत है[5] —

वर्ष	हडतालो और तालाबन्दी की सख्या	विवादो म सम्मिलित श्रमिको की सख्या	वर्ष म हानि हुए काय दिवसो की सख्या
१९२१	३९६	६०० ३५१	६९८४४२६
१९२२	२१३	३०१०४४	५०५१७०४
१९२७	१२९	१३१६५५	२०१९९७०
१९२९	१४१	५३१०५९	१२१६५९६१
१९३७	७९	६४७८०१	८९८२०००

5 From Ind an Labour Year Books Palme Dutt s *Ind a Today* page 31 Ind an Labour Gazettes and Journals

वर्ष	हडतालो और तालाबन्दी की सख्या	विवादों मे सम्मिलित श्रमिकों की सख्या	वर्ष मे हानि हुए कार्य दिवसों की सख्या
१६३८	३६६	४,०१,०७५	६१,६८,७०८
१६३६	४०६	४,०६,१८६	४६,६२,७६५
१६४०	३२२	४,५२,५३६	७५,७७,२८१
१६४२	६६४	७,७२,६५३	५७,७६,६६५
१६४६	१,६२६	१६,६१,६४८	१,२७,१७,७६२
१६४७	१,८११	१८,४०,७८४	१,६५,६२,६६६
१६४८	१,२५६	१०,५६,१२०	७८,३७,१७३
१६४६	६२०	६,८५,४५७	६६,००,५६५
१६५०	८१४	७,१६,८८३	१,२८,०७,०००
१६५१	१,०७१	६,८१,३२१	३८,१८,६२८
१६५२	६६३	८,०६,२४२	३३,३६,६६१
१६५३	७७२	४,६६,६०७	३३,८२,६०८
१६५४	८४०	४,७७,१३८	३३,७२,६३०
१६५५	१,१६६	५,२७,७६७	५६,६७,८४८
१६५६	१,२०३	७,१५,१३०	६६,६२,०४०
१६५७	१,६३०	८,८६,३७१	६४,२६,३११
१६५८	१,५२४	६,२८,५६६	७७,६७,५८५
१६५६	१,५३१	६१,३,६१६	५६,३३,१४८
१६६०	१,५८३	६८,६,२६८	६५,३६,५१७
१६६१	१,३५७	५,११,८६०	४६,१८ ७५५
१६६२	१,४६१	७,०५,०५६	६१,२०,५७६
१६६३	१,४७१	५,६३,१२१	३२,६८,५२४
१६६४	२,१५१	१०,०२,६५५	७७,२४,६६४
१६६५	१,८३५	६,६१,१५८	६४,६६,६६२

केन्द्रीय क्षेत्र मे हडतालो व तालाबन्दियों की सख्या इस प्रकार थी—१६६१—१७६; १६६२—१६२; १६६३—१८८; १६६४—३१५, १६६५—२१२।

ऐसे औद्योगिक विवादो की सख्या जो औद्योगिक, विवाद अधिनियम के अन्तर्गत बनाई गई व्यवस्था के सामने आये इस प्रकार थी—१६६१—३४,११३, १६६२—२७,६६१, १६६३—२६,६७७, १६६४—३३,५३८, १६६५—२०६५६।

भारतवर्ष में औद्योगिक विवाद सम्बन्धी दो मुख्य बाते दृष्टिगोचर होती है। प्रथम तो अधिकतर विवाद सूती वस्त्र उद्योगो मे तथा बम्बई और पश्चिमी बगाल मे होते हैं, और दूसरे, ये अधिकतर असफल रहते है, जिसका कारण भारत मे श्रमजीवी वर्ग की निर्धनता और उनसे सौदाकारी शक्ति का अभाव है। अग्र तालिका से यह स्थिति और अधिक स्पष्ट हो जायेगी[6] :—

6. For detailed figures see Indian Labour Year Books and the Indian Labour Journals.

राज्य	विवादों की सख्या		
	१९६३	१९६४	१९६५
आन्ध्र प्रदेश	९७	१०६	१०६
असम	१८	३८	३६
बिहार	६२	१०४	८८
गुजरात	६५	७६	३८
जम्मू व कश्मीर	१	२	—
केरल	१४५	२१०	२००
मध्य प्रदेश	१४८	६०	८१
मद्रास	१९१	२३६	१३७
महाराष्ट्र	४४३	६३६	५८६
मैसूर	६८	११०	७५
उड़ीसा	६	२५	७३
पंजाब	१३	४६	२६
राजस्थान	१२	५४	२५
उत्तर प्रदेश	९५	१७१	११५
प० बंगाल	१७२	७११	२३८
अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह	२	९	६
दिल्ली	२६	३५	३६
हिमाचल प्रदेश	—	—	—
त्रिपुरा	७	३	५
गोआ	५	१७	१७
पाण्डचरी	—	१	६
योग	१४७१	२१५१	१८३५

प्राप्त आंकडो के आधार पर पता चलता है कि सन १९६५ में १६२४ विवादो मे २,४७ ७५ ७८० रु० की मजदूरी की हानि हुई तथा ९२१ विवादो मे उत्पादन की हानि का अनुमान १५,३१,३१२४५ रु० था। सन् १९६५ मे ५८५ विवाद ऐसे थे जिनमे ५० से कम श्रमिक सम्मिलित थे। ऐसे विवादो की सख्या जिनमे १००० से अधिक श्रमिको ने भाग लिया, केवल १३७ थी।

सन् १९६५ मे प्रति विवाद सम्मिलित श्रमिको की औसत सख्या ५४० थी। (सन १९६४ मे ४६६ थी)। प्रत्येक विवाद की औसत अवधि ६ ५ दिवस थी। (सन् १९६४ म ४·२ दिवस थी) तथा प्रति विवाद वर्ष मे हानि हुए कार्य दिवसो की सख्या ३५२६ थी (सन् १९६४ मे २६८६ थी)।

विभिन्न उद्योगो मे विवादो की सख्या १९६५ म निम्नलिखित थी —कृषि कार्य, १३ व बागान—११४, खानें—१५६, औद्योगिक कारखानें—१२१२, निर्माण कार्य—८४, बिजली, गैस, पानी और सफाई की सेवायें—८१, वाणिज्य—१६,

यातायात और परिवहन—२२, नौकरियाँ—७७, विविध—३७, योग—१८३५। कारखानों के १२१२ विवादों में से विभिन्न कारखानों में सख्या इस प्रकार थी :— खाद्य उद्योग—३६ (चीनी मिलों में ११), पेय पदार्थ—२२, तम्बाकू—७७, (बीड़ी में ६६), कपड़ा व बुनाई—३०१, (सूती कपड़ा—१६३, जूट—२१. रेशमी कपड़ा—२६, गर्म कपड़ा—१६, अन्य—४५), जूता—३, लकड़ी व कार्क—२७, फर्नीचर—३, कागज और गत्ता—२२, छपाई, प्रकाशन आदि—३४, चमड़ा—१४, रबर एवं रबर की वस्तुयें—२५, रसायन और रासायनिक पदार्थ—६०, पैट्रोल व तेल—४, अधात्विक खनिज पदार्थ—११८, मूल धातु उद्योग—६६, (लोहा और इस्पात—२७, धात्विक वस्तुयें—६८, मशीनें—७०, विद्युतीय मशीनें व सामान—३८, यातायात सामग्री—२८, विविध—३०, कृषि में १३ विवाद निम्न प्रकार थे : बिनौलों में से कपास निकालना व गांठे बनाना—५; जूट दबाना—१; अन्य—७; बागान में ११४ विवाद निम्न प्रकार थे; चाय—८६, काफी—७; रबड़—१०; अन्य ८; खानों में ११६ विवाद हुए जिनमें ७२ कोयले में, लोहा—२१. मैंगनीज—८, सोना—१५, जस्ता—१२ पत्थर की खानें—१५, अन्य—१३ थे। परिवहन तथा संचार के विवादों में रेलवे में १, मोटर परिवहन में १८, अन्य सड़क परिवहन में ४, नाविकों के सम्बन्ध में १०, गोदी व बन्दरगाहों में ५५, अन्य जल यातायात में १, वायु परिवहन में २ और डाक व तार में १ था।

सन् १९६५ के विवादों में ३०·७% में श्रमिक पूर्ण सफल रहे, १३·५% में अंशतः सफल रहे, ३५.९% में असफल रहे और १९·९% विवाद अनिश्चित रहे। १९६५ में विवादों की अवधि इस प्रकार थी : ३१·०% एक दिन से कम, ३०.८% पाँच दिन तक, १३.३% दस दिन तक, ९·६% बीस दिन तक, ९.५% तीन दिन से अधिक तक। सन् १९६५ में तालाबन्दी की सख्या १२८ थी जिनमें से ७६ हड़तालों के बाद हुई थी।

औद्योगिक विवादों का वर्गीकरण–[7]

प्रोफेसर पीगू के विचार—प्रोफेसर पीगू ने औद्योगिक मतभेदों का दो श्रेणियों में वर्गीकरण किया है—(१) ऐसे मतभेद जो मजदूरी में भिन्नता (Fraction of Wages) के कारण होते हैं और (२) ऐसे मतभेद जो कार्यों के सीमांकन (Demarcation of Functions) के कारण होते हैं। मजदूरी में भिन्नता के कारण जो मतभेद होते हैं उनको निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है :—(क) ऐसे मतभेद जो श्रम के मेहनताने से सम्बन्धित होते हैं। ये मतभेद साधारणतया नकद मजदूरी दर की समस्याओं के कारण उत्पन्न होते हैं परन्तु कुछ अन्य बातों से भी सम्बन्धित होते हैं, जैसे—कार्यशाला की दशायें, जुर्माना या नकदी या जिन्स के रूप में दोष भत्ते की मात्रा आदि, (ख) ऐसे मतभेद जिनका सम्बन्ध कर्मचारियों के कार्य व व्यवहार से होता है। यह साधारणतया कार्यों के घण्टों के प्रश्न से सम्बन्धित होते हैं।

7. Pigou. Economics of Welfare.

कार्यों के सीमाकन के कारण (जिनमे सम्बन्धित व्यापारा के सीमाकन विवाद भी आ जाते है) जो मतभेद होते है उनके अन्तर्गत वे सब झगड आ जात हैं जो श्रमिको के इस दावे से उत्पन्न होते है कि उन्हे प्रबन्ध कार्यों मे भाग मिलना चाहिए। ऐसे मतभेद निम्ननिखित बातो से सम्बन्धित होने है —(क) कार्य को विभिन्न वर्गों के श्रमिको मे तथा विभिन्न प्रकार की मशीनो म किस प्रकार बाँटा जाता है। (ख) मालिक अपने कर्मचारियो को किस प्रकार और कहा से कार्य पर लगाता है। इसम भेदभाव, पक्षपात तथा केवल श्रमिक सघो के द्वारा ही काय पर लगाना आदि समस्याय आ जाती है। (ग) इस बात की समस्या कि श्रमिको का अपनी काय दशायें निर्धारित करने म कितना हाथ होना चाहिए।

किन्तु प्रोफेसर पीगू ने यह भी कहा है कि उपरोक्त वर्गीकरण द्वारा मतभेदो को ठीक ठीक बाँटना कठिन भी है। औद्योगिक मतभेदा को एक और तरीके स भी दो विभागा मे उन्होने बाटा है —(१) ऐसे मतभेद जो वतमान रोज गार की शर्तो के अथ निणय (Interpretation) से सम्बन्धित होत है तथा (२) जो भविष्य के रोजगार के सामान्य प्रश्नो से सम्बन्धित होत हैं। वतमान रोजगार की शर्तो का अथ निणय तो एक न्यायिक (Judicial) काय है तथा सामान्य प्रश्नो का समझौता एक विधायी (Legislative) काय है। ऐसे सभी मतभद जो किसी करार के बाद उत्पन्न होत है अर्थ निणय मतभेद कह जा सकत है। एस मतभेद अधिकतर किसी विशेष सस्था तक ही सीमित रहते ह और बहुधा पूणतया निजी प्रकार के होत हैं। ऐसे मतभेद वास्तविक बातो के ऊपर जो वाद विवाद उत्पन्न हो जात है, जैसे मात्रा और गुण के विषयो पर उनसे सम्बन्धित हात ह। यह मतभद स्थानीय ब्रान्च (Branch) की ओर से उच्च सस्था द्वारा निपटाए जात ह। 'सामान्य प्रश्न रोजगार की शर्तो तथा नौकरी की सम्विदा से सम्बन्धित बाता से उत्पन्न हात है अर्थात ऐसी बातो से जिनका प्रभाव भविष्य म पडता है। इनके अन्तगत बहुत बात आ जाती है और इनका प्रभाव बहुत मनुष्यो पर पडता है। हडतालो और तालाबन्दियो के विस्तृत रूप से होन के साधारणतया यही कारण होते है। एसे प्रश्नो का निपटारा प्रत्यक्ष रूप से असम्बद्ध सस्थाओ द्वारा किया जाता है।

भारत मे औद्योगिक विवादो के कारण—

विवाद उत्पन्न होने क अनेक कारण है जिन्हे मुख्यत आर्थिक व गैर आर्थिक कहा जा सकता है। आर्थिक कारणो म मुख्यत मजदूरी, बोनस महगाई भत्ता, काय और रोजगार की दशाय, काय के घण्टे, निरीक्षको तथा मध्यस्थो द्वारा दुर्व्यवहार, अनुचित बर्खास्तगी, एक या अधिक श्रमिको को पुन काम पर लगाने की माग, छुट्टिया व वेतन सहित अवकाश, विवाचन निर्णय को कार्यान्वित करने मे देर करना आदि समस्याय रही हैं। इन कारणो को आन्तरिक कारण भी कहा जा सकता है अर्थात् एस कारण जो उद्योग, मालिक और मजदूरो से सम्बन्धित होते है। श्रमिको पर अत्याचार तथा प्रबन्धका द्वारा श्रमिक सघो को मान्यता देने स अस्वीकार कर

देना भी इन विवादो के कारण रहे है । विवेकीकरण की योजनाओं के लागू होने के पश्चात् श्रमिको की छटनी होने पर अनेक हडताले हुई हैं । भारत मे औद्योगिक विवादो के इतिहास से स्पष्ट है कि देश मे अनेक हडतालों के आर्थिक कारण ही रहे हैं । प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् औद्योगिक अशांति का मुख्य कारण निर्वाह-खर्च व वस्तुओं के मुल्य मे वृद्धि का होना था, जबकि मजदूरी मे मूल्यो के अनुपात से वृद्धि नही हुई थी । श्रमिक भी दीर्घ घटो तक कार्य करने तथा अपने अस्वस्थ और दोषपूर्ण रहन-सहन और कार्य की दशाओं से उत्पन्न बुराइयो के प्रति सजग हो उठे थे । सन् १६२२ के पश्चात् श्रमिको की अवस्था मे कुछ उन्नति के प्रयत्न हुए, परन्तु सन् १६२८ के पश्चात् अवस्था पुन: शोचनीय हो गई क्योकि आर्थिक मन्दी के कारण कर्मचारियो की छटनी और उनकी मजदूरी मे कमी की गई थी । परिणामस्वरूप हडतालो का तांता सा बध गया था । इसी प्रकार की परिस्थिति द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् भी पाई गई । निर्वाह-खर्च मे वृद्धि होने के कारण श्रमिको ने मजदूरी, महगाई भत्ता व बोनस आदि मे वृद्धि की मागें की और मालिको द्वारा इनको न माने जाने के कारण अनेक हड़तालें हुई । अत श्रमिको का अपनी आर्थिक स्थिति तथा मजदूरी के प्रति असतोष ही अधिकतर हडतालो का कारण रहा है । सन १६२६ मे रॉयल श्रम आयोग ८ के अनुसार सन् १६२१ और १६२८ के बीच के काल मे ६७६ विवादो का मुख्य कारण मजदूरी या बोनस की माँग थी और ४२५ विवादो का कारण कर्मचारियो से सम्बन्धित था जिसमे निकाले गये श्रमिको को पुन रोजगार देने की मांग ही मुख्य थी । ७४ हडतालो का सम्बन्ध अवकाश अथवा कार्य के घटो से था और शेष विभिन्न मांगो से सम्बन्धित थी । १६६५ मे भी १८३५ विवादो मे से १० मामलों मे मांगो का पता नही था और ६१२ (३३ ५%) विवाद मजदूरी और भत्ते के प्रश्नो से सम्बन्धित थे, १८१ (६ ६%) बोनस से, ४६८ (२५·३%) कर्मचारियों व छटनी से, ४५ (२ ५) अवकाश व कार्य के घंटों से तथा ४८६ (२६·८%) हडतालें अन्य माँगो से सम्बन्धित थी।

गैर-आर्थिक कारण वे होते है जिनका उद्योग से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध नही होता । इनमे राजनैतिक कारण मुख्य हैं । कुछ वर्ष पूर्व तक भारत ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन था तथा श्रम आन्दोलन का देश के राष्ट्रीय आन्दोलन से निकटतम सम्पर्क था । १६०८ मे श्री तिलक के ६ वर्ष के कारावास के विरोध मे बम्बई मे एक आम हडताल हुई । कई ऐसी हडताले खिलाफत, असहयोग व सविनय (Civil) अवज्ञा आन्दोलन के दिनों मे भी चलाई गई । अनेक बार हडतालें श्रमिको के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने तथा उनको बर्खास्त करने पर हुई । श्रमिको के विरुद्ध ऐसी कार्यवाहियाँ तब की जाती थी जबकि श्रमिक राजनैतिक नेताओं के मुकदमों की कार्यवाही सुनने चले जाते थे, या विदेशी माल को हाथ लगाने से इन्कार करते थ, या जब उन्होने राजनैतिक प्रदर्शनो मे भाग लिया अथवा यूरोपियन मैनेजरों को मारा-पीटा या कांग्रेस के स्वयंसेवकों के रूप मे कार्य किया । साम्यवादियों से सहानु-

8. *Report of the Royal Commission on Labour. Page 334.*

भूति रखने वाल श्रमिको पर अत्याचार करने के विरोध म भी हडताल हुई ह। कई बार हडताल सटोरियो अर्थात् सट्टेबाजो (Speculators) ने भी कराई ह जो अपने लाभ के लिये काम और उत्पादन बन्द कराकर कीमतो म वृद्धि करा देते है। इस हेतु सट्टेबाजो न कई बार निराधार अफवाह फलाइ ह तथा श्रमिको को वित्तीय सहायता भी दी है और विवादो को बढाया है।

साराश यह है कि आर्थिक एव गैर आर्थिक दोनो ही प्रकार के कारण औद्योगिक विवादो के लिए उत्तरदायी रह है। कुछ वर्षो से ऐसा देखने म आ रहा है कि मालिको एव श्रमिको के बीच की खाई गहरी होती जा रही है और दोनो पक्षो मे घोर असन्तोष व्याप्त है। श्रमिको की मनोवृत्ति म तीव्र परिवतन हो गया है और व नित्य प्रतिदिन लाभ म से अधिक भाग प्राप्त करने की माग कर रह है। राजनतिक परिवतन अन्तराष्ट्रीय घटनाय साम्यवादी विचारो का प्रसार अनिश्चित आर्थिक परिस्थितिया तथा निर्वाह खच म वद्धि इस मनोवृत्ति के लिये उत्तरदायी हैं। इसके साथ साथ अनक राजनतिक दलो के प्रचार ने भी असन्तोष उत्पन्न कर दिया है। अनक राजनैतिक दलो ने काग्रस सरकार को तग करने के लिये श्रमिक सघो पर अधिकार कर हडताल करवाया ह। परन्तु फिर भी औद्योगिक विवादो क आर्थिक कारण ही प्रमुख रह हैं। रायल श्रम आयोग का मत इस बारे म महत्वपूर्ण है जो आज भी सत्य कह जा सकता है। "चाहे श्रमिक राष्ट्रीय साम्यवादी या साणिज्य उद्देश्यो स प्रभावित हुए हो लेकिन फिर भी हमारा विश्वास है कि शायद ही कोई ऐसी हडताल हुई हो जो कि पूर्णतया या अधिकाश रूप म आर्थिक कारणो के फल स्वरूप न हुई हो।"[9] यह सर्वविदित है कि श्रमिको की निधनता ही साम्यवाद को जन्म दत है। हमारे श्रमिको की आर्थिक शिकायत उनम इस बात की भावना कि समाज म उनका कोई उचित स्थान नही है उनम इस बात का डर कि कही उनकी धनोपाजन शक्ति म अस्थिरता न आ जाय उनम इस बात की आशका कि कही उनकी नौकरी म रुकावट न पड़ जाये आर्थिक कठिनाइयो का भार (जिससे इस बात की भावना बढ जाती है कि उनके साथ अन्याय हो रहा है) काय एव रहन सहन की दयनीय दशाय आदि अनेक एसे शक्तिशाली कारण हैं जिनसे श्रमिको के हृदय म असन्तोष व्याप्त हो गया है और जिनकी अभिव्यक्ति (Expression) निरतर होने वाली हडतालो म मिलती है।

यहा इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि भारत म मालिको व श्रमिको के बीच जो खाइ उत्पन्न हो गई है उसका एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि भाषा जाति आदि की भिन्नता होने से उनके बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध नही बन पाते और आपस म एक दूसरे को समझने का प्रयत्न नही किया जाता। अधिकाश उद्योगो का प्रबन्ध विदेशियो द्वारा होता रहा है जिनको कि भारतीय भाषाओ का बहुत कम ज्ञान होता है। अत ऐसे प्रबन्धको को मध्यस्थो के ऊपर ही निभर रहना पड़ा है। इन मध्यस्थो ने अनक बार श्रमिको का गलत ढग से प्रतिनिधित्व किया है।

9 *Report of the Royal Commission on Labour Page 335*

यदि प्रबन्धक भारतीय भी होते हैं तब भी उनमें और श्रमिकों में जाति परम्पराओं आदि में विभिन्नता होने के कारण अंतर बना रहता है। परिणामस्वरूप बहुत से प्रबन्धक अपने कुछ अधिकारों को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों या मध्यस्थों को सौंप देते हैं। यह मध्यस्थ विश्वसनीय नहीं होते और मालिकों और श्रमिकों के बीच पारस्परिक सम्पर्क को कठिन बना देते है। श्रमिकों और मालिकों में मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने में एक अन्य बाधा शक्तिशाली श्रमिक संघों का अभाव है। बाहरी नेता भी कई बार हड़तालों के लिए उत्तरदायी होते हैं। 'प्रीमियर आटोमोबायल्स' कम्पनी बम्बई में जो १६५ में हड़ताल हुई थी श्री आर० एल० मेहता द्वारा की गई। उसकी जाच से पता चला है कि वह हड़ताल मजदूरी, बोनस या किसी ऐसे ही औद्योगिक प्रश्न से सम्बन्धित नहीं थी वरन् नेता की व्यक्तिगत बातों के कारण हड़ताल कराई गई थी।

यहाँ इस बात का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है कि अनेक बार आम हड़तालें भी होती है जिनमें दुकानें अथवा कार्य आदि बन्द हो जाते हैं। ऐसी हड़तालें श्रमिकों की हड़तालों से भिन्न होती है। ये आमतौर पर कानूनों के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए होती है, उदाहरणत ये सरकार अथवा पुलिस के कार्यो के प्रति विरोध प्रकट करने के लिये होती है, और इनका मालिक से कोई सम्बन्ध नहीं होता। राजनैतिक उत्तेजना के दिनों में यह बहुत अधिक होती हैं। ऐसी हड़तालें यद्यपि अल्पकालिक होती है तथापि सब बातों को देखते हुए उद्योगों और उत्पादन को इनसे काफी क्षति पहुँचती है।

हड़तालों का प्रभाव, हड़ताल करने का अधिकार

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि देश के आर्थिक जीवन पर हड़तालों का क्या प्रभाव पड़ता है। इन हड़तालों के कारण हम किस दिशा में जा रहे है? क्या श्रमिकों को हड़ताल करने का अधिकार होना चाहिये? हड़तालों से बचने के लिए क्या उपाय करने चाहिये तथा उनके होने पर समझौते के लिये कौन-सा साधन अपनाना चाहिये? इस प्रकार के अनेक प्रश्न है जो जनता की चिन्ता का कारण बने हुए हैं और जिनके ऊपर विचारशील लोगों में मतभेद भी है। यद्यपि हमने पश्चिमी देशों के औद्योगिक साधनों व संगठन की तो नकल की है, परन्तु यह खेद की बात है कि उन देशों में औद्योगिक सम्बन्धों को सौहार्दपूर्ण बनाये रखने और गम्भीर और तीव्र औद्योगिक विवादों को कम करने के लिये जो साधन अपनाये गये है, उनका हमारे देश में सफलता के साथ उपयोग नहीं किया गया है। फलतः भारत में हड़तालों का होना एक आम बात हो गई है; जिनका मालिकों एवं श्रमिकों पर आर्थिक दृष्टि से बुरा प्रभाव तो पड़ता ही है, उनसे जनता को भी बहुत असुविधा होती है। पिछले तीस वर्षो में जो हड़तालें व तालाबन्दी आदि हुई हैं, यदि उन पर दृष्टिपात करें तो उनसे श्रमिकों को कष्ट, उत्पादन व लाभ में कमी, सर्वसाधारण को असुविधा और मालिकों व श्रमिकों में पारस्परिक मतभेद, सन्देह और कटुता जैसे परिणाम ही दिखाई देते है। इस कारण यह बहुत आवश्यक है कि ऐसे साधनों पर विचार

किया जाए जिनसे औद्योगिक झगड़ों को रोका जा सके और यदि वह हो भी तो उनका सरलतापूर्वक निपटारा हो सके।

प्रोफेसर पीगू[10] का कहना है कि हड़ताल अथवा तालाबन्दी द्वारा जब सम्पूर्ण उद्योग में अथवा उसके कुछ भाग में श्रमिक तथा सम्पूर्ण सामग्री बेकार हो जाता है तो उससे राष्ट्रीय लाभांश में कमी होती है और आर्थिक कल्याण को क्षति पहुँचती है। इन विवादों से सम्बन्धित उद्योगों में उत्पादन की जो प्रत्यक्ष हानि होती है कभी कभी वास्तविक हानि उससे भी अधिक होती है। इसका कारण यह है कि किसी महत्वपूर्ण उद्योग में काम ठप्प हो जाने से अन्य उद्योगों का नियमन भी अवरुद्ध हो जाता है। ऐसा दो प्रकार से होता है। एक तो इस प्रकार कि काम रुकने से हड़तालियों की आर्थिक स्थिति खराब हो जाती है अतः उनकी ऐसी वस्तुओं की माँग भी कम हो जाती है जिनका उत्पादन अन्य उद्योगों में होता है। दूसरे यदि हड़ताल ग्रस्त उद्योग ऐसा है जो अन्य उद्योगों में काम आने वाली वस्तुओं अथवा सेवाओं का उत्पादन अथवा उनकी व्यवस्था करता है तो इस स्थिति में उन उद्योगों को कच्चा माल अथवा अन्य सामान पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होता जिससे वहाँ कार्य में बाधा उत्पन्न होता है। यह प्रभाव कैसा होगा यह बात यद्यपि उत्पत्ति वस्तु की प्रकृति पर निर्भर होता है फिर भी हड़ताल ग्रस्त उद्योगों की हानि वाली प्रत्यक्ष हानियों के अलावा अन्य उद्योगों में इनकी जो प्रतिक्रियायें होती हैं उनके कारण इन हड़तालों से कुछ सीमा तक राष्ट्रीय लाभ को ही परोक्ष रूप में हानि पहुँचती है।

यह सत्य है कि औद्योगिक विवादों के कारण उत्पादन में जो निवल कमी (net contraction) होती है वह सामान्यतः तात्कालिक कमी (immediate contraction) से कुछ कम होता है। इसका कारण यह है कि एक स्थान पर काम रुकने से प्रतिद्वन्द्वी उद्योगों में उसी समय काम की मात्रा बढ़ सकती है अथवा यह भी हो सकता है कि हड़ताल ग्रस्त उद्योगों में देरी से हुई क्षति को पूरा करने के लिए बाद में काम की मात्रा बढ़ जाए। यह भी मान्य है कि हड़तालों व तालाबन्दियों से उद्योगों को जो प्रत्यक्ष हानि होती है कभी-कभी उसकी आंशिक रूप से पूर्ति उस प्रेरणा द्वारा हो जाती है जो कि मशीनरी तथा कार्य की व्यवस्था में सुधार करने के लिये मालिकों को परोक्ष रूप से मिलती है। किन्तु व्यापक दृष्टिकोण से देखने पर ज्ञात होता है कि ऊपर जिस परोक्ष प्रेरणा अथवा लाभ की कल्पना की गई है उसका महत्व उस हानि के मुकाबले बहुत कम आंका गया है जो कि हड़ताल ग्रस्त उद्योगों के उत्पादन में प्रत्यक्ष रूप से होता है और उन उद्योगों को होता है जिन्हें कच्चा माल मिलना बन्द हो जाता है अथवा इन उद्योगों की सहायता के बिना जो अपने उत्पादन को अंतिम चरण तक नहीं ले जा सकते। इसके अतिरिक्त मजदूरों को भी स्थायी रूप से बड़ी क्षति पहुँच सकती है। उदाहरणतः उनका औद्योगिक जीवन अस्त व्यस्त हो सकता है अस्थायी जलपान

10 A C Pigou—Economics of Welfare

का सामना करने के लिए उन्हें ऋण लेना पड़ सकता है तथा हड़ताल की अवधि में मजदूरों के बच्चों को यथेष्ट पौष्टिक भोजन आदि न मिल पाने के कारण उनके स्वास्थ्य को भी स्थायी हानि पहुँच सकती है। तथापि, इन बुराइयों की मात्रा अंशतः तो इस बात पर निर्भर होती है कि निर्धन लोग उस वस्तु का उपभोग किस सीमा तक करते है जिसका उत्पादन रुक गया है, और अंशतः इस बात पर कि जीवन, स्वास्थ्य, सुरक्षा अथवा शान्ति-व्यवस्था के लिए उस वस्तु का महत्व कहाँ तक है। कुछ भी हो, औद्योगिक विवादों से राष्ट्रीय लाभांश को जो कुल क्षति पहुँचती है वह बड़ी गम्भीर होती है। यही कारण है कि समाज-सुधारक औद्योगिक शान्ति बनाये रखने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं।

अधिक आधारों पर हड़तालों का समर्थन नहीं किया जा सकता। अनुभव से स्पष्ट हो जाता है कि कटु संघर्षों की अपेक्षा अन्ततः समझौता व्यवस्था तथा विवाचन जैसे साधनों से, जिनमें पारस्परिक सौहार्दपूर्ण बातचीत व तर्क हो सकते है, कहीं अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में धमकी द्वारा अधिक समय तक कार्य चलाना कठिन है। धमकी सदैव विपक्ष के मस्तिष्क को हठी बना देती है और वह एक पग भी आगे को बढ़ने को तैयार नहीं होता। औद्योगिक अव्यवस्था से सम्पूर्ण हानि का अनुमान केवल खोई हुई मजदूरी और लाभ की क्षति से अथवा कम उत्पादन से ही नहीं लगाया जा सकता। उसके लिये इनमें जो असुविधायें उत्पन्न हो जाती है और जनता को जो कष्ट और दुःख होते है उनको भी ध्यान में रखना चाहिए, जैसे विद्युत व गैसपूर्ति, यातायात, स्वास्थ्य व सफाई आदि। जन उपयोगी सेवाओं के विवादों से जनता को कष्ट, दुःख और असुविधा अधिक होती है। हड़ताल दो धारो वाला अस्त्र है। इससे न केवल मालिकों व समाज को ही हानि होती है वरन् श्रमिकों को ही इससे सबसे अधिक तकलीफ पहुँचती है। हड़तालों से श्रमिकों को लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है। कभी-कभी तो श्रमिकों को हड़ताल की अवधि में लाठीचार्ज एवं गोलियों का भी सामना करना पड़ता है एवं तत्पश्चात् उन पर अत्याचार भी किए जाते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि क्या श्रमिक यह सब तकलीफें खिलवाड़ के लिए भुगतते हैं? जब उनको ज्ञात रहता है कि उनको ही सर्वाधिक हानि होगी तो फिर वे हड़ताल क्यों करते हैं? उत्तर स्पष्ट है। आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था की यह विशेषता है कि यदि श्रमिक लड़ने झगड़ने की प्रवृत्ति को न अपनाएँ तो अनेक अन्यायी मालिक, श्रमिकों का शोषण करने की प्रवृत्ति नहीं छोड़ेंगे और उद्योग के समस्त लाभ को अपनी ही तिजोरियों में बन्द करते रहेंगे। अतः समस्या का यह समाधान नहीं है कि हड़तालों को अवैध-घोषित कर दिया जाय अथवा श्रमिकों से हड़ताल के अधिकार को छीन लिया जाय। यह उपचार तो रोग से भी भयकर होगा। श्रमिकों के पास मालिकों के द्वारा किए गए शोषण का विरोध करने के लिए हड़ताल ही एक-मात्र अस्त्र है। अतः हड़तालों के कुप्रभावों के दृष्टिकोण से ही हमें इस समस्या पर विचार नहीं करना चाहिए, वरन् श्रमिकों के दृष्टिकोण का भी ध्यान

रखना चाहिए। समस्या का समाधान उन कारणो को, जो हडताल को जन्म देते हैं, दूर करने से ही हो सकता है। हमे मालिको व श्रमिको के बीच अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिए। हडतालो के दोषो का विवेचन तो केवल इसलिए होना चाहिए कि औद्योगिक विवादो को रोकने और उनका निपटारा करने के साधनो पर विचार किया जा सके और उनकी महत्ता को समझा जा सके।

भारत म आज औद्योगिक विवादो से बहुत सी हानिया है। देश आर्थिक सकट स गुजर रहा है और बकारी अपना व्यग्र रूप दिखा रही है। अत ऐसे समय देश म अधिक उत्पादन तथा औद्योगीकरण की तीव्र आवश्यकता है। मुद्रास्फीति की प्रवृतिया को केवल अधिक उत्पादन करके ही दूर किया जा सकता है। वास्तव म आज हमारे देश म—राजनैतिक सामाजिक एव आर्थिक प्रत्यक दृष्टिकोण से उत्पादन मे वृद्धि की आवश्यकता ह। देश के सभी राजनैतिक नेता भी उत्पादन वृद्धि को बहुत अधिक महत्व प्रदान कर रह हैं। हमारे देश म इस समय पचवर्षीय आयोजनाय लागू है तथा उनकी सफलता के लिये देश म औद्योगिक शान्ति आवश्यक है। अत राष्ट्रीय दृष्टिकोण से इस समय हडतालो का समर्थन नही किया जा सकता। चाहे मालिक हो चाहे श्रमिक हो अथवा कोई भी बाह्य सस्था हो यदि वह इस समय उद्योग अशान्ति के लिए उत्तरदायी है तो उसको देशद्रोही कार्यो के लिये दोषी ठहराया जा सकता है। श्री खडूभाई देसाई के अनुसार व्यस्क मताधिकार पर आधारित प्रजातन्त्र म हडताल और तालाबन्दी न केवल असामयिक हो गये हैं अपितु उन उद्देश्यो के लिये भी जिनके लिय व किये जाते है, पूर्णतया हानिप्रद है।' देश म समाजवादी ढाचे की स्थापना के लिये उत्पन्न हो रही नवीन परिस्थितियो मे हडताला व तालाबन्दी को उचित कहना ठीक नही जान पडता। आज जो भी व्यक्ति हडतालो का समर्थन करते है व प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपनी राजनैतिक स्वार्थ सिद्धि के लिये ऐसा करते हैं। उनका उद्देश्य सामाजिक घृणा व वर्गद्वेष को उकसाना है। क्योंकि वे समाज के ढाचे को समाप्त कर तथाकथित साम्यवाद का लाना चाहते है। उनका ध्यान इस ओर नही जाता कि इस समय हमारे देश की तत्कालीन आवश्यकताय क्या है और किसी और आर्थिक ढाचे को ग्रहण करन म क्या व्यावहारिक कठिनाइया है। हम ऐसे व्यक्तियो से सचेत रहना चाहिये। इसके अतिरिक्त चीन के आक्रमण के उपरान्त हमारे देश की सुरक्षा को भी खतरा उत्पन्न हो गया है। शत्रु को देश से बाहर निकालने के लिए और अपनी सीमाओ को भविष्य मे भी सुरक्षित रखने के लिए हम अपने आप को शक्तिशाली बनाना है। इस समय मालिक मजदूर या कोई भी अन्य दल यदि औद्योगिक विवादो का सहारा लेता है तो उसे देशद्रोही कार्य के लिये दोषी ठहराया जा सकता है।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि श्रमिको का हडताल करने के अधिकार से ना वचित नही किया जा सकता तथापि इस अधिकार का दुरुपयोग भी नही होना चाहिए। कई हडतालें केवल मामूली सी बातो पर हो जाती है। कई बार मालिको को श्रमिको की ऐसी अटपटी मागो का सामना करना पडता है जिनका

आधार राजनैतिक अथवा आर्थिक होने की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक अधिक होता है। अनेक हड़तालें राजनैतिक दलों द्वारा अपनी स्वार्थसिद्धि के हेतु कराई जाती है जिनका श्रमिको के हित से कोई सम्बन्ध नही होता। १६५८ में 'प्रीमियर ऑटोमोबाइल्स', बम्बई में जो हड़ताल व्यक्तिगत बातो को लेकर हुई थी उसका उदाहरण इस सम्बन्ध मे दिया जा सकता है। ऐसा भी देखने में आया है कि कभी-कभी मालिको ने जान-बूझकर हड़तालों को अधिक समय तक चलने दिया है, ताकि वे जनसाधारण की सहानुभूति प्राप्त कर सकें और श्रमिको को उन्ही के अस्त्र (हड़ताल) द्वारा पराजित कर दें। १६५० मे बम्बई की सूती वस्त्र मिल की हड़ताल, जो ६३ दिन तक चली, इसका एक उदाहरण है। भारतीय श्रमिको मे यह प्रवृति देखी गई है कि यद्यपि उनमें हफ्तों या महीनों दुःख उठाने का साहस, शक्ति व धैर्य होता है फिर भी मुसीबत उठाने के बाद उनमे कुछ ऐसी प्रतिक्रियायें उत्पन्न हो जाती है, जिनको दूर करने के लिए बहुत समय लगता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रत्येक हड़ताल के पश्चात् काफी समय तक श्रमिकों की ओर से एक प्रकार का शान्त ओर खामोश वातावरण बन जाता है। इस बात से लाभ उठाकर कई बार मालिको ने हड़तालों को दीर्घ समय तक चलने को प्रोत्साहित किया है तथा तालाबन्दी भी की है, क्योंकि मालिकों मे प्रतीक्षा करने की क्षमता होती है। मालिकों के ऐसे दृष्टिकोण की भर्त्सना करनी चाहिए।

इसी प्रकार ऐसी अनेक परिस्थितियाँ हो सकती हैं जबकि हड़ताल के अधिकार पर रोक लगानी पड़ती है। युद्ध जैसी संकटकालीन अवस्थाओ मे, जनोपयोगी सेवाओ मे, देश के आर्थिक विकास सम्बन्धी योजनाओ के कार्यान्वित होने की अवधि मे, अथवा जब कोई भी पक्ष अनुचित दृष्टिकोण अपनाये, सरकार का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह हस्तक्षेप करे और हड़ताल के अधिकार को वापिस लेकर सभी प्रकार के विवादो को अवैध घोषित कर दे।

इस सम्बन्ध मे यह बात भी उल्लेखनीय है कि भारत मे श्रमिको के हड़ताल के अधिकार को स्वीकार कर लिया गया है। यह इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारत के संविधान मे संगठन और संघ बनाने का अधिकार प्रदान किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय *श्रम संगठन के अभिसमय* द्वारा भी इस अधिकार की सुरक्षा होती है। फिर भी भारत मे हड़ताल के इस अधिकार को असीमित नही कहा जा सकता। औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत कुछ विशेष परिस्थितियों मे हड़तालें अवैध घोषित कर दी गई है और अवैध हड़तालों मे भाग लेने पर दंड की भी व्यवस्था कर दी गई है। इसका उल्लेख आगे के पृष्ठो मे किया गया है।

भारत मे औद्योगिक विवादो को रोकने और सुलझाने के उपाय (Prevention and Settlement of Industrial Disputes in India)

विवादो की रोक-थाम

उपचार की अपेक्षा बचाव सदैव ही अच्छा होता है। इसलिए हम सर्वप्रथम उन उपायो का विवेचन करेगे जो कि देश मे होने वाले औद्योगिक विवादो की रोक थाम कर सकें। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है राष्ट्र की तत्कालीन आवश्यकता यह है कि पूंजी और श्रम के मध्य की खाई को कम किया जाए तथा मालिको व श्रमजीवियो के मध्य सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयत्न किये जाएँ। मालिको के दृष्टिकोण मे न केवल परिवर्तन करने की आवश्यकता है जिससे वह श्रमिको के कल्याण म निजी रूप से अधिक रुचि ले सकें वरन इस सम्बन्ध म कई अन्य पग उठाय जाने की भी आवश्यकता है। प्रथम उपाय तो यह है कि ऐसे शक्तिशाली श्रमिक सघो का विकास हो जिनकी प्रबन्धकर्त्ताओ तक पहुँच हो।

शक्तिशाली श्रमिक सघ

श्रमिक सघो के अध्याय म हम इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि मालिको व श्रमिको म मृदु सम्बन्ध बनाये रखने मे शक्तिशाली श्रमिक सघो के क्या लाभ हैं। श्रमिक सघ मालिको स प्रत्यक्ष रूप से बातचीत कर सकते हैं और इस प्रकार हडताल होने के इस मुख्य कारण को दूर कर सकते हैं कि अनेक बार मध्यस्थ मालिको के समक्ष श्रमिको का प्रतिनिधित्व उचित रूप से नहीं करते। मालिको के लिए भी यह सम्भव नही होता कि वे व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक कर्मचारी से मिल और उसके कष्टो का निवारण करने का प्रयत्न कर। मालिक श्रमिक सघो मे श्रमिको का हृदय पायेंगे और यदि एक बार हृदय सन्तुष्ट हो गया तो मालिक इस बात का विश्वास कर सकते हैं कि फिर शिकायत का अवसर न होगा। मालिको को यह अनुभव कर लेना चाहिए कि पारस्परिक सम्बन्ध मधुर बनाये रखने के लिए श्रमिक सघ एक आवश्यक और उचित साधन है। एकता और सामूहिक रूप से कार्य करने से श्रमिको को भी लाभ होता है क्योकि वे मालिको की दृढ़ सौदाकारी शक्ति का तब सामना कर सकते हैं और इस प्रकार मालिको से उचित व्यवहार पा सकते है। श्रमिको द्वारा सामूहिक रूप से लिए गये निर्णयो की मालिको द्वारा सरलता से उपेक्षा नही की जा सकती। परन्तु प्रभावशाली होने के लिये यह आवश्यक है कि श्रमिक सघ अपने सगठन म मजबूत और अच्छे हो और श्रमिको के बहुमत का प्रतिनिधित्व करते हो। भारत के श्रमिक सघ आन्दोलन म कई प्रकार के गम्भीर दोष हैं जिनका उल्लेख किया जा चुका है।[11] इन दोषो को दूर कर देने से देश म एक शक्तिशाली श्रमिक सघवाद का विकास होगा और यह बात औद्योगिक अशान्ति को रोकने के लिये प्रभावशाली साधन सिद्ध होगी।

---

११ देखिए पृष्ठ १०८-११५

इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि भारत के अनेक औद्योगिक केन्द्रों में श्रमिको और मालिकों के बीच समझौते हुए है । ऐसे समझौते औद्योगिक शान्ति के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करते है । इनका स्वागत करना चाहिए। यह समझौते औद्योगिक-शान्ति को बनाये रखने के लिए सामूहिक सौदाकारी[12] की महत्ता को प्रकट करते है और यह आशा की जा सकती है कि सम्पूर्ण भारत मे श्रमिक सघों और प्रबन्धकों द्वारा ऐसे समझौते अनुकरणीय होगे। अहमदाबाद मे २७ जून १६५५ को अहमदाबाद मिल मालिक परिषद् और सूती कपड़ा मिल मजदूर परिषद के बीच दो सामूहिक समझौते हुए । प्रथम समझौते का उद्देश्य पारस्परिक बातचीत या स्वीकृत विवाचन द्वारा विवादों का निपटारा करना है । दूसरा समझौता बोनस भुगतान से सम्बन्धित है । एक और समझौता टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी (TISCO) व टाटा श्रमिक सघ के बीच जनवरी १६५६ में जमशेदपुर मे हुआ । यह एक व्यापक समझौता है और इसमे संघ सुरक्षा, अधिक उत्पादन, कार्य श्रेणी निर्धारण आदि की योजनाओं मे श्रमिकों के द्वारा सहयोग देने के उपबन्ध है । इसमे अनेक ऐसे उपबन्धों का भी उल्लेख है जो भारत के लिए नवीन है यद्यपि दूसरे उन्नत औद्योगिक देशो के लिए वह कोई नई चीज नही है । अन्य समझौते जो हुए है उनमे से कुछ निम्नलिखित हैं—बम्बई मिल मालिक परिषद् और राष्ट्रीय मिल मजदूर सघ के मध्य, असम तेल कम्पनी व श्रमिक संघ के मध्य, मोदीनगर मे मोदी कताई और बुनाई मिल के मजदूर और प्रबन्धको के मध्य, मैसूर कागज मिल, भद्रावती के श्रमिक सघ और प्रबन्धकर्त्ताओ के मध्य, और मैसूर राजकीय सडक यातायात विभाग और इसके श्रमिको के मध्य, मैसूर चीनी कम्पनी बगलौर और उनके कर्मचारियो के मध्य, मद्रास के बागान के प्रबन्धकर्त्ताओ और वहाँ के श्रमिको के मध्य । इस प्रकार के समझौते अब अन्य कई स्थानो पर भी हुए है और मालिको और श्रमिको के मध्य मधुर सम्बन्ध बनाये रखने मे बहुत सहायक सिद्ध हो रहे है ।

औद्योगिक शान्ति को बनाये रखने के लिये जो अन्य महत्वपूर्ण पग उठाये गये है वह निम्नलिखित है—(क) प्रबन्ध म श्रमिकों का भाग (Worker's Participation in Management), (ख) अनुशासन सहिता (Code of Discipline), (ग) आचरण सहिता (Code of Conduct), (घ) शिकायत निवारण क्रियाविधि (Grievance Procedure), (ङ) औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव (Industrial Truce Resolution) १६६२, (च) मूल्यांकन तथा कार्यान्वित समितियाँ तथा प्रभाग (Evaluation and Implementation Committees and Division) और (छ) परामर्शदात्री व्यवस्था (त्रिदलीय श्रम व्यवस्था) । इनमे से प्रथम पाच का उल्लेख परिशिष्ट 'ग' में किया गया है ।

मालिक-मजदूर समितियाँ (Works Committees)

उनके महत्व और कार्य :—

औद्योगिक विवादों को रोकने और सुलझाने मे मालिक-मजदूर समितियाँ

१२. सामूहिक सौदाकारी के लिए देखिए अगला अध्याय ।

महत्वपूण काय करती है। उद्योगो की अलग अलग प्रत्येक सस्था म औद्योगिक-अशाति को रोकने के लिए ये समितिया बहुत उपयुक्त है। ये मतभेदा को पारस्परिक बात चीत द्वारा दूर करन के लिए परामर्शदात्री व्यवस्था करती हैं। इनमे मालिको और श्रमिको दोना के ही प्रतिनिधि होते है। इनका मुख्य उद्देश्य यह होता है कि कारखाने की सीमा म ही पारस्परिक सद् इच्छा और मैत्रीपूण वातावरण बनाकर दिन प्रतिदिन की समस्याओ पर विचार विमर्श कर। इन समितियो मे मालिक व श्रमिक इस प्रकार नही मिलते जिस प्रकार किसी सघष के निपटाने के लिए सलाहकार के सम्मुख आते हैं वरन दो मित्रो की भाँति पारस्परिक विचार विमर्श से अपन विवादो को शीघ्र एव शातिपूण ढग से निपटाने और मतभेदो को दूर करन के लिए मिलते है। ये समितियाँ प्रब धको और कमचारियो दोनो ही से सम्ब धित दिन प्रतिदिन के उन पारस्परिक प्रश्नो पर विचार करती हैं जो उत्पादन, काय की दशाओ कल्याण काय प्रशिक्षण मजदूरी अनुशासन वतन सहित अवकाश, काय के घण्टे बोनस आदि उद्योग की लगभग सभी बातो से सम्ब धित होते है और इनका सम्ब ध श्रमिको के दैनिक जीवन से भी होता है। यदि इन समस्याओ का प्रारम्भिक अवस्था म सफलतापूवक उपचार नही किया जाता तो यह विषय गम्भीर विवाद उत्पन्न कर सकते है। मालिक मजदूर समितिया अलग अलग सस्थाओ म इस प्रकार के प्रश्नो पर विचार विमश करन म सहायक होती है। औद्योगिक शाति की नीव प्रत्येक स्थान म डाली जानी चाहिए और यह नीव इस प्रकार पड सकती है कि दिन प्रति दिन की समस्याओ पर अलग अलग सस्थानो म सावधानी स विचार किया जावे। इस प्रकार औद्योगिक विवादो को रोकने मे मालिक मजदूर समितियो का बहुत महत्व है। प्रारम्भिक अवस्था मे दोनो पक्षो मे समझौता करा दना जबकि किसी ने भी इसको अपने सम्मान का प्रश्न नही बनाया होता अपेक्षाकृत सरल होता है क्योकि तत्पश्चात सम्ब धित पक्ष अपनी ही बात पर अड जाते हैं और विवाद बढ जाता है। इस दृष्टिकोण से भी औद्योगिक विवादो को रोकने म मालिक मजदूर समितियो की अधिक उपयोगिता है। इन समितियो से श्रमिको को इस बात की भी शिक्षा मिल सकती है कि व अपन उत्तरदायित्वो को ठीक ठीक समझ सक। इस प्रकार मालिक मजदूर समितिया औद्योगिक विवादो को रोकने तथा बातचीत द्वारा उन्हे सुलझाने दोनो ही दृष्टियो से महत्वपूण हैं।

मालिक मजदूर समितियो के कार्यो मे बाधायें

रायल श्रम आयोग ने इस प्रकार की मालिक मजदूर समितियो की स्थापना करने की सिफारिश की थी और कुछ समितिया बनी भी। परतु अहमदाबाद को छोडकर जहा गाधी जी के प्रभाव के कारण ये समितिया सफल हो सकीं, अन्य स्थानो म यह सतोषजनक प्रगति नही कर सकी। उनक निर्माण एव काय विधि मे अनेक कठिनाइया का अनुभव किया गया जो कठिनाइया आज तक भी पाई जाती है। मालिक ऐसी समितियो को श्रमिक सघो का प्रतिस्थापन (Substitute) समझते

है, जबकि श्रमिक संघ के नेता इन्हे अपना प्रतिद्वन्द्वी (Rival) समझते है और उनके विचार से इन्हें कोई भी प्रोत्साहन नही देना चाहिए। अतः दोनों ही पक्षो मे गलतफहमी है। इस कारण यह आवश्यक हो जाता है कि पिछली त्रुटियों को दूर किया जाय व मालिक-मजदूर समितियों की उचित रूप से स्थापना की जाय। अन्य देशों में इस प्रकार की समितियाँ अत्यन्त सफल हुई है। परन्तु भारत मे अब तक इनकी प्रगति बहुत धीमी रही है। भारत मे श्रमिको की दोषपूर्ण शिक्षा ऐसी समितियों की स्थापना मे एक बड़ी बाधा है। पश्चिमी देशों मे ऐसी स्थिति नही है। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि जहाँ श्रमिक संघ हों वहां मालिक इन समितियो की स्थापना व कार्य-सचालन मे इन सघों से सहयोग लें और समितियों को श्रमिक सघो की प्रति-स्थापना न माने। कभी-कभी मालिक ऐसी समितियो में पोषित संघ (Yellow Union) के प्रतिनिधियों को भी सम्मिलित कर लेते है जो कार्य अवाछनीय है। श्रमिको के प्रतिनिधियों को पृथक्-पृथक् व सयुक्त रूप से सभा करने की भी सुविधा होनी चाहिए और प्रबन्धको को मालिक-मजदूर समितियों के विचार से सहानुभूति रखनी चाहिए। श्रमिको को भी सहयोग देना चाहिए और श्रमिक सघों को इन समितियो को अपना प्रतिद्वन्द्वी नही समझना चाहिए।

भारत में मालिक-मजदूर समितियाँ

भारत मे ऐसी समितियो के सम्बन्ध मे कुछ जानकारी प्राप्त करना यहाँ उचित ही होगा। १६२० मे भारत सरकार ने अपने छापाखानों मे सयुक्त समितियो (Joint Committees) की स्थापना की थी। टाटा आयरन वर्क्स, जमशेदपुर तथा कुछ रेलवे मे भी ऐसी समितियो की स्थापना की गई। १६२१ की बगाल की औद्योगिक विवाद समिति ने इस विचार का समर्थन किया। १६२२ मे मद्रास की बकिंघम और कर्नाटक मिल्स मे श्रमिक कल्याण समिति के नाम से एक समिति की स्थापना की गई। इसने मालिको व श्रमिको के मध्य अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने मे उपयोगी कार्य किया। कुछ राज्यो, निजी उद्योगों एव रेलवे में भी इस प्रकार की समितियों को स्थापना की गई। परन्तु सब बातो को देखते हुए इनकी प्रगति विशेष उत्साहवर्धक नही हुई। रॉयल श्रम आयोग ने ऐसी समितियों को बड़ी आशापूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा था, "हमारा विश्वास है कि यदि उनको उचित उत्साह प्रदान किया जाता है और भूतकाल की त्रुटियों को दूर कर दिया जाता है तब मालिक-मजदूर समितिया भारतीय औद्योगिक प्रणाली मे एक बहुत उपयोगी कार्य कर सकती है।" परन्तु यह १७ वर्ष पश्चात् हुआ कि सरकार ने इन समितियो की स्थापना की ओर कदम उठाया। १६४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम मे इस बात की व्यवस्था की गई कि मालिक-मजदूर समितियाँ बनाई जायें जिनमे श्रमिको एव मालिको के प्रतिनिधि हो। इस अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारो को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि उन सभी औद्योगिक सस्थानो मे जिनमे सौ या अधिक श्रमिक काम करते है मालिक-मजदूर समितियाँ स्थापित करें जिनका उद्देश्य मालिको व

श्रमिकों के बीच दिन प्रतिदिन के संघर्षों के कारणों को दूर करना तथा उनके बीच मधुर सम्बन्ध बनाए रखना है। मालिक मजदूर समितियों में मालिक व श्रमिकों को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है और श्रमिकों के प्रतिनिधियों का चुनाव श्रमिक संघों के परामर्श से करने का सुझाव है। अधिनियम में मालिक मजदूर समितियों के कार्यों का उल्लेख भी किया गया है। उनका कार्य मालिकों व श्रमिकों के बीच मधुर सम्बन्ध बनाए रखना है और इस ध्येय की प्राप्ति के लिए पारस्परिक मतभेदों को दूर करना एवं पारस्परिक हित के प्रश्नों पर विचार करना है।

अधिनियम में मालिक मजदूर समितियों के उद्देश्यों पर भी जोर दिया गया है। इनका मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह मालिकों व श्रमिकों के मध्य पारस्परिक परामर्श का एक मान्यता प्राप्त साधन बन सकें और श्रमिकों में अपने कार्य के प्रति अधिक रुचि एवं उत्तरदायित्व की भावना पैदा कर सकें तथा जो भी निर्णय सामूहिक समझौते, सरकार, श्रम न्यायालय या औद्योगिक न्यायालय के निर्णयों को लागू करें या उनके द्वारा कोई नियम बनाए गए हों उनको लागू करें, तथा मालिक व मजदूरों के बीच हुए किसी भी गलतफहमी या तनाव को दूर करें। मालिकों के प्रतिनिधि प्रबन्धकों के द्वारा मनोनीत होंगे। श्रमिकों के प्रतिनिधि ऐसे पंजीकृत श्रमिक संघों के द्वारा मनोनीत होंगे जो किसी मान्यता प्राप्त (Recognised) श्रमिक संघ से सम्बद्ध (Affiliated) हों। जहां कहीं ऐसे सम्बद्ध श्रमिक संघ न हों वहां पर श्रमिकों के प्रतिनिधियों का चुनाव उनके सदस्यों में से ही किया जायगा और उनके चुनाव की विधि अधिनियम में दी गई है। मालिक मजदूर समितियों के संविधान, कार्य की शर्तें, कार्य का ढंग आदि का भी उल्लेख उसमें किया गया है। उत्तर प्रदेश में मालिकों व श्रमिकों के प्रतिनिधियों की संख्या चौदह से अधिक नहीं हो सकती थी। परन्तु औद्योगिक विवाद केन्द्रीय नियम १९५७ की धारा ३९ के अनुसार यह संख्या २० रखी गई है। श्रमिकों के प्रतिनिधियों की संख्या मालिकों के प्रतिनिधियों की संख्या से कम नहीं हो सकती अर्थात मालिकों के प्रतिनिधियों की संख्या कभी कम भी हो सकती है।

उत्तर प्रदेश की सरकार ने १९४८ में इस सम्बन्ध में एक आदेश जारी कर एक अग्रणी कदम उठाया। सर्वप्रथम चीनी के कारखानों में तत्पश्चात अन्य कारखानों में एक महीने के अन्दर मालिक मजदूर समितियों की स्थापना करने का आदेश दिया। आदेश में उत्तर प्रदेश सरकार ने कहा कि ऐसे तमाम संस्थानों में जहां २०० अथवा अधिक कर्मचारी काम करते हैं ऐसी समितियां बनाई जायं। २०० की यह अधिक संख्या इसलिए रखी गई थी कि सरकार चाहती थी कि प्रारम्भ में मालिक मजदूर समितियां केवल बड़ी फैक्टरियों में ही स्थापित की जायें। मालिक-मजदूर समितियों की स्थापना करने का उत्तरदायित्व मालिकों पर सौंपा गया। १९४९ में उत्तर प्रदेश में मालिक मजदूर समितियों की संख्या १६१ थी परन्तु उनको १ नवम्बर १९५० से समाप्त कर दिया गया। इसका कारण श्रमिक संघों के मध्य पारस्परिक

स्पर्धा थी, जिसके परिणामस्वरूप मालिको के लिए श्रमिकों को प्रतिनिधित्व देना कठिन हो गया है और इस प्रकार समितियो का कार्य करना भी कठिन हो गया।

उत्तर प्रदेश सरकार ने पुन. १९५८ मे इस बात के लिए आदेश दिए कि उन सभी राज्य सचालित उद्योगों मे जिनमे १०० अथवा अधिक कर्मचारी कार्य करते है तथा उत्तर प्रदेश सहकारी बैंक, सहकारी सगम तथा दुग्ध वितरण यूनियन मे मालिक-मजदूर परिषदें (Works Councils) बनाई जाए। इसके साथ-साथ राज्य स्तर पर एक स्थायी सुलह बोर्ड (Conciliation Board) बनाने की भी व्यवस्था की गई है। इन परिषदो का कार्य एव विधान मालिक-मजदूर समितियो जैसा ही है। यह श्रम-कल्याण सलाहकार समिति के रूप मे भी कार्य करेगी। यदि यह किसी भी विवाद मे उचित समझौता करने में असमर्थ रहती है तब विवाद स्थायी सुलह बोर्ड को विचारार्थ सौप दिया जायेगा। सन् १९६४ मे सरकारी उद्यमो मे मालिक-मजदूर परिषदों की सख्या ३३ थी तथा ऐसे सरकारी उद्यमो की सख्या ७३ थी जिनमे ऐसी परिषदों की स्थापना होनी थी।

अन्य राज्यो तथा केन्द्र मे, मालिक-मजदूर समितियाँ स्थापित कर दी गई है और उन्होने अच्छा कार्य भी किया है। सन् १९४६ के बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम के अन्तर्गत, सयुक्त समितियाँ (Joint Committees) स्थापित की गई है। इनकी स्थापना का उद्देश्य यह था कि मालिकों व मजदूरो के बीच बातचीत का एक नियमित क्रम बना रहे और दिन प्रतिदिन उत्पन्न होने वाली कठिनाइयो पर शीघ्रता से विचार करके उनका समाधान खोजा जा सके। इसके अतिरिक्त, अनेक ऐच्छिक द्विदलीय समितियाँ भी बनी, जैसे उत्पादन समितियाँ तथा दुर्घटना-रोक समितियाँ। उत्पादन समितियो की स्थापना इसलिये की गई थी ताकि उत्पादन एव कार्यक्षमता मे वृद्धि की जा सके और विवेकीकरण की समस्या पर विचार किया जा सके। सन् १९६२ मे सकटकालीन स्थिति की घोषणा होने के पश्चात्, अनेक उद्यमो मे सकटकालीन उत्पादन समितियो की स्थापना की गई जिससे कि उत्पादन के क्षेत्र मे ऊँचे लक्ष्य प्राप्त किये जा सके। सन् १९६५-६६ के अन्त मे, ऐसी २१०० समितियाँ कार्य कर रही थी। सन् १९६५ मे ऐसी ३१३३ मालिक-मजदूर समितियाँ कार्य कर रही थी जिनके अन्तर्गत १५,७१,५४६ श्रमिक थे तथा १८,६६,६३४ श्रमिकों वाली ऐसी ५०८६ समितियों का निर्माण किया जाना था।

विभिन्न राज्यों मे मालिक-मजदूर समितियों की सख्या इस प्रकार थी :— आंध्र—१३१, असम—प्राप्य नही, बिहार—१४२, गुजरात ६०, केरल—७५; मध्य प्रदेश—१०; मद्रास—४३३, महाराष्ट्र—२१०, मैसूर—अप्राप्य, उडीसा—२३; पजाब—१६३; राजस्थान—प्राप्य नही, पश्चिमी बगाल—८०३; अण्डमान व निकोबार द्वीप—१३; देहली—७६, त्रिपुरा—२५, हिमाचल प्रदेश—अप्राप्य, पाण्डेचेरी—४; केन्द्रीय क्षेत्र—६६२, कुल योग ३,४३३। १९६४ मे उत्पादन समितियो की सख्या इस प्रकार थी—आंध्र—६; जम्मू कश्मीर—१६, मध्यप्रदेश—५४ मद्रास—८७; महाराष्ट्र—२३; मैसूर—६५; उडीसा—२२; अण्डमान व निकोबार

द्वीप—२; राजस्थान—५०; उ० प्र० १४४, प० बगाल—५६; दिल्ली—३३; हिमाचल प्रदेश—५, योग—५८६। सयुक्त समितियो की सख्या इस प्रकार थी—उ० प्रदेश—३, मध्य प्रदेश—६, महाराष्ट्र—७०, उडीसा—१, पश्चिमी बगाल-१३, देहली- १, योग—६७।

सरकारी क्षेत्र मे मालिक मजदूर समितियो के कार्यों का केन्द्रीय मुख्य श्रम आयुक्त द्वारा १९५८-५९ मे एक आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया था। बम्बई मे के० सी० कार्पोरेशन द्वारा भी उसी वर्ष इन समितियो का सर्वेक्षण किया गया। इन सर्वेक्षणो से जो मालिक मजदूर समितियो के कार्यों की कठिनाइयाँ ज्ञात हुई उन पर जुलाई १९५९ म भारतीय श्रम सम्मेलन के १७ वे अधिवेशन मे विचार हुआ। इस सम्मेलन ने इस सम्बन्ध म एक त्रिदलीय समिति की स्थापना की। इस समिति ने ३० नवम्बर १९५९ को मालिक मजदूर समितियो के बनाने के लिए तथा उनके कार्यों के लिए कुछ 'सूचक नियम' (Guiding Principles) बनाए और इन समितियो को जो कार्य करने चाहिये और जो नही करने चाहियें उनकी भी एक सूची बना दी है। अप्रैल १९६१ म स्थाई श्रम समिति ने इन नियमो पर विचार विमर्श किया और उनके आधार पर औद्योगिक विवाद नियमो मे सशोधन किया गया है। मालिक-मजदूर समितिया उन मामलो पर विचार करती है जो कि मजदूरो के कार्य करने की दशाओ को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते है, जैसे दुर्घटनाओ की रोकथाम तथा सुरक्षा, सामान्य सुविधाओ की व्यवस्था, शिक्षा तथा मनोरजन की क्रियाएँ, कल्याण तथा दण्ड निधियो का प्रशासन। कुछ ऐसे मामले, जो कि श्रमिक सघो के कर्त्तव्यो एवं उत्तरदायित्वो म आते है, जैसे कि मजदूरियाँ, प्रेरणा की योजनाएँ कार्य-भार का निर्धारण आदि, साधारणत मालिक-मजदूर समितियो के कार्य क्षेत्र से बाहर रखे गये है।

चौथी योजना की रूपरेखा म कहा गया है कि श्रमिको को आये दिन जिन कठिनाइयो का सामना करना पडता है तथा जो कष्ट उठाने होते है, उनका सबसे अच्छा समाधान प्रारम्भ म ही मालिक-मजदूर-समितियो द्वारा किया जा सकता है। परन्तु ऐसी समितियाँ बहुत थोडी ही प्रगति कर सकी है और श्रमिको के कल्याण तथा उनकी कार्य-क्षमता को बढाने मे उन्होने यथेष्ठ रूप म उल्लेखनीय योगदान नही किया है। योजना म आशा प्रकट की गई है कि प्रत्येक उद्योग के अन्तर्गत प्रबन्धको और मजदूरो के नेता यथाशक्ति इस बात का प्रयत्न करेंगे कि सभी समर्थ इकाइयो म मालिक मजदूर समितियो की स्थापना की जाए।

यह भी उल्लेखनीय है कि रेलो म तथा केन्द्रीय सरकार के विभिन्न मन्त्रालयो मे सयुक्त रूप से परामर्श करने की व्यवस्था इस उद्देश्य से कर दी गई है कि कर्मचारियो और सम्बन्धित अधिकारियो के मतभेदो को आपस मे दूर किया जा सके। सन् १९६३-६४ के अन्त मे, रेलो म ४६० सयुक्त समितियाँ कार्य कर रही थी।

औद्योगिक विवाद और श्रमिको की आर्थिक स्थिति —

मालिको और श्रमिको मे निकट और पारस्परिक सम्बन्ध बनाये रखने तथा

श्रमिक संघों एवं मालिक मजदूर समितियों को मजबूत बनाने के अतिरिक्त औद्योगिक विवादों की रोकथाम करने का एक और उपाय उन कारणों को ही दूर करना है जो विवादों को जन्म देते हैं। इससे अच्छा और कोई तरीका नहीं हो सकता क्योंकि इससे अशांति की समस्या को समूल नष्ट किया जा सकेगा। श्रमिक अपनी कुछ आवश्यक मांगों की पूर्ति हेतु हड़ताल का सहारा लेते हैं। समय-समय पर होने वाली हड़तालों में श्रमिकों में व्याप्त असन्तोष की अभिव्यक्ति मिलती है। हमने औद्योगिक विवादों के कारणों के विवेचन में इस बात की ओर संकेत किया है कि विवादों का एक प्रमुख कारण मजदूरी के प्रश्न से सम्बन्धित है। भारतीय श्रमिक की मजदूरी बहुत कम है और यह आश्चर्य होता है कि किस प्रकार से यह निर्धन व्यक्ति इस तुच्छ सी राशि में निर्वाह कर पाता है। मालिक अपने लाभ में से श्रमिकों को हिस्सा देने में आनाकानी करते हैं और बोनस देने के प्रश्न पर कई बार झगड़े हुये हैं। अतः इस कारण को दूर करने के लिये श्रमिकों की मजदूरी में वृद्धि की जानी चाहिये। एक न्यूनतम मजदूरी निश्चित होनी चाहिये और लाभ सहभाजन जैसी कुछ योजनायें भी प्रारम्भ करनी चाहियें। इसके अतिरिक्त नौकरी और रोजगार की अवस्थाओं में सुधार करके श्रमिकों में एक प्रकार की सुरक्षा की भावना भी पैदा करनी चाहिये। कार्य की अवस्थाओं में सुधार, कार्य के घण्टों में कमी आदि की भी आवश्यकता है। बेकारी, बीमारी, वृद्धावस्था, दुर्घटनायें एवं जीवन की अन्य विपदाओं से भी सुरक्षा प्रदान करने के लिये सामाजिक बीमा जैसी योजनाओं की तीव्र आवश्यकता है। श्रमिकों के लिये कल्याणकारी कार्यों की व्यवस्था, उनके बच्चों के लिये शिक्षा और आवास की अवस्था में सुधार करने की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिये। जब तक यह सुधार नहीं किये जाते और श्रमिक यह अनुभव नहीं करते कि वह उत्पादन के केवल-मात्र साधन न होकर मानव प्राणी भी है, औद्योगिक संघर्षों को दूर नहीं किया जा सकता।

परन्तु यह एक घोर विवाद का विषय है कि वर्तमान अर्थव्यवस्था में इस प्रकार के सुधार सम्भव हैं अथवा नहीं। समाजवादियों व साम्यवादियों का विश्वास है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में पूंजी और श्रम के बीच का संघर्ष दूर नहीं किया जा सकता। इसका केवल-मात्र हल समाज के ढांचे को पूर्णतया बदल देने और श्रमिकों को स्वयं ही उद्योग-धन्धों का संचालन करने का अधिकार देने से हो सकता है। परन्तु दूसरी ओर कुछ व्यक्तियों का यह विश्वास है कि वर्तमान अर्थव्यवस्था में भी एक जागरूक सरकार मालिकों के सहयोग से उचित नियम व उद्योग-धन्धों पर नियन्त्रण करके सुधार कर सकती है। इन प्रश्नों पर काफी मतभेद है और यह कहना कठिन है कि कौन-सा विचार ठीक है। रूस में भी औद्योगिक विवादों की सम्भावनायें है और विवाद होने पर उनके निपटारे के हेतु एक निश्चित व्यवस्था भी की गई है। ब्रिटेन और अमेरिका के उदाहरण यह बताते हैं कि श्रमिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में भी अपनी दशायें सुधार सकते हैं। यहां हमारा मुख्य विषय भारत में वर्तमान अवस्थाओं को ध्यान में रखकर उनके हल के लिए

व्यावहारिक उपचारो पर विचार करना है। भारत में साम्यवाद का सरलता से स्थापित होना कठिन प्रतीत होता है और न ही यह सम्भव मालूम देता है कि श्रमिको का उद्योगों पर नियन्त्रण हो जायेगा। श्रमिको के पास न तो इतना धन ही है न इतनी योग्यता कि वह विशाल पैमाने के उद्योगो को सगठित कर सके। अत पूँजी और श्रम भिन्न-भिन्न हाथो मे ही रहेंगे और हमे वर्तमान अवस्था मे ही सुधार की सम्भावनाओ को खोजना पडेगा। दोनों पक्षो को पारस्परिक रूप से एक दूसरे मे विश्वास रखना चाहिए और समस्या के समाधान की ओर व्यक्तिगत दृष्टिकोण से ही नही वरन् राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भी ध्यान देना चाहिए। यदि पारस्परिक सहयोग की भावना हो और श्रमिको की दशाओ मे सुधार हो तो कोई कारण नही है कि औद्योगिक विवादो को यदि पूर्णतया समाप्त न भी किया जा सके तो कम से कम उनमे पर्याप्त कमी क्यो न की जा सके।

स्थायी आदेश (Standing Orders) —

मालिक मजदूर समितियो के अतिरिक्त औद्योगिक शान्ति स्थापित करने की दृष्टि से दूसरा रचनात्मक (Constructive) पग सरकार द्वारा रोजगार की शर्तों और नियमो को निश्चित करना है। कभी-कभी ये छोटे छोटे विषय उग्र रूप धारण कर लेते है और श्रमिको मे असन्तोष व्याप्त हो जाता है। दिन-प्रतिदिन के कार्यों मे मालिको व श्रमजीवियो के सम्बन्धो को मालिको की इच्छा पर ही नही छोडा जा सकता क्योकि ऐसा करने से ही औद्योगिक अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। प्रत्येक औद्योगिक श्रमिक को इस बात का अधिकार है कि वह रोजगार की उन शर्तों और दशाओ को जान सके जिनके अन्तर्गत उसे नौकरी पर रखा गया है और अनुशासन के वह नियम भी उसे मालूम हो, जिनका उससे पालन करने की आशा की जाती है। स्थायी आदेश रोजगार और काम की शर्तों को निर्धारित करते हैं। ग्रेट ब्रिटेन मे ऐसी शर्तें सयुक्त ऐच्छिक समझौतो द्वारा निश्चित होती है, जिनको कानून की भाँति ही महत्व प्रदान किया जाता है। उद्योग-धन्धे इन समझौतो का उल्लघन नही कर सकते। भारत मे भी कुछ सीमा तक बडे बडे उद्योगो मे, विशेषतया उनमे जिनमे विदेशी पूँजी लगी हुई थी, कुछ अपने स्थायी आदेश बना लिये गये थे, जो मालिको व श्रमिको के पारस्परिक सम्बन्धो को निश्चित करने के लिये थे। उत्तरी भारत की मालिक परिषद् (Employers' Association of Northern India) जैसे कुछ मालिको के सघो ने भी अपने स्थायी आदेश बना लिये थे जो कि परिषद के सभी सदस्यो पर लागू होते थे। परन्तु और कही इस प्रकार का आयोजन नही था यदि कही था भी तो वह एकपक्षीय था तथा ऐसे स्थायी आदेश श्रमिको की अपेक्षा मालिको के हितो को अधिक ध्यान में रखकर बनाये गये थे। उनको कोई वैधानिक मान्यता भी प्राप्त नही थी। ये आदेश समान भी नही थे, क्योकि प्रत्येक कारखाने ने अपने-अपने भिन्न स्थायी आदेश बना लिये थे।

भारत के उद्योग-धन्धो मे मालिको और श्रमिको के बीच प्राय सघर्ष होने

का एक मुख्य कारण यह भी रहा है कि ऐसे कोई स्थायी आदेश नहीं थे जो मालिकों और त्रिदलीय श्रमिकों के अधिकारों और उत्तरदायित्वों की ठीक-ठीक व्याख्या कर सके। भर्ती, बर्खास्तगी, छुट्टियाँ, अनुशासनात्मक कार्यवाही, अवकाश आदि ही ऐसी बातें है जिन पर मतभेद हो सकता है। अनेक त्रिदलीय श्रम-सम्मेलनों ने इस बात पर कई बार जोर दिया कि स्थायी आदेशों के लिये एक अलग से केन्द्रीय कानून बनाया जाय। परिणामस्वरूप औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम [Industrial Employment (Standing Orders) Act] १९४६ में पारित किया गया, परन्तु प्रथम वैधानिक अधिनियम, जिसमें स्थायी आदेशों के भी उपबन्ध आ गए थे, बम्बई का १९३८ का औद्योगिक विवाद अधिनियम था, जिसके अन्तर्गत आने वाले सभी मालिकों को निर्धारित फार्म पर दो माह के अन्दर अनेक औद्योगिक विषयों से सम्बन्धित स्थायी आदेशों को श्रम कमिश्नर के सम्मुख प्रस्तुत करने का आदेश था।

१९४६ का औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम जम्मू-कश्मीर राज्य को छोडकर समस्त भारत में लागू होता है। अधिनियम के अन्तर्गत उन सभी औद्योगिक संस्थाओं में, जिनमें १०० या उससे अधिक कर्मचारी काम करते है, स्थायी आदेश निश्चित करने की व्यवस्था है। इसके अन्तर्गत इस बात का उल्लेख है कि अधिनियम के कार्यशील होने के ६ माह के अन्दर-अन्दर मालिकों को प्रमाण अधिकारी (Certifying Officer) के सम्मुख ऐसे स्थायी आदेश प्रस्तुत करने होंगे जिनमें निम्नलिखित बातें होंगी—श्रमिकों का वर्गीकरण, उनको कार्य के घण्टे बताने की विधि, छुट्टियाँ, मजदूरी बाटने का दिन, मजदूरी की दर, अवकाश के लिये प्रार्थना-पत्र की विधि, नौकरी की समाप्ति व बर्खास्तगी, अनुशासनात्मक कार्यवाही, आदि-आदि। अधिनियम के अन्तर्गत किसी भी औद्योगिक संस्थान में स्थायी आदेशों को प्रमाणित कराने से पूर्व श्रमिकों से परामर्श करने की भी व्यवस्था की गई है। प्रमाण अधिकारी श्रमिकों और मालिकों की आपत्तियों को ध्यान में रखते हुये स्थायी आदेशों को प्रमाणित करता है। प्रमाण-अधिकारी के निर्णय के विरुद्ध औद्योगिक न्यायालय में अपील की जा सकती है। मालिकों को स्थायी आदेशों का मसौदा प्रस्तुत न करने पर दण्ड दिया जाता है जो जुर्माने के रूप में होता है। प्रमाण अधिकारियों का कार्य श्रम कमिश्नर करते है और जहाँ यह नहीं होते वहाँ अन्य किसी अधिकारी को यह कार्य सौंप दिया जाता है। अधिनियम को ऐसे समाचार-पत्र संस्थानों में भी लागू कर दिया गया है जहाँ २० या अधिक श्रमजीवी पत्रकार कार्य करते हैं। इस अधिनियम का प्रशासन केन्द्रीय सरकारें तथा राज्य सरकारें दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में करती है।

यह अधिनियम एक अनुमति प्रदान करने वाला कानून था और इसके अन्तर्गत राज्य सरकारों को यह अधिकार दे दिया गया था कि वह इसे लागू करने के विषय में कदम उठायें। इस अधिनियम के अन्तर्गत औद्योगिक रोजगार

(स्थायी आदेश) नियम कई राज्यों में बन गये हैं, जैसे—असम (अप्रैल १९४७), बंगाल (अक्तूबर १९४६), बिहार (नवम्बर १९४७), बम्बई (नवम्बर १९४८), मध्य प्रदेश (नवम्बर १९४७), मद्रास (नवम्बर १९४७), उड़ीसा (जुलाई १९४७), पंजाब (अप्रैल १९४९) तथा उत्तर प्रदेश (दिसम्बर १९४६)। उत्तर प्रदेश की चीनी मिलों के सम्बन्ध में स्थायी आदेश १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारित होते हैं। कई राज्यों ने अपने क्षेत्र में अधिनियम को लागू करने के लिये इसमें संशोधन किये हैं। उत्तर प्रदेश सरकार ने इस अधिनियम को उत्तरी भारत की मालिक परिषद् तथा उत्तर प्रदेश तेल मिल मालिक परिषद् के सभी सदस्यों (मिलों), बिजली पूर्ति उद्योग, जल-कल उद्योग, तेल निकालने का उद्योग तथा कांच उद्योगों में भी लागू किया है। उत्तर प्रदेश सरकार ने आदेशों की सूची में कुछ और बात भी बढ़ा दी है। उदाहरणतः नौकरी प्रमाण-पत्रों का देना, मजदूरी की परची देना, कल्याणकारी योजनाओं को प्रारम्भ करना, प्रॉविडेन्ट फण्ड आदि। इसके अतिरिक्त यदि मालिक स्वयं ही प्रमाण-पत्र के लिए प्रार्थना कर तो यह अधिनियम ऐसे संस्थानों में भी लागू किया जा सकता है जिनमें १०० से कम कर्मचारी काम करते हों। गुजरात, महाराष्ट्र तथा पश्चिमी बंगाल में अधिनियम उन संस्थानों में लागू होता है जिनमें ५० या अधिक श्रमिक कार्य करते हैं तथा असम में उन पर लागू होता है जिनमें १० या अधिक श्रमिक कार्य करते हैं (परन्तु खानें, तेल-क्षेत्र तथा रेलें इसके अन्तर्गत नहीं आतीं)। मद्रास में यह अधिनियम उन सभी फैक्ट्रियों पर जो फैक्ट्री अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड हैं लागू होता है।

ऐसे संस्थानों की संख्या जहाँ स्थायी आदेश बना दिये जाने चाहियें थे १९६५ में १२४७५ थी। १९६५ के अन्त में ऐसे संस्थानों की संख्या जिनमें प्रमाणिक स्थायी आदेश सभी श्रमिकों के लिए बन गये थे १०,९७६ थी जो इस प्रकार थी—आन्ध्र–३०५, असम–प्राप्य नहीं, बिहार–१९३, गुजरात–१, केरल–२३०, मध्य प्रदेश–प्राप्य नहीं, मद्रास–४,३३०, महाराष्ट्र–११९९, मैसूर–अप्राप्य, उड़ीसा–५९ पंजाब–२४२, राजस्थान–प्राप्य नहीं उत्तर प्रदेश–१,१२८, पश्चिमी बंगाल–१,४३७ देहली–६७, पाण्डेचेरी–१, त्रिपुरा–२०, अण्डमान व निकोबार द्वीप–१४, केन्द्रीय संस्थानों में–१,१७६।

स्थायी आदेश अधिनियम में संशोधन

यद्यपि अधिनियम के अन्तर्गत मालिकों को स्थायी आदेश बनाकर प्रमाण अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक है तथापि इसमें प्रमाण अधिकारियों अथवा अपील अधिकारियों को यह अधिकार प्रदान नहीं किया गया था कि वह स्थायी आदेशों की अच्छाई (fairness) और औचित्य (reasonableness) के बारे में कोई निर्णय दे सकें। मार्टिन एण्ड कम्पनी के एक मुकदमे में निर्णय देते हुए इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री के० एन० वान्चू ने अधिनियम

के क्षेत्र और सीमाओं का विस्तृत विवेचन किया था। उन्होंने अपने निर्णय में कहा कि अधिनियम का कोई ऐसा उद्देश्य नहीं था कि मालिकों द्वारा प्रस्तुत स्थायी आदेशों पर किसी भी व्यक्ति द्वारा टीका-टिप्पणी की जा सके और उनके उचित या न्यायपूर्ण होने का निर्णय दिया जा सके। राज्य सरकारों द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली अधिकतर रिपोर्टों में भी अधिनियम की इस कमी की ओर संकेत किया गया और कहा गया कि इस बात से श्रमिकों में काफी असन्तोष उत्पन्न हो गया था और उनमें यह भावना आ गई थी कि जब तक मालिकों द्वारा प्रस्तुत स्थायी आदेशों के मसौदे में परिवर्तन करने की व्यवस्था नहीं की जाती तब तक उन्हें अधिनियम से कोई लाभ न होगा।

अधिनियम का यह दोष अगस्त १९५६ में पारित औद्योगिक विवाद (संशोधन एवं विविध धारायें) अधिनियम द्वारा दूर कर दिया गया है। इसके अन्तर्गत १९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम में भी कुछ आवश्यक संशोधन किए गए हैं। इसमें प्रमाण अधिकारी व अपील अधिकारियों को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि वह स्थायी आदेशों को प्रमाण-पत्र देने से पूर्व उनके औचित्य तथा न्याययुक्त होने का भी विचार कर सकें। १९४६ के अधिनियम के अन्तर्गत स्थायी आदेशों में संशोधन करने की प्रार्थना केवल मालिकों द्वारा ही की जा सकती थी, परन्तु अब इस प्रकार का अधिकार श्रमिकों को भी प्रदान कर दिया गया है। अधिनियम में इस बात की भी व्यवस्था कर दी गई है कि यदि स्थायी आदेशों के प्रश्नों पर मालिक मजदूरों में कोई मतभेद हो तो उसको सुलझाया जा सके। अब सम्बन्धित पक्ष सरकार के हस्तक्षेप के बिना ही सीधे श्रम न्यायालय से निर्णय के लिए प्रार्थना कर सकते हैं।

१९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम में १९६१ और १९६३ में फिर संशोधन हुआ। संशोधित अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार मिल गया है कि वह अधिनियम को ऐसे औद्योगिक संस्थानों पर लागू कर सकती है जिनमें १०० से कम श्रमिक कार्य करते हों। सम्बन्धित सरकारें अब अतिरिक्त प्रमाण अधिकारी भी नियुक्त कर सकती हैं। अधिनियम के अन्तर्गत अपील करने का समय २१ दिन से बढ़ाकर ३० दिन कर दिया गया है। केन्द्रीय सरकार को इस अधिनियम के अन्तर्गत जो अधिकार हैं वे आवश्यकता पड़ने पर राज्य सरकारों को दिए जा सकते हैं। सम्बन्धित सरकारें किसी भी औद्योगिक संस्थान को अधिनियम के क्रियान्वयन से मुक्त कर सकती हैं। १९६३ में स्थायी आदेश अधिनियम में फिर संशोधन हुआ। इसकी मुख्य धारायें निम्नलिखित हैं:—(क) जब तक स्थायी आदेशों को प्रमाणित न कर दिया जाए तब तक अधिनियम के अन्तर्गत आने वाली सभी औद्योगिक संस्थानों पर सम्बन्धित सरकारों द्वारा बनाए गए आदर्श स्थायी आदेश लागू होंगे। (ख) अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित राज्य औद्योगिक न्यायालयों का क्षेत्र उन्हीं संस्थानों तक सीमित रहेगा जो राज्य के अन्तर्गत आते हैं। (ग) प्रमाण अधिकारियों तथा

अपील अधिकारियों को यह अधिकार दे दिया गया है कि स्थायी आदेशों में कोई भी लिपि की या हिसाब की त्रुटि हो उसको ठीक कर सकते हैं। (घ) राज्य सरकार अधिनियम के अन्तर्गत अपने किसी भी अधिकार को अपने अधिकारियों को दे सकती है।

सुझाव

इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस प्रकार के स्थायी आदेश देश में होने वाले औद्योगिक विवादों के एक प्रमुख कारण को दूर कर सकते हैं। परन्तु इस विषय में केवल अधिनियम ही काफी नहीं है वरन आवश्यकता इस बात की है कि इसको ठीक प्रकार से लागू किया जाए जिससे कि भारत में औद्योगिक संस्थानों से औद्योगिक विवादों का एक महत्वपूर्ण कारण समाप्त हो जाए। अब तक स्थायी आदेशों के प्रमाणीकरण की गति बहुत धीमी रही है। इसका कारण यह है कि मालिकों की ओर से पूर्ण सहयोग नहीं मिलता और वे आदेशों के दोषपूर्ण मसौदे प्रस्तुत कर देते हैं। इस सम्बन्ध में संशोधन की आवश्यकता है। सरकार तो इस विषय में अधिनियम बनाकर ही अपना कर्तव्य पूरा करती है। अब यह मालिकों और श्रमिकों विशेषकर मालिकों पर निर्भर है कि वह पारस्परिक विवादों और उद्योग सम्बन्धी विषयों का स्वयं ही निर्णय करें। स्थायी आदेश उद्योग उद्योग में और संस्थान संस्थान में भिन्न पाए जाते हैं। इनमें समानता की बहुत अधिक आवश्यकता है। इस विषय में यह सुझाव दिया जा सकता है कि श्रम सम्मेलन द्वारा कुछ आदर्श स्थायी आदेश बना देने चाहिए जो विभिन्न संस्थानों में अपनाए जा सकें। इस बात की भी आवश्यकता है कि स्थायी आदेशों को ऐसी भाषा में छाप कर जो श्रमिक समझते हों उनमें वितरण कर देना चाहिए और समय समय पर श्रमिकों में उनकी व्याख्या कर देनी चाहिए। श्रमिकों में आदेशों के सम्बन्धों में अज्ञानता पाई जाती है और इस कारण कई अनावश्यक विवाद उत्पन्न हो जाते हैं।

भारतवर्ष में औद्योगिक विवाद विधान
(Industrial Disputes Legislation in India)

इसमें कोई संदेह नहीं कि औद्योगिक विवादों की रोक थाम उनके सुलझान के उपायों की अपेक्षा सदैव ही उचित होती है। विवादों की रोक-थाम के उपायों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। परन्तु इसमें बुद्धिमानी नहीं है कि विवादों की रोक थाम पर ही निर्भर रहा जाय और उनके निपटारे के प्रश्न की उपेक्षा कर दी जाय। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है कि जब तक श्रम और पूंजी पृथक्-पृथक् हाथों में रहेंगे तब तक इन विवादों के पूर्णतया समाप्त हो जाने की कोई संभावना नहीं है। इसके अतिरिक्त भारत में राज्य को औद्योगिक शान्ति बनाने के लिये तथा सामाजिक न्याय स्थापित करने के लिए और अधिक कार्य करने पड़ेंगे क्योंकि सरकारी क्षेत्र में धीरे-धीरे वृद्धि होती जा रही है और श्रमिकों के संगठन अभी तक शक्तिशाली नहीं हो पाए हैं और उनकी सौदाकारी की शक्ति

भी कमजोर है। राज्य पर इस बात का भी उत्तरदायित्व है कि वे ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करे जिनमें विभिन्न पक्ष आपस में मिल-जुल कर सहयोग और सहृदयता की भावना से विचार-विमर्श कर सकें और अपने मतभेदों का निपटारा कर लें। सरकार द्वारा औद्योगिक शान्ति के लिए जो व्यवस्था की जाती है उसको दो शीर्षकों मे बाटा जा सकता है –(१) परामर्श करने की व्यवस्था (Consultative Machinery) (२) सुलह और विवाचन व्यवस्था (Conciliation and Arbitration Machinery)। परामर्श करने की जो व्यवस्था है उससे औद्योगिक विवादों का निपटारा भी होता है और उनकी रोक-थाम भी की जा सकती है। ऐसी व्यवस्था प्रत्येक स्तर पर होती है, जैसे—संस्था, उद्योग, राज्य और राष्ट्र। संस्था के स्तर पर तो मालिक मजदूर और संयुक्त समितियाँ है जिनका उल्लेख किया जा चुका है। उद्योग के स्तर पर मजदूरी बोर्ड (Wage Boards) तथा औद्योगिक समितियाँ है। राज्य स्तर पर श्रम सलाहकार बोर्ड है तथा राष्ट्र स्तर पर भारतीय श्रम सम्मेलन तथा स्थायी श्रम समितियाँ आदि है। इन सबका वर्णन आगे किया जायेगा। औद्योगिक विवाद विधान का पहले उल्लेख करना उचित होगा। इस विधान द्वारा विवादों के निपटारे के लिए सुलह और विवाचन की व्यवस्था की गई है।

भारतवर्ष में औद्योगिक विवादो के विधान का इतिहास बहुत पुराना नही है। सभवतः इसका कारण यह है कि भारत के आर्थिक जीवन मे १९१४–१८ के महायुद्ध से पूर्व विशाल स्तर की हडतालें सामान्य नही थी। इससे पूर्व विवादो के निपटारे के लिए केवल *१८६० का मालिक एव श्रमिक (विवाद) अधिनियम* था जिसके अन्तर्गत यह व्यवस्था थी कि कुछ विशेष श्रमिकों की मजदूरी से सम्बन्धित यदि कोई विवाद हो तो इसको शीघ्रातिशीघ्र सुलझाया जा सके। यह अधिनियम केवल रेलवे, नहरें अथवा सार्वजनिक निर्माण कार्यो पर ही लागू होता था। इसमे इस बात की व्यवस्था थी कि न्यायाधीशो द्वारा विवादों का तत्काल ही फैसला हो जाए। यह अधिनियम केवल सीमित ही नही था परन्तु दुर्भाग्यवश इसके अन्दर कुछ अवाछनीय उपबन्ध भी थे। उदाहरणस्वरूप श्रमिको द्वारा सविदा भग करना एक फौजदारी अपमान माना गया था। रॉयल श्रम आयोग ने अपनी रिपोर्ट मे बताया था कि यह अधिनियम निष्क्रिय हो गया था और यह बात अच्छी ही थी कि यह क्रियाशील न हुआ। कमीशन ने इसको पूर्णतया समाप्त करने की सिफारिश की थी और इसको १९३२ मे निरसित (Repeal) कर दिया गया।

१९२० मे भारत सरकार ने इस प्रश्न पर विचार किया कि ब्रिटेन के १९१९ के औद्योगिक न्यायालय अधिनियम (Industrial Courts Act of 1919) के आधार पर भारत मे भी औद्योगिक विवादों के लिए कानून बनाया जाय। परन्तु यह घोर औद्योगिक अशान्ति का समय था और यह विचार हुआ कि इस

समय ब्रिटिश आधार पर बना हुआ कानून प्रभावशाली न हो सकेगा। इस प्रश्न पर १९२१ मे बंगाल और बम्बई की औद्योगिक विवाद समितियो ने भी विचार किया। बंगाल समिति ने एक समझौता-नामिका (Panel) बनाने की सिफारिश की थी और इसको बनाया भी गया परन्तु सभवत इसका कभी भी उपयोग नही किया गया। सन् १९२२-२३ मे उद्योगो मे कुछ शान्ति आ जाने के कारण कानून बनाने का प्रश्न खटाई मे पड गया। परन्तु १९२४ मे बम्बई मे सूती वस्त्र मिलो मे होने वाली एक गम्भीर हडताल के कारण बम्बई सरकार ने एक विधेयक तैयार किया। किन्तु इस विधेयक को प्रस्तुत नही किया गया, क्योकि उसी वर्ष भारत सरकार ने एक विधेयक लोकमत के लिए परिचालित किया। यह विधेयक सन् १९१९ के ब्रिटिश औद्योगिक न्यायालय अधिनियम पर काफी अश तक आधारित था। परन्तु यह भी १९२८ तक ससद मे प्रस्तुत नही किया जा सका। अन्तत १९२९ मे व्यवसाय विवाद अधिनियम पारित किया गया।

१९२९ का व्यवसाय विवाद अधिनियम (Trade Disputes Act of 1929)

यद्यपि सन् १९२९ का व्यवसाय विवाद अधिनियम मुख्यत ब्रिटिश औद्योगिक न्यायालय अधिनियम पर ही आधारित था तथापि इससे यह भिन्नता थी कि इसमे औद्योगिक न्यायालय की कोई व्यवस्था नही थी। अधिनियम के अन्तर्गत जाच न्यायालयो (Courts of Enquiry) या सुलह बोर्डो (Conciliation Boards) की स्थापना उपयुक्त केन्द्रीय प्रान्तीय या रेलवे प्राधिकारियो द्वारा की जा सकती थी तथा कोई भी विवाद इन सस्थाओ के सम्मुख समझौते के हेतु प्रस्तुत किया जा सकता था। जाच न्यायालय के सदस्य या तो एक स्वतन्त्र अध्यक्ष या कोई अन्य स्वतन्त्र व्यक्ति या केवल एक स्वतन्त्र व्यक्ति हो सकते थे। सुलह बोर्ड मे एक स्वतन्त्र अध्यक्ष तथा दो अथवा चार और सदस्य जो दोनो पक्षो का प्रतिनिधित्व करते हो अथवा उनके द्वारा मनोनीत किए जाते हो, बराबर की सख्या मे होते थे। सुलह बोर्ड मे केवल एक स्वतन्त्र व्यक्ति भी हो सकता था।

अधिनियम के अनुसार जाँच न्यायालय का यह कर्त्तव्य था कि वह इसके सम्मुख आने वाले मामलो की जाच पडताल कर इस पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करे। सुलह बोर्ड का कर्त्तव्य यह था कि वह विवाद की जाच पडताल कर आपस मे समझौता कराने का प्रयत्न करे तथा दोनो पक्षो को इस बात के लिए प्रेरित करे कि वह एक निश्चित समय मे आपस मे समझौता कर ले। समझौता कराने मे सफल होने की अवस्था मे बोर्ड को नियुक्ति-प्राधिकारी को अपनी जाच पडताल तथा सिफारिशो की विस्तृत रिपोर्ट देनी होती थी और उसके पश्चात रिपोर्ट प्रकाशित कर दी जाती थी।

अधिनियम के दूसरे भाग के उपबन्ध जन-उपयोगी सेवाओ मे हडतालो से सम्बन्धित थे, जैसे—रेलवे, डाक-तार व टेलीफोन सेवाएँ, विद्युत एव जलपूर्ति, स्वास्थ्य

व सफाई सेवाएँ आदि-आदि। ऐसी सेवाओं में हड़ताल एवं तालाबन्दी करने से पूर्व १४ दिन की सूचना देना आवश्यक था। इस धारा को न मानने वालों के लिए विशेष दण्ड की व्यवस्था की गई थी। इस अधिनियम में अवैध हड़तालों और तालाबंदी की परिभाषा में वह विवाद भी सम्मिलित कर लिए गए जिनका उद्देश्य औद्योगिक विवाद के अतिरिक्त कुछ और हो अथवा जिनसे सर्वसाधारण को कष्ट हो। इस अधिनियम के द्वारा सहानुभूति के लिए की गई हड़तालों (Sympathetic strikes) को भी अवैध घोषित कर दिया गया। १९२९ के इस अधिनियम मे इस बात की भी व्यवस्था थी कि श्रमिकों के हितों के लिये सरकारी श्रम अधिकारी (Labour Officers) नियुक्त किए जायें।

सन् १९२९ के अधिनियम के अन्दर कई दोष भी थे। उदाहरणतया इसमे औद्योगिक विवादों की रोकथाम के लिये किसी स्थायी प्रबन्ध की व्यवस्था नही थी। सहानुभूति में की गई हड़तालो को अवैध घोषित कर देने की भी आलोचना की गई। किसी भी बड़े विवाद को इस आधार पर अवैध घोषित किया जा सकता था कि उससे सर्वसाधारण को कष्ट पहुँच रहा है। जाँच न्यायालय तथा सुलह बोर्ड ऐसी स्थायी संस्थायें नही थी जो उद्योगों में होने वाले मामलों के निकट सम्पर्क मे रह सकें, और स्थिति पर अपना बुद्धिमत्तापूर्ण दृष्टिकोण अपना सके। रॉयल श्रम आयोग को यद्यपि अधिनियम की कार्यप्रणाली का अधिक अनुभव नही था तथापि आयोग ने इन दोषों की ओर सकेत किया और औद्योगिक विवादो का निपटारा करने के लिये एक स्थायी वैज्ञानिक व्यवस्था की आवश्यकता पर बल दिया। राज्य सरकारें द्वारा समझौता अधिकारियों की नियुक्ति की भी सिफारिश की जिनका कार्य विवाद की प्रारम्भिक अवस्था में ही सम्बन्धित पक्षो में समझौता कराना था।

१९३४ व १९३८ के अधिनियम

१९२९ के अधिनियम मे १९३२ में संशोधन हुआ जिसके अन्तर्गत सुलह बोर्ड व जाँच न्यायालय के सदस्यो को किसी भी गुप्त सूचना को प्रकट करने से मना कर दिया गया और यदि वह ऐसा करते थे तो उन पर सरकार की आज्ञा से मुकदमा चलाया जा सकता था। १९२९ का अधिनियम सर्वप्रथम केवल पाँच वर्ष के लिये पारित किया गया था किन्तु १९३४ मे एक संशोधन के द्वारा इसको स्थायी बना दिया गया और इसके उपबन्धो को और अधिक स्पष्ट कर दिया गया। बम्बई सरकार ने भी १९३४ में जाँच न्यायालय व सुलह बोर्ड की नियुक्ति से सम्बन्धित उपबन्धों को स्पष्ट करने के लिये एक अलग कानून बनाया।

भारत सरकार ने इस अधिनियम मे कुछ संशोधन करने के लिये एक विधेयक सन् १९३६ मे प्रस्तुत किया जोकि अन्ततः सन् १९३८ मे अधिनियम के रूप में पारित हुआ जैसा कि रॉयल श्रम आयोग ने सुझाव दिया था इस अधिनियम मे सुलह अधिकारियों (Conciliation Officers) की नियुक्ति की व्यवस्था

सदस्य होते थे। प्रान्तीय सरकार दो या उससे अधिक सदस्यों की औद्योगिक न्यायालय (Industrial Court) या औद्योगिक विवाचन न्यायालय भी बना सकती थी। इनके सदस्यों में से एक अध्यक्ष होता था जो किसी भी उद्योग से सम्बन्धित नही होता था। साधारणतया उच्च न्यायालय के न्यायाधीश ही इस पद पर नियुक्त किये जाते थे। औद्योगिक न्यायालय एक महत्वपूर्ण संस्था थी, जोकि संघों के पंजीकरण, विवाचन, स्थायी आदेश, हड़ताल की वैधता आदि से सम्बन्धित विषयों का निर्णय करती थी और किसी को भी गवाही देने तथा सम्बन्धित कागजात प्रस्तुत करने का आदेश दे सकती थी। अधिनियम की एक और विशेषता यह थी कि इसमें स्थायी आदेशों के विषय मे भी उपबन्ध थे, जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। इस अधिनियम की एक अन्य विशेषता थी कि इसमें अवैध हड़तालो तथा तालाबन्दी की परिभाषा की गई थी। यदि कोई हड़ताल स्थायी आदेशों में उल्लिखित मामलों पर की जाती है या जिस हड़ताल की उचित सूचना नही दी जाती वह हड़ताल अवैध थी। यदि मामला सुलह की स्थिति मे अथवा औद्योगिक न्यायालय के सम्मुख हो तो हड़ताल की घोषणा नही की जा सकती थी और इसी आधार पर तालेबन्दी करना भी अवैध था। मालिकों द्वारा श्रमिकों को सताने तथा स्वच्छन्द रूप से बर्खास्त कर देने के विरुद्ध भी उपबन्ध बनाये गये थे। अवैध हड़तालो तथा तालाबन्दी मे न केवल भाग लेने वालो वरन् ऐसे व्यक्तियों के लिये भी जो दूसरो को ऐसी हड़तालो में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित करते थे या उनके लिये चन्दा जमा करते थे, कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई थी। समझौता कार्यवाही के समय मे मालिक भी रोजगार की शर्तो मे कोई परिवर्तन नही कर सकते थे जब तक कि ऐसा परिवर्तन पहले से अच्छी व्यवस्था न करता हो।

१९३८ का बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम आगे के विधान के लिये अग्रणी था और इस विषय पर पूर्व के अधिनियमो से पूर्णतया विभिन्न था। यह हड़तालो को कम करने मे काफी सफल हुआ और इसने सुलह तथा विवाचन के द्वारा औद्योगिक झगड़ों का निपटारा करने के लिये व्यापक साधनो की व्यवस्था की। परन्तु इस अधिनियम की भी कई बातो पर आलोचना की गई। उदाहरणार्थ अनिवार्य समझौतो की धारा, श्रमिक संघो का विभागीकरण, सुलह प्रणाली की प्राधिकारिक प्रवृत्ति तथा अवैध हड़तालो मे भाग लेने वालो को कठोर दण्ड की व्यवस्था आदि ऐसे ही अनेक उपबन्ध उस समय के नेताओ को अप्रिय लगे। परन्तु अधिनियम के कार्यान्वित होने के पश्चात् यह अनुभव किया गया कि अधिकांश आपत्तियाँ राजनैतिक ही थी और यदि कोई उचित आलोचना की जा सकती थी तो वह केवल श्रमिक संघो के वर्गीकरण की थी।

युद्धकाल में औद्योगिक विवाद विधान

युद्धकालीन परिस्थितियों ने औद्योगिक संघर्ष की दृष्टि से अनेक आवश्यक पग उठाने के लिये सरकार को विवश कर दिया। एक आपत्तिकालीन पग के रूप

सन् १९४७ का औद्योगिक विवाद अधिनियम

युद्धकालीन विधान जिनका कि ऊपर उल्लेख किया गया है ३० सितम्बर १९४६ से निष्क्रिय हो गये। परन्तु युद्धकालीन अनुभवों से सरकार आश्वस्त हो गई थी कि इस प्रकार के नियम बहुत लाभदायक है और यदि यह देश के स्थायी श्रम कानूनों में सम्मिलित कर लिये जाते है तब यह युद्धोपरांत औद्योगिक परिवर्तनों के कारण निरन्तर बढ रही औद्योगिक-अशान्ति को रोकने मे बहुत सहायक सिद्ध होंगे। फलतः सन् १९४७ में केन्द्रीय सरकार ने औद्योगिक विवाद अधिनियम पारित किया जिसने १९२९ के व्यापार विवाद अधिनियम को निरस्त (Repeal) कर दिया। प्रान्तीय क्षेत्रों में इस सम्बन्ध मे अधिनियम १९४७ मे, बम्बई, उत्तर-प्रदेश तथा मध्य प्रदेश मे, पारित किये गये। सन् १९४७ के बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम ने १९३८ के बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम को निरस्त (Repeal) कर दिया।

भारत सरकार का १९४७ का *औद्योगिक विवाद अधिनियम* पहली अप्रैल १९४७ से लागू किया गया। इस अधिनियम मे पिछले अधिनियमो के बहुत से उपबन्ध वैसे ही रहे परन्तु इस नये अधिनियम मे औद्योगिक विवादो के निपटारे के लिये दो नई संस्थाओं की व्याख्या की गई अर्थात् मालिकों और श्रमिको के प्रतिनिधियों द्वारा बनी हुई मालिक मजदूर समितियाँ और औद्योगिक अधिकरण जिनमे एक या दो ऐसे सदस्य हों जिनमें उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होने की योग्यता हो। (१९५६ के संशोधन के अनुसार विवानन के लिये अब श्रम न्यायालय, *औद्योगिक अधिकरण और राष्ट्रीय अधिकरणों की व्यवस्था की गई है*)। इस अधिनियम के अन्तर्गत उपयुक्त सरकारो को ऐसे औद्योगिक संस्थानो मे जिनमें १०० या उससे अधिक कर्मचारी कार्य करते हों मालिक मजदूर समितियाँ बनाने का अधिकार दे दिया गया जिनका उद्देश्य यह था कि मालिको व श्रमिको के दैनिक संघर्षो को सुलझाकर उनमे सद्भावना एव मधुर सम्बन्ध स्थापित करे। औद्योगिक अधिकरण या श्रम न्यायालय के सम्मुख मामला तब जायेगा जब किसी विवाद के दोनो पक्ष मामले को इनके सामने ले जाने की प्रार्थना करे अथवा उपयुक्त सरकारें उनको मामला सौपना उचित समझे। अधिकरण के पचाट अथवा निर्णय साधारण-तया सरकार द्वारा लागू होगे और जो भी समय निर्धारित किया जावे उस समय तक दोनों पक्षो के लिये मान्य होगे। सम्पूर्ण समझौता व्यवस्था को एक नवीन रूप देना, *अधिनियम की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है*। इसके *अन्तर्गत* उपयुक्त सरकारो को समझौता अधिकारी नियुक्त करने का अधिकार भी प्रदान किया गया है। इन अधिकारियो का कार्य यह है कि वह किसी भी विशेष क्षेत्र *या विशेष उद्योग अथवा विभिन्न उद्योगो मे औद्योगिक संघर्षों के निपटाने का प्रयत्न* करें या उनको सुलझाने के लिये मध्यस्थता करे। अधिनियम इस बात का भी अधिकार देता है कि ऐसे सुलह बोर्डो की स्थापना की जाये जिनमे एक स्वतन्त्र अध्यक्ष तथा विवाद से सम्बन्धित दोनो पक्षों के बराबर-बराबर सख्या मे दो या

उनसे अधिक सदस्य हों। उपयुक्त सरकारों को इस बात का भी अधिकार दिया गया है कि वह किसी भी विवाद की जाँच पड़ताल के लिये जाँच न्यायालय की स्थापना कर सके। न्यायालय में एक या अधिक स्वतन्त्र व्यक्ति होंगे जिनमें से एक सभापति होगा।

जब कोई औद्योगिक विवाद होता है या उसके होने की आशंका होती है तब सर्वप्रथम समझौता अधिकारी, जिसके सम्मुख विवाद प्रस्तुत किया जाता है, दोनों पक्षों में मैत्रीपूर्ण समझौता कराने का प्रयत्न करता है। उसको अपनी रिपोर्ट सरकार को चौदह दिन के अन्दर भेजनी होती है। यदि समझौता हो जाता है तब इस पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर हो जाते हैं और तब यह सरकार को भेज दिया जाता है। यदि प्रयत्न असफल रहते हैं तब समझौता अधिकारी सरकार को अपने प्रयत्नों की पूरी रिपोर्ट भेज देता है। अब सरकार मामले को सुलह बोर्ड अथवा औद्योगिक अधिकरण को सौंप सकती है। सुलह बोर्ड को दो मास की अवधि के अन्दर अन्दर समझौता कराने के अपने प्रयत्नों को पूरा करना होता है और यदि उसको सफलता प्राप्त हो जाती है तब यह समझौता छः मास तक या यदि सम्बन्धित पक्ष चाहें तो उससे भी अधिक अवधि के लिए लागू हो जाता है। असफल होने की अवस्था में बोर्ड अपनी पूरी रिपोर्ट सरकार को भेज देता है, तब सरकार विवाद को जाँच न्यायालय को सौंप सकती है जो उससे सम्बन्धित सभी तथ्यों को एक निश्चित अवधि में, जो साधारणतया ६ मास की होती है, एकत्रित करती है। सरकार को यह भी अधिकार है कि वह सुलह बोर्ड या जाँच न्यायालय की रिपोर्ट के पश्चात् मामले को औद्योगिक अधिकरण को पंच फैसले के लिए सौंप दे। जब इस अधिकरण के द्वारा कोई निर्णय दिया जाता है तब अधिनियम के अनुसार सरकार इस निर्णय को ऐसी अवधि के लिए जिसको वह उचित समझती हो परन्तु जो सालभर से अधिक न हो, सम्बन्धित पक्षों पर लागू कर सकती थी। परन्तु १९५० के औद्योगिक विवाद (अपीलीय अधिकरण) अधिनियम [Industrial Disputes (Appellate Tribunal) Act] के अन्तर्गत सरकार के लिए यह आवश्यक नहीं रहा कि वह फैसले को लागू करे और अब निर्णय के प्रकाशन के या निर्णय देने के ३० दिन के पश्चात् वह पक्षों पर अपने आप ही लागू और बाध्य हो जाता है। एक वर्ष की यह अवधि कम भी की जा सकती है अथवा ३ वर्ष तक की अवधि के लिए बढ़ाई भी जा सकती है। यह फैसला निर्धारित अवधि बीत जाने पर भी लागू रहेगा बशर्ते कि किसी भी पक्ष द्वारा उसकी समाप्ति का दो माह का नोटिस न दिया गया हो। यदि सरकार विवाचन निर्णय (award) अथवा उसके किसी भाग से सहमत नहीं है तो वह १० दिन के अन्दर अन्दर उसे अस्वीकार कर सकती है अथवा उसमें संशोधन कर सकती है (पहले यह अवधि ३० दिन थी)। परन्तु ऐसी अवस्था में इसको विधान-सभा के सम्मुख प्रस्तुत करना होगा जो कि विवाचन-निर्णय को स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकती है या उसमें संशोधन कर सकती है और सरकार को उस

निर्णय को लागू करना आवश्यक होगा। इस प्रकार १९४७ के इस अधिनियम में अनिवार्य विवाचन के सिद्धान्त को अपनाया गया है क्योंकि राज्य सरकारें किसी भी विवाद को विवाचन के लिए अधिकरण को प्रस्तुत कर सकती हैं और उनके निर्णय को मानना बाध्य होता है।

अधिनियम की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत सरकार को जनोपयोगी सेवाओं में होने वाले सभी विवादों को समझौते के लिए अनिवार्य रूप से प्रस्तुत करना आवश्यक है तथा अन्य मामलों में सरकार निर्णय स्वयं कर सकती है। जनोपयोगी सेवाओं में यदि उचित सूचना नहीं दी गई है तब हड़ताल या तालाबन्दी करना अवैध घोषित कर दिया गया है। जनोपयोगी सेवाओं में कोई भी कर्मचारी ६ सप्ताह की निश्चित रूप में पूर्व सूचना दिये बिना, अथवा ऐसी सूचना की समाप्ति के १४ दिन पश्चात् तक अथवा सुलह कार्यवाही चलने की *अवधि में तथा ऐसी कार्यवाही की समाप्ति के सात दिन पश्चात् तक, हड़ताल नहीं* कर सकता। इसी प्रकार सुलह कार्यवाही के चलते समय और उसकी समाप्ति के ७ दिन पश्चात् तक तथा अधिकरण की कार्यवाही चलते समय या उसके निर्णय के दो मास पश्चात् तक तथा उस अवधि के लिए जिसमें विवाचन निर्णय लागू रहेगा, हड़तालों पर आम रोक लगा दी गई है। अधिनियम के अन्तर्गत सरकार को यह भी अधिकार है कि वह विशेष सेवाओं को जनोपयोगी सेवायें घोषित कर सकती है, और समय-समय पर राज्य सरकारें इस अधिकार का प्रयोग भी करती है। अधिनियम में इस बात के लिए दण्ड की भी व्यवस्था है कि कोई अवैध हड़ताल और तालाबन्दी में भाग ले (एक मास तक का कारावास अथवा ५० रु० तक का दण्ड अथवा दोनों) या किसी भी अवैध हड़ताल और तालाबन्दी को उकसाए अथवा आर्थिक सहायता दे (६ मास तक का कारावास अथवा १,००० रु० तक का दण्ड अथवा दोनों)। अवैध हड़तालों में भाग लेने से इन्कार करने वाले श्रमिकों की सुरक्षा की भी व्यवस्था की गई है। कार्यवाही चलते समय कोई भी मालिक श्रमिक की रोजगार की शर्तों में परिवर्तन नहीं कर सकता और न ही किसी कर्मचारी को सजा दे सकता है, सिवाय उन मामलों में जिनमें कर्मचारियों का दुर्व्यवहार हो और वह मामला विवाद के विषय से सम्बन्धित न हो। इसके अतिरिक्त, यदि कोई व्यक्ति अधिनियम अथवा उसके अन्तर्गत दिये गये किसी फैसले की धाराओं का उल्लंघन करता है तो उसे ६ माह तक का कारावास अथवा दण्ड अथवा दोनों की ही सजा दी जा सकती है और वसूल किये गये दण्ड को पीड़ित पक्ष को क्षतिपूर्ति के रूप में दिया जा सकता है।

१९४७ के इस अधिनियम को देश के औद्योगिक विवाद विधान में एक उन्नतिशील पग कहा जा सकता है। इसमें विवादों को सुलझाने की व्यापक व्यवस्था की गई है। इस *अधिनयम की अधिकतर आलोचना अनिवार्य समझौते तथा* अनिवार्य विवाचन पर केन्द्रित रही है। इस समस्या की हम अगले पृष्ठों में

विवेचना करेंगे। अवैध हडतालो से सम्बन्धित उपबन्ध और सरकार के पच-फैसलो को लागू करने के अधिकार की भी आलोचना की गई है।

भारत सरकार ने औद्योगिक विवाद अधिनियम के उपबन्धो की शेषपूर्ति करने तथा कुछ विशेष स्थितियो का सामना करने के लिए कुछ अध्यादेश (Ordinances) व सशोधन अधिनियम पारित किए है। एक से अधिक राज्यो में शाखा रखने वाली बैंकिंग तथा बीमा कम्पनियो मे अलग अलग विवाचन से उत्पन्न कठिनाइयो को दूर करने के हेतु अप्रैल १९४९ मे औद्योगिक विवाद (बैंकिंग तथा बीमा कम्पनियाँ) अध्यादेश पारित किया गया, जिसको दिसम्बर सन् १९४९ मे एक अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित (Replaced) कर दिया गया। इसके अन्तर्गत सन् १९४७ के अधिनियम को सशोधित करके इस बात की व्यवस्था कर दी गई है कि बैंकिंग तथा बीमा कम्पनियो को उन सस्थानो की सूची मे सम्मिलित कर लिया जाए जिनमे कि केवल केन्द्रीय सरकार ही सुलह बोर्ड, न्यायालय व अधिकरणो की स्थापना कर सकती है। फलत केन्द्रीय सरकार ने जून १९४९ मे एक औद्योगिक अधिकरण की स्थापना की और विभिन्न बैंकिंग कम्पनियो के विवादो को इसको सौप दिया।

१३ जून १९४९ को एक और अध्यादेश औद्योगिक अधिकरण बोनस भुगतान (राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्र [Industrial Tribunal Payment of Bonus (National Savings Certificates) Ordinace] जारी किया गया। इसके अन्तगत औद्योगिक अधिकरण को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह बोनस का ५०% भाग तक राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्रो मे देने का आदेश दे सकती है। इन प्रमाणपत्रो का मूल्य भी यही अधिकरण निश्चित कर सकती है। परन्तु इन प्रमाणपत्रो के द्वारा दी गई राशि बोनस की नकदी राशि से कम नही होनी चाहिए। केन्द्रीय सरकार को इस सम्बन्ध मे उत्पन्न हुई कठिनाइयो को दूर करने के लिए आवश्यक नियम बनाने के अधिकार भी दे दिए गए है। सन् १९३६ के मजदूरी भुगतान अधिनियम (Payment of Wages Act) के अन्तर्गत इस प्रकार के भुगतान मे जो कुछ कानूनी कठिनाइयाँ थी, इस अध्यादेश के द्वारा वे भी दूर कर दी गई।

मद्रास मे उस समय एक रोचक विषय उच्च न्यायालय के एक निर्णय के कारण उठ खडा हुआ। न्यायालय ने यह घोषित कर दिया कि औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत सरकार को इस बात का अधिकार नही था कि वह सभी सम्बन्धित विवादो को औद्योगिक अधिकरण को सौप दे। अत अप्रैल १९४९ मे औद्योगिक विवाद (मद्रास सशोधन) अधिनियम पारित किया गया जिसके अन्तर्गत यह उपबन्ध बना दिया गया कि मद्रास सरकार द्वारा अधिनियम के अन्तर्गत निर्मित किये गये औद्योगिक अधिकरण के किसी भी पच फैसले को कोई भी न्यायालय इस आधार पर अवैध घोषित नही कर सकता कि वह अधिकरण कानूनी नही है। सशोधित अधिनियम के अन्तर्गत मद्रास सरकार को इस बात का

अधिकार दे दिया गया कि वह न केवल उन्हीं उद्योगों को जिनका अधिनियम में उल्लेख किया गया है वरन् किसी भी उद्योग को जनोपयोगी उद्योग घोषित कर सकती है ।

१९५० में एक और महत्वपूर्ण अधिनियम, औद्योगिक विवाद (अपीलीय अधिकरण), Industrial Disputes (Appellate Tribunal) Act पारित किया गया। १९४७ के अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय व राज्य सरकारों द्वारा औद्योगिक अधिकरणों की स्थापना होती थी। परन्तु किसी भी समन्वित (Co-ordinating) और पुनर्विलोकिनी (Reviewing) प्राधिकारी (Authority) के अभाव में तथा किसी मार्ग-दर्शक नीति न होने के कारण अनेक अधिकरणों ने कई महत्वपूर्ण मामलों पर विभिन्न मत अभिव्यक्त किये थे। विभिन्न राज्यों में और कभी-कभी एक ही राज्य में अधिकरणों द्वारा लिये जाने वाले विभिन्न निर्णयों से कुछ ऐसी नीति-विरुद्ध बातें उत्पन्न हो गई जिनसे न केवल मालिकों में बल्कि श्रमिकों में भी असन्तोष व्याप्त हो गया। इस परिस्थिति का सामना करने के लिए भारत सरकार ने अपीलीय न्यायालय स्थापित करने का निश्चय किया तथा मई १९५० में औद्योगिक विवाद (अपीलीय अधिकरण) अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत अपीलीय अधिकरण की स्थापना की व्यवस्था थी तथा औद्योगिक विवाद सम्बन्धी कानूनों में कुछ परिवर्तन किये गये। उदाहरणस्वरूप अधिकरण के विवाचन निर्णय को राज्य सरकार द्वारा लागू करने के लिये कुछ उपबन्ध बनाये गये तथा न्यायालय या अधिकरण के समक्ष औद्योगिक विवादों में वकीलों के आने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। अपीलीय अधिकरणों को इस बात का अधिकार दिया गया कि वह किसी भी विवाचन अधिकारी के निर्णय अथवा पंच फैसले के विरुद्ध अपील सुन सके, जब भी ऐसी अपील उपयुक्त सरकारों अथवा असंतुष्ट पक्ष द्वारा की जाय। अपीलीय अधिकरण के समक्ष केवल कुछ ही विषयों पर अपील हो सकती थी। उदाहरणार्थ वित्त सम्बन्धी मामले, पदवी के अनुसार वर्गीकरण, कर्मचारियों की छटनी, कानूनी प्रश्न आदि। १९५६ के एक संशोधित अधिनियम द्वारा अब इस १९५० के अधिनियम को निरसित (Repeal) कर दिया गया है।

१९४७ के अधिनियम में १९५१ में पुनः संशोधन किया गया जिसका उद्देश्य यह था कि अधिकरणों में रिक्त स्थानों की पूर्ति में सम्बन्धित मामलों में जो दोष थे उनको दूर कर दिया जाय। १९५१ में एक अध्यादेश के द्वारा अधिनियम में पुनः संशोधन किया गया जिसके लिए मार्च १९५२ में अधिनियम भी बना दिया गया। इसके अन्तर्गत उपयुक्त राज्य सरकारों को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि वह विवाचन के क्षेत्र में ऐसे संस्थानों को भी ला सकती थी जिनमें वास्तव में कोई विवाद नहीं हुआ हो। यह संशोधन इसलिये आवश्यक समझा गया कि १९४७ के अधिनियम के अन्तर्गत विवाचन उस समय किया जा सकता था जबकि कोई विवाद हो रहा हो अथवा उसकी सम्भावना हो। परन्तु विवाद की सम्भावना

के प्रश्न पर मतभेद था और बैंक विवाद के सम्बन्ध में एक पंच फैसले को सर्वोच्च न्यायालय में इसी आधार पर कि विवाद पर कोई 'सम्भावना' नहीं थी, चुनौती दी गई। इस संशोधन के पश्चात् अब ऐसी कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। अब सरकार उद्योगों के किसी ऐसे संस्थान को भी, जिस पर विवाद के कारण प्रभाव पड़ने की सम्भावना हो, पंच फैसले के लिए सम्मिलित कर सकती है।

दूसरा महत्वपूर्ण श्रम अधिनियम १९५३ का औद्योगिक विवाद (संशोधन) अधिनियम था जिसमें जबरी छुट्टी (Lay off) तथा छटनी की अवस्था में श्रमिकों को क्षति पूर्ति देने तथा इस सम्बन्ध में अन्य आवश्यक कार्यवाही करने के सम्बन्ध में उपबन्ध थे। आर्थिक मन्दी के कारण औद्योगिक संस्थानों को अपना काम कम करने अथवा श्रमिकों की संख्या को कम करने के लिये बाध्य होना पड़ा। अतः श्रमिकों की जबरी छुट्टी तथा छटनी बढ़ गई। परन्तु कई बार ऐसी जबरी छुट्टी व छटनी निष्कपट नहीं कही जा सकती थी। छटनी व जबरी छुट्टी इतनी अधिक बढ़ गई कि एक संकटमय परिस्थिति उत्पन्न हो गई और इसको नियन्त्रित करना आवश्यक हो गया। अक्टूबर १९५३ में इस समस्या पर स्थायी श्रम समिति ने विचार किया। राष्ट्रपति ने एक अध्यादेश प्रस्थापित किया जो कि तत्पश्चात् औद्योगिक विवाद (संशोधन) अधिनियम १९५३ द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया। मई १९५४ से फैक्टरी तथा खाना के अतिरिक्त इस संशोधित अधिनियम को बागान पर भी लागू कर दिया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत इस बात की व्यवस्था कर दी गई है कि किसी भी ऐसे श्रमिक की जो किसी भी मालिक के साथ कम से कम एक साल की निरन्तर अवधि में रोजगार पर लगा रहा है, छटनी नहीं हो सकती जब तक उसको एक महीने का लिखित नोटिस नहीं दिया जायगा या उसके बदले में एक महीने की मजदूरी नहीं दी जायगी। इसके अतिरिक्त श्रमिक के लिए क्षतिपूर्ति की व्यवस्था है जो हर पूरे साल की नौकरी पर या छः महीने से अधिक नौकरी पर १५ दिन के औसत वेतन के हिसाब से दी जाती है। जबरी छुट्टी के सम्बन्ध में इस बात की व्यवस्था है कि हर ऐसे श्रमिक को जो बदली या आकस्मिक श्रमिक नहीं है और जिसने १ साल से कम की निरन्तर नौकरी नहीं की है, उसको क्षतिपूर्ति दी जायगी। ऐसी क्षतिपूर्ति उन सम्पूर्ण दिनों की, जिनमें श्रमिक जबरी छुट्टी पर रहा है, मूल मजदूरी और महगाई भत्ता का ५०% के हिसाब से होगी। परन्तु एक वर्ष में अर्थात बारह कलेंडर महीनों में यह अधिक से अधिक ४५ दिनों के लिए दी जाएगी अगर इस अवधि में श्रमिक को पुनः जबरी छुट्टी नहीं दी जाती। (सन् १९६५ में संशोधन करके ऐसी व्यवस्था कर दी गई है कि अब पहले ४५ दिन बीत जाने के पश्चात् भी क्षतिपूर्ति दी जा सकती है)।

अन्य महत्वपूर्ण संशोधन बैंकिंग विवादों के सम्बन्ध में हुए हैं। अप्रैल १९४५ में श्रम अपीलीय अधिकरण ने अखिल भारतीय औद्योगिक अधिकरण (बैंक विवाद) के पंच फैसले पर अपना निर्णय दिया जो कि 'शास्त्री' अधिकरण

के रूप मे जाना जाता है। कानून द्वारा सरकार को निर्णयो के सम्बन्ध मे सोच-विचार करने के लिए प्रदान की गई ३० दिन की अवधि को परिस्थितियो को देखते हुए अपर्याप्त समझा गया था। फलतः १९५० के औद्योगिक विवाद अपीलीय अधिकरण अधिनियम मे एक अध्यादेश द्वारा सशोधन किया गया जिससे अवधि ३० दिन से बढाकर १२० दिन कर दी गई। विषय पर विचार करने के बाद २४ अगस्त सन् १९५४ को सरकार ने एक आदेश जारी किया जिसके अन्तर्गत श्रम अपीलीय अधिकरण के निर्णय को कई बातों में सशोधित कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप श्री वी० वी० गिरि ने श्रम मत्री पद से त्यागपत्र दे दिया तथा बैंक कर्मचारियों द्वारा घोर असन्तोष व्यक्त किया गया व आशिक हड़तालें हुई। सरकार ने न्यायाधीश जी० एस० राज्याध्यक्ष की अध्यक्षता मे अनेक प्रश्नो पर जाँच कराई। दुर्भाग्यवश फरवरी १९५५ में न्यायाधीश राज्याध्यक्ष का स्वर्गवास हो गया। उनके स्थान पर न्यायाधीश बी० पी० गजेन्द्रगजकर नियुक्त किए गए। गजेन्द्रगजकर आयोग ने विस्तृत जाच पडताल के पश्चात् जुलाई १९५५ मे सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। सरकार ने आयोग की सभी सिफारिशें स्वीकार कर ली। इन सिफारिशो को लागू करने के हेतु आवश्यक विधान भी बनाया गया जो औद्योगिक विवाद (बैंक कम्पनी) निर्णय अधिनियम के नाम से अक्टूबर १९५५ में पारित हुआ। १९५८ मे इसमें कुछ महगाई भत्ते से सम्बन्धित सशोधन कर दिए गए है।

अन्य महत्वपूर्ण सशोधन अगस्त १९५६ मे औद्योगिक विवाद (सशोधन और विविध उपबन्ध) के नाम से हुआ है। इस अधिनियम ने सन् १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम तथा सन् १९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थाई आदेश) अधिनियम मे अनुभव की जा रही आवश्यकताओं को पूरा किया है। इस अधिनियम के द्वारा सन् १९५० के औद्योगिक विवाद (अपीलीय अधिकरण) अधिनियम को निरसित कर दिया गया। अधिनियम की मुख्य विशेषतायें इस प्रकार है—(१) कर्मचारी शब्द की नई परिभाषा की गई है और इसके अन्तर्गत उन निरीक्षक कर्मचारियों को भी सम्मिलित कर लिया गया है जिनकी मासिक आय ५०० रु० से कम है तथा जो मुख्यत. प्रबन्धक का कार्य नही करते। सभी तकनीकी कर्मचारी भी इस नई परिभाषा के अन्तर्गत आ जाते है। (२) कोई भी मालिक कुछ विशेष मामलों मे, जैसे—मजदूरी, प्राविडेण्ट फण्ड मे अशदान, कार्य के घण्टे आदि मे श्रमिको को २१ दिन की सूचना दिये बिना कोई परिवर्तन नही कर सकता। (३) मालिको को यह अधिकार दे दिया गया है कि अगर किसी विवाद के मामले पर विचार भी हो रहा है तब भी अगर आवश्यक समझें तो श्रमिक के विरुद्ध ऐसे मामले मे कार्यवाही कर सकते है जिसका विवाद से कोई सम्बन्ध न हो। परन्तु ऐसी कार्यवाही द्वारा यदि श्रमिक को बर्खास्त किया जाता है तो विवाद से सम्बन्ध रखने वाले प्राधिकारी की आज्ञा लेना अनिवार्य है। (४) सन् १९५० के औद्योगिक विवाद (अपीलीय अधिकरण) अधिनियम को निरसित कर

दिया गया तथा अधिकरणो की वर्तमान प्रणाली को अब अधिकरणो की त्रिश्रेणी पद्धति द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है। ये न्यायालय निम्नलिखित हैं— (क) श्रम अदालत, ख) औद्योगिक अधिकरण, तथा (ग) राष्ट्रीय अधिकरण। श्रम अदालत का कार्य कुछ छोटे विशेष प्रश्नो पर विवाचन करना है जैसे— मालिक द्वारा दिये गये आदेश की वैधता अथवा औचित्य, श्रमिको को पदच्युत अथवा बर्खास्त या बहाल करना, किसी परम्परागत छूट अथवा सुविधा की वापिसी, किसी हडताल अथवा तालाबन्दी की अवैधानिकता आदि। औद्योगिक अधिकरणो का क्षेत्र अधिक विस्तृत है तथा कुछ ऐसे विषयो से सम्बन्धित है, जैसे कि मजदूरी तथा भत्ते, काम के घण्टे, छुट्टी तथा अवकाश, बोनस, आनुतोषिक (gratuity), निर्वाह निधि, पारियाँ (shifts), अनुशासन के नियम विवेकीकरण, छटनी, सस्थानो का बन्द करना आदि। ये मामले श्रम न्यायालयो के विचाराधीन मामलो से अलग थे। राष्ट्रीय अधिकरणो की स्थापना केवल केन्द्र सरकार द्वारा ही की जा सकती है। इनका कार्य ऐसे विवादो पर निर्णय देना होता है जो राष्ट्रीय महत्व के है तथा जो एक से अधिक राज्यो मे स्थापित सस्थानो को प्रभावित करते है। श्रम न्यायालयो तथा औद्योगिक अधिकरणो की स्थापना केन्द्र सरकार तथा राज्यो की सरकार दोनों ही द्वारा की जा सकती है। (५) अधिनियम के अन्तर्गत इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि दोनो पक्ष किसी भी विवाद को स्वय ही एक लिखित समझौते द्वारा पच फैसले के लिये सौंप सकते है। इस बात की भी व्यवस्था कर दी गई है कि सुलह कार्यवाही के अतिरिक्त अगर कोई और समझौता होता है तो उसको भी मालिको व श्रमिको पर लागू किया जा सके। (६) विवाचन निर्णयो को लागू कर दिया है इस बात को सुनिश्चित करने के लिये दण्ड मे वृद्धि कर दी गई है। (७) बैंको, सीमेंट उद्योग, सुरक्षा उद्योग हस्पताल औषधालय, दमकल (Fire Brigade) सेवाओ को भी सार्वजनिक उपयोगी सेवाये घोषित किया जा सकता है। (८) इस अधिनियम के अन्तर्गत १९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम मे भी कुछ आवश्यक सशोधन किये गये है, जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। (देखें पृष्ठ १७१)।

सितम्बर १९५६ मे एक और सशोधन हुआ जिसके अन्तर्गत १९५३ के सशोधित अधिनियम मे जबरी छुट्टी व छटनी के समय क्षतिपूर्ति देने के विषय मे उत्पन्न हुये कुछ सदेहो का समाधान कर दिया गया। अब ऐसी शर्तें भी लागू कर दी गई है जिनके अन्तर्गत एक सस्थान के प्रबन्ध अथवा स्वामित्व के हस्तातरण होने के समय भी श्रमिको को छटनी-क्षतिपूर्ति दी जा सके। परन्तु नवम्बर १९५६ मे सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि किसी उद्योग के उचित तथा वास्तविक रूप से बन्द होने तथा उसके एक मालिक से दूसरे मालिक को हस्तान्तरण होने की अवस्था मे यदि श्रमिक की नौकरी समाप्त कर दी जाती है तब उसे कोई छटनी-क्षतिपूर्ति नहीं दी जायेगी। इसके परिणामस्वरूप श्रमिको को काफी कठिनाइयाँ

हुई क्योकि अहमदाबाद, कानपुर तथा पश्चिमी बंगाल मे कई संस्थान बन्द हो गये और उन्होंने अपने श्रमिकों को, जो नौकरी से अलग हो गये थे, कोई क्षतिपूर्ति नही दी। अत सरकार ने, अप्रैल १९५७ में एक अध्यादेश जारी किया जो जून १९५७ के औद्योगिक विवाद (सशोधन) अधिनियम के द्वारा विस्थापित कर दिया गया। इसके अनुसार किसी भी उद्योग के उचित कारणो से बन्द होने तथा स्वामित्व के हस्तातरण होने पर भी छटनी-क्षतिपूर्ति दी जायेगी। इसको १ दिसम्बर १९५६ से कार्यशील किया गया। इस बात की व्यवस्था की गई है कि कोई क्षतिपूर्ति उस समय नही दी जायेगी जबकि श्रमिक को उद्योग के हस्तातरण की अवस्था में ऐसी शर्तो पर पुन· कार्यों पर लगा लिया जाता है जो पहले से कम अनुकूल नही है अथवा यदि उद्योग किसी निर्माण कार्य मे व्यस्त है और कार्य के पूरा हो जाने के कारण दो ही वर्षो में बन्द हो गया है। इस बात की भी व्यवस्था है कि अगर कोई व्यवसाय मालिक की शक्ति से बाहर की परिस्थितियो के कारण बन्द हुआ है तब श्रमिक को अधिक से अधिक मिलने वाली क्षतिपूर्ति उसकी तीन मास की औसत आय के बराबर होगी।

अधिनियम मे सन् १९६४ तथा १९६५ मे पुन. सशोधन किया गया। सन् १९६४ मे औद्योगिक विवाद सशोधन अधिनियम पास किया गया जिसे १९ दिसम्बर १९६४ से लागू किया गया। इस अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित है—(क) वायु परिवहन को स्थायी रूप से सार्वजनिक उपयोगी सेवा घोषित कर दिया गया है। (ख) केन्द्र व राज्य सरकारो को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह अपने क्षेत्र मे किसी भी उद्योग को जनोपयोगी सेवा घोषित कर सकती है। (ग) विवाचकों की रायो मे यदि मतभेद हो तो उसके लिये एक निर्णायक नियुक्त किया जा सकता है। (घ) विवाचन-कार्यवाही के काल मे हडतालो व ताला-बन्दियो को निषेध घोषित कर दिया गया है। (ङ) किसी भी विवाचन-निर्णय या समझौते को उचित सूचना द्वारा केवल श्रमिको के बहुमत द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है। (च) किसी लायसेंस या पट्टे की समाप्ति के कारण किसी सस्थान के बन्द होने पर श्रमिको को पूर्ण क्षतिपूर्ति मिलेगी। (छ) मालिको पर जो धनराशि निकलती है उसको वसूल करने के लिये एक सशोधित कार्यविधि बनाई गई है।

सन् १९६५ के औद्योगिक विवाद (सशोधन) अधिनियम, जो कि ६ दिसम्बर १९६५ से लागू किया गया, के मुख्य उपबन्ध इस प्रकार थे : (क) "औद्योगिक विवाद" की परिभाषा को विस्तृत किया गया ताकि व्यक्तिगत पदच्युति तथा पदोत्सर्गो के मामले भी इसकी परिधि मे लाये जा सके; (ख) दोष प्रमाणित होने पर भी यदि पचनिर्णयो तथा समझौतों को लागू न किया जाये तो उसके लिये दण्ड की व्यवस्था की गई ; (ग) भारतीय वायु परिवहन, अन्तर्राष्ट्रीय भारतीय वायु परिवहन से सम्बन्धित विवादों को केन्द्रीय क्षेत्र मे सम्मिलित किया गया ; और

(घ) पहले ४५ दिन बीत जाने के पश्चात् भी सभी दिनों की जबरी छुट्टी की क्षति-पूर्ति अदा की जायेगी।

इस प्रकार १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित बातों से सम्बन्धित हैं—(१) मालिक मजदूर समितियां (२) सुलह और विवाचन व्यवस्था, (३) हड़तालें और तालाबन्दी तथा (४) जबरी छुट्टी और छटनी के समय क्षतिपूर्ति।

राज्यों के अधिनियम (State Acts)

बम्बई, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मैसूर, ट्रावनकोर कोचीन तथा जम्मू व कश्मीर एवं श्रमजीवी पत्रकारों के लिये औद्योगिक विवादों से सम्बन्धित अलग अधिनियम बनाये गये हैं। सन् १९५० के ट्रावनकोर-कोचीन, औद्योगिक विवाद (समझौता) अधिनियम तथा सन् १९५० का जम्मू व कश्मीर औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारायें सन् १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम की मूल धाराओं के समान हैं। ट्रावनकोर-कोचीन अधिनियम में कॉफी, चाय व रबड़ की कृषि व उत्पादन में संलग्न श्रमिक भी सम्मिलित किये गये हैं। केरल में १९५९ में एक औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम विधान सभा में प्रस्तुत किया गया। इस नये अधिनियम में विवादों के निपटारे के लिये आपसी वार्तालाप और वाद विवाद पर अधिक जोर दिया गया है और इसमें प्रतिद्वन्दी संघों की समस्या पर भी प्रकाश डाला गया है। एक सरकारी औद्योगिक सम्बन्ध बोर्ड स्थापित करने का भी उपबन्ध है। जम्मू व कश्मीर अधिनियम की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह अधिनियम के सम्बन्ध में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों को दूर करने के लिये कोई भी पग उठा सकती है। सन् १९६१ में इस अधिनियम में संशोधन किया गया जिसके अनुसार 'कारीगर' (workman) की परिभाषा का विस्तार किया गया और केन्द्रीय अधिनियम की तरह ही इसमें भी एच्छिक पंच फैसले की व्यवस्था की गई। सन् १९५८ में पंजाब सरकार ने एक अध्यादेश, पंजाब औद्योगिक विवाद (कार्यवाहियों की वैधता) अध्यादेश जारी किया जिसमें औद्योगिक अधिकरणों के कार्यों के सम्बन्ध में कुछ धाराओं को स्पष्ट किया गया था। अब बम्बई, उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश के अधिनियमों का संक्षिप्त वर्णन किया जायगा।

सन् १९४६ का बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम

बम्बई ही पहला राज्य था जिसने कि औद्योगिक विवादों की रोकथाम तथा समझौते के लिये अपना स्वयं का अधिनियम पारित किया। १९३४ में इसने औद्योगिक विवाद समझौता अधिनियम पास किया था कि तत्पश्चात् सन् १९३८ के बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम द्वारा विस्थापित कर दिया गया। इसमें युद्ध के समय कुछ संशोधन भी हुये थे। जब युद्ध समाप्त हो गया तब सरकार ने अधिनियम की पुनः जाँच की और १९४७ में एक व्यापक अधिनियम पारित किया

जो कि सन् १९४६ के बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम के नाम से जाना जाता है। इस अधिनियम का आधार भी १९३८ के अधिनियम के समान ही है परन्तु १९३८ के अधिनियम के अन्तर्गत जो समझौता व्यवस्था की गई थी और जो व्यवस्था केन्द्रीय सरकार के १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम मे थी उसको इस अधिनियम मे पूर्ण और दृढ़ कर दिया गया है। इस अधिनियम में अनिवार्य विवाचन की व्यवस्था करके विवाचन का क्षेत्र विस्तृत कर दिया है। इसके अतिरिक्त पहली बार औद्योगिक न्यायालय की स्थापना की भी व्यवस्था की गई है ताकि स्थायी आदेशों तथा कार्य की दशाओं में अवैध परिवर्तनों के सम्बन्ध में शीघ्र और पक्षपातहीन निर्णय हो सकें। इस अधिनियम में ऐसी संयुक्त समितियों की स्थापना की भी व्यवस्था है जिसमें विभिन्न पेशों तथा उद्योग के संस्थानों के मालिकों एव श्रमिको के समान सख्या मे प्रतिनिधि हों। १९४८ में इस अधिनियम मे एक अन्य सशोधन द्वारा राज्य सरकार को विभिन्न उद्योगों में मजदूरी बोर्डो की स्थापना करने का अधिकार प्रदान किया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी विवाद को शीघ्र सुलझाने के लिये पंजीकृत सघों को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि वे विवाचन के लिये औद्योगिक न्यायालयों के पास सीधा प्रार्थना-पत्र दे सकते है। १९५३ के एक सशोधन द्वारा "कर्मचारी की" परिभाषा को विस्तृत कर दिया गया है और औद्योगिक न्यायालय, श्रम न्यायालय तथा मजदूर बोर्डो को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि वे किसी भी औद्योगिक विषय या विवाद से सम्बन्धित या उत्पन्न हुये प्रश्नो पर निर्णय दे सकते है। इससे कार्यवाहियो में बाहुल्यता (Multiplicity) समाप्त हो गई है। इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि समझौते अथवा पचाट (award) का पूर्वव्याप्ति प्रभाव (retrospective effect) पड़े और किसी भी स्थानीय क्षेत्र के उद्योग में सभी कर्मचारी उसे मानने को बाध्य हों। बम्बई अधिनियम की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि समझौता कार्यवाहियो मे श्रमिक सघो को एक आवश्यक भाग के रूप में मान्यता देता है, परन्तु जो सघ सन् १९२६ के अधिनियम के अन्तर्गत पजीकृत नही है वे इन विवादों के समाधान के क्षेत्र में नहीं आते। अनेक सुविधाओं से युक्त एक नये वर्ग के सघ का निर्माण किया है जिसको अनुमोदित (Approved) संघ का नाम दिया है। ऐसा सघ तभी कहा जायगा जब कोई सघ इस बात की शर्त मान लेगा कि समझौते के असफल हो जाने पर सभी विवाद पच-फैसले को सौंप दिये जायेगे और उस समय तक कोई भी हड़ताल नही की जायेगी जब तक कि अधिनियम मे उल्लिखित समझौते के सभी साधन समाप्त न हो जायें तथा श्रमिकों का बहुमत ऐसी हड़ताल के पक्ष में न हो। ऐसे अनुमोदित संघों को यह अधिकार दिया गया कि वे सघ की फीस वसूल कर सकें, औद्योगिक क्षेत्र मे ही अपने सदस्यों से विचार-विमर्श कर सकें, उनके कार्य करने के स्थान का निरीक्षण कर सकें और सरकार से कानूनी सहायता प्राप्त कर सके। अधिनियम (Act) (२५% सदस्यता वाले) 'प्रतिनिधि संघ', (५% सदस्यता वाले) 'अर्हता-

प्राप्त सघ' तथा अधिनियम के अन्तर्गत पजीकृत 'प्रारम्भिक सघ' के बीच भी भेद करता है। प्रतिनिधि सघ (representative union) अपने अधिकार क्षेत्र से सम्बन्धित सभी कार्यवाहियो के सम्बन्ध मे एकमात्र सौदाकारी एजेन्सी है। जैसा कि पूर्व अधिनियम मे था, इस अधिनियम के अन्तर्गत भी श्रम अधिकारियो, जाँच न्यायालयो, समझौताकारो, श्रम न्यायालयो अथवा औद्योगिक विवाचन न्यायालयो आदि की नियुक्ति की व्यवस्था है। कुछ कानूनी दोषो को दूर करने के लिये, अधिनियम मे सन् १९५५ तथा १९५६ मे फिर सशोधन किये गये। यह अधिनियम महाराष्ट्र तथा गुजरात दोनो पर ही लागू होता है। सन् १९६४ मे, महाराष्ट्र सरकार ने पुन इसमें सशोधन किया है ताकि पुनर्गठित राज्य के सभी क्षेत्रों पर इसे लागू किया जा सके।

सन् १९४७ का उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम

उत्तर प्रदेश मे औद्योगिक विवाद अधिनियम सन् १९४७ मे पारित किया गया जो कि १ फरवरी १९४८ से लागू किया गया। यह अधिनियम सरल है तथा सन् १९४७ के केन्द्रीय सरकार द्वारा पारित औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकार को अधिकार प्रदान करता है। यह बम्बई के अधिनियम के समान सघो के वर्गीकरण की कोई व्यवस्था नही करता और न ही समझौता और विवाचन के लिय कई प्रकार की एजेन्सियो की इसमे व्यवस्था है। परन्तु यह राज्य सरकार को इस बात का अधिकार देता है कि वह (क) हड़तालो और तालाबन्दी को निषेध घोषित कर सके (ख) मालिको और मजदूरो को बाध्य कर सके कि वे रोजगार की विशेष शर्तों को लागू करे (ग) राज्य सरकार औद्योगिक न्यायालय भी स्थापित कर सकती है, (घ) उसे यह भी अधिकार है कि किसी भी विवाद को सुलह या विवाचन के लिय सौंप दे, (ङ) विवाचन निर्णय को सम्बन्धित पक्षो पर लागू कर दे (च) सार्वजनिक उपयोगी सेवाओ पर भी सरकार नियन्त्रण रख सकती है ताकि एसी सेवाओ की पूर्ति निरन्तर होती रहे और इस प्रकार सार्वजनिक सुरक्षा, आराम और रोजगार म कोई विघ्न न पडे। मई १९४८ के प्रारम्भ मे सरकार के आदेशानुसार राज्य के श्रम विभाग के अनेक अधिकारियो को विशेष क्षेत्रो मे समझौताकार के रूप मे नियुक्त किया गया तथा औद्योगिक विवादो को सुलझाने के लिये कई क्षेत्रीय और प्रान्तीय सुलह बोर्ड और औद्योगिक न्यायालयो की स्थापना की गई। सूती कपडा, चीनी कांच चमडा, विद्युत और इजीनियरिंग उद्योगो के लिये क्षेत्रीय सुलह बोर्ड स्थापित किये गये और इनके लिये कानपुर, लखनऊ, आगरा और प्रयाग मे औद्योगिक न्यायालय भी स्थापित किय गय। अगस्त १९५० मे इस अधिनियम मे सशोधन हुआ जिसके अन्तगत सरकार को इस बात का अधिकार दे दिया गया कि ऐस जन-उपयोगी सेवा सस्थानो के प्रशासन को, जो बन्द हो गये हो अथवा बन्द होने को हो, अपने नियन्त्रण में ल ले।

सन् १६५१ मे उत्तर प्रदेश में औद्योगिक शान्ति को स्थापित करने की जो व्यवस्था थी उसका पुनर्संगठन हुआ। विशेष उद्योगों के लिये जो क्षेत्रीय सुलह बोर्ड थे उनको समाप्त कर दिया गया और यह व्यवस्था कर दी गई कि हर क्षेत्र का सुलह अधिकारी ही किसी भी उद्योग से शिकायत आने पर या सरकार द्वारा निर्देश पाने पर सुलह बोर्ड का काम करेगा। इस प्रकार के बोर्ड का कर्त्तव्य केवल सुलह कराना और समझौते की संभावना के लिये यत्न करना होता है और यदि किसी समझौते की सभावना नही है तो अपनी रिपोर्ट श्रम कमिश्नर और सरकार को यह बोर्ड भेज देता है। फिर किसी उचित कार्यवाही के लिये आगे कदम उठाया जाता है। उदाहरणतः अगर आवश्यक हो तो विवाचन के लिये मामला सौंप दिया जाता है। औद्योगिक न्यायालयो को भी भग कर दिया गया तथा पूरे राज्य के लिये इलाहाबाद मे एक औद्योगिक अधिकरण की स्थापना कर दी गई। सरकार अपनी इच्छा से या सुलह बोर्ड की सूचना पर किसी भी मामले को विवाचन के लिए किसी विवाचक को या इलाहाबाद के राज्य औद्योगिक अधिकरण को सौंप सकती थी तथा उसके निर्णय को लागू कर सकती थी। इसके विरुद्ध अपील सन् १६५० के अधिनियम के अन्तर्गत निर्मित अखिल भारतीय श्रम अपीलीय न्यायालय मे १६५६ तक, जब कि अपीलीय न्यायालय समाप्त नही हुए थे, की जा सकती थी। फरवरी १६५३ में एक सशोधन के द्वारा विवाचक और औद्योगिक अधिकरण द्वारा निर्णय देने की अवधि, जो मूल आदेश मे मामले को सौंपने की तिथि से ४० दिन थी, अब १८० दिन कर दी गई। सन् १६५४ मे एक और सशोधन द्वारा सुलह अधिकारियों को यह अधिकार प्रदान कर दिया गया है कि वे कुछ परिस्थितियों मे प्रार्थना-पत्र लेने से इन्कार कर सकते है ताकि निरर्थक शिकायतो को रोका जा सके, और औद्योगिक अधिकरण व विवाचक को अधिकार प्रदान कर दिया गया है कि वह लिपि या हिसाब की अशुद्धियों को ठीक कर सकते है। राज्य मे सात क्षेत्रीय सुलह कार्यालय—कानपुर, इलाहाबाद, गोरखपुर, लखनऊ, आगरा, बरेली और मेरठ मे स्थापित किये गये है। प्रत्येक क्षेत्र में एक सुलह अधिकारी तथा एक अतिरिक्त सुलह अधिकारी हैं। वाराणसी (इलाहाबाद क्षेत्र), अलीगढ (आगरा क्षेत्र), रामपुर (बरेली क्षेत्र), सहारनपुर (मेरठ क्षेत्र), में एक-एक अतिरिक्त सुलह अधिकारी है। श्रम कमिश्नर तथा अतिरिक्त, उप अथवा सहायक श्रम कमिश्नर और प्रधान कार्यालय के कुछ अन्य अफसर सम्पूर्ण राज्य के लिए सुलह अधिकारी हैं। ७ क्षेत्रो मे ६ सहायक श्रम कमिश्नर भी है—गोरखपुर और इलाहाबाद क्षेत्रो के लिए केवल एक सहायक श्रम कमिश्नर है।

सन् १६४७ के अधिनियम में एक अन्य सशोधन सन् १६५६ के उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद (सशोधन और विविध उपबन्ध) अधिनियम द्वारा किया गया जो कि अप्रैल १६५७ मे लागू हुआ। इस सशोधन द्वारा उत्तर प्रदेश के अधिनियम में भी १६५६ के सशोधित केन्द्रीय अधिनियम के उपबन्धों को लागू कर दिया गया। सशोधित अधिनियम के द्वारा 'कर्मचारी' शब्द की परिभाषा को विस्तृत कर दिया

गया है और राज्य सरकार को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि वह औद्योगिक विवादों के विवाचन के लिए एक या अधिक श्रम न्यायालय और औद्योगिक अधिकरणों की स्थापना कर सकती है। श्रम-न्यायालय का अधिकार क्षेत्र केवल उन विषयों तक है जिनका उल्लेख अधिनियम की अनुसूची (Schedule) न० १ में किया गया है। इसके अन्तर्गत स्थायी आदेश, छटनी या बरखास्तगी, पुन नौकर रखना, श्रमिकों को सुविधायें और अधिकार, हड़तालों और ताला-बन्दियों की वैधानिकता आदि विषयों से सम्बन्धित तमाम मामले आ जाते है। अनुसूची न० २ में उनसे अधिक महत्वपूर्ण विषय रखे गये हैं, जैसे—मजदूरी, बोनस भत्ता कार्य करने के घण्टे, विश्राम-काल, अवकाश और छुट्टियाँ, लाभ-विभाजन, पारिश्रमिक, प्रोवीडेन्ट फंड, अनुशासन, विवेकीकरण, छटनी आदि। औद्योगिक अधिकरणों को यह अधिकार भी प्रदान कर दिया गया है कि वे दोनों अनुसूचियों के मामलों को सुन सकता है। यदि विवाचन का निर्णय एक से अधिक उद्योग संस्थानों को प्रभावित करता है तो सरकार तीन व्यक्तियों के एक विशेष अधिकरण की स्थापना कर सकती है। केन्द्रीय अधिनियम में एक व्यक्ति के अधिकरण की स्थापना की व्यवस्था है। सरकार को इस बात का भी अधिकार है कि वह अनुसूची न० २ का भी कोई मामला श्रम न्यायालय को सौंप सकती है अगर ऐसे मामले से १०० से अधिक श्रमिक सम्बन्धित नहीं है। अधिनियम की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें इस बात की व्यवस्था है कि किसी भी विवाद को एच्छिक रूप से विवाचन को सौंपा जा सकता है। मालिक और श्रमिक लिखित समझौते द्वारा, चल रहे संघर्ष अथवा सम्भावित विवाद को किसी विशेष विवाचक या विवाचकों को सौंप सकते है। मालिकों को यह अधिकार दिए गए है कि वे अनुसूची न० ३ में वर्णित विषयों पर श्रमिकों की नौकरी की शर्तों के परिवर्तन करने के लिये सूचना दे सकते हैं। अधिनियम में किसी भी संस्थान के स्वामित्व अथवा प्रबन्ध के परिवर्तन होने की अवस्था में छटनी क्षतिपूर्ति के सम्बन्ध में मालिकों की स्थिति को और स्पष्ट किया गया है। इस अवस्था में श्रमिकों को तब तक कोई भी क्षति पूर्ति न दी जायगी जब तक परिवर्तन द्वारा उस श्रमिक की नौकरी में बाधा न पहुँचती हो या जब नौकरी की शर्तें कम अनुकूल हो जाती हों अथवा नया मालिक छटनी क्षतिपूर्ति देने के लिये श्रमिकों की सेवाओं को निरन्तर नहीं मानता। राज्य सरकार पंचाटों (awards) को श्रम न्यायालय अथवा अधिकरण के पास पुर्नविचार के लिए वापिस भेज सकती है किन्तु केन्द्रीय अधिनियम में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है।

इस नये संशोधित अधिनियम के अन्तर्गत सरकार ने इलाहाबाद में तीन औद्योगिक अधिकरणों की स्थापना कर दी है जो क्रमश सामान्य सूती तथा चीनी उद्योग धन्धों के लिये इलाहाबाद में है। गोरखपुर कानपुर, बरेली और मेरठ में चार श्रम न्यायालयों की स्थापना की गई है। गोरखपुर की श्रम न्यायालय का

जुलाई १९६१ से कानपुर मे स्थानान्तरित कर दिया गया है। बरेली श्रम न्यायालय की बैठकें भी लखनऊ में हो रही है। सन् १९६४ मे इलाहाबाद मे एक श्रम न्यायालय की स्थापना की गई। अब पांच श्रम न्यायालय है—दो कानपुर में और एक लखनऊ, इलाहाबाद और मेरठ मे। इलाहाबाद के तीन औद्योगिक अधिकरणों में से एक की बैठकें लखनऊ में हो रही हैं। समझौता प्रणाली पहले की भांति ही कार्यशील है।

एक अन्य महत्वपूर्ण संशोधन उत्तर प्रदेश अधिनियम मे जुलाई १९५७ मे हुआ। इसके अन्तर्गत इस बात की व्यवस्था है कि किसी संघ का कोई भी अधिकारी किसी भी पक्ष का उस समय तक प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता जब तक कि श्रमिक संघ अधिनियम के अन्तर्गत उस संघ को पंजीकृत हुए दो वर्ष व्यतीत न हो गये हो, तथा संघ एक ही व्यवसाय के लिये पंजीकृत किया गया हो। केन्द्रीय अधिनियम मे ऐसी कोई व्यवस्था नही है। इस बात की भी व्यवस्था है कि किसी भी औद्योगिक संस्थान मे हड़ताल एवं तालाबन्दी दूसरे पक्ष को ३० दिन की पूर्व सूचना दिये बिना नहीं की जा सकती। श्रमिक को अधिकार दिया गया है कि वह राज्य सरकार से इस बात की प्रार्थना कर सकता है कि वह उसको मालिकों से उसके बकाया धन की वसूली करवादे और अगर सरकार सन्तुष्ट हो जाये तो उस धन की वसूली के लिये जिलाधीश के नाम एक प्रमाण-पत्र जारी कर सकती है जो उसकी वसूली उसी प्रकार कर सकता है जैसे कि लगान की बकाया की वसूली की जाती है। यदि राज्य सरकार को इस बात का विश्वास हो जाये कि कोई विवाचन निर्णय धोखे (Fraud), मिथ्या निरूपण (Misrepresentation) या दुरभिसन्धि (*Collusion*) *द्वारा प्राप्त किया गया है या दिया गया है तो ऐसा निर्णय* लागू नहीं होगा। सुलह कार्यवाहियों के अतिरिक्त भी यदि कोई समझौता होता है तो उसकी रजिस्ट्री कराना आवश्यक है ताकि उसे लागू किया जा सके। सामाजिक न्याय के आधार पर रजिस्ट्रेशन को मना भी किया जा सकता है। अथवा यदि कोई समझौता दुरभि-सन्धि, धोखे अथवा मिथ्या-निरूपण के आधार पर किया गया है तब भी रजिस्ट्रेशन को मना किया जा सकता है।

उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७ मे पुन संशोधन करने के लिए, उत्तर प्रदेश विधान सभा में २८ जनवरी १९६६ को एक विधेयक प्रस्तुत किया गया। इसमें श्रम न्यायालयों तथा औद्योगिक अधिकरणों के पीठासीन अधिकारियों की योग्यताओं में संशोधन करके उन्हें केन्द्रीय अधिनियम के अनुरूप बना दिया गया है।

जुलाई १९५८ से उत्तर प्रदेश सरकार ने राजकीय उद्योगों और संस्थानों तथा उत्तर प्रदेश सहकारी बैंक और उसकी शाखाओं और उत्तर प्रदेश सहकारी संगम तथा उत्तर प्रदेश दुग्ध पूर्ति सहकारी संघ और शाखाओं, जिनमें १०० से अधिक श्रमिक काम करते हों, के लिए एक *स्थायी सुलह बोर्ड की स्थापना की है।* इसका मुख्य कार्यालय लखनऊ में है।

मध्य प्रदेश औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम, १६६०

मध्य प्रान्त तथा बरार (मध्य प्रदेश) मे मई १६४७ मे औद्योगिक विवाद समझौता अधिनियम पारित किया गया था, तथा इसमे दिसम्बर सन् १६४७, मई १६५१ तथा नवम्बर १६५५ मे संशोधन किये गये। प्रथम दो संशोधित अधिनियमो से तो केवल कुछ थोडे ही संशोधन हुए। परन्तु १६५५ के अधिनियम से कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इसके अनुसार श्रमिक के प्रतिनिधि की परिभाषा मे संशोधन हुआ। मान्यता प्राप्त श्रमिक संघो को अधिक सदस्य वाले श्रमिक संघो से प्रतिस्थापित करने का उपबन्ध भी था। सुलह बोर्ड के अधिकारो को भी विस्तृत कर दिया गया था और एक अथवा अधिक उद्योगो के लिए मजदूरी बोर्ड की स्थापना की भी व्यवस्था की गई थी। राज्य सरकार द्वारा कोई भी औद्योगिक विषय, जिसका सम्बन्ध मजदूरी, कार्य के घण्टे, विवेकीकरण, न्यूनतम मजदूरी, नियुक्ति या छटनी आदि से हो मजदूरी बोर्डों को सौंप जा सकते थे। सरकार को मजदूरी बोर्ड के निर्णय को लागू करना होता था। परन्तु यदि वह निर्णय से असहमत हो तब मामले को राज्य विधान सभा के समक्ष प्रस्तुत करना होता था, जो कि निर्णय को स्वीकार अस्वीकार तथा इसमें संशोधन कर सकती थी। मध्य प्रदेश का यह अधिनियम बम्बई के औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम पर ही लगभग आधारित था यद्यपि इसकी धारायें बम्बई के अधिनियम की तरह व्यापक नही थी। इसके अन्तर्गत मालिको द्वारा अनिवार्य रूप से स्थायी आदेशो को बनाने का भी उल्लेख था। किसी भी औद्योगिक मामले मे परिवर्तन करने के लिए १४ दिन की सूचना देनी आवश्यक थी और यदि पक्षो मे मतभेद हो तब समझौता कार्यवाही की अवधि मे उनको हड़ताल एवं तालाबन्दी करने की मनाही थी। अधिनियम के अन्तर्गत एक स्थायी सुलह व्यवस्था का उपबन्ध था जिसके अन्तर्गत समझौताकार विशेष समझौताकार, मुख्य समझौताकार, जिला औद्योगिक न्यायालय तथा राज्य औद्योगिक न्यायालय आते थे। ऐसे श्रम अधिकारियो की भी व्यवस्था थी जो विशेष परिस्थितियो मे श्रमिको के प्रतिनिधियो का कार्य कर सकते हो। १६५५ के संशोधन के अनुसार सुलह बोर्ड और मालिक मजदूर समितियाँ भी तमाम उद्योगो मे स्थापित की जा सकती थी। अधिनियम के अन्तर्गत यदि सम्बन्धित पक्ष चाहे तो विवाचन की भी व्यवस्था थी। राज्य सरकार को अधिकार दिया गया था कि यदि वह यह समझे कि जन-साधारण की सुरक्षा और सुविधा के विचार से इस प्रकार का पग आवश्यक है, तब वह अपनी ही इच्छा से किसी भी औद्योगिक विवाद को राज्य औद्योगिक न्यायालय को विवाचन के लिए सौंप सकती थी। संघ की कार्यवाही मे भाग लेने पर किसी भी श्रमिक को दण्ड देना या सताना मालिको के लिए गैर कानूनी कर दिया गया था।

मध्य प्रदेश मे उपरलिखित अधिनियम को १६६० के मध्य प्रदेश औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम द्वारा निरस्त कर दिया गया है। यह नया अधिनियम

१७ नवम्बर १६६० में पास करके लागू कर दिया गया है। इस अधिनियम का उद्देश्य यह है कि मालिकों और श्रमिकों के आपसी सम्बन्धों को ठीक किया जाये और इस उद्देश्य से औद्योगिक विवादों के निपटारे और उनसे सम्बन्धित बातों के विषयों पर उपबन्ध हैं। अधिनियम के अन्तर्गत कई प्रकार की व्यवस्थायें की गई है, जैसे—अधिकारियों की नियुक्ति, प्रतिनिधित्व श्रमिक संघों और मालिकों के परिषदों को मान्यता देना, श्रमअधिकारियों के अधिकारों और कर्तव्यों का उल्लेख, संयुक्त समितियों के कर्तव्य और उनका संविधान, समझौता और विवाचन की कार्य-विधियाँ, विवाचन निर्णयों को लागू करने और उनके काल की व्यवस्था, श्रम न्यायालयों, औद्योगिक न्यायालयों, जाँच न्यायालयों और विवाचन बोर्ड की स्थापना, अधिकार और कर्तव्य, अवैधिक हड़तालों और तालाबन्दी से सम्बन्धित विषयों का उल्लेख, श्रमिकों के बचाव की व्यवस्था, तथा अधिनियम के उपबन्धों के उल्लंघन करने पर दण्ड की व्यवस्था, आदि आदि। अधिनियम मे १६६१, १६६३ और १६६५ में संशोधन किये गये।

औद्योगिक विवाद विधान की संक्षिप्त समीक्षा

अब हम भारत मे औद्योगिक विवादो को रोकने तथा सुलझाने से सम्बन्धित सभी उपायो की संक्षिप्त समीक्षा करेंगे। १६२६ का व्यापार विवाद अधिनियम, जिसके अन्तर्गत औद्योगिक विवादों के निपटारे के लिये एक अस्थायी बाह्य व्यवस्था की गई थी, पहला कानून था जिसमे इस बात का उपबन्ध था कि भारत मे औद्योगिक विवाद रोकने और निपटारे के लिए कोई वैधानिक व्यवस्था स्थापित की जाये। परन्तु इस अधिनियम में भी इस बात की कोई व्यवस्था न थी कि कोई ऐसी आन्तरिक व्यवस्था की जाये जिससे पारस्परिक बातचीत द्वारा प्रारम्भिक अवस्था मे ही विवादों को निपटाया जा सके। अधिनियम का यह दोष सन् १६३८ के एक संशोधन द्वारा दूर किया गया, जिसमें कि सुलह अधिकारियो की नियुक्ति का प्रबन्ध था। बम्बई मे सन् १६३८ के बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम मे न केवल विवाचकों, सलाहकारों आदि की नियुक्ति की व्यवस्था थी बल्कि औद्योगिक न्यायालय के रूप मे एक स्थायी व्यवस्था का भी प्रबन्ध था जिससे भारत मे श्रम न्यायालयो का प्रारम्भ हुआ। यद्यपि अब भी आन्तरिक व्यवस्था की अपेक्षा बाह्य व्यवस्था पर अधिक बल था। परन्तु युद्ध के बाद के वर्षों मे अधिक उद्योग अशान्ति के कारण आन्तरिक व्यवस्था की आवश्यकता अनुभव की गई। भारत सरकार ने १६४७ का औद्योगिक विवाद अधिनियम पारित किया और कुछ प्रान्तीय सरकारो, जैसे—बम्बई, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में भी केन्द्रीय अधिनियम के आधार पर अधिनियम बनाये। औद्योगिक संघर्षों को रोकने के लिये तथा निपटारे के लिये आन्तरिक तथा बाह्य व्यवस्था दोनो की गई है।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है सरकार द्वारा औद्योगिक शान्ति बनाये रखने की जो व्यवस्था है, वह इस प्रकार है—(१) परामर्श व्यवस्था तथा

(२) सुलह व विवाचन व्यवस्था । औद्योगिक विवाद विधान के अन्तर्गत मालिक-मजदूर समितियाँ, श्रम तथा सुलह अधिकारी, औद्योगिक न्यायालय तथा श्रम न्यायालय, औद्योगिक अधिकरण तथा राष्ट्रीय अधिकरण आदि की व्यवस्था है। केन्द्रीय क्षेत्र के सस्थानो के लिये एक मुख्य श्रम आयुक्त की नियुक्ति की गई है जिसका कार्य औद्योगिक सम्बन्धो को भी देखना है। इसकी सहायता के लिये क्षेत्रीय श्रम आयुक्त, सहायक श्रम आयुक्त और श्रम-निरीक्षक हैं। औद्योगिक विवादो के विवाचन के लिये श्रम न्यायालय, औद्योगिक अधिकरण तथा राष्ट्रीय न्यायालय स्थापित किये गये है जिनका अपना अधिकार क्षेत्र है। धनबाद में एक केन्द्रीय श्रम न्यायालय के अलावा बम्बई, धनबाद, कलकत्ता और दिल्ली मे चार औद्योगिक अधिकरण है। देहली मे भी एक औद्योगिक अधिकरण देहली प्रशासन के अन्तर्गत बना दिया गया है जिसका उपयोग केन्द्रीय सरकार भी कर लेती है। राज्य सरकारो ने भी सुलह के लिये व्यवस्था की है जिसके अध्यक्ष श्रम आयुक्त होते है। राज्यो म भी अधिकरण और श्रम न्यायालय स्थापित हो गये है जो केन्द्रीय क्षेत्र म विवादो के विवाचन के लिये आवश्यकता के समय तदर्थ अधिकरण के रूप म भी काय करते है। जब भी आवश्यक होता है, तभी राष्ट्रीय अधिकरण भी स्थापित किये जाते है। उत्तर प्रदेश मे सरकारी औद्योगिक सस्थानो के लिए तथा सहकारी सघो व बैंक के लिए एक स्थायी सुलह बोर्ड तथा मालिक-मजदूर परिषदो की स्थापना की गई है। इस प्रकार हम देखते है कि देश मे औद्योगिक विवादो को सुलझाने तथा उनकी रोकथाम के लिए एक व्यापक व्यवस्था की गई है।

कार्यान्वित व्यवस्था (Implementation Machinery)

श्रम सम्बन्धी विवाचन निणय, समझौते तथा विधान को लागू न करने या लागू करने म दर के कारण सदा शिकायतें आती रहती है तथा इस कारण औद्योगिक विवाद भी हो जाते हैं। इन सबका लागू न करना एक वैध अपराध तो है और इसके लिय दण्ड की व्यवस्था भी है, परन्तु अनुभव से यह पता चलता है कि इमस तनाव और कटुता कम नही होती और दण्ड आदि से औद्योगिक सम्बन्ध अच्छे नही बनते। इसलिये स्थायी श्रम समिति ने इस समस्या पर अक्टूबर १९५७ मे अपने १८वें अधिवेशन मे विचार किया। इसकी सिफारिशो के आधार पर केन्द्र और राज्यो मे इस बात की विशेष व्यवस्था कर दी गई है कि श्रम सम्बन्धी विवाचन निर्णय, समझौते आदि और अनुशासन संहिता उचित प्रकार से कार्यान्वित हो। इसका प्रारम्भ जनवरी १९५८ मे हुआ जबकि केन्द्रीय श्रम व रोजगार मन्त्रालय मे एक कार्यान्वित विभाग (Implementation Cell) खोला गया। शीघ्र ही इसके कार्यो का विस्तार हो गया और एक केन्द्रीय मूल्याकन तथा कार्यान्वित प्रभाग (Central Evaluation and Implementation Division) की स्थापना की गई। जून १९५८ मे एक त्रिदलीय केन्द्रीय कार्यान्वित समिति भी

बनाई गई जिसके अध्यक्ष केन्द्रीय श्रम मन्त्री है जिसमे केन्द्रीय मालिकों तथा कर्मचारियो के सगठन के ४ प्रतिनिधि है। सब राज्य सरकारों ने भी अब अपने श्रम-विभागो मे कार्यान्वित इकाइयाँ खोली है। जम्मू व कश्मीर को छोड कर, सभी राज्यो मे त्रिदलीय कार्यान्वित समितियाँ स्थापित कर दी गई हैं। केन्द्रीय प्रभाग राज्यों की कार्यान्वित व्यवस्था में समन्वय स्थापित करता है तथा नीति मे समानता लाता है। राज्यों के कार्यान्वित अधिकारियो की समय-समय पर बैठकें होती रहती है। चार राज्यो (आन्ध्र, असम, पजाब और राजस्थान) मे स्थानीय/क्षेत्रीय कार्यान्वित समितियाँ भी कार्य कर रही है।

केन्द्रीय मूल्यांकन तथा कार्यान्वित प्रभाग के मुख्य कार्य निम्नलिखित है—(१) यह देखना कि अनुशासन सहिता, आचरण सहिता, श्रम सम्बन्धी विधान, विवाचन निर्णय, समझौते आदि उचित प्रकार से लागू हो रहे है ताकि औद्योगिक विवादो के मुख्य कारणों की आरम्भ मे ही रोकथाम की जा सके; (२) औद्योगिक विवादों की रोकथाम के लिये कुछ प्रारम्भिक पग उठाना ताकि ऐसे विवाद हानिकारक न हो जायें और बहुत दिनो तक न चलते रहे ; (३) कुछ मुख्य हड़तालो, तालाबन्दियो और विवादो का मूल्यांकन करना ताकि यह जाना जा सके कि उनका उत्तरदायित्व किस पर है ; (४) यह प्रभाग श्रम सम्बन्धी विधान, विवाचन निर्णय, नीति तथा अन्य निर्णयो का भी मूल्यांकन करता है और इस बात को देखता है कि जिस उद्देश्य से यह सब बनाये गये है वह उद्देश्य पूरे हो रहे है या नही तथा उनमें और क्या सुधार किये जा सकते है।

कार्यान्वित प्रभाग और समितियाँ कई विवादो मे न्यायालयो से बाहर ही समझौता करने मे सफल हुई हैं। केन्द्रीय मूल्यांकन तथा कार्यान्वित प्रभाग ने समय-समय पर अनेक मूल्यांकन सम्बन्धी अध्ययन किये है। श्रमिको और मालिको के केन्द्रीय सगठनो ने एक छानबीन समिति (Screening Committee) की स्थापना की है, जो प्रत्येक मामले की न्यायालयो मे अपील होने से पहले छानबीन करती है। कई मामलो में इन्होंने अपने सदस्यो को अपील करने से समझा-बुझा कर रोक दिया है। इसी प्रकार, अधिकरणो के निर्णय के विरुद्ध सरकारी क्षेत्र के उद्यमो द्वारा जो अपीलें दायर की जाती है उनकी छानबीन के लिए एक कार्य-विधि निर्धारित की गई है।

१९५० का श्रम-सम्बन्ध विधेयक (The Labour Relations Bill, 1950)

उल्लिखित अधिनियमों से जो अनुभव हुआ उसको देखते हुये सरकार ने औद्योगिक विवादों सम्बन्धी विधान मे महत्वपूर्ण परिवर्तन करने के विषय में गम्भीरतापूर्वक विचार किया और इसके परिणामस्वरूप १९५० का श्रम सम्बन्ध विधेयक ससद् मे प्रस्तुत किया गया। इस श्रम सम्बन्ध विधेयक ने नये उपायो का मार्ग प्रशस्त किया और विवादो को सुलझाने के लिये आन्तरिक एव बाह्य व्यवस्था

संघर्षों पर आपसी समझौता करना था। आयोग अपीलीय अधिकरण के पक्ष में नहीं था। उसके अनुसार औद्योगिक न्यायालयों या अधिकरणों के निर्णय के विरुद्ध कोई अपील नहीं होनी चाहिये सिवाय उन विशेष मामलों के जिनमें निर्णय विप्रतीप (Perverse) तथा स्वाभाविक न्याय के विरुद्ध मालूम हो। परन्तु आयोग किसी ऐसी व्यवस्था के विरुद्ध नहीं था जिससे कुछ विशेष विवादों को निपटाने में न विलम्ब हो और न अधिक व्यय हो। औद्योगिक संघर्षों को सुलझाने के लिये जो भी व्यवस्था की जाये वह निम्नलिखित पाँच सिद्धान्तों पर आधारित होनी चाहिये—(क) वैधानिक विधियों और कार्यवाही की औपचारिकता (technicalities) जितनी भी कम हो सके, कम कर देनी चाहिए। (ख) प्रत्येक मामले की प्रकृति और महत्त्व के अनुसार अन्तिम और सीधा निपटारा होना चाहिये। (ग) न्यायालयों या अधिकरणों में केवल प्रशिक्षण पाये हुए विशेषज्ञों की नियुक्ति होनी चाहिये। (घ) असाधारण मामलों को छोड़कर इन न्यायालयों के विरुद्ध अपील कम कर देनी चाहिये। (ङ) पंच फैसले को शीघ्र से शीघ्र लागू करने की व्यवस्था होनी चाहिये।

आयोग ने एकरूपता को लाने के लिये और अधिकरणों के मार्ग-दर्शन के लिये आपसी सम्बन्धों को नियमित करने वाले कुछ आदर्श नियमों की स्थापना की सिफारिश भी की थी। सरकार, श्रमिक और मालिक की त्रिदलीय प्रतिनिधि समितियों द्वारा इस प्रकार के आदर्श नियम बनाने की व्यवस्था थी और किसी मतभेद होने की अवस्था में सरकार को विशेषज्ञों के परामर्श पर निर्णय लेकर इस निर्णय को न्यायालयों या अधिकरणों पर लागू करने का सुझाव था।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में आयोग ने संकेत किया है कि औद्योगिक सम्बन्धों का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक शान्ति स्थापित करना होना चाहिए जिसके लिये पारस्परिक वार्ता, समझौता और ऐच्छिक पंच-फैसले का उपयोग किया जा सकता है और दुस्साध्य या हठी (intractable) मामलों में अनिवार्य पंच-फैसले का प्रयोग भी किया जा सकता है। औद्योगिक सभ्यता में अगर काम रुक जाता है तो इस बात का अनावश्यक प्रचार हो जाता है। इसके प्रतिरोध की आवश्यकता है। इस प्रतिरोध के लिये ऐसे उद्योग-धन्धों में, जिनमें बहुत समय से शान्तिपूर्वक काम करने की परम्परा पड़ी हुई है, उन बातों के अध्ययन की आवश्यकता है जिनके कारण औद्योगिक शान्ति या एकता आ जाती है। आयोग ने औद्योगिक शान्ति स्थापित करने की दृष्टि से रोक-थाम के साधनों को अधिक महत्त्व प्रदान किया है। इसने यह भी सुझाव दिया है कि विवाचन-निर्णय तथा समझौतों आदि को न मानने और लागू न करने की अवस्था में कठोर दण्ड की व्यवस्था की जाए। उल्लंघन की अवस्था में निर्णय को लागू करने का उत्तरदायित्व किसी उपयुक्त अधिकरण को होना चाहिए जिस पर दोनों पक्षों की सीधी पहुँच हो। यह सुझाव दिया गया है कि केन्द्रीय राज्यों और निजी संस्थानों में सभी स्तरों पर एक स्थायी

सयुक्त परामर्श-दात्री व्यवस्था होनी चाहिये। सस्थानो मे इस उद्देश्य से मालिक-मजदूर समितियाँ कार्य कर सकती हैं और उनके प्रभावपूर्ण कार्य करने के लिये उनके उत्तरदायित्वो तथा श्रमिक सघो के उत्तरदायित्वो के बीच सीमा स्पष्ट कर देनी चाहिये। सयुक्त परामर्शदात्री बोर्ड का भी पूर्णरूप से उपयोग किया जाना चाहिये। आयोग ने श्रम और प्रबन्ध मे अधिक सहयोग को बहुत महत्व प्रदान किया है जो कि प्रबन्ध परिषदो के द्वारा प्राप्त हो सकता है जिसमे प्रबन्धको, तकनीकी विशेषज्ञ एव श्रमिको के प्रतिनिधि हो। इस प्रकार की परिषदो को सस्थान से सम्बन्धित सभी मामलो पर विचार-विमर्श करना चाहिये, केवल उन मामलो को छोडकर जो सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत आते है।

तीसरी पचवर्षीय आयोजना मे औद्योगिक सम्बन्धो के विषय मे इस बात पर बल दिया गया है कि प्रत्येक उपयुक्त स्तर पर समय से कार्यवाही करके औद्योगिक अशान्ति की रोकथाम करनी चाहिये। तृतीय आयोजना काल मे औद्योगिक सम्बन्धो के विकास के लिय जो कार्य किये जायेगे उनका आधार उस नीव पर होगा जो अनुशासन सहिता के लागू होने से पड चुकी है।" इस अनुशासन सहिता की रिपोर्ट म प्रशसा की गई है और कहा गया है कि पिछले तीन वर्षो को देखते हुये इस सहिता का कार्य सफल रहा है और इसे आजमाया जा चुका है। सभी मालिको और श्रमिको को अनुशासन सहिता के अन्तर्गत अपने-अपने उत्तरदायित्वो को पूर्ण रूप से समझना चाहिये तथा औद्योगिक सम्बन्धो के दिन-प्रतिदिन के सचालन मे इस सहिता को एक जीवित शक्ति बनाना है। सहिता को लागू करने के लिय जो नियम और आधार बनाये गये है और इसके पीछे जो शक्ति है, उन्हे दृढ करना है। ऐच्छिक विवाचन के सिद्धान्त को अधिक स अधिक लागू करन के लिये मार्ग निकाले जाने चाहिय। प्रादेशिक तथा उद्योग स्तर पर विवाचको की नामिकाये (Panels) बनाने के लिये सरकार को अग्रिम पग उठाने चाहिय। योजना मे आग कहा गया कि "यह भी आवश्यक है कि कारखानो मे मालिक-मजदूर समितियो को शक्तिशाली बनाया जाय ताकि वे श्रम सम्बन्धी मामलो के प्रजातान्त्रिक प्रशासन का सक्रिय अभिकरण बन जाय। मालिक-मजदूर समितियो का श्रमिक सघो से भेद करना आवश्यक है और यदि उनके कार्यो का स्पष्ट रूप से सीमाकन कर दिया जायगा तो उनके सफलतापूर्वक कार्य करने म एक बडी रुकावट दूर हो जायगी। सयुक्त प्रबन्ध परिषद् योजना को धीरे-धीरे नय उद्योगो और औद्योगिक इकाइयो पर लागू किया जाये ताकि वह औद्योगिक व्यवस्था का एक सामान्य अग बन जाय। श्रमिक के प्रबन्ध मे भाग लेने की योजना का जैसे-जैसे विकास होगा वैसे ही यह योजना निजी क्षेत्र को समाज के समाजवादी ढाँचे मे ढालने के लिये बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध होगी।"

चौथी पचवर्षीय योजना की रूपरेखा मे औद्योगिक विवाद अधिनियम का उल्लेख किया गया है जिसमे कि सुलह, न्याय-निर्णय (adjudication) और ऐच्छिक पच निर्णय (voluntary arbitration) द्वारा विवादो को सुलझाने के

व्यवस्था है। "यद्यपि विधान के उपबन्ध (provisions) अन्तिम अस्त्र के रूप में अपनाये जा सकते हैं", किन्तु आयोजना में कहा गया है, "यह स्वीकार किया जाता है कि मालिकों व मजदूरों के बीच अधिक अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने के लिये सामूहिक सौदाकारी पर अधिक जोर दिया जाना चाहिये और श्रमिक संघ आन्दोलन को मजबूत बनाया जाना चाहिये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये काफी मात्रा में ऐच्छिक पंच निर्णय का आश्रय लिया जा सकता है।" आयोजना में आगे बताया गया है कि "इस बात पर व्यापक सहमति है कि सुलह (conciliation), न्याय-निर्णय तथा ऐच्छिक पंच निर्णय की जो वर्तमान व्यवस्था है उसको और अधिक शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में यह अच्छा होगा कि श्रम-न्यायालयों को कुछ अधिकार दे दिये जायें जिससे कि वे मजदूरों को वे धनराशियाँ वसूल करवा सकें जिनको कि वे विभिन्न पंच-फैसलों तथा समझौतों के अन्तर्गत पाने के अधिकारी थे।" आयोजना में इस बात की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया है कि अनुशासन संहिता के पूर्ण परिपालन के सम्बन्ध में आश्वस्त होने के लिये और पग उठाये जायें क्योंकि इस संहिता से औद्योगिक सम्बन्ध अच्छे बनाये रखने की दिशा में ठीक प्रगति हुई है, सभी योग्य इकाइयों में मालिक-मजदूर समितियों की स्थापना को प्रोत्साहन मिला है और संयुक्त प्रबन्ध परिषदों को औद्योगिक सम्बन्धों के ढाँचे में एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करने में सफलता मिली है।

यह सब सुझाव बहुत लाभदायक हैं। परन्तु सुझावों को आयोजना नहीं कहा जा सकता। आवश्यकता तो इस बात की है कि इन सुझावों को कार्य रूप में परिणत किया जाय अन्यथा कोरी आशाओं से कुछ प्राप्ति नहीं हो सकेगी।

त्रिदलीय श्रम व्यवस्था (Tripartite Labour Machinery)

सरकार की श्रम नीति को निर्धारित करने, श्रम सम्बन्धी आदर्श नियम तथा स्तर निश्चित करने तथा मालिकों एवं श्रमिकों से सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करने के लिये त्रिदलीय व्यवस्था की महत्ता को अब सभी देशों में स्वीकार कर लिया गया है। वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का पूरा ढाँचा इस त्रिदलीय विचार-विमर्श के सिद्धान्त पर ही आधारित है। परन्तु भारत में द्वितीय महायुद्ध से पहले श्रमिकों को सलाहकार के रूप में मान्यता प्रदान नहीं की गई थी। युद्ध के कारण अधिक उत्पादन और अन्य आवश्यकताओं की जरूरत से सरकार को इस बात के लिये मजबूर होना पड़ा कि श्रमिकों का सहयोग प्राप्त करें। श्रमिकों को १६४२ के भारतीय श्रम सम्मेलन में स्थान दिया गया। उसके पश्चात् सरकार ने शनैः शनैः एक त्रिदलीय श्रम व्यवस्था का न केवल विकास किया है वरन् उसे पूर्ण भी किया है। यह अब नई सलाहकार संस्था बन गई है। इसका एक रूप भारतीय श्रम सम्मेलन है, जिसको साधारणतया त्रिदलीय श्रम सम्मेलन भी कहा जाता है। इसको पहले परिपूर्ण (Plenary) श्रम सम्मेलन

कहते थे। इस श्रम सम्मेलन में जो कि वर्ष मे एक बार होता है श्रम से सम्बन्धित सभी पक्षो, अर्थात् केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों तथा मालिको और श्रमिको के संघो को प्रतिनिधित्व दिया जाता है। सम्मेलन का २२वाँ अधिवेशन २९–३० जुलाई १९६४ को बंगलौर में, २३वाँ अधिवेशन ३०–३१ अक्तूबर १९६५ में नई दिल्ली में और २४वाँ अधिवेशन भी २९–३० जुलाई १९६६ को नई दिल्ली में ही हुआ था। सम्मेलन ने **स्थायी श्रम समितियाँ** तथा **औद्योगिक समितियाँ** स्थापित की है जिनकी सभायें साधारणतया होती रहती है। महत्वपूर्ण औद्योगिक समितियाँ सीमेंट व जूट उद्योगो में, कोयला तथा अन्य खानों मे चाय बागानो मे चमड़ा कमाने तथा चमड़े की वस्तुये बनाने के कारखानो मे, सड़क परिवहन मे, रसायन तथा इन्जीनियरिंग उद्योगो में तथा भवन एवं निर्माण पर स्थापित हैं। यह सम्मेलन अब ऐसी संस्था बन गई है जिसकी सभाओं में विधान सभा में आने से पूर्व श्रम कानून के लिये सुझावों तथा श्रम-नीति और श्रम प्रशासन से सम्बन्धित विषयों पर विचार-विमर्श किया जाता है। इस प्रकार विधान सभा मे श्रम कानूनों के पास होने मे सरलता हो जाती है क्योंकि प्रस्ताव की अन्तिम रूपरेखा तैयार करने से पूर्व मतभेद के सभी पहलुओं पर विचार-विनिमय हो जाता है, और सभी पक्षों को अपना अपना दृष्टिकोण रखने का अवसर मिल जाता है। **श्रम मन्त्रियों का सम्मेलन** भी इस व्यवस्था से सम्बन्धित है यद्यपि यह त्रिदलीय नहीं है। सरकारी उद्यमों के प्रधान भी सम्मेलनों में मिलते हैं। केन्द्र तथा राज्य में त्रिदलीय सलाहकार समितियां भी स्थापित की गई है तथा समझौता व्यवस्था के लिये एक केन्द्रीय सलाहकार समिति की भी स्थापना की गई है। सन् १९४८ में एक केन्द्रीय श्रम सलाहकार परिषद् की स्थापना की गई जिसमे उचित मजदूरी तथा लाभ विभाजन पर विचार के लिये विशेषज्ञों की दो समितियां नियुक्त की गई। सन् १९५१ में मालिकों और श्रमिकों के बीच सुलह कराने के लिये एक संयुक्त उद्योग और श्रमिक सलाहकार बोर्ड स्थापित किया गया। सन् १९५४ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रस्ताव तथा सिफारिशों की जाँच करने के लिये तीन सदस्यों की एक त्रिदलीय समिति बनाई गई। आयोजना आयोग ने भी श्रम नीति पर परामर्श के लिये श्रम विशेषज्ञों की एक समिति बनाई है। अन्य कई समितियाँ और बोर्ड भी स्थापित किये गये हैं। उदाहरणतया मूल्यांकन तथा कार्यान्विति समिति, मजदूरी पर छानबीन दल, श्रम अनुसंधान पर केन्द्रीय समिति, रोजगार पर केन्द्रीय समिति, मजदूरी मण्डल, औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव पर त्रिदलीय स्थायी समिति आदि-आदि। केन्द्र तथा राज्यों मे कई त्रिदलीय सम्मेलनों तथा समितियों की अनेक बैठकें हुई है जिनमे महत्वपूर्ण विषयों पर विचार विमर्श हुआ है। इससे मालिको, सरकार और श्रमिकों को एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझने मे बहुत सहायता मिली है। इसके अतिरिक्त, विशेष मसलों के लिये भी आयोगों तथा समितियों की नियुक्ति की जाती है, जैसे कि बोनस आयोग की नियुक्ति। उत्तर-प्रदेश मे श्रमिकों के कल्याण के लिये राज्य त्रिदलीय श्रम सम्मेलन, कानपुर त्रिदलीय

श्रम सम्मेलन, स्थायी श्रम समिति, वपड़ा, मद्य और चीनी उद्योग पर त्रिदलीय श्रम समितियाँ तथा श्रमिकों के कल्याण के लिये अनेक सलाहकार समितियाँ है। संसद ने भी एक स्थायी श्रम समिति स्थापित की है।

औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव
(Industrial Truce Resolution)

यहां औद्योगिक विराम सधि प्रस्ताव का भी उल्लेख कर देना उचित होगा। यह प्रस्ताव दिसम्बर १९४७ मे सरकार, मालिको और श्रमिको के एक त्रिदलीय सम्मेलन द्वारा पारित हुआ था। इसका कारण यह था कि १९४७ में बहुत अधिक सख्या मे हड़ताले हुई थी जिनसे उत्पादन बहुत गिर गया था और चारो ओर 'उत्पादन करो अथवा विनाश होगा' की ही पुकार थी। देश को अर्थव्यवस्था को सुदृढ बनाये रखने के लिये उत्पादन बढाने के हेतु इस प्रस्ताव मे मालिको और श्रमिको में सहयोग और मैत्रीपूर्ण सम्बन्धो की आवश्यकता पर बल दिया गया था। इस प्रस्ताव मे मालिको और श्रमिको से इस बात का अनुरोध किया गया था कि वह इस बात के लिये सहमत हो जाये कि तीन वर्ष तक औद्योगिक शान्ति बनाये रखेंगे और हड़ताल, तालाबन्दी तथा कार्यमन्दन युक्तियो जैसे साधनो को न अपनायेगे। मालिको को उद्योग में श्रम की महत्ता और श्रमिको के लिये उचित मजदूरी और अच्छी कार्य की दशाओं की आवश्यकता को स्वीकार करना था। श्रमिको को भी राष्ट्रीय आय मे वृद्धि करने के लिये अपने कर्त्तव्यो को समझना था जिसके बिना उनके रहन-सहन के स्तर मे स्थायी उन्नति नहीं हो सकती थी। प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि विवादों को सुलझाने मे मालिको और श्रमिको दोनो का ही दृष्टिकोण यह होना चाहिये कि उत्पादन मे किसी प्रकार की बाधा डाले बिना पारस्परिक वार्तालाप से मामला सुलझा ले। उपभोक्ताओं के हित के लिये यह सुझाव था कि उद्योगो के अत्यधिक लाभ को कर लगाकर और अन्य साधनो से रोका जाय। अन्य सुझाव प्रस्ताव मे यह थे कि श्रमिको को उचित मजदूरी मिलने का प्रबन्ध होना चाहिये। प्रत्येक औद्योगिक सस्थान मे अनुरक्षण (Maintenance) और विस्तार के लिये उचित धन आरक्षित करने के पश्चात् इस बात की भी व्यवस्था होनी चाहिये कि श्रमिको को उचित मजदूरी मिले और लगी हुई पूँजी पर भी उचित लाभ हो।

सम्मेलन ने इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये निम्नलिखित साधनो की सिफारिश की—(क) शान्तिपूर्ण उपायो से विवादो को सुलझाने की व्यवस्था का पूर्ण उपयोग किया जाना चाहिये और जहां ऐसी व्यवस्था न हो वहाँ पर तुरन्त ही ऐसी व्यवस्था हो जानी चाहिये। (ख) केन्द्रीय, क्षेत्रीय व उत्पादन इकाई समितियाँ बनाकर श्रमिकों को औद्योगिक उत्पादन के सभी मामलो पर सम्मिलित किया जाना चाहिये। (ग) प्रत्येक औद्योगिक सस्थान मे दिन-प्रतिदिन के विवादो को सुलझाने के लिये प्रबन्धकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियो की मालिक मजदूर

समितिया बनाई जानी चाहिय । (घ) श्रमिको के जीवन स्तर को सुधारने के लिये औद्योगिक श्रमिको के आवास पर तत्काल ध्यान देना चाहिय और आवास की लागत सरकार मालिको और श्रमिको तीनो के ही द्वारा दी जानी चाहिए, परन्तु श्रमिको का भाग केवल उचित किराय के रूप मे होना चाहिय ।

औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव को लागू कराने के लिए उठाय गये पग

अप्रैल १९४८ मे भारत सरकार न अपनी औद्योगिक नीति की घोषणा म इस प्रस्ताव का स्वीकार किया और इस हतु एक विशष अधिकारी की नियुक्ति भी की। यह भी निश्चय किया गया कि प्रत्येक मुख्य उद्योग के लिय एक केन्द्रीय सलाहकार परिषद् तथा अनक समितियो की स्थापना की जाये । विशष प्रश्नो पर विचार करने के लिये उप समितियो की भी नियुक्ति की जाय । अप्रल १९४८ म हुय भारतीय श्रम सम्मेलन के १०वे अधिवेशन म मालिको और श्रमिको न भी प्रस्ताव का स्वीकृत कर लिया । कवल अखिल भारतीय श्रमिक सघ काग्रस न ही इसको स्वीकार करन म कुछ शर्ते रखी । विभिन्न राज्य सरकारो न इस प्रस्ताव को कार्यान्वित करन के लिये प्रयत्न किय और मालिक मजदूर व उत्पादन समितियो श्रम अधिकरणो विवादको और श्रम सलाहकार परिषदो आदि की नियुक्ति की । कुछ राज्यो न औद्योगिक विवादो के निपटारे के लिय कुछ अलग से अपन अधिनियम बनाय जिनका उल्लख ऊपर किया जा चुका है। इस प्रस्ताव के परिणामस्वरूप ही उचित मजदूरी पूजी पर उचित लाभ लाभ विभाजन की योजनाओ आदि पर विचार करन क लिय विशषज्ञ समितियो की नियुक्ति की गई। ससद् म एक उचित मजदूरी विधेयक भी प्रस्तुत किया गया था पर तु लाभ विभाजन के लिय अभी तक कोई पग नही उठाया गया है । आवास व्यवस्था की दृष्टि से सरकार न विभिन्न योजनाय कार्यान्वित की है ।[13] विवादो को रोकन और उनके निपटारे के लिय सरकार क प्रयत्नो की विवेचना ऊपर की जा चुकी है । विभिन्न राज्यो म बहुत स उद्योगो क लिय मजदूरी बोर्डो की स्थापना हो चुकी है ।

इसम सन्देह नही है कि औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव स एक स्वस्थ वातावरण उत्पन्न हो गया और औद्योगिक विवादो की सख्या म भी कुछ कमी दिखाई दी । इसन देश के हित के लिय औद्योगिक शान्ति की आवश्यकता पर जोर दिया । परन्तु आकडो को देखने से स्पष्ट है कि विवादो म कोई प्रशसनीय कमी नही हुई। यहा यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि चाहे परिस्थितिया कैसी भी कठिन क्यो न हो, जब तक राष्ट्र की सुरक्षा को ही खतरा न हो तब तक मानव के मूल्य पर उत्पादन मे वृद्धि करना अवाछनीय है। इस प्रकार स उद्योग मे शान्ति स्थापित करन मे पूँजीपतियो की स्थिति दृढ होती है और श्रमिको का और अधिक शोषण होता है । अत व्यावहारिक रूप मे औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव अधिक प्रभावशाली सिद्ध नही हुआ। ईस्टर्न इकोनोमिस्ट न लिखा था

13 मजदूरी और आवास समस्या के अध्याय को देखिय ।

कि यदि श्रमिक कारखाने मे आने पर निरीक्षक की आँखों में वैसी ही पहले की सी भयानकता देखता है और घर लौटने पर वही गन्दगी व निर्धनता आदि दृष्टि-गोचर होती है और जब वह इस बात का अनुभव करता है कि उसके पैसे की क्रय-शक्ति दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है तो वह इस बात की कोई परवाह नही करेगा कि उसकी ओर से किसी ने किसी सन्धि पर हस्ताक्षर किये है या नहीं। अत. उद्योग में शान्ति स्थापित करने के लिये इस प्रकार के प्रस्तावो में आशा व्यक्त करने के स्थान पर औद्योगिक विवादों को उत्पन्न करने वाले कारणों का समाधान और उनके निपटारे और रोकने के सुरक्षात्मक साधन अपनाये जाने की अधिक आवश्यकता है।

फिर भी सकटकालीन अवस्था मे, जैसा कि चीनी आक्रमण के बाद हमारे देश में स्थिति उत्पन्न हो गई है, ऐसे विराम सन्धि प्रस्तावो का बहुत अधिक महत्व है। ऐसे समय में यह प्रत्येक व्यक्ति और दल का कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने सब मतभेदो को भूल जाये, बलिदान देने को तैयार रहे और हर सम्भव प्रयास से देश की सुरक्षा के लिये कार्य करे। इस उद्देश्य से ३ नवम्बर १९६२ को सभी केन्द्रीय मालिको और श्रमिको के प्रतिनिधियो की सयुक्त सभा ने यह सकल्प किया कि अधिकतम उत्पादन करने के लिये भरसक प्रयत्न किया जायेगा और देश के सुरक्षा प्रयत्नो को हर सम्भव प्रयासो द्वारा बढाने मे प्रबन्धको और श्रमिको का पूर्ण सहयोग होगा। सभी ने देश के प्रति अपनी वफादारी और भक्ति की पुन. पुष्टि की। इसके लिये औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ। इसके अन्तर्गत प्रबन्धको और श्रमिको ने यह भावना व्यक्त की है कि देश की सुरक्षा के हेतु और उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये उपयुक्त वातावरण पैदा करेंगे और आपसी सहयोग बढायेंगे, उत्पादन को रोका या कम नहीं किया जायेगा, अधिक कार्य के घण्टे और पारियो मे काम किया जायेगा। कीमतो को स्थिर रखने के प्रयत्न किये जायेंगे और राष्ट्रीय सुरक्षा कोष मे अधिक बचत करके अनुदान दिया जायेगा (प्रस्ताव का पूरा वर्णन परिशिष्ट 'ग' में देखिए)।

सुलह तथा विवाचन पर टिप्पणी

समझौता, विवाचन और मध्यस्थता
(Conciliation, Arbitration and Mediation)

औद्योगिक विवादो को शान्तिपूर्ण ढग से सुलझाने के सुलह तथा विवाचन—दो मान्यता-प्राप्त साधन है। सुलह व्यवस्था वह विधि है जिसमे श्रमिको और मालिको के प्रतिनिधि तीसरे व्यक्ति या व्यक्तियो के समक्ष इस हेतु लाये जाते है कि उनको बिना किसी बाहरी व्यक्ति के हस्तक्षेप के पारस्परिक वार्तालाप द्वारा समझौता कराने के लिए प्रेरित किया जा सके। दूसरा साधन मध्यस्थता है। मध्यस्थता मे किसी बाहरी व्यक्ति को उस समय हस्तक्षेप करना पडता है जबकि साधारण सुलह बोर्ड द्वारा वार्तालाप के प्रयत्न असफल होने लगते है। मध्यस्थ

कोई व्यक्ति या व्यक्तिगत अधिकारी या बोर्ड भी हो सकता है। सुलह तथा मध्यस्थता के यह साधन इस बात का प्रयत्न करते है कि सम्बन्धित पक्ष आपस मे मिलकर पारस्परिक वार्तालाप और वाद विवाद द्वारा अपने मतभेदो का शान्तिपूर्वक निपटारा कर ले। विवाचन इस बात का साधन है कि किसी भी विवादपूर्ण विषय पर एक तीसरे पक्ष द्वारा एक निश्चित निर्णय या विवाचन प्राप्त करे लिया जाये। इस प्रकार विवाचन व्यवस्था मे अलग से एक प्राधिकारी होता है जो कुछ निश्चित नियमो के आधार पर औद्योगिक विवादो पर अपना निर्णय देता है। विवाचन विभिन्न पक्षो की पारस्परिक सहमति मे होता है। जब सरकार किसी मामले को श्रम न्यायालय अथवा औद्योगिक अधिकरण को सौपने का निश्चय करती है तो उसे न्याय-निर्णय (adjudication) कहा जाता है। इस प्रकार अनिवार्य विवाचन को ही न्याय-निर्णय का नाम दिया जाता है।

सुलह और विवाचन की यह दोनो विधियाँ ऐच्छिक या अनिवार्य दोनो ही हो सकती हैं। यदि राज्य कुछ विशेष प्रकार के विवादो को अनिवार्य रूप से सुलह या विवाचन को सौपने के लिय नियम बना दे तो यह विधियाँ अनिवार्य हो जाती ह। यह साधन ऐच्छिक इस दृष्टि से होते है कि सरकार विवादो को सुलह या विवाचन को प्रस्तुत करने के लिय केवल सुविधाये प्रदान कर देती है। सरकार कार्य को सम्पन्न कराने के लिये उपयुक्त मशीनरी की स्थापना करती है तथा सामान्य दशाय उत्पन्न करती है। इस प्रकार की व्यवस्था स्थायी, तदर्थ (ad hoc), साधारण या विशिष्ट सस्था द्वारा हो सकती है। परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि कवल तकनीकी बातो पर ही ध्यान न दिया जाये क्योकि औद्योगिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय वार्तालाप मे किसी व्यवस्था का होना इतना महत्वपूर्ण नही होता जितना दूसरो के लिये शुभ भावनाओ और पारस्परिक विश्वास का प्रभाव होता है। फिर भी इस बात का कुछ तो असर पडता ही है कि किस प्रकार की व्यवस्था की गई है और कभी-कभी तो मालिको और श्रमिको म एक दूसरे के प्रति जो दृष्टिकोण होता है उस पर प्रभाव डालकर, और प्रत्यक्ष रूप से भी, इस व्यवस्था का महत्व अधिक हा जाता है। इस कारण औद्योगिक शान्ति को बनाये रखने के लिये जो व्यवस्था की जाये उसके लिये जो भी समस्यायें सामने आती है उनका अध्ययन महत्वपूर्ण है।[14]

भारतवर्ष म औद्योगिक विवाद निरन्तर तीव्र गति से बढते जा रहे हैं। उनका जल्दी जल्दी होना और उनसे घोर औद्योगिक और सामाजिक अव्यवस्था फैलना एसी बातें है जो चिन्ता का विषय बन जाती हैं। किसी विवाद-विशेष क दृष्टिकोण से हडताल अथवा तालाबन्दी का समर्थन चाहे किया जा सकता हो, परन्तु विस्तृत सामाजिक दृष्टिकोण से इच्छित परिवर्तन लाने के लिय यह हानिकारक साधन है। काम रुक जाने से कई गम्भीर परिणाम निकलते है। उत्पादन

14 A C Pigou —*Economics of Welfare*.

और अर्थव्यवस्था दोनों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। श्रमिकों का रोजगार और मजदूरी छिन जाती है। मालिकों को लाभ नही मिलता और उपभोक्ताओं को वस्तुयें और सेवायें नही मिलती। यदि मूल उद्योगों में कार्य रुक जाता है तो उसके उत्पादन पर निर्भर रहने वाले उद्योगों पर प्रभाव पड़ता है और समस्त अर्थ-व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है। कई ऐसे व्यक्ति जो फैक्ट्री चालू होने पर छोटे-मोटे काम करके अपना गुजारा करते है, उनको काम बन्द हो जाने पर बहुत हानि पहुँचती है। पण्डित नेहरू ने एक बार कहा था कि "हड़ताल एक ऐसा हथियार है जिसको छुपाकर म्यान मे ही रखना चाहिये और उसको बिना सोचे-समझे और अंधा-धुन्ध तरीके से कभी भी इस्तेमाल नही करना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से राष्ट्र की उन्नति में बाधा पड़ेगी।" अतः कोई भी प्रगतिशील नीति हो, उसका उद्देश्य यह होना चाहिये कि इस प्रकार के औद्योगिक विवादों को कम किया जाये। अतः हड़तालो और तालाबन्दी को रोकने और विवादो के निपटारे के साधनों की अत्यन्त आवश्यकता है।

सुलह तथा विवाचन मे मूल उद्देश्य यह होता है कि एक ऐसी व्यवस्था कर दी जाये जो काम रोकने के विकल्प (Alternative) मे हो और जिससे सम्बन्धित पक्षो के हितो के लिये जो सामूहिक विवाद हो जाते है उनका निपटारा किया जा सके—विशेषकर ऐसे विवादो का निपटारा हो सके जो आर्थिक विषयों पर मतभेद उत्पन्न कर देते है। ऐसे विषय मजदूरी, काम के घण्टे और रोजगार की अवस्थायें होती है जो साधारणत सामूहिक करारों द्वारा निर्धारित किये जाते है। साधारणत कार्य तब रुकता है जब सम्बन्धित पक्षो मे वार्ता असफल हो जाती है। मान्य व्यवस्था द्वारा निपटारे के प्रयत्नो मे असफलता होने पर ही काम बन्द करना अन्तिम साधन के रूप में अपनाया जाता है। हड़तालो तथा तालाबन्दी की अधिकता पारस्परिक वार्तालाप और समझौता साधनो की असफलता को प्रकट करती है। अत इस उद्देश्य के लिए एक उचित तथा सोच-समझ कर व्यवस्था करने की अति आवश्यकता है।

प्रो० पीगू[15] के अनुसार, औद्योगिक शान्ति की विधियां कई प्रकार की हो सकती है, जैसे—सुलह और विवाचन के लिये ऐच्छिक व्यवस्था, मध्यस्थता तथा अवपीडक हस्तक्षेप (Coercive Intervention)। मालिको और श्रमिको के प्रतिनिधि द्वारा बनाये गये स्थाई बोर्डों से औद्योगिक शान्ति स्थापित की जा सकती है। इन बोर्डों का कार्य केवल समझौता कराना ही नही होना चाहिये वरन् कार्य की दशाओं, मजदूरी देने के तरीकों, तकनीकी शिक्षा, औद्योगिक अनुसन्धान तथा कार्य प्रक्रियाओं आदि मे उन्नति करना भी होना चाहिये। यदि मालिक और श्रमिकों के प्रतिनिधि इन समस्याओं पर संयुक्त रूप से विचार करेंगे तो वे एक-दूसरे को प्रतिस्पर्धी मानने के स्थान पर सहयोगी मानने लगेंगे। इसका

15. A. C. Pigou—*Economics of Welfare.*

परिणाम यह होगा कि यदि कभी मतभेद भी होगा तो न केवल वार्तालाप का वातावरण अच्छा होगा वरन् दोनों पक्षों को यह ध्यान रहेगा कि वह कुछ ऐसी सीमा का उल्लंघन न कर जायें जिससे उनके हितों के लिये जो संगठन बना हुआ है, उसी को क्षति पहुँचे। इस प्रकार सुलह के लिये जो ऐच्छिक व्यवस्था की जाती है उसमें औद्योगिक परिषदें और मालिक-मजदूर समितियाँ सम्मिलित की जा सकती है। प्रो० पीगू ने इस ओर भी संकेत किया है कि इन बोर्डों और परिषदों में महत्वपूर्ण बात यह है कि दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों में, विशेषकर श्रमिकों के प्रतिनिधियों में, अपने-अपने पक्षों का विश्वास होना चाहिये। तक्नीकी बातें और वकील इन बोर्डों के सम्मुख नहीं आने चाहियें ताकि कोई ऐसी बात न हो जिससे कुछ तनाव हो, तथा वार्तालाप में मुकदमेबाजी की भावना नहीं होनी चाहिये वरन् समझौते की भावना पर जोर देना चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो निर्णय भी केवल बहुमत से न होकर एकमत से होने चाहियें। बोर्डों की बैठक भी गुप्त होनी चाहिये ताकि उनमें स्पष्टता से विचार विमर्श हो सके।

यह भी प्रश्न उठता है कि औद्योगिक शान्ति के लिये जो ऐच्छिक व्यवस्था की जाती है उसमें अन्ततः विवाचन होना चाहिये या नहीं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सुलह बोर्ड के आपसी समझौते की अपेक्षा विवाचन व्यवस्था से अधिक झुंझलाहट तथा बुरी भावनायें हो सकती हैं। इसलिये जब तक अति आवश्यक न हो विवाचन का सहारा नहीं लेना चाहिए। परन्तु यदि विवाचन के लिये कोई व्यवस्था न की जाय तो आपसी मतभेदों के कारण हड़तालें और तालाबन्दियाँ हो सकती है जिनसे धन की हानि और आपस में बुरे सम्बन्ध पैदा हो जाते है। यदि पहले से ही किसी विवाचक की व्यवस्था कर ली जाती है तो इसका तात्पर्य यह होता है कि शान्ति से दोनों पक्ष इस बात का निर्णय कर लेते है कि भविष्य में कोई कार्य उत्तेजना से नहीं करेंगे। परन्तु विवाचन की कुछ अप्रत्यक्ष रूप से हानियाँ भी है। प्रथम तो दोनों पक्षों के प्रतिनिधि आपसी समझौते की ओर प्रयत्न करने में गम्भीरता नहीं दिखाते। वे दूसरे पक्ष को कोई भी रिआयत देने में हिचकिचाते हैं ताकि कहीं ऐसा न हो कि विवाचन के समय उनके सुझाव का उन्हीं के खिलाफ प्रयोग किया जाय। दूसरे आपसी मतभेदों की संख्या विवाचन व्यवस्था होने से अधिक बढ़ सकती है क्योंकि कार्य बन्द होने का डर न रहने से कुछ न कुछ लाभ हासिल करने के लिये मतभेद अधिक उत्पन्न हो सकते है। इसलिये कोई नियमित रूप से विवाचन व्यवस्था करने के स्थान पर विवाचन तब होना चाहिये जब दोनों पक्ष इस बात के लिये सहमत हों। जो भी विवाचक हो वह अपनी निष्पक्षता एवं कार्य क्षमता के लिये प्रसिद्ध होना चाहिये।

यह हो सकता है कि ऐच्छिक व्यवस्था हड़तालों और तालाबन्दियों की रोक-थाम करने के लिये सभी परिस्थितियों में सहायक सिद्ध न हो। ऐसी अवस्था में मैत्रीपूर्ण मध्यस्थता का साधन सामने आता है अर्थात् दोनों पक्षों में मतभेद के निपटारे के लिये किसी बाहरी व्यक्ति को हस्तक्षेप करना चाहिये। जब कभी कोई

मतभेद बढ़ जाता है और उससे खुले तौर पर संघर्ष उत्पन्न हो जाता है तब दोनों पक्ष उसको आत्मसम्मान का प्रश्न बना लेते है और झुकने में अपनी हीनता समझते है। ऐसे समय में मध्यस्थ के प्रयत्नों द्वारा मामला सुलझ सकता है और बिना सम्मान में हानि अनुभव किये हुये कोई भी पक्ष झुक सकता है। यदि मध्यस्थ समझौता न भी करा पाये तब भी वह इस बात में तो सफल हो सकता है कि दोनों पक्ष झगडा करने के स्थान पर विवाचन द्वारा निर्णय करने के लिये सहमत हो जायें। मध्यस्थता की जो व्यवस्था होती है उसमें कोई बाहरी प्रसिद्ध व्यक्ति हो सकता है या कोई गैर-सरकारी या सरकारी बोर्ड हो सकता है। इन सबका अपने-अपने क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य होता है परन्तु मध्यस्थता व्यवस्था से परस्पर शान्ति बनाये रखने की व्यवस्था में रुकावट नहीं पड़नी चाहिये और उद्योगों में पारस्परिक बोर्डों की स्थापना में सहयोग मिलना चाहिये।

अवपीड़क हस्तक्षेप (Coercive Intervention)

जिस प्रकार कभी-कभी ऐच्छिक सुलह व्यवस्था से आपसी मतभेद नहीं सुलझ पाते उसी प्रकार मध्यस्थों के प्रयत्न भी असफल हो सकते है। ऐसे कठिन मतभेदों के बार-बार होने के कारण यह सोचना पड़ता है कि राज्य द्वारा जो अवपीड़क अधिकार है उनका प्रयोग करना चाहिये या नहीं। राज्य के इस प्रकार के हस्तक्षेप को प्रो० पीगू ने 'अवपीड़क हस्तक्षेप' (Coercive Intervention) कहा है। यह चार प्रकार से हो सकता है। सबसे सीधा और नर्म तरीका यह है कि जब भी दोनों पक्ष चाहें तो उनके लिये अनिवार्य विवाचन की व्यवस्था कर दी जाये। दोनों पक्ष अपने आपसी मतभेदों को किसी सरकारी बोर्ड के सम्मुख रख देते हैं और उसका निर्णय अपने आप तथा वैध रूप से लागू हो जाता है। यह कहा जा सकता है कि एक बार विवाचन व्यवस्था से सहमत हो जाने पर इस बात का पर्याप्त आश्वासन मिल जाता है कि जो भी निर्णय होगा वह मान्य होगा, क्योंकि जनमत का, तथा उचित अथवा अनुचित का ध्यान रखना पड़ता है। इस प्रकार यदि वैध रूप से लागू करने की कोई व्यवस्था की जाती है तो विवाचन का माननीय लक्षण नष्ट हो जाता है। इस प्रकार जब ऐच्छिक विवाचन होता है तो अनिवार्य व्यवस्था करने से सुलह व्यवस्था का कम प्रयोग होगा। परन्तु इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि ऐच्छिक विवाचन तो अब भी रहेगा ही और इसका प्रयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, यदि विवाचन में कोई मजबूरी न हो तो यह हो सकता है कि इसको इतना पसन्द न किया जाये। वैध रूप से लागू करने की जो धारा है उसका प्रयोग नेता लोग अपने ऐसे श्रमिकों के विरुद्ध कर सकते हैं जो उनके खिलाफ आवाज उठायें।

राज्य के हस्तक्षेप का दूसरा तरीका यह है कि जो भी निर्णय मालिकों और श्रमिक के मुख्य संस्थानों द्वारा ले लिया गया है उसे सभी उद्योगों, व्यापार, जिला या देश में लागू कर दिया जाये। इससे यह लाभ होगा कि कोई भी

समझौता कुछ बुरे मालिको द्वारा रद्द नही किया जा सकेगा। कई मालिक श्रमिको को अच्छी मजदूरी देने के लिए और उनके कार्य के घण्टे कम करने के लिये सहमत हो सकते है यदि उनके सभी प्रतिस्पर्धी ऐसा करने के लिये तैयार हो जायें, नही तो उनको नुकसान होगा। परन्तु राज्य के इस हस्तक्षेप से यह भी भय है कि मालिको के कुछ ऐसे गुट न बन जायें जिनसे उपभोक्ताओ को नुकसान पहुँचे। इस बात मे भी व्यावहारिक रूप से कठिनाई आती है कि इस सम्बन्ध मे विधान किस सीमा तक लागू किया जाये। इन सब बातो के होते हुये भी राज्य के इस प्रकार के हस्तक्षेप को बहुत से देशो मे सराहा गया है। भारत मे भी मजदूरी बोर्डो के जो निर्णय होते हैं वह सरकार द्वारा लागू किये जाते हैं।

राज्य के हस्तक्षेप का तीसरा तरीका यह है कि राज्य कोई ऐसा विधान बना दे जिसके अन्तर्गत हडताल या तालाबन्दी करने से पहले औद्योगिक विवादो को किसी अधिकरण के सम्मुख रखना अनिवार्य हो। इस व्यवस्था के तीन लाभ है। प्रथम तो दोनो पक्षो के बीच गम्भीर प्रकार से विचार विमर्श हो सकता है और एक निष्पक्ष प्राधिकारी की सहायता से आपसी मतभेदो का निपटारा हो सकता है। दूसरे—सरकार द्वारा नियुक्त अधिकरण को इस बात का पूरा अधिकार होता है कि वह विवाद से सम्बन्धित हर बात की जाँच कर सके और प्रपत्रो (Documents) को देख सके और गवाहो को बुला सके। तीसरे—कार्यो को रोकना अवैध घोषित कर दिया जाता है जब तक जाँच का कार्य समाप्त न हो जाये और उसकी रिपोर्ट न प्रस्तुत कर दी जाये। भारत मे, औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत सरकार को जांच अदालतो की नियुक्ति का अधिकार है और सरकार ने हडतालो व तालाबन्दियो के विवाचन के लिये श्रम अदालतो व अधिकरणो की स्थापना की है। हमारे देश मे भी कई परिस्थितियो के अन्तर्गत हडतालो और तालाबन्दियो पर रोक लगाई हुई है उदाहरणत सार्वजनिक सेवाओ मे बिना उचित नोटिस के कोई तालाबन्दी या हडताल नही हो सकती। विवाचन काल मे हडताल और तालाबन्दी करना निषेध है।

राज्य के हस्तक्षेप का चौथा तरीका अनिवार्य विवाचन का है। इसका तात्पर्य यह है कि कोई ऐसा विधान बना दिया जाता है जिसके अन्तर्गत जो बोर्ड सरकार द्वारा नियुक्त होता है वह विवादो के निपटारे की शर्तो की न केवल सिफारिश करता है वरन् ये शर्तें वैध रूप से लागू हो जाती है और इनके खिलाफ कोई भी हडताल या तालाबन्दी करना एक दण्डनीय अपराध माना जाता है। विचार विमर्श और सुलह व्यवस्था से निपटारा करने का तरीका भी रहता है लेकिन मुख्यत इस बात पर जोर दिया जाता है कि जब और सब तरीके समाप्त हो जायें और विवाद कठिन हो जायें तो हडताल और तालाबन्दी को निषेध कर दिया जाये। ऐसे विधान विभिन्न देशो मे कुछ विभिन्नता रखते है। परन्तु सभी जगह राज्य द्वारा इस प्रकार से स्वतन्त्रता कम कर देने के खिलाफ आवाजें उठाई गई है। भारत मे औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत सरकार जांच न्यायालय

नियुक्त कर सकती है और कोई भी मामला श्रम न्यायालय या अधिकरण को निर्णय के लिये सौंप सकती है और उसके निर्णय को लागू कर सकती है। निर्णय को लागू करने की अवधि में हड़ताल व तालाबन्दी करना निषेध कर दिया जाता है।

अब हम अपने देश की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सुलह और *विवाचन व्यवस्था* पर विचार-विमर्श कर सकते हैं।

यहाँ इस ओर भी संकेत किया जा सकता है कि विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से निपटाने की व्यवस्था पर पूर्णतया निर्भर रहने का श्रमिक स्वागत नहीं करते। इसका कुछ कारण तो यह होता है कि राज्य और उसकी व्यवस्था में इनका अविश्वास होता है, क्योंकि ऐसी व्यवस्था को साधारणतया वह पूंजीपति के हितों के लिये समझते है। अन्य कारण यह भी है कि श्रमिकों के संगठन दुर्बल है जिससे उनको अपना मामला नियमित रूप से प्रस्तुत करने में कठिनाई होती है। परन्तु इसका मुख्य कारण यह है कि श्रमिक शान्तिपूर्ण उपायो के विरोध में रहते हैं और अपने हड़ताल के शस्त्र को छोडने को तैयार नहीं होते। इस कारण शान्तिपूर्ण समझौता करने की अनिवार्य विधियाँ बनाने का सुझाव साधारणतया मालिकों की ओर से या सरकार में उनके समर्थकों की ओर से ही आया है, जिन्हें इस बहाने यह भी अवसर मिल जाता है कि अपनी राजनैतिक स्वार्थसिद्धि के लिये राष्ट्रीय एकता की बातें करें। परन्तु अधिकतर देशों में विवादों के निपटारे व रोकने में राज्य के हस्तक्षेप की आवश्यकता को श्रमिकों ने भी स्वीकार कर लिया है। दूसरे देशों में विधानों का रुख इस बात का *प्रमाण है कि राज्य अब अधिक से अधिक इन विषयों में भाग ले रहा है। यह* प्रवृत्ति दो विश्व युद्धों द्वारा उत्पन्न हुए संकटकाल में अधिक शक्तिशाली हो गई थी। अतः वर्तमान समस्या यह नहीं रही है कि सुलह तथा विवाचन हो या न हो *वरन् समस्या अब यह है कि उनके निश्चित क्षेत्र की परिभाषा किस प्रकार की* जावे और प्रभावपूर्ण कार्य करने के लिये विभिन्न समझौतों के साधनों के दोष और गुणों के अध्ययन की ओर ध्यान दिया जाये।

विभिन्न अधिनियमों में सुलह और विवाचन

औद्योगिक विवादों के निपटारे के साधन के रूप में सुलह व्यवस्था की सम्भावना पर विचार यद्यपि सन् १९२१ में बंगाल और बम्बई सरकारों द्वारा *नियुक्त समितियों ने व्यक्त किया था तथापि* औद्योगिक विवादों को सुलझाने के लिये जाँच न्यायालय एवं सुलह बोर्ड की वैधानिक व्यवस्था सर्वप्रथम १९२९ में व्यवसाय विवाद अधिनियम में की गई थी। इस सम्बन्ध में अधिनियम की धाराओं का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। *अधिनियम में शान्ति स्थापित करने के लिये* कोई भी स्थायी व्यवस्था नहीं की गई थी और इसमें सरकार को सुलह बोर्ड के निर्णयों को लागू करने का भी अधिकार नहीं दिया गया था। सन् १९३४ और

सन् १६३१ के बीच बम्बई में औद्योगिक विवादों के समझौते के लिये स्थायी सुलह व्यवस्था की स्थापना की ओर विशेष पग उठाये गये। सन् १६३४ में बम्बई व्यवसाय विवाद समझौता अधिनियम पारित किया गया जो १६३८ में एक व्यापक अधिनियम—बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। इन अधिनियम के उपबन्धों का उल्लेख भी ऊपर किया जा चुका है। सन् १६३८ के अधिनियम द्वारा अनिवार्य सुलह की व्यवस्था की गई और समझौताकारी, मुख्य समझौताकारी, विशेष समझौताकारी, औद्योगिक न्यायालयों आदि की नियुक्ति की गई। युद्धकाल में, सन् १६३८ के बम्बई अधिनियम में १६४१ और १६४२ में संशोधन किये गये जिनके अन्तर्गत सरकार को इस बात का अधिकार दे दिया गया कि सरकार यदि आवश्यक समझे तो विवादों को औद्योगिक विवाचन न्यायालय को सौंप सकती है। सन् १६४५ में बम्बई में एक संशोधन द्वारा श्रम अधिकारियों की नियुक्ति की गई। केन्द्रीय सरकार ने सन् १६४२ में हड़तालों और तालाबन्दी को रोकने और किसी भी विवाद को सुलह तथा विवाचन को सौंपने के लिये कई अध्यादेश जारी किये। सन् १६४७ में भारत सरकार ने औद्योगिक विवाद अधिनियम पारित किया। बम्बई, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश की सरकारों ने भी इस सम्बन्ध में कानून बनाये। सन् १६४७ के अधिनियम में औद्योगिक विवादों को सुलझाने के अनेक साधनों की व्यवस्था की गई है। समझौता अधिकारियों, सुलह बोर्ड, जाँच न्यायालय तथा औद्योगिक अधिकरण की नियुक्ति की भी व्यवस्था है। अधिनियम में अनिवार्य समझौते के अतिरिक्त अनिवार्य विवाचन की भी व्यवस्था है क्योंकि सरकार कोई भी विवाद अधिकरण को विवाचन के लिये सौंप सकती है और इसके निर्णय को पूर्ण रूप से अथवा आंशिक रूप से लागू करा सकती है। अधिनियम में अनेक विशेष स्थितियों का समावेश और दोषपूर्ति करने के लिये अनेक संशोधन किये गये हैं। १६५० में एक अपीलीय अधिकरण की स्थापना की गई जिसको कि १६५६ में समाप्त कर दिया गया। अब अधिकरणों की तीन श्रेणी व्यवस्था की गई है अर्थात् श्रम न्यायालय, औद्योगिक अधिकरण और राष्ट्रीय अधिकरण। इसके अतिरिक्त, सन् १६४७ के संशोधित अधिनियम में विवादों के ऐच्छिक विवाचन का भी उपबन्ध है। सभी पक्ष एक लिखित समझौते द्वारा यह तय कर सकते हैं कि कोई भी विवाद न्याय-निर्णय (Adjudication) के लिये श्रम-न्यायालय या अधिकरण को सौंपने से पूर्व पञ्चनिर्णय के लिये विवाचक (Arbitrator) को सौंप दें।

अधिनियम की धाराओं को दोहराने का उद्देश्य इस तथ्य की ओर संकेत करना है कि भारत में औद्योगिक विवादों को रोकने और निपटाने के लिये सुलह व्यवस्था तथा विवाचन को आवश्यक समझा जाने लगा है और इनके लिये सरकार द्वारा व्यवस्था की गई है। अब तो केवल इस बात पर मतभेद है कि इस प्रकार के साधन ऐच्छिक हों अथवा अनिवार्य।

सुलह व्यवस्था (Conciliation)

उपचार से रोकथाम सदैव अच्छी होती है और औद्योगिक विवादों के विषय में भी यह बात लागू होती है। प्रारम्भिक अवस्था में ही यदि ठीक प्रकार से सहायता मिल जाये जो सुलह व्यवस्था के रूप में हो सकती है तो उसका महत्व बहुत बढ़ जाता है। रॉयल श्रम आयोग के अनुसार, "यह कहीं अच्छा है कि कोई भी समझौता विवाद के पक्षों में स्वयं के प्रयत्नों से हो, बजाय इसके कि समझौता उनके सामने रखकर जनमत या किसी और के जोर से उसको लागू किया जाय। कई बार ऐसा होता है कि चतुर और अनुभवी अधिकारी पक्षों को एक दूसरे के सम्पर्क में लाने में सहायता कर सकते है या एक पक्ष के सम्मुख दूसरे पक्ष का दृष्टिकोण, जिस पर ध्यान न गया हो, रख सकते है या पारस्परिक समझौते के सम्भावित मार्ग का सुझाव दे सकते हैं।"[16] शुरू-शुरू में भारत में ग्रेट ब्रिटेन की नकल करते समय हमने दुर्भाग्यवश वहाँ की व्यवस्था के कम महत्वपूर्ण भाग को ही अपनाया और वहाँ की व्यवस्था के सबसे महत्वपूर्ण भाग की ओर ध्यान ही नहीं दिया। ग्रेट ब्रिटेन में ऐसी तदर्थ सार्वजनिक जाँचों के ऊपर कम निर्भर रहा जाता है, जिस प्रकार की जाँच हम भारत में करते है, और सुलह अधिकारियों के प्रयत्नों पर, जो पक्षों को निजी तौर पर समझौता करने में सहायता देते हैं, ज्यादा निर्भर रहा जाता है। इसलिये रॉयल श्रम आयोग ने अपना निर्णय सुलह व्यवस्था के पक्ष में दिया था और जाँच न्यायालयों अथवा विवाचन कार्यवाहियों में अपना विश्वास प्रकट नहीं किया था।

सुलह के व्यावहारिक लाभ की महत्ता का उस समय सबसे अधिक पता चलता है जब इसकी विवाचन से तुलना की जाती है। उद्योग शान्ति की स्थापना में सुलह व्यवस्था को विवाचन की अपेक्षा निश्चित रूप से अच्छा समझा जाता है। यह अनुभव किया गया है कि जहाँ भी विवाचन इच्छित परिणामों को प्राप्त करने में असफल रहा है वहाँ सुलह व्यवस्था को विशेष असफलता प्राप्त हुई है। बरेली की 'वैस्टर्न इण्डिया मैच फैक्टरी' (दियासलाई कारखाना) के एक विवाद में दिये गये विवाचन के निर्णय का उदाहरण इस सम्बन्ध में दिया जा सकता है। एक उच्च श्रम अधिकारी द्वारा दिये गये निर्णय को सरकार द्वारा लागू किया गया था परन्तु श्रमिक फिर भी असन्तुष्ट रहे। तीव्रगति से एक हड़ताल हुई और फिर श्रमिकों ने कार्य-मन्दन-युक्तियाँ (Go-slow-tactics) अपना लीं और दियासलाई का उत्पादन घटकर चौथाई ही रह गया। परन्तु जब श्रम कमिश्नर ने कारखाने को स्वयं आकर देखा और दोनों पक्षों से सम्पर्क स्थापित किया तब वह सुलह की सरल विधि से ही समझौता कराने में सफल हो गया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जब देश में इस बात की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि उद्योगों में मालिक मजदूरों में सम्पर्क स्थापित करके उत्पादन को बढ़ाया जाये तब औद्योगिक

16. *Report of the Royal Commission on Labour, Page 347–348.*

विवादो को सुलझाने के लिये कानून की शक्ति की अपेक्षा मानवीय विधियो को ही अपनाना चाहिए। यदि सुलह के रूप मे मानवता के दृष्टिकोण से कार्य किया जाता है तब इसके अच्छे प्रभाव पड़ने मे कभी असफलता नही होगी। यह ध्यान रखना चाहिये कि सुलह व्यवस्था मे दोनो पक्षो का एक दूसरे के दृष्टिकोण की सराहना करना आवश्यक है और यह केवल तब ही सम्भव है जबकि दोनो पक्षो मे न केवल सघर्षकाल मे वरन् स्थायी रूप से सम्पर्क स्थापित किया जाये।

भारत मे, विभिन्न अधिनियमो के अन्तर्गत सुलह बोर्ड और समझौताकारो की नियुक्ति के विषय मे ऊपर कहा जा चुका है और उनकी कार्य-व्यवस्था पर पूर्ण रूप से विचार भी किया जा चुका है। यह बात भी उल्लेखनीय है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये जो व्यवस्था की गई है उसमे कुछ दोष भी है। प्रथम तो यह कहा जाता है कि पक्षो मे समझौता कराने के लिये समझौताकारो की विचार-धारा दोषपूर्ण है। समझौताकार न्यायाधीश से भिन्न होता है क्योकि उसे कानूनी दृष्टिकोण से दोनो पक्षो के अधिकारो पर विवाचन नही करना होता। उसका कार्य केवल माँगों और विरोधी माँगो की व्यक्तिगत रूप से व्याख्या करना है, जिससे दोनो पक्ष एक दूसरे की माँगो के औचित्य को समझ सकें। परन्तु व्यवहार मे देखने मे आता है कि हमारे देश मे समझौता अधिकारी अधिकतर निर्णय ही देते है और इस प्रकार न्यायाधीश के समान कार्य करते हैं। इस व्यवस्था का दूसरा दोष यह है कि उचित दलीलो के अभाव मे श्रमिको के दृष्टिकोण की अवहेलना हो जाती है। वकीलो को सुलह बोर्डो के समक्ष आने की आज्ञा नही है। इसका उद्देश्य न्यायालय के वातावरण को दूर रखना और अनावश्यक जटिलता को दूर करना है। लेकिन दुर्भाग्यवश श्रमिको मे सुलह कार्यवाहियों के सम्मुख अपने दृष्टिकोण को सफलतापूर्वक रखने की योग्यता नही है। उनके मामले श्रमिक सघ अधिकारियो द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं जो साधारणतया बाहरी व्यक्ति होते है और इस प्रकार श्रमिको की सच्ची भावनाओ का प्रतिनिधित्व नही कर सकते। श्रमिक अपनी शिकायतो के समर्थन मे उचित दस्तावेजी प्रमाणो के बिना ही कई बार अपनी माँगो को बढाकर प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते है। इसी कारण उनकी अधिकतर माँगें अस्वीकार कर दी जाती हैं। इसके अलावा श्रमिको और मालिको दोनो का व्यवहार सुलह बोर्ड के सामने लगभग ऐसा ही होता है मानो वह किसी न्यायालय मे किसी मुकदमे के ऊपर लड रहे हो। समझौते की भावना और पक्षो के विवेकपूर्ण व्यवहार का भारत मे अभाव रहा है, जो सुलह की सफलता के लिये अति आवश्यक है। ऐसे व्यवहार और भावना से ही ग्रेट ब्रिटेन मे सफलता मिली है। श्रमिको और मालिको दोनो के प्रतिनिधियों के व्यवहार इन सुलह बोर्डों के सामने ऐसे स्वतन्त्र व्यक्तियो की भाँति नही होते जो समझौता करने का प्रयत्न कर रहे हों वरन् ऐसी दलबन्दी के रूप मे होते हैं जो एक दूसरे के मूल्य पर लाभ उठाना चाहते हो और अपने पक्ष की माँगो पर ही जोर देते हो। देश के श्रमिक

नेताओं को श्रम अधिनियमों का ज्ञान भी बहुत कम है और कभी-कभी तो वह इस प्रकार की माँग करने लगते हैं जो कानून के विरुद्ध होती है। इसके अतिरिक्त सुलह बोर्डों के निर्णयों के विरुद्ध अपील औद्योगिक न्यायालयों में होती है जिसके अध्यक्ष न्यायाधीश होते हैं। इसका कारण सुलह अधिकारी स्वभावतः पूरे मामलों पर कानूनी दृष्टिकोण से विचार करना शुरू कर देता है क्योंकि वह जानता है कि सम्पूर्ण मामले पर औद्योगिक न्यायालयों के न्यायाधीशों द्वारा वैधानिक दृष्टिकोण से ही विचार किया जायेगा। अतः कार्यवाही में सुलह की भावना का अभाव हो जाता है। परन्तु इस प्रकार के दोष सुलह व्यवस्था की कार्य-प्रणाली के ही हैं और इन्हें समझौता अधिकारियों को उचित निर्देश देकर और श्रमिकों में शिक्षा का प्रसार करके दूर किया जा सकता है। जहाँ तक सुलह व्यवस्था का सम्बन्ध है, औद्योगिक विवादों की समस्या को सुलझाने के लिए उसको अपनाने में कोई एतराज नहीं किया जा सकता।

अनिवार्य सुलह (Compulsory Conciliation)

यह भी उल्लेखनीय है कि केवल सुलह को ही नहीं वरन् अनिवार्य सुलह को भी देश में अपनाया गया है। प्रथम बार इसकी व्यवस्था १९३८ के बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम में और इसके पश्चात् १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम में की गई थी। सन् १९४७ के अधिनियम में सरकार के लिये यह अनिवार्य है कि वह सार्वजनिक उपयोग की सेवाओं में उत्पन्न सभी विवाद सुलह के लिये सौंप दे। अन्य सेवाओं के सम्बन्ध में भी सरकार चाहे तो ऐसा कर सकती है। अनिवार्य सुलह की आलोचना इस आधार पर की गई थी कि समझौते की ऐच्छिक प्रकृति के कारण इस सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की अनिवार्यता अवांछनीय है, विशेषतः ऐसी स्थिति में जबकि १९२९ के व्यवसाय विवाद अधिनियम में ऐच्छिक सुलह की पद्धति को बहुत ही कम अपनाया गया था। इसके अतिरिक्त श्रमिक अभी तक अच्छी प्रकार से संगठित नहीं हो सके हैं और अपने मामले को नियमित रूप से प्रस्तुत नहीं कर सकते। इसलिये यह हो सकता है कि सुलह अधिकारियों के निर्णय श्रमिकों के विरुद्ध हों। परन्तु इन आलोचनाओं में अधिक सार नहीं था क्योंकि जब ऐच्छिक सुलह की व्यवस्था का प्रयोग नहीं किया गया था तब ही इस बात की आवश्यकता अनुभव हुई कि विवादों को प्रारम्भिक अवस्था में ही सुलझाने के लिए अनिवार्य सुलह की व्यवस्था की जाये। अधिनियम के कार्यान्वित होने पर अनिवार्य सुलह की दलीलों को और भी अधिक बल मिला। परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि अनिवार्य सुलह व्यवस्था, जिसमें सुलह कार्यवाहियों के शुरू होने या समाप्ति की अवधि में हड़तालें और तालाबन्दी निषेध कर दी जाती है, का उद्देश्य केवल यह होता है कि शान्तिपूर्वक समझौता करने की सम्भावनाओं को खोजा जाये। इस प्रकार, श्रमिकों का हड़ताल करने का अधिकार केवल स्थगित ही कर दिया जाता है। यह कहना कि औद्योगिक सम्बन्धों

को नियन्त्रित करने मे राज्य का हस्तक्षेप करना या हडताल करने के अधिकार पर कोई वैधानिक रोक लगाना श्रमिको के मूल अधिकारो को छीनना है, गलत होगा। इसका तो यह अर्थ होगा कि स्वतन्त्रता और उच्छृङ्खलता मे कोई भेद नही किया जाता। हडतालो का उस अवधि के लिए स्थगित करना जब तक समझौते और सुलह की सम्भावनाओ पर प्रयत्न नही कर लिये जाते, विवादो को सुलझाने मे एक उचित वातावरण पैदा करने के लिये आवश्यक है। श्रमिको के दृष्टिकोण से भी यह वाछनीय होगा। इससे निरर्थक और अपरिपक्व (Premature) हडतालें समाप्त हो जायेंगी और जो वास्तविक और मुख्य मामले होगे उनके लिये सघर्ष करने के लिए श्रमिक अपनी शक्तियो को सचित रख सकेंगे। इससे हडतालो का महत्व भी बढ जायेगा, श्रमिको के सगठन भी अधिक सुदृढ हो सकेंगे और उन्हे जनता का सहयोग भी प्राप्त होगा। इस प्रकार सफल हडतालो की सख्या बढ जायेगी।

विवाचन विधि ऐच्छिक एव अनिवार्य

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि देश मे विवाचन विधि अपना ली गई है और इसको युद्धकाल मे अनेक अध्यादेशो द्वारा और १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम द्वारा लागू किया गया है। विवाचन ऐच्छिक भी हो सकता है और अनिवार्य भी। ऐच्छिक विवाचन से यह तात्पर्य है कि दोनो पक्ष अपने मतभेदो को पारस्परिक रूप से सुलझाने मे असमर्थ होने पर तथा मध्यस्थ एव समझौताकार के प्रयत्नो से भी कोई सहायता न पाकर अपने विवाद को एक विवाचक के सम्मुख प्रस्तुत करके उसके द्वारा दिये गये निर्णय को मानना स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार ऐच्छिक विवाचन का मुख्य तत्व ऐच्छिक रूप से किसी विवाद को विवाचन हेतु सौंपना है। इस प्रकार, इसमें यह आवश्यक नही रहता कि बाद मे गवाहो की उपस्थिति हो या कोई जाच-पडताल की जाये या निर्णय को लागू किया जाय, क्योंकि इसमें अनिवार्यता नही होती। इसके विपरीत अनिवार्य विवाचन से यह तात्पर्य है कि दोनो पक्षो को आवश्यक रूप से विवाद को विवाचक को प्रस्तुत करना पडता है। अधिनिर्णय (Adjudication) इसी विवाचन का दूसरा नाम है जिसका आशय है कि सरकार विवाद को विवाचन के लिये किसी अधिकारी को सौंप देती है और इसके निर्णय को दोनो पक्षो को मानने को बाध्य करती है। इस प्रकार, अनिवार्य विवाचन में अनिवार्य रूप से गवाहो की उपस्थिति, अनिवार्य रूप से जाँच-पडताल के अधिकार और अनिवार्य रूप से निर्णय को लागू करना और इन विवाचन निर्णयो के उल्लघन करने पर दण्ड देने की व्यवस्था, आदि सब ही आ जाते हैं। द्वितीय महायुद्ध मे युद्ध के लिए उत्पादन को जारी रखने और उद्योग मे शान्ति स्थापित करने के विचार से अनिवार्य विवाचन को कई देशो मे अपनाया गया था। भारत म भी इस व्यवस्था को अपनाया गया था और इसमें इतनी सफलता हुई कि युद्ध के बाद भी अनिवार्य विवाचन के सिद्धान्त को १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम में अपना लिया गया।

जबकि अनिवार्य सुलह के पक्ष में तर्क बिल्कुल स्पष्ट है, यह बात अनिवार्य विवाचन के लिए नहीं कही जा सकती, क्योंकि अनिवार्य विवाचन व्यवस्था मे दोनों पक्षों पर यह उत्तरदायित्व होता है कि वह विवाचन निर्णय को स्वीकार करें और इसी प्रकार अनिवार्य अधिनिर्णय व्यवस्था मे सरकार को यह अधिकार होता है कि वह विवाचन के निर्णय को लागू कर दे। इस प्रकार, इन दोनों अवस्थाओं में श्रमिक के भाग्य का निर्णय अधिकारियों के हाथों में होता है। इन अधिकारियों को जो भी अधिकार मिलते हैं, स्वभावतः राज्य से ही मिलते है। इस प्रकार सामाजिक न्याय पूर्णतया निर्णायक अधिकारी की कार्यक्षमता, सद्भावना और विद्वत्ता पर निर्भर होता है। इसलिये श्रमिक अपनी स्थिति में किसी प्रकार के क्रान्तिकारी परिवर्तन की आशा नहीं कर सकते और श्रमिको को ऐसे मामूली परिवर्तनों से ही सन्तुष्ट होना पडता है जो राज्य अधिकारी को स्वीकार हों। अनिवार्य विवाचन या अधिनिर्णय को जब तक सावधानी से और यदा-कदा ही उपयोग में न लाया जायेगा तब तक यह सम्भावना बनी रहेगी कि राज्य का अनुचित हस्तक्षेप हो जाये। यह प्रजातन्त्र के सिद्धान्त के पूर्णतया विरुद्ध बात होगी। अतः अनिवार्यता का यह सिद्धान्त आलोचनात्मक वाद-विवाद का विषय रहा है। रॉयल-श्रम-आयोग भी अनिवार्य विवाचन के विरोध मे था। इसके मतानुसार, औद्योगिक शान्ति की स्थापना के लिए किसी बाह्य शक्ति पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति यदि सामान्य हो जाती है और उद्योग में आपसी भावना से विवाद निपटाने के प्रयत्न को प्रोत्साहन नही दिया जाता तो उद्योग पर इसका विनाशकारी प्रभाव पड़ेगा। यह कहा जाता है कि अनिवार्य विवाचन अपने उद्देश्य के लिये स्वय ही असफल सिद्ध होता है। इससे उद्योग में शान्ति स्थापना की अपेक्षा श्रमिको में घोर असन्तोष की भावना पैदा हो जाती है। दूसरे देशो में भी इस व्यवस्था का सदैव विरोध हुआ है। सिडनी वैब ने कहा है, "अनिवार्य विवाचन को विवाचन नही कहा जा सकता, इसका अर्थ यह होगा कि सामूहिक सौदाकारी को पूर्णतया दबा दिया जाय। विवाचन कानून बनाने का एक साधन है। न्यायालय का काम तो केवल कानून की व्याख्या करना है न कि विधान बनाने का।" अमेरिका में अनिवार्य विवाचन अधिनियम पर विचार करते समय अमेरिकन फैडरेशन ऑफ लेबर ने मत प्रकट किया था—"अमेरिका के श्रमिक कभी गुलाम बनकर काम नही करेंगे। अनिवार्य विवाचन से औद्योगिक विवादो को बढ़ावा मिलेगा और वह अधिक लम्बे हो जायेगे। इससे स्वशासन (Self-Govt.) लगभग समाप्त हो जाता है; मालिको और श्रमिक संघो से स्वय अपनी समस्याओं पर विचार करने का उत्तरदायित्व छिन जाता है, सामूहिक सौदाकारी पर कुठाराघात होता है और इसकी जगह मुकदमेबाजी आ जाती है। विवाचन का अर्थ व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन, गतिशीलता की क्षति, प्रेरणा की समाप्ति तथा आशा और स्वतः (Self) उन्नत होने की आकांक्षाओं का टूट जाना है। दूसरे देशों के अनुभवों से भी यह पता चलता है कि अनिवार्य विवाचन का कही भी समर्थन नही किया

गया है। युद्ध के समय मे ऐसे विवाचन को अपनाया गया था परन्तु जैसा कि ब्रिटिश श्रम मत्रालय द्वारा प्रकाशित एक औद्योगिक शान्ति सम्बन्धी पुस्तिका मे कहा गया है कि "काम बन्द करने पर कानूनी निषेध, तथा अनिवार्य विवाचन व्यवस्था के होने हुये भी युद्ध के मध्य काल मे सम्पूर्ण देश मे औद्योगिक अशान्ति आ गई थी।" ब्रिटिश श्रमिक सघ और ह्विटले समिति ने भी, जिन्होने इस समस्या का विस्तार से अध्ययन किया था, अनिवार्य विवाचन के विरोध मे विचार प्रकट किये हैं। १६४६ मे अमेरिका राज्य के तीसरे श्रम सम्मेलन मे एक ऐसे प्रस्ताव मे जिसको अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने भी स्वीकार कर लिया है यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि श्रमिको के सामूहिक सौदाकारी के अधिकारो की रक्षा की जानी चाहिये।

इस समय यह ठीक ठीक नही कहा जा सकता कि भारतवर्ष मे अनिवार्य विवाचन सफल होगा अथवा नही। इस प्रश्न पर तीव्र मतभेद है। रॉयल श्रम आयोग का मत इसके विरोध म था। परन्तु भारत सरकार ने इस सिद्धान्त को स्वीकार कर इस विषय पर अधिनियम बनाये हैं। परन्तु श्रम मन्त्री के रूप मे श्री वी० वी० गिरि के आ जाने के पश्चात् से सरकार का दृष्टिकोण कुछ बदला हुआ-सा प्रतीत हुआ। फिर विवादो को सुलझाने के लिये ऐच्छिक समझौतो तथा मालिका व श्रमिको के बीच सीधी वार्ता को अधिक महत्व प्रदान किया गया और इस बात पर जोर दिया गया कि औद्योगिक न्यायालय को तो आपत्ति के समय के लिये पुलिस व सेना की भाँति ही होना चाहिये जो आवश्यक समय पर ही कार्यशील होते हैं। युद्धकाल मे सम्भवत अनिवार्य विवाचन ठीक माना भी जा सकता है परन्तु सामान्य अवस्था मे इस सिद्धान्त को बनाये रखना अन्तत हानिकारक होगा। यह भी देखने मे आया कि जिस समय श्री जगजीवन राम श्रम मन्त्री थे तब जनमत शनै शनै अनिवार्य विवाचन के पक्ष मे होता चला गया परन्तु श्री वी० वी० गिरि के श्रम मन्त्री के रूप मे आने पर पुन ऐच्छिक वार्तालाप की ओर हो गया। श्री खडूभाई देसाई की इस विषय म विचारधारा कुछ-कुछ श्री गिरि जैसी ही थी और श्रम मन्त्री श्री गुलजारी लाल नन्दा तो और भी सजग थे। उनका उद्देश्य यह था कि श्रमिको का सहयोग प्राप्त करने के लिये सयुक्त परिषदो और श्रमिको के प्रबन्ध मे भाग लेने की व्यवस्था जैसी कुछ योजनायें शुरू की जायें ताकि प्रबन्धक और श्रमिक एक दूसरे के निकट हो जाये और पारस्परिक सन्देह दूर हो जाये तथा आपस मे विश्वास उत्पन्न हो जाये। इन सबका अन्तत परिणाम यह होगा कि अनिवार्य विवाचन को अपनाने की अपेक्षा सीधे वार्तालाप और सामूहिक सौदाकारी की प्रणालियो को अपना लिया जायेगा। हाल के वर्षो मे, सरकारी नीति मे ऐच्छिक विवाचन पर ही जोर दिया गया है।

ऐच्छिक विवाचन—भारत मे विवादो को सुलझाने का कोई आदर्श उपाय नही है। इस उपाय का सुझाव सर्वप्रथम सन् १६२१ मे महात्मा गाँधी ने अहमदाबाद के श्रमिको एव मालिको का दिया था। अहमदाबाद मे इसको काफी सफलता

मिली क्योंकि अधिकांश मामलो मे श्रमिकों व मालिको ने गांधी जी को ही विवाचक (Arbitrator) नियुक्त किया था। यही नहीं, उनके निर्णय का सम्मान किया गया था और सभी पक्षो ने उसे लागू भी किया था। किन्तु अन्य स्थानों पर ऐच्छिक विवाचन का आश्रय नही लिया गया। इसके पश्चात् अभी हाल में ही ऐच्छिक विवाचन के विचार को मूर्त रूप दिया गया और सन् १६५६ में औद्योगिक विवाद अधिनियम १६४७ मे संशोधन करके उसमें कुछ विशेष धाराएँ जोड़ी गई। संशोधित अधिनियम के अनुसार, सम्बन्धित पक्ष यह कर सकते है कि वे लिखित समझौते द्वारा किसी भी विवाद को अभिनिर्णय अथवा न्याय-निर्णय (Adjudication) के लिये श्रम न्यायालय अथवा अधिकरण को सौंपने से पूर्व विवाचन के लिये विवाचक (Arbitrator) को सौंप सकते है। समझौते की प्रति सम्बन्धित सरकार को भेज दी जाती है जिसे सरकार को १४ दिन के अन्दर सरकारी गजट में प्रकाशित करना होता है। विवाचन की कार्यवाहियों की अवधि मे सरकार विवाद से सम्बन्धित किसी भी हड़ताल व तालाबन्दी को निषेध (Prohibit) कर सकती है। सम्बन्धित पक्षों (Parties) के अलावा, ऐसा कोई भी व्यक्ति विवाचक के समक्ष अपना दृष्टिकोण रख सकता है जिनका विवाद से किसी भी प्रकार सम्बन्ध हो। विवाचक एक से अधिक भी हो सकते है और इस स्थिति में यदि विवाचक किसी मामले के बारे में परस्पर सहमत न हों, तो एक पंच (Umpire) की नियुक्ति का उपबन्ध (Provision) रखा गया है जिसका निर्णय लागू किया जायेगा।

ऐच्छिक विवाचन (Voluntary arbitration) द्वारा विवादो को सुलझाने के सिद्धान्त को सन् १६५८ से बनाई गई अनुशासन संहिता (Code of Discipline) द्वारा और बल मिला। यह संहिता प्रबन्धकों तथा श्रमिक संघों पर इस बात के लिये जोर डालती है कि वे अपने मतभेदो, विवादो तथा शिकायतों को ऐच्छिक विवाचन द्वारा हल करें। जुलाई १६५६ तथा अगस्त १६६२ मे आयोजित भारतीय श्रम सम्मेलनो मे भी इस बात पर जोर दिया गया कि औद्योगिक विवादों का निपटारा करने मे मध्यस्थता तथा ऐच्छिक विवाचक का अधिकाधिक सहारा लिया जाना चाहिये। सन् १६६२ के औद्योगिक विराम-सन्धि प्रस्ताव (Industrial Truce Resolution of 1962) मे भी यह कहा गया है कि ऐच्छिक विवाचन का अधिक से अधिक आश्रय लिया जाना चाहिये। सरकार विवाचकों की एक सूची अथवा नामिका तैयार करके प्रसारित करती है जिसमें प्रमुख मालिक (Employers), श्रमिक संघों के नेता, अर्थशास्त्री, शिक्षा-शास्त्री, सेवा-निवृत्त जज तथा श्रम न्यायालयों एवं अधिकरणों के पीठासीन अधिकारी सम्मिलित किये जाते है। सन् १६६३ में मालिकों के संगठनों ने ऐच्छिक विवाचन पर विचार करने के लिये एक सेमिनार का आयोजन किया। सन् १६६५ के सेमिनार में ऐच्छिक विवाचन पर फिर विचार किया गया। इस सेमिनार का आयोजन 'औद्योगिक सम्बन्धों के श्रीराम केन्द्र' द्वारा नई दिल्ली में किया गया

था। श्रम-विवाचको की भारतीय अकादमी ने मई १९६५ मे एक "ऐच्छिक श्रम-विवाचन पर राष्ट्रीय कार्यशाला" (National Workshop on Voluntary Labour Arbitration) का भी सगठन किया। केन्द्रीय कार्यान्विति तथा मूल्याकन समिति भी इस विचार को लोकप्रिय बनाने का प्रयास कर रही है। इसके पश्चात्, फरवरी १९६६ मे नई दिल्ली मे स्थायी श्रम समिति (Standing Labour Committee) का जो २४वाँ अधिवेशन हुआ उसने केन्द्र मे एक राष्ट्रीय विवाचन प्रगति मण्डल की स्थापना की सिफारिश की। इस मण्डल का कार्य विवाचन के विचार का प्रचार करना था।

इस प्रकार, देश मे ऐच्छिक विवाचन के आन्दोलन का सिलसिला जारी रहा, परन्तु इस दिशा मे प्रगति बहुत कम हुई। उदाहरणार्थ, केन्द्रीय क्षेत्र मे ऐसे विवादो की सख्या, जिनमे विभिन्न पक्षो से ऐच्छिक विवाचन को स्वीकार करने को कहा गया था, इस प्रकार थी—१९६३–४६०, १९६४–६५१, १९६५–६२५ और १९६६–८१९, परन्तु सम्बन्धित पक्षो ने जिन थोडे से ही मामलो मे विवाचन को स्वीकार किया, उनकी सख्या इस प्रकार थी–१९६३–१५६ (३४%), १९६४–१८५ (२८%), १९६५–१६६ (२७%) और १९६६–१०३ (१२%)। इसी प्रकार, राज्यो के क्षेत्र मे भी विभिन्न पक्षो ने सन् १९६३ मे केवल ८% और सन् १९६४ तथा १९६५ मे ९% विवादो के मामलो मे विवाचन को स्वीकार किया। इस दिशा मे जो प्रगति की रफ्तार धीमी रही है उसका एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि मालिको द्वारा ऐच्छिक विवाचन के विचार को अभी तक हृदय से स्वीकार नही किया गया है। इस सम्बन्ध मे उनका यह कहना है कि श्रमिक लोग तो विवाद का हर मामला ही विवाचन के लिये सौंपे जाने पर जोर देते हैं, जब कि कानून के उल्लघन अथवा हिंसा के मामले और सामान्य प्रशासनिक प्रकृति के मामले विवाचन को नही सौंपे जाने चाहियें। फिर, मालिक ऐसे मामलो मे भी विवाचन को स्वीकार नही करते जिनका सम्बन्ध उन श्रमिक सघो से होता है जिन्हे उन्होंने मान्यता नही दी है। यह भी कहा जाता है कि ऐसे अनुभवी विवाचको की कमी है जिनमे कि सभी पक्षो को पूर्ण विश्वास हो। साथ ही, इस बात की व्यवस्था होनी चाहिये कि विप्रीतीय निर्णयो (Perverse Awards) के विरुद्ध अपील भी की जा सके।

अत यद्यपि यह सत्य है कि ऐच्छिक विवाचन (Voluntary Arbitration) अधिनिर्णय अथवा न्याय निर्णय (Adjudication) की अपेक्षा विवादो को *सुलझाने का अधिक अच्छा साधन है, तथापि ऐसा लगता है कि आने वाले वर्षों* मे, सम्भवत, यह विचार देश मे अधिक लोकप्रिय न हो। परन्तु यहाँ हम यह कह सकते हैं कि हमारे देश मे श्रमिक असगठित है और श्रमिक सघो मे वाह्य व्यक्तियो के छाये रहने के कारण समझौता कार्यवाहियो में श्रमिक अपने मामले को प्रभावपूर्ण तरीके से प्रस्तुत नही कर पाते। अत औद्योगिक विवादो मे सरकार के हस्तक्षेप करने के अधिकार को मानना ही पडेगा। निष्पक्ष विवाचन द्वारा श्रमिको

के हित को ध्यान में रखा जा सकता है। इससे औद्योगिक विवादों में अधिक न्याय भी हो सकेगा। हड़ताल अथवा तालाबन्दी कोई निजी प्रश्न नहीं है। इनसे सारे समाज पर प्रभाव पड़ता है। यदि सरकार हस्तक्षेप नहीं करती तब सम्पूर्ण समाज का जीवन ही दूभर हो जाता है। भारत में दूसरे देशों की अपेक्षा स्थिति भिन्न है। हमारे देश मे दूसरे देशों की भाँति श्रमिक संघ भलीभाँति सगठित नहीं हैं और न ही वे पश्चिम की भाँति औद्योगिक सम्बन्ध व्यवस्था के मुख्य भाग माने जाते हैं। भारत मे इस समय कुछ सकटकालीन गम्भीर परिस्थितियाँ है, जैसे—उपभोग्य वस्तुओं की कमी, ऊँची कीमतें, निर्वाह खर्च की अधिकता, उत्पादन बढ़ाने और लोगो को रोजगार दिलाने की तीव्र आवश्यकता, आदि-आदि। हम आयोजना के दौर मे है और दूसरे देशों की भाँति श्रम और पूंजी की आपसी कशमकश और खींचातानी का तमाशा नही देख सकते। समय की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि मालिको और श्रमिकों की आपसी लडाई को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाये और यथासम्भव अधिकतम उत्पादन करने के लिये अधिक से अधिक प्रयत्न किये जायें। अत कुछ मामलो मे इस समय देश में अनिवार्य विवाचन की आवश्यकता है। परन्तु यह भी ध्यान रखना चाहिये कि अनिवार्य विवाचन ही केवल-मात्र साधन नहीं है। यह तो राज्य का एक अन्तिम साधन है। इसका प्रयोग केवल उसी समय होना चाहिये जबकि मैत्रीपूर्ण समझौते के सभी प्रयत्न असफल हो गये हों। अत यदि श्रमिक और पूंजीपति औद्योगिक सम्बन्धो की समस्या के प्रति वास्तविक और विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनायें तब अनिवार्य विवाचन की आवश्यकता यदा-कदा ही पड़ेगी। अनिवार्य विवाचन जैसी व्यवस्था से कोई अनावश्यक भय नहीं होना चाहिये। समस्या के इस पहलू पर श्री वी० वी० गिरि ने अपने अनेक भाषणों मे ध्यान आकर्षित कराया है और नैनीताल अधिवेशन मे भी, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है, इसको स्वीकार कर लिया गया है। श्री वी० वी० गिरि के इस सम्बन्ध मे विचार महत्वपूर्ण है। जब वे श्रम मन्त्री थे तब उन्होने आकाशवाणी से एक भाषण मे कहा था —

"इस प्रश्न पर मेरे विचार सबको भली-भाँति मालूम है। मैं सामूहिक सौदाकारी और विवादो के निपटारे के लिये पारस्परिक समझौते मे दृढ़ विश्वास रखता हूँ। मेरे विचार में प्रबन्ध और श्रम के बीच स्थायी सम्बन्ध उत्पन्न करने एव दृढ़ तथा आत्मविश्वासी श्रम आन्दोलन निर्माण करने के लिये यही सर्वोत्तम साधन है। परन्तु सम्बन्धित सभी पक्षो से विचार-विनिमय करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि अभी ऐसा समय नहीं आया है कि अनिवार्य विवाचन को छोड़ कर हम विवादो के समझौते के लिये केवल पारस्परिक वार्तालाप पर निर्भर रहें। पचवर्षीय आयोजना को सफलतापूर्वक लागू करने के लिये हम सब लोगो ने इस समय व्रत लिया है, और इससे यह बात इस समय मेल नहीं खाती कि हम कोई ऐसा नया प्रयोग शुरू करें जिससे औद्योगिक विवाद बढ़ जायें चाहे वह अल्पकालीन ही क्यो न हो। इसके अतिरिक्त एक ऐसे समय [illegible]

मे कमी हो रही है और श्रमिको की सौदाकारी शक्ति स्वभावत कमजोर है, श्रमिको से, अपने रोजगार की जोखिम पर आत्मनिर्भर होने की आशा नही करनी चाहिये । अत मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यद्यपि इसमे कोई सन्देह नही कि विवादो के पारस्परिक निपटारे के लिये सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहित करने के लिये हर प्रकार के प्रयत्न करने चाहियें और धीरे-धीरे इस व्यवस्था को आवश्यकता के स्थान पर एक आदत सी बना देना चाहिये, फिर भी ऐसा कोई कार्य नही करना चाहिये जिसमे औद्योगिक सस्थानो मे विवादो के निपटारे की वर्तमान व्यवस्था कमजोर हो जाये और सरकार को इस समय विवादो को अधिकरणो को सौंपने का जो अधिकार है उससे वचित कर दिया जाये ।' श्री खडूभाई देसाई के भी ऐसे ही विचार थे। श्री नन्दा की सजग विचारधारा का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। श्री गिरि ने नवम्बर १९५८ मे औद्योगिक सम्बन्धो मे पुन स्वशासन व्यवस्था पर जोर दिया। उन्होने बताया कि अनिवार्य विवाचन एक पुलिसमैन की भाँति है जो कि असन्तोष के चिह्न देखता रहता है और जरा-सी उत्तेजना होने पर पक्षो को ऐसे न्याय के लिये न्यायालय के सामने ले जाता है जो मँहगा पड़ता है और जिससे पूर्ण सन्तुष्टि भी नही होती। द्वितीय पचवर्षीय आयोजना मे औद्योगिक शान्ति की स्थापना के लिये पारस्परिक बातचीत, समझौता तथा ऐच्छिक विवाचन तथा कुछ विषम विवादो मे अनिवार्य विवाचन की व्यवस्था पर जोर दिया गया था। तृतीय पचवर्षीय आयोजना मे भी ऐच्छिक समझौतो और अनुशासन संहिता के महत्व पर प्रकाश डाला गया है और इस बात का सुझाव दिया है कि ऐसे तरीके खोजने चाहिए जिनसे ऐच्छिक विवाचन के सिद्धान्त को अधिक से अधिक लागू किया जा सके तथा सरकार को उद्योग और क्षेत्रीय स्तर पर विवाचको की नामिका बनाने की ओर पग उठाने चाहिए।

उपसहार · समस्या का समाधान

यद्यपि यह मान भी लिया जाए कि देश मे अनिवार्य विवाचन की आवश्यकता है फिर भी इसकी सफलता के लिए कुछ मूल बातो का होना आवश्यक होगा। औद्योगिक विवादो की समस्या विवादो के मूल कारणो को दूर किए बिना नही सुलझायी जा सकती। औद्योगिक विवादो की समस्या को ठीक प्रकार से समझने के लिए तथा उनके शान्तिपूर्ण निबटारे के हेतु विभिन्न प्रकार की व्यवस्थाओ को अपनाने के लिए हमे अनेक बातो को ध्यान मे रखना आवश्यक होगा। उदाहरणत मजदूरी की दर मे एक क्रान्तिकारी परिवर्तन करना होगा, सामाजिक सुरक्षा योजनाओ को लागू करना होगा, रोजगार के स्तर को भी ऊँचा और स्थिर बनाना होगा, कार्य एव रहने की दशाओ मे सुधार लाना होगा, आदि। विवाचको का ठीक प्रकार से चुनाव और एक शक्तिशाली श्रमिक सघ भी आवश्यक है। राज्य की नीति का यही उद्देश्य होना चाहिये कि विवादो के कारणो को जितना भी हो सके कम करे। मालिको और श्रमिको मे सयुक्त रूप से और सीधी वार्ता को

प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है और सबसे पहले सुलह व्यवस्था पर ही ओर देना चाहिये। परन्तु यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि यदि श्रमिकों और मालिकों के आपसी समझौते के परिणामस्वरूप कीमतों में वृद्धि करके दोनों पक्षों को सतुष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है तो ऐसी व्यवस्था अल्पकालीन होगी क्योंकि उपभोक्ता अपने ऊपर अधिक भार पड़ने पर असन्तोष प्रकट करेंगे। अत: उद्योग मे शान्ति की समस्या पर न केवल श्रमिकों और मालिकों के दृष्टिकोण से वरन् उपभोक्ताओ के दृष्टिकोण मे भी विचार करना होगा। इसलिए प्रत्येक उद्योग में सीमान्त इकाइयों को, अर्थात् ऐसी सस्थाओ को जिनकी उत्पादन लागत सबसे अधिक है, उन्नत करना होगा, ताकि उनकी लागत मे कमी हो और मूल्य अधिक न बढ़ें। औद्योगिक विवादो की समस्या को सुलझाने के लिए केवल विधान पर ही अधिक निर्भर नही रहना चाहिए। मालिको और श्रमिको के बीच निकट सम्पर्क स्थापित करने की अधिक आवश्यकता है और श्रमिको को और अधिक सीमा तक प्रबन्ध कार्यो मे सम्मिलित करना चाहिये। इस समय औद्योगिक विवादों की समस्या मनोवैज्ञानिक भी है। दोनो पक्षो का एक दूसरे के प्रति अविश्वास है। यदि मालिक श्रमिको को उत्पादन मे बराबर का साथी समझने लगे और उनसे दूर दूर रहने की वर्तमान प्रवृत्ति को छोड दें तो श्रमिको का असतोष काफी सीमा तक दूर हो जाएगा और औद्योगिक शान्ति भी स्थापित हो सकेगी। इस बात पर बार-बार जोर दिया जा सकता है कि विवादो के मूल कारणो को दूर करना चाहिए। डा० राधाकमल मुकर्जी के शब्दो मे, "उचित मजदूरी, सुन्दर आवास, बीमारी तथा मातृत्व हित लाभ के लिये बीमा योजना आदि जैसी मानवीय मूल आवश्यकताओ को पूरा किए बिना हड़तालो को बलपूर्वक समाप्त कर देने की नीति अपनाना और उनके लिए दण्ड की व्यवस्था करना श्रमिक समस्याओं को गलत ढग से सुलझाने का प्रयत्न करना होगा।" अत. सामाजिक और आर्थिक ढांचे को हमे इस प्रकार से समायोजित करने का प्रयत्न करना चाहिए कि हर श्रमिक को इस बात का आश्वासन हो जाए कि उसकी न्यूनतम आवश्यकताओ की संतुष्टि होती रहेगी, उसके रोजगार में सुरक्षा रहेगी, यदि बेरोजगारी हो ही जाए तो इस अवधि मे उसको कोई और रोजगार मिलने की व्यवस्था होगी तथा ऐसी मजदूरी में कि वह काम करने के अयोग्य हो जाए, उसका निर्वाह होता रहेगा। श्रमिकों मे उचित शिक्षा और श्रमजीवी वर्ग मे उचित प्रकार का प्रचार होना चाहिए ताकि श्रमिक अपने अधिकारो के बारे मे ही न सोचें वरन् अपने कर्त्तव्यो की ओर भी ध्यान दें। प्रजातन्त्र व्यवस्था मे अनेक कानून बनाकर और सरकार के अधिक हस्तक्षेप से समस्या का समाधान नही हो सकता। इससे सम्बन्धित पक्षो को बुरा ही लग सकता है। जहा तक हो सके श्रमिकों और मालिकों को एक दूसरे के निकट लाने का प्रयत्न करना चाहिए। कानूनी विषमताओं को दूर ही रखना चाहिए। यदि पारस्परिक सहयोग की भावना है और श्रमिको की अवस्था मे सुधार कर दिया जाता है तो कोई कारण नही कि

औद्योगिक विवाद यदि पूर्णतया समाप्त न भी हो, फिर भी, अधिक से अधिक कम क्यो न हो जायें।

इस प्रकार के विचारो पर, जो हम पहले भी कई बार व्यक्त कर चुके है, श्री वी० वी० गिरि ने भी अपना मत जोरदार शब्दो म प्रकट किया है। श्री गिरि ने औद्योगिक सम्बन्धो की समस्या पर बहुत व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया है। श्री गिरि की इस विचारधारा (Giri's Approach) का अर्थ यह है कि विवादो को पारस्परिक रूप से सुलझाने के प्रयत्न करने चाहियें और अनिवार्य विवाचन की अपेक्षा सामूहिक सौदाकारी और ऐच्छिक विवाचन को अधिक प्रोत्साहन देना चाहिये। श्री गिरि की विचारधारा बहुत उत्तम है और इसका स्वागत करना चाहिये। परन्तु जैसा ऊपर सकेत किया जा चुका है अभी कुछ वर्षो तक हम सरकार के हस्तक्षेप को पूर्णतया दूर नही कर सकते और किसी न किसी प्रकार की अनिवार्य विवाचन व्यवस्था भी रखनी ही होगी। श्री गिरि ने भी अपनी इस विचारधारा मे कुछ सशोधन किया था। परन्तु यह मानना पडेगा कि कभी न कभी मालिको और श्रमिको मे इस बात की भावना आना बहुत जरूरी है कि यदि दोनो पक्षो को उन्नति करनी है तो उन्हे एक दूसरे को सहयोग देना होगा तथा अपने विवादो और मतभेदो को आपस मे ही सुलझाना होगा। इस प्रकार, एक शक्तिशाली श्रमिक सघ आन्दोलन तथा श्रमिक-प्रबन्धक सहयोग, प्रबन्ध मे श्रमिको का भाग, अनुशासन सहिता, आदि योजनाओ का देश मे औद्योगिक शान्ति स्थापित करने मे बहुत अधिक महत्व है।

८

ग्रेट ब्रिटेन में औद्योगिक सम्बन्ध

INDUSTRIAL RELATIONS IN GREAT BRITAIN

सामूहिक सौदाकारी (Collective Bargaining)

सामूहिक सौदाकारी का विकास ग्रेट ब्रिटेन में मालिक-मजदूर सम्बन्धों की एक महत्वपूर्ण विशेषता है और इस सामूहिक सौदाकारी को कई वर्षों तक उद्योग-धन्धों की समस्याओं के निवारणार्थ मान्यता प्राप्त होती रही है। बहुत समय तक मालिकों ने श्रमिकों के इस अधिकार को स्वीकार नहीं किया कि वे अपने संघों के प्रतिनिधियों द्वारा किसी प्रकार का सौदा करें और मालिक श्रमिकों से व्यक्तिगत रूप से ही व्यवहार करने पर जोर देते रहे। उन्नीसवीं शताब्दी में यह सामान्य विचारधारा थी कि श्रमिक संघ अनुचित रूप से श्रमिकों के व्यक्तित्व में हस्तक्षेप करते हैं और, जैसा कि इङ्गलैंड के श्रमिक संघ के इतिहास[1] में बताया जा चुका है, श्रमिक सगठनों को काफी समय तक अच्छी दृष्टि से नहीं देखा गया। श्रमिकों के सगठनों के विरुद्ध कई कानून बना दिये गये थे क्योंकि श्रमिक वर्ग का विकास नहीं हो सका था। इसलिये १८५० तक सामूहिक सौदाकारी की प्रगति की ओर कोई विशेष कदम भी नहीं उठाया गया। परन्तु १८७१ के बाद श्रमिक सघ आन्दोलन के विकास के साथ-साथ सामूहिक सौदाकारी को भी महत्वपूर्ण समझा जाने लगा और धीरे-धीरे यह साधन शक्तिशाली होता चला गया। आज इङ्गलैंड के मालिक-मजदूर सम्बन्धों को निर्धारित करने में सामूहिक सौदाकारी का मुख्य स्थान है।

इङ्गलैंड में सामूहिक सौदाकारी का तात्पर्य उस व्यवस्था से लिया जाता है जिसके अन्तर्गत मजदूरी और कार्य की दशायें एक ऐसे पारस्परिक सौदे द्वारा निश्चित होती हैं जो मालिकों और मजदूरों के सघों के बीच होता है और जिसको एक समझौते या करार का रूप दे दिया जाता है। इस प्रकार सामूहिक सौदाकारी उस अवस्था को कहते हैं जबकि अनेक श्रमिक एक सौदाकार एकाश के रूप में अपने रोजगार से सम्बन्धित विषयों पर मालिकों से या मालिकों के किसी समूह से समझौता करने के उद्देश्य से बातचीत करते हैं। किसी भी व्यक्तिगत श्रमिक से इस बात की आशा नहीं की जा सकती कि वह असंगठित रूप से अपने लिए समस्त हितों को प्राप्त कर सके। वह केवल सामूहिक सौदाकारी द्वारा ही अनुचित प्रति-योगिता से अपनी सुरक्षा कर सकता है। इन सामूहिक करारों में विभिन्न विषय आ

१. देखिए 'इङ्गलैण्ड में श्रमिक संघवाद' नामक अध्याय ६।

जाते हैं, जैसे—मजदूरी, समयोपरि मेहनताना, छुट्टियाँ, कार्य की दशायें, रोजगार की स्थिति आदि। एक व्यक्तिगत श्रमिक यह समस्त लाभ प्राप्त नही कर सकता और असगठित उद्योगों मे उसको मालिको द्वारा प्रस्तुत की गई शर्तो को ही स्वीकार अथवा अस्वीकार करना पड़ता है। यह स्थिति सामूहिक सौदाकारी मे नही रहती क्योकि सामूहिक सौदाकारी का मतलब यह होना है कि एक ही श्रेणी या स्तर के समस्त श्रमिक और किसी एक विशेष उद्योग के सब ही मालिक एक करार द्वारा बध जाते हैं। ऐसे करारो मे न केवल श्रमिको को लाभ होता है वरन् मालिको को भी लाभ पहुँचता है क्योकि किसी भी झगडे के समय यह सामूहिक करार मालिको की भी रक्षा करते हैं। सामूहिक सौदाकारी की सफलता दोनो पक्षो की पारस्परिक स्वीकृति और करार को वफादारी से निभाने पर निर्भर करती है। यद्यपि ऐसे करारो के पीछे कोई वैधानिक मान्यता नही है तथापि इङ्गलैण्ड मे दोनो पक्ष इनको पूर्ण वफादारी से निभाते हैं। जनमत कभी इस पक्ष मे नही रहा है कि करारो के उल्लघन पर किसी दण्ड की व्यवस्था की जाए। फिर भी सयुक्त ऐच्छिक व्यवस्था (Joint Voluntary Machinery) को प्रोत्साहित करने के लिए कुछ कानून बनाए गए हैं।

श्रमिक सघो के दृष्टिकोण से सामूहिक सौदाकारी का उद्देश्य मालिको की एकपक्षीय कार्यवाही को रोकना होता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वे मालिको से एक ऐसे मविदा (Contract) पर हस्ताक्षर करा लेते हैं जिसमे निश्चित समय के लिए रोजगार की दशाओं को निर्धारित करने और उस समय मे उत्पन्न होने वाले झगडो को निपटाने के लिए व्यवस्था होती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सामूहिक सौदाकारी मालिको पर नियन्त्रण लागू करने का एक तरीका है। इस साधन से श्रमिको को कई अधिकारो का आश्वासन मिल जाता है और कई बातो की छूट भी मिल जाती है क्योकि मालिक फिर स्वतन्त्र रूप से प्रत्येक कार्य नही कर सकते। यह तो स्पष्ट है कि उद्योगो मे और अलग अलग कारखानो मे जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं उनके निवारण के लिए मालिको और मजदूरो के सगठनो को आपस में मिलजुल कर ही बात करनी चाहिएँ। श्रमिक विधान और उनको लागू करने की व्यवस्था तो केवल उद्योग-धन्धो को चालू रखने के लिए उचित वातावरण ही पैदा कर सकते हैं। पारस्परिक समस्याओं का समाधान तो उन्ही पक्षो द्वारा किया जा सकता है जिनका मामले से सीधा सम्बन्ध होना है। इस विषय मे सामूहिक करार ही ऐसा वातावरण उत्पन्न कर सकते हैं जिससे प्रगति मे सहायता मिले। यह सामूहिक करार मालिक और मजदूर सघो के बीच कार्य मे जो पारस्परिक सम्बन्ध होने चाहिएँ उनकी रूप-रेखा का निर्धारण करते हैं और श्रमिको की मांगो और मालिको द्वारा सुविधाएँ देने के मध्य समायोजन ला देते हैं। इस प्रकार यह सामूहिक सौदाकारी और करार इस बात को प्रकट करते है कि श्रमिक सघ आन्दोलन परिपक्व (Mature) और शक्तिशाली हो गए है और मालिको के दृष्टिकोण म भी परिवर्तन आ गया है।

सामूहिक सौदाकारी का क्षेत्र और कार्य प्रत्येक देश में विस्तृत हुए है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के अनुसार अमेरिका मे गैर-कृषि उद्योगो मे लगे हुए लगभग एक तिहाई श्रमिकों की कार्य की दशाएँ सामूहिक सौदाकारी के द्वारा निश्चित की जाती हैं। स्विटजरलैंड मे लगभग आधे औद्योगिक श्रमिक सामूहिक करारो के अन्तर्गत आ जाते है। इसी प्रकार आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, जर्मन गणराज्य, लुक्जम्बर्ग, स्केन्डेनेवियन देशो तथा ग्रेट ब्रिटेन में कम से कम आधे औद्योगिक श्रमिक भी इसी प्रकार सामूहिक करारों के अन्तर्गत आ जाते हैं। सोवियत संघ और पूर्वीय योरुप के प्रजातन्त्र राज्यो में ऐसे सामूहिक करार हर उद्योग संस्थान मे पाए जाते है और अधिकाश श्रमिक इनके अन्तर्गत आ जाते हैं। अर्द्धविकसित देशो में भी सामूहिक सौदाकारी की रीति अब काफी श्रमिकों मे फैल गई है, यद्यपि अनुपात के हिसाब से ऐसे देशो मे अभी तक कम श्रमिक ही इनके अन्तर्गत आए हैं। भारत मे हाल ही मे कुछ सामूहिक करारों पर हस्ताक्षर हुए है। (देखिए पृष्ठ १६१)। इस बात से कोई इन्कार नही कर सकता कि ऐसे करार भारतीय स्थितियों के बहुत अनुकूल हैं, विशेषकर जब हम औद्योगिक विकास के मार्ग पर अग्रसर हो रहे है। परन्तु भारत मे सामूहिक सौदाकारी उस समय तक सफल नही हो सकती जब तक कि यहाँ श्रमिक संघ आन्दोलन को शक्तिशाली न बनाया जाए, श्रमिक संघों की बाढ को न रोका जाए और मालिक श्रमिक-संघो को मान्यता न दें।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि सामूहिक सौदाकारी यह बात मान कर चलती है कि श्रमिक संघो को मालिको द्वारा मान्यता प्राप्त है। अगर ऐसा नही होता अथवा एक उद्योग में दो या इससे अधिक प्रतिद्वन्द्वी संघ होते है तब सामूहिक सौदाकारी निष्क्रिय (**Ineffective**) हो जाती है। ग्रेट ब्रिटेन में श्रमिक संघ मालिको द्वारा मान्यता प्राप्त कर चुके है और श्रमिको में एकता है। इस कारण ग्रेट ब्रिटेन मे सामूहिक सौदाकारी अत्यन्त सफल रही है और जो भी करार हुए हैं उनको न केवल व्यापक रूप से बनाया गया है वरन् उनमे निश्चितता और स्पष्टता भी पाई जाती है और ये करार औद्योगिक सम्बन्धो के लगभग सभी पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नही है कि ब्रिटेन मे एक ऐसी समायोजित और स्वीकृत कार्य-प्रणाली बना ली गई है जो न केवल अधिकतर उद्योगों पर प्रभाव डालती है, वरन् जिसके अन्तर्गत बहुत बडी सख्या मे श्रमिक आ जाते है। अतः ग्रेट ब्रिटेन के औद्योगिक सम्बन्धो के ढांचे का अध्ययन उन लोगो के लिये बडा उपयोगी होगा जो कि भारत मे भी औद्योगिक शान्ति बनाये रखना चाहते है। इगलैण्ड मे प्रथाएँ और रीतियां इतनी प्रभावशाली और महत्वपूर्ण हो गई हैं कि हमारे देश में श्रमिक और उद्योगपति दोनो ही स्वयं के और देश के हित के लिये उनका अनुसरण कर सकते है।

इंगलैण्ड में औद्योगिक विवाद और श्रमिक संघ

इङ्गलैण्ड में श्रमिक संघों के प्रारम्भिक विकास में दो बातें सामने आती हैं— एक तो श्रमिकों में 'औद्योगिक उमंग' अर्थात् उद्योगों में अपने स्थान बनाने की' अभिलाषा और दूसरे उनके राजनैतिक विचार। १८५० तक इङ्गलैण्ड में श्रमिक संघों ने कार्य की दशाओं में सुधार की ओर अधिकतर ध्यान देना आरम्भ कर दिया था। अधिकतर संघों की सदस्य संख्या महत्वपूर्ण हो गई थी। सुलह या विवाचन द्वारा विवादों के निपटारे के लिये व्यवस्था भी कर दी गई थी। कई उद्योगों में सुलह बोर्ड स्थापित कर दिये गये थे, यद्यपि विवादों के समझौते में इनका कार्य सीमित ही रखा गया था। जैसे-जैसे उद्योगों का विकास हुआ इस व्यवस्था का क्षेत्र भी विस्तृत हो गया। इस प्रक्रिया में व्यापार परिषद् और मालिक संघों के संगमों ने काफी सहायता की। १६०० तक विवादों को निपटाने के लिये सामूहिक सौदाकारी को अधिकतर उद्योगों में अपना लिया गया था। इस प्रकार इङ्गलैण्ड में विवादों के निपटाने में श्रमिक संघों ने महत्वपूर्ण कार्य किये हैं और इस सम्बन्ध में उनके कार्यों का वर्णन हम इङ्गलैण्ड के श्रमिक संघवाद के अध्याय में कर चुके हैं (अध्याय ६)।

इंगलैण्ड में औद्योगिक विवादों के कारण

इङ्गलैण्ड में श्रमिकों का असंतोष ही अधिकतर हड़तालों का कारण है। श्रमिकों में असंतोष की भावना इसलिए पाई जाती है कि उनके मतानुसार उन्हें उद्योग के लाभ में से कम हिस्सा मिलता है। यह समस्या आर्थिक होने के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक भी है। जहाँ तक भौतिक उपभोग का प्रश्न है श्रमिक की स्थिति प्रारम्भ की आर्थिक प्रणाली की अपेक्षा यद्यपि अच्छी तो है परन्तु फिर भी वह कम संतुष्ट है। श्रमिकों में शिक्षा का विकास इस असंतोष का एक कारण है। श्रमिक समाज में अपने स्थान तथा उचित कर्त्तव्यों के बारे में पहले से कहीं अधिक वाद-विवाद करते है। संयुक्त पूँजीवादी प्रणाली (Joint Stock System) के विकास ने भी इस असन्तोष की भावना में वृद्धि की है। इस प्रणाली से पूँजी के नियन्त्रण एवं स्वामित्व में भिन्नता आ जाती है और मालिकों व श्रमिकों के व्यक्तिगत सम्बन्ध टूट जाते हैं। मालिक और श्रमिक के जीवन के रहन-सहन के स्तर में भी पूर्व की अपेक्षा अब बहुत अन्तर हो गया है। श्रमिक अपनी स्थिति की अपने पूर्वजों से तुलना नहीं करता वरन् मालिकों के वर्तमान वर्ग से करता है और दोनों के मध्य की गहरी खाई को निहारता है। जब उसे मालिकों के बड़े-बड़े लाभांशों (Dividends) का ज्ञान होता है तब वह अनुभव करता है कि उससे उसका उचित भाग छीना जा रहा है। वह देखता है कि विभिन्न प्रकार की सम्पत्ति के केवल स्वामित्व के कारण ही पूँजीपति कितने आनन्द से रहते हैं। यद्यपि वह यह स्वीकार करता है कि उत्पादन के लिए पूँजीगत वस्तुएं आवश्यक है परन्तु वह मालिकों द्वारा उद्योग के लाभ में से एक बड़े हिस्से को हड़प जाना अन्याय

समझता है। दो महायुद्धो से भी श्रमिकों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडा है और वह मालिको की ही भाँति सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने के अधिकार को पाने का दावा करते है। इसीलिए मजदूरी, बोनस और महँगाई भत्ते के प्रश्नों पर ही अनेक हड़तालें हुई है।

श्रमिकों के मेहनताने के प्रश्न से ही कार्य के घण्टे और कार्य की दशाओं के प्रश्न भी सम्बन्धित हैं। इङ्गलैण्ड में अनेक कटु संघर्ष कार्य दिवस के घण्टों के कारण हुए है। समयोपरि (Overtime) का प्रश्न औद्योगिक अशान्ति का प्रमुख कारण रहा है, विशेषकर उस समय जब व्यवसाय में बेरोजगारी होती है। मालिक अकसर दबे खर्चों में कमी करने के लिये श्रमिकों से अतिरिक्त घण्टो तक काम कराते हैं क्योंकि पारी प्रणाली यदि न हो तो नये श्रमिको को कार्य पर लगाने से मशीनरी आदि पर भी अतिरिक्त धन व्यय करना पडता है। श्रमिक समयोपरि का विरोध करते है क्योंकि उससे कम घण्टे कार्य करने से जो सुविधा मिलती है उसका अन्त हो जाता है और उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त समयोपरि के न होने से अधिक श्रमिक रोजगार पा सकते हैं।

इंगलैण्ड में अनेक हडतालें इस कारण भी हुई हैं कि मालिकों ने श्रमिक संघों को उचित तथा क्षमतापूर्ण (Competent) सौदाकारी सगठन के रूप मे मान्यता देने से इन्कार कर दिया है। उदाहरणतः रेलवे श्रमिकों को काफी लम्बे समय तक संघर्ष करना पड़ा, तब कहीं जाकर रेलवे कम्पनियों ने उनको पूर्ण मान्यता प्रदान की। परन्तु औद्योगिक अशान्ति का यह कारण अब विशेष महत्व नही रखता क्योंकि मालिक अब श्रमिको के उनके संघो द्वारा बातचीत और सौदा करने के अधिकार को स्वीकार करते हैं। अब मालिक देश में शक्तिशाली श्रमिक संघ आन्दोलन की उपेक्षा करने का साहस नहीं कर सकते।

इगलैण्ड में औद्योगिक अशान्ति का एक और कारण कुछ उत्साही श्रमिकों का उद्योग के प्रबन्ध मे भाग लेने की इच्छा है। वह उस व्यवस्था से सन्तुष्ट नही है जिसमे श्रमिको का स्तर अधीनस्थ (Subordinate) हो जाता है, उनके व्यक्तित्व का लोप हो जाता है और इस प्रकार उन्हे अपनी प्रतिभाओं के विकास का अवसर नहीं मिलता। उनका उद्देश्य हडतालों के माध्यम से पूँजीवादी प्रणाली को पूर्णतया समाप्त कर श्रमिकों का नियन्त्रण स्थापित करना है। श्रमिकों के स्तर को 'दास-मजदूर' (Wage slave) की स्थिति से ऊँचा उठाना उनका लक्ष्य है। इन विचारों के परिणामस्वरूप अनेक औद्योगिक विवाद हुये है। यदि ब्रिटिश लोग क्रान्तिकारी विचारों के विरोधी न होते तो इनका प्रभाव और भी अधिक होता। किन्तु इगलैण्ड में सम्भवतः कुछ साम्यवादियों को छोडकर अन्य कोई भी अर्थ-व्यवस्था के वर्तमान स्वरूप को नष्ट कर श्रमिकों के नियन्त्रण के पक्ष मे नही है।[2]

२. प्रोफेसर पीगू के अनुसार औद्योगिक मतभेदो के वर्गीकरण का उल्लेख पृष्ठ १५१–१५२ पर दिया गया है।

औद्योगिक विवाद सम्बन्धी विधान

यद्यपि इगलैण्ड मे औद्योगिक विवाद सम्बन्धी विधान एक शताब्दी से भी अधिक पुराना है परन्तु १८९६ के पूर्व जो भी विधान बनाये गये थे उनमें अधिक उत्साह नहीं दिखाया गया था और इस कारण मालिक और मजदूरो के बीच जो खाई धीरे-धीरे उत्पन्न होती जा रही थी उसको कम करने में इन विधानों से अधिक सहायता प्राप्त नहीं होती थी। १८२४ के अधिनियम के अन्तर्गत 'जस्टिसेज आफ पीस' (Justices of Peace) को स्वेच्छापूर्वक मजदूरी निर्धारित करने का अधिकार दे दिया गया था। १८६७ और १८७२ के अधिनियमों में यद्यपि सुलह बोर्डों की व्यवस्था की गई थी परन्तु इनकी स्थापना की ओर कोई विशेष पग नहीं उठाया गया था। १८९४ मे प्रकाशित श्रम आयोग की रिपोर्ट की सिफारिश के आधार पर १८९६ का सुलह अधिनियम (Conciliation Act) पारित किया गया। इसमें सुलह के ऐच्छिक सिद्धान्त पर जोर डाला गया था। सुलह का ऐच्छिक सिद्धान्त ब्रिटिश विधान की अपनी एक निराली विशेषता रही है। जहाँ सुलह बोर्ड नहीं बनाये गये थे, वहाँ मालिकों को ऐसे बोर्ड स्थापित करने के लिये प्रोत्साहित किया गया। 'बोर्ड आफ ट्रेड' (Board of Trade) को मध्यस्थता करने का अधिकार था। किसी भी एक पक्ष की प्रार्थना पर बोर्ड समझौताकार को और दोनो पक्षों की प्रार्थना पर विवाचक को नियुक्त कर सकता था। यद्यपि बोर्ड के निर्णय को मानना वैधानिक रूप से बाध्य नहीं था परन्तु फिर भी आशा की जाती थी कि सामान्यतः दोनो पक्ष निर्णय का आदर करेंगे।

१८९६ का अधिनियम केवल साधारण रूप से सफल रहा। पजीकृत सुलह बोर्डों की सख्या धीरे-धीरे बढ़ने लगी। हड़ताल और तालाबन्दी को रोकने में बोर्ड आफ ट्रेड का काफी हाथ रहा। १९०८ मे एक स्थायी विवाचन न्यायालय (*Court of Arbitration*) *की स्थापना की गई* और इसके तीन वर्ष पश्चात् औद्योगिक परिषद (Industrial Councils) बनाई गईं। ऐसी परिषदें जिनका अध्यक्ष एक स्थायी अधिकारी होता था। मालिकों और कर्मचारियों की सयुक्त सस्था थी और इनका मुख्य कार्य बोर्ड आफ ट्रेड को सुलह और विवाचन कार्यों में सहयोग और सहायता देना था। इतना होते हुए भी १९१४ के युद्ध से पूर्व राष्ट्र-व्यापी हड़तालें हुईं और उनको सुलझाने के लिये तत्कालीन व्यवस्था पूर्णतया असफल सिद्ध हुई।

युद्ध के परिणामस्वरूप नीति में कुछ समय के लिये परिवर्तन हुआ। समय की आवश्यकताओं के कारण ही १९१५-१७ के 'म्यूनिशन आफ वार एक्ट्स' (Munitions of War Acts) पारित किये गये जिनके अन्तर्गत हड़तालों को अवैध घोषित कर दिया गया तथा विवाचन बोर्ड के निर्णयों को मानना वैधानिक रूप से अनिवार्य कर दिया गया। परन्तु इतना सब होने पर भी युद्धकाल में ही

औद्योगिक अशान्ति दृष्टिगोचर होने लगी। फलतः अक्टूबर १६१६ में सरकार ने ह्विटले समिति (Whitley Committee) नियुक्त की। इसने संगठित उद्योगों में संयुक्त औद्योगिक परिषदों (Joint Industrial Councils) के निर्माण, आंशिक रूप से संगठित उद्योगों के लिये मालिक मजदूर समितियों (Works Committees) के निर्माण और असंगठित उद्योगों में मजदूरी के नियन्त्रण करने की सिफारिश की। समिति ने विभिन्न उद्योगों में ऐच्छिक रूप से राष्ट्रीय संयुक्त स्थायी औद्योगिक परिषदों (National Joint Standing Industrial Councils) और विभिन्न क्षेत्रों के लिये जिला परिषदों (District Councils) के स्थापित करने की भी सिफारिश की। राष्ट्रीय संयुक्त परिषदों का कार्य 'सामान्य नीति' (General Policy) से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करना था और जिला परिषदों का कार्यक्षेत्र स्थानीय प्रश्नों से सम्बन्धित था और मालिक-मजदूर समितियों के कार्य उन विषयों से सम्बन्धित थे जो किसी विशेष उद्योग संस्था के आन्तरिक (Internal) सम्बन्धों और कार्यों पर प्रभाव डालते थे।

१६१६ में सरकार ने औद्योगिक न्यायालय अधिनियम (Industrial Courts Act) पारित किया जो ह्विटले समिति के सुझावों को मानकर बनाया गया था। इस समिति ने अनिवार्य विवाचन विधि का घोर विरोध किया था और वर्तमान व्यवस्था को ही जारी रखने का सुझाव दिया था जिसमें मालिक और श्रमिक स्वयं ही समझौते करते थे और अपने मतभेदों को पारस्परिक रूप से निपटा लेते थे। अधिनियम के अन्तर्गत एक स्थायी औद्योगिक न्यायालय (Standing Industrial Court) की स्थापना भी की गई। इस न्यायालय में मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधि तथा अन्य स्वतन्त्र व्यक्ति थे और यह सब श्रम मन्त्रालय द्वारा मनोनीत किये जाते थे। दोनों पक्षों की सहमति से कोई भी विवाद इस न्यायालय को सौंपा जा सकता था। इंगलैण्ड में इस न्यायालय ने विवादों को सुलझाने की दृष्टि से उपयोगी कार्य किया है। अधिनियम के अन्तर्गत श्रम मन्त्रालय को यह अधिकार था कि वह किसी भी विवाद की जाँच करने के लिये जाँच न्यायालय (Court of Inquiry) स्थापित कर दे और जाँच की रिपोर्ट भी प्रकाशित कर दे। पिछले युद्ध के समय विवादों को सुलझाने की दृष्टि से 'रोजगार और राष्ट्रीय विवाचन आदेश' (Employment and National Arbitration Order) के अन्तर्गत एक राष्ट्रीय विवाचन अधिकरण (National Arbitration Tribunal) की स्थापना की गई। इसके अन्तर्गत उस समय तक हड़तालों और तालाबन्दियों को अवैध घोषित कर दिया गया जब तक कि कोई भी विवाद श्रम मन्त्री को प्रस्तुत नहीं किया जाता और वह २१ दिन के अन्दर-अन्दर समझौता नहीं करा पाता। सर्वप्रथम सामूहिक संयुक्त व्यवस्था से परामर्श लिया जाना जरूरी था और इसके निर्णय की महत्ता भी विवाचन निर्णय जैसी ही मानी गई थी।

इस प्रकार इगलैण्ड मे सामूहिक सौदाकारी की व्यवस्था युद्ध-काल मे भी कार्यान्वित होती रही।

विवादो के निपटारे का ऐच्छिक आधार
(Voluntary Basis of Settlement)

इगलैण्ड म वर्तमान समय मे भी औद्योगिक सम्बन्धो की व्यवस्था मुख्य रूप म ऐच्छिक आधार पर स्थापित है। कुछ ही मामलो मे सरकारी व्यवस्था इसके पूरक के रूप मे की जाती है। औद्योगिक सम्बन्धो की व्यवस्था श्रमिको और मालिको के सगठनो अर्थात् मालिको के सघ और श्रमिक सघो पर निर्भर है। यह सगठन श्रमिको के कार्य की शर्तो और अन्य मामलो पर विचार-विमर्श और बातचीत करते है। कुछ विषयो मे तो यह वार्ता, अगर आवश्यकता हो तो, केवल सघो की सभा बुला कर ही की जाती है। अन्य विषयों के लिये एक स्थायी ऐच्छिक सयुक्त व्यवस्था की गई है। साधारणत यह व्यवस्था सामने आने वाले प्रश्नो को सुलझाने के लिये पर्याप्त है। परन्तु उन विवादो के लिये जिनका निपटारा इस प्रकार नही हो पाता, स्वतन्त्र रूप से विवाचन के लिये प्रस्तुत करने की भी व्यवस्था है। कुछ विशेष व्यवसायो मे, जहां मालिको और श्रमिको के ऐच्छिक सगठनों का इतना विकास नही हो पाया है, कि वह इस प्रकार के मामलो को सामूहिक सौदाकारी द्वारा निबटा ले या इस प्रकार होने वाले समझौतो को लागू कर सके वहाँ ऐसे मामलो को निबटाने के लिये राजकीय कानूनों द्वारा व्यवस्था की गई है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये मजदूरी निर्धारित करने की व्यवस्था सम्बन्धी अनेक अधिनियम भी पारित किय गये हैं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इगलैण्ड मे मालिको और श्रमिको के सघ सामूहिक सौदाकारी और औद्योगिक सम्बन्धो के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण हैं। इगलैण्ड म अधिकतर मालिक, मालिक-सघो के सदस्य हैं। इनमे से अनेक सघ काफी समय स चले आ रहे हैं। साधारणतया सघ औद्योगिक आधार पर सगठित किये गये हैं। इनम स कुछ तो स्थानीय हैं और कुछ राष्ट्रीय आधार पर बनाये गये हैं। 'ब्रिटिश एम्प्लायर्स कन्फिडरेशन' (British Employers' Confederation) मालिक सघो की केन्द्रीय सस्था है और इससे अधिकतर मालिक सघ और सगम सम्बद्ध (Affiliated) है। यह सगठन मालिको और श्रमिको के आपसी सम्बन्धो मे, मालिको के हितो को ध्यान मे रखकर कार्य करती है। जहाँ तक श्रमिक सघो का सम्बन्ध है, अधिकतर श्रमिक सघो म सगठित है। इनके विकास और कार्यो का वर्णन 'इगलैण्ड म श्रमिक सघवाद' नामक अध्याय मे पहले ही किया जा चुका है। 'ट्रेड यूनियन काँग्रेस' श्रमिक सघो की केन्द्रीय सस्था है और इससे अधिकतर श्रमिक सघ सम्बद्ध हैं। सरकारी विभागो व सगठित मालिको और श्रमिको के प्रतिनिधियो के बीच उनके हितो को व्यापक रूप से प्रभावित करने वाले विषयो पर परामर्श करने के लिये 'ब्रिटिश एम्प्लायर्स कन्फिडरेशन' और 'ट्रेड यूनियन काँग्रेस' को सरकार द्वारा मुख्य सस्था के रूप मे मान्यता प्राप्त है।

संयुक्त औद्योगिक परिषदें (Joint Industrial Councils)

जहाँ तक ऐच्छिक संयुक्त वार्ता व्यवस्था का सम्बन्ध है, यह देखने में आता है कि रोजगार की शर्तों और दशाओं को प्रभावित करने वाले सभी मामलों पर सम्बन्धित मालिकों और श्रमिकों के संगठन द्वारा तदर्थ (Ad hoc) रूप से विचार किया जाता है और अन्य मामलों के लिये संयुक्त औद्योगिक परिषदों के रूप में स्थायी संस्थायें है और उनका कार्य. इस प्रकार के मामलों पर राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त रूप से विचार करना है। इनकी स्थापना 'व्हिटले समिति' की सिफारिशों और १६१६ के 'औद्योगिक न्यायालय अधिनियम' (Industrial Courts Act) के परिणामस्वरूप हुई है। इस समय इस प्रकार की संस्थाओं की संख्या २०० है। इनमें उद्योग के दोनों पक्षों के प्रतिनिधि होते हैं और कुछ मामलों मे एक स्वतन्त्र अध्यक्ष भी होता है। इनके कार्यो में बहुत भिन्नता होती है। कुछ संस्थाये केवल मजदूरी के विषय पर ही बातचीत करती है, और कुछ महत्वपूर्ण संस्थायें उद्योग के हितो को प्रभावित करने वाली अनेक बातों पर विचार करती है। यदि निपटारे की शर्तों पर समझौता नही हो पाता है तब वह अपने विवाद को किसी स्वतन्त्र विवाचक के सम्मुख रखने को अथवा १६१६ के औद्योगिक न्यायालय अधिनियम के अन्तर्गत किये गये अन्य किसी साधन को अपनाने को सहमत हो जाते है।

अनेक उद्योगों में इसी प्रकार के प्रबन्ध जिला और कारखाना स्तरों (District and Factory Levels) पर है जहाँ मामलो पर दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों द्वारा या तो तदर्थ (Ad hoc) रूप से विचार किया जाता है अथवा जिला संयुक्त औद्योगिक परिषदो या ऐसी ही संस्थाओं या मालिक-मजदूर परिषदों द्वारा की गई किसी नियमित व्यवस्था द्वारा विचार होता है। इस प्रकार की संस्थाए राष्ट्रीय स्तर पर किये गए समझौतो को अपने जिले या कारखाने मे लागू करने के प्रश्न पर विचार करती हैं, परन्तु साधारणतया इन्हे राष्ट्रीय समझौतों की शर्तों में परिवर्तन करने का अधिकार नही है। ये नई समस्याओ पर भी विचार करती है परन्तु यदि जिला अथवा कारखाना स्तरो पर उनका कोई हल नही निकलता तब उनको राष्ट्रीय संस्था को सौंप दिया जाता है।

इगलैण्ड मे मालिक-मजदूर समितियाँ (Works Committees in England)

इगलैण्ड में मालिक-मजदूर समितियों की स्थापना के अनेक उद्देश्य रहे है। श्रमिक मालिक-मजदूर समितियों को प्रबन्ध में हिस्सा लेने का साधन मानते है। मालिकों के विचार से ये समितियाँ अशान्ति को कम करने और कार्य-कुशलता को बढाने का साधन हैं। उचित रूप से संगठित मालिक-मजदूर समितियों से श्रमिको को बहुत लाभ होता है। प्रत्येक संस्थान में मजदूरी एवं कार्य के घण्टो आदि विषयों से सम्बन्धित विवादों को तुरन्त ही सुलझाया जा सकता है। इन समितियो द्वारा रोजगार और कार्य की दशाओं से सम्बन्धित

अन्य विषयों पर भी विचार किया जाता है। परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं जहाँ श्रमिकों को प्रबन्ध में वास्तविक रूप से भाग मिला हो। जहाँ तक नीति-निर्धारण में श्रमिकों के सहयोग का प्रश्न है उसका अस्तित्व लगभग है ही नहीं। जिन श्रमिकों ने इस उद्देश्य से श्रमालय समितियों का निर्माण किया था, साधारणतया उन्हें निराश ही होना पड़ा। यह बात उल्लेखनीय है कि शुरु शुरु में श्रमालय समितियों और श्रमालय प्रतिनिधि समितियों का श्रमिक संघों द्वारा अपनी गतिविधियों के पूरक के रूप में समर्थन किया गया था परन्तु बाद में जब श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन प्रभावशाली हुआ तो श्रमिक संघ इनके विरोधी हो उठे जिसके कारण यह आन्दोलन १९१८ के बाद असफल हो गया। वर्तमान समय में श्रमालय समितियाँ श्रमिक संघों से मिलकर अपना कार्य सुचारु रूप से कर रही हैं और इन्होंने विवादों को तत्काल ही सुलझाने की स्वस्थ परम्परा का विकास किया है। श्रमिकों की सुरक्षा और कल्याण के लिए भी इन्होंने अच्छा कार्य किया है। ग्रेट-ब्रिटेन की औद्योगिक सम्बन्ध व्यवस्था में उनका अब एक मुख्य स्थान है।

मजदूरी को नियन्त्रित करने वाली व्यवस्था (Wage Regulating Machinery)

इंगलैण्ड में मजदूरी को वैधानिक रूप से भी नियन्त्रित करने की व्यवस्था है। अनेक उद्योगों में जहाँ श्रमिकों और मालिकों के संगठन की कमी के कारण ऐच्छिक रूप से पारस्परिक बातचीत का प्रबन्ध नहीं है या यदि है तो वह अपर्याप्त है, वहाँ कुछ वैधानिक निकायों (Statutory Bodies) की स्थापना की गई है जिन्हें मजदूरी निर्धारण परिषद् (Wage Council) और मजदूरी निर्धारण बोर्डों (Wage Boards) के नाम से जाना जाता है। इनमें मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों के साथ-साथ कुछ विशेष स्वतन्त्र व्यक्ति भी होते हैं। इन निकायों से सम्बन्धित मन्त्री को जो साधारणतया श्रम मन्त्री होता है, मजदूरी की न्यूनतम शर्तों और दशाओं के लिए सुझाव देने का अधिकार है। मन्त्री को इन न्यूनतम दशाओं और शर्तों को वैधानिक रूप देने का अधिकार है। लगभग २०-३० लाख श्रमिकों के रोजगार की दशाओं का निर्धारण ऐसी ही वैधानिक व्यवस्था द्वारा होता है। १९४५ के मजदूरी परिषद् अधिनियम (Wages Council Act) द्वारा भी मजदूरी निर्धारित करने वाली इस व्यवस्था की स्थापना की गई है। अनेक उद्योगों के लिए भी अधिनियम बनाए गए हैं, जैसे—१९४८ में कृषि कार्यों में मजदूरी निर्धारण के लिए (Agricultural Wages Act), १९३८ में सड़क यातायात के कार्यों में मजदूरी निर्धारण के लिए (Road Haulage Wages Act), १९४३ में भोजनालयों में काम करने वालों की मजदूरी निर्धारण के लिए (Catering Wages Act), आदि। इन सब में न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था है।

राज्य द्वारा सुलह और विवाचन व्यवस्था
(State Conciliation and Arbitration)

सरकार की ओर से सुलह, विवाचन और जांच की भी व्यवस्था की गई है। १८९६ के सुलह अधिनियम (Conciliation Act) और १९१९ के औद्योगिक न्यायालय अधिनियम (*Industrial Courts Act*) के अन्तर्गत श्रम मन्त्री को यह अधिकार है कि यदि ऐच्छिक सुलह व्यवस्था द्वारा औद्योगिक विवादों का निपटारा न किया जा सके तो वह उद्योगों को विवादों के निपटारे में सहायता करें। इन अधिकारों का उद्देश्य ऐच्छिक साधनों और संयुक्त व्यवस्था को दबाना नहीं वरन् पूरक करना है। सुलह व्यवस्था द्वारा उद्योगों को सहायता देने के लिए सुलह अधिकारियों की व्यवस्था है जो श्रम मन्त्रालय का एक भाग है। इन सुलह अधिकारियों का कार्य राष्ट्रीय और जिला और कुछ विषयों में कारखाना स्तर पर मालिकों और श्रमिकों के आपसी सम्बन्धों को ध्यान में रखना है और यदि श्रमिक और मालिक चाहें तो पारस्परिक वार्तालाप और वाद-विवाद द्वारा उनके विवादों का निपटारा करने में सहायता देना है। जिन विवादों को इस प्रकार से नहीं निपटाया जा सकता उनको यदि सम्बन्धित पक्ष चाहें तो ऐच्छिक विवाचन के लिए सौंपा जा सकता है। यह विवाचन या तो एक विवाचक द्वारा या एक तदर्थ (Ad hoc) विवाचन बोर्ड द्वारा या औद्योगिक न्यायालय द्वारा, जो १९१९ के औद्योगिक न्यायालय अधिनियम के अन्तर्गत एक स्थायी अधिकरण के रूप में स्थापित हुआ है, किया जाता है। युद्धकाल के संकटकालीन (Emergency) पग के रूप में यह प्रबन्ध बनाया गया था कि किसी भी पक्ष द्वारा मन्त्री को प्रस्तुत किये जाने वाले मामले को राष्ट्रीय विवाचन अधिकरण को सौंपा जा सकता था और इसके निर्णयों का सम्बन्धित पक्षों पर लागू करना अनिवार्य था। यह व्यवस्था १९५८ तक चलती रही जबकि उस वर्ष नवम्बर में अधिकरणों को समाप्त कर दिया गया, यद्यपि श्रमिक संघ के नेताओं ने इसका विरोध किया था। अब १९५९ के रोजगार की शर्तों और दशाओं से सम्बन्धित अधिनियम (Terms and Conditions of Employment Act के अन्तर्गत श्रमिकों के प्रतिनिधि संगठन द्वारा श्रम मन्त्री को यह रिपोर्ट दी जा सकती है कि उसके व्यापार या उद्योग में कोई विशेष मालिक रोजगार की ऐसी शर्तों और दशाओं को कार्यान्वित नहीं कर रहा है जिनका आपस में निर्णय हो चुका है या जिनके लिए कोई विवाचन निर्णय दिया जा चुका है या जिनको मान्यता प्राप्त है। यदि मामले का निपटारा नहीं हो पाता तो श्रम मन्त्री को उसे औद्योगिक न्यायालय को सौंपना पड़ता है। मालिकों को रोजगार की शर्तों और दशाओं को मनवाने के लिए न्यायालय द्वारा विवाचन निर्णय दिया जा सकता है। यह निर्णय रोजगार संविदा की एक निहित शर्त के रूप में मान्य हो जाता है। श्रम मन्त्री को यह अधिकार भी है कि वह उन विवादों के लिए जो हो चुके हैं, या जिनके होने की सम्भावना है अथवा जिनकी उपरोक्त साधनों द्वारा सरलता से सुलझने

की आशा नही है, जाँच न्यायालय या जाच समिति की स्थापना कर दे। इन निकायो (Bodies) की रिपोर्ट मुख्यत ससद और जनता की सूचना के लिए होती है। यद्यपि रिपोर्ट को किसी पक्ष के लिए मानना अनिवार्य नही है फिर भी इन रिपोर्टों की सिफारिशो को विवादो के निबटारे का आधार समझकर स्वीकार कर लिया जाता है।

इङ्गलैण्ड मे श्रमिको और श्रमिको के सम्बन्धो को प्रभावित करने वाले विषयो पर विवाद करने के लिये सरकार और उद्योग मे पारस्परिक सम्पर्क भी रहता है। दोनो पक्षो के सामान्य हितो के विषयो पर सरकार सभी स्तरो पर विचार करने के लिये श्रमिको और मालिको के प्रतिनिधियो के साथ सम्पर्क बनाये रखती है। स्थानीय और जिला स्तर पर श्रम मन्त्रालय के सुलह अधिकारी उद्योग के दोनो पक्षो के प्रतिनिधियो के सम्पर्क मे रहते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर विभाग के अधिकारी पारस्परिक सम्पर्क बनाये रखने वाले अधिकारियो के रूप मे निमन्त्रण पाकर अथवा सौजन्यता के नाते से सयुक्त औद्योगिक परिषदो की सभाओ मे उपस्थित होते हैं। राष्ट्रीय सयुक्त सलाहकार परिषद् के माध्यम से सरकार व 'ब्रिटिश एम्प्लायर्स कॉन्फैड्रशन' और 'ट्रेड यूनियन कांग्रेस' के बीच परामर्श करने की स्थायी व्यवस्था भी है। इस राष्ट्रीय सयुक्त सलाहकार परिषद् (National Joint Advisory Council) की स्थापना १९३९ मे की गई थी। इसमे दोनो पक्षो का प्रतिनिधित्व होता है और इसका कार्य सामान्य हित के प्रश्नो पर सरकार को सलाह देना है।

उत्पादन सम्बन्धी सभी विषयो पर कारखाना स्तर पर उद्योग मे सयुक्त रूप से परामर्श करने की व्यवस्था की गई है। बहुधा विषयो पर सयुक्त रूप से विचार किया जाता है जो अनौपचारिक (Informal) रूप से होता है, विशेषकर छोटे कारखानो मे ऐसा ही होता है। कुछ अन्य उद्योगो मे ऐसे विचार विमर्श कुछ सयुक्त निकायो (Bodies) द्वारा होते है जो कारखाना, जिला और राष्ट्रीय हर स्तर पर स्थापित कर दिये गये हैं। ये सयुक्त निकायें रोजगार की शर्तों और दशाओ के बारे मे विचार और समझौता कराने का प्रयत्न करती है, और उत्पादन से सम्बन्धित विषयो पर भी विचार करती हैं। अनेक अन्य उद्योगो मे इन मामलो पर विचार करने के लिये सयुक्त उत्पादन समिति अथवा मालिक मजदूर परिषद् की अलग से व्यवस्था है। इनकी स्थापना कारखाना स्तर पर की जाती है और इनमे उन मामलो को सम्मिलित नही किया जाता जिन पर सामान्य वार्तालाप व्यवस्था के अन्तर्गत विचार किया जाता है। इन सयुक्त उत्पादन समितियो का सगठन भिन्न भिन्न होता है, और कुछ उद्योगो मे आपसी वार्तालाप की सामान्य निकायो द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर इनको नियन्त्रित किया जाता है।

इगलैण्ड मे औद्योगिक शान्ति की स्थापना के लिए की गई व्यवस्था की प्रमुख विशेषताये

इस प्रकार ब्रिटिश औद्योगिक व्यवस्था की मुख्य विशेषता यह है कि

विवादों की प्रारम्भिक अवस्था में ही शिकायतों को दूर करने का अवसर मिलता है। इङ्गलैण्ड में औद्योगिक सम्बन्धों की सम्पूर्ण व्यवस्था का आधार ऐच्छिक है। वहाँ पर दोनो पक्ष एक दूसरे के दृष्टिकोणों को समझने का प्रयत्न करते हैं और अपने सामान्य हितों को भी मान्यता देते हैं। इस कारण इङ्गलैण्ड में पिछले बीस वर्षों में हड़ताल और तालाबन्दी बहुत ही कम हुई हैं। पिछले कुछ वर्षों में हुई कुछ गम्भीर कामबन्दियों (Stoppages of work) के बावजूद १९३२ से १९५६ तक औसतन केवल २२·२५ लाख कार्य दिनों की क्षति हुई जबकि १९१० से १९३२ तक २३ वर्षों में २१० लाख कार्य दिनों की क्षति हुई थी।

संक्षेप में हम कह सकते है कि इंगलैण्ड में औद्योगिक-शान्ति स्थापित करने के लिये निम्नलिखित व्यवस्था है:—(१) मालिकों और श्रमिकों में सामूहिक सौदाकारी द्वारा किये गये संयुक्त ऐच्छिक समझौते और करार, (२) मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों में औद्योगिक परिषदों द्वारा राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय स्तरों पर संयुक्त रूप से औद्योगिक वार्तालाप, (३) प्रत्येक संस्थान में मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों की मालिक-मजदूर समितियाँ, (४) ऐसे उद्योगों में, जहाँ संघ कमजोर हैं, न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिये वैधानिक मजदूरी नियन्त्रण की व्यवस्था (Statutory Wage Regulating Machinery), (५) सरकार द्वारा सुलह, विवाचन और जाँच तथा युद्ध काल में अनिवार्य विवाचन की व्यवस्था, (६) श्रमिकों और मालिकों के पारस्परिक सम्बन्धों पर प्रभाव डालने वाले विषयों पर सरकार और उद्योग में पारस्परिक सम्पर्क बनाए रखने की व्यवस्था, (७) कारखाना स्तर पर उद्योग में संयुक्त परामर्श व्यवस्था।

ग्रेट-ब्रिटेन के अनुभव और भारत

कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि इंगलैण्ड की भाँति औद्योगिक विवादों के विषयों पर राजकीय हस्तक्षेप यथासम्भव कम होना चाहिये और विलम्ब करने की अपेक्षा प्रारम्भिक अवस्था में ही तर्क द्वारा मतभेद दूर करने के तरीके को प्रोत्साहित करना चाहिये। भारत में अब तक श्रमिक संघों ने औद्योगिक विवादों के सुलझाने में कोई विशेष योग नहीं दिया है जबकि ग्रेट ब्रिटेन के औद्योगिक सम्बन्धों के वह अभिन्न (Integral) अंग है। इसके अतिरिक्त ग्रेट ब्रिटेन में, भारत के विपरीत, किसी भी औद्योगिक विवाद के सम्बन्धित पक्ष एक दूसरे के दृष्टिकोण की सराहना करते है तथा पारस्परिक वार्तालाप और स्वतन्त्र विचार-विमर्श द्वारा स्थिति को स्पष्ट रूप से समझने का प्रयत्न करते हैं। भारत में कर्त्तव्यनिष्ठ (Responsible) श्रमिक नेताओं की कमी है। श्रमिक अशिक्षित और असंगठित होने के कारण पारस्परिक विचार-विमर्श में भाग नहीं लेते और इस प्रकार प्रतिपक्ष के विचारों को समझ भी नहीं पाते। ग्रेट ब्रिटेन में औद्योगिक सम्बन्धों की व्यवस्था सफलतापूर्वक ऐच्छिक आधार पर कार्य करती है और इसका कारण शक्तिशाली श्रमिक संघ और शिक्षित श्रमिक वर्ग है। भारत में श्रमिक संघ आन्दोलन अभी तक दुर्बल

है और श्रमिक वर्ग अशिक्षित है, इसलिए सरकार का हस्तक्षेप आवश्यक और वाछनीय प्रतीत होता है। परन्तु भारत में भी अब प्रारम्भिक अवस्था में ही स्वतन्त्र और निष्पक्ष विचार-विमर्श की महत्ता को धीरे-धीरे समझा जा रहा है। भारत में भी इगलैण्ड के समान विभिन्न औद्योगिक अधिनियमों में मालिक मजदूर समितियों, सयुक्त औद्योगिक परिषदो, समझौताकारो आदि की व्यवस्था की गई है। अब श्रमिकों और मालिकों के बीच सयुक्त ऐच्छिक विचार विमर्श पर अधिक जोर दिया जा रहा है। भारत मे कुछ औद्योगिक केन्द्रो मे श्रमिकों और मालिकों के मध्य हाल ही में हुए करारो ने यह सिद्ध कर दिया है कि पारस्परिक विवादों में ही रत होने के पुराने तरीका का प्रभाव अब कम होता जा रहा है।

इस प्रकार भारत अपनी मालिक मजदूर सम्बन्ध व्यवस्था मे ग्रेट ब्रिटेन की व्यवस्था का अनुसरण करने का प्रयत्न कर रहा है। इगलैण्ड और भारत की इस व्यवस्था में कुछ न कुछ अन्तर तो रहेगा ही क्योंकि दोनो देशो की परिस्थितिया बहुत भिन्न हैं। इसलिए इस समय औद्योगिक विवादो मे सरकारी हस्तक्षेप को किसी बड़ी सीमा तक समाप्त नही किया जा सकता क्योंकि श्रमिक और मालिक दोनो ही इस समय इस बात के पक्ष मे प्रतीत नही होते। हम इतना कह सकते हैं कि भारत मे श्रमिको और मालिको दोनो को ही प्रतिपक्षी के दृष्टिकोण को समझने के लिए ग्रेट ब्रिटन की भाँति निष्पक्ष एव स्वतन्त्र विचार-विमर्श की महत्ता को समझना होगा। औद्योगिक विवादो के हो जाने के पश्चात् उनके निवारण के लिए हल ढूंढने की अपेक्षा हम भी इस बात का अधिक प्रयत्न करना चाहिए कि औद्योगिक विवाद उत्पन्न ही न हो।

———

९

औद्योगिक श्रमिकों की आवास समस्या

(HOUSING OF INDUSTRIAL LABOUR)

आवास की महत्ता और आवश्यकता

आवास की समस्या निश्चय ही भारत मे औद्योगिक श्रमिकों की एक महत्वपूर्ण समस्या है। भोजन तथा कपडे के बाद आवास का ही स्थान है। उचित आवास के अभाव के कारण बीमारियाँ फैलती है, व्यक्तियो मे असन्तोष व्याप्त हो जाता है, मानव की उच्चतर भावनाओ का अन्त हो जाता है तथा उनमें असभ्यता एव निर्दयता आ जाती है। अनेक अमेरिकन तथा यूरोपियन लेखको द्वारा मकानों के आर्थिक एव सामाजिक महत्व पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है। यह देखा गया है कि उद्योगों के छटाव (Choice) तथा स्थापन (Location) के साथ-साथ, अन्य देशो मे आवास समस्या भी बहुत महत्वपूर्ण बन गई है तथा नगर नियोजन पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया है। हमारा देश इस दृष्टि से बहुत पीछे है क्योंकि यहा पर कुछ स्थानो को छोडकर, शेष मे आवास को केवल समभित (Symmetrical) रूप से ईंटो व मिट्टी का एक सचयमात्र ही कहा जा सकता है। आधुनिक आवास, जैसे कि नाम के अनुसार होने चाहियें, औद्योगिक क्षेत्रो में नही पाये जाते। आधुनिक आवास[1] की अपनी कुछ विशेषतायें है और उसकी कुछ ऐसी विशिष्ट पद्धतियाँ हैं जिनके कारण पिछली शताब्दी के प्रतिरूपी (Typical) रहने के वातावरण से आधुनिक आवास भिन्न होते हैं। मकानो का निर्माण दीर्घकालीन उपयोग के हेतु किया जाता है और इस कारण उनको केवल शीघ्रता से लाभ कमाने के निमित्त नही बनाया जाता। आवास व्यवस्था "आयोजित" होती है और इस कारण इसको व्यापारिक दृष्टि से नहीं देखना चाहिये। आवास से तात्पय यह नहीं है कि गलियो का अपने आप ही विस्तार हो जाय या ईंटो को एक स्थान पर एकत्रित कर दिया जाय। आवास का एक आदि और एक अन्त होता है और इसका एक भौतिक रूप भी होता है। इसका एक भाग दूसरे भाग से सम्बन्धित होता है और प्रत्येक भाग एक उद्देश्य विशेष की पूर्ति करता है। इसमें दैनिक जीवन की न्यूनतम सुविधायें, जैसे—वायु आने-जाने के लिए संवातन, सूर्य-प्रकाश,

1. *Modern Housing* by Catherine Bauer, quoted by the Labour Investigation Committee Report, page 294

प्रत्येक खिड़की से शान्त व सुहावना दृश्य, पर्याप्त एकान्तता, बीमारी तथा प्रसूतिका-वस्था में प्राथम्य, सफाई की सुविधा तथा बच्चों के खेलने के स्थान, आदि होनी चाहियें। आवास केवल मौसम के बचाव, खाना बनाने और सोने के लिए ही नहीं होता वरन् यह विषम सामाजिक रीतियों का केन्द्र भी है। फिर एक आधुनिक मकान उस कीमत या किराये पर मिलना चाहिये, जिसे औसत अथवा कम आय का व्यक्ति भी दे सके।

जनसंख्या में वृद्धि

हमारे औद्योगिक क्षेत्रों में कितने गृह, आधुनिक गृह के उपरोक्त वर्णनानुसार हैं अथवा उसके निकट भी आते हैं? सम्भवतः कोई भी नहीं अथवा इतने कम कि उनकी संख्या समुद्र में 'एक बूंद के समान है। आवास समस्या दिन-प्रतिदिन जटिल होती जा रही है और वर्तमान आवास व्यवस्था अत्यन्त असन्तोषजनक है। औद्योगिक क्षेत्र बहुत भीड़-भाड़ वाले हो गये हैं। प्राप्य भूमि की अपेक्षा जनसंख्या में अधिक वृद्धि हुई है। बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद जैसे शहरों की जनसंख्या बहुत बढ़ गई है तथा छोटे नगर एवं अविकसित क्षेत्रों ने भी अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। न केवल जनसंख्या में ही वृद्धि हुई है वरन् पिछले कई वर्षों से गाँवों से शहरों व नगरों की ओर जनसंख्या बढ़ती गई है। १९५१ की जनगणना के आंकड़ों से ज्ञात होता है कि १९४१-५१ के १० वर्षों में ऐसे ७५ नगरों की जनसंख्या में जिनमें १ लाख या अधिक आबादी थी ४३.८% वृद्धि हुई। नई देहली में १९७.७%, मद्रास में ८३.९%, बम्बई में ९३.१%, कलकत्ता में २०.९% तथा उत्तर प्रदेश के १६ नगरों में ३३.७% जनसंख्या की वृद्धि हुई। १९६१ की जन-गणना के आंकड़ों से भी स्पष्ट हो जाता है कि औद्योगिक नगरों की जनसंख्या तीव्रगति से और बहुत अधिक मात्रा में बढ़ रही है। १९५१ और १९६१ के मध्य नगरीय जनसंख्या में लगभग ३६.२५% वृद्धि हुई, जो ग्रामीण जनसंख्या की वृद्धि से, जो १८.८४% थी, लगभग दुगनी थी। देहली की जनसंख्या में ही १९५१-१९६१ के मध्य ५१.६ प्रतिशत वृद्धि हुई और ऐसे नगरों की जनसंख्या में, जिनकी आबादी बीस हजार या उससे अधिक थी, ४०% वृद्धि हुई। औद्योगिक क्षेत्रों में जनसंख्या की यह वृद्धि अधिकतर ग्रामीण जनता के नगरों में आने के कारण हुई है जो बड़े पैमाने के उद्योगों के विकास के कारण श्रमिकों की माँग बढ़ने से तथा 'भारतीय श्रमिकों में प्रवासिता' नामक द्वितीय अध्याय में उल्लिखित अनेक कारणों से नगरों में आई है। कारखानों की स्थापना के साथ-साथ कोई नगर नियोजन नहीं हुआ और इसका परिणाम यह हुआ कि श्रमिकों के मकान बड़े अव्यवस्थित ढंग से बनाये गये। भूमि तथा इमारती सामान के ऊँचे मूल्यों के कारण नये मकान नहीं बनाये गये, अतः भीड़-भाड़ की समस्या और भी बढ़ गई। विभाजन के पश्चात शरणार्थियों के आ जाने तथा आधुनिक युवक की संयुक्त परिवार को छोड़ कर अपना घर बसाने की इच्छा के कारण भी समस्या की गम्भीरता अधिक हो

गई है। काम के अधिक घण्टे व यातायात की सुविधाओं में कमी के कारण श्रमिकों की फैक्टरी के पास ही रहने की इच्छा के कारण भी यह समस्या अधिक गम्भीर हो गई है। आर्थिक विकास के साथ ही साथ देश में जैसे-जैसे नागरीकरण (Urbanisation) की प्रवृत्ति बढ रही है, शहरी क्षेत्रों की आवास समस्या अधिकाधिक विकट होती जा रही है। सन् १९६१ में १८ प्रतिशत जनसख्या नगरों में रहती थी किन्तु अनुमान लगाया गया है कि सन् १९७१ में २१% और १९८१ मे २३% जनसंख्या शहरो मे रहने लगेगी।

औद्योगिक श्रमिकों के आवास की सामान्य दशाये

सरकार की विभिन्न आवास योजनाओ के होते हुये भी श्रमिको की वर्तमान आवास व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय है। रॉयल श्रम आयोग के शब्द इस सम्बन्ध में आज भी सत्य है : "नगरों तथा औद्योगिक केन्द्रो में एक दूसरे से सटे हुये स्थान, भूमि का उच्च मूल्य तथा श्रमिकों की अपने उद्योगों के निकट रहने की आवश्यकता के कारण अधिक भीड और घनी आबादी मे वृद्धि हुई है। व्यस्त केन्द्रों मे प्राप्त भूमि का पूरा उपयोग करने के हेतु मकान एक दूसरे से सटाकर बनाये जाते है, यहाँ तक कि ओरी से ओरी छूती है, और दीवार से दीवार मिली होती है। वास्तव में भूमि इतनी मूल्यवान है कि मकानो में पहुँचने के लिये सडकों के स्थान पर छोटी एव संकरी गलियां होती हैं। सफ़ाई की ओर कोई ध्यान नही जाता और यह इस बात से प्रकट है कि सडते हुये कूड़े के ढेर पड़े रहते हैं, और गन्दे पानी के गड्ढे भरे रहते है। टट्टियों के अभाव मे हवा और धरती दोनो मे गन्दा वातावरण फैल जाता है। अनेक मकान जिनमें चौखट, खिडकी और सवातन (Ventilation) का अभाव होता है, प्राय. एक कमरे वाले होते हैं, जिनमे वायु के आवागमन का मार्ग केवल एक द्वार होता है जो कि इतना नीचा होता है कि उसमे बिना झुके घुसना असम्भव है। एकान्तता पाने के लिये पुराने कनस्तरो के टीन एवं पुरानी बोरियों को परदे के रूप मे काम मे लाया जाता है जिससे प्रकाश एव निर्मल वायु का आना और भी बन्द हो जाता है। इस प्रकार के घरौंदो में मनुष्य जन्म लेता है, सोता है, खाता है, रहता है और मृत्यु को प्राप्त होता है।"[2]

ऐसी ही अवस्था का वर्णन १९२८ मे ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस के एक प्रतिनिधि मण्डल द्वारा किया गया था : "हम जहाँ भी ठहरे हमने श्रमिकों के क्वाटरो को देखा और यदि हम उन्हें न देखते तो कभी विश्वास न करते कि ऐसे बुरे स्थान भी हैं·········पक्तियों में मकानों का समूह होता है ; जिसका मालिक किरायेदारो से ४½ शि० प्रतिमास किराया लेता है। प्रत्येक आवास मे एक अंधेरी कोठरी, जो रहने, खाना पकाने, सोने आदि सभी के काम आती है, ९' × ९' नाप की होती है। इसमें मिट्टी की दीवारें और ढीली खपरैल की छतें होती है। इसके

2. Report of the *Royal Commission on Labour*, 271-272.

और मनुष्य ने नगर बनाया', परन्तु शैतान ने गन्दी बस्ती बनाई ।"[5]

बुरी आवास व्यवस्था के परिणाम

इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि आवास की शोचनीय दशा श्रमिकों की कार्यकुशलता तथा स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव डालती है। अच्छे घरों का तात्पर्य *पारिवारिक जीवन, सुख तथा उत्तम स्वास्थ्य से है,* परन्तु बुरे मकान गन्दगी, बीमारी, शराबखोरी, व्यभिचार और अपराध की जड़ हैं। यदि आज भारत का औद्योगिक *श्रमिक शारीरिक दृष्टि से अस्वस्थ तथा अकुशल है तो मकानों की शोचनीय दशा* उसके लिये अधिकतर उत्तरदायी है। मकान और स्वास्थ्य में घनिष्ट सम्बन्ध है तथा ये दोनों श्रमिकों की औद्योगिक कार्यकुशलता पर प्रभाव डालते हैं। औद्योगिक नगरों में अंधेरे तथा बहुवादार क्वार्टरों में आवश्यकता से अधिक व्यक्तियों का रहना बाल-मृत्यु व क्षय रोग का एक महत्वपूर्ण कारण है। अस्वास्थ्यपूर्ण व अनाकर्षक मकानों की स्थिति श्रमिकों को इसके लिये भी बाध्य करती है कि वे अपने परिवारों को गाँव में ही छोड़ दें और शहर में अकेले रहें। भीड़ भाड़ पारिवारिक जीवन के कभी अनुकूल नहीं हो सकती। क्योंकि स्त्री पुरुष दोनों को ही सभी कार्यों के लिये एक ही कमरे में रहना पड़ता है अतः अनेक औद्योगिक नगरों में रहने वाले श्रमिकों *के बीच शालीनता का बना रहना असम्भव हो जाता है। जब श्रमिक अपने परिवार* को नहीं ला पाते तो स्त्री व पुरुष की संख्या में असमानता होने के कारण वेश्यावृत्ति व शराबखोरी आदि जैसी अनेक *गम्भीर सामाजिक बुराइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं।* नगरों में आने समय श्रमिक प्रायः नवयुवक होते हैं और वे शीघ्र ही इन बुराइयों के आसानी से शिकार हो जाते हैं। अनेक वेश्यायें श्रमिकों के क्वार्टरों के पास रहती हैं। औद्योगिक नगरों में उनका होना आवश्यक समझ लिया गया है। श्रमिक अनेक गन्दी बीमारियों का शिकार हो जाता है, जो उसके गाँव लौटने पर वहाँ पर भी फैल जाती हैं। ऐसी स्थिति में स्त्री-श्रमिकों के लिए नैतिक जीवन को बनाए रखना बहुत ही कठिन हो जाता है। बहुत सी तो अपना आत्मसम्मान व सतीत्व गवाँ बैठती हैं। ऐसे वातावरण में अवश्य ही श्रमिकों की कार्यकुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। डा० राधाकमल मुकर्जी ने इन शोचनीय दशाओं के विषय में कहा है — "भारत के औद्योगिक केन्द्रों की हजारों गन्दी बस्तियों में निस्सन्देह पुरुषों में पाशविक प्रवृत्तियाँ आ जाती हैं, स्त्रियों का सतीत्व नष्ट होता है तथा बालकों के जीवन को *आरम्भ से ही दूषित कर दिया जाता है।*"[6]

अतः जब तक आवास की व्यवस्था में सुधार नहीं किया जाता तथा श्रमिकों को स्वस्थ और अच्छे वातावरण में नहीं रखा जाता हम उनसे यह आशा नहीं कर सकते कि वे अपनी कार्यकुशलता में वृद्धि करेंगे या अपनी दशा से सन्तुष्ट रहेंगे।

---

5 *'God made the World Man the Town but Devil made the Slum.'*

6 R. Mukerjee *Indian Working Class* page 320. *In the thousand slums of the industrial centres manhood is unquestionably brutalised womanhood dishonoured and childhood poisoned at its very source.*

अपर्याप्त तथा बुरी आवास व्यवस्था औद्योगिक अशान्ति के विभिन्न कारणों में से एक मुख्य कारण है। मनुष्य की भोजन और कपड़े के बाद तीसरी मूल आवश्यकता मकान की है। मकान शब्द श्रमिकों मे हार्दिक प्रेम और स्नेह की भावना उत्पन्न करता है। श्रमिक के मकान से उसकी अच्छी अवस्था का भली प्रकार पता लगाया जा सकता है। एक अच्छा घर केवल उसका व उसके पारिवारिक जीवन का ही केन्द्र नहीं है वरन् एक ऐसा स्थान है जहाँ वह व्यक्तिगत रूप से आत्मसम्मान व प्रसन्नता का अनुभव कर सकता है और स्वच्छ तथा स्वास्थ्यपूर्ण तरीकों से रहने के लाभ को समझ सकता है। इसलिए सरकारी विकास योजनाओं में आवास को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

आवास व्यवस्था की राजकीय योजनायें

जहाँ तक सार्वजनिक क्षेत्र का प्रश्न है श्रमिकों के आवास की दशा सतोषजनक है क्योंकि जैसे ही किसी उद्योग की स्थापना का निर्णय किया जाता है, श्रमिकों की आवास व्यवस्था के लिए भी आवश्यक वित्तीय प्रबन्ध कर दिया जाता है। भारत सरकार उद्योगपतियों को श्रमिकों के मकान बनाने के लिए प्रोत्साहित कर रही है। इस उद्देश्य के लिए जो पहली योजना बनी वह १९४६ मे ऐसी समिति की सिफारिशों पर बनी थी जो कि औद्योगिक आवास के विषय पर स्थायी श्रम समिति द्वारा स्थापित की गई थी। इसके अनुसार सरकार लागत का १२½ प्रतिशत (अधिक से अधिक २०० रुपए तक) प्रत्येक मकान के लिए सहायता के रूप मे देने को तैयार थी यदि राज्य सरकार भी इतनी ही धनराशि देने को तैयार हो। यह सहायता आवास निर्माण की ऊँची लागत के कारण कम समझी गई जबकि श्रमिकों से लिए जाने वाले किराये को भी कम ही रखना पड़ता था। अप्रैल १९४८ मे सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति के अन्तर्गत श्रमिकों के लिए १० वर्षों मे १० लाख मकान बनाने का निर्णय किया। १९४९ मे श्रम मन्त्रालय ने एक योजना का निर्माण किया जिसके अन्तर्गत राज्य सरकारों को अनुमोदित आवास योजनाओं के लिए और निजी मालिकों को भी ऐसी आवास योजनाओं के लिए, जिनका समर्थन उनकी राज्य सरकारों ने किया हो, लागत के ⅔ भाग तक ब्याज-मुक्त ऋण देने की व्यवस्था थी। लागत व्यय के शेष ⅓ भाग की व्यवस्था स्वयं राज्य सरकार अथवा मालिकों को करनी थी। शर्तें इस प्रकार थीं —(१) केन्द्रीय सरकार आवास का स्तर एवं निर्माण के लिए चुना गया क्षेत्र निर्धारित करेगी, और (२) जो किराया श्रमिकों से लिया जायेगा वह लागत पूँजी के २½ प्रतिशत से अधिक नहीं होगा। यह योजना भी सतोषजनक सिद्ध नहीं हुई क्योंकि राज्य सरकारों को दिए गए धन का प्रयोग नहीं किया गया। सन् १९५२ मे एक उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना बनाई गई जिसके अन्तर्गत केन्द्र सरकार को भूमि तथा भवन की लागत का २०% उपदान के रूप में देना था, बशर्ते की शेष धनराशि मालिक दें। परन्तु इस सम्बन्ध मे मालिकों का रुख उत्साह वर्धक नहीं था। अतः भारत सरकार ने राज्य सरकारों, मालिकों तथा श्रमिकों को

मकान बनवाने के लिए अधिक उदार शर्तों पर वित्तीय सहायता देने का निश्चय किया। परिणामस्वरूप प्रथम पचवर्षीय आयोजना मे की गई सिफारिशो के अनुसार सितम्बर १९५२ म एक नई उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना लागू की गई।

सरकार की उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना
(Government s Subsidised Industrial Housing Scheme)

इस योजना के अतगत भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारो को और उनके माध्यम से अन्य ऐसी मान्यता प्राप्त एजेंसियो को वित्तीय सहायता के रूप मे अनुदान दिये जाते हैं जैसे कि वैधानिक आवास बोड स्थानीय निकाय औद्योगिक मालिको तथा श्रमिका की सहकारी आवास समितिया। योजना के अन्तगत केवल उन्ही श्रमिको के लिये मकान बनाये जा सकते हैं जिनकी आय ३५० रु० से अधिक नही है और जो कारखाना अधिनियम १९४८ और खान अधिनियम १९५२ के अन्तगत आते है। राज्य सरकार और वैधानिक सस्थाओ को केन्द्रीय सरकार उनकी गृह योजना की कुल लागत का ५०% जिसमे भूमि का मूल्य भी सम्मिलित होता है उपदान के रूप म और शष ५०% ऋण के रूप मे देती है जो उनको २५ वष मे चुकाना होता है। मालिको एव श्रमिका की गह समितियो को केन्द्रीय सरकार द्वारा कुल लागत का २५ प्रतिशत आर्थिक सहायता के रूप म और २५ प्रतिशत ऋण के रूप मे देने की व्यवस्था थी जो कि उन्ह १५ वार्षिक किश्तो म चुकाना होता था। कुछ दशाओ म ऋण ३७½ प्रतिशत तक भी दिया जा सकता था। लेकिन इस १२½ प्रतिशत पर ब्याज की दर ऊची थी। बाकी सब ऋणो पर ब्याज की दर का आधार न लाभ न हानि है। (इस समय यह दर सरकारी निर्माण के बारे मे ५¼% और अन्य निर्माण के सम्बन्ध मे ५¾% है)।

उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना मे सशोधन

इस योजना ने कोई अधिक प्रगति नही की इस कारण इसम समय समय पर कई सशोधन किये गये है। औद्योगिक श्रमिको की सहकारी समितियो के लिये १९५२ म ऋण की मात्रा ५०% तक बढा दी गई जिसका भुगतान २५ वर्षो मे किया जा सकता था। १९५९ म यह ऋण मात्रा बढाकर ६५% कर दी गई। इस प्रकार सहकारी आवास समितियो को जो वित्तीय सहायता मिल रही है वह लागत का ९०% है। (२५% उपदान तथा ६५% ऋण)। शष १०% लागत भी श्रमिक अपने प्रोविडेन्ट फड से उधार ले सकते हैं। मालिका के लिये भी सरकार ने ऋण की मात्रा ३७½% से बढाकर सन १९५८ से ५०% तक कर दी है। इसके अतिरिक्त श्रमिको को अब यह अधिकार दे दिया गया है कि वे केन्द्रीय सहायता से राज्य सरकारो द्वारा निर्मित मकान किराया-खरीद नियम के अनुसार खरीद सकते है। प्रारम्भ म इस योजना म यह धारा थी कि औद्योगिक श्रमिको के लिए सहकारी आवास समितियो द्वारा जो मकान बनाये जाते है वह गैर औद्योगिक श्रमिको को हस्तातरित नही किये जा सकते थे। परन्तु अब इस धारा म कुछ परिवतन कर

दिया है ताकि ऐसे श्रमिकों को जो अवकाश ग्रहण कर लेते है तथा श्रमिकों की मृत्यु पर उनके परिवारों को कठिनाई न हो। अब श्रमिक किराया खरीद योजना के अन्तर्गत मकान का स्वामी भी हो सकता है। सहकारी समितियों द्वारा बनाये हुए *मकानों का स्वामित्व भी श्रमिक के पास रह सकता है यदि श्रमिक ने १० वर्ष* नौकरी कर ली है या यह मकान मे ३ वर्षो से रह रहा है। (१६५६ से पहले यह अवधि क्रमश: १५ वर्ष और ५ वर्ष थी)। सितम्बर १६६१ से अब इस बात का भी *निर्णय कर लिया गया है कि चाहे श्रमिक की नौकरी की अवधि कितनी ही हो या* उसकी आयु कितनी ही हो, या चाहे वह कितने ही अर्से मकान मे रहा हो, यदि वह चाहे तो वह मकान की लागत का भुगतान करके किसी समय भी किराया खरीद आधार पर राज्य सरकार या सहकारी समिति द्वारा बनाए हुए मकान को खरीद सकता है। परन्तु बिना इजाजत के वह मकान का स्वामित्व सरकार या सहकारी समिति के अतिरिक्त किसी अन्य को हस्तातरित नही कर सकता और न ही वह मकान किसी को किराए पर दे सकता है। योजना के अन्तर्गत इस बात की भी व्यवस्था कर दी गई है कि खुले विकसित प्लाट, केवल नीव पडे हुए मकान, पक्के मकान, होस्टल, शयनशाला आदि भी बनाए जा सकते हैं। राज्य सरकारे भी मालिको के उत्तरदायित्व पर श्रमिकों के लिए मकान बनवा सकती है बशर्ते कि *मालिक लागत को २५% भाग अग्रिम रूप मे दे दें।*

उपदान अथवा ऋण देने से पूर्व प्रत्येक योजना पर सरकार द्वारा विचार किया जाता है। वित्तीय सहायता निर्माण के अनुसार ३ किश्तों मे दी जाती है। *राज्य सरकारे भी अब मकान बनाने की योजनाओ को मजूर कर सकती हैं।* १६५३ मे यह भी निश्चय किया गया कि प्रत्येक क्षेत्र के कुल मकानो मे से १० प्रतिशत तक दो कमरे वाले मकान भी बनाये जा सकते है। मूल योजना के अन्तर्गत सभी *मकान एक कमरे वाले थे, जिनमे प्रत्येक मकान के लिये एक रसोई, एक बरामदा* तथा स्नानघर, एक पानी का नल तथा एक शौचालय, न्यूनतम सुविधायें थी। बड़े शहरो मे भूमि तथा निर्माण की लागत के दृष्टिकोण से विभिन्न निर्माण सस्थाओ *द्वारा बनाये जाने वाले मकानों की लागत सीमा भी निर्धारित कर दी गई थी।* इन लागत की सीमाओ मे समय-समय पर सशोधन हुए है। मकानो की निर्धारित लागतें इस प्रकार हैं. एक कमरे वाले एक मजिल वाले मकान की लागत—२८०० रु० (*किराया १२.५० पै० प्रति माह*); *दो कमरों वाले इकमजिले मकान की लागत* ३६५० रु० (किराया १४ रु० प्रति माह); दो नियमित कमरो की लागत—४२५० रु० (किराया १६ रु० प्रति माह); दो कमरो वाली बहुमजिली इमारतो की लागत ५१०० रु० (किराया १८ रु० प्रति माह)। बम्बई तथा कलकत्ता के लिए ऊंची लागते निर्धारित की गई। इमारती सामान तथा विकसित जमीन की लागत बढ जाने के कारण यह लागत सीमा भी अप्रैल १६६१ मे १० प्रतिशत और अप्रैल १६६४ मे १५% बढा दी गई, परन्तु इस बात की भी व्यवस्था है कि यदि लागत बढाने से किरायो मे वृद्धि हो जाती है तो किरायों को नही बढ़ने दिया जायेगा और तीन साल

तक किराये की कमी पूरी करने के लिए अतिरिक्त सहायता दी जायगी।

प्रथम पचवर्षीय आयोजना म औद्योगिक आवास के लिए केवल १३ २६ करोड रुपये व्यय हुए थ और इस योजना के अन्तर्गत ४३,८३१ मकानो का निर्माण हुआ था। द्वितीय पचवर्षीय आयोजना म १,२८,००० मकानों के निर्माण के लिए ४५ करोड रुपये की व्यवस्था थी। यह धनराशि काटकर २७ करोड रु० कर दी गई थी। मकानों के लिए १२० करोड रुपये की व्यवस्था को काटकर ८४ करोड रु० कर दिया गया था। द्वितीय पचवर्षीय आयोजना के अन्त तक ४५ करोड रुपय की लागत से १,४०,००० मकान बनाने की स्वीकृति दी गई थी। इनम स एक लाख मकान बन चुके थे और बाकी बन रह थ। ३५ ७१ करोड रुपये सनक निर्माण सस्थाओं को मकान बनाने के लिए दिए जा चुके थ। तृतीय पचवर्षीय योजना म उपदान प्राप्त आवास योजना क अन्तर्गत २६ ८ करोड रुपये की लागत से ७३ हजार मकान बनाने की व्यवस्था है। तथापि इस योजना द्वारा कोई चमत्कारपूर्ण प्रगति नहीं हुई। ३१ मार्च १९६५ तक इस योजना की प्रगति निम्नाकित तालिका से स्पष्ट हो जायगी —

एजेन्सी	स्वीकृत राशि (करोड रु० म)			स्वीकृति मकानो की सख्या	पूर्ण रूप स निर्मित मकानों की सख्या
	ऋण	उपदान	योग		
(१) राज्य सरकारें	२५ ४५	२४ ३२	४९·७७	१ ३२,६५८	१,१५,२३८
(२) निजी मालिक	५ ०५	३ ०५	८ १०	३३,६०५	२५,०४३
(३) सहकारी समितियां	१ ४८	० ६०	२ ०८	६ ३१५	४,३५१
योग	·१ ६८	२७ ९७	५९·९५	१२ ५७८	१,४४,६३२
देहली में केन्द्र सरकार का व्यय	—	—	१ ०१	—	—
पूर्ण योग	३१ ६८	२७ ९७	६० ९६	१२ ५७८	१,४४,६३२

जब स यह योजना आरम्भ हुई है तब से दिसम्बर १९६५ के अन्त तक १७९,४५८ मकानो क निर्माण क लिए ६३ ७७ करोड रु० की राशि स्वीकार की जा चुकी है जिनम १,५४ ६३३ मकानो का निर्माण हो चुका था। मार्च १९६५ के अन्त तक ५१ ८१ करोड रु० बाट जा चुके थ।

जैसा कि ऊपर क आँकडो को देखन से ज्ञात होता है, राज्य सरकारो का इस योजना क प्रति सहयोग सन्तोषजनक रहा है, परन्तु मालिको एव सहकारी समितियो का सहयोग अत्यन्त निराशाजनक है। निर्माण की लागत का २५% धन लगाने तथा अपनी निधि को उत्पादक कार्यों से अनुत्पादक कार्यों मे लगाने के लिए

मालिक इच्छुक नहीं हैं। सहकारी समितियों के सम्बन्ध मे भी यह शर्त थी कि श्रमिकों को अपने साधनों में से निर्माण लागत का २५ प्रतिशत धन देना होता था अब उन्हें लागत का केवल १०% ही देना होता है परन्तु उनके लिए यह भी कठिन है। (और यह १०% भी अब वह प्रावीडैन्ट फ़ड से ले सकते है)। इसके अतिरिक्त आवश्यक इमारती सामान तथा मकानों के निर्माण के हेतु भूमि के अभिग्रहण (Acquisition) मे मे भी कठिनाइयाँ होती हैं। कुछ श्रमिक सङ्गठनों ने श्रमिको के लिए मालिकों द्वारा मकान बनाने तथा सरकार द्वारा निजी मालिको को लागत का २५% अनुदान देने का विरोध किया है। उनका कहना है कि जब इस प्रकार के उपदान दिये जाते हैं तो सम्पत्ति का स्वामित्व राज्य अथवा अर्द्ध-सरकारी संस्थाओं का होना चाहिए जिससे मालिक इस प्रकार की सुविधाओं का दुरुपयोग न कर सके और मकानों को श्रमिकों को देने के लिए उन पर बन्धन न लगा सकें। अत: श्रमिक प्रबन्ध मे अपना हस्तक्षेप चाहते है। परन्तु यही कारण है कि मालिक आवास योजनाओं के प्रति उदासीन रहते है, क्योंकि मकान बनाकर वह श्रमिको के असंतोष का एक और कारण पैदा कर देते है। इसके अतिरिक्त श्रमिक भी नये मकानों मे जाने के लिए बहुत उत्साहित नहीं दिखाई देते। इसका कारण यह है कि नये मकान उनके कार्य स्थान से दूर होते हैं तथा उनका किराया भी अधिक है। इस योजना से अन्तर्गत राज्य सरकारो ने जो मकान बनाये है वे श्रमिको के न जाने से या तो खाली पड़े है या गैर श्रमिको को किराये पर दे दिये गये है। इस कारण भी इस योजना ने अधिक प्रगति नहीं की है।

अब तक जो कम प्रगति हुई है उसकी श्रम सम्मेलनो तथा आवास मंत्री सम्मेलनों मे कटु आलोचना हुई है। अक्तूबर १९५८ मे दार्जिलिंग के आवास मन्त्री सम्मेलन मे तो यहा तक सिफारिश की गई थी कि यदि मालिक योजना से सहयोग नही करते तो उनको अनिवार्य रूप से श्रमिकों के लिए प्रतिवर्ष एक निश्चित प्रतिशत मकान बनाने के लिए बाध्य किया जाये अथवा इसके लिए अनिवार्य उपकर लगा दिए जाये। आवास मन्त्रियों के सम्मेलन ने प्रतिवर्ष ही योजना की धीमी प्रगति पर चिन्ता व्यक्त की। यह सुझाव दिया गया है कि प्रशासन सम्बन्धी वैधानिक तथा संगठनात्मक कठिनाइयो को दूर करना चाहिए और मकान बनाने मे सहकारिता को प्रोत्साहन देना चाहिए तथा श्रमिकों को इस बात के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए कि वे अपने लिये बनाये गये मकानो मे आ जायें। यदि मालिक अपने श्रमिको के लिए मकान बनाने को तैयार नहीं है तो राज्य सरकारें मकान बनाकर मालिको को दे दें और उनके अंशदान का २५% भाग उनसे तत्काल ले लें। राज्य सरकारें मकानो के साथ-साथ अन्य सुविधाएँ प्रदान करने के लिए अनुदान का ५% भाग व्यय कर सकती हैं। अप्रैल १९६० मे, स्थायी श्रम समिति ने इस बात की भी सिफारिश की थी कि विभिन्न राज्यो में जो विधान बने हुए हैं उनमें संशोधन होना चाहिए ताकि भूमि के अभिग्रहण आदि मे दफ्तरी क्रिया-विधियों द्वारा जो बिलम्ब होता है, उसे दूर किया जा सके, तथा राज्यो के सहकारिता विभाग के

प्रशासन में सुधार होना चाहिए ताकि सहकारी आवास योजनाओं की प्रगति तीव्र हो सके।

तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में कहा गया है कि यद्यपि उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना लागू हुए कई वर्ष बीत चुके हैं फिर भी औद्योगिक श्रमिकों की आवास व्यवस्था में कोई अधिक उन्नति नहीं हुई है। कई केन्द्रों में तो आवास स्थिति और बिगड़ गई है। कई क्षेत्रों में जो मकान बनाए भी गए हैं उनमें औद्योगिक श्रमिक रहने के लिये नहीं गये हैं क्योंकि उपदान प्राप्त किराया भी श्रमिकों के लिये बहुत अधिक साबित हुआ है। इस समस्या के लिए जो पग उठाये गये हैं उनमें संशोधन करना आवश्यक है क्योंकि जब तक श्रमिकों की आवास व्यवस्था में उन्नति नहीं की जायेगी तब तक औद्योगिक कार्यकुशलता और उत्पादकता में वृद्धि करने के प्रयत्न सफल नहीं हो पायेंगे। इस योजना में कुछ संशोधन कर भी दिये गये हैं। श्रमिक अब खुले हुये, विकसित और सीमा-निर्धारित भूमि पर इमारती सामान और छत डालने के सामान से कुछ मकान स्वयं भी बना सकते हैं। इनका किराया भी केवल दो या तीन रुपये प्रति माह होगा। कुछ ऐसे मकान भी बनाये गये हैं जिनको केवल ढाँचा-मात्र कहा जा सकता है। इनमें आवश्यक नींव, कुर्सी, क्षेत्रफल तथा छत भी होती है। इनका किराया आठ रुपये प्रति मास है। ऐसे श्रमिकों के लिए जिनके परिवार नहीं हैं होस्टल और शयनशाला (dormitory) बनाये गये हैं। जो अन्य संशोधन हुये हैं वे निम्नलिखित हैं—ऋण वापिस करने की अवधि को बढ़ा दिया गया है, मानक लागत की सीमा में वृद्धि की गई है। नियतन (Allotment) नियमों को उदार कर दिया गया है। मालिकों और सहकारी समितियों के लिये भी विकसित भूमि की विशेष व्यवस्था की गई है। मालिकों को आयकर में श्रमिकों के लिये मकान बनाने पर कुछ छूट दी गई है। यह छूट इस प्रकार है कम वेतन पाने वाले कर्मचारियों के लिये नये मकान बनाने पर निर्माण लागत पर मूल्य-ह्रास प्रभाव पर २० प्रतिशत की छूट, छोटे मकान बनाने पर किराया बन्दी मूल्य पर तीन साल तक आयकर देने की छूट। तीसरी योजना में यह भी सुझाव है कि ऐसी नई औद्योगिक कम्पनियों पर जिनकी प्रदत्त (paid-up) पूँजी बीस लाख या इससे अधिक है उनके लिये अनिवार्य कर दिया जाये कि वे अपने श्रमिकों के लिये जितने मकान चाहिए उनमें कम से कम आधे मकान दस वर्ष की अवधि में बनायें। पुरानी संस्थाओं में जो भी श्रमिकों के लिये आवास व्यवस्था मालिकों ने की है उसको देखते हुये यह उद्देश्य बना दिया जाये कि संस्थान द्वारा कुछ काल में श्रमिकों के लिये प्रत्यक्ष रूप से आवश्यक मकानों में से ५० प्रतिशत मकान संस्थान द्वारा प्रदान किए जायें और शेष मकान आवास विकास की सामान्य आवास विकास योजना के अन्तर्गत प्रदान किये जाए। यदि मालिक स्वयं मकान बनाने में कठिनाई अनुभव करते हों तो सरकार अथवा आवास बोर्ड निर्माण कार्य अपने हाथ में ले लें और मालिकों से निर्माण लागत ले ली जाये। इन सुझावों पर मालिकों तथा श्रमिकों के प्रतिनिधियों के साथ विचार विमर्श किया जाये ताकि एक संतोष-

योजना बनाई जा सके। चौथी आयोजना की रूपरेखा मे भी औद्योगिक आवास की योजनाओं की कमी का उल्लेख किया गया है।

हम आशा करते हैं कि जब सरकार ने अधिकांश वित्तीय भार अपने ऊपर ले लिया है, तब योजना को लागू करने मे पूर्ण सहयोग दिया जायगा और श्रमिको को पर्याप्त आवास प्रदान करने में मालिक अपने उत्तरदायित्व को समझेंगे।

अन्य आवास योजनायें

यहा पर यह उल्लेखनीय है कि सरकार ने नवम्बर सन् १९५४ मे कम आय वाले व्यक्तियों के लिए भी एक आवास योजना (Low Income Group Housing Scheme) बनाई है। इस योजना के अन्तर्गत मुख्यतः उन व्यक्तियों को सहायता दी जाती है जिनके पास अपने मकान नहीं है तथा जिनकी वार्षिक आय ६,००० रुपये से अधिक नही है। फिर भी, ऋण उस समय भी दिया जा सकता है, जबकि किसी के पास घर हो और फिर भी रहने के हेतु उसे दूसरे घर की आवश्यकता हो। ऋण राज्यों द्वारा दिये जाते है और यह मकान की भूमि सहित लागत के ८०% से अधिक नही होते तथा यह राशि अधिक से अधिक १०,००० रुपये हो सकती है। ऋण ३० साल तक किश्तों में ४½% ब्याज की दर पर वापिस किये जायेंगे। इस ब्याज के अतिरिक्त प्रशासनिक व्यय भी लिया जा सकता है परन्तु वह ½ प्रतिशत से अधिक नही होगा। इस योजना के लिए तृतीय आयोजना ३५·२ करोड रुपये तथा चौथी आयोजना में ३० करोड रुपये की व्यवस्था की गई है। १९५४ से मार्च १९६५ तक इस योजना (Scheme) के अन्तर्गत १,३६,८६४ मकानों के निर्माण के लिए ७०·७२ करोड रुपए स्वीकृत किये गये थे। राज्य सरकारो को यह अधिकार दिया गया है कि वे योजना में स्वीकृत धनराशि का एक तिहाई भाग तक समाज के आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गो के लोगो के लिए मकान बनवाने मे व्यय कर सकती है, अर्थात् ऐसे लोग जिनकी वार्षिक आय बम्बई, कलकत्ता और देहली में ३,००० रुपये से और अन्य स्थानो में २,१०० रुपये से अधिक न हो। ऐसे मामलो में केन्द्र सरकार मकानो की लागत का २५% भाग पूंजीगत उपदान (Capital subsidy) के रूप में देगी।

उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना तथा कम आय वाले व्यक्तियों के लिए आवास योजना (जो क्रमश १९५२ और १९५४ मे लागू हुई) के अतिरिक्त कई अन्य आवास योजनायें भी चालू है। इनमे से ४ निम्नलिखित है—(१) अप्रैल १९५६ से बागान श्रमिक आवास योजना, (२) मई १९५६ से गन्दी बस्तियो की सफाई और सुधार योजना, (देहली में झुग्गी और झोंपडी निष्कासन योजना भी है), (३) अक्टूबर १९५७ से ग्राम आवास योजना, तथा (४) अक्टूबर १९५९ से भूमि अभिग्रहण (Acquisition) तथा विकास (Development) योजना। प्रथम दो का उल्लेख तो इसी अध्याय मे किया गया है और तीसरी योजना का उल्लेख कृषि श्रमिक के अध्याय में किया गया है। चौथी योजना भूमि अभिग्रहण और विकास योजना है। इसका तात्पर्य यह है कि बड़े-बड़े नगरो

में राज्य सरकारें अत्यधिक मात्रा में भूमि अभिग्रहण करें और उसका विकास करके छोटे-छोटे टुकडो में उचित मूल्य पर लोगों को बेच दे। दूसरी आयोजना में राज्यो को इसके लिए २ ८० करोड रुपये ऋण के रूप में दिये जाने की व्यवस्था थी परन्तु राज्य १५ करोड रुपए तक वचनबद्ध हो सकते थे। किन्तु राज्यों ने केवल २ २ करोड रुपये लिए। तीसरी आयोजना में इसके लिए ६ ५ करोड रुपये की व्यवस्था की गई और चौथी आयोजना में २५ करोड रुपये की। सन् १६५६ से दिसम्बर १६६५ तक, राज्यो ने योजना के अन्तर्गत ४७ ०१ करोड रुपये की लागत की २३१ प्रायोजनायें स्वीकृत की। परन्तु १०,६६६ एकड अभिग्रहीत भूमि में से ७,६१७ एकड भूमि के विकास के लिए केवल ११·३८ करोड रुपये व्यय किये गये। इस योजना की वित्तीय व्यवस्था अधिकाशत जीवन बीमा निगम की निधियों मे से की जा रही है।

दो अन्य आवास योजनाओं के लिए जीवन बीमा निगम द्वारा वित्तीय सहायता दी जाती है। जीवन बीमा निगम राज्य सरकारो को ऋण देती है तथा राज्य सरकारें मकान बनाने वाले व्यक्तियों को फिर ऋण प्रदान करती है। यह योजनायें १६५६ मे लागू की गई। एक तो मध्य वर्ग आय आवास योजना (Middle Income Group Housing Scheme) है। इसका उद्देश्य उन व्यक्तियों के लिए मकान बनाने मे सहायता देना है जिनकी आय ६,००० रुपये तथा १५,००० रु० प्रतिवर्ष के बीच मे होती है। सन् १६६१ से पहले उच्च सीमा १२,००० रुपये थी। व्यक्तियों तथा सहकारी समितियो को प्रत्येक मकान पर लागत का ८०% परन्तु २०,००० रुपये तक ऋण ५½% ब्याज पर दिया जा सकता है। इसकी शर्तें कम आय वाले व्यक्तियों के लिए आवास योजना की भाँति ही है। दिसम्बर १६६५ तक १६,३५२ मकान बनाने के लिए ३३·०१ करोड रुपये की राशि स्वीकृत की जा चुकी थी। दूसरी योजना सरकारी कर्मचारी किराया सम्बन्धी आवास योजना (Rental Housing Scheme for Government Employees) है। इसके अन्तर्गत राज्य सरकारो को अपने कर्मचारियो के लिए ऋण दिया जाता है। यह ऋण २० किस्तों में वापिस किया जा सकता है और इस पर ब्याज की दर ५% प्रतिवर्ष है। केन्द्रीय सरकार अपने कर्मचारियो को मकान बनाने अथवा खरीदने के लिए आवास निर्माण अग्रिम राशि योजना (House Building Advance Scheme) के अन्तर्गत भी धन देती है। यह ऋण कर्मचारी के २४ मास के वेतन के बराबर, परन्तु अधिक से अधिक ३५,००० रु० तक हो सकता है।

सरकार ने आवास विषय पर विभिन्न विचारो और अनुभव से अवगत कराने के हेतु १६५४ म एक अन्तर्राष्ट्रीय कम-लागत आवास-प्रदर्शनी, एक आवास तथा सामुदायिक सुधार पर संयुक्त-राष्ट्र-संघ गोष्ठी, तथा आवास व नगर नियोजन के अन्तर्राष्ट्रीय संगम के क्षेत्रीय सम्मेलन का आयोजन किया था। १६५४ मे एक राष्ट्रीय भवन निर्माण संस्था, वैज्ञानिक संस्थाओ द्वारा सस्ते मकानो के

निर्माण के अनुसधानार्थ स्थापित की गई। यह संस्था सस्ते मकान बनाने के तरीके व नमूने खोजती है और इस सम्बन्ध में उपयोगी सूचनायें एकत्र करती है। यह सस्था उन अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओं से भी सम्पर्क रखती है जो कि ऐसे ही कार्य करते हैं। अक्तूबर १६६० से इस संस्था मे सामाजिक-आर्थिक संभाग की भी स्थापना की गई है जो कि आवास तथा भवन-निर्माण सम्बन्धी आंकड़े एकत्र करता है। इस सस्था ने सितम्बर १६६१ मे नई दिल्ली मे आवास सहकारी समितियों पर एक परिसवाद (simposium) का आयोजन किया। यह सस्था भवन-विज्ञान तथा अन्य सम्बन्धित विषयो पर साहित्य भी छापती है और विभिन्न इजीनियरिंग सस्थानो में जो ग्रामीण आवास सम्बन्धी अनुसधान हो रहा है तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा रही है उसका भी यह सस्था समन्वय करती है। राज्य सरकारों, आवास-बोर्डों तथा श्रमिक व मालिकों के सघों को केन्द्रीय आवास मन्त्रालय का विशेष तकनीकी विभाग सदैव उचित रूप-रेखा व योजना की विशेषताओं के लिए परामर्श देने को प्रस्तुत रहता है।

कोयले तथा अभ्रक की खानों में कार्य करने वाले श्रमिकों के लिए आवास योजना

भारत सरकार ने कोयला खानों में कार्यरत श्रमिकों की आवास व्यवस्था के लिए भी एक पचवर्षीय गृह-निर्माण-योजना की घोषणा की और ५०,००० क्वार्टर्स निर्माण करने का निश्चय किया, जिसके हेतु वित्त व्यवस्था १६४७ के कोयला-खान-श्रमिक-कल्याण निधि अधिनियम (Coal Mines Labour Welfare Fund Act) के अन्तर्गत निर्मित एक आवास निधि में से की जानी थी। यह निश्चय किया गया था कि कच्चा कोयला तथा पत्थर के कोयले पर एक उपकर (Cess) लगा कर जो राशि प्राप्त हो उसको दो भागो के लिए अनुभाजन (Apportion) कर दिया जाय, अर्थात् एक आवास के लिए तथा एक कल्याण कार्यों के लिए। इस उपकर की दर १६४७ से ६ आने प्रति टन थी परन्तु पहली जनवरी १६६१ से यह दर बढा कर ५० पैसे प्रति टन कर दी गई है। १६५६–५७ तक आवास और कल्याण कार्यो मे इस निधि का अनुभाजन २ : ७ अनुपात से होता था। १६५७–५८ मे आवास की अधिक महत्ता के कारण यह अनुपात ३१ . ६ कर दिया गया और अब ५० : ५० है। ८ सदस्यों का कोयला-खान-श्रमिक-आवास बोर्ड, जिसमे दो प्रतिनिधि सरकार के तथा तीन-तीन मालिकों व श्रमिकों के थे, बनाया गया। ५०,००० मकानों मे से ३१,००० बिहार मे, १५,००० बगाल मे और ३,५०० मध्य प्रदेश मे बनाये जाने थे। परन्तु प्रथम योजना के अन्तर्गत केवल २,१५३ मकान बन पाये हैं। कोयला-खान-श्रमिको के लिए मकान निर्माण के कार्य मे अधिक गति लाने के लिए, सरकार द्वारा एक अन्य योजना का १६५० मे निर्माण किया गया, जिसके अन्तर्गत २०% आर्थिक सहायता किन्तु ६०० रुपये प्रति मकान से अधिक नहीं, (जो कि बाद मे कोयला-खान-मालिको द्वारा बनाये गये

मकानों में लागत व्यय का २५% और अधिक से अधिक ७५० रु०, कर दी गई) निधि में से ही दी जाने लगी। इस योजना के अन्तर्गत भी केवल १,६३८ मकान बनाये जा सके हैं। इस योजना के लिये कोयला-खान-स्वामियों का सहयोग उत्साहपूर्ण न था। इसलिए निर्माण-कार्य की गति बढ़ाने के लिए एक संशोधित उपदान प्राप्त आवास योजना बनाई गई, जिसको १९५४ से लागू किया गया। इसमें २५% उपदान के अतिरिक्त ऐसे कोयला-खान-स्वामियों को निर्माण लागत का ३७½%, अधिक से अधिक १,१०२ ४० रुपये, ऋण के रूप में देने की व्यवस्था की गई, जो कि निधि से दी गई शर्तों के अनुसार मकान निर्माण करें। इस नवीन **उपदान व ऋण योजना** के अन्तर्गत २,०६० मकानों का निर्माण हो चुका था। सितम्बर १९५६ में कोयला-खान श्रमिकों के हेतु एक **नवीन आवास योजना** बनाई गई। इसके अनुसार कोयला खान-श्रमिक-कल्याण-निधि द्वारा द्वितीय आयोजना काल में कोयला खान श्रमिकों के लिये दो कमरे वाले ३०,००० मकानों के लिए वित्त देने की व्यवस्था की गई थी। गृह निर्माण के लिए भूमि मालिकों द्वारा दी जाती है और वे ही मकानों की देख-रेख के लिए उत्तरदायी हैं। श्रमिकों से २ रुपये प्रति मास किराया लिया जाता है। इस नई योजना के अन्तर्गत, सन् १९६५–६६ के अन्त तक, कोयला खानों में ३०,००० मकानों के निर्माण का कार्यक्रम पूरा हो चुका था, २३,६७१ मकान बन चुके थे और ६,६०८ पर निर्माण कार्य चल रहा था। विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत बनाये गये मकानों में से अधिकांश गिर गये थे। इस प्रकार कोयला खान श्रमिकों के मकानों के निर्माण में कुछ तो कोयला-खान-श्रमिक-कल्याण निधि वित्तीय सहायता करती है और कुछ उपदान प्राप्त-आवास-योजना के अन्तर्गत सहायता प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त, खानों के लिए एक अन्य योजना भी स्वीकार की गई जिसे **कम लागत आवास योजना** (Low-Cost Housing Scheme) का नाम दिया गया। इस योजना में व्यवस्था की गई कि तृतीय आयोजना काल में लगभग एक लाख (लगभग २०,००० प्रतिवर्ष) मकानों का निर्माण किया जाए। यह धन खान मालिकों को इमारती सामान खरीदने के लिए दिया जायगा और प्रति मकान १००० रुपये तक होगा। इस कम लागत आवास योजना के अन्तर्गत १९६५–६६ तक ७,०५२ मकान और ३३ 'बैरेकें' बन चुकी थीं। श्रमिकों को स्वयं मकान बनाने के लिए प्रोत्साहन देने के लिए भी योजना बनाई गई है जिसके अन्तर्गत समीपवर्ती गाँव में अपनी भूमि पर मकान बनाने के लिए प्रत्येक श्रमिक को ३२५ रुपये उपदानस्वरूप दिये जाते हैं। १९६५–६६ तक इस योजना के अन्तर्गत ५३ मकान बनाने की अनुमति दी गई थी जिनमें से केवल ४ ही बन सके थे।

अभ्रक खानों के श्रमिकों के लिये दो उपदान-ऋण आवास योजनायें १९५३ और १९५५ में लागू की गई थीं। परन्तु इनके अन्तर्गत मकान बनाने में कोई रुचि नहीं ली गई। १९६० में एक नई उपदान प्राप्त आवास योजना बनाई गई। इसके अन्तर्गत अभ्रक खान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम १९४६ के अन्तर्गत

बनाई गई अभ्रक निधि में से अभ्रक खान मालिकों को निर्माण लागत का ५०% उपदान के रूप में दिया जाता है। परन्तु इसके लिये सीमा भी निर्धारित कर दी गई है। मालिकों को निधि द्वारा निश्चित योजना के अनुसार ही मकान बनाने होते है। इस योजना के अतिरिक्त, जोर्सीमार (बिहार) मे एक बस्ती का निर्माण किया गया है जिसमें ५० छोटे-छोटे दो कमरों वाले मकान है। १० ऐसी और आवास बस्तियां बनाने का विचार है। जुलाई १९६२ में, एक और कम लागत आवास योजना स्वीकार की गई जिसके अन्तर्गत बिहार में ५०० मकान बनाये जाने थे जिसमें प्रत्येक मकान की लागत १३०० रुपये थी। बाद मे मकानों की संख्या बढ़ाकर १६०० कर दी गई। 'अपना मकान स्वयं बनाओ' नामक एक योजना भी बनाई गई जिसके अन्तर्गत अभ्रक खानों के मजदूरों को प्रति मकान ४०० रुपये का अनुदान दिया जाता है।

यह आशा की जाती थी कि 'कोयला-अभ्रक खान कल्याण निधियों' में से तृतीय आयोजना की अवधि मे ६०,००० मकानों के निर्माण के लिए लगभग १४ करोड़ रुपये दिये जायेंगे।

बम्बई में आवास योजनायें

नवम्बर १९४७ मे बम्बई राज्य ने ७½ करोड़ रु० की लागत से १५,००० मकान बनाने की पचवर्षीय योजना तैयार की। १९४८ के बम्बई-आवास-बोर्ड अधिनियम के अन्तर्गत सरकार ने जनवरी १९४९ मे एक बम्बई आवास बोर्ड की स्थापना की। आयोजना काल से पूर्व आवास बोर्ड ने १००.५ लाख रु० की लागत से औद्योगिक श्रमिकों के लिये १,५१३ मकान, १·५९ करोड़ रु० की लागत से कम आय वाले श्रमिकों के हेतु ३,७२७ मकान तथा ८·७५ करोड़ रु० की लागत से विस्थापित (Displaced) व्यक्तियों के हेतु ३४,६१० मकान बनाये थे। १९६२ मे उपदान-प्राप्त-औद्योगिक-आवास योजना लागू की गई जिसके अन्तर्गत बोर्ड ने प्रथम आयोजना काल में ४६३ लाख रु० की लागत से १३,६४२ मकान बनाये। दूसरी आयोजना के प्रथम दो वर्षों मे २३४ लाख रु० की लागत से ६,३६६ मकान बने और शेष आयोजना के ३ वर्षों मे बोर्ड द्वारा १३·७४ करोड़ रु० की लागत से २९,०४० मकान बनाने का निश्चय किया गया। इसके अतिरिक्त बम्बई सरकार द्वारा सहकारी-आवास-समितियों द्वारा कम आय वाले वर्गों के आवास के हेतु तथा स्थानीय निकायों को वित्तीय सहायता दी जाती है। गन्दी बस्तियों की सफाई भी सरकार की आवास नीति का एक महत्वपूर्ण अंग है जिसके लिये १९६१ तक केन्द्रीय सरकार द्वारा ४३८.८० लाख रु० की ४४ आयोजनाओं के लिये स्वीकृति मिल गई है। आवास समस्याओं का अध्ययन करने के लिये एक आवास-कमिश्नर, एक आवास-परामर्शदात्री-समिति तथा एक विशेष-कैबिनेट-उपसमिति भी बनाई गई है। जनवरी १९६१ के अन्त तक उपदान प्राप्त आवास योजना के अन्तर्गत बम्बई मे आवास निर्माण की प्रगति अग्र प्रकार थी—

एजेन्सी	कुल स्वीकृत सहायता (लाख रु० मे)	स्वीकृत मकानो की संख्या	कुल प्रदत्त सहायता (लाख रु० मे)	निर्मित मकानो की संख्या
राज्य सरकार	१५३० ८३	३८,६१०	११०२ ८८	२६,४२२
मालिक	१०० ३६	३,८७१	१७ १०	१,६०३
सहकारी समितिया	३१ १७	१,३७१	१७ १६	१,१०३
योग	१६६२ ३६	४४,१५२	११३६ ७६	३२,४२८

आवास योजनाये अब नव-निर्मित राज्य महाराष्ट्र और गुजरात मे बराबर जारी है। सन् १९६३ मे इस योजना के अन्तर्गत, महाराष्ट्र म, राज्य सरकार द्वारा १,१५१ और मालिको द्वारा ५७४ मकान बनवाये गये थे तथा श्रमिक आवास समितियो द्वारा १८६ मकान बनवाये जा रहे थे।

उत्तर प्रदेश मे आवास योजनाये

उत्तर प्रदेश सरकार ने भी कानपुर तथा अन्य औद्योगिक केन्द्रो के लिये मकान निर्माण के लिये व्यापक योजनायें बनाई है। दिसम्बर १९५५ मे एक औद्योगिक-आवास अधिनियम पारित किया गया, जिसम राज्य द्वारा निर्मित क्वार्टरो के प्रबन्ध और प्रशासन के लिये एक आवास कमिश्नर की नियुक्ति तथा एक आवास परामर्शदात्री-समिति की स्थापना की व्यवस्था है। औद्योगिक केन्द्रो मे निरन्तर बढती हुई जनसख्या तथा विस्थापितो के भारी सख्या म आ जाने के कारण आवास का प्रबन्ध करना सरकार के लिये मुख्य समस्या बन गई है। सरकार की योजना है कि वह कानपुर से कुछ दूर बिना जोती हुई (ऊसर) भूमि पर श्रमिको के लिय आदर्श ग्राम का निर्माण करे। भूमि सरकार अथवा कानपुर विकास बोर्ड द्वारा प्राप्त की जायेगी तथा श्रमिक सरकारी सहायता द्वारा अथवा सहकारी आवास समितियो के द्वारा स्वय अपने मकान बनायेंगे। श्रमिको को केवल भूमि का थोडा-सा किराया देना होगा। सरकार न नव निर्मित बस्ती तथा वर्तमान क्षेत्रो के पुनर्निर्माण पर सिफारिश करने के लिये तथा वर्तमान आवास व्यवस्था का सर्वेक्षण करने के लिये एक विशेषज्ञ आवास व नगर नियोजक की नियुक्ति की है। लखनऊ के विकास के लिये नगर नियोजन विभाग के सामाजिक तथा नागरिक सर्वेक्षक ने सरकार को एक रिपोर्ट दी है। सार्वजनिक निर्माण विभाग ने सस्ते मकान बनाने के सम्बन्ध मे कुछ प्रयोग किये है और अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है। राज्य के अनेक उद्योगपतियो ने, विशेषत कानपुर, आगरा, फिरोजाबाद, हाथरस आदि के उद्योगपतियो ने इच्छा प्रकट की है कि यदि उन्हे सस्ती दर पर भूमि तथा इमारती सामान प्राप्त हो सके तो वह श्रमिको के लिय आवास व्यवस्था करने का प्रयत्न करेंगे। कानपुर-विकास-बोर्ड भी शहर के विकास के लिये एक योजना तैयार करने मे लगा है। इसन अहातो के स्वामियो को उनम सुधार व सफाई रखन के हेतु नोटिस दिये है तथा नोटिस के अनुसार कार्य न करने पर कुछ पर मुकदमा भी

दायर कर दिया है। कुछ वर्ष पूर्व बोर्ड द्वारा श्रमिकों के लिये निर्मित २,४०० क्वार्टरों के अतिरिक्त, परमपूर्वा क्षेत्र में श्रमिकों को मकान बनाने के लिए रियायती दरों पर कुछ भूमि प्रदान की गई है। बोर्ड ने कुछ वर्षों के दौरान में श्रमिकों के लिये ५०,००० मकान बनाने की योजना सोची है, और इस सम्बन्ध में बोर्ड विभिन्न सम्बन्धित लोगों से बातचीत कर रहा है। बोर्ड द्वारा एक कमरे वाले ७४४ मकानों के लिये २० लाख रुपये की स्वीकृति दी जा चुकी है।

भारत सरकार की उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश सरकार, राज्य के मुख्य-मुख्य औद्योगिक नगरों में अनेक क्वार्टर बना रही है। निर्माण कार्य को कई चरणों (Phases) मे विभक्त किया गया है—

प्रथम चरण—कानपुर और लखनऊ में क्रमशः २,२१६ और ५६० मकानों के निर्माण के लिये भारत सरकार ने राज्य सरकार को ७५ लाख रुपये की स्वीकृति प्रदान की थी।। यह मकान बन चुके है और श्रमिकों को किराये पर भी दिये जा चुके हैं।

द्वितीय चरण—कानपुर मे ३,७५० गृहो के निर्माण के हेतु भारत सरकार द्वारा १०१·२५ लाख रु० की राशि स्वीकृत की गई। ये सब मकान भी बन चुके है तथा श्रमिकों को किराये पर दे दिए गए है।

तृतीय चरण—इसके अन्तर्गत १,६६,८०,००० रु० की लागत से ७,४०० क्वार्टरों का निर्माण होना था। इनमे से ३,४०० कानपुर, १,२६६ आगरा, १,००० फिरोजाबाद, ६०४ सहारनपुर, ५०४ इलाहाबाद, ५०० वाराणसी तथा ९६ मिर्जापुर में बनाये जाने थे। परन्तु वाराणसी में कोई उपयुक्त स्थान प्राप्त नहीं हो सका। अतः कानपुर मे संख्या ३,५६२ तथा सहारनपुर मे ७६२ कर दी गई। शेष १२० गोविन्दपुरी (मेरठ) के लिये निश्चित किये गये। १९५८ के अन्त तक यह सब मकान भी बन चुके थे।

चतुर्थ चरण—इसके अन्तर्गत ६,७६४ क्वार्टरों का निर्माण निम्न प्रकार किया जाना था :—कानपुर ५,२४६, लखनऊ ४८६, हाथरस २१६, नैनी २१६, बरेली १०८, गोरखपुर १०८, रामपुर ३८४। १९५५ से भारत सरकार ने इन क्वार्टरों के लिये २,०६,५४,१६० रु० स्वीकृत किये। इस चरण में अधिकतर क्वार्टर, गन्दी बस्तियों में अथवा उनके निकट बनाए जायेंगे तथा गन्दी बस्तियों मे रहने वालों को उनमें स्थान दिया जाएगा। १९५९ के अन्त तक ये सब मकान भी बन चुके थे।

इस प्रकार पहले चार चरणों मे विभिन्न स्थानों पर २०,६६० मकान बनाए गए। परन्तु १९६४ के अन्त तक केवल २०,१०६ क्वार्टर श्रमिकों को नियत (Allot) किये गये थे। कानपुर में १४,८०४ मकानों में से १४,३६४ मकान श्रमिकों को नियत किये गये थे। किराया अधिक होने के कारण तथा कारखानों से दूर होने के कारण श्रमिक इन मकानों मे जाना नहीं चाहते थे। सरकार के लिये यह

समस्या बहुत गम्भीर बन गई है। कानपुर में गैर-श्रमिक जिनमें अधिकतर सुरक्षा विभाग के व्यक्ति हैं इन मकानों में रहने लगे हैं। एक कमरे वाले मकानों का किराया १० और १३ रु० प्रति माह के बीच में है।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना काल में ५६१.४५ लाख रु० की लागत से उत्तर प्रदेश में १७,५५० मकान बनाने की व्यवस्था की गई थी। परन्तु अनुमति केवल ४,७७६ मकानों के निर्माण के लिये ही दी गई। अब मकानों का निर्माण दो और चरणों में प्रारम्भ हो चुका है, जो निम्न प्रकार है—

पाँचवा चरण—इसके अन्तर्गत ७५,६७,२०० रु० की लागत से १,६७२ क्वार्टर बनाने की व्यवस्था विभिन्न नगरों में इस प्रकार —कानपुर ४३०, गोविन्दपुरी (मेरठ) ३६६, नैनी (इलाहाबाद) ७५६, गाजियाबाद (मेरठ) २२२, वाराणसी १६२।

छठा चरण—इसके अन्तर्गत १,०६,६३,२०० रु० की लागत से २,८०४ क्वार्टरों के बनाने की व्यवस्था विभिन्न नगरों में इस प्रकार है—कानपुर १,०२८, गोविन्दपुरी (मेरठ) ७०८, नैनी (इलाहाबाद) २८८, शिकोहाबाद २५२, बरेली १४४, शाहपुरी (वाराणसी) ५०४। इन मकानों का निर्माण भी पूरा हो चुका है।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में १,५३५ मकानों के निर्माण के लिये मालिकों और सहकारी समितियों की सहायता के लिये ४३,६६,००० रु० की व्यवस्था की गई है। राज्य सरकार द्वारा बनवाए जाने के लिए दो चरणों म (चरण सात और आठ) ४,२७२ मकान बनाने के लिए १,७२,६५,००० रु० की व्यवस्था की गई है। ये मकान विभिन्न नगरों में इस प्रकार बनाये जायेंगे—कानपुर १५४२, गाजियाबाद ७०८, बरेली २८८, गोविन्दपुरी ३७८, पिपरी (मिर्जापुर) २१०, आगरा १५६, लखनऊ ७५०, ज्वालापुर (सहारनपुर) २४०, योग ४,२७२।

इसके अलावा योजना के सातवें चरण में, सन् १९६१–६२ में १९६२ मकान बनाने की अनुमति प्रदान की गई थी। विभिन्न नगरों में इन मकानों का वितरण इस प्रकार था कानपुर–५५८, लखनऊ–४२६, गोविन्दपुरी (मेरठ)–४१४, बरेली–२६५। आठवें चरण में, २४०० मकानों के निर्माण की अनुमति प्रदान की गई थी।

इस प्रकार, आठों चरणों में, योजना के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में २६,५५८ मकानों के निर्माण का काम हाथ में लिया गया। पहले छः चरणों में, २५,४६६ मकान बन चुके थे। सातवें और आठवें चरणों में, जून १९६६ तक १,८४६ मकान बन चुके थे जबकि स्वीकृति ४०६२ मकानों के निर्माण की प्रदान की गई थी। इस प्रकार, कुल आठों चरणों में, जून १९६६ तक २७,३१५ मकान बन चुके थे।

उत्तर प्रदेश के बागान श्रमिकों के लिये एक पृथक् आवास योजना है। इसके अन्तर्गत मकान निर्मित करवाने के लिये मालिकों को कुल लागत का ८०%

तक बढ़ा दिया जाता है। दूसरी तथा तीसरी, दोनो ही पचवर्षीय आयोजनाओ मे २५० मकानो के निर्माण के लिये पाँच-पाँच लाख रु० की व्यवस्था की गई थी। परन्तु बागान मालिको की ओर से इस योजना के अन्तर्गत मकान बनाने मे रुचि नही दिखाई गई।

३१ जनवरी १९६१ तक उत्तर प्रदेश में पाँच प्रायोजनाये गन्दी बस्तियो के सुधार के लिए भी स्वीकृत की जा चुकी थी। इन प्रायोजनाओ पर अनुमानित व्यय १९६·०० लाख रुपये था। इन प्रायोजनाओ मे १७ भूमि क्षेत्रो का विकास करके ५,३६६ मकान बनाने की व्यवस्था है। इनके अन्तर्गत ३३२ मकान बन चुके थे तथा ३,२२४ मकान निर्माणाधीन थे। उपदान प्राप्त आवास योजना के अन्तर्गत मकान बनाने मे जो प्रगति हुई थी उसका विवरण नीचे दिया जाता है—

एजेन्सी	कुल स्वीकृत राशि (लाख रु० में)	स्वीकृत मकानों की संख्या	कुल राशि जो दी गई (लाख रु० में)	निर्मित मकानों की संख्या
राज्य सरकार	७९५ ५८	२५ ५८८	६८० ५७	२१,४१८
मालिक	२१ ७०	९४६	७ ७४	५३६
सहकारी समितियाँ	०·९६	४३	० ४०	४३
योग	८१७ ९४	२६,५७७	६८८ ·१	२१,९९३

उत्तर प्रदेश मे चीनी मिलो के श्रमिकों के लिए आवास योजना

राज्य मे चीनी मिलो के श्रमिकों की आवास योजना के अन्तर्गत उत्तर-प्रदेश की ६५ चीनी फैक्ट्रियों के कर्मचारियो के लिये एक व दो कमरे वाले १७३० क्वार्टरो को बनाने की व्यवस्था है। प्रारम्भिक लक्ष्य १५०० मकानो का था परन्तु फैक्ट्रिया २३० क्वार्टर और बनाने को सहमत हो गई थीं। मकानो का निर्माण १९५१ के एक अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित उत्तर प्रदेशीय चीनी और चालक मदसार उद्योग श्रम कल्याण तथा विकास निधि (U. P. Sugar and Power Alcohol Industrial Labour Welfare and Development Fund) से से किया जायेगा। यह निधि चीनी मिलों द्वारा शीरे की बिक्री पर लगे उपकार से निर्मित की गई है। चीनी मिलो को शीरे पर चार आने छ पाई (·२८ पैसे) प्रति मन मूल्य की छूट दी गई है और खुली बिक्री द्वारा इससे अधिक जो कुछ प्राप्त होता है वह इस निधि में देना होता है। निधि में तीन विभिन्न खाते है—आवास, सामान्य कल्याण एवं विकास। इस निधि में राज्य सरकार समय-समय पर धन हस्तान्तरित करती है। दिसम्बर १९६१ के अन्त तक इस निधि मे ४८,६८,५०० रु०

हस्तान्तरित किया गया। इस धनराशि में से ८८ प्रतिशत अर्थात ४५ २० ६६६ रु० आवास खाते ३ १८ ८४६ रुपये सामान्य कल्याण खाते तथा ८८ ६८५ १९ये विकास खाते में जमा कर दिया गया है। १९६४ के अन्त तक आवास के लिए ४५ ६९ ०७२ रुपये नियत किये गये थे जिनमें से मकानों के निर्माण के लिये ४२ ०९ ८०८ रुपए दिये गए। योजना को कार्यान्वित करने के हेतु एक आधारा बोर्ड तथा एक परामर्शदात्री समिति बनाई गई है। मकानों का निर्धारित स्तर और नक्शे के अनुसार निर्माण करना मालिकों का उत्तरदायित्व है। सरकार निधि में से धन दे देती है तथा मालिकों को मकान निर्माण के सम्बन्ध में सभी प्रकार की आवश्यक सुविधाएं प्रदान करती है। राज्य में ६५ चीनी के कारखानों में से चार ने इस योजना में भाग लेने से पहले इन्कार कर दिया था परन्तु १९५८ तथा १९५९ में दो चीनी कारखानों ने इसमें भाग लेने की स्वीकृति दे दी। इस प्रकार इस समय ६३ चीनी कारखाने इस योजना में भाग ले रहे हैं। १९५७ तक ५६ चीनी के कारखानों ने मकान बनाने का कार्य शुरू कर दिया था। १९५८ में २ और १९५९ में ३ और कारखानों ने भी मकान बनाने शुरु कर दिये थे। २ कारखानों को उचित भूमि मिलने में कठिनाई के कारण अभिग्रहण (Acquisition) का कार्यवाहियां की गई। अब ६२ चीनी कारखानों में जहां कार्य शुरू हो चुका है जून १९६६ तक १५५६ मकानों का निर्माण हो चुका था।

चीनी के कारखानों के श्रमिकों के लिये सरकार ने कुछ अवकाश गृह (Hol day Home) और विश्राम गृह बनाने का भी निश्चय किया है। इनके लिए सरकार द्वारा १ ४७ ८६४ रुपये की धन राशि की स्वीकृति दी गई है।

अन्य राज्यों में आवास योजनाएं

अन्य राज्यों में भी औद्योगिक श्रमिकों के हेतु आवास की विभिन्न योजनाएं कार्यान्वित हो रही है। राज्य सरकारों द्वारा समय समय पर श्रमिकों के लिए कई प्रायोजनाएं स्वीकृत की गई है तथा की जाती है। उपदान और ऋण केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदान किया जाता है। मकान राज्य सरकारों मालिकों तथा सहकारी समितियों द्वारा बनाये जाते है। राज्यों में आवास योजनाओं के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं आन्ध्र में १९६० के अन्त तक उपदान प्राप्त आवास योजना के अन्तर्गत ३ ६५० मकान राज्य सरकारों द्वारा और १५७ मकान मालिकों द्वारा बनाये जा चुके थे। राज्य सरकार द्वारा १९६४ में १४८ मकान और मालिकों द्वारा ३२२ मकान और बनाये गये। आसाम में योजना के अन्तर्गत सन् १९६४ में ६२ मकान बनाये गये है तथा गन्दी बस्तियों की सफाई की योजना के अन्तर्गत भी मकान बनाये जा रहे है। बिहार में आवास योजना के अन्तर्गत १९६० के अन्त तक ५ ३०९ मकान बनाए जा चुके थे और ३ ५२० मकान निर्माणाधीन थे। १९६४ में सरकार द्वारा ७२० और मालिकों द्वारा ६१८ क्वाटर बनवाये गये। टाटा की इन्जीनियरिंग और इन्जिन के कारखानों को तथा रोहतास उद्योगो

को मकान बनाने के लिये ऋण भी दिया गया है। राज्य सरकार की एक औद्योगिक आवास योजना के अन्तर्गत भी मकान बन रहे है। केरल मे भी राज्य की कुछ आवास योजनायें चालू है जिनके अन्तर्गत ३०० मकानों का निर्माण हो चुका है। मध्य प्रदेश में द्वितीय आयोजना काल मे २,५०० मकान महाकौशला मे, ८८८ मकान मध्य भारत मे, ६६६ मकान विन्ध्य प्रदेश मे और ६७० मकान भोपाल में निर्माण किये गये थे। इससे पूर्व जब मध्य भारत राज्य था तो योजना के अन्तर्गत १६५२ मे १,८५२ मकान तथा १६५३-५४ में १५६२ मकान विभिन्न नगरों मे बनाये गये थे, अर्थात् इन्दौर मे १,६४० ; ग्वालियर में ७०० ; उज्जैन मे ५५०; रतलाम में ३०० ; देवास मे ११४ और मदसौर में १४०। ये मकान श्रमिको को नियत (Allot) भी किये जा चुके है। इन्दौर से कुछ मिलों ने, जो लड़ाई के दिनो मे लाभ हुआ था उसमें से ३५ लाख रुपये सूती कपड़ा मिल मजदूरो के लिये मकान बनाने के हेतु अलग रख दिये थे। तृतीय आयोजना के अन्त तक, मध्य प्रदेश मे विभिन्न केन्द्रों मे १०,०२२ मकान बनवाये गये जिनका विवरण इस प्रकार है : इन्दौर-२८४१, ग्वालियर-१०७४ ; उज्जैन-६०४ ; रतलाम-४६७, मन्दसौर-१४०; देवास-११४; बुहानपुर-१००, राजनाँदगाव-२००, जबलपुर-५६८ ; भोपाल-५२२ ; शिहोर-१०० ; सतना-६६८ ; नेपानगर-५६६, भिल्लई-२८८ ; अमलाई-४०० ; और खण्डवा-२४। मद्रास मे आवास योजना के अन्तर्गत राज्य सरकार ने १८५४ मकान बनाये है। कई उद्योग संस्थानो को उपदान और ऋण भी दिये गये हैं। सन् १६६४ मे २४० मकान बनवाये गये थे। सरकारी छापेखाने तथा राज्य के यातायात तथा सार्वजनिक निर्माण कार्यों के श्रमिको के लिये मकान बनाये गये है। राज्य सरकार ने जुलाहो के मकानो की मरम्मत के लिये भी सहायता दी है। इनके लिये ६४ लाख रुपये की राशि से, १५८० मकान १६ योजनाओं के अन्तर्गत दूसरी पचवर्षीय आयोजना मे स्वीकृत किये गये थे। मैसूर मे आवास योजना के अन्तर्गत राज्य सरकार ने ४,३४२ तथा मालिकों ने १,५४५ मकान बनाये है। जबकि कुल ६७२३ मकान बनवाये जाने थे। योजना के अन्तर्गत, १६६०-६१ में राज्य के लिये २२ लाख रु० नियत किये गये थे। सन् १६६४ मे १,१४५ मकान बनवाये गये थे। उड़ीसा मे आवास योजना के अन्तर्गत १६६१ तक ४४६ मकान राज्य सरकार द्वारा तथा १,००८ मकान मालिकों द्वारा बनाये गये हैं। २०६ मकान १६६४ मे बनवाये गये। पंजाब मे आवास योजना के अन्तर्गत १६६० के अन्त तक सरकार द्वारा १६४२, मालिको द्वारा १,४८६ और सहकारी समितियो द्वारा १४२ मकानो का निर्माण हो चुका था। १५२ मकान १६६४ मे बनाये गये थे। पहले के 'पैप्सू' राज्य मे एक कमरे वाले २२५ मकान बनाये गये थे। श्रम विभाग की एक विकास योजना के अन्तर्गत पटियाला मे ३० मकानों का निर्माण हुआ था। राजस्थान मे आवास योजना के अन्तर्गत २,४६८ मकान सरकार द्वारा, १,०६४ मकान मालिकों द्वारा तथा ८६ मकान श्रमिक संगठनो द्वारा बनाये गये है। जयपुर मे ३३२, पालि मे २६५

तथा भीलवारा में २०३ मकान श्रमिकों को दिये जा चुके हैं। योजना के अन्तर्गत, १९६४ में, २,३२६ मकान सरकार द्वारा, २४८ मालिकों द्वारा और ८६ श्रमिकों द्वारा बनवाये गये। पश्चिमी बंगाल में आवास योजना के अन्तर्गत १९६० के अन्त तक ५,६४४ मकान राज्य द्वारा तथा १,०७८ मकान मालिकों द्वारा बनाये जा चुके थे। सन् १९६४ में, सरकार द्वारा ८१० और मालिकों द्वारा २६८ मकान बनवाये गये थे। राज्य सरकार ने १९५९ से मकानों की देखभाल के लिये एक गैर-सरकारी आवास बोर्ड स्थापित कर दिया है। हिमाचल प्रदेश में नाहन में ५० मकान बनाये गये हैं।

दिल्ली राज्य सरकार ने आवास योजना के अन्तर्गत ५,००० मकानों के निर्माण का निर्णय किया है एवं २,७७५ क्वार्टर जून १९६६ के अन्त तक बनाये जा चुके थे। नई दिल्ली में भी श्रमिकों के हेतु केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग द्वारा लोदी रोड पर बने क्वार्टरों के आधार पर श्रमिक आवास क्षेत्र बनाने की योजना है। इस योजना में निर्माण का व्यय संयुक्त रूप से राज्य और मालिकों के द्वारा वहन किया जायेगा और मकानों का प्रबन्ध मालिकों, श्रमिकों एवं राज्य के प्रतिनिधियों के एक संयुक्त बोर्ड द्वारा किया जायगा। दिल्ली में केन्द्रीय विद्युत शक्ति सत्ता (Central Electric Power Authority) ने अपने श्रमिकों के हेतु मकान बनाने आरम्भ कर दिये हैं। नजफगढ़ में एक औद्योगिक आवास क्षेत्र का विकास किया गया है। औद्योगिक परामर्श बोर्ड ने एक अन्य आवास क्षेत्र के लिये उपयुक्त स्थान प्राप्त करने के हेतु, पाँच व्यक्तियों की एक उपसमिति नियुक्त की है। शाहदरा के निकट भी भूमि प्राप्त की गई है। नई दिल्ली के आठ श्रमिक कैम्पों में श्रमिकों को नागरिक सुविधाएँ प्राप्त करने के हेतु एक समिति बनाई गई है। ९४५ मकान निम्न स्थानों पर बनाये जा रहे हैं—ओखला में ४००, शाहदरा में २०० तथा औद्योगिक आवास क्षेत्र में ३४५।

देहली विकास सत्ता द्वारा गंदी बस्तियों की सफाई की एक योजना तैयार की गई है। इसके अन्तर्गत २४ योजनाएं बनाई गई हैं। भूमि अभिग्रहण के लिये १,४०,००० रुपए स्वीकृत किये गये हैं। मार्च १९५९ से गंदी बस्तियों की सफाई का कार्य देहली नगरपालिका निगम को हस्तान्तरित कर दिया गया है। उस समय तक देहली नगर सुधार ट्रस्ट और देहली विकास सत्ता द्वारा ३ २२५ मकान और ५९ दुकानें देहली के विभिन्न भागों में बनाई जा चुकी थीं। दिसम्बर १९६५ तक १०,०६५ मकान ८१ फ्लेट, ४६१ दुकानें और ३६ दफ्तर बनवाने के लिए ४४८ करोड़ रुपए की प्रायोजनाएं स्वीकृत की गई थीं। ६ ६६३ मकान और १२९ दुकानें बन भी चुकी थीं। इनके अतिरिक्त २८ ७६ लाख रु० की लागत से कटरों और बस्तियों में सुधार भी किया गया है। देहली नगरपालिका निगम ने एक अन्य योजना झुग्गी और झोंपड़ी निष्कासन योजना सरकार की अनुमति से लागू की है। इस योजना का उद्देश्य यह है कि ऐसे परिवारों को (जिनका अनुमान लगभग २५,००० है) जिन्होंने सरकारी और सार्वजनिक भूमि पर बिना इजाजत के

झोपडियां और झुग्गियां बना ली हैं उनको वहां से हटाकर अन्य जगह बसा दिया जाए। इसकी अनुमानित लागत ३·८३ करोड़ रु० है। किन्तु सन् १९६० में देहली प्रशासन द्वारा की गई जनगणना से यह प्रकट हुआ कि वास्तव में ऐसे परिवार ४३,८५७ थे जिन्हें कि फिर से बसाया जाना था। निगम ने इस कार्य के लिये भूमि लेने तथा उसका विकास करने में लिये पग उठाये हैं। सन् १९६५ के अन्त तक, लगभग १८,६६० उपवेशी परिवार (Squatter Families) इस योजना के अन्तर्गत विकसित किये गये २२८०६ भूखण्डों (Plots) पर स्थानान्तरित कर दिये गये हैं।

गोदी श्रमिकों के मकानों के लिये तीसरी पंचवर्षीय आयोजना में २ करोड़ रुपए की और चौथी आयोजना में २·५ करोड़ रु० की व्यवस्था की गई है। बम्बई कलकत्ता और मद्रास में गोदी श्रमिक बोर्डों को गोदी श्रमिकों के लिये मकान बनाने के लिये ऋण के रूप में सहायता दी जाती है। यह ऋण निर्माण लागत का ८० प्रतिशत तक हो सकता है। इस योजना के अन्तर्गत गोदी श्रमिकों के लिये ५,००० मकान बनाने की व्यवस्था की गई है।

बागान में आवास व्यवस्था

बागान श्रमिकों को अच्छे मकान प्रदान करने के प्रश्न पर जनवरी १९४७ में नई दिल्ली में प्रथम त्रिदलीय बागान उद्यान सम्मेलन में विचार किया गया। यह प्रश्न विचार के हेतु पुनः १९४८, १९४९ तथा १९५० में बागान औद्योगिक समिति के सम्मुख आया। बागान कर्मचारियों के मकानों के हेतु, उपयुक्त भूमि को प्राप्त करने एवं उसके विकास करने तथा मकानों के निर्माणार्थ धन प्राप्त करने के हेतु आवास बोर्डों को स्थापित करने का निर्णय किया गया। इस बात का भी निर्णय किया गया कि वर्तमान अनुपयुक्त मकानों को गिरा कर उनके स्थान पर दूसरे मकान बनाने के लिये एक अवधि निश्चित कर देनी चाहिये। भारतीय चाय परिषद् ने उत्तरी भारत के बागान कर्मचारियों के हेतु ऐच्छिक रूप से आवास-व्यवस्था के लिये कुछ न्यूनतम आवास स्तर निर्धारित किये हैं। असम तथा पश्चिमी बंगाल सरकारों ने इन स्तरों को स्वीकार किया है। भारत सरकार ने १९५१ में बागान श्रमिक अधिनियम पारित किया जिसके अन्तर्गत मालिकों को श्रमिकों एवं उनके परिवारों की आवास-व्यवस्था करने के लिये उत्तरदायी ठहराया गया है। यह भी निश्चित किया गया है कि बागान में मालिक प्रतिवर्ष कम से कम अपने ८% कर्मचारियों के हेतु मकान बनायेंगे। परन्तु क्योंकि अधिकतर बागान मालिक, विशेषतः छोटे बागान के मालिक, इस शर्त को पूरा करने की अवस्था में नहीं थे, अतः अप्रैल १९५६ में बागान श्रमिक आवास योजना बनाई गई। योजना में उद्योगपतियों को राज्य सरकारों के माध्यम से मकानों की लागत का ८०% तक ब्याज सहित ऋण दिया जा सकता है जो प्रति मकान अधिक से अधिक २,४०० रु० तक उत्तर में और १,९२० रु० तक दक्षिण में हो सकता है। इस

प्रकार बागान के मालिकों को अब केवल भूमि की लागत तथा २०% मकान की लागत वहन करनी पड़ती है। यह योजना असम, केरल, मद्रास, मैसूर, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल और त्रिपुरा में लागू की गई है जहाँ अधिकतर बागान पाये जाते हैं। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में बागान में ११,००० क्वार्टरों के बनाने के हेतु २ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी, जिसको १९५९–६० में घटा कर ५० लाख रुपये कर दिया गया था।

बागान में श्रमिकों के लिये मकान बनाने की प्रगति बहुत धीमी रही है। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना के अन्त तक केवल १४ लाख रुपये से ७०० मकान बनाने की स्वीकृति दी गई थी। इसमें से भी १९५६ तक केवल ०० मकान बन पाये थे। इस धीमी प्रगति का मुख्य कारण यह है कि बागान मालिकों से राज्य सरकारें ऋण देते समय पर्याप्त जमानत मांगती हैं जो बागान मालिक नहीं दे पाते क्योंकि उनकी सम्पत्ति पहिले से ही कार्य पूँजी के कारण बैंकों के पास रहन होती है। तीसरी आयोजना में बागान श्रमिकों के आवास हेतु ७० लाख रुपये की व्यवस्था की गई है और यह सुझाव दिया गया है कि "एक पूल गारंटी निधि" बनाई जाय जो ऋण के लिये समपार्श्वी जमानत (Collateral Security) का कार्य कर सके। यह निधि ऋण पर ½ प्रतिशत अतिरिक्त ब्याज लगा कर बनाई जायगी। और इसमें प्रति वर्ष जो ब्याज आयगा वह भी जमा हो जायगा। यदि कोई हानि निधि (Fund) की परिसम्पत्तियों से अधिक मात्रा में होती है तो केन्द्र सरकार, राज्य सरकार तथा सम्बन्धित वस्तु बोर्ड (Commodity Board) द्वारा वह बराबर-बराबर बाँट ली जायेगी। इस निधि के लिये आदर्श नियम भी बनायेगये हैं। १९६५ के अन्त तक २५ ०१ लाख रु० बागान मालिकों के लिये कर्ज सहायता के रूप में स्वीकार किये गये। इस सहायता से १८२५ मकानों का निर्माण होना था। परन्तु केवल ९९९ मकान ही बनवाये गये। योजना की धीमी प्रगति को देखते हुए श्रम व रोजगार मन्त्रालय ने बागान श्रम आवास पर कार्यकारी दल की नियुक्ति की। इस दल ने सिफारिश की कि मकानों की लागत का २५% उपदान के रूप में और ५० प्रतिशत कर्ज के रूप में दिया जाये। सिफारिशें स्वीकार कर ली गईं। चौथी आयोजना में बागान आवास के लिये २ करोड़ रु० की व्यवस्था की गई है।

श्रमिक संघों की आवास योजनायें

अहमदाबाद की कपड़ा मिल मजदूर परिषद् द्वारा दी गई सहायता और प्रोत्साहन के फलस्वरूप उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना से लाभ उठाने के हेतु १२५ से अधिक सहकारी आवास समितियों की स्थापना की गई है जिनका उल्लेख पीछे किया जा चुका है। हैदराबाद में भी मकान बनाने में सहकारी समितियों ने अच्छा कार्य किया है। केन्द्रीय सरकार ने मद्रास और मैसूर में जुलाहों की सहकारी समितियों को मकान बनाने के लिये वित्तीय सहायता देने का निर्णय

किया है। अखिल भारतीय हाथ करघा बोर्ड ने भी सहकारी समितियों द्वारा जुलाहों के लिये ४,३०० मकान बनाने की योजना बनाई है जिसके लिये सरकार द्वारा लागत का २ तिहाई ऋण के रूप में और एक तिहाई उपदान के रूप में धन मिलेगा। मदुराई मे हार्वेपट्टी आवास समिति का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इस उपदान प्राप्त आवास योजना के अन्तर्गत सहकारी आवास समितियों को ऋण और उपदान देने की व्यवस्था है। मार्च १९६५ के अन्त तक विभिन्न श्रमिकों की सहकारी आवास समितियों को ६,३१५ मकानों के निर्माण हेतु २·०८ करोड रु० दिये जाने की स्वीकृति दी जा चुकी थी। इस राशि मे १·४८ करोड रुपये ऋण के रूप में और ६० लाख रुपये उपदान के रूप मे दिये जाने थे। इनमे से केवल ४,३५१ मकान बनाये गये थे।

औद्योगिक आवास अधिनियम

१८९४ के भूमि अभिग्रहण अधिनियम (Land Acquisition Act) में केन्द्रीय सरकार द्वारा १९३३ मे संशोधन किया गया ताकि मालिक अपने श्रमिकों के आवास हेतु भूमि आसानी से प्राप्त कर सकें। इस विधान के अतिरिक्त कुछ वर्ष पहले तक श्रमिको की आवास व्यवस्था को सुधारने के सम्बन्ध मे कोई कानून नही था। १९४६ में अभरक-खान-श्रमिक-कल्याण-निधि अधिनियम तथा १९४७ के कोयला-खान-श्रम-कल्याण-निधि अधिनियम पारित किये गये जिनके अन्तर्गत स्थापित निधि द्वारा किये जाने वाले कल्याणकारी कार्यों मे आवास की व्यवस्था भी है। उत्तर प्रदेश चीनी एवं चालक मदसार उद्योग श्रम कल्याण और विकास निधि अधिनियम १९५१ मे पारित किया गया जिसमे चीनी मिलो के श्रमिको के लिए मकान प्रदान करने की भी व्यवस्था है। १९५१ के बागान श्रमिक अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्येक मालिक को अपने श्रमिको के लिए मकान उपलब्ध करने होगे। इन सब के सम्बन्ध मे ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। अब अनेक राज्यो मे आवास सम्बन्धी अधिनियम पारित किये गये हैं।

बम्बई आवास बोर्ड अधिनियम १९४८ मे पारित किया गया। तत्पश्चात् इसमे कई बार सशोधन हुए है। इसके अन्तर्गत एक आवास बोर्ड की स्थापना करने की व्यवस्था है, जिस बोर्ड मे एक अध्यक्ष के अतिरिक्त राज्य सरकार द्वारा मनोनीत चार सदस्य होंगे। उन क्षेत्रो को छोडकर जहाँ के लिए कोई विकास योजना पहले से लागू है और ऐसी योजना को छोडकर जो नगर आयोजन से मेल नहीं खाती, बोर्ड को मकानो की योजना बनाने और उसको कार्यान्वित करने के लिए धन व्यय करने का अधिकार है। यह भूमि एव मकान विकास के प्रोत्साहन हेतु कार्य कर सकता है। इसको सडके तथा खुली जगहों को प्राप्त करने का, स्थानीय सत्ता के रूप मे कार्य करने का एवं उन्नति-कर लगाने का अधिकार भी दिया गया है। इसने आवास सम्बन्धी समस्त कार्य १९४७ मे स्थापित प्रान्तीय आवास बोर्ड से उसकी सभी परिसम्पत्ति (Asset) सहित ले लिया है। यह सरकार

से, सार्वजनिक संस्थाओं या स्थानीय प्राधिकारियों से अनुदान वित्त सहायता, दान तथा उपहार आदि स्वीकार कर सकता है तथा सरकार की स्वीकृति से ऋण ले सकता है तथा ऋणपत्र जारी कर सकता है। उन्नति कर व क्षतिपूर्ति के सम्बन्ध में उत्पन्न विवादों को सुलझाने के हेतु एक विशेष अधिकरण की स्थापना की गई है। बोर्ड और स्थानीय प्राधिकारियों के आपसी मतभेद सरकार द्वारा सुलझाये जायेंगे। बोर्ड की स्थापना १९४९ में की गई और इसे परामर्श देने के हेतु ४४ सदस्यों की एक सलाहकार समिति बनाई गई है। एक आवास कमिश्नर की भी नियुक्ति की गई है। पुनर्गठित राज्य महाराष्ट्र में, बम्बई का अधिनियम, मध्य प्रदेश के (१९५० के) आवास बोर्ड अधिनियम और सौराष्ट्र का (१९५४ का) आवास बोर्ड अधिनियम उनके तत्कालीन क्षेत्रों में अभी भी लागू है।

मैसूर आवास बोर्ड अधिनियम १९५५ ने कुछ सीमा तक इस विषय पर १९४९ के मैसूर श्रमिक आवास नियम को प्रतिस्थापित कर दिया है। १९५५ के इस अधिनियम का उद्देश्य यह है कि आवास बोर्ड श्रमिकों का आवास उपलब्ध करने के हेतु तथा आवास से सम्बन्धित अन्य सुविधायें देने के लिए पग उठा सके। इस अधिनियम के अन्तर्गत मैसूर आवास बोर्ड की स्थापना हुई है (१९४९ के अधिनियम के अन्तर्गत जो मैसूर श्रमिक आवास निगम बनाया गया था उसके स्थान पर यह बोर्ड बनाया गया है)। इस आवास बोर्ड में एक अध्यक्ष और राज्य सरकार द्वारा मनोनीत ६ सदस्य हैं। इस बोर्ड को विस्तृत अधिकार दिये गये हैं। यह मकानों को गिरवा भी सकता है और उनका अभिग्रहण भी कर सकता है। नई आवास योजनायें तैयार करके उनको कार्यान्वित करने का भी इसको अधिकार है। मकानों के निर्माण में शीघ्रता करने, सस्ते मकान बनाने, कुछ दशाओं में बोर्ड के मकानों को खाली करवाने आदि के अधिकार भी इस बोर्ड को है। अब एक और मैसूर आवास बोर्ड अधिनियम १९६२ लागू किया गया है। इसका उद्देश्य उन कठिनाइयों को दूर करना है जो आवास योजनाओं को लागू करने में सामने आई है। यह नया अधिनियम राज्य के पुनर्गठित क्षेत्र पर लागू होगा। भूमि अभिग्रहण पर, क्षति पूर्ति के प्रश्न पर तथा उन्नति-कर को लगाने के प्रश्न पर यदि कोई विवाद हो जाता है तो उसको सुलझाने के हेतु एक अधिकरण की स्थापना की व्यवस्था की गई है।

मध्य प्रदेश आवास बोर्ड अधिनियम १९५० में पारित किया गया। इसमें एक आवास बोर्ड की स्थापना करने की व्यवस्था है जिसमें एक अध्यक्ष और ९ सदस्य होंगे। बोर्ड, यदि आवश्यक समझे, किसी भी क्षेत्र के लिए आवास योजना को बनाने और उसको कार्यान्वित करने का कार्य करेगा तथा विभिन्न सुविधाओं की भी व्यवस्था करेगा, जैसे—भूमि अथवा सम्पत्ति का अभिग्रहण, अनुपयुक्त मकानों को गिराना, इमारतों का पुनः निर्माण आदि तथा मकानों के निर्माण की लागत कम करना तथा उनके निर्माण की गति में वृद्धि करना। बोर्ड की स्थापना १९५१ में हुई थी। बोर्ड की निधि, सरकार, स्थानीय प्राधिकारियों, निजी अथवा

व्यक्तिगत संस्थानों द्वारा दिये गये अनुदान, दान, उपहार अथवा ऋण से मिलकर बनेगी। सन् १९६० मे इस अधिनियम के अन्तर्गत आवास नियम भी बनाये गये थे।

हैदराबाद श्रमिक आवास अधिनियम १९५२ मे पारित किया गया। यह अब हैदराबाद राज्य के उन तत्कालीन क्षेत्रों पर लागू होता है जो कि आन्ध्र प्रदेश मे विलीन हो गये है। इसमे भी एक त्रिदलीय श्रमिक-आवास-निगम की स्थापना की व्यवस्था थी, जिसके कार्य भी लगभग अन्य अधिनियमो मे दिये गये कार्यो के समान थे। उसी प्रकार राशि भी एकत्रित होती थी और उसके हेतु हैदराबाद श्रमिक निधि की स्थापना भी की गई थी।

सन् १९५६ में **'आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना क्षेत्र) आवास बोर्ड अधिनियम'** पास किया गया। इसके अन्तर्गत एक आवास बोर्ड की स्थापना की व्यवस्था है जिसका कार्य उन सभी उपायों व कार्यो को करना और ऐसी योजनाओ को लागू करना है जिनसे राज्य की आवास आवश्यकतायें पूरी हो सकें। सन् १९६२ मे इस अधिनियम मे संशोधन किया गया और फिर इस अधिनियम को सम्पूर्ण आन्ध्र प्रदेश मे लागू कर दिया गया।

उत्तर प्रदेश औद्योगिक श्रमिक आवास अधिनियम १९५५ मे पारित किया गया। अधिनियम मे राज्य मे निर्मित क्वार्टरो की देखभाल और प्रबन्ध के हेतु एक आवास कमिश्नर की नियुक्ति की व्यवस्था है। इसमे आवास और प्रशासन से सम्बन्धित विषयो के लिए व्यवस्था की गई है, जैसे—मकानो का नियतन करना, मकानों को खाली कराना, किराया वसूली, मकानो की देखभाल, मरम्मत, प्रबन्ध आदि। इस अधिनियम मे एक सलाहकार समिति की स्थापना की भी व्यवस्था है, जिसका कार्य आवास के प्रशासन सम्बन्धी विषयो पर आवास कमिश्नर द्वारा पूछी गई बातो पर परामर्श देना है। अधिनियम ५ जून १९५७ से राज्य के १२ शहरी क्षेत्रो मे लागू किया गया और १९५८ मे इसके अन्तर्गत आवास नियम भी बनाये गये।

१९५६ के पजाब औद्योगिक आवास अधिनियम के अन्तर्गत औद्योगिक श्रमिको के आवासो के प्रशासन, नियन्त्रण, नियतन, देखभाल, किराया वसूली तथा औद्योगिक श्रमिक आवास से अन्य सम्बन्धित मामलो की व्यवस्था है।

राजस्थान मे राजस्थान आवास योजनायें (भूमि अभिग्रहण) अधिनियम १९६० मे पारित किया गया था। इसका उद्देश्य यह है कि आवास हेतु भूमि उचित मूल्य पर प्राप्त हो सके तथा भूमि के मूल्यों मे बढोत्तरी न हो सके। मद्रास मे भी एक आवास बोर्ड की स्थापना के हेतु और आवास योजनाओ को राज्य में कार्यान्वित करने के हेतु एक अधिनियम बनाया गया है। पश्चिमी बंगाल में एक आवास बोर्ड की स्थापना की गई है जो साविधिक नही है।

केन्द्रीय सरकार ने भी कुछ केन्द्रीय शासित क्षेत्रो की गन्दी बस्तियों को

१९५६ मे गन्दी बस्ती (सुधार व सफाई) अधिनियम पारित किया है। अधिनियम के अन्तर्गत गन्दी बस्तियों के सुधार तथा सफाई का उत्तरदायित्व उन बस्तियों के मालिको पर ही डाला गया है परन्तु यदि वे १२ माह के अन्दर अन्दर अपने उत्तरदायित्व को पूरा करने मे असफल रहे तो सरकार स्वयं उस क्षेत्र को अधिग्रहित (Acquire) कर सकती है तथा उसका विकास कर सकती है।

आवास व्यवस्था और उसके उत्तरदायित्व का प्रश्न

यह स्पष्ट है कि आवास की समस्या भी अन्य श्रम समस्याओ की भांति सरकार का ध्यान आकर्षित कर रही है और श्रमिको के आवास की अवस्था मे सुधार लाने के लिये कई योजनाये कार्यान्वित की गई हैं और कई योजनायें बनाई भी जा रही हैं। परन्तु समस्या अत्यन्त विशाल है, और इसके समाधान मे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है जिन्हे दूर करना आवश्यक है। सबसे पहली समस्या तो यही है कि श्रमिको के क्वार्टरो को बनाने का उत्तरदायित्व कौन ले ? श्रम नेता यह सुझाव देते है कि फैक्टरी अधिनियम मे मालिको द्वारा श्रमिको को अनिवार्य रूप से मकान प्रदान करने का उपबन्ध होना चाहिये। वे इस बात पर भी जोर देते है कि यदि मालिको द्वारा मकान प्रदान नही किये जाते तो श्रमिको को पर्याप्त गृह भत्ते के रूप मे कुछ क्षतिपूर्ति मिलनी चाहिए। परन्तु मालिको का यह कहना है कि आवास का उत्तरदायित्व राज्य पर है और मुख्यतः यह सरकार एवं स्थानीय प्राधिकारियो का कार्य है। वह यह तक देते है कि गृह निर्माण की लागत इतनी अधिक है कि उसका भार उद्योग के लिये वहन करना लगभग असम्भव है और राज्य सरकार ही इस समस्या को कुशलतापूर्वक सुलझा सकती है। आवास निर्माण को सार्वजनिक सेवा समझना चाहिये और इसकी ओर सरकार द्वारा उचित ध्यान दिया जाना चाहिये तथा सस्ते व स्वच्छ गृह निर्माण के हेतु सरकार को धन की व्यवस्था जिस प्रकार भी हो सके करनी चाहिये। परन्तु सरकार का दृष्टिकोण यह है कि गृह निर्माण का उत्तरदायित्व मालिको का है क्योंकि श्रमिको को अच्छी और पर्याप्त आवास व्यवस्था देने पर मालिको को ही सबसे अधिक लाभ होगा। अच्छे आवास न केवल अनुपस्थिति की दर व प्रवासिता को कम करेगे वरन् श्रमिको की कार्य-कुशलता को भी बढ़ायेगे क्योंकि मद्यपान, वेश्यावृत्ति आदि फैली हुई सामाजिक बुराइयां कम हो जायेंगी जिनका कारण अधिकतर अच्छे आवासो का अभाव है। अच्छी आवास व्यवस्था से श्रमिको और मालिको के सम्बन्ध मधुर बन जायेंगे, और मालिको का अधिक लाभ होगा। श्रमिको के लिये आवास व्यवस्था करने के उत्तरदायित्व को मालिको को इसीलिए अनुभव करना चाहिये।

इस प्रकार इस प्रश्न पर तीव्र मतभेद है कि औद्योगिक आवास व्यवस्था का उत्तरदायित्व किस पर हो ? रॉयल श्रम आयोग का विचार था कि मुख्यतः ---- सरकार, व स्थानीय संस्थाओ का था। राष्ट्रीय आयोजना हस्तांतरित नही किया

समिति का विचार यह था कि श्रमिकों के लिये आवश्यक आवास व्यवस्था करने का उत्तरदायित्व मालिकों पर सरलता से डाला जा सकता है। १९४६ की स्वास्थ्य सैर्वेक्षण और विकास समिति (भोर समिति) के विचार में आवास व्यवस्था का उत्तरदायित्व मुख्यतः राज्य सरकार का था। श्रम अनुसन्धान समिति का सुझाव था कि इस उद्देश्य के हेतु गृह बोर्डों की स्थापना करनी चाहिये और मकानों के निर्माण में पूँजीगत वित्त की व्यवस्था का उत्तरदायित्व तो सरकार पर होना चाहिये और चालू व्यय का भार मालिकों व श्रमिकों पर होना चाहिये। उत्तर प्रदेश, मद्रास व बम्बई की आवास समितियों ने श्रमिकों के आवास का उत्तरदायित्व मुख्यतः मालिकों पर ही डाला है। फिर भी हम यह कह सकते हैं कि आवास समस्या इतनी विशाल है कि न तो सरकार, न मालिक और न स्थानीय प्राधिकारी ही अलग-अलग रूप से उसे अच्छी प्रकार से सुलझा सकते हैं। समय की माँग यही है कि मकानों की घोर कमी की समस्या को सुलझाने में सरकार व मालिक, दोनों का ही सहयोग होना चाहिये। सरकार, नगरपालिका व मालिक, सभी को मिलकर आवास व्यवस्था में सुधार करने की व्यावहारिक योजनाएं बनानी चाहिए। सरकार सस्ती भूमि प्राप्त करने में भूमि अभिग्रहण अधिनियम के क्षेत्र को बढ़ा कर सहायता कर सकती है, तथा ऋण व अधिक उपदान प्रदान कर सकती है। नगरपालिकाएं स्वास्थ्य अधिकारियों की नियुक्ति कर सकती हैं तथा क्षेत्रों में सफाई व अन्य व्यवस्थाओं की देखभाल कर सकती हैं। वित्त का भार अधिकतर मालिकों पर ही पड़ना चाहिए। सरकार और स्थानीय प्राधिकारियों को इसका केवल एक अंश ही देना चाहिए और श्रमिकों का भाग केवल किराये के रूप में होना चाहिये।

किराये की समस्या

किराये की समस्या का भी सन्तोषजनक समाधान होना चाहिये क्योंकि यह प्रश्न भी श्रमिकों की मजदूरी व उनके रहन-सहन के स्तर से सम्बन्धित है। वर्तमान समय में अनेक औद्योगिक क्षेत्रों में किराया बहुत ऊँचा है और यह श्रमिकों की आय का एक बड़ा प्रतिशत भाग बन जाता है। १९३८ में अहमदाबाद में एक अनुमान के अनुसार किराया आय का, समस्त वर्गों के लिये १४·०६%, तथा ६५ से १०० रु० आय वाले वर्ग के लिये ५·९७% और १० से १५ रु० आय वाले वर्ग के लिये ३६·७% था। बम्बई में यह प्रतिशत किराया क्रमशः ८·९१ तथा ४२·६७ था। इससे यह प्रकट होता है कि किराये अत्यन्त अधिक हैं और सरकार को उन्हें कानून के द्वारा निर्धारित करना चाहिये। सरकार की उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना के अन्तर्गत निर्मित मकानों का किराया, श्रमिक की आय के १५% से अधिक नहीं हो सकता। किराया मकान की लागत के अनुसार निर्धारित किया जाता है, और लागत के अनुसार ही उसमें संशोधन होता रहता है। वर्तमान समय में मासिक किराया इस प्रकार है: एक मंजिला एक कमरा

१२ ५० रु० तथा दो कमरे छोटे १४ रु०, दो कमरे नियमित १६ रु०, दो अथवा कई मंजिल दो कमरे १८ रु०, बम्बई एव कलकत्ता मे ११ रु० से २६ ५० रु० तक प्रति मास ऊँचे किराये निर्धारित किये गय हैं। हमारे विचार मे तो श्रमिको के प्रतिनिधियो ने यह उचित ही माँग की है कि किराया आय का १०% से अधिक नही होना चाहिए। कई राज्यो मे किराया-नियन्त्रण अधिनियम कार्यान्वित किये गए हैं। उनमे एकरूपता लाने की आवश्यकता है।

किराये की समस्या बहुत गम्भीर हो गई है क्योकि कई स्थानो पर श्रमिको ने गन्दी बस्तियाँ छोडकर सरकार द्वारा बनाये हुये मकानो मे जाने से इन्कार कर दिया है। इसका कारण मुख्यत यह है कि श्रमिको की गन्दी बस्तियो मे किराय बहुत थोडे ह। आवास मन्त्रियो के तीसरे सम्मेलन की सिफारिशो के आधार पर केन्द्रीय सरकार ने राज्य सरकारो से यह कहा है कि किरायो को कम कर दिया जाय ताकि जो मकान बनाये गए हैं वह खाली न पडे रह या गैर श्रमिको को किराये पर न उठा दिये जायें। किराया कम करने के लिये नगरपालिकाओ के करो म कमी की जा सकती है या किरायो की पूर्ति के लिये उपदान दिया जा सकता है। जहाँ कही भी श्रमिक पक्के मकानो के किराए नही दे सकते वहाँ इनके लिये कुछ छोट मकान बनाय जा सकते हैं जिनका किराया लगभग ८ रु० प्रति मास हो।

आवास और स्थानीय निकाय (Housing and Local Bodies)

इस बात की ओर भी ध्यान देना चाहिये कि नगरपालिका उपनियमा का कठोरता के साथ पालन किया जाय। आवास और सफाई के सम्बन्ध मे नगर सस्थाओ का कर्त्तव्य है कि वह उपनियम बनाय तथा मालिको को विशेष क्षेत्रो म फैक्टरी गोदाम व श्रमिको के क्वार्टरो को बनाने की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति द। नगरपालिकाओ को न्यूनतम आवास स्तर के आधार पर मकानो की आदर्श योजनाए बनानी चाहिएँ तथा मालिको को इनके अनुसार कार्य करने को बाध्य करना चाहिए। साथ ही साथ एसे मकानो को गिरा देना चाहिए जा मनुष्य के रहने योग्य न रहे हो, चाहे उनके स्वामी कोई भी हो। इसके अतिरिक्त नगर सुधार ट्रस्टो को, जो कि बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, इलाहाबाद लखनऊ, दिल्ली और नागपुर म स्थापित हैं, नगरपालिकाओ के साथ आवास की दशाओ म सुधार और आवास क्षेत्रो का विकास करने मे सक्रिय रूप से सहयोग देना चाहिए। इस सम्बन्ध म यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ट्रस्ट की कार्यवाहियाँ उनके वर्तमान कार्यो के समान केवल नगर मे अच्छे क्वार्टरो की योजना बनाने और सुधार करने तक ही सीमित नही होनी चाहियें, वरन् इनके कार्य गन्दी बस्तियो की सफाई तक बढा देने चाहिए। एक नगर मे नगरपालिका और ट्रस्ट दोनो को ही सरकार द्वारा ऋण के रूप मे वित्तीय सहायता दी जा सकती है। गन्दी बस्तियो की सफाई और नये मकानो का निर्माण भी साथ-साथ करना चाहिए।

आवास और उद्योगों का विकिरण (Dispersal of Industries)

आवास की समस्या पर विचार विनिमय करते समय श्रम अनुसंधान समिति ने अधिक विस्तृत क्षेत्रों में औद्योगिक संस्थाओं के विकिरण का सुझाव दिया था। उसने सर विलियम बैवरिज के शब्दों को उद्धृत किया है जिसमें उन्होंने कहा है "मुझे यह बात बहुत महत्वपूर्ण नहीं लगती कि उद्योग कच्चे माल के पास है या नहीं, क्योंकि कच्चे माल को ले जाया जा सकता है। मैं जिस बात का इस देश में विरोध करता हूँ वह यह है कि सामान की अपेक्षा हम प्रतिदिन उपनगरीय रेलों द्वारा, मीलों मानवीय प्राणियों को गाजर मूली की तरह ले जाते हैं। उद्योग के उचित वितरण से मेरा तात्पर्य उन स्थानों पर वितरण से है जहाँ कि मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक रह सकें। उदाहरण के तौर पर, यदि हम ब्रिटेन को एक नया औद्योगिक देश बना रहे हैं, तो मैं किसी भी फैक्टरी को तब तक स्थापित करने की आज्ञा नहीं दूँगा जब तक यह पहले से योजना न बना ली जाये कि उस कारखाने में काम करने वाले श्रमिक कहाँ रहेंगे। यह एक नया सिद्धान्त है जिसको मैं चाहता हूँ कि अपनाया जाय।" यही बात भारत पर भी लागू होती है और औद्योगिक नगरों में भयानक भीड़-भाड़ और गन्दगी को दूर करने के लिए तथा ग्रामीण और अर्द्धविकसित नगरों में उद्योगों को ले जाने का प्रयत्न करने के लिये आवास बोर्डों को उद्योगों के विकिरण की ओर ध्यान देना चाहिए। विकिरण के प्रश्न का महत्व इसलिए भी बढ़ गया है कि अणु-बम के आ जाने से इस बात की सैनिक आवश्यकता हो गई है कि हम अपने उद्योगों को कम बसे हुए क्षेत्रों में फैला दें। पिछले महायुद्ध में अनेक देशों ने बड़े-बड़े उद्योगों को विनाश से बचाने के लिए मशीनों का दूर-दूर तक स्थान परिवर्तन किया। परन्तु इस प्रकार के विकिरण को कार्यान्वित करने के लिए भूमि अभि-ग्रहण, सस्ते यातायात का प्रबन्ध, सफाई, प्रकाश, सड़कों के निर्माण और अन्य सुविधाओं को प्राप्त करने के लिये राज्य की सक्रिय सहायता की आवश्यकता होगी, तथा रेलवे, नगरपालिकाओं, जिला बोर्ड एवं सम्बन्धित मालिकों के सहयोग के हेतु एक निश्चित नीति निर्धारित करनी पड़ेगी। सरकार को आदेश देना चाहिये कि सभी नये उद्योगों की स्थापना बिखरे हुए क्षेत्रों में हो जहाँ यातायात की सुविधायें उपलब्ध हों। यदि यातायात व अन्य सुविधायें उपलब्ध हों तो सरकार भीड़-भाड़ वाले औद्योगिक क्षेत्रों में से वर्तमान उद्योगों को हटाकर उपनगरों में अथवा ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानांतरित करने के लिये प्रोत्साहित करने की नीति अपना सकती है। पुरानी औद्योगिक इकाइयों के ऐसे स्थानान्तरण में कठिनाइयाँ हो सकती हैं। फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि, श्रम और इमारती सामान की शहर की अपेक्षा कम लागत होने के कारण यह व्यवस्था लाभदायक ही होगी। यदि आरम्भ में कुछ हानि होती भी है तब भी आवास बोर्ड को इसे पूर्णत अथवा आंशिक रूप से वहन कर लेना चाहिए।

में लागू किये जाते हैं। इन नियमों की कठोरता हाल ही में कुछ कम कर दी गई है और अब मालिक कुल मकानों में से १५% अपनी मर्जी से और १०% श्रमिकों से सलाह करके नियतन कर सकते हैं।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि १८९४ के भूमि अभिग्रहण अधिनियम का, जिसका १९३३ में संशोधन हुआ था, पूर्ण लाभ उठाया जाना चाहिये जिससे कि उन तमाम औद्योगिक संस्थानों को, जिनमें १०० अथवा अधिक श्रमिक कार्य करते हों, श्रमिकों के आवास के लिये भूमि प्राप्त हो जाए। अब तक बहुत थोड़े मालिकों ने इससे लाभ उठाया है। केन्द्रीय सरकार ने राज्य सरकारों से अब यह कहा है कि कारखाने के निकट भूमि अभिग्रहण करने में वे मालिकों की सहायता करें तथा स्वयं भूमि अभिग्रहण करके और उनका विकास करके मालिकों को 'बिना लाभ तथा बिना हानि' के आधार पर बेच दें।

विघ्न की समस्या

आवास योजनाओं को लागू करने में मुख्य बाधा धन की है। १९५१ की जनसंख्या के अनुसार देश में ६,४३,६१,६७६ मकान थे जिनमें लोग रह रहे थे। इनमें से ५,४०,५६,३८८ ग्रामीण क्षेत्रों में तथा १,०३,०५,२८८ नगरीय क्षेत्रों में थे। १९५१–६१ के मध्य नगरीय क्षेत्रों में जो मकानों की आवश्यकता होगी उसके अनुमान के अनुसार पिछली कमी को पूरा करने के लिए और नगरीय जनसंख्या में वृद्धि के दृष्टिकोण से लगभग ८९ लाख मकान बनाने का अनुमान था। ग्रामीण क्षेत्रों में भी लगभग पाँच करोड़ मकान ऐसे थे जिनको या तो गिरा कर नए मकान बनाने की आवश्यकता थी या उनमें बहुत अधिक सुधार की आवश्यकता थी। यह अनुमान लगाया गया था कि १९६१ के अन्त में नगरीय क्षेत्रों में पचास लाख मकानों की कमी होगी। तृतीय आयोजना के प्रारम्भ में, मकानों की संख्या शहरी क्षेत्रों में १५६ लाख और ग्रामीण क्षेत्रों में ६८८ लाख थी। शहरी क्षेत्रों में पक्के मकान ९३ लाख और ग्रामीण क्षेत्रों में १२२ लाख थे। इस प्रकार, शहरी क्षेत्रों में ६३ लाख मकानों की और ग्रामीण क्षेत्रों में ५६७ लाख मकानों की कमी थी। इन आंकड़ों में न तो वर्तमान मकानों के ह्रास तथा विनाश को सम्मिलित किया गया है और न १० लाख गन्दे आवास-गृहों की ही गणना की गई है। मकानों की आवश्यक संख्या इस पूर्व अनुमान पर आधारित की गई है कि प्रत्येक घर में पाँच व्यक्ति रह सकेंगे। मकानों को बनाने पर जो व्यय होगा उसका अनुमान भारत सरकार की उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना के आधार पर निर्धारित किया गया है। योजना के अन्तर्गत प्रत्येक मकान का निर्धारित सामान्य मूल्य, जिसमें भूमि का मूल्य भी सम्मिलित है, अब संशोधित रूप में इस प्रकार है—एक मंजिल, एक कमरे वाले मकान २,९०० रुपये तथा दो कमरे वाले मकान छोटे ३,६५० रु० और नियमित–४२५० रुपये। दो या कई मंजिलें—दो कमरे वाले मकान ५,१०० रु०। कलकत्ता तथा बम्बई में लागत अधिक है अर्थात्

४,६०० रु० से ७,२५० रु० तक है। एक कमरे वाला मकान कठिनता से पाँच व्यक्तियों के परिवार के लिये पर्याप्त समझा जा सकता है। परन्तु ऐसी सुविधा को भी प्रदान करने की व्यवस्था मे १,५०० करोड़ रु० खर्च होगा। यदि आवास के स्तर में उन्नति करने की ओर ध्यान दिया जाय तो यह व्यय की राशि और भी अधिक होगी।

आवास की लागत को घटाने के लिए कई अनुसन्धान किये जा रहे हैं। जनवरी, मार्च १९५४ में नई दिल्ली में एक अन्तर्राष्ट्रीय कम लागत की आवास प्रदर्शनी आयोजित की गई थी जिसमें संसार के विभिन्न देशों में कम लागत के मकान बनाने में जो प्रगति हुई थी उनको दिखाया गया था। देश में सस्ते मकानों का लाभपूर्ण ढंग से निर्माण करने के लिये एक प्रयोगात्मक निर्माण प्रभाग स्थापित किया गया है। सस्ते मकानों के निर्माण के अनुसन्धान को प्रोत्साहित करने के लिये १९५४ में राष्ट्रीय निर्माण संगठन की स्थापना की गई। इस समय इमारती सामान और श्रमिकों की लागत इतनी ज्यादा हो गई है कि औद्योगिक श्रमिक और कम आय वर्ग के लोगों को इस बात में भी कठिनाई हो रही है कि वे ऐसी न्यूनतम जगह के लिये भी किराया दे सकें जो जगह उनके स्वास्थ्य और पारिवारिक एकान्तता के लिये आवश्यक हो। इसके अतिरिक्त समस्या इतनी विशाल है कि न केन्द्रीय सरकार और न प्रान्तीय सरकार आवश्यक धन देने का उत्तरदायित्व ले सकती है। भारत सरकार ने समय समय पर अनेक योजनायें बनाईं। परन्तु ये सब योजनायें वित्तीय कठिनाइयों के कारण पूरी न की जा सकीं। अतः सरकार द्वारा ही श्रमिकों के आवास की भारी लागत का वहन करने की आशा करना उचित नहीं होगा। उद्योगों की इस समय की अवस्था भी ऐसी है कि वे अपनी वर्तमान आय में से श्रमिकों के कल्याण पर भारी व्यय नहीं कर सकते। अतः हमारा विचार है कि वर्तमान परिस्थितियों में धन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये सरकार की उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजनायें सर्वोत्तम हैं। इस सम्बन्ध में एक अन्य महत्वपूर्ण पग जो उठाया गया है वह आवास वित्त निगम की स्थापना है। औद्योगिक संस्थानों को यदि वह अपने श्रमिकों के लिये कुछ मकान बनायें तो करों में से भी कुछ छूट दी गई है। तीसरी आयोजना में भी इस बात का सुझाव है।

गन्दी बस्तियों की समस्या (Problem of Slums)

भारत के लगभग तमाम मुख्य औद्योगिक नगरों में गन्दी बस्तियाँ उत्पन्न हो गई हैं जिसका कारण यह है कि मकानों के निर्माण के नियमों को लागू करने में ढील रही है। अभी हाल तक श्रमिकों के आवास की अवस्था की ओर से उदासीनता रही है तथा कई शहरों में भूमि के मूल्य में वृद्धि होने से भूस्वामी और मकान मालिकों ने परिस्थिति से पूरा पूरा लाभ उठाया है। निर्धन वर्ग के पास या तो कोई मकान ही नहीं होते अथवा वह सोचनीय व अस्वच्छ परिस्थितियों

मे गन्दी बस्तियों और झोपड़ियों में रहते हैं। श्रमिकों को विवश होकर इन बस्तियों मे रहना पड़ता है क्योंकि वे इतने निर्धन होते है कि अच्छे मकानों मे रहने की उनमे सामर्थ्य नही होती। शिक्षा की कमी, भीड़-भाड़, दोषपूर्ण आवास आयोजन या किसी आयोजन के अभाव के कारण ही गन्दी बस्तियाँ उत्पन्न होती है। निस्सन्देह हमारे देश में गन्दी बस्तियाँ निर्धनता का परिणाम है। गन्दी बस्ती निवास के उस क्षेत्र को कह सकते है जिसमे अधिकतर निर्धन व्यक्ति रहते हैं और जिसकी दशायें इतनी शोचनीय, गिरी हुई तथा दयनीय होती हैं कि उसमें रहने वालों तथा निकटवर्ती व्यक्तियों के स्वास्थ्य, कल्याण तथा सुरक्षा को खतरा पैदा हो जाता है।

हमारे देश मे गन्दी बस्तियों की दशाओं का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। मद्रास की चेरी, कलकत्ता की बस्तियाँ, कानपुर के अहाते तथा बम्बई के चाल सभी गन्दी बस्तियों के उदाहरण हैं और श्रम अनुसन्धान समिति का कहना है कि "यह गन्दी बस्तियाँ, ससार भर की गन्दी बस्तियों से भी गई गुजरी हैं।"[7] यह गन्दी बस्तियाँ देश का कलक हैं और खेद की बात है कि केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों ने अभी तक इस समस्या की ओर बहुत कम ध्यान दिया है। किसी भी ऐसे शहर को स्वस्थ नही कहा जा सकता जिसके अन्दर ऐसे घने क्षेत्र हों जिनमे जीवन की न्यूनतम सुविधायें भी न हो और जहाँ निर्धन व्यक्ति अत्यन्त अमानवीय स्थिति मे रह रहे हों। गन्दी बस्तियाँ राष्ट्रीय समस्या है। यदि कोई व्यक्ति गन्दी बस्तियों के कारण किशोरावस्था मे अपचारी (Delinquent) हो जाता है अथवा किसी व्यक्ति को क्षय रोग हो जाता है तो वह न केवल स्थानीय वरन् राष्ट्रीय भार बन जाता है। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से गन्दी बस्तियों की सफाई के लिये धन व्यय करना श्रेयस्कर है इसकी अपेक्षा कि इन गन्दी बस्तियों से जो समाज को हानि पहुँचती है उसे सहन करते रहें और उनसे मानव जीवन और सम्पत्ति पर जो विनाशकारी प्रभाव पड़ता है उसे भी निरन्तर सहन किया जाये।

समस्त ससार मे गन्दी बस्तियों की खतरनाक समस्या के समाधान और उनके दूर करने के लिये सैद्धान्तिक रूप से पग उठाने की आवश्यकता है। अमरीका जैसे प्रगतिशील देश मे भी एक पाँचवी स्वतन्त्रता की बात की जाती है अर्थात् गन्दी बस्तियों से छुटकारा पाना। गन्दी बस्तियों को दूर करके उनके स्थान पर उचित मकान बनाये जाने चाहिये चाहे इसकी लागत कुछ भी क्यों न हो, क्योंकि ऐसे प्रयत्न राष्ट्र की नीव को दृढ बनाते हैं। प्रधान मन्त्री स्वर्गीय प० नेहरू ने फरवरी १९८० मे जब कानपुर का निरीक्षण किया तो उन्हें इन गन्दी बस्तियों को देखकर बहुत ही धक्का लगा। उन्होंने कहा कि इन बस्तियों को ढा देना चाहिये और तत्काल आग लगा देनी चाहिये तथा इनके स्थान पर अधिक अच्छी स्वस्थ दशाओं के अस्थायी मकानों को बना देना चाहिये। उन्होंने संसद् में यह भी कहा

7. "They outslum the slumdoms of many parts of the world"

कि यह उस सरकार के लिये अपराध है जोकि ऐसी गन्दी बस्तियों को सहन कर लेती है। संसद सदस्य श्री बी० शिवाराव ने मई सन् १९५२ में लोक सभा में कहा कि अब समस्त देश में गन्दी बस्तियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने का समय आ पहुँचा है। उन्होंने कहा कि नगरपालिकायें या तो कमजोर हैं अथवा उदासीन हैं या गन्दी बस्तियों के स्वामियों के शक्तिशाली प्रभाव के कारण कुछ भी करने में असमर्थ है। उन्होंने यह भी कहा कि यदि समाज में कोई ऐसा वर्ग है जिस पर किसी प्रकार की दया नहीं की जा सकती तो वह गन्दी बस्तियों का स्वामी ही है।

यद्यपि प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में गन्दी बस्तियों की सफाई के लिए पृथक् योजना बनाने की आवश्यकता को स्वीकार कर लिया गया था फिर भी मई १९५६ में ही इस सम्बन्ध में योजना बनाकर लागू की गई। इस योजना के अन्तर्गत गन्दी बस्तियों की सफाई के लिए राज्य सरकारों को तथा राज्य सरकारों द्वारा नगरपालिकाओं तथा अन्य स्थानीय निकायों (Local Bodies) को लागत का २५% उपदान तथा ५०% दीर्घकालिक ऋण देने की व्यवस्था है। ऐसी गन्दी बस्तियों की सफाई पर अधिक जोर दिया गया जिनमें भंगी रहते हैं। इसी प्रकार, गन्दी बस्तियों के ऐसे परिवारों को फिर से बसाने पर अधिक जोर दिया गया जिनकी मासिक आय बम्बई, कलकत्ता व देहली में २५० रुपये से और अन्य नगरों में १७५ रुपये से अधिक नहीं है। यह उपदान बाद में बढ़ाकर ३७½% कर दिया गया। उसके पश्चात् कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, देहली, कानपुर तथा अहमदाबाद के मुख्य नगरों के लिए उपदान की राशि बढ़ाकर लागत का ६२½% कर दी गई। द्वितीय आयोजना में गन्दी बस्तियों की सफाई और भंगियों के आवास के लिए २० करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी। तत्पश्चात् यह राशि घटाकर १३ करोड़ रुपया कर दी गई, परन्तु २० करोड़ रुपये तक की प्रायोजनाओं की स्वीकृति मिल सकती थी। तृतीय आयोजना में, २८.६ करोड़ रुपये की धनराशि गन्दी बस्तियों की सफाई व सुधार के लिए तथा रैन बसेरों (night shelters) के निर्माण के लिए रखी गई थी। चौथी आयोजना की रूपरेखा में, गन्दी बस्तियों की सफाई व सुधार के लिए ६० करोड़ रुपये की व्यवस्था है। इस योजना की एक महत्वपूर्ण बात यह है कि इसका उद्देश्य यह है कि गन्दी बस्ती में रहने वालों को विकसित भूमि तथा कुछ इमारती सामान उपलब्ध कर दिया जाय जो राज्य सरकारों से तकनीकी सहायता लेकर एक निश्चित आकार के कुछ झोंपड़े डाल लें। सितम्बर १९५६ से दिसम्बर १९६१ के अन्त तक ,२९ गन्दी बस्ती सफाई प्रायोजनाओं की स्वीकृति मिल चुकी थी जिनके व्यय का अनुमान ३५.८४ करोड़ रुपया था। इन प्रायोजनाओं के अन्तर्गत ६४,८६८ मकान बनाने की व्यवस्था थी। इनमें से ५२,९८४ मकान बन चुके थे। इन आँकड़ों से पता चलता है कि इस योजना की प्रगति बहुत धीमी है। इसका कारण यह है कि गन्दी बस्तियों के अभिग्रहण की बहुत लागत आती है। गन्दी बस्ती के रहने वाले नये मकानों में

जाना भी नही चाहते क्योंकि वह कारखानो से दूर होते है और उनका किराया भी अधिक है। इसके अतिरिक्त गन्दी बस्ती के रहने वाले रूढिवादी हैं और बस्तियों में व्यभिचार और निम्न श्रेणी के आकर्षण बहुत पाये जाते है। कुछ राजनैतिक दबाव के कारण और कुछ इमारती सामान न मिलने के कारण भी गन्दी बस्तियो के अभिग्रहण मे कठिनाइयाँ आती है।

आयोजना आयोग ने सामाजिक कल्याण के लिये एक कार्य दल (Working Group) की नियुक्ति की थी। इस कार्य दल ने गन्दी बस्तियों की सफाई के लिए डॉ० बुलसरो की अध्यक्षता मे एक उपसमिति बनाई। इसके अनुसार जिस गति से इस समय प्रगति हो रही है उसको देखते हुए देश मे गन्दी बस्तियों की सफाई के लिए २२ आयोजनाये अर्थात् ११० वर्ष चाहियें, और वह भी तब, जब गन्दी बस्तियाँ ऐसी ही बनी रहे जैसी अब है। यह अनुमान लगाया गया था कि नगरों की गन्दी बस्तियो मे ऐसे मकानो की संख्या जो रहने के लिए पूर्णतया अनुपयुक्त हो गये थे ११½ लाख थी। कार्यदल ने यह सुझाव दिया कि गन्दी बस्तियो की समस्या का तीन प्रकार से समाधान किया जाना चाहिए। गन्दी बस्तियों की सफाई, गन्दी बस्तियो में सुधार तथा इस बात की रोकथाम कि गन्दी बस्तियाँ उत्पन्न न हो सके। गन्दी बस्तियो की सफाई में बहुत समय चाहिए और यह समस्या एक पृथक् समस्या बन जाती है। इस समय गन्दी बस्तियों के सुधार पर अधिक ध्यान देना चाहिये। इनमे आधुनिक सुविधाओ की व्यवस्था करनी चाहिए, जैसे—सड़कें, जल-मल निकास की व्यवस्था, चिकित्सा तथा शिक्षा की सुविधाये आदि। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि नई गन्दी बस्तियाँ उत्पन्न न हो सके। तृतीय आयोजना मे कहा गया है कि ऐसे नगरो को जिनकी जनसख्या एक लाख या उससे अधिक है, प्राथमिकता देनी चाहिए और उनके लिए वृहत्तर योजनाऐ (Master Plans) बनानी चाहियें। बाद मे ५०,००० और फिर २५,००० जनसख्या वाले नगरो को योजना के अन्तर्गत ले आना चाहिए। तृतीय आयोजना मे गन्दी बस्तियों की समस्या के बारे में यह कहा गया है कि गन्दी बस्तियो को दो श्रेणियो में बाँटा जा सकता है—एक तो वह जिनकी पूर्णत. सफाई कर देनी चाहिये और नई बस्ती बना देनी चाहिए, तथा दूसरी वे जिनमें वातावरण एव दशाओ मे सुधार किया जा सकता है। इन दूसरी प्रकार की बस्तियों के स्वामी अगर सुधार नही करते है तब बस्तियो में सुधार स्थानीय निकायों द्वारा कर देना चाहिए और उसकी लागत मालिको से वसूल कर लेनी चाहिए। गन्दी बस्तियों की सफाई के सबसे अधिक प्रयत्न छ मुख्य नगरो, अर्थात् कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, देहली, कानपुर और अहमदाबाद मे करने चाहिये। एक लाख अथवा अधिक जनसख्या वाले नगरों को प्रमुखता देनी चाहिए। भंगियों और झाड़ू देने वालो की आवास व्यवस्था को भी प्राथमिकता देनी चाहिए। सडको की पटरियो पर रहने वालों के लिए और ऐसे श्रमिको के लिए जिनके परिवार नही है जब तक कोई और प्रबन्ध न हो रात्रि विश्राम गृह और शयन शालायें बनानी अत्यन्त आवश्यक है।

चौथी आयोजना की रूपरेखा मे कहा गया है कि गन्दी बस्तियो की सफाई की योजनाओ के क्षेत्र को विस्तृत किया जाना चाहिए और गन्दी बस्तियो की सफाई के कार्य मे तीव्रता लाने के लिए यह आवश्यक है कि राज्य सरकारें भी वैसे ही विधान बनायें जैसा कि सन् १९५६ मे सघीय क्षेत्रो के लिये गन्दी बस्ती (सुधार तथा सफाई) अधिनियम बनाया गया था (देखिये इसी अध्याय मे पीछे)। नौ राज्यो ने तो पहले ही ऐसा विधान लागू कर दिया है। जिन क्षेत्रो मे गन्दी बस्तियो का सफाया करने मे समय लगने की सम्भावना हो, वहाँ गन्दी बस्तियो मे सुधार के कार्यक्रम तेजी से लागू किये जाने चाहियें।

गन्दी बस्तियो को समाप्त कर देना वैसे तो एक सरल कार्य है। टूट फूटे जीर्ण-शीर्ण झोपडो को गिरा देना कोई बडा इजीनियरिंग का काम नही है और न ही गन्दगी का दूर करना कठिन है। वास्तव मे ध्येय तो उस मानवता का उद्धार करना है जिसका गन्दी बस्तियाँ ज्वलन्त रूप हैं। बिना मकान वाले सभी व्यक्तियो के लिए उचित आवास की व्यवस्था करने म बहुत अधिक धन की आवश्यकता होगी। इन बस्तियो का निवासी अपनी कम आय के कारण अच्छे मकान का किराया नही दे सकता। अत हम गन्दी बस्तियो की सफाई पर ही पृथक रूप से विचार नही कर सकते। यह समस्या निस्सन्देह आवास नीति का ही भाग है क्योकि जिस आवास व्यवस्था का हम उल्लेख करते है वह उस वर्ग के लिये है जो कि साधारणत गन्दी बस्ती म रहते हैं। अत आवास की प्रत्येक योजना मे, कम से कम बडे बडे औद्योगिक शहरो म गन्दी बस्तियो की सफाई की भी व्यवस्था होनी चाहिये जिससे कि जब भी कोई आवास क्षेत्र तैयार हो, गन्दी बस्तियो मे वास करने वाले व्यक्तियो को इन नये मकानो म ले जाने के लिए पग उठाये जा सकें और सम्बन्धित गन्दी बस्तियो के लिए भी कार्य किया जा सके। इसके साथ-साथ उन मूल कारणो को भी जो गन्दी बस्तियो को जन्म देते हैं दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके कारण अनेक और विभिन्न है। कुछ कारण स्पष्ट हैं जबकि कुछ प्रत्यक्ष नही है। अप्रत्यक्ष कारण गन्दी बस्तियो मे निवास करने वाले निवासियो की आर्थिक, मानसिक और शारीरिक कमियो से सम्बन्धित है। यह विषय समाजशास्त्र का है। परन्तु फिर भी यह बात इस आवश्यकता की ओर ध्यान आकर्षित करती है कि एक मानवीय वातावरण बनाने के लिए कुछ सामाजिक स्तरो की स्थापना करना और उनको लागू करने के लिए पग उठाना आवश्यक है। इसलिए गन्दी बस्तियो की समस्या का समाधान करने के लिए साधारण *उपायो से काम नही चलेगा वरन् कुछ क्रान्तिकारी उपाय अपनाने पड़ेंगे।*[8]

पचवर्षीय आयोजनाओ मे आवास व्यवस्था

प्रथम पचवर्षीय आयोजना म आवास समस्या से सम्बन्धित कुछ विशेष सिफारिशें की गई थी जो निम्नलिखित विषयो पर थी–आवास नीति आवास स्तर

8 S C Agarwal *Industrial Housing in India*

लागत का अनुमान, गन्दी बस्तियों की सफाई, नगर नियोजन, ग्रामीण आवास, आवास अनुसंधान आदि। इन विषयों के सम्बन्ध में आयोग की सिफारिशों को लागू करने के लिए कानून बनाने का भी सुझाव था। आयोग के द्वारा आवास के लिए ४६.६६ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी। इसमें से केन्द्रीय सरकार का व्यय ३८.५ करोड़ रुपए और राज्य सरकारों का व्यय १०.१६ करोड़ रुपए होने को था। औद्योगिक श्रमिकों के मकानों को प्राथमिकता दी गई थी, जिसके लिए केन्द्रीय सरकार को सहायता देनी थी और राज्य सरकारों को इस सम्बन्ध मे ग्रामीण क्षेत्रों की ओर ध्यान देना था। परन्तु औद्योगिक श्रमिकों के आवास के लिए केवल १३.२६ करोड़ रुपये व्यय किये गये और प्रथम आयोजना काल मे केवल ४३,८३१ मकान बनाये जा सके थे।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में, औद्योगिक श्रमिकों के आवास की एक योजना भी थी, जिसके आधार पर उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना बनाई गई जो आज तक चालू है। इस योजना के अन्तर्गत ८५ प्रतिशत मकान बनाने का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों का है (केन्द्रीय सरकार द्वारा ५० प्रतिशत उपदान तथा ५०% ऋण द्वारा) और १.५% मकान मालिकों द्वारा बनाने की व्यवस्था है (२५ प्रतिशत उपदान और ५०% ऋण द्वारा)। शेष १३.५ प्रतिशत मकान सहकारी समितियों द्वारा (२५ प्रतिशत उपदान और ६५ प्रतिशत ऋण द्वारा) बनाये जाने हैं। इस योजना का ऊपर विस्तृत उल्लेख किया जा चुका है। भवन निर्माण के लिए अन्वेषणों तथा सभी आवास एजेन्सियों द्वारा उनके लागू करने के कामों को समायोजित करने के लिए आयोजना मे एक राष्ट्रीय भवन निर्माण संगठन की स्थापना की सिफारिश की गई थी, जिसकी स्थापना की जा चुकी है। आयोजना में एक केन्द्रीय आवास बोर्ड तथा एक क्षेत्रीय आवास बोर्ड की स्थापना करने की तथा नगर नियोजन के लिए अधिनियम बनाने तथा भूमि अभिग्रहण अधिनियम में संशोधन करने की भी सिफारिश की गई थी।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में आवास के हेतु १२० करोड़ रुपयों का आयोजन किया गया था जिसको निम्न प्रकार से विभाजित किया गया था :— उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास-व्यवस्था ४५ करोड़ रुपए, कम आय वाले लोगों के लिये आवास हेतु ४० करोड़ रुपये, ग्रामीण आवास १० करोड़ रुपए, गन्दी बस्तियाँ हटाने और भंगियों के लिए आवास २० करोड़ रुपये, मध्यम वर्ग के आवास के लिए ३ करोड़ रुपये, बागान आवास के लिए २ करोड़ रुपए। आयोजना में गन्दी बस्तियों की सफाई को बहुत अधिक महत्व दिया गया था और इसके लिये यह सुझाव था कि केन्द्रीय सरकार लागत का २५% उपदान के रूप मे तथा ५० प्रतिशत ऋण के रूप में जो कि ३० वर्षों में भुगतान किया जा सकता है, धन दे, तथा लागत का शेष २५% राज्य सरकारों द्वारा उपदान के रूप में दिया जाय। आयोजना में यह भी बताया गया था कि प्रथम आयोजना काल में नगरों में १३ लाख मकान बनाये गये थे जिनमें से ६ लाख निजी क्षेत्र में तथा शेष केन्द्रीय

मंत्रालयों, राज्यों तथा सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा बनाये गये थे। द्वितीय आयोजना के लिए अनुमान था कि १,३२२ करोड रुपए की लागत से १६ लाख मकान बनाये जायेंगे जिनमें से ८०० करोड रुपये की लागत के ८ लाख मकान निजी क्षेत्र में बनाये जायेंगे। आयोजना में औद्योगिक श्रमिकों के आवास के लिए सहकारी आवास समितियों के विकास को अत्यधिक महत्व दिया गया था। १९५८-५९ में योजना की धीमी प्रगति होने के कारण स्वीकृत धन राशि १२० करोड रुपए से घटाकर ८४ करोड रुपए और उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास की २७ करोड रुपए कर दी गई थी।

आवास के सम्बन्ध मे तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में कहा गया है कि जन-संख्या मे वृद्धि के कारण आवास की कठिनाइयों की गम्भीरता कई वर्षों तक चलती रहेगी। १९५१-६१ के मध्य २० हजार से अधिक आबादी वाले नगरों की जन-संख्या में ४० प्रतिशत वृद्धि हुई थी। जनसंख्या में इस प्रकार की वृद्धि का तीसरी और उसके बाद आने वाली पंचवर्षीय आयोजनाओं में आवास कार्य क्रम पर मोटे तौर से तीन प्रकार से प्रभाव हो सकता है। पहला यह है कि आवास नीतियों को आर्थिक विकास और औद्योगीकरण तथा अगली एक या दो दशाब्दी में उत्पन्न होने वाली समस्याओं को ध्यान में रख कर निर्धारित करना होगा। इस कारण उद्योगों के स्थान निर्धारण और विकिरण के प्रस्तावों का आवास की समस्या के समाधान के लिए महत्व बढता जाएगा। दूसरा यह है कि सरकारी सहकारी अथवा गैर-सरकारी सभी एजेन्सियों के प्रयत्नों में समन्वय करना आवश्यक हो जाता है। शहरी क्षेत्रों के लिए वृहत्तर योजनायें बनाने की आवश्यकता और भी बढ गई है। क्योंकि विभिन्न एजेन्सियों को दीर्घकाल के लिए व्यवस्थित रूप से एक सुस्पष्ट लक्ष्य की दिशा में ले जाने और उनके योगदान को बढाने का और कोई तरीका नहीं है। तीसरी बात यह है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी होगी कि समस्त आवास कार्य क्रम चाहे व सरकारी क्षेत्र में हो या गैर सरकारी क्षेत्र में, इस प्रकार ढाले जायें कि उनसे समाज के कम आय वाले वर्गों की आवश्यकता की पूर्ति हो।

पहिली आयोजना में आवास कार्य क्रम का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक श्रमिकों और कम आय वाले वर्गों के लिए मकान बनाना था। दूसरी आयोजना में इस कार्य क्रम में गन्दी बस्तियों की सफाई और सुधार के लिए, बागान श्रमिकों के आवास के लिए, गाँवों में मकान बनाने के लिए और भूमि अभिग्रहण और विकास करने की योजनाएं भी सम्मिलित कर ली गई थीं। इन कार्यक्रमों को तीसरी आयोजना में जारी रखा जाएगा और बढाया जाएगा। भूमि अभिग्रहण और विकास करने के काम पर बहुत अधिक जोर दिया जाएगा। क्योंकि यही सब आवास कार्य क्रमों की सफलता का आधार है। समाज के निर्धन वर्गों, गोदी कर्मचारियों और सड़क की पटरियों पर रहने वालों के लिए मकान बनाने के नए कार्य-क्रम भी आरम्भ किए जायेंगे।

मोटे तौर पर यह अनुमान है कि तीसरी आयोजना काल में मंत्रालयों के आवास कार्यक्रमों के अन्तर्गत ६ लाख मकान बनाए जायेंगे जबकि दूसरी आयोजना काल में कुल ५ लाख बनाने का कार्य-क्रम था। तीसरी आयोजना में आवास और शहरी विकास कार्यक्रमों के लिए १४२ करोड़ रुपए रक्खे गए हैं जबकि दूसरी आयोजना में इन कार्य-क्रमों पर ८४ करोड़ रुपए के व्यय का अनुमान है। इसके अलावा यह आशा है कि जीवन बीमा निगम भी आवास कार्य के लिए लगभग ६० करोड़ रुपया दे सकेगा। विभिन्न आवास योजनाओं में तीसरी आयोजना के अन्तर्गत कुल धन राशि निम्न प्रकार से विभाजित की गई है :—

योजना	व्यय (करोड़ रु० में)
(i) निर्माण, निवास और संभरण मंत्रालय द्वारा :—	
उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास	२६.८
गोदी श्रमिक (Dock Labour) आवास	२.०
गन्दी बस्तियों की सफाई तथा सुधार तथा रात्रि विश्राम-गृह	२८.६
कम आय वाले वर्गों के लिए आवास	३५.२
मध्य आय वाले वर्गों के लिए केन्द्रीय क्षेत्रों में आवास	२.५
ग्रामीण आवास	१२.७
बागान श्रमिक आवास	०.७
भूमि अभिग्रहण तथा विकास	६.५
आवास सम्बन्धित अनुसंधान, प्रयोग तथा आँकड़े	१.०
योग	१२०.०
(ii) अन्य योजनायें :—	
राज्य सरकारों द्वारा आवास योजनायें	२.३
नगर नियोजन तथा नगर विकास योजनायें	५.४
शहरी विकास योजनायें	१२.३
योग	२०.०
(i) तथा (ii) के अन्तर्गत योजनाओं का योग	१४२.०
ऐसी योजनायें जिनके लिए वित्तीय सहायता जीवन बीमा निगम से प्राप्त होने की आशा है।	६०.०
कुल योग	२०२.०

तीसरी आयोजना मे आवास निर्माण के मुख्य लक्ष्य निम्नलिखित हैं :—

	मकानो की संख्या
उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना	७३,०००
कम आय वाले वर्गों के लिये आवास	७५,०००
गन्दी बस्तियो की सफाई	१००,०००
ग्रामीण आवास	१२५,०००

उपरोक्त आवास कार्यक्रमो के अतिरिक्त कुछ अन्य आवास कार्यक्रम भी हैं जिनके लिये वित्त-व्यवस्था भी है। यह अनुमान लगाया गया है कि कोयला और अभ्रक खानो की कल्याण निधियो मे से १४ करोड की लागत से तीसरी आयोजना काल मे ६० हजार मकान बनाये जायेंगे तथा रेलवे और अनेक केन्द्रीय मन्त्रालय भी अपने-अपने आवास कार्यक्रम आरम्भ करेंगे और २,०० करोड रुपये की लागत से अपने कर्मचारियो के लिये ३० हजार मकान बना सकेंगे। अनुसूचित जातियो और पिछडे वर्गों के कल्याण के लिये जो कार्यक्रम है उनमे आवास भी सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त निजी क्षेत्र मे भी अब अधिक से अधिक मकान बनाये जा रहे हैं। इनकी संख्या का सही अनुमान लगाना कठिन है। पहिली आयोजना में निजी आवास और निर्माण कार्यों पर लगभग ६,०० करोड रु० की पूंजी के निवेष का अनुमान है। दूसरी आयोजना मे निजी क्षेत्रो मे आवास कार्यक्रमो पर लगभग १००० करोड रुपये की पूंजी लगाई गई थी और तीसरी आयोजना मे लगभग ११,२५ करोड रुपये की निजी पूंजी लगने का अनुमान है।

विभिन्न राज्यो मे जो आवास बोर्ड बने हैं वह केवल राज्यो के आवास कार्यक्रमो के कार्यान्वित करने के लिये कार्य करते हैं। तीसरी आयोजना मे इस बात का सुझाव है कि एक केन्द्रीय आवास बोर्ड की स्थापना की जाये। इस प्रकार के बोर्ड से आवास के लिये मिलने वाली अतिरिक्त निधि निर्माण कार्य मे लगाई जा सकेगी तथा आसान किश्तो पर ऋण मिलने को प्रोत्साहित किया जा सकेगा। ऋण देने की पद्धति मे भी सुधार होगा और यह केन्द्रीय बोर्ड मकानो को बन्धक रखने की उचित व्यवस्था के लिये प्रबन्ध कर सकता है।

उपदान प्राप्त आवास योजना, गोदी श्रमिको के लिये आवास योजना, बागान श्रमिको के लिये आवास योजना और गन्दी बस्तियो की सफाई और सुधार के लिये जो तीसरी आयोजना मे कार्यक्रम हैं उनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। ग्रामीण आवास योजना के लिये १२.७ करोड रुपये की व्यवस्था है, इसमे से ५ करोड रुपये भूमिहीन कृषि श्रमिको के आवास के लिये निर्धारित किये गये हैं।

चौथी आयोजना की रूपरेखा मे शहरी तथा ग्रामीण, दोनो ही क्षेत्रो मे मकानों की संख्या बढाने पर जोर दिया गया है। आयोजना मे जहाँ आवास वित्त की पर्याप्त व्यवस्था कर सम्बन्धित कार्यक्रमो मे तेजी लाने पर जोर दिया गया है वहाँ निजी निर्माण को भी प्रोत्साहन दिया गया है। आयोजना मे विभिन्न

हस्तांतरित नहा

आवास योजनाओं के लिये २५२ करोड़ रुपये की व्यवस्था है जिसका विवरण इस प्रकार है—

	(करोड रुपये)
अनुदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना	४५·०
कम आय वाले वर्गों की आवास योजना	३०·०
गन्दी बस्तियों की सफाई व सुधार	६०·०
ग्रामीण आवास योजना	२५·०
भूमि अभिग्रहण तथा विकास	२५·०
मध्यम आय वाले वर्गों के लिये केन्द्रीय क्षेत्रों में आवास	५·०
बागान श्रमिक आवास योजना	२·०
गोदी श्रमिक आवास योजना	२·५
छिद्रिल कन्क्रीट फैक्टरियों की स्थापना	३·७
आवास सम्बन्धी प्रयोग तथा आंकड़े आदि	३·८
केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के लिये कार्यालय तथा निवास की व्यवस्था	५०·०
योग	२५२·०

इसके अतिरिक्त, यह भी आशा है कि जीवन बीमा निगम कुछ निधियाँ देगा। औद्योगिक श्रमिकों के आवास के लिये कर्मचारी निर्वाह निधि से भी अतिरिक्त धन लिया जा सकता है। आयोजना मे सिफारिश की गई है कि यदि राज्य आवास बोर्डों के कार्यों में तालमेल रखनी है तो एक केन्द्रीय आवास बोर्ड की स्थापना मे देरी नही करनी चाहिये। भूमि विकास योजनाग्रो के द्वारा केवल आवास के लिये ही नही, अपितु वाणिज्यिक, औद्योगिक तथा अन्य उपयोगो के लिये भी भूमि उपलब्ध करायी जानी चाहिये। गन्दी बस्तियो की सफाई की योजनाओ का क्षेत्र व्यापक किया जाना चाहिये और गन्दी बस्तियों की सफाई के कार्य मे तेजी लाने के लिये राज्यो को कानून बनाने चाहियें। महाराष्ट्र, गुजरात, मैसूर और उडीसा मे शिखर सहकारी आवास वित्त समितियाँ (Apex Cooperative Housing Finance Societies) बनाई गई हैं। आयोजना मे सिफारिश की गई है कि ऐसी ही समितियाँ सभी राज्यों में स्थापित की जानी चाहिये। आयोजना में, शहरी तथा क्षेत्रीय आयोजना के लिये, शहरी विकास कार्यों के लिये तथा म्युनिसिपल कार्यों के लिये २८ करोड रुपये की व्यवस्था की गई है।

उपसंहार

इस प्रकार आवास की समस्या सरल नही है और औद्योगिक श्रमिको की आवास समस्या को सन्तोषजनक ढंग से सुलझाने के लिये अनेक सैद्धान्तिक बातों का ध्यान रखना पड़ेगा। समाजवादी विचारधारा वाले व्यक्ति सम्भवतः आवास के सम्बन्ध मे राज्य द्वारा अधिक हस्तक्षेप एवं नियन्त्रण पर जोर देते हैं और श्रम

अनुसन्धान समिति ने भी आवास के सम्बन्ध में राजकीय नियन्त्रण पर जोर दिया था। प्रत्येक देश में सरकार ने जनता की सामाजिक आवश्यकताओं में अधिक से अधिक हस्तक्षेप करने की नीति को अपनाया है और निर्धनों के आवास का प्रबन्ध करना भी वैसा ही आवश्यक समझा गया है जैसा कि सरकार द्वारा चिकित्सा एवं अन्य सेवाओं की व्यवस्था करना है। फिर भी इस समय सरकार की कठिनाइयाँ बहुत अधिक हैं और इसमें सन्देह है कि सरकारी कर्मचारियों द्वारा आवास व्यवस्था का प्रबन्ध कुशलतापूर्वक किया जा सकेगा। अतः वर्तमान समय में सरकार ही पूर्णतया आवास का उत्तरदायित्व नहीं ले सकती। आवास पर सरकार के नियन्त्रण के प्रश्न को हमें एक अलग समस्या नहीं समझना चाहिये, वरन् राज्य द्वारा उद्योगों के नियन्त्रण की सामान्य समस्या के साथ ही लेना चाहिये। यदि उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया जाता है, तब समस्या पूर्णतः भिन्न होगी। वर्तमान समय में, हमारा विचार है कि अच्छी आवास व्यवस्था का उत्तरदायित्व मालिकों पर होना चाहिये। मालिकों को यह ध्यान में रखना चाहिये कि यदि वह ऐसा नहीं करते और सरकार हस्तक्षेप करती है तो न केवल आवास के नियन्त्रण के लिये वरन् सरकार द्वारा उद्योग के नियन्त्रण के लिये भी मालिक स्वयं उत्तरदायी होंगे। यह कोई गुप्त बात नहीं है कि साम्यवादी, पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध तर्क देते हुये, श्रमिकों की शोचनीय आवास व्यवस्था का उदाहरण देते हैं। मालिकों को इस चेतावनी पर ध्यान देना चाहिये।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि उचित स्थानों की कमी, श्रम और इमारती सामान की लागत में अत्यधिक वृद्धि, दूर बसे हुये उपनगरों से आने-जाने के लिये यातायात के साधनों की कमी और सबसे अधिक धन की कमी ने आवास की समस्या के समाधान को असाधारण रूप से जटिल बना दिया है। इस प्रकार के संकट का सामना केवल सरकार, मालिकों, श्रमिकों तथा सहकारी समितियों के संयुक्त और दृढ़ प्रयत्नों के द्वारा ही हो सकता है। सरकार अपना उत्तरदायित्व सुचारु रूप से निभा रही है, और अब यह अन्य पक्षों का कर्त्तव्य है कि वे पूर्णतया सहयोग दें। हम डा० राधा कमल मुकर्जी के शब्दों में कह सकते हैं कि "भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के रहन सहन के स्तर, व्यवहार और नैतिकता में उन्नति करने के लिये अच्छे आवास की व्यवस्था करना पहला पग है। इसके साथ साथ हम रोकी जा सकने वाली बीमारियों तथा अकाल मृत्यु पर भी विजय पा सकेंगे। फलस्वरूप उत्पादन में वृद्धि तथा स्वास्थ्य में उन्नति होगी। भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि करने और उनके कल्याण के लिये निःसन्देह आवास व्यवस्था ही मुख्य समस्या है। जिन लोगों का यह मत है कि भारतवर्ष औद्योगिक आवास के लिये धन व्यय नहीं कर सकता उनके लिये एक ही उत्तर है कि भारत में ऐसे व्यय को करने के लिये अब विलम्ब नहीं किया जा सकता।"[9]

9 R. Mukerjee *Indian Working Class*, page 321.

१०

ब्रिटेन में आवास समस्या

HOUSING PROBLEM IN GREAT BRITAIN

समस्या की गम्भीरता (Magnitude of the Problem)

ब्रिटेन में १९वी शताब्दी के पूर्वार्ध मे अबन्ध नीति (Non-Intervention) का सबसे अच्छा उदाहरण आवास निर्माण तथा नगर विकास के क्षेत्रो मे मिलता है। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् घरेलू उत्पादन प्रणाली के स्थान पर कारखाना उत्पादन प्रणाली आ गई। इस परिवर्तन के कारण जनसख्या औद्योगिक तथा व्यापारिक केन्द्रो मे तेजी से एकत्रित होने लगी। लाखो की सख्या मे लोग गाँव और जिलो से शहरो की ओर आये और इनके रहने की कुछ न कुछ व्यवस्था शीघ्रता से करनी पडी। इन वर्षो मे जनसख्या मे भी अधिक वृद्धि हुई जिसके कारण आवास की आवश्यकता अधिक तीव्र हो गई। सन् १८०० से १८३१ के मध्य मकानों की सख्या मे १५ लाख से लेकर लगभग २० लाख तक की वृद्धि हुई। परन्तु न तो राज्य ने और न ही स्थानीय प्राधिकारियो ने आवास-निर्माण के नियन्त्रण के लिये कोई प्रभावशाली कदम उठाया। उस समय न तो कोई आवास नियम था और न ही किसी स्तर को निर्धारित किया गया था। स्वास्थ्य तथा सफाई की दृष्टि से भी आवास निर्माण पर कोई रोक नही लगाई गई थी। नागरिक कमिश्नरो को कुछ नाममात्र के अधिकार दिये गये थे परन्तु इस सम्बन्ध मे उनका प्रभाव नगण्य (Negligible) था। स्थानीय प्रशासन (Local Governments) उस समय ऐसे नौकरशाही (Bureaucratic) बोर्डो के हाथों में था जो आवास-निर्माण पर नियन्त्रण लागू करना अपना कार्य नहीं मानते थे।

प्रारम्भ मे आवासों का अनियोजित विकास

परिणामस्वरूप नये नगरो का निर्माण तथा पुराने नगरो का विकास बिना किसी पद्धति के तथा बिना भविष्य की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुए हुआ। जहाँ भी उचित स्थान मिला वही पर सडकें तथा मकान बना लिये गये, स्थान उचित है या नही इसका निर्णय केवल कारखानो की निकटता को ध्यान मे रखकर किया जाता था। यातायात के साधन अपर्याप्त व महँगे थे। इसीलिये लोग अपने काम करने के स्थानो के निकट रहने के लिये बाध्य थे। इसका अवश्यम्भावी (Inevitable) परिणाम यह हुआ कि भीड़-भाड व अस्वास्थ्यकर वातावरण

अधिक बढ गया। दोषपूर्ण सफाई व्यवस्था ने इस वातावरण को और भी अधिक शोचनीय बना दिया।

आवास व्यवस्था मे उन्नति के लिए प्रयत्न

१८३० व १८४० के बीच दो बार भयानक हैजे का प्रकोप हुआ जिनमे मृत्यु दर वाटरलू की लडाई से भी अधिक थी। परिणामस्वरूप लोगो ने बुरे आवास के खतरो को समझा और अच्छी स्वच्छ दशाओ की आवश्यकता अनुभव की। १८४४ म नगरो की आवास दशा के अनुसन्धान हेतु एक आयोग की नियुक्ति हुई। इसकी रिपोर्ट मे कहा गया था कि साधारणत आवास व्यवस्था जनता के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक थी। पीने का जल अनेक क्षेत्रो मे दोषपूर्ण पाया गया। साथ ही जल मल निकास का प्रबन्ध (Sewage) भी बहुत खराब था। आयोग की नियुक्ति के चार वर्ष पश्चात १८४८ म जन स्वास्थ्य अधिनियम (Public Health Act) पारित हुआ। देश मे मोतीझरा महामारी को समाप्त करने का श्रेय इस अधिनियम का था। इसस जल वितरण व्यवस्था म सुधार हुआ और अधिकारियो को बाध्य किया गया कि वे अब तक चले आने वाले जल मल निकास के तरीको को बदल कर उचित नालियो आदि की व्यवस्था कर। परन्तु अब तक आवास निर्माण की व्यवस्था को उन्नत करने तथा गन्दे मकानो को नष्ट करने के लिये कोई पग नही उठाया गया था।

गन्दी बस्तियो की सफाई के लिए अधिनियम

सन् १८५१ म शाफ्टसबरी अधिनियम (Shaftesbury Act) के अन्तगत नगरपालिकाओ को यह अधिकार मिल गया कि वह धन उधार लेकर श्रमिको के लिये मकान बनाय। इसके पश्चात सन् १८६६ के टौरेंस अधिनियम (Torrens Act) के अन्तगत नगरपालिकाओ को निजी गन्दे मकानो का सुधार करने अथवा उन्ह नष्ट करने का भी अधिकार प्राप्त हो गया। सन् १८७५ के क्रास अधिनियम (Cross Act) के अन्तगत भी गन्दी बस्तियो की सफाई की आज्ञा मिल गई। परन्तु वास्तव मे इन अधिनियमो स कुछ अधिक लाभ न हो सका। दशा और भी बुरी होती गई और अधिक भीडभाड वाले मकानो तथा क्षेत्रो की सख्या कई गुनी हो गई। सन् १८७५ के जन स्वास्थ्य अधिनियम स भी कुछ सुधार हुआ। इसके अन्तगत दो वष पश्चात ही स्थानीय प्रशासन बोड द्वारा एक उपनियमो की आदश सहिता (Model Code of bye laws) प्रकाशित की गई जिसमे नय मकानो और गलियो के निर्माण तथा नालियो और अधिक जनसख्या वाले क्षेत्रो की सफाई के लिये व्यवस्था थी। १८७५ से जन स्वास्थ्य अधिकारियो की स्थानीय प्राधिकारियो द्वारा नियुक्ति अनिवाय हो गई। १८८४ मे श्रमिक वग की आवास व्यवस्था की जाच पडताल के लिये एक आयोग की नियुक्ति हुई और छ वर्षो के पश्चात एक व्यापक श्रमिक वग आवास अधिनियम (Housing of the Working Class Act) पारित हुआ।

१८९० के इस अधिनियम ने आवास सम्बन्धी पिछले कानूनों को समायोजित तथा अधिक विस्तृत कर दिया। अब स्थानीय प्राधिकारियों को गन्दी बस्तियों को पूर्णतया हटाने, छोटे-छोटे क्षेत्रों में निजी आवासों को उन्नत करने तथा श्रमिक वर्ग के आवास हेतु जमीन खरीदने और ऋण लेने का अधिकार भी मिल गया। परन्तु १९१४ से पहले मकानों की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिये नये मकानों का निर्माण बहुत कम हुआ। युद्ध पूर्व की सार्वजनिक योजनाओं के अन्तर्गत गन्दी बस्तियों की सफाई के परिणामस्वरूप विस्थापित (Displaced) हुये लोगों को फिर से बसाना एक बड़ी कठिनाई थी। विस्थापितों के लिए जो नये मकान थे उनके किराये बहुत अधिक थे। जिन श्रमिकों को वेतन अच्छा मिलता था वे तो अच्छे मकानों में चले गये परन्तु अन्य श्रमिकों को घटिया मकानों में ही बसना पड़ा। इस प्रकार कितने ही स्थानों पर भीड़-भाड़ और अधिक बढ़ गई। गन्दी बस्तियों को पूर्णत. हटा देना काफी मँहगा पड़ता था और राज्य से इस कार्य के लिये अनुदान भी कम प्राप्त होता था। इसलिये कई नगरपालिकाओं ने गन्दी बस्तियों को पूर्णत नष्ट करने की अपेक्षा छोटे-छोटे क्षेत्रों को उन्नत करने तथा मकानों की मरम्मत करने पर अधिक जोर दिया। सन् १९११ की जनगणना से यह प्रकट हुआ कि जनसंख्या का कम से कम दसवां भाग भीड़-भाड़ वाले वातावरण में रहता था तथा लगभग पाँच लाख लोग केवल एक कमरे के मकानों में रहते थे। परन्तु वास्तव में अवस्था, जैसा कि इन आँकड़ों से स्पष्ट होता है, उससे भी अधिक शोचनीय थी, क्योंकि अति भीड़-भाड़ की परिभाषा, अर्थात् बच्चों को आधा वयस्क मानकर एक कमरे में दो से अधिक वयस्कों का होना, कोई सन्तोषजनक परिभाषा नहीं थी। इस दृष्टि से भीड़-भाड़ की वास्तविक स्थिति अत्यधिक शोचनीय थी।

१९०९ का आवास तथा नगर आयोजन अधिनियम युद्धकालीन अवस्था

सन् १९०९ का आवास तथा नगर आयोजन अधिनियम पिछले कानूनों का पूरक था। स्थानीय प्राधिकारियों को गन्दी बस्तियों की सफाई हेतु तो भूमि लेने का अधिकार था ही, इसके अतिरिक्त उन्हें यह भी अधिकार दे दिये गये कि वे नगर विकास के लिये भूमि ले सकें। परिणामस्वरूप नगर आयोजन महत्वपूर्ण हो गया और लोगों ने इस बात का अनुभव कर लिया कि अनियोजित ढंग से बने हुये मकान ही नहीं अपितु अनियोजित ढंग से निर्मित नगर भी दोषपूर्ण होते हैं। गन्दी बस्तियाँ बन जाती है, बनाई नहीं जाती। इस कारण यह सम्भव है कि नये मकान और बस्तियाँ इस प्रकार से बनाये जायें कि वे अन्ततः गन्दी बस्तियाँ न बन सकें। १९०९ के नगर आयोजन अधिनियम की धाराओं के अनुसार कुछ निजी सस्थानों तथा प्रगतिशील मालिकों द्वारा अनेक प्रयोग किये गये, परन्तु युद्ध के कारण वे अधिकतर लागू न किये जा सके। भीड़-भाड़ कुछ सीमा तक कुछ समय के लिये कम हो गई थी क्योंकि उन मकानों में भी लोग रहने लगे थे जो लड़ाई से

पहले मौजूद थे परन्तु अधिक किराये के कारण खाली पड़े थे। एक यह कारण भी था कि लाखो लोग सैन्य सेवा के लिये अपने घरो को छोड़कर चले गये थे। परन्तु युद्ध समाप्त होने पर सैनिको की वापसी के कारण तथा जनसख्या की स्वाभाविक वृद्धि होने और लोगो का विदेशो को परावास रुक जाने के कारण मकानो का फिर अभाव हो गया। युद्ध के समय निर्माण कार्य का स्थगित होना भी इस अभाव के लिये उत्तरदायी था। सन् १९१८ से १९२४ के बीच अनुमानत तीन लाख मकानो का निर्माण हुआ। परन्तु इसी समय मे कम से कम ५ लाख मकानो की आवश्यकता उत्पन्न हो गई थी।

१९१४–१८ के युद्ध के पश्चात् आवास निर्माण

इस प्रकार इगलैण्ड मे भी कुछ गम्भीर आवास समस्याये रही है, जैसे—आवासो की सख्या मे कमी, गन्दी बस्तियो को नष्ट करना तथा उनके स्थान पर नये मकानो का निर्माण करना, आदि। मकान निर्माण की अधिक लागत, कुशल कारीगरो का अभाव तथा किराया नियन्त्रण अधिनियमो के प्रभाव से भी आवास सम्बन्धी कुछ समस्याय उत्पन्न हो गई थी। सन् १९१४–१८ के युद्ध के पश्चात् इमारती सामान का मूल्य अत्यधिक बढ गया। श्रमिको की मजदूरी भी अधिक हो गई तथा उनके काम करने के घण्ट कम हो गय। इस कारण आवास निर्माण की लागत मे काफी वृद्धि हो गई। एक अन्य बडी समस्या यह थी कि कार्यकुशल मजदूर पर्याप्त मात्रा मे नही मिलते थे क्योकि भवन-निर्माण कार्य के लिये उनकी माँग अधिक हो गई थी। इसके अतिरिक्त अभिभावको (Guardians) को भवन निर्माण का व्यवसाय अपने लडको के लिये विशेष सन्तोषजनक नही लगता था, क्योकि इस व्यवसाय मे मजदूरी अधिक नही मिलती थी तथा काम भी अनियमित था। युद्ध काल तथा उसके पश्चात की व्यवस्था के कारण भी जब मकान मालिको को एक निश्चित राशि से अधिक किराया बढाने पर प्रतिबन्ध था, भवन-निर्माण का कार्य स्थगित हो गया। दिसम्बर १९१५ मे प्रथम किराया नियन्त्रण अधिनियम (Rent Restriction Act) पारित हुआ जोकि युद्ध के पश्चात् भी लागू रहा।

सन् १९१९ तथा १९२३ की योजनाय

सन् १९१९ मे पालियामेंट ने एडीसन योजना के अन्तर्गत स्थानीय प्राधिकारियो को श्रमिक वर्ग के आवास के निर्माण की एक योजना बनाने का कार्य सौपा। यह आवास या तो स्थानीय प्राधिकारियो द्वारा सीधे श्रमिको को लगाकर अथवा निजी निर्माताओ द्वारा या जनोपयोगी समितियो (Public Utility Societies) द्वारा बनाये जाते थे। जनोपयोगी समितियो मे ऐसे लोग थे जो निर्माण कार्य को सहकारी आधार पर करना चाहते थे या ऐसे मालिक थे जो अपने कर्मचारियो को आवास सुविधा प्रदान करना चाहते थे। परन्तु राज्य को ही उपदान के रूप मे लागत का अधिकाश भार वहन करना होता था। राज्य ने

नगर नियोजन तथा मकानो की विशिष्टता या गुण के लिये भी कुछ न्यूनतम शर्तें निर्धारित कर दी थी। यह एडीसन योजना काफी महँगी सिद्ध हुई और १६२२ में इसे स्थगित कर देना पडा, यद्यपि इस योजना के अन्तर्गत काफी मकानो का निर्माण हुआ।

सन् १६२३ में चेम्बरलेन योजना के नाम से एक नई आवास योजना लागू की गई। इसके अन्तर्गत सरकार निजी रूप से मकान बनाने वालो को स्थानीय प्राधिकारियो के द्वारा २० वर्ष के लिये ६ पौण्ड प्रति वर्ष के हिसाब से उपदान देती थी। स्थानीय प्राधिकारी यदि चाहते तो इस सहायता मे वृद्धि भी कर सकते थे। स्थानीय प्राधिकारी उन लोगों को ऋण प्रदान कर सकते थे जो श्रमिक वर्ग के लिये आवासो का निर्माण करना चाहते थे। यह ऋण बाजार मूल्य का ६० प्रतिशत तक हो सकता था।

१६२४ का ह्वीटले अधिनियम (Wheatley Act of 1924)

सन् १६२४ मे आवास नीति मे एक महत्वपूर्ण संशोधन करने का निश्चय किया गया। अब तक की व्यवस्था में निर्माण कार्यक्रम की गति काफी मन्द थी, किराये अत्यधिक थे तथा मकानो का विक्रय-मूल्य श्रमिक वर्ग की सामर्थ्य से कही अधिक था। ग्रामीण क्षेत्रो मे कृषि कार्य करने के लिये बहुत कम मकानो का निर्माण हुआ था। इन दोषो के निवारण के लिये १६२४ का ह्वीटले अधिनियम पारित हुआ। इसके अन्तर्गत निरन्तर १५ वर्ष का कार्यक्रम बनाया गया था। प्रत्येक वर्ष कितने आवासो का निर्माण होना है इसके लिये एक सूची बना ली गई थी और उपदान मे २० वर्ष के लिये ६ पौंड के स्थान पर ४० वर्ष के लिए ६ पौंड के हिसाब से वृद्धि कर दी गई। साथ ही यह शर्त भी थी कि आवास किराये पर ही दिए जा सकते थे परन्तु बिना स्वास्थ्य मंत्री की अनुमति के बेचे नही जा सकते थे, बिना आज्ञा के स्वय किरायेदार उनको किराये पर नही दे सकते थे और स्थानीय प्राधिकारी भी उनको बेच नही सकते थे। किराये पर भी नियंत्रण कर दिया गया था। यदि मकानो का निर्माण ग्रामीण क्षेत्रो मे होता था, तो सहायता बढा दी जाती थी। सरकार ने इमारती सामान के मूल्यो को नियन्त्रित करने के लिये भी विधान पारित करने का प्रयत्न किया परन्तु इसमे उसे सफलता न मिली। १६३० तथा १६३६ मे भी आवास अधिनियम पारित हुये जिनके अनुसार स्थानीय प्राधिकारी उन परिवारो को आवास देने के लिये बाध्य थे जिन्हे गन्दी बस्तियाँ नष्ट करके वहाँ से विस्थापित कर दिया गया था। सन् १६३६ का अधिनियम अन्य अधिनियमो को समायोजित करने वाला था।

इन विभिन्न योजनाओ से काफी आवासों का निर्माण हुआ और युद्ध के प्रारम्भ मे ही आवास दशा काफी अंशो मे सुधर गई थी। सन् १६३६ के युद्ध से पूर्व ब्रिटेन मे लगभग एक करोड तीस लाख मकान थे। परन्तु युद्धकाल तथा उसके पश्चात् फिर मकानो का कुछ अभाव उत्पन्न हुआ, और नई समस्याएं सामने आई, जो कि सफलतापूर्वक सुलझाई जा रही हैं।

इगलैंड मे आवास सम्बन्धी वर्तमान दशा

इगलैंड की औद्योगिक आवास समस्या साधारण जनता की आवास समस्या से ही सम्बन्धित है क्योंकि इगलैंड एक औद्योगिक देश है तथा बडे शहरो की अधिकाश जनता औद्योगिक जनता ही है। औद्योगिक जनता स्थाई भी है, और भारत की तरह प्रवासी नही है। इसलिए इगलैंड की औद्योगिक आवास समस्या पर हम साधारण आवास समस्या के साथ ही विचार कर सकते हैं।

ब्रिटन मे १९३९ के युद्ध के पहले जो एक करोड तीस लाख मकान थे उनमे से लगभग पैंतालीस लाख मकान शत्रुओ द्वारा या तो पूर्णत नष्ट कर दिये गए अथवा उनको इतनी हानि पहुची कि वे निवास के योग्य न रहे। कुछ हानि लगभग चालीस लाख अन्य मकानो को पहुची। इसके अतिरिक्त युद्धकाल मे नए आवासो का निर्माण पूर्णतया रुक गया था तथा श्रमिको व इमारती सामान की भी कमी थी। इन सब बातो ने मिलकर इगलैंड मे आवास का गम्भीर अभाव (Shortage) उत्पन्न कर दिया। युद्ध से पूर्व इगलैड तथा वेल्स मे ३४६,००० मकान प्रति वर्ष बनने लगे थे और स्काटलैंड मे प्रतिवर्ष २६,००० मकान बनते थे। इस हिसाब से यदि देखा जाए तो युद्धकाल मे ब्रिटेन बीस लाख मकानो से वचित रह गया, क्योकि सितम्बर १९३९ तथा मई १९४५ के बीच जितने मकान बने व दो लाख से अधिक न थ, जिनमे से ३६ हजार स्काटलैंड म थ। इस प्रकार युद्ध के पश्चात् एक निश्चित आवास नीति की आवश्यकता अनुभव की गई क्योकि युद्ध के बाद, पुनर्निर्माण योजनाओ की जरूरत देखते हुये, श्रमिको और सामान की कमी थी और इमारती लकडी (शहतीर) भी कम मिलती थी क्योकि इसको डालर देकर खरीदना पडता था।

अगस्त १९४५ मे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण आयोजना मे आवास को प्रथम स्थान दिया गया तथा राष्ट्र के निर्माण साधनो का लगभग ६० प्रतिशत आवास व्यवस्था के लिए लगाया गया। युद्ध के पश्चात् सरकार का यही उद्देश्य रहा कि राष्ट्रीय निर्माण साधनो से जितना भी हो सके उतने आवास बनवाये जायें। सन् १९५१ से सरकार का यह लक्ष्य रहा है कि प्रतिवर्ष कम स कम तीन लाख मकानो का निर्माण हो। सरकार की नीति मरम्मत तथा देखभाल पर कम और नये मकानो के निर्माण पर अधिक जोर देने की है। ऐसे श्रमिको के मकानो की ओर वह विशेष ध्यान देती है जो खानो और कृषि मे कार्य करते है और जिनका राष्ट्र की उत्पत्ति के प्रयत्नो मे बडा हाथ है। सरकार स्थानीय प्राधिकारियो द्वारा भवन निर्माण कार्य को प्राथमिकता देती है। इसका अर्थ यह है कि स्थानीय प्राधिकारियो द्वारा निजी व्यक्तियो के मकान बनाने के लिए ठेका दिए जाने को सरकार प्रोत्साहित करती है। निजी लोगो की अपेक्षा स्थानीय प्राधिकारियो को मकानो का निर्माण करने मे अधिक उपयुक्त माना गया है क्योकि स्थानीय प्राधिकारी किरायेदारो के लिए ऐसे मकान बनवा सकता है जिन्हे ऐसे किरायेदार भी ले सके जो मकान खरीद नही सकते। इसके अतिरिक्त स्थानीय प्राधिकारी आवश्यकतानुसार किरायेदार को छाट

सकता है। युद्ध समाप्त होने के पश्चात् स्थानीय प्राधिकारियों ने मुख्यत इस बात पर ध्यान दिया कि मकानों मे अधिक भीड को कम किया जाए और उन परिवारों को मकान किराये पर दिए जायें जिनके पास अपना मकान नही है। निजी मकानों का निर्माण केवल स्थानीय प्राधिकारियों से लाइसेन्स लेकर ही हो सकता है। निजी मकानों का क्षेत्रफल १,५०० वर्ग फीट से अधिक नही हो सकता। निजी आवास के लाइसेन्स साधारणत. उन्ही को मिलते है जो मकानो मे स्वयं रहना चाहते है, उन्हें नहीं मिलते जो किराये पर देने के लिए मकान बनाते हैं, क्योकि यह बात ध्यान मे रखी जाती है कि मकान उन्ही को मिले जिन्हे वास्तव मे मकान की आवश्यकता है। परन्तु नवम्बर १९५४ मे यह लाइसेन्स देने की प्रणाली समाप्त कर दी गई, ताकि मकान बनाने मे निजी सम्पत्ति लगाने वालो को प्रोत्साहन मिले।

सन् १९५४ से गन्दी बस्तियो की सफाई का आन्दोलन भी प्रारम्भ हो गया है जो कि युद्ध काल मे स्थगित हो गया था, तथा युद्ध के पश्चात् भी नये आवासों पर ध्यान देने के कारण कुछ समय के लिए रुक गया था। स्थानीय प्राधिकारियो को गन्दी बस्तियो की सफाई के कार्यों की रूपरेखा व गति को निर्धारित करने के लिए कहा गया है, तथा इस कार्य को जितना शीघ्र हो सके उतनी शीघ्रता से कार्यरूप मे परिणत करने की भी आज्ञा दे दी गई है। इगलैण्ड व स्काटलैंड मे १९५४ के आवास मरम्मत व किराये के अधिनियम (*Housing Repairs and Rents Acts*) पारित हुए जिनमें स्थानीय प्राधिकारियो को आवश्यकता पडने पर खराब आवासो पर अधिकार करने व उनको बन्द कर देने के अधिकार प्रदान किये गए है। सन् १९५६ से १९५९ तक १,९८,२८७ अयोग्य मकानो को इगलैण्ड तथा वेल्स मे और ३५,६८७ मकानो को स्काटलैंड मे नष्ट कर दिया गया या नष्ट करने के लिए बन्द करवा दिया गया था। इगलैण्ड तथा वेल्स में सन् १९५५ मे निवास के अयोग्य ८,५०,००० तथा स्काटलैंड मे १,५०,००० आवासो का अनुमान लगाया गया था। ऐसे मकानो के लिए जो मनुष्यो के रहने योग्य नही थे, नष्ट करने पर क्षतिपूर्ति भी नही मिलती है, केवल मुसीबत को कम करने के लिए कुछ सहायता मिल जाती है।

सन् १९४५ तथा १९५९ के बीच ब्रिटेन मे बने कुल नये मकानो की संख्या ३५ लाख थी। इसके अतिरिक्त लगभग १,६०,००० अस्थायी मकान भी बनाये गये थे। सब मिलाकर इस काल मे नये मकान बनाकर या अयोग्य मकानो की मरम्मत तथा रूपान्तर करने के पश्चात् ३५ लाख से अधिक परिवारो को फिर से बसाया गया। जो नये मकान बने उनमे से लगभग ७० प्रतिशत मकान स्थानीय प्राधिकारियो द्वारा बनाये गये थे।[1]

इङ्गलैण्ड में आवासों का प्रशासन : नगर तथा ग्राम नियोजन

वेल्स तथा इगलैण्ड मे आवास तथा स्थानीय प्रशासन मन्त्रालय (Ministry

1. *Britain—An Official Hand-book*, 1961.

of Housing and Local Government) ही मुख्यत आवास-नीति व आवास-सिद्धान्त को बनाने के लिए तथा आवास कार्यक्रम के निरीक्षण के लिए उत्तरदायी है। इस मन्त्रालय को इमारती सामान आदि, निर्माण-मन्त्रालय (Ministry of Works) और सम्भरण मन्त्रालय (Ministry of Supply) से मिलता है। निर्माण-मन्त्रालय इमारती सामान का उत्पादन-प्राधिकारी होता है, और इसके कई कार्य होते है। वह निर्माण कार्य मे अनुसन्धान करने आवास निर्माण उद्योग से सम्बन्ध स्थापित करने और स्थानीय प्राधिकारियो द्वारा लाईसेंस देने की पद्धति को चलाने के लिए भी उत्तरदायी होता है। नगर तथा ग्राम नियोजन मन्त्रालय (Ministry of Town and Country Planning) भी अलग से है जो मकानो के नियोजन की स्वीकृति देने के लिए उत्तरदायी है। यह आवासा के स्थानो को चुनने मे, उनकी रूपरेखा निर्धारित करने मे तथा उन सब प्रश्नो का जो भूमि के प्रयोग तथा समुदाय के नियोजित वितरण को प्रभावित करते हैं सहायता करता है। सन् १९४७ का एक नगर तथा ग्राम नियोजन अधिनियम (Town and Country Planning Act) भी है जो १९५३ तथा १९५४ मे संशोधित किया गया। यह सारे देश मे भूमि के उचित उपयोग के हेतु एक ढांचा या नमूना प्रस्तुत करता है। यह एक मौलिक अधिनियम है। १९४६ के नवीन नगर अधिनियम (New Towns Act) के अन्तर्गत जो १९५२, १९५३ तथा १९५५ मे संशोधित हुआ, सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि जब भी जनता के लिए आवश्यक हो नये नगरो का निर्माण व विकास कर सकती है। जून १९५७ तक १५ नये नगरो का विकास किया जा रहा था जिन पर दो करोड़ पन्द्रह लाख पौण्ड व्यय करना स्वीकृत किया गया था। १९४९ के नेशनल पार्क एण्ड एक्सेस टू दि कन्ट्रीसाइड एक्ट (National Park and Access to the Countryside Act of 1949) मे पार्कों को बनाने की व्यवस्था है। जून सन् १९६० तक ११ राष्ट्रीय पार्क स्थापित हो चुके थे। कृषि मन्त्रालय को यह निश्चित करना पड़ता है कि किस भूमि को कृषि के लिए रखना चाहिए और किसे आवास हेतु दे देना चाहिए। व्यापार बोर्ड शहतीर का वितरण-प्राधिकारी है तथा श्रम व राष्ट्रीय सेवा मन्त्रालय भवन निर्माण उद्योग व इसके गौण व्यवसायो के लिए श्रम की व्यवस्था करता है। युद्ध हानिपूरक आयोग (War Damage Commission) मकानो को युद्ध से हुई हानि की मरम्मत के लिए रुपया देने की व्यवस्था की देखभाल करता है। विभिन्न राजकीय विभागो तथा आवास निर्माण से सम्बन्धित स्थानीय प्राधिकारियो मे अत्यन्त निकट का सम्पर्क रहता है। इस उद्देश्य के लिए स्वास्थ्य मन्त्रालय अनेक क्षेत्रीय कार्यालय और प्रधान-आवास अधिकारी रखता है। आवास नीति का नियन्त्रण तो स्वास्थ्य मन्त्रालय करता है परन्तु उनको विभिन्न क्षेत्रो मे कार्यरूप मे परिणत करने का उत्तरदायित्व तथा लाइसेंन्स पद्धति को चलाने का उत्तरदायित्व स्थानीय प्राधिकारियो पर होता है। यह स्थानीय प्राधिकारी निम्नलिखित है—काउन्सिल ऑफ काउन्टीज (Council of Counties), काउन्टी बॉरोज (County

Boroughs), मैट्रोपोलिटन बॉरोज (Metropolitan Boroughs), अरबन डिस्ट्रिक्ट्स (Urban Districts) या रूरल डिस्ट्रिक्ट्स (Rural Districts)। इन स्थानीय प्राधिकारियों के आवास सम्बन्धी कार्य ये है कि वे इस बात का ध्यान रखे कि उनके क्षेत्रों मे मकान के लिये कोई कठिनाई न हो और जो भी रहने के मकान हो वे नक्शे, रचना, ढांचा, आदि की कुछ न्यूनतम शर्तों को पूरा करते हों।

आवासों के स्तर

स्थानीय प्राधिकारी द्वितीय महायुद्ध से पहले के आवासों की अपेक्षा अब बडे और अच्छे आवासों का निर्माण कर रहे हैं। कई केन्द्रीय विभागो ने स्थानीय प्राधिकारियों के मार्ग-दर्शन के लिये अनेक पुस्तके प्रकाशित की है जिनमे विभिन्न प्रकार के आवासो के लिये स्थानों का स्तर, ढाँचा, डिजाइन तथा सामान आदि को निश्चित किया गया है। साथ ही उनमें इस बात का भी विवरण है कि भूमि तथा धन की बचत करते हुये आवासो को नई सशोधित रूपरेखा मे रखकर किस प्रकार आकर्षक रूप दिया जा सकता है। डिजाइन, निर्माण व आवास साधनो और सामानों पर काफी अनुसधान हो चुका है तथा हो रहा है। मकानो के विभिन्न अंगो और भागो मे समानता आ गई है और पुराने सामान की कमी को पूरा करने के लिये तथा कुशल कर्मचारियो के भार को हल्का करने के लिये नये सामान और नई पद्धितियो का निर्माण हुआ है।

इगलैण्ड में आवासों के हेतु वित्त व्यवस्था

जहाँ तक राजकीय सहायता का प्रश्न है सरकार १९४६ के आवास (वित्तीय तथा विविध उपबन्ध) अधिनियम [Housing (Financial and Miscellaneous Provisions) Act] के अन्तर्गत कुछ उपदान देती है। इन उपदानों के परिणाम-स्वरूप, स्थानीय प्राधिकारी, भवन निर्माण की ऊँची लागत होने पर भी उचित किरायो पर आवास प्रदान कर सकने योग्य हो जाते हैं। इस अधिनियम के अन्तर्गत ६० वर्षो के लिये २२ पौंड प्रति मकान प्रति वर्ष के हिसाब से एक प्रामाणिक उपदान प्रदान किया जाता है। सन् १९५६ के आवास उपदान अधिनियम (Housing Subsidies Act) मे इस बात की व्यवस्था है कि अगर अधिक भीड को कम करने के लिये मकान बनाये जायें तो ऐसे मकानों के लिये उपदान की दर अधिक होगी (२४ पौंड प्रति आवास प्रति वर्ष)। विशेष प्रकार के आवासों के लिए विशेष उत्पादनों की व्यवस्था है, उदाहरणत. कृषि जनसख्या के लिये, निर्धन क्षेत्रों के आवासो के लिये तथा तीन मजिलो से अधिक के आवासों के लिये जिनमें लिफ्ट होनी है। इसके अतिरिक्त स्थानीय प्राधिकारियो को ऐसे मकानो के लिए जो कि स्वीकृत नवीन तरीको से बनाये जाये इस हेतु पूंजी अनुदान दी जाती है कि उनमे जो अधिक व्यय हुआ है वह पूरा हो सके। सरकार भवन-निर्माण के साधनो पर भी नियन्त्रण रखती है जिससे उनका समुचित प्रयोग किया जा सके। इस्पात, इमारती लकडी तथा अन्य दुर्लभ सामग्रियों के उपयोग के लिये आज्ञा-पत्र

प्रदान किये जाते है। श्रमिको की आवश्यकता के कारण ऐसे श्रमिको को जो गृह-निर्माण का कार्य करते थे, फौज मे से जल्दी छुट्टी दिला दी गई। भवन निर्माण कार्यों के अनुभवी श्रमिको का एक रजिस्टर तैयार किया गया है तथा उनके लिए एक विशेष प्रशिक्षण योजना की भी व्यवस्था की गई। सन् १९४९ मे एक आवास अधिनियम (Housing Act) और पारित हुआ जिसके अन्तर्गत स्थानीय प्राधिकारियो अथवा निजी मकान मालिको को उनके आवासो को ठीक करने व वर्तमान निवासो के सुधार के लिये सरकार द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। इस अधिनियम मे स्थानीय प्राधिकारियो व अन्य निकायो द्वारा बनाये गये होस्टलो के लिये भी उपदानो की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त स्थानीय प्राधिकारियो, निर्माण समितियो, कुछ विशेष बीमा कम्पनियो व अन्य वित्त-सस्थाओ द्वारा लोगो को इस बात के लिये ऋण दिया जाता है कि वे अपने लिये कई वर्षो की किस्तो मे मकान खरीद सकें। उपदान तथा सुधार के लिये अनुदान सम्बन्धी जो भी कानून है उनको १९५८ के एक अधिनियम द्वारा [Housing (Financial Provisions) Act] जिसका १९५९ मे एक अन्य अधिनियम (House Purchase and Housing Act) द्वारा सशोधन भी हुआ है, समायोजित कर दिया गया है।

सस्ते मकानो के लिए उठाए गए पग

सरकार ने एक मजिले दो शयन-कक्षो वाले मकानो को बनाने का कार्यक्रम भी अपनाया हुआ है। मकानो के हिस्से कारखानो मे बनाये जाते है तथा आवास बनाने के स्थान पर सगठित कर दिय जाते हैं। ऐसे मकान स्थायी आवासो से छोट होते है तथा कवल १० वर्षो के लिये बनाये जाते हैं, परन्तु कुछ आवास लम्बे समय के लिए भी उपयोगी होते हैं। एसे मकानो के किराये न बहुत अधिक है और न काफी कम, तथा उनम आधुनिक सुविधाए भी प्रदान की गई है। इस योजना को मकानो की सहसा उत्पन्न होने वाली आवश्यकता की पूर्ति के लिये अपनाया गया था। कार्य-कुशल मजदूरो तथा पुरातन इमारती सामान के अभाव के कारण नवीन स्थायी मकानो के निर्माण के नये तरीके विकसित किये गये है जिनमे पूँजी तथा श्रम दोनो की बचत होती है। इनम कुछ इस्पात के ढाचे के, कुछ पहले बने हुए 'ककरीट' के तथा कुछ लकडी के ढाँचे के हैं। इसके अतिरिक्त एल्यूमीनियम के बगले भी बनाये गये हैं जो कि पूर्णत पहले से ही बने हुए होते है, तथा आवश्यकता के स्थान पर कुछ ही घण्टो मे जोड जा सकते हैं। एल्यूमीनियम के बगले के बनाने का कार्यक्रम प्रारम्भ म तो केवल अस्थायी मकानो के लिए था परन्तु अब खानो और दूसरे औद्योगिक क्षत्रो मे मकानो की विशेष और अधिक आवश्यकता के कारण इनके निर्माण के कार्यक्रम को स्थायी मकानो के लिये भी लागू कर दिया गया है।

किरायो पर नियन्त्रण

किरायो मे अत्यधिक वृद्धि को रोकने के लिये कानून बनाये गये है। सर्वप्रथम किराया नियन्त्रण अधिनियम (Rent Restriction Act) १९१५ मे

पारित हुआ । इसके पश्चात् १९२० से १९३९ तक अनेक किराया तथा बंधक ब्याज (नियन्त्रण) अधिनियम [Rent and Mortgage Interest (Restrictions) Act] बनाये गये जो सामान रहित (Unfurnished) मकानों में रहने वाले किरायेदारों को सुरक्षा प्रदान करते है । इनके अन्तर्गत किरायों की सीमा निर्धारित कर दी गई है तथा जब तक किराया दिया जायेगा तब तक मकानों से किरायेदारों को निकाला नहीं जा सकता । इसी प्रकार का संरक्षण उन व्यक्तियों को भी दिया जाता है जो बंधक पर मकान खरीदते है । इसके अतिरिक्त इंगलैण्ड तथा वेल्स मे सामान सहित आवासो का किराया सन् १९४६ के सामान सहित आवास (किराया नियन्त्रण) अधिनियम [Furnished Houses (Rent Control) Act) द्वारा नियन्त्रित किया गया है । स्थानीय प्राधिकारियो अथवा किसी पक्ष की मांग पर सामान सहित मकानो के किरायो को निश्चित करने के लिये स्थानीय अधिकरणो (Local Tribunals) की नियुक्ति की गई है । दिसम्बर १९४५ के इमारती सामान तथा आवास अधिनियम ने एक और सुरक्षा भी प्रदान की थी जिसका तात्पर्य यह था कि चार वर्ष तक के लिये ऐसे मकानो का किराया और विक्रय मूल्य निर्धारित कर दिया जाय जो युद्ध काल मे लाइसेन्स पद्धति के अन्तर्गत बने थे। १९४९ का एक और अधिनियम भी है जिसका नाम मालिक मकान व किरायेदार (किराया नियन्त्रण) अधिनियम है । इसके अन्तर्गत किसी भी ऐसे मकान को जिसका किराया निर्धारित है, किराये पर उठाने के लिये पगड़ी लेना गैर-कानूनी है । १९५४ के मकान मरम्मत तथा किराया अधिनियम के अन्तर्गत मालिक-मकान कुछ शर्तों के अनुसार मरम्मत के लिये एक अधिकतम सीमा तक किराया बढा सकते है । किरायों में सन् १९५७ के किराया अधिनियम और १९५८ के मालिक मकान और किरायेदार (अस्थाई व्यवस्था) अधिनियम के अन्तर्गत फिर संशोधन हुआ है । परन्तु अब सरकार ने धीरे-धीरे किराया नियन्त्रण की पद्धति को समाप्त करने की नीति अपनाने की घोषणा की है क्योंकि यह पद्धति मकानों के सर्वश्रेष्ठ उपयोग के लिये सन्तोषजनक सिद्ध नहीं हुई है ।

स्काटलैण्ड तथा आयरलैण्ड मे आवास योजनायें

स्काटलैण्ड मे आवास योजना राज्य-सचिव (Secretary of State) का कार्य है जो आवास, नगर, तथा ग्राम्य नियोजन का अपना उत्तरदायित्व स्काटलैण्ड के स्वास्थ्य विभाग द्वारा निभाता है । "स्काटलैण्ड की विशेष आवास परिषद्" नाम की एक कानूनी संस्था भी स्थापित की गई है जो स्थानीय प्राधिकारियों की सहायता करने के हेतु बनाई गई है, विशेषतः उन क्षेत्रों मे जहाँ साधारण आवासो के निर्माण की सबसे अधिक आवश्यकता है । यह परिषद् एक सीमित देयता वाली कम्पनी है जिसकी कोई शेयर पूँजी नहीं है और इसमे पूर्णतया सरकारी निधि से धन दिया जाता है । यह राज्य सचिव के निर्देशों के अनुसार कार्य करती है । इस परिषद् ने सन् १९४५ से जून १९५५ तक दो लाख बीस हजार मकानो का निर्माण

किया। इगलैण्ड की ही तरह १९४६ से १९५७ के दो अधिनियमो [Housing (Financial Provisions) Act of Scotland of June 1946 and the Housing and Town Development (Scotland) Act of 1957] के अन्तर्गत उपदान भी प्रदान किये जाते हैं। १९४३ व १९५४ के अधिनियमो के अन्तर्गत किरायो पर भी नियन्त्रण है। आवासो के स्तर इगलैण्ड और वेल्स की ही तरह हैं। उत्तरी आयरलैंड मे आवास तथा नियोजन के लिए स्वास्थ्य मन्त्रालय तथा स्थानीय शासन उत्तरदायी हैं। सन् १९४५ के आवास अधिनियम के अन्तर्गत 'उत्तरी आयरलैण्ड आवास ट्रस्ट' श्रमिको के आवास बनाने वाली एक अतिरिक्त एजेन्सी के रूप मे स्थापित हुआ है। यह स्काटलैण्ड की विशेष आवास परिषद् की भाति एक सस्था है जिसको सरकार द्वारा वित्त दिया जाता है। इसको सरकार द्वारा स्वीकृत निर्माण योजनाओ के लिए भूमि लेने व बेचने के अधिकार है और यह सरकार द्वारा स्वीकृत योजनाओ के अन्तर्गत मकान बनाती है। इस ट्रस्ट (न्यास) ने १९४५ से जून १९५५ तक चौदह हजार मकानो का निर्माण किया है। इनके अतिरिक्त इक्कीस हजार स्थायी मकान स्थानीय प्राधिकारियो द्वारा बनाये गये है। आयरलैण्ड मे उपदान भी प्रदान किये जाते हैं जिनको १९५६ के 'आवास उपदान आदेश' (Housing Subsidy Order) के अन्तर्गत सशोधित किया गया है।

उपसहार

इगलैण्ड मे मकानो की उपरोक्त व्याख्या से यह पूर्णत स्पष्ट हो जाता है कि भोजन और वस्त्रो को छोडकर उस देश मे मकानो के निर्माण को जीवन की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता माना जाता है, और इस बात के लिये गम्भीर प्रयत्न हुए हैं तथा हो रहे है कि रहने के लिए अच्छे से अच्छे प्रकार के मकान बनाये जायें और वर्तमान मकानो की स्थिति मे सुधार किया जाय। भारतवासियो को इगलैण्ड से इस सम्बन्ध मे बहुत कुछ सीखना है। जैसा कि उस देश मे पाया जाता है हमे भी इस बात को समझना है कि नगर नियोजन, रहने के स्तरो का निर्धारण, एक स्पष्ट आवास-नीति तथा एक समोजित कुशल आवास प्रबन्ध व्यवस्था का बहुत महत्व है।

आवास व्यवस्था तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने आवासो की कमी, आवास-नीति, आवास स्तर तथा गन्दी बस्तियो की सफाई के प्रश्नो पर काफी महत्वपूर्ण अध्ययन प्रकाशित किये है। सन् १९२१ व १९२४ मे इस सगठन ने श्रमिको की आवास स्थिति को सुधारने के लिये सिफारिशे (Recommendations) की। सन् १९२८ तथा १९३९ मे आवास समस्या पर पुन विचार विमर्श हुआ। आवास प्रश्नो पर जो अध्ययन प्रकाशित हो चुके है वह निम्नलिखित देशो के है —स्वीडन और ब्रिटेन (१९४४), अमरीका (१९४५), फ्रास (१९४७) आदि। सन् १९४५ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने आवास-नीति' के नाम से एक सक्षिप्त अध्ययन पुस्तिका भी प्रकाशित की तथा

१९४८ में इसने एक 'आवास तथा रोजगार' नाम की रिपोर्ट प्रकाशित की। आवासों के विभिन्न पक्षों पर विचार हेतु एक 'अन्तर्राष्ट्रीय निर्माण, सिविल इंजीनियरिंग तथा सार्वजनिक कार्य समिति' की भी स्थापना की गई है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन की कोयला-खानों की समिति ने भी आवास की समस्या पर अपने विचार प्रकट किये हैं। पूर्व प्रबन्धक एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन (जो नवम्बर १९४७ में दिल्ली में हुआ था) तथा तीसरा एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन (जो टोकियो में १९५३ में हुआ) मे भी आवास सम्बन्धी प्रस्ताव पारित किये गये थे।

इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र महासभा और अन्तर्राष्ट्रीय संघ की विशिष्ट एजेन्सियों जैसे यूनेस्को (UNESCO) ने भी आवास समस्याओं तथा नगर नियोजन विषयो मे अपनी रुचि दिखाई है और इसके सम्बन्ध मे प्रस्ताव पारित किये हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आवास समस्याए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी विचारणीय रही है तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाए आवास, नगर तथा ग्राम नियोजन की विषम समस्याओं को सुलझाने के लिये कार्यशील है और रही हैं।

सुविधायें, (ii) आराम एवं मनोरंजन की सुविधायें तथा (iii) कार्य करने के स्थान से आने जाने के लिये यातायात की सुविधायें, जबकि साधारण सार्वजनिक यातायात अपर्याप्त हो या उनके उपलब्ध करने में सुविधा न हो। भारत सरकार की श्रम अनुसंधान समिति ने कल्याण कार्य के क्षेत्र की सबसे उत्तम ढंग से व्याख्या की है। उसके अनुसार, "श्रम कल्याण कार्य के अन्तर्गत मालिकों, सरकार अथवा अन्य संस्थाओं के द्वारा किये गये, श्रमिकों के बौद्धिक, शारीरिक, नैतिक व आर्थिक विकास के कार्यों का समावेश होना चाहिये। यह कार्य ऐसी सुविधाओं के अतिरिक्त होने चाहिये जो श्रमिक सांविदिक (Contractual) रूप से अपने लिये मालिकों से प्राप्त कर लेते हैं या जो विधान के अन्तर्गत उनको मिलती हैं। इस प्रकार इस परिभाषा के अन्तर्गत वे सब कार्य, जैसे—आवास व्यवस्था, चिकित्सा एवं शिक्षा सम्बन्धी सुविधायें, उत्तम भोजन (कैन्टीन की सुविधाओं सहित), विश्राम करने एवं मनोरंजन की सुविधायें, सहकारी समितियाँ, नर्सरी एवं शिशुगृह, स्वास्थ्यप्रद स्थान, सवेतन अवकाश, सामाजिक बीमा, बीमारी एवं मातृत्व-हित-लाभ योजनायें, प्रोवीडेण्ट फंड एवं पेंशन आदि कार्य, चाहे वह मालिकों द्वारा ऐच्छिक रूप से अकेले अथवा श्रमिकों के सहयोग से किये जाते हों, आते हैं।"[4] इस प्रकार से 'कल्याण' शब्द बहुत व्यापक हो जाता है। उपरोक्त अनेक समस्यायें सामाजिक बीमा योजना काम करने व रोजगार की दशाओं के अन्तर्गत आ जाती है, और आवास सम्बन्धी जैसी समस्यायें स्वयं एक अलग समस्या है। इस अध्याय में हम उन कल्याणकारी कार्यों का विस्तार से अध्ययन करेंगे जिनका अन्य कहीं उल्लेख नहीं है।

श्रम कल्याण कार्यों का वर्गीकरण

कल्याण सम्बन्धी कार्यों का क्षेत्र काफी व्यापक है। इन कार्यों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—(१) वैधानिक (Statutory), (२) ऐच्छिक (Voluntary), (३) पारस्परिक (Mutual)। वैधानिक कल्याण कार्यों के अन्तर्गत वे कार्य आते हैं जिनको सरकार के प्रपीडक अधिकारों (Coercive Power) के कारण करना अनिवार्य होता है। श्रमिकों की सुरक्षा एवं उनके स्वास्थ्य का न्यूनतम स्तर स्थिर रखने के लिये सरकार कुछ कानून बनाती है जिनका मालिकों को पालन करना पड़ता है। यह कार्य की दशाओं, कार्य के घण्टे, प्रकाश, स्वास्थ्य एवं सफाई आदि से सम्बन्धित हो सकते हैं। श्रमिकों के कल्याण के लिये इस प्रकार का राज्य द्वारा हस्तक्षेप दिन-प्रतिदिन सब देशों में अधिक होता जा रहा है। ऐच्छिक कल्याण कार्यों के अन्तर्गत वे कार्य आते हैं जो कि मालिक अपने श्रमिकों के लिये सम्पादित करते हैं। प्रत्यक्ष रूप से तो यह कार्य परोपकार के दृष्टिकोण से होते हैं, परन्तु यदि हम इनकी गहराई में जायें तो पता चलेगा कि इस प्रकार के कार्यों पर धन व्यय करना उद्योग में निवेश

4. *Report of the Labour Investigation Committee*, Page 345.

(Investment) माना जाना चाहिये क्योकि कल्याण काय न केवल श्रमिको की कायक्षमता मे वृद्धि करते है अपितु सघष उत्पन्न होने की सम्भावना को भी बहुत कम कर देते हैं। ऐच्छिक कल्याण काय वाई० एम० सी० ए० (Y M C A) जैसी कुछ सामाजिक सस्थाओ द्वारा भी किये जाते हैं। पारस्परिक कल्याण काय श्रमिको द्वारा किये गये वह काय हैं जो कि वह परस्पर सहयोग से अपन कल्याण के लिये करते है। इस उद्देश्य से श्रमिक सघ श्रमिको के कल्याण के लिये अनेक काय करते हैं।

कल्याण कार्यो का एक अन्य ढग से भी दो शीषको म वर्गीकरण किया जा सकता है। पहले को हम अन्तमुखी (Intra mural) कल्याणकारी काय कह सकते हैं। इनके अन्तगत वह सुविधायें व सेवायें सम्मिलित की जा सकती है जो कारखानो के श्रमिको को प्राप्त होती हैं। उदाहरणत औद्योगिक थकावट को दूर करने की व्यवस्था जैसे–अल्प विराम (Rest pause) सगीत आदि सामान्य हित एव स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवस्था जैसे –स्वच्छ दशायें सफाई पीने के पानी की व्यवस्था चिकित्सा की सुविधाय कैन्टीन व विश्राम स्थान आदि श्रमिको की सुरक्षा स सम्बन्धित सुविधाय जैसे—मशीनो स रक्षा करन के लिय उनको पर्याप्त रूप से ढकना तथा उनके चारो ओर रोक लगाना मशीनो को उचित ढग से लगाना पर्याप्त प्रकाश प्राथमिक चिकित्सा सुविधाय आग बुझान के यन्त्र आदि तथा एसे काय जिनसे भर्ती अनुशासन और रोजगार की दशाओ म सुधार हो ताकि श्रमिक उसी काय मे लग सक जिसके लिए वह सबस अधिक उपयुक्त हो। दूसर वर्गीकरण म बहिमुखी (Extra mural) कल्याण काय आत हैं। इनम वे सभी कल्याणकारी काय सम्मिलित किये जा सकते है जोकि श्रमिको को कारखान के बाहर उनके हित के लिय व सामान्य सुविधाय प्रदान करन के लिय किय जात है जसे—अच्छे मकानो की व्यवस्था चिकित्सा की सुविधा मनोरञ्जन व खेल कूद की सुविधाय शिक्षा व्याख्यान वाद विवाद और क्लब का प्रबन्ध आदि। इसके अतिरिक्त–बीमारी बरोजगारी वृद्धावस्था आदि मे वित्तीय लाभ तथा मितव्ययिता की आदत को प्रोत्साहन देने के लिये भी पग उठाये जा सकते हैं।

इस प्रकार श्रम कल्याण के क्षेत्र मे वह सब काय आ जाते है जो कि श्रमिको के स्वास्थ्य सुरक्षा सामान्य भलाई और औद्योगिक क्षमता को बढाने के उद्देश्य से किय जाते हैं। इस प्रकार कल्याणकारी कार्यो की सूची कितनी भी व्यापक क्यो न हो फिर भी यह नही कहा जा सकता कि वह पूण है। परन्तु हम इस अध्याय म श्रम कल्याण का तात्पय उन कार्यो तक सीमित रखग (चाहे वह वैधानिक रुप स किय जायें अथवा ऐच्छिक रूप स चाहे औद्योगिक सस्थाओ के भीतर किये जाय या बाहर चाहे सरकार मालिक अथवा श्रमिक किसी भी एजेन्सी द्वारा किये जाय) जो सामाजिक बीमा योजना के अन्तगत या काय और रोजगार का दशाओ के अन्तगत नही आते और जिनस श्रमिको और उनके परिवारो के स्वास्थ्य काय कुशलता और सुख म वृद्धि और उन्नति होती है। ये

कार्यक्रम निम्नलिखित हो सकते है—मनोरञ्जन, चिकित्सा, शिक्षा, नहाना-धोना अनाज की दुकान, यातायात की सुविधायें, कैन्टीन, शिशु-गृह आदि-आदि ।

कल्याणकारी कार्यों का उद्देश्य

कल्याणकारी कार्यों का उद्देश्य आंशिक रूप से मानवीय, आंशिक रूप से आर्थिक एव आंशिक रूप से नागरिक है । मानवीय इस दृष्टिकोण से है कि यह श्रमिको को उन अनेक सुविधाओ को प्रदान करता है जिनकी वे स्वयं व्यवस्था नहीं कर सकते। आर्थिक इस दृष्टिकोण से है कि यह श्रमिको की कार्य-क्षमता मे वृद्धि करता है और झगड़े की सम्भावनाओ को कम कर देता है और श्रमिकों को सन्तुष्ट रखता है । नागरिक इस दृष्टिकोण से है कि यह श्रमिको मे सम्मान और उत्तरदायित्व की भावना जागृत कर देता है और उनको अच्छे नागरिक बनाने मे सहयोग देता है ।

भारत मे श्रम-कल्याण कार्यों की आवश्यकता

भारत मे कल्याणकारी कार्यों की आवश्यकता का अनुमान श्रमिक वर्ग की दशाओ को देखने से ही लगाया जा सकता है । उनको स्वच्छ वातावरण मे अधिक घण्टो तक काम करना पडता है और फिर थकावट को दूर करने का कोई साधन भी नहीं है। ग्रामीण समाज से दूर उनको नगरो के अपरिचित एव दूषित वातावरण मे पटक दिया जाता है, जहाँ पर वे मद्यपान, जुआ और दूसरी बुराइयो के शिकार हो जाते हैं और इस प्रकार उनका नैतिक पतन हो जाता है । भारतीय श्रमिक औद्योगिक रोजगार को एक आवश्यक बुराई समझता है और उससे जितनी शीघ्र सम्भव हो सके छुटकारा पाने को उत्सुक रहता है । अत देश मे उस समय तक स्थायी, सन्तुष्ट एव कुशल श्रमजीवी वर्ग उत्पन्न नहीं हो सकता जब तक उनके जीवन की दशाओ तथा औद्योगिक केन्द्रो मे कार्य की दशाओ मे सुधार नहीं किया जाता। इस प्रकार **पश्चिमी देशो की अपेक्षा भारत में कल्याणकारी कार्यों की महत्ता** अधिक है । शिक्षा, खेल-कूद, मनोरजन आदि कार्यों का निस्सन्देह श्रमिको की मानसिक स्थिति पर बहुत लाभप्रद प्रभाव पडता है जो कि औद्योगिक शान्ति स्थापित करने मे बहुत सहायक सिद्ध होता है । जब श्रमिक यह अनुभव करता है कि मालिक व सरकार उसके दिन-प्रतिदिन के जीवन को हर प्रकार से सुखी बनाना चाहते है, तो उसकी असतोष और विरोध की प्रवृत्ति धीरे-धीरे लुप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त मिलो में किया जाने वाला कल्याण-कार्य मिल की नौकरी को आकर्षक बना देता है और एक स्थायी श्रमिक वर्ग उत्पन्न हो जाता है। अच्छे मकान, कैन्टीन, बीमारी लाभ और अन्य हितकारी कार्यो से श्रमिको मे निस्सन्देह यह भावना उत्पन्न हो जाती है कि औरो के समान उद्योग में उनका भी हाथ है । और इस प्रकार श्रमिकावर्त्त और अनुपस्थिति काफी कम हो जाती है और श्रमिकों की कार्यकुशलता बढ जाती है । कल्याणकारी कार्यों के सामाजिक लाभ भी अति महत्वपूर्ण हैं । कैन्टीन की व्यवस्था से श्रमिकों को सस्ते दामो पर

स्वच्छ एवं उत्तम भोजनादि की वस्तुए प्राप्त हो सकती है जिससे उनके स्वास्थ्य मे सुधार होता । मनोरंजन के साधन श्रमिको की कुप्रवृत्तियो को रोकते है। चिकित्सा, प्रसूतिका एवं शिशु कल्याण की सुविधायें श्रमिकों एवं उनके परिवारों के स्वास्थ्य मे उन्नति कर, सामान्य, मातृ एवं शिशु मृत्यु दर मे कमी करती हैं। शिक्षा की सुविधायें उनकी मानसिक कुशलता एवं श्रमिक उत्पादन शक्ति में वृद्धि करती हैं।

इस प्रकार कल्याणकारी कार्यों की आवश्यकता के प्रश्न पर अब कोई वाद विवाद नही है और ससार के समस्त देशों में इसको औद्योगिक प्रबन्ध के एक अभिन्न (Integral) भाग के नाते मान्यता प्रदान की जा चुकी है और यह एक औद्योगिक प्रथा बन चुकी है। अब कल्याणकारी कार्य केवल परोपकारी तथा सहृदय मालिकों का एक शौक मात्र नही समझा जाता। समस्त सभ्य संसार मे अब इस बात को अधिकाधिक महत्व प्रदान किया जा रहा है कि सामाजिक दृष्टिकोण से तथा उत्पादन-क्षमता पर पडने वाले प्रभाव के दृष्टिकोण से इस बात की भारी आवश्यकता है कि श्रमिकों की भौतिक दशाओं मे सुधार किया जाए। औद्योगिक अर्थ व्यवस्था म श्रम-कल्याण एक महत्वपूर्ण भाग अदा करता है। यह उस व्यावसायिक सगठन तथा प्रबन्धक का एक अत्यावश्यक अंग है जो कि वर्तमान समय मे मानवीय पहलू को अधिक महत्व प्रदान करता है। यह श्रमिको की उत्पादन शक्तियो मे वृद्धि कर देता है तथा उनमे आत्मविश्वास और चेतना की नई भावना प्रवाहित करता है। श्रम कल्याण कार्य श्रमिक और मालिक दोनों के ही हृदयों मे वास्तविक परिवर्तन ला देता है और उनके दृष्टिकोणो मे भी परिवर्तन आ जाता है और दोनों अपने को एक ही गाडी के दो पहिए समझने लगते हैं। भारत मे, जहाँ कि औद्योगीकरण का व्यापक कार्यक्रम लागू किया जा रहा है, श्रमकल्याण की आवश्यकता निःसन्देह महत्वपूर्ण है। भारतवर्ष मे उत्पादन बढ़ाने और पचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए कल्याणकारी कार्यों की आवश्यकता बहुत अधिक है क्योंकि जब तक श्रमिक सब प्रकार से सन्तुष्ट एवं प्रसन्न न होंगे तब तक उत्पादन नही बढ सकता।

श्रम कल्याण कार्यों मे उद्गम

भारत मे श्रम कल्याण कार्यों का उद्गम (Origin) १९१४-१८ के महायुद्ध के समय से मिलता है। उस समय तक स्वयं श्रमिकों की अज्ञानता एवं निरक्षरता, मालिकों के सकीर्ण दृष्टिकोण सरकार की लापरवाही तथा जनता की उदासीनता के कारण श्रम कल्याण कार्यों की ओर कोई भी ध्यान नही दिया गया था। परन्तु प्रथम महायुद्ध के पश्चात् से यह कार्य धीरे-धीरे और अधिकतर ऐच्छिक आधार पर विकसित हो रहा है। आर्थिक मन्दी के समय म भी इस ओर रुचि अधिक हो गई थी। सरकार और उद्योगपतियों दोनों ने ही सक्रिय रूप से कल्याण कार्यों म इसलिए रुचि ली कि उस समय देश मे औद्योगिक अशान्ति और

श्रमिकों में असन्तुष्टि बहुत फैल गई थी। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के कार्यो से भी श्रम कल्याण व्यवस्था करने की ओर काफी जोर पड़ा। श्रम कल्याण कार्य की महत्ता द्वितीय विश्वयुद्ध में और भी अधिक बढ गई। श्रमिको के स्वास्थ्य और कल्याण के लिये उचित पग उठाने से लाभ होते हैं उनको स्वीकार कर लिया गया। मालिकों ने श्रमिकों के लिए अधिक सुविधायें प्रदान करने के लिये सरकार के साथ सहयोग किया। युद्ध के दिनों मे कल्याण कार्यो मे जो रुचि दिखाई गई थी, वह रुचि लडाई के बाद भी चलती रही। भारत में यद्यपि कल्याण कार्यों का स्तर अन्य देशों की अपेक्षा बहुत नीचा है, फिर भी यह कार्य महत्वपूर्ण हो गये हैं और आगे आने वाले वर्षों मे इनमें उन्नति होना अवश्यम्भावी है, क्योंकि भारत अब एक प्रजातन्त्र राज्य है तथा इसका उद्देश्य देश मे समाजवादी ढाँचे के समाज को तथा कल्याणकारी राज्य को स्थापित करना है।

भारत सरकार द्वारा सम्पादित श्रम कल्याण कार्य

द्वितीय महायुद्ध से पूर्व तक भारत सरकार ने श्रम कल्याण की ओर बहुत ही कम ध्यान दिया था। सन् १९२२ मे बम्बई मे एक अखिल भारतीय श्रम-कल्याण सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमे कुछ महत्वपूर्ण एव रुचिप्रद समस्याओं पर विचार-विनिमय किया गया था तथा समस्त कल्याण कार्यो का समन्वय करने का सुझाव दिया था। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के एक अभिसमय (Convention) के परिणामस्वरूप सन् १९२६ मे कल्याण कार्यों की जाँच की गई तथा राज्य सरकारो को उन कार्यो से सम्बन्धित सूचनाये एकत्रित करने का आदेश दिया गया। इस प्रकार केन्द्रीय सरकार ने बहुत समय तक श्रम कल्याण कार्य के हेतु श्रम-सम्मेलन बुलाने और सुझाव देने के अतिरिक्त और कुछ भी नही किया।

परन्तु द्वितीय महायुद्ध से उत्पन्न परिस्थितियों और आवश्यकताओ के कारण श्रम कल्याण से सम्बन्धित इस रूढिवादी नीति मे परिवर्तन हुआ। युद्ध के समय मे सरकार ने, श्रमिको को उत्साहित करने और उनकी उत्पादन शक्ति मे वृद्धि करने के लिए, युद्ध उत्पादन मे सलग्न उद्योगो तथा अपनी बारूद आदि की फैक्ट्रियो मे श्रम कल्याण योजनायें चालू की। यह गतिविधियाँ न केवल युद्ध के समय तक चालू रही अपितु बाद मे भी उनका और अधिक विस्तार हुआ तथा कुछ निजी व्यवसायों तक मे भी वे विस्तृत हो गईं। सन् १९४२ मे श्री आर. एस. निम्बकर को केन्द्रीय सरकार ने श्रम कल्याण सलाहकार नियुक्त किया तथा उनके आधीन अनेक सहायक श्रम-कल्याण सलाहकार तथा श्रम कल्याण अधिकारी नियुक्त किये। सन् १९४४ मे कोयले की खानो में कार्य करने वाले श्रमिकों की चिकित्सा, मनोरंजन, शिक्षा और आवास व्यवस्था की सुविधा प्रदान करने के लिये कोयला खान श्रम कल्याण निधि का निर्माण किया गया। केन्द्रीय सरकार द्वारा नियन्त्रित सभी व्यवसायो मे कैंटीनें भी खोली गई जिनमे भोजन और चाय दोनो की

व्यवस्था की गई। फैक्टरी अधिनियम में सशोधन करके मालिको के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया कि जहाँ २५० या उससे अधिक श्रमिक काम करते है वहाँ श्रमिको के लिए कैन्टीन की व्यवस्था करनी होगी। सरकार ने कोयला खान कल्याण निधि की भांति अभ्रक खान कल्याण निधि का भी निर्माण किया है। यह कोयला खान और अभ्रक खान कल्याण निधियां सन् १९४७ के कोयला खान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम तथा सन् १९४६ के अभ्रक खान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित की गई है। सन् १९५९ के असम चाय बागान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम के अन्तर्गत असम के चाय बागान के श्रमिको के लिये तथा सन् १९६१ के लोहा खान श्रम कल्याण उपकर अधिनियम के अन्तर्गत लोहा खान उद्योग के श्रमिको के लिए भी ऐसी ही व्यवस्थायें की गई है। मैंगनीज खानो के लिये भी इसी प्रकार का अधिनियम पारित किया जा रहा है। कुछ राज्यो मे जैसे—बम्बई तथा उत्तर-प्रदेश मे तथा चीनी मिलो के मजदूरो के लिए श्रमिको के कल्याण के लिये जो अधिनियम पारित हुये है उनका भी उल्लेख आगामी पृष्ठो म किया जायेगा। प्रथम पचवर्षीय आयोजना म श्रम और श्रम कल्याण सम्बन्धी कार्यों के लिए ६ ७४ करोड रुपयो की व्यवस्था की गई थी। द्वितीय आयोजना म इस व्यवस्था के लिये २९ करोड रुपये निश्चित किये गये थे। तृतीय पचवर्षीय आयोजना म श्रम और श्रम कल्याण कार्यों के लिए ७१ ०८ करोड रुपये की व्यवस्था है। चौथी योजना म श्रमिको के कल्याण, प्रशिक्षण तथा अन्य कार्यक्रमो के लिये १४५ करोड रुपये निश्चित किये गये है।

कारखाना अधिनियमो मे कल्याण सम्बन्धी उपबन्ध

कारखाना अधिनियमो मे जो समय समय पर पारित होते रहे है, प्रकाश, *सवातन मशीनो से बचाव की व्यवस्था तापक्रम पर नियन्त्रण सुरक्षा के साधन* आदि का न्यूनतम स्तर निश्चित कर दिया गया है। सन् १९४८ के कारखाना अधिनियम मे कल्याण कार्यों के लिये एक अलग अध्याय बना दिया गया है जिसके अन्तर्गत मालिको के लिए कुछ कल्याण कार्य करने अनिवार्य कर दिये गये है। उदाहरणस्वरुप कपडे धोने की सुविधा, प्राथमिक चिकित्सा, कैन्टीन विश्राम स्थान शिशु-गृह आदि। इनमें से अधिकतर तो सन् १९३४ के कारखाना अधिनियम मे भी थे परन्तु इस १९४८ के अधिनियम मे कल्याण सम्बन्धी दो नई धाराये जोड दी गई हैं। *यह धारायें श्रमिको के लिए बैठने की व्यवस्था (जिसके सम्बन्ध मे* राज्य सरकारो को नियम बनाने का अधिकार दिया गया है) तथा कारखानो मे श्रमिको को अपने कपडे रखने और गीले कपडे सुखाने के लिये व्यवस्था करने से सम्बन्धित है। अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारो को ऐसे नियम बनाने का अधिकार दिया गया है जिनसे इस बात की व्यवस्था हो सके कि कल्याण कार्यो के प्रबन्ध मे हर कारखाने मे प्रबन्धको के साथ साथ श्रमिको के प्रतिनिधियो का भी सहयोग हो। एक अन्य धारा द्वारा इस बात की व्यवस्था कर दी गई है कि

हर ऐसे कारखाने मे जिसमे ५०० या उससे अधिक श्रमिक काम करते हों एक कल्याण कार्य अधिकारी की नियुक्ति होनी चाहिये। राज्य सरकारों को इन अधिकारियो के कर्त्तव्य, योग्यतायें और नौकरी की शर्तों आदि को निश्चित करने का अधिकार दिया गया है। इसी प्रकार के उपबन्ध सन् १९३४ के भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियम, सन् १९५२ के खान अधिनियम, सन् १९५१ के बागान श्रमिक अधिनियम, १९५८ के व्यापारी जहाज अधिनियम तथा १९६१ के मोटर यातायात श्रमिक अधिनियम मे भी हैं।

श्रम कल्याण निधिया

एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य सरकार ने यह किया है कि राजकीय औद्योगिक सस्थानो में श्रम कल्याण निधियों की स्थापना की है। निजी सस्थानों में भी ऐसी निधियों के बनाने का प्रस्ताव है। केन्द्रीय राज्य सस्थानों मे रेल और बन्दरगाहों को छोडकर श्रम कल्याण निधि की प्रयोगात्मक रूप से स्थापना करने के सम्बन्ध मे सरकार ने १९४६ मे कुछ आदेश दिये। १९४८-४९ मे लगभग ८० केन्द्रीय सरकारी औद्योगिक सस्थानो मे श्रम कल्याण निधियाँ स्थापित हो गई थी जिनकी सख्या १९५०-५१ मे २२१ तक हो गई। श्रमिकों के प्रतिनिधियो को भी इन निधियो के प्रबन्ध मे सम्मिलित कर लिया गया है। इन निधियो मे से श्रमिको के लिये कमरे के भीतर वाले एव मैदान मे खेले जाने वाले खेलों, वाचनालय, पुस्तकालय, मनोरजन, आदि के लिए धन व्यय किया जाता है, अर्थात् ऐसी सुविधाओं पर जो किसी अधिनियम के अन्तर्गत प्रदान नही की जाती। सरकार भी आशिक अनुदान के रूप मे निधि को कुछ सहायता देती है। इसके अतिरिक्त इस निधि मे धन, जुर्माने, साइकिल स्टैण्ड, दुकानो आदि से प्राप्त राशि तथा किन्ही और व्यावसायिक कार्यों से आमदनी (जैसे कैन्टीन, सहकारी स्टोर, ड्रामे आदि) द्वारा सचित होता है। प्रथम वर्ष मे सरकार ने व्यवसाय में लगे हुऐ प्रत्येक श्रमिक के हिसाब से एक रुपया, द्वितीय व तृतीय वर्षो मे आठ आने प्रति श्रमिक, प्रतिवर्ष और साथ मे श्रमिको के चन्दे के बराबर धन (अधिक से अधिक आठ आने प्रति श्रमिक), चतुर्थ वर्ष में श्रमिको के चन्दे के बराबर या प्रति श्रमिक एक रुपया (इनमे जो भी कम हो) देना स्वीकार किया था। परन्तु चार वर्षो के बाद भी यह योजना चालू रखी गई और सरकार इसी प्रकार एक रुपया प्रति श्रमिक तक अनुदान देती रही। १९६०-६१ से सरकार ने प्रति श्रमिक २ रु० या श्रमिकों के अशदान के बराबर राशि (जो भी कम हो) इस कल्याण निधि में देने का निश्चय किया है। अशदान इस शर्त पर दिया जाता है कि एक कल्याण निधि समिति होगी जिसमे निधि के प्रबन्ध व कल्याण कार्यों के करने के लिये श्रमिको और सरकार के प्रतिनिधि होंगे, वार्षिक रूप से लेखा जोखा बनाया जायेगा, उसकी उचित जांच होगी और निधि का धन केवल चालू व्यय पर ही लगाया जायगा, पूँजीगत व्यय पर नही। मार्च १९६४ के अन्त मे १७८ निधिया बनाई जा चुकी थी और १९६३-६४ मे

श्रमिको द्वारा १७७२४० ७६ रु० का अशदान और सरकार द्वारा १५३२८१ ५० रु० का अनुदान दिया जा चुका था।

निजी व्यवसायो मे भी कल्याण निधियो की स्थापना का सुझाव स्थायी श्रम समिति की आठवी बैठक (मार्च १९४६) मे दिया गया था। तत्पश्चात इस सुझाव पर इस समिति की अनेक सभाओ मे विचार किया गया है, इस सुझाव पर श्रम मत्रियो के सम्मेलन मे भी विचार हुआ है। केन्द्रीय सरकार ने निजी व्यवसायो मे कल्याण निधि स्थापित करने के विषय पर राज्य सरकारो को पत्र भी भेजा तथा दो बार पुन १९५२ एव १९५४ मे उनसे इस बात की प्रार्थना की, कि मालिको को निजी व्यवसायो मे कल्याण निधियो की स्थापना करने के लिये प्रेरित करें। परन्तु मालिको ने इस विषय मे अभी तक कोई भी सतोषजनक कदम नही उठाया है। इस कारण इस बात पर भी विचार हुआ है कि मालिको को श्रम-कल्याण निधि की स्थापना के लिये विवश किया जाए। इस बारे मे एक विधयक की रूपरेखा भी बना ली गई थी, परन्तु विवश करने के प्रश्न पर एकमत न होने के कारण कोई कानून बनाना स्थगित कर दिया गया। अक्तूबर १९६१ म श्रम मत्रियो के बगलौर म हुये सम्मेलन ने इस बात का निर्णय किया कि राज्य सरकारो द्वारा निजी क्षेत्र मे कल्याण निधि स्थापित करने के लिये अधिनियम बनाये जाय। परन्तु अभी तक इस ओर कोई पग नही उठाया गया है। हम आशा करते है कि मालिक स्वय अपने हित मे निधि की स्थापना करने की ओर कदम उठायगे और सरकार को उन्हे बाध्य करने के लिय कानून बनाने की आवश्यकता नही पडेगी। उत्तर प्रदेश व बम्बई राज्यो म तथा कोयला खान, अभ्रक खान कच्चा लोहा खान, चाय बागान व उत्तर प्रदेश की चीनी मिलो के श्रमिको के लिये कल्याण निधि की स्थापना के हेतु अधिनियम पारित भी किये जा चुके है।

रेलवे तथा बन्दरगाहो आदि मे श्रम कल्याण कार्य

रेलवे मे कर्मचारियो और उनके परिवारो की चिकित्सा के लिये हस्पतालो की व्यवस्था है। इसके साथ ही उचित सामान सहित कई चिकित्सालयो और कई चिकित्सा अधिकारियो की भी व्यवस्था है। १९६४ मे ८६ हस्पताल तथा ५४४ चिकित्सालय थे। रेलवे कर्मचारियो के लिये मुख्य-मुख्य पहाडी स्थानो पर विश्राम गृह और राची म स्वास्थ्य गृह भी खोले गये है। रेलवे आय म से प्राप्त धन की सहायता से रेलवे लाभ निधि समितियों द्वारा अनेक मातृत्व हित एव शिशु कल्याण केन्द्र चलाय जाते है। रेलवे अपने श्रमिको से लिए स्कूल तथा छात्रवृत्तियो की व्यवस्था कर शिक्षा की सुविधा प्रदान करती है। रेलवे कर्मचारियो के बच्चो की शिक्षा के लिये विशेष सुविधाए प्रदान की जा रही है। १९६४ मे ७३१ स्कूल चालू थे। अधिकाश रेलो मे कमरे के भीतर एव बाहर मनोरजन के हेतु क्लबो और सस्थानो की व्यवस्था है और बच्चो के मनोरजन के लिये कैम्पो को सगठित किया जाता है। आपत्तिकाल मे सहायता देने के हेतु स्टाफ हित निधिया (Staff

Benefit Funds) भी स्थापित की गई। मार्च १९६४ मे रेलो मे २७३ कैन्टीने थी जहाँ कर्मचारियों को सस्ता और पौष्टिक भोजन देने की व्यवस्था थी। २१२ उपभोक्ता सहकारी भण्डार भी थे और २६ सहकारी साख समितियाँ तथा १८ सहकारी आवास समितियाँ भी थी। कुछ वर्ष पूर्व रेलवे श्रमिको के निर्वाह खर्च में वृद्धि को रोकने के लिये १०० अनाज की दुकाने तथा ३५ चलती-फिरती अनाज की दुकाने भी थी और अनेक श्रमिक महगाई भत्ते के स्थान पर रेलो की अनाज की दुकानो से राशन रियायती दर पर लेते थे, परन्तु अब यह व्यवस्था धीरे-धीरे समाप्त कर दी गई है। खेल-कूद की व्यवस्था सभी रेलों मे पाई जाती है और खेलो को प्रोत्साहन दिया जाता है। अखिल भारतीय टूर्नामेन्टों मे रेलो की टीमें भाग लेती है। प्रथम आयोजना मे रेलवे स्टाफ के कल्याण कार्यों एव क्वार्टरो पर चार करोड रुपया प्रतिवर्ष व्यय हुआ। द्वितीय आयोजना मे इस कार्य के लिये १० करोड रुपया अर्थात् १० करोड रुपया प्रतिवर्ष की व्यवस्था थी। तीसरी आयोजना मे भी ५० करोड रु० की व्यवस्था की गई है। इसमें से ३५ करोड रुपये तो कर्मचारियो के लिये ५४,००० क्वार्टर बनाने के लिये हैं, तथा १५ करोड उनकी सुविधाओ के लिये है। सुविधाओ के अन्तर्गत चिकित्सा, क्वार्टरो मे उन्नति, जल-मल निकास, पानी की पूर्ति, बिजली, श्रमिकों के आवास क्षेत्र मे मनोरजन की सुविधाये आदि कार्यक्रम है। स्कूलो और होस्टल स्थापित करने के भी कार्य-क्रम हैं।

सभी प्रमुख बन्दरगाहो पर श्रमिको एव परिवारो के लिये योग्य डाक्टरो की तथा उचित सामान सहित औषधालयो की व्यवस्था है। कोचीन और मद्रास मे हस्पताल भी है, कादला मे दो क्लब भी है। बम्बई, मद्रास, विशाखापतनम और कोचीन मे सहकारी साख समितिया तथा कलकत्ते मे एक ऋण निधि है। अधिकाश बन्दरगाहो पर मनोरजन, वाचनालय एव पुस्तकालय की सुविधाये प्रदान की जाती है तथा कैन्टीनें प्राय: सहकारिता के आधार पर चलायी जाती हैं। श्रमिको के बच्चो के लिये प्राइमरी स्कूल भी है तथा मद्रास में दु ख-ग्रस्त श्रमिकों के लिये कल्याण निधि की व्यवस्था है। सरकार ने बम्बई तथा कलकत्ते में जहाज के कर्मचारियो के लिये भी कल्याण कार्य किये है तथा उनके लिये भी चिकित्सालय, कैन्टीन व होस्टल की व्यवस्था है। उनके लिये एक त्रिदलीय राष्ट्रीय कल्याण बोर्ड की भी स्थापना की गई है। केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग में भी प्रॉविडेण्ट फण्ड, पेंशन तथा चिकित्सा की सुविधायें प्रदान की जाती है। डाक-तार विभाग ने अपने कर्मचारियो के लिये १६१ सहकारी समितियाँ, १४ अनाज की दुकाने, ३२० कैन्टीनें, ५२१ खाने के कमरे, ३४ चाय गृह, २ रात्रि स्कूल, १८० डारमेटरीस, २०७ विश्राम कक्ष, ५ अवकाश गृह, ११ चिकित्सालय तथा लगभग ८३१ मनोरजन क्लबों की व्यवस्था की है। तपेदिक से पीडित कर्मचारियो के लिये विभिन्न सेनीटोरियम मे १८० पलगो की व्यवस्था है। १९६०-६१ से विभाग के कर्मचारियो के लिये एक कल्याण निधि की स्थापना की गई है जिसमे पहले तीन वर्षों मे सरकार द्वारा ७ लाख रुपये प्रति वर्ष का अनुदान दिया

गया। कर्मचारियों के बच्चों की तकनीकी शिक्षा के लिए २०० वजीफे भी प्रदान किये जा रहे हैं। गोदी कर्मचारियों के लिये भी उचित सामान सहित चिकित्सालयों, स्कूलों, सहकारी समितियों, कैन्टीनों तथा खेलों की व्यवस्था है। कलकत्ता में इनके लिये हस्पताल भी है। कल्याण कार्य गोदी श्रमिक बोर्ड द्वारा १९६१ की गोदी श्रमिक (स्वास्थ्य, सुरक्षा तथा कल्याण) योजना के अन्तर्गत किये जाते हैं।

इस प्रकार केन्द्रीय सरकार ने कल्याण कार्यों के लिये सक्रिय पग उठाये हैं। केन्द्रीय संस्थानों में और केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग में श्रम कल्याण अधिकारी भी नियुक्त किये गये हैं। अगस्त १९५८ में 'भूलो' स्थान पर एक प्रशिक्षण केन्द्र (Training Centre) खोला गया है। इस केन्द्र में कल्याण कार्यों के संगठन और चलाने के लिये प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रतिवर्ष १०० व्यक्तियों को प्रशिक्षण देने की योजना है। १९३७–३९ में जब प्रान्तों में लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल बने थे तब से, विशेषतया युद्ध के पश्चात् से, राज्य सरकारों ने भी औद्योगिक श्रमिकों के लिये कल्याणकारी कार्य करने की नीति का अनुसरण किया है।[5]

बम्बई सरकार के कल्याण कार्य

बम्बई राज्य में सर्वप्रथम सन् १९३९ में कुछ आदर्श (Model) श्रम कल्याण केन्द्रों का आयोजन किया गया था और उनके लिये १,२०,००० रुपयों की धनराशि स्वीकृत की गई थी। सन् १९४४-४५ के लिये यह राशि २,५०,००० रुपये थी। युद्धोत्तर पुनर्निर्माण कार्य हेतु प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में 'श्रम कल्याण' के अन्तर्गत ३ करोड़ रुपया निर्धारित किया गया था जो पाँच वर्षों के लिये था। सन् १९५३ में बम्बई सरकार ने 'श्रम कल्याण निधि अधिनियम' पारित किया और इसके अन्तर्गत स्थापित किये गये बम्बई श्रम कल्याण बोर्ड को कल्याण सम्बन्धी सभी कार्य हस्तान्तरित कर दिये गये। इस बोर्ड में १४ सदस्य होते हैं जिनमें मालिकों, श्रमिकों, स्वतन्त्र व्यक्तियों एवं महिलाओं का प्रतिनिधित्व होता है। इस कल्याण निधि में धन का संचय प्रयोग में न आये हुये जुर्माने, ऐसी धनराशि जिसके लिये कोई दावेदार न हो, दान तथा उधार ली हुई राशि, आदि द्वारा होता है। कल्याण निधि में एकत्रित की गई धनराशि का प्रयोग सामुदायिक और सामाजिक शिक्षा केन्द्रों, सामुदायिक आवश्यकताओं, खेल-कूद की सुविधाओं, मनोरंजन, अवकाश गृहों, महिलाओं व बेरोजगार व्यक्तियों, कुटीर व सहायक उद्योगों तथा ऐसे कार्यों के लिये जोकि राज्य सरकार श्रमिकों के जीवन-स्तर को बढ़ाने और उनकी अवस्था को सुधारने के लिये उचित समझती है, किया जाता है। अप्रैल सन् १९५९ में अधिनियम में एक संशोधन द्वारा कल्याण बोर्ड के कुछ अधिकार कल्याण-कमिश्नरों को प्रदान कर दिये गये हैं ताकि दिन प्रतिदिन के प्रशासन में कठिनाई न हो। सितम्बर १९६१ में इस अधिनियम में एक बार फिर संशोधन हुआ जिसमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बताई गई कुछ वैधानिक त्रुटियों को

5. For details refer to the Indian Labour Year Books

दूर किया गया तथा अधिनियम को पुनर्गठित राज्य के नये क्षेत्र पर लागू किया गया।

महाराष्ट्र तथा गुजरात राज्य बनने के पश्चात्, दोनों राज्यों मे अब अलग-अलग श्रम कल्याण बोर्ड स्थापित कर दिये गये है। बम्बई राज्य मे ५१ श्रम कल्याण केन्द्र थे। राज्यों के पुनर्संगठन के पश्चात् ३८ कल्याण केन्द्र महाराष्ट्र मे तथा १३ गुजरात मे चले गये। इन केन्द्रों पर उपलब्ध सुविधाओं के अनुसार इनको 'ए', 'बी', 'सी' और 'डी' चार श्रेणियों मे बाँटा गया है। 'ए' श्रेणी के केन्द्र ऐसे बडे तथा सुनियोजित भवनो मे स्थित होते हैं जिनमे व्यायामशालायें, अखाडे, फुहारो वाले स्नानागृह, खेल-कूद के खुले स्थान तथा बच्चों के लिये खेल के मैदान होते है। 'बी' श्रेणी के केन्द्र भी इसी प्रकार के होते है परन्तु उनका आकार छोटा होता है। 'सी' श्रेणी के केन्द्र किराये के मकानो मे स्थित होते है जिनमे भीतरी खेलो की व्यवस्था होती है तथा कुछ सीमित मात्रा मे बाहरी मनोरंजन सुविधाओं की भी व्यवस्था होती है। 'डी' किस्म के केन्द्रों में केवल बाहरी खेलो की ही व्यवस्था होती है। कल्याण केन्द्र के कार्य इस प्रकार है दृश्य की सहायता से मनोरजन, जैसे—सिनेमा, मैजिक लैन्टर्न आदि, शारीरिक शिक्षा की सुविधायें, शिक्षा सम्बन्धी क्रियाये, वयस्क शिक्षा, सुविधानुसार दूसरे व्यवसायो मे प्रशिक्षण देकर रोजगार पाने मे सहायता करना, कल्याण एव मद्य-विरोधी प्रचार, शिशु-गृह एव नर्सरी स्कूल महिलाओं के लिये सिलाई-कटाई की कक्षायें तथा क्लब, प्राथमिक चिकित्सा और स्वास्थ्य विज्ञान द्वारा शिक्षा आदि। श्रमिको को चिकित्सा की सुविधा प्रदान करने के लिये भी कई केन्द्रो मे चिकित्सा सहायता विभाग है। प्रत्येक केन्द्र मे एक रेडियो सेट की भी व्यवस्था है। अहमदाबाद मे तकनीकी व्यवसायो मे प्रशिक्षण प्रदान करने के हेतु उचित साज-सज्जा सहित एक इजिनियरिंग कारखाने की भी स्थापना की गई है। बम्बई मे श्रम कल्याण कर्मचारियों के प्रशिक्षण हेतु एक स्कूल की स्थापना भी की गई है। स्कूल मे ६ महीने का दीर्घकालीन पाठ्यक्रम और ३ मास के अल्पकालीन पाठ्यक्रम की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त २५ कल्याण केन्द्र सौराष्ट्र क्षेत्र मे, ५ विदर्भ क्षेत्र मे और ८ महाराष्ट्र क्षेत्र मे है। १७ बहुउद्देशीय केन्द्र भी है।

बम्बई राज्य ने एक और सराहनीय कार्य यह किया है कि उसने एक श्रम-कल्याण सस्था के अन्तर्गत कुछ चुने हुये श्रमिको को श्रमिक सघवाद एव नागरिकता मे प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की है। बम्बई, अहमदाबाद और शोलापुर मे ३ स्कूल प्रारम्भ हो चुके है। श्रमिको की शिक्षा के लिये एक प्रारम्भिक योजना भी शुरू कर दी गई है। विभिन्न स्थानो पर गतिमान पुस्तकालयो, वाचनालयो एव सामाजिक शिक्षा केन्द्रो की भी व्यवस्था है। सरकार द्वारा बम्बई शहर मे २ तथा अहमदाबाद, शोलापुर और हुगली मे एक-एक अवकाश गृह स्थापित करने का विचार किया जा रहा है जिससे कि श्रमिक अपनी छुट्टियाँ उचित वातावरण मे व्यतीत कर सके। जो मनोरजन कार्य अब तक बम्बई राज्य मद्य निषेध बोर्ड तथा

सरकार के श्रम एवं शिक्षा विभागों द्वारा सम्पादित होते थे, उनका श्रम-कल्याण कार्यों के साथ समन्वय कर दिया गया है। सन् १९६६ में, गुजरात में कल्याण केन्द्रों की संख्या ३६ थी जिनमें १ महाकेन्द्र अहमदाबाद में, ३२ केन्द्र तथा ३ 'डी' श्रेणी के केन्द्र थे। गुजरात श्रम कल्याण बोर्ड ऐसे केन्द्रों को सहायक अनुदान भी देता है जिनका संगठन एवं संचालन श्रमिकों की एक समिति द्वारा किया जाता है। ऐसे केन्द्र दो हैं—एक अहमदाबाद में और दूसरा नादियाद में।

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा श्रम कल्याण के कार्य

सन् १९३७ में उत्तर प्रदेश सरकार ने श्रम कमिश्नर के निरीक्षण में एक नवीन श्रम विभाग की स्थापना की और कानपुर में चार श्रम कल्याण केन्द्र खोले। उसके पश्चात् केन्द्रों की संख्या में वृद्धि हुई तथा अब एक अनुभवी अधीक्षक (Superintendent) के निरीक्षण में एक पृथक् कल्याण-विभाग स्थापित कर दिया गया है। महिलाओं व बालकों के हेतु कल्याण-कार्य करने के लिये महिला अधीक्षक की भी व्यवस्था है। १९६५ में कुल ७१ श्रम कल्याण केन्द्र थे जिनमें ७० तो स्थायी केन्द्र हैं और एक मौसमी केन्द्र है जो मुरादाबाद जिले की राजा का सहसपुर तहसील में चीनी मिल के श्रमिकों के लिये है। स्थायी केन्द्र राज्य के प्रत्येक मुख्य औद्योगिक नगरों में इस प्रकार स्थापित है —**कानपुर क्षेत्र**—कानपुर (२०), फर्रुखाबाद (१), **मेरठ क्षेत्र**—मेरठ (१), गोविन्दपुरी (१), गाजियाबाद (१), सहारनपुर (२, रुड़की (१), खतौली (मुजफ्फरनगर) (१), शामली (मुजफ्फरनगर) (१), हरबंशवाला (देहरादून) (१), चोहरपुर (देहरादून) (१), मवाना (१), **बरेली क्षेत्र**—बरेली (२), मुरादाबाद (१), राजा का सहसपुर (मौसमी) (१), रामपुर (१), काशीपुर (१), पीलीभीत (१), **इलाहाबाद क्षेत्र**—इलाहाबाद (३), वाराणसी (३), भदौनी (वाराणसी) (१), मिर्जापुर (१), चुर्क (१), रेनूकूट (१), **गोरखपुर क्षेत्र**—गोरखपुर (२), पडरौना (१), रामकोला (देवरिया) (१), बलरामपुर (गोंडा) (१), खलीलाबाद (बस्ती) (१), **आगरा क्षेत्र**—आगरा (३), फिरोजाबाद (२), अलीगढ़ (२), हाथरस (२), झाँसी (१), शिकोहाबाद (१), मथुरा (१), **लखनऊ क्षेत्र**—लखनऊ (४), योग ७१।

स्थायी केन्द्रों को उनके कार्यों के अनुसार ३ श्रेणियों में विभाजित किया गया है। २९ केन्द्र "क" श्रेणी के, ३७ "ख" श्रेणी के तथा ५ "ग" श्रेणी के है। २० केन्द्र तो कानपुर में ही है जिनमें ९ "क" श्रेणी के, १० "ख" श्रेणी के तथा १ "ग" श्रेणी का है। "क" श्रेणी के केन्द्रों में निम्न सुविधायें प्रदान की जाती हैं—एक एलोपैथिक चिकित्सालय, एक वाचनालय एवं पुस्तकालय, सिलाई की कक्षायें, कमरे के भीतर वाले एवं मैदान के खेल, व्यायामशाला, अखाड़े, संगीत व रेडियो, रंगारंग कार्यक्रम, नाटक, महिला व शिशु विभाग, जिनमें शिशुओं के कल्याण के लिये और महिलाओं के लिये प्रसवकाल के लिये सुविधायें हैं, आदि. मनोरंजन के लिये हारमोनियम, तबला, ढोलक आदि की भी व्यवस्था है।

"ख' श्रेणी के केन्द्रो मे भी प्राय. ऐसी ही सुविधायें प्रदान की जाती है परन्तु इनमें एलोपैथिक के स्थान पर होम्योपैथिक चिकित्सालय होते है। 'ग" श्रेणी के केन्द्रो मे केवल पुस्तकालय व वाचनालय, कमरे के भीतर वाले एव मैदान के खेल, रेडियो तथा आयुर्वेदिक अथवा यूनानी चिकित्सालय की व्यवस्था होती है। सारे केन्द्रों मे लोकप्रिय चलचित्रो को मुफ्त दिखाया जाता है तथा सगीत और नाटक के क्लबों की भी व्यवस्था है। तीन केन्द्रो मे श्रमिको के बच्चो के लिये रात्रि पाठशालायें खोली गई है तथा ४७ केन्द्रो मे वयस्क शिक्षा कक्षायें है। कुछ केन्द्रो मे कर्मचारियों के बालको के लिये नृत्य कक्षायें भी हैं। रोगी तथा अर्धपोषित शिशुश्रो को निःशुल्क दूध के वितरण की भी व्यवस्था है तथा श्रमिको के बच्चों व गर्भवती स्त्रियों के स्वास्थ्य की देखभाल के लिये नर्सें और दाइयाँ भी नियुक्त की गई है। श्रमिक वर्ग की स्त्रियो को आर्थिक सहायता देने के हेतु विभिन्न केन्द्रो मे चरखा कातना भी सिखाया जाता है। कल्याण कार्यों मे श्रमिक व्यक्तिगत रूप से रुचि ले सकें, इस उद्देश्य से स्काउटिंग की व्यवस्था भी की गई है। कवि सम्मेलन, कैम्पफायर, व्यायाम प्रदर्शन तथा कुश्तियों आदि के मैच भी समय-समय पर आयोजित किये जाते है। कानपुर मे दो क्षय निवारण चिकित्सालय भी खोले गये है। श्रम कल्याण विभाग मे विदेशो से शिक्षा प्राप्त श्रम अधिकारी भी नियुक्त हैं। परन्तु केन्द्रो में प्रशासनिक कर्मचारी पर्याप्त कुशल नही है और उनके वेतन भी बहुत कम है। इस विभाग द्वारा अधिकृत भवन मे ६ केन्द्र स्थित है। मौसमी श्रम कल्याण केन्द्रो मे चीनी के कारखानो मे काम करने वाले कर्मचारियो के लिये केवल कमरे के भीतर वाले एव मैदान के खेल, वाचनालय, रेडियो, हारमोनियम तथा तबला जैसी सुविधाओ की व्यवस्था है। यह केन्द्र नवम्बर से मार्च तक खुलते हैं। पहले दो सरकारी सहायता प्राप्त केन्द्र भी थे जो मोतीलाल स्मारक समिति द्वारा चलाये जाते थे, परन्तु सरकार ने इन्हे अब अपने हाथ मे ले लिया है। रुडकी का केन्द्र गवर्नमेंट लीथो प्रेस द्वारा विभाग की वित्तीय सहायता से चलाया जाता है।

सन् १९३७ मे कल्याण कार्यों के लिये राज्य के बजट मे केवल १०,००० रुपयो की व्यवस्था की गई थी, जो १९४६ में बढकर लगभग ढाई लाख रुपये हो गई। इस समय विभिन्न केन्द्रों मे कल्याण कार्यों पर प्रतिवर्ष लगभग २५ लाख रुपये व्यय किए जाते है। १९६३-६४ वर्ष के लिए श्रम कल्याण कार्यों के हेतु बजट में २४,८७,००० रुपयो की व्यवस्था थी। श्रम कल्याण कार्यों के लिए गैर-सरकारी सस्थाओ को सहायक अनुदान भी दिये जाते है परन्तु ऐसे अनुदानों की धन राशि बहुत कम होती है।

सरकार ने १९४९ मे 'उत्तर प्रदेश कारखाना कल्याण अधिकारियों के नियम' भी बनाये थे, जिनमे १९४८ के कारखाना अधिनियम मे दिए गए कल्याण कार्य सम्बन्धी उपबन्ध सम्मिलित कर लिए गए थे। इन नियमों को हटाकर अब १९५५ के 'उत्तर प्रदेश कारखाना कल्याण अधिकारियो के नियमो' को लागू कर दिया गया है। इन नियमो के अनुसार उन तमाम कारखानो मे जिनमे ५०० या इससे अधिक

कर्मचारी काम करते हैं, एक श्रम कल्याण अधिकारी की नियुक्ति करना आवश्यक है तथा जिन कारखानों में २,५०० या इससे अधिक कर्मचारी काम करते हैं उनमें एक अतिरिक्त श्रम कल्याण अधिकारी की भी नियुक्ति आवश्यक है। इन नियमों में श्रम कल्याण अधिकारी की योग्यता, वेतन, नौकरी की शर्तें तथा उसके कार्य आदि का भी उल्लेख है। (देखिए परिशिष्ट "ग")। सरकार को श्रम कल्याण कार्य की व्यवस्था के हेतु सलाह देने के लिए श्रम कल्याण सलाहकार समितियाँ भी हैं। ऐसी एक समिति तो सम्पूर्ण राज्य के लिए है तथा २० विभिन्न जिलों के लिए हैं। अगस्त १९५६ में **उत्तर प्रदेश श्रम कल्याण निधि अधिनियम** भी पारित किया गया। इसके अन्तर्गत ऐसी मजदूरी, बोनस राशि व अवकाश प्राप्ति का धन जो मजदूरों को नहीं दिया जा सका है तथा जो मालिकों के पास बिना किसी उपयोग के पड़ा है तथा मजदूरों से ली गई जुर्माने की तमाम राशि एक निधि में सचित की जाती है। यह धन ऐसे श्रम कल्याण कार्यों में व्यय किया जाता है जो मालिकों द्वारा कानून के अन्तर्गत दी हुई सुविधाओं के अतिरिक्त हों। इस निधि का प्रबन्ध एक बोर्ड द्वारा होता है जिसमें एक अध्यक्ष तथा मालिक और कर्मचारियों के प्रतिनिधि होते हैं।

कल्याण कार्यों के प्रशासन के लिए श्रम विभाग में एक कल्याण प्रभाग है जो अतिरिक्त श्रमायुक्त (कल्याण) के अधीन है। यह प्रभाग राज्य के श्रम कल्याण केन्द्रों के माध्यम से श्रम कल्याण कार्य करने के लिये उत्तरदायी है। इस समय कानपुर आगरा, बरेली इलाहाबाद, लखनऊ तथा मेरठ में से प्रत्येक में एक एक प्रादेशिक कार्यालय है, तथा कानपुर में एक कल्याण अधिकारी तथा अन्य क्षेत्रों में एक एक सहायक कल्याण अधिकारी है। १९६० में श्री गोविन्द सहाय एम० एल० ए० की अध्यक्षता में श्रम कल्याण केन्द्रों द्वारा किए गए कार्यों का मूल्यांकन करने तथा अधिकाधिक सुविधायें उपलब्ध कराने से सम्बन्धित सुझाव देने के लिये एक सब-कमेटी बनाई गई थी। परन्तु इसकी रिपोर्ट के बारे में कुछ ज्ञात नहीं हुआ है। प्रतीत होता है कि सब कमेटी समाप्त हो गई है।

उत्तर प्रदेश में चीनी-कारखाने के कर्मचारियों के लिए कल्याण कार्य

उत्तर प्रदेश सरकार ने चीनी मिल मजदूरों को सुविधायें प्रदान करने के लिए भी कदम उठाये हैं। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कई कल्याण केन्द्र ऐसे स्थानों पर हैं जहाँ चीनी मिलें हैं। "उत्तर प्रदेश चीनी एवं चालक मद्यसार उद्योग श्रम कल्याण तथा विकास निधि" (U P Sugar and Power Alcohol Industries Labour Welfare and Development Fund) की भी स्थापना की गई है। इस समय इस निधि में ४९ लाख रुपये से भी अधिक की राशि है। इसको तीन विभागों में बांटा गया है—आवास, सामान्य कल्याण तथा विकास। इस निधि में से चीनी व चालक मद्यसार उद्योग में लगे हुए कर्मचारियों के कल्याण हेतु धन व्यय किया जाता है। चालक मद्यसार उद्योग को जो शीरा मिलों द्वारा

दिया जाता है, उसकी कीमत सरकार द्वारा २८ पै० प्रति मन निर्धारित की गई है। खुली बिक्री द्वारा इससे अधिक जो कुछ प्राप्त होता है उसे इस निधि मे देना होता है। इस प्रकार इस निधि का निर्माण शीरे की बिक्री के लाभ से होता है, जो प्रत्येक फैक्ट्री द्वारा कानूनन निधि में जमा किया जाता है। इस निधि की राशि में से ६८% आवास के लिये और केवल २ प्रतिशत सामान्य कल्याण तथा विकास के लिए है।[6] दिसम्बर १९६१ तक निधि की कुल धन राशि ४८,६८,५०० रुपये थी। इस धनराशि में से ४५,३०,६६६ रु० आवास के लिए, ३,१८,८४६ रुपये सामान्य कल्याण के लिये तथा ४८६८५ रु० विकास के लिए निर्धारित किये गये है। सामान्य कल्याणकारी कार्य निम्नलिखित है :—सफाई व स्वास्थ्य मे उन्नति, बीमारी की रोकथाम, चिकित्सा व मातृत्व हित सुविधाओं मे उन्नति व सुधार, औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान के ज्ञान को बढ़ावा देना, जल वितरण व धोने की सुविधाओं की व्यवस्था, पुस्तकालय तथा प्रचार द्वारा शिक्षा का विकास, सामाजिक दशाओं व रहन-सहन के स्तर मे सुधार, मनोरंजन की सुविधायें और काम पर जाने तथा वहा से आने के लिए यातायात की व्यवस्था, आदि। विकास कार्य निम्नलिखित हैं :—तकनीकी शिक्षा तथा चीनी व मद्यसार और उससे बनने वाली अन्य वस्तुओं के बनाने का प्रशिक्षण, जिसमे गन्ना पैदा करना और उसके गौण-उत्पादनों का उपयोग करना भी सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त इसमें गन्ना उत्पादन के लिए सब प्रकार के अन्वेषण करने की सुविधायें तथा सड़क बनाने व सिचाई की सुविधायें भी सम्मिलित है। इस समय तो निधि का कार्य अधिकतर फैक्ट्री कर्मचारियो के लिए मकान निर्माण करना ही है। सामान्य कल्याण निधि में से अभी तक कुछ धनराशि अवकाश गृहों के निर्माण तथा जिला चिकित्सालयों मे चीनी मिलों के श्रमिकों के लिये पलग सुरक्षित करने पर व्यय की गई है।

पश्चिमी बंगाल सरकार द्वारा श्रम-कल्याण कार्य

सन् १९३६–४० तक बंगाल में सरकार ने श्रमिकों के लाभ के लिए केवल निजी संस्थाओं को ही सहायता दी थी। सन् १९४० मे सरकार द्वारा दस कल्याण केन्द्रों की स्थापना की गई जो १९४४–४५ मे ४१ तक पहुँच गई। परन्तु देश के विभाजन के पश्चात् सारी व्यवस्था को फिर से सगठित करना पड़ा और (१९६५ मे) पश्चिमी बंगाल सरकार के अधीन राज्य के विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों मे ४० श्रम-कल्याण केन्द्र थे। इनमे से ५ आदर्श श्रम-कल्याण केन्द्र थे। इन केन्द्रो में किये जाने वाले कल्याण कार्य निम्नलिखित हैं—प्रचार, पुस्तकालय, रेडियो, खेल, चिकित्सा के प्रबन्ध, कमरे के भीतर एवं मैदान के खेल, नाटक का प्रबन्ध, संगीत सभायें, कुश्ती, सिनेमा तथा महिलाओ के लिये दस्तकारी प्रशिक्षण कक्षाये आदि। बच्चों व वयस्कों को प्रारम्भिक शिक्षा देने और कर्मचारियो को श्रमिक संघवाद तथा श्रम समस्याओं के बारे में शिक्षा देने की भी व्यवस्था है। प्रत्येक केन्द्र एक श्रम

[6] पृष्ठ २५१–५२ भी देखिए।

कल्याण कर्मचारी के अधीन होता है। इस कर्मचारी को एक श्रम कल्याण सहायक तथा एक महिला श्रम कल्याण कर्मचारी की सहायता प्राप्त होती है। दार्जिलिंग के चाय बागान क्षेत्रो मे महिला श्रमिको की दशाओ के निरीक्षण के लिए तथा उन्हे स्वास्थ्य, सफाई और बच्चो की देख-रेख की शिक्षा देने के लिये तीन महिला कर्मचारियो की नियुक्ति की गई है। इस चाय क्षेत्र मे एक हस्पताल स्थापित किया गया है। पश्चिमी बगाल के बागान के क्षेत्रो मे स्थापित केन्द्रो की सख्या १३ है। प्रत्येक केन्द्र मे चिकित्सालय भी है जहाँ मुफ्त चिकित्सा सहायता उपलब्ध है। तृतीय पचवर्षीय आयोजना मे एक आदर्श श्रम-कल्याण केन्द्र, आवास गृह, आदि खोलने का कार्य-क्रम है।

अन्य राज्यो के श्रम कल्याण कार्य

बिहार सरकार ने विभिन्न क्षेत्रो मे २५ आदर्श कल्याण केन्द्र खोले है। मुंगेर जिले के ग्रामीण क्षेत्रों मे कृषि श्रमिको के लिए एक कल्याण केन्द्र खोला गया है। तीन केन्द्र पलन्हू, किशनगज और राची चाय बागात के लिये है। सरकार ने २ उपयोगी (Utility) केन्द्र भी खोले हैं। प्रत्येक म एक श्रम कल्याण अधिकारी की नियुक्ति की गई है। सारे राज्य की महिला श्रमिको की देख रेख के लिये पटना मे एक महिला श्रम कल्याण अधिकारी की भी नियुक्ति हुई है। ये केन्द्र श्रमिको के लिये मनोरजन तथा शिक्षा सम्बन्धी कार्य करते है। सरकार ने श्रमिको को समाज कल्याण मे प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिये वृत्तियां भी प्रदान की है। श्रमिको की अनेक बस्तियो मे कल्याण समितियाँ स्थापित की गई है जो जुए और शराब के विरुद्ध प्रचार करती है, तथा सफाई के लिये भी कार्य करती हैं। बिहार मे मालिको और श्रमिको के ३३ ऐच्छिक रूप से बनाये गये कल्याण केन्द्र भी है जिन्हे सरकार सहायता और अनुदान देती है। सरकार द्वारा अधिक श्रम कल्याण केन्द्र खोलने की तथा विभिन्न केन्द्रो के कार्यों को विस्तृत करने की योजना है। मध्य प्रदेश मे सरकार ने सूती वस्त्र मिलो द्वारा किये जाने वाले श्रम कल्याण कार्यों की जाँच के लिये, सितम्बर १९४८ मे एक श्रम कल्याण जाँच समिति की नियुक्ति की थी तथा राज्य की पचवर्षीय आयोजना मे सम्मिलित करने के लिये एक श्रम कल्याण योजना भी तैयार की गई थी। सरकार ने अब विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रो मे ६ कल्याण केन्द्र खोले है। वे निम्नलिखित है—दो नागपुर मे, एक-एक अकोला जबलपुर, रायगढ, राजनन्दनगाव तथा बह्रामपुर मे है तथा दो बहुउद्देशीय केन्द्र नागपुर मे है। प्रत्येक केन्द्र मे रेडियो, कमरे के भीतर तथा मैदान के खेलो का सामान, पुस्तकालय, महिला केन्द्र आदि की व्यवस्था है। भिलाई के इस्पात के कारखाने के श्रमिको के लिये एक कल्याण समिति बनाई गई है। इन्दौर, ग्वालियर, उज्जैन तथा रतलाम मे स्वास्थ्य केन्द्र खोले गये है। इन्दौर मे एक श्रमिक शिक्षा केन्द्र भी है। मद्रास सरकार ने कोयमुत्तूर म तीन कल्याण केन्द्रो की स्थापना करने की योजना बनाई है, तथा नीलगिरि मे बागान के श्रमिको

के लिये एक श्रम-कल्याण अधिकारी की भी नियुक्ति की है। कुन्नूर में टोकरी बनाने और दर्जी के काम सिखाने के हेतु दो प्रशिक्षण केन्द्र हैं। औद्योगिक क्षेत्रो तथा चाय बागानों में अनेक सहकारी भण्डार तथा सस्ते मूल्य की दुकानें खोली गई हैं। पंजाब सरकार ने १९६५ तक २१ श्रम-कल्याण केन्द्र खोले है जिनमें कमरे के भीतर एवं मैदान के खेलो की तथा एक पुस्तकालय, शिक्षा, मनोरंजन, संगीत और रेडियो की सुविधायें एवं सिलाई की कक्षाओं की व्यवस्था की गई है। अन्य श्रम-कल्याण केन्द्रो के खोलने की व्यवस्था है। एक अवकाश-गृह खोला गया है। पालमपुर मे भी बागान के श्रमिकों के लिये एक केन्द्र है।

मैसूर सरकार ने त्रिदलीय आधार पर एक श्रम-कल्याण बोर्ड नियुक्त किया है, इसका अध्यक्ष श्रम कमिश्नर होता है। इसका कार्य सरकार को श्रम कल्याण और श्रम विधान से सम्बन्धित मामलों मे सलाह देना है। १९६५ तक १६ श्रम-कल्याण केन्द्र राज्य के विभिन्न भागो मे खोले गये थे। इन केन्द्रों मे वाचनालय, पुस्तकालय, कमरे के भीतर एवं मैदान के खेल, रेडियो आदि की सुविधाएँ है। सहकारी भण्डार तथा सस्ते मूल्य की दुकाने भी खोली गई हैं। केन्द्रीय चाय बोर्ड ने कोडामाना बागान मे एक केन्द्र खोलने के लिये धन दिया है। तिरुवांकुर-कोचीन मे श्रम-विभाग द्वारा तीन कल्याण केन्द्रो का संगठन किया गया था, परन्तु मार्च १९५५ से श्रमिको मे उत्साह न होने के कारण वे समाप्त कर दिये गये। केरल मे अब कई औद्योगिक संस्थानो और बागान मे शिशु गृह, कैन्टीन, विश्राम कक्ष, चिकित्सा की सुविधायें, आदि प्रदान की जा रही है। बागान मे पुस्तकालय, वाचनालय, मैदान के खेल आदि की भी व्यवस्था है। राजस्थान सरकार ने मई १९५० मे श्रम-कल्याण कार्यो के लिये एक श्रम बोर्ड का निर्माण किया था और कल्याण कार्य के लिये दो लाख दस हजार रुपये प्रदान किये थे। बोर्ड द्वारा १९६४ तक २८ श्रम-कल्याण केन्द्रो की स्थापना की जा चुकी थी। हैदराबाद सरकार ने श्रमिको व उनके बच्चो के लिये कमरे के भीतर एवं मैदान के खेलो की सुविधायें प्रदान करने के लिये दो कल्याण केन्द्र कोठागोडियम मे, तथा एक आजमाबाद मे, प्रारम्भ किये थे। १९५६ में एक केन्द्र यादगीर और एक जलना मे खोला गया। राजकीय श्रम विभाग श्रम-संघों के कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण के लिये कक्षायें भी चलाता था। आंध्र प्रदेश मे इस समय १० कल्याण केन्द्र चालू है जिनमे मनोरंजन, शिक्षा, खेल आदि की सुविधायें प्रदान की जा रही हैं। असम मे चाय बागान श्रमिकों के लिये कुल २० कल्याण केन्द्र सरकार द्वारा समाज-सेवा संस्थाओ की सहायता से चलाये जाते हैं, और इनमें चाय बोर्ड भी अंशदान देता है। इन केन्द्रो मे से पाच कल्याण केन्द्र पुरुषो के लिये, तीन स्त्रियों के लिये तथा नौ केन्द्र चाय बागान के भूतपूर्व श्रमिकों के लिये है। २ श्रम-कल्याण प्रशिक्षण केन्द्र भी खोले गये है। राज्य में श्रम-कल्याण कार्यों के लिये प्रथम आयोजना मे २ लाख रुपये की तथा द्वितीय आयोजना मे चालीस लाख रुपये की व्यवस्था थी। १९५९ में असम चाय बागान कर्मचारी कल्याण निधि अधिनियम पारित किया गया। इस

अधिनियम के अन्तर्गत असम के बागान श्रमिकों के कल्याण हेतु एक निधि बनाई गई है। श्रमिकों के लिये एक अवकाश गृह की स्थापना की गई है और उनके लिये पर्यटन की व्यवस्था की जाती है। उडीसा मे १६ ऐच्छिक श्रमिक कल्याण केन्द्र कार्य कर रहे है जिन्हे सरकार आर्थिक सहायता देती है। इनके अतिरिक्त, राज्य मे १० बहुउद्देशीय श्रम कल्याण केन्द्र कार्य कर रहे है जो औद्योगिक श्रमिकों को शैक्षिक, सास्कृतिक एव मनोरजन सम्बन्धी सुविधायें प्रदान करते है। दिल्ली सरकार ने राज्य मे १० कल्याण केन्द्र चालू किये हैं जहाँ सामान्य कल्याण कार्यों की व्यवस्था है। हिमाचल प्रदेश मे, राज्य परिवहन विभाग कल्याण सुविधाओं की व्यवस्था करता है और श्रमिकों के सकटों के समय उनकी सहायता करता है। त्रिपुरा मे पाँच और पाण्डेचेरी मे दो श्रम कल्याण केन्द्र कार्य कर रहे है जिनमे सामान्य सुविधायें प्रदान की जाती है।

सरकार द्वारा किए गए कल्याण कार्यों का आलोचनात्मक मूल्याकन

इस प्रकार केन्द्रीय तथा विभिन्न राज्यों की सरकारें श्रम-कल्याण कार्यों मे सक्रिय रूप से भाग ले रही है। परन्तु अब भी श्रम-कल्याण के सम्बन्ध मे बहुत कुछ करने को बाकी है। देश मे श्रमिकों की सख्या तथा औद्योगिक विकास व विस्तार को देखते हुये प्रत्येक राज्य मे कल्याण केन्द्रो की सख्या अत्यधिक कम है। कल्याण केन्द्रो पर जो धन व्यय किया जाता है वह देखने मे अवश्य अधिक मालूम होता है किन्तु यदि उस धन का हम विश्लेषण करे तो मालूम होता है कि उसमे से प्रति श्रमिक औसत कुछ पैसे ही व्यय हो पाते हैं। शिक्षा के क्षेत्र मे तथा बच्चो व मातृत्व हित कल्याण केन्द्रो के लिए अधिक प्रयत्नो की आवश्यकता है। वर्तमान समय मे महिला डाक्टरो का अत्यधिक अभाव है। महिला श्रमिकों को चमडे की वस्तुये, खिलौने, बटन तथा दूसरी इसी तरह की प्रतिदिन काम मे आने वाली वस्तुओं को बनाने का प्रशिक्षण दिया जा सकता है तथा शहर मे एक दुकान भी खोली जा सकती है जहाँ कल्याण केन्द्रो मे निर्मित वस्तुओं का विक्रय किया जा सके। महिला विभाग के कार्यों को और विस्तृत करना आवश्यक है, तथा और अधिक सिलाई मशीनो की व्यवस्था भी करनी चाहिए। महिला श्रमिक इन कल्याण केन्द्रो मे कार्य करके अपने परिवार के लिये अतिरिक्त आय पैदा कर सकती हैं। प्रत्येक केन्द्र मे श्रमिक-सघवाद की भी शिक्षा देनी चाहिए। श्रमिकों के बालकों की शिक्षा पर अधिक ध्यान देना आवश्यक है। ये बालक अधिकतर मारे-मारे फिरते हैं तथा इनमे अनेक बुरी आदतें पड जाती है। कल्याण केन्द्रो मे बालकों के लिये मनोरजन की सुविधायें भी अधिक होनी चाहिये। कमरे के भीतर एव मैदान के खेलो की सुविधाये भी अधिक हो सकती है। विभिन्न खेलो की नियमित टीमे सगठित की जा सकती है तथा मैचो का भी प्रबन्ध हो सकता है। वार्षिक या त्रैमासिक खेल-कूद आदि की प्रतियोगितायें करके जीतने वाले प्रतियोगियो को पारितोषिक भी दिये जाने चाहियें। चिकित्सा सुविधाओं का काय

कर्मचारी राज्य बीमा निगम के लिए छोड़ देना चाहिये तथा कल्याण केन्द्रों में अन्य कल्याण कार्यों को विस्तृत करना चाहिए। इन केन्द्रों को चलाने में सबसे बड़ा दोष यह है कि इनके प्रबन्ध में श्रमिकों का हाथ कम होता है। यही कारण है कि इन केन्द्रों को अधिक लोकप्रियता व सफलता नहीं मिल पाई है। श्रम-कल्याण केन्द्रों में मालिकों को सलाह और सहायता देने के लिये श्रमिकों की एक समिति भी होनी चाहिये। इससे श्रमिकों का सक्रिय रूप से सहयोग मिल जायगा और श्रमिकों में यह उत्साह आ जायगा कि वे कल्याण केन्द्रों से पूर्ण लाभ उठायें। इसके अतिरिक्त कल्याण केन्द्र किसी ऐसे प्रशिक्षित व अनुभवी व्यक्ति के अधीन होना चाहिये जिसमें समाज सेवा की भावना हो। केन्द्रों के कर्मचारियों को समुचित वेतन दिया जाना चाहिये। दफ्तरों जैसा वातावरण इन केन्द्रों के कल्याण कार्यों के लिए सहायक नहीं हो सकता। निश्चय ही इस प्रकार के केन्द्रों का महत्व व इनकी उपयोगिता बहुत अधिक है क्योंकि ऐसे देश में जहाँ अब भी श्रमिक अपने हितों की स्वयं देखभाल नहीं कर सकते, वहाँ सरकार का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि उनके लिए कुछ कल्याण कार्य करे और ऐसे अधिनियम बनाये जिनके अन्तर्गत मालिकों को कल्याण कार्य करने के लिये विवश किया जा सके। अत: कल्याण केन्द्रों की संख्या में वृद्धि करने की बहुत आवश्यकता है। प्रत्येक औद्योगिक बस्ती में सरकार द्वारा चलाया जाने वाला एक श्रम-कल्याण केन्द्र होना आवश्यक है तथा उन केन्द्रों के कल्याण कार्यों को विस्तृत करने के लिए अधिक धन दिये जाने की आवश्यकता है। श्रम-कल्याण केन्द्र जहाँ तक भी सम्भव हो सके श्रमिकों के निवास अथवा काम करने के स्थान के निकट होने चाहिएं क्योंकि उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि वे इन केन्द्रों पर पहुंचने के लिये लम्बी यात्राएँ करेंगे।

मालिकों द्वारा कल्याण कार्य

कल्याण कार्य इस समय मालिकों की इच्छा पर छोड़ने के स्थान पर अधिकाधिक कानून के क्षेत्र में आता जा रहा है। कैन्टीनें, विश्राम स्थल, शिशुगृह, खानों में स्नानगृह आदि विभिन्न अधिनियमों के अन्तर्गत आवश्यक कर दिये गये हैं। इसी प्रकार कर्मचारी-राज्य-बीमा योजना लागू होते ही मालिकों पर चिकित्सा सहायता का उत्तरदायित्व नहीं रहेगा। उपरोक्त विवरण से यह भी स्पष्ट है कि केन्द्रीय व राज्य सरकारें भी औद्योगिक नगरों में कल्याण केन्द्रों की स्थापना करके कल्याण कार्यों में अधिकाधिक भाग ले रही हैं। परन्तु फिर भी श्रमिकों को सुविधायें व सेवाएँ प्रदान करने के लिए मालिक तथा उनकी संस्थाएँ अभी काफी काम कर सकती हैं। कई जागरूक मालिक विभिन्न उद्योगों में स्वयं अपनी इच्छा से श्रमिकों के लिये कल्याण कार्य करते रहे हैं, उनमें से कुछ का विवरण अग्र-लिखित है—

सूती वस्त्र उद्योग मे कल्याण कार्य

बम्बई मे लगभग प्रत्येक सूती मिल मे चिकित्सालय, शिशु गृह, कैन्टीन अनाज की दुकाने तथा ऐंब्युलेंस कक्ष की सुविधाये दी गई हैं। कुछ मिलो मे बोर्डिंग हाऊस भी खोले गये है जहाँ सस्ते भोजन की व्यवस्था है। अनेक मिलो ने श्रमिको के लिए खेल-कूद के क्लब तथा व्यायामशालायें बनवाई हैं और खेल प्रतियोगितायें आयोजित की जाती है। कई मिलो मे शिक्षा देने के लिए कक्षाएँ चलाई जाती है। ३४ मिलो मे श्रमिक शिक्षा योजना के अन्तर्गत भी कक्षायें चलाई जाती हैं और ५१ साहित्यिक कक्षायें चलायी जाती है। ६७ सहकारी साख समितियाँ है जिनके लगभग १,१०,६७० सदस्य हैं। लगभग ४० मिलें अपने सदस्यो को उनके अवकाश प्राप्त करने पर धन प्रदान करती हैं। अहमदाबाद की मिलें एक योग्य डाक्टर के अधीन एक चिकित्सालय चलाती है तथा तीन मिला न लो मिल कर ४५ शैय्या वाले एक अस्पताल की भी व्यवस्था की है। जहाँ-जहाँ महिला श्रमिक है वहाँ शिशुगृहो की भी व्यवस्था है। कुछ मिलो मे शिशुओ को दूध, मछली का तेल तथा सतरे का रस आदि देन का प्रबन्ध है। गर्म या ठडे जल से स्नान करन की भी व्यवस्था है। कुछ मिलो ने श्रमिको के बालको के लिए 'किंडर गार्टन अथवा "माटेसरी' शिक्षा का भी प्रबन्ध किया है। अनेक मिलो ने मैदान मे खेले जाने वाले खेलो की सुविधा भी प्रदान की है तथा कई मिलो म सहकारी समितियाँ भी है। कैन्टीनो की व्यवस्था सभी मिलो म है।

नागपुर की एम्प्रैस मिल म एक उल्लेखनीय श्रम कल्याण कार्य चल रहा है। वहाँ चिकित्सा का प्रबन्ध अत्यन्त सन्तोषजनक है। पूर्ण सुविधाओ से युक्त चार चिकित्सालय हैं, जिनम योग्य डाक्टर है। पुरुष तथा महिला श्रमिको के लिए अलग अलग चिकित्सालय हैं और शिशुगृहो की भी व्यवस्था है। किंडर गार्टन व नर्सरी कक्षाय भी चलती है। श्रमिको मे सहकारिता भी काफी लोकप्रिय है और श्रमिक सहकारी साख समितियो से ऋण लेते हैं। एक बीमारी लाभ निधि भी चलाई गई है परन्तु वह अधिक लोकप्रिय नही हो पाई है। चलचित्रो को निःशुल्क दिखाने के लिए भी एक योजना बनाई गई है। श्रमिको के लिए हिन्दी व मराठी में एक समाचार-पत्र भी प्रकाशित किया जाता है जिसका नाम "एम्प्रैस मिल पत्रिका" है। इस पत्रिका को श्रमिको मे बिना मूल्य के ही वितरित किया जाता है। पत्रिका मे स्वास्थ्य, स्वास्थ्य विज्ञान, सफाई तथा अन्य साधारण रुचि के विषय होते हैं। कर्मचारियों को लेख भेजने के लिए उत्साहित किया जाता है। इन पर पारितोषिक भी दिये जाते हैं।

देहली मे देहली कपडा एव जनरल मिल्स में एक कर्मचारी हित निधि ट्रस्ट बनाया गया है। इसके प्रबन्ध के लिय पाँच सदस्य श्रमिको मे से चुने गये है तथा चार प्रबन्धको की ओर से नियुक्त किये गय है। इस निधि मे धन, वितरित किये जाने वाले लाभाश के एक निश्चित प्रतिशत भाग स, श्रमिको पर हुए जुर्माने की

राशि से तथा लावारिस मजदूरी की राशि से संचय किया जाता है। यह ट्रस्ट ऐच्छिक स्वास्थ्य बीमा योजनाओं, अवकाश प्राप्ति पर धन और वृद्धावस्था की पेन्शन योजनाओं तथा प्रॉविडेन्ट फण्ड और लड़की के विवाह के लिये धन देने की योजनाओं का प्रबन्ध भी करता है। कर्मचारियों को सहसा आवश्यकता पड़ने पर (जैसे लम्बी बीमारी में विशेषज्ञों से इलाज के लिए तथा मृत्यु संस्कार आदि के समय) विशेष आर्थिक सहायता दी जाती है। एक कर्मचारी बैंक भी है जिसमें धन जमा करने वालों की संख्या ४,००० हजार से अधिक है। प्रबन्धकों ने अपने कर्मचारियों को सस्ती बीमा पॉलिसी देने के लिये स्वयं अपनी एक बीमा कम्पनी की स्थापना की है। यहाँ सब सुविधाओं से युक्त ५० पलंगों वाला एक हस्पताल भी है जिसमें एक्सरे का सामान, दन्त-चिकित्सा की कुर्सी तथा विद्युत किरणों से इलाज की भी पूर्ण व्यवस्था है। चिकित्सा सहायता निःशुल्क दी जाती है तथा एक योग्य महिला डाक्टर की भी व्यवस्था है। ट्रस्ट द्वारा चलाये जाने वाले स्कूलों में श्रमिकों के बालकों तथा बालिकाओं को निःशुल्क शिक्षा देने का प्रबन्ध है। योग्य छात्रों को छात्रवृत्ति भी प्रदान की जाती है। ट्रस्ट द्वारा एक उच्च माध्यमिक विद्यालय, एक मिडिल स्कूल तथा एक तकनीकी स्कूल चलाए जा रहे हैं। श्रमिकों तथा उनके परिवारों के लिए वयस्क शिक्षा कक्षायें, पुस्तकालय तथा वाचनालय की भी व्यवस्था है। एक व्यायामशाला तथा खेल-कूद का भी प्रबन्ध किया गया है। श्रमिकों के अपने ही तैरने के तालाब, नाटक संघ आदि हैं। "डी० सी० एम० गजट" के नाम से एक साप्ताहिक समाचार-पत्र हिन्दी तथा उर्दू में प्रकाशित किया जाता है, जिसे कर्मचारियों में बिना मूल्य के वितरित किया जाता है।

मद्रास में बकिंघम तथा कर्नाटक मिलों में एक मिल चिकित्सालय है जिसमें छः डाक्टर नियुक्त हैं, जो कर्मचारियों को उनके घरों पर भी देखने जाते हैं। एक महिला डाक्टर के अधीन भी एक चिकित्सालय है। प्रत्येक मिल के श्रमिक क्षेत्रों में एक चिकित्सालय होता है तथा नर्स प्रतिदिन श्रमिकों के घरों पर जाती हैं। महिला डाक्टर तथा दो स्वास्थ्य निरीक्षक भी सप्ताह में एक या दो बार श्रमिक क्षेत्रों में जाती हैं। महिलाओं के लिए विशेष कक्षायें आयोजित की जाती है जिनमें सफाई, बच्चों का पालन-पोषण, भोजन का महत्व तथा बीमारियों की रोकथाम आदि पर व्याख्यान दिये जाते है। महिलाओं के लिए सिलाई की कक्षायें हैं। लड़कियों को गृह-विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, सामान्य विज्ञान तथा दस्तकारी आदि की शिक्षा दी जाती है। प्रत्येक श्रम क्षेत्र में नर्सरी कक्षायें भी चालू की गई है तथा केवल ५० पैसे प्रति माह देने पर बालकों को हल्का नाश्ता व मछली का तेल दिया जाता है। ठेकेदारों द्वारा दो कैंटीनें चलाई जाती है तथा कमरे के भीतर एवं मैदान के खेलों की भी सुविधायें दी गई हैं। मिल में एक सहकारी समिति भी है।

बंगलोर की ऊनी, सूती व रेशम की मिलें भी कल्याण कार्यों को संगठित

रूप से कर रही है। एक आधुनिक दवाखाना, मातृत्व हित व बाल-कल्याण व्यवस्था, चिकित्सालय तथा स्वास्थ्य निरीक्षक कर्मचारियों की व्यवस्था है। प्रत्येक वर्ष श्रमिकों की बस्ती में एक बाल प्रदर्शनी तथा स्वास्थ्य सप्ताह मनाया जाता है। एक नर्सरी पाठशाला, एक माध्यमिक पाठशाला व रात्रि में वयस्कों के लिये कक्षाएं भी चलाई जाती हैं। दो वाचनालयों तथा एक पुस्तकालय की भी व्यवस्था है। कमरे के भीतर एवं मैदान के खेल, नाटक, सभाओं आदि जैसे मनोरंजन की सुविधाएं भी प्रदान की गई हैं। कोयमुत्तूर में भी प्रत्येक सूती वस्त्र मिल में एक-एक चिकित्सालय है। कुछ मिलें हस्पताल भी चलाती है जिनमें विशेष रूप से मातृत्व-हित व बच्चों के विभाग भी होते हैं। सभी मिलों में शिशु गृह, कैन्टीन, नहाने की सुविधायें, विश्राम स्थान तथा चिकित्सालय है। कई मिलों में उपदान प्राप्त कैन्टीनें हैं और मनोरंजन की तथा बच्चों की शिक्षा की सुविधाएं भी है।

मदुरा में मदुरा मिल्स कम्पनी ने अपने कर्मचारियों की चिकित्सा के लिये बहुत ही अच्छा प्रबन्ध किया है। सब सुविधाओं से युक्त चिकित्सालयों की व्यवस्था है तथा हस्पतालों चिकित्सा के लिये एक स्थानीय हस्पताल में प्रबन्ध किया गया है, जिसमें मिलों ने स्वयं अपना एक्स रे यन्त्र लगा दिया है। मिलों में शिशु गृहों की भी व्यवस्था है। स्कूलों में बच्चों को दूध, भोजन, फल आदि बिना किसी मूल्य के दिये जाते हैं। 'मदुरा मिल कर्मचारी सहकारी भण्डार' भी चलाया जाता है जिसके प्रबन्ध में श्रमिकों का भी हाथ होता है। एक कर्मचारी बचत निधि योजना भी चालू है जिसमें मिल मालिक भी सहायता देते हैं। मदुरा मिलों द्वारा किये जाने वाले कल्याण कार्यों में एक विशेषता यह है कि वे 'मदुरा श्रमिक संघ कल्याण परिषद्' को ५००० रु० प्रति माह उपदान में देती है। यह परिषद् कर्मचारियों के बच्चों के लिये एक पाठशाला तथा पुरुष व महिला कर्मचारियों को शिक्षा देने के लिये दो वयस्क केन्द्रों को चलाती है। मिल ने श्रमिकों की बस्ती में भी एक स्कूल की व्यवस्था की है।

इसी प्रकार अनेक और स्थानों पर भी जैसे—शोलापुर, कलकत्ता, कानपुर, बड़ौदा, इन्दौर सुरेन्द्रनगर, हिसार फगवाड़ा, ब्यावर, कोयमुत्तूर, भीलवाड़ा, नवसारी आदि में, सूती वस्त्र मिलों द्वारा श्रमिकों के लिये विभिन्न प्रकार के कल्याण कार्यों की सुविधाएं प्रदान की गई है। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि सूती मिल उद्योग में दी जाने वाली कल्याण सुविधाओं के स्तर विभिन्न केन्द्रों में भिन्न-भिन्न हैं। कुछ मालिक तो केवल कानून के अनुसार ही आवश्यक सुविधाएं देकर संतुष्ट हो गए हैं। परन्तु कुछ बड़ी मिलों ने कल्याण कार्यों को विस्तृत स्तर पर किया है तथा वे कानून द्वारा बाधित सुविधाओं से भी आगे बढ़ गई हैं।

जूट मिल उद्योग में कल्याण कार्य

केवल "भारतीय जूट मिल परिषद्" ही एक ऐसा संघ है जिसने अपनी सदस्य संस्थाओं के कल्याण कार्यों को संगठित करने का प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व लिया

है। यह परिषद् विभिन्न स्थानों पर पाँच कल्याण केन्द्र चलाती है, जिनमे सामान्य कल्याण कार्य होते है। इनमे कमरे के भीतर एवं मैदान के खेलो की तथा मनोरंजन की सुविधाओ की व्यवस्था है तथा मिलों में आपस मे खेल की प्रतियोगिताए भी की जाती है। प्रत्येक केन्द्र मे एक-एक रेडियो तथा वाचनालयो मे समाचार पत्रों की व्यवस्था है। कुछ केन्द्रों ने स्वय अपने पुस्तकालय, नाटक मण्डली तथा सगीत कक्षाए चलाई है। टीटागढ केन्द्र मे एक कैन्टीन तथा चिकित्सालय ऐसे भी है जिनमे मुफ्त ही चीजे व सेवाए मिलती है। यह परिषद् प्रत्येक केन्द्र पर एक प्रारम्भिक पाठशाला चलाती है। लडकियो के हेतु पाक व सिलाई कक्षाओ की व्यवस्था भी की गई है। मिल कर्मचारियो के बच्चो को तकनीकी शिक्षा देने के लिये २००) प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष के मूल्य की दस छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाती है। कुछ केन्द्रो पर एक महिला कल्याण समिति तथा महिला क्लबे भी चलाई जाती हैं। महामारी को रोकने के लिये नियमित रूप से चेचक व अन्य रोगो के टीके लगाये जाते है। इसके अतिरिक्त मिलें अलग से भी श्रमिको के लिये कल्याण कार्य करती रहती हे। उदाहरणार्थ, परिषद् की ८८ सदस्य मिलो में से, जिनका पश्चिमी बगाल सरकार द्वारा सन् १९५७ मे एक सर्वेक्षण किया गया था, ७५ मे चिकित्सालयो की व्यवस्था है, ९ मिलें हस्पताल चलाती है, १५ मिलो मे मातृत्व-हित चिकित्सालय है, ७७ मे कैन्टीनें हैं, ६५ शिशु गृह चलाती है, ६३ मे पाठशालाओ की व्यवस्था है, ४१ में पुस्तकालय है, ३४ मे कमरो के भीतर के खेलो और ६१ मे मैदान के खेलो की व्यवस्था है, २८ मिलो मे व्यायामशालाए है तथा ४२ मिलो में समय-समय पर सिनेमा दिखाने की व्यवस्था हे। सभी मिलो मे श्रम-कल्याण अधिकारी नियुक्त है। कुछ मिलो मे उन्हे 'कार्मिक' या 'कल्याण अधिकारी' कहा जाता है। कुछ मिलो की ओर से ३२ केन्द्र पश्चिमी बगाल मे तथा एक उत्तर-प्रदेश मे चलाया जा रहा है। अन्य राज्यो मे भी जूट मिले कुछ कल्याण-कार्य कर रही है।

कानपुर मे मालिको के श्रम कल्याण कार्य

कानपुर मे ब्रिटिश इण्डिया कारपोरेशन ने दो श्रमिक बस्तियो के लिए एक कल्याण अधीक्षक (Welfare Superintendent) की नियुक्ति की है। लडको तथा लडकियो के स्कूलो, खेलो, चिकित्सालयों, मातृत्व-हित तथा बाल-कल्याण केन्द्रो, सभाओ, एक हस्पताल तथा एक विधवा आश्रम, आदि की सुविधाए कल्याण कार्यो द्वारा दी गई है। कानपुर की बेग सदरलैंड मिलों ने बालकों तथा वयस्को के स्कूलो, खेल के मैदानो, कमरे के भीतर एव मैदान के खेलों, रेडियो तथा पूर्ण सुविधायुक्त शिशु-गृहो की व्यवस्था की है। कानपुर की जे० के० इन्डस्ट्रीज ने भी तीन लाख रुपयो से एक ट्रस्ट की स्थापना की थी जिसके अन्तर्गत कर्मचारियो के लिए कई पाठशालाएं, एक तैरने का तालाब तथा कई अन्य सुविधाए प्रदान करने की व्यवस्था थी। परन्तु इन सुविधाओं को प्रदान करने की ओर कोई पग नही उठाया गया है।

इन्जीनियरिंग उद्योग में कल्याण कार्य

इन्जीनियरिंग उद्योग में कई ब ी संस्थाओं ने अनेक प्रकार के श्रम कल्याण कार्य किये हैं जिनका अप्रैल १९४८ में पश्चिमी बंगाल के इन्जीनियरिंग अधिकरण द्वारा दिये गये एक निर्णय के पश्चात सामान्यीकरण किया गया है। अनेक संस्थाओं ने अपने कर्मचारियों के लिये चिकित्सालयों कैन्टीनों ि ा था मनोरंजन की सुविधायें प्रदान की हैं। जमशेदपुर की टाटा लोहा एवं इस्पात कम्पनी द्वारा किये गये कार्य भी विशेष उल्लेखनीय हैं। यह कम्पनी ४१६ पलंग वाला एक हस्पताल चलाती है। इसके अतिरिक्त नगर के विभिन्न भागों में आठ औषधालय तथा एक हस्पताल संक्रामक बीमारियों का है। कर्मचारियों तथा उनके परिवारों का इलाज निःशुल्क किया जाता है। एक महिला चिकित्सा अधिकारी के अधीन एक महिला विभाग तथा मातृत्व हित व शिशु विभाग है। एक मातृत्व हित व बाल कल्याण संस्था भी है जिसके अन्तर्गत निर्धन श्रमिकों के परिवारों के लिये कई चिकित्सालयों का प्रबन्ध है। एक वार्षिक स्वास्थ्य तथा बाल प्रदर्शिनी का भी आयोजन किया जाता है। शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। वयस्क शिक्षा कक्षाओं के अतिरिक्त कम्पनी ३ हाई स्कूल ११ मिडिल स्कूल १६ प्रारम्भिक पाठशालायें ६ रात्रि पाठशालायें तथा १ तकनीकी रात्रि पाठशाला को भी चलाती है। शिक्षा विभाग का वार्षिक बजट लगभग १४ लाख रुपये का है। छात्रवृत्तियां भी दी जाती हैं। बच्चों के लिये कई खेल के मैदानों का भी प्रबन्ध है कई किशोर केन्द्र हैं तथा कर्मचारियों के लिये कमरे के भीतर एवं मैदान के खेलों की भी व्यवस्था है। नगर के विभिन्न भागों में १२ श्रम कल्याण केन्द्र खोले गये हैं जिनमें एक वाचनालय व एक पुस्तकालय कमरे के भीतर एवं मैदान के खेल व्याख्यान व वाद विवाद प्रतियोगितायें संगीत व नाटक आदि की सुविधायें आदि प्रदान की गई हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न बस्तियों में मुफ्त सिनेमा दिखाया जाता है। एक रेडियो प्रसारण की भी व्यवस्था है जिसमें स नौ लाउडस्पीकर शहर के विभिन्न भागों में लगाये गये हैं। कारखाने के अन्दर कम्पनी दो बड़े बड़े होटल तथा ६ कैन्टीन चलाती है तथा महिला कर्मचारियों के लिये कई विश्रामालयों व बच्चों के लिये शिशुगृहों की व्यवस्था की गई है। अधपोषित बच्चों को दूध तथा बिस्कुट बिना मूल्य के दिये जाते हैं। महिलाओं को धोने के लिए साबुन मुफ्त मिलता है। बंगाल की इस्पात निगम तथा भारतीय लोहा कम्पनी ने भी अपने कर्मचारियों के कल्याण के लिये बहुत अच्छे प्रबन्ध किये हैं।

कागज व सीमेंट उद्योग में कल्याण कार्य

कागज उद्योग में सभी मिल चिकित्सालयों शिशुगृहों व कैन्टीनों का प्रबन्ध करती हैं तथा सहकारी समितियों को प्रोत्साहन दिया जाता है। कुछ मिलों ने कर्मचारियों के बच्चों की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया है कुछ ने कर्मचारी क्लब स्थापित की हैं तथा कुछ में खेलों और मनोरंजन कार्यों की व्यवस्था भी है। सीमेंट

कारखानों ने, (विशेषकर उन्होंने जो "एसोशियेटेड सीमेंट कम्पनी" से सम्बन्धित है) अपने कर्मचारियों के कल्याण के लिये काफी ध्यान दिया है। इसमें हस्पतालों और चिकित्सालयों (जिनमें योग्य डाक्टर है), शिशुगृहों, कैन्टीनों, खेल तथा मनोरंजन के लिये क्लबों, रेडियो, नहाने के तालाब, सस्ते अनाज की दुकानों तथा शिक्षा आदि की सुविधायें प्रदान की जा रही है।

हस्पतालों, चिकित्सालयों, शिक्षा तथा मनोरंजन की सुविधाओं की व्यवस्था मालिकों द्वारा अन्य कई उद्योगों, जैसे—चीनी, चमड़ा तथा चर्म रंगाई, रसायन, ऊनी वस्त्र, तेल, दियासलाई, कांच, सिगरेट, वनस्पति आदि, उद्योगों में भी की गई है।

बागान में कल्याण कार्य

१९५१ के बागान श्रमिक अधिनियम के अन्तर्गत सभी बागान मालिकों को चिकित्सा और कल्याण की सुविधायें श्रमिकों को प्रदान करनी होती है। कई बागान ने सामूहिक रूप से सहयोग देकर एक चिकित्सा परिषद् बनाई है, जिसमें एक मुख्य चिकित्सा अधिकारी की नियुक्ति की गई है तथा चिकित्सा सम्बन्धी गम्भीर मामले एक सामूहिक हस्पताल में भेज दिये जाते हैं। लगभग सारे बड़े-बड़े चाय व कहवा क्षेत्रों में हस्पतालों व चिकित्सालयों की व्यवस्था है और छोटे क्षेत्रों में कर्मचारियों की चिकित्सा के लिये स्थानीय हस्पतालों में प्रबन्ध है। कई स्थानों पर शिशुगृह नहीं है, परन्तु जब मातायें काम पर चली जाती है तो उनके बच्चों की देखभाल के लिए वृद्ध महिलाओं का प्रबन्ध किया गया है। कई क्षेत्रों में कर्मचारियों के बालकों के लिये स्कूल चलाये जाते हैं तथा उनमें से कुछ में वयस्कों के लिये रात्रि कक्षायें भी स्थापित की गई है। प्राथमिक कक्षाओं तक बच्चों को सभी बागान में निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। कुछ स्थानों को छोड़कर अन्य स्थानों पर मनोरंजन की सुविधायें प्रदान नहीं की जाती। बागान में कर्मचारियों के लिये कैन्टीनें भी बहुत कम है। मद्रास के एक चाय बागान क्षेत्र में, श्रमिकों में बचत तथा मितव्ययिता की आदत डालने के लिये एक क्षेत्रीय श्रमिक सहकारी बैंक खोला गया है। सरकार इस बैंक के प्रशासन में सहकारी विभाग के माध्यम से सक्रिय सहायता प्रदान करती है और उसने इसके कार्य-सचालन के लिये ३,००० रुपये का एक स्वतन्त्र अनुदान दिया है। बागान में मातृत्व-हित-लाभ व बीमारी के लाभ भी दिये गये है। चाय बोर्ड चाय क्षेत्रों के कर्मचारियों के कल्याण के लिए राज्य सरकारों को अपनी निधि से धन देती रही है। कहवा तथा रबड बोर्ड भी रबर तथा कहवा के बागान क्षेत्रों के कर्मचारियों के कल्याण-कार्यों के हेतु अपनी निधियों में से धन देने के लिये तैयार हो गये है।

असम बागान में, १९ हस्पताल तथा ६ चिकित्सालय हैं और गम्भीर रोगों के मामले सरकारी अथवा मिशन के हस्पतालों को भेज दिये जाते है। श्रमिकों के बच्चों के लिये शिक्षा की व्यवस्थायें भी की गई है। बिहार में पालदु के

श्रम-कल्याण केन्द्र में मनोरंजन की सुविधायें दी जाती है। पाँचों बागान के श्रमिकों की चिकित्सा के लिए पालदु में एक चिकित्सालय भी है। गम्भीर बीमारी की अवस्था में कम्पनी के खर्चे से ही रोगी को राँची के हस्पताल में भेज दिया जाता है। केरल में बड़े बागान में मालिकों द्वारा अच्छे सामूहिक हस्पताल तथा चिकित्सालय बनाये गये है। कुछ बागान में कैन्टीन, शिशुगृह तथा मनोरंजन की सुविधायें भी है। परन्तु इन सभी सुविधाओं का स्तर सन्तोषजनक नही है। मैसूर में, एक हस्पताल तथा चार चिकित्सालय चलाये जा रहे है जिनमें डाक्टर तथा १५ कम्पाउन्डर हैं। बच्चों के लिये ६ प्राइमरी स्कूल भी है। तीन श्रम कल्याण केन्द्र भी खोले गये है। पंजाब में, पालमपुर में एक श्रम कल्याण केन्द्र चल रहा है और कई बागान मालिकों ने अंशकालिक वैद्य और डाक्टरों की व्यवस्था की है। उत्तर प्रदेश में, १५ बागान में से, जहाँ से सूचना प्राप्त हो सकी, १२ में चिकित्सालय थे। कई स्थानों पर कैन्टीनों की व्यवस्था की जा रही है। पश्चिमी बंगाल में, एक सामूहिक हस्पताल बागान श्रमिकों के लिये बना दिया गया है। त्रिपुरा में, ५५ बागान में से ४४ में चिकित्सालय हैं। शेष में केवल थोड़ी-सी चिकित्सा की सुविधायें दी जा रही है। राज्य के तमाम बागान में प्राथमिक कक्षाओं तक निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था भी है। तीन कल्याण केन्द्र भी खोले जा चुके है।

असम की चाय बागान के श्रमिकों के कल्याण के लिये असम चाय बागान कर्मचारी कल्याण निधि अधिनियम १९५९ स पारित किया गया जो २३ जून १९६० से लागू कर दिया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत एक निधि कल्याण कार्यों के लिये बनाई गई है। इस निधि में धन निम्नलिखित प्रकार से संचित किया जाता है—(१) बागान की व्यवस्था में कर्मचारियों पर जो भी जुर्माने किये जाते है उनकी राशि, (२) ऐसी राशि जिसका भुगतान नही किया गया है और जो जमा होती चली गई है, (३) राज्य या केन्द्रीय सरकार या १९५३ के चाय अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित चाय बोर्ड द्वारा अनुदान, (४) कोई भी ऐच्छिक रूप से दिया गया दान, (५) ऋण ली हुई राशि, तथा (६) कर्मचारियों के प्रॉवीडेन्ट फण्ड खाते की कोई भी ऐसी राशि, जिसका कोई भी दावेदार न हो या जो जब्त कर ली गई हो। इस निधि का प्रशासन एक बोर्ड द्वारा किया जाता है और असम चाय बागान के श्रमिकों के कल्याण के लिये राज्य सरकार द्वारा जो व्यय आवश्यक समझा जाता है इसमें से किया जाता है। इसका धन शिक्षा, मनोरंजन, खेल, सांस्कृतिक या सामाजिक कार्यक्रम, आदि पर व्यय किया जा सकता है। विधान के अन्तर्गत यदि मालिक कोई कार्य करते हैं तो उसके लिये इस निधि में से व्यय नही किया जा सकता। बोर्ड एक कल्याण आयुक्त की नियुक्ति कर सकता है, जो इसके कार्यांग अधिकारी का कार्य करेगा।

कोयले की खानों में कल्याण कार्य : १९४७ का कोयला-खान-श्रम-कल्याण निधि अधिनियम

कोयला तथा अभ्रक की खानों में कल्याण सुविधायें देने का उत्तरदायित्व

अब कोयला तथा अभ्रक की खानों की श्रम-कल्याण निधियों का है। फिर भी मालिकों द्वारा भी कुछ कल्याण सुविधायें प्रदान की जाती हैं। उदाहरण के लिए, एक रिपोर्ट के अनुसार २८ कोयले की खानों ने मनोरंजन का प्रबन्ध किया है, १६७ ने खेल के मैदानों का, २७६ ने बच्चों के लिये पाठशालाओं का तथा १३ ने वयस्क शिक्षा केन्द्रों की व्यवस्था की है। मद्रास की अभ्रक खानों मे ६ स्थानों पर दो खेल के मैदानों का तथा दो स्थानों पर बच्चों के स्कूलों का प्रबन्ध है।

कोयले की खानों मे संगठित कल्याण-कार्य की आवश्यकता देखते हुए भारत सरकार ने ३१ जनवरी १९४४ को एक अध्यादेश की घोषणा की जिसका उद्देश्य एक निधि निर्मित करना था, जिसे "कोयला खान श्रम-कल्याण निधि" नाम दिया गया। अध्यादेश को सन् १९४७ में कोयला खान-श्रम-कल्याण निधि *अधिनियम में परिवर्तित कर दिया गया, जिसके अन्तर्गत कोयला उद्योग में* काम करने वाले कर्मचारियों के लिये अधिक सुचारु रूप से धन देने की व्यवस्था है। यह अधिनियम जून १९४७ से लागू हुआ। इसके अन्तर्गत "कोयला खान श्रम आवास तथा सामान्य-कल्याण निधि" के नाम से एक निधि की स्थापना की गई है। इस निधि के दो खाते हैं—(१) आवास खाता, तथा (२) सामान्य-कल्याण खाता। इस अधिनियम के अन्तर्गत सारे भारत मे खानों से जाने वाले हर प्रकार के कोयले पर एक उपकर (Cess) लगाया गया है जो न तो २५ पैसे प्रति टन से कम होगा और न ही ६५ पैसे प्रति टन से अधिक। इसका निश्चय केन्द्रीय सरकार समय-समय पर करेगी। इस उपकर से प्राप्त राशि को आवास खाते तथा सामान्य-कल्याण खाते मे अनुभाजित कर दिया जाता है। अधिनियम मे उन तमाम कार्यों का वर्णन किया गया है जिन पर प्रत्येक खाते मे से रुपया व्यय किया जा सकता है। जून सन् १९४७ से खानों से जाने वाले कोयले तथा भारी कोयले पर ३७ पैसे प्रति टन के हिसाब से एक उपकर लगाया गया था। जनवरी १९६१ से इस उपकर की दर ५० पैसे प्रति टन अथवा ४९·२१ पैसे *प्रति मीट्रिक टन कर दी गई* है, जो दर इस समय भी है। सन् १९५६–५७ तक यह उपकर ७ २ के अनुपात से "सामान्य खाते" तथा "आवास खाते" मे विभाजित होता रहा था। सन् १९५६–५७ मे आवास पर अधिक जोर देने के लिये अनुपात को ६ . ३१ मे बदल दिया गया और यह अनुपात ३१ मार्च १९६१ तक जारी रहा। सन् १९६१–६२ से यह ५० ५० है। इस निधि का प्रशासन केन्द्रीय सरकार एक सलाहकार समिति के परामर्श से करती है जिसमे सरकार व कोयला खानों के मालिक तथा श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्यों की संख्या बराबर होती है। सभी सदस्य केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किये जाते है, जिनमे एक महिला भी होती है। एक "कोयला खान श्रमिक आवास बोर्ड" पहले से ही स्थापित किया जा चुका है। अधिनियम के अनुसार एक "कोयला खान श्रम-कल्याण कमिश्नर" की भी नियुक्ति हुई है जिसकी सहायता के लिये एक मुख्य कल्याण अधिकारी, तीन श्रम-कल्याण निरीक्षक तथा एक महिला कल्याण अधिकारी रखे गये है। कोयले की

खानों के श्रमिकों के लिये जो कानून बने हैं, उन्हें विज्ञापित करने के लिये बिहार, बंगाल तथा मध्य प्रदेश में पांच प्रचार अधिकारी नियुक्त किये गये हैं।

सन् १९५०-५१ में "कोयला खानों के कल्याण निधि नियमों" में तीन विशेष संशोधन किये गये। वे निम्नलिखित विषयों पर थे—(१) बड़े कोयला क्षेत्रों की 'कोयला क्षेत्र उपसभाओं' के संविधान बनाना, (२) खानों से रेल के अतिरिक्त किसी और साधन से भेजे जाने वाले कोयले तथा भारी कोयल पर भी उपकर लगाना तथा (३) जो खानें अपने कर्मचारियों के लिए एक निश्चित स्तर के चिकित्सालय चलाती हैं उन्हें सहायता देना।

सन् १९६५-६६ में "कोयला खान श्रमिक कल्याण निधि" कुल आय का अनुमान ३६० लाख रुपया तथा व्यय का अनुमान ४७२ लाख रुपया था। निधि के आवास सम्बन्धी कार्य पहले ही बताये जा चुके हैं। (देखिये पृष्ठ २६३-६४)। जहाँ तक सामान्य-कल्याण का प्रश्न है, व्यय का एक बड़ा भाग स्वास्थ्य सुविधाओं तथा चिकित्सा सम्बन्धी देखभाल व इलाज के साधनों पर लगाया जाता है। इस समय वहाँ ८ क्षेत्रीय हस्पताल हैं जिनमें से दो-दो झरिया और हजारीबाग की कोयला खानों में हैं और एक-एक रानीगंज, पंच घाटी, विंध्यप्रदेश तथा कोरिया की कोयला खानों में कुरासिया स्थान पर है। भूली में भी एक क्षेत्रीय हस्पताल बनाया जा रहा है। भूली और बुगमा में दो चिकित्सालय भी हैं और तीसरा चिकित्सालय भारा (रानीगंज) में खोला जा रहा है। दो केन्द्रीय हस्पताल भी हैं जिनमें से एक धनबाद में है और एक आसनसोल में है। सरसोल और कटरा में दो क्षय-चिकित्सालय भी खोले गये हैं। कुछ सेनिटोरियमों में खानों में काम करने वालों के लिये पलंग सुरक्षित कर दिये गये हैं। भूली में एक स्वास्थ्य लाभ (Convalescent) गृह भी बनाया गया है और और दो ऐसे गृह और खोले जा रहे हैं। क्षेत्रीय हस्पतालों में तथा आसनसोल, झरिया तथा हजारीबाग में खानों के स्वास्थ्य बोर्ड के द्वारा परिवार हित, मातृत्व-हित तथा शिशु कल्याण की सुविधाएं भी प्रदान की जाती हैं। अन्य उल्लखनीय कार्यों में से मुख्य ये हैं—आसनसोल तथा धनबाद के रक्त बैंक, मलेरिया के विरुद्ध प्रचुर मात्रा में होने वाले कार्य, बी० सी० जी० आन्दोलन, अनेक मातृत्व-हित व बाल-कल्याण केन्द्र, अनेक चल औषधालय तथा चन्दकुइयाँ में संक्रामक हस्पताल, परिवार नियोजन केन्द्र, कोढ़ और कैंसर के मरीजों के इलाज की व्यवस्था, स्वास्थ्य उन्नति केन्द्र आदि। ३० पलंग वाला एक और हस्पताल नसरई में खोला गया है। १७ आयुर्वेदिक औषधालय भी खोले गये हैं। खानों के मालिकों को इनमें सुधार करने के लिए अनुदान दिये गये हैं। खानों के अपंग कर्मचारियों के लिए कृत्रिम अंग देने की भी व्यवस्था की गई है। चश्मे और नकली दाँत भी दिये जाते हैं। इस बात का निर्णय भी अभी हाल में ही किया गया है कि कोयला खानों के उन तमाम कर्मचारियों को जिनका मूल वेतन ३०० रुपये प्रति मास से कम है निःशुल्क

चिकित्सा सुविधा प्रदान की जायेगी। अनेक स्वास्थ्य सुधार केन्द्र भी चालू किये गये है।

कोयला क्षेत्रो मे काफी सख्या मे बहुद्देशीय कल्याण केन्द्र भी है जिनमें शिक्षा, मनोरंजन तथा अन्य सुविधाएं दी गई हैं। रेडियो का भी प्रबन्ध है तथा चल सिनेमाओ द्वारा चलचित्र दिखाये जाते है। पुस्तकालयों की भी व्यवस्था है। वयस्क शिक्षा के लिये भी कदम उठाये गये हैं और निधि द्वारा वयस्क शिक्षा के ६२ केन्द्र चलाये जा रहे है। प्रत्येक केन्द्र मे एक कैन्टीन भी है। महिलाओ के लिये ६० विशेष केन्द्र हैं जिनमे कताई, कढाई, गृह-अर्थव्यवस्था आदि की शिक्षा दी जाती है। निधि द्वारा कोयला क्षेत्रो मे सहकारिताओ का सगठन किया गया है। मार्च १९६६ के अन्त तक, विभिन्न कोयला क्षेत्रों में ५०० सहकारी समितियाँ सगठित की गई थी। खान कर्मचारियो की ६१ सस्थाएँ भी है जिनमें से प्रत्येक मे एक महिला कल्याण-केन्द्र, बाल-शिक्षा केन्द्र, एक वयस्क शिक्षा केन्द्र तथा एक बाल उद्यान की व्यवस्था है। कर्मचारियो के बालको को छात्रवृत्ति देने की एक योजना भी लागू कर दी गई है। प्रत्येक वर्ष निधि मे से १५ दिन की भारत दर्शन यात्रा की भी व्यवस्था होती है। खानों के श्रमिकों के पुत्र और पुत्रियो के लिए सामान्य-शिक्षा हेतु २०२ रु० प्रति माह की ७५ छात्र-वृत्तियाँ तथा तकनीकी शिक्षा के लिये ३० रुपये प्रति माह की २२ छात्र-वृत्तियाँ प्रदान की जाती है। बिहार मे राजगीर स्थान पर खान श्रमिकों के लिए एक अवकाश गृह भी खोला गया है। श्रमिको के स्कूली बालको के लिये दो छात्रावास भी बनाये गये है—एक पश्चिमी बगाल मे तथा दूसरा मध्यप्रदेश मे।

अन्य योजनाएँ जिनके लिये इस निधि से धन दिया गया है निम्नलिखित है—आवास, चल सिनेमा, जल-वितरण व्यवस्था मे उन्नति, दुर्घटना से श्रमिको की मृत्यु पर विधवा को २ वर्ष तक १० रु० प्रति माह तथा बच्चो को, जो स्कूल जाते है, ३ वर्ष तक पाच रुपये प्रति माह आर्थिक सहायता, धनबाद मे कुष्ठ रोगियों के लिये एक बस्ती की योजना तथा असमर्थ खान श्रमिको की सहायता करने व उन्हे किसी अन्य कार्य में प्रशिक्षित करने के लिये धनबाद हस्पताल मे एक पुनर्वास केन्द्र स्थापित करने की योजना। कोयला खानो के ऊपर धरातल के स्नानगृहो के लिए तथा खानों के शिशु-गृहों के लिए नियम बनाये गये और लागू किये गये। सन् १९६६ मे ऊपरी धरातल के स्नानगृहों की सुविधाएँ प्रदान करने वाली कोयला खानो की सख्या २८४ थी। इसी प्रकार ४४० कोयला खानो मे तथा ३५३ अन्य खानो मे शिशु-गृहो की व्यवस्था थी। गोरखपुर श्रम-सगठन द्वारा कोयला खानो मे जो श्रमिक भरती होते है उनके कल्याण-कार्यो के लिये ३ कल्याण अधिकारियो की नियुक्ति की गई है। कोयला खान प्रॉवीडेण्ट फण्ड तथा बोनस योजना और खानों से मातृत्व-हित लाभ का सामाजिक सुरक्षा के अध्याय में उल्लेख किया गया है।

अभ्रक की खानो मे श्रम-कल्याण कार्य १९४६ का अभ्रक खान श्रम-कल्याण निधि अधिनियम

सरकार ने १९४६ मे अभ्रक खान श्रम-कल्याण अधिनियम भी पारित किया। इस अधिनियम के अन्तर्गत एक निधि की स्थापना की गई है, जिस निधि मे धन मूल्य अनुसार, एक आयात-निर्यात कर लगाकर सचित किया गया है। यह कर उस तमाम अभ्रक पर, जो भारत से निर्यात होता है, लगाया गया है। इस कर की दर ६¼ प्रतिशत से अधिक नही हो सकती। वर्तमान दर मूल्य अनुसार २¾% है। इस निधि का उपयोग अभ्रक खानो मे काम करने वाले श्रमिको के कल्याण हेतु होता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत सरकार न सलाहकार समितियाँ बनाई है जिनमे स एक बिहार के लिए, एक आन्ध्र के लिय तथा एक राजस्थान के लिये है। कोयला खानो का कल्याण कमिश्नर ही अभ्रक खानो का कल्याण कमिश्नर बना दिया गया है। निधि के १९६५–६६ के बजट मे ३३ लाख रुपये के व्यय की व्यवस्था थी। निधि की आय का अनुमान ३० लाख रुपये था। कल्याण कार्यो से सम्बन्धित श्रमिको को निम्नलिखित सुविधायें उपलब्ध है। चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओ के अन्तर्गत १०० पलगो वाला एक केन्द्रीय हस्पताल कर्मा (बिहार) मे है। १५ पलगो वाला एक हस्पताल टीसरी (बिहार) मे तथा १४ पलगो वाला एक हस्पताल कालीचेडू (आन्ध्र) मे है। गगापुर (राजस्थान) मे ३० पलगो वाला एक हस्पताल तथा केन्द्रीय हस्पताल कर्मा (बिहार) के साथ ४० पलगो वाला एक टी० बी० हस्पताल भी बन चुके है। अभ्रक खानो के श्रमिको के लिये नैलोर के टी० बी० हस्पताल तथा राँची के टी० बी० सेनिटोरियम मे भी पलग सुरक्षित किये गये है। अभ्रक खान के जो श्रमिक-क्षय रोग से पीडित हैं तथा इलाज करा रहे हैं उनके आश्रितो के लिए ५० रु० प्रति माह का निर्वाह भत्ता प्रदान किया जाता है। इनके अतिरिक्त १३ अचल-चिकित्सालय है—(३ आन्ध्र मे, ५ बिहार मे तथा ५ राजस्थान मे), ७ चल-चिकित्सालय हैं (१ आन्ध्र मे, ३ बिहार मे तथा ३ राजस्थान मे), १७ मातृत्व हित तथा शिशु-कल्याण केन्द्र है, (४ आन्ध्र मे, ५ बिहार मे तथा ८ राजस्थान मे) तथा २१ आयुर्वेदिक चिकित्सालय है (२ आन्ध्र मे, ७ बिहार मे और १२ राजस्थान मे)। प्रत्येक वर्ष अभ्रक खानो मे मलेरिया उन्मूलन कार्यवाहियाँ भी की जाती है। शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओ के अन्तर्गत ८ बहुउद्देशीय सस्थायें निधि द्वारा बिहार मे चलाई जा रही हैं। प्रत्यक मे एक वयस्क शिक्षा केन्द्र तथा एक महिला कल्याण केन्द्र है। इनमे मनोरजन की तथा शिक्षा की सुविधायें प्रदान की जाती है। सिलाई, कढाई, बुनाई आदि कक्षाओ का भी प्रबन्ध है। २ महिला केन्द्र आन्ध्र मे तथा ७ राजस्थान मे चालू है। राजस्थान मे २४ वयस्क शिक्षा केन्द्र हैं, ८ सामुदायिक केन्द्र है (१ आन्ध्र मे, तथा ७ बिहार मे), १४ प्रारम्भिक और प्राइमरी स्कूल हैं (६ आन्ध्र मे ६ बिहार मे तथा २ राजस्थान मे), ५ मिडिल और हाई स्कूल

है (१ आन्ध्र मे, २ बिहार में, तथा २ राजस्थान मे)। अभ्रक खानो के श्रमिको के बच्चो के लिये उच्च शिक्षा हेतु छात्र वृत्तियाँ भी प्रदान की जाती है। आन्ध्र मे स्कूल के बच्चो को किताबे, दूध, दोपहर का खाना, स्लेटें, कपडे, बस्ते आदि भी मुफ्त प्रदान किये जाते है। मनोरंजन सुविधाओं के अन्तर्गत अभ्रक-खान श्रमिकों के लिए ४ चलते-फिरते सिनेमा हैं (३ बिहार मे तथा १ राजस्थान मे)। यह विभिन्न अभ्रक खानो मे मुफ्त सिनेमा दिखाते है। खानों में मनोरंजन क्लब तथा रेडियो भी है। उपभोग की वस्तुओं के लिए एक चल दुकान भी है जिसमे सस्ते दामो पर वस्तुएं मिल जाती है। अहातों मे साग-सब्जी उगाने के लिये बीज भी बाँटे जाते है। पीने के पानी की व्यवस्था के लिए निधि द्वारा ५५ कुएँ बिहार मे तथा ५ आन्ध्र मे बनाये गये है और २ कुएँ बिहार मे बन रहे है। अभ्रक खान मालिकों को अनुमोदित योजना के आधार पर कुओं का निर्माण करने पर उपदान (लागत का ७५ प्रतिशत) दिया जाता है। इसके अन्तर्गत ३ कुएँ बिहार मे तथा ८ आन्ध्र मे बनाये गये हैं। उन क्षेत्रों मे जहाँ पानी का अभाव है वहाँ ट्रकों द्वारा पानी पहुँचाया जाता है। दुर्घटना से श्रमिक की मृत्यु पर उसकी विधवा एव बच्चो को वित्तीय सहायता उसी प्रकार दी जाती है जैसे कोयला खानो के श्रमिको को दी जाती है।

कोलार की सोने की खानों में और अन्य खानों में कल्याण कार्य

मैसूर मे कोलार की सोना खानो मे कई वर्षों से कल्याण-कार्य एक सगठित स्तर पर हो रहा है। इसके अन्तर्गत नि शुल्क व्यापक स्वास्थ्य सेवायें, मुफ्त मातृत्व-हित गृह, अनाज, शिक्षा व मनोरंजन की सुविधायें आदि की व्यवस्था है, जिनके लिये उपदान भी प्रदान किया जाता है। सब सुविधाओं से युक्त एक हस्पताल, २ चिकित्सालय; ८ प्राइमरी व मिडिल स्कूल, एक हाई स्कूल, २० मनोरंजन के क्लब जिनमें रेडियो, वाचनालय व पुस्तकालय आदि है, तीन कैन्टीन, चार मातृत्व-हित गृह, तीन शिशु-गृह तथा ४ सहकारी भण्डारों की व्यवस्था है। कल्याण कार्यो को सगठित करने के लिए केन्द्रीय कल्याण समिति भी बना दी गई है। हत्ती सोना खानो में सब सुविधाओं से युक्त एक हस्पताल, एक कैन्टीन, एक अनाज भण्डार, एक सहकारी भण्डार तथा साग सब्जियों के लिये एक दुकान की व्यवस्था की गई है। शिशु-गृह, मनोरंजन की सुविधायें, कमरे के भीतर व मैदान के खेल, मुफ्त सिनेमा आदि की सुविधायें भी है। मैंगनीज की ७६ खानों मे श्रम ब्यूरो द्वारा १९५७ मे एक जाँच की गई थी। इससे पता चलता है कि चिकित्सा की सुविधायें तो सभी मैंगनीज खानों में प्रदान की जा रही है, परन्तु मनोरंजन, शिक्षा व यातायात की सुविधायें केवल कुछ खानो मे ही पाई जाती है। अधिकतर खानो मे विश्राम स्थल भी पाये जाते है। सरकार ने अब कोयला और अभ्रक खानों की भाँति एक मैंगनीज श्रमिक कल्याण निधि स्थापित करने के लिये विधान बनाने का निर्णय कर लिया है। परन्तु अभी इस विधान को उस समय तक के

लिये स्थगित कर दिया है जब तक कि मैंगनीज का आयात बढ़ नहीं जाता और उसके मूल्यों मे स्थिरता नहीं आ जाती। कच्चे लोहे की ३६ खानों में भी एक जाँच की गई थी। इससे पता चलता है कि केवल ४ खानों मे हस्पताल या चिकित्सालय हैं। ११ खानों मे मनोरंजन की सुविधायें, १० मे शिक्षा की सुविधायें, ५ मे कैन्टीनें, ११ मे शिशुगृह तथा २३ मे विश्राम स्थल पाये जाते है। ठेके के श्रमिकों के लिये कल्याण सुविधायें बहुत कम हैं।

१९५६ मे एक कार्यदल ने कच्चे लोहे की खानों मे श्रमिकों की असन्तोष-जनक दिशा की ओर संकेत किया था और उनके लिये भी एक कल्याण निधि स्थापित करने की सिफारिश की थी। खानों पर त्रिदलीय औद्योगिक समिति ने भी १९६१ मे इस सिफारिश का अनुमोदन किया। परिणामस्वरूप १९६१ मे कच्चा लोहा खान श्रम-कल्याण उपकर अधिनियम पारित किया गया (Iron Ore Mines Labour Welfare Cess Act of 1961)। इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी भी खान मे उत्पादित कच्चे लोहे पर एक उपकर लगाया गया है और इस उपकर की राशि से कच्चा लोहा खान उद्योग मे लगे हुए श्रमिकों के कल्याण के लिये धन व्यय किया जायेगा। उपकर की अधिकतम दर ५० पैसे प्रति मैट्रिक टन निर्धारित की गई है। वर्तमान दर २५ पैसे प्रति मैट्रिक टन है। सन् १९६५–६६ मे निधि की आय और व्यय का अनुमान क्रमश ५८ लाख रुपये और २००६ लाख रुपये था। अधिनियम मे सलाहकार समितियों, निरीक्षकों, कल्याण प्रशासकों तथा अन्य अधिकारियों की नियुक्ति की भी व्यवस्था है।

१९५९ के खान शिशुगृह नियमों के अनुसार जो शिशुगृह बनाये गये है, उनकी संख्या १९६६ मे कोयले की खानों में ४४० और अन्य खानों मे ३५३ थी। खानों मे १९५५ के खान नियमों के अन्तर्गत पीने के पानी का प्रबन्ध, प्रारम्भिक चिकित्सा सहायता, शौचालय, विश्राम गृह, आदि की व्यवस्था भी की गई है। बडी बडी खानों मे कैन्टीनें भी खोली गई हैं और कल्याण अधिकारियों की नियुक्ति भी की गई है। सन् १९५९ की खनिक बूट समिति (Miners' Boot Committee) सिफारिशों के फलस्वरूप, एक खान श्रमिक को प्रतिवर्ष दो जोडे जूते प्रदान किय जाते है।

मालिकों द्वारा किए गए कल्याण कार्यों का आलोचनात्मक मूल्यांकन

यह देखा गया है कि अब तक मालिकों द्वारा किये गए कल्याण कार्य अनमने मन से तथा अहसान की भावना से किये गये हैं। उनके पीछे सेवा की सच्ची भावना का अभाव ही रहा है और जो कुछ भी कल्याण-कार्य उन्होंने किये हैं वे अरुचि से किये गये हैं। मालिकों द्वारा किये गये कल्याण-कार्यों को अधिकांश श्रमिक सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। यह शंका की गई है कि यदि श्रमिक सचेत नहीं रहेंगे तो जो भी कल्याण-कार्य हो रहा है उसके बदले उनकी मजदूरी कुछ अंश तक कम हो जायगी। श्रमिक यह भी अनुभव करते हैं कि मालिक अधिकतर

कल्याण कार्यों का उपयोग श्रमिक संघों के प्रभाव को कम करने के लिये तथा श्रमिकों को उनसे दूर रखने के लिये करते है तथा ऐसे श्रमिकों के विरुद्ध जो संघों के सदस्य होते है, भेदभाव की नीति बरतते हैं। जो कल्याण-कार्य ऐसी बदले की भावना से किये जाते है उनके अन्ततः अवश्य ही बुरे परिणाम निकलते है। श्रम अनुसन्धान समिति ने डॉ० बी० आर० सेठ के इस सम्बन्ध में विचार उद्धृत किये है। उनके शब्दों में, 'भारत मे उद्योगपतियों की एक बडी संख्या अब भी कल्याण-कार्यों को एक बुद्धिमत्तापूर्ण विवेश (*Wise Investment*) न समझकर निरर्थक दायित्व (*Barren-Liability*) समझती है।[7] बी० शिवाराव ने भी ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस के एक प्रतिनिधि मण्डल के विचार उद्धृत किये गये है, जो १९२७ मे भारत आया था[8], कि "जो कल्याण कार्य इस समय भारत में चल रहा है वह केवल एक भ्रम तथा जाल (Delusion and a Snare) है तथा कल्याण योजनाओं ने श्रम संघो के निर्माण को असम्भव कर दिया है।" श्रम अनुसन्धान समिति ने भी यह कहा है कि मालिकों की एक बडी संख्या कल्याण कार्य की ओर उदासीन व अनुत्सुक दृष्टिकोण रखती है और मालिक यह तर्क रखते है कि विश्राम स्थलों की व्यवस्था इसलिये नहीं है, क्योंकि कारखाने का सम्पूर्ण क्षेत्र ही श्रमिकों का है; शौचालयों का प्रबन्ध इस कारण नही किया गया है क्योंकि श्रमिक जगल में शौच जाना अधिक पसन्द करते है और क्योंकि कैन्टीनों व खेलो की सुविधाओं का श्रमिक उपयोग नहीं करते इसलिए इनकी कोई आवश्यकता नही है। इसलिये समिति ने यह विचार व्यक्त किया है कि, "यह स्पष्ट है कि जब तक कल्याण कार्यों के बारे में मालिकों के निश्चित उत्तरदायित्वों को कानून द्वारा स्पष्ट नहीं किया जायगा, तब तक इस प्रकार के मालिक उस मार्ग का अनुसरण नही करेंगे जिन पर उनके प्रगतिशील और दूरदर्शी भाई चल रहे हैं।" किन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ जागरूक मालिकों ने कुछ बहुत अच्छे कल्याण कार्यों की व्यवस्था भी की है। इसलिये इस शका का प्रमाणित होना या न होना विशिष्ट मालिकों व परिस्थितियों पर निर्भर करता है। अनेक मालिकों ने यह स्वीकार कर लिया है कि कल्याण कार्य स्वयं उनके ही लाभ के लिये है। यदि कुछ मालिकों को कल्याण कार्य लाभदायक प्रतीत होता है तो यह कोई कारण नही है कि श्रमिक, कल्याण कार्यों के चालू होने पर, शका प्रकट करे अथवा आपत्ति करें, विशेषकर जबकि यह योजना दोनों पक्षों के लिये लाभप्रद है। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि कल्याण कार्यों के प्रशासन में समस्त अधिकार मालिकों के ही हाथ मे नहीं होने चाहियें अपितु कर्मचारियों का भी पर्याप्त रूप मे प्रतिनिधित्व होना चाहिये।

समाज सेवा संस्थाओं द्वारा कल्याण कार्य

अनेक समाज सेवा संस्थायें भी कल्याण कार्य के क्षेत्र मे उपयोगी कार्य कर रही है। वे मालिकों और श्रमिकों दोनों की इस क्षेत्र में सहायता करती है

7. *Lebour Investigation Committee Report*. Page 349.
8. B. Shiva Rao : The Industrial Worker in India, Page 236.

और स्वय भी स्वतन्त्र रूप से कार्य करती हैं। ऐसी सस्थाओ के उदाहरण निम्नलिखित है —बम्बई समाज सेवा लीग जो "सरवेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी" (Servants of India Society) द्वारा प्रारम्भ की गई थी, तथा मद्रास व बगाल की अन्य इसी प्रकार की और लीगे, सेवासदन समितियाँ, बम्बई प्रैसीडेन्सी महिला परिषद्, मातृत्व हित व बाल कल्याण परिषद, 'वाई० एम० सी० ए०', दलित वर्ग सघ, मिशन समिति तथा अन्य कई प्रचारक समितियाँ, आदि। सन् १६१८ मे बम्बई समाज सेवा लीग दो जागरूक मिल मालिको को इस बात के लिये प्रेरित करने मे सफल हो गई थी कि मिल के कर्मचारियो के लाभार्थ जो दो कर्मचारी सस्थान चालू थे उनका प्रबन्ध और सगठन इस लीग को ही सौंप दिया जाये। इस बम्बई समाज सेवा लीग ने, जिससे स्वर्गीय एन० एम० जोशी का सम्बन्ध था, कई कार्यों को चलाया। उदाहरणार्थ—रात्रि पाठशालाओ द्वारा जनता मे शिक्षा का प्रचार, अनेक पुस्तकालय तथा मैजिक लालटेन की सहायता से व्याख्यान, लडको के लिये स्काउटिंग जन स्वास्थ्य की वृद्धि, श्रम-वर्ग के लिये खेल तथा मनोरजन, श्रमिको का दुर्घटनाओ के समय क्षतिपूर्ति दिलाना, सहकारी आन्दोलन को विस्तृत करना, आदि। बम्बई व पूना की सेवासदन समितियो ने महिलाओ व बालको के लिये सामाजिक शैक्षिक तथा चिकित्सा सम्बन्धी कार्य किये है। साथ ही समाज सेवको को प्रशिक्षण भी दिया गया है। बगाल के 'महिला सस्थान' (Women s Institute) ने गाँवो म जाकर शिक्षा तथा जन-स्वास्थ्य के काय का चलाने के लिये 'महिला समितियाँ' स्थापित की है। इन सभी सस्थाओं के कल्याण कार्यों का वास्तविक महत्व इस बात मे है कि इनसे कार्य करने तथा रहने की परिस्थितियो के उच्च स्तर स्थापित हो जाते हैं, जो प्रचलित होने के पश्चात् अन्त मे कानून द्वारा निर्धारित न्यूनतम स्तर को भी ऊँचा उठाने मे सहायक होते है।

नगरपालिकाओ द्वारा श्रम-कल्याण कार्य

कुछ नगरपालिकाओ द्वारा कर्मचारियो के कल्याण हेतु विशेष कदम उठाये गये है। कानपुर, मद्रास तथा कलकत्ता निगम तथा अजमेर नगरपालिका सहकारी साख समितियाँ चलाती है। बम्बई निगम ने एक विशेष कल्याण विभाग के निरीक्षण मे कल्याण कार्यों का एक जाल सा फैला रखा है। उसके अन्तर्गत १५ कल्याण केन्द्र है जो साधारणत मिल कर्मचारियो के चालो' मे स्थित है। इनमे कर्मचारियो के लिये कमरे के भीतर एव मैदान के खेल, शिक्षा सुविधायें, चलचित्र प्रदर्शन आदि की व्यवस्था है। एक नर्सरी पाठशाला तथा एक मातृत्व-हित केन्द्र भी चलाये जा रहे है। प्रत्येक क्षेत्र मे सहकारी समितियाँ स्थापित कर दी गई हैं। मद्रास निगम श्रम क्षेत्रो मे वयस्क शिक्षा के लिए अनेक रात्रि पाठशालायें चलाता है। श्रमिको के बालको के लिए एक शिशुगृह भी है और निगम की कार्यशाला मे एक कैन्टीन भी चालू है। शिशुगृहो का प्रबन्ध योग्य नर्स तथा

दो महिला सेविकाओं के हाथों में है। बालकों के लिये खेल के मैदान, पालनों व खिलौनों, स्नानगृहों आदि का भी प्रबन्ध है। बच्चों को बिना मूल्य भोजन व दूध दिया जाता है तथा एक नर्सरी कक्षा का भी प्रबन्ध है। निगम की पाठशालाओं में पढ़ने वाले निर्धन बालकों को दोपहर का भोजन मुफ्त दिया जाता है। कलकत्ता निगम भी रात्रि पाठशालायें चलाता है। अभी हाल ही में दिल्ली में वयस्क शिक्षा की सुविधायें प्रारम्भ की गई है। लगभग सारी नगरपालिकाओं और निगमों में प्रॉविडेण्ड फण्ड योजना लागू है। कानपुर, अजमेर, नागपुर, मद्रास, कलकत्ता, लखनऊ तथा अहमदाबाद नगरपालिकाओं और निगमों में साधारणत. उन व्यक्तियों के लिये जो प्रॉविडेण्ट फण्ड योजना के सदस्य होने की शर्तें पूरी नहीं करते, अवकाश प्राप्ति धन देने की व्यवस्था भी है।

श्रमिक संघों द्वारा श्रम-कल्याण कार्य

श्रमिक संघों द्वारा किये गये कल्याण कार्यों को देखते हुए स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि श्रमिक संघों के कार्य व क्षेत्र के सीमित होने के कारण उनके कल्याण कार्यों में अनेक रुकावटें पड़ती हैं। यह समझा जाता है कि श्रमिक संघ केवल मालिकों से लाभ लेने के साधन मात्र हैं तथा परस्पर सहायता से हो सकने वाले लाभप्रद कार्यों को उपेक्षित कर सकते हैं। अहमदाबाद सूती कपड़ा मिल मजदूर परिषद्, कानपुर की मजदूर सभा तथा इन्दौर की मिल मजदूर यूनियन जैसे केवल कुछ ही श्रमिक संघों ने श्रम-कल्याण कार्यों के लिये कदम उठाये हैं।

अहमदाबाद की सूती कपड़ा मिल मजदूर परिषद् जिसे "मजूर महाजन" कहते हैं, कल्याण कार्यों पर अपनी आय का ६० प्रतिशत से ७० प्रतिशत तक व्यय करती है। यह राशि लगभग चालीस हजार रुपये तक होती है। इस कल्याण कार्य के अन्तर्गत तीन दिन की तथा तीन रात्रि की पाठशालायें, श्रमिक वर्ग की लड़कियों के लिये एक आवास युक्त बोर्डिंग हाऊस, लड़कों के लिये दो अध्ययन कक्ष, ६६ वाचनालय व पुस्तकालय, २७ शारीरिक शिक्षा व समाज केन्द्र, १४ व्यायामशालायें आदि बने हुये हैं। छात्रवृत्तियाँ भी प्रदान की जाती है तथा दर्जी के काम में व्यावसायिक प्रशिक्षण देने की भी योजना है। इस उद्देश्य के लिये लगभग २५ विशेष निरीक्षकों तथा कुछ महिला कर्मचारियों की नियुक्ति की गई है। ये निरीक्षक प्रतिदिन श्रमिकों के सम्पर्क में आते है तथा उनके रहने के क्षेत्रों में जाकर उनकी कठिनाइयों को सुलझाने में सहायता करते हैं और श्रमिकों के अन्त. शक्ति और सामाजिक स्तर को ऊपर उठाने के हेतु उनके जीवन के बहुउद्देशीय पहलुओं पर ध्यान देते है। १९५५ से बाल केन्द्र भी संगठित किये गये है जिनकी संख्या ३५ है। यह परिषद् विभिन्न बस्तियों में पाँच चिकित्सालय चलाती है जिनमें एक एलोपैथिक, एक होम्योपैथिक व तीन आयुर्वेदिक है। साथ ही एक मातृत्वहित-गृह भी है। परिषद् द्वारा एक कर्मचारी सहकारी बैंक भी चालू किया गया है। इस बैंक से ३७ आवास समितियाँ और ३१ साख समितियां सम्बद्ध (Affiliated)

हैं। अपने सदस्यों को परिषद् कानूनी सहायता भी देती है तथा उनकी ओर से विवादों का मालिकों से फैसला कराने के लिये कार्य करती है। मद्यवाद तथा नागरिकता में श्रमिकों को प्रशिक्षण देने की भी व्यवस्था करती है। "मजूर संदेश" नाम की सप्ताह में दो बार एक पत्रिका भी छापती है।

कानपुर की "मजदूर सभा" एक वाचनालय, एक पुस्तकालय तथा एक चिकित्सालय श्रमिकों के लिये चलाती है। कुछ रेलवे कर्मचारी संघों ने सहकारी समितियां तथा अनेक प्रकार की निधियां विशेष लाभों के लिये स्थापित की हैं, उदाहरणार्थ—कानूनी सहायता, मृत्यु तथा अवकाश के समय सहायता, बेरोजगारी व बीमारी लाभ तथा जीवन बीमा आदि। उत्तर-प्रदेश में भारतीय श्रम संगम ने लगभग ४८ केन्द्र खोले हैं जिनमें अनेक प्रकार के कल्याण कार्य चालू हैं। यह भी मालूम हुआ है कि भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ कांग्रेस की असम शाखा ने एक समाज कल्याण संस्थान सरकारी सहायता से प्रारम्भ किया है जहाँ प्रत्येक चाय बागान के कुछ श्रमिकों को सामाजिक व कल्याण कार्यों में प्रशिक्षित करने की व्यवस्था है। इन्दौर के मिल मजदूर श्रम संघ ने एक श्रम-कल्याण केन्द्र खोला है जो तीन विभागों में कार्य कर रहा है बाल मन्दिर, कन्या मन्दिर तथा महिला मन्दिर। बाल मन्दिर में चार वर्ष से लेकर १० वर्ष की आयु तक के बालकों को लिखना, पढ़ना, गिनती आदि सिखाया जाता है तथा खेलों और शारीरिक शिक्षा पर भी ध्यान दिया जाता है। बालकों के लिये खेल का मैदान भी है। नृत्य संगीत तथा सामाजिक उत्सव भी आयोजित किये जाते हैं। कन्या मन्दिर में श्रमिक वर्ग के परिवारों की ऐसी लड़कियों को, जिनकी आयु १० से १६ वर्ष तक की होती है, प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है तथा सिलाई, बुनाई कताई आदि कार्य सिखाये जाते हैं। स्वास्थ्य विज्ञान व बच्चों की देखभाल का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। महिला मन्दिर में भी इसी प्रकार की शिक्षा महिला श्रमिकों को दी जाती है। इसके अतिरिक्त संघ एक पुस्तकालय, एक वाचनालय तथा रात्रि कक्षायें भी चलाता है और मजदूर क्लबों में कमरे के भीतर एवं मैदान के खेलों की भी व्यवस्था की गई है।

किन्तु साधारणतः श्रमिक-संघों ने कल्याण कार्यों में अधिक रुचि नहीं ली है। इन कार्यों में सबसे बड़ी बाधा यह है कि श्रम संघों के पास धन और योग्य नेताओं का अभाव है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि श्रमिक संघ कल्याण कार्यों को अपनायें तो वे अपनी स्थिति को विशेष रूप से दृढ़ कर सकेंगे।

कल्याण कार्यों के कुछ विशेष पहलू

कैन्टीनें (Canteens)

अब हम अधिक विशिष्ट रूप से अनेक छोटे-छोटे शीर्षकों के अन्तर्गत, श्रम-कल्याण के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं का संक्षेप में उल्लेख करेंगे। सबसे पहले यहाँ हम कैन्टीनों की व्यवस्था को लेते हैं। सारे संसार में अब इस बात को मान लिया

गया है कि हर औद्योगिक संस्था का कैन्टीन एक आवश्यक अंग है। ये श्रमिकों के स्वास्थ्य, कार्यक्षमता तथा उनके हित की दृष्टि से अत्यधिक लाभदायक होती हैं। एक औद्योगिक कैन्टीन के उद्देश्य हैं—श्रमिकों को अपूर्ण व असन्तुलित आहार के स्थान पर सन्तुलित आहार उपलब्ध करना, सस्ता तथा स्वच्छ भोजन प्रदान करना और काम करने के स्थान के निकट ही विश्राम करने का अवसर देना, फैक्टरी में कई घण्टे काम करने के पश्चात उनके काम के स्थान से आने-जाने की कठिनाइयों को दूर करना और इस प्रकार उनके समय की बचत करना, भोजन एवं खाद्य सामग्री प्राप्त करने में जो कठिनाइयां होती हैं उनको दूर करना, आदि। इसके अतिरिक्त कैन्टीन द्वारा एक ऐसा मिलन स्थान प्राप्त हो जाता है जिसमें कारखाने के हर विभाग के श्रमिक परस्पर मिल सकते है, तथा जहाँ वे न केवल खाना खाते है वरन् बातचीत भी कर सकते हैं और विश्राम करके अपनी थकान दूर कर सकते है। इस प्रकार कैन्टीन का श्रमिकों के आत्म-विश्वास तथा हौसले पर अधिक प्रभाव पड़ता है। "कैन्टीनों की स्थापना की ओर ध्यान देना राज्य का विशेष कार्य माना जाना चाहिए और कैन्टीन का चलाना मालिकों द्वारा एक राष्ट्रीय निवेष समझना चाहिये।"[9]

योरुप और अमरीका के देशों के श्रमिकों में कैन्टीन अत्यधिक लोकप्रिय है तथा ये पोषण व आहार विद्या पर प्रयोग करने वाली प्रयोगशालायें मानी जाती हैं। ये औद्योगिक कल्याण के एक साधन के रूप में निरन्तर प्रगति कर रही है। ब्रिटेन में सन् १९३७ के फैक्टरी अधिनियम के अन्तर्गत मालिकों को भोजनालय के लिये स्थान देना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त वहाँ फैक्टरी निरीक्षकों को, अभी हाल ही में, विशेष कारखानों में उचित तथा अच्छी कैन्टीनें बनवाने की आज्ञा देने के अधिकार दिये गये है। किन्तु भारत में श्रमिकों तथा मालिकों ने कैन्टीनों द्वारा की गई मूल्यवान् सेवाओं को नहीं पहचाना है। अधिकांश स्थानों में कैन्टीनें चालू नहीं की गई है तथा जहाँ है भी वे अधिकतर ठेकेदारों द्वारा चलाई जाती है, जो निजी चाय की दुकानों के समान भी अच्छी नहीं होतीं। ऐसी कैन्टीनों में न तो सस्ता और अच्छा भोजन ही मिलता है और न ही उनका वातावरण स्वच्छ, स्वस्थ, तथा आकर्षक होता है। ठेकेदार श्रमिकों के हित की अपेक्षा अपने लाभ की ओर अधिक ध्यान देते हैं। परिणामस्वरूप दोपहर के भोजन को श्रमिक अपने साथ लाना अधिक उचित समझते हैं तथा कैन्टीनें श्रमिकों में लोकप्रिय नहीं हो पाई है। अधिकांश श्रमिक इस बात से भी अनभिज्ञ है कि उचित तथा पोषक आहार का उनके स्वास्थ्य पर क्या लाभप्रद प्रभाव पड़ता है। इसलिये औद्योगिक संस्थानों में अच्छी कैन्टीनें खोली जानी अत्यन्त आवश्यक है।

एक कैन्टीन को सफलतापूर्वक चलाने के लिये कुछ विशेष बातें होनी आवश्यक है। कैन्टीन खुली, साफ तथा स्वच्छ होनी चाहिये और फैक्टरी के

9 *Planning for Labour* (I. L. O.), 1947, Page 107.

अन्दर होनी चाहिये। उसमे मित्रता का वातावरण पैदा करने के लिये पूरा प्रयत्न होना चाहिए, जिससे श्रमिक वास्तव में शान्ति व विश्राम का अनुभव कर सकें। कैन्टीन को लाभ के आधार पर नही चलाना चाहिये तथा वहाँ बनने वाली वस्तुयें अच्छे प्रकार की होनी चाहिये। मालिको को उसके लिये आर्थिक सहायता देनी चाहिये जिससे कैन्टीन सस्ते मूल्य पर वस्तुये बेच सकें। कारखाने के प्रबन्धकर्त्ता भवन, मेज-कुर्सियाँ तथा चीनी के बर्तन आदि भी बिना मूल्य के दे सकते है। कैंटीन मैनेजर तथा अन्य कर्मचारियो का वेतन कारखाने के सामान्य वेतन बिल मे सम्मिलित किया जा सकता है। यह उल्लेखनीय है कि कुछ मालिको ने, जैसे – टाटा लोहा और इस्पात कम्पनी, देहली कपडा मिल, बम्बई मे लीवर ब्रदर्स के तथा 'भारतीय चाय बाजार विस्तार बोर्ड' ने अपने कर्मचारियो के लिये बहुत अच्छी कैन्टीनो की व्यवस्था की है। अनुभव द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि जो कैन्टीनें केवल लाभ अर्जित करने के लिये नही अपितु उचित मूल्यो पर स्वास्थ्यकर भोजन दने के लिय बनाई जाती हैं, श्रमिक उन अच्छी कैंटीनो के उपयोग करने के विरोध म नही होने। इसलिए मालिको की यह आपत्ति उचित नही है कि श्रमिको म कैन्टीन प्रयोग करन की प्रवृत्ति अभी विकसित नही हो पाई है तथा व अपन अपन घरो स भोजन साथ लाना अधिक पसन्द करते है। यह भी उल्लेखनीय है कि भारत सरकार न औद्योगिक कैन्टीनो के महत्व को पूर्णत स्वीकार कर लिया है। १९४८ के कारखाना अधिनियम तथा १९५२ के खान अधिनियम के अनुसार राज्य सरकारो को यह अधिकार दिया गया है कि वे तमाम ऐसे कारखानो और खानो मे जहाँ २५० या इससे अधिक श्रमिक काम कर रहे हो, कैंटीनें स्थापित करने के नियम बना सकती है। इन नियमो में निम्न बाते होनी चाहिय—कैन्टीनें स्थापित करन की तिथि, निर्माण स्थान, मेज कुर्सी तथा सामान का स्तर आदि, भोजन व उसके मूल्य, प्रबन्धकर्त्ता समिति का सविधान तथा इस समिति में श्रमिको का प्रतिनिधित्व, आदि। राज्य सरकारो न इस सम्बन्ध मे नियम बना दिय है तथा उन तमाम कारखानो और खानो म जिनमे २५० या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हो, कैन्टीनो की स्थापना अनिवार्य कर दी गई है। १९५१ के बागान श्रम अधिनियम के अन्तर्गत भी मालिको को उन सभी बागान मे जहा १५० या उससे अधिक श्रमिक कार्य करते हो, कैन्टीनें स्थापित करना अनिवार्य है।

शिशुगृह (Creches)

जहा तक शिशुगृहो का प्रश्न है भारत सरकार ने कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारो को कुछ नियम बनाने के अधिकार दिये है। राज्य सरकारें यह नियम बना सकती है कि ऐसे तमाम कारखानो मे जहा ५० या इससे अधिक महिलाये काम करती है उनके ६ वर्ष से कम के बालको के लिये एक अलग उचित कमरा सुरक्षित कर देना चाहिये। ऐसे कमरो के स्तर के लिये और बच्चो

की देखरेख के लिये भी नियम बनाये जा सकते हे। अधिकाश राज्यो ने इस अधिकार के अन्तर्गत नियम बनाये भी है। उत्तर प्रदेश मे मातृत्व-हित-लाभ अधिनियम के अन्तर्गत उन तमाम कारखानो मे जिनमे ५० या इससे अधिक महिला श्रमिक कार्य करती है एक शिशुगृह खोलना आवश्यक है। इसी प्रकार के उपबन्ध १९५२ के खान अधिनियम तथा १९५१ के बागान श्रम अधिनियम मे भी है। परन्तु जैसा कि श्रम अनुसधान समिति ने भी कहा था, केवल कुछ कारखानो को छोडकर अधिकाँश मे शिशुगृह उचित प्रकार से स्थापित नही किये गये है। साधारणत शिशुगृह कारखानो के उपेक्षित स्थानो पर होते है तथा कार्य करने के स्थान से भी दूर होते है। उनमे बालको को बहलाने के लिये खिलौने तक नही होते तथा बच्चो की देख-रेख के लिये भी कोई व्यक्ति नही होता। यदि कोई आया या नर्स होती भी है तो वह बालको की आवश्यकता की ओर पूर्ण रूप से ध्यान नही देती है। साधारणत इस कार्य के लिये नर्सों को कम वेतन मिलता है। जिन्हे अच्छे शिशुगृह कहा जा सकता है, वहाँ भी बच्चो की देख-रेख भली प्रकार नही होती। पालने बहुत कम होते है तथा बच्चे जमीन पर धूल मे पडे रहते है। अगर कोई अधिकारी या समिति निरीक्षण करती है तो ऊपरी दिखावट तो काफी कर दी जाती है परन्तु फिर भी स्थिति सन्तोषजनक नही दिखाई पडती। इस प्रकार जहाँ नियम लागू भी किये गये है वहाँ यह देखा गया है कि केवल नियम के शब्दों को निभाया गया है और उनके पीछे छिपी हुई मूल भावना की उपेक्षा की गई है। अनेक मालिक शिशुगृहो की स्थापना के उत्तरदायित्व से बचने के लिये यह कह देते हैं कि उनके कारखाने मे ऐसी स्त्रिया काम मे लगी हैं जो या तो अविवाहित है या विधवा है या माता बनने के योग्य आयु से अधिक आयु वाली है। इसलिये शिशुगृहो की कोई आवश्यकता नही है।

शिशुगृहो का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि माताओ की कार्य-कुशलता निस्सदेह इस बात पर निर्भर करती है कि उन्हे अपने बच्चो की ओर से चिन्ता न हो और यह विश्वास हो कि उनके बच्चे सुरक्षित है तथा उनकी उचित प्रकार से देखभाल हो रही है। जब शिशुगृह नही होते है तब स्त्रियाँ अपने पास काम के समय भी मशीनो के निकट अपने बच्चो को रखती है, अथवा इससे भी बुरी बात यह है कि उन्हे अफीम खिलाकर घर पर ही छोड देती है। किन्तु अब, जैसा कि कल्याण कार्यों के अन्तर्गत उल्लेख किया गया है, अधिकाँश मिलो मे तथा खानो मे शिशुगृहो की व्यवस्था कर दी गई है। मदुरा मिल्स, बकिंघम एण्ड कर्नाटक मिल्स, देहली कपडा मिल आदि ऐसे कुछ स्थानो पर शिशुगृहों की अत्यन्त सन्तोष-जनक व्यवस्था है। इन मिलो मे बच्चो के लिये सब सुविधाओ से युक्त शिशुगृह है। बच्चो के लिये दूध का भी प्रबन्ध है। परन्तु बागान मे शिशुगृहो की व्यवस्था नही है और कुछ स्थानो पर इनकी अत्यन्त असन्तोषजनक व्यवस्था है। कारखाना, बागान तथा खान अधिनियमो मे शिशुगृहो की स्थापना के लिये कुछ निश्चित स्तर

बना दिये गये हैं। यह आशा की जाती है कि शिशुगृहों की उन्नति के लिये पर्याप्त पग उठाये जायगे।

मनोरंजन सुविधाएं (Recreational Facilities)

मनोरंजन की सुविधा जैसा श्रम अनुसंधान समिति ने भी कहा है बहुत ही महत्वपूर्ण और उपयोगी होती है। अज्ञानी श्रमिकों को शिक्षा व प्रशिक्षण देने में भी इनका काफी महत्व है। कारखानों और खानों में अधिक घण्टे काम करने से जो ऊब थकान और शारीरिक क्लान्ति उत्पन्न हो जाती है उनको मनोरंजन सुविधायें कम कर सकती हैं तथा श्रमिक के जीवन में प्रसन्नता और शान्ति लाने में सहायक सिद्ध होती है। साधारण औद्योगिक श्रमिक धूल शोर तथा गर्मी से परिपूर्ण वातावरण में कार्य करता है तथा ऐसे भीड़ भाड़ वाले अस्वच्छ मकानों में रहता है जिन्हें काल कोठरी कहना अतिशयोक्ति न होगा। श्रमिक जो गांव से आते हैं अपने आप को नगरीय या औद्योगिक वातावरण के अनुकूल बनाने में कठिनाई अनुभव करते हैं। जिस स्थान पर वह कार्य करते हैं वह उनके घरों से प्रायः दूर होता है और वह अपने मित्रों व सम्बन्धियों आदि से महीनों दूर रहते हैं। साधारण सामाजिक जीवन से व इस प्रकार वंचित रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अधिकांश श्रमिक कई दुर्गुणों के शिकार हो जाते हैं। जब तक श्रमिकों को इन दुर्गुणों से दूर नहीं रखा जायगा तथा उनके मनोरंजन की व्यवस्था नहीं की जाएगी जिससे ये अपने खाली समय को अच्छे वातावरण में व्यतीत कर सकें तब तक इन लोगों के जीवन स्तर को ऊंचा करने में कोई भी युक्ति सफल नहीं हो सकती। मनोरंजन तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम की सुविधायें जैसे विभिन्न प्रकार के कमरे और मैदान के खेल रेडियो भ्रमण व्याख्यान संगीत सभा सिनेमा प्रदर्शनी वाचनालय पुस्तकालय नाटक अवकाश गृह आदि इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हो सकते हैं। अनेक दुर्गुणों को जैसे शराब जुआ तथा विशेषकर वेश्यावृत्ति को जो श्रम क्षेत्रों में स्त्री व पुरुषों की संख्या में असमानता होने के कारण काफी पाई जाती है दूर करने में भी मनोरंजन सुविधायें सहायक होती हैं। उद्योगों में अधिक यन्त्रीकरण हो जाने से तथा कार्य के घंटों में कमी हो जाने से श्रमिकों का समय अब पहले की अपेक्षा अधिक खाली रहता है। यह बात महत्वपूर्ण है कि इस खाली समय का किस प्रकार उपयोग किया जाता है। यह कहा जाता है कि किसी भी देश की सभ्यता तथा कार्य क्षमता का कसौटी यही है कि उस देश में खाली समय का उपयोग किस प्रकार किया जाता है। काम दिन की समाप्ति पर तथा दोपहर को विश्राम के घंटे आदि में जो खाली समय रहता है उसमें मनोरंजन सुविधाओं की व्यवस्था से श्रमिकों के स्वास्थ्य में उन्नति होगी तथा उनके ज्ञान में भी वृद्धि होगी तथा एक स्थायी और संतोषी श्रमिक वर्ग बन सकेगा इस भांति मालिक मजदूर सम्बन्ध भी सौहार्द्रपूर्ण होंगे और उत्पादिता में वृद्धि होगी।

१६२४ के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने श्रमिकों के अवकाश के समय का उपयोग करने के हेतु कुछ सुविधाओं में वृद्धि करने के लिये एक सिफारिश की थी। उस सिफारिश में उल्लेख किया गया है कि "अपने अवकाश के समय में श्रमिकों को अपनी व्यक्तिगत रुचि के अनुसार शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक शक्तियों का स्वतन्त्रतापूर्वक विकास करने का अवसर मिलता है। इस प्रकार का विकास सभ्यता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है''''''श्रमिकों के अवकाश के समय का सबसे अच्छा उपयोग यह हो सकता है कि श्रमिक के लिये उसकी रुचियों के अनुसार कुछ न कुछ साधनों की व्यवस्था की जाय। इस प्रकार श्रमिक पर उसके साधारण कार्य से जो भार पड़ता है उसमें भी कुछ कमी होगी और इससे उसकी उत्पादन क्षमता बढ़ जायेगी तथा उत्पादन अधिक होगा। इस प्रकार से यह सब साधन कार्य के आठ घण्टों में श्रमिक से अधिक से अधिक अच्छा कार्य लेने में सहायक हो सकते हैं।" यह विषय अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के १६४७ के ३० वे अधिवेशन और १६५६ के ३६ वे अधिवेशन द्वारा फिर विचार के लिए रखा गया। १६५६ के अधिवेशन ने, सस्थानों में या उनके समीप श्रमिकों के लिए मनोरजन की सुविधाओं की महत्ता पर बल दिया और इस बात की सिफारिश की कि इन सुविधाओं के प्रशासन में श्रमिकों का भी हाथ होना चाहिए, परन्तु उनके लिए यह बन्धन नहीं होना चाहिए कि वे इन सुविधाओं का आवश्यक रूप से लाभ उठायें। प्रारम्भिक व्यय और अनुरक्षण प्रभार (Maintenance Charges) तो मालिकों को वहन करना चाहिए और दिन-प्रतिदिन का व्यय सदस्यता शुल्क, खेल शुल्क आदि के रूप में श्रमिकों द्वारा उठाया जा सकता है।

भारत में राज्य द्वारा अथवा मालिकों द्वारा मनोरजन सुविधाओं पर बहुत कम ध्यान दिया गया है, यद्यपि, जैसा कि "मालिकों के कल्याण कार्य" के अन्तर्गत उल्लेख से स्पष्ट है, कई स्थानों पर अच्छे कार्य भी किये गये हैं। सरकार ने भी अनेक राज्यों के श्रम-कल्याण केन्द्रों में मनोरजन सुविधाओं की व्यवस्था की है। कुछ मालिक शिकायत करते हैं कि श्रमिकों में क्लब लोकप्रिय नहीं है। इसका कारण यह है कि इन केन्द्रों में या तो अच्छा प्रबन्ध नहीं होता या इनमें टेनिस, बिलयर्ड्स आदि जैसे आधुनिक खेलों की व्यवस्था होती है जिन्हें खेलना श्रमिकों की क्षमता के बाहर है। जहाँ कहीं भी उचित मनोरजन की व्यवस्था है तथा प्रबन्ध ठीक है, वहाँ मनोरंजन सुविधायें श्रमिकों तथा उनके परिवारों में बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुई है। श्रम अनुसधान समिति के विचार में मनोरजन सुविधाओं को मालिकों के एक ऐच्छिक कार्य के रूप में माना जाना चाहिये, क्योंकि उनके लिये कानून द्वारा कोई नियम बनाना कठिन है। मनोरजन की व्यवस्था करने में अधिक लागत नहीं आती; लेकिन श्रमिकों की कार्य-कुशलता तथा मनोवृति पर इसके प्रभाव बहुत अच्छे पड़ते हैं।

चिकित्सा सुविधायें (Medical Facilities)

चिकित्सा सुविधाओं और स्वच्छ वातावरण का जीवन में अत्यधिक महत्व

है। रॉयल श्रम आयोग ने इस बात पर जोर दिया था कि औद्योगिक मजदूरों के स्वास्थ्य का महत्व स्वयं उनके ही लिये नहीं है अपितु उसका सम्बन्ध साधारणतः औद्योगिक विकास व प्रगति से भी है। बीमारी तथा श्रमिकों की शारीरिक दुर्बलता अनेक बुराइयों का कारण बन जाती है। इन्हीं के कारण अनुपस्थिति होती है, नैतिकता गिर जाती है तथा समय की पाबन्दी नहीं हो पाती। परिणाम स्वरूप उत्पत्ति कम होती है, काम बिगड़ जाता है तथा मालिक मजदूरों के सम्बन्ध खराब हो जाते है। भारत मे श्रमिकों के स्वास्थ्य पर कई बातों का बुरा प्रभाव पड़ता है जैसे–अस्वस्थ जलवायु मे काम करना, कारखानों मे अस्वास्थ्यकर दशाये, गर्म देश के रोग और श्रमिकों की अज्ञानता व निर्धनता के कारण बीमारी, काम करने के अधिक घण्टे कम मजदूरी तथा उनकी प्रवासिता, जिसके कारण व गाँवों से आते हैं तथा शहरों के जीवन को अपने स्वास्थ्य के लिये अनुकूल नहीं पाते, आदि। इसलिये श्रमिकों के लिये देश मे चिकित्सा सुविधाओं की व्यवस्था करना एक महत्वपूर्ण कार्य है।

सारे देश म चिकित्सा व्यवस्था की काफी कमी है और मालिकों द्वारा दी गई सुविधाये भी अपर्याप्त ह। यहाँ यह भी प्रश्न उठता है कि चिकित्सा सुविधाओं के लिए व्यय के वहन करने का उत्तरदायित्व कहा तक मालिकों पर होना चाहिये। इस बात को सब मानते हैं कि यह कर्त्तव्य मालिकों का ही है कि वह अपने श्रमिकों के ऐसे शारीरिक कष्टों का जो प्रत्यक्ष रूप से औद्योगिक रोजगार के कारण उत्पन्न होते है निवारण करे। दूसरी ओर समाज का भी यह कर्त्तव्य है कि औद्योगिक रोजगार तथा इससे उत्पन्न हुई बुराइयों का उत्तरदायित्व कुछ अपने ऊपर भी ले और इस प्रकार समाज पर भी इस बात का भार होना चाहिये कि वह कुछ सीमा तक चिकित्सा सुविधाओं की लागत वहन करे। सरकार ने इस बात को माना है और अब कर्मचारी राज्य बीमा योजना लागू होने के पश्चात् चिकित्सा सहायता मालिकों का उत्तरदायित्व न रहेगा। परन्तु श्रम अनुसन्धान समिति ने कहा है कि "चिकित्सा सुविधायें प्रदान करना मुख्यतः राज्य का उत्तरदायित्व होने पर भी इसमे मालिकों तथा श्रमिकों को स्वयं भी सहायता करनी चाहिये।" कुछ ऐसी चिकित्सा सुविधायें भी है जो केवल मालिकों के उत्तरदायित्व मे ही आती ह विशेषकर दुर्घटनाओं अथवा आकस्मिक बीमारियों के समय प्राथमिक चिकित्सा सहायता की व्यवस्था, ऐम्बुलेंस की व्यवस्था औद्योगिक स्वच्छता के स्तर को बनाये रखना आदि मालिकों का ही कार्य है। भारत में कानून द्वारा तो मालिकों पर केवल इस बात का उत्तरदायित्व सौंपा गया है कि वह प्राथमिक चिकित्सा की सुविधाओं की व्यवस्था करें और इसके लिये फैक्टरी म कुछ सामान रखे। परन्तु यह देखा गया है कि ऐसे सामान की उचित व्यवस्था नहीं होती है और अगर सामान होता भी है तो आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग नहीं किया जाता। अनेक स्थानों पर एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं होता जिसको इस

सहायता दे सके। इस प्रकार कानून की ये धारायें उचित प्रकार से कार्य रूप में परिणत नहीं की गई है। किन्तु फिर भी जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है अनेक मालिकों ने श्रमिकों के लिये हस्पताल तथा चिकित्सालयों की व्यवस्था की है, यद्यपि उनमें से अधिकांश की दशा सन्तोषजनक नहीं है। स्वास्थ्य निरीक्षण तथा विकास समिति (भोर समिति) की सिफारिशों के परिणामस्वरूप देश में चिकित्सा व्यवस्था की उन्नति की ओर कुछ पग उठाये गये थे। कर्मचारी राज्य बीमा योजना में कारखाना श्रमिकों के लिये बीमारी में, रोजगार से उत्पन्न क्षति में तथा प्रसव के समय चिकित्सा सुविधायें दी गई है। इन सुविधाओं से भी श्रमिक के स्वास्थ्य में उन्नति होनी चाहिये। केन्द्रीय सरकार ने एक औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान सगठन (Industrial Hygiene Organisation), एक केन्द्रीय श्रम संस्थान (Central Labour Institute), तथा सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण का एक राष्ट्रीय म्यूजियम बम्बई में स्थापित किये है। इनके द्वारा अनेक सकटग्रस्त उद्योगों में अन्वेषण किया गया है। औद्योगिक कर्मचारियों को कल्याण, स्वास्थ्य तथा सुरक्षा कार्यों की शिक्षा देने के लिये १९६५ में तीन क्षेत्रीय श्रम संस्थायें खोली गई है जिनमें से एक कानपुर में, एक कलकत्ता में तथा एक मद्रास में है। सन् १९६६ में, बम्बई में एक केन्द्रीय श्रम संस्था की स्थापना की गई है। प्रत्येक संस्था में एक महत्वपूर्ण अनुभाग है—औद्योगिक सुरक्षा, स्वास्थ्य तथा कल्याण केन्द्र। इस बात पर भी जोर दिया जा रहा है कि एक औद्योगिक चिकित्सा सेवा का ठोस आधार पर विकास किया जाये। कुछ राज्यों में फैक्टरियों के चिकित्सा निरीक्षकों की भी नियुक्तियाँ की गई है।

नहाने धोने की सुविधायें (Washing and Bathing Facilities)

कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत यह आवश्यक कर दिया गया है कि उस प्रत्येक कारखाने में जहाँ ऐसा कोई काम हो रहा है जिससे श्रमिकों का किसी हानिप्रद या गन्दी वस्तु से सम्पर्क होता है वहाँ श्रमिक को पर्याप्त मात्रा में धोने योग्य जल तथा उसके प्रयोग के लिये उचित स्थान एवं सुविधायें दी जानी चाहिये। लगभग सारे कारखाने धोने के लिये जल प्रदान करते है परन्तु साबुन, सोडा तथा तौलिये, जो कि आवश्यक है, नहीं दिये जाते। कई स्थानों पर नलों, बाल्टियों तथा चिलमचियों की संख्या पर्याप्त नहीं है। केवल कुछ ही स्थानों पर धोने की सुविधायें पूर्णरूप से सन्तोषजनक है। कारखाने के भीतर नहाने की व्यवस्था बहुत कम मालिकों ने प्रदान की है, यद्यपि ये सुविधायें अत्यन्त आवश्यक हैं क्योंकि, जैसा कि रॉयल श्रम आयोग का कथन है, कि जो श्रमिक भीड़-भाड़ के क्षेत्रों में रहते हैं उनके आवासों पर धोने आदि की सुविधायें अपर्याप्त है, अतः स्नान की सुविधाओं से उनको काफी आराम मिलेगा और स्वास्थ्य तथा कार्य-कुशलता में वृद्धि होगी। खानों में, जहाँ स्नान की सुविधायें अत्यन्त आवश्यक है, वहाँ केवल कुछ खानों के मालिकों ने ही खानों के ऊपर स्नानगृहों (Pithead baths) को

व्यवस्था की है। केन्द्रीय सरकार ने कोयला खानों के लिये स्नानगृह या स्थापित करने के लिये १६५६ में नियम बनाये हैं (Coal Mines Pithead Bath Rules, 1959) और उनके स्तर भी निर्धारित कर दिये हैं। १६६६ में ऐसी कोयला खानों की संख्या, जहाँ स्नानगृहों की व्यवस्था थी, २८४ थी। इस सम्बन्ध में भरिया कोयला क्षेत्र में टाटा की खानों का विशेषकर उल्लेख नहीं किया जा सकता जहाँ पर ५२ श्रमिक एक साथ फुव्वारे से स्नान कर सकते हैं और पुरुषों तथा स्त्रियों के स्नानगृहों का अलग-अलग प्रबन्ध है। अन्य खानों में नहाने की सुविधायें अत्यन्त असन्तोषजनक हैं, यद्यपि अब कोयला खान श्रमिक आवास तथा सामान्य कल्याण निधि अधिनियम के अन्तर्गत इस सम्बन्ध मे कुछ सुधार हो रहे हैं।

शिक्षा की सुविधाय (Educational Facilities)

भारत जैसे अशिक्षित देश मे श्रमिको और उनके बच्चो के लिये शिक्षा सुविधाओं की व्यवस्था करना एक महत्वपूर्ण समाज सेवा है। हमारे देश की अनेक कठिनाइयों का मूल कारण श्रमिकों में शिक्षा का अभाव है। शिक्षा की आवश्यकता और महत्ता औद्योगिक विकास के समय बहुत होती है, क्योंकि उद्योगों की स्थापना के समय कृषि व्यवसाय से उद्योगो में आने वाले श्रमिकों की संख्या बहुत होती है और उनको औद्योगिक तकनीक और कुशलता सीखनी पड़ती है। अगर सामान्य शिक्षा की नींव अच्छी नहीं होगी तो प्रशिक्षण मे व्यय अधिक होगा और कठिनाई भी अधिक होगी। भारत मे इस समय विभिन्न प्रकार के कुशल श्रमिकों का अभाव है। यदि शिक्षा तथा प्रशिक्षण की ओर विशेष रूप से प्रयत्न किये जाएँ तब ही इस अभाव की पूर्ति हो सकती है। श्रमिकों की शिक्षा का उद्देश्य केवल निरक्षरता दूर करना तथा औद्योगिक कार्यकुशलता मे योग्यता प्राप्त कराना ही नहीं है। शिक्षा का तात्पर्य केवल यह नहीं है कि मनुष्य को लिखना, पढना, हिसाब लगाना आ जाय। इसका उद्देश्य जीवन की समस्त बातो को सिखाना है, जिनमे औद्योगिक, सामाजिक तथा व्यक्तिगत बातें भी होती हैं। सांस्कृतिक जीवन के विकास तथा रहन सहन के स्तर मे उन्नति के साथ साथ श्रमिकों की विचार शक्ति का भी विकास होना चाहिये और उन्हे यह जानना चाहिये कि अपने संगठनो को किस प्रकार बनाया जाना है तथा अपनी समस्याओं, जैसे—काम करने के स्थानों पर कल्याण सुविधाओं की व्यवस्था करना आदि पर किस प्रकार विचार तथा कार्य किया जा सकता है। श्रमिक अब अपने कल्याण-कार्यों के प्रबन्ध तथा उन्नति मे अधिक सक्रिय भाग ले रहे हैं परन्तु कल्याण-कार्यों के कुशल प्रशासन के लिये शिक्षित व्यक्ति होने चाहियें। यह बात भी, कि श्रमिक किस सीमा तक कारखाने के प्रबन्ध मे भाग ले सकते हैं, तथा कार्य और रहने की दशाओं में किस सीमा तक उन्नति कर सकते हैं इस बात पर निर्भर है कि शिक्षा द्वारा उनकी योग्यता का कितना विकास हुआ है। औद्योगिक शान्ति के लिये मालिक मजदूर समितियों की सफलता भी श्रमिकों की शिक्षा पर निर्भर है। श्रमिकों के बालकों को भी उचित

शिक्षा देना बहुत महत्वपूर्ण है, विशेषकर ऐसे देशों मे जहाँ बाल श्रमिकों की संख्या अब भी काफी है। रॉयल श्रम आयोग ने यह सिफारिश की थी कि औद्योगिक श्रमिकों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये तथा कारखानों के स्कूलों मे *श्रमिकों के बालकों की शिक्षा के विकास के लिये प्रयत्न करने चाहियें।* रॉयल श्रम आयोग के शब्दों में, "भारत में लगभग सभी औद्योगिक श्रमिक अशिक्षित हैं। यह ऐसी बात है जो किसी अन्य महत्वपूर्ण औद्योगिक देश मे नही पाई जाती। इस अयोग्यता के जो परिणाम होते हैं, उनका वर्णन नही किया जा सकता। निरक्षरता का परिणाम मजदूरी मे, स्वास्थ्य में, उत्पादिता मे, सगठन मे तथा अन्य कई रूपो में सामने स्पष्ट रूप से आता है। आधुनिक मशीन उद्योग एक विशेष सीमा तक शिक्षा पर निर्भर है तथा अशिक्षित श्रमिको के सहयोग से इसका निर्माण करना कठिन तथा खतरनाक है।"[10] श्री हैराल्ड बटलर का कथन है कि, "भारत के अधिकाश कारखानो मे यह देखा गया है कि श्रमिक अपनी मशीनो के मालिक न होकर उनके दास बन जाते है। वे मशीनो को ठीक प्रकार से समझते भी नही और लापरवाही से प्रयोग करने के परिणामस्वरूप उन देशो की अपेक्षा जहाँ कर्मचारियो को यान्त्रिक रुचि होती है, अपने देश की मशीनें जल्दी खराब कर देते है।"[11] हमारी पंचवर्षीय आयोजना की सफलता भी इस बात पर निर्भर करती है कि हमारे श्रमिक नये निर्माण के वातावरण को कहाँ तक समझते है और स्वय को उसके अनुकूल बनाते है और उत्पादन बढाने मे कहाँ तक सहयोग देते है *तथा देश की अर्थव्यवस्था मे अपने स्थान को उचित प्रकार मे समझते है।* इस प्रकार श्रमिको की शिक्षा के लिये विशेष रूप से प्रयत्न करने आवश्यक है।

इस प्रकार शिक्षा का अनेक कारणो से महत्व बहुत बढ जाता है। शिक्षा मे ही श्रमिक अच्छे नागरिक बन सकते है। शिक्षा प्रसार से ही औद्योगिक सम्बन्धो मे सुधार हो सकता है तथा श्रमिक यह समझ सकते हैं कि *आधुनिक आर्थिक समस्यायें क्या है?* शिक्षा से ही श्रमिकों में अनुशासन की भावना आ सकती है तथा उनकी विचार-शक्ति तथा अविकसित गुण विकसित हो सकते है। श्रम अनुसन्धान समिति के विचार मे शिक्षा देने का उत्तरदायित्व राज्य का होना चाहिये तथा मालिको पर इसका उत्तरदायित्व डालने की नीति नही अपनानी चाहिये। यदि वास्तव मे कुछ मालिक ऐसी सुविधायें देते भी हैं तो उसे मालिक की सहृदयता ही समझना चाहिये। परन्तु फिर भी मालिको को अपने ही हित के लिये श्रमिकों की शिक्षा में रुचि लेनी चाहिये। कम से कम रेडियो, व्याख्यानो आदि के द्वारा तो वे शिक्षा दे ही सकते है तथा वे वयस्क शिक्षा की भी व्यवस्था कर सकते है। अनेक जागरूक मालिकों ने श्रमिको तथा उनके बालको को अच्छी शिक्षा सुविधायें प्रदान की है जिनका उल्लेख "मालिको द्वारा कल्याण-कार्य" की व्याख्या मे किया जा चुका है। इस सम्बन्ध मे टाटा लोहा और इस्पात कम्पनी व बकिंघम तथा कर्नाटक मिल्स

10 *Report of the Royal Commission on Labour*, page 27

11. Harold Butler; *Problem of Industry in the East*, page 24-25.

विशेषकर उल्लेखनीय है। किन्तु वयस्क शिक्षा की सुविधाएं पश्चिमी कपड़ा एवं जनरल मिल्स, और उत्तर प्रदेश, बंगाल तथा महाराष्ट्र के राजकीय श्रम कल्याण केन्द्रों को छोड़कर और कहीं अधिक सन्तोषजनक नहीं हैं। अहमदाबाद सूती कपड़ा मिल मजदूर परिषद् के द्वारा भी वयस्कों के लिये रात्रि पाठशालायें चलाई जाती हैं। महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, तथा मद्रास के श्रम कल्याण केन्द्रों में भी व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। उत्तर प्रदेश सरकार कानपुर में सूती वस्त्र संस्थान तथा कानपुर व आगरा में चमड़े के काम के स्कूल चलाती है। अपने कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने के लिये रेलवे के अपने अलग व्यावसायिक स्कूल हैं। टाटा लोहा एवं इस्पात कम्पनी कुशल कर्मचारियों को उच्च तकनीकी शिक्षा देने के लिए एक तकनीकी संस्थान चलाती है। अनेक स्थानों पर रोजगार के दफ्तरों के अधीन व्यावसायिक तथा तकनीकी प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की गई है। केन्द्रीय सलाहकार शिक्षा बोर्ड की रिपोर्ट (जो कि सार्जेन्ट रिपोर्ट के नाम से प्रसिद्ध है) के परिणामस्वरूप भारत सरकार ने सारे देश के लिये शिक्षा विकास की एक पचवर्षीय योजना बनाई थी। केन्द्र तथा राज्य दोनों की ही सरकार शिक्षा सुविधाओं के पुनर्गठन व उन्नति के लिये पग उठा रही है। उड़ीसा तथा उत्तर प्रदेश की तरह अनेक राज्यों ने वयस्क शिक्षा की योजनायें भी बनाई है। सामाजिक शिक्षा की एक योजना भी कई राज्यों में लागू है जिसका औद्योगिक मजदूरों के लिये विस्तार किया जा सकता है।

श्रमिकों का शिक्षा कार्य-क्रम (Workers Education Programme)

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में सम्पूर्ण देश में श्रमिकों को शिक्षा देने की एक योजना थी जिसमें श्रमिक संघवाद और उनके तरीकों पर अधिक जोर दिया गया था। इस सिफारिश को लागू करने के लिये फोर्ड फाउन्डेशन के सहयोग से तथा कई विदेशी विशेषज्ञों की सहायता से जनवरी १९५७ में एक श्रमिक शिक्षा समिति की स्थापना की गई थी। इस योजना के लिये एक प्रशासक (श्री पी० एस० एसवारन) की नियुक्ति भी की गई। मार्च १९५७ में श्रमिकों की शिक्षा पर देहली में एक वाद विवाद गोष्ठी हुई और जुलाई १९५७ में भारतीय श्रम सम्मेलन के १५ वें अधिवेशन में श्रमिकों के शिक्षा के कार्य क्रम को लागू करने हेतु स्वीकार कर लिया गया। इस कार्य क्रम का उद्देश्य यह है कि श्रमिकों को अपने संगठन चलाने की तकनीक और सिद्धान्तों से परिचित कराया जाय ताकि वे इस योग्य हो सकें कि संघों के चलाने और उसके प्रबन्ध में बुद्धिमत्ता तथा उत्तरदायित्व की भावना से कार्य कर सकें। श्रमिकों की शिक्षा के लिये एक केन्द्रीय बोर्ड की भी स्थापना नागपुर में कर दी गई है, जिसको एक समिति के रूप में रजिस्टर्ड कर दिया गया है। इस बोर्ड में केन्द्रीय और राज्य सरकारों के तथा मालिकों के संघों के प्रतिनिधि तथा शिक्षा विशेषज्ञ होते हैं। यह बोर्ड योजना को आगे आने वाली व्यवस्था अर्थात् श्रमिक-शिक्षक का प्रशिक्षण तथा फिर उनके

द्वारा श्रमिकों का प्रशिक्षण करने से सम्बन्धित समस्त विषयो की देखभाल करता है।

श्रमिको की शिक्षा के कार्य-क्रम को तीन चरणों मे विभाजित किया गया है। पहला चरण है पर्याप्त सख्या में संगठनकर्ताओ के प्रशिक्षण का, ताकि क्षेत्रीय श्रमिको को शिक्षित किया जा सके। ऐसे सगठनकर्ताओं को प्रारम्भ मे शिक्षक-प्रशासक (Teacher-administrators) कहा जाता था किन्तु अब उन्हे शिक्षा अधिकारी (Education Officers) कहा जाता है। ये बोर्ड की सेवा में लगाये जाते है। बम्बई तथा कलकत्ता मे उनके लिये प्रशिक्षण-पाठयक्रम बनाये जाते है। उनके लिये पाँच पाठयक्रम पूरे हो चुके है जिनमें २०० शिक्षा अधिकारियो ने प्रशिक्षण प्राप्त किया है। दूसरा चरण यह है कि शिक्षा-अधिकारियो का प्रशिक्षण पूरा होने के बाद उनकी नियुक्ति विभिन्न केन्द्रों पर कर दी जाती है जहाँ वे चुने हुए श्रमिको को प्रशिक्षण देते है। यह प्रशिक्षण पूर्णकालिक होता है, इसकी अवधि तीन माह होती है और यह २५ व्यक्तियों के समूह मे दिया जाता है। इन चुने हुये श्रमिको को 'श्रमिक-शिक्षक' (Worker-Teachers) कहा जाता है। इनका चुनाव स्थानीय समितियो द्वारा तथा क्षेत्रीय केन्द्रो के निदेशको द्वारा क्षेत्र की विभिन्न औद्योगिक इकाइयो तथा कर्मशालाओ (Workshops) मे से किया जाता है और मालिको अथवा श्रमिक सघो द्वारा उनको विज्ञापित किया जाता है। तीसरा चरण यह है कि ये श्रमिक-शिक्षक प्रशिक्षण के पश्चात् अपनी-अपनी औद्योगिक इकाइयो को वापिस चले जाते है और मुख्यत काम के घण्टों के अलावा समय मे श्रमिक कक्षाये चालू करके अपनी इकाइयो के श्रमिको को शिक्षा देते हैं। श्रमिक शिक्षकों को इस कार्य के लिये प्रति मास ३० रुपये पारिश्रमिक के रूप मे दिये जाते है और बोर्ड के अधिकारियों द्वारा उनका मार्ग-दर्शन किया जाता है।

श्रमिक शिक्षा केन्द्रीय बोर्ड द्वारा सन् १९५७ से, जब यह योजना कार्यान्वित की गई, अप्रैल १९६७ तक २० केन्द्रीय शिक्षा केन्द्र और ४३ उपक्षेत्रीय शिक्षा केन्द्र खोले जा चुके थे। क्षेत्रीय केन्द्रो मे से १० रिहायशी (residential) हैं। इस अवधि मे शिक्षा केन्द्रो ने ४७३ प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम पूरे किये और १०,४२६ श्रमिक-शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया। ६५१ श्रमिक-शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे। इसी अवधि अर्थात् अप्रैल १९६७ तक ३,०३६ इकाई स्तर की कक्षाये स्थापित की जा चुकी थी, जिनमें ४,७३,९६ श्रमिको को प्रशिक्षित किया गया था। ४१,०६४ श्रमिको को प्रशिक्षण प्रदान किया जा रहा था। एक दिवसीय स्कूलों, गोष्ठियो तथा अध्ययन-चक्रो के रूप मे अल्पकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अन्तर्गत भी ५,३५१ श्रमिको को प्रशिक्षण दिया गया।

बोर्ड ने श्रमिको के उपयोग के लिये श्रम सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर सरल भाषा मे पाठ्य-पुस्तिकाये भी प्रकाशित की है। अप्रैल १९६७ तक ऐसी ५८ पुस्तिकाये तो अग्रेजी मे और ४०० क्षेत्रीय भाषाओ मे प्रकाशित हो चुकी थी। बोर्ड तथा क्षेत्रीय केन्द्रो ने श्रम सम्बन्धी रुचि के विषयो पर अनेक गोष्ठियाँ भी

आयोजित की हैं। प्रशिक्षण देने के लिये दृश्य-श्रव्य साधनों (audio visual aids) तथा सामान्य दृश्य-साधनो (Simple visual aids) का भी प्रयोग किया जाता है। शिक्षण के स्तर मे सुधार लाने के लिये बोर्ड ने अनेक फ्लैश-कार्ड, फ्लिप-चार्ट तथा रेखाचित्र आदि तैयार कराये हैं। कुछ विदेशी विशेषज्ञ भी आये हैं और उन्होंने इस योजना के कार्यक्रमो का मूल्याकन किया है और मूल्यवान् सुझाव दिये हैं। सन् १६५६ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सगठन के डॉक्टर "चार्ल्स ए० आर०", १६६२ मे वी० एन० मैकनामार, १६६४ मे मिसेज वर्जीना हाई और १६६५ मे मि० ए० ई० राफन आये। सन् १६६५ म बोर्ड के ६ अधिकारी प्रशिक्षण (training) के लिये सयुक्त राज्य अमेरिका को भी भेजे गये। बोर्ड श्रमिक सघो तथा सस्थाओ को सहायक अनुदान भी देता है जिससे कि उन्हे स्वय अपनी देख-रेख मे श्रमिक शिक्षा के कार्यक्रम चालू रखने का प्रोत्साहन मिले। बोर्ड ने योजना के विभिन्न पहलुओ के सम्बन्ध मे अनेक अनुसधान आयोजनायें भी चालू की हैं और अब तक किये गये कार्य का मूल्याकन करने के लिये एक विशेष समीक्षा समिति की भी नियुक्ति की है। शिक्षा अधिकारियो तथा श्रमिक-शिक्षको के लाभ के लिये नवीकरण पाठ्य-क्रम भी चालू किये है।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे श्रमिको की शिक्षा के लिये २ करोड रुपये की धनराशि निर्धारित की गई थी। तृतीय योजना की अवधि मे १६ क्षेत्रीय शिक्षा केन्द्रो की स्थापना की जानी थी और २०० शिक्षा-अधिकारियो, ६,३१४ श्रमिक-शिक्षको और लगभग ३ लाख श्रमिको को प्रशिक्षण दिया जाना था। किन्तु वास्तव मे स्थापना १८ क्षेत्रीय शिक्षा केन्द्रो की हुई जिससे इन केन्द्रो का योग ३० हो गया। चौथी योजना मे १२ नये क्षत्रीय केन्द्रो की स्थापना का प्रस्ताव है और ५,६५,००० श्रमिको, ८,६६० श्रमिक-शिक्षको एव ४०० शिक्षा अधिकारियो को प्रशिक्षण दिये जाने की व्यवस्था की गई है। इस कार्यक्रम को लागू करने के लिए ५ १० करोड रुपये की धनराशि नियत की गई है। चौथी योजना मे प्रशिक्षण के स्तर पर तथा श्रमिक सघो, राज्य सरकारो, स्थानीय निकायो, विश्वविद्यालयो एव कॉलिजो के पारस्परिक सम्पर्क पर अधिक जोर दिया गया है।

वैसे वर्तमान परिस्थितियो मे श्रमिको की शिक्षा की प्रचलित योजना सर्वोत्तम है परन्तु कुछ मामलो के अध्ययन से यह पता चलता है कि योजना ने तृतीय चरण मे अर्थात् इकाई स्तर की कक्षाओ मे अच्छी प्रगति नहीं की है। इसका मुख्य कारण यह है कि मिल मालिक कक्षाओ को चालू करने की सुविधायें प्रदान करने म पूर्णतया सहयोग नही करते और न ही वे श्रमिको को ऐसी कक्षाओ मे जाने के लिये प्रोत्साहित करते है। अनेक स्थानो पर मालिको की शिकायत यह है कि श्रमिक-शिक्षक इस माध्यम से 'राजनीति' का प्रचार करते है। अत इन परिस्थितियो म योजना की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि श्रमिक-शिक्षकों पर अधिक नियन्त्रण रखा जाये, प्रशिक्षण के लिये उनका चुनाव करते समय

अधिक सावधानी बरती जाये और मालिकों का यह कानूनी दायित्व होना चाहिये कि वे कक्षायें सचालित करने के लिये यथेष्ट सुविधायें प्रदान करें।

अनाज की दुकानों की सुविधायें

उपरोक्त कार्यो के अतिरिक्त कुछ और भी कल्याण कार्य है, जैसे—अनाज की दुकानो की व्यवस्था। ऐसी दुकानें कई स्थानों पर स्थापित कर दी गई है। युद्धकाल मे सरकार ने अनुभव किया कि श्रमिकों की कार्यक्षमता तथा उत्साह को बनाये रखना लडाई के सामान की उत्पत्ति की दृष्टि से अत्यन्त लाभप्रद है। इसलिये सरकार ने मालिकों को अनाज की दुकानें चलाने व अनाज संग्रह करने तथा उसे श्रमिको मे लागत मूल्य पर या घटे दामों पर बेचने के लिये उत्साहित किया। इसके लिये सरकार ने यातायात की विशेष सुविधाये भी प्रदान की। अनेक मालिकों ने इसका लाभ उठाया और अनाज की दुकानें खोल दी। दुकानो को श्रमिकों के मकानो के निकट खोलने का बहुत अधिक महत्व है, क्योंकि सडा गला भोजन तथा अन्य खाद्य सामग्री जिन्हे श्रमिक व उनके बच्चे गन्दी नालियों के पास बैठे हुये खोमचे वालो से खरीदते है न केवल उनके स्वास्थ्य को खराब करते है वरन् बीमारी भी फैलाते हैं। ये मुसीबतें उस समय कई गुनी बढ जाती है जब राशनिंग या मूल्य नियत्रण हो जाता है तथा चोर बाजारी और मुनाफाखोरी चलती है। इसलिये कर्मचारियों तथा उनके परिवारो के कल्याण के लिये इस प्रकार की दुकानो की व्यवस्था की जानी चाहिये जहाँ उन लोगो को उचित मूल्य पर भोजन की अच्छी सामग्री तथा प्रतिदिन के उपयोग की वस्तुयें सुलभ हो सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए "उपभोक्ता सहकारी भडार" की स्थापना को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। मालिक इसमें कुछ प्रारम्भिक धन दे सकते हैं या, जैसा ऊपर कहा गया है, अनाज की दुकानो को सुविधाओं की व्यवस्था कर सकते है।

इस सम्बन्ध मे यहाँ श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय द्वारा बनाई गई उस योजना का उल्लेख करना भी उचित होगा जिसमे मालिको से यह कहा गया है कि वे उपभोक्ता सहकारी भण्डारो की सहायता शेयर-पूँजी मे हाथ बटा कर तो करे ही, साथ ही कार्यकर पूँजी (*Working Capital*), कर्ज तथा प्रबन्ध सम्बन्धी सहायता द्वारा भी उनको सहयोग दें। मार्च १९६६ के अन्त तक, देश के ३,८४६ के लगभग ऐसे औद्योगिक संस्थानों मे, जिनमे कि ३०० या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते थे, २,५५८ उपभोक्ता सहकारी भण्डार या उचित मूल्यो वाली दुकाने खुल चुकी थीं। सरकार का विचार एक ऐसा विधान लागू करने का है जिसमे उचित मूल्य की दूकानों की स्थापना को मालिकों का एक कानूनी दायित्व माना जाए।

कल्याणकारी कार्यो के सम्बन्ध में कुछ सुझाव

औद्योगिक श्रमिको के जीवन पर प्रभाव डालने वाला एक महत्वपूर्ण कार्य यह है कि उनके लिए विभिन्न ऐजेंसियो द्वारा कल्याण कार्य किये जायें। इस समय कल्याण कार्यो मे हर राज्य, हर उद्योग और एक ही उद्योग के विभिन्न कारखानो

मे काफी अन्तर पाया जाता है । इस प्रकार के कार्यों मे कुछ समानता तो होनी ही चाहिये और कल्याण का एक निश्चित न्यूनतम स्तर बनाया जाना चाहिये । इसके अतिरिक्त कल्याण सुविधायें देना समाज का कर्त्तव्य समझा जाना चाहिये और कानून द्वारा भी कुछ अनिवार्यता होनी आवश्यक है । भारत के कारखाना, खान व बागान श्रमिक अधिनियम मे इसके लिये कुछ निश्चित व्यवस्था की गई है परन्तु वे उचित रूप से लागू नही की जाती । वर्तमान समय मे इस प्रकार के कार्यों का निरीक्षण तथा निर्देशन अधिक सन्तोषजनक नही है । सफाई व्यवस्था के बारे मे (जो कानून द्वारा लागू है) श्रम अनुसधान समिति का कथन है कि जाच करते समय अनेक कारखानो मे उन्होने वहाँ का प्रबन्ध इतना गन्दा पाया कि यह देखकर आश्चर्य होता था कि कारखाना निरीक्षको ने इस विषय पर कोई अधिक ध्यान नही दिया था । यदि हम चाहते हैं कि जो भी सुविधाये दी जा रही है वह श्रमिको के हितो मे वृद्धि करने मे सहायक हो तो यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण कारखाने का क्षेत्र, सामान, मशीन आदि का निरीक्षण भी उचित रूप से होना चाहिये । कल्याण अधिकारियो की नियुक्ति करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि वह प्रशिक्षण प्राप्त तथा अनुभवी हो और इस कार्य के योग्य हो । कल्याण अधिकारियो का यह भी कर्तव्य है कि वह श्रमिको को मानव समझ कर उनकी समस्याओ पर ध्यान दे और समस्या का समाधान भी वह सोच समझ कर उचित प्रकार से करे । श्रमिको की दशाओ का उन्हे व्यक्तिगत ज्ञान होना चाहिये तथा उनसे समय समय पर सम्पर्क बनाये रखना चाहिये ।

देश मे अभी ऐसी और कल्याण निधियाँ स्थापित करने की आवश्यकता है, जैसी कि कोयला, अभ्रक तथा कच्चे लोहे की खानो तथा उत्तर प्रदेश के चीनी कारखानो के श्रमिको के लिये की गई है । यदि इस प्रकार की कल्याण निधियाँ स्थापित हो जायें, जिनमे धन एक उपकर द्वारा जुटाया जाता है तो इसका अर्थ यह होगा कि कल्याण सुविधाओ का भार सीधे तौर पर मालिको पर नही पडेगा । परिणामस्वरूप, दी जाने वाली सुविधाओ की मात्रा और उनका अच्छा या बुरा होना मालिको की सद्इच्छा पर निर्भर नही रहेगा और मालिक इस बात का प्रयत्न नही करेंगे कि वे सुविधाये देने मे कोई कजूसी करें और न उनका यह प्रयत्न होगा कि कानून की मूल भावना की ओर ध्यान न देकर केवल कानून के शब्दो का पालन करें । इस प्रकार की कल्याण निधियो मे निम्न बातें अनिवार्य होनी चाहिये— उनमे जो धनराशि हो वह काम करने वाले श्रमिको की कुल सख्या के अनुपात मे हो और उनमे धन भी इस प्रकार के साधनो से आना चाहिये कि उन्हे एक विस्तृत मात्रा मे सुविधायें प्रदान करने और सुविधाओ का स्तर ऊँचा रखने मे कोई कठिनाई न हो । इसके अतिरिक्त मालिको द्वारा दी जाने वाली कल्याण सुविधाओ के प्रबन्ध मे स्वय श्रमिको को भी भाग लेना चाहिये । इससे मालिको द्वारा चलाये जाने वाले कल्याण कार्यों के सम्बन्ध मे श्रमिको की शकाये दूर हो जायेंगी । इस उद्देश्य के लिये यह सुझाव दिया जा सकता है कि प्रत्येक कारखाने

मे एक कल्याण समिति होनी चाहिये जिसमें कर्मचारियो के चुने हुए प्रतिनिधि, कारखाने का श्रम कल्याण अधिकारी तथा मालिको द्वारा मनोनीत एक या दो व्यक्ति होने चाहिये। इस समिति का मुख्य कार्य कल्याण कार्यों की सुविधाएँ प्रदान करना तथा उनका प्रबन्ध करना होना चाहिये तथा जहाँ तक हो सके इसे स्वतन्त्रता-पूर्वक कार्य करना चाहिये। यह समिति कल्याण कार्यों के प्रत्येक भाग के निरीक्षण तथा उनके प्रतिदिन के कार्य चलाने के लिये उप-समितियाँ नियुक्त कर सकती है, जैसे—कैंटीन समिति, आवास समिति तथा शिक्षा समिति आदि। इस प्रकार सम्पूर्ण समस्या पर वास्तविक रूप से विचार किया जाना चाहिये।

कल्याण कार्य और उनका उत्तरदायित्व

यह समस्या भी विचारणीय है कि कल्याण कार्य को चलाने के लिये कौन सी एजेन्सी सबसे उपयुक्त है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, कल्याण कार्य श्रमिकों के स्वास्थ्य तथा कार्यक्षमता पर अत्यधिक प्रभाव डालते हैं और ये देश मे औद्योगिक शान्ति स्थापित करने में भी सहायक हो सकते है। इसलिये मालिकों को अपने ही हित मे विभिन्न प्रकार के कल्याण कार्यों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेना चाहिये। यदि मालिक निष्कपट हृदय से कल्याण कार्यों को चलाये तो वे मजदूरो के हृदय को जीतने मे काफी सीमा तक सफल हो सकते हैं और इससे मालिको और मजदूरो मे एक नये प्रकार के सम्बन्ध स्थापित होगे जो केवल आर्थिक तथा स्वार्थपूर्ण प्रेरणाओ पर आधारित न होकर उच्च व नैतिक आधारो पर निर्मित होगे। इसके अतिरिक्त मालिको का यह एक नैतिक कर्त्तव्य भी है कि वे मजदूरो के कल्याण पर ध्यान दे। यह मालिको के लिये एक बुरी बात होगी कि वे अपने श्रमिको को उसी अवस्था मे छोड दे जो उनके स्वास्थ्य तथा सुरक्षा की दृष्टि से हानिकारक है। कुछ ऐसी विशेष कल्याण सुविधाये है जो आसानी से फैक्ट्री-व्यवस्था मे ठीक बैठती है इसलिये वे मालिको द्वारा किये जाने वाले कल्याण कार्यों की सूची मे ही आनी चाहिये। उदाहरण के लिये, इनमे कैन्टीनें, शिशुगृह तथा मनोरंजन की सुविधायें आती है।

राज्य अधिक समय तक श्रमिको की हीन अवस्था की ओर से आँखें नही मूँद सकता। श्रमिक वर्ग समाज का एक आवश्यक अंग है तथा राज्य का इसकी ओर भी कुछ कर्त्तव्य है। कुछ विशेष बाते ऐसी भी होती है जो समान रूप से केवल राज्य द्वारा लागू की जा सकती है। उदाहरण के लिये, काम के घण्टो पर नियन्त्रण, महिला तथा बालकों के कार्य पर निषेध, श्रमिकों के स्वास्थ्य तथा सुरक्षा से सम्बन्धित व्यवस्था, स्वच्छता का प्रबन्ध, स्नान-गृह तथा पीने के जल की सुविधाये, आदि। ये सब बाते अब प्रत्येक प्रगतिशील देश के कारखाना अधिनियमो में सम्मिलित कर दी गई है। इसके अतिरिक्त सरकार को औद्योगिक जनता की भलाई के लिये सक्रिय रूप से श्रम-कल्याण कार्यो मे रुचि लेनी होगी। कुछ विशेष श्रम कल्याण कार्य ऐसे है जिनको चलाने के लिये राज्य ही सबसे उचित एजेन्सी

है। उदाहरणार्थ आवास, शिक्षा, चिकित्सा सुविधायें, सामाजिक बीमा, आदि जिन पर अत्यधिक व्यय होता है और केवल मालिकों द्वारा ही प्रभावात्मक रूप से नहीं चलाये जा सकते। भारत जैसे देश में यह बहुत आवश्यक और महत्वपूर्ण है कि राज्य कल्याण कार्यों को अपने हाथों में ले ले क्योंकि यहाँ श्रमिक अभी इस योग्य नहीं है कि वे अपने हितों की रक्षा कर सकें। इसका कारण यह है कि श्रमिकों में अभी शिक्षा और शक्तिशाली संघों का अभाव है और यहाँ पूर्व अविश्वास और शंकाओं के कारण मालिकों तथा मजदूरों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध नहीं है। सरकार को इस अविश्वास को दूर करने व उत्पादन कार्य को निरन्तर चलाते रहने के लिये हस्तक्षेप करना ही होगा। जिस देश के श्रमिक वर्ग में निर्धनता, भूख तथा गिरी हुई हालत समान रूप से पाई जाती है, ऐसे देश की एक विचारशील सरकार बिना उनकी अवस्था में सुधार किये सन्तोष से नहीं बैठ सकती।

श्रमिकों की उन्नति का कोई भी प्रयत्न तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि श्रमिक अपने कर्तव्य और अधिकारों से अनभिज्ञ है तथा कल्याण कार्य उन पर ऊपर से थोपे जाते हैं। इसलिये श्रम कल्याण कार्यों को सफल बनाने में श्रमिक संघ भी महत्वपूर्ण योग दे सकते हैं। एक श्रमिक संघ का मूल उद्देश्य कार्य करने की दशाओं को सुधारना व सम्भालना तथा अपने सदस्यों की मानसिक व नैतिक क्षमता का विकास करना होता है। भारत में श्रमिक संघों ने अब तक कल्याण कार्यों में बहुत कम भाग लिया है। इसके लिये यह तर्क दिया जाता है कि धन के अभाव के कारण श्रमिक संघों द्वारा भारत में कल्याण कार्य करना सम्भव नहीं है। परन्तु इस बात को मान लेने पर भी कि श्रमिक संघों की आर्थिक स्थिति में उन्नति होनी चाहिये और उनको पश्चिमी देशों के श्रमिक संघों की भांति अन्य कार्यों व रचनात्मक पहलू पर अधिक जोर देना चाहिये, फिर भी कुछ ऐसे कल्याण कार्य हैं जो स्वयं श्रमिकों द्वारा ही प्रभावात्मक रूप से चलाये जा सकते हैं। कई ऐसे कार्य भी हैं जिनका आर्थिक भार नहीं पड़ता और जो श्रमिकों की दशाओं को सुधारने में काफी सहायक सिद्ध हो सकते हैं। श्रमिक संघ अपने श्रमिकों को मितव्ययिता, शिक्षा, सहकारिता एवं स्वच्छता की आदतों के लाभों को भली प्रकार बता सकते हैं। वे श्रमिकों में स्वस्थ पारिवारिक जीवन बिताने की रीतियों तथा साधनों का प्रचार कर सकते हैं और स्वयं श्रमिकों की सहायता से श्रमिक बस्तियों में स्वच्छता के नियम लागू कर सकते हैं। यदि श्रमिक संघ के नेतागण अपने साथियों की उद्देश्य पूर्ति में सच्चे हृदय से सहयोग देना चाहते हैं तो उनके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे श्रमिकों के लिये विभिन्न प्रकार के कल्याण कार्य करें।

उपसंहार

इस प्रकार कल्याण कार्यों को प्रदान करने का उत्तरदायित्व मालिकों, राज्य तथा श्रमिक संघों का संयुक्त रूप से होना चाहिये। श्रमिकों के जीवन-स्तर

को ऊँचा उठाने के लिये इन सबको मिलकर कार्य करना चाहिये। श्रमिकों के कल्याण कार्य की समस्या इतनी विस्तृत व गम्भीर है कि कोई एक पक्ष इसको सरलतापूर्वक नहीं सुलझा सकता। सब बातों को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि यह राज्य का उत्तरदायित्व है, कि वह देखे कि श्रमिकों की दशाओं में उन्नति हो रही है या नहीं। यह बात सन्तोषजनक है कि विश्व के अधिकतर सभ्य देशों में सरकारों ने कल्याण कार्यों की महत्ता को समझ लिया है और श्रम कल्याण तथा सामाजिक सुरक्षा की बड़ी-बड़ी योजनाओं को उन्होंने लागू किया है। भारत में अब तक इस दिशा में केवल प्रारम्भिक पग ही उठाये गये हैं तथा देश में श्रमिक वर्ग के लिये कल्याण कार्यों की उन्नति करने और उनका विस्तार करने के लिये अभी बहुत कुछ करने को है। हमें उन बातों को ध्यान में रखना चाहिये, जिनका देश में कल्याण योजनाओं पर प्रभाव पड़ा है या जो प्रभाव डाल सकती हैं। उदाहरणार्थ, श्रमिकों की प्रवासिता, प्रभावशाली श्रमिक संघों का अभाव तथा श्रमिक संघों में धन का अभाव, श्रमिकों में अत्यधिक निरक्षरता, बागान के श्रमिकों की बड़ी संख्या (जिनके लिये कल्याण योजनाओं का एक पृथक् संगठन बनाने की आवश्यकता है) तथा अनेक सामाजिक व आर्थिक समस्यायें जो इस देश में अन्य देशों से अधिक तीव्र हैं। दूसरे देशों में ऐच्छिक रूप से बनी संस्थायें हैं, जैसे— औद्योगिक क्लान्ति (Fatigue) व स्वास्थ्य अनुसन्धान संस्थायें, औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान व मनोवैज्ञानिक संस्थायें तथा कल्याण समितियाँ आदि। ये सब संस्थायें मौलिक अन्वेषण तथा प्रचार द्वारा औद्योगिक कल्याण के क्षेत्र में अग्रणी होकर कार्य कर रही हैं। परन्तु भारत में इस प्रकार की कोई संस्था नहीं है। हमारे देश में इस प्रकार की कठिनाइयों को दूर करने के लिये प्रयत्न होने आवश्यक हैं। परन्तु इन कठिनाइयों को बहाना बना कर हमें कल्याण कार्यों की ओर कम ध्यान नहीं देना चाहिये। प्रयत्न तो इस बात के होने चाहियें कि इन समस्त बातों को ध्यान में रखते हुये हम ऐसे व्यावहारिक कदम उठायें जिनसे हमारी औद्योगिक जनता का हित हो सके।

१२

भारत में सामाजिक सुरक्षा

SOCIAL SECURITY IN INDIA

सामाजिक सुरक्षा का अर्थ

सामाजिक सुरक्षा एक परिवर्तनशील विचार है जो ससार के सब उन्नत देशों में निर्धनता, बेरोजगारी तथा बीमारी को जड से दूर करने के लिये राष्ट्रीय कार्यक्रम का एक आवश्यक अग माना जाता है। साधारणत सामाजिक-सुरक्षा औद्योगिक श्रमिकों के लिये बहुत आवश्यक समझी जाती है। परन्तु वर्तमान युग में कल्याणकारी राज्य का विचार विकसित हो जाने से इसका क्षेत्र भी समाज के सब वर्गों तक विकसित हो गया है। सामाजिक सुरक्षा का तात्पर्य उस सुरक्षा से है जिसे समाज अपने सदस्यों को सकट से बचाने के लिये समुचित रूप से प्रदान करता है। ये सकट ऐसी विपत्तियाँ हैं जिनसे निधन व्यक्ति या श्रमिक अपनी सुरक्षा अपने साथियों के सहयोग अथवा अपनी दूरदर्शिता से भी नहीं कर पाता। इन विपत्तियों के कारण श्रमिक की कार्यक्षमता को क्षति पहुँचती है और वह अपना और अपने आश्रितों का पोषण नहीं कर पाता। राज्य की स्थापना का उद्देश्य जनसाधारण की भलाई करना है इसलिये सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करना राज्य का ही प्रमुख कार्य है। यद्यपि राज्य की प्रत्येक नीति का सामाजिक-सुरक्षा पर कुछ न कुछ प्रभाव पडता ही है तथापि सामाजिक-सुरक्षा सेवाओं के अन्तर्गत केवल ऐसी योजनायें आती हैं जैसे—बीमारी की रोकथाम तथा उसका इलाज, रोजी कमाने योग्य न होने की अवस्था में श्रमिक को सहायता देना और उसको आजीविका उपार्जन के योग्य बनाना, आदि। परन्तु यह भी कहा जा सकता है कि ऐसे तमाम साधनों से सुरक्षा नहीं मिल सकती क्योंकि सुरक्षा का तात्पर्य किसी प्रत्यक्ष वस्तु से ही नहीं होता वरन् यह एक मानसिक अनुभूति भी है। सुरक्षा से तभी लाभ अनुभव हो सकता है जब सुरक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति का इस बात में विश्वास हो कि उसको सम्पूर्ण सुविधाय, जब भी उसे आवश्यकता होगी, प्राप्त हो जायेगी। यह भी आवश्यक है कि सुरक्षा प्रदान करते समय यह देख लेना चाहिये कि सहायता और सुविधाओं की मात्रा और गुण पर्याप्त हैं।

सामाजिक-सुरक्षा एक अत्यधिक व्यापक शब्द है और इसके अन्तर्गत सामाजिक-बीमा व सामाजिक सहायता की योजनायें और कुछ व्यावसायिक (Commercial) बीमे की योजनायें भी आ जाती हैं। इसलिए यह आवश्यक है

कि इन शब्दों के अन्तर को स्पष्ट किया जाय एवं प्रत्येक के क्षेत्र के बारे में स्पष्ट रूप से विचार किया जाय। साधारणत सामाजिक-बीमा और सामाजिक सुरक्षा शब्दों को पर्यायवाची माना जाता है। इसका कारण यह है कि सामाजिक-बीमा प्रत्येक सामाजिक-सुरक्षा योजना का सबसे महत्वपूर्ण अंग होता है।

सामाजिक-बीमे की परिभाषा

सामाजिक-बीमा व्यक्ति को निर्धनता और दुःख से बचाने का एक साधन है। इससे व्यक्तियों को सकट के समय सहायता मिल जाती है। बीमे से तात्पर्य यह है कि कुछ धन अलग से सुरक्षित रख दिया जाता है, तथा विशेष सकटों में जो क्षति होती है उसकी हानिपूर्ति के लिये दिया जाता है। बीमे का मूल उद्देश्य व्यक्ति के सकट को समाप्त करना है। हानि के भार को कम करने का कार्य मुख्यत व्यक्ति का न होकर समाज का है। हम सामाजिक-बीमे की परिभाषा इस प्रकार कर सकते है, "सामाजिक-बीमा एक सहकारी साधन है, जिसका उद्देश्य अनिवार्य रूप से बीमा कराये हुये व्यक्तियों को बेरोजगारी, बीमारी तथा अन्य सकटों के अवसरों पर न्यूनतम रहन-सहन के स्तर को दृष्टि में रखते हुए उचित लाभ प्रदान करना है। यह लाभ श्रमिकों, मालिकों तथा राज्य, तीनों पक्षों के अशदान से निर्मित निधि से दिया जाता है तथा इसको प्राप्त करने के लिये किसी प्रकार की जीविका-साधन-जांच (Means test) नहीं होती अपितु यह लाभ बीमा कराये हुये व्यक्तियों का अधिकार मानकर प्रदान किया जाता है।" सर विलियम बैवरिज ने सामाजिक-बीमे की परिभाषा इस प्रकार की है "सामाजिक-बीमे का तात्पर्य अशदान के बदले में दिये गये ऐसे लाभों से है जो केवल जीविका-निर्वाह स्तर तक दिये जाते हैं और जोकि व्यक्ति को उसके अधिकार मानकर, बिना किसी जीविका-साधन-जाँच के, प्रदान किये जाते है जिससे व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक अपना निर्वाह कर सके। इस प्रकार सामाजिक-बीमे में दो बातें निहित है—प्रथम तो यह कि यह अनिवार्य है और दूसरे यह कि मनुष्य अपने साथियों के दुःख-सुख में साथ देते है।"

सामाजिक-बीमे के मुख्य लक्षण

अब हम सामाजिक-बीमे के सुनिश्चित लक्षणों की ओर दृष्टिपात कर सकते है। सर्वप्रथम, इसके अन्तर्गत एक सयुक्त-धनराशि निधि की स्थापना होती है। इस निधि से समस्त लाभ, नकदी या जिन्स के रूप में दिये जाते है। यह निधि साधारणतः श्रमिकों, मालिकों तथा राज्य के अशदान से निर्मित की जाती है। द्वितीय, श्रमिकों का अशदान केवल नाममात्र का होता है तथा उसे निम्न-स्तर पर ही रखा जाता है, जिससे श्रमिकों को अपनी शक्ति से अधिक न देना पड़े। राज्य तथा मालिक ही वित्त का अधिकांश भाग प्रदान करते है। इसका तात्पर्य यह है कि श्रमिकों द्वारा दिये जाने वाला अशदान तथा उनको प्रदान किये जाने वाले लाभों में कोई अनुपात नहीं होता। तृतीय, इन लाभों को एक निश्चित सीमा तक

ही सीमित रखा जाता है ताकि लाभ उठाने वालों को पूर्ण या आंशिक आय की क्षति के समय एक न्यूनतम जीवन स्तर बने रहने का आश्वासन रहे। चतुर्थ, यह सहायता लाभ प्राप्त करने वालों का अधिकार मानकर तथा बिना जीविका-साधन-जाँच के प्रदान की जाती है जिससे उनके आत्म-सम्मान को कोई ठेस न पहुँचे। पंचम, सामाजिक बीमा अब अनिवार्य रूप से प्रदान किया जाता है जिससे ये लाभ समाज के उन सब अभीष्ट (Needy) व्यक्तियों तक पहुँच सकें जिनको इसका संरक्षण मिलना वाञ्छनीय है। अन्त में, यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि सामाजिक-बीमा व्यक्ति के किसी विशेष घटना से होने वाले कष्टों का ही निवारण करता है, उन्हें रोकता नहीं। वास्तव में जब कष्टों का अवरोध असम्भव होता है तब ही सामाजिक-बीमे की अत्यधिक आवश्यकता होती है।

सामाजिक-बीमे तथा व्यावसायिक-बीमे में अन्तर

व्यावसायिक-बीमा पूर्ण रूप से ऐच्छिक होता है परन्तु सामाजिक-बीमा साधारणतः अनिवार्य होता है। व्यावसायिक बीमे में दी हुई बीमा-किश्तों के अनुसार ही पौलिसी-हित प्रदान किये जाते हैं परन्तु सामाजिक बीमे में जो लाभ श्रमिकों को प्रदान किये जाते हैं, व उनके अंशदान से अधिक होते हैं। इसके अतिरिक्त व्यावसायिक बीमे में न्यूनतम जीवन-स्तर को बनाये रखने का उद्देश्य नहीं होता, परन्तु सामाजिक-बीमे का यह एक मुख्य उद्देश्य होता है। सामाजिक-बीमे की व्यवस्था कई प्रकार की ऐसी विपत्तियों के समय की जाती है जो विभिन्न प्रकार की होती है और जिनकी तीव्रता भी विभिन्न होती है। परन्तु व्यावसायिक-बीमे की व्यवस्था केवल एक व्यक्तिगत संकट में सुरक्षा के लिये की जाती है।

सामाजिक-बीमा तथा सामाजिक-सहायता

सामाजिक-बीमा तथा सामाजिक-सहायता में भी कुछ अन्तर है। सामाजिक सहायता योजना वह साधन है जिसके द्वारा राज्य अपनी ही निधि में से श्रमिकों के द्वारा कुछ विशेष शर्तें पूरी हो जाने पर कानूनी तौर पर लाभ प्रदान करता है। इस प्रकार सामाजिक-सहायता सामाजिक-बीमे का स्थान लेने की अपेक्षा उसकी पूरक है। दोनों ही साथ-साथ चलते हैं। परन्तु अन्तर यह है कि सामाजिक सहायता तो पूर्णतया सरकार का ही कार्य है जबकि सामाजिक-बीमे में राज्य द्वारा केवल आंशिक रूप से वित्त प्रदान किया जाता है। सामाजिक-बीमे के लाभ वही व्यक्ति उठा सकता है जो इसमें अंशदान देता है। परन्तु सामाजिक-सहायता निःशुल्क प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त सामाजिक-बीमे में किसी प्रकार की जीविका-साधन-जाँच पर जोर नहीं दिया जाता और इसके बिना ही लाभ प्रदान किये जाते हैं। परन्तु सामाजिक-सहायता केवल कुछ दी हुई शर्तें पूर्ण होने पर ही दी जाती है। साथ ही सामाजिक-बीमे में "बीमा" शब्द के अन्तर्गत अंशदान का सिद्धान्त निहित है, जो कि सामाजिक-सहायता (Social Assistance) में नहीं है। इसी

प्रकार "सामाजिक" और "व्यावसायिक" शब्द भी इनके अन्तर को स्पष्ट करते है।

यह भी स्पष्ट है कि सामाजिक-सहायता तथा व्यावसायिक-बीमे के मध्य में "सामाजिक-बीमा" आता है। 'सामाजिक-सहायता' में राज्य या समुदाय द्वारा अभीष्ट व्यक्तियों को नि शुल्क सहायता दी जाती है, जबकि व्यावसायिक-बीमा पूर्णतः एक निजी सविदा है। सामाजिक-बीमे (Social Insurance) में राज्य तथा बीमा किये हुये व्यक्ति, दोनों का अशदान आवश्यक होता है। इसलिये यह दोनों के मध्य का मार्ग कहा जा सकता है।

सामाजिक सुरक्षा का क्षेत्र तथा विभिन्न विधियाँ

सामाजिक-सुरक्षा योजना के अन्तर्गत सामाजिक-बीमा और सामाजिक-सहायता दोनों आ जाती है। सब प्रकार के सामाजिक सकट, जैसे- -अशक्तता, काम पाने की अयोग्यता, चिकित्सा की आवश्यकतायें आदि—सामाजिक-बीमे अथवा सामाजिक-सहायता के अन्तर्गत आ सकते हैं। किन्तु व्यावहारिक रूप मे साधारणतः कुछ सकट सामाजिक-बीमा योजना द्वारा दूर किये जाते हैं और कुछ सकट "सहायता" द्वारा। कुछ सकटों के लिये देश की परिस्थिति के अनुसार इन दोनों मे से कोई भी विधि लागू की जा सकती है। नकद लाभ तथा साधारण चिकित्सा सेवायें अधिकतर बीमे की विधि के अन्तर्गत प्रदान की जाती है; जिन्स के रूप में दिये जाने वाले कुछ विशेष प्रकार के लाभो के लिये 'सामाजिक-सहायता' को अधिक उचित समझा जाता है। सामान्यत. बीमा की विधि उस समय अपनाई जाती है जबकि इस बात का डर होता है कि दावो को अधिक बढा-चढा कर दिखाया जायगा तथा सयुक्त निधि का दुरुपयोग होगा। यद्यपि बीमा विधि के अन्तर्गत सभी सकट न भी आ पायें तथापि कई बार उस समय इसको अपनाना पडता है जब मजदूरी में विपत्ति के कारण क्षति होती है और उसी क्षति के अनुपात से नकद लाभ देना पडता है। औद्योगिक दुर्घटनाओं और बीमारी के समय सामाजिक सहायता का कोई प्रश्न नही उठता, क्योंकि इनका उत्तरदायित्व परम्परा से मालिको पर ही रहा है। बीमारी का सकट निश्चित रूप से बीमे के अन्तर्गत आता है। पेन्शन तथा बेरोजगारी लाभ भी बीमे द्वारा ही प्रदान किये जाते है, यद्यपि वे कभी-कभी सामाजिक-सहायता योजनाओ के द्वारा भी दिये जाते है। उनके विषय मे यह निर्णय अत्यन्त कठिन हो जाता है कि "बीमा" अथवा "सहायता" दोनो मे से किसका चुनाव किया जाय। सामाजिक सहायता विशेषकर उन सेवाओं के क्षेत्र मे सीमित रहती है जिनमे जनता का हित मुख्य होता है तथा दुरुपयोग के बहुत कम अवसर होते हैं। उदाहरणार्थ, जनरल हस्पताल, पागलो के लिये हस्पताल, क्षय-सैनीटोरियम, चिकित्सालय, यौन-सम्बन्धी बीमारियो के चिकित्सा केन्द्र, मातृत्वहित तथा शिशु कल्याण केन्द्र, पाठशालाओं में स्वास्थ्य सेवायें, पुनर्वास सस्थायें, वृद्धों तथा निबल व्यक्तियों की पेन्शनें, माताओ की पेन्शनें तथा बेरोजगारी सहायता आदि।

औद्योगिक-कर्मचारियों की भलाई के लिये न्यूनतम-जीवन-स्तर की व्यवस्था की जा सके। औद्योगिक-श्रमिक राज्य के हस्तक्षेप न करने के कारण काफी समय तक पूँजीपतियों के हाथों बहुत कष्ट उठाते रहे।

विभिन्न देशों में सामाजिक-सुरक्षा योजनाओं की हाल में हुई प्रगति का मुख्य कारण अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के प्रयत्न तथा कार्य हैं इसलिये उसे ही इस मूल्यवान कार्य का श्रेय मिलना चाहिये। इस संगठन ने १६२० में विभिन्न देशों के लिये सामाजिक-बीमा अधिनियमों के स्तर को निर्धारित करने के हेतु मसौदे तैयार करने का कार्य प्रारम्भ किया। इस हेतु इसने समय-समय पर अभिसमय पारित किये हैं, उदाहरणार्थ— १६१६ में मातृत्व-हित-लाभ पर, १६२१, १६२५ तथा १६३४ में श्रमिक क्षतिपूर्ति पर, १६२७ तथा १६३६ में बीमारी-बीमे पर; १६३३ तथा १६३४ में निबलता, वृद्धावस्था तथा उत्तरजीवी-बीमे पर; १६२८ में न्यूनतम मजदूरी पर, १६३४ में बेरोजगारी-बीमे पर तथा १६४४ में आय-सुरक्षा तथा चिकित्सा सुविधा पर। अनेक देशों ने इन अभिसमयों को स्वीकार कर लिया है, और जिन देशों ने इनको स्वीकार नहीं किया है उन्होंने भी इनको आधार मान कर कानून बनाये हैं। किसी ऐसे देश के लिये, जो सामाजिक-बीमा पहली ही बार लागू करने की इच्छा रखता है, इन अभिसमयों को पूर्णतः या अंशतः आदर्श माना जा सकता है। १६४७ में नई देहली में हुए प्रारम्भिक एशियाई क्षेत्रीय श्रम सम्मेलन में भी सामाजिक सुरक्षा पर एक व्यापक प्रस्ताव स्वीकार किया गया, जिसमें इस बात के लिये सिफारिश की गई थी कि एशिया के अनेक देशों में सामाजिक-सुरक्षा की योजनाओं की प्रगति में तीव्रता आनी चाहिये। १६३८ में न्यूजीलैण्ड में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सामाजिक-सुरक्षा अधिनियम पारित हुआ था जिसमें एक अनिवार्य तथा सार्वलौकिक बीमा प्रणाली की व्यवस्था थी जिसके लिये वित्तीय-व्यवस्था एक सामाजिक-सुरक्षा कर द्वारा की गई थी। संयुक्त राज्य अमेरिका में, इस सम्बन्ध में सबसे पहला विस्तृत विधान सन् १६३५ का सामाजिक-सुरक्षा अधिनियम था।

सन् १६३६-४५ के युद्ध ने सामाजिक बीमे की योजनाओं को प्रारम्भ करने या कम से कम उनके प्रारम्भ करने के लिये वचन देने की आवश्यकता की ओर भी बल प्रदान किया। ये योजनायें देश की प्रतिरक्षा की शक्ति में वृद्धि करती हैं, क्योंकि ये जनसंख्या के विभिन्न वर्गों को एक विशेष उद्देश्य के लिये संगठित करती हैं, अन्याय को कम करती हैं, जनता के स्वास्थ्य की रक्षा करती हैं तथा आर्थिक चिन्ताओं को दूर करने का भी प्रयत्न करती हैं। युद्ध के पश्चात् जो प्रभाव हुए उनके कारण भी कुछ सामाजिक-सुरक्षा योजनाओं की आवश्यकता को अनुभव किया गया, क्योंकि इन प्रभावों के कारण अनेक देशों में आवश्यक वस्तुओं की दुर्लभता उत्पन्न हो गई थी और पुनर्निर्माण की समस्यायें भी उत्पन्न हो गई थीं। लगभग प्रत्येक औद्योगिक उन्नत देश ने अब सामाजिक बीमे के महत्व को स्वीकार कर लिया है तथा उनमें से अनेक ने सामाजिक-बीमा के आयोजन की समस्या को

सुलझाने का प्रयत्न किया है। कई स्थानों पर तो सामाजिक-बीमा योजनायें निश्चित की जा चुकी है तथा उनको कार्यान्वित भी कर दिया गया है। अमरीका, आस्ट्रेलिया, कनाडा तथा न्यूजीलैण्ड जैसे देशों मे सामाजिक बीमे की विस्तृत योजनायें बनाई गई हैं तथा लागू की गई हैं। १९४२ में लन्दन में "ब्रिटन के सामाजिक-बीमा तथा सम्बन्धित सेवाओं" पर बेवरिज रिपोर्ट (Beveridge Report on British Social Insurance and Allied Services) प्रकाशित हुई जो संसार भर मे चर्चा का विषय बन गई। अब इसको कार्यान्वित कर दिया गया है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक प्रकार की व्यक्तिगत दरिद्रता तथा असुरक्षा के लिए पूर्ण अनिवार्य-राज्य-बीमा योजना की व्यवस्था है। सामाजिक-बीमा योजना जिस प्रकार विभिन्न देशों मे लागू की गई है उसके विस्तृत क्षेत्र का उदाहरण कनाडा मे "सामाजिक सुरक्षा" पर मार्श की रिपोर्ट (Marsh Report) तथा अमरीका मे "मुरे-डिंगल विधेयक" (Murray-Dingell Bill) मे भी मिलता है।

भारत मे सामाजिक सुरक्षा के विचार की उत्पत्ति और विकास

भारत मे निर्धनों तथा असहायों की सहायता को सदैव से ही धार्मिक कर्त्तव्य माना गया है। भूतकाल मे ऐसे व्यक्तियों के लिये जिनके पास जीवन-निर्वाह का कोई साधन न होता था और जो कार्य करने में भी असमर्थ होते थे, उन्हें कई प्रकार की संस्थाओं और रीतियों से सहायता मिल जाया करती थी, जैसे—संयुक्त परिवार, सामुदायिक पंचायतें, धार्मिक संस्थायें, अनाथालय व विधवा आश्रम, भीख, व्यक्तिगत दान, जन-सेवा की भावना, आदि। परन्तु पश्चिमी शिक्षा तथा देश के औद्योगीकरण के प्रभाव से ये संस्थायें और रीति-रिवाज नष्ट होने लगे है और परिस्थिति के अनुसार इनके अन्तर्गत अब पर्याप्त सहायता नहीं मिलती। वर्तमान समय मे सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना राज्य का ही कर्त्तव्य माना जाता है।

दोनों महायुद्धों के मध्यकाल की अवधि मे तथा विशेषकर १९३९ से विभिन्न देशों मे सामाजिक सुरक्षा की तीव्र गति से उन्नति तथा विस्तार हुआ है। किन्तु भारत मे इसको लागू करने के प्रश्न पर कुछ समय पहले तक राज्य की ओर से कोई ध्यान नहीं दिया गया। रॉयल श्रम आयोग का भी यह मत था कि भारत मे किसी राष्ट्रीय बीमा योजना को लागू करना सम्भव नहीं होगा। इसका कारण उसने यह दिया कि कोई स्थायी औद्योगिक जनसंख्या न होने के कारण और श्रमिकावर्त (Labour Turnover) अधिक होने के कारण किसी भी संकट का ठीक-ठीक अनुमान लगाना कठिन था। इस प्रकार सामाजिक बीमे की समस्या को काफी समय तक केवल एक सैद्धान्तिक विषय ही समझा जाता रहा और अनेक समितियों, आयोगों तथा अधिकारियों द्वारा दिये गये विचार सामाजिक सुरक्षा की केवल कुछ शाखाओं तक ही सीमित रहे। बेवरिज रिपोर्ट के प्रकाशित होने के पश्चात् ही लोगों के विचारों तथा लेखों मे "सामाजिक बीमा" शब्द आने लगा

और तब ही भारत में इसको लागू करने की सम्भावनाओं पर ध्यान दिया गया। राष्ट्रीय सरकार बन जाने के पश्चात् श्रमिकों में अशान्ति बढ़ने तथा अनेक देशों में साम्यवाद फैलने से सामाजिक बीमे की समस्या अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। अब यह अनुभव कर लिया गया है कि सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता केवल इस कारण नहीं है कि श्रमिकों को आराम से रहने का अधिकार है अपितु सामाजिक दृष्टिकोण से भी "सामाजिक सुरक्षा" की आवश्यकता है, क्योंकि जब तक श्रमिकों को जीविका के अच्छे साधन नहीं प्रदान किये जायेंगे तथा उनकी अनेक विपत्तियों से रक्षा नहीं की जायेगी तब तक साम्यवादी विचारधारा को रोकना कठिन होगा। वास्तव में देश में एक सामाजिक बीमा योजना को स्थापित करने की आवश्यकता के विषय में कभी भी दो मत नहीं रहे, किन्तु भारत में इसको लागू करने की सम्भावनाओं पर मतभेद रहा है।

भारत में श्रमिकों के लिए सामाजिक बीमे की आवश्यकता

विभिन्न विपत्तियाँ

भारत में सभी लोगों के लिये, विशेष कर देश की श्रमिक जनता के लिये, सामाजिक बीमे की आवश्यकता अत्यधिक है। यह पूर्णतया सत्य है कि हमारा देश गरीब है और हमारे देश में मजदूर जो मजदूरी पाते हैं, वह इतनी कम तथा कंजूसी से दी जाती है कि उससे निम्नतम आजीविका को छोड़कर अन्य कोई भी वस्तुयें प्राप्त नहीं की जा सकती। वास्तव में यह आश्चर्यजनक है कि श्रमिक इतनी अपर्याप्त आय में अपनी और अपने परिवार की जीविका कैसे चलाता है। कुछ स्थानों को छोड़कर देश के अनेक स्थानों पर मजदूरी इतनी कम दी जाती है कि यदि कुशाग्र बुद्धि तथा इच्छा हो भी फिर भी मजदूर न्यूनतम स्तर बनाये रखने के लिये आवश्यक वस्तुयें नहीं जुटा पाता तथा जिन परिस्थितियों में वह रहता है उनमें बुद्धि का प्रयोग भी कठिन हो जाता है। श्रमिक बड़ी संख्या में ऋण में भी दबे रहते हैं और औसतन यह ऋण उनकी तीन माह की मजदूरी के बराबर होता है। यह भी देखा गया है कि मजदूर की ८०% आय भोजन, आवास और वस्त्रों पर ही व्यय हो जाती है और कम वेतन पाने वाले मजदूर के लिए तो मात्र जीविका भी बिना ऋण लिये असम्भव होती है। आय इतनी कम है कि उसमें से बचत करने के लिये कुछ नहीं बचता और इस प्रकार जब कभी श्रमिकों का मासिक बजट घाटे में चलता है तो उनके पास उसको पूरा करने के लिये पहले से बचाई हुई कोई भी निधि नहीं होती। बीमारी, बेकारी, अस्थायी असमर्थता, परिवार के कमाने वाले व्यक्ति की अचानक मृत्यु जैसी अनेक विपत्तियों (Contingencies) में या तो श्रमिक, यदि सम्भव होता है तो, ऋण लेता है अथवा अपने पहले से ही गिरे हुये जीवन-स्तर में वह असीम रूप से कष्ट भोगता है। इसलिए जीवन की विपत्तियों के विरुद्ध व्यवस्था करने के लिये भारत में कुछ सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की अत्यधिक आवश्यकता है, क्योंकि विपत्ति पड़ने पर मजदूरों के पास अपने निर्वाह के लिये कोई उचित निधि नहीं होती।

श्रमिक अनेक बीमारियो के बोझ से भी दबा रहता है। अत्यधिक भीड-भाड वाले तथा घने बसे औद्योगिक क्षेत्रो में मलेरिया, हैजा, क्षय, प्लेग, इन्फलुऐन्जा जैसी बीमारियां उग्र रूप से फैल जाती हैं। ऐसी बीमारियो के कारण सैकड़ों व्यक्ति प्रत्येक बस्ती से प्रतिवर्ष मृत्यु के ग्रास हो जाते हैं। शेष जो इनके आक्रमणों से बच भी जाते हैं, उनमे दुर्बलता और अकुशलता आ जाती है। औद्योगिक क्षेत्रो मे श्रमिको की उचित चिकित्सा के लिये, उनको निरन्तर आय की सुविधायें प्रदान करने के लिये और बीमारी के पश्चात उनको शीघ्र से शीघ्र पूर्णरूप से स्वस्थ करने के लिये काफी समय तक कोई उचित व्यवस्था नही थी।

बेरोजगारी अथवा इसके साथ ही नौकरी से हटा दिए जाने का भय हमारे श्रमिको के जीवन मे एक अन्य विपदा है। वर्तमान समय की औद्योगिक बुराइयो म मे यह सबसे निकृष्ट (Worst) और विस्तृत बुराई है। इसमे निराश्रयता (Desitution), भिक्षा वृत्ति, बाल-श्रम, महिला-श्रम, कम मजदूरी, वेश्यावृति तथा मदिरापान जैसी सामाजिक बुराइयाँ उत्पन्न हो जाती है। जो श्रमिक अपने गाँव वापस जा सकते हैं वे अपने सम्बन्धियो के अल्प साधनो पर भार स्वरूप हो जाते हैं और साधारणत उसके गाँव मे वापस आने का स्वागत भी नही किया जाता। जो वापस नही जा सकते वे औद्योगिक नगरो मे भूखे मरते है और निराश्रयता का जीवन व्यतीत करते हैं।

श्रमिक पर उस समय भी मुसीबतो का पहाड टूट पडता है जब वह अस्थायी रूप से असमर्थ हो जाता है या परिवार के एकमात्र रोटी कमाने वाले की मृत्यु हो जाती है जो अपने पीछे एक विधवा व अनाथ बच्चे अथवा अन्य आश्रितो को छोड जाता है जिनकी देख-भाल करने वाला कोई नही रहता, अथवा जब मजदूर पूर्णतया असमर्थ हो जाता है या अवकाश ग्रहण कर लेता है अथवा वृद्ध हो जाता है और काम के अयोग्य हो जाता है। इन समय-समय पर पडने वाली विपत्तियो के लिये कोई भी बचाव का साधन नही है और इनके आने पर वही पुरानी कहानी दोहराई जाती है—अत्यधिक ऋण, निम्नतम जीवन स्तर, कार्यक्षमता मे क्षति तथा उत्पादन मे कमी और अनेक सामाजिक बुराइयाँ। इस प्रकार इस तथ्य मे पूर्ण सत्यता है कि श्रमिकों की निधनता एवं सामाजिक बुराइयों का सबसे शक्तिशाली कारण यही है कि उनकी बीमारी और बेरोजगारी से उनकी आय मे विघ्न पड जाता है। ऐसी घटनायें भी मिलती हैं कि एक मजदूर की मृत्यु पर अथवा उसके पूर्णरूप से निबल हो जाने पर उसकी पत्नी और लडकियो को समाज के भेडियो का शिकार होना पडता है और उन्हे अनैतिक जीवन व्यतीत करने के लिये बाध्य होना पडता है।

श्रमिको की सामान्य दशा

इस प्रकार वर्तमान भारत मे श्रम की अस्थिरता, श्रमिकावर्त की अनुपस्थिति की तीव्र समस्याओ से उत्पन्न हुई कठिनाइयाँ सामने आती है। नगरो मे निर्धन

श्रमिकों को किसी प्रकार की कोई सुविधा नहीं मिल पाती। उसके पास नाममात्र का ही एक मकान होता है, उसको गन्दगी तथा अस्वस्थकर वातावरण में रहना पड़ता है और बीमार पड़ने पर उसकी देखभाल करने वाला भी कोई नहीं होता; नौकरी से हटा दिये जाने पर उससे सहानुभूति करने वाला भी कोई व्यक्ति नहीं होता। जब वह पूर्णत अथवा अस्थायी रूप से असमर्थ हो जाता है तो उसकी रद्दी कागज की तरह उपेक्षा की जाती है; बूढ़ा हो जाने पर उसे बेकार वस्तुओं की तरह फेंक दिया जाता है। इस प्रकार के सारे कष्ट, दुख और दुर्भाग्य आने पर उसके पास शरण लेने का स्थान केवल गाँव रह जाता है। परन्तु गाँव के साथ भी उसके सम्बन्ध टूटते जा रहे है क्योंकि आधुनिक सभ्यता के प्रभाव से संयुक्त परिवार तथा गाँव का सामुदायिक जीवन समाप्त हो गया है और गाँव मे भी जीवन-निर्वाह के लिये कठोर परिस्थितियाँ पैदा हो गई है।

सामाजिक बीमा व्यवस्था के लाभ

इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि उपरोक्त विपत्तियों से बचने के लिये किसी न किसी सुरक्षा व्यवस्था की अत्यधिक आवश्यकता है। इसमे सदेह नही कि सामाजिक-बीमा व्यवस्था ही भली प्रकार से श्रमिकों की जीवन के सामान्य सँकटो से सुरक्षा कर सकती है। यह सकट ऐसे होते हैं जिनसे श्रमिक स्वयं अपने प्रयत्नों द्वारा रक्षा नहीं कर पाता। श्रमिकों के स्वास्थ्य तथा जीविका की सुरक्षा के लिये, जिसके वे अधिकारी हैं, सामाजिक बीमा ही विवेकपूर्ण और कुशल साधन है। सामाजिक-बीमा योजना का एक लाभ यह है कि इसमें श्रमिक का सहयोग भी होता है क्योंकि श्रमिको से भी इसमे अशदान लिया जाता है। यह निश्चित अधिकारों के आधार पर लाभ प्रदान करती है तथा लाभ प्राप्त करने वालों का आत्मसम्मान बनाये रखती है। इसका उद्देश्य मजदूर की खोई हुई कार्य करने की क्षमता को शीघ्र से शीघ्र तथा पूर्णतया पूरा करना है तथा यह जीविकोपार्जन के कार्यो के रुक जाने के समय मजदूर की सहायता करता है। कोई भी आत्मसम्मानित और प्रगतिशील देश अपने श्रमिक वर्ग को उनके ही न्यून साधनों पर नहीं छोड सकता और न ही न्याय और औचित्य की दृष्टि से श्रमिकों को इस संस्था के लाभो से विलग रख सकता है। अब यह बराबर अनुभव किया जा रहा है कि कोई भी राष्ट्र देश की मानव शक्ति को इस बुरी तरह से व्यर्थ नहीं कर सकता। हर देश के लिये यह आवश्यक है कि वह अपनी कार्य योग्य जनसंख्या को नैतिक और शारीरिक शक्ति में वृद्धि करे और आगे आने वाली पीढ़ियों के लिये राह तैयार करे तथा उन लोगों की देखभाल करे जो उत्पादक कार्यों के योग्य नही रहे है। मालिको के व्यक्तिगत और सामूहिक प्रयत्नों को, कर्मचारियों के व्यक्तिगत तथा सामूहिक आन्दोलनों को तथा राज्य के पृथक्-पृथक् रूप से किये गये वैधानिक प्रयत्नो को सगठित और एकत्रित कर लेना चाहिये ताकि अधिक से अधिक संख्या में लोगो को अधिक से अधिक लाभ पहुँचे। इसी प्रकार के प्रयत्न सामाजिक बीमे

में पराकाष्ठा तक पहुँचते है। सामाजिक-बीमा एक आकाशदीप है जो प्रजातन्त्र के आदर्श को दृढ़ करता है और भविष्य की प्रगति की राह को प्रकाशवान करता है। इसमे सामाजिक न्याय का आदर्श निहित है क्योकि दुर्घटनायें, बीमारी, बेरोजगारी जैसे सकट जो श्रमिको पर पड़ते है, वे आधुनिक उद्योग के संगठन और प्रबन्ध के कारण ही उत्पन्न होते है। इसी कारण वे समाज के सदस्यो द्वारा एक निश्चित सीमा तक सहन किये जाने चाहियें। इस प्रकार की योजनाओ की व्यवस्था विश्व के प्रत्येक देश की आर्थिक व सामाजिक शान्ति और समृद्धि के लिये अत्यधिक आवश्यक समझी जानी चाहिये। सामाजिक सुरक्षा सेवाओ का निर्माण समाज के लिये पर्याप्त लाभप्रद होगा जिससे समाज में नैतिक सम्मान की वृद्धि होगी। ऐसी शारीरिक तथा मानसिक पीडाओ को भी सीधे रूप से दूर किया जा सकेगा जिनमे अधिकाश लोग दुख उठाते है। इन बुराइयों के कारणो को दूर करने मे भी सहायता मिलेगी तथा सामाजिक सुरक्षा से समाज के ढांचे मे भी दृढ़ता आयेगी। सामाजिक सुरक्षा केवल इसीलिये आवश्यक नही है कि श्रमिको को भी सुख से रहने का अधिकार हैं अपितु यह सामाजिक दृष्टिकोण से भी आवश्यक है क्योकि जब तक श्रमिको की जीविका के अच्छे साधन नही प्रदान किये जायगे तथा अनेक विपत्तियो से उनकी रक्षा नही की जायगी तब तक उनमे क्रान्तिकारी विचारो को फैलने से रोकना कठिन होगा।

कुछ व्यक्तियों का मत है कि श्रमिको की उत्पादन प्रेरणा पर सामाजिक सुरक्षा का अच्छा प्रभाव नही होगा क्योकि सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था उत्साह को कम करती है, शिथिलता उत्पन्न करती है तथा जोखिम उठाने के साहस और इच्छा को क्षति पहुचाती है। सामाजिक सुरक्षा की व्यापक व्यवस्था मे उत्पादको की ओर से अनुत्पादको को लाभ प्रदान किया जाता है अर्थात् जो योग्य हैं और रोजगार पर लगे हैं वे उन व्यक्तियो की सहायता करते है, जो वृद्ध है, बीमार हैं और बेरोजगार हे। परन्तु यह बात भी ध्यान मे रखनी चाहिये कि सामाजिक सुरक्षा द्वारा जो सहायता प्रदान की जायगी उसके कारण ऐसे बीमार और बेरोजगार व्यक्ति, जो कार्य योग्य आयु के होते है, फिर से उत्पादक बन सकते है। इसके अतिरिक्त सामाजिक सुरक्षा द्वारा उन्हे जो भी सहायता मिलेगी, वह उन्हे इस योग्य भी बना देगी कि अपने रोजगार को पुन पाने पर पहले से अच्छा कार्य करें। इस सहायता के न होने पर कठोर अभावो के कारण उसकी कार्यक्षमता को बहुत क्षति पहुँचती है। जैसा कि सर विलियम बवरिज ने कहा है, "यह आवश्यक नही है कि उचित प्रकार से आयोजित, नियन्त्रित तथा वित्त व्यवस्थित, अर्थात् एक समरूप सामाजिक-बीमा व्यवस्था उत्पादन प्रेरणा पर बुरा प्रभाव डाले" वरन् सामाजिक सुरक्षा से उत्पादन बढ सकता है क्योकि असुरक्षा के कारण जो दुख, भय, चिन्तायें और अभाव श्रमिक के जीवन म आ जाते है और उसको जो क्षति पहुँचती है उस क्षति को सामाजिक सुरक्षा कम कर देती है। राज्य को सामाजिक सुरक्षा योजनायें सगठित करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिये कि सामाजिक

सुरक्षा से केवल एक न्यूनतम राष्ट्रीय जीवन स्तर की ही व्यवस्था होती है ताकि प्रत्येक व्यक्ति को ऐच्छिक प्रयत्नों द्वारा (अपने तथा अपने परिवार के लिये इस न्यूनतम स्तर से अधिक अर्जित करने के लिये) उत्साह तथा अवसर प्राप्त होता रहे।

सामाजिक बीमे की विभिन्न व्यवस्थायें

किसी देश की सामाजिक-बीमा व्यवस्था में पूर्णता लाने के लिये यह आवश्यक है कि ऐसी सारी परिचित विपत्तियों से रक्षा होने की उचित व्यवस्था हो, जिनसे श्रमिक या कोई भी व्यक्ति कष्ट पा सकता है तथा जो उन्हें जीविकोपार्जन के अवसरों से वंचित रख सकती है। जो संकट श्रमिकों को उनकी अर्जित करने की क्षमता से वंचित रख सकते हैं, वे निम्न बातों से उत्पन्न हो सकते है— (क) बीमारी, दुर्घटना, बेरोजगारी, प्रसव काल आदि के कारण जीविका कमाने की अस्थायी अयोग्यता, (ख) स्थायी अशक्तता, जैसे—पूर्ण असमर्थता, चिरकालीन निबलता, वृद्धावस्था आदि; (ग) मृत्यु, जिससे परिवार का एकमात्र रोटी कमाने वाला एक साधन समाप्त हो जाता है। इसमें हम वैधव्य तथा अनाथ हो जाना सम्मिलित कर सकते हैं। इस प्रकार एक पूर्ण सामाजिक-बीमा व्यवस्था के निम्नलिखित भाग कहे जा सकते हैं—(१) बीमारी तथा निबलता बीमा, (२) दुर्घटना बीमा, (३) मातृत्व-हित बीमा, (४) बेरोजगारी बीमा, (५) वृद्धावस्था बीमा, (६) उत्तरजीवी बीमा।

भारत में सामाजिक-सुरक्षा की वर्तमान अवस्था

भारत मे अभी तक उल्लिखित विपत्तियो मे से किसी के लिए भी पूर्णांत सामाजिक-बीमा योजनायें लागू नही की गई है, यद्यपि १९४८ के कर्मचारी राज्य-बीमा अधिनियम तथा १९५२ के कर्मचारी प्रोवीडेन्ट-फण्ड अधिनियम के पारित होने से इस ओर पग उठाया जा चुका है। इन दोनों के अतिरिक्त अन्य विषयो में भारत एक पिछड़े हुए देशो मे से कहा जा सकता है। किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि यहाँ इन विपत्तियो से किसी भी प्रकार की सुरक्षा नहीं रही है। निश्चय ही यहाँ कुछ सुरक्षा की *व्यवस्था रही है, यद्यपि ऐसी सुरक्षा को सामाजिक-बीमा नही कहा* जा सकता। श्रमिकों को दुर्घटनाओं, प्रसव काल और बीमारी मे सुरक्षा प्रदान करने के लिए सरकार ने अनेक अधिनियम पारित किये हैं तथा अभी हाल मे ही अन्य दिशाओ मे भी प्रयत्न किये गए है। एक और प्रकार की सुरक्षा जो श्रमिको को दी गई है, वह कल्याण कार्यों की है, जिसका पिछले अध्याय मे विस्तारपूर्वक उल्लेख किया जा चुका है। अब तक जो मुख्य रूप से कानूनी सुरक्षा प्रदान की गई है, वह निम्न विषयों पर है :—(१) औद्योगिक बीमारियों तथा दुर्घटनाओ की क्षतिपूर्ति (Compensation) के लिए, (२) स्त्री श्रमिकों के मातृत्व-हित लाभ के लिए, (३) स्वास्थ्य बीमा, (४) छटनी के समय क्षतिपूर्ति, तथा (५) प्रोवीडेन्ट फण्ड की व्यवस्था।

भारत में श्रमिको के लिए क्षतिपूर्ति की व्यवस्था
(Workmen's Compensation in India)

क्षतिपूर्ति की आवश्यकता

औद्योगिक दुर्घटनाओ से, जो प्रत्येक देश मे होती हैं, श्रमिको की रक्षा करना आवश्यक है। सगठित उद्योगो मे मशीनो तथा यान्त्रिक शक्तियों के बढते हुए प्रयोग से भारत मे भी औद्योगिक दुर्घटनाओ की सख्या मे सामान्यत वृद्धि हो गई है। कारखाना अधिनियमो मे कई सुरक्षा साधनो से सम्बन्धित उपबन्ध बनाये गये हैं, जिनको कारखानो मे लागू करना अनिवार्य है। उदाहरणार्थ, मशीनो के चारो ओर रोक लगाना, "पहले अपनी सुरक्षा" वाले इश्तहार, आग बुझाने के साधन इत्यादि परन्तु इतना सब होने के पश्चात् भी दुर्घटनायें हो ही जाती हैं, जिनका कारण कुछ तो खतरनाक मशीनो से सुरक्षा करने के पर्याप्त साधनो का अभाव होता है और कुछ श्रमिको की लापरवाही के कारण होती हैं। गलत विचार या निर्णय के कारण या आवश्यक सावधानी न रख सकने के कारण या खतरे से अनभिज्ञ होने के कारण अथवा अधिक कार्य करने के कारण भी दुर्घटनायें हो जाती है। दुर्घटनाओ की सम्भावना सदैव रहती है क्योंकि मशीने बहुत विशाल और विकट प्रकार की हो गई हैं और उत्पादन की गति अति तीव्र हो गई है। कुछ व्यक्तियो की "दुर्घटना प्रवृत्ति (Accident prone) हो जाती है और स्वामखाह, दुर्घटना करा बैठते है। दुर्घटनायें होने का अर्थ है मृत्यु अथवा स्थायी या अस्थायी असक्तता और इनके कारण आर्थिक साधनो व मानव क्षमता का नाश और इसके पश्चात श्रमिको तथा उनके आश्रितो को मिलने वाले कष्ट। इस प्रकार श्रमिको के लिये औद्योगिक दुर्घटनाओ की क्षतिपूर्ति की व्यवस्था प्रत्येक देश के श्रम-विधान का आवश्यक अग हो गई है तथा अनेक देशो मे यह सामाजिक बीमा योजनाओ के अन्तर्गत सम्मिलित कर ली गई है।

क्षतिपूर्ति प्रदान करने का अनुमोदन आर्थिक तथा मानवीय दोनो ही दृष्टियो से किया जा सकता है। क्षतिपूर्ति प्रदान करना एक ओर तो मानव जीवन के मूल्य को स्वीकार करना है, तथा दूसरी ओर इसके कारण श्रमिको मे सुरक्षा की भावना उत्पन्न हो जाती है, उनकी कार्य-क्षमता मे वृद्धि होती है तथा औद्योगिक कार्यों का अनाकर्षण कम हो जाता है। क्षतिपूर्ति के उत्तरदायित्व के कारण मालिक दुर्घटनाओ को रोकने के लिए उचित सुरक्षा के साधन प्रदान करने का भी ध्यान रखते हैं, तथा इस कारण ही वे श्रमिको को उचित चिकित्सा सुविधायें प्रदान करने के लिए प्रेरित होते हैं। यह भी स्वीकार किया गया है कि चाहे व्यवसाय छोटा हो अथवा बडा, चाहे कार्य को खतरनाक समझा जाता हो अथवा कम सकटपूर्ण, चाहे कार्य औद्योगिक, वाणिज्य सम्बन्धी या कृषि का हो, चाहे श्रमिक का वेतन कम हो या अधिक, चाहे उसका कार्य शारीरिक हो या न हो और चाहे वह

औद्योगिक दुर्घटना का शिकार हुआ हो अथवा व्यवसायजनित बीमारी का, सब अवस्थाओं मे मजदूरों की क्षतिपूर्ति का अधिकार वैसा ही रहता है।

क्षतिपूर्ति के लिये कुछ प्रारम्भिक व्यवस्थायें

यद्यपि मजदूरों द्वारा क्षतिपूर्ति की माँग १८८४-१८८५ तथा १९१० में की गई थी परन्तु १९२३ मे श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम पारित होने से पूर्व किसी घायल श्रमिक के लिए, जिसे कार्य करते समय चोट लगी हो, यह सम्भव नहीं था कि वह कोई हरजाना या क्षतिपूर्ति पा सके। परन्तु कुछ अवसरों पर, साधारण कानून के अन्तर्गत, मालिकों पर उनकी असावधानी के कारण क्षतिपूर्ति देने का दायित्व था अर्थात् एक मृतक श्रमिक के आश्रित कुछ स्थितियों मे १८८५ के भारतीय घातक दुर्घटना अधिनियम (Indian Fatal Accidents Act) के अन्तर्गत मुआवजे का दावा कर सकते थे। परन्तु यह मुआवजा तब ही मिल सकता था जब यह प्रमाण मिल जाता था कि किसी व्यक्ति के गलत कार्य, असावधानी या भूल के कारण ही दुर्घटना से मृत्यु हुई है। परन्तु इस अधिनियम मे क्षतिपूर्ति पाने की कार्य-प्रणाली इतनी कष्टप्रद थी कि यह क्षति दिलाने में अधिक सहायक सिद्ध न हो सकी। किन्तु १९२२ मे कारखाना अधिनियम मे एक धारा और जोड दी गई थी जिसमें फौजदारी न्यायालयों को इस बात का अधिकार दे दिया गया था कि वे चोट पहुचाने वाले व्यक्ति पर हुए जुर्माने का कुछ हिस्सा चोट खाये हुए व्यक्ति या उसके आश्रितो को देने का आदेश दे सकते हैं।

१९२३ का श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम

१९२१ में सरकार ने जनता का मत जानने के लिए कुछ क्षतिपूर्ति से सम्बन्धित प्रस्ताव परिचालित किये। उन प्रस्तावों को अधिकांशत अनुमोदन प्राप्त हुआ जिसके फलस्वरूप मार्च १९२३ में श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम पारित किया गया और १ जुलाई १९२४ से लागू कर दिया गया। इस अधिनियम मे १९२६ और १९२९ में कुछ संशोधन हुए जिनका उद्देश्य कुछ छोटे-छोटे परिवर्तन करना था और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के व्यवसाय-जनित बीमारियो के अभिसमय को मान्यता देनी थी और अधिनियम के कुछ दोषों को दूर करना था। रॉयल श्रम आयोग ने अधिनियम के उपबन्धो की विस्तृत रूप से जाँच के पश्चात् इनमे सुधार करने के कुछ सुझाव दिये। इन सिफारिशों के फलस्वरूप १९३३ में इस अधिनियम को पुनर्गठित व संशोधित करने वाला एक अधिनियम पारित किया गया जो जनवरी १९३४ से लागू कर दिया गया। इस अधिनियम द्वारा पहले अधिनियम का क्षेत्र और भी विस्तृत हो गया। इसके पश्चात् अधिनियम में १९३७, १९३८, १९३९, १९४२, १९४६, १९५९ और १९६२ मे संशोधन किया गया। इस अधिनियम को कुछ आदेशो द्वारा भी विस्तृत रूप से लागू किया गया था। यह आदेश १९४८ का भारतीय स्वतन्त्रता आदेश (केन्द्रीय अधिनियम और अध्यादेशो का अनुकरण) और १९५८ का कानून का अनुकरण (Adaptation) करने के आदेश थे। इसके

अतिरिक्त युद्ध के समय दो और पग, युद्ध के कारण जो क्षति होती थी उसके लिए सुरक्षा देने के हेतु, उठाये गए। वे निम्नलिखित थे—१६४१ का युद्ध क्षति अध्यादेश और १६४३ का युद्ध क्षति (क्षतिपूर्ति बीमा) अधिनियम। इन दोनो के अन्तर्गत लडाई के कारण घायल कर्मचारियो को चिकित्सा सुविधाय तथा अन्य सहायता और क्षतिपूर्ति प्रदान की जाती थी। यह क्षतिपूर्ति भी उसी सीमा तक मिलती थी, जो श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के अन्तर्गत मिलती है। चीनी आक्रमण के पश्चात लडाई या सक्टकाल कार्य के कारण क्षति होने से क्षतिपूर्ति देन के लिए १६६२ म व्यक्तिगत क्षति (सक्टकाल व्यवस्था) अधिनियम [Personal Injuries (Emergency Provisions) Act] और १६६३ मे व्यक्तिगत क्षति (क्षति पूर्ति बीमा) अधिनियम [Personal Injuries (Compensation Insurance) Act] पारित किये गए हैं। इनका उल्लेख श्रम विभाग के अध्याय मे किया गया है। श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम मे सबसे महत्वपूर्ण सशोधन सन् १६४६ और १६५६ के थे। १६४६ के सशोधन के अनुसार ३०० रुपये मजदूरी प्राप्त करने वाले श्रमिको के स्थान पर ४०० रुपये तक प्राप्त करने वाल श्रमिक भी अधिनियम के अन्तर्गत आ गए थ। १६६२ के सशोधन के अन्तर्गत यह सीमा ५०० रुपय कर दी गई है। १६५६ क सशोधन अधिनियम क अनुसार, जो मार्च १६५६ मे पारित हुआ और जून १६५६ स लागू हुआ क्षतिपूर्ति देने के हेतु वयस्क और अल्पवयस्क का अन्तर दूर कर दिया गया और अन्य कई धाराओ मे परिवर्तन किया गया है। १६६२ मे सशोधन के अनुसार, अधिनियम ५०० रुपये प्रति मास पाने वाले कर्मचारियो तक भी लागू कर दिया गया है। क्षतिपूर्ति की दरो मे सशोधन हुआ है और व्यवसाय जनित बीमारियो की धारा को स्पष्ट कर दिया गया है। अधिनियम के, जैसा इस समय लागू है, उपबन्ध निम्नलिखित हैं—

क्षेत्र (Scope)

यह अधिनियम रेलवे, कारखानो, खानो, बागान, यत्र से चलने वाली गाडियो, निर्माण कार्यों तथा अनेक अन्य सकट-पूर्ण रोजगारो म काम करने वाले सारे श्रमिको पर लागू होता है। जो लोग क्लर्की अथवा प्रशासन कार्य करते हैं या सशस्त्र सना म या नैमित्तिक (Casual) कार्य पर हैं या जो एसे कार्य पर लगाये जाते हैं जो मालिका के व्यवसाय से भिन्न हैं, अथवा जिनकी आय ५०० रु० से अधिक है, वे इस अधिनियम के अन्तर्गत नही आते। नाविक (Seamen) और समुद्र पर काम करने वाले कुछ अन्य श्रमिक जो किसी शक्ति द्वारा चलने वाले जहाज पर काम करते है या ५० या इससे अधिक टन वाले किसी जहाज पर नौकर है वे भी इस अधिनियम के अन्तर्गत आ जाते हैं। साधारणत अधिनियम उन समस्त श्रमिको पर लागू होता है जो सगठित उद्योगो तथा खतरनाक रोजगारो मे काम पर लगे हुए है। राज्य सरकारो को यह अधिकार है कि वे अधिनियम को विस्तृत कर इस प्रकार के अन्य व्यक्तियो पर भी लागू करदें जिनके

व्यवसाय खतरनाक समझे जाते हो। मद्रास, उत्तर-प्रदेश, मैसूर तथा बिहार की सरकारों ने अधिनियम के क्षेत्र को उन लोगों तक विस्तृत कर दिया है जो किसी भी यन्त्र से चलने वाली गाड़ी में माल उतारने अथवा चढाने का कार्य करते है अथवा ऐसी ही गाडियो मे माल को लाने, ले जाने या रखने-उठाने के कार्य में लगे हुए है। बिहार सरकार ने ऐसे भंगियों के लिए भी यह अधिनियम लागू कर दिया है जो जमीन के अन्दर गहरी खुदी नालियो की सफाई का कार्य करते है, या जल-मल निकास की नालियो मे अथवा ट्रकों पर कार्य करते है। मद्रास सरकार ने अधिनियम को विस्तृत कर नारियल चुनने वालों पर, शहतीर के यातायात मे लगे हुए श्रमिको पर, माल लादने-उतारने वालो पर तथा शक्ति का प्रयोग करने वाली सब संस्थानो पर, जो कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत आ जाती है, यह अधिनियम लागू कर दिया है। मैसूर सरकार ने किसी भी जिला बोर्ड अथवा नगरपालिका के खुले मे कार्य करने वाले कर्मचारियो पर भी यह अधिनियम लागू किया है। बम्बई सरकार ने इस अधिनियम को खेतो के ऐसे श्रमिको तक विस्तृत कर दिया है जो ट्रैक्टर चलाने अथवा अन्य किसी यान्त्रिक साधन के लिए नौकर है। इस प्रकार उन सभी विभिन्न प्रकार के कार्यो की एक सूची है जिनमें काम करने वाले श्रमिकों पर यह अधिनियम लागू होता है। यह कार्य निम्नलिखित है—इमारतो के निर्माण-कार्य, उनकी मरम्मत अथवा ढाने मे, सडके, पुल, बाँध, सुरंग, तार, टेलीफोन या बिजली के खम्भे, नहरे, पाइप बिछाना, जल-मल निकास के नाले, रस्सी के पुल, आग बुझाने वाले, पेट्रोल, विस्फोटक कार्य, बिजली या गैस का कार्य, प्रकाश-स्तम्भ, सिनेमा दिखाना, जंगली जानवरो को पालना, गोताखोर इत्यादि, इत्यादि। १९५९ के संशोधन द्वारा इस प्रकार के रोजगार की सूची और विस्तृत कर दी गई है। यदि कोई व्यक्ति १९४८ के कर्मचारी राज्य-बीमा अधिनियम के अन्तर्गत आता है और वह कर्मचारी राज्य बीमा निगम से असमर्थता और आश्रयता लाभ पाने का अधिकारी है, तब उसे मालिकों से इस अधिनियम के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार नही है। जम्मू व कश्मीर राज्य के अतिरिक्त यह अधिनियम समस्त भारत मे लागू होता है।

क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार (Title to Compensation)

क्षतिपूर्ति मालिकों द्वारा दी जाती है और ठेके के श्रमिको के लिये भी क्षतिपूर्ति देने का उत्तरदायित्व मुख्य मालिक पर है। यह क्षतिपूर्ति उस समय दी जाती है जब श्रमिक को अपने रोजगार के कारण या कार्य करते समय किसी दुर्घटना से क्षति पहुँचती है। क्षतिपूर्ति उस समय नहीं दी जाती जब कोई श्रमिक तीन दिन से अधिक अशक्त नही रहता या क्षति (मृत्यु न होने पर) स्वयं मजदूर की गलती से होती है, उदाहरणत., जब श्रमिक किसी नशीली चीज या शराब के प्रभाव मे हो या उसने किसी आज्ञा का जान-बूझकर उल्लघन किया हो, आदि। मृत्यु के अवसर पर मालिको को प्रत्येक परिस्थिति में क्षतिपूर्ति देनी होती है।

व्यवसाय जनित बीमारियां (Occupational Diseases)

शारीरिक क्षतियों के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट व्यवसाय जनित रोग हो जाने पर भी क्षतिपूर्ति प्रदान की जाती है। ऐसे रोगों का उल्लेख अधिनियम की तीसरी सूची में किया गया है उदाहरणतः सीसा धुआं फासफोरस पारे के विष प्रयोग से व बन्द हवा आदि से होने वाली बीमारियाँ आदि आदि। राज्य की सरकारों को बीमारियों के सूची में और नाम बढ़ाने का अधिकार है और कुछ राज्यों की सरकारों ने ऐसा किया भी है। १९५९ के संशोधन अधिनियम के अनुसार उस सूची को जिसमें ऐसी बीमारियां और क्षतियों का उल्लेख है जिनके लिये क्षतिपूर्ति दी जाती है, अधिक विस्तृत तथा व्यापक कर दिया गया है और ऐसी क्षतियों की संख्या जिनके कारण स्थायी आंशिक असमर्थता हो जाती है १४ से बढ़ाकर ४४ कर दी गई है। १९६२ के संशोधन ने ऐसी बीमारियों के लगने की धारा को और अधिक स्पष्ट कर दिया है।

क्षतिपूर्ति की राशि (Amount of Compensation)

क्षतिपूर्ति में दी जाने वाली धनराशि चोट के प्रकार तथा श्रमिक की औसतन मासिक मजदूरी पर निर्भर है। इस उद्देश्य से क्षतियों को तीन भागों में बाँटा गया है—(१) ऐसी क्षति जिसके कारण मृत्यु हो जाती है (२) ऐसी क्षति जिनसे स्थायी पूर्ण या आंशिक असमर्थता हो जाती है (३) ऐसी क्षति जिनसे अस्थायी असमर्थता हो जाती है। वयस्क और अल्प वयस्कों के लिये क्षतिपूर्ति की दर पहले भिन्न थी परन्तु अब वयस्क और अल्पवयस्क का अन्तर १९५९ के संशोधन द्वारा समाप्त कर दिया गया है। मृत्यु हो जाने पर अधिनियम में दी हुई क्षतिपूर्ति की दर निम्नतम वेतन वर्ग (अर्थात् १० रुपये प्रतिमाह से कम) के व्यक्तियों पर १,००० रुपये से लेकर उच्चतम वेतन वर्ग (अर्थात ४०० रुपये प्रति माह से अधिक) वाले व्यक्तियों पर १०,००० रुपये तक हैं। स्थायी पूर्ण असमर्थता के समय इसी प्रकार क्षतिपूर्ति की दर वेतन के अनुसार १,४०० रुपये से १४,००० रुपये तक है। अस्थायी असमर्थता होने पर अधिनियम के अनुसार श्रमिकों को प्रत्येक आधे महीने के बाद क्षति की राशि दी जाएगी और इस राशि की दर इस प्रकार होगी—मासिक वेतन की आधी राशि से (उन श्रमिकों के लिए जिनकी मजदूरी १० रुपये मासिक से कम है) ८७.५० रुपये तक (उन श्रमिकों के लिये जिनकी मजदूरी ४०० रुपये से अधिक है)। असमर्थता के प्रथम तीन दिनों के लिये कोई क्षतिपूर्ति नहीं दी जाती उसके पश्चात १६ वें दिन से आधे माह के वेतन के हिसाब से क्षतिपूर्ति का दिया जाना प्रारम्भ हो जाता है जो असमर्थता काल में चलता रहता है। यह क्षतिपूर्ति अधिक से अधिक पाँच वर्ष तक दी जा सकती है। १९५९ के संशोधित अधिनियम के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के लिये जो सात दिन के प्रतीक्षा काल की व्यवस्था थी उसे घटाकर ३ दिन कर दिया गया है। यदि असमर्थता का समय २८ दिन या इससे अधिक है तब असमर्थ होने के दिन से

ही क्षतिपूर्ति देने की व्यवस्था की गई है। स्थायी आंशिक असमर्थता के समय क्षतिपूर्ति का हिसाब धनोपार्जन-शक्ति में क्षति पहुँचने के प्रतिशत के हिसाब से लगाया जाता है और इसका उल्लेख अधिनियम की प्रथम अनुसूची में दिया गया है।

आश्रित (Dependants)

यदि श्रमिक की मृत्यु हो जाती है, उस समय जो आश्रित क्षतिपूर्ति के अधिकारी हैं, अधिनियम में उनकी भी एक सूची दी गई है। उनको दो भागों में बाँटा गया है—प्रथम वे जो बिना प्रमाण के ही आश्रित समझे जाते हैं तथा दूसरे वे जिन्हें यह प्रमाणित करना पड़ता है कि वे मृत व्यक्ति के आश्रित थे। प्रथम श्रेणी में निम्नलिखित व्यक्ति आते हैं—विधवा, अल्प-वयस्क वैध-पुत्र वैध-अविवाहित पुत्री तथा विधवा माँ। दूसरे वर्ग में निम्नलिखित व्यक्ति आते हैं यदि वे श्रमिक की मृत्यु के समय श्रमिक की आय पर निर्भर थे—विधुर पिता, विधवा माँ के अतिरिक्त माता या पिता, अल्पवयस्क अवैध पुत्र, अविवाहित अवैध पुत्री, विवाहित या विधवा अल्पवयस्क पुत्री, अल्पवयस्क भाई, अविवाहित या विधवा बहिन, विधवा पुत्र वधू, मृत पुत्र अथवा मृत पुत्री का अल्पवयस्क बच्चा, जबकि उसके माता-पिता में से कोई जीवित न हो, और यदि श्रमिक के माता-पिता जीवित नहीं हैं तो दादा और दादी।

क्षतिपूर्ति का वितरण (Distribution of Compensation)

इस बात की भी व्यवस्था है कि समस्त घातक दुर्घटनाओं की सूचना एक 'श्रमिक क्षतिपूर्ति कमिश्नर' को दी जायगी और यदि मालिक अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार करता है तब उस कमिश्नर के पास क्षतिपूर्ति की राशि जमा करनी होगी। परन्तु जब मालिक अपने उत्तरदायित्व को नहीं स्वीकार करता तो कमिश्नर जाँच करने के पश्चात् आश्रितों को सूचित कर सकता है कि वे यदि दावा करना चाहें तो कर सकते हैं तथा इस विषय में वह हर प्रकार की सूचना दे सकता है। अधिनियम में इस बात की आज्ञा नहीं है कि क्षतिपूर्ति के लिये मालिक और मजदूर आपस में समझौता कर लें। मालिकों द्वारा क्षतिपूर्ति में से केवल १०० रुपए तक अग्रिम राशि दी जा सकती है। कमिश्नर को यह भी अधिकार है कि वह क्षतिपूर्ति की राशि में से २५ रुपये तक अन्त्येष्टि क्रिया पर व्यय करने वाले व्यक्ति को देने के लिये काट ले। १९५९ के संशोधित अधिनियम के अन्तर्गत इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि समय पर क्षतिपूर्ति न देने पर दण्ड दिया जायगा। इस बात का सुझाव दिया गया है कि क्षतिपूर्ति की राशि कर्मचारी राज्य बीमा निगम द्वारा वितरित की जाय तथा राशि का भुगतान समय-समय पर किया जाय।

अधिनियम का प्रशासन (Administration of the Act)

अधिनियम का प्रशासन राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है जिन्होंने अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिक क्षतिपूर्ति कमिश्नरों की नियुक्ति की है। विवादास्पद दावों को तय करना, किसी क्षति से मृत्यु होने पर क्षतिपूर्ति दिलवाना तथा सामयिक

भुगतानों की जाँच करना आदि कमिश्नर के कर्त्तव्य हैं। अधिनियम के अनुसार सम्बन्धित प्राधिकारियों को मालिक एक रिपोर्ट देने के लिये बाध्य हैं जिसमें दुर्घटनाओं की संख्या, क्षतिपूर्ति में दी गई राशि आदि का उल्लेख हो। १९६४ में, दुर्घटनाओं की संख्या इस प्रकार थी जिनसे मृत्यु हुई—११६५, जिनसे स्थायी असमर्थता हुई—८८७८, जिनसे अस्थायी असमर्थता हुई—६५,६१७, कुल योग १,०१६६० । इसी वर्ष मृत्यु पर क्षतिपूर्ति में दी गई राशि ६३·३५ लाख रुपये थी और स्थायी असमर्थता के लिये दी हुई राशि ४३·७० लाख रुपये तथा अस्थायी असमर्थता के लिये दी गई राशि ३२·६५ लाख रुपये थी। क्षतिपूर्ति के लिए दी गई राशि का कुल योग १४०·०६ लाख रुपये था।

श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम में फिर कुछ संशोधन करने पर विचार किया जा रहा है। इस संशोधन के अनुसार (१) श्रमिकों को क्षतिपूर्ति आयु के आधार पर भी दी जायेगी (२) ऐसी क्षतिपूर्ति की राशि से जिसका भुगतान न हो सका हो एक कल्याण निधि बनाई जायेगी और जिसे अधिनियम के अनुसार कमिश्नरों पर जमा किया जायगा। (३) श्रमिकों को कार्य की अवधि में क्षति पहुँचने पर पुनः रोजगार पर लगाने की व्यवस्था की जायेगी। (४) नाविकों अथवा कप्तानों की स्थिति में दावे दायर करने के लिये अवधि की सीमा को समाप्त कर दिया जायगा। (५) उन श्रमिकों को छटनी-क्षतिपूर्ति अदा की जायगी जिनकी सेवायें स्थायी असमर्थता के कारण समाप्त कर दी गई हों, और (६) अधिनियम के क्षेत्र को इतना विस्तृत किया जायेगा कि जिसमें ऐसे खान-मैनेजर तथा खानों में काम करने वाले निरीक्षण-कर्मचारी भी इसकी परिधि में आ जायें जिन्हें ५०० रुपए प्रतिमाह से अधिक वेतन मिलता है।

भारत के क्षतिपूर्ति अधिनियम का आलोचनात्मक मूल्यांकन

सब बातों को देखते हुये कहा जा सकता है कि श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम सफलतापूर्वक लागू किया गया है और इसके लागू करने में कोई कठिनाई भी नहीं हुई है। इसका कारण यह है कि यह अधिनियम बहुत स्पष्ट है और इसको लागू करने के लिये भी विशेष प्रबन्ध किया गया है। अधिकतर मालिकों ने इसके उप-बन्धों को लागू करने के लिये अपनी सहमति दिखाई है। इसके अतिरिक्त अनेक केन्द्रों के कल्याण कार्यकर्ताओं ने, कुछ श्रम संघों तथा समाज संस्थाओं ने भी अधिनियम के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति दिलाने में श्रमिकों की सहायता की है। उदाहरणार्थ, अहमदाबाद की कपड़ा मिल मजदूर परिषद्, बम्बई की दो दावा दिलाने वाली ऐजेन्सियों और बम्बई राष्ट्रीय मिल मजदूर संघ आदि ने अधिनियम के प्रचार तथा निर्धन श्रमिकों को क्षतिपूर्ति दिलाने में अच्छा कार्य किया है। कई बार वकीलों ने भी बिना फीस लिये क्षतिपूर्ति के मुकदमों को लड़ा है। श्रमिक क्षतिपूर्ति कमिश्नर का कार्यालय भी क्षतिपूर्ति के लिये प्रार्थना-पत्र लिखने में श्रमिकों की सहायता करता है। आसाम में सरकार ने मुकदमें लड़ने के लिये कई बार श्रमिकों

को वित्तीय सहायता भी दी है। सन् १९५८–५९ मे सरकार ने इस कार्य के लिये १००० रुपए दिए थे। प्रारम्भ में अधिनियम मे जो दोष थे, वह भी कई संशोधनों द्वारा दूर हो चुके है। उदाहरणार्थ, १९३४ में यह व्यवस्था की गई थी कि यदि चोट घातक है तो स्वयं श्रमिक का दोष होने पर भी मालिकों को क्षतिपूर्ति देनी ही पड़ेगी। १९३८ में उद्योगजनित बीमारियों का क्षेत्र स्पष्ट कर दिया गया तथा शीघ्र एवं धीरे-धीरे लगने वाली व्यवसायजनित बीमारियों के अन्तर को भी स्पष्ट किया गया और साथ ही उद्योगजनित बीमारी होने पर क्षतिपूर्ति के लिए जो ६ माह की नौकरी की शर्त थी, उसको अब केवल धीरे-धीरे लगने वाली बीमारियों के लिए ही रखा गया है। क्षतिपूर्ति के दावे किए जाने का समय ६ माह से बढ़ाकर १ साल कर दिया गया है। मासिक वेतन की परिभाषा को अब स्पष्ट कर दिया गया है जिसके अन्तर्गत अब सम्पूर्ण माह की मजदूरी ली जाती है, चाहे उस मजदूरी के भुगतान की अवधि कोई भी क्यों न हो। १९५९ के संशोधनों से भी इस अधिनियम में उन्नति हुई है। १९३८ में मालिकों के दायित्व का अधिनियम (Employers' Liability Act) भी पारित किया गया था। इसके अन्तर्गत इस बात की व्यवस्था कर दी गई है कि किसी भी श्रमिक को कोई क्षति पहुँचने पर यदि हरजाने का दावा किया जाता है तो मालिक इस बात की दलील नहीं दे सकते कि श्रमिक का रोजगार सामान्य था अर्थात् वह कई मालिकों द्वारा काम पर लगाया हुआ था। इस १९३८ के अधिनियम को बाद में १९५१ के एक संशोधन से और भी स्पष्ट कर दिया गया है।

श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के मुख्य दोष

क्षतिपूर्ति अधिनियम के लागू होने पर इसके कई दोष सामने आये है मालिकों ने यह शिकायत की है कि अधिनियम उनके प्रति अन्याय करता है क्योंकि उनकी यह समझ मे नहीं आता कि जिस सकट के लिये वे व्यक्तिगत रू से उत्तरदायी नहीं है, उसकी क्षतिपूर्ति वे क्यों करें। उदाहरणार्थ, घातक चोट मामले में यदि श्रमिक की मृत्यु स्वय उसकी ही गलती से होती है, तब भी मालि क्षतिपूर्ति के लिये उत्तरदायी ठहराया जाता है।

इस अधिनियम के कार्यान्वित होने पर कई दोष पाये जाते है जो विशेषक श्रमिकों के दृष्टिकोण से अधिक गम्भीर हैं। यह अधिनियम ठीक प्रकार से ल नहीं होता, विशेषकर उन छोटे-छोटे तथा मुफस्सिल क्षेत्रों मे जहाँ साधारणत इ बात का प्रयत्न किया जाता है कि जैसे भी हो मजदूर को क्षतिपूर्ति न देनी पड़े बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ साधारणत अधिनियम को ठीक प्रकार से लागू करती यद्यपि उनमे भी छोटी-मोटी क्षतियों की रिपोर्ट नहीं दी जाती। मुफस्सिल क्षे मे प्रार्थनापत्र पर कार्यवाही करने में बहुत देर हो जाती है क्योंकि कानू अधिकारी बजाय इसके कि अधिनियम की मूल भावना एव तत्व पर ध्यान कानूनी कृत्रिमता (Formalities) मे अधिक पड़े रहते हैं। दूसरे, जो अधिक

अर्थात् कमिश्नर नियुक्त किये गये हैं वे इस अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले मामलो का शीघ्रता से निर्णय नही करते क्योकि वे अपने अन्य कार्यो में बहुत व्यस्त रहते हैं। मौसमी कारखानो मे, जैसे चावल मिलो मे, या कपास निकालने की मिलो मे, दुर्घटनायें प्राय चुपचाप दबा दी जाती है अथवा यदि ऐसा सम्भव नही होता तो इकमुश्त राशि देकर फैसला कर लिया जाता है और क्षतिपूर्ति की पूरी राशि नही दी जाती। केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग मे भी अधिनियम सतोषजनक रूप से लागू नही होता, विशेषकर ठेके पर कार्य करने वाले श्रमिको के लिए। ठेकेदार कभी-कभी अधिनियम के अनुसार दिये जाने वाली राशि के स्थान पर कम धन देकर पूरी राशि की रसीद ले लेते हैं और कभी-कभी तो क्षतिपूर्ति बिल्कुल भी नही दी जाती। खानो मे भी यह देखा गया है कि अधिकाश दुर्घटनाओ की सूचना तक नही दी जाती। इस समय मालिक ऐसी दुर्घटनाओ की सूचना देने के लिए बाध्य नही है जिसमे मृत्यु नहीं होती, चाहे उनकी क्षतिपूर्ति भले ही दी जाती हो। कमिश्नर यह नही जान पाता कि क्षतिपूर्ति उचित रूप मे दी गई है या नही। इसके अतिरिक्त सेवा कार्ड रखने की भी कोई सामान्य व्यवस्था नही है। इसका परिणाम यह होता है कि जब दुर्घटना के पश्चात् श्रमिक और उसका परिवार अपने घर चला जाता है तब घर का पता ज्ञात न होने के कारण उससे सम्पर्क कठिन हो जाता है। श्रमिक इतने अज्ञानी और अशिक्षित होते है कि अधिकतर उन्हे इतना भी नही मालूम होता कि औद्योगिक दुर्घटनाओ के होने पर वे क्षतिपूर्ति के अधिकारी है। इस सम्बन्ध मे श्रमिको को शिक्षित करने की ओर सरकार, मालिको और श्रमिक सभी द्वारा बहुत कम पग उठाये गये हैं। इसके अतिरिक्त कोई ऐसी सस्थायें भी नही है जो श्रमिको को क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के लिए कानूनी सहायता प्रदान कर सकें। यदि श्रमिक को यह ज्ञात भी होता है कि वह क्षतिपूर्ति पाने का अधिकारी है, तब भी उसे मालिक से क्षतिपूर्ति माँगनी पड़ती है, और इस प्रार्थना का अधिकतर परिणाम यह होता है कि जब तक प्रार्थना को वापस न ले लिया जाय अथवा थोड़ी सी राशि को ही क्षतिपूर्ति की पूरी राशि के रूप मे स्वीकार न कर लिया जाय, उसे बर्खास्त करने की धमकी दे दी जाती है। श्री शिवाराव का कहना है कि "एक सीमा के पश्चात् अपने अधिकारों की पूर्ति करना भारतीय श्रमिक के लिए लाभदायक नही है।" श्रमिक को कई बार इस कठिन समस्या का सामना करना पड़ता है कि या तो क्षतिपूर्ति के लिए जोर डालकर अपनी नौकरी से हाथ धो ले या इस आश्वासन पर कि उसकी नौकरी बनी रहेगी, वह, जो भी मालिक दे, उसे स्वीकार कर ले। यदि मालिक क्षतिपूर्ति देना अस्वीकार कर देता है तो श्रमिक के सामने केवल अदालत का रास्ता ही रह जाता है, जिसमे अनेक कठिनाइयाँ हैं। श्रमिक के पास न तो इतना धन होता है और न इतना अवकाश ही होता है कि वह मुकदमेबाजी का शौक कर सके। इसलिए अधिकाश मामलो मे मुकदमा दायर नहीं किया जाता। दूसरी बात यह है कि मालिको के बड़े-बड़े योग्य वकीलो के सामने श्रमिक की सफलता भी सदिग्ध

मालिकों का ही है। परन्तु इस उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिये मालिकों द्वारा अनिवार्य बीमा कराने की व्यवस्था नहीं है। यह एक ऐसी सामाजिक-बीमा व्यवस्था नहीं है जिसमें कि मालिक, श्रमिक और राज्य मिलकर श्रमिकों को क्षतिपूर्ति देने के लिये एक त्रिदलीय निधि बनाते हों। इस योजना के लिये व्यावसायिक बीमे के सिद्धान्त का भी अनुकरण नहीं किया गया है क्योंकि मालिक इसमें इस बात के लिये बाध्य नहीं है कि वे अपने जोखिम का बीमा किसी बीमा कम्पनी अथवा किन्हीं अन्य सस्थाओं के साथ कराएँ। फिर भी मालिकों के कुछ महत्वपूर्ण सगठनों के सदस्यों ने अधिनियम के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति में दिये जाने वाले भुगतान से बचने के लिये बीमा कराया है। उदाहरणार्थ, 'बम्बई मिल मालिक परिषद्' ने स्वय 'मिल मालिक पारस्परिक बीमा परिषद्' की स्थापना की है जो अपने सदस्यों की क्षतिपूर्ति के दायित्व का बीमा करती है। भारतीय जूट मिल परिषद् के सदस्यों ने भी श्रमिक क्षतिपूर्ति के दायित्व से बचने के लिये बीमा कराया है। कलकत्ता और मद्रास के कुछ दावा ब्यूरो (Claims Bureau) भी दुर्घटना बीमा के लिये सुविधाएँ प्रदान करते हैं।

इस प्रकार के बीमे की योजना के लाभ स्पष्ट हैं। यह सभी सम्बन्धित पक्षों के लिये लाभदायक है। जब मालिक अपनी देनदारी से मुक्त होता है तब वह श्रमिकों के द्वारा माँगी जाने वाली क्षतिपूर्ति का विरोध नहीं करता बल्कि वह इस बात का ध्यान रखता है कि उसके श्रमिकों को पर्याप्त रूप से क्षतिपूर्ति मिल जाय। इससे मालिकों और श्रमिकों के बीच कटुता कम हो जाती है। यदि मालिक ने पहले ही बीमा कराया हुआ है और किसी समय दिवालिया भी हो जाता है तब भी श्रमिकों की अवस्था अनिश्चित नहीं होती। अतः अनेक राज्य सरकारों, मालिकों के सगठनों और श्रम अनुसधान समिति ने सुझाव दिया है कि दुर्घटनाओं की क्षतिपूर्ति देने के लिये मालिकों के दायित्व का बीमा अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिये।

अनिवार्य बीमा दो प्रकार का हो सकता है कम्पनी बीमा और राज्य बीमा। अधिकतर राज्य बीमा का समर्थन किया जाता है क्योंकि निजी बीमा कम्पनियों में श्रमिकों को स्वय ही दावा करना पड़ता है। इसमें खर्चीले और लम्बे लम्बे मुकदमों की सम्भावनाएँ हो सकती हैं और श्रमिकों को मिलने वाला लाभ स्वतः प्राप्त नहीं होगा और वर्तमान दोष भी यथावत बने रहेंगे। देश में श्रमिक क्षतिपूर्ति की वर्तमान अवस्थाओं को सुधारने के लिये एकमात्र उपाय सामाजिक-बीमा के सिद्धान्त को अपनाना ही है। इसमें लागत तीन भागों—अर्थात् मालिकों, श्रमिकों और राज्य—में बँट जाती है। मालिकों का वर्तमान योजना के प्रति विरोध भी दूर हो जायेगा तथा उनको क्षतिपूर्ति न देने से जो लाभ होता है उसका प्रलोभन भी नहीं रहेगा। इधर श्रमिकों के दृष्टिकोण से भी बहुत बड़ा लाभ होगा। जब मालिकों को श्रमिकों की क्षतिपूर्ति की माँग पूरा न करने से कोई लाभ नहीं होगा और इस सम्बन्ध में उनका कोई प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व न होगा तब वे

श्रमिकों की राह मे बाधक होने की अपेक्षा क्षतिपूर्ति दिलाने मे उनके सहायक होंगे। क्षतिपूर्ति का भुगतान भी स्वतः ही होगा और श्रमिकों को दावा करने अथवा मुकदमा दायर करने की आवश्यकता नही होगी। अधिनियम से बचने का प्रयत्न भी बहुत कम हो जायगा। वर्तमान परिस्थिति मे इस सुधार की बहुत आवश्यकता है। चिकित्सा लाभो के लिये भी व्यवस्था करना सम्भव हो जायगा, जो स्वास्थ्य बीमा निधि का भाग हो सकता है और श्रमिक को किसी भी दुर्घटना का शिकार होने पर यह चिकित्सा-लाभ तत्काल ही निःशुल्क प्राप्त हो जायेगा। यद्यपि अधिनियम मे ऐसा कोई सशोधन नही हुआ है, जिसके अन्तर्गत क्षतिपूर्ति के लिये अनिवार्य बीमा की व्यवस्था हो फिर भी "कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम" द्वारा इस ओर कदम उठा लिया गया है। इसके अनुसार क्षतिपूर्ति देने का उत्तर-दायित्व अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित निगम का है। मालिको का उत्तरदायित्व इस प्रकार समाप्त हो गया है। जब यह अधिनियम समस्त भारत मे लागू हो जाये, तब श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम की कोई आवश्यकता नही रह जायगी।

व्यक्तिगत चोट (क्षतिपूर्ति बीमा) अधिनियम, १९६३

यह अधिनियम सन् १९६२ में चीनी आक्रमण के परिणामस्वरूप घोषित सकटकालीन स्थिति के पश्चात् पास किया गया था परन्तु लागू किया गया १ नवम्बर १९६५ से। अधिनियम के अन्तर्गत, आवश्यक सेवाओ, फैक्टरियो, खानो, बागानो, बड़े बन्दरगाहों आदि पर काम करने वाले श्रमिको को यदि शत्रु की किसी कार्यवाही के कारण व्यक्तिगत चोट या क्षति पहुँचती है तो उनके मालिक ऐसे श्रमिको की क्षति की पूर्ति करेंगे, मालिक अपने इस दायित्व को पूरा करने के लिये सरकार से बीमा पालिसियाँ लेंगे और बीमे की त्रैमासिक किश्ते अदा करेंगे। अधिनियम के प्रबन्धको को लागू करने के लिये श्रम मन्त्रालय ने (१) व्यक्तिगत चोट (क्षतिपूर्ति बीमा) योजना, १९६५; और (२) व्यक्तिगत चोट (क्षतिपूर्ति बीमा) नियम, १९६५ बनाये। योजना के अन्तर्गत, ३१ मार्च सन् १९६६ को समाप्त होने वाली तिमाही के लिये बीमे की किश्त की दर निश्चित की गई। यह दर ३१ दिसम्बर १९६५ को समाप्त होने वाली तिमाही मे मालिको के मजदूरी-बिल के प्रत्येक १०० रुपये पर २५ पैसे थी। इस सम्बन्ध मे जीवन बीमा निगम को केन्द्र सरकार का एजेन्ट नियुक्त किया गया है। राज्य सरकारो को इस अधिनियम को लागू करने वाली मशीनरी की व्यवस्था करनी है और इस कार्य के लिये अतिरिक्त स्टाफ को रखने के लिये जो व्यय होगा वह व्यक्तिगत चोट (क्षतिपूर्ति बीमा) निधि मे से पूरा किया जायेगा।

भारत में मातृत्व-कालीन लाभ
(Maternity Benefits in India)

मातृत्व-कलीन लाभ का महत्व

भारत में गर्भवती स्त्रियो को मातृत्व-कालीन लाभ और विश्राम प्रदान करने के महत्व की ओर प्रथम बार अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने भारतीय जनता

का ध्यान उस समय आकर्षित किया, जब उसने १९१९ में एक बाल-जन्म अभिसमय पारित किया। भारतीय सरकार इस अभिसमय को कुछ कठिनाइयों की वजह से नहीं अपना सकी। वे कठिनाइयाँ यह थीं—स्त्री श्रमिकों की प्रवासिता, गर्भवती होने से पूर्व घर लौट जाने का रिवाज तथा बीमारी का प्रमाणपत्र बनाने के लिये महिला डाक्टरों का अभाव, आदि। इस विषय पर श्री एन० एम० जोशी ने कुछ प्रयत्न किये थे। १९२४ में विधान परिषद् के समक्ष उन्होंने एक विधेयक रखा। परन्तु उसमें वे सफल नहीं हो सके क्योंकि सरकार इस बात से सहमत नहीं थी कि इस प्रकार की व्यवस्था की आवश्यकता थी। परन्तु हमारे देश में महिला श्रमिकों के लिये मातृत्व-कालीन लाभों की सदैव बहुत आवश्यकता रही है। भारत में लगभग सभी स्त्री श्रमिक विवाहित हैं और निर्धनता, अज्ञानता तथा चिकित्सा सुविधाओं के अभाव के कारण यहाँ माताओं की मृत्यु संख्या अत्यधिक है। समाज-सेवकों द्वारा यह अनुमान लगाया गया है कि भारत में प्रत्येक १,००० बच्चों के जन्म होने पर औसतन २५ माताओं की मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार यह देखते हुये कि भारत में औसतन ९० लाख बच्चे प्रति वर्ष पैदा होते हैं, यह कहा जा सकता है कि लगभग २,५०,००० माताओं की मृत्यु प्रतिवर्ष हो जाती है जिनमें से अधिकांश युवतियाँ होती हैं। निर्धनता के कारण अधिकतर महिलाओं को कोई न कोई नौकरी करनी पड़ती है और इसके साथ ही उन्हें अपने घरेलू कामकाज को भी देखना होता है। परिणामस्वरूप उन्हें अपने व्यक्तित्व को विकसित करने का कोई अवसर नहीं मिल पाता। ऐसी परिस्थितियों में पैदा होने वाले शिशु के स्वास्थ्य को भी हानि पहुँचती है और बच्चे दुर्बल पैदा होते हैं, क्योंकि माताओं को गर्भावस्था और बच्चे के जन्म के पश्चात् पर्याप्त विश्राम और भोजन नहीं मिल पाता। यदि गर्भवती माताओं की ठीक प्रकार से देखभाल नहीं की जाती है तो देश की भावी सन्तति के स्वास्थ्य-विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः हमारे देश में मातृत्व-कालीन लाभ की बहुत आवश्यकता है।

इतना होते हुये भी भारत सरकार ने मातृत्व-कालीन लाभ की महत्ता को पूर्णतया नहीं समझा। अनेक राज्य सरकारों ने समय-समय पर इस विषय पर विधेयक पारित किये हैं और इस प्रकार के लाभों की महत्ता धीरे-धीरे स्वीकार की जा रही है।

विभिन्न राज्यों में मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम

१९२९ में बम्बई सरकार ने प्रथम मातृत्व कालीन लाभ अधिनियम पारित किया और अगले वर्ष इसका अनुसरण करते हुये मध्य प्रान्त (अब मध्य प्रदेश) ने भी एक अधिनियम पारित किया। रॉयल श्रम आयोग की सिफारिशों के परिणामस्वरूप अनेक राज्यों में मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम पारित किये गये। स्वतन्त्रता के पश्चात् तथा राज्यों के पुनर्गठन के पश्चात् इन सभी अधिनियमों में संशोधन हुए। कुछ को निरस्त (Repeal) कर दिया गया और कुछ राज्यों में

नये अधिनियम बनाये गये। विभिन्न राज्यों में जो महत्वपूर्ण मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम पास किये गये वे इस प्रकार थे—असम (१९४४), बिहार (१९४७–१९५९ में संशोधित), बम्बई (१९२९–दिल्ली तक विस्तृत), हैदराबाद (१९४२–१९५० में संशोधित), केरल (१९५७), मध्य प्रदेश (१९५८), मद्रास (१९३४–१९५८ में संशोधित—आन्ध्र पर भी लागू), मैसूर (१९५९), उड़ीसा (१९५३–१९५७ में संशोधित), पंजाब (१९४३–१९५८ में संशोधित), राजस्थान (१९५३–१९५९ में संशोधित), उत्तर प्रदेश (१९३८), बंगाल (१९३९) और पश्चिमी बंगाल चाय क्षेत्र (१९४९–१९५९ में संशोधित)। इसके अतिरिक्त तीन केन्द्रीय अधिनियमों के अन्तर्गत भी मातृत्व-कालीन लाभ मिलता है। केन्द्रीय अधिनियम ये हैं—१९४१ का खान मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम, १९४८ का कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम और १९५१ का बागान श्रमिक अधिनियम। इन सभी अधिनियमों के उपबन्धों में काफी भिन्नता पाई जाती है और इनके क्षेत्र, लाभ प्राप्त करने के लिये पात्रता अवधि, लाभ राशि की दर और अवधि आदि भिन्न-भिन्न है। अगस्त १९५५ में केन्द्रीय सरकार ने मातृत्व-कालीन लाभों में समानता लाने के लिये और न्यूनतम स्तर निर्धारित करने के लिये कुछ आदर्श नियम बना कर राज्य सरकारों में परिचालित किये। उसके पश्चात् कुछ राज्य सरकारों ने अपने अधिनियमों में इन नियमों के आधार पर संशोधन किये। १९६१ में केन्द्रीय सरकार ने मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम पारित किया। यह प्रचलित कानूनों में प्रगतिशील व्यवस्थायें लागू करके स्तरों को ऊँचा उठाने का प्रयास करता है।

केन्द्रीय सरकार का १९६१ का मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम

सन् १९६१ के केन्द्रीय मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम को १२ दिसम्बर १९६१ को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिली। १ नवम्बर १९६३ से इस अधिनियम को खानों पर लागू किया गया और १६ दिसम्बर १९६३ से बागानों पर। अनेक राज्य सरकारों ने भी अब इसको अपना लिया है और अपने राज्य-अधिनियम निरस्त कर दिये हैं, कुछ अन्य राज्य इसे लागू करने के लिये पग उठा रहे हैं। जिन राज्यों में अब केन्द्रीय अधिनियम लागू है उनके नाम ये हैं—केरल, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, पंजाब, पश्चिमी बंगाल, मद्रास, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, असम और राजस्थान। राज्य-अधिनियम अब केवल मैसूर, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश में लागू है और वह भी केवल नियमित फैक्टरियों पर। यह उल्लेखनीय है कि जिन क्षेत्रों में कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम लागू है, वहाँ मालिकों को मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियमों के अन्तर्गत उत्पन्न दायित्वों से मुक्त कर दिया गया है। किन्तु अभी हाल में किये गये एक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि ऐसे क्षेत्रों में भी मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियमों के अन्तर्गत महिला श्रमिकों को मातृत्व-कालीन लाभ उस समय तक प्राप्त होंगे जब तक कि वे कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अन्तर्गत वैसे ही लाभ प्राप्त करने के योग्य न हो जायें। केन्द्रीय अधिनियम के मुख्य उपबन्ध अग्र प्रकार हैं—

यह अधिनियम सभी खानो, बागान तथा कारखानो पर लागू होता है परन्तु जो सस्थान कमचारी राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत आते है उन पर यह अधिनियम लागू नहीं होता। इस अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित है— (१) महिला को, यदि वह प्रसव की अनुमानित तिथि से पूर्व के १२ महीनो मे १६० दिवस की नौकरी कर लेती है, मातृत्व-कालीन लाभ देने की व्यवस्था है। इस अवधि म यदि कोई जबरी छुट्टी (Lay off) हो, वह सम्मिलित कर ली जाती है। १६० दिनो की ये पात्रता अवधि उन स्त्रियो पर लागू नही होगी जो असम मे आने से पूर्व ही गभवती हो। (२) मातृत्व कालीन लाभ काल १२ सप्ताह निर्धारित किया गया है अर्थात ६ सप्ताह प्रसव से पूर्व और ६ सप्ताह प्रसव के पश्चात। (३) लाभ राशि की दर औसतन दैनिक मजदूरी (अर्थात् महिला श्रमिक की वह औसतन मजदूरी जो उसको प्रसव के कारण अनुपस्थिति से पूर्व ३ कलण्डर महीनो म मिलती है) या १ रुपया प्रतिदिन जो भी अधिक हो, निर्धारित की गई है। (४) मालिक द्वारा प्रसव से पहल या प्रसव के बाद यदि किसी दाई आदि का प्रवन्ध नि शुल्क नही किया जाता है तो २५ रुपये चिकित्सा बोनस देने की व्यवस्था है। (५) गर्भपात होने पर ६ सप्ताह की छुट्टी जो मातृत्व-कालीन लाभ की दर के अनुसार मजदूरी सहित होगी, दिये जाने की व्यवस्था है। (६) गभ के कारण या प्रसव के कारण यदि स्त्री श्रमिक बीमार हो जाती है तो उसें १ माह की अतिरिक्त छुट्टी उसी दर पर दी जायेगी। (७) जब तक बच्चे की आयु १५ माह की नही हो जाती माता को दूध पिलाने के लिये दो निर्धारित समय के मध्यान्तर देने की व्यवस्था है। (८) गर्भवती स्त्रियो को मातत्व-कालीन छुट्टी म न बर्खास्त किया जा सकता है और न ही काम पर से हटाया जा सकता है। मातृत्व कालीन छुट्टी मे स्त्रियो को काम पर लगाना कानूनन अपराध है। किसी भी गभवती स्त्री से ऐसा काम नही कराया जायेगा जो कठिन और भारी हो या जिससे उसे घण्टो खडा रहना पडता हो या ऐसा कार्य हो जिससे उसके गर्भ पर या स्वास्थ्य पर बुरा असर पडता हो।

राज्य के विभिन्न अधिनियमो की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित है—

क्षत्र (Scope)

जहा तक क्षत्र का सम्बन्ध है आन्ध्र बम्बई मध्य प्रदेश असम मैसूर, हैदराबाद पजाब उडीसा राजस्थान मे अधिनियम सभी नियन्त्रित कारखानो मे काय करने वाली स्त्री श्रमिको पर लागू होता है। बम्बई अधिनियम कवल कुछ विशेष जिला और नगरो तक ही सीमित है। बिहार अधिनियम पहले गैर मौसमी कारखानो पर लागू होता था परन्तु १९५३ म इसमे सशोधन करके इसे कपास, जूट, बत और चीनी के कारखानो को छोडकर सभी रजिस्टर्ड कारखानो पर लागू कर दिया गया है। अन्य राज्यो मे अधिनियम कवल उन महिला श्रमिको पर लागू होते है जो गैर मौसमी फैक्टियो मे काम करती है। असम और केरल म अधिनियमो को बागान की स्त्री श्रमिको पर भी लागू कर दिया गया है। १९४८ मे

पश्चिमी बंगाल सरकार ने अलग से एक अधिनियम पारित किया जिसका नाम 'पश्चिमी बंगाल मातृत्व-कालीन लाभ (चाय बागान) अधिनियम' है। इसके अन्तर्गत राज्य में चाय कारखानों और बागान में काम करने वाली स्त्रियों को भी मातृत्व-कालीन लाभ दिया जाता है। १९५० में एक संशोधन के अनुसार स्त्री श्रमिकों को प्रसवकाल के ६ सप्ताह बाद तक किसी भी काम को करने की आज्ञा नहीं है। खान मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम १९२३ के भारतीय खान अधिनियम के अन्तर्गत आने वाली सभी स्त्री श्रमिकों पर लागू होता है। जिन स्थानों पर कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम लागू कर दिया गया है वहाँ मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम के अन्तर्गत मालिकों का स्त्री श्रमिकों को लाभ प्रदान करने का उत्तरदायित्व नहीं है।

लाभ प्राप्ति के लिए पात्रता अवधि तथा लाभ राशि की दर और अवधि

निम्नलिखित तालिका से विभिन्न केन्द्रीय व राज्य अधिनियमों में लाभ प्राप्त करने के लिये पात्रता अवधि (Qualifying Period), लाभ राशि की दर तथा लाभ की अवधि स्पष्ट हो जाएगी—

अधिनियम	पात्रता अवधि	लाभ-काल (सप्ताह)	लाभ-राशि की दर
१	२	३	४
राज्य अधिनियम—मैसूर मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम, १९५९	सूचना देने के दिन से पूर्व ६ माह की नौकरी या पिछले १२ माह में निरन्तर या सविराम १५० दिन की नौकरी।	१२	७५ पैसे प्रतिदिन अथवा दैनिक औसत आय का ७/१२ हिस्सा इनमें जो भी अधिक हो।
उड़ीसा मातृत्व कालीन लाभ अधिनियम, १९५३ (१९५७ में संशोधित)।	सूचना देने के दिन से पूर्व ६ महीने की नौकरी।	१२	वास्तविक दैनिक मजदूरी या वेतन, जो ७५ पैसा प्रतिदिन से कम न हो।
उत्तर प्रदेश मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम १९३८	सूचना देने के दिन से पूर्व ६ माह की नौकरी।	८	दैनिक औसत आय या ५० पैसे प्रतिदिन, इनमें जो भी अधिक हो।
केन्द्रीय मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम १९६१	अनुमानित प्रसव की तिथि से पूर्व के १२ महीनों में १६० दिन की अवधि। असम में आने वाली गर्भवती स्त्रियों के लिये कोई अवधि नहीं है।	१२	औसत दैनिक मजदूरी या एक रुपये प्रतिदिन जो भी अधिक हो।

केन्द्रीय अधिनियम में, जो अब खाना और कई राज्यों में भी लागू है, अतिरिक्त लाभ का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अन्य राज्यों में भी चिकित्सा बोनस के रूप में अतिरिक्त लाभ देने की व्यवस्था है। यह लाभ तब दिये जाते हैं जब महिला श्रमिक किसी योग्य दाई अथवा अन्य प्रशिक्षित व्यक्तियों की सेवाओं का उपयोग करती है और मालिक अपनी ओर से किसी दाई आदि का निःशुल्क प्रबन्ध नहीं करते है। उत्तर प्रदेश में इस प्रकार का बोनस ५ रु० है, मैसूर व उड़ीसा में १० रु० है। पंजाब में यह बोनस २५ रु० निर्धारित किया गया है। असम में प्रसव काल में चिकित्सा सहायता निःशुल्क प्रदान करने की व्यवस्था है। उत्तर प्रदेश और उड़ीसा के अधिनियमों में यह भी व्यवस्था की गई है कि जहाँ ५० या इससे अधिक स्त्रियाँ या २५ प्रतिशत स्त्री श्रमिक काम करती हैं, वहां प्रत्येक मालिक को बच्चों के लिए शिशु-गृहों की व्यवस्था करनी होगी तथा स्त्री श्रमिकों के कल्याण के लिए स्वास्थ्य निरीक्षकों को नियुक्त करना होगा। वह स्त्री, जिसके एक वर्ष से कम आयु का शिशु है, जिस समय भी चाहे आधा-आधा घन्टे के दो मध्यान्तर, एक दोपहर से पूर्व और एक दोपहर के बाद, ले सकती है। ये मध्यान्तर उसके एक घन्टे के सामान्य मध्यान्तर के अतिरिक्त होंगे। यदि कारखाने में शिशु-गृह की व्यवस्था की गई है तब ऐसे मध्यान्तर पन्द्रह पन्द्रह मिनट के होंगे। उत्तर प्रदेश, और मैसूर के अधिनियमों में गर्भपात होने पर तीन माह की सवेतन छुट्टी की भी व्यवस्था है। उड़ीसा तथा मैसूर में गर्भकाल में बीमारी के कारण स्त्री श्रमिक को १ माह की अतिरिक्त छुट्टी मिल सकती है। केन्द्रीय अधिनियम के लागू होने से पहले, अन्य राज्यों के अधिनियमों में भी अतिरिक्त लाभ प्रदान करने की व्यवस्थायें थी।

भुगतान के दायित्व से बचने के लिए मालिक स्त्रियों को बर्खास्त न कर दे, इसके लिए अधिनियम में उनकी सुरक्षा की भी व्यवस्था की गई है। प्रसवकाल की छुट्टी में किसी भी स्त्री श्रमिक को बर्खास्त नहीं किया जा सकता। प्रसवकाल की छुट्टी में स्त्रियों को काम पर लगाना कानूनन अपराध है। अधिनियम में इस बात की भी व्यवस्था है कि गर्भकाल में महिला श्रमिकों को ऐसे काम पर न लगाया जाए जिससे उनकी गर्भस्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े।

अधिनियमों का प्रशासन

सारे राज्यों में अधिनियमों के प्रशासन के लिये कारखाना निरीक्षक उत्तरदायी हैं। कोयले की खानों को छोड़कर, जिनमें कोयला खान कल्याण कमिश्नर इसके लिये उत्तरदायी हैं, अन्य खानों में इनका उत्तरदायित्व खानों के मुख्य निरीक्षक पर है। अधिनियम में मालिकों के लिये यह आवश्यक है कि वे प्रतिवर्ष वार्षिक विवरण प्रस्तुत करें जिसमें वर्ष भर में कितने दावे किये गये हैं, तथा कितने दावों का भुगतान हुआ है और फलस्वरूप कितनी कुल राशि प्रदान की गई है, इसका विवरण हो। उदाहरणार्थ १९६८ में राज्यों में ब्यौरा देने वाले कारखानों में

कार्य पर लगी हुई औसतन ३५८,६७५ स्त्री श्रमिको मे से १६७,०५ स्त्रियो ने मातृत्व-कालीन लाभ की माग की, १४३,४७ स्त्रियो को वास्तव मे इस प्रकार के लाभ प्रदान किये गये, ४,३५० मामलों में बोनस भी प्रदान किये गये अथवा गर्भपात की स्थिति मे सहायता प्रदान की गई और कुल ११ लाख की राशि दी गई। उसी वर्ष व्यौरा देने वाली खानो मे काम करने वाली स्त्रियो की औसत सख्या ४३,४०० थी, जिसमें ७,६०६ ने लाभो के लिए माग की; ७,३२६ को इस प्रकार के लाभो का भुगतान किया गया, ४७४ को बोनस प्रदान किया गया और भुगतान की कुल राशि १४,२६,१२७ रुपये थी। इसी वर्ष व्यौरा देने वाले बागान में कार्य पर लगी हुई औसतन ३१६,७०३ स्त्री श्रमिकों मे से ६४,८५५ ने लाभो के लिए माग की और ६३,६५० स्त्रियो को लाभों का भुगतान किया गया, ५४ मामलों मे बोनस भी प्रदान किया गया और भुगतान की कुल ७४,७०,२५३ रुपये की राशि दी गई।

भारत मे मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियमों का आलोचनात्मक मूल्यांकन

'मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम' कारखानो मे काम करने वाली महिला श्रमिको के लिये पर्याप्त आराम और वित्तीय सहायता प्रदान कराने में अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुए है। परन्तु हमारे देश मे इस विधान में कुछ दोष भी हैं। अधिनियमो का मुख्य दोष यह है कि न तो यह सब स्थानो पर एक समान है और न ही यह व्यापक हैं और कुछ अपवादो को छोडकर प्रसवकाल के समय, उससे पूर्व और उसके बाद नि शुल्क चिकित्सा सहायता का भी कोई प्रबन्ध नही है। प्रो० बी० पी० अदारकर ने औद्योगिक श्रमिको के लिए स्वास्थ्य बीमे की अपनी रिपोर्ट में इन अधिनियमो के प्रशासन मे पाये गये दोषो की ओर संकेत किया था। उनके विचार मे इन दोषो का मुख्य कारण यह है कि लाभो के भुगतान का उत्तरदायित्व मालिको पर डाल दिया गया है। उनके कथनानुसार जो दोष मालिको की देनदारी के सिद्धान्त से पैदा हो गये थे, उनको यद्यपि अनेक राज्य सरकारो ने अधिनियमो मे सशोधन करके दूर करने का प्रयत्न किया है, तथापि उसमें उन्हे विशेष सफलता नही मिली है। उनके अनुसार कानून के मुख्य दोष निम्नलिखित है—(१) मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम सब स्थानो पर एक समान नही है और न ही वह व्यापक है, जिसके कारण कुछ ऐसी त्रुटियाँ रह गई है जो श्रमिको के लिए हितकर नही है। (२) वर्तमान समय मे केवल नकद लाभ की व्यवस्था है और चिकित्सा के लिए स्त्री श्रमिको को स्वय अपने साधनो पर निर्भर रहना पडता है। (३) कानून की कुछ त्रुटियो अथवा अन्य कारणो से इस अधिनियम से बचने का अब भी बहुत प्रयत्न किया जाता है। मातृत्व-कालीन लाभ प्राप्त करने के लिए नौकरी की जो शर्त है, उसके कारण तो मालिक अधिनियम से अक्सर अपना बचाव कर ही लेते है। इसके अतिरिक्त मद्रास और बगाल को छोड़कर कही ऐसी

व्यवस्था नहीं है जहाँ मालिक स्त्री श्रमिको को गर्भ के प्रथम लक्षणों पर ही बर्खास्त न कर सकें। इसके अतिरिक्त अपनी अज्ञानता के कारण या अपनी स्थायी नौकरी के छूट जाने के भय से बहुधा महिला श्रमिक मातृत्व कालीन लाभ की माँग ही नहीं करती। यद्यपि रॉयल श्रम आयोग ने यह सिफारिश की थी कि अधिनियम का प्रशासन महिला कारखाना निरीक्षकों को सौंप देना चाहिये परन्तु अधिकतर राज्यो मे अभी तक इस प्रकार की नियुक्तियाँ नही की गई है। साधारणत स्त्रियाँ समय पर मालिको को नोटिस देने मे हिचकती है और उनको इसमे भी कठिनाई होती है कि वे मातृत्व-कालीन लाभ के लिए नौकरी की अवधि पूरी कर पायें या प्रसव काल के चार या छ सप्ताह बाद ही अपनी नौकरी पर फिर आ जायें या लाभो को प्राप्त करने के लिये बच्चे के जन्म का प्रमाण-पत्र ले सकें। श्रम अनुसधान समिति ने इस प्रकार के अनेक मामलो के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जिनमे अधिनियम का उल्लघन किया जाता है। बहुधा ऐसे मामले छोटे कारखानो के थे। जब सर्वप्रथम अधिनियम को लागू किया गया था, उस समय बहुत से मालिको ने अपने यहा से स्त्री श्रमिको को नौकरी से निकाल दिया। कई स्थानो पर तो मालिक केवल ऐसी स्त्रियो को ही अपने यहा नौकरी देने मे प्राथमिकता देते हैं जो या तो अविवाहित लडकियाँ होती है अथवा विधवाए या ऐसी स्त्रिया जो सतानोत्पत्ति की आयु को पार कर चुकी होती है। अनेक स्थानो पर लडकियो की शादी होने के तुरन्त बाद ही उन्हे नौकरी से बरखास्त कर दिया गया है। कभी कभी तो लाभ देना इस आधार पर अस्वीकार कर दिया जाता है कि स्त्री श्रमिक लाभ प्राप्ति के लिए नौकरी की अवधि पूरी नही कर पाई है। कही-कही पर मालिक स्त्री श्रमिको के नाम रजिस्टरो मे नही लिखते और गर्भवती स्त्रियो को बर्खास्त कर देते है। श्री देशपाण्डे ने अपनी एक रिपोर्ट मे जो उन्होने कोयला खान उद्योग के श्रमिको की दशाओ की जाँच पर दी थी, खानो मे अधिनियम की धाराओ का स्पष्ट उल्लघन होने के उदाहरण दिये है। अभ्रक खानो मे भी अधिनियम का उल्लघन होता है। कुछ खानो मे स्त्री श्रमिको की उपस्थिति का कोई लिखित प्रमाण नही रखा जाता और जिन दावो का भुगतान भी किया जा चुका है, उनका भी कोई लिखित प्रमाण नही मिलता। जो क्लर्क स्त्री श्रमिको की हाजिरी लगाते है, वे अक्सर लाभ प्राप्ति के लिये नौकरी की अवधि को पूरा करने के लिए रिश्वत लेकर हाजिरी बढ़ा देते है। श्रम अनुसधान समिति ने इस बात की सिफारिश की थी कि जो भी लाभ दिया जाये, वह स्त्रियो की वास्तविक औसतन मजदूरी से कम नही होना चाहिये और इसका समय भी बढ़ाकर १२ सप्ताह कर देना चाहिये अर्थात् प्रसव से ६ सप्ताह पहले और ६ सप्ताह बाद तक। इस बात की सिफारिश अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के एक अभिसमय द्वारा भी की गई है। अब यह धारा केन्द्रीय और अनेक राज्यो के अधिनियमो के अन्तर्गत लागू कर दी गई है।

मातृत्व-कालीन लाभ और बीमा

यह बात भी उल्लेखनीय है कि मातृत्व-कालीन लाभों को स्वास्थ्य बीमा योजना में सम्मिलित कर लेने से बहुत लाभ हो जायगा। ये सुविधाएँ या लाभ उसी प्रकार से होंगे जिस प्रकार से श्रमिक क्षतिपूर्ति को सामाजिक-बीमा योजना के अन्तर्गत सम्मिलित करने से होते हैं, जिनका हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं। इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि मातृत्व-कालीन लाभ की व्यवस्था १९४८ के कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम में की जा चुकी है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक बीमाकृत स्त्री श्रमिक, जो कुछ विशेष शर्तें पूर्ण करती है, इन लाभों को प्राप्त करने की अधिकारिणी होती है। ये लाभ उसे ७५ पैसे प्रतिदिन अथवा पूर्ण औसत दैनिक मजदूरी, जो भी अधिक हो, के हिसाब से मिलेंगे और अधिक से अधिक १२ सप्ताह तक वह इन लाभों को प्राप्त कर सकती है। उसको हस्पताल और चिकित्सालय में चिकित्सा सहायता पाने का अधिकार भी है। जिन स्थानों पर यह अधिनियम लागू होता है वहाँ मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम के अन्तर्गत मालिकों को लाभ नहीं देने होते हैं। यह आशा की जाती है कि जब यह अधिनियम सब मजदूरों पर लागू हो जायेगा, तब मातृत्व-कालीन लाभ विभिन्न राज्यों में एक जैसे ही हो जायेंगे और इस समय मातृत्व-कालीन लाभ विधान में जो दोष या कमियाँ हैं, वे सब दूर हो जायेंगी।

भारत में बीमारी-बीमा
(Sickness Insurance in India)

बीमारी-बीमा की वांछनीयता

बीमारी भी एक महत्वपूर्ण संकट है जिससे बचने के लिए बीमे की आवश्यकता पड़ती है। प्रोफेसर टौसिग (Taussig) के कथनानुसार "बीमारी के लिये बीमा करना उतना ही सरल व सम्भव है जितना कि दुर्घटनाओं का बीमा।" भारत में, जहाँ रोग बहुत फैले हुये हैं, इस प्रकार के बीमे की आवश्यकता भी बहुत अधिक है। इसकी वाछनीयता (Desirability) पर ऊपर भी उल्लेख किया जा चुका है। (देखिये पृष्ठ ३६९–७०)

भारत में बीमारी-बीमा और उसके विचार की उत्पत्ति

जब अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने उद्योग, वाणिज्य और कृषि के मजदूरों के लिये स्वास्थ्य बीमा से सम्बन्धित दो अभिसमय अपनाए, तब भारत सरकार का ध्यान भी १९२७ में स्वास्थ्य बीमा योजना की ओर आकर्षित हुआ। रॉयल श्रम आयोग ने भी इस प्रश्न पर विस्तारपूर्वक विचार किया और उसने यह सिफारिश की, कि बीमारी की घटनाओं के आँकड़े एकत्रित करने के पश्चात् प्रयोग के रूप में एक स्वास्थ्य बीमा योजना बनाई जानी चाहिए। भारत सरकार उस समय ऐसी किसी भी योजना के पक्ष में नहीं थी क्योंकि आर्थिक कठिनाइयाँ थी और श्रमिकों में प्रवासिता के साथ ही साथ अंशदान देने की क्षमता की भी कमी थी। फिर भी

सरकार ने इस विषय पर प्रान्तीय सरकारो से लिखा पढी की । परन्तु उनकी ओर से इस विषय पर कोई उत्साह नही दिखाया गया । इस समस्या पर बम्बई सूती वस्त्र श्रम जाँच समिति और १६४०, १६४१ तथा १६४२ के प्रथम तीन श्रम मन्त्रियो के सम्मेलनो मे भी विचार किया गया था ।

प्रो० बी० पी० अदारकर की स्वास्थ्य बीमा योजना

भारत सरकार ने प्रान्तीय सरकारो से काफी विचार-विमर्श और पत्रव्यवहार करने के पश्चात मार्च १६४३ मे एक विशेष अधिकारी नियुक्त किया (प्रो० बी० पी० अदारकर), जिनका कार्य औद्योगिक श्रमिको के लिए एक स्वास्थ्य बीमा योजना बनाना था । उन्होने अपनी रिपोर्ट अगस्त १६४४ मे भारत सरकार को दी । उन्होने निरन्तर चालू कारखानो के श्रमिको के लिए एक अनिवार्य तथा अशदान वाली स्वास्थ्य बीमा योजना की सिफारिश की जो तीन प्रकार के उद्योगो के लिए थी—अर्थात् सूती वस्त्र उद्योग, इन्जीनियरिंग उद्योग तथा खनिज व धातु उद्योग । इस योजना मे मालिको और मजदूरो को जो अशदान देना था उसका उल्लेख किया गया था तथा साथ ही राज्य द्वारा अशदान की भी सिफारिश की गई थी । योजना की कुल वार्षिक लागत ढाई करोड रुपए आँकी गई थी । इस बात की भी व्यवस्था थी कि प्रत्येक मालिक अपने जोखम को विस्तृत करने के लिये बीमा पालिसी ले । मजदूरो को इसके अन्तर्गत चिकित्सा लाभ, नकद लाभ तथा कुछ अतिरिक्त अन्य लाभ प्रदान करने का सुझाव था । मातृत्व-कालीन लाभ तथा श्रमिक क्षतिपूर्ति को हटाकर उनके स्थान पर एक बीमा योजना की व्यवस्था थी ।

१६४५ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय के दो विशेषज्ञ (श्री० एम० स्टेक और श्री आर० राव) द्वारा इस योजना पर पुन विचार किया गया । यद्यपि वे प्रो० बी० पी० अदारकर के मूल सिद्धान्तो से सहमत थे, फिर भी उन्होने कुछ विशिष्ट परिवर्तनो का सुझाव दिया । इन परिवर्तनो को ध्यान म रखते हुए भारतीय सरकार ने ६ नवम्बर १६४६ को कर्मचारी राज्य बीमा विधेयक प्रस्तुत किया जो 'कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम' के नाम से अप्रैल १६४८ मे पारित किया गया । १६५१ मे कुछ आपत्तियो को समाप्त करने तथा कुछ अन्य त्रुटियो को पूरा करने के लिए इसमे सशोधन हुआ । प्रवन्धक एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन ने भी सामाजिक सुरक्षा पर कुछ प्रस्ताव पारित किए । यह सम्मेलन अक्तूबर १६४७ मे नई दिल्ली मे हुआ । इन प्रस्तावो के कारण इस अधिनियम पर विचार-विमर्श करने और उसको जल्दी पारित करने पर उल्लेखनीय प्रभाव पडा ।

१६४८ का कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम
(The Employees' State Insurance Act, 1948)

अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित है—

क्षेत्र

यह अधिनियम मौसमी कारखानो को छोडकर प्रथम तो उन सब कारखानो

पर लागू होता है, जिनमें २० या इससे अधिक कर्मचारी काम करते है और जो शक्ति से चलते है, परन्तु इसके साथ ही इसमें इस बात की भी व्यवस्था है कि अधिनियम को पूर्णत. या आंशिक रूप से किसी भी औद्योगिक, वाणिज्य, कृषि या अन्य किसी संस्था या संस्थानो पर लागू किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत वे सब कर्मचारी आ जाते है जिनका वेतन ४०० रुपये से अधिक नही है—चाहे वे शारीरिक श्रम करने वाले हो अथवा क्लर्क का काम करने वाले हो और चाहे वे निरीक्षक हो अथवा तकनीकी कर्मचारी हो। परन्तु इसके अन्तर्गत सैनिक लोग नही आते। जम्मू-काश्मीर राज्य को छोडकर यह अधिनियम समस्त भारत पर लागू है। यह योजना अनिवार्य भी है, अर्थात् जो कर्मचारी इसके अन्तर्गत आते है, उनका बीमा होना आवश्यक है। जो बीमाकृत श्रमिक इस अधिनियम के अन्तर्गत लाभ पाने का अधिकारी है वह उसी प्रकार के लाभ किसी अन्य अधिनियम के अन्तर्गत नही पा सकता।

अधिनियम का प्रशासन

इस बीमा योजना का प्रशासन एक स्वायत्तशासी (Autonomous) संस्था को सौंप दिया गया है जिसे "कर्मचारी राज्य बीमा निगम" (Employees State Insurance Corporation) का नाम दिया गया है। इसमें ३६ सदस्य है जिनमें पाँच-पाँच सदस्य मालिको तथा श्रमिको के सगठनो का प्रतिनिधित्व करते हैं। अन्य सदस्य केन्द्र व राज्य सरकारों, चिकित्सा व्यवसाय तथा संसद के सदस्यो का प्रतिनिधित्व करते है। केन्द्रीय श्रम और रोजगार के मंत्री इस निगम के अध्यक्ष है और स्वास्थ्य मन्त्री इसके उपाध्यक्ष है। उससे एक छोटी संस्था निगम की कार्यांग (Executive) के रूप मे कार्य करती है। इसे स्थायी समिति (Standing Committee) कहा जाता है। इसमे निगम के सदस्यों मे से चुने हुए १३ सदस्य होते है। एक तीसरी संस्था भी है जिसे "चिकित्सा-लाभ परिषद्" (Medical Benefit Council) कहा जाता है जिसमें २६ सदस्य है। उसका कार्य यह होता है कि वह चिकित्सा लाभ के प्रबन्ध तथा लाभ देने के लिए प्रमाण-पत्र प्रदान करने आदि से सम्बन्धित मामलो मे निगम को परामर्श दे। इस परिषद् मे स्वास्थ्य सेवाओ के डाइरेक्टर जनरल (महा-निदेशक) और डिप्टी डाइरेक्टर जनरल (उप-महा-निदेशक), चिकित्सा कमिश्नर, और राज्यो, मालिको, कर्मचारियों और चिकित्सा व्यवसाय के प्रतिनिधि होते हैं। निगम का मुख्य कार्यांग अधिकारी डाइरेक्टर जनरल होता है जिसके चार अन्य मुख्य सहायक अधिकारी होते है। ये मुख्य अधिकारी है—बीमा कमिश्नर, चिकित्सा कमिश्नर, मुख्य लेखाधिकारी और रजिस्ट्री अधिकारी। डाइरेक्टर जनरल अपना कार्य क्षेत्रीय तथा स्थानीय कार्यालयो के द्वारा चलाता है। क्षेत्रीय कार्यालय राज्यो मे भी स्थापित कर दिये गये है।

वित्त (Finance)

इस योजना की वित्तीय व्यवस्था कर्मचारी राज्य बीमा निधि मे से की जाती है। यह निधि मालिको और श्रमिको के अशदान से तथा केन्द्रीय और राज्य सरकारो, स्थानीय प्राधिकारियो, किसी भी व्यक्ति या निकाय (Body) द्वारा दिये गये दान, उपहार या सहायता से बनाई जाती है। इस बात की भी व्यवस्था थी कि पहले पाँच वर्षों मे केन्द्रीय सरकार निगम को वार्षिक अनुदान प्रदान करेगी जिसकी राशि निगम के प्रशासन व्यय की $\frac{२}{३}$ भाग होगी, जिसमे लाभ देन का व्यय सम्मिलित न होगा। राज्य सरकारो का भी इस योजना की वित्तीय व्यवस्था मे हिस्सा है जो बीमाकृत व्यक्तियो की देखभाल और चिकित्सा पर हुए व्यय का एक भाग के रूप मे दिया जाता है। प्रत्येक के हिस्से का निर्णय निगम और राज्य सरकारो के बीच समझौते द्वारा होता है। यह अनुपात पहले २ १ था। परन्तु अब बढाकर ३ १ कर दिया गया है अर्थात निगम चिकित्सा सुविधाओ की लागत का $\frac{३}{४}$ भाग वहन करने को तैयार हो गया हे और राज्य सरकारो के $\frac{१}{४}$ हिस्स के लिए यह निश्चय किया गया है कि यदि वे चाहे तो इसके लिए ऋण भी ले सकती है। जब से चिकित्सा सुविधाओ को श्रमिक के परिवारो के लिए भी विस्तृत कर दिया गया है तब से राज्य सरकार का हिस्सा $\frac{१}{८}$ कर दिया गया है। अधिनियम मे एसे उद्देश्यो की एक सूची भी तैयार की गई है, जिन पर निधि मे से धन व्यय किया जा सकता है।

अशदान (Contribution)

अधिनियम मे मुख्य मालिक पर अपना तथा साथ ही अपने श्रमिको के अशदान का हिस्सा देने का उत्तरदायित्व रखा गया है, अर्थात् श्रमिक के अशदान का भुगतान श्रमिक और उसके मालिक दोनो क ही द्वारा किया जाता है। मजदूर का भाग मुख्य मालिक द्वारा उसकी मजदूरी से काट लिया जाता है। श्रमिक के साप्ताहिक अशदान का हिस्सा उसकी उस सप्ताह की औसतन मजदूरी क आधार पर होता है और अशदान प्रति सप्ताह देना होता है। यदि श्रमिक पूरे सप्ताह काम पर रहता है तो पूरे सप्ताह का और यदि सप्ताह मे कुछ दिन काम पर रहता है तो कुछ दिनो का अशदान उसे देना होता है—अर्थात जब भी श्रमिक को मजदूरी मिलती है उसे अशदान देना पडता है। परन्तु सवेतन छुट्टी, वैध हडताल और तालाबन्दी क अवसरो को छोडकर जिस सप्ताह श्रमिक ने कोई काम नही किया है और जिसके लिए उसे कोई मजदूरी नही दी गई है, उस सप्ताह उसे अशदान नही देना पडता। साप्ताहिक अशदान की वर्तमान दरें प्रस्तावित सशोधित दरो के साथ अगले पृष्ठ पर दी हुई तालिका मे दिखाई गई हैं—

	कर्मचारियों की श्रेणियाँ १	कर्मचारी का अंशदान (मालिकों से वसूली) २		मालिक का अंशदान ३		मालिक और कर्मचारी का कुल अंशदान ४	
		वर्तमान दरें	संशोधित दरें	वर्तमान दरें	संशोधित दरें	वर्तमान दरें	संशोधित दरें
		रु०	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०
१	कर्मचारी जिनकी औसतन दैनिक मजदूरी १ रु० प्रतिदिन से कम है।	—	—	०·४४	०·४५	०·४४	०·४५
२	कर्मचारी जिनकी औसतन दैनिक मजदूरी १ रुपया प्रतिदिन या इससे अधिक है, परन्तु १ रु० ५० पै० से कम है।	०·१२	—	०-४४	०·४५	०·५६	०·४५
३	कर्मचारी जिनकी औसतन दैनिक मजदूरी १ रु० ५० पै० प्रतिदिन या इससे अधिक है, परन्तु २ रुपये से कम है।	०·२५	०·२५	० ५०	०·५०	०·७५	०·७५
४	कर्मचारी जिनकी औसतन दैनिक मजदूरी २ रुपये प्रतिदिन या इससे अधिक है, परन्तु ३ रुपये से कम है।	०·३७	०·४०	०·७५	०·८०	१·१२	१·२०
५	कर्मचारी जिनकी औसतन दैनिक मजदूरी ३ रुपये प्रतिदिन या इससे अधिक है, परन्तु ४ रु० से कम है।	०·५०	०·५०	१·००	१ ००	१·५०	१·५०
६	कर्मचारी जिनकी औसतन दैनिक मजदूरी ४ रुपये प्रतिदिन या इससे अधिक है, परन्तु ६ रु० से कम है।	०·६६	०·७०	१·३७	१·४०	२·०६	२·१०
७	कर्मचारी जिनकी औसतन दैनिक मजदूरी ६ रुपये प्रतिदिन या इससे अधिक है, परन्तु ८ रु० से कम है।	०·९४	०·९५	१·८७	१·९०	२ ८१	२ ८५
८	कर्मचारी जिनकी औसतन दैनिक मजदूरी ८ रुपये प्रतिदिन या इससे अधिक है।	१·२५	१·२५	२·५०	२·५०	३·७५	३·७५
९	कर्मचारी जिनकी औसतन दैनिक मजदूरी १५ रु० या इससे अधिक है।	—	१·७५	—	३·५०	—	५·२५

१९५१ के एक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि जब तक सम्पूर्ण भारत मे अधिनियम लागू हो तब तक मालिक उपरोक्त सूची के तीसरे खाने म दिये गए अशदाना के स्थान पर एक विशेष अशदान दग जिसकी दर केन्द्रीय सरकार द्वारा निश्चित की जायेगी, परन्तु यह दर उनके कुल वेतन बिल की ५ प्रतिशत से अधिक नही होगी। समस्त देश मे मालिकों के लिए अशदान की दर उनके कुल वेतन बिल का ¾ प्रतिशत निश्चित की गई परन्तु उन स्थानो पर जहाँ यह योजना लागू हो चुकी थी और जहाँ मालिक श्रमिक क्षतिपूर्ति तथा मातृत्व कालीन लाभ के दायित्व से मुक्त हो गए थे, उन स्थानो पर मालिको को ½ प्रतिशत अशदान और अर्थात् कुल मिलाकर १¼ प्रतिशत अशदान मालिको को देना निश्चित हुआ है। इसके पश्चात जब बीमा किए हुए श्रमिको के परिवारो को भी चिकित्सा लाभ देने का निश्चय किया गया तब यह निर्णय हुआ कि विशेष अशदानो को जहा यह योजना लागू नही है वहाँ ¾ प्रतिशत से बढाकर १⅔ प्रतिशत तक और जिन क्षत्रो म लागू है वहा १¼ स बढाकर ३½ प्रतिशत तक कर दिया जाए। परन्तु अगस्त १९५८ म यह निश्चय किया गया है कि जब तक निगम अपना व्यय अपनी चालू आमदनी से ही पूरा करने के योग्य है तब तक दर और न बढाइ जाय। परन्तु अब १ अप्रैल १९६२ से उन स्थानो पर जहा योजना लागू है मालिको के अशदान की दर १¼ प्रतिशत से बढाकर कुल मजदूरी बिल का २½ प्रतिशत पर दी गई है। इन स्थानो पर जहा योजना लागू नही है अशदान की दर ¾ प्रतिशत ही रहेगी। जिन स्थानो पर अधिनियम के अन्तगत लाभ दिये जाते है वहा श्रमिको को दूसरे खाने म दी गई दर के अनुसार अशदान देना होता है। परन्तु अन्य स्थानो पर जहा ये लाभ नही दिये जाते वहाँ श्रमिको को किसी भी प्रकार का अशदान नही देना होता।

लाभ (Benefits)

स्थिति के अनुसार अधिनियम के अन्तर्गत बीमा कराये हुए श्रमिको अथवा उनके आश्रितो को निम्नलिखित लाभ उपलब्ध है—(१) बीमारी लाभ, (२) मातृत्व कालीन लाभ (३) असमर्थता लाभ, (४) आश्रिता को लाभ और (५) चिकित्सा लाभ। पहले चार लाभ नकदी म दिये जाते हैं और चिकित्सा लाभ सेवा या वस्तु के रूप मे प्रदान किया जाता है।

जहा तक बीमारी लाभ का सम्बन्ध है इसके अन्तगत यदि श्रमिक की बीमारी का प्रमाण पत्र अधिकृत चिकित्सक द्वारा दे दिया जाता है तो बीमा कराये हुए व्यक्तियो को समय समय पर नकदी के रूप म लाभ दिया जाता है। प्रारम्भिक प्रतीक्षा काल दो दिन का है, अर्थात बीमारी के पहले दो दिन कोई लाभ नही दिया जाता। परन्तु यदि श्रमिक १५ दिनो के बीच म ही दूसरी बार बीमार पड जाए तब यह बात लागू नही होती। बीमारी लाभ किसी भी ३६५ दिनो के कार्य की अवधि मे श्रमिको को अधिक से अधिक ५६ दिन तक प्राप्त हो सकता

है। बीमारी लाभ की प्रतिदिन की दर एक दिन की औसत मजदूरी की राशि से आधी होती है जिसका उल्लेख अधिनियम में किया गया है। परन्तु जब ये लाभ बीमारी के सम्पूर्ण दिनों के लिए दिए जाए गे जिनमें रविवार तथा छुट्टियाँ भी आ जाती हैं, तब इन लाभों की दर मजदूरी की ७/१२ हिस्से के लगभग पड़ेगी। जो श्रमिक इन लाभों को प्राप्त करता है उसकी चिकित्सा अधिनियम के अन्तर्गत खोले गए किसी भी चिकित्सालय या हस्पताल में होनी चाहिए।

पहली जून १९५९ से निगम ने यह निश्चय किया है कि बीमा कराये हुए व्यक्तियों में जो लोग क्षयरोग से पीड़ित है, उन्हें और १८ सप्ताह तक नकद लाभ प्रदान किया जाएगा, जिसकी दर ७५ पैसे प्रतिदिन अथवा बीमारी लाभ की दर की आधी (जो भी अधिक हो) निर्धारित की गई। परन्तु इस लाभ को प्राप्त करने वालो के लिये एक शर्त यह भी है कि उन्होंने लगातार दो वर्षो तक काम किया हो। कोढ, कैन्सर तथा मानसिक और बुरे रोगो के लिए भी इसी प्रकार अधिक बीमारी लाभ देने का निश्चय किया गया है और ऐसे रोगियो को १ वर्ष तक बर्खास्त या अलग नही किया जा सकता। १५ अगस्त १९६० से ऐसे सभी रोगियो के लिए सहायता की अवधि १८ सप्ताह से बढ़ाकर ३०९ दिवस कर दी गई है। इस प्रकार ऐसे व्यक्तियो को अब ५६ दिन के चिकित्सा लाभ सहित ३६५ दिन सहायता मिलेगी। १ नवम्बर १९६१ से ये ही लाभ अब ऐसे बीमाकृत श्रमिको के लिए भी देने की व्यवस्था कर दी गई है जो किसी आधुनिक दवाई या इन्जकशन के कारण पीड़ित हो जाते है या कुछ प्रकार के अस्थि-भंग (Fracture) से पीड़ित होते हैं। १ जनवरी १९६४ से इस प्रकार के सभी रोगियो के लिए लाभ की दर बढ़ाकर बीमारी लाभ की पूरी दर कर दी गई है। ये बढ़े हुए लाभ कुछ अस्वास्थ्यकर दशाओ से पीड़ित व्यक्तियों को भी उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई।

मातृत्व-कालीन लाभ के अन्तर्गत समय-समय पर नकद भुगतान किया जाता है। आरम्भ में इसकी दर बीमारी लाभ की दर (प्रतिदिन की औसत मजदूरी से आधी) अथवा ७५ पैसे प्रतिदिन (इन दोनो में से जो अधिक हो) थी। यह लाभ १२ सप्ताह तक दिया जाता है, जिनमे अधिक से अधिक ६ सप्ताह प्रसवकाल की अनुमानित तिथि से पहले होनी चाहिए। जून १९५९ से इस लाभ की दर को महिला श्रमिक की औसतन पूर्ण दैनिक मजदूरी अथवा ७५ पैसे, जो भी अधिक हो, तक बढ़ा दिया गया है।

असमर्थता लाभ, काम के समय क्षति पहुँचने पर, निम्न दरो से दिया जाता है—(१) अस्थायी असमर्थता —यदि असमर्थता ७ दिन से अधिक रहती है तब श्रमिको को असमर्थता काल में 'पूरी दर' के अनुसार नकद भुगतान दिया जाता है। (२) स्थायी आंशिक असमर्थता—इसके लिए जैसा कि श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम में दिया हुआ है, जीवन पर्यन्त "पूरी दर" की प्रतिशत के हिसाब में नकद लाभ प्रदान किया जाता है। (३) स्थायी पूर्ण असमर्थता—इसके लिए आजीवन

"पूरी दर" के हिसाब से नकद लाभ प्रदान किया जाता है। ("पूरी दर" की परिभाषा इस प्रकार की गई है कि यह वह दर है जो सम्बन्धित व्यक्तियों की उस प्रतिदिन औसत मजदूरी की आधी होती है जो उसे पिछले ५८ सप्ताह में मिलती रही है। यह दर इस हिसाब से मजदूरी का लगभग ७/१२ वाँ हिस्सा होती है)। सन १९६२ में यह निश्चय किया गया कि यदि व्यवसाय जनित चोट के सम्बन्ध में निर्णय होने में देर लगती है तो श्रमिक को बीमारी लाभ प्रदान किय जायेंगे बशर्ते कि वे तत्सम्बन्धी शर्तें पूरी करते हो और बाद में लाभ असमर्थता लाभो से सन्तुलित कर दिये जायेंगे।

यदि किसी बीमा कराए हुए श्रमिक की मृत्यु काम करते समय किसी दुर्घटना के फलस्वरूप हो जाती है तो आश्रितो के लाभ के अन्तर्गत उसके आश्रितो को निम्न दरों के अनुसार लाभ प्रदान किए जाते है—(क) विधवा पत्नी को आजीवन अथवा पुनर्विवाह तक "पूरी दर" का ३/५ भाग दिया जाता है। यदि एक से अधिक विधवा पत्नियाँ हो तो उनमे यह धनराशि बराबर-बराबर बाट दी जाती है। (ख) १५ वर्ष की आयु प्राप्त होने तक मृतक के पुत्र अथवा गोद लिए हुए पुत्र को 'पूरी दर' का २/५ भाग दिया जाता है। (ग) १५ वर्ष की आयु अथवा विवाह होने तक, (इनमें जो भी पहले हो) प्रत्येक वैध अविवाहित पुत्री को भी पूरी दर के २/५ भाग का धन दिया जाता है। किसी भी पुत्र या पुत्री को यह सुविधा १८ वर्ष की आयु तक प्रदान की जा सकती है, यदि वह निगम की दृष्टि से शिक्षा प्राप्त करने का कार्य सन्तोषप्रद कर रहा/रही है। (घ) यदि बीमा कराया हुआ मृत व्यक्ति अपने पीछे कोई विधवा या वैध अथवा गोद लिया हुआ पुत्र नही छोड़ गया है तब आश्रित लाभ या तो उसके माता-पिता या दादा दादी को आजीवन दिया जा सकता है या उसके किसी अन्य आश्रित को कुछ सीमित काल तक दिया जा सकता है। परन्तु ऐसे व्यक्तियो के लिए दर कर्मचारी बीमा न्यायालय (Employees Insurance Court) निश्चित करता है। परन्तु ऐसे आश्रित लाभ की राशि "पूरी दर' की राशि से अधिक नहीं हो सकती। यदि पूरी दर की राशि अधिक होने लगती है तो प्रत्येक आश्रित का हिस्सा उसी हिसाब से कम कर दिया जाता है ताकि कुल राशि पूरी दर की राशि से अधिक न हो सके।

एक बीमाकृत व्यक्ति को चिकित्सा लाभ उस प्रत्येक सप्ताह के लिए पाने का अधिकार होता है जिस सप्ताह के लिए वह अंशदान देता है या जिस सप्ताह के लिए वह बीमारी, मातृत्व-कालीन और असमर्थता लाभ पाने का अधिकारी हो जाता है। (चाहे वह स्त्री हो या पुरुष) कुछ विशेष परिस्थितियों में ऐसे व्यक्तियो को चिकित्सा लाभ देने की व्यवस्था है, जिन्होंने अधिनियम के अन्तर्गत अंशदान नही दिया है। चिकित्सा सम्बन्धी लाभो के अन्तर्गत बीमारी में, काम करते समय क्षति होने पर और प्रसूतिका के अवसर पर निःशुल्क चिकित्सा की जाती है। इस प्रकार की चिकित्सा सुविधायें निगम औषधालय या हस्पताल में चाहे अपनी

होकर या बिना भरती के मिलती है, या बीमा कराये हुए व्यक्तियों के घरो पर भी बीमा डाक्टरों द्वारा जाकर प्रदान की जाती है। किसी अन्य हस्पताल, चिकित्सालय या संस्था के द्वारा भी यह चिकित्सा सुविधाएं दी जा सकती हैं। यह लाभ ऐसे डाक्टरों द्वारा भी प्रदान किया जा सकता है जो निगम की सेवा में हों या उनके द्वारा भी प्रदान किया जा सकता है जिनका नाम डाक्टरों की नामिका (Panel) में हो। अधिनियम में यह व्यवस्था भी की गई है कि निगम, बीमा कराये हुए व्यक्तियों के परिवारों को भी चिकित्सा सम्बन्धी लाभ दे सकता है, जो सुविधा अब अनेक स्थानों पर प्रदान कर दी गई है। चिकित्सा लाभों का स्तर धीरे-धीरे काफी ऊँचा कर दिया गया है। और अब इन लाभों में विशेषज्ञों की सेवायें भी सम्मिलित कर ली गई हैं। हस्पताल की सुविधाएँ दो प्रकार से दी जा रही है, या तो जो हस्पताल है उन्ही मे बीमा कराए हुए व्यक्तियों के लिए कुछ पलंग सुरक्षित कर दिए जाते हैं, या हस्पतालों के साथ लगी हुई कुछ इमारतो को बनवाकर उनमें व्यवस्था कर दी गई है। अनेक स्थानो पर नये हस्पताल भी बनाये जा रहे हैं। कृत्रिम अंग चश्मे और दाँत देने की भी व्यवस्था है। ऐम्बुलैन्स गाड़ियाँ और अन्य यातायात की सुविधाएँ भी निःशुल्क प्रदान की जाती हैं। बशर्ते कि चोट नौकरी के कारण या नौकरी-काल में लगी हो।

बीमाकृत व्यक्तियों को कुछ अन्य सुविधायें भी प्रदान की जा रही हैं; उदाहरणत सवारी का किराया, अथवा मैडिकल बोर्ड, हस्पताल या न्यायक के सम्मुख बुलाए जाने पर मजदूरी की हानि की क्षतिपूर्ति, नकद लाभ को मनीआर्डर द्वारा भेजने की व्यवस्था, चश्मों को बिना कीमत या लागत-मूल्य पर देने की व्यवस्था, परिवार नियोजन पर सलाह देने की व्यवस्था आदि। तपेदिक के रोगियों के लिये पृथक् क्लिनिक बनाये जा रहे है। ५० या इससे अधिक पलगो वाले हस्तपालों में दाँतो की क्लिनिक स्थापित की गई है। परिवार नियोजन कार्यक्रम के अन्तर्गत सायोगिक खर्चे दिए जाते हैं। यह भी निश्चिय किया गया है कि कानपुर, दिल्ली तथा हैदराबाद के चिकित्सालयों में एकीकृत निवारक और रोगहर सेवायें उपलब्ध कराई जायें।

लाभ प्राप्त करने की शर्तें

अधिनियम के अन्तर्गत बीमारी तथा मातृत्व-कालीन लाभ पाने के लिए कुछ विशिष्ट शर्तें दी गई है। यदि कोई बीमा कराया हुआ श्रमिक लगातार २६ सप्ताह तक अपना अशदान देता है तो वह आगामी २६ सप्ताहों के लिए बीमारी या मातृत्व-कालीन लाभ पाने का अधिकारी हो जायगा। लगातार २६ सप्ताह अशदान देने वाले समय को "अशदान काल" कहा जाता है और जिन २६ सप्ताहों में श्रमिक लाभ प्राप्त करता है उसे "लाभ काल" कहा जाता है। "अशदान काल" के समाप्त होने और "लाभ काल" के प्रारम्भ होने में १३ सप्ताह का अन्तर होना आवश्यक है। इस प्रकार कोई भी बीमा कराया हुआ व्यक्ति अधिनियम के अन्तर्गत

आने वाले कारखानो मे भर्ती होने के दिन से लगभग ९ महीने बाद बीमारी या मातृत्व कालीन लाभो को पाने का अधिकारी होता है। असमर्थता लाभ, आश्रित लाभ और चिकित्सा लाभ के लिए अशदान देने की कोई शर्त नही है। ये लाभ उसी दिन से बीमा कराये हुए व्यक्तियो को मिलने लगते है जिस दिन से यह योजना लागू हो जाती है।

इस अधिनियम के अन्तगत राज्य सरकारो द्वारा अनेक कर्मचारी बीमा न्यायालय स्थापित करने की भी व्यवस्था है जिनका कार्य झगडो का निपटारा करना और दावो का निर्णय करना है। १९५१ के सशोधित अधिनियम के द्वारा ऐसे स्थानो पर जहाँ मालिको के विशेष अशदाना के भुगतान या उगाही से सम्बन्धित मामलो को निपटान के लिए कर्मचारी बीमा न्यायालय नही है वहा उनके स्थान पर विशेष अधिकरणो की व्यवस्था की गई है। चिकित्सा लाभो का प्रशासन राज्य सरकारो द्वारा किया जाता है। देहली मे इसका प्रशासन बीमा निगम द्वारा ही होता है।

योजना को लागू करने की तैयारियाँ

६ अक्टूबर १९४८ को गवर्नर-जनरल ने कर्मचारी राज्य बीमा निगम का उद्घाटन किया। निगम के द्वारा १३ सदस्यो की एक स्थायी समिति का चुनाव भी किया गया। डा० सी० एल० कटियाल को इस निगम का डायरेक्टर जनरल नियुक्त किया गया। अधिनियम मे योजना की केवल रूपरेखा ही रखी गई थी और इसकी विस्तृत बातें केन्द्रीय सरकार राज्य सरकार और निगम द्वारा नियम और विनिमय बनाकर पूरी की गई। योजना का अनुभव प्राप्त करने के लिए इसे सर्वप्रथम कानपुर और केन्द्रीय शासित देहली और अजमेर के क्षेत्रो म अग्रगामी योजना के रूप म लागू करने का निश्चय किया गया। परन्तु फिर इस योजना को एक साथ ही देहली और कानपुर म लागू करने तथा देहली कानपुर और बम्बई मे तीन क्षेत्रीय शाखायें खोलने का निश्चय किया गया। इस सम्बन्ध म नियम भी बनाए गए और कुछ सुझावो के पश्चात उन्हे अन्तिम रूप दे दिया गया। एक चिकित्सा सर्वेक्षण भी इस उद्देश्य से किया गया कि विभिन्न राज्यो मे कहा कहा चिकित्सालय आदि स्थापित किए जा सकते हैं मई १९५० म निगम की एक बैठक मे यह निश्चय किया गया कि यद्यपि चिकित्सा की प्रणाली मुख्यत एलोपैथिक ही होगी परन्तु श्रमिको द्वारा माँग करने पर या जहाँ योग्य डाक्टर मिल सकते हो वहा अन्य कोई चिकित्सा प्रणाली भी प्रदान की जा सकती है। यह भी निश्चय किया गया कि पूर्ण समय देने वाले डाक्टरो के साथ साथ निजी डाक्टरो की पैनल (नामिका) प्रणाली को भी प्रयोग म लाना चाहिए। इस योजना को लागू करने के लिए कर्मचारियो को प्रशिक्षित करने के हेतु मालिको और श्रमिको से सहयोग की प्रार्थना की गई। मालिको ने योजना के विभिन्न स्वरूपो का अध्ययन करने और यह देखने के लिए कि इस योजना के कारण उन्हे क्या क्या उत्तरदायित्व

निभाने पडेंगे, अनेक अधिकारियों और सहयोगियों को भेजा। इसी उद्देश्य से श्रमिक संघों की ओर से भी कुछ प्रतिनिधि भेजे गए। अंशदानों के भुगतान के लिए टिकटें भी छपवाई गई और उनको इम्पीरियल बैंक (अब स्टेट बैंक) के द्वारा बेचने की भी व्यवस्था की गई।

योजना चालू होने में देरी का कारण

इस प्रकार अग्रगामी योजना का उद्घाटन देहली, कानपुर और बाद में बम्बई में करने के लिए सब प्रकार की तैयारियां कर ली गई थी। परन्तु अचानक ही उत्तर भारत के मालिकों की परिषद् ने उत्तर प्रदेश सरकार के द्वारा यह अभिवेदन किया कि कानपुर में यह योजना नही चलाई जानी चाहिये। इसी प्रकार के अभिवेदन अन्य मालिको की परिषदो द्वारा भी किए गए। जो आपत्ति उठाई गई थी, वह यह थी कि योजना लागू करने के लिए यह उचित समय नही था और यदि यह योजना सब स्थानो पर एक साथ लागू नही होती तो कानपुर का उद्योग अन्य स्थानो के उद्योगो से प्रतियोगिया मे नही खडा हो सकता। साथ ही वित्तीय कठिनाइयो के कारण राज्य सरकारो मे भी योजना के प्रति अधिक उत्साह नही पाया गया। एक और कठिनाई यह थी कि चिकित्सा सहायता प्रदान करने के लिए उचित और सन्तोषजनक व्यवस्था करने मे काफी समय लगता था। डाक्टरो की पैनल (नामिका) प्रणाली की शर्ते तय करने मे तथा कार्यालयो और चिकित्सालयों के लिए स्थान प्राप्त करने में भी अनेक कठिनाइयां आई। इन कारणो से योजना के लागू होने मे देर हो गई। परन्तु फिर भी चारों ओर से योजना को कार्यान्वित करने की प्रार्थनाये और मांग आती रही। अतः यह उचित समझा गया कि इन कठिनाइयों को दूर करके योजना को शीघ्र ही लागू कर देना चाहिए। इस कारण १९५१ मे एक सशोधित अधिनियम पारित किया गया जिसके अन्तर्गत यह निश्चय किया गया कि अग्रगामी योजना को केवल कुछ स्थानों पर कार्यान्वित करने के लिये और इन स्थानों को प्रतियोगिता की हानियों से बचाने के लिये देश भर के मालिकों से अशदान लेने चाहिये। उन स्थानों पर जहाँ पर यह योजना लागू होगी, वहाँ मालिकों को अधिक अशदान देना चाहिये। (देखिए पृष्ठ ३९८)।

मालिकों की आपत्तियों पर विचार

मालिकों ने कुछ विशिष्ट आधारो पर इस योजना का विरोध किया है। उनका कहना है कि 'कर्मचारी' की परिभाषा बहुत विस्तृत है और मजदूरी की परिभाषा भी स्पष्ट नही है। मजदूरों मे परिभाषा के अनुसार तो महंगाई भत्ता, साइकिल भत्ता आदि भी सम्मिलित किये जा सकते है। श्रमिक के अशदान की उगाही करने का उत्तरदायित्व भी मालिकों पर लाद दिया गया है। परन्तु ऐसी कोई व्यवस्था नही की गई है जिसमें यदि मजदूर अपना अंशदान देने से मना कर देता है तो मालिक कोई कार्यवाही कर सके। मासिक मजदूरी को अशदान के लिये साप्ताहिक दर का रूप देने की कठिनाइयों की ओर भी उन्होंने सकेत किया।

परन्तु यह सब कठिनाइयां ऐसी नहीं थी जिनके कारण योजना को कार्यान्वित न किया जाता। वास्तव मे मालिको के लिये इस योजना की लागत इतनी नही होती जितनी कि दिखाई जाती है। ४०० रुपये या इससे कम पाने वाले कर्मचारियो का अग्रदान उनकी मजदूरी का ५ प्रतिशत से भी कम होता है। इस प्रकार मालिको पर अग्रदान का भार उत्पादन व्यय के ऊपर १ प्रतिशत ही और अधिक होगा। परन्तु इस योजना की लागत मालिको को वास्तव मे इससे भी कम बैठती है, क्योंकि इस समय मालिको को मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम और श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के अन्तर्गत लाभों का भुगतान करना पड़ता है। यह भुगतान अब बीमा कराए हुये कर्मचारियो के लिए निगम द्वारा किया जाएगा। योजना के कार्यान्वित होने के तत्काल पश्चात ही बीमा कराये हुए व्यक्ति को चिकित्सा लाभ की लागत भी निगम स्वयं वहन करेगा। इस प्रकार मालिको के लिये वास्तविक लागत उत्पत्ति मूल्य के एक प्रतिशत की भी ३/४ भाग के लगभग बैठेगी। यह लागत इतनी भारी नहीं मालूम देती कि उद्योग इसका भार वहन न कर सके। लागत और आय के प्रश्न को छोड़कर एक और महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि कारखानो मे काम करने वाले लाखो कर्मचारियो को किसी प्रकार की सुरक्षा कैसे प्रदान की जाय। यह योजना श्रमिको के सकट के अनेक अवसरो पर उनकी सहायक होगी। इससे श्रमिकों का एक स्वस्थ और स्थायी वर्ग बन जाएगा जिससे स्वभावत उत्पत्ति मे वृद्धि होगी। इस योजना मे जो थोड़ी अतिरिक्त लागत आएगी, वह अधिक उत्पत्ति और स्वस्थ व सन्तुष्ट जनता के रूप मे हम वसूल हो जायेगी।

योजना का कार्यान्वित होना

२४ फरवरी १९५२ को कानपुर मे प्रधान मन्त्री पडित नेहरू ने कर्मचारी राज्य बीमा योजना का उद्घाटन किया। उसी दिन देहली मे भी इसे लागू कर दिया गया। इसके पश्चात् यह योजना अन्य स्थानो पर भी लागू की गई। इस योजना का प्रशासन इस समय १५ क्षेत्रीय कार्यालयों, ३७० स्थानीय कार्यालयो और ३१ निरीक्षणालय प्रभागो द्वारा जो समस्त देश मे फैले हुए है, किया जा रहा है।

क्षेत्र	लागू होने की तिथि	योजना के अन्तर्गत आने वाले कर्मचारियों की संख्या
१	२	३
कानपुर	२४ फरवरी १९५२	८१,०००
देहली	"	४०,०००
पजाब (७ नगर अमृतसर, अम्बाला, जालन्धर, बटाला, अब्दुलपुर, भिवानी और लुधियाना)	१७ मई १९५३	३५,०००

१	२	३
नागपुर	११ जुलाई १९५४	२२,०००
वृहत् बम्बई	२ अक्तूबर १९५४	४,२५,०००
मध्य भारत (४ नगर : इन्दौर, ग्वालियर, उज्जैन और रतलाम)	२३ जनवरी १९५५	५२,०००
कोयमुत्तूर	"	३६,०००
हैदराबाद व सिकन्दराबाद	१ मई १९५५	१८,०००
कलकत्ता शहर और हावड़ा जिला	१४ अगस्त १९५५	२,३६,०००
आन्ध्र (७ नगर : विशाखापतनम जिले के ३, गन्टूर जिले के २, तथा गोदावरी व कृष्णा जिलों में से एक-एक)	९ अक्तूबर १९५५	१७,०००
मद्रास	२० नवम्बर १९५५	५२,०००
लखनऊ, आगरा व सहारनपुर	१५ जनवरी १९५६	३१,५००
अकोला और हिनगनघाट (मध्य प्रदेश के दो नगर)	२७ मई १९५६	१०,०००
बुरहानपुर (मध्य प्रदेश)	१ सितम्बर १९५६	३,८००
तिरवांकुर कोचीन (५ नगर क्यूलीन, अलप्पी, अरनाकुलम, अलव्या और त्रिचुर)	१५ सितम्बर १९५६	३७,५००
मद्रास (३ नगर मदुराई, अम्बासमुद्रम् और तूतीकोरन)	२८ अक्तूबर १९५६	३१,०००
राजस्थान (६ नगर : जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, पाली, भिलवाड़ा और बखेरी)	७ दिसम्बर १९५६	१७,०००
इलाहाबाद, वाराणसी, रामपुर और कल्यानपुर (उत्तर प्रदेश)	३१ मार्च १९५७	१५,५००
जबलपुर (मध्य प्रदेश)	२९ सितम्बर १९५७	४,०००
बीयावर (राजस्थान)	२७ अक्तूबर १९५७	४,०००
पटना, कटिहार, मुंगेर और समस्तिपुर (बिहार)	१५ दिसम्बर १९५७	१६,५००
सवाई—माधोपुर (राजस्थान)	१ मार्च १९५८	२,५००
अलीगढ़, हाथरस, शिकोहाबाद और बरेली (उत्तर प्रदेश)	३० मार्च १९५८	१०,५००
बंगलौर (मैसूर)	२६ जुलाई १९५८	५०,०००
त्रिवेन्द्रम (केरल)	३० अगस्त १९५८	४,०००
असम (४ नगर : गोहाटी, डिब्रूगढ़, धूबरी, तिनसुखिया-मकूम)	२८ सितम्बर १९५८	३,०००
मद्रास (४ नगर : तीरुपपुर, गुदमलपेट, सलीम और मदूर)	३० नवम्बर १९५८	२०,०००
श्री गंगानगर तथा धौलपुर (राजस्थान)	२९ मार्च १९५९	२,६००
शाहजनवा (गोरखपुर), मिर्जापुर, गाजियाबाद तथा मोदीनगर (उत्तर प्रदेश)	२९ मार्च १९५९	११,०००

इस प्रकार यह योजना मार्च १९५९ के अन्त तक ७९ केन्द्रो मे लागू हो चुकी थी। और इसके अन्तर्गत १४·१४ लाख श्रमिक आते थे। वर्ष के अन्त तक यह योजना ८६ केन्द्रो पर लागू हो चुकी थी और उसके अन्तर्गत १४ ४३ श्रमिक आ गये थे। यह निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाएगा।

१	२	३
केरल (२ केन्द्रो मे अर्थात् कोझीकोदे तथा फैरोख मे)	१२ जुलाई १९५९	१३,०००
मध्य प्रदेश (२ केन्द्र नागद तथा भोपाल)	२६ सितम्बर १९५९	६,०००
वारगल (आन्ध्र)	१४ नवम्बर १९५९	५,०००
पजाब (२ केन्द्र खासा तथा धारीवाल)	२९ नवम्बर १९५९	५,०००

१९६० मे योजना निम्नलिखित स्थानो तक विस्तृत कर दी गई—

१	२	३
केरल (२ केन्द्र-फोर्ड कोचीन तथा मटरचरी)	३ जनवरी १९६०	५,२००
उडीसा (५ केन्द्र-रजगानपुर, चदवार, बारग, कटक और ब्रजराजनगर)	३० जनवरी १९६०	२३,०००
मद्रास (४ केन्द्र-पीलामेद, परीनेकन मिलियम, सिवा कोशी तथा राज पवरीयम)	२७ फरवरी १९६०	१४,०००
सीरपुर (आन्ध्र)	२७ मार्च १९६०	११,०००
डालमिया नगर, बजारी तथा जापला (बिहार)	२७ मार्च १९६०	१०,०००
डालमिया पुरम (मद्रास)	२७ मार्च १९६०	२,०००
हुबली (मैसूर)	२७ मार्च १९६०	२,०००
श्यामपुर (पश्चिमी बगाल)	५ जून १९६०	प्राप्य नहीं
आदोरी तथा कोकीनादा (आन्ध्र)	१४ अगस्त १९६०	६,०००
उदयपुर तथा भरतपुर (राजस्थान)	१४ अगस्त १९६०	१,७५०
धनबाद (बिहार)	२७ अगस्त १९६०	१६,०००
राजनन्द गाँव (मध्य प्रदेश)	२४ सितम्बर १९६०	३,२००
केरल ३ केन्द्र—कैनूर तेलीचेरी तथा वालीपरम)	२९ अक्टूबर १९६०	६,७००

इस प्रकार १९६० के अन्त तक यह योजना ११२ केन्द्रो म लागू हो चुकी थी तथा इसके अन्तर्गत १५ ७६८ लाख श्रमिक आते थे। मार्च १९६२ तक यह योजना और केन्द्रो मे भी लागू कर दी गई, जो निम्नलिखित ह—

१	२	३
दाउदेली (मैसूर)	८ जनवरी १९६१	२,२००
हिसार (पजाब)	"	१,५००
सोनीपत (पजाब)	१९ फरवरी १९६१	२,५००
मद्रास (३ केन्द्र-तिरुचिरापली, रानीपत तथा कावेरी नगर)	२८ फरवरी १९६१	५,३५०

१	२	३
मेरठ	२६ मार्च १९६१	२,३००
मुरादाबाद	"	१,६००
फिरोजाबाद	"	१,७००
केरल (२ केन्द्र-पुनालूर तथा कोटयाम)	३० जुलाई १९६१	४,४००
मदसूर तथा देवास (मध्य प्रदेश)	२७ अगस्त १९६१	१,७५०
भिवानी (पंजाब)	३ सितम्बर १९६१	९००
खरार (पंजाब)	१७ सितम्बर १९६१	१,०००
मद्रास (४ केन्द्र)	५ अक्टूबर १९६१	२,८००
बनमोर (मध्य प्रदेश)	२९ अक्टूबर १९६१	६५०
मद्रास (१३ गांवों में)	२९ अक्टूबर १९६१	५,१००
बसैन (बम्बई)	१२ नवम्बर १९६१	४५
विजियानगरम (आन्ध्र)	१९ नवम्बर १९६१	८००
टुरनावेली (मद्रास)	२६ नवम्बर १९६१	३,५००
सतना (मध्य प्रदेश)	३ दिसम्बर १९६१	१,५००
परम बरु (केरल)	१७ दिसम्बर १९६१	१,२००
फरीदाबाद (पंजाब)	१३ जनवरी १९६२	७,०००
मंगलोर (मैसूर)	२१ जनवरी १९६२	६,५००
रायपुर और राजगढ़ (मध्य प्रदेश)	२८ जनवरी १९६२	२,३००
गोविन्द गढ़, कपूरथला, फगवाडा और चाचा चौकी (पंजाब)	२८ जनवरी १९६२	६,५००
राजब नगर, ८ की और भामी (उत्तर-प्रदेश)	११ फरवरी १९६२	२,८००
मैसूर नगर	३ मार्च १९६२	५,५००
आन्ध्र प्रदेश (३ केन्द्रों में दावलाश्रम, कोठपुर और राजामुन्द्री)	२४ मार्च १९६२	३,४००

इस प्रकार मार्च १९६२ के अन्त तक कर्मचारी राज्य बीमा योजना १३२ केन्द्रों में १८ ६५ लाख औद्योगिक श्रमिकों पर लागू हो चुकी थी। तब से योजना की प्रगति निम्नलिखित है—

१	२	३
कुम्बाकोणम (मद्रास)	१ अप्रैल १९६२	१,७००
रैनीगुन्टा (आन्ध्र)	२८ अप्रैल १९६२	८००
पुढुकटाई और नामा सुन्दरम (मद्रास)	१ जुलाई १९६२	१,७००
नारायण गढ़ (उड़ीसा)	२२ जुलाई १९६२	६००
पानीपत (पंजाब)	१६ सितम्बर १९६२	१,३००
पटियाला (पंजाब)	३० सितम्बर १९६२	६५०
राजपुरा (पंजाब)	३० सितम्बर १९६२	६००
चंडीगढ़ (पंजाब)	७ अक्टूबर १९६२	८००
ईरोद (मद्रास)	३० दिसम्बर १९६२	१,४००
पलोची, मदुरा तथा त्रिपुर अवादी, पट्टाविरम (मद्रास)	३० दिसम्बर १९६२	१,७००

१	२	३
प्रवाधीपुरम (मद्रास)	२७ जनवरी १९६३	२,९५०
मलवापुरम और गुन्टकल (आन्ध्र)	१७ फरवरी १९६३	१,६००
रैंडहिलस और वनियामबादी	२४ फरवरी १९६३	१,८००
गुढियाथम और विरधु नगर (मद्रास)	३१ मार्च १९६३	२,१००
बलगाम (मैसूर)	३१ मार्च ,,	१,८००
गया (विहार)	,,	१,७००
मुजफ्फरपुर (विहार)	,,	१,४००
मुसामा (विहार)	,,	१,०००
देहरादून (उ० प्र०)	,,	१,४००
मथुरा (,,)	,,	१,६००
हापुड (उ० प्र०)	,,	७००
हिरन गाँव	,,	६००

इस प्रकार मार्च १९६३ के अन्त तक यह योजना १५१ केन्द्रो मे १९·८४ लाख औद्योगिक श्रमिको पर लागू हो चुकी थी। अप्रैल से दिसम्बर १९६३ तक यह योजना निम्नलिखित स्थानों पर लागू की गई। भादानीनगर तथा मरहोरा (बिहार) मे, मैटूपलयम, अकोट तथा जगरकोल (मद्रास) मे, जोरहाट और गोहाटी (असम) मे, अदिक्नरोल और पालधार (केरल) मे, शोलापुर (महाराष्ट्र) मे।

इस प्रकार ३१,७५० अतिरिक्त श्रमिक इसके अन्तर्गत आय जिससे १६० केन्द्रा म इसके अन्तर्गत आने वाले श्रमिको की कुल सख्या २० १६ लाख हो गई। मार्च १९६४ के अन्त तक इन योजना का जो विस्तार किया गया वह निम्न प्रकार था —

१	२	३
नागापट्टिनम व वैल्लोर कटपदी (मद्रास)	२६ जनवरी, १९६४	१,५००
मसलीपटनम व तनुकू (आन्ध्र)	२३ फरवरी, ,,	१,६००
चैलयाघाट व टौलीगंगे (पश्चिमी बंगाल)	२६ फरवरी, ,,	१५,७००
चुर्क (उत्तर प्रदे)	१ मार्च, ,,	१,८५०
गाजीपुर (उत्तर प्रदेश)	,, ,,	९५०
सीतापुर (उत्तर प्रदेश)	,, ,,	१,२००
केरल मे ९ केन्द्र	,, ,	२८,५००
गुलबर्ग (मैसूर)	२२ ,, ,,	३,०००
केरल मे राजस्व ग्राम तथा तैलीचेरी के निकट २ केन्द्र	२९ , ,,	अप्राप्य
जीवतपुर निजामत (विहार)	,, ,,	अप्राप्य
गोवक (मैसूर)	,, ,	५,५००
२४ परगना जिला (पश्चिमी बंगाल)	,, ,,	२,५५,३००

इस प्रकार, मार्च १९६४ के अन्त तक, २०३ केन्द्रों में २८.५० लाख औद्योगिक श्रमिकों पर लागू हो चुकी थी। सबसे महत्वपूर्ण केन्द्र, जहाँ योजना लागू हुई, पश्चिमी बंगाल का २४ परगना जिला था जहाँ लगभग २.५६ लाख श्रमिक इसके अन्तर्गत आ चुके थे। अप्रैल से दिसम्बर १९६४ की अवधि में यह योजना इन स्थानों पर लागू हुई : चित्तूर (आन्ध्र) में, बरबिल (उड़ीसा) में, भूली (बिहार) में, अहमदाबाद काठवाड सहित (गुजरात में), कोयम्बटूर के उपनगरों : थिरुनगर (मद्रास में), इससे २, १४,०५० अतिरिक्त श्रमिक इसके अन्तर्गत व जिससे २०६ केन्द्रों में इसके अन्तर्गत आने वाले कुल श्रमिकों की संख्या २६.६४ लाख हो गई। योजना के क्रियान्वय की महत्वपूर्ण उपलब्धि गुजरात में अहमदाबाद में हुई जहाँ ४ अक्तूबर १९६४ से यह योजना २,०५,००० औद्योगिक श्रमिकों पर लागू हुई।

मार्च १९६५ के अन्त तक, योजना २२६ केन्द्रों में २८.८० लाख श्रमिकों पर लागू हो चुकी थी। अप्रैल से दिसम्बर १९६५ तक की अवधि में यह योजना निम्न स्थानों पर लागू की गई रामागुन्दम, नैल्लोर, कुडापा, कालाहस्ती और कुणम (आन्ध्र) में, कोरल्टी, ओट्टापलम और थोरापुर (केरल) में, पूना व इसके उपनगर (मुन्डवा, डिपोडी, लिनि व पिम्परी) महाराष्ट्र में देवनगर (मैसूर) में, भुवनेश्वर (उड़ीसा) में, लुधियाना के उपनगर (शेरपुर कलाँ, भोरे व ग्यासपुर) (पंजाब) में, अजमेर व कोटा (राजस्थान) में, वैद्यवटी, बसबेरिया, कोननगर, रिशरा, श्रीरामपुर, तेलिनीपारा व उत्तरपारा (हुगली पश्चिमी बंगाल) में, भागलपुर (बिहार) में, और राजकोट व वान्कानेर (गुजरात) में। इससे १,६७,६०० अतिरिक्त श्रमिक इसके अन्तर्गत बढ़े, जिससे २६६ केन्द्रों में कुल ३०.४८ लाख श्रमिक इस योजना के अन्तर्गत आ गये। केवल हुगली जिले में ही, १,०४,२०० औद्योगिक श्रमिक इसके अन्तर्गत आये।

मार्च १९६६ के अन्त तक, इस योजना के अन्तर्गत ३०.६६ लाख श्रमिक आ चुके थे। अप्रैल १९६६ से मार्च १९६७ तक इस योजना का विस्तार निम्न क्षेत्रों में किया गया चिराला, गुडूर, मछेरला केन्द्र तथा हैदराबाद के उप-नगर (मौलाअली) (आन्ध्र) में, रांची, चुटिया सहित (बिहार में) कैम्बे, पैटलाद, भावनगर व मोर्वी (गुजरात) में, मैसूर व नवैकुलम (केरल) में, किशनगढ़ (राजस्थान) में, टी० नर्सीपुर व कोल्लीगल (मैसूर) में, जोरिया (पंजाब में) और पाण्डेचेरी में।

इस प्रकार, मार्च १९६७ के अन्त तक, यह योजना सभी राज्यों तथा दिल्ली प्रदेश में फैले हुए २७३ केन्द्रों में ३१,७२४०० औद्योगिक श्रमिकों पर लागू हो चुकी थी।

चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाएँ अब बीमाकृत श्रमिकों के परिवारों को भी दी जा रही है। मैसूर सरकार ने सबसे पहले २६ जुलाई १९५८ को बंगलौर में

का निर्माण, जिनमें प्रति एक हजार परिवारों के लिये ११ पलग हो, ५०० चिकित्सालयों का निर्माण, १,६०० चिकित्सा अधिकारियो की व्यवस्था, बीमाकृत व्यक्तियो की मृत्यु की स्थिति मे उनके परिवारो के लिए पैन्शन की व्यवस्था, और कर्मचारी राज्य बीमा के अन्तर्गत चिकित्सालयो व हस्पतालो मे पहले से चालू परिवार नियोजन सुविधाओ का विस्तार।

योजना के कार्यान्वित होने के पश्चात् यह अनुभव किया गया है कि यह श्रमिको में काफी लोकप्रिय हो रही है। चिकित्सालयो मे आने वाले रोगियो की सख्या का प्रतिदिन बढना और बीमारो व असमर्थता लाभों का अधिक सख्या में भुगतान होना यह प्रदर्शित करता है कि यह योजना श्रमिको मे काफी लोकप्रिय होती जा रही है। उदाहरणत, १९६४–६५ में विभिन्न राज्य बीमा औषधालयों तथा चिकित्सालयो मे लगभग २,६२,४२,८४१ मरीजो का इलाज किया गया तथा ५२,७५३ मरीजो को हस्पताल मे भरती किया गया। अनेक मालिको पर अशदान के न देने तथा अधिनियम के उपबन्धो को न मानने के कारण मुकदमा भी चलाया गया। उसी वर्ष, निगम द्वारा बीमाकृत व्यक्तियो को दिये गये विभिन्न लाभो की नकद राशि निम्न प्रकार थी — बीमारी लाभ —८,६४,१२,००० रुपये, मातृत्व-कालीन लाभ —२४,२४,३३३ रुपये, अस्थायी असमर्थता लाभ ५१,६३,००० रु०, स्थायी असमर्थता लाभ -७३,०४,९०० रुपये, आश्रितो का लाभ --२२,७७,००० रुपये। सन् १९६४-६५ के मध्य, इस योजना की निधि मे कर्मचारियो का अशदान तथा मालिकों का विशेष अशदान क्रमश ८ ८७,९३, ७७ रु० तथा ९,६६,७४,४१२ रुपये था। निगम के १९६३–६४ के बजट अनुमानो के अनुसार, ३२·३ लाख रुपये की राजस्व बेशी थी।

योजना को कार्यान्वित करने मे कठिनाइयाँ

कुछ बाधाओ के कारण अभी तक यह सम्भव नही हो सका है कि इस योजना को और अधिक क्षेत्रो मे कार्यान्वित किया जा सके। कुछ आपत्तियो के कारण, जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, मालिको की ओर से योजना का (1) विरोध किया गया है और इसलिये उनका पूर्ण सहयोग नही मिल पाया है। श्रमिकों ने भी कुछ आधारो पर इस योजना पर आपत्ति उठाई है। सर्वप्रथम, मजदूरो की यह माँग थी कि इस योजना मे उनके परिवारो के सदस्यो को भी सम्मिलित कर लिया जाये और कभी-कभी उन्होने इस बात पर बहुत जोर दिया। (2) परन्तु १९५८ तक वित्तीय कठिनाइयो के कारण श्रमिको के परिवारो के लिये यह सुविधा प्रदान नही की जा सकी। अब भी केवल चिकित्सा सुविधायें परिवारो को दी जा रही हैं और सभी सुविधायें अभी तक देना सम्भव नही हो पाया है। यह भी अभी केवल हाल मे ही निश्चित किया गया है कि श्रमिको के परिवारो को हस्पताली सुविधाओ सहित सभी लाभ प्राप्त हो। मजदूरों की दूसरी माँग यह है कि हस्पताल की उत्तम सुविधायें प्राप्त हो और निगम के अपने हस्पताल अलग

कारण यह बताया जाता है कि उनका श्रम मन्त्रालय के अधिकारियो से कुछ मत-भेद था। इसके विरोध में डॉ० काटियाल ने गाँधी जी की समाधि पर उपवास किया। इसके पश्चात् कर्नल वी० एम० एलबूकर्क (Col. V M. Albuquerque) निगम के डाइरेक्टर-जनरल नियुक्त किये गये, परन्तु उन्होंने भी मार्च १६६० में इस्तीफा दे दिया क्योंकि उनका भी निगम के कर्मचारियो और प्रबन्धको मे आपसी सम्बन्धो के विषय मे मत-भेद था। अब श्री वी० एन० राजन निगम के महा-निदेशक है। यदि सामाजिक सुरक्षा की किसी योजना को सफल बनाना है और उसे कार्यान्वित करने मे देर नही करनी है, तब यह बहुत आवश्यक हो जाता है कि योजना को चलाने वाले उच्च अधिकारी बहुत ईमानदार हो उनमे प्रबन्ध करने की पर्याप्त क्षमता हो और वे पारस्परिक सहयोग से कार्य करे। डॉक्टर काटियाल जैसी घटनाये जनता के विश्वास को हिला देती है। इस प्रकार की घटनायें किसी भी हालत मे नही होनी चाहिये।

कर्मचारी राज्य बीमा योजना की समीक्षा

सामाजिक सुरक्षा पर अध्ययन दल—अगस्त १६५७ को श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय ने सामाजिक सुरक्षा पर एक अध्ययन दल की नियुक्ति की। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की भारतीय शाखा के निदेशक श्री वी० के० आर० मेनन इसके अध्यक्ष थे। अध्ययन दल ने दिसम्बर १६५८ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसकी मुख्य सिफारिशें इस प्रकार थी—(१) कर्मचारी राज्य बीमा निगम तथा कर्मचारी निर्वाह निधि संगठन को एक एजेन्सी के रूप में मिला दिया जाये, (२) कर्मचारी राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत डाक्टरी देखभाल के स्तर में सुधार तथा नकद लाभों में वृद्धि की जाए। साथ ही श्रमिकों के परिवारो के लिए भी हस्पताली सुविधाओं की व्यवस्था की जाए, (३) अधिक से अधिक १२ सप्ताहो की अवधि के लिए बीमारी लाभो की अदायगी की जाए और पूर्ण सामान्य लाभ दर से ३६ सप्ताहो के लिए बढे हुए बीमारी-लाभ प्रदान किये जाएँ, (४) पूर्ण औसत मजदूरी पर मातृत्व-कालीन लाभों की अदायगी की जाए, (५) मालिकों का अंशदान बढाकर मजदूरी-बिल का ४¾% कर दिया जाए और कर्मचारी निर्वाह निधि अधिनियम के अन्तर्गत अंशदान की दरो को भी बढाकर ८⅓ प्रतिशत कर दिया जाए, और (६) निर्वाह निधि योजना को वृद्धावस्था-असमर्थता तथा उत्तर-जीवी पैन्शन व आनुतोषिक योजना मे परिवर्तित कर दिया जाए। लाभो को बढाने से सम्बन्धित अनेक सिफारिशें तो पहले से ही लागू कर दी गई थी, परन्तु सामाजिक सुरक्षा की एकीकृत योजना से सम्बन्धित सिफारिशें अभी विचाराधीन है (जिन पर अगले पृष्ठों में प्रकाश डाला गया है)।

डॉ० ए० एल० मुदालियर कमेटी—सन् १६५६ मे, सरकार ने कर्मचारी राज्य बीमा योजना की कार्य-प्रगति पर रिपोर्ट देने के लिए एक कमेटी का निर्माण किया। डॉ० ए० एल० मुदालियर इसके एकमात्र सदस्य थे। कमेटी की मुख्य

सिफारिशें, जिन पर निगम की सहमति थी, इस प्रकार थी—(१) कर्मचारी राज्य बीमा हस्पतालो का तेजी से निर्माण, (२) कुटीर प्रकृति के हस्पतालो का निर्माण, (३) कम बीमा योग्य जनसंख्या वाले क्षेत्रो मे विशेषज्ञो की सेवाओ की उदारता के साथ पहुँच, (४) स्थानीय कार्यालयो के लिए अपने निजी भवनो का निर्माण तथा स्थानीय कार्यालयो को बडी मिलो मे स्थित करना, तथा (५) बढे हुए बीमारी लाभो की ३०६ दिन तक के लिए तथा कम तीव्र अस्थि भगो के लिए भी स्वीकृति।

सामान्य उद्देशीय उप-समिति—निगम की एक सामान्य उद्देशीय उप-समिति का समय-समय पर निर्माण किया जाता है। इसमे विभिन्न हितो के प्रतिनिधि होते हैं। यह उप समिति योजना के कार्य-सचालन की समीक्षा करने के लिए समय समय पर विभिन्न केन्द्रो का निरीक्षण करती है और सुधारो के सम्बन्ध मे अपने सुझाव देता है।

मूल्यांकन—केन्द्र सरकार ने, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्येक पाच वर्ष (अर्थात मार्च १९५४, १९५९ और १९६४ को समाप्त होने वाली अवधि) के लिए निगम की परिसम्पत्तियो एव देयताओ का मूल्याकन करने के लिए बीमा-नियन्त्रक (Controller of Insurance) को नियुक्त किया है। मूल्याकन रिपोर्टों से निगम की वित्तीय स्थिति का पता चलता है।

कर्मचारी राज्य बीमा समीक्षा समिति—स्थायी श्रम समिति की सिफारिशो के अनुसार, जून १९६३ म केन्द्र सरकार ने एक त्रिदलीय समिति की स्थापना की। तत्कालीन उप श्रम मन्त्री, श्री सी० आर० पट्टाभी रमन इस समिति के अध्यक्ष थे। समिति से कहा गया कि वह कर्मचारी राज्य बीमा योजना के कार्य-सचालन का अवलोकन करे और कर्मचारी राज्य बीमा निगम के ढाँचे तथा सगठन मे सशोधनो अथवा परिवर्तनो के विषय मे अपने सुझाव दे। समिति ने फरवरी, १९६६ मे अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट पर चिकित्सा लाभ परिषद्, स्थायी श्रम समिति तथा कर्मचारी राज्य बीमा निगम द्वारा तो पहले ही विचार किया जा चुका है और अब केन्द्र सरकार इस पर विचार कर रही है। समिति ने कर्मचारी राज्य बीमा योजना तथा कर्मचारी निर्वाह निधि योजना के प्रशासकीय विलय का सुझाव दिया है। इसने इस बात पर जोर दिया है कि देश-भर मे यथेष्ट सख्या मे कर्मचारी राज्य बीमा हस्पतालो का निर्माण किया जाये और क्षय-रोग के पीडितो को विशेष सुविधायें प्रदान की जाएँ। समिति ने सिफारिश की है कि यह मालिको का कानूनी दायित्व होना चाहिए कि वे ऐसे लोगो को रोजगार मे बनाये रखें तथा उनको उपयुक्त काम द जो औद्योगिक दुर्घटनाओ के परिणामस्वरूप आशिक रूप से असमर्थ हो गये हो। कर्मचारी राज्य बीमा निगम स्थायी रूप से असमर्थ व्यक्तियो के पुनर्वास, पुन प्रशिक्षण तथा पुन रोजगार का एक प्रभावी कार्यक्रम बनाये। समिति ने सुझाव दिया है कि योजना के विस्तार के सम्बन्ध मे प्राथमिकताओ का

प्राथमिकताओं का निर्धारण

निर्धारण किया जाना चाहिऐ ताकि सभी फैक्टरियाँ तथा सस्थान, जिनमे १० या अधिक श्रमिको को काम पर लगाने वाली दूकानें तथा वाणिज्यिक सस्थान भी सम्मिलित है, इसकी परिधि मे आ जाये। समिति ने वर्तमान समय मे खानो तथा बागानो मे कर्मचारी राज्य बीमा योजना के विस्तार का समर्थन नही किया। समिति ने सिफारिश की कि योजना की परिधि मे लाने के लिए मजदूरी की सीमा को बढाकर १,००० रुपये प्रति माह कर दिया जाये। कर्मचारियो के अशदान की अदायगी से छूट के लिए मजदूरी की सीमा बढाकर २ रुपये प्रतिदिन कर दी जानी चाहिए। समिति ने यह भी सुझाव दिया है कि बीमारी लाभ को ८ से १० सप्ताह के लिए बढा दिया जाना चाहिए। समिति ने यह अनुभव किया कि निगम मे मालिक तथा श्रमिको का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नही है। अत समिति ने सुझाव दिया कि निगम की सदस्य-सख्या बढाकर ४० कर दी जाए जिसमे १०—१० प्रतिनिधि मालिको व श्रमिको के हो। समिति ने यह भी सुझाव दिया कि क्षेत्रीय बोर्डो के कार्यो तथा शक्तियो मे वृद्धि की जाए ताकि योजना के प्रशासन मे वे कारगर ढँग से सहायता कर सकें।

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियमो में सशोधन—मार्च १९६१ मे, निगम ने कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम मे सशोधन के लिए आये विभिन्न प्रस्तावो पर विचार करने के लिए एक उप-समिति की नियुक्ति की। अन्य चीजो के अलावा इन प्रस्तावो मे इन बातो पर जोर दिया गया था कि अधिनियम के अन्तर्गत लाभ प्रदान करने की व्यवस्थाओ की कार्य-पद्धति को सरल व सुगम बनाया जाए, ताकि बीमाकृत श्रमिको को अधिक अच्छी सेवाएँ प्रदान की जा सकें और लाभ की व्यवस्थाओ को ५०० रुपये तक का मासिक वेतन पाने वाले व्यक्तियो तक बढाया जा सके। स्मरण रहे कि उस समय यह सुविधा ४०० रुपये मासिक तक ही प्रदान की जाती थी। अगस्त १९६५ मे कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम मे सशोधन के लिए एक विधेयक (Bill) रखा गया जो १९६६ मे पारित हो गया। कर्मचारी राज्य बीमा (सशोधन) अधिनियम, १९६६ का उद्देश्य यह है कि योजना के प्रशासन को सरल बनाया जाए और अधिनियम के अन्तर्गत लाभ प्राप्त करने के लिए जो कुछ लम्बी एव जटिल औपचारिकताए पूरी करनी पड़ती है, उन्हे समाप्त कर दिया जाए।

उपसहार

कर्मचारी राज्य बीमा योजना एशिया मे अपने प्रकार की पहली ही योजना है। भारतीय जनता के लिये सामाजिक सुरक्षा की एक व्यापक योजना बनाने की दिशा मे यह पहला कदम है। इसे हम एक साहसपूर्ण और साथ ही ऐसी योजना कह सकते है जो बहुत महत्वाकांक्षी नही है। परन्तु अभी तक इसके अन्तर्गत जन-सख्या का एक छोटा सा ही भाग आ पाया है, अर्थात् केवल सगठित उद्योगो के मजदूरों पर ही, जिनकी सख्या लगभग ३७ लाख है, यह योजना लागू होती है।

इसके अन्तर्गत सब प्रकार के संकट और सब प्रकार के व्यक्ति, विशेषकर कृषि मजदूर नहीं आते हैं। सामाजिक सुरक्षा के दृष्टिकोण से यह एक व्यापक योजना नहीं है। परन्तु इसको एक अधिक बड़ी और साहसपूर्ण योजना को लागू करने के लिये आधारशिला माना जा सकता है और यह देश की जनता के लिये व्यापक समाज सुरक्षा की योजना बनाने में मार्ग प्रदर्शक बन सकती है। यह आशा की जाती है कि इस योजना का दृढ़ विश्वास के साथ कार्यान्वित किया जाएगा, और इसके लागू करने में अधिकारियों में भी सेवाभावना निहित रहेगी और मालिक और मजदूरों का इच्छित रूप से पूर्ण सहयोग होगा।

नाविकों के लिए सामाजिक बीमा
(Social Insurance for Seamen)

यह भी उल्लेखनीय है कि मजदूरों के एक अन्य वर्ग के लिये अर्थात नाविकों के लिये भी भारत सरकार ने एक सामाजिक सुरक्षा योजना तैयार की है। इस विषय पर प्रो० बी० पी० अदारकर और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की डाक्टर (कुमारी) मौरा वाडमर द्वारा तैयार की हुई एक संयुक्त रिपोर्ट दिसम्बर १९४५ में दी गई थी। इस अदारकर वोडमर योजना में बीमारी रोजगार वृद्धावस्था व उत्तर-जीवी बीमे और नाविकों के प्रतीक्षा काल के लिये बीमे की व्यवस्था की गई है। परन्तु इस योजना के निर्माणकर्त्ताओं के विचार में नाविकों के लिए किसी भी बीमा योजना की सफलता बहुत सीमा तक इस बात पर निर्भर करेगी कि उनकी भर्ती की उचित व्यवस्था है। इस व्यवस्था द्वारा समुद्री सेवा में भरती होने वाले श्रमिकों की संख्या कम करने तथा ऐसे नाविकों के लिये जिनका निरन्तर रोजगार नहीं होता एक क्रम चक्र (Rotation) की योजना लागू करने का सुझाव था। इस सुझाव का ध्यान में रखते हुये सरकार ने बम्बई और कलकत्ता में सरकारी रोजगार दफ्तर खोले हैं। नाविकों के लिए सामाजिक बीमा को प्रारम्भ करना तभी सम्भव हो सकेगा जब रोजगार के ये दफ्तर अपना कार्य सरलता से और सफलतापूर्वक करने लगेंगे। नाविकों के लिये एक राष्ट्रीय कल्याण बोर्ड की भी स्थापना १९५५ में हुई, जिसने नाविकों के लिये एक सामाजिक सुरक्षा योजना के निर्माण हेतु एक उपसमिति की नियुक्ति की। इसके अध्यक्ष श्री एम० ए० मास्टर थे। इस उपसमिति ने अपनी रिपोर्ट अप्रैल १९५६ में प्रस्तुत की और यह सुझाव दिया है कि नाविकों के लिये भी कर्मचारी राज्य बीमा योजना की भांति एक पृथक सामाजिक सुरक्षा योजना होनी चाहिये। रिपोर्ट अभी भी विचाराधीन है।

बेरोजगारी बीमा
(Unemployment Insurance)

बेरोजगारी के मूल कारण

सामाजिक बीमे का एक अन्य महत्वपूर्ण भाग अनिवार्य सार्वजनिक बेरोजगारी बीमा है। इस ओर आधुनिक राज्यों का ध्यान भी पर्याप्त रूप से आकर्षित

हुआ है। बेरोजगारी का अर्थ होता है किसी योग्य व्यक्ति को रोजगार न मिल सकना। यह एक ऐसी अवस्था है जो अबन्ध नीति (Laissez Faire) पर आधारित आर्थिक प्रणाली में निहित है तथा इसके कारण पैदा होती है। इससे ऐसी अस्थिरता का पता चलता है जो मुक्त उद्यम प्रणाली (Free Enterprise) का एक आवश्यक लक्षण है और सम्भवतः यह एक ऐसा मूल्य है, जिसको चुकाना ही पड़ेगा यदि उत्पादन को दिन प्रतिदिन होने वाली नई-नई विधियों और आविष्कारों के द्वारा तथा बिना नियन्त्रण के आगे बढ़ाना तथा अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना है। उद्योग के लिये यह हमेशा सुविधा रहती है कि कुछ मजदूर बेरोजगार रहें जिससे जब भी आवश्यकता पड़े उन्हें बुला लिया जाय। जब व्यापार उन्नति पर होता है तब बेरोजगार मजदूरों की संख्या कम होती है परन्तु जब मन्दी का समय आता है तो संख्या बढ़ जाती है। इन निरन्तर होने वाले सामयिक उतार-चढ़ाव (Cyclical Fluctuations) के अतिरिक्त नये आविष्कारों अथवा विदेशी व्यापार में हानि के कारण भी बड़ी-बड़ी मुसीबतें आ पड़ती हैं जिनमें उद्योग का सारा तान-बाना शीघ्र नष्ट हो जाता है और मजदूरों को काफी समय तक आलस्य में समय गवाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कुछ उद्योगों में कार्य सामयिक होता है और कुछ कार्यों में, जैसे ठेकेदारों द्वारा सार्वजनिक निर्माण कार्यों में, कार्य-व्यवस्था अनियमित होती है। इस प्रकार के कार्यों और उद्योगों में पूर्ण रोजगार की व्यवस्था नहीं हो पाती। इस प्रकार, बेरोजगारी वह अवस्था है जो हमारे समक्ष अनेक रूपों में आती है और यह विभिन्न देशों के मुक्त उद्यम पर आधारित आधुनिक उद्योग प्रणाली की एक नियमित लक्षण बन चुकी है। (कृपया परिशिष्ट 'ख' भी देखिये)।

बेरोजगारों को सहायता देने की आवश्यकता

बेरोजगारी अनेक आर्थिक बुराइयों में से एक गम्भीरतम दोष है और यह आर्थिक संगठन के लिये एक गम्भीर खतरा भी है। यदि बेरोजगारी अधिक दिनों तक चलती है, तब व्यक्ति और समाज के लिये इससे बहुत विनाशकारी परिणाम होते हैं। इससे मानसिक शक्ति का ह्रास, दुःख, आलस्य, दरिद्रता आदि अनेक सामाजिक बुराइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। समाज का एक बड़ा तथा सामान्य उत्तरदायित्व यह है कि प्रत्येक को जीविका कमाने और निर्वाह करने का उचित अवसर प्रदान करे। जे० एस० मिल के शब्दों में "राज्य अनिवार्य रूप से एक अपराधी को दण्ड भुगतने के काल में खाने-पीने की सुविधायें प्रदान करता है। परन्तु यदि गरीब व्यक्तियों के लिये, जिन्होंने अपराध नहीं किया है, ऐसा नहीं किया जाता, तब स्पष्ट रूप से यह अपराध को बढ़ावा देना है।" अब अधिकतर राज्यों ने बेरोजगारी के समय लोगों को सहायता देने के अपने कर्तव्य को स्वीकार कर लिया है।

बेरोजगारी सहायता के लिए कुछ योजनायें

मन्दी के समय में १९२९ के पश्चात् अनेक देशों में बेरोजगारों को सहायता देने के लिए अनेक योजनायें बनाई गई थी। कुछ योजनाओं के अन्तर्गत पूर्णतया या मुख्यतया काम देने की सुविधायें दी गई थी और कुछ एक में भत्ता देने की व्यवस्था की गई थी। इनमें से कुछ योजनाओं की व्यवस्था तो किसी विशिष्ट विपत्ति का सामना करने के लिये अस्थायी थी, परन्तु कुछ योजनायें स्थायी थी। बेरोजगारी-सहायता योजनायें अमरीका, कनाडा, स्वीडन, आस्ट्रेलिया ग्रेट ब्रिटेन और योरप के अधिकतर देशों में चालू रही हैं। इस प्रकार की सहायता सार्वजनिक निर्माण कार्यों में बेरोजगारों को सामान्य मजदूरी पर रोजगार प्रदान करके दी गई हैं। लाखों मजदूरों की इस प्रकार सहायता की गई है। बेरोजगारी सहायता की प्रत्येक योजना में यह आवश्यक है कि प्रार्थी में काम करने की योग्यता हो, रोजगार दफ्तर में उसका नाम दर्ज हो, किसी भी अपने योग्य रोजगार को स्वीकार करने की उसकी इच्छा हो, किसी प्रशिक्षण लेने व सहायता कार्य करने के लिये वह तैयार रहे और उसे इस प्रकार की सहायता की आवश्यकता भी हो। बेरोजगारी-सहायता योजनाओं का मुख्य उद्देश्य लाभ प्राप्त करने वाले मजदूर और उसके आश्रितों का निर्वाह करना होता है इसीलिये जो भी राशि सहायता-रूप में दी जाती है उसका निर्णय सहायता दिये जाने वाले परिवार के आकार और सदस्यों की संख्या को देखकर किया जाता है। ब्रिटेन तथा आयरलैण्ड जैसे कुछ देशों में 'बेरोजगारी-सहायता योजनाओं' को केन्द्रीय सरकार ने अपने हाथों में ले लिया है और उनका सारा व्यय राष्ट्रीय करों द्वारा पूरा किया जाता है। परन्तु कुछ दूसरे देशों में सरकारें एच्छिक बीमा निधियों को या स्थानीय बेरोजगार निधियों को इस हेतु उपदान प्रदान करती है।

भारत में बेरोजगारी-सहायता प्रदान करने में कठिनाइयाँ

बेरोजगारी सहायता देने की जो प्रणाली अनेक देशों में चल रही है वह सम्भवत भारत जैसे देश के लिये उपयुक्त नहीं है क्योंकि इसमें अनेक कठिनाइयाँ हैं। प्रथम तो भारत इतना बड़ा देश है और यहाँ बेकारी इतने व्यापक रूप में फैली हुई है कि वर्तमान आर्थिक दशाओं में बेरोजगारी सहायता देने की कोई योजना बनाना असम्भव सा हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह सम्भव भी हो, तो इस प्रकार की प्रणाली हमारे देश के लोगों को आलसी बना सकती है। योजना का लाभ उठाकर अनेक बेजिम्मेदार युवक समय बर्बाद करने और साथ में वेतन भी पाने का एक तरीका बना सकते है। इङ्गलैण्ड में भी ऐसे मामले हुए हैं कि अनेक युवक, जो अपने माता-पिता के साथ नहीं रहते थे, उन्होंने कुछ समय तक तो कोई काम किया, फिर छुट्टियाँ मनाने के लिये उसे छोड़ दिया और सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली बेरोजगारी-सहायता लेकर जेब खर्च चलाते रहे और कुछ समय पश्चात् फिर कोई नौकरी कर ली। इसके अतिरिक्त भारत में बेरोजगार-

सहायता योजना का प्रशासन करने वाले अधिकारियों द्वारा अपने पद के अनेक दुरुपयोग किये जा सकते हैं जैसा कि कृषकों के लिये दिया जाने वाला 'तकावी' ऋण के सम्बन्ध में किया जाता है। भारत में एक यह भी कठिनाई है कि इस प्रकार की सहायता का वितरण किन आधारों पर किया जाय क्योंकि भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली है और अधिकाँश जनता अशिक्षित है। कभी-कभी यह तर्क भी दिया जाता है कि इस प्रकार की सहायता उन आत्मसम्मानी लोगों की भावना को कुचल देगी जो सरकार से इस प्रकार की सहायता पाने की अपेक्षा स्वयं कोई अच्छी नौकरी करना अधिक पसन्द करते हैं।

बेरोजगारी-बीमा

परन्तु बेरोजगार लोगों की बेरोजगारी-बीमा योजना के अन्तर्गत भी सहायता प्रदान की जा सकती है। यह विधि पिछले कुछ वर्षों से अनेक देशों में काफी लोकप्रिय हो गयी है। बेरोजगारी में सहायता देना पूर्णतया सरकार का कर्त्तव्य है परन्तु बेरोजगारी-बीमे के अन्तर्गत एक ऐसी निधि की स्थापना की जाती है जिसका निर्माण सरकार, मालिक और मजदूरों के वित्तीय अंशदान से होता है और फिर इनमें से सहायता दी जाती है। अनिवार्य बेरोजगारी-बीमा योजनाएँ अनेक देशों में लागू की जा चुकी है, जैसे—कनाडा (१६४०), ब्रिटेन (१६३५-४०), इटली (१६३६), न्यूजीलैण्ड (१६३८), नार्वे (१६३६), दक्षिणी अफ्रीका (१६३७) और अमेरिका (१६३५-४१)।

यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने १६३४ के एक अभिसमय में बेरोजगारी बीमा योजनाओं की सिफारिश की थी, परन्तु भारत में अभी तक बेरोजगारी बीमा के लिए किसी भी विधान की व्यवस्था नहीं की गई है। रॉयल श्रम आयोग ने भी इस प्रणाली को भारत के लिए सम्भव नहीं समझा था। उन्होंने इस सम्बन्ध में कई कठिनाइयों की ओर संकेत किया था जैसे किसी नियमित व स्थाई औद्योगिक जनसंख्या का अभाव, देश का बड़ा आकार तथा ऐसी योजना पर अत्यधिक व्यय का होना। परन्तु हमारा देश धीरे-धीरे इस तथ्य के प्रति सजग होता जा रहा है कि बेरोजगारी समाज के लिए बहुत खतरनाक है और बेरोजगारों के लिए किसी न किसी प्रकार की सुरक्षा व्यवस्था करने में देर नहीं करनी चाहिए। देश के श्रमिकों के लिए इस प्रकार की योजनाओं के अभाव में जो बुराइयाँ उत्पन्न हो जाती है उनका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। जब मजदूर बेरोजगार होता है तब अनेक सामाजिक बुराइयाँ उत्पन्न होने लगती हैं। अतः सामाजिक बीमा प्रणाली के अन्तर्गत ही बेरोजगारी को भी सम्मिलित करने की अति आवश्यकता है।

परन्तु यह प्रणाली उस समय तक सम्भव नहीं हो सकती जब तक कि बीमे का कोई केन्द्रीय संगठन न हो और जिसका कार्य रोजगार दफ्तरों के माध्यम से न चलता हो। यह दफ्तर केन्द्रीय संगठन की स्थानीय एजेंसियों के रूप में कार्य कर

सकते है । इस बात की भी आवश्यकता है कि वेरोजगारी के सही आँकड़े एकत्रित किए जाएँ और यह जाना जाय कि किन परिस्थितियो मे बेरोजगारी हो सकती है, क्योकि किसी भी सकट का बीमा होने के लिए आवश्यक है कि उस सकट को कुछ सीमा तक पहले से ही जानना सम्भव हो । वेरोजगारी बीमा मे भी नकद लाभ देने के लिए कठोर शर्ते होती है । प्रार्थी को यह सिद्ध करना होता है कि वह जिस रोजगार को करता रहता है वह बीमा होने योग्य है और वह सहायता के लिए एक निश्चित काल के पश्चात ही दावा कर रहा है तथा उसकी नौकरी कभी उसके दुव्यवहार के कारण नही गई है और न ही उसने किसी औद्योगिक विवाद के परिणामस्वरूप या स्वेच्छा से अपनी नौकरी छोडी है । बेरोजगार व्यक्ति मे किसी न किसी ऐसे कार्य करने की इच्छा और योग्यता भी होनी चाहिए जो उसको साधारणतया मिल सकता है अथवा जो उसके साधारण कार्य के समान होता है । इस प्रकार के कार्य को जो भी प्रचलित मजदूरी की दर हो, इस पर ही स्वीकार कर लेना चाहिए । जब तक श्रमिकों को वेरोजगारी लाभ मिले तब तक उसे रोजगार के दफ्तरो मे भी कभी कभी जाते रहना चाहिए । अत योग्यता काल तथा 'प्रतीक्षा काल' का स्पष्टीकरण किया जाना आवश्यक है और साथ ही वेरोजगारी लाभ कितने समय तक मिले यह भी निश्चित किया जाना चाहिए । बेरोजगारी बीमा योजना को रोजगार दफ्तरो के निकट सहयोग से कार्य करना चाहिए । यदि योजना अनिवार्य हो तो रोजगार दफ्तरो द्वारा लाभ देने की व्यवस्था की जा सकती है । इस समय हमारे देश मे रोजगार दफ्तरो का जाल सा बिछ गया है और सामाजिक सुरक्षा का प्रारम्भ स्वास्थ्य बीमा योजनाओ के द्वारा हो चुका है । अत देश मे बेरोजगारी बीमा चालू करने के लिए यह एक बहुत ही उपयुक्त अवसर है । कम से कम कुछ क्षेत्रो मे तो वेरोजगारी बीमे की योजना प्रयोगात्मक रूप से लागू की जा सकती है ।

बेरोजगारी मे सहायता करने के लिए कुछ सुझाव

जब तक बेरोजगारी को सामाजिक सुरक्षा योजना के अन्तर्गत नही लाया जाता तब तक वेरोजगारो को सहायता देने के लिए कुछ ऐसी ऐच्छिक योजनाएँ चलाई जानी चाहिएँ जिनमे सरकार उपदान द्वारा सहायता दे । डा० राधाकमल मुखर्जी के सुझाव के अनुसार, मालिको को इस बात के लिए उत्साहित किया जाना चाहिए कि वे एक ऐसी बेरोजगारी सहायता निधि की स्थापना करे, जिसमे से नौकरी से निकले हुए मजदूरो को उनके सेवा काल का ध्यान मे रखते हुए, अवकाश प्राप्ति धन प्रदान किया जाए । इस निधि मे स्थानीय सरकारो को भी अंशदान देना चाहिए जिसकी राशि, बेरोजगार और नौकरी से निकले हुए श्रमिको को जो सहायता प्रदान की जाए उसके बराबर हो । इसके साथ ही सरकार को ऐसी योजनाओ को जिनका उद्देश्य अकुशल श्रमिको को रोजगार देना हो, या तो आरम्भ करना चाहिए या उपदान द्वारा सहायता देनी चाहिए । जापान मे सरकार

द्वारा नगरपालिकाओं को यह अधिकार दिया हुआ है कि वे सहायता कार्यों (Relief Works) के लिए वित्त प्रदान करने के हेतु ऋण ले सकती है। यदि किसी योजना में अकुशल श्रमिकों को सहायता देने का व्यय कुल व्यय का कम से कम ५०% होता है तो उस योजना की लागत का आधा खर्च सरकार अपने कोष में से उपदान के रूप में देती है।* अपने देश में हम इस अनुभव से लाभ उठा सकते हैं और बेरोजगारों की सहायता के लिए तत्काल ही कदम उठा सकते हैं। परन्तु वस्तुतः हमारा उद्देश्य देश में अनिवार्य बेरोजगारी बीमा योजना को कार्यान्वित करना होना चाहिए।

हाल ही के कुछ वर्षों में देश में बेरोजगारी के खतरे के बढने के साथ-साथ बेरोजगारी बीमे की समस्या का महत्व भी बढ गया है। इस बात की अत्यधिक आवश्यकता अनुभव की गई है कि समस्या की गम्भीरता को शीघ्र ही आँका जाय और बेरोजगारी काल में जो आर्थिक असुरक्षा की समस्या पैदा होती है उसे भी सुलझाया जाय। इस दिशा में १९५३ के 'औद्योगिक विवाद अधिनियम' में संशोधन करके कुछ कदम उठाए गये हैं जिनके अनुसार बेरोजगारों को बेकारी के समय क्षतिपूर्ति प्रदान करने की व्यवस्था है (पृष्ठ १८४ तथा १८६–८७ देखें)। यह अधिनियम उन खानों और कारखानों में लागू होता है जहाँ ५० या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं। इस अधिनियम को मई १९५४ से बागान में भी लागू कर दिया गया है। मौसमी कारखाने इस अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आते। अधिनियम के अन्तर्गत कर्मचारियों को बेरोजगारी और जबरी छुट्टी (Lay off) के समय में क्षतिपूर्ति देने की व्यवस्था है जो उनकी मूल मजदूरी और महगाई भत्ते का ५०% के हिसाब से होती है। उन बदली श्रमिकों के लिये यह व्यवस्था नहीं है, जिन्होंने पिछले १२ महीनों में २४० या इससे अधिक दिन काम किया है। यह लाभ १२ महीनों में अधिक से अधिक ४५ दिन मिल सकता है, परन्तु यदि कर्मचारी इस अवधि में एक सप्ताह से अधिक एक ही समय में जबरी छुट्टी के लिये विवश किया जाता है तो यह लाभ उसे ४५ दिन के पश्चात् भी मिलता रहेगा। सन् १९६५ में किये गये एक संशोधन के अनुसार, अब प्रथम ४५ दिन के पश्चात् भी क्षतिपूर्ति देय होगी। इस प्रकार के कर्मचारियों को प्रतिदिन अपनी हाजिरी लगवानी पड़ती है और कोई दूसरा उचित काम दिये जाने पर उन्हें उसे स्वीकार करना पड़ता है। छटनी की अवस्था में उन्हें या तो एक माह का लिखित नोटिस दिया जाता है अथवा उसके स्थान पर एक माह की मजदूरी दे दी जाती है। छटनी हुए कर्मचारी को एक साल की नौकरी पर १५ दिन की औसत मजदूरी के हिसाब से क्षतिपूर्ति दी जाती है। ऐसी सुविधाओं को प्रदान करने का उत्तरदायित्व मालिकों पर है। ऐसी सुविधायें केवल उन्हीं श्रमिकों को दी जाती हैं जिन्होंने निरंतर एक वर्ष या इससे अधिक कार्य किया है। जून १९५७ में अधिनियम में एक संशोधन के अनुसार किसी भी उद्योग के उचित बन्द होने या स्वामित्व के

* **Dr. R. Mukerjee**: *The Indian Working Class, Page 348.*

हस्तातरण होने पर भी छटनी क्षतिपूर्ति दी जायगी (पृष्ठ १८६-८७ देखें)। जबरी छुट्टी तथा छटनी के समय इस प्रकार जो सहायता दी जाती है वह किसी बीमा योजना के अन्तर्गत तो नही आती परन्तु फिर भी इस प्रकार की सहायता के कारण बेरोजगारी के दिनो मे श्रमिको को अपनी कठिनाइयाँ कम करने मे बहुत सहायता मिलती है। यह सुझाव दिया जा सकता है कि इस प्रकार के लाभ उन सस्थानो के श्रमिको को भी मिलने चाहिये जिनमे ५० से कम श्रमिक कार्य करते है।

श्रमिको के लिये एक अन्य प्रकार की सुरक्षा १९५९ मे 'कम्पनी अधिनियम' मे सशोधन द्वारा प्रदान की गई है। इस सशोधित अधिनियम मे एक उपबन्ध यह है कि यदि किसी कम्पनी का समापन (Liquidation) हो जाता है तो कम्पनी की परिसम्पत्ति (Assets) मे से श्रमिको का वेतन आदि सर्वप्रथम दिया जायगा। उत्तर प्रदेश मे, उत्तर प्रदेश औद्योगिक उद्यम (बेरोजगारी को रोकने के लिये विशेष उपबन्धो वाला) अधिनियम, १९६६ इस उद्देश्य से लागू किया गया है ताकि उन औद्योगिक उद्यमो के औद्योगिक सम्बन्धो, वित्तिय दायित्वो तथा ऐसे ही अन्य मामलो के सम्बन्ध म अल्पकाल के लिये विशेष उपबन्ध बनाने के लिये राज्य सरकार को अधिकार मिल सके जिनका सचालन बेरोजगारी का रोकने के लिये अथवा बेरोजगारी के विरुद्ध सहायता पहुँचाने के लिय आवश्यक समझा जाय।

१९५४ मे सरकार ने एक कार्य-दल (Working Group) भी बनाया, जिसम श्रम, वित्त, वाणिज्य और उद्योग मन्त्रालयो, आयोजना आयोग और कर्मचारी राज्य बीमा निगम के प्रतिनिधि थे। इस दल का कार्य इस समस्या का प्राथमिक अध्ययन करना और यह देखना था कि बेरोजगारी बीमा योजना किस प्रकार बनाई जा सकती है। कार्य-दल ने अपनी रिपोर्ट मे जो १९५५ मे प्रस्तुत की गई, बेरोजगारी बीमा योजना प्रारम्भ करने का सुझाव दिया था। इस योजना के लिये मालिक और मजदूर दोनो को अपने अशदान प्रीमियम के रूप म देने होगे। इस योजना में इस बात की व्यवस्था थी कि बेरोजगारी के समय मे क्षतिपूर्ति विभिन्न मापक्रम अनुसार दी जाय। इस योजना के लागू होने म औद्योगिक विवाद अधिनियम में जो जबरी छुट्टी और छटनी के लिये उपबन्ध है उन्हे निरस्त (Repeal) करने का सुझाव था। रिपोर्ट मे बेरोजगारी बीमे की वाञ्छनीयता तथा सम्भावना पर भी जोर दिया गया था। सरकार ने इस योजना को इस समय स्वीकार नही किया है, क्योकि वर्तमान विधान मे ही जो श्रमिको की छटनी और जबरी छुट्टी के काल मे क्षतिपूर्ति देने से सम्बन्धित उपबन्ध है वे श्रमिको के लिये अधिक लाभप्रद है। परन्तु इस समस्या पर हमे विस्तृत दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए और बेरोजगारी बीमे की एक व्यापक और अनिवार्य योजना बनाने मे अब अधिक विलम्ब नही करना चाहिए।

एक अन्य महत्वपूर्ण पग जो इस सम्बन्ध मे उठाया गया है वह बेरोजगारी सहायता निधि (Unemployment Relief Fund) स्थापित करने की योजना का है। ऐसी निधि की स्थापना का सुझाव मई १९६८ मे भारतीय श्रम सम्मेलन

के १६ वें अधिवेशन में केन्द्रीय श्रम मन्त्री द्वारा दिया गया था। औद्योगिक संस्थानों के बन्द हो जाने से जो बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हो जाती है, उसको दूर करने के लिये एक निधि की स्थापना करने का सुझाव था। इस निधि में से किसी भी औद्योगिक संस्थान के बन्द हो जाने के कारण बेरोजगार श्रमिकों को न केवल सहायता मिल सकती है वरन् उस औद्योगिक संस्थान को चालू रखने के लिये भी सहायता दी जा सकती है, जो औद्योगिक संस्थान अपने कुशल प्रबन्ध के लिये विख्यात है और जिसे वित्त की कठिनाइयाँ केवल अस्थायी रूप से ही है। यह आशा भी व्यक्त की गई थी कि इस निधि द्वारा कुछ औद्योगिक संस्थानों का अस्थायी रूप से प्रबन्ध संभाल लिया जायेगा, और यदि श्रमिकों को उसी रोजगार में लगे रहने की कोई सम्भावना प्रतीत नहीं होती तो उसी प्रकार के अन्य रोजगारों में प्रशिक्षण पाने के लिये श्रमिकों की सहायता की जायेगी। इस निधि में धन सरकार, मालिक और श्रमिकों के अंशदान से सचय करने का सुझाव था। परन्तु केन्द्रीय श्रम मंत्रालय द्वारा जब इस योजना पर विस्तार से विचार किया गया तो निधि में धन संचय करने के उपायों पर मतभेद हो गया। मालिकों ने ऐसी निधि में अंशदान देने का विरोध किया। परिणाम यह हुआ कि १९६१ में ऐसी लाभप्रद योजना को स्थगित कर दिया गया। परन्तु २७ अप्रैल १९६१ में श्रम मन्त्रियों की एक बैठक में इस प्रश्न को फिर उठाया गया और इस विषय पर एक योजना तैयार करने के लिये महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश और राजस्थान के श्रम मन्त्रियों की एक उप-समिति बनाई गई। तीसरी पंचवर्षीय योजना में भी ऐसे श्रमिकों की सहायता के लिये जिन पर उद्योग के बन्द हो जाने से असर पड़ता है, दो करोड़ रुपये की राशि विनिहित (*allocate*) की गई है। इन श्रम मन्त्रियों की उप-समिति ने जो योजना तैयार की उसके मुख्य लक्षण निम्नलिखित है—(१) कार्य बन्द होने से जिन श्रमिकों पर असर पड़ता है उनको अधिक से अधिक ६ महीने की अवधि के लिये उनकी मूल मजदूरी का ५०% नकदी में क्षतिपूर्ति के रूप में दिया जाय। (२) छटनी किये हुये श्रमिकों को पुन रोजगार में लगाने के लिये तथा पुन प्रशिक्षण की सुविधाओं का उचित प्रबन्ध किया जाय। (३) छटनी किये हुये श्रमिकों और उनके परिवारों को ऐसे स्थानों पर जाने के लिये जहाँ उनको काम मिल गया हो, ऋण-सहायता प्रदान की जाय। (४) कुछ विशिष्ट संस्थानों को जो बन्द हो गये हों, चलाने के लिये श्रमिकों की सहकारी समितियों को केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा सहायता देकर प्रोत्साहित किया जाय। (५) ऐसी औद्योगिक इकाइयों को जो बन्द हो गई हों या जिनके बन्द हो जाने का डर हो, सरकार या अन्य उचित ऐजेन्सी द्वारा अस्थायी प्रबन्ध के लिये अपने हाथ में ले लेना चाहिये। विभिन्न राज्य सरकारों तथा सम्बन्धित मन्त्रालयों ने योजना के इस प्रारूप का अध्ययन व मनन किया परन्तु इस सम्बन्ध में कोई कार्रवाई नहीं की गई।

किन्तु मामले की महत्ता एव तीव्रता को देखते हुए, सामाजिक सुरक्षा विभाग ने, सन् १९६५ मे, बेरोजगारी बीमा योजना का एक अन्य प्रारूप तैयार किया। यह प्रारूप प्रारम्भ मे कर्मचारी निर्वाह निधि तथा कोयला खान निर्वाह निधि के सदस्यो पर लागू होना है। योजना के मसौदे पर दोनो निर्वाह निधियो के ट्रस्टियो के बोर्डो ने और बाद मे अक्तूबर १९६५ मे भारतीय श्रम सम्मेलन ने भी विचार किया। श्रमिको के प्रतिनिधियो ने सिद्धान्त रूप मे सामान्यत मसौदे अथवा प्रारूप का स्वागत किया परन्तु मालिको के प्रतिनिधियो ने योजना का अध्ययन करने के लिए अधिक समय की माँग की। विभिन्न वर्गो द्वारा योजना पर जो टिप्पणियाँ की गईं, उनको दृष्टिगत रखते हुए योजना मे बाद मे कुछ सशोधन किये गये। अन्य देशो मे ऐसी ही योजना के कार्य सचालन म जो अनुभव प्राप्त हुए है उनके सदर्भ मे अब योजना के मसौदे पर विचार किया जा रहा है। योजना के मसौदे मे केवल इस बात की ही व्यवस्था नही की गई है कि दोनो निधियो के सदस्यो का बेरोजगारी की अवधि मे ६ माह की अवधि तक सरक्षण प्रदान किया जाए, अपितु यह भी आश्वासन दिया गया है कि निर्वाह निधि की उनकी सदस्यता का जारी रखा जाए और निधि म सचित उनके धन को वृद्धावस्था के लिए सुरक्षित रखा जाए तथा अन्य व सभी सुविधाए प्रदान की जाएँ जिनके लिए निर्वाह निधि बनाई जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने भी यह वचन दिया है कि वह योजना क मसौद स सम्बन्धित विस्तृत बातो के विषय मे परामर्श देने के लिए एक विशेषज्ञ की सेवाए प्रदान करेगा। श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय के केन्द्रीय मन्त्री श्री जयसुख लाल हाथी ने अभी गतवर्ष (जुलाई १९६७ मे) ही ससद म यह घोषणा की थी कि योजना का शीघ्र ही लागू किया जायेगा।

वृद्धावस्था और निबल सुरक्षा
(Old Age and Invalidity Security)

आवश्यकता

वृद्धावस्था एक दूसरी औद्योगिक और सामाजिक समस्या है जिसका समाधान होना ही चाहिए। यह अत्यन्त आवश्यक है कि श्रमिको के अवकाश प्राप्त करने पर और काम के लिए असमर्थ हो जाने के अवसर पर उन्हे सुरक्षा प्रदान की जाय। यदि मजदूर की मृत्यु हो जाय तब उसके आश्रितो को भी सुरक्षा की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की सुरक्षा की व्यवस्था या तो प्रोवीडेन्ट फण्ड या अवकाश प्राप्ति के धन (Gratuity) की योजनाओ से अथवा वृद्धावस्था व निबल पन्शन योजनाओ से हो सकती है। यह कितने दुख की बात है कि जिस श्रमिक ने अपने जीवन के २० या ३० वर्ष किसी कारखाने मे कठोर श्रम मे व्यतीत किये हो उसे उसके वृद्ध होने पर कोई भी आश्रय न दिया जाय। वृद्धावस्था के लिए कुछ न कुछ व्यवस्था तो करनी चाहिये क्योंकि औद्योगिक जीवन से सयुक्त परिवार प्रथा लगभग समाप्त हो गई है और इस प्रकार वृद्ध व्यक्ति को सयुक्त

परिवार से जो सहारा मिलता था वह भी समाप्त हो गया है। औद्योगिक जीवन में आने से पहले श्रमिक के पास यदि गाँव में कुछ जमीन होती भी है तो अधिक समय व्यतीत हो जाने के बाद वह उसे भी खो बैठता है। श्रमिक की मजदूरी कम होती है, परिवार बड़ा होता है इसलिए यह वृद्धावस्था के लिये कोई बचत भी नही कर पाता। इन तथ्यों को ध्यान मे रखते हुए श्रमिक को प्रोवीडेन्ट फण्ड की सुविधा और जहाँ सम्भव हो वहाँ पेन्शन भी दी जानी चाहिए, जिससे वृद्धावस्था में असमर्थ हो जाने पर और उत्पादन कार्य मे बहुत दिनो तक कठोर श्रम करने के पश्चात् वह अपना शेष जीवन आराम से व्यतीत कर सके। यदि ऐसा नही किया जाता तो श्रमिक सदा इस बात के लिये चिन्तित रहेगा कि वृद्धावस्था मे उसका क्या हाल होगा। इस चिन्ता से कार्य-कुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कई बार ऐसा देखा गया है कि वृद्धावस्था की चिन्ता के कारण कई बार समयोपरि कार्य किया जाता है या हर उचित और अनुचित तरीके से रुपया कमाने का प्रयत्न किया जाता है।

वृद्धावस्था क्या है (What is Old Age)

वृद्धावस्था या तो उस अवस्था को कहा जा सकता है जब मजदूर कार्य करने योग्य नही रहता अथवा जब मजदूर को वेतन सहित अन्तिम अवकाश दे दिया जाता है। अर्थशास्त्री वृद्धावस्था उस अवस्था को कहते है जब मजदूर को रोजगार से अवकाश दे दिया जाना चाहिये क्योकि वह और अधिक दिनो तक उत्पत्ति के कार्य मे साधारण रूप से प्रभावोत्पादक (Effective) सहयोग नही दे सकता। श्रमिक तथा साथ ही डाक्टरी दृष्टिकोण के आधार पर वृद्धावस्था भी निबलता अर्थात् आयु के बढ़ने के साथ साथ स्वास्थ्य के बिगड़ने की दशा है। इसलिये वृद्धावस्था विभिन्न व्यवसायो मे विभिन्न व्यक्तियों मे अलग-अलग आयु पर आरम्भ हो सकती है। साधारणत अधिकतर देशो मे पेन्शन देने की आयु ६५ वर्ष निश्चित की गई है। इस तथ्य को भी ध्यान मे रखा गया है कि स्त्रियाँ कम आयु मे ही काम के अयोग्य हो जाती है, इसलिये उनके लिये पेन्शन देने की आयु ६० वर्ष निर्धारित की गई है। भारत मे साधारणतया अवकाश ग्रहण करने की आयु ६० वर्ष मानी गई है। सरकारी नौकरियो मे यह आयु ५५ वर्ष थी जिसे अब बढ़ाकर ५८ वर्ष कर दिया गया है।

निबलता क्या है ? (What is Invalidity ?)

जब एक बीमा कराए हुये व्यक्ति को स्वास्थ्य बीमा योजना के अन्तर्गत वे सब नकद लाभ दिये जा चुकते है जिनको वह पाने का अधिकारी होता है और उसके पश्चात् भी यदि वह बीमार रहता है उस दशा मे उसे निबल (Invalid) कहा जाता है। इसलिए निबलता की परिभाषा हम इस प्रकार कर सकते है कि "काम करने की स्थायी असक्तता ही निबलता है।" अतः यह भी ऐसी ही

अवस्था होती है जैसी वृद्धावस्था क्योकि दोनो मे श्रमिक कार्य करने योग्य नही रहता।

पेन्शन की व्यवस्था

वृद्धावस्था और निबलता की दशा मे लाभ या तो अशदान वाल प्राविडेन्ट फण्ड के रूप म दिया जा सकता है या अशदानरहित पन्शन अथवा प शन अथवा पेन्शन बीमा के रूप म लाभ दिये जा सक्ते है। अशदानरहित पन्शन अनेक दशो म अपनाई गई है जैसे—डनमाक आस्ट्रेलिया कनाडा दक्षिण अफ्रीका। भारत म सरकारी कमचारियो का पेन्शन दी जाती है। कुछ अन्य मालिक और एजन्सिया भी अपन मजदूरो का निबलता पेन्शन देती है। परन्तु साधारणत अनेक दशो मे अशदानरहित पेन्शन योजनाओ को सामाजिक बीमे की योजनाओ क कार्योन्वित हो जाने के कारण अधिक महत्व नही दिया गया और अशदानरहित योजनाओ के स्थान पर अशदान वाली याजनाओ को लागू किया गया है। पेन्शन बीमा योजना के अन्तगत वृद्धावस्था और निबलता आती है। यह जमनी ब्रिटन आदि अनक देशो म लागू हो चुकी है। पन्शन बीमे के अन्तगत वृद्धावस्था और निबलता व अकाल मृत्यु भी सम्मिलित की जाती है जो एसी अवस्थाय है जिनके लिय श्रमिक क्षतिपूर्ति के अन्तगत भी सहायता नही मिलती। इन सभी सकटो के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि जो लाभ और सहायता दी जाये उनकी गणना वर्षो के हिसाब से की जाय। अत इनके लिए एक लम्बी नौकरी की शत लागू की जाती है जिसकी अवधि २० वष भी हो सकती है। इस प्रकार पन्शन बीमा सामाजिक बीमा का वह अग है जिसकी लागत सबसे अधिक होती है। सामाजिक बीमा प्रणाली के विकास मे यह काफी समय पश्चात लागू होती है।

निबलता की दशा मे यह निणय करना बहुत कठिन हो जाता है कि कोई व्यक्ति किसी प्रकार के काम के लिय योग्य या उपयुक्त है अथवा नही और कितनी अशक्तता होन पर पेन्शन दी जानी चाहिये। यह निणय भी कठिन होता है कि किन व्यवसायो अथवा व्यवसायो की श्रेणियो के आधार पर अशक्तता की माप की जाए।

अत एसी व्यवहारिक कठिनाइयो के कारण इस समय भारत के औद्योगिक श्रमिको के लिये कोई पेन्शन बीमा योजना बनाना सम्भव नही है और उस समय तक सम्भव भी नही होगा जब तक कोई एसी पूण सामाजिक सुरक्षा योजना लागू नहीं हो जाती जिसके फलस्वरूप सारे सकटो से सुरक्षा की व्यवस्था हो। परन्तु इसम कोई सदेह नही कि हमारे देश मे इस प्रकार की सहायता की बहुत अधिक आवश्यकता है।

वर्तमान समय मे प्रॉविडेन्ट फण्ड

पेन्शन और अवकाश प्राप्त धन की व्यवस्था

हमारे देश म वृद्धावस्था के लिये किसी न किसी प्रकार की व्यवस्था की

सदैव ही आवश्यकता रही है। इस समस्या की ओर रॉयल-श्रम आयोग और अनेक श्रम जाँच समितियों का ध्यान आकर्षित हुआ था। परन्तु उनमें से किसी ने भी वृद्धावस्था पेन्शन बीमे की सिफारिश नहीं की। १९३४ में भारत सरकार ने १९३३ के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सम्मेलन के उस अभिसमय को मान्यता प्रदान करने में भी अपनी असमर्थता प्रकट की, जो अभिसमय निबलता, वृद्धावस्था, वैधव्य और अनाथों के अनिवार्य बीमे से सम्बन्धित था। सरकार के इस निर्णय का मुख्य आधार प्रशासन तथा वित्त की कठिनाइयाँ थीं क्योंकि भारत जैसे देश में यदि इस प्रकार के अभिसमय को लागू कर दिया जाय तो लाभ प्राप्त करने वालों की संख्या लगभग ४ करोड़ होगी, जिनमें—वृद्ध, असमर्थ, विधवायें और अनाथ बच्चे आदि सब ही सम्मिलित होंगे।

इस समय औद्योगिक श्रमिकों के लिये सरकारी कारखानों और रेलवे में वृद्धावस्था पेन्शन या प्रॉविडेन्ट फण्ड योजनायें चालू हैं। भारत में अनेक मालिकों ने भी अपने श्रमिकों की वृद्धावस्था के लिये प्रॉविडेन्ट फण्ड और अवकाश प्राप्ति के समय कुछ लाभों को प्रदान करने की व्यवस्था की है। इस प्रकार के प्रॉविडेन्ट फण्ड स्थापित करने के लिये और उनको अच्छी तरह चलाते रहने के लिये करों में छूट आदि देकर उत्साहित किया जाता है परन्तु फण्ड के लिये अनेक निर्धारित शर्तों को पूरा करना आवश्यक होता है। १९२५ के प्रॉविडेन्ट फण्ड अधिनियम, जिसमें संशोधन भी हो चुका है, रेलवे और राजकीय प्रॉविडेन्ट फण्डों में लागू होता है और १९२२ का भारतीय आय कर अधिनियम (Indian Income Tax Act) जिसमें भी संशोधन हो चुका है, उन कम्पनी निधियों पर लागू होता है जिनको आय कर से विशेष छूट मिली हुई है। उनके प्रॉविडेण्ट फण्ड में दिये गये अंशदानों पर आय-कर नहीं लिया जाता।

नागपुर की एम्प्रैस मिलों में अंशदान वाली प्रॉविडेन्ट फण्ड योजना चालू रही है और इसके साथ ही एक पेन्शन योजना भी है जिसके अन्तर्गत वृद्ध मजदूरों को पेन्शन दी जाती है। "दिल्ली क्लोथ एण्ड जनरल मिल्स" में भी श्रमिकों के लिये वृद्धावस्था पेन्शन, अवकाश धन तथा प्रॉविडेन्ट फण्ड योजनायें चालू रही हैं। मद्रास की बकिंघम एण्ड कर्नाटिक मिल्स में भी श्रमिक एक साल से अधिक समय तक काम करने पर प्रॉविडेन्ट फण्ड योजना का सदस्य बन सकता था। इस फण्ड में मजदूर और मालिक, महँगाई भत्ते को छोड़कर, मजदूर के वेतन का ७½ प्रतिशत अंशदान के रूप में देते थे। मदुरा की मदुरा मिल्स कम्पनी भी अपने उन मजदूरों को, जिन्होंने ३० वर्ष से अधिक कार्य किया है, पेन्शन देती थी। इस पेन्शन की राशि मजदूर के मासिक वेतन से आधी होती थी और इसके साथ सामान्य रूप से १० रुपए महँगाई भत्ता भी दिया जाता था। ये मिल अवकाश प्राप्ति का धन भी देती है। इञ्जीनियरिंग उद्योग में, विशेषकर उन फर्मों में, जो भारतीय इञ्जीनियरिंग परिषद् की सदस्य हैं और जहाँ १०० या इससे अधिक मजदूर काम करते हैं, अनिवार्य अंशदान वाली प्रॉविडेन्ट फण्ड योजना को अपनाया गया था। जिन फर्मों

१९५२ का कर्मचारी प्रॉविडेन्ट फण्ड अधिनियम
(The Employees Provident Fund Act, 1952)

उपरोक्त व्यवस्था के होते हुये भी भारत में सदैव ही औद्योगिक मजदूरों के लिये अनिवार्य प्रॉविडेन्ट फण्ड योजनाओं की आवश्यकता रही है। दीवान चमनलाल और श्री एन० एम० जोशी ने रॉयल श्रम आयोग की रिपोर्ट में असहमति का नोट देते हुये कहा था कि औद्योगीकरण के साथ-साथ संयुक्त परिवार प्रथा टूटती जा रही थी और अवकाश प्राप्त वृद्ध मजदूरों को भुखमरी और मृत्यु से बचाने के लिये प्रॉविडेन्ट फण्ड जैसी कुछ व्यवस्था करना बहुत आवश्यक था। १९३४ और १९३८ में कानपुर और बम्बई की श्रम जांच समितियों ने भी इस विचार का समर्थन किया। १९४८ के श्रम मन्त्री सम्मेलन में इस विषय पर पुनः विचार-विमर्श किया गया। १९४७ में इस प्रश्न पर फिर से विचार किया गया और इसके पश्चात् तो भारतीय श्रम-सम्मेलनों व स्थायी श्रम समिति और कुछ औद्योगिक समितियों ने भी अनेक बार वैधानिक रूप से एक प्रॉविडेण्ट फण्ड योजना चालू करने के लिये जोर दिया। १९४८ में एक गैर-सरकारी सदस्य ने तो संविधान सभा (Constituent Assembly) में इस विषय पर एक विधेयक भी प्रस्तुत किया परन्तु वह सरकार के यह आश्वासन देने के कारण वापिस ले लिया गया कि सरकार स्वयं ही इस प्रकार के कदम भविष्य में उठाने वाली है। इन सब बातों के परिणामस्वरूप केन्द्रीय सरकार ने १५ नवम्बर १९५१ को इस विषय पर एक अध्यादेश जारी किया। इसको मार्च १९५२ में एक कर्मचारी प्रॉविडेन्ट फण्ड अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया। अधिनियम के अन्तर्गत प्रॉविडेन्ट फण्ड योजना की रचना की गई और १ नवम्बर १९५२ से अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले कारखानों में प्रॉविडेन्ट फण्ड के लिये धन एकत्रित करना प्रारम्भ कर दिया गया।

सर्वप्रथम यह अधिनियम छः बड़े उद्योगों, अर्थात् सीमेंट, सिगरेट, इन्जीनियरिंग के उत्पादन (बिजली सम्बन्धी यन्त्र या सामान), लोहा और इस्पात, कागज और सूती कपड़ा (सम्पूर्ण सूती या जूट व सिल्क से मिला कर बना हुआ, चाहे वह प्राकृतिक हो या कृत्रिम) के ऐसे कारखानों पर लागू किया गया, जहाँ ५० या इससे अधिक कर्मचारी कार्य करते हों। केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार दे दिया गया है कि सूचना द्वारा इस अधिनियम को वह दूसरे उद्योगों पर भी लागू कर सकती है और उपरोक्त ६ बड़े उद्योगों के उन कारखानों पर भी लागू कर सकती है जहाँ काम करने वाले श्रमिकों की संख्या ५० से कम है। अधिनियम को किसी भी उस कारखाने पर लागू किया जा सकता है जहाँ मालिक और अधिकांश श्रमिक इस अधिनियम को अपनाना चाहते हों। नई व्यवसायिक संस्थाओं को कुछ रियायतें दे दी गई हैं, अर्थात् ३ वर्ष तक यह अधिनियम उन पर लागू नहीं होगा। जिन संस्थाओं को बने हुए तीन वर्ष से भी कम समय हुआ

कर्मचारी अब ८$\frac{1}{3}$ प्रतिशत अंशदान दे सकते हैं। सन् १९६१ से, योजना में संशोधन किया गया ताकि चीनी तथा अन्य मौसमी फैक्टरियों में सामान्यत अदा किये जाने वाले "प्रतिधारण भत्ते" (Retaining Allowance) पर किये जाने वाले अंशदान को घटाये जाने की व्यवस्था की जा सके।

नवम्बर १९६२ में अधिनियम मे फिर संशोधन किया गया जिसके अनुसार, केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार दिया गया कि वह अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले किसी भी औद्योगिक सस्थान में जाँच के पश्चात् अशदान की दर ६$\frac{1}{4}$ प्रतिशत से ८ प्रतिशत तक बढ़ा सकती है। अशदान की दर ६$\frac{1}{4}$ प्रतिशत से ८$\frac{1}{3}$ प्रतिशत तक बढाने का प्रश्न पिछले कुछ समय से ध्यान आकर्षित करता रहा है। मई १९६० में, श्री एम० आर० मेहर की अध्यक्षता मे एक तकनीकी समिति बनाई गई जिससे इस बात का पता लगाने को कहा गया कि अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले प्रारम्भिक छ उद्योगो में से कौन-कौन बढी हुई दरो का भार उठा सकते हैं। समिति की सिफारिशो के परिणामस्वरूप, नवम्बर १९६२ में अधिनियम में सशोधन किया गया और १ जनवरी १९६३ से, प्रथम ४ उद्योगो अर्थात् सिगरेट, इजीनियरिंग (विद्युत्, यान्त्रिक या सामान्य), लोहा व इस्पात तथा कागज मे अशदान की दर ६$\frac{1}{4}$ प्रतिशत से बढाकर ८ प्रतिशत कर दी गई। यह बढी हुई दर उद्योगो के केवल उन सस्थानों पर लागू होती है जहाँ ५० या इससे अधिक श्रमिक काम करते है। जनवरी १९६७ के अन्त तक, अशदान की बढी हुई ८ प्रतिशत की दर ५४ उद्योगो पर लागू हो चुकी थी।

नवम्बर १९६३ में, अधिनियम मे फिर सशोधन किया गया। इस सशोधन मे अन्य बातो के साथ निम्न व्यवस्थाएँ की गई – (१) अधिनियम के लाभ उन श्रमिकों को भी प्रदान किये जाने लगे जो ठेकेदारो द्वारा काम पर लगाये जाते हैं। मालिक इनके लिए अशदान ठेकेदारों से वसूल कर सकता है, (२) कई प्रकार के कर्मचारियों का प्रॉविडेन्ट फण्ड कुर्क नही किया जा सकता, (३) कुछ किस्म के अधिकारियो की भर्ती की जाने लगी, (४) स्वय अधिनियम मे उल्लिखित केन्द्रीय न्यासी बोर्ड (Central Board of Trustees) के निर्माण के सम्बन्ध मे उपबन्ध सशोधित अधिनियम में सम्मिलित किये गये, (५) निर्वाह निधि कमिश्नरों को निर्वाह निधि की दर निर्धारित करने का अधिकार दिया गया और निरीक्षको को अधिनियम लागू करने के लिए तलाशी व जब्ती के अधिकार दिये गये, (६) योजना से छूट पाने के सभी नियमो मे समानता ला दी गई, और (७) इस बात की भी व्यवस्था की गई कि यदि श्रमिक एक निर्वाह निधि को छोड कर अन्य निर्वाह निधि में सम्मिलित हो जाता है तो उसकी निर्वाह निधि की राशि को हस्तान्तरित कर दिया जाए।

प्रॉवीडेन्ट फण्ड मे सदस्यो की जो राशि होती है, उनको सदस्यो के ऋण या किसी दायित्व के कारण कुर्की से बचाने के लिए भी अधिनियम मे कुछ उपबन्ध

हैं। इस बात की भी व्यवस्था है कि मालिक अपना अशदान देने के कारण श्रमिकों की मजदूरी में से कटौती न कर ले। जीवन-बीमा पॉलिसी के भुगतान के लिए फण्ड में से धन निकाला जा सकता है। १९५९ में एक संशोधन के अनुसार, श्रमिक अपनी या अपने परिवार के किसी सदस्य की लम्बी और गम्भीर बीमारी के लिए भी फण्ड में से रुपया निकाल सकता था। परन्तु यह सुविधा इसका दुरुपयोग करने के कारण तथा कर्मचारी राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत चिकित्सा मिलने के कारण २० जनवरी १९६२ से समाप्त कर दी गई। किन्तु सन् १९६४ से, ऐसे सदस्यों को बीमारी के लिए अग्रिम धन प्राप्त करने की छूट दे दी गई है जिन्हें कर्मचारी राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत डाक्टरी चिकित्सा तो उपलब्ध है पर नकद लाभ नहीं प्राप्त हो रहे है। अप्रैल १९६० से सरकार की आवास योजनाओं के अन्तर्गत मकान बनाने या खरीदने के लिए भी श्रमिक फण्ड से रुपया निकाल सकता है और यह रुपया उसे फण्ड को वापिस भी नहीं देना पड़ता। प्राविडेन्ट फण्ड कमिश्नर को यह अधिकार है कि वह विशेष परिस्थितियों में जबकि कोई संस्था ३० दिन से ज्यादा बन्द रहे (हड़ताल या तालाबन्दी को छोड़कर) तो प्रॉवीडेन्ट फण्ड में से कुछ राशि श्रमिकों को दे दे। दिसम्बर १९६२ से उपभोक्ता सहकारी समिति के हिस्से खरीदने के लिए भी ३० रुपय तक की राशि प्रॉवीडेन्ट फण्ड में से मिल सकती है। किसी श्रमिक-विशेष की छटनी हो जाने की स्थिति में भी अन्तिम रूप से निर्वाह निधि की राशि निकालने के लिए अग्रिम धन लेने की छूट दी गई है। जिन स्थानों पर प्रावीडेन्ट फण्ड योजनाएँ पहले ही से अच्छा कार्य कर रही है और वर्तमान योजना के समान ही या अधिक लाभदायक शर्तें प्रदान कर रही है, वह उसी प्रकार चालू रहेंगी और वहाँ यह अधिनियम लागू नहीं होगा, परन्तु मजदूरों के हितार्थ एसे स्थानों पर कुछ शर्तें लागू कर दी गई हैं। सितम्बर १९६५ में एसे छूट पाये हुए संस्थानों की संख्या १९०८ थी। श्रमिकों के किसी भी वर्ग को इस बात की भी सुविधा दी गई है कि अगर उस वर्ग के अधिकांश व्यक्ति चाहे तो इस अधिनियम से छूट (Exemption) ले सकते हैं, यदि इनको सयुक्त या पृथक् पृथक रूप से ऐसे लाभ मिल रहे हो जो अधिनियम के अन्तर्गत लाभो के बराबर है या उनसे अधिक है। कोई भी व्यक्ति किसी भी फैक्टरी के द्वारा चालू प्रावीडेन्ट फण्ड योजना का सदस्य बना रह सकता है, यदि ऐसे फण्ड को भारतीय आय-कर अधिनियम द्वारा मान्यता प्राप्त है और वह कुछ आवश्यक शर्तों को भी पूरा करता है।

इस योजना के अन्तर्गत आरम्भ में वे सभी कर्मचारी आ जाते थे (उन उद्योगों में जहाँ यह अधिनियम लागू होता है), जिन्होंने निरन्तर एक वर्ष (२४० दिन) कार्य किया हो, और जिनकी मूल मजदूरी ३०० रुपये प्रतिमाह से अधिक न हो और जो ठेकेदारों द्वारा कार्य पर न लगाये गये हों अथवा काम सीखने के लिये भर्ती न किये गये हों। ३१ मई १९५७ से पात्रता के लिये ३०० रुपये तक की सीमा बढ़ाकर ५०० रुपये प्रति माह कर दी गई और १९६२ में यह सीमा अब १,००० रुपये

प्रतिमाह कर दी गई है। १९५८ में एक दूसरे संशोधन के अनुसार जो मजदूर ठेकेदारो द्वारा किसी निर्माण-कार्य के लिये कारखाने मे भर्ती कराये जाते है, वे तथा शिक्षार्थी भी अब इस योजना के अन्तर्गत आ जाते है। इस योजना के क्षेत्र को और विस्तृत करके उन कर्मचारियो पर भी लागू कर दिया गया है जो उस सस्थान में, जहाँ यह अधिनियम लागू होता है, कार्य के लिये नौकर तो है परन्तु सस्थान से बाहर रहकर कार्य करते है। इसी प्रकार उन कर्मचारियो पर भी अधिनियम लागू हो सकता है जिनका मासिक वेतन निश्चित सीमा से अधिक है परन्तु जो अपने मालिको की अनुमति से प्रॉवीडेन्ट फण्ड के सदस्य होना चाहते है। सशोधन में 'निरन्तर कार्य' की भी स्पष्ट रूप मे परिभाषा कर दी गई है। कोई भी मजदूर जिसने पिछले एक वर्ष मे २४० दिन कार्य किया है, प्रॉवीडेन्ट फण्ड का सदस्य हो सकता है। मशीन टूटने या कच्चे माल की कमी के कारण जब श्रमिक जबरी छुट्टी पर होता है अथवा जब महिला श्रमिक मातृत्व-कालीन छुट्टी पर होती है, तब यह छुट्टी के दिन कार्य पर उपस्थिति के दिन माने जायेगे। कानूनी हड़ताल, अधिकृत छुट्टियाँ, बीमारी, दुर्घटना आदि के अवसरो को भी नौकरी मे विघ्न पडना नही समझा जायेगा। कुछ और छूट देकर अब यह व्यवस्था कर दी है कि जिन श्रमिको की नौकरी १ वर्ष से कम की अवधि में २४० दिन है वह भी फण्ड के सदस्य हो सकते है।

प्रॉवीडेन्ट फण्ड के लिये जो अशदान दिये जाते है, वे एक लेखे मे जमा किये जाते है जिसे 'प्रॉवीडेन्ट फण्ड लेखा' कहा जाता है। ये प्रति सप्ताह केन्द्रीय सरकार की प्रतिभूतियो (Securities) मे रिजर्व बैंक द्वारा निवेष (Invest) कर दिये जाते है। इन पर सन् १९६६–६७ मे ४·७५ प्रतिशत ब्याज दिया जा रहा था। अब सुरक्षा योजना निधि मे भी ऐसा किया जाता है। मालिको को प्रशासन व्यय के लिये अशदानो का ३ प्रतिशत और देना होता है। जिन सस्थानो को छूट दी गई है उनको भी प्रशासन व्यय का ½ प्रतिशत देना होता है। अब जो दरे निश्चित की गई है वे छूट प्राप्त करने वाले तथा छूट न प्राप्त करने वाले सस्थानो के लिए क्रमश ० ९% तथा ०·३७% है (और जहाँ अंशदान की दरें ८% है, वहाँ ये दरे क्रमश ० ६% तथा २ ४ प्रतिशत हैं)। १९५७ तक मालिको के अंशदान का पूर्ण भुगतान २० वर्ष की सदस्यता के बाद हो सकता था और ५ वर्ष से कम समय तक काम करने पर मालिको के हिस्से का भाग नही दिया जाता था, परन्तु पेन्शन के योग्य वृद्धावस्था हो जाने पर ये नियम लागू नही होते थे। १९५७ में इस योजना में सशोधन किया गया जिसके अनुसार सदस्यता समाप्ति पर मालिको के अंशदान की राशि मिलने की शर्तों को उदार कर दिया गया है। अब कोई भी अंशदान देने वाला व्यक्ति १५ वर्ष तक सदस्य रहने पर मालिको का कुल अशदान और उसका ब्याज पा सकता है। यदि वह १० वर्ष से १५ वर्ष तक सदस्य रहा है तो उसे मालिकों के अंशदान का ८५ प्रतिशत भाग मिल जायेगा; ५ साल से

१० साल तक सदस्य रहने पर ७५ प्रतिशत, ३ वर्ष से ५ वर्ष तक सदस्य रहने पर ५० प्रतिशत और ३ वर्ष के कम समय तक सदस्य रहने पर २५ प्रतिशत भाग मिलेगा। स्वयं मजदूर का अंशदान हर हालत में ब्याज सहित वापिस दिया जायेगा। मृत्यु होने पर (श्रमिक के कानूनी उत्तराधिकारी को या जिसे वह नामित करे) तथा श्रमिक की स्थायी असमर्थता होने पर या पूरी आयु प्राप्त होने पर या छटनी पर या किसी अन्य संस्था मे तबादला होने पर या स्थायी रूप से बसने के लिये किसी अन्य देश मे चले जाने पर या ऐसे श्रमिकों को जो क्षय रोग या कोढ से पीडित हैं, पूरी राशि दी जायेगी। अलग होने वाले श्रमिकों को सभी धनराशियाँ एकमुश्त रकम के रूप में दी जाती है। मालिकों के अंशदान का भाग, जो कि सदस्यों को अदा नही किया जाता, एक अलग खाते मे रखा जाता है जिसे आरक्षण तथा अपवर्तन खाता (Reserve and Forfeiture A/c) कहा जाता है। जनवरी १९६७ के अन्त तक इस प्रकार जब्त की हुई कुल धनराशि ३०१ ३६ लाख रुपय थी।

प्रॉवीडेन्ट फण्ड के कार्यांग अधिकारी कमिश्नर होते है जिनमे से एक कमिश्नर केन्द्र मे तथा एक एक प्रत्येक राज्य मे होता है। इस समय क्षेत्रीय कमिश्नरो की नियुक्ति की गई है और उनको प्रॉवीडेन्ट फण्ड की सदस्यता से सम्बन्धित विवादो को तय करने का अधिकार दिया गया है। अंशदान न देने वालो को दण्ड देने के लिये निरीक्षको की नियुक्ति की गई है। मालिकों को प्रत्येक मजदूर के लिये एक अंशदान कार्ड रखना होता है जिसमे प्रत्येक मजदूर का मासिक अंशदान अंकित किया जाता है। इस कार्ड का निरीक्षण कभी भी किया जा सकता है। इस समय यह योजना एक केन्द्रीय न्यासी बोर्ड (Board of Trustees) की सहायता से केन्द्रीय सरकार के निरीक्षण मे चल रही है, परन्तु इसका विकेन्द्रीयकरण कर देने के प्रस्ताव पर विचार किया जा रहा है और यह आशा की जाती है कि कुछ ही समय के पश्चात् इसका प्रशासन राज्य सरकारो द्वारा होने लगेगा। योजना की कार्यान्विति के उद्देश्य से सारे देश को २० क्षेत्रो मे विभाजित किया गया है जिनमे क्षेत्रीय कार्यालय हैं। क्षेत्रीय समितियाँ भी कई राज्यो मे बनाई गई हैं। अधिनियम में इस बात की भी व्यवस्था है कि अंशदान के बकाया (Arrears) की वसूली (Recovery) उसी प्रकार की जा सकती है जिस प्रकार मालगुजारी की वसूली की जाती है और बाकी दार मालिको से हर्जाना भी वसूल किया जा सकता है। दिसम्बर १९६१ से योजना मे संशोधन करके इस बात की भी व्यवस्था कर दी गई है कि मालिक किसी भी संस्था के स्वामित्व के सम्बन्ध मे या इस बदलन की या इसी प्रकार की अन्य परिवर्तन की उचित प्राधिकारी को सूचना दगे।

सितम्बर १९६० से एक विशेष आरक्षित निधि (Special Reserve Fund) की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य समय पूरा होने पर प्रॉवीडेन्ट फण्ड

के सदस्यों या उनके वारिसों या नामित व्यक्तियों को उस दशा में भुगतान देना होता है, जब प्रॉवीडेन्ट फण्ड का अंशदान श्रमिकों के वेतन से काट तो लिया जाता है परन्तु मालिकों द्वारा कुल राशि को, अपने अंशदान सहित, पूर्णरूप से जमा नहीं किया जाता या केवल आंशिक रूप से जमा किया जाता है। बकाया राशि मालिकों से वसूल की जाती है। जो राशि आरक्षण और अपवर्तन खाते में पड़ी हुई है उसका उपयोग अब इस कार्य के लिए किया जा रहा है। विशेष आरक्षित निधि में प्रारम्भ में २० लाख रुपये रखे गये थे और जनवरी १९६७ के अन्त तक, ७५ लाख रुपये की कुल धनराशि आरक्षित तथा अपवर्तन खाते में से इस निधि में को स्थानान्तरित की जा चुकी थी। जनवरी १९६७ के अन्त तक, इसमें से ७०.४२ लाख रुपये सदस्यों को अदा किये जा चुके थे और २६.१२ लाख रुपये शेष थे। १० मार्च १९६५ से, अलग होने वाले सदस्यों, उनके वारिसों या नामांकित व्यक्तियों को कर्मचारियों का केवल वह अंशदान जमा किया जा रहा है जो कि मालिकों द्वारा निधि में जमा नहीं किया जाता। मालिकों के अंशदान की राशि मालिकों से प्राप्त होने पर ही अदा की जाती है।

जनवरी १९६४ से एक निधन सहायता निधि (Death Relief Fund) की स्थापना की गई है। इसका उद्देश्य यह है कि श्रमिक की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी को या उसके नामित किये हुये व्यक्ति को कम से कम ५०० रुपये मिल जाएँ, यदि श्रमिक का मासिक वेतन ५०० रुपये से अधिक नहीं है। इस निधि केलिए भी आरक्षण और अपवर्तन खाते (Reserve and Forfeiture Account) में जमा राशि का उपयोग किया जा रहा है और इसमें से १० लाख रुपये की राशि निधन सहायता निधि में हस्तान्तरित की गई है। जनवरी १९६७ तक इसमें से १८.३७ लाख रुपये मृतक श्रमिकों के उत्तराधिकारियों और नामित व्यक्तियों को दिये जा चुके थे।

'बेवारसी जमा खाते' (Unclaimed Deposit Account) के नाम से एक नया खाता बनाया गया है जिसमें अवकाश-मजदूरी के अवशिष्ट शेष से सम्बन्धित रकम, वेतन की बकाया रकम तथा बकाया अंशदान की किश्तों की वह रकम जमा की जायेगी जो मालिकों से इसलिए प्राप्त होती है क्योंकि वे सदस्यों का नवीनतम पता ज्ञात न होने के कारण उन्हें भेज नहीं पाते। इसी प्रकार, ऐसी संचित रकमें भी इस खाते में स्थानान्तरित कर दी जाती हैं जो ऐसे सदस्यों से सम्बन्धित होती हैं जो अब काम में नहीं लगे हैं या जो मर गये हैं। इसके अतिरिक्त, निर्वाह निधि की जो देय रकमें श्रमिक के पते पर भेज दी जाती हैं किन्तु वापिस लौट आती हैं, वे भी इसी खाते में डाल दी जाती हैं।

प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना का विस्तार

जिन उद्योगों पर योजना १९६६–६७ तक लागू हो रही थी वे अग्रलिखित हैं—

योजना लागू होने की तिथि	उद्योग
१ नवम्बर १९५२	(१) सीमेंट (२) सिगरेट, (३) इजीनियरिंग के उत्पादन (बिजली सम्बधी यन्त्र या सामान) (४) लोहा और इस्पात (५) कागज (६) कपड़ा (सूती रेशमी या जूट का)।
३१ जुलाई १९५६	(७) खान वाले तेल और चर्बी (८) चीनी (९) रबर और रबर की चीज (१०) विद्युत जिसम बिजली उत्पादन प्रसारण और वितरण भी सम्मिलित है (११) चाय (असम को छोडकर जहा सरकार न बागान और चाय उद्योग के लिए एक पृथक प्राविड ट फण्ड योजना बनाइ है (१२) छपाई और उसम सम्बधित उद्योग (१३) पत्थर के नल (१४) सफाई और स्वच्छता का सामान (१५) विद्युत प्रभालीन के ऊँचे और नीचे तनाव वाले इ सूलेटर (१६) किरण सम्बधी यन्त्र (१) खपरल (१८) दिया सलाइ (१९) काच (२०) भारी और शुद्ध रसायन जिसम आक्सीजन एसटेलीन और कार्बन डाइ आक्साइड गैस भी सम्मिलित है (२१) नील (२२) लाख जिसम चपडा भी सम्मिलित है (२३) न खाये जाने वाल वनस्पति तेल पशुओ के तेल और चर्बी।
१ दिसम्बर १९५६	(२४) समाचार पत्र सस्था
३१ जनवरी १९५७	(२५) खनिज तेल को शुद्ध करन वाले कारखान
३० अप्रल १९५७	(२६) चाय बागान (असम को छोडकर) (२७) कॉफी बागान (२८) रबर बागान (२९) इलायची बागान तथा सम्मिलित बागान (३०) काली मिर्च के बागान।
३० नवम्बर १९५७	(३१) कच्चे लोहे की खान (३२) मगनीज की खानें (३३) चन पत्थर की खान (३४) सोन की खान (३५) औद्योगिक और चालक मद्यसार (३६) सीमेंट की अदाह चादर (३७) कॉफी के कारखान।
३० अप्रैल १९५८	(३८) बिस्कुट बनान के उद्योग जिनके साथ डबलरोटी मिठाई दूध का पाउडर आदि उद्योग भी सम्मिलित है।
३० अप्रैल, १९५९	(३९) सडक मोटर यातायात सस्थायें।
३१ मइ १९६०	(४०) अभ्रक के कारखान (४१) अभ्रक की खान।

योजना लागू होने की तिथि	उद्योग
३० जून, १९६०	(४२) चीड की लकड़ी के कारखाने, (४३) मोटरो आदि की मरम्मत और सफाई आदि के कारखाने।
३० नवम्बर, १९६०	(४४) चीनी मिलों द्वारा अधिकृत गन्ने के फार्म
३१ दिसम्बर १९६०	(४५) चावल की मिले, (४६) दाल की मिलें, (४७) आटे की मिलें।
३१ मई, १९६१	(४८) कलफ उद्योग।
३० जून, १९६१	(४९) होटल, (५०) जलपान-गृह, (५१) पैंट्रोल और प्राकृतिक गैस उद्योग जिनमे इनका इकट्ठा करना अथवा वितरण या ले जाना भी सम्मिलित है, (५२) पैंट्रोल और प्राकृतिक गैस की खोज से सम्मिलित उद्योग, (५३) पैंट्रोल तथा प्राकृतिक गैस परिष्करण से सम्बन्धित उद्योग।
३१ जुलाई, १९६१	(५४) सिनेमा उद्योग जिनमे थियटर भी सम्मिलित है, (५५) फिल्म स्टूडियो, (५६) फिल्म निर्माण केन्द्र, (५७) फिल्मों की वितरण सम्बन्धी संस्थायें, (५८) फिल्मो के धोने से सम्बन्धित प्रयोगशालायें।
३१ अगस्त, १९६१	(५९) नमडा और नमडे की वस्तुओ का उद्योग।
३० नवम्बर, १९६१	(६०) चिकने पत्थर के मर्तबान, (६१) चीनी के बर्तन।
३१ दिसम्बर, १९६१	(६२) गन्ने के ऐसे फार्म जो चीनी मिल-मालिको के द्वारा चलाये जाते है।
३० अप्रैल, १९६२	(६३) व्यापार और वाणिज्य संस्थाये जिनमे वस्तुओ का क्रय-विक्रय, सचय, आयात-निर्यात, विज्ञापन आढतिये, विनिमय बाजार आदि सभी सम्मिलित है परन्तु बैंक और राज्य अधिनियम द्वारा स्थापित गोदाम सम्मिलित नहीं है।
३० जून, १९६२	(६४) फल और सब्जी आरक्षण उद्योग।
३० सितम्बर, १९६२	(६५) काजू उद्योग।
३१ अक्टूबर, १९६२	(६६) ऐसे संस्थान जो लकड़ी की सफाई आदि मे सलग्न है। इनमें तख्ता, डाट, लकड़ी की मेज, कुर्सी, लकड़ी का

योजना लागू होने की तिथि	उद्योग
	बना खेल का सामान, बेंत और बाँस का सामान, लकड़ी की बैटरी के खोल आदि सम्मिलित है, (६७) आरा मिल, (६८) लकडी की पकाई के भट्टे, (६९) लकडी की सुरक्षा की मशीनें, (७०) लकडी के कारखाने।
३१ दिसम्बर, १९६२	(७१) बॉक्साइट की खानें।
३१ मार्च, १९६३	(७२) मिठाई बनाने का उद्योग।
३० अप्रैल, १९६३	(७३) कपडे धुलाई के कारखाने और सेवायें, (७४) बटन, (७५) ब्रुश, (७६), प्लास्टिक और प्लास्टिक का सामान, (७७) लेखन-सामग्री।
३१ मई, १९६३	(७८) थियेटर, ड्रामे और अन्य मनोरजन कार्य, जहाँ टिकट लगाया जाता है, (७९) समितियाँ, क्लब और परिषदें, जो अपने सदस्यों और मेहमानों से पैसा लेकर खान पीने और मनोरजन की सुविधायें प्रदान करती है, (८०) कम्पनियाँ, समितियाँ, परिषद, क्लब या मण्डलियाँ जो किसी भी प्रकार के नाटक या मनोरजन के खेल दिखाते है और जिसके लिए टिकट लगते है।
३१ अगस्त, १९६३	(८१) कैन्टीन, (८२) वातित पय (Aerated water) मृदु पय और कार्बोनेटी जल।
३१ अक्टूबर, १९६३	(८३) स्प्रिटों का आसवन, परिशोधन तथा मिश्रण।
३१ जनवरी, १९६४	(८४) रग और रोगन, (८५) हड्डी पीसने के कारखाने।
३० जून, १९६४	(८६) बीजन यन्त्र (Pickers), (८७) चीनी मिट्टी की खान।
३१ अक्टूबर, १९६४	(८८) न्यायवादी, (८९) चार्टर्ड या पजीकृत लेखा कार, (९०) लागत और कार्य लेखाकार, (९१) इजीनियर और इजीनियर ठेकेदार, (९२) वास्तुशिल्पी, (९३) चिकित्सक व चिकित्सा विशेषज्ञ।
३१ दिसम्बर, १९६४	(९४) दुग्ध व दुग्ध-वस्तुयें।

योजना लागू होने की तिथि	उद्योग
मार्च, १९६५ तक	(९५) धातुपिण्ड के रूप में अलौह धातु तथा मिश्र धातु, (९६) यात्रा अभिकरण, (९७) अग्रप्रेषण (Forwarding) अभिकरण।
१९६५–६६ के मध्य	(९८) तम्बाकू की पत्तियों को चुनना, सुखाना, छाँटना तथा पैकिंग करना आदि, (९९) अगरबत्ती जिसमें धूप तथा धूप बत्ती भी सम्मिलित हैं, (१००) मेगनेसाइट की खानें, (१०१) नारियल की जटायें (बुनाई क्षेत्र को छोड़कर), (१०२) पत्थरों की खुदाई, जिसमें छतों के पत्थर, फर्श के चौके, नाप-तोल के पत्थर, स्मारकों के पत्थर और पच्चीकारी के काम के पत्थर, (१०३) अन्नदायी उद्योग।
१९६६–६७ के मध्य	(१०४) ऐसे बैंक जो किसी एक ही राज्य या संघीय प्रदेश में व्यवसाय कर रहे हों और जिनकी शाखायें बाहर हों, (१०५) तम्बाकू उद्योग जो सिगार तथा जरदा सुँघनी के निर्माण में लगा है और (१०६) मिश्रित बागान।

इस प्रकार जनवरी १९६७ के अन्त तक कर्मचारी राज्य बीमा योजना १०६ उद्योगों पर लागू हो रही थी और सितम्बर १९६५ के अन्त में इसके अन्तर्गत आने वाली संस्थाओं की संख्या ३१,९३० थी, इनमें से १,६०८ ऐसी संस्थायें थीं जिनको छूट दे दी गई थी और ३०,०२२ संस्थायें ऐसी थीं जिनमें योजना जारी थी, अर्थात् जिनको छूट नहीं दी गई थी। अंशदान देने वालों की कुल संख्या ४३.८२ लाख थी, इनमें से १६.५६ लाख तो छूट देने वाली संस्थाओं में थे और २७.२६ लाख ऐसी संस्थाओं में थे जहाँ छूट नहीं दी गई थी। जमा की हुई अंशदान की राशि ६९९.४३ करोड़ रुपये थी। जनवरी १९६७ के अन्त में, छूट प्राप्त किये हुये तथा तथा बिना छूट प्राप्त किये हुए ३८,३०७ संस्थानों में अंशदान देने वाले श्रमिकों की संख्या ४,८६,६९४ थी। निर्वाह निधि के अंशदानों की कुल राशि ६०२.५७ करोड़ रुपये थी। इसमें छोड़ने वाले सदस्यों को वापिस की गई धनराशि २८९.७६ करोड़ रुपये थी। ६१८.६० करोड़ रुपये केन्द्र सरकार के ऋण-पत्रों में निवेश किये गये थे। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में प्रॉविडेन्ट फण्ड को उन सब उद्योगों पर लागू करने का सुझाव था जिनमें देश भर में कम से कम १० हजार मजदूर कार्य करते थे। तीसरी पंचवर्षीय योजना में इस बात का सुझाव था कि यह योजना पहले उन सभी उद्योगों पर लागू कर दी जाय जो दूसरी आयोजना के अन्तर्गत नहीं आ पाये थे और उसके पश्चात् वाणिज्य संस्थाओं पर भी यह योजना लागू कर दी जाय। चौथी योजना के मसौदे में सुझाव दिया गया है कि अनेक ऐसे

के भविष्य के लिये उचित व्यवस्था की जाए, उनमे मितव्ययता की आदत पड़े और कोयला खान उद्योग मे स्थायी रूप से श्रमिक रह सके। अधिनियम मे १९५०-५१, और १९६५ में सशोधन भी किये गये हैं। अधिनियम मे केन्द्रीय सरकार को कोयला खान कर्मचारियों के लिये एक प्रॉवीडेन्ट फड योजना और एक बोनस फण्ड योजना बनाने के लिये अधिकार दिये गये है। अधिनियम के अन्तर्गत बनाई गई कोयला खान निर्वाह निधि योजना तथा कोयला खान बोनस योजना अब बिहार, पश्चिमी बगाल, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, असम, उड़ीसा, महाराष्ट्र तथा राजस्थान मे स्थित सभी कोयला खानो पर लागू होती है। योजनाओ मे अनेक बार सशोधन किये जा चुके है।

कोयला खान बोनस योजना

अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार ने जुलाई १९४८ में कोयला खान बोनस योजना तैयार की और उसे १२ मई १९४७ से बिहार और पश्चिमी बगाल की कोयला खानो पर लागू किया। तत्पश्चात् अन्य राज्यों की कोयला खानो पर यह योजना लागू की गई अर्थात्, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और उड़ीसा मे अक्टूबर १९४७ से, आन्ध्र मे अक्टूबर १९५२ से, राजस्थान मे १९५४ से और असम मे अक्टूबर १९५५ से, राजस्थान से, यह योजना केवल राजस्थान सरकार द्वारा अधिकृत कोयला खानो पर ही लागू होती है। राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश तथा असम के लिए योजनायें वैसे अलग-अलग हैं किन्तु उनकी रूप-रेखा १९४८ की योजना जैसी ही है। इस योजना से श्रमिको को इस बात का प्रोत्साहन मिलता है कि वह नियमित रूप से उपस्थित रहे और अवैध हड़तालो मे भाग न ले। यह प्रोत्साहन इस प्रकार दिया जाता है कि श्रमिक एक तिमाही मे कुछ निश्चित दिनों तक उपस्थित रहते है और किसी अवैध हड़ताल मे भाग भी नही लेते तो उन्हे मजदूरी के अतिरिक्त एक तिमाही बोनस भी दिया जाता है। यह योजना कोयला खानो के उन सभी कर्मचारियो पर लागू होती है जिनकी मूल मासिक आय ३०० रुपये से अधिक नही है। परन्तु इनमें से कुछ विशेष प्रकार के श्रमिको को छोड़ दिया जाता है, जैसे—माली, भगी, घरेलू नौकर, इमारतें, ईंटे और खपरैल आदि मे लगे हुए ठेके के श्रमिक या ऐसे व्यक्ति जो राज्य की कोयला खानो मे रेलवे या सिविल नियमो के अन्तर्गत रोजगार की शर्तों पर कार्य करते है। इस योजना के अनुसार मासिक वेतन पाने वालों को एक बोनस पाने का अधिकार है जो एक तिमाही मे उनकी मूल मजदूरी के $\frac{1}{3}$ भाग के बराबर होता है। तिमाही के समाप्त होने पर दो माह के अन्दर ही बोनस देने की व्यवस्था है। असम मे असम कोयला खान बोनस योजना लागू है जिसके अन्तर्गत दैनिक मजदूरी पाने वाले कर्मचारियो को साप्ताहिक और तिमाही दोनो बोनस मिलते हैं और मासिक वेतन पाने वालो को केवल तिमाही बोनस पाने का अधिकार है। उपस्थिति की पात्रता अवधि विभिन्न राज्यों मे विभिन्न है। उदाहरणतया, पश्चिमी बगाल व बिहार मे खान के भीतर

काय वाले खनिकों तथा उजरत अर्थात कार्यानुसार मजदूरी पाने वाले श्रमिकों के लिए एक तिमाही में ५४ दिन और अन्य श्रमिकों के लिए एक तिमाही में ६६ दिन मध्य प्रदेश महाराष्ट्र आन्ध्र और उड़ीसा में खान के भीतर के खनिकों और खान के भीतर कार्यानुसार मजदूरी पाने वाले श्रमिकों के लिये एक तिमाही में ६० दिन तथा अन्य श्रमिकों के लिये एक तिमाही में ६५ दिन। आन्ध्र प्रदेश में कुछ विशेष प्रकार के श्रमिकों के लिये जैसे कोयला काटने वाले फिटर भेदक (Driller) आदि के लिए यह तिमाही में ५२ दिन है। असम में खान के भीतर के खनिक और कार्यानुसार मजदूरी पाने वाले श्रमिकों के लिये जिन्हें दैनिक मजदूरी मिलती है एक सप्ताह में कम से कम चार दिन दैनिक मजदूरी पाने वाले अन्य श्रमिकों के लिए एक सप्ताह में ५ दिन और मासिक वेतन पाने वाले श्रमिकों के लिए एक तिमाही में ६६ दिन।

बोनस योजना में अनेक बार संशोधन भी हुए हैं। १९५७ में एक संशोधन के अनुसार योजना से सम्बन्धित सभी रिकार्ड भली प्रकार रखने की उचित व्यवस्था की गई है। अधिनियम और योजनाओं की धाराओं को न लागू करने पर दण्ड की व्यवस्था भी की गई है। १९५८ में एक संशोधन के अनुसार इस बात की व्यवस्था की गई है कि यदि किसी बकायेदार का भय हो तो प्रबन्धकों को एक निरीक्षक के सम्मुख बोनस का भुगतान करना होगा। प्रबन्धकों के लिये यह भी अनिवार्य कर दिया है कि बिना दावे वाले बोनस को छ माह पश्चात एक आरक्षित लेख में जमा कर दें और प्राधिकारियों को यह अधिकार दे दिया गया है कि ऐसी राशि को खनिकों के कल्याण पर व्यय कर सकते हैं। १९५८ में एक अन्य संशोधन के अनुसार कुछ विशेष रजिस्टरों को रखने की व्यवस्था कर दी गयी है। जुलाई १९६० में मृत श्रमिकों के बोनस को उसके नामित व्यक्ति या उत्तराधिकारी को देने की व्यवस्था कर दी गई है। अगस्त १९६० में किये गये संशोधन के अनुसार बोनस की अदायगी की दृष्टि से जबरी छुट्टी के दिनों को उपस्थिति के दिन माना जाना चाहिये। सितम्बर १९६० में की गई एक व्यवस्था के अनुसार मालिकों से एक बोनस रजिस्टर रखने की माग की गई। अक्तूबर १९६१ के एक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई कि सवेतन छुट्टियां तथा अर्जित अवकाश को बोनस की गणना के लिये उपस्थिति के दिन ही माना जाए और ऐसी छुट्टियों तथा अवकाश के दिनों की मजदूरी को बोनस की गणना के लिये मूल मजदूरी में ही सम्मिलित कर लिया जाना चाहिए। एक अन्य संशोधन द्वारा श्रम आयुक्तों के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि वे इस बात की घोषणा तीस दिन के अन्दर कर दें कि कोई हड़ताल अवैध थी या नहीं। जून १९६३ में किये गये एक संशोधन के अनुसार खान मालिक यदि निर्धारित अवधि में बोनस नहीं देते हैं तो यह भार उन पर होगा कि वे इस बात का प्रमाण दें कि बोनस न देने का उचित कारण क्या था। निश्चित अवधि में विवरण पत्रों का प्रस्तुत न करना दण्डनीय

माना जायेगा। दिसम्बर १९६६ के अन्त तक, कोयला खान बोनस योजना के अन्तर्गत आने वाली कोयला-खानों की संख्या ८४३ थी और ३० सितम्बर १९६६ को समाप्त होने वाली तिमाही में, बोनस के लिये योग्य कर्मचारियों की संख्या ३,५१,८१० थी। अगस्त १९५२ तक योजना का प्रशासन कोयला खान निर्वाह निधि आयुक्त द्वारा किया गया परन्तु उसके बाद से यह केन्द्रीय मुख्य श्रम आयुक्त की अध्यक्षता में केन्द्रीय औद्योगिक सम्बन्ध मशीनरी के अधिकारियों द्वारा प्रशासित की जा रही है।

कोयला खान प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना

केन्द्रीय सरकार ने दिसम्बर १९४८ में कोयला खान प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना बनाई जिसको १२ मई १९४७ से पश्चिमी बंगाल और बिहार की कोयला खानों पर लागू कर दिया गया। तत्पश्चात् इस योजना को मध्य प्रदेश, असम, उड़ीसा, महाराष्ट्र तथा नागालैण्ड में भी लागू कर दिया गया। आन्ध्र प्रदेश और राजस्थान की कोयला खानों के लिए पृथक् योजना बना कर १ अक्टूबर १९५५ से लागू कर दी। १ जनवरी १९६७ से, एक नई योजना को भी अन्तिम रूप दिया गया है और इसे नईवेली लिगनाइट कारपोरेशन की कोयला खानों तथा संलग्न संगठनों में उसे लागू कर दिया गया है। यह योजनायें भी १९४८ के कोयला खान प्रॉवीडेन्ट फण्ड और बोनस योजना अधिनियम के अन्तर्गत बनाई गई हैं। प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजनाओं के अन्तर्गत इस बात का उल्लेख है कि कौन से श्रमिक फण्ड में सम्मिलित हो सकते हैं, अंशदान का भुगतान किस प्रकार और किस समय और किस दर पर किया जायगा, लेखांकन तथा लेखा परीक्षण किस प्रकार होगा, धन का निवेश किस प्रकार होगा आदि। एक न्यासी बोर्ड की स्थापना की भी व्यवस्था है। सरकारी कोयला खानों के स्थायी श्रमिकों तथा ठेके के श्रमिकों को छोड़कर प्रत्येक श्रमिक, जो कोयला-खान में काम करता है, बिना किसी मजदूरी की सीमा के निर्वाह निधि योजना में सम्मिलित होना पड़ता है। प्रारम्भ में इस सम्बन्ध में मजदूरी की सीमा ३०० रुपये प्रतिमास निर्धारित की गई थी परन्तु यह सीमा सन् १९४८ की योजना के लिए १९५७ में और राजस्थान व आन्ध्र प्रदेश की योजनाओं के लिए सन् १९६३ में समाप्त कर दी गई थी। १९६१ तक प्रॉवीडेन्ट फण्ड पात्रता की शर्त बोनस योजना की पात्रता थी। परन्तु १९६१ से प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना को बोनस योजना से अलग कर दिया गया और इसके लिए पात्रता अलग से बना दी गई है। प्रॉवीडेन्ट फण्ड का सदस्य बनने के लिये पात्रिता उपस्थिति छः माह की अवधि में खान के भीतर कार्य करने वालों के लिए १०५ दिन की उपस्थिति और खान के ऊपर कार्य करने वालों के लिए १३० दिन की उपस्थिति कर दी गई है। सवेतन छुट्टियों की गणना उपस्थिति के दिनों के रूप में की जाती है। एक संशोधन के अनुसार खान मैनेजर और पर्यवेक्षक कर्मचारी, जिनका वेतन ३०० रुपये से अधिक भी है, योजना के अन्तर्गत ले लिए गए हैं।। परन्तु उन

लोगों को छोड़ दिया गया है जो राष्ट्रीय कोयला विकास निगम में कार्य करते हैं। इन लोगों के लिये प्रॉवीडेन्ट फण्ड की सदस्यता के लिए तिमाही में ७५ दिन की उपस्थिति की शर्त लागू की गई है। प्रॉवीडन्ट फण्ड में जो सदस्यों की राशि होती है उसको सदस्यों के ऋण या किसी दायित्व के कारण कुड़की से बचाने के लिए भी अधिनियम में उपबन्ध है। किसी सदस्य की मृत्यु हो जाने पर फण्ड की राशि उसके नामित व्यक्ति को मिल जायगी और उसमें से सदस्य की मृत्यु से पूर्व यदि उस पर कोई ऋण या दायित्व था भी तो उसके लिये कटौती नहीं की जाएगी। अधिनियम में इस बात की व्यवस्था है कि प्रावीडेण्ट फण्ड के बकाया की वसूली उसी प्रकार की जा सकती है जिस प्रकार मालगुजारी की वसूली की जाती है। योजनाओं की धाराओं को न मानने पर दण्ड की भी व्यवस्था है जो छः माह का कारावास अथवा एक हजार रुपये तक जुर्माना या दोनों ही सकते हैं। योजना के प्रशासन के लिए सरकार निरीक्षकों की नियुक्ति कर सकती है। सदस्यों को उपभोक्ता सहकारी समितियों का शेयर खरीदने के लिये या मकान या जमीन खरीदने के लिए तथा जीवन बीमा पालिसियों की वित्त व्यवस्था के लिये फण्ड से राशि दी जा सकती है जिसका वापिस भी नहीं करना होता।

अंशदान की दर आरम्भ में विभिन्न आय वर्ग के श्रमिकों के लिये भिन्न भिन्न थी और लगभग मूल मजदूरी, महंगाई भत्ते और नकद व वस्तु के रूप में भोजन और अन्य सुविधाओं के मूल का ६¼% आती थी जिसमें मालिकों को भी उतनी ही राशि देनी होती थी। कोयला उद्योग में संशोधित मजदूरियों के लागू होने के पश्चात् जनवरी १९५८ में योजना में संशोधन करके एक समान अंशदान की दर निर्धारित कर दी गई जो कुल आमदनी का ६¼ प्रतिशत रखी गयी। १ अक्टूबर १९६२ से सभी कोयला खानों में अंशदान की दर बढ़ाकर श्रमिक की कुल आमदनी का ८% कर दी गई है। जून १९६३ से इस बात की व्यवस्था कर दी गई है कि यदि श्रमिक चाहे तो वह फण्ड में ऐच्छिक रूप से अपनी आमदनी की ८% और राशि जमा कर सकते हैं। सन् १९६४ में एक संशोधन द्वारा, श्रमिकों को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह अपने ऐच्छिक अंशदान को किसी भी समय समाप्त कर सकता है और उस तिथि तक ऐसे अंशदानों की राशि को निकाल सकता है।

कोई भी सदस्य फण्ड की पूरी राशि पा सकता है यदि वह ५० वर्ष की आयु के पश्चात् नौकरी से अवकाश ग्रहण कर लेता है या स्थायी और पूर्ण अशक्तता के कारण अवकाश ग्रहण करता है या वह स्थायी रूप से दूसरे देश में बसने के लिए चला जाता है या किसी ऐसी कोयला खान में काम पर नहीं लगता है जिसमें यह योजना एक साल के लिए लागू की गई हो। मृत्यु की स्थिति में पूरी रकम की भी वापिसी की जाती है। जहाँ तक श्रमिकों को मिलने वाले मालिकों के अंशदान का प्रश्न है, जुलाई १९५६ में संशोधन करके यह व्यवस्था

की गई है कि मालिकों के अंशदान का निधि में से जब्त किये जाने वाला भाग ब्याज सहित इस प्रकार होगा : यदि श्रमिक की सदस्यता की अवधि तीन वर्ष से कम है तो ७५%; यदि सदस्यता की अवधि ३ और ५ वर्ष के बीच में है तो ५०% ; ५ से १० वर्ष तक की सदस्यता की स्थिति में २५ प्रतिशत ; १० से १५ वर्ष तक सदस्य रहने पर १५ % और यदि सदस्यता १५ वर्ष या उससे अधिक है तो मालिकों के अंशदान का कोई भी भाग जब्त न होकर पूरा भाग मिलेगा। यदि कोई श्रमिक ५० वर्ष की आयु होने के पश्चात् अवकाश ग्रहण कर लेता है तो उसे मालिकों के अंशदान की पूरी धन राशि मिलेगी, चाहे उसकी सदस्यता की अवधि कितनी ही क्यों न हो। १९६४ से पूर्व यदि श्रमिक ५० वर्ष से कम आयु पर नौकरी छोड़ देता था तो प्रॉविडेन्ट फण्ड की राशि के लिए उसे छः माह प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। अब प्रॉवीडेण्ट फण्ड आयुक्त को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह इस अवधि काल को विशेष परिस्थितियों में कम कर दे।

योजना का प्रशासन एक न्यासीय बोर्ड के द्वारा किया जाता है जिसमें *सरकार, मालिकों तथा श्रमिकों के प्रतिनिधि समान संख्या में* होते हैं। निधि का मुख्य कार्यालय धनबाद में है और कोयला खान निर्वाह निधि कमिश्नर इसका मुख्य कार्यांग अधिकारी होता है। आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश और पश्चिमी बंगाल में तीन क्षेत्रीय कार्यालय भी स्थापित कर दिए गए हैं जो सहायक आयुक्तों के अधीन है। प्रशासन के व्यय की पूर्ति मालिकों पर एक पृथक् कर लगाकर की जाती है जिसकी दर कुल अनिवार्य अंशदानों की २·४% होती है। फरवरी १९६७ के अन्त तक, निधि में कुल संग्रह लगभग ६३·०६ करोड़ रुपये और सदस्य संख्या ४·८४ लाख थी। अधिनियम के अन्तर्गत आने वाली कोयला खानों की संख्या १,२८७ थी। २,१७८ सदस्य ऐच्छिक रूप से अंशदान भी दे रहे थे। सन् १९५९–६० में अंशदान देने वालों को ३½ प्रतिशत की दर से १९६०–६१ से १९६२–६३ तक ४ प्रतिशत की दर से और १९६३–६४ में ४¼ प्रतिशत की दर से ब्याज दिया गया था।

दिसम्बर १९६२ में, ५ लाख रुपये की एक विशेष आरक्षित निधि (*Special Reserve Fund*) भी बनाई गई जिसमें धनराशि कर्मचारी निर्वाह निधि के आरक्षण एवं अप्रवर्तन खाते से स्थानान्तरित की गई। इसका उद्देश्य निर्वाह निधि के सदस्यों या उनके उत्तराधिकारियों अथवा नामित व्यक्तियों को उस दशा में भुगतान देना होता है जब निर्वाह निधि का अंशदान श्रमिकों के वेतन से काट तो लिया जाता है किन्तु मालिकों द्वारा कुल राशि को अपने अंशदान सहित बिल्कुल जमा नहीं किया जाता या केवल आंशिक रूप से जमा किया जाता है। इसके अतिरिक्त, सन् १९६४ से एक निधन सहायता निधि (*Death Relief Fund*) भी बनाई गई जिसमें प्रारम्भ में निर्वाह निधि के अप्रवर्तन खाते से एक लाख रुपये की धनराशि स्थानान्तरित की गई। इस निधि के निर्माण का उद्देश्य यह है कि

विचाराधीन है। यही नहीं, खतरनाक व्यवसायों में लगे श्रमिकों के लिये अनिवार्य बीमे को लागू करने से सम्बन्धित प्रस्तावों पर भी विचार किया जा रहा है।

उत्तर प्रदेश में वृद्धावस्था पेंशन योजना

उत्तर प्रदेश सरकार ने १ दिसम्बर १९५७ से ७० वर्ष या इससे अधिक आयु के निर्धन और निराश्रित व्यक्तियों को उनकी वृद्धावस्था में सहायता देने के लिए एक वृद्धावस्था पेंशन योजना लागू की। फरवरी १९६२ में आयु सीमा घटाकर ६५ वर्ष और नवम्बर १९६३ से ६० वर्ष कर दी गई है। यह हमारे देश में अपनी तरह का एक अनुकरणीय सामाजिक कदम है। यह केवल मजदूरों तक ही सीमित नहीं है वरन् यह उन सब व्यक्तियों के लिये है जो यहाँ के निवासी हैं और उत्तर प्रदेश में रहते हुये उन्हें एक वर्ष से अधिक समय हो गया है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य ऐसे अभीष्ट (Needy) लोगों की सहायता करना और उन्हें किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना है जिनके पास आय का कोई साधन नहीं है और जिनके सूची में दिये हुए कुछ विशिष्ट प्रकार के ऐसे कोई सम्बन्धी नहीं हैं जिनकी आयु २० वर्ष या उससे अधिक हो, या यदि है भी तो उसकी आयु ७० वर्ष (अब ६० वर्ष) से अधिक है, या वह असमर्थ है या निराश्रित है या ७ वर्ष से उसका पता नहीं है या वह परिवार छोड़ गया है या पत्नी की आयु ६० वर्ष से अधिक है। दिसम्बर १९५९, अप्रैल १९६१ और नवम्बर १९६३ में सम्बन्धियों की इस सूची में संशोधन करके और अधिक व्यक्तियों को इस योजना के अन्तर्गत ले लिया गया है। सम्बन्धियों में अब केवल पुत्र, पोता, सगा भाई, पति या पत्नी सम्मिलित किये जाते हैं। पति और पत्नी दोनों को पेन्शन मिल सकती है यदि दोनों की आयु ६५ वर्ष से अधिक हो और उनके विशिष्ट प्रकार के सम्बन्धी न हों। इसके अन्तर्गत भिखारी या ऐसे व्यक्ति नहीं सम्मिलित किए जाते जिनका निर्वाह निर्धन सेवा गृहों (Poor Houses) में निःशुल्क होता है, किन्तु इसमें वे व्यक्ति सम्मिलित नहीं हैं जो परिस्थितियों से विवश होकर प्रमगवश दान पुण्य पर निर्भर रहते हैं। फरवरी १९६२ में एक महत्वपूर्ण संशोधन किया गया जिसके द्वारा जहाँ अर्हता की आयु घटाकर ६५ वर्ष कर दी गई, वहाँ जिलाधीशों को यह भी अधिकार दिया गया कि यदि वे इस बात से सन्तुष्ट हैं कि प्रार्थी की आय १० रुपये मासिक से कम है या उसकी पत्नी की आय पर्याप्त नहीं है अथवा उसके विशिष्ट सम्बन्धी उसकी सहायता करने की स्थिति में नहीं हैं तो उसका यह दावा मान लें कि उसे पेन्शन मिलनी चाहिए। नवम्बर १९६३ में अर्हता की आयु फिर घटाकर ६० कर दी गई और यह व्यवस्था की गई कि कोई भी महिला उस स्थिति में भी पेन्शन पाने की अधिकारिणी होगी जब कि उसका भाई हो अथवा यदि उसका पति जीवित हो किन्तु एक वर्ष से अधिक समय से उससे अलग हो। पेन्शन की राशि १५ रुपये प्रति माह निश्चित कर दी गई थी जिसे १९६४ में बढ़ाकर २० रुपये कर दिया गया है। पेन्शन दो प्रकार की होती है (१) जीवन पेन्शन, जो आजीवन दी जाती है, और

(२) सीमित पेन्शन, जो कुछ समय के पश्चात् समाप्त हो जाती है, अर्थात् पेन्शन लेने वाले के सम्बन्धी की आयु जब २० वर्ष की हो जाती है, तब पेन्शन मिलनी बद हो जाती है। पेन्शन की न तो कुर्की हो सकती है न वह परिवर्तित की जा सकती है। पेन्शन का मिलना या तो पेन्शन पाने वाले की मृत्यु के दिन से बन्द हो सकता है अथवा जब वह निराश्रित नहीं रहता तब उसकी पेन्शन रोक दी जाती है। थोडे-थोडे समय के पश्चात् ऐसे दावो की जाँच होती रहती हैं। पेन्शन पाने वाले व्यक्ति के लिये एक मुख्य शर्त यह होती है कि उसका आचार व्यवहार अच्छा होना चाहिए। यदि पेशन पाने वाला किसी गम्भीर अपराध के कारण दण्डित होता है तो उस दशा मे पेन्शन देना वन्द भी की जा सकती है और पेन्शन वापिस भी ली जा सकती है।

पेन्शन पाने के लिए प्रार्थी को एक फार्म पर अपना प्रार्थना-पत्र भेजना होता है जिसे तहसीलदार और जिलाधीश जाँच पडताल करने के पश्चात् उत्तर प्रदेश के श्रम-कमिश्नर के पास भेज देते है। श्रम-कमिश्नर ही पेन्शन की स्वीकृति देने वाला अधिकारी है। पेन्शन की राशि मनिआर्डर से भेजी जाती है। पहले तो पेन्शन हर माह दी जाती थी किन्तु मार्च १६५८ से यह प्रति ३ महीने बाद दी जाती है। ७० वर्ष से ऊपर की आयु के निराश्रितो की सख्या उत्तर प्रदेश में लगभग ५०,००० आँकी गई थी जो कि राज्य मे ७० वर्ष या इससे अधिक आयु के व्यक्तियो की अनुमानित जनसख्या का लगभग ४ प्रतिशत थी। दिसम्बर १६५७ मे योजना के आरम्भ होने से ३१ दिसम्बर १६६५ तक २१,६१३ व्यक्तियो को पेन्शन की स्वीकृति दी गई थी, इनमे से ७ ३८३ व्यक्ति पेन्शन पाने के बाद मृत्यु को प्राप्त हो गये थे और जीवित पेन्शन पाने वालो की सख्या १४,५३० थी। अक्तूबर १६६६ मे, पेन्शन पाने वालों की सख्या १५,०१८ तक पहुँच गई थी।

उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त वृद्धावस्था पेन्शन योजनायें कई अन्य राज्यो मे भी लागू कर दी गई है। इनमे आन्ध्र प्रदेश, केरल, मद्रास, पजाब, राजस्थान और पश्चिमी बगाल के नाम उल्लेखनीय है। तृतीय पचवर्षीय आयोजना मे वृद्ध, भिखारी, अपग और बेसहारा व्यक्तियो के लिए एक सहायता निधि स्थापित करने के हेतु २ करोड रुपये की राशि की व्यवस्था की गई थी। तृतीय आयोजना मे यह भी सुझाव था कि पचायतो द्वारा ऐसे काम करने चाहिये जिनसे अभीष्ट (Needy) व्यक्तियो को स्थानीय समुदाय द्वारा ही सहायता प्राप्त हो सके।

उत्तरजीवी पेन्शन इनकी आवश्यकता और वाछनीयता

उत्तरजीवी पेन्शनें (Survivorship Pensions) उन विधवाओ और अनाथ बच्चो के लिए आवश्यक है जिनका सरक्षक मजदूर एकाएक मृत्यु का ग्रास बन गया हो और अपने पीछे अपनी पत्नी और बच्चो को बेसहारे और बिना किसी आय के साधन के छोड गया हो। उत्तरजीवी पेन्शनो के अभाव मे ऐसी अभागी पत्नियो और बालकों को अनेक कष्ट सहन पडते है और अनेक सामाजिक बुराइयाँ अपना सिर उठाने लगती हैं जिनका हमने देश मे सामाजिक-बीमे की आवश्यकता का वर्णन

करते समय उल्लेख किया है। श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम और कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अन्तर्गत केवल उन कर्मचारियों के आश्रितों को लाभ प्रदान करने की व्यवस्था की गई है, जिनकी मृत्यु काम करते समय किसी क्षति के कारण से हुई हो परन्तु ऐसे मजदूरों के उत्तरजीवियों के लिए कोई भी व्यवस्था नहीं की गई है जिनकी मृत्यु किसी अन्य कारणवश हो गई हो। इस समय इस बात की आवश्यकता है कि प्रत्येक मजदूर के आश्रितों को लाभ प्रदान किए जायें, चाहे उसकी मृत्यु का कोई भी कारण क्यों न रहा हो। जब मजदूर की मृत्यु हो जाती है और वह अपने पीछे असहाय आश्रितों को छोड़ जाता है तब उन आश्रितों को तब तक आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए जब तक कोई बच्चा बड़ा होकर अपने परिवार के लिए धन कमाने योग्य न हो जाये। विधवा स्त्री को भी पेन्शन दी जानी चाहिए और इसके लिए, जैसा कि ब्रिटेन में भी है, कोई शर्त नहीं होनी चाहिए, यद्यपि इस बात की भी व्यवस्था हो सकती है कि ऐसे लाभों के पाने के लिए मरण-तुल्य अवस्था में विवाह न हो। प्रत्येक व्यक्ति और बालक को पेन्शन देनी चाहिए जो १६ वर्ष तक मिलती रहे, जब तक अल्पवयस्क अपनी रोजी कमाने लायक न हो जाय। यदि कोई लड़का या लड़की शिक्षा प्राप्त करते हैं तब यह पेन्शन १८ वर्ष की आयु तक भी दी जा सकती है। उत्तरजीवी पेन्शनों के लिए पात्रता अवधि (Qualifying Period) २ वर्ष से ५ वर्ष तक की नौकरी हो सकती है। उत्तरजीवी पेन्शन का लाभ इतना होना चाहिए जितना मजदूर को जीवित होने पर निबल होने की अवस्था में दिया जाता है। आश्रितों के लिये वही शर्तें रक्खी जा सकती हैं जो कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम में दी गई है। जब सरकार युद्ध में सैनिकों की मृत्यु हो जाने पर विधवाओं को पेन्शन प्रदान करती है तब कोई कारण नहीं है कि इस प्रकार की कोई योजना औद्योगिक मजदूरों की पत्नियों और उनके बच्चों के लिये न अपनाई जा सकती हो।

इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि मजदूरों के लिए जीवन बीमा व्यवस्था करने की सम्भावना पर जाँच पड़ताल करनी चाहिए और इस जीवन बीमा को सामाजिक सुरक्षा की योजना के अन्तर्गत ले आना चाहिए। यह सत्य है कि वर्तमान समय में कम मजदूरी मिलने के कारण मजदूर जीवन बीमा पॉलिसी की किश्तें नहीं दे सकता और किसी भी जीवन बीमा कम्पनी ने मजदूर वर्ग के बीमे की ओर ध्यान नहीं दिया है। परन्तु प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना प्रारम्भ होने के पश्चात् इस समस्या का आसानी से समाधान हो सकता है। मजदूरों के लिए बीमा पॉलिसियाँ लेना अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए और किश्तें मालिकों द्वारा दी जानी चाहियें। किश्तों का भुगतान प्रॉवीडेन्ट फण्ड की राशि में से किया जा सकता है और बीमे की राशि फण्ड में सम्मिलित की जा सकती है, जो मजदूरों को अवकाश प्राप्त करने पर दी जा सकती है। इस सुझाव पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए। यह एक सम्भव और व्यावहारिक सुझाव है। यदि किसी

चाहिए। अवकाश प्राप्त पेन्शन का हिसाब लगाने के लिये सिफारिशों में एक आधार का उल्लेख है (पिछले पाँच वर्षों की औसत मजदूरी को नौकरी के पात्रता (Qualifying) वर्षों के १/८० भाग से गुणा करके)। (५) कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अन्तर्गत लाभों की वृद्धि करना, जैसे—बीमारी लाभ को १३ सप्ताह तक प्रदान करना और क्षय रोग जैसी लम्बे समय की बीमारी होने पर ३९ सप्ताह तक लाभ प्रदान करना, मातृत्व-कालीन लाभ को पूरी औसत आय के बराबर देना जो १ रुपया प्रतिदिन से कम न होना चाहिए। इस बात पर भी काफी जोर दिया गया कि मजदूरों के परिवारों को चिकित्सा सुविधायें शीघ्र मिलनी चाहियें तथा उनको हस्पताल की सुविधायें भी प्रदान करनी चाहिएँ। हस्पतालों को पूरा करने के लिये पर्याप्त पग उठाने की सिफारिश की गई। कर्मचारी राज्य बीमा योजना को उन समस्त क्षेत्रों तक विस्तृत कर देना चाहिए जहाँ बीमा योग्य श्रमिकों की संख्या ५०० या उससे अधिक है। यह आशा की गई थी कि जब ये सारी सिफारिशें कार्यान्वित हो जायेंगी तब मजदूरों को वर्तमान समय में मिलने वाली सुविधाओं और लाभों में निश्चित ही कुछ उन्नति व वृद्धि होगी, यद्यपि इन सुविधाओं को प्रदान करने में मालिकों की लागत वेतन बिल का ७३% से बढ़कर १३% हो जायगी।

अध्ययन दल की रिपोर्ट पर केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा और मालिकों तथा श्रमिकों के संगठनों द्वारा विचार किया गया था। कर्मचारी राज्य बीमा निगम ने अगस्त १९६० में रिपोर्ट पर विचार किया और अध्ययन दल के विचारों में सामान्य सहमति व्यक्त की। फलतः जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, बढ़े हुए लाभों आदि से सम्बन्धित दल की अनेक सिफारिशें लागू कर दी गई। किन्तु संगठित सामाजिक सुरक्षा योजना से सम्बन्धित सिफारिश अभी भी विचाराधीन है। स्थायी श्रम समिति ने १९६० में रिपोर्ट पर विचार किया और सुझाव दिया कि संगठित (integrated) सामाजिक सुरक्षा योजना तीसरी पंच वर्षीय आयोजना में लागू कर देनी चाहिए। समद की अनुमान समिति का भी यही कहना था कि सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के एकीकरण से दोहरा लाभ होगा। इससे एक तो विस्तृत सामाजिक सुरक्षा योजना का आधार तैयार होगा और पृथक्-पृथक् योजनाओं की बढ़ी लागतों में कमी होगी। समिति ने भी इसे तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में सम्मिलित करने का सुझाव दिया। तृतीय आयोजना में संगठित योजना के प्रश्न के विभिन्न पहलुओं पर सर्वांगि विचार का प्रस्ताव था। सितम्बर, १९६१ में, भारतीय श्रम सम्मेलन ने अपने १९ वें अधिवेशन में रिपोर्ट पर विस्तार से विचार किया। मालिकों के प्रतिनिधियों ने इस योजना का इस आधार पर विरोध किया कि इसमें एक तो उद्योग पर अतिरिक्त बोझ पड़ेगा और दूसरे औद्योगिक श्रमिकों की प्रवासिता (migratory character) के कारण पेन्शन सम्बन्धी भुगतान करने में कुछ व्यावहारिक

निधि योजना मे विस्तार उद्योगानुसार होता है। कर्मचारी राज्य बीमा योजना का विस्तार मुख्यतः चिकित्सा कर्मचारियों, बाहरी चिकित्सा तथा हस्पतालो पलगों आदि की उपलब्धता पर निर्भर होता है अत. इसके मुकाबले निर्वाह निधि योजना का विस्तार अधिक सरल होता है।

अत दोनो योजनाओं का एकीकरण करने से पूर्व यह अत्यावश्यक है कि सभी सम्बन्धित पक्षों से परामर्श करते हुए इस विषय मे पर्याप्त विचार एव तदनुसार विचारो मे हेर-फेर की जाए। तथापि, योजनाओं का एकीकरण अत्यावश्यक है क्योंकि यदि अन्तिम लक्ष्य सामाजिक सुरक्षा की एक व्यापक योजना को लागू करना है तो हमें अभी से इस दिशा मे पहल करनी चाहिए, क्योंकि कुछ समय के पश्चात् तो पृथक्-पृथक् योजनाएं विकसित होकर ऐसे चरण मे आ पहुँचेंगी कि उस स्थिति मे उनका परस्पर विलय अथवा एकीकरण करना एक बडी जटिल प्रशासनिक प्रक्रिया बन जायेगी। प्रत्येक योजना का अलग-अलग विकास होने से प्रशासकों तथा लाभ प्राप्तकर्त्ताओ, दोनो के लिये काफी मात्रा मे दोहराव तथा श्रम उत्पन्न होगा। अत कर्मचारी राज्य बीमा समीक्षा समिति ने सन् १९६६ मे अपनी रिपोर्ट मे यह सुझाव दिया कि सरकार को भारतीय श्रम सम्मेलन से परामर्श से विशेषज्ञो की एक ऐसी मशीनरी स्थापित करनी चाहिये जो सामाजिक सुरक्षा की एक विस्तृत योजना की "रूपरेखा" तैयार करे। समिति इस पक्ष मे नही थी कि वर्तमान स्थिति मे कोयला खान निर्वाह निधि तथा असम चाय बागान निर्वाह निधि का कर्मचारी राज्य बीमा योजना के साथ विलय किया जाये। परन्तु समिति ने इस बात की सिफारिश की कि कर्मचारी राज्य बीमा निधि तथा कर्मचारी निर्वाह निधि को परस्पर मिला दिया जाये और निर्वाह निधि को पेन्शन सम्बन्धी लाभो मे परिवर्तित कर दिया जाए। साथ ही, जो लाभ अब उपलब्ध नही है, समिति ने उनको सम्मिलित करने का एक प्रबल वित्तीय एव प्रशासनिक आधार प्रस्तुत किया।

उपसहार

भारत मे सामाजिक सुरक्षा के विभिन्न पहलुओ का उक्त सर्वेक्षण करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि हमारे देश मे अभी तक इस दिशा मे बहुत थोडी प्रगति हो सकी है। इस विषय पर प्रगतिशील विधान बनाने की आवश्यकता है, जिससे औद्योगिक मजदूरो को आधुनिक औद्योगिक जीवन के सकटो से उसी प्रकार की सुरक्षा मिल सके जो दूसरे देशो के मजदूरो को मिल रही है। बीमारी, स्वास्थ्य, मातृत्व-कालीन और क्षतिपूर्ति बीमो को तथा निर्वाह-निधि योजनाओ को यद्यपि प्रारम्भ कर दिया गया है परन्तु अभी तक यह केवल कुछ व्यक्तियो तक ही सीमित है।

हमारे देश की वर्तमान परिस्थितियाँ ऐसी नही है कि सामाजिक सुरक्षा की कोई एक सामान्य योजना चलाई जा सके। अनेक बीमारियो और महामारियो का

फैलना, प्रसूतिकाओं और बालकों की बढती हुई मृत्यु संख्या, जीवन-क्षमता मे कमी पैतृक ऋण के कारण दुःख एवं निराश्रयता, जनता की अशिक्षितता, देश का बड़ा आकार और इसी प्रकार के दूसरे तथ्यों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना सरल कार्य नहीं है। घोर निर्धनता और विकास की कमी को भी इन तथ्यों मे गिना जा सकता है। इसलिए इस समय तो यही उचित दिखाई देता है कि सामाजिक सुरक्षा योजना का प्रारम्भ औद्योगिक मजदूरों और नाविकों से किया जाय और थोड़े समय पश्चात् योजना को वाणिज्य सम्बन्धी श्रमिकों पर भी लागू कर दिया जाय। बाद मे जैसे-जैसे परिस्थितियाँ अनुकूल होती जाएँ वैसे-वैसे योजना का विस्तार श्रमिकों के अन्य वर्गों तक तथा स्वतन्त्र जीविका उपार्जन करने वाले व्यक्तियों तक किया जा सकता है।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, श्रमिकों के लिये सामाजिक सुरक्षा योजना केवल आवश्यक अथवा वाछनीय ही नहीं है अपितु इसका लागू होना सम्भव भी है। स्वस्थ और कुशल औद्योगिक श्रमिकों के एक ऐसे स्थायी वर्ग के विकास के लिए, जिसकी तीव्रगति से बढते हुये उद्योगों और व्यवसायों मे बहुत माँग है, यह आवश्यक है कि सामाजिक सुरक्षा योजना लागू की जाय। इस समय श्रमिकों का अशदान जितना भी हो यथासम्भव कम होना चाहिये और सरकार व मालिकों को सामाजिक सुरक्षा की लागत का अधिकाश भाग वहन करना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि देश मे इस प्रकार की योजना लागू करने से पूर्व मजदूरों के जोखिम के भार से सम्बन्धित आँकड़े एकत्रित करने चाहिएँ जिनसे यह मालूम हो सके कि ऐसी घटनायें श्रमिक के जीवन मे कितनी बार आती है और वे कितनी गम्भीर होती है। सरकार को यह भी समझना चाहिए कि सर्वसाधारण की भलाई के लिए आर्थिक क्षेत्र मे सामान्य मनुष्य को आधारभूत और मूल सुरक्षा प्रदान करने का उत्तरदायित्व उसी पर है। सरकार और उसके अधिकारियों के वर्तमान दृष्टिकोण मे परिवर्तन होना भी बहुत आवश्यक है। यदि वही पुराना दफ्तरी व्यवहार अपनाया गया जिसमे वास्तविकता के साथ कोई सहानुभूति नहीं होती और अनेक समितियाँ व आयोग नियुक्त करने और उनकी रिपोर्टों को अलमारी मे बन्द कर देने का वही तरीका चलता रहा, तब देश मे निश्चय ही कोई भी सामाजिक सुरक्षा योजना सफल नहीं हो सकती।

कुछ व्यक्ति यह प्रश्न पूछते है कि क्या भारत सामाजिक सुरक्षा की सुविधाओं का व्यय वहन कर सकता है? इस सम्बन्ध मे श्री जगजीवन राम ने ब्रिटेन की सामाजिक सुरक्षा-योजना के प्रसिद्ध निर्माता सर विलियम बेवरिज के शब्दों को दोहराया है। बेवरिज से ऐसा ही प्रश्न पूछा गया था। इस पर उनका उत्तर बहुत ही स्पष्ट था। उन्होंने कहा, "मुझसे प्रायः पूछा जाता है कि क्या ब्रिटेन बेवरिज योजना का भार वहन कर भी सकेगा? मेरा उत्तर है कि यह एक ऐसा प्रश्न है जिससे भ्रम हो सकता है। इस प्रश्न मे एक ऐसी बात मान ली गई है जो

सत्य नहीं है, अर्थात् यह मानकर प्रश्न किया गया है कि आय का बुद्धिमत्तापूर्ण वितरण करने में कुछ लागत आती है। परन्तु मेरे विचार से आय को कम आवश्यक चीजों पर व्यय करने की अपेक्षा अधिक आवश्यक वस्तुओं पर व्यय करने से कोई लागत नहीं आती। यह तो केवल बुद्धिमत्तापूर्ण व्यय करना है। जब लोग यह प्रश्न पूछते हैं कि क्या ब्रिटेन बेवरिज योजना के भार को वहन कर सकता है तो जैसे वह यह पूछते हैं कि क्या कोई गृहणी रेडियो खरीदने से पहले अपने परिवार के लिए रोटी खरीद सकती है ? निश्चय ही वह खरीद सकती है और उसे खरीदनी चाहिए।" सर विलियम ने इस बात पर भी जोर दिया है कि देश जितना अधिक निर्धन होता है उसके लिए सामाजिक सुरक्षा-योजना की आवश्यकता भी उतनी ही अधिक होती है।

इस प्रकार इस समय हमारे देश में सामाजिक सुरक्षा-योजना को लागू करने की बहुत आवश्यकता है और यह हमारे सम्मुख एक गम्भीर राष्ट्रीय समस्या है। जिस दुःख और निर्धनता की गहरी खाई में श्रमिक आज पड़ा हुआ है, उससे उसे उबारने के लिए यही एकमात्र साधन है। डा० अम्बेदकर के शब्दों में श्रमिकों को "रोटी, मकान, पर्याप्त वस्त्र, शिक्षा, अच्छा स्वास्थ्य और इन सबसे बड़ी चीज संसार में आत्मसम्मान तथा गौरव के साथ चलने का अधिकार देना चाहिये।" जबकि हमारे देश में राष्ट्रीय सरकार है और उसका उद्देश्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है तब हमें यह पूरी आशा है कि सामाजिक-सुरक्षा के प्रश्न को अधिक समय तक नहीं टाला जायेगा और हमारी पंचवर्षीय आयोजनाओं में इसको उचित महत्त्व दिया जायेगा। सामाजिक-सुरक्षा का प्रारम्भ कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम और प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना के रूप में हो चुका है। हमें आशा है कि यह प्रारम्भ यहीं तक ही सीमित नहीं रहेगा और भविष्य में उन सभी को सुरक्षा प्रदान की जायेगी जो उत्पादक कार्यों में लगे हुए हैं।

१३

ग्रेट ब्रिटेन में सामाजिक सुरक्षा

SOCIAL SECURITY IN GREAT BRITAIN

मध्यकालीन युग मे निर्धन सहायता
(Poor Relief in the Middle Ages)

महारानी एलिजाबेथ के समय से ही अभावग्रस्त नागरिको की आवश्यकता को पूर्ण करना इगलैंण्ड मे राज्य का ही कर्त्तव्य रहा है। मध्यकालीन युग मे निराश्रित व्यक्तियो को सहायता देने का कार्य धार्मिक मठो द्वारा किया जाता था, परन्तु मठो के उन्मूलन के पश्चात राज्य के लिए यह आवश्यक हो गया कि उनके स्थान पर कोई अन्य सहायता व्यवस्था की जाय। परिणामस्वरूप इगलैंण्ड म निर्धन कानून (Poor Law) पारित किया गया। इसके अन्तर्गत सहायता के लिए जो धन जमा किया जाता था, वह स्थानीय करो द्वारा होता था। निर्धन कानून, जिसका नाम बाद मे 'सार्वजनिक सहायता (Public Assistance) कर दिया गया, अभी तक विद्यमान है। पुरानी सेवाओ मे से यही एक ऐसी सेवा है जो अभी तक बाकी है। इसका उद्देश्य यह है कि निराश्रित व्यक्तियो को ऐसी सहायता दी जाय जो उन्हे किसी और एजन्सी द्वारा न मिल रही हो। आधुनिक समय म सामाजिक सेवा का जो इतिहास है, वह वास्तव मे निर्धन कानून के अन्तर्गत जो सेवाय आती थी, उनको ही अपनाने और उनके विकास का इतिहास है, यद्यपि दोनो का आधार अवश्य भिन्न है। वर्तमान व्यवस्था मे उतनी कठिन शर्तें नही है, जो पहले थी। निर्धन सहायता के नाम मे जो एक हीनता की भावना छिपी हुई थी, वह भी अब नही है। वित्त व्यवस्था भी भिन्न प्रकार से की जाती है। ऐच्छिक सामाजिक सेवाएँ भी जारी है परन्तु अब वे राज्य द्वारा प्रदान की जाने वाली सामाजिक सेवाओ की पूरक तथा सहायक है।

इगलैण्ड मे सामाजिक सेवाओ पर व्यय

बीसवी शताब्दी म सार्वजनिक सामाजिक सेवाओ पर व्यय इगलैंण्ड मे काफी बढ गया है। यह ब्रिटिश सामाजिक जीवन की एक मुख्य विशेषता है जो कि औद्योगिक सम्बन्धो पर बहुत प्रभाव डाल रही है। ग्रेट ब्रिटेन मे सामाजिक सेवाओ पर १८६० मे कुल व्यय लगभग २३० लाख पौंड था। इसमे प्रशासन की लागत भी सम्मिलित थी। सन् १६०० मे यह व्यय २६० लाख पौंड तक बढ गया

और सन् १९२० में २,०६० लाख पौंड तक और १९३५ में ४,६३० लाख पौंड तक पहुँच गया। इन आँकड़ों में संसद द्वारा दी हुई राशि तथा स्थानीय उपकारों द्वारा मिला हुआ धन तथा विभिन्न प्रकार की समाज सेवाओं के लिए मालिकों और कर्मचारियों द्वारा दी हुई अंशदान की राशि भी सम्मिलित थी। सन् १९३५ में संसद ने जो सहायता स्वीकृति की, वह २,६४० लाख पौंड से अधिक अथवा कुल व्यय का ५३% के लगभग थी। १९३८–३९ में सामाजिक सेवा योजनाओं पर कुल खर्च ३,४२० लाख पौंड था। सन् १९६५–६६ में सरकार द्वारा सामाजिक सेवाओं एवं उपदानों पर किया गया अनुमानित खर्च २४३ करोड़ पौंड तक हो गया और सार्वजनिक अधिकारी (Public Authorities) भी सामाजिक सेवाओं पर प्रतिवर्ष ५२३ करोड़ पौंड व्यय कर रहे हैं, अर्थात् प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष ९७ पौंड समाज सेवाओं पर व्यय किया जाता है।

वैवरिज आयोजना (Beveridge Plan) से पूर्व इंगलैण्ड में जो सामाजिक बीमे की व्यवस्था थी, उसका भी वर्णन करना आवश्यक है।

बैवरिज आयोजना से पूर्व निर्धन सहायता

इंगलैण्ड में निर्धन सहायता (Poor Relief) बहुत काल से चली आ रही है। सन् १५०१ से पूर्व यह माना जाता था कि स्वस्थ शरीर वाले व्यक्ति, यदि उनकी इच्छा हो, तो कार्य पा सकते थे, अतः उनकी निर्धनता उनके आलस्य की द्योतक थी। इसलिए बिना किसी कार्य पर लगे हुए स्वस्थ शरीर वाले व्यक्तियों को दण्ड दिया जाता था। उदाहरणार्थ सन् १५३० में जो भी स्वस्थ शरीर वाले पुरुष एवं स्त्रियाँ भीख माँगते अथवा बिना स्थायी रोजगार के पाये जाते थे, उनको नंगा करके एक ठेले के साथ बाँध दिया जाता था और उनको तब तक कोड़े लगाये जाते थे, जब तक कि उनके शरीर से खून न निकलने लगे। सन् १५४७ में एक अधिनियम पारित किया गया, जिसमें इस बात की व्यवस्था थी कि जो भी स्वस्थ शरीर का व्यक्ति आवारा पाया जायगा, उसके शरीर पर 'V' गुदवा दिया जायगा और वह किसी भी मालिक का, जिसको आवश्यकता हो, दो वर्ष तक दास रहेगा और उसको रोटी, पानी और कच्चे मांस का भोजन मिलेगा। इन दो वर्षों में भागने का प्रयत्न करते हुए पकड़े जाने पर उसके शरीर पर 'S' गुदवाने और जन्म भर की दासता का दण्ड दिया जाता था। उसके पश्चात् भी भागने पर मृत्यु-दण्ड नियत था।

महारानी एलिजाबेथ के समय में सर्वप्रथम निर्धनों को सहायता देने के कार्य में प्रगति हुई। इसके लिए बहुत से अधिनियम पारित किये गये और "जस्टिसेज आफ पीस" (Justices of Peace) को श्रमिकों का वेतन निश्चित करने का अधिकार दिया गया। सन् १६०१ में निर्धन सहायता अधिनियम पारित हुआ, जिसमें पुरानी अत्याचारी नीति पूर्णरूप से परिवर्तित कर दी गई। इसके अन्तर्गत निर्धनों की सहायतार्थ एक अनिवार्य नीति को अपनाया गया। प्रत्येक नगर में

निर्धनों के ओवरसियर नियुक्त किये गये, जिनका कार्य वृद्ध, पीडित अथवा रोजगार न होने के कारण पुन निर्धनों की सहायता हेतु कर उगाहना (Raise taxation) था, जो वृद्धावस्था और निर्बलता के कारण कार्य नहीं कर सकते थे या बेरोजगार थे। कार्य करने के योग्य व्यक्तियों को कार्य करने से मना करने पर दण्डित किया जाता था। सन् १६०१ का यह अधिनियम कुछ सशोधनो के पश्चात् सन् १८३४ तक सार्वजनिक सहायता कार्यों का आधार रहा, यद्यपि इस कार्य के लिए और भी अधिनियम पारित किये गये थे।

एक महत्वपूर्ण अधिनियम १८३४ मे पारित किया गया, जिसके अनुसार निर्धन कानून प्रशासन को निर्धन कानून कमिश्नरों के केन्द्रीय बोर्ड (Central Board of Poor Law Commissioners) के अन्तर्गत लाया गया। स्वस्थ शरीर वाले व्यक्तियो के लिए 'कार्य गृह परीक्षा' (Work House Tests) की व्यवस्था की गई। 'पेरिशो' (Perishes) (कस्बा) को सघो मे सगठित किया गया था। प्रत्येक सघ मे उपकर देने वाले व्यक्ति एक सरक्षक बोर्ड (Board of Guardians) का चुनाव करते थे। कार्य गृह मे सब स्वस्थ शरीर वाले निर्धनों को भरती करके सहायता दी जाती थी और ६० वर्ष से अधिक आयु वाले एवं अस्वस्थ व्यक्तियो को कार्य गृह के बाहर सहायता दी जाती थी। सन् १८६७ मे निर्धन कानून बोर्ड (Poor Law Board) स्थापित हुआ और उसने सन् १८७१ तक सार्वजनिक सहायता के प्रशासन का निरीक्षण किया और तब उसकी जगह स्थानीय सरकारी बोर्ड (Local Government Board) बनाया गया, जो सन् १६१६ तक रहा। इसके उपरान्त स्वास्थ्य मन्त्रालय का निर्माण हुआ, जिसने सार्वजनिक सहायता के प्रशासन कार्य को सम्भाला। सन १८३४ के अधिनियम ने यह सिद्धान्त बना कर कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका स्वय अपने परिश्रम से कार्य करके अर्जित करनी चाहिए ईमानदारी से कार्य करने वालो को प्रोत्साहन दिया, परन्तु इस अधिनियम मे बेरोजगारी के लिये कोई व्यवस्था नहीं थी। सन् १८६५ मे बेरोजगारो को कुछ सहायता 'फ्रेंडली सोसाइटीज' (Friendly Societies) द्वारा भी दी गई। सन् १६०५ मे निर्धन कानून के लिए रायल कमीशन नियुक्त किया गया, जिसने अपनी रिपोर्ट सन् १६०६ मे दी। कमीशन ने कहा कि देश मे भिक्षा वृत्ति व्याप्त थी और उसने कार्यगृहो मे बच्चो को रखने की प्रथा की निन्दा की, और इस ओर भी सकेत किया कि गृह से बाहर दी जाने वाली सहायता का प्रशासन उचित प्रकार से नहीं हो रहा था।

सन् १६२६ मे एक स्थानीय सरकारी अधिनियम (Local Government Act) पारित हुआ जिसके अनुसार निर्धन कानून की एक पूर्णतया नवीन प्रणाली का आरम्भ हुआ। निर्धन कानून के प्रशासन का कार्य काउण्टी कौंसिलो और काउण्टी बोरो कौंसिलो (County Borough Councils) को स्थानान्तरित कर दिया गया जिनको कि सार्वजनिक सहायता समितियो के द्वारा कार्य करना

होता था। यह आशा व्यक्त की गई थी कि इस कानून के कारण कुछ बचत होगी व कार्यक्षमता बढ़ेगी और अन्त में निर्धन कानून के प्रशासन की जिम्मेदारी समस्त समाज की न होकर स्थानीय जिलों की हो जायेगी।

बेरोजगारी बीमा
(Unemployment Insurance)

इंगलैंड में 'बेरोजगारी बीमा' ने भी जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। जैसा कि ऊपर 'निर्धन कानून' के अन्तर्गत बताया गया है, भूतकाल में बेरोजगारी को माना ही नहीं जाता था और स्वस्थ शरीर वाले बेरोजगार व्यक्तियों को आलसी मान कर दण्ड दिया जाता था। परन्तु शीघ्र ही इस बात का अनुभव कर लिया गया कि प्रत्येक व्यक्ति को कार्य देने की जिम्मेदारी राज्य की है और यदि यह सम्भव न हो सके तो बेरोजगारों को सहायता दी जानी चाहिये। सन् १९११ में कुछ उद्योगों के लिये अनिवार्य बेरोजगारी राज्य बीमा योजना लागू की गई। यह योजना अंशदान सिद्धान्त पर आधारित थी। समय-समय पर इस अधिनियम में परिवर्तन होते रहे। सन् १९१६ में यह योजना अन्य रोजगारों तक बढ़ा दी गई। महायुद्ध के तुरन्त बाद ही "काम रहित व्यक्तियों के लिये एक दान (Out of Work Donations) योजना" भूतपूर्व सैनिकों, जिनको कार्य नहीं मिल सका था, और अन्य तमाम श्रमिकों के लिये चालू की गई।

सन् १९२० में अनिवार्य राजकीय बीमा योजना को शारीरिक कार्य करने वाले श्रमिकों और उन मानसिक कार्य करने वाले श्रमिकों के लिये भी जो २५० पौंड प्रति वर्ष से अधिक नहीं कमाते थे लागू कर दिया गया। कृषि से सम्बन्धित श्रमिक एवं घरेलू कार्य के श्रमिक इस योजना के अन्तर्गत नहीं आते थे। बेरोजगारों को मालिक, श्रमिक एवं सरकार के अंशदान (Contributions) से निर्मित निधि में से सहायता दी जाती थी। समय-समय पर अंशदान की दरों और लाभ दरों को बढ़ाया भी गया। सन् १९३१ में सरकार ने राष्ट्रीय बचत अधिनियम (National Economy Act) पारित किया, जिसके अन्तर्गत बेरोजगारी बीमे का अंशदान तो बढ़ा दिया परन्तु लाभों में कमी कर दी गई। सन् १९३४ में यह तरीका भी समाप्त कर दिया गया। बेरोजगारी और 'निर्धन सहायता' चाहने वालों का अन्तर स्पष्ट कर दिया गया और इनको दो वर्गों में बाँटा गया—प्रथम, बीमे के अन्तर्गत आने वाले और द्वितीय, सहायता पाने वाले। सहायता चाहने वालों का 'आर्थिक साधन जाँच' की जाती थी। सन् १९३६ में कृषि-श्रमिकों के लिये बेरोजगारी बीमा की एक अलग योजना बनाई गयी।

बेरोजगारी बीमा योजना की इस बात पर आलोचना की गई कि इसकी लागत अधिक थी तथा अंशदान व लाभ की दरें बहुत कम थीं। आगामी पृष्ठों में जैसा कि उल्लेख किया गया है, महायुद्ध के पश्चात् इस योजना के स्थान पर एक 'सामाजिक सुरक्षा योजना' लागू कर दी गई।

स्वास्थ्य बीमा (Health Insurance)

ग्रेट ब्रिटेन में अनिवार्य स्वास्थ्य बीमा योजना भी चालू रही है। इसको सन् १९११ में प्रारम्भ किया गया था और बेरोजगारी बीमे की तरह यह भी अंशदान सिद्धान्त पर आधारित थी। यह योजना उस मजदूर वर्ग के समस्त व्यक्तियों पर लागू थी जिनकी आयु १६ वर्ष से अधिक एवं ६५ वर्ष से कम थी और जिनकी वार्षिक आय २५० पौंड से अधिक नहीं थी। उपलब्ध लाभों में नकदी और चिकित्सा सहायता भी सम्मिलित थी। बीमारी लाभ, असमर्थता लाभ तथा मातृत्वकालीन लाभ भिन्न-भिन्न दरों पर प्रदान किये जाते थे।

वृद्धावस्था पेंशन (Old Age Pensions)

वृद्धावस्था पेन्शनों की योजना ब्रिटेन में १९०८ के अधिनियम के अन्तर्गत आरम्भ की गई और सामान्य करों द्वारा संचित निधि में से लाभ उपलब्ध किये जाते थे। मालिकों एवं श्रमिकों को अंशदान नहीं देना पड़ता था। सन् १९१४ में प्रत्येक वह व्यक्ति, जिसकी आयु ७० वर्ष से अधिक हो और जो ब्रिटेन में कम से कम २० वर्ष तक अधिवासी रहा हो या जो कम से कम १२ वर्ष से इङ्गलेंड में निवास कर रहा हो, वृद्धावस्था पेन्शन लेने का अधिकारी हो जाता था। परन्तु यह शर्त भी थी कि उसकी वार्षिक आय ३१.पौं० १० शि० से अधिक न हो और उसे निर्धन सहायता भी न मिलती हो। अधिकतम साप्ताहिक लाभ ५ शि० और न्यूनतम साप्ताहिक लाभ १ शि० था। बाद में अधिनियम का संशोधित किया गया और उसमें अंशदान सिद्धान्त को लागू कर दिया गया। सन् १९२५ एवं सन् १९२९ में पारित किए गए अधिनियम के अन्तर्गत स्वास्थ्य बीमा प्रणाली में आने वाले सब व्यक्तियों को वृद्धावस्था अंशदान पेन्शन योजना के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया गया। मालिकों तथा श्रमिकों के कुल अंशदानों की दरों में बाद के वर्षों में क्रमशः वृद्धि की गई। राज्य इस कार्य के लिये वार्षिक अनुदान देती थी।

आश्रित पेंशन (Dependants' Pensions)

विधवा माताओं और अनाथ बच्चों को पेन्शन देने की योजना को भी सन् १९२५ के अंशदान के आधार पर लागू किया गया। विधवाओं को १० शि० प्रति सप्ताह की दर से पेन्शन दी गयी। इसके अतिरिक्त उनको १४ वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिये अलग से भत्ता दिया गया जिसकी दर सबसे बड़े बच्चे के लिये ५ शि० और अन्य बच्चों के लिए ३ शि० प्रति सप्ताह थी। इस योजना के अन्तर्गत विधवा को ७० वर्ष की आयु तक अथवा उसके दुबारा विवाह करने तक यह पेन्शन उपलब्ध थी। परन्तु पुनर्विवाह का बालकों के भत्तों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। इस योजना के अन्तर्गत बीमाकृत मृतकों के अनाथ बच्चों के लिये पेन्शन देने की व्यवस्था थी।

श्रमिक क्षतिपूर्ति (Workmen's Compensation)

इङ्गलैंड में प्रथम श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम सन् १८०६ में पारित हुआ। इसके अन्तर्गत मालिकों को, आयु एवं स्त्री पुरुष का भेद किये बिना, अपने श्रमिकों को उस समय क्षतिपूर्ति देनी पड़ती थी, जब कोई श्रमिक किसी दुर्घटना या विशेष उद्योग-जनित बीमारी के कारण, जो उसको रोजगार काल में लगी हो, अपनी जीविका कमाने से विवश हो जाता था। स्थायी एवं अस्थायी असमर्थता में साप्ताहिक भुगतान किया जाता था और मृत्यु पर आश्रितों को इकमुश्त राशि दी जाती थी। सन् १९२३ में इस अधिनियम को संशोधित किया गया जिसके अन्तर्गत क्षतिपूर्ति की राशि और उसके क्षेत्र में वृद्धि की गई और इकमुश्त राशि देकर निबटारे की अनुमति भी मिल गई। परन्तु क्षतिपूर्ति के लिये अनिवार्य बीमे की कोई व्यवस्था नहीं थी, यद्यपि बहुत से मालिक विभिन्न कम्पनियों में अपना बीमा करा कर अपने दायित्व से मुक्त हो गए थे।

मालिकों की लाभ योजनायें

सामाजिक बीमे की राज्य प्रणाली के अतिरिक्त मालिकों द्वारा भी पेन्शन योजनायें, बचत योजनायें और बेरोजगारी लाभ योजनायें ऐच्छिक सिद्धान्त पर चालू की गई है। परन्तु भुगतान राशि प्रत्येक फर्म में भिन्न-भिन्न है। इनमें से अधिकतर व्यवस्थायें औद्योगिक कल्याण योजनाओं के अन्तर्गत आती है जो कि संसद् के अधिनियमों द्वारा निर्धारित की गई है, जैसे—'जनता स्वास्थ्य अधिनियम' (Public Health Act), दुकान अधिनियम (Shops Act), फैक्ट्री अधिनियम, आदि। स्वास्थ्य कल्याण और कार्यों के घन्टों के सम्बन्ध में मालिकों और श्रमिक संघों के मध्य हुए समझौते द्वारा भी ऐसी व्यवस्थायें की गई है, और कुछ व्यवस्थायें मालिकों ने ऐच्छिक रूप से एक विशेष स्तर बनाए रखने के हेतु भी की हैं।

बैवरिज आयोजना से पूर्व योजनाओं के दोष

महायुद्ध से पूर्व ब्रिटेन में सामाजिक बीमे की उपरोक्त प्रणाली ही प्रचलित थी, परन्तु इसमें कुछ दोष भी थे। योजनाओं के अन्तर्गत बहुत से अभीष्ट (Needy) श्रमिक नहीं आते थे। लाभ देने के हेतु जो 'जीविका साधन जांच' की जाती थी, उसमें कोई समानता नहीं थी। फिर लाभ दरें बिना किसी उचित कारण के घटती-बढ़ती रहती थी। बैवरिज आयोजना में इन सब दोषों को दूर करने का प्रयास किया गया।

बैवरिज आयोजना (The Beveridge Plan)

जून, सन् १९४१ में सर विलियम बैवरिज को सामाजिक बीमे की वर्तमान राष्ट्रीय योजनाओं और सम्बन्धित सेवाओं का सर्वेक्षण करने और सुझाव देने के हेतु नियुक्त किया गया। उनकी रिपोर्ट दिसम्बर सन् १९४२ में संसद् के सम्मुख रखी गई। उसके पश्चात् संसदीय अधिनियमों के द्वारा इङ्गलैंड में इस रिपोर्ट को कार्यान्वित कर दिया गया है।

आयोजना की आधारभूत विशेषतायें

बैवरिज आयोजना का सर्वश्रेष्ठ ध्येय यह है कि जहां तक हो सके, विभिन्न कारणो से उत्पन्न हुई आवश्यकताओ की पूर्ति करने के लिये एक सगठित निर्वाह प्रणाली की व्यवस्था की जाय। सर विलियम बैवरिज ने अपनी योजना को एक ऐसी समान दर (Uniform Rate) पर आधारित किया, जिसमे विभिन्न स्थितियो का सामना करने के लिये अन्य विषय भी पूरक के रूप मे जोडे जा सकते थे, और जिसमे परिवर्तन किया जा सकता था। उन्होने बच्चो एव वयस्क आश्रितो के प्रश्न पर पृथक् रूप से विचार करने का निश्चय किया परन्तु पति एव पत्नी को एक साथ ही लिया और तलाक अथवा विच्छेद और वैधव्य के लिये विशेष व्यवस्था की। उन्होने बहुत-सी विदेशी सामाजिक योजनाओ की इस नीति को, कि अशदान और लाभ श्रमिक के वेतन के हिसाब म निर्धारित हो, स्वीकार नही किया और एक राष्ट्रीय न्यूनतम (National Minimum) सिद्धान्त उन्होने बनाया, जिससे राष्ट्रीय न्यूनतम सुविधा को, जहा तक हो सके, समस्त सकटो म राज्य द्वारा ही लागू करने की व्यवस्था थी।

बैवरिज आयोजना की पूर्व-धारणाय

बैवरिज आयोजना निम्नलिखित तीन पूर्व धारणाओ (Assumptions) पर आधारित थी, जिनका उसकी सफलता के लिये आवश्यक माना गया है—

(१) **बच्चो के लिये भत्ते** (Children's Allowances)—वर्तमान औद्योगिक प्रणाली के अन्तर्गत श्रमिक के परिवार के आकार और उसके वेतन मे कोई सम्बन्ध नही है। यह दोष इस प्रकार दूर किया जा सकता है कि बच्चो के पालन-पोषण का श्रमिको के वेतन से कोई सम्बन्ध न रखा जाय। सर विलियम बैवरिज के अनुसार बच्चो को भत्त आयु के अनुसार दिये जाने चाहिये। यह भत्ते बच्चो को इस अधिकार से मिलन चाहिय कि वे बच्चे है। इन भत्तो के लिए ऐसी कोई शर्त नही होनी चाहिए कि उनको माता-पिता किस कार्य म लगाये और न ही उनके लिये कोई 'जीवका साधन जाँच' होनी चाहिये। इसकी लागत को भी राज्य द्वारा अपनी कर आय मे से वहन करना चाहिये। इसलिए यह योजना अशदान रहित है।

(२) **व्यापक स्वास्थ्य सेवा** (Comprehensive Health Service)—यह सेवा सरकार, चिकित्सको एव निजी सस्थाओ द्वारा प्रदान की जाती थी। सन् १९१२ मे राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना प्रारम्भ हुई। सन् १९४१ मे इसके अन्तर्गत लगभग २ करोड ३० लाख व्यक्ति (अथवा ब्रिटेन की आधी जनसख्या) आते थे। मातृत्व-कालीन एव बच्चा के कल्याण के लिए भी योजनायें थी, जिनका प्रशासन विभिन्न प्राधिकारियो के हाथो में था। इसके अतिरिक्त निर्धन कानून, स्कूल, चिकित्सा सेवा आदि भी थ। फिर भी इन योजनाओ म सामञ्जस्य नही था। बैवरिज योजना प्रत्येक नागरिक की बीमारी व असमर्थता के लिए एक व्यापक चिकित्सा सेवा की विद्यमानता (Existence) को लेकर आगे चलती है, चाहे

नागरिक की आय कुछ भी हो। रिपोर्ट में इस बात पर जोर दिया गया है कि बीमारी और असमर्थता की स्थिति में राज्य द्वारा अधिक लाभ दिए जाने चाहियें और बीमारी व असमर्थता के कारणों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। चिकित्सा व्यवस्था इस बात पर निर्धारित नहीं होनी चाहिये कि किसी व्यक्ति की अदायगी क्षमता कितनी है। यह लागत तो सारे समाज द्वारा वहन की जानी चाहिए, क्योंकि इस सुविधा के अभाव में उत्पादन शक्ति कम हो जाती है और आलस्य बढ़ जाता है। इसलिये बैवरिज योजना में यह सुझाव है कि सामाजिक सुरक्षा योजना में जो अंशदान लिये जायें उन्हीं में चिकित्सा सुविधाओं के लिये एक अनिवार्य अदायगी सम्मिलित कर लेनी चाहिये जिससे प्रत्येक नागरिक को ये सेवायें बिना किसी अतिरिक्त सभार के प्राप्त हो सकें। यह बात सरकार द्वारा मान ली गई है। परन्तु चिकित्सा और हस्पतालों की निजी रूप से व्यवस्था करने की भी अनुमति है।

(३) पूर्ण रोजगार (Full Employment)—बेवरिज आयोजना यह भी मानकर चलती है कि यदि इसको सफलतापूर्वक चलाना है तो विस्तृत बेरोजगारी को रोक-थाम करनी चाहिये। फिर भी यह मान लिया गया है कि ब्रिटेन की जनसंख्या का ८·५ प्रतिशत भाग अथवा १५ लाख व्यक्ति साधारणत बेरोजगार रहेंगे। बिना किसी शर्त के बेरोजगारी लाभ केवल थोड़े से समय के लिये ही दिया जा सकता है, क्योंकि यदि बेरोजगारी अधिक समय तक रहती है तो सामाजिक सुरक्षा की योजना अवरुद्ध (Breakdown) हो जायेगी।

बैवरिज आयोजना का क्षेत्र

इस आयोजना के विषय में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि यह प्रत्येक व्यक्ति के लिये है और आवश्यकता के मूल कारणों को ध्यान में रखती है। किसी भी सम्भव संकट को छोड़ा नहीं गया है। इस उद्देश्य से जनसंख्या को जीवन-निर्वाह के साधनों के आधार पर छः वर्गों में बाँटा गया है—(१) कर्मचारी चाहे उनकी आय कुछ भी हो। (२) लाभ हेतु कार्य करने वाले मालिक एवं अन्य व्यक्ति। (३) कार्य करने योग्य आयु की गृहणियाँ जो किसी कमाने वाले रोजगार पर न लगी हों तथा पेंशन योग्य आयु से कम आयु की हों। (४) कार्य करने योग्य आयु वाले अन्य व्यक्ति जो रोजगार पर न लगे हों। (५) कार्य योग्य आयु से कम आयु के व्यक्ति अर्थात् १६ वर्ष से कम आयु के बालक, और (६) कार्य योग्य आयु से अधिक आयु वाले अवकाश प्राप्त व्यक्ति।

इन ६ वर्गों में सम्पूर्ण जनसंख्या आ जाती है। प्रत्येक व्यक्ति एक न एक वर्ग के अन्तर्गत आता है और किसी न किसी लाभ का अधिकारी है। मालिक एवं धनी व्यक्ति चाहे लाभ न लें, परन्तु उन्हें अंशदान देना पड़ता है। बच्चों, अवकाश प्राप्त व्यक्तियों और गृहणियों को अंशदान नहीं देना पड़ता।

अंशदान की दरें (Rates of Contributions)

सब बीमा युक्त व्यक्तियों को, चाहे उनके साधन कुछ भी हो, अंशदान की राशि एक नियत दर से देनी पड़ती है। इस आयोजना में सुझाई गई सामान्य दर पुरुष एवं स्त्री के लिये क्रमशः ४½ शि० और ३¾ शि० है। मालिक का अंशदान प्रत्येक पुरुष एवं स्त्री के लिये क्रमशः ३¼ शि० और २¾ शि० है। अंशदान आयु-वर्ग के अनुसार घटते बढ़ते हैं।

आयोजना के अन्तर्गत लाभ

आयोजना के अन्तर्गत निम्नलिखित लाभों की व्यवस्था है—

• **गृहिणियों के लिये लाभ**—किसी गृहणी (House-wife) को कोई अंशदान नहीं देना होगा, परन्तु वह ६ लाभों की अधिकारिणी होगी (क) १० पौण्ड तक का विवाह हेतु अनुदान। (ख) प्रसव के समय पर ४ पौण्ड का मातृत्व-कालीन अनुदान। यदि वह कमाने वाला रोजगार करती हो तो उसे १३ सप्ताह तक बिना अंशदान दिये ३६ शि० प्रति सप्ताह का अतिरिक्त मातृत्व-कालीन लाभ मिलेगा। (ग) १३ सप्ताह तक वैधव्य लाभ ३६ शि० प्रति सप्ताह की दर से मिलेगा। (घ) १३ सप्ताह के पश्चात् जब तक बालक आश्रित रहेंगे उसे २४ शि० प्रति सप्ताह अभिरक्षक (Guardian) लाभ मिलेगा और उसके अतिरिक्त बालकों का भत्ता भी मिलेगा। यदि उसका कोई आश्रित बालक नहीं है, तब उसको प्रशिक्षण योजना के अन्तर्गत काम के लिये परीक्षा पास करनी होगी और इस बीच में उसे प्रशिक्षण लाभ मिलेगा। (च) यदि उसे बिना अपनी गलती के तलाक मिला हो तो उसको वैसा ही लाभ मिलेगा जैसा विधवा को मिलता है। (छ) बीमार पड़ने पर उसको बीमारी लाभ के रूप में सहायता उपलब्ध होगी।

बच्चों के लिये भत्ते—आयोजना के अन्तर्गत इस बात की भी व्यवस्था है कि हर परिवार में प्रथम आश्रित बालक के अतिरिक्त हर बालक को ८ शि० प्रति सप्ताह भत्ता दिया जायेगा, चाहे उसके माता पिता की आय व सामाजिक स्थिति कैसी भी हो। यदि माता पिता धनोपार्जन करने में असमर्थ हो तो प्रथम बालक के लिये भी भत्ते की व्यवस्था है।

बेरोजगारी और बीमारी लाभ—इसके अन्तर्गत अविवाहित व्यक्ति को २४ शि० प्रति सप्ताह और विवाहित दम्पत्ति को ४० शि० प्रति सप्ताह दिया जाता है। ऐसे बेरोजगार पुरुष को, जिसके पत्नी व दो बच्चे हों, ५० शि० प्रति सप्ताह मिलेगा। इस लाभ के लिये केवल यही शर्त है कि जो छः महीने से अधिक बेरोजगार रहेंगे, उनको एक प्रशिक्षण केन्द्र में भर्ती होना पड़ता है जहाँ कि उनको एक निर्धारित समय के लिये कार्य सिखाया जाता है और इस समय उनको एक प्रशिक्षण लाभ मिलता है जो कि बेरोजगारी लाभ की तरह होता है।

श्रमिक क्षतिपूर्ति—वैवरिज आयोजना के अन्तर्गत १३ सप्ताह तक की असमर्थता के लिये श्रमिक को बीमार मानकर बीमारी लाभ दिया जायेगा। इसके

पश्चात् साप्ताहिक अदायगी बढ़ाकर उसकी पहली आय के २/३ भाग तक कर दी जाएगी, परन्तु यह निश्चित सामान्य दर से कम नहीं हो सकती। आयोजना में क्षतिपूर्ति के मामलों पर विचार करने के लिए साधारण न्यायालयों के स्थान पर एक विशेष व्यवस्था का सुझाव है। यदि दुर्घटना घातक है तो आश्रितों को कुल मिलाकर ३३० पौण्ड का इकमुश्त अनुदान दिया जायेगा।

आयोजना में किसी वयस्क व्यक्ति की मृत्यु पर २० पौण्ड, १० और २१ वर्ष के बीच के व्यक्ति की मृत्यु पर १५ पौण्ड, ३ और १० वर्ष के बच्चे की मृत्यु पर १० पौण्ड और ३ वर्ष से नीचे के बच्चों के मरने पर ६ पौण्ड का अन्तिम-संस्कार-अनुदान दिये जाने की भी व्यवस्था है।

वृद्धावस्था पेन्शन – पुरुषों को वृद्धावस्था पेन्शन ६५ वर्ष और स्त्रियों को ६० वर्ष की आयु में दी जायेगी। इसकी दर अविवाहित व्यक्ति के लिये २४ शि० और दम्पत्ति के लिये ४० शि० है, चाहे दूसरे साथी की आयु कुछ भी हो।

आयोजना का प्रशासन और उसकी लागत

जहाँ तक प्रशासन का प्रश्न है, सर विलियम बैवरिज का सुझाव यह था कि प्रशासन के दायित्व को एक संगठित रूप देना चाहिए और एक सामाजिक बीमा निधि के साथ एक सामाजिक सुरक्षा मन्त्रालय (Ministry of Social Security) बनना चाहिए। आरम्भ में तो सरकार ने इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया, परन्तु अब पृथक् रूप से एक राष्ट्रीय बीमा मन्त्रालय (*Ministry of National Insurance*) बना दिया गया है।

सन् १९४५ में योजना की लागत ६,९७० लाख पौण्ड लगाई गई थी और १९४५ में ८,५८० लाख पौण्ड (१,१०० करोड़ रुपये) का अनुमान है। यह सब अनुमान सन् १९३८ के मूल्य स्तर से २५ प्रतिशत ऊँचे मूल्य पर आधारित हैं। मूल्यों के घटने-बढ़ने से लाभ और अंशदानों की राशि भी कम या अधिक करनी पड़ेगी।

बैवरिज आयोजना का आलोचनात्मक मूल्यांकन

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बैवरिज आयोजना एक ऐसी व्यापक योजना है जो किसी व्यक्ति को जीवन की समस्त विपत्तियों से छुटकारा दिलाने में सहायक हो सकती है। व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु के समय तक (Cradle to the Grave) रक्षा होती है और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके आश्रितों की भी रक्षा होती है। यदि आयोजना के समस्त सिद्धान्तों को कार्य-रूप दिया जाय तो सामाजिक सहायता की दृष्टि से यह लगभग एक साम्यवादी समाज को जन्म देगी। फिर भी इसमें सन्देह है कि कोई देश इतने उच्च-स्तर की सुरक्षा की व्यवस्था कर सकता है, जब तक कि उत्पादन एवं राष्ट्रीय आय को बढ़ाने के साधन न अपनाये जायें। यह देखा गया है कि आयोजना को जब तक पूरी तरह से काटा-छाँटा न जाये तब तक प्रत्येक वर्ष यह आयोजना ब्रिटेन के करदाताओं के

बोझ को, जो पहिले से ही अधिक है, बढ़ाती रहेगी। एक मुख्य भय यह भी है कि कहीं ऐसी योजना कार्य करने की प्रेरणा को कम न कर दे। साथ ही जब तक नागरिक पूर्णतया शिक्षित नहीं होंगे और उनमें आत्मसम्मान तथा राष्ट्र के सम्मान की भावना नहीं होगी, ऐसी योजना सफल नहीं हो सकती। पूर्ण रोजगार के आदर्श की पाना भी अत्यन्त कठिन है। आयोजना इस पूर्व धारणा पर भी आधारित है कि बेरोजगारी दर कुल व्यक्तियों की केवल ८.५ प्रतिशत होगी। यह दर कम है क्योंकि १६३६ में बेरोजगारी दर १५ प्रतिशत थी। परन्तु इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि ऐसी योजना से कार्यकुशलता बढ़ेगी और यह जनसंख्या को कम करने की विचारधारा को रोकेगी और क्योंकि यह पूर्ण रोजगार मानकर चलती है। इससे उत्पादन भी अधिक होगा।

बैवरिज आयोजना का कार्यान्वित होना वर्तमान स्थिति

बैवरिज रिपोर्ट में लोगों ने बहुत रुचि दिखाई और सरकार द्वारा भी यह सामाजिक सुरक्षा के भविष्य के ढाँचे का आधार मान ली गई। महायुद्ध के पश्चात् कुछ ही वर्षों में बहुत से अधिनियमों द्वारा, जिनको कि ५ जुलाई सन् १९४८ म कार्यरूप दिया गया सामाजिक सुरक्षा की एक नवीन व्यापक प्रणाली का उदय हुआ। बाद में अधिनियमों द्वारा इसमें बहुत से समजन किये गये है। वर्तमानकाल म पारिवारिक भत्ते राष्ट्रीय बीमा, औद्योगिक-क्षति बीमा, राष्ट्रीय सहायता एव राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा तथा युद्ध पेन्शन आदि मिलकर इंगलैण्ड में एक ऐसी सामाजिक सुरक्षा प्रणाली का निर्माण करते हैं, जिसमें कि किसी व्यक्ति का जीवन स्तर एक न्यूनतम स्तर से नीचे किसी भी दशा म नहीं गिर सकता।[1]

पारिवारिक भत्ते (Family Allowances)—प्रथम बालक को छोड़कर निर्धारित सीमा से कम आयु वाले प्रत्येक बालक को यह भत्ता सरकार द्वारा दिया जाता है। यह सीमा स्कूल जाने की आयु तक होती है, जो साधारणतः १५ वर्ष होती है और यदि बच्चा स्कूल में हो अथवा शिक्षार्थी हो तो यह सीमा १८ वर्ष तक की भी हो सकती है। अगर बच्चा अपंग हो तो यह सीमा १६ वर्ष है। पारिवारिक भत्ता योजना प्रथम बार ६ अगस्त सन् १९४६ में जून १९४५ के पारिवारिक भत्ता अधिनियम के अन्तर्गत लागू हो गई। भत्ते की दर ५ शि० प्रति सप्ताह थी परन्तु उसे १९५२ के पारिवारिक भत्ता एव राष्ट्रीय बीमा अधिनियम (Family Allowances and National Insurance Act) के अन्तर्गत बढ़ाकर ८ शि० प्रति सप्ताह कर दिया गया। फिर सन् १९५६ के एक ऐसे ही अधिनियम द्वारा इस भत्ते की दर तीसरे तथा उसके बाद के बच्चों के लिए १० शि० प्रति सप्ताह कर दी गई है जो अब भी लागू है।

राष्ट्रीय बीमा (National Insurance)—सन् १९४६ के राष्ट्रीय बीमा अधिनियम को ५ जुलाई सन् १९४८ को पूर्णरूप से कार्यान्वित किया गया। तब

1 Britain 1966—An Official Handbook

से अब तक इसमें अनेक बार १९४६–६४ के राष्ट्रीय बीमा अधिनियमों द्वारा और १९५२ व १९५६ के परिवार भत्ता तथा राष्ट्रीय बीमा अधिनियमों द्वारा संशोधन किये जा चुके हैं। अधिनियम काम पर लगे हुए ऐसे सभी वयस्क व्यक्तियों पर लागू होता है, जो ६ पौण्ड प्रति सप्ताह पाते हैं बशर्ते कि वे संविदा पर कार्य न करते हो। वृद्ध व्यक्तियों, बच्चों, विवाहित स्त्रियों एवं अल्प आय वाले व्यक्तियों के अतिरिक्त सबको साप्ताहिक निर्धारित अंशदान देना पड़ता है। अंशदानों को तीन वर्गों में बाँटा गया है—(१) रोजगार पर लगे व्यक्ति, (२) स्वयं रोजगार करने वाले व्यक्ति, (३) ऐसे व्यक्ति जो रोजगार पर न लगे हो। अप्रैल १९६६ में अंशदान की मुख्य साप्ताहिक दरें अग्रलिखित तालिका में दी गई है।

जहाँ तक लाभों का प्रश्न है, इस योजना मे बीमारी, बेरोजगारी, मातृत्व-कालीन और वैधव्य-लाभ, अभिरक्षण भत्ता, अवकाश प्राप्ति की पेंशन और मृत्यु अनुदान की व्यवस्था है। प्रथम वर्ग के व्यक्तियों को सब लाभ मिलते है, द्वितीय वर्ग के व्यक्तियों को बेरोजगारी लाभ एव औद्योगिक क्षति लाभ के अतिरिक्त सब लाभ उपलब्ध हैं और तृतीय वर्ग के व्यक्तियों के लिए बीमारी, बेरोजगारी, औद्योगिक क्षति और मातृत्व-कालीन लाभ के अतिरिक्त समस्त लाभ उपलब्ध है। इनके पाने की शर्त यह है कि एक विशेष काल के लिए कम से कम कुछ अंशदान दिये जावे, परन्तु अंशदान देने की यह शर्त अभिरक्षकों के भत्ते और औद्योगिक क्षति के लिये लागू नहीं होती। लाभो की दरों में समय-समय पर वृद्धि की गई है।

बीमारी तथा अन्य संकट काल से सम्बन्धित अन्य अधिकांश लाभो की मूलभूत प्रामाणिक साप्ताहिक दर अब ४ पौण्ड है, यद्यपि कुछ मामलो मे बढी हुई दरें भी अदा की गई हैं। बेरोजगारी-लाभ प्रारम्भ में तो ३० सप्ताह के लिये दिए जाते हैं परन्तु बाद में ये अधिक से अधिक १९ माह के लिये दिये जा सकते है। **मातृत्वकालीन** अनुदान एक प्रसव के लिए २२ पौण्ड दिया जाता है। जुड़वाँ बच्चो के जन्म पर यदि बच्चा जन्म के १२ घण्टे बाद तक जीवित रहता है तो २२ पौण्ड प्रति बच्चे पर अतिरिक्त सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त, **विधवा लाभ** तथा **विधवा माताओं के भत्ते** हैं जिसमे निम्नलिखित सम्मिलित है : विधवा भत्ता प्रथम १३ सप्ताहो के लिये ५ पौण्ड १२ शि० ६ पें० प्रति सप्ताह की दर से, प्रथम बच्चे के लिये २ पौण्ड, दूसरे बच्चे के लिये १ पौण्ड १२ शि० और आगे प्रत्येक बच्चे के लिये १ पौण्ड १० शि०। २ पौण्ड प्रति सप्ताह की **अभिरक्षण सहायता** उस व्यक्ति को दी जाती है जिसके परिवार मे एक ऐसा बच्चा हो जिसके बीमा-कृत माता-पिता मर गये हों। **अवकाश प्राप्ति पेंशन** ६५ वर्ष से ऊपर आयु वाले पुरुषों और ६० वर्ष से ऊपर आयु वाली स्त्रियो को उस दशा मे दी जाती थी जब कि वे नियमित कार्य से अवकाश ग्रहण करते थे और शेष दशाओ में यह आयु पुरुषों के लिए ७० वर्ष और स्त्रियों के लिये ६५ वर्ष थी। इनके लिये प्रामाणिक

साप्ताहिक अनदान

	राष्ट्रीय बीमा की सम दर[3]	आरोही अंशदान		स्वास्थ्य सेवायें	योग	
		से	तक		से	तक
वर्ग १—[3]	शि० पें०	शि० पें०	शि० पें०	शि० पें०	शि० पें०	शि० पें०
रोजगार पर लगे हुए ऐसे व्यक्ति जो आरोही पेन्शन योजना में भाग लेते हैं—कर्मचारियों द्वारा अनदान	१० ११½	१	७ ८	२ ८½	१३ ६	२१ ४
मालिकों द्वारा अनदान	१२ ३½	१	७ ८	७½	१३ ०	२० ७
योग	२३ ३	२	१५ ४	२ ४	२६ ६	४१ ११
रोजगार पर लगे हुए व्यक्ति जो संविदा द्वारा कार्य करते हैं—					शि०	पें०
कर्मचारियों द्वारा अनदान	१३ ४½			२ ८½	१६	१
मालिकों द्वारा अनदान	१४ ८½			३½	१५	४
योग	२८ १			३ ४	३१	५
वर्ग २— स्वयं रोजगार करने वाले व्यक्तियों का अनदान—	१५ १०			२ १०	१८	८
वर्ग ३— ऐसे व्यक्तियों का अनदान जो रोजगार पर नहीं लगे हैं—	१२ १			२ १०	१४	११

ऊपर लिखित अनदान की सभी दरें ऐसी हैं जो पुरुषों द्वारा दी जाती हैं। महिलाओं और १८ वर्ष से कम आयु के लड़के लड़कियों को कम दर में अनदान देना पड़ता है।

२. वर्ग एक में औद्योगिक क्षति बीमा के लिए अनदान भी आ जाते हैं। इनकी दर कर्मचारियों के लिए ६ पेंस और मालिकों के लिए १० पेंस है।

३. काम पर लगे हुए ऐसे व्यक्ति जो ६ पौंड प्रति सप्ताह से कम कमाते हैं तथा उनके मालिक केवल राष्ट्रीय बीमे की समान दर और स्वास्थ्य सेवा अनदान अदा करते हैं।

दर ५० शि० प्रति सप्ताह है। किसी व्यस्क व्यक्ति की मृत्यु पर अन्तिम संस्कार के लिये २५ पौण्ड और बच्चों एवं बूढ़ों की मृत्यु पर इससे कुछ कम मृत्यु-अनुदान दिया जाता है।

औद्योगिक क्षति बीमा योजना (Industrial Injuries Insurance Scheme)—इस योजना ने जुलाई सन् १९४८ में श्रमिकों की क्षतिपूर्ति योजना का स्थान लिया। इससे सम्बन्धित अधिनियम १९४६ से सन् '१९६४ तक पारित राष्ट्रीय बीमा (औद्योगिक क्षति) अधिनियम (National Insurance Industrial Injuries Act) है। रोजगार के काल में हुई दुर्घटनाओं के कारण क्षति अथवा कुछ विशेष बीमारियों के लगने पर यह लाभ दिये जाते है। क्षति लाभ दर वयस्क के लिए ६ पौंड १२ शि० प्रति सप्ताह है। यह लाभ अधिक से अधिक २६ सप्ताह तक दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त एक वयस्क आश्रित के लिए २ पौंड १० शि०, प्रथम बालक के लिए १ पौंड २ शि० ६ पैं० तथा शेष बालकों के लिए, पारिवारिक भत्तों के अतिरिक्त, १४ शि० ६ पैं० प्रति बालक और दिया जाता है। असमर्थता लाभ की दर १०० प्रतिशत असमर्थता के लिए ६ पौंड १५ शि० से लेकर २० प्रतिशत असमर्थता के लिए १ पौंड ७ शि० प्रति सप्ताह तक है। २०% से कम असमर्थता के लिए ४५० पौंड तक की सहायता दी जाती है। असमर्थता की सीमा एक चिकित्सा बोर्ड निश्चित करता है। असमर्थता लाभ कुछ विशेष परिस्थितियों में कुछ अधिक भी दिया जाता है। यदि दुर्घटना अथवा बीमारी के फलस्वरूप किसी बीमाकृत व्यक्ति की मृत्यु हो जाय तो मृत्यु लाभ आश्रितों को दिया जाता है और लाभ की राशि मृतक व्यक्ति और उसके आश्रितों के बीच जो सम्बन्ध रहा हो, उसके आधार पर निश्चित होती है। परन्तु विधवाओं और बालकों को सहायता उसी प्रकार मिलती रहती है।

राष्ट्रीय सहायता (National Assistance)—सन् १९४८ के राष्ट्रीय सहायता अधिनियम के अन्तर्गत राज्य द्वारा अभीष्ट व्यक्तियों के लिए वित्त सहायता प्रदान करने के लिए एक संगठित व्यवस्था है। यह सुविधा उन सेवाओं के स्थान पर है जो भूतकाल में राज्य और स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा प्रदान की जाती थी। सहायता अथवा भत्ते उन व्यक्तियों की आवश्यकता की पूर्ति करने के लिये सरकार द्वारा दिये जाते हैं, जो कि अपने स्तर को कायम रखने में असमर्थ हैं एवं जो सामाजिक सुरक्षा सेवाओं के अन्तर्गत नहीं आते। इस सहायता का उद्देश्य यह भी है कि बीमा लाभ यदि अपर्याप्त हो तो उसकी कमी को पूरा करे। कुछ कल्याण सेवाओं की भी व्यवस्था है, जैसे बूढ़े और कमजोर व्यक्तियों के लिये गृह उपलब्ध करना, बेघर व्यक्तियों के लिये आश्रय और अन्धे, बहरे व अपाहिजों के लिये विशेष कल्याण सेवाओं की व्यवस्था।

युद्ध पेन्शन—युद्ध में या अन्य सैनिक सेवा से सम्बन्धित कार्यों में अशक्त हुए व्यक्तियों के लिए अथवा उनके आश्रितों के लिए शाही अधिपत्रों (Royal

Warrents) आदि के अन्तर्गत पेन्शन तथा भत्ते दिये जाने की व्यवस्था है। शत-प्रतिशत असमर्थ व्यक्तियो के लिए चालू मूल पेन्शन ६ पौ० १५ शि० प्रति सप्ताह है परन्तु असमर्थता की मात्रा तथा श्रेणी के अनुसार पेन्शन की मात्रा भी भिन्न-भिन्न है। अनुपूरक भत्तो की भी व्यापक व्यवस्था है। युद्ध के कारण हुई विधवाओं एव अनाथों के लिए भी पेन्शन दिये जाने की व्यवस्था है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा (National Health Service)—इसके अन्तर्गत ब्रिटेन के सभी नागरिको के लिए चिकित्सा व्यवस्था की जाती है, चाहे वह राष्ट्रीय बीमा के लिए अशदान देते हो अथवा न देते हो। यह व्यवस्था हस्पताल और अन्य रूपो मे भी होती है। लागत का अधिकतर भार सरकारी कोष पर ही पड़ता है। लागत तो केवल थोडी सी सेवाओ के लिये ली जाती है, जैसे—१ शि० प्रति नुस्खा बनाने के हेतु, १ पौंड तक दन्त चिकित्सा के हेतु और दाँत बनाने का आधा खर्च और चश्मो की कीमतो का कुछ भाग ही वसूल किया जाता है। इस लागत से कुछ विशेष परिस्थितियों मे छूट भी मिल जाती है। इस विषय से सम्बन्धित जो अधिनियम हैं, वह सन् १९४६, १९४९, १९५१ व १९५२ 'राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा अधिनियम' (National Health Service Act) है।

प्रथम तीन व्यवस्थाओं के प्रशासन के लिए एक पेन्शन और राष्ट्रीय बीमा मत्रालय (Ministry of Pensions and National Insurance) स्थापित किया गया है, जिसका मुख्य कार्यालय लन्दन मे है। इसमे ५०० कर्मचारी कार्य करते है। एक केन्द्रीय रिकार्ड कार्यालय भी, जो इगलैण्ड के प्रत्येक नागरिक की रिकार्ड फाइल रखता है, न्यूकैसल म है। इसमे लगभग ७,००० कर्मचारी है। क्षेत्रीय कार्यालयो एव स्थानीय कार्यालयो का भी निर्माण हुआ है। राष्ट्रीय बीमा योजना के प्रशासन के लिये कुल कर्मचारियो की सख्या ३५,००० और ४०,००० के बीच मे है। ये कर्मचारी बहुत कार्य-दक्ष भी है। राष्ट्रीय सहायता का प्रशासन राष्ट्रीय सहायता बोर्ड द्वारा होता है और राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा का प्रशासन स्वास्थ्य मत्री द्वारा होता है। युद्ध-पेन्शनें देने का उत्तरदायित्व पेन्शन तथा राष्ट्रीय बीमा मन्त्रालय का है।

सामाजिक कल्याण की अन्य व्यवस्थाएँ

इस प्रकार स्पष्ट है कि ब्रिटेन मे सामाजिक सुरक्षा की एक व्यापक योजना विद्यमान है। जो समाज सेवाये अब प्रदान की जा रही है, उनको भी हमे उन कई प्रकार की सेवाओ की पृष्ठभूमि को दृष्टि मे रखते हुये देखना चाहिये जो सेवाये सबके लिए एक समान उपलब्ध हैं। ऐसी सेवाएँ निम्नलिखित है—शिक्षा, स्कूल मे नि शुल्क भोजन, स्थानीय प्राधिकारियो की आवास योजनाएँ, असमर्थ व्यक्तियो एव अनाथो की देखभाल, माताओ एव शिशुओ के लिये नि शुल्क दूध, प्रसूतिका एव बाल कल्याण केन्द्र, आदि। सन् १९४८ के बालक अधिनियम के अनुसार स्थानीय प्राधिकारियो का कर्त्तव्य है कि वह ऐसे सब बालको की देखभाल

करे जिनकी आय १७ वर्ष से कम हो और जिनके माता-पिता व अभिरक्षक भी न हों या जो परित्यक्त हो या जिनके माता-पिता उनकी व्यवस्था करने में असमर्थ हो। इसके अतिरिक्त, बहुत से ऐच्छिक सगठन भी जनता के हेतु कल्याण-कार्य कर रहे है। सामाजिक सेवा योजनाओं मे उनका महत्वपूर्ण योग रहा है। ब्रिटेन में ऐच्छिक दान समितियों एवं सस्थाओ की सख्या हजारो में है और उनमे बहुत सी सस्थाओ ने आपस में मिल-जुल कर और उसी कार्य मे रत स्थानीय प्राधिकारियो से मिलकर अपने कार्य को सगठित किया है। इस प्रकार की समितियो के नाम ये है—राष्ट्रीय सामाजिक सेवा कौंसिल (National Council of Social Service), परिवार कल्याण परिषद् (Family Welfare Association), राष्ट्रीय वृद्ध कल्याण समिति, राष्ट्रीय युवक ऐच्छिक सघ का स्थायी सम्मेलन (Standing Conference of National Voluntary Youth Organization), शिशु-गृहों की राष्ट्रीय सगठित कौंसिल (National Council of Association of Children's Home), राष्ट्रीय मातृत्व-कालीन एव शिशु कल्याण कौंसिल, अपगो की देखभाल के लिये केन्द्रीय कौंसिल और मातृत्व-कालीन, शिशु और असमर्थ व्यक्तियो के कल्याण के लिये अन्य सस्थाएँ। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश रेडक्रॉस सोसायटी भी असमर्थ, दुर्बल एव बीमार व्यक्तियो के लिये अमूल्य कार्य कर रही है। महायुद्ध के बाद एक नई ऐच्छिक सेवा विवाह पथ-प्रदर्शक कौंसिल (Marriage Guidance Council) के नाम से विवाह एवं पारिवारिक जीवन की शिक्षा का प्रचार करने के लिये बनी है। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन में बहुत से समाज सेवक सघ भी है जो कि ब्रिटिश समाज सेवक सगम (British Federation of Social Workers) से सम्बन्धित है।

उपरोक्त बातों से यह सिद्ध होता है कि रूस के अतिरिक्त शायद ब्रिटेन ही ऐसा देश है जहाँ कि राज्य ने जनता को सामाजिक सुरक्षा देने का पूर्ण दायित्व लिया है और जहाँ राज्य द्वारा अधिकतम सीमा तक सामाजिक सेवाएँ उपलब्ध की जाती है।

सोवियत रूस मे सामाजिक बीमा प्रणाली
(Social Insurance System in Soviet Russia)

यहाँ सोवियत रूस की सामाजिक प्रणाली का विवरण देना भी रुचिकर होगा। सत्तारूढ होने के कुछ दिन पश्चात् ८५ नवम्बर सन् १९१७ को सोवियत सरकार ने सामाजिक बीमे के लिये प्रथम बार आदेश निकाला। इसका उद्देश्य यह था कि 'जार' के समय में जो अपर्याप्त सामाजिक बीमा प्रणाली थी, उसमे यथा-सम्भव उन्नति की जाय। उसमे निम्नलिखित बातों की व्यवस्था थी—(१) नगरो के श्रमिको एव कर्मचारियो के लिये बीमा योजना का विस्तार करना, (२) बेरोजगारी अथवा और किसी कारणवश अर्जन शक्ति की हानि को पूरा करना, (३) उद्योग द्वारा ही बीमा अशदान का भुगतान, (४) असमर्थता मे पूर्ण

मजदूरी देने की व्यवस्था, (५) बीमाकृत व्यक्तियों द्वारा ही बीमा व्यवस्था का स्वयं प्रशासन करना।

सोवियत शासन के आरम्भ की कठिनाइयों के कारण सामाजिक बीमा योजना के मूल सिद्धान्त केवल सन् १९२२ में ही नई आर्थिक नीति (New Economic Policy) के अन्तर्गत कार्यान्वित किये जा सके। एक श्रमिक संहिता भी घोषित की गयी, जिसके अन्तर्गत निम्न सुविधाओं को प्रदान करने की व्यवस्था थी—चिकित्सा सम्बन्धी सहायता, अस्थायी असमर्थता के लिये लाभ, कुछ अतिरिक्त लाभों का दिया जाना जैसे बच्चों के लिये भोजन, निराश्रितों को सहायता, मृत्यु संस्कार भत्ता और असमर्थता, वृद्धावस्था एवं जीविका कमाने वाले की मृत्यु होने पर पेन्शनें। रूस में एक ऐसा नियम भी बना दिया गया है जो दूसरे देशों की सामाजिक बीमा योजनाओं में नहीं पाया जाता। इस नियम के अनुसार बीमा प्रीमियम केवल कार्य पर लगाने वालों के द्वारा ही देने की व्यवस्था है। यह प्रीमियम उद्योग के मजदूरी बिल की एक निश्चित प्रतिशत के बराबर राशि के रूप में काटकर एक सामाजिक बीमा निधि में जमा कर दिया जाता है। इससे बीमाकृत कर्मचारियों और श्रमिकों की मजदूरी में कोई कमी नहीं होती। इसकी प्रतिशत दर ४·४ और ६ = के मध्य रहती है, जो उत्पादन की परिस्थितियों पर निर्भर करती है। श्रमिकों को कोई अंशदान नहीं देना होता है। चिकित्सा सम्बन्धी सहायता, जो कि जिन्स में दी जाती है, सामाजिक बीमा योजना के अन्तर्गत नहीं आती, परन्तु वह सामाजिक सेवाओं एवं अन्य सुविधाओं से सम्बन्धित है। रूस में सामाजिक बीमा प्रणाली केवल नौकरी-पेशा श्रमिकों के लिये ही है और इस प्रकार कृषि श्रमिकों को छोड़ दिया गया है। इनकी रक्षा कृषक सामूहिक संगठनों द्वारा की जाती है।

रूस में सामाजिक बीमे के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं— (१) सन् १९३३ से इसका प्रशासन श्रमिक संघ द्वारा होता है और इसका संगठन, निधि और कार्य सब श्रमिक संघों के हाथ में है। (२) केवल रोजगार पर लगे हुए व्यक्तियों का ही सामाजिक बीमा किया जाता है। (३) सामाजिक बीमा वह बीमा है जिसमें बीमा किश्त (प्रीमियम) बीमाकृत व्यक्तियों द्वारा नहीं, वरन् कार्य पर लगाने वालों के द्वारा दिया जाता है। यह प्रीमियम उद्योग के मजदूरी बिल के एक प्रतिशत मान के रूप में इकमुश्त दिया जाता है। यहाँ तक कि यदि कार्य पर लगाने वालों के द्वारा प्रीमियम किसी कारणवश न दिया जा सका हो तो भी व्यक्तिगत रूप से श्रमिक का बीमा बना रहता है। (४) बीमा लाभ का पूरा लाभ उठाने के लिये श्रमिक संघ की सदस्यता एक शर्त है और जो श्रमिक संघ के सदस्य नहीं होते उनको आधा ही लाभ मिलता है। (५) सामाजिक बीमा श्रमिकों को स्थायी बनाने और उत्पादन में वृद्धि करने की सरकारी आयोजना से सम्बन्धित है। अधिकतम भुगतान उनको मिलता है, जिन्होंने एक ही उद्योग में अधिक से अधिक

समय तक कार्य किया हो। रोजगार से बर्खास्त किये गये व्यक्तियों को कम सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध है। (६) सन् १९३० मे जब प्रथम पंचवर्षीय आयोजना के अन्तर्गत श्रम शक्ति की माँग के बढने पर बेरोजगारी समाप्त हो गई तो बेरोजगारी बीमा को भी समाप्त कर दिया गया।

अब रूस मे सामाजिक बीमे की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित है—(क) अस्थायी रूप से अशक्त श्रमिको की सहायता, (ख) स्थायी असमर्थता और वृद्धावस्था मे पेन्शन की व्यवस्था।

अस्थायी रूप से अशक्त श्रमिको को बिना किसी शर्त के सहायता मिलती है और यदि यह अशक्तता रोजगार से सम्बन्धित बीमारी अथवा क्षति के कारण हुई हो तो औसत वेतन के १००% तक सहायता मिलती है। अन्य दशाओं मे सहायता सेवा-अवधि के आधार पर मिलती है, जैसे ६ वर्ष अथवा अधिक समय कार्य करने के पश्चात् औसत वेतन का १००% भाग, ३ से ६ वर्ष कार्य करने पर ८०%, २ से ३ वर्ष कार्य करने पर ६०% और २ वर्ष से कम समय कार्य करने पर ५०% भाग मिलता है। जो श्रमिक सघ के सदस्य नही है, उनको आधा भाग उपलब्ध होता है। ऐसे श्रमिक, जो या तो कार्य से बर्खास्त कर दिये गये है अथवा जिन्होने अपनी रुचि से कार्य छोड दिया है, अस्थायी असमर्थता लाभ के अधिकारी तभी हो सकते है जबकि नये रोजगार मे वह कम से कम ६ मास तक कार्य कर चुके हो।

रूस मे ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को, जिसकी आयु ६० वर्ष हो गयी हो, और प्रत्येक ऐसी महिला को, जिसकी आयु ५५ वर्ष की हो गई हो, पेन्शन पाने का अधिकार है। स्थायी असमर्थता मे पेन्शन केवल तभी प्रदान की जाती है, जब यह असमर्थता रोजगार से ही सम्बन्धित बीमारी अथवा क्षति द्वारा हुई हो और अन्य परिस्थितियों में यह पेन्शन आयु एव सेवा अवधि पर निर्भर होती है। पेन्शन की राशि इस बात पर निर्भर करती है कि श्रमिक को क्षति के समय कितना वेतन मिलता था। इस राशि की प्रतिशत मात्रा असमर्थता की सीमा के अनुसार निर्धारित होती है। अधिकतम पेन्शन की राशि अन्तिम मजदूरी का ६६ प्रतिशत होती है।

रूस में सामाजिक बीमा प्रणाली के साथ-साथ अन्य सामाजिक सेवाओं की भी व्यवस्था है। इस व्यवस्था मे वे सब प्रयत्न आ जाते है, जो जनसाधारण की बीमारी के दिनो मे जीवन की सुविधायें उपलब्ध करने के लिये किये जाते है। यह निम्नलिखित है—

(१) 'जनता स्वास्थ्य व्यवस्था' के अन्तर्गत, कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए चिकित्सालयो मे नि शुल्क चिकित्सा। (२) एक ही उद्योग मे कम से कम ११ माह तक निरन्तर कार्य करने के पश्चात् सवेतन २ सप्ताह का अवकाश। (३) विश्राम-गृहो और सेनीटोरियम की व्यवस्था। यह आंशिक रूप से श्रमिक संघों द्वारा और आंशिक रूप से अपने श्रमिकों के लिए औद्योगिक संस्थाओं द्वारा

चलाए जाते है। इनके प्रयोग के लिए सेवा अवधि की शर्त भी है और इसके लिये मजदूरों के अनुसार सम्भार भी लगाया जाता है। (४) नगरो और उपनगरो म विश्राम और सास्कृतिक कार्यों के लिये पार्कों की व्यवस्था, जिनमे रविवार अथवा अन्य सार्वजनिक छुट्टियो मे लोग जाया करते है। (५) प्रारम्भिक शिक्षा के लिए नि शुल्क सुविधाओं की उपलब्धि। (६) गर्भवती माताओं को और प्रसवकाल के तुरन्त बाद ही महिला श्रमिको को मातृत्व-कालीन लाभ देने की व्यवस्था है, जिसको देना राज्य अपना कानूनी कर्त्तव्य समझता है।

माताओं का कल्याण एव उनकी रक्षा राज्य का सर्वप्रथम कार्य माना जाता है। कुछ श्रमिक अधिनियम गर्भवती माताओं के लिए बनाए गए हैं। उनके अनुसार गर्भवती माताओं को काम पर लगे रहने का आश्वासन होता है। किसी महिला को गर्भवती होने के कारण कार्य न देने पर ६ मास का कारावास अथवा १,००० रुबल का दण्ड दिया जा सकता है। ऐसे ही अपराध को दोहराने पर दो वर्ष के कारावास का दण्ड मिलता है। गर्भवती माता को अपनी उसी मजदूरी मिलने का भी आश्वासन होता है जो उसको गर्भवती होने से पूर्व मिलती थी और इस कारण मजदूरी मे कटौती करने पर वही दण्ड दिया जाता है जो नौकरी न देने पर दिया जाता है। गर्भावस्था मे उसको, वेतन म कटौती किये बिना, हल्का कार्य करने को दिया जाता है और गर्भ के चार मास पूरे होने के पश्चात् गर्भवती स्त्री को समयोपरि (Overtime) कार्य करना वर्जित है। गर्भवती स्त्री को प्रसव के पूर्व ५६ दिन की छुट्टी एव राज्य से अनुदान प्राप्त करने का अधिकार है। पहले कानून के अनुसार यह अनुपस्थिति अवकाश प्रसव के बाद २८ दिन तक चलता था। परन्तु जुलाई सन् १९४४ मे यह अवधि बढाकर ४२ दिन तक कर दी गई और अब यह ५६ दिन है। यह अवकाश पूरे वेतन सहित मिलता है। असाधारण प्रसव पर इस छुट्टी की अवधि बढ सकती है। युद्धकाल मे गर्भवती माताओं के लिये राशन की पूर्ण सुविधाये उपलब्ध थीं। ट्रामो, बसो और रेलो म उनके लिए विशेष स्थानो की व्यवस्था होती है और यात्रा के समय उनको लाइन मे लगकर प्रतीक्षा किए बिना ही स्थान दिया जाता है। समस्त देश मे स्त्रियो व बच्चो की चिकित्सा का ध्यान रखने वाले हजारो केन्द्र हैं। फैक्ट्रियो मे बच्चो को दूध पिलाने वाली माताओं के लिए पृथक् कक्षो की, और विशेष "स्त्री स्वास्थ्य विज्ञान" कक्षो की व्यवस्था है। प्रसव काल के पश्चात् छुट्टी समाप्त होने पर स्त्रियो को विशेष कार्य सुविधाये दी जाती है। कार्य-काल मे बच्चो को दूध पिलाने के लिए उन्हे अतिरिक्त अवकाश दिया जाता है। यदि दो वर्ष से कम आयु का बालक बीमार पडे तो उसकी माता को विशेष छुट्टी प्रदान की जाती है। माता को अपने प्रथम बालक के लिए वस्त्रादि बनाने के लिये नकद भत्ता भी दिया जाता है। देश मे प्रसूति गृहो मे २,१५,००० पलगो की व्यवस्था है।

रूस मे अविवाहित माताओं की भलाई एव उनके बच्चो की रक्षा के लिए

एक विशेष व्यवस्था है। अपने बच्चे का पालन-पोषण करने के लिए उन्हे राज्य द्वारा विशेष भत्ता मिलता है और माताओ और बच्चो की रक्षा करने की उपरोक्त सभी सुविधायें अविवाहित माताओं को भी उपलब्ध होती है। सोवियत परिस्थितियों के अन्तर्गत एक अविवाहित माता देश के सब अधिकारो से परिपूर्ण नागरिक है, और सोवियत कानून उसका अपमान करने वाले और उसके मातृत्व का अपमान करने वाले को दण्ड देता है। रूस मे अधिक बालको वाली माताओ को पारितोषिक दिये जाते है।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका में सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था

अमरीका मे आरम्भ मे सामाजिक सुरक्षा इस रूप मे दी जाती थी कि जो भी व्यक्ति कृषि-कार्य करना चाहता था उसे सरकार द्वारा १५० एकड़ भूमि तक निःशुल्क मिल जाती थी।* अमेरिका प्राकृतिक साधनो मे बहुत धनवान है। देश की अर्थव्यवस्था सदा विकसित ही होती रहती है। वहाँ पूर्ण रोजगार भी है और मजदूरी दर भी ऊँची है। अमरीका एक धनवान देश है। प्रत्येक अमेरिकन कुछ बचत करता है, अपना जीवन बीमा कराता है और उसके पास मकान, मोटर और अन्य व्यक्तिगत सम्पत्ति होती है। उसका न केवल जीवन-स्तर ऊँचा है वरन् धनवान होने के कारण उसे स्वतः ही सुरक्षा मिल जाती है। परन्तु फिर भी एक ऐसे देश में जहाँ औद्योगीकरण की सीमा बहुत अधिक है, व्यक्तिगत प्रयत्नो मे सभी सामाजिक सकटो मे पूर्ण रूप से सुरक्षा नहीं मिल पाती। इसलिये सरकार ने सभी सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था के लिए कुछ पग उठाये है जो सभी के लिये एक समान है। परन्तु यह सुरक्षा केवल एक आधारशिला का ही कार्य करती है और अपने प्रयत्नो तथा अपने मालिको की सहायता से प्रत्येक व्यक्ति उस आधारशिला पर अपनी सुरक्षा की विस्तृत रूप से व्यवस्था करता है।

अमरीका में सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत सभी नागरिक आ जाते है। राष्ट्रीय स्तर पर तो इस व्यवस्था मे जो कार्य-क्रम है वह वृद्धावस्था, उत्तर-जीवी और असमर्थता बीमे से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक राज्य (State) द्वारा श्रमिक क्षतिपूर्ति तथा बेरोजगारी बीमे की व्यवस्था की जाती है। सामाजिक बीमे के कार्य-क्रम के पूरक के रूप मे सघीय सरकार द्वारा राज्यो को इस हेतु अनुदान दिया जाता है कि वे अभीष्ट व्यक्तियो के लिए चिकित्सा सुविधायें, वित्तीय सहायता तथा अन्य सेवाये प्रदान कर सके। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य सेवायें भी है, जैसे—व्यावसायिक पुनर्वास सेवा, संयुक्त राष्ट्र सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा तथा माताओ और बच्चों के लिए कल्याण-कार्य आदि, जिनके लिये भी सघीय सरकार द्वारा अनुदान प्रदान किये जाते है। यह सब अनुदान १९३५ के सामाजिक-सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत दिये जाते है। सामाजिक बीमा तथा सार्वजनिक-कल्याण कार्यक्रमो के पूरक के रूप मे अनेक गैर-सरकारी संस्थाओ के द्वारा भी

* Essentials of Social Security in the United States.

कार्यक्रम किये जाते हैं। यह कार्य आर्थिक सुरक्षा के हेतु किए जाते हैं। यह गैर सरकारी कार्य मालिकों और श्रमिकों द्वारा आयोजित किये जाते है या मालिकों और श्रमिक संघों के मध्य सामूहिक सौदाकारी समझौते के अन्तर्गत होते हैं। ऐसे निजी रूप से कार्यक्रम, निजी पेन्शन योजनायें, हस्पतालों, शल्य-चिकित्सा की सुविधायें, बीमारी छुट्टी, बेरोजगारी पूरक लाभ आदि है। इनके अतिरिक्त निजी निधियों द्वारा स्थापित अनेक ऐच्छिक सामाजिक अभिकरण भी अनेक प्रकार की सेवायें नगरीय क्षेत्रों मे रहने वाले व्यक्तियों और परिवारों को प्रदान करते है। यह सेवायें कई प्रकार की है, जैसे—सन्तान की देखभाल, पारिवारिक जीवन, विवाह, पारिवारिक प्रबन्ध तथा अन्य समस्याओं पर पारिवारिक परामर्श तथा मानसिक रूप से खिन्न व्यक्तियों के लिए मानसिक स्वास्थ्य क्लीनिक या अन्य कहीं पर व्यक्तिगत रूप से चिकित्सा की सुविधायें आदि।

वृद्धावस्था, उत्तरजीवी तथा असमर्थता बीमा योजना का जो मूल कार्यक्रम है और जिसे साधारणतया सामाजिक सुरक्षा का नाम दिया जाता है तथा जिसका एक कार्यक्रम मानकर प्रशासन किया जाता है उसका उद्देश्य यह है कि उसके अन्तर्गत ऐसे सभी व्यक्ति आ जायें जो लाभकर रोजगार पर लग हुए है, चाहे उनकी आय का स्तर कितना ही हो और उनका रोजगार किसी भी प्रकार का हो। यह लाभ प्रत्येक व्यक्ति को उसका अधिकार मानकर दिये जाते है और उसकी आवश्यकता, सम्पत्ति या अनर्जित आय का ध्यान नहीं किया जाता। इस कार्यक्रम की वित्तीय-व्यवस्था श्रमिकों, मालिकों तथा स्वयं रोजगार पर लगे व्यक्तियों (जिनका कोई मालिक नहीं है) के अंशदान द्वारा की जाती है। यह व्यवस्था सामाजिक-सुरक्षा कर तथा न्यासी निधियों के ब्याज (जिन निधियों में अंशदान जमा कर दिया जाता है) द्वारा आत्म निर्भर व्यवस्था है। इन निधियों का सर्वेक्षण समय-समय पर एक परामर्श परिषद् द्वारा किया जाता है जिनमें श्रमिकों, मालिकों तथा साधारण जनता के प्रतिनिधि होते है। सहायता उस समय दी जाती है जब वृद्धावस्था, असमर्थता या जीविकोपार्जक की मृत्यु पर आय बन्द हो जाती है। इस प्रकार जीविकोपार्जक की आय बन्द होने पर परिवारों को कुछ सहायता के सहारे का आश्वासन रहता है। लाभ औसत आय के अनुसार प्रदान किये जाते है तथा उनका सम्बन्ध अंशदान देने की अवधि से नहीं होता। इस प्रकार वह लाभ पाने वाले के जीवन-स्तर तथा उसकी आर्थिक अवस्था से सम्बन्धित होते हैं।

वृद्धावस्था अवकाश लाभ (Old Age Retirement Benefits)—वर्तमान विधान के अनुसार वृद्धावस्था अवकाश लाभ श्रमिकों को ६५ वर्ष की आयु पर अवकाश ग्रहण करने पर प्रदान किये जाते हैं और यदि ६२ वर्ष की आयु पर अवकाश ग्रहण कर लिया जाता है तो लाभ कम दर पर दिया जाता है। कुछ आश्रितों को भी ये लाभ दिये जाते है। उदाहरणतया, यदि पति या पत्नि की आयु

६२ वर्ष या उससे अधिक हो या १८ वर्ष से कम की आयु के बच्चे हों, या १८ वर्ष की आयु से पूर्व कोई असमर्थता हो गई हो, या पत्नी, चाहे उसकी आयु कितनी भी हो, किसी बच्चे की देख-रेख करने के लिये कार्य करती हो।

उत्तरजीवी लाभ (Survival Benefits)—यह लाभ एक बीमाकृत श्रमिक की मृत्यु पर उसकी विधवा या ६२ वर्ष से ऊपर के आश्रित विधुर को, १८ वर्ष से कम आयु के बच्चों को, १८ वर्ष से पूर्व असमर्थ हो गये व्यक्ति को, ऐसी माँ को जिसकी देख-रेख में कोई बच्चा हो तथा आश्रित माता-पिता को मासिक रूप से दिये जाते है। मृत्यु पर इक-मुश्त राशि का भी भुगतान किया जाता है।

असमर्थता लाभ (Disability Benefits)—यह लाभ भी मासिक रूप से उन श्रमिको को दिये जाते है जो पूर्णतया स्थायी रूप से असमर्थ हो गये हो और उन आश्रितो को यह लाभ दिये जाते है जिनका उल्लेख वृद्धावस्था लाभ के अन्तर्गत किया गया है। असमर्थ श्रमिकों के पुनर्वास के हेतु भी संघीय सरकार के व्यावसायिक पुनर्वास सेवा के अन्तगत, १६३५ के सामाजिक-सुरक्षा अधिनियम के अनुसार, प्रयत्न किये जाते हैं।

इनके अतिरिक्त सार्वजनिक अवकाश काल कार्यक्रम भी है। यह उन कर्मचारियो की सुरक्षा के लिये है जो संघीय, राज्य या स्थानीय सरकारों द्वारा कार्य पर लगाये जाते है या जो रेल या सड़क यातायात मे कार्य करते है। संघीय सरकार पुराने वृद्ध सैनिकों के लिये भी पेन्शन या क्षतिपूर्ति प्रदान करती है यदि वे असमर्थ हो गये हों या जो अधिक आयु के कारण असमर्थ हो गये हो। यह लाभ मृत सैनिकों के आश्रितो के लिये भी प्रदान किये जाते हैं। प्रत्येक राज्य द्वारा भी सार्वजनिक कार्यक्रमो के अन्तर्गत आय सुरक्षा तथा अन्य संकटों के लिये बीमा किया जाता है।

श्रमिक क्षतिपूर्ति या औद्योगिक दुर्घटना बीमा (Workmen's Compensation or Industrial Accident Insurance)—सामाजिक बीमे के रूप मे सर्वप्रथम श्रमिक क्षतिपूर्ति संयुक्त राष्ट्र मे व्यापक रूप से लागू की गयी। इसके अन्तर्गत उन श्रमिकों को सुरक्षा दी जाती है जिनको कार्य करते समय क्षति पहुँचती है और पूर्ण क्षति पर परिवारों को सहायता दी जाती है। इसके लिये जो प्रथम विधान बना वह १६०८ का कर्मचारी क्षति अधिनियम था जिसके अन्तर्गत सिविल कर्मचारी आते थे। अब प्रत्येक राज्य द्वारा श्रमिक क्षतिपूर्ति दी जाती है और ऐसे श्रमिकों को, जो संघीय सरकार द्वारा कार्य पर लगाये जाते है, क्षतिपूर्ति संघीय विधान के अन्तर्गत दी जाती है। क्षतिपूर्ति विधान प्रत्येक राज्य मे भिन्न-भिन्न है। परन्तु सबका लक्ष्य असमर्थ श्रमिको को तत्काल चिकित्सा सहायता तथा साप्ताहिक नकदी लाभ देना है। यह लाभ श्रमिको की लगभग दो-तिहाई मजदूरी के बराबर होता है परन्तु अधिकतम डालर सीमायें निर्धारित कर दी गई है। घातक क्षति होने पर अन्तिम संस्कार के लिये व्यय तथा उत्तर-जीवियो को नकदी लाभ दिया जा

है। क्षतिपूर्ति की लागत मालिको द्वारा वहन की जाती है जो इसको उत्पादन लागत का एक भाग मान लेते है।

बेरोजगारी बीमा (Unemployment Compensation)—आर्थिक परिवर्तनो तथा सामयिक कारणो से जो बेरोजगार के स्तर मे उतार-चढाव की समस्या उत्पन्न हो जाती है उसके लिये प्रत्येक राज्य मे एक सघीय राज्य बेरोजगारी बीमा योजना है जिसकी वित्त व्यवस्था मालिको द्वारा की जाती है। कृषि तथा घरेलू श्रमिको तथा सार्वजनिक कर्मचारियो को छोडकर यह योजना सभी श्रमिको पर लागू होती है। अधिकाश विधानो का लक्ष्य यह है कि बेरोजगारी के काल मे पूर्ण साप्ताहिक मजदूरी का कुछ भाग जो साधारणतया ५० प्रतिशत होता है, क्षतिपूर्ति के रूप मे मिल जाये किन्तु इसके लिये भी डालर सीमा निर्धारित कर दी गयी है। भुगतान की अवधि प्रत्येक राज्य मे भिन्न है परन्तु अधिकतर राज्यो मे २६ सप्ताह तक बेरोजगारी सहायता दी जाती है जो एक सप्ताह के प्रतीक्षा काल के उपरान्त आरम्भ होती है। हाल के वर्षो मे आर्थिक मन्दी के कारण भुगतान की अवधि बढा दी गयी थी। सारे देश मे रोजगार दफ्तरो की भी व्यवस्था है जो बेरोजगारो को उचित रोजगार मिलने मे सहायता देते है।

अस्थायी असमर्थता (Temporary Disability)—अल्पकाल की बीमारी के कारण जो आय मे हानि पहुँचती है उसको दूर करने के लिये कुछ बीमा योजनायें राज्यो मे सार्वजनिक विधान के अन्तर्गत और रेल तथा सडक यातायात के श्रमिको के लिये एक सघीय कार्यक्रम के अन्तर्गत लागू की गयी है। इनके अतिरिक्त कुछ सेवाये मालिको द्वारा और सामूहिक सौदाकारी समझौतो द्वारा भी प्रदान की जाती हैं। ये बीमा योजनायें अस्थाई असमर्थता पर १३ से २६ सप्ताह तक लाभ प्रदान करती है। यह लाभ मजदूरी मे जितनी हानि होती है उसकी लगभग आधी राशि के बराबर होते है। सवेतन बीमारी छुट्टी भी दी जाती है।

व्यवसायिक पुनर्वास (Vocational Rehabilitation)—इसके अन्तर्गत जो सघीय राज्य कार्यक्रम हैं उनके द्वारा अशक्त तथा अपग व्यक्तियो को कुछ सेवायें प्रदान की जाती हैं, जैसे—अपगता को दूर करना, परामर्श देना, कोई रोजगार दिलाना आदि। इस प्रकार अशक्त व्यक्तियो को पुन उत्पादन कार्य मे लगा दिया जाता है।

मातृत्व कालीन सुरक्षा (Maternity Protection)—सयुक्त राष्ट्र मे मातृत्व कालीन लाभ ऐच्छिक रूप मे मालिको व श्रमिक सघो द्वारा प्रदान किये जाते हैं और विधान द्वारा नही दिये जाते। परन्तु एक राज्य मे (रोड द्वीप) अस्थायी असमर्थता बीमा अधिनियम के अन्तर्गत रोजगार पर लगी हुई स्त्रियो को प्रसवकाल से ६ सप्ताह पूर्व और ६ सप्ताह पश्चात् तक नकदी लाभ दिये जाते है। एक सघीय विधान है जिसके अन्तर्गत मातृत्व कालीन लाभ, रेल-सडक उद्योग मे लगी हुई महिला श्रमिको को तथा फौज मे कार्य करने वाले पुरुषो की पत्नियो

को, प्रदान किये जाते है। गर्भवती स्त्रियो को यदि चिकित्सा की आवश्यकता होती है तो मातृत्वकालीन लाभ एक सार्वजनिक सेवा मान कर संघीय राज्य और स्थानीय सरकारों के सहयोग से प्रदान की जाती है। कई राज्यों में इस बात का भी विधान बना दिया गया है कि प्रसवकाल से पूर्व व पश्चात् स्त्रियो को कार्य पर न लगाया जाय। सामाजिक सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत संघीय अनुदान की सहायता से राज्यों द्वारा शिशु व स्वास्थ्य कल्याण के कार्यक्रम भी चलाये जाते हैं।

सरकारी सहायता (Public Assistance)—सामाजिक बीमा के पूरक के रूप मे १९३५ के सामाजिक अधिनियम के अन्तर्गत कुछ संघीय-राज्य सरकारी सहायता भी प्रदान की जाती है। यह सहायता मासिक नकदी भुगतान और सामाजिक सेवाओ के रूप मे होती है। यह सहायता अभीष्ट, वृद्ध, अन्धे, पूर्ण रूप से असमर्थ, टूटे परिवारों के पृथक्, आश्रित बच्चे अथवा ऐसे परिवारों के बच्चे जिनके उपार्जक माता-पिता असमर्थ हो या बेरोजगार हो, आदि को दी जाती है। इस बात की व्यवस्था है कि व्यक्तियो को चिकित्सा की कुछ लागत भी दे दी जाये। चिकित्सा लागत ऐसे वृद्ध व्यक्तियों को भी दी जाती है जिनकी आयु ६५ वर्ष से अधिक है और जो अपने रहन-सहन का व्यय तो उठा लेते है परन्तु असाधारण चिकित्सा सेवाओ का व्यय नहीं उठा पाते। ऐसे आवश्यकताग्रस्त व्यक्तियो को भी आम सहायता (General Assistance) दी जाती है जो किसी सहायता पाने वाले वर्ग में तो नहीं आते किन्तु जिनको आवश्यकता होती है।

इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था का तत्व यह है कि जनता को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने के लिये कई प्रकार से कदम उठाये जाते है। उस देश में यह पाया गया है कि पूर्ण रोजगार अत्यधिक मजदूरी को आधार मानकर आर्थिक सुरक्षा की आवश्यकता को पूरा करने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि इस आवश्यकता को तीन प्रकार से पूरा किया जाये, अर्थात् सामाजिक लक्ष्यों को पूरा करने के लिए पर्याप्त सार्वजनिक कार्यक्रम, ऐच्छिक, सामूहिक कार्य को शक्ति देने के लिये निजी मालिकों द्वारा लाभ योजनाये, जिनसे पारस्परिक सुरक्षा प्रदान की जा सके, और निजी बचत तथा अन्य व्यक्तिगत कार्य जिनसे रुचि अनुसार अधिक से अधिक कार्य और सहायता हो सके।

आस्ट्रेलिया मे सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था

सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था आस्ट्रेलिया की एक विशेषता है। इस शताब्दी के आरम्भ से सामाजिक सेवाओं पर होने वाले बहुत से प्रयोगो के कारण, उसे ससार की सामाजिक प्रयोगशाला (Social Laboratory of the world) का नाम दिया गया था। सन् १९०१ के संघीय (Federal) विधान के पूर्व भी स्वास्थ्य, शिक्षा, फैक्टरी कानून, क्षतिपूर्ति, बाल कल्याण आदि सामाजिक कल्याण कार्य करना राज्य का ही उत्तरदायित्व था। संघीय विधान के पश्चात् से कॉमनवेल्थ

सरकार ने सामाजिक सेवाओ मे अधिक रुचि ली है और सरकार के कल्याण कार्यो की नीति, लक्ष्य एव क्षेत्र को देखते हुये उसे वास्तव मे राष्ट्रीय कहा जा सकता है। प्रथम सघीय सामाजिक सेवा (Federal Social Service) वृद्धावस्था पेन्शन की थी जो सन् १६०६ मे आरम्भ हुई और इसके पश्चात सन् १६४० मे असमर्थता पेन्शन की व्यवस्था की गई। सन् १६१२ मे मातृत्व कालीन भत्ता दिया जाता था। उसके पश्चात् बहुत वर्षो तक सघीय सरकार द्वारा बहुत थोडा कार्य किया गया यद्यपि बहुत से राज्यो ने सामाजिक सेवा व्यवस्था को अपनाया। सन् १६३६ से सामाजिक सेवाओ के लिए राज्य के कार्यो मे बहुत वृद्धि हुई है। सन् १६४१ मे बाल-हित योजना को भी कार्यान्वित किया गया जिसके पश्चात् सन् १६४२ मे वैधव्य पेन्शन योजना चालू की गई। सन् १६४३ म एक नवीन प्रकार के मातृत्व-कालीन भत्ते का प्रारम्भ हुआ और मृत्यु सस्कार सहायता की व्यवस्था भी हुई। सन् १६४४ मे रोजगार और बीमारी लाभ अधिनियम लागू किया गया। सामाजिक सेवाओ का उत्तरदायित्व सघीय ससद् एव विभिन्न राज्य दोनो पर ही है। परन्तु सामाजिक सेवा योजनाओ के लिये कानून बनाने का अधिकार सघीय ससद् का ही है और इस अधिकार को १६४६ के एक लोक मतदान प्राप्त करने के बाद मान्यता भी प्राप्त हो गई है।

आस्ट्रेलिया मे मातृत्व कालीन भत्ते (Maternity Allowarces) से तात्पर्य उस भुगतान से लिया जाता है, जो सरकार द्वारा माताओ को बच्चो के जन्म से सम्बन्धित व्यय के लिये वित्तीय सहायता के रूप मे दिया जाता है। यह भुगतान, नि शुल्क देख-रेख, चिकित्सा तथा उस स्थान व्यवस्था के अतिरिक्त है जो किसी माता को एक सार्वजनिक हस्पताल के जनरल वार्ड मे मिलती है और यदि बच्चा प्राइवेट वार्ड मे पैदा हुआ है तो खर्चे के लिए ८ शि० प्रतिदिन का भत्ता दिया जाता है। मातृत्व कालीन भत्त के लिये कोई जीविका साधन जाँच' नही होती। जब कोई और बच्चा न हो, तब १५ पौण्ड की सहायता दी जाती है है और बच्चो की सख्या मे वृद्धि के साथ साथ यह राशि भी बढती जाती है। जुड़वाँ या अधिक बच्चे होने पर एक बच्चे से अधिक प्रत्येक बच्चे के लिये ५ पौण्ड की अतिरिक्त सहायता दी जाती है। प्रसव की सम्भावित तिथि से ४ सप्ताह पूर्व प्रार्थना-पत्र देने पर ५ पौण्ड का पेशगी मातृत्व-कालीन भत्ता मिल जाता है।

आस्ट्रेलिया मे बालको के लिये सहायता (Child Endowment) की भी व्यवस्था है। कोई भी व्यक्ति, जो कि १६ वर्ष से कम आयु वाले एक से अधिक बालकों की देख रेख करता है, बच्चो के लिये सहायता की माँग कर सकता है। एक बच्चे से अधिक प्रत्येक बच्चे के लिये यह सहायता १० शि० प्रति सप्ताह है। यह भुगतान हर चार सप्ताह के बाद होता है। इसके लिये कोई 'जीविका साधन जाँच' नही होती और प्रत्येक व्यक्ति, चाहे उसकी आर्थिक स्थिति कैसी भी हो, इस लाभ को पाने का अधिकारी है।

बीमारी, बेरोजगारी, दुर्घटना अथवा नियमित आय में अस्थायी क्षति होने पर भी लाभ दिए जाते हैं। यह भुगतान १६ व ६५ वर्ष के बीच की आयु वाले पुरुषों और १६ व ६० वर्ष के बीच की आयु वाली स्त्रियों को उपलब्ध है। 'जीविका साधन जांच' भी आय के बारे मे होती है, परन्तु सम्पत्ति के लिए ऐसी कोई जाँच नही होती। अधिकतम सहायता एक विवाहित व्यक्ति के लिए २५ शि० प्रति सप्ताह है, परन्तु इसके साथ-साथ उस प्रत्येक आश्रित स्त्री के लिए २० शि० और एक बच्चे के लिये ५ शि० प्रति सप्ताह, यानी कुल मिलाकर ५० शि० प्रति सप्ताह मिल सकता है। एक अविवाहित व्यक्ति के लिये अधिकतम सहायता २५ शि० प्रति सप्ताह है, और २० शि० अतिरिक्त आय के रूप मे दिये जाते है। जो व्यक्ति सहायता प्राप्त करने का अधिकारी है और जिसके संरक्षण मे यदि १६ वर्ष से भी कम आयु का बच्चा है तो उसको उस बच्चे के लिये ५ शि० प्रति सप्ताह अतिरिक्त लाभ पाने का अधिकार है। बीमारी लाभ असमर्थता होने के सातवें दिन से मिल सकता है, यदि लाभ की माँग बीमारी की तिथि से ६ सप्ताह के अन्दर ही कर दी गई हो। बेरोजगारी लाभ, बेरोजगार होने के सात दिन बाद या दावा करने के दिन से, जो भी बाद मे हो, उस तिथि से मिलता है और तब तक मिलता है जब तक व्यक्ति कोई भी उचित कार्य करने के योग्य व इच्छुक रहता है।

विधवाओं की पेन्शन भी आस्ट्रेलिया में विभिन्न दरों पर दी जाती है। लाभ के लिये विधवाओं को ४ वर्गों मे विभाजित किया गया है: ऐसी विधवा को जो १६ वर्ष से कम आयु वाले एक अथवा अधिक बच्चों की देखरेख करती हो, २ पौण्ड ७ शि० ७ पेंस प्रति सप्ताह पेन्शन मिलती है। ऐसी विधवा को, जिसकी आयु ५० वर्ष से अधिक हो और उसका कोई बालक १६ वर्ष से कम आयु का न हो, १ पौण्ड १७ शि० प्रति सप्ताह पेन्शन मिलती है। ऐसी विधवा को, जिसकी आयु ५० वर्ष से कम हो, और उसका कोई बालक १६ वर्ष से कम आयु का न हो परन्तु पति की मृत्यु के २६ सप्ताह से कम समय में ही अभाव की स्थिति मे हो, २ पौण्ड २½ शि० प्रति सप्ताह दिया जाता है। ऐसी स्त्री, जिसका पति कम से कम ६ मास से कारावास मे हो और जिसके १६ वर्ष से कम आयु वाले एक अथवा अधिक बालक हो अथवा जिसकी आयु ५० वर्ष से अधिक हो, १ पौण्ड १७ शि० प्रति सप्ताह लाभ की अधिकारिणी होती है। इस प्रकार लाभ हेतु "विधवा" शब्द केवल उस स्त्री के लिए ही नही आता जिसका पति मर गया हो, वरन् इस शब्द का प्रयोग अभित्यक्त (Deserted) पत्नी, तलाक प्राप्त स्त्री, ऐसी स्त्री जिसका पति जेल या हस्पताल मे हो और कुछ अन्य आश्रित स्त्रियों के लिये भी होता है।

आस्ट्रेलिया मे 'जीविका साधन जांच' (Means-test) (जो कि आय एव सम्पत्ति दोनों के लिये होती है) के पश्चात् ६५ वर्ष के पुरुषों और ६० वर्ष की स्त्रियों के लिए वृद्धावस्था पेन्शन की भी व्यवस्था है। अधिकतम दर ११० पौण्ड १० शि० प्रति वर्ष अथवा २ पौण्ड २½ शि० प्रति सप्ताह है। *उन व्यक्तियों के लिए,*

जिनकी आयु १६ वर्ष से अधिक है और जो कार्य करने से स्थायी रूप से असमर्थ हैं अथवा जो स्थायी रूप से नेत्रहीन है, निबलता पेन्शन की व्यवस्था है। दरें वही है जो कि वृद्ध व्यक्तियों के लिए पेन्शन की है। आस्ट्रेलिया में ऐसी स्त्रियों के लिए भत्तो की व्यवस्था है जो कि एक निबल पेन्शनर की पत्नी है और अपने पति के साथ ही रहती हैं और यदि उन्हे निबलता लाभ अथवा वृद्धावस्था पेन्शन नही मिलती है। ऐसी स्त्री के लिए बालको का भत्ता भी स्वीकृत है। १० पौण्ड का मृत्यु सस्कार अनुदान भी एक ऐसे व्यक्ति को मिल सकता है जिसने एक वृद्ध एव निबल व्यक्ति का अन्तिम सस्कार अपने खर्च से किया हो।

इस प्रकार आस्ट्रेलिया मे भी सामाजिक सेवाओ की एक व्यापक योजना लागू है यद्यपि अधिकतर लाभ आय और सम्पत्ति की जीविका साधन जाँच होने पर मिलते हैं।

अन्य देशो मे सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था और भारत मे उनके लागू होने की सम्भावना

उपरोक्त वर्णन से कुछ अन्य देशो की सामाजिक सुरक्षा योजनाओ पर प्रकाश पडता है। अब प्रश्न यह उठता है कि भारत को भी इस प्रकार की सामाजिक सेवा योजना का निर्माण करना चाहिए अथवा नही। जैसा कि हमने पिछले अध्याय मे बताया है, हमारे देश मे ऐसी योजना नितान्त आवश्यक है, परन्तु उसके लागू होने म कुछ विशेष कठिनाइयाँ आती हैं जिनको हमें बैंवरिज आयोजन के आधार पर कोई सामाजिक सुरक्षा योजना बनाने के पहले सुलझाना होगा। प्रत्येक सामाजिक सुरक्षा योजना की लागत बहुत अधिक होती है और देश की अल्प राष्ट्रीय आय को दृष्टि मे रखते हुए भारत इतना व्यय वहन नही कर सकता। इससे पूर्व कि हम और देशो के समान अपने देश मे अनेक प्रकार के लाभो की व्यवस्था के लिये कोई योजना लागू करने के लिए पग उठायें, राष्ट्रीय आय मे वृद्धि की जानी चाहिए। देश का बडा आकार अत्यधिक जनसख्या और जनता की अशिक्षा को भी ध्यान म रखना होगा। चरित्र निर्माण स्वय अनुशासन आत्म सयम एव विस्तृत दृष्टिकोण की बहुत आवश्यकता है और जब तक यह सब न होगा, सुधार सम्भव नही है।

यह भी विचारणीय है कि सामाजिक सुरक्षा योजनाओ को आर्थिक विकास की अन्य योजनाओ से पृथक रखकर कार्यान्वित नहीं किया जा सकता। इगलैण्ड मे भी सर बैंवरिज द्वारा योजना की सफलता के लिये यह आवश्यक समझा गया था कि सन्तान भत्त पूर्ण रोजगार एव एक व्यापक स्वास्थ्य सेवा पहले से ही होनी चाहिये। भारत मे भी, सर्वप्रथम तो पूर्ण रोजगार की स्थिति लाने का प्रयत्न होना चाहिये एव व्यक्तियो क स्वास्थ्य एव कल्याण की योजनाओ की व्यवस्था होनी चाहिये और तब अन्य क्षत्रो मे लाभो के विस्तृत करने पर विचार करना

चाहिये। फिर भी इसका प्रारम्भ कुछ सीमित व्यक्तियों के लिये किया जा सकता है; और, जैसा कि बताया जा चुका है, भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के लिये सामाजिक सुरक्षा योजना को लागू करना वाछनीय ही नहीं, वरन् सम्भव भी है। यह प्रसन्नता का विषय है कि सरकार ने इस सम्बन्ध में अपने दायित्व को समझ लिया है और भारत के औद्योगिक श्रमिकों के कल्याण और सुरक्षा की दिशा में कदम उठाये गये हैं और उठाये जा रहे हैं।

१४

कार्य की दशायें तथा कार्य के घण्टे, आदि

WORKING CONDITIONS AND HOURS OF WORK ETC

कार्य की दशाओं की महत्ता

मनुष्य जिन परिस्थितियों में कार्य करता है, उनका उसके स्वास्थ्य, कार्य-कुशलता, मनोवृत्ति तथा कार्य के गुणों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। यह कहा जाता है कि वातावरण मनुष्य का निर्माण करता है, यदि वातावरण में सुधार कर दिया जाय तो मनुष्य स्वयं ही सुधर जायेगा।[1] अस्वस्थ दशाओं में कठिन श्रम करते रहना सम्भव नहीं है। यह सर्वविदित तथ्य है कि गन्दे, उदास और अस्वास्थ्य-कर वातावरण की अपेक्षा स्वस्थ, उज्ज्वल और प्रेरणात्मक (Inspiring) वातावरण में मनुष्य अधिक और अच्छा कार्य कर सकता है। यदि वातावरण गन्दा और कोलाहलपूर्ण है तो श्रमिक का ध्यान बँट जायेगा। कार्य में एकाग्रता (Concentration) होना आवश्यक है और यह तभी सम्भव है जब वाह्य विघ्नों से श्रमिकों का ध्यान न बँटे। दीवारों के रंग और मशीनों की दिशा तक श्रमिक की मनोवृत्ति पर प्रभाव डालते हैं।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि सन्तोषप्रद कार्य करने की दशायें केवल श्रमिकों की कार्यकुशलता को ही प्रभावित नहीं करतीं अपितु उनके वेतन, प्रवासिता और औद्योगिक सम्बन्धों पर भी प्रभाव डालती हैं। प्रत्येक श्रमिक की कार्यकुशलता प्रत्यक्ष रूप से उसके स्वास्थ्य तथा उसकी कार्य करने की इच्छा पर निर्भर करती है। यदि कार्य की दशायें सन्तोषजनक हैं तो श्रमिक के शरीर व मस्तिष्क पर स्वास्थ्यप्रद प्रभाव पड़ेगा, श्रमिक प्रसन्न रहेगा और कार्यकुशलता बढ़ जाने से उत्पादन भी अधिक होगा। इस प्रकार मालिकों को भी लाभ होगा। इसके विपरीत, यदि कार्य करने की दशायें असन्तोषजनक हैं तो श्रमिक अपने कार्य को कठिन समझेगा, कार्य धीरे धीरे करेगा और उसके लिये समय व्यतीत करना भी कठिन हो जायेगा। सन्तोषजनक कार्य की दशायें प्रदान कर नकद मजदूरी व वास्तविक मजदूरी के बीच की खाई को बहुत कुछ कम किया जा सकता है। जहाँ पर कार्य का वातावरण स्वस्थ है और मालिकों ने श्रमिक के कल्याण व सुख-

---

1 *Environments create a man, and if we improve the environments we improve the man*

सुविधा के लिये प्रबन्ध किया है वहाँ पर श्रमिक कम मजदूरी पर भी कार्य करने को तत्पर हो जाते है। इन सब बातों के अतिरिक्त श्रमिको की प्रवासिता का एक मुख्य कारण यह है कि जो श्रमिक गाँव के खुले वातावरण से आता है उसे कारखानो मे एकदम भिन्न और असन्तोषजनक परिस्थितियों मे कार्य करना पडता है। फलतः वह ऊब उठता है और शीघ्रातिशीघ्र अपने गाँव वापिस लौट जाने का प्रयत्न करता है। सन्तोषजनक एवं स्वास्थ्यप्रद कार्य की दशायें श्रमिको की अस्थिरता के इस मुख्य कारण को दूर कर सकती है और उनमे अनुपस्थिति तथा श्रमिकावर्त को भी बहुत सीमा तक कम कर सकती हैं। कार्य का उज्ज्वल और स्वच्छ वातावरण यदि प्रदान किया जाता है तब ऐसा वातावरण मालिक व मजदूर के बीच भी अच्छा सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होता है। सन्तोषजनक वातावरण से श्रमिकों में थकान और उदासी भी नही आ पाती और वह अपना समय स्वय के संगठन, परिवार व कल्याण कार्यों मे व्यतीत कर सकता है।

कार्य करने की दशाओं का क्षेत्र

कार्य करने की दशाओं के अन्तर्गत अनेक विषय आते है, उदाहरणत जल-मल निकास की व्यवस्था, धूल और गन्दगी, तापक्रम, नमी, सवातन, कारखाने के अन्दर उचित स्थान और सुरक्षा की दृष्टि से मशीनों के चारों ओर रोक आदि तथा अनेक कल्याणकारी सुविधायें, जैसे—कैन्टीन, स्नानगृह, हाथ मुँह धोने के लिए चिलमचियाँ, पीने के पानी की व्यवस्था, जलपान-गृह, कार्य के घण्टे, रात्रि कार्य, पारी प्रणाली आदि। उपरोक्त विषयों में से अनेक सुविधायें कल्याणकारी सुविधाओ के अन्तर्गत प्रदान की जाती है तथा अनेक कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत आती है। परन्तु कानून द्वारा न्यूनतम आवश्यकताओ के निर्धारित होने पर भी जल-मल निकास की व्यवस्था, सवातन, तापकम, प्रकाश आदि, अर्थात् सामान्य वातावरण, इस बात पर निर्भर करता है कि मालिक इसका अनुभव कर लें कि अच्छे वातावरण का श्रमिको के स्वास्थ्य और कार्यकुशलता के लिए बहुत महत्व है।

कार्य करने की दशाओं के विभिन्न रूप

जल-मल निकास की व्यवस्था (Sanitation) एव स्वच्छता सम्भवतया संतोपजनक कार्य की दशाओं का सबसे मुख्य अग है। इनसे तात्पर्य कारखाने के अन्दर सफाई, दीवारो पर सफेदी, पक्का फर्श, साफ और स्वच्छ मशीने, शौचालय तथा पेशाबघर का उचित प्रबन्ध, पानी निकालने के मार्ग, नालियाँ, कूडे करकट के लिये कनस्तर व टोकरियो आदि से है।

कारखाने के अन्दर से **धूल व गन्दगी** (**Dust and Dirt**) दूर करने का भी उचित प्रबन्ध होना चाहिए। बहुत से कारखानों में निर्माण-प्रक्रिया कुछ ऐसी होती है कि बहुत गन्दगी उत्पन्न हो जाती है। गन्दगी और धूल उत्पन्न होने का कारण यह भी है कि कारखानो के अन्दर की सड़कें कच्ची होती है, और यदि

उन पर उचित रूप से पानी नही छिड़का जाता, या कारखाना बिल्कुल मुख्य सड़क पर होना है तो धूल सदा आती रहती है। भारत की जलवायु भी इस प्रकार की है कि ग्रीष्म-ऋतु में बड़ी मात्रा में धूल व गन्दगी उत्पन्न हो जाती है। धूलग्रस्त वातावरण में श्रमिक ठीक प्रकार से साँस भी नही ले सकते जिसके कारण अनेक बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और उनकी आँखो पर भी कुप्रभाव पड़ता है। अत सड़कों तथा मार्गों पर पानी छिड़कने का तथा पक्के फर्शों और पक्के मार्गों का प्रबन्ध होना चाहिये। इसके अतिरिक्त धूल और गन्दगी दूर करने के लिये उचित रूप से हवा के आने जाने और सफाई की व्यवस्था होनी चाहिये।

तापक्रम (Temperature) व नमी (Humidification) का भी कार्य करने की दशाओं मे विशेष महत्व है। देश की जलवायु ऐसी है कि ग्रीष्म-ऋतु मे, विशेषतया गर्म तापक्रम के कारण शारीरिक कार्य अरुचिकर हो जाता है। उच्च तापक्रम में कमी करना या उसके प्रभाव को कम करना अत्यन्त सरल है, यद्यपि बहुत से लोग इस बात को नहीं समझते हैं। बिजली के पंखे, दूषित वायु निकालने के पंखे, खस की टट्टियाँ और वातानुकूल यन्त्र इन दशाओं मे सुधार कर सकते हैं।

पर्याप्त सवातन (Ventilation) और हवा के आने की व्यवस्था एक अन्य आवश्यकता है। यह व्यवस्था खिड़कियों तथा सवातनों द्वारा की जाती है। यह व्यवस्था कृत्रिम उपायो द्वारा भी हो सकती है, जैसे मशीनो या पखों द्वारा हवा को फकना। ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता वस्त्र उद्योगो मे विशेष रूप से होनी है, क्योंकि वहाँ कार्य धूलग्रस्त व नम वायु मे सम्पन्न होता है। बहुत सारे उद्योगो में धूल तथा हानिकारक गैस उत्पन्न होती हैं, जिनको तत्काल कारखाने से निकालने के लिये उचित सवातन का होना आवश्यक है। उचित रूप से सवातन व्यवस्था न होने के जो हानिकारक परिणाम होते हैं, वह भली-भाँति ज्ञात हैं। परन्तु फिर भी भारतीय कारखानो मे इस ओर उचित ध्यान नहीं दिया जाता।

प्रकाश (Lighting) की व्यवस्था भी बहुत आवश्यक है। कार्य करने के स्थानो पर उचित तथा पर्याप्त प्रकाश का प्रबन्ध कर्मचारियों की नेत्र दृष्टि की रक्षा करता है और उत्पादन मे वृद्धि करता है। प्राकृतिक प्रकाश का प्रबन्ध छतो से अथवा खिड़कियों से किया जा सकता है। कृत्रिम प्रकाश का प्रबन्ध बिजली, मिट्टी के तेल या गैस की लालटेनों द्वारा किया जा सकता है। असन्तोषजनक प्राकृतिक प्रकाश प्राय. पुरानी अयोग्य इमारतो, अन्य इमारतों की समीपता, गन्दी खिड़कियों, दीवारों व छतो के कारण होता है। भारत मे अनेक कारखानो मे इस प्रकार की दशायें पाई जाती हैं। लगातार कृत्रिम प्रकाश का प्रयोग भी अप्राकृतिक होता है और आँखों पर कुप्रभाव डालता है। असन्तोषजनक प्रकाश से दुर्घटनायें हो जाती है और उत्पादन में कमी हो जाती है। कम प्रकाश से गन्दगी बढ़ती है क्योंकि बहुत से कोनो आदि में गन्दगी दिखाई नहीं देती है। प्रकाश पर्याप्त मात्रा मे होना चाहिये और कार्य के ठीक स्थान पर उस प्रकाश से परछाईं भी न पड़नी

चाहिये। इस बात का भी प्रबन्ध होना चाहिये कि कर्मचारियों की आँखों पर प्रकाश सीधा न पड़े।

दुर्घटनाओं को रोकने के लिए **मशीन के चारों ओर रोक लगाना** (Fencing) व **श्रमिकों की सुरक्षा के पर्याप्त साधनों** (Safety Provisions) **का होना** आवश्यक है। इस दृष्टि से विभिन्न कारखाना अधिनियमों में उपबन्ध बनाये गये हैं परन्तु उनको उचित रूप से लागू करना भी अत्यन्त आवश्यक है। कारखाने ऐसी ही इमारतों में बनाने चाहिये जिनमें काफी जगह हो, जिससे कि मशीनों के मध्य काफी स्थान रह सके।

कारखानों के अन्दर **पीने के शुद्ध पानी** तथा खाना खाने के लिए भी **उचित स्थान का प्रबन्ध** होना आवश्यक है। कार्य के घण्टे भी लम्बे नहीं होने चाहिये तथा बीच-बीच मे **अल्पविराम** का प्रबन्ध भी होना चाहिये।

सन् १९४८ का कारखाना अधिनियम—कार्य की दशाओं के सम्बन्ध मे इसके मुख्य उपबन्ध

यहाँ हम १९४८ के कारखाना अधिनियम (Factory Act of 1948) के उन उपबन्धों की चर्चा करेंगे जिनका मालिकों द्वारा श्रमिकों की सुरक्षा एव स्वास्थ्य के लिये लागू करना आवश्यक है। इस प्रकार की व्यवस्था समय-समय पर अनेक कारखाना अधिनियमों द्वारा की गई थी। परन्तु अब उनको एक स्थान पर समायोजित कर १९४८ के अधिनियम मे व्यापक रूप प्रदान कर दिया गया है।

जहाँ तक **स्वच्छता** (Cleanliness) का सम्बन्ध है, अधिनियम के अनुसार प्रत्येक कारखाना, नालियों या अन्य कारणों से उत्पन्न दुर्गन्ध से मुक्त रहना चाहिए। झाड़ू अथवा किसी अन्य साधन द्वारा प्रतिदिन फर्श, कार्य करने के कमरो की बेंचो, सीढ़ियों, मार्गों आदि में से गन्दगी और कूड़ाकरकट के ढेर साफ होने चाहिये तथा उनको फेंकने की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिये। सप्ताह में कम से कम एक दिन कार्य करने के प्रत्येक कमरे का फर्श कीटाणुनाशक (Disinfectant) पदार्थ द्वारा धुलना चाहिए। यदि निर्माण प्रक्रिया के समय फर्श गीला हो जाता है तो नालियों की उचित व्यवस्था करनी होगी। अन्दर की दीवारे और कमरो की ऊपर और नीचे की छतें, सीढ़ियाँ, मार्ग आदि सभी पर प्रत्येक पाँच वर्ष में कम से कम एक बार पुन रोगन या वार्निश करनी होगी। प्रत्येक १४ महीने मे एक बार सफाई करनी चाहिए। यदि रोगन अथवा वार्निश नहीं की जाती, तब १४ महीनों में एक बार पुताई या सफेदी करनी चाहिये।

जहाँ तक **कूड़ा-करकट और दुर्गन्ध की निकासी** (Disposal of Wastes and Effluents) का सम्बन्ध है, निर्माण के समय उत्पन्न होने वाली ऐसी वस्तुओं की निकासी के लिए राज्य सरकारों को नियम बनाने का अधिकार दिया गया है। इन नियमों के अनुसार प्रत्येक कारखाने मे उचित संवातन (Ventilation) की व्यवस्था होनी चाहिये और प्रत्येक कमरे मे शुद्ध वायु के आने जाने के लिये मार्ग

तथा ऐसा तापक्रम (Temperature), जिससे श्रमिको के स्वास्थ्य को हानि न पहुँचे और वह आराम से कार्य कर सकें, रखने के लिये भी प्रभावात्मक और उचित व्यवस्था होनी चाहिए। दीवारें और छतें इस प्रकार और ऐसे पदार्थों की बनानी चाहियें कि तापक्रम जितना भी सम्भव है कम रखा जा सके। यदि किसी कार्य के लिए अधिक तापक्रम की आवश्यकता पड़ती है, तब ऐसी अवस्था मे जिस प्रक्रिया से अधिक तापक्रम पैदा होता है, उसे कार्य के कमरे से या किसी अन्य साधन द्वारा पृथक् करके श्रमिको को बचाना चाहिये। राज्य सरकारो को पर्याप्त सवातन और उचित तापक्रम के स्तरो को निर्धारित करने का अधिकार है, और राज्य सरकार किसी भी कारखाने से तापक्रम को कम करने की माँग कर सकती है, जिसके लिए कोई भी साधन अपनाया जा सकता है, जैसे—दीवारो पर सफेदी करना, पानी छिड़कना, यत्र लगाना, बाहर की दीवारो, कमरो और खिड़कियो पर पर्दे लटकाना, छत को ऊँचा करना या कोई अन्य साधन।

यदि किसी कारखाने मे उत्पादन के समय धूल (Dust), धुआँ (Fumes), या अन्य किसी प्रकार की गन्दगी होती है, जिससे श्रमिको को हानि पहुँचती है और दुर्गन्ध उत्पन्न होती है, तब कार्य के कमरो मे से इसे तत्काल निकालने और एकत्रित न होने देने की व्यवस्था होनी चाहिए, ताकि दूषित वायु मे साँस न ली जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हवा फेंकने वाले यत्रो का प्रयोग किया जाना चाहिए। हवा बाहर फेंकने वाले यत्र के इजिन को भी खुली जगह मे लगाना चाहिये और इस प्रकार का कोई इजिन किसी भी कमरे मे चालू नही करना चाहिये, जब तक भाप को एकत्रित होने से रोकने के लिए कोई व्यवस्था न करली जाय।

उन सभी कारखानो के सम्बन्ध मे, जहाँ हवा की नमी को कृत्रिम रूप से बढ़ाया जाता है, राज्य सरकारो को यह अधिकार दिया गया है कि वह इस बात के लिए नियम बनाएँ कि नमी (Humidification) का क्या स्तर होगा और हवा की नमी को कृत्रिम रूप से बढ़ाने के ढग पर नियन्त्रण रखने और पर्याप्त सवातन और कार्य के कमरो को ठडा रखने की व्यवस्था होगी। नमी को बढ़ाने के लिए केवल शुद्ध जल का ही प्रयोग करना होगा।

भीड़ भाड़ को रोकने के लिये अधिनियम मे यह व्यवस्था की गई है कि उन कारखानो मे जो अधिनियम के लागू होने के पूर्व से चल रहे थे, काम के प्रत्येक कमरे मे प्रत्येक श्रमिक के लिये कम से कम ३५० घन फीट की जगह (Space) होगी तथा उन कारखानो मे जो अधिनियम बनाने के बाद स्थापित हो कम से कम प्रति श्रमिक ५०० घन फीट जगह होगी। कारखानो मे मुख्य निरीक्षक को यह निर्धारित करने का अधिकार है कि किसी कमरे मे अधिक से अधिक कितने श्रमिक काम कर सकते हैं।

प्रकाश के लिये अधिनियम मे यह व्यवस्था है कि कारखाने के प्रत्येक भाग मे, जहाँ श्रमिक आते जाते है अथवा जहाँ वे काम करते हैं, कृत्रिम एव प्राकृतिक

अथवा दोनों ही प्रकार के प्रकाश (Lighting) की पर्याप्त और उचित व्यवस्था होगी। प्रत्येक फैक्ट्री के कमरों में प्रकाश रखने के लिए यदि शीशेदार खिड़कियाँ और रोशनदान हों तो वे भीतर और बाहर दोनों ओर से साफ रहनी चाहिएं। उनमें तापक्रम के घटाने के समय के अतिरिक्त और किसी समय कोई रुकावट नही होनी चाहिये। यदि किसी प्रकार के साधन से सीधे तौर पर या किसी चिकने स्थान से चकाचौंध होती है तो उसको रोकने के लिये भी व्यवस्था करनी चाहिये। इसी प्रकार ऐसी परछाईं को जिससे श्रमिकों की आँखों पर जोर पड़ता हो अथवा दुर्घटना की सम्भावना हो, दूर करने की व्यवस्था होनी चाहिये। विभिन्न श्रेणियों के कारखानों के लिये राज्य सरकारों को सन्तोषजनक और उपयुक्त प्रकाश के स्तर को निर्धारित करना होता है।

यह भी व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक कारखाने में उचित और सुविधाजनक स्थानों पर पीने के पानी (Drinking Water) की पर्याप्त पूर्ति का प्रबन्ध करना होगा। ऐसे स्थानो पर, उस भाषा में जिसे श्रमिक समझ सके, **'पीने का पानी'** लिखा जायेगा। ऐसा स्थान धोने की जगह, शौचालय तथा पेशाबघर से कम से कम २० फुट की दूरी पर होगा। उन कारखानों में जहाँ २५० या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं, गर्मी के दिनों में पीने के पानी को ठंडा करने की भी व्यवस्था करनी होगी।

अधिनियम के अनुसार विशेष प्रकार के **शौचालय** (Latrines) तथा **पेशाब घर** (Urinals) भी पर्याप्त मात्रा में बनाने चाहिये। यह ऐसे स्थानों पर होने चाहिये, जहाँ श्रमिक, कारखानों में रहते हुए, किसी भी समय सरलतापूर्वक पहुँच सके। इस प्रकार के स्थानों पर पर्याप्त प्रकाश और सवातन की व्यवस्था होनी चाहिये तथा ये हर समय स्वच्छ रहने चाहिएँ। इस कार्य के लिये भंगियों को नौकरी पर लगाना होगा। स्त्री और पुरुषों के लिये अलग-अलग व्यवस्था करनी होगी। ऐसे प्रत्येक कारखाने में, जहाँ २५० या अधिक कर्मचारी कार्य करते है, फर्श और तीन-तीन फीट तक दीवारें चमकदार टाइलो की बनानी होगी तथा सप्ताह में एक बार सबकी खूब सफाई व कीटाणुनाशक पदार्थों से धुलाई होगी। राज्य सरकारों को प्रत्येक कारखानो के सम्बन्ध में शौचालयों तथा पेशाब-घरों की संख्या व सफाई के लिये नियम बनाने का अधिकार है।

अधिनियम में इस बात का भी उपबन्ध है कि प्रत्येक कारखाने में उचित स्थानो पर **पीकदानों** (Spittoons) की व्यवस्था की जाय और उनको स्वच्छ अवस्था में रखा जाय। कारखाने के अन्दर कोई भी व्यक्ति पीकदान के अलावा कहीं नहीं थूकेगा। राज्य सरकार प्रत्येक कारखाने में पीकदान की संख्या तथा उनके आकार के रूप को निर्धारित करेगी। उस व्यक्ति पर, जो नियम का उल्लंघन कर और कहीं थूकता है, ५ रुपये का जुर्माना किया जा सकता है।

श्रमिकों की सुरक्षा **और दुर्घटनाओं की रोकथाम** (Prevention of Accidents) के लिये भी अधिनियम में उपबन्ध है। खतरनाक मशीनों, उनके घूमने

वाले भागो और पहियो के चारो ओर पर्याप्त रूप से रोक लगाने का आदेश है। गतिशील मशीनो को इस प्रकार से लगाना होगा जिससे कोई दुर्घटना न हो सके। यदि जाँच-पडताल के हेतु या उनमे तेल डालने के लिये अथवा पट्टा चढाने के लिये चलती हुई मशीन पर या उसके पास काम करना आवश्यक भी हो तो यह कार्य किसी विशेष प्रशिक्षित वयस्क पुरुष द्वारा किया जाना चाहिये। इस व्यक्ति के कपडे कसे हुये होने चाहियें और उसको किसी भी ऐसे पट्टे को, जिसकी चौडाई ६ इच से अधिक हो, चलायमान (Moving) अवस्था मे नही छूना चाहिये। मशीन के उन सभी भागो के चारो ओर, जिनसे श्रमिक का अधिक सम्पर्क हो सकता है, रोक लगानी चाहिये। किसी भी कारखाने मे, जब मशीन चल रही हो, किसी भी स्त्री या बालक को मशीन साफ करने, उसमे तेल देने अथवा उसके किसी पुर्जे आदि को लगाने के काम पर नही लगाया जा सकता और न उनको मशीनो के चलते हुये भागो के बीच कोई कार्य दिया जा सकता है। बिना पर्याप्त प्रशिक्षण और बिना पर्याप्त निरीक्षण व देख-रेख के कोई भी युवक खतरनाक मशीनो पर कार्य नही कर सकता। इस बात की भी व्यवस्था होनी चाहिये कि सकटकाल मे चलती हुई मशीनो से चालू शक्ति (Power) को तत्काल ही बन्द कर दिया जा सके। पट्टो को चलाने के लिये यान्त्रिक साधनो की व्यवस्था करना जरूरी है। इस बात के बचाव की भी व्यवस्था है कि स्वय चलने वाली मशीनो से सम्पर्क न हो पाये। १६४८ के कारखाना अधिनियम मे एक नया उपबन्ध इस बात का भी है कि जो भी नई मशीन बने, उसके चारो ओर रोक होने की व्यवस्था उसके साथ ही होनी चाहिए। इसका उत्तरदायित्व कारखाने के मालिको पर ही नही वरन् मशीन के बनाने वाले या मशीन को बचने वाले ऐजेन्ट के ऊपर भी है। मशीनो मे रूई ले जाने के मार्ग के पास औरतो व बच्चा को काम पर लगाने की भी मनाही है। लिफ्ट या उठाने वाले यन्त्र के सम्बन्ध मे भी उपबन्ध बनाये गये हैं। उनकी यान्त्रिक रचना अच्छी होनी चाहिये, वे अच्छे पदार्थ के बने होने चाहिएँ, मजबूत होने चाहियें, उनको उचित दशा मे रखना चाहिये और उनकी जाँच भी होती रहनी चाहिये। उनके लिये दरवाजे, जाली और अधिकतम बोझ आदि के सम्बन्ध मे भी उपबन्ध है। 'क्रेन' और अन्य भार उठाने वाली मशीनो, घूमती हुई मशीनो दबाव डालने वाली मशीनो आदि से रक्षा करने के लिये भी उपबन्ध बनाये गये है। इस बात की भी व्यवस्था है कि तमाम फर्श, सीढियाँ और पहुँचने के साधन अच्छे प्रकार के बने हुए होगे और उनको अच्छी हालत मे रक्खा जायेगा। अगर फर्श मे कोई गड्ढा या छिद्र होगा तो उसको ठीक प्रकार से ढकना होगा और उसके चारो ओर रोक लगानी होगी।

अधिनियम मे व्यवस्था की गई है कि कोई भी कर्मचारी ऐसा बोझ न तो उठा सकता है और न ले जा सकता है, जिससे उसे हानि होने की सम्भावना हो। राज्य सरकारो का इस बात का अधिकार है कि वे यह निर्धारित कर सके कि पुरुषो, स्त्रियो तथा बच्चो द्वारा अधिक से अधिक कितना भार उठाया जा

सकता है। उत्पादन की कुछ विशेष प्रक्रियाओं में तेज रोशनी अथवा कणों से नेत्रों की रक्षा करने का भी उपबन्ध है। अधिनियम में विषैले धुये, शीघ्र जलने वाले तथा विस्फोटक पदार्थों (Explosives) एवं आग लगने पर बचाव के लिये भी व्यवस्था करने के लिये उपबन्ध है। प्रत्येक कारखाने में आग लगने की अवस्था में बच निकलने के अनेक साधनों तथा आग बुझाने वाले यन्त्रों (Fire Extinguishers) की व्यवस्था करनी होती है। कारखाना निरीक्षक को इस बात का अधिकार है कि यदि मशीन अथवा इमारत का कोई भाग मानव-जीवन के लिये हानिकारक है तब वह मालिकों को इसे ठीक करने का आदेश दे सकता है। उसको इस बात का भी अधिकार है कि वह आदेश दे कि मानव-जीवन की सुरक्षा के दृष्टिकोण से इमारत और मशीन के सम्बन्ध में कुछ विशिष्ट बातों का पालन किया जाय।

इस सम्बन्ध में एक मुख्य बात यह भी है कि अधिनियम के अन्तर्गत अब कारखाने के स्वामी पर अपने कर्मचारियों की सुरक्षा का दायित्व है। कारखाना निरीक्षक *(Inspector) के लिए अब यह आवश्यक नहीं रह गया है कि वह मशीनों* के चारों ओर रोक लगाने के लिए अथवा श्रमिकों के स्वास्थ्य और सुरक्षा के साधनों की व्यवस्था करने के लिए आदेश दे। कपड़े धोने की सुविधा, बैठने की सुविधा, प्राथमिक चिकित्सा उपाय (First-aid Appliances), कैन्टीन, विश्राम-गृह, भोजन के लिए कमरे, शिशुगृह, कल्याण अधिकारी आदि की भी व्यवस्था अधिनियम में की गई है, जिनका उल्लेख कल्याण कार्यों के अन्तर्गत किया जा चुका है।

सुरक्षा सम्बन्धी कार्रवाइयों को मजबूत बनाने के लिए १९४८ के फैक्ट्री अधिनियम में संशोधन करने का सुझाव दिया गया है ताकि अधिनियम की *कमियाँ* दूर हो सकें, सुरक्षा की अधिक अच्छी दशाओं की व्यवस्था हो सके, एक हजार अथवा अधिक श्रमिकों वाली फैक्टरियों में अथवा ऐसी फैक्टरियों में, जहाँ श्रमिक गम्भीर खतरों की दशाओं में कार्य करते है, सुरक्षा अधिकारियों की नियुक्ति की जा सके, खतरनाक घटनाओं को दर्ज किया जा सके और व्यावसायिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण करने तथा घातक दुर्घटनाओं की जाँच करने आदि के लिए अधिक शक्तियाँ प्रदान की जा सके।

खानों, बागान और यातायात के श्रमिकों के लिए अलग से अधिनियम हैं जिनके अन्तर्गत श्रमिकों के स्वास्थ्य और सुरक्षा की व्यवस्था ऊपर बताये गये १९४८ के कारखाना अधिनियम के आधार पर ही की गई है। ('भारत में श्रम विधान' का अध्याय देखिये)।

विभिन्न उद्योगों में कार्य की दशायें

यहाँ हम इस बात पर विचार करेंगे कि विभिन्न उद्योगों में कार्य करने की सामान्य दशायें कैसी है और ऊपर बताये गये उपबन्धों में से कितने संतोषजनक रूप से लागू किये जाते है। श्रम अनुसंधान समिति ने विभिन्न उद्योगों में कार्य करने

की दशाओ का विस्तृत सर्वेक्षण (Survey) किया था। उस समय से, जबकि समिति ने अपनी रिपोर्ट दी थी, स्थिति मे कोई विशेष सुधार नही हुआ है। यह कहा जा सकता है कि बडे कारखानो मे सामान्यत कार्य की दशायें सतोषजनक हैं। परन्तु छोटे और अनियंत्रित कारखानों मे, विशेषतया उनमे जो पुरानी इमारतो मे स्थापित है, प्रकाश, सवातन आदि की दृष्टि से दशा बहुत ही असतोषजनक है तथा उनमे सुधार होना अति आवश्यक है। श्रम अनुसधान समिति के अनुसार अधिकतर मालिक कठिनता से ही उससे अधिक करते हैं जितना कानून द्वारा उन्हे करना पडता है और कभी-कभी तो कानून की धाराओ से भी बचने का प्रयत्न किया जाता है। दुर्घटनाओ को रोकने के लिए तथा श्रमिको की ताप, धूल आदि से रक्षा के लिए कोई अतिरिक्त व्यवस्था नही की जाती। अधिकाश मालिक कार्य की दशाओ के प्रति उदासीन रहते है। वे कानून के शब्दो के पालन से ही अपने कर्तव्य की इति-श्री समझ लेते है और इसके वास्तविक उद्देश्य की ओर ध्यान ही नही देते। फलस्वरूप कानून द्वारा निश्चित सीमा के अन्तर्गत भी मशीनो एव यन्त्रो से सुरक्षा आदि के नियमो का उल्लघन किया जाता है। परन्तु देश के कुछ जागरूक मालिको ने अपने श्रमिको की सुरक्षा के लिए अतिरिक्त व्यवस्था भी की है। उन्होंने न केवल मशीनो के गतिशील भागो से श्रमिको की सुरक्षा की व्यवस्था की है, अपितु श्रमिको म 'सुरक्षा प्रथम' (Safety First) समितियाँ भी सगठित की है जिससे श्रमिको को दुघटनाओ के खतरो का ज्ञान कराया जा सके। यदि किसी विशेष विभाग म कोई दुर्घटना नही घटती है तो श्रमिको को बोनस दिया जाता है।

यह देखा गया है कि विभिन्न स्थानो की कपडा मिलो की इमारतो मे आम तौर पर अच्छी प्रकार से रोशनी का प्रबन्ध है तथा उनमे सवातन का उत्तम प्रबन्ध भी है। मशीनो का लगाया जाना भी प्राय सतोषजनक है तथा उनके बीच श्रमिको के आने-जाने के लिये पर्याप्त स्थान पाया जाता है। अहमदाबाद, नागपुर, कोयमुत्तूर, देहली आदि की पुरानी कपडा मिलो तथा कलकत्ता की पुरानी जूट मिलो मे प्रकाश, सवातन स्थान तथा मशीनो के लगाने की व्यवस्था असतोषजनक है। बम्बई, अहमदाबाद, शोलापुर, देहली, मदुरा, मोदीनगर आदि स्थानो की कुछ कपडा मिलो ने वातानुकूलित व्यवस्था भी की है। बम्बई और अहमदाबाद की कुछ मिलो मे कपास के रेशो को हटाने के लिए भी मशीनो की व्यवस्था है। अन्य स्थानो पर दशाएँ असहनीय है। बिजली के पखे तो सामान्यत सभी मिलो मे है परन्तु जूट मिलो मे गन्दी हवा को बाहर फेकने वाले पखो तथा शीतक यन्त्रो की व्यवस्था नही है। पुरानी स्थापित कपडा व जूट मिलो मे केवल उन न्यूनतम आवश्यकताओ के, जिन्हें कानूनन करना आवश्यक है, स्वास्थ्य व आराम के लिए कुछ नही किया गया है। कार्य के समय बैठने तक की व्यवस्था नहीं की गई है। अधिकाश रेशमी तथा ऊनी वस्त्र मिलो मे, श्रीनगर के अतिरिक्त जहाँ अधिनियम लागू नही है, कार्य की दशाएँ साधारणतया सतोषजनक है।

अधिकांश इंजनियरिंग मिलों में संवातन तथा प्रकाश का प्रबन्ध पर्याप्त व संतोषजनक है। कलकत्ता तथा ग्वालियर के चीनी और मिट्टी के बर्तन उद्योग में संवातन तथा प्रकाश की दृष्टि से बहुत कुछ सुधार होना आवश्यक है। बंगलोर के अतिरिक्त सुरक्षा साधनों की कहीं व्यवस्था नहीं है।

छापेखानों मे कार्य की दशाएँ बहुत ही असंतोषजनक हैं। कुछ बड़े छापेखानों को छोडकर शेष छापेखाने ऐसे घरों में स्थित है जिनका निर्माण छापेखाने की दृष्टि से किया ही नहीं गया है। कई स्थानो पर यदाकदा ही पुताई होती है। दीवारों पर गर्द की मोटी तह जमी रहती है और मकड़ी के जाले लगे रहते है। यह घने बसे होते हैं और इनमें भीड़-भाड़ भी अधिक रहती है। सीसे के धुयें को, जो विषैला होता है, निकालने की भी कोई उचित व्यवस्था नहीं है। इससे एक प्रकार की उद्योगजनित बीमारी हो जाती है। मालिकों और श्रमिकों को इससे उत्पन्न होने वाले खतरों का सम्भवत: ज्ञान भी नहीं है। गन्दी हवा को बाहर फेंकने वाले पंखो अथवा नलो की भी व्यवस्था नहीं है। छापेखानों मे प्रकाश का भी उचित प्रबन्ध नहीं होता है, जिसके कारण कम्पोजीटरो के नेत्रों पर बहुत जोर पडता है और शीघ्र ही उनकी नेत्र-ज्योति क्षीण हो जाती है। कुछ छापेखानों को छोडकर और कहीं नाखून साफ करने वाले ब्रुशों का प्रयोग नहीं किया जाता है।

कांच उद्योग में घाव लगने व जल जाने जैसी छोटी-छोटी दुर्घटनाएँ बहुत अधिक सख्या मे होती हैं। छोटे-छोटे कांच के कारखानों मे फर्श के अधिकतर भाग पर भट्टी बनी रहती है जहां पर श्रमिक पिघले हुये कांच को नलियो द्वारा मुंह से ढलाते हैं। कांच के छोटे-छोटे कण फर्श पर बिखरे पड़े रहते है और जब श्रमिक नंगे पैरों चलता है तो वह उसकी त्वचा में घुस जाते हैं। कांच की नलियों को काटने के लिये बिजली के तेज गर्म तारों का प्रयोग किया जाता है। इसके कारण जल जाने की घटनायें बहुत हो जाती हैं। मुंह से फूंक मारने के कारण श्रमिकों के फेफड़े पर बहुत अधिक प्रभाव पडता है और इस प्रकार फेफड़ों को बीमारियाँ प्राय: उन्हे घेरे रहती हैं। कारखानों के अन्दर तापक्रम बहुत ऊंचा रहता है। अतः श्रमिक जब बाहर आते है, विशेषतया वर्षा में, तो उन्हे ठंड लगने का डर रहता है। फिरोजाबाद के छोटे पैमाने के चूड़ी के कारखानों में कार्य करने की दशायें बहुत ही शोचनीय हैं, यद्यपि गत कुछ वर्षों में उत्तर प्रदेश सरकार के हस्तक्षेप के कारण इसमे कुछ सुधार हुआ है। फिरोजाबाद में यह उद्योग बेहवादार एक कमरे वाली इमारतो में स्थित है जहां सफाई अथवा प्रकाश की उचित व्यवस्था नहीं है।

चीनी उद्योग मे मद्रास तथा बम्बई के कारखानों में उत्तर प्रदेश तथा बिहार के कारखानो की अपेक्षा अधिक स्वास्थ्यप्रद कार्य करने की दशायें हैं। उत्तर प्रदेश एवं बिहार के चीनी कारखानों मे दुर्गन्ध रहती है। कारखानों तथा निकटवर्ती क्षेत्रों मे भी शीरा व गन्दे पानी के कारण स्वच्छता की समस्या बनी रहती है। फैक्ट्री से निकले हुए गन्दे पानी को कच्चे तालाब अथवा सोखने वाले गड्ढों मे बहने दिया जाता है। गोरखपुर के दो चीनी कारखानों में गन्दे पानी को नदी में

बहा दिया जाता है। केवल मेरठ मे एक चीनी मिल ने इस कार्य के लिये पक्की नालियो की व्यवस्था की है। सोखने वाले गड्ढे बिहार की एक मिल मे पाये जाते है। कच्चे तालावो मे शीरे को एकत्रित करने से असहनीय दुर्गन्ध आती है।'खोई' का मिल की इमारत मे ही ढेर लगा देते है। अनेक मिलो मे फर्श टूटा फूटा और गन्दा रहता है। श्रम अनुसधान समिति ने यह उल्लेख किया था, कि उत्तर प्रदेश, बिहार व अहमदनगर की कुछ मिलो म यह भी देखा गया कि भाप की नलियो में छिद्र होने के कारण भाप बाहर निकलती रहती थी, तथा मद्रास व बम्बई की कुछ मिलो में जीने खडे और फिसलने थे। गोरखपुर की दो मिलो मे लकडी का जीना जीर्णशीर्ण (Dilipidated) अवस्था मे पाया गया। कुछ कारखानो मे मशीनो तथा तेज गति से घूमने वाली गरारी व पेटी के चारो ओर ठीक प्रकार से रोक नही लगाई गई थी। जहाँ तक प्रकाश और सवातन का सम्बन्ध है चीनी मिलो की दशा, मद्रास की चीनी मिलो को छोडकर, साधारणतया सन्तोषजनक पाई गई थी।

कपास और रूई धुनने के कारखानो मे प्रकाश और सवातन की व्यवस्था असन्तोषजनक है। वातावरण मे धूल और कपास के रेशे रहते है। साधारणतया सुरक्षा साधनो की व्यवस्था नही है। मद्रास मे अनेक चावल के कारखाने अनुपयुक्त अधेरी इमारतो मे है जिनमे दिन म भी कृत्रिम प्रकाश की आवश्यकता पडती है। सफाई की दशाये शोचनीय है। धान साफ़ करने वाले तालाबो के कारण बदबू और धूल रहती है। कुछ मिलो मे सभी स्थानो पर गन्दगी पाई जाती है।

बडी बडी **अभ्रक खानो** मे अवस्थायें सतोषजनक हैं परन्तु छोटे-छोटे कारखानो मे श्रमिक गन्दी अवस्था म अन्धेरे और बदबूदार कमरो मे काम करते हैं। **चपडा फैक्ट्रियो** मे केवल कलकत्ते की कुछ शक्ति प्रयोग करने वाली फैक्ट्रियो को छोडकर श्रमिक कानूनो का ठीक प्रकार से पालन नही किया जाता है। ऐसे कारखानो मे सवातन, सफाई और नालियो की अवस्था घोर असन्तोषजनक है।

मध्य प्रदेश और बम्बई मे **बीडी** कारखानो मे तो दशाये बहुत ही खराब हैं। श्रमिको को अन्धेरे म या धुंधले प्रकाश मे कार्य करना पडता है। स्त्री, पुरुष या बच्चो को कार्य करने के लिये एक दूसरे से सटकर बैठना पडता है, जिससे किसी श्रमिक के निकलने के लिये कठिनता से ही स्थान मिलता है। ये कारखाने अनियत्रित कारखाने है और कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत नही आते है। इस लिये इनकी दशाये बहुत शोचनीय है। इनमे प्रकाश, सवातन, जलमल निकास आदि का कोई प्रबन्ध नही है। इसी प्रकार की दशाये मद्रास के सिगार के कारखानो मे पाई जाती हैं।

अधिकाश **चमडा साफ करने व रगने के कारखानो** मे कार्य की दशाये बहुत शोचनीय है। यहाँ पर बहे हुये गन्दे पानी को निकालने के लिय नालियो की उचित व्यवस्था नही है। गन्दे पदार्थों को और खुरो को बिना सोचे समझे कारखानो मे इधर-उधर डाल दिया जाता है। फर्श ऊँचा नीचा तथा कच्चा

होता है। श्रमिकों को सुरक्षा के साधन भी प्रदान नहीं किये गये हैं और वातावरण अत्यधिक गन्दा रहता है।

खानों में भी कार्य की दशायें अधिक संतोषजनक नहीं है। मैंगनीज की खानों में शिवराजपुर (बम्बई) को छोड़कर शेष स्थानों में प्रकाश और संवातन का बहुत ही असंतोषजनक प्रबन्ध है। अधिकांश खानों में शौचालय और पेशाबघरों का सर्वथा अभाव है तथा विश्रामस्थलों व शिशुगृहों का तो नाम ही नहीं है। अभ्रक की खानों में से पानी को नियमित रूप से बाहर नहीं निकाला जाता है। अतः श्रमिकों को खान के भीतर पानी में ही कार्य करना पड़ता है। कोयले की खानों में भी यही दशायें हैं। वर्षा के दिनों में खानों में पानी भर जाता है और कभी-कभी तो इसके कारण भयानक दुर्घटनायें भी हो जाती है तथा अनेक श्रमिकों की मृत्यु भी हो जाती है।

बागान में भी कार्य की दशायें अधिक अच्छी नहीं हैं। असम और बंगाल के चाय के अनेक बागान मलेरियाग्रस्त क्षेत्रों में स्थित है। फलतः श्रमिक सरलता से बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। श्रमिक प्रायः दूरस्थ स्थानों से भर्ती किये जाते हैं। इस प्रकार वातावरण तथा जलवायु का उन पर कुप्रभाव पड़ता है। इनमें खाद्य सामग्री के राशन का भी उचित प्रबन्ध नहीं है। स्त्री श्रमिकों के लिए शिशुगृहों की उचित व्यवस्था नहीं है तथा कैन्टीन की भी सुविधा नहीं है।

रेलवे में 'गैंग मैन' को वर्दी में कम्बल तथा बरसाती नहीं दी जाती है। माल ढोने वाले कुलियों तथा पुर्जे ठीक करने वालों के लिये साये की व्यवस्था नहीं है। कोयला झोंकने वाले श्रमिकों को यदाकदा ही अपनी आँखों की रक्षार्थ चश्मा प्रदान किया जाता है। अनेक स्टेशनों पर 'सिगनैल मैन' को वर्षा और धूप से बचाव के लिये किसी साये की व्यवस्था नहीं होती। केबिनों में शौचालय, पेशाबघर और पीने के पानी की कोई व्यवस्था नहीं है।

ट्राम तथा बस सेवाओं के श्रमिकों के लिये भी पीने के पानी, शौचालय और विश्राम-गृहों की व्यवस्था नहीं है। ड्राइवरों को ट्राम तथा बस की गति को नियन्त्रित करने के लिये घड़ी प्रदान नहीं की जाती। कन्डक्टरों को यह शिकायत है कि उन्हें नियमित कार्य के पश्चात् दिन की आय का हिसाब-किताब चुकाने के लिए दो घण्टे तक अधिक रुकना पड़ता है।

कार्य की दशाओं में सुधार करने के सुझाव

१६४६ की श्रम अनुसंधान समिति ने कार्य की इन दशाओं की ओर संकेत किया था, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है। बम्बई, अहमदाबाद, कानपुर आदि विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों को व्यक्तिगत रूप से देखने पर अनुभव किया गया है कि अभी तक कार्य की लगभग वैसी ही दशायें उपस्थित है। मोदीनगर में सूती वस्त्र मिल जैसे नये स्थापित कारखानों में अवस्था अवश्य सन्तोषजनक है। बम्बई के साइकिल के कारखानों में दशायें बहुत सोचनीय पाई जाती हैं। अधिकांश

भारतीय उद्योगों में श्रमिकों के कार्य की दशायें बहुत ही असन्तोषजनक हैं। काम करने की दशाओं के प्रति मालिकों की बेरुखी, विभिन्न अधिनियमों के उपबन्धों से बच निकलने के उनके प्रयत्न, समुचित एवं प्रभावशाली निरीक्षण का अभाव और पर्याप्त सुरक्षा व्यवस्थाओं के बिना ही यन्त्रीकरण करना—ये कुछ ऐसे कारण हैं जिन्होंने भारत में अनेक फैक्टरियों एवं संस्थानों में कार्य करने की दशाओं को और भी बदतर बना दिया है। निरीक्षण और देखभाल की व्यवस्था को दृढ़ करना चाहिये, निरीक्षण बार-बार होना चाहिये तथा श्रमिक कानूनों को कठोरता के साथ अनियन्त्रित उद्योगों में लागू करना चाहिये। तभी श्रमिकों की दशा में सुधार हो सकेगा, दुर्घटनाओं की संख्या में कमी होगी तथा श्रमिकों की कार्यकुशलता भी बनी रहेगी। श्रम अनुसन्धान समिति का यह भी मत था कि कुछ आवश्यक सुविधाओं को वर्तमान की अपेक्षा और भी अधिक विस्तृत आधार पर प्रदान करना चाहिये। सबसे पहली बात तो लगातार उत्पादन में रत कारखानों में विश्राम दिनों की है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये राज्य सरकारों ने सप्ताह में एक दिवस—रविवार या अन्य कोई दिन—छुट्टी का दिन निश्चित कर दिया है। विश्राम दिनों की समस्या का विवेचन 'वेतन सहित छुट्टियाँ व अवकाश' के अन्तर्गत किया जा चुका है।

शौचालय तथा पेशाबघर (Latrines and Urinals)

शौचालयों तथा पेशाबघरों की व्यवस्था करना एक अन्य आवश्यक सेवा है। अधिकांश नियन्त्रित कारखाने केवल कानून का अक्षरशः पालन करते हैं और श्रमिकों के अनुपात में उन्होंने इस सम्बन्ध में व्यवस्था भी की है। परन्तु उनकी उपयुक्तता तो इस बात पर निर्भर है कि शौचालय किस प्रकार से बनाये गये हैं तथा उनमें सफाई की कैसी व्यवस्था है। फ्लश के शौचालय कच्चे तथा खुले शौचालयों से निश्चित रूप से अच्छे और अधिक सेवा प्रदान करने वाले होते हैं। अधिकांश स्थानों पर शौचालयों का ढाँचा, उनका स्थान तथा उनकी सफाई की अवस्था बहुत ही असन्तोषजनक है। कुछ शौचालयों में छतें नहीं हैं और कुछ में पर्दे का भी अभाव है। कीटाणुनाशक पदार्थों का प्रयोग तो कभी कभी ही किया जाता है। टट्टी को भी नियमित रूप से थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् साफ नहीं किया जाता, क्योंकि भंगियों की संख्या कम होती है और निरीक्षण का भी अभाव होता है। इस कारण श्रमिक खुले मैदानों में ही शौच के लिये जाना अधिक पसन्द करते हैं। शौचालयों तथा पेशाबघरों की अलग-अलग व्यवस्था नहीं है। यह बहुत ही गन्दे स्थानों पर बनाये जाते हैं। अनियन्त्रित कारखानों में तो दशायें और भी खराब हैं और अधिकांश में तो शौचालय तथा मूत्रालय हैं ही नहीं। इस ओर सफाई व्यवस्था की तीव्र आवश्यकता है। १९४८ के कारखाना अधिनियम की धाराओं को कठोरता से लागू करना आवश्यक है।

पीने का पानी (Drinking Water)

पीने के पानी की व्यवस्था भी सन्तोषजनक नहीं है। अगर पीने के पानी की व्यवस्था की भी जाती है तो पानी बहुधा गन्दे बर्तनों में रख दिया जाता है। अधिकतर तो पानी पीने के लिये केवल टोंटी के नलों की व्यवस्था कर दी जाती है। गर्मी के दिनों में पानी ठण्डा करने के लिये अथवा बर्फ के पानी की कोई व्यवस्था नहीं की जाती। पीने के पानी की उचित व्यवस्था करने की, विशेषतया ग्रीष्म ऋतु में ठण्डा पानी प्रदान करने की, तीव्र आवश्यकता है।

विश्राम-स्थल (Rest Shelters)

एक अन्य महत्वपूर्ण सेवा श्रमिकों के लिये ऐसे विश्राम-स्थलों की है, जहाँ वह बैठकर खाना खा सकें अथवा मध्यान्तर में आराम कर सकें। केवल कुछ ही मिलों में इनकी व्यवस्था है। बड़े-बड़े कारखानों में तो विश्राम-स्थल अथवा भोजन के लिए खाने की व्यवस्था पाई जाती है, परन्तु छोटे तथा अनियन्त्रित कारखानों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। जहाँ कहीं कुछ व्यवस्था है भी, वहाँ दशायें सन्तोषजनक नहीं है। विश्राम स्थल ऐसे स्थानों पर बना दिये जाते हैं, जहाँ मालिकों को सुविधा होती है। साधारणतया सब श्रमिकों के लिए पर्याप्त स्थान भी नहीं होता, इनका निर्माण बिना किसी पूर्व योजना के उल्टा सीधा कर दिया जाता है। इनमें गन्दगी भी रहती है तथा इनकी सफाई भी नहीं की जाती। इसी कारण श्रमिक इनकी अपेक्षा पेड़ों का साया अधिक पसन्द करते हैं। अधिकांश स्थानों में तो बैठने की भी व्यवस्था नहीं होती और श्रमिकों को धरती पर बैठकर ही भोजन ग्रहण करना पड़ता है। स्त्री और पुरुष श्रमिकों के लिए अलग-अलग विश्रा-मस्थलों की व्यवस्था नहीं की जाती। इसलिये ऐसी परिस्थितियों में यदि श्रमिक विश्राम-स्थलों का उपयोग नहीं करते, जैसा कि कुछ मालिक शिकायत करते है, तो इसका कारण भी स्पष्ट ही है। श्रमिकों को पेड़ के नीचे, जमीन पर, गन्दगी में अथवा कार्य के कमरे के अंधेरे कोने में बैठकर खाना खाते हुये देखकर दुःख होता है। स्त्री और पुरुष श्रमिकों के लिए अलग-अलग विश्राम-स्थलों का प्रबन्ध होना चाहिये, जिनमें बैठने की उचित व्यवस्था हो। १९४८ के कारखाना अधिनियम में खाने, विश्राम-स्थल तथा खाना खाने के लिये कमरों की व्यवस्था की गई है। परन्तु यह उन्हीं कारखानों के लिए है, जहाँ १५० या उससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं।

दुर्घटनाओं की रोकथाम (Prevention of Accidents)

श्रमिकों की सुरक्षा के लिए एक अन्य आवश्यक व्यवस्था दुर्घटनाओं की रोकथाम है। ऐसी दुर्घटनायें, जैसा कि श्रमिक क्षति पूर्ति के अन्तर्गत बताया जा चुका है, आधुनिक औद्योगिक जीवन की सामान्य बातें हो गई हैं। औद्योगिक दुर्घटनाओं की ओर अब अधिक से अधिक ध्यान दिया जा रहा है। एच० डब्लू० हेनरिच नामक एक औद्योगिक मनोवैज्ञानिक का अनुमान है कि ९८ प्रतिशत

औद्योगिक दुर्घटनाओं को रोका जा सकता है। ८६ प्रतिशत दुर्घटनायें दोषपूर्ण निरीक्षण, श्रमिकों की अयोग्यता, हीन अनुशासन, एकाग्रचित्तता की कमी, सुरक्षा सम्बन्धी बातों की अवहेलना करने की आदतों व कार्य के लिये मानसिक व शारीरिक अयोग्यता के कारण होती हैं। १० प्रतिशत दुर्घटनायें दोषपूर्ण मशीनरी अथवा कार्य की बुरी दशाओं के कारण होती हैं। दुर्घटनायें इसलिए भी होती है कि कुछ मनुष्यों की मनोवृत्ति ऐसी हो जाती है कि वह दुर्घटनायें कर ही बैठते है, चाहे वह उनसे कितना ही बचना चाहें। औद्योगिक केन्द्रों मे श्रमिकों की क्लान्ति (Fatigue) तथा उनमे मानसिक परिवर्तन भी दुर्घटनाओं की प्रवृत्तियों को बढ़ा देते हैं।

औद्योगिक दुर्घटनाओं पर स्थायी श्रम समिति द्वारा अप्रैल १९६१ मे एक समीक्षा प्रस्तुत की गई थी। इसके अनुसार भारत मे दुर्घटनायें केवल बढ़ ही नही रही हैं वरन् अधिकांश दुर्घटनायें इस कारण होती हैं कि प्रबन्धकों द्वारा अपने सस्थानों मे उचित प्रबन्ध करने का अभाव है। औद्योगिक दुर्घटनाओं के कारणों का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि अधिकांश दुर्घटनाओं का कारण मशीन, व्यक्तियों अथवा वस्तुओं का गिरना तथा किसी पिंड (Body) अथवा वस्तु पर पैर पड़ना या पिंड अथवा वस्तु से टकरा जाना है। इनमे से अन्तिम दो का कारण स्पष्ट रूप से मालिकों द्वारा उचित प्रबन्ध का अभाव है। इंगलैण्ड मे व्यक्तियों के गिरने से दुर्घटनायें अधिक होती हैं और वस्तु पर पैर पड़ने अथवा वस्तुओं से टकराने के कारण कम होती है, जबकि भारत मे इसके विपरीत बात है। व्यक्तियों का गिरना तो व्यक्तिगत कारणों से होता है। भारत मे जिन उद्योगों मे अधिक दुर्घटनायें होती है वे वस्त्र, यातायात का सामान, मूल धातु पैट्रोल, कोयला, मशीन आदि के उद्योग हैं। समीक्षा मे यह भी कहा गया है कि यह बात गलत है कि हाल के वर्षों मे अधिक दुर्घटनाओं का कारण छोटे उद्योगों का विस्तार है। यह भी कहा गया है कि दुर्घटनाओं की रोकथाम एक पारस्परिक कार्य है, जिसमे मालिकों, श्रमिकों तथा कारखाने के सभी विभागों को प्रयत्न करना चाहिये।

कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत उन सभी दुर्घटनाओं की सूचना, जिनसे मृत्यु हो जाती है अथवा शारीरिक चोट पहुँचती है या जिनसे श्रमिक ४८ घण्टों तक काम करने योग्य नही रहता, कारखाना इन्सपैक्टर को देनी होती है। कोई भी दुर्घटना 'गम्भीर' उस समय समझी जाती है, जबकि दुर्घटना के कारण श्रमिक २१ या अधिक दिनों तक काम पर से अनुपस्थित हो जाता है। दुर्घटना को "मामूली' उस समय कहा जाता है, जब अनुपस्थिति ४८ घण्टों से अधिक परन्तु २१ दिनों से कम होती है। दुर्घटनाओं का तीसरा वर्गीकरण 'घातक' दुर्घटनाओं का है अर्थात् जिनके परिणामस्वरूप मृत्यु हो जाती है। दुर्घटनाओं के वार्षिक आंकड़े कारखाना अधिनियम, खान अधिनियम, रेलवे अधिनियम, तथा गोदी श्रमिक अधिनियम के अन्तर्गत एकत्रित किये जाते हैं और इन अधिनियमों की वार्षिक रिपोर्टों मे प्रकाशित किये जाते है। १९६३ मे औद्योगिक दुर्घटनाओं की सख्या निम्न

प्रकार थी। कारखानों में– १,८४,४६८ (४६५ घातक तथा १,८४,००३ अघातक), खानों में– ३४४ घातक तथा ४,११० गम्भीर; रेलवे में (१९६४–६५) ३६५ घातक तथा ३६,२७१ अघातक; गोदी कर्मचारियों में (१९६४ में) १८ घातक तथा ४,८०८ अघातक।[2] खानों में घातक दुर्घटनाओं की संख्या अधिक है क्योंकि खानों में कार्य खतरनाक होता है। १९५६ से १९५८ तक कोयला खानों में दुर्घटनाओं की संख्या ८,७५७ थी, जिनमें ८५८ व्यक्ति मारे गये थे और ८,४१८ व्यक्तियों को गम्भीर क्षति पहुँची थी।[3] जनवरी १९५६ से दिसम्बर १९६१ तक कोयला खानों में घातक दुर्घटनाओं की कुल संख्या ६११ थी जिनमें ७१२ व्यक्ति मारे गये। सन् १९६२ में, सभी खानों में घातक दुर्घटनाओं की कुल संख्या ३१७ (कोयला खानों में २२६) थी जिनमें ३६८ व्यक्ति (कोयला खानो में २६६ व्यक्ति) मारे गये थे। सभी खानो में गम्भीर दुर्घटनाओं की संख्या ४,८२८ थी (जिनमें ४,६४५ व्यक्तियों को गम्भीर चोटें आई) और कोयला खानों में गम्भीर दुर्घटनाओं की संख्या ३,१२५ थी (जिनमें ३,२०७ व्यक्तियों को गम्भीर चोटें लगी)। सन् १९६३ में खानो में दुर्घटनाओं की संख्या इस प्रकार थी—घातक २८६ (कोयला खानो में २२३), गम्भीर ३,६८२ (कोयला खानो में २,४४३)। इसमें मरने वाले व्यक्तियों की संख्या ३४४ (कोयला खानो में २६७) और चोट लगने वाले व्यक्तियों की संख्या ४,१०६ (कोयला खानो में २,५३२) थी। सन् १९६४ में, सभी खानो में दुर्घटनाओं में मरने वाले व्यक्तियों की संख्या २६४ (कोयला खानों में १८५) और गम्भीर रूप से घायल होने वालो की संख्या ३,१६० (कोयला खानो में १,६७३) थी। सन् १९६५ में, मरने वालो की संख्या ५३७ (कोयला खानो में ४६३) और गम्भीर रूप से घायल होने वालों की संख्या ३,११३ (कोयला खानों में १,६२०) थी। सन् १९६६ में, मरने वाले श्रमिकों की संख्या ३७२ (कोयला खानो में, २६६) और गम्भीर रूप से घायल होने वालों की संख्या ३,४८२ (कोयला खानो में २,१६१) थी।

खानों में होने वाली दुर्घटनाओं ने बड़ी गम्भीर स्थिति उत्पन्न की है और अभी हाल के हो वर्षों में अनेक सुरक्षात्मक पग उठाये गये है। ये पग उन सुरक्षात्मक कार्यवाइयों के अलावा हैं जो १९५२ के खान अधिनियम के अधीन बनाये गये विनियमों के अन्तर्गत की गई थी। जुलाई १९६३ से, खानों में सुरक्षा के लिए एक राष्ट्रीय परिषद् की स्थापना की गई है जिसे "राष्ट्रीय खान सुरक्षा परिषद्" का नाम दिया गया है। यह परिषद् श्रमिकों में सुरक्षा की विधियों तथा ज्ञान का प्रचार करती है। इसमें खान-मालिकों, श्रमिकों तथा खान-प्रबन्धकों के प्रतिनिधि है। यह परिषद् पर्यवेक्षण स्टाफ को शिक्षित करने के लिए विभिन्न

२. विस्तृत आँकड़ों के लिये देखिए—Indian Labour Year Books and Indian Labour Statistics.

३. संसद् में उठाये गये एक प्रश्न का उत्तर (मार्च १९५९)।

खानों में नियमित रूप से सुरक्षा-कक्षाओं तथा दुर्घटनाओं की रोकथाम की कक्षाओं का आयोजन करती है, सुरक्षा सम्बन्धी इश्तहार, पर्चे, बिल्ले, प्रतिज्ञाऐं, सुरक्षात्मक खेल, प्रदर्शन-कार्ड, पुस्तिकाऐं, ग्रामोफोन रिकार्ड तथा फिल्म आदि तैयार करती है और उनका वितरण करती है, "खान सुरक्षा समाचार" नाम की एक मासिक पत्रिका प्रकाशित करती है, खान सुरक्षा सप्ताह का आयोजन करती है और उसमें सफलता पाने वाले भागीदारों को इनाम देती है। अक्तूबर १९६६ के अन्त तक, इस परिषद् ने कोयला खानों में ३९६ खान सुरक्षा समितियों की और अन्य खानों में ऐसी २०९ समितियों की स्थापना की है। इन समितियों का उद्देश्य खान-श्रमिकों में सुरक्षा-विधियों के सम्बन्ध में जागरण उत्पन्न करना है। इसके अलावा, जून १९६३ से एक स्थायी खान सुरक्षा सामान सलाहकार बोर्ड भी स्थापित किया गया है। इसका कार्य सुरक्षा के सामान को अन्य देशों से मगाना, भारत में सुरक्षा सामान बनाये जाने की ओर ध्यान देना तथा सामान की आवश्यकताओं को देखते रहना और सलाह देना है। यही नहीं, कोयला खान बचाव नियमों के अन्तर्गत कोयला खानों में "बचाव स्टेशन" (Rescue Stations) भी स्थापित किये गये हैं। इनका कार्य आग लगने तथा विस्फोट आदि होने की स्थिति में लोगों को निकालने तथा बचाने के कार्यों में सहायता देना है। वर्तमान समय में आठ बचाव स्टेशन काम कर रहे हैं। श्रमिकों को व्यावसायिक प्रशिक्षण देने तथा उनकी डाक्टरी जाँच के लिए भी अप्रैल १९६६ में नियम बनाये गये थे क्योंकि प्रशिक्षित एवं सक्षम व्यक्ति दुर्घटनाओं को रोकने की दिशा में महत्वपूर्ण भाग अदा कर सकते हैं। सन् १९५७ के कोयला खान विनियमों द्वारा ऐसी भी व्यवस्था की गई है कि खान मैनेजरों, सर्वेक्षकों (surveyors), अतिरिक्त समय काम करने वाले व्यक्तियों तथा सीरदारों आदि के लिए सक्षमता-प्रमाणपत्र स्वीकार किये जाएँ ताकि इस विषय में आश्वस्त हुआ जा सके कि केवल योग्य एवं सक्षम व्यक्ति ही इन पदों पर नियुक्त किये जा रहे हैं।

दुर्घटनाओं की रोकथाम के लिये सुरक्षा सम्बन्धी वैधानिक उपबन्ध कारखाना अधिनियम, भारतीय खान अधिनियम, भारतीय रेलवे अधिनियम तथा भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियमों में दिये हुये हैं। कारखाना अधिनियम की धाराऐं १९४८ के अधिनियम में और अधिक विस्तृत कर दी गई हैं। प्रत्येक कारखाने के स्थानीय स्वामी पर ही श्रमिकों की सुरक्षा का भार डाला गया है और अब इन्सपैक्टर द्वारा पूर्व सूचना अथवा चेतावनी आवश्यक नहीं रह गई है। कारखानों में अधिकतर दुर्घटनाओं (विशेषतया "घातक तथा गम्भीर" दुर्घटनाओं) का कारण साधारणतया मशीनों को कहा जाता है। अतः कारखाना इन्सपैक्टरों द्वारा मशीनों के चारों ओर रोक लगाने पर बहुत अधिक जोर दिया जाता है। पर्याप्त मात्रा में लोहा उपलब्ध न होने के कारण उचित रोक लगाने में अड़चनें पड़ती हैं और इसी कारण अधिकांश राज्यों में लकड़ी की रोक लगाने की आज्ञा दे दी गई है। कारखानों के इन्सपैक्टर कुछ विशेष प्रकार की रोक लगाने के उपयुक्त

ढंग का प्रदर्शन करते हैं। बिहार, बम्बई, उत्तर-प्रदेश और हैदराबाद में "सुरक्षा समितियों" के संगठनों को प्रोत्साहन दिया गया है तथा "दुर्घटना न हो" आन्दोलन (No Accident Campaigns) संचालित किये जाते हैं। कारखानों के मुख्य सलाहकार (Chief Adviser of Factories) के कार्यालय द्वारा समय-समय पर सुरक्षा और दुर्घटनाओं की रोकथाम के उपायों पर पुस्तिकायें, पर्चे तथा विज्ञापन पत्र प्रकाशित किये जाते हैं। जनवरी १९५८ से एक "औद्योगिक सुरक्षा और स्वास्थ्य पत्रिका" भी प्रकाशित की जा रही है। केन्द्रीय सरकार ने बम्बई में एक "औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान संगठन" (Industrial Hygiene Organisation) तथा एक केन्द्रीय श्रम संस्था (Central Labour Institute) की स्थापना की है। इन दोनों संस्थाओं ने खतरनाक व्यवसायों के सम्बन्ध में अनेक सर्वेक्षण किये है। कानपुर, कलकत्ता और मद्रास में औद्योगिक सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं कल्याण के तीन प्रादेशिक श्रम संस्थानों की स्थापना भी की गयी है। इनका उद्घाटन जुलाई १९६५ में किया गया था। ये संस्थान एक ऐसी समायोजित योजना का भाग हैं जिसका उद्देश्य सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं कल्याण की शिक्षा देना है, जिससे औद्योगिक क्षेत्रों की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। बम्बई की केन्द्रीय श्रम संस्थान इस योजना को लागू करने में केन्द्रीय संगठन का कार्य कर रही है। इसका उद्घाटन फरवरी १९६६ में हुआ था। केन्द्रीय श्रम संस्थान तथा तीनों प्रादेशिक श्रम संस्थानों में एक महत्वपूर्ण अनुभाग (section) है औद्योगिक सुरक्षा, स्वास्थ्य व कल्याण केन्द्र, जिसमें औद्योगिक श्रमिकों की सुरक्षा, उनके स्वास्थ्य एवं कल्याण के विभिन्न पहलुओं पर वस्तुओं एवं दृश्यों का प्रदर्शन किया जाता है। ये केन्द्र औद्योगिक प्रक्रियाओं के कारण जीवन, शरीर के अंगों तथा स्वास्थ्य को उत्पन्न होने वाले खतरों की व्याख्या तथा स्पष्टीकरण करते हैं और उनसे बचाव के प्रभावशाली तरीकों का प्रदर्शन करते है। मालिकों के कुछ संगठन, श्रमिक संघ तथा "सुरक्षा-प्रथम परिषद" (Safety First Accociations) जैसी कुछ ऐच्छिक संस्थायें भी औद्योगिक सुरक्षा को प्रोत्साहित कर रही हैं। यद्यपि १९४८ के अधिनियम में श्रमिकों की सुरक्षा के लिये अनेक धारायें दी हुई है, परन्तु उनका कठोर रूप से लागू करना आवश्यक है।

मार्च, १९५५ में कारखानों के मुख्य इन्सपैक्टरों के एक सम्मेलन में दुर्घटनाओं की रोकथाम के प्रश्न पर विचार किया गया था। इस बात पर विशेष बल दिया गया था कि खतरनाक मशीनों से सुरक्षा करने के हेतु कुछ सामान्य सिद्धान्तों की "सुरक्षा पुस्तिकायें" प्रकाशित की जायें तथा सुरक्षा पुस्तिकाओं की तैयारी के लिए मूल आंकड़ों के एकत्रित करने के लिये समितियाँ बनाई जायें। अधिनियम में दिये गये सुरक्षा सम्बन्धी उपबन्धों का भी कठोरता से पालन किया जाना चाहिये। जनवरी १९६० में श्रम मंत्रियों के सम्मेलन में औद्योगिक दुर्घटनाओं के विषय पर काफी विचार-विमर्श किया गया था। इस सम्मेलन ने फैक्ट्री निरीक्षक व्यवस्था को दृढ़ करने, छोटे-छोटे मालिकों को परामर्श देने, सुरक्षा उपायों में

श्रमिको को प्रशिक्षण देने, निरन्तर प्रचार करने, पारितोषिक देने, सुरक्षा सम्बन्धी समस्याओं का सर्वेक्षण करने आदि के सम्बन्ध में सिफारिशें की थी। राष्ट्रीय सुरक्षा पारितोषिको की एक योजना बनाने के लिए एक विशेष समिति का निर्माण किया गया था। विभिन्न प्रकार के पोस्टर और दृश्य-दृष्टि की रंगीन स्लाइड भी तैयार की गईं। नई दिल्ली में ११ से १३ दिसम्बर १९६५ तक औद्योगिक सुरक्षा पर राष्ट्रपति का सम्मेलन आयोजित किया गया जिसका उद्घाटन राष्ट्रपति ने किया। सम्मेलन का उद्देश्य यह था कि विभिन्न दलों तथा हितों से सम्बन्धित व्यक्ति परस्पर विचार-विनिमय करके उद्योगों में सुरक्षा के महत्व पर प्रकाश डालें और उद्योगों में होने वाली दुर्घटनाओं की रोकथाम के लिए सिफारिशें करें। सम्मेलन ने स्थायी श्रम समिति द्वारा अप्रैल १९६१ में किये गये उस प्रस्ताव का समर्थन किया जिसमें राष्ट्रीय एवं राज्य-स्तरों पर सुरक्षा परिषदों की स्थापना की बात कही गई थी। स्थायी श्रम समिति ने फरवरी १९६६ में फिर इस प्रस्ताव से सहमति प्रकट की। परिणामस्वरूप श्री नवल एच० टाटा की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद (National Safety Council) की स्थापना की गई। परिषद् के प्रधान कार्यालय अब बम्बई के केन्द्रीय श्रम संस्थान में है। प्रारम्भ में इसके संचालन के लिए भारत सरकार ने एक अनुदान दिया और साथ ही यह आशा की गई कि कुछ समय पश्चात् परिषद् एक ऐच्छिक संगठन के रूप में विकसित होगी और उसका पोषण उद्योग तथा अन्य सम्बन्धित हितों द्वारा किया जायेगा।

श्रमिकों द्वारा अच्छा कार्य करने का तथा औद्योगिक उद्यमों में अच्छे सुरक्षा रिकार्ड को मान्यता प्रदान करने के लिये श्रम तथा रोजगार मन्त्रालयों ने सन् १९६५ में उन श्रमिकों के लिये एक श्रमवीर राष्ट्रीय पारितोषिक योजना लागू की जो उत्पादन, मितव्ययता अथवा कार्यक्षमता बढ़ाने के लिये उपयोगी सुझाव दें। श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय ने उद्योगों में सुरक्षा सम्बन्धी जागरण उत्पन्न करने के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा पारितोषिक योजनाएँ (कुल ४) भी लागू की। योजना के अन्तर्गत दिये जाने वाले पुरस्कारों में सर्वप्रथम मार्च १९६६ में ५७ पुरस्कार विजेताओं को ट्रॉफी, कप तथा प्रमाण-पत्रों के रूप में इनाम दिये गये—जिनमें २७ श्रमवीर राष्ट्रीय पारितोषिक योजना के अन्तर्गत थे और ३० राष्ट्रीय सुरक्षा पारितोषिक योजनाओं के अन्तर्गत। २० मार्च १९६७ को, श्रमवीर योजना के अन्तर्गत ३१ और सुरक्षा योजनाओं के अन्तर्गत ४१ इनाम बाँटे गये।

रिकार्ड के संगीत की व्यवस्था
(Provision of Recorded Music)

कुछ व्यक्तियों का यह सुझाव है कि अच्छा वातावरण बनाये रखने के लिये कार्य के घण्टों की अवधि में ही रिकार्ड के संगीत की व्यवस्था होनी चाहिये। परन्तु यह सुझाव व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि बड़े पैमाने के उद्योगों में श्रमिकों पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा। कारखानों में मशीन का शोरगुल इतना

अधिक होता है कि कार्य के समय रिकार्ड के संगीत की बात हास्यास्पद प्रतीत होती है। यदि इसकी व्यवस्था की भी जाती है तो यह श्रमिकों के लिये सहायक होने की अपेक्षा उनके ध्यान को बाँट देगी। मध्यान्तर अथवा भोजन के समय में तो रेडियो अथवा रिकार्ड के संगीत में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। इसकी व्यवस्था कैन्टीन द्वारा सरलता से तथा कुशलतापूर्वक की जा सकती है, अन्यथा कारखाने के अन्दर रिकार्ड के संगीत की व्यवस्था के सुझाव पर गम्भीरतापूर्वक ध्यान नहीं देना चाहिये। अन्य देशों में, जहाँ कारखानों के अन्दर मशीनों द्वारा इतना शोर पैदा नहीं होता और संगीत भी भिन्न प्रकार का होता है, इस सम्बन्ध में विचार किया जा सकता है। अन्य देशों में इस सम्बन्ध में सफलतापूर्वक कुछ प्रयोग भी किये गये हैं।

उपसंहार

देश में औद्योगिक श्रमिकों की कार्य की दशाओं में उन्नति करने की बहुत आवश्यकता है। किसी भी कारखाने को उस समय तक चलाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिये, जब तक कि कारखाने के स्थान आदि की पूर्व स्वीकृति सरकार द्वारा प्राप्त नहीं कर ली जाती। १९४८ के कारखाना अधिनियम में यद्यपि श्रमिकों के स्वास्थ्य एवं सुरक्षा की पर्याप्त व्यवस्था है, तथापि सबसे बड़ी आवश्यकता तो इस बात की है कि उन्हें उचित प्रकार से लागू किया जाय तथा उनका उचित प्रकार से निरीक्षण भी हो। अधिनियम का क्षेत्र अनियन्त्रित कारखानों और छोटे-छोटे संस्थानों तक भी विस्तृत होना चाहिए। ऐसे कारखानों में कार्य की दशायें अत्यन्त असंतोषजनक है।

गत कुछ वर्षों में निरीक्षण की व्यवस्था में सुधार हुआ है तथा अधिनियमों के अन्तर्गत दण्ड भी अधिक दिये गये है। कारखाना निरीक्षकों के लिए नई दिल्ली में प्रशिक्षण पाठ्य-क्रम भी प्रारम्भ किये गये है। कोलम्बो आयोजना और अमेरिका प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत अनेक निरीक्षकों को प्रशिक्षण हेतु अन्य देशों में भेजा गया है। उद्योग में तापक्रम अवस्थाओं तथा कार्य के अनुपात में विश्राम अवधि का निर्धारण करने के लिये अमेरिका के एक विशेषज्ञ की सहायता से अध्ययन किया गया था, जिसका उद्देश्य यह मालूम करना था कि श्रमिकों की 'ताप सहनशीलता' कितनी है और अत्यधिक ताप और हवा की नमी का उनके स्वास्थ्य और कार्य-कुशलता पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार का अध्ययन अहमदाबाद की ६ सूती कपड़ा मिलों में किया गया है। रंग बनाने वाली फैक्ट्रियों में भी वातावरण का सर्वेक्षण किया जा रहा है। केन्द्रीय और प्रादेशिक श्रम संस्थानों ने भी औद्योगिक सुरक्षा के सम्बन्ध में अनेक सर्वेक्षण तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम लागू किये है।

कार्य के घण्टे

(Hours of Work)

कार्य के घण्टों को नियन्त्रित करने का महत्व

श्रमिकों का स्वास्थ्य एवं कार्यकुशलता अधिकतर इस बात पर निर्भर

करती है कि उन्हें कितने घण्टे काम करना पडता है। अधिक घण्टो तक काम करने मे स्वभावतया श्रमिक को थकान हो जाती है तथा वह अपने कार्य के प्रति शिथिल भी हो जाता है। थकान के कारण बहुधा श्रमिक का स्वास्थ्य गिर जाता है। इससे उसकी कार्यकुशलता पर भी प्रभाव पडता है। इसके अतिरिक्त यदि कार्य के घण्टे अधिक हैं, तब श्रमिको मे इधर-उधर घूमने और अनेक बहानो से समय नष्ट करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। भारत मे मालिकों को बहुधा यह शिकायत रहती है कि भारतीय श्रमिक स्थिर चित्त होकर निरन्तर कार्य करने मे असमर्थ हैं। श्रमिक अधिकतर अपनी मशीनो पर से अनुपस्थित पाये जाते हैं तथा उनके स्थान पर अतिरिक्त श्रमिको को लगाना पडता है। श्रमिको की इस प्रवृत्ति का मुख्य कारण भारतीय कारखानो मे चले आ रहे कार्य के अधिक घण्टो का होना है। अधिक घण्टो से न केवल शारीरिक थकान होती है, वरन् श्रमिको को अधिक समय तक अपने घर से बाहर भी रहना पडता है। इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक घरेलू काम-काज तथा अपने परिवार की ओर विशेष ध्यान नही दे पाता और न ही अपने मानसिक और शारीरिक मनोरंजन तथा सामाजिक कल्याण के लिये समय निकाल पाता है। भारत मे जलवायु की दशा तथा कार्य की अस्वास्थ्यकर दशाएँ भी देश में कार्य के घण्टो को घटाने की आवश्यकता की ओर संकेत करती है। यदि कार्य के घण्टे सामान्य हो, बीच में विश्राम के लिये मध्यान्तर भी हो, तब श्रमिक अपने कर्त्तव्यो का कुशलता से और प्रसन्नतापूर्वक पालन कर सकता है। अत भारत मे कार्य के घण्टो को कम करने का प्रश्न भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के लिय सदैव ही बडा महत्वपूर्ण रहा है, परन्तु देश में ४८ घण्टे का सप्ताह १९४८ तक लागू नही किया जा सका था।

कारखाना अधिनियमो द्वारा कार्य के घण्टो का निर्धारण

देश मे समय-समय पर विभिन्न कारखाना अधिनियमो द्वारा कार्य के घण्टे निर्धारित किये गये है। सन् १८८१ के प्रथम कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत केवल सात से बारह वर्ष तक की आयु के बालको के कार्य के घण्टे निर्धारित किए गये थे। इनके काम करने की अवधि ९ घण्टे प्रतिदिन थी, जिसमे प्रतिदिन एक घण्टे का विश्राम और मास मे चार दिन की छुट्टियो की भी व्यवस्था थी। व्यस्को के लिये कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। सन् १८९१ के कारखाना अधिनियम द्वारा स्त्रियों के कार्य करने के घण्टे प्रतिदिन ११ निर्धारित किये गये थे, और १½ घण्टे के विश्राम मध्यान्तर की भी व्यवस्था थी। ९ से १४ वर्ष के बालकों के लिये कार्य करने के घण्टे प्रतिदिन ७ कर दिये गये। स्त्रियों और बालको के लिये रात्रि मे काम करना निषिद्ध कर दिया गया। पुरुष श्रमिको के लिये भी एक घण्टे के विश्राम की व्यवस्था की गई थी। सन् १९११ के कारखाना अधिनियम मे प्रथम बार वयस्क पुरुष श्रमिको के लिए अधिकतम कार्य के घण्टे प्रतिदिन १२ निर्धारित किए गये, जिसमें एक घण्टे के विश्राम की भी व्यवस्था थी। १९२२ के कारखाना अधिनियम द्वारा वयस्क पुरुष श्रमिको के कार्य के घण्टे घटाकर प्रतिदिन

११ अथवा ६० घण्टे प्रति सप्ताह कर दिये गये। १२ से १५ वर्ष तक की आयु के बालकों के लिये कार्य के घण्टे प्रतिदिन ७ निर्धारित किये गये। स्त्रियों और बालकों के लिये रात्रि में काम करना निषेध कर दिया गया। १९३४ के कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत मौसमी कारखानों में वयस्कों के कार्य के घण्टे प्रतिदिन ११ अथवा ६० घण्टे प्रति सप्ताह तथा निरन्तर चालू कारखानों में प्रतिदिन १० अथवा ५४ घण्टे प्रति सप्ताह निर्धारित किए गये। बालकों के कार्य के घण्टे घटाकर प्रतिदिन ५ कर दिये गए। श्रम-समय-विस्तार (Spread Over) का नियम भी प्रथम बार लागू किया गया और वयस्कों के लगातार काम करने के घण्टे १३ और बालकों के ६½ निर्धारित किये गये। समयोपरि (Overtime) के लिये यह आवश्यक कर दिया गया कि सामान्य मजदूरी से डेढ़ गुना अधिक मजदूरी दी जाय।

नवम्बर, १९४५ में सातवें श्रम सम्मेलन ने ४८ घण्टे प्रति सप्ताह के सिद्धान्त की सिफारिश की और उसके परिणामस्वरूप १९४६ में एक संशोधित अधिनियम पारित किया गया। अब निरन्तर चालू कारखानों में कार्य के घण्टे घटा कर अधिकतम प्रति सप्ताह ४८ अथवा प्रतिदिन ९ और मौसमी कारखानों में प्रति सप्ताह ५४ अथवा प्रतिदिन १० कर दिये गए। श्रम-समय-विस्तार १३ घण्टों से घटाकर निरन्तर चालू कारखानों में १०½ घण्टे और मौसमी कारखानों में ११½ घण्टे कर दिया गया। समयोपरि कार्य के लिये सामान्य वेतन से दुगुनी दर से भुगतान की व्यवस्था कर दी गई। इसके पश्चात् १९४८ का कारखाना अधिनियम आता है। इसके अनुसार कार्य के घण्टे पहले की ही भाँति प्रति सप्ताह ४८ अथवा प्रतिदिन ९ हैं और श्रम-समय-विस्तार भी १०½ घण्टे है। इस अधिनियम में निरन्तर चालू और मौसमी कारखानों के अन्तर को समाप्त कर दिया गया है। बालकों और किशोरों के लिये कार्य के घण्टे प्रतिदिन ४½ निर्धारित किये गए हैं और श्रम-समय-विस्तार उनके लिये पाँच घण्टों का कर दिया गया है। प्रति ५ घण्टे कार्य करने के पश्चात् वयस्क श्रमिक के लिये आधे घण्टे के मध्यान्तर की व्यवस्था की गई है। एक साप्ताहिक छुट्टी तथा वेतन सहित अवकाश की भी व्यवस्था है। स्त्रियों और बच्चों का रात्रि ७ बजे से लेकर प्रातः ६ बजे तक कार्य करना निषिद्ध है। समयोपरि के लिये सामान्य वेतन से दुगुना देना होता है। कोई भी श्रमिक एक ही दिन में दो कारखानों में काम नहीं कर सकता। रात्रि पारी में कार्य करने वाले श्रमिकों के लिए यह आवश्यक हो गया है कि उन्हें हर सप्ताह २४ घण्टे का निरन्तर विश्राम प्रदान किया जाय। राज्य सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि वे कुछ विशेष वर्गों के श्रमिकों को काम के घण्टों से सम्बन्धित उपबन्धों से छूट दे सकें परन्तु ऐसी छूट की स्थिति में काम के घण्टों की कुल संख्या १ दिन में १० से अधिक और सप्ताह में ५० दिन से अधिक नहीं होनी चाहिये। इसी प्रकार श्रम-समय-विस्तार १ दिन में १२ घण्टे से अधिक नहीं होना चाहिए।

१९५४ में कारखाना अधिनियम में संशोधन किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य कारखानों में रात्रि में कार्य करने वाले युवकों और स्त्री श्रमिकों के रोजगार

के सम्बन्ध मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के अभिसमय को लागू करना था, क्योंकि इस अभिसमय को भारत सरकार ने अपना लिया था। इस सशोधित अधिनियम के अनुसार कारखानो के मुख्य निरीक्षको को यह अधिकार दे दिया गया है कि वे दैनिक कार्य के घण्टो की सीमा के अन्दर कारखानो को कुछ छूट दे सकें, ताकि पारियो के परिवर्तन करने मे सुविधा हो सके। किसी भी कारखाने को किसी विशेष कारण से अब यह अनुमति दी जा सकती है कि ५ घण्टे लगातार कार्य करने के पश्चात् अपने श्रमिको को आधे घण्टे का मध्यान्तर देने के स्थान पर ६ घण्टे निरन्तर कार्य करने के बाद मध्यान्तर प्रदान करे। सशोधित अधिनियम में बालको और किशोरो के काम पर लगाये जाने के सम्बन्ध मे कुछ और प्रतिबन्ध भी लगाये गये हैं। बालको तथा १७ वर्ष से कम आयु के किशोरो का कारखानो मे रात्रि मे काम करना निषिद्ध घोषित कर दिया गया है। 'रात्रि' की परिभाषा का अर्थ उस अवधि से लिया गया है जो कम से कम निरन्तर १२ घण्टो की हो और जिसमें कम से कम निरन्तर ७ घन्टो की अवधि एसी हो जो बालको के लिये १० बजे रात्रि से प्रात ६ बजे तक और किशोरो के लिये १० बजे रात्रि से प्रात ७ बजे तक आती हो।

भारतीय उद्योगो मे प्रचलित काय के घण्टे

उपरोक्त उल्लेख भारत मे कार्य के घण्टे सम्बन्धी वैधानिक उपबन्धो का है, परन्तु यह विधान केवल नियन्त्रित उद्योगो मे ही लागू होते है। भारत में कारखाना उद्योग के प्रारम्भिक दिनो मे अधिक घण्टो तक काम करना साधारण बात थी। १६०८ तक सूती उद्योग मे सामान्य कार्य दिवस १४ से १५ घण्टो का और कभी-कभी ता १८ घण्टो तक का होता था। अनेक कारखाना अधिनियमो द्वारा कार्य दिवस को कम किया जा सका है। द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व कारखानो मे कार्य के घण्टे १६३४ के कारखाना अधिनियम द्वारा नियन्त्रित किये जाते थे। बम्बई और अन्य स्थानो की सूती वस्त्र मिलो मे ५४ घण्टे प्रति सप्ताह अथवा ६ घण्टे प्रतिदिन काम किया जाता था। मौसमी मिलो मे कार्य के घण्टे और भी अधिक थे। कपास से बिनौला निकालने वाली मिलों व रेशमी तथा ऊनी कपडा मिलो मे १० घण्टे काम होता था। गुड उद्योग मे १२ घण्ट और मोजे बनियान आदि बनाने वाले कारखानो मे ६½ से १० घण्टे तक काम होता था। लगभग सभी कारखानों मे नियमित मध्यान्तर और साप्ताहिक छुट्टी दी जाती थी।

१६३६ मे युद्ध छिड जाने के परिणामस्वरूप उत्पादन को तेजी से बढाना पडा और सरकार ने सकटकालीन उपाय के रूप मे कारखाना अधिनियमो द्वारा निर्धारित कार्य के घण्टो की धारा मे कुछ ढील दे दी। उदाहरणार्थ—नवम्बर १६४१ मे सूती वस्त्र और बुनाई मिलो को ५४ घण्टो के स्थान पर ६० घण्टे प्रति सप्ताह काम करने की अनुमति प्रदान कर दी गई। जूट मिलो के कार्य के घण्टे तो कहीं-कहीं ६६ घण्टे प्रति सप्ताह तक हो गये। यह ध्यान देने योग्य बात है कि

बंगाल में जूट मिलों के कार्य के घण्टों का निर्धारण कानून द्वारा निश्चित की गई सीमाओं के अन्दर ही भारतीय जूट मिल परिषद् द्वारा किया जाता है। युद्धकाल में इसका निर्धारण जूट की माँग और कारखानों को चलाने के लिये कोयले की उपलब्धि के अनुसार किया गया। श्रम अनुसन्धान समिति ने १९४६ में यह बताया कि अधिकांश कारखानों में कार्य के घण्टे ८ से ९ प्रतिदिन तक थे। कुछ कारखानों में, जहाँ कि तीन पारियों में काम होता था, कार्य के घण्टे प्रतिदिन ७½ ही थे। चपड़ा और कालीन बनाने वाले जैसे अनियन्त्रित कारखानों में कार्य के घण्टे कभी-कभी प्रतिदिन १२ तक पहुँच जाते हैं। जहाँ तक 'श्रम-समय-विस्तार' (Spread-over) का सम्बन्ध है, यह स्थान-स्थान पर और विभिन्न उद्योगों में पारी प्रणाली और मध्यान्तर की व्यवस्था के अनुसार अलग-अलग है। परन्तु साधारणतया यह कारखाना अधिनियम की धाराओं के अनुसार ही है।

यह बात भी उल्लेखनीय है कि १९४६ के संशोधित अधिनियम के पारित होने से पूर्व भी, जिसमें कार्य के घण्टों की संख्या घटाकर प्रति सप्ताह ४८ कर दी गई थी, अधिकांश नियन्त्रित उद्योगों में श्रमिक ४८ घण्टे प्रति सप्ताह ही काम करते थे। १९३८ में यह देखा गया कि भारतवर्ष के निरन्तर चालू कारखानों में कार्य करने वाले २९% पुरुष श्रमिक और ३१% स्त्री श्रमिक ४८ घंटे प्रति सप्ताह से अधिक कार्य नहीं करते थे तथा मौसमी उद्योगों में भी ३९ प्रतिशत पुरुष श्रमिक और ४३ प्रतिशत स्त्री श्रमिक ४८ घण्टे से अधिक काम नहीं करते थे। बिहार श्रमिक जाँच समिति ने भी यह उल्लेख किया था कि अधिकतर काम के घण्टे कानून द्वारा निर्धारित काम के घण्टों से कम थे। १९४५ में भारत सरकार के श्रम विभाग द्वारा दी गई जाँच-पड़ताल से भी यह ज्ञात हुआ कि इन्जीनियरिंग, कच्चे लोहे, चीनी, रुई से बिनौला निकालने वाले कारखानों तथा ट्रामवे, बस सेवा और बन्दरगाहों में ४८ घण्टे प्रति सप्ताह ही काम लिया जाता था। अब सभी प्रकार के कारखानों में १९४८ के कारखाना अधिनियम द्वारा निर्धारित ४८ घण्टे प्रति सप्ताह कार्य किया जाता है।

खानों में काम करने के घण्टे

जहाँ तक खानों का सम्बन्ध है, कार्य के घण्टे प्रथम बार १९२३ के भारतीय खान अधिनियम द्वारा निर्धारित किये गये थे। यह खान के ऊपर काम करने वाले श्रमिकों के लिए ६० घण्टे प्रति सप्ताह और खान के भीतर काम करने वालों के लिए ५४ घण्टे प्रति सप्ताह निर्धारित किये गये थे। १९२८ में खानों में १२ घण्टे प्रतिदिन से अधिक कार्य करना निषिद्ध कर दिया गया। १९२९ के बाद से ही खानों के भीतर स्त्रियों को काम करने की मनाही कर दी गई और १९३५ में अधिनियम में संशोधन के अनुसार तो सभी स्त्रियों के लिए खान के भीतर काम करने पर रोक लगा दी गई। युद्धकाल में श्रमिकों की कमी के कारण यह प्रतिबन्ध हटा लिया गया था, परन्तु १९४६ में इसको पुन. लागू कर दिया गया। भारतीय

खान अधिनियम मे १६३५ मे सशोधन किया गया। इसके द्वारा खान के ऊपर काम करने वाले श्रमिको के लिए कार्य के घण्टे प्रति सप्ताह ५४ अथवा प्रतिदिन १० और *खान के अन्दर काम करने वाले श्रमिको के लिए ६ घण्टे प्रतिदिन* निर्धारित किये गये। १५ वर्ष से कम आयु के बालको को किसी भी खान मे नौकरी पर नही लगाया जा सकता था और किसी भी श्रमिक को खान मे १२ घटे से अधिक रोका नही जा सकता था। एक साप्ताहिक छुट्टी की भी अनिवार्य रूप से व्यवस्था थी। श्रमिको की चिकित्सा सुविधा, सफाई, जलपूर्ति और स्वास्थ्य की देखभाल करने के लिए खानो मे स्वास्थ्य बोर्डों की स्थापना की गई।

फरवरी १६५२ मे जो भारतीय खान अधिनियम पारित हुआ, उसके अन्तर्गत खान उद्योग मे रोजगार और कार्य की दशाओ के सम्बन्ध मे जो विधान थे, उनको समायोजित करके १६४८ के कारखाना अधिनियम के अनुरूप ही बना दिया गया है। अधिनियम मे खान के ऊपर और खान के अन्दर काम करने वाले सभी वयस्क श्रमिको के लिये कार्य के घण्टे घटा कर प्रति सप्ताह ४८ कर दिये गये हैं तथा इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि किसी भी श्रमिक से खान के ऊपर ६ घण्टे प्रतिदिन और *खान के अन्दर ८ घण्टे प्रतिदिन से अधिक काम नही लिया* जा सकता। श्रम-समय-विस्तार खान के ऊपर कार्य करने वाले श्रमिको के लिये १२ घण्टे और खान के अन्दर कार्य करने वाले श्रमिको के लिये ८ घण्टे निर्धारित किया गया है। खान के भीतर कार्य करने वाले श्रमिको की कुछ विशेष श्रेणियो के लिये कार्य के घण्टे प्रतिदिन ६ अथवा प्रति सप्ताह ५४ निर्धारित किये गये हैं। खान के ऊपर कार्य करने वाले वयस्क श्रमिको को ५ घण्टे कार्य करने के पश्चात् आधा घण्टे का मध्यान्तर मिलता है। कोई भी श्रमिक समयोपरि सहित एक दिन मे १० घण्टे से अधिक कार्य नही कर सकता। अधिनियम मे इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि खान के ऊपर कार्य करने वाले श्रमिको को समयोपरि का वेतन सामान्य वेतन का डेढ गुना और खान के अन्दर कार्य करने वाले श्रमिको को सामान्य वेतन का दुगना दिया जायेगा। १६५६ मे इस सशोधन के पश्चात् समयोपरि की दर सभी श्रमिको के लिये सामान्य वेतन की दुगनी राशि कर दी गई है। अधिनियम मे खान के अन्दर कार्य करने वाले श्रमिको की आयु की सीमा १७ से बढाकर १८ वर्ष कर दी गई है। किशोरो (१५ से १८ वर्ष तक की आयु वाले) से ४½ घण्टे प्रतिदिन से अधिक काम नही लिया जा सकता तथा ६ बजे सायकाल से ६ बजे प्रात तक उनको काम पर भी नही लगाया जा सकता। स्त्री श्रमिको के लिये खान के अन्दर काम करने तथा रात्रि मे अर्थात् ७ बजे सायंकाल से ६ बजे प्रात तक काम करने पर प्रतिबन्ध यथावत् बना हुआ है।

रेलवे मे कार्य के घण्टे

रेलवे मे कार्य करने के घण्टे १८६० के अधिनियम द्वारा निर्धारित होते हैं। १६३० मे इस अधिनियम मे सशोधन किया गया था। इसके अनुसार रोजगार के

घण्टों के विनियम (Hours of Employment Regulations) बनाये गये थे। इनके अनुसार लगातार काम करने वाले कर्मचारियों के लिये कार्य के घन्टे प्रति सप्ताह ६० है और सविराम (Intermittent) कार्य करने वाले कर्मचारियों के लिये कार्य करने के घण्टों की संख्या ८४ है। ग्रामकाल को छोड़कर सप्ताह में एक छुट्टी करना अनिवार्य कर दिया गया है। रोजगार के घण्टों के यह विनियम सभी मुख्य रेलों मे लागू होते है, परन्तु यह रेलवे वर्कशाप में काम करने वाले कर्मचारियों पर लागू नही होते क्योंकि वह भारतीय कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत आते हैं। अन्य रेलवे कर्मचारी भी अब ४८ घण्टे प्रति सप्ताह की तथा उन सभी सुविधाओं की माँग करने लगे हैं जो कारखाना श्रमिकों को प्राप्त होती हैं। १९५१ में सरकार ने कार्य के घण्टो के सम्बन्ध में न्यायाधीश राजाध्यक्ष के पचाट को कार्यान्वित कर दिया और इसी उद्देश्य से सन् १९५६ में रेलवे अधिनियम में भी संशोधन कर लिया। इसके बाद १९६१ में सरकार ने फिर संशोधन किया जिसका उल्लेख हम 'यातायात में श्रमिक विधान' के अन्तर्गत करेंगे।

बागान में कार्य के घण्टे

बागान में अब कुछ वर्षों तक कार्य के घण्टों के ऊपर नियन्त्रण नहीं था। उत्तरी भारत के बागान में श्रमिक साधारणतया प्रातः ८ से २-३ बजे साय तक काम करते हैं। दक्षिण भारत के चाय और कॉफी बागान मे काम के घण्टे साधारणतया अधिक हैं। वहाँ पर श्रमिक प्रातः ८ से सायं ५-६ बजे तक काम करते हैं, जिसमें एक घण्टे का मध्यान्तर भी होता है। उसमें भी कभी-कभी काम ले लिया जाता है। काम अधिक होने के समय को छोड़कर साधारणतया चाय और कॉफी के बगीचों में रविवार छुट्टी का दिन होता है। असम के चाय बागान में वर्ष भर में दो-तीन वेतन सहित छुट्टियों की भी व्यवस्था है परन्तु अधिकांश बागान में कोई वेतन सहित छुट्टी प्रदान नहीं की जाती है।

अक्तूबर १९५१ में सरकार ने बागान श्रमिक अधिनियम पारित किया, जिसमे चाय, कॉफी, रबड़ और सिन्कोना के बागान में लगे हुये श्रमिकों के कार्य की दशाओं को वैधानिक रूप से नियन्त्रित किया गया है। अधिनियम में प्रत्येक वयस्क के कार्य के घण्टे ५४ प्रति सप्ताह तथा बच्चों व किशोरो के ४० प्रति सप्ताह निश्चित किये गये हैं। अधिनियम में काम के दैनिक घण्टे नियत नहीं किये गये हैं परन्तु यह व्यवस्था की गई है कि एक वयस्क के लिये काम की अवधि इस प्रकार नियत होनी चाहिये कि यह एक दिन में १२ घण्टे से अधिक न हो। इस सीमा में विश्राम का मध्यान्तर तथा काम के लिये प्रतीक्षा करने में लगाया गया समय भी सम्मिलित है। यदि किसी सप्ताह में काम करने की कुल अवधि ६ दिन से कम नहीं है तो एक साप्ताहिक छुट्टी की भी व्यवस्था है। कोई भी श्रमिक बिना आधे घण्टे का मध्यान्तर प्राप्त किये ५ घण्टे से अधिक काम नहीं कर सकता। यद्यपि दैनिक काम के घण्टे निश्चित नहीं किये गये है, परन्तु श्रम-समय-विस्तार

की अवधि एक दिन में १२ घण्टे निर्धारित की गई है। १२ वर्ष से कम की आयु के बच्चों को कार्य पर लगाना तथा साय ७ बजे से प्रातः ६ बजे तक किसी भी स्त्री व बच्चे को काम पर लगाना निषिद्ध कर दिया गया है। यदि कोई श्रमिक किसी भी दिन आधा घण्टे से अधिक देर से आता है, तब मालिक उसको काम पर लगाने में इन्कार कर सकता है। राज्य सरकारों को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह एक साप्ताहिक छुट्टी प्रदान करने के लिये और साप्ताहिक छुट्टी के दिन अगर कार्य किया गया हो तो उसके लिए भुगतान करने के लिये नियम बना सकें। श्रमिक छुट्टी के किसी भी दिन काम कर सकता है, परन्तु दस दिन के काम करने के पश्चात् एक दिन का आराम करना अनिवार्य है।

श्रमिकों की अन्य श्रेणियाँ और उनके कार्य के घण्टे

भारत में श्रमजीवी वर्ग की एक अन्य श्रेणी अनियन्त्रित उद्योगों, दुकानों व वाणिज्य प्रतिष्ठानों में काम करने वाले कर्मचारियों की है। उनके कार्य के घण्टे विभिन्न राज्य के अपने-अपने विधानों द्वारा निर्धारित होते हैं। विभिन्न राज्यों में कार्य के घण्टे निम्न प्रकार हैं—असम में प्रतिदिन ६ व प्रति सप्ताह ५०, पश्चिमी बंगाल में प्रतिदिन ८½ व प्रति सप्ताह ४८, बिहार, देहली, उड़ीसा, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, मैसूर, राजस्थान और मध्य प्रदेश में प्रतिदिन ९ व प्रति सप्ताह ४८, मद्रास, आंध्र तथा केरल में प्रतिदिन ८ और प्रति सप्ताह ४८; तथा उत्तर प्रदेश में प्रतिदिन ८। विश्राम मध्यान्तर भी विभिन्न राज्यों में आधे घण्टे से १ घण्टे तक का होता है तथा श्रम-समय-विस्तार भी १२ से १४ घण्टों तक का है। इसी प्रकार वाणिज्य संस्थानों, जलपान-गृहों, मनोरञ्जन स्थानों आदि में कार्य के घण्टे निर्धारित कर दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त श्रमिकों के लिये साप्ताहिक छुट्टी एवं सवेतन अवकाश की व्यवस्था भी की गई है। भारत सरकार ने १९४२ में एक 'साप्ताहिक छुट्टी अधिनियम' पारित किया था जिसके अन्तर्गत दुकानों और वाणिज्य संस्थानों में कार्य करने वाले श्रमिकों के लिये साप्ताहिक छुट्टियाँ तथा कार्य के घण्टों को निर्धारित करने की व्यवस्था की गई थी। यह अधिनियम राज्य सरकारों को इस सम्बन्ध में नियम बनाने या अधिनियम पारित करने की केवल अनुमति देता था। मोटर यातायात में कार्य करने वाले कर्मचारियों के कार्य के घण्टे मोटर यातायात कर्मचारी अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत अब निर्धारित किये गये हैं। कोई भी मोटर यातायात वयस्क कर्मचारी प्रतिदिन ८ और प्रति सप्ताह ४८ घण्टे से अधिक कार्य नहीं करेगा। विशेष अवसरों पर और लम्बे रास्ते पर कार्य के घण्टे प्रतिदिन १० और प्रति सप्ताह ५४ होंगे। गाड़ी में खराबी आ जाने से अथवा किसी अन्य कारण यात्रा में बाधा होने से कार्य के घण्टे अधिक हो सकते हैं। प्रत्येक पाँच घण्टे के कार्य के पश्चात् आधे घण्टे का मध्यान्तर दिये जाने की व्यवस्था है। श्रम-समय-विस्तार प्रतिदिन १२ घण्टे निर्धारित किया गया है। किशोरों के प्रतिदिन कार्य के घण्टे ६ और श्रम-समय-विस्तार ६ घण्टे का निश्चित किया गया है। एक साप्ताहिक छुट्टी की भी व्यवस्था की गई है

और काम घण्टों को एक दिन में दो दौर से अधिक नहीं फैलाया जा सकता।

जहां तक कृषि श्रमिकों व घरेलू नौकरों का सम्बन्ध है, भारत के किसी भी भाग में उनके रोजगार की शर्तों को निर्धारित करने वाला कोई भी विशिष्ट कानून नहीं बनाया गया है। साधारणतया उनके कार्य के घण्टे अधिक हैं। उनको सवेतन साप्ताहिक छुट्टी, वार्षिक छुट्टी और निश्चित मध्यान्तर जैसी सुविधायें भी बहुत थोड़ी मात्रा में प्राप्त होती हैं। यह ऐसी सुविधायें है जिनको औद्योगिक देशों में श्रमजीवी वर्ग के न्यूनतम अधिकारों में माना जाता है। कुछ समय पूर्व देहली में घरेलू नौकरों ने अपने कार्य के घण्टों को नियमित कराने के लिये आंदोलन किया था। परन्तु उनके लिये कोई कानून बनाना सम्भव नहीं हो सका है।

कार्य के घण्टों की आलोचनात्मक व्याख्या

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत में कार्य के घण्टों को नियन्त्रित करने की पर्याप्त वैधानिक व्यवस्था है। परन्तु समय की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि इन कानूनों को अनियमित कारखानों, कृषि श्रमिकों तथा घरेलू नौकरों पर भी लागू किया जाये। हमारे विचार में इस समय १९४८ के कारखाना अधिनियम द्वारा निर्धारित ४८ घण्टे प्रति सप्ताह की व्यवस्था पर्याप्त व सन्तोषजनक है। इन कार्य के घण्टों को अधिक नहीं कहा जा सकता, विशेषतया इस स्थिति को देखते हुए कि हमारे श्रमिकों की मनोवृत्ति ऐसी है कि वह पूर्ण रूप से एकाग्रचित्त न होकर धीरे-धीरे कार्य करते हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उत्पादन पर किसी बुरे प्रभाव के पड़े बिना यदि सम्भव हो सके तो कार्य के घण्टे न घटाये जायें। हमारे कहने का तात्पर्य यही है कि कार्य के घण्टों को और भी कम किया जा सकता है, यदि श्रम की बचत करने वाली मशीनों का प्रयोग किया जाये, श्रमिकों की कार्य-कुशलता में वृद्धि की जाये तथा उन पर अधिक अनुशासन रखा जाये। दुर्भाग्यवश "श्रम की बचत करने वाले उपायों" (Labour Saving Devices) का गलत अर्थ लिया जाता है। यह समझा लिया जाता है कि इसका अर्थ कुछ श्रमिकों को बर्खास्त करके शेष श्रमिकों से और अधिक काम लेना है। श्रम को कम करने वाले उपायों पर हमें श्रमिकों के दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए। ऐसे उपायों से श्रमिकों के कार्य के घण्टों को कम करना चाहिये, जिससे उन्हें लाभ हो और उत्पादन भी उतना ही या उससे अधिक होता रहे। 'श्रम की बचत' का अर्थ 'श्रमिक की बचत' से नहीं है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि जून १९६१ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में यह सुझाव आया था कि मजदूरी में बिना कटौती के ४० घण्टे का सप्ताह होना चाहिये। परन्तु बहुमत न होने के कारण यह प्रस्ताव पास न हो सका।

प्रो० पीगू[4] के अनुसार, कुछ समय पश्चात् साधारण कार्य के घण्टों से यदि अधिक कार्य के घण्टे किसी भी उद्योग में लागू किए जाते हैं तब अन्ततः इससे राष्ट्रीय लाभांश (National Dividend) में बढ़ोत्तरी के स्थान पर कमी हो

4. Pigou—*Economics of Welfare*.

जायगी, क्योंकि श्रमिकों को थकान बहुत जल्द हो जाती है। शरीर विज्ञान से यह पता चलता है कि किसी भी विशेष प्रकार के कार्य करने की कुछ अवधि के पश्चात् शरीर को विश्राम की आवश्यकता होती है ताकि शरीर पुनः अपनी पूर्वावस्था में आ जाय। जैसे जैसे कार्य की अवधि बढ़ती है वैसे ही इस मध्यान्तर की आवश्यकता और भी अधिक होती जाती है। यदि मनुष्य को पर्याप्त रूप से मध्यान्तर प्रदान नहीं किये जाते तो धीरे-धीरे उसकी शक्ति का ह्रास हो जाता है। अधिक कार्य करके यदि कुछ अधिक कमाकर अधिक भोजन भी किया जाता है तो इसमें अधिक लाभ नहीं होता, क्योंकि थकान के कारण अधिक भोजन को हजम करना भी कठिन हो जाता है। कार्यकुशलता में जो इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से क्षति पहुँचती है उसके अतिरिक्त अप्रत्यक्ष रूप से भी हानि पहुँचती है। इसका कारण यह है कि थकान होने से मनुष्य नशीले पदार्थों का सेवन करने लगता है और उसमें चिड़चिड़ाहट, झुंझलाहट जैसी बुरी, उत्तेजित भावनायें आ जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक अनुपस्थित होने लगता है और समय का पाबन्द नहीं रहता, तथा साथ ही साथ कार्य करते समय भी उसमें उत्साह कम हो जाता है और कार्य में उसका मन नहीं लगता। इन दोनों कारणों से उत्पादन कम हो जाता है।

परन्तु कई बातों को ध्यान में रखते हुए यह कहना कठिन है कि कार्य के घण्टे और राष्ट्रीय लाभांश में पारस्परिक क्या सम्बन्ध है। दोनों का सम्बन्ध कई कारणों से भिन्न होगा। उदाहरणतया—भिन्न प्रकार की जलवायु, विभिन्न वर्गों के श्रमिक, विभिन्न प्रकार के कार्य, प्राप्त मजदूरी, श्रमिक अपना अवकाश समय किस प्रकार व्यतीत करते हैं, मजदूरी का भुगतान किस प्रकार किया जाता है आदि-आदि बातों पर यह सम्बन्ध निर्भर करेगा। गर्म देशों में यदि कार्य धीरे-धीरे मन्दगति से अधिक घण्टों तक किया जायगा तो इससे उत्पादन अधिक होगा। इसके विपरीत ठंडे देशों में कार्य तीव्रता से परन्तु कम घण्टे करने पर उत्पादन अधिक होगा। बच्चों और स्त्रियों में वयस्क पुरुषों की अपेक्षा साधारणतया सहन-शक्ति कम होती है। यदि अधिक घण्टों तक कठिन शारीरिक श्रम किया जायगा या अधिक घण्टों तक ऐसा कार्य किया जायगा जिससे मानसिक बोझ पड़ता है तो इससे कार्यकुशलता को क्षति पहुँचेगी। परन्तु यह बात उस समय नहीं होगी, जब अधिक घण्टों तक ऐसा कार्य किया जायगा जिसमें केवल हल्के प्रकार से देखरेख की आवश्यकता पड़ती हो। इसी प्रकार यदि कोई ऐसा निपुण कार्य है जिसमें निर्णय और समझबूझ की आवश्यकता पड़ती है तो उसके लिए मनुष्य में ताजगी और स्फूर्ति होनी चाहिए। इसके विपरीत अगर कार्य ऐसा है जिसे मशीन की भाँति किया जा सकता है, तो ऐसा कार्य थके हुए मनुष्य भी भली-भाँति कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे श्रमिक, जिनकी आय अधिक है, अच्छा खा पी भी सकते हैं और निर्धन श्रमिकों की अपेक्षा अधिक समय तक कार्य कर सकते हैं। कार्य के घण्टों का प्रभाव इस बात से भी भिन्न होगा कि श्रमिक अपना अवकाश का समय किस प्रकार व्यतीत

करते हैं अर्थात् वे समय व्यर्थ गंवाते हैं अथवा अपने उद्यान में परिश्रम करते है या भली प्रकार के मनोरंजन में व्यतीत करते है। आवश्यक तथ्य यह है कि प्रत्येक उद्योग में तथा प्रत्येक श्रमिक वर्ग के लिये कार्य दिवस की कुछ निश्चित सीमा होती है, जिससे यदि अधिक कार्य किया जायगा तो राष्ट्रीय लाभांश को हानि पहुँचेगी।

श्रमिकों पर कार्य के अधिक घण्टों का प्रभाव कई वर्षों तक देखना चाहिए। आधुनिक उद्योग की कार्य-प्रणाली ऐसी है कि श्रमिकों पर बहुत भार पड़ता है। कार्य के कम घण्टे इस भार को हल्का कर देते है। कोई भी श्रमिक किसी भी कार्य को एक दिन मे १२ घण्टे या उससे भी अधिक समय तक कर सकता है, परन्तु इससे उसके स्वास्थ्य को हानि होगी और उसका श्रमिक जीवन उस श्रमिक की अपेक्षा जिसके कार्य के घण्टे उचित है, कम होगा। औसतन कार्य के अधिक घण्टे और कम श्रमिक जीवन, कार्य के कम घण्टे और दीर्घ श्रमिक जीवन की अपेक्षा कम उत्पादक होते है। श्रान्ति की रोकथाम से श्रमिक की कार्यकुशलता बढ़ जाती है, दुर्घटना और बीमारी की सम्भावनायें कम हो जाती है, संगठन मे सुधार हो जाता है, रोजगार नियमित होता चला जाता है और श्रमिकों में समय नष्ट करने की प्रवृत्ति दूर हो जाती है और तब श्रमिक अपने परिवार और कल्याण की ओर अधिक ध्यान दे सकता है। कम घण्टे कार्य करने से अन्य व्यक्तियों को रोजगार पर लगाया जा सकता है और यह तब सरलता से हो सकता है जब रेलों की तरह समयानुसार कार्य होता है या जब उत्पादन लागत कम हो जाने से कीमतें गिर जाती है और उत्पादित वस्तु की माँग बढ़ जाती है। अत: आर्थिक और सामाजिक दोनों ही दृष्टिकोणों से कार्य के अधिक घण्टों की भर्त्सना करनी चाहिए।

विश्राम मध्यान्तर (Rest Intervals) और अल्प-विराम (Rest Pauses)

यहाँ विश्राम मध्यान्तर और अल्प-विराम का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है। भारत के संगठित उद्योगों में सुव्यवस्थित अल्प-विरामों की तीव्र आवश्यकता है। भारत मे कारखाना अधिनियम के अनुसार साधारणतया एक अथवा आधे घण्टे का विश्राम मध्यान्तर प्रदान किया जाता है। साधारणतया विश्राम मध्यान्तर की व्यवस्था मालिकों की स्वेच्छा से ही की जाती है तथा इनमें श्रमिकों की आवश्यकताओं का कोई ध्यान नहीं रखा जाता। विश्राम मध्यान्तरों के अतिरिक्त १०-१५ मिनट के अल्प-विरामों का मालिकों द्वारा कोई विशेष प्रयोगात्मक प्रयत्न नहीं किया गया है। अन्य देशों में इस दृष्टि से किए गए प्रयोगों से पता चलता है कि कार्य के बीच में इस प्रकार के अल्प-विरामों से कार्यकुशलता बढ़ती है और उत्पादन भी अधिक होता है। भारत में ऐसे अल्प-विरामों की आवश्यकता और भी अधिक है। भारत की जलवायु ऐसी है कि निरन्तर कार्य करने से व्यक्ति शक्तिहीन हो जाता है और थकान अनुभव करने लगता है। श्रमिक साधारणतया गाँवों से आते है, जहाँ कृषि-

कार्य नियमित नही होता। अतः उनको नियमित रूप से लम्बे समय तक कार्य करने की आदत नही होती। भारत के श्रमिक की मनोवृत्ति पश्चिम के श्रमिक की अपेक्षा अधिक आराम करने की है। अतः यह सुझाव दिया जाता है कि कार्य के सामान्य घण्टो मे भी चार चार पाँच-पाँच घण्टो के पश्चात् अल्प-विराम की व्यवस्था सगठित रूप से करनी चाहिए और इस बात पर निर्भर नही होना चाहिए कि श्रमिको को ऐसे अल्प-विराम कच्चे माल आदि की प्रतीक्षा करते समय कार्य मे सयोगवश रुकावट के कारण मिल जाते है। अधिकाश व्यक्ति लगभग दो घण्टे एकाग्रचित्त होकर तथा लग्न से कार्य कर सकते हैं। परन्तु पाँच-पाँच घण्टे तक लगातार काम करने से गति मे बाधा पड जाती है और उत्पादन पर भी विपरीत प्रभाव पडता है। अतः काम के घण्टो के बीच अल्प-विरामो की व्यवस्था से कार्यक्षमता की हानि, थकान, असावधानी और दुर्घटनाओ की रोकथाम हो सकेगी और उत्पादन भी बढ जायगा। अतः भारत मे उद्योगपतियो को, जहाँ कही भी सम्भव हो, इस दिशा मे कदम उठाने चाहियें। समयोपरि (Overtime) को भी इस प्रकार नियमित करना चाहिए जिससे कार्य-कुशलता मे किसी प्रकार की हानि न हो। अधिकतर श्रम अधिनियमो में समयोपरि के लिये सामान्य मजदूरी से दुगुनी मजदूरी देने की व्यवस्था की गई है। आवश्यकता इस बात की है कि समयोपरि का हिसाब इस प्रकार न लगाया जाय कि वह श्रमिको के हित के विरुद्ध हो।

पारी प्रणाली
(Shift System)

पारी प्रणाली की आवश्यकता

पारी प्रणाली आधुनिक उद्योगो मे सभी जगह नियमित प्रकार की एक विशेषता बन गई है। इसकी आवश्यकता अधिक उत्पादन की माँग के कारण हुई है तथा यह आधुनिक औद्योगिक प्रणाली के कारण सम्भव भी हो गई है। पारी प्रणाली से सबसे बडा लाभ यह है कि इसके कारण मशीनो एव यन्त्रो का पूर्ण उपयोग होता है, जिससे उत्पादन की स्थायी लागत कम हो जाती है। इस प्रकार से जो लाभ होता है, वह श्रमिको के कार्य दिवस के घण्टे कम हो जाने से यदि उत्पादन मे कुछ हानि भी पहुँचती है तो उसे पूरा कर देता है।

पारी प्रणाली के रूप (Kinds of Shifts)

भारत के विभिन्न उद्योगो मे सामान्यत तीन प्रकार की पारियाँ पाई जाती हैं। पहली तो एक पारि पद्धति (Single Shift System) है। इसमे साधारणतया कार्य दिन मे होता है और एक या आधा घण्टे के विश्राम मध्यान्तर को मिलाकर इसमें ८ से ११ घण्टे तक कार्य करना पडता है। दूसरी दो पारी पद्धति (Double Shift System) है। इसमे एक पारी रात्रि के समय और एक दिन मे होती है, जिसमे एक घण्टे का विश्राम मध्यान्तर मिलाकर कार्य करने की अवधि ६ या १० घण्टे या इससे भी अधिक होती है। तीसरी 'परस्पर-व्यापी-पारी-पद्धति' (Multiple

Shift System) है। इसमें दिन में एक सामान्य पारी के अतिरिक्त आठ-आठ घण्टे की तीन पारियाँ और होती है, जिनमें आधा घण्टे का विश्राम मध्यान्तर कभी दिया जाता है और कभी नहीं भी। कुछ परिस्थितियों में तीन लगातार पारियों के अतिरिक्त दो सामान्य पारियाँ होती है। परस्पर-व्यापी-पारी-पद्धति विभिन्न अवधियों (Durations) की भी होती हैं और परस्पर व्यापी (Overlapping) भी।

परस्पर-व्यापी पारियाँ (Multiple or Overlapping Shifts)

यह कहा जाता है कि परस्पर-व्यापी-पारियों में उत्पादन प्रक्रिया निरन्तर चालू रहती है। इसके लिए कुछ श्रमिक उस समय तक रोक लिए जाते है, जब तक कि सामान्यतया उनके स्थान पर दूसरे श्रमिक उन्हें अवकाश देने के लिए नहीं आ जाते। परन्तु इस प्रकार श्रमिकों को रोकना न्यायसंगत नहीं है, क्योंकि निरन्तर काम चालू रखने के उद्देश्य की पूर्ति श्रमिकों में ठीक समय पर आने की भावना को प्रोत्साहित कर तथा अनुपस्थित श्रमिकों के स्थान पर कार्य करने के लिए कुछ श्रमिक सुरक्षित रखकर की जा सकती है। इस निरन्तर कार्य की आड में कभी-कभी श्रमिकों को अधिक घण्टों तक काम करना पड़ता है तथा कारखाना निरीक्षकों को इसका पता नहीं चल पाता।

इसके अतिरिक्त परस्पर-व्यापी पारी-पद्धति के और भी अनेक दोष है—प्रथम तो विश्राम मध्यान्तर और खाने के समय में कोई मेल नहीं रह पाता और जब परिवार के विभिन्न सदस्य मिल में भिन्न-भिन्न समय पर काम करते हैं, जैसा कि साधारणतया होता है, तब वे सब साथ बैठकर भोजन नहीं कर पाते। दूसरे, देख-भाल करने का कार्य बहुत कठिन हो जाता है और कभी-कभी मालिक उन्हीं श्रमिकों से काम लेते रहते हैं जबकि रजिस्टर में ऐसे बहुत से श्रमिकों का नाम दर्ज कर दिया जाता है, जिनका वास्तव में कोई अस्तित्व ही नहीं होता। इन अस्तित्वहीन श्रमिकों का वेतन तक दिया दिया जाता है, जिनको क्लर्कों, मध्यस्थों तथा उन श्रमिकों में बाँट लिया जाता है, जो अतिरिक्त काम करते है। जहाँ ऐसी बातें पाई जाती है, वहाँ दैनिक काम के घण्टे कानून द्वारा निर्धारित सीमा से भी अधिक बढ़ जाते है। परस्पर-व्यापी-पारी-पद्धति में इन दोषों की चरम सीमा बालकों के सम्बन्ध में होती है, जिनको अधिक घण्टों तक काम करना पड़ता है। जिन स्थानों पर कई पारियाँ होती है, वहाँ पर कार्य करने के अधिक घण्टे श्रमिकों के लिये कष्टदायक हो जाते हैं, यदि उनके रहने का प्रबन्ध कारखाने के परिसर (Premises) में नहीं होता है।

रॉयल श्रम आयोग ने परस्पर-व्यापी-पारी-प्रणाली को अच्छा नहीं बताया था तथा श्रमिकों के संगठनों ने भी इसका घोर विरोध किया है। साधारणतया मत यही रहा है कि केवल विशेष अवस्थाओं को छोड़ कर परस्पर-व्यापी-पारी-पद्धति की अनुमति नहीं देनी चाहिए। यह प्रसन्नता का विषय है कि १९४८ के कारखाना

अधिनियम मे परस्पर-व्यापी पारियो को निषेध कर दिया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत अब किसी भी कारखाने मे पारी प्रणाली ऐसी नही हो सकती कि एक ही समय पर समान कार्य के लिये एक से अधिक श्रमिक दल कार्य करते हो। राज्य सरकारो को किसी कारखाना विशेष को विशेष परिस्थितियो मे इस धारा से छूट देने का अधिकार है।

रात्रि पारियाँ (Night Shifts)

रात्रि पारी की वाछनीयता के प्रश्न पर मतभेद है। निरन्तर उत्पादन म रत रहने वाले उद्योगो के लिये तो रात्रि पारियाँ आवश्यक हो सकती है, परन्तु अन्य उद्योगो मे इनको साधारणतया सामान्य काल मे उचित नही समझा जाता। कुछ मालिको का कहना है कि मशीनो की कमी तथा उत्पादन की माँग के कारण रात्रि पारी चालू करनी पडती है। इस सम्बन्ध मे श्रम अनुसन्धान समिति ने अहमदाबाद मिल मालिक परिषद् के मत को उद्धृत किया था। इसके अनुसार रात्रि पारी से एक विशेष लाभ यह है कि इससे बँधी लागत कम हो जाती है तथा रात्रि पारी मे कार्य करने स वर्तमान तीव्र प्रतिस्पर्धा के युग मे उद्योगो द्वारा अस्थायी रूप से बढी हुई माग की पूर्ति, अतिरिक्त स्थिर पूँजी लगाए बिना, की जा सकती है। इसी प्रकार अहमदाबाद के एक मिल मालिक के कथनानुसार, 'एक पारी' पद्धति मे कार्य करने की अपेक्षा रात्रि पारी मे कार्य करने की प्रवृत्ति अधिक हो गई है, क्योकि वास्तविकता यह है कि दिन-प्रतिदिन नवीन आविष्कार होते जा रहे है, और मशीन महँगी होती जा रही है। इसलिये इन मशीनो पर ब्याज और मूल्य ह्रास के व्यय को पूरा करने के लिए उत्पादन एक निश्चित समय मे करना पडता है, जोकि रात्रि पारी मे काम द्वारा ही सम्भव है।

इसमे कोई सन्देह नही कि रात्रि पारी मे बधी लागत मे कमी हो जाती है, कच्चे माल का शीघ्रतापूर्वक उपयोग हो जाता है तथा उत्पादन लागत घट जाती है। परन्तु रात्रि म कार्य करने से श्रमिको के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पडता है तथा रात्रि मे श्रमिको द्वारा जो उत्पादन होता है उसकी मात्रा भी कम होती है तथा वह इतना अच्छा भी नही होता। कुछ मालिको की धारणा है कि रात्रि पारियो म श्रमिक के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नही पडता। परन्तु विश्वसनीय मत यही है कि रात्रि पारी मे काम करना अप्राकृतिक है तथा इससे श्रमिको के स्वास्थ्य और कार्यकुशलता पर बुरा प्रभाव पडता है। श्रमिक म वयस्क न्यूनतम नींद भी नही ले पाता, क्योकि दिन के समय कोलाहल पूर्ण और भीड-भाड के वातावरण मे उसको अपनी नीद पूरी करना सम्भव नही होता। फिर, रात्रि म काम करने और दिन मे सोने की आदत डालने के लिए बहुत अधिक समय लगता है। रात्रि पारियो के कारण श्रमिको को अपना भोजन समय असमय करना पडता है, जिसके कारण उनकी पाचन शक्ति खराब हो जाती है और उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है। रात्रि पारियो मे दिन की पारियो की अपेक्षा निद्रिन्न —

होता है तथा उत्पादन उतना उत्तम भी नहीं हो पाता। रात्रि पारी में प्रकाश भी काम के ऊँचे स्तर को ध्यान में रखते हुए अच्छा नहीं होता है। रात्रि पारियों में अनुपस्थितता अधिक होने के कारण उत्पादन की मात्रा भी कम होती है। रात्रि में प्रभावात्मक रूप से निरीक्षण करना भी बहुत कठिन हो जाता है। रात्रि में कार्य करते रहने पर प्रात काल के घण्टों में स्वाभाविक थकान आ जाती है। श्रमिक सगठनों द्वारा भी रात्रि पारियों का विरोध किया जाता है। अहमदाबाद कपड़ा मिल मजदूर परिषद् का मत है—"रात्रि में काम करने से श्रमिकों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है, अनुपस्थिति बढ जाती है तथा सामाजिक जीवन के उच्च अवसरों के पाने में बाधा उत्पन्न हो जाती है।"

साधारणतया यह सुझाव दिया जाता है कि रात्रि पारी में कार्य तभी किया जाना चाहिये, जबकि इसके बिना कार्य चल ही न सके। अत यह आवश्यक है कि रात्रि में कार्य करने वाले श्रमिकों की कठिनाइयों को कार्य के घण्टे सीमित करके एवम् अन्य सुविधायें प्रदान करके रात्रि पारी के बुरे प्रभावों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। कोई भी कारखाना रात्रि के १ बजे के पश्चात् चालू नहीं रहना चाहिये। रात्रि पारी का प्रबन्ध इस प्रकार का होना चाहिये कि सभी मिल अर्द्धरात्रि के पश्चात् बन्द हो जायें। बस यातायात का भी पर्याप्त प्रबन्ध होना चाहिये, जिससे श्रमिक शीघ्र ही अपने निवास स्थानों को पहुँच सकें। रात्रि के समय श्रमिकों के लिये कैंटीन, पीने के पानी की सुविधा, नि शुल्क चाय आदि की व्यवस्था होनी चाहिये। मौसमी तथा ऐसे कारखानों में, जिनमें कार्य निरन्तर रूप से चलाना आवश्यक होता है, रात्रि के समय भी कार्य चालू करना आवश्यक हो जाता है, परन्तु इनमें थोड़े-थोड़े समय बाद श्रमिकों का परस्पर परिवर्तन करने की उचित व्यवस्था होनी चाहिये। उदाहरणत प्रतिमास रात्रि पारी एवं दिन की पारी के श्रमिकों की परस्पर अदल-बदल होती रहनी चाहिये। रात्रि पारियों को पूर्णतया समाप्त कर देना कठिन है, क्योंकि इससे वस्तु लागत में कमी हो जाती है और उद्योगों के लिए, बिना अतिरिक्त मशीनें आदि लगाए हुए, माँग का पूरा करना सम्भव हो जाता है। श्रम अनुसन्धान समिति का कथन है कि यदि इस विषय पर कोई राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय समझौता हो, तभी रात्रि पारी को प्रभावपूर्ण तरीके से नियन्त्रित किया जा सकता है।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, विभिन्न श्रम अधिनियमों में स्त्रियों एवम् बच्चों के रात्रि में काम करने पर रोक लगा दी गई है। यह अत्यन्त सराहनीय पग है। स्त्रियाँ एवं बालक असमय कार्य करने के लिये शारीरिक दृष्टि से अयोग्य होते हैं। दूसरे, भारत में रात्रि के समय कार्य करने से स्त्रियों को अनेक नैतिक एवं सामाजिक संकटों का भय रहता है। रात्रि में काम करने से बालकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है और कार्य करते समय उन्हें नींद आ जाना स्वाभाविक है। अत यह सब मानते हैं कि स्त्रियों एवं बालकों के लिए रात्रि-कार्य पर रोक लगानी आवश्यक है।

श्रम समय विस्तार (Spread Over)

काय के घण्टो और पारी प्रणाली के साथ ही श्रम समय विस्तार की समस्या भी बहुत महत्वपूर्ण है। इसका अथ उस अवधि स है जिसके अदर काय के अधिकतम घण्टा का विस्तार किया जा सकता है। यह बात स्पष्ट है कि यदि इस अवधि का अनुचित रूप से विस्तार किया जाता है तब इसस सभी श्रेणियो के श्रमिको को रात्रि म आराम करन म और कुछ मनोरजन करन म विशेषतया अपने पारिवारिक जीवन मे और स्त्रियो का अपन घरेलू कत्तव्यो को निबाहन म बाधा पडेगी। साधारणतया श्रम समय विस्तार की अवधि काय करन के अधिकतम घण्टा क ही बराबर होती है। इसम एक या आधा घण्ट का विश्राम मध्यान्तर भी आ जाता है। परन्तु कुछ परिस्थितियो म काय करन के अधिकतम घण्टो को दो भागो म बाट दिया जाता है और बीच म एक लम्बा मध्यान्तर हो जाता है। बागान जस अनक उद्योगो मे श्रम समय विस्तार का प्रश्न ही नही उठता क्योकि यहा मध्याह्न के विश्राम को छोडकर जो और उद्योगो की अपक्षा लम्बा होता है काम तब तक होता रहता है जब तक वह समाप्त नही हो जाता। पर तु अब बागान म भी १९५१ के अधिनियम द्वारा श्रम समय विस्तार की सीमा १२ घण्टे प्रतिदिन कर दी गई है। परन्तु यह समस्या खानो म विशेषतया खानो के भीतर काय करन वाल श्रमिको क लिये बडी ही गम्भीर रही है। १९३५ के खान अधिनियम न खान के अ दर काम के घण्टो की सख्या प्रतिदिन ९ निश्चित कर दी थी और इससे श्रम समय विस्तार के दोष को ब ी सीमा तक दूर किया जा सका था। १९५२ के भारतीय खान अधिनियम म श्रम समय विस्तार की सीमा खान के अदर काय करन वाले श्रमिको के लिय प्रतिदिन ८ घण्ट और खान के ऊपर काम करन वाले श्रमिको के लिय प्रतिदिन १२ घण्टे निर्धारित की गइ है। कारखानो म श्रम समय विस्तार की समस्या तो और भी जटिल है क्योकि यहा पर बहुत रात तक काम को बढाया जा सकता है। जहा परस्पर व्यापी पारी प्रणालिया है वहा पर पारियो के बीच मध्या तर अधिक होत है और इस प्रकार श्रम समय विस्तार लम्बा हो जाता है। परन्तु १९३४ के कारखाना अधिनियम द्वारा प्रथम बार इस श्रम समय विस्तार को सीमित किया गया था और इसके अन्तगत वयस्को के लगातार प्रतिदिन काय करन क घण्ट १३ और बालको के ६½ निर्धारित किय गय थे। १९४८ के कारखाना अधिनियम द्वारा इसको और भी सीमित कर प्रतिदिन १०½ घण्ट निर्धारित कर दिया गया है। यदि छूट भी दी जाती है तो श्रम समय विस्तार १२ घण्टे से अधिक नहा हो सकता। हमारे विचार से यह सामा उचित है। दूकान एव वाणिज्य सस्थान अधिनियमो द्वारा भा विभिन्न राज्यो म श्रम समय विस्तार के घण्ट निर्धारित कर दिये गये हैं।

रोजगार की कुछ दशायें
(Some Employment Conditions)

पिछले पृष्ठों मे भरती, अनुपस्थिति, श्रमिकावर्त, वेतन सहित अवकाश, स्थायी आदेश, आदि समस्याओं पर विचार किया जा चुका है। अब हम भारतीय उद्योगों मे रोजगार से सम्बन्धित कुछ और दशाओ का वर्णन करेंगे, जिनका श्रमिक के स्वास्थ्य तथा कार्यकुशलता पर प्रभाव पड़ता है और जो श्रम कल्याण, समाज सुरक्षा तथा कार्य और रोजगार की समस्याओ से सम्बन्धित है।

श्रमिकों की श्रेणियाँ (Kinds of Workers)

श्रमिको का वर्गीकरण स्थायी, अस्थायी, बदली, नैमित्तिक (Casual) तथा परखाधीन (Probationers) और शिक्षार्थी (Apprentices) वर्गों में किया गया है। फिर भी यह वर्गीकरण उद्योग-उद्योग और क्षेत्र-क्षेत्र मे भिन्न होता है। मुख्यत. तो श्रमिको का वर्गीकरण अधिकतर उद्योगो मे स्थायी, अस्थायी और बदली वर्गो मे किया गया है तथा कुछ में उनका वर्गीकरण स्थायी, अस्थायी व नैमित्तिक श्रमिको मे हुआ है। श्रमिकों की अधिकाश सख्या स्थायी वर्ग की है। फिर भी उनके विशेषाधिकारों की परिभाषा नही की गई है। साधारणतया उनको यह अधिकार है कि वर्खास्तगी के समय उन्हें १४ दिनो या एक माह की सूचना या उसके बदले मे वेतन मिले और उन्हे आकस्मिक छुट्टी, विशेष छुट्टी, प्रॉविडेन्ट फण्ड या अवकाश प्राप्त धन की सुविधा, ऋण लेने का अधिकार, सेवा सर्टीफिकेट पाने का अधिकार तथा कुछ और सुविधायें, जैसे—अनाज के दामो मे कटौती आदि, के विशेष अधिकार दिये जाते है। अस्थायी श्रमिक अधिकतर मौसमी व असगठित कारखानो मे पाये जाते है। यह वह श्रमिक हैं, जो अस्थायी प्रकार के कार्य पर लगाये जाते हैं और इनकी सख्या समय-समय पर ऐसे कार्य की मात्रा के अनुसार घटती बढती रहती है। बहुत से उद्योगो मे अस्थायी श्रमिको को भी विभिन्न प्रकार की छुट्टियो की सुविधाये उपलब्ध हैं, परन्तु इनके लिये छुट्टियो की अवधि कम होती है। साधारणतया उनको प्रॉविडेन्ट फण्ड की सुविधा तो नही दी जाती, परन्तु कुछ स्थानों पर बोनस मे से हिस्सा पाने का अधिकार दिया जाता है। बदली श्रमिको को एक प्रारक्षित (Reserve) श्रम शक्ति कहा जा सकता है, जो उन स्थायी व अस्थायी श्रमिको को बदलने के लिये रखे जाते है, जो बीमारी अथवा अन्य कारणो से अनुपस्थित हो जाते है। बदली श्रमिक रखने की प्रथा में बहुत से दोष हैं, जैसे—मालिक उनको हड़ताल अथवा तालाबन्दी के समय मे अपना अतिरिक्त सहायक समझते हैं और कभी-कभी तो बदली श्रमिको को रोजगार देने के कारण स्थायी श्रमिको को जबरी छुट्टी लेने को बाध्य करते है। ऐसे श्रमिको को मध्यस्थ भी अनुचित रूप से दबाते हैं। फिर भी कुछ बदली श्रमिकों की आवश्यकता तो इस कारण होती है कि अनुपस्थिति के समय जगह खाली न रहे। परन्तु इस प्रथा को नियन्त्रित करने की आवश्यकता है। बम्बई, शोलापुर, अहमदाबाद तथा

कोयमुतूर की कपडा मिलो ने तो पहले से ही बदली नियन्त्रण प्रथा अर्थात् स्थायीकरण (Decasualisation) योजनायें लागू कर रखी है, जो कि "श्रमिको की भरती" की समस्याओ वाले अध्याय में बतायी जा चुकी है। अन्य उद्योगों में भी बदली नियन्त्रण प्रथा को विस्तृत करना आवश्यक है। नैमित्तिक या फालतू श्रमिक वह हैं जो कि कभी-कभी कुछ विशेष अतिरिक्त कार्य को पूरा करने के लिये काम पर लगाये जाते है। वह किसी सुविधा अथवा विशेषाधिकार के अधिकारी नहीं होते और उनको समय-समय पर अदायगी कर दी जाती है। कभी-कभी श्रमिकों का वर्गीकरण, पर्यवेक्षक (Supervisory), क्लर्क, साधारण श्रमिक व ठेके के श्रमिकों में भी किया जाता है।

सेवा काल (Length of Service)

रोजगार की दशाओ की एक और समस्या यह है कि कर्मचारी कितने समय तक नौकरी पर लग रहते हैं और उनकी नौकरी निरन्तर रहती है या नही। केवल सरकारी और अर्ध-सरकारी संस्थाओ और नगरपालिकाओ में ही अधिकाश श्रमिक दीर्घ सेवा काल वाले पाये जाते है। इसका कारण यह है कि इन संस्थाओं में श्रमिको की नौकरी अधिक सुरक्षित होती है। इन्जीनियरिंग, कागज, शीशा, सोने की खानो, छापाखानो आदि जैसे सुदृढ रूप से स्थापित उद्योगो मे दीर्घ सेवा काल मे श्रमिक प्रॉवीडेन्ट फण्ड आदि की सुविधाओ के कारण अधिक पाये जाते है। एक और कारण यह भी है कि उत्तम कुशल श्रमिक कार्य करने है, जो अधिक स्थायी होते है। जहाँ भी श्रमिकों को कुछ लाभ प्रदान किये जाते है, वहाँ श्रमिको म काय पर स्थायी रूप से लग रहने की प्रवृत्ति पाई जाती है। नौकरी पर निरन्तर लग रहने की वांछनीयता सभी जगह, विशेषतया मौसमी कारखाना मे, है। कोई भी श्रमिक, जो कि मौसमी कारखाना मे एक मौसम मे काम कर लेता है यदि वह अगले मौसम के प्रारम्भ मे आ जाये तो उसे पुन कार्य पर लगा लेना चाहिए और उसको उस काल मे भी, जब फैक्टरी का मौसम नही होता, वेतन का एक विशेष प्रतिशत भाग दिया जाना चाहिये। उसमें से कुछ भाग पुन नौकरी के समय भी दिया जा सकता है। इस बात की भी बहुत आवश्यकता है कि श्रमिक की नौकरी सुरक्षित रहे और उसको किसी अत्याचार का भय न हो। यह समस्या रोजगार पर लगाने से पहले ही नौकरी की शर्तो आदि की स्पष्ट रूप से व्याख्या करने से हल हो सकती है और यह बात स्थायी आदेशो द्वारा की जा सकती है, जिनका उल्लेख औद्योगिक विवाद के अध्याय म किया जा चुका है। शक्तिशाली श्रमिक संघ भी अनुचित बर्खास्तगियो और अत्याचारो से श्रमिको की रक्षा कर सकते हैं और सम्भवत यही सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

पदोन्नति (Promotions)

एक अन्य समस्या पदोन्नति तथा वेतनोन्नति की है। पदोन्नति का अर्थ अपेक्षाकृत अच्छा 'ग्रेड' अथवा पदक्रम या मजदूरी या दोनो मे उन्नति है तथा

वेतनोन्नति का अर्थ उसी ग्रेड में मजदूरी में वृद्धि है। भारतीय उद्योगों की अधिकांश इकाइयों में वेतन वृद्धि क्रमानुसार देने की बहुत कम प्रथा है, परन्तु एक व्यक्तिगत श्रमिक अपनी योग्यता के द्वारा उन्नति कर सकता है। एक निश्चित तथा सुयोजित (Well planned) स्थानान्तरण (Transfer) और पदोन्नति की प्रणाली श्रमिकों को सन्तुष्ट रखने तथा उन्हें अपनी संस्था के प्रति ईमानदार बनाये रखने का एक प्रभावशाली तरीका है। परन्तु अधिकतर मामलों में श्रमिक अपनी प्रवरता (Seniority) या उच्चता के होते हुए भी उसी वेतन पर कार्य करते रहते हैं और कभी-कभी तो स्थायी श्रमिकों के दावे दबा दिये जाते हैं और उच्च वेतन के रिक्त स्थानों को बाहरी व्यक्तियों से भर दिया जाता है। कुछ उद्योगों में श्रमिकों को पदोन्नति क्रम के अनुसार दी जाती है। यह पदोन्नति सर्वेक्षक कर्मचारी वर्ग को भी मिलती है, परन्तु श्रमिकों को साधारणतया यह शिकायत रहती है कि यह पदोन्नति केवल मैनेजरों अथवा मध्यस्थों की इच्छा पर निर्भर करती है और इसमें पक्षपात तथा रिश्वत आदि भी चलती है। पदोन्नति मालिक अथवा मैनेजर की इच्छा पर निर्भर न होकर योग्यता तथा प्रवरता पर आधारित होनी चाहिए। ऐसा न होने पर श्रमिकों में ईर्ष्या तथा असन्तोष की भावना उत्पन्न हो जाती है। अतः मालिकों को स्वयं ऐसी बात नहीं करनी चाहिये। प्रत्येक उद्योग में सेवा नियमों का बनाना बहुत आवश्यक है और वेतन मान (ग्रेड) तथा पदोन्नति के नियमों का स्पष्ट रूप से स्थायी आदेशों में उल्लेख कर देना चाहिये।

अनुशासन कार्यवाही की समस्या
(Problem of Disciplinary Action)

प्रत्येक सभ्य समाज में जीवन की प्रत्येक अवस्था में अनुशासन का होना अत्यावश्यक है। अनुशासन को सभ्यता की रीढ़ की हड्डी कहा जा सकता है। अनुशासन से तात्पर्य यह है कि मनुष्य को इस प्रकार से उचित रूप से प्रशिक्षण दिया गया है कि उसकी बुद्धि का विकास एक निश्चित ढाँचे में हुआ है तथा उसमें संयम की भावना तथा मान्यता प्राप्त अधिकारी या प्रशासन के प्रति आदर की भावना तथा आज्ञा पालन की भावना उत्पन्न हो गई है। उद्योगों में उत्पादन बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि श्रमिक अनुशासन में रहकर पूर्ण रूप से प्रयत्न करें। अनुशासन तथा उद्योग का घनिष्ट पारस्परिक सम्बन्ध है। श्री गुलजारीलाल नन्दा के शब्दों में "जब श्रमिक अनुशासन की भावना को खो बैठते हैं तो इसका अर्थ यह होता है कि समाज ने तथा उन्होंने कोई बहुत मूल्यवान वस्तु खो दी है। जब तक अनुशासन का स्तर ऊँचा नहीं होगा तब तक उत्पादकता में उन्नति की तथा श्रमिकों के प्रबन्ध में प्रभावात्मक रूप से भाग लेने की आशा नहीं की जा सकती।"

श्रमिकों में अनुशासन-हीनता के अनेक कारण हैं, उदाहरणार्थ—श्रमिक संघों में पारस्परिक द्वेष, श्रमिकों में अज्ञानता तथा अशिक्षा, बाहरी आदमियों द्वारा

यह जुर्माना ६० दिन के अन्दर वसूल कर लिया जाना चाहिए तथा एक रजिस्टर में दर्ज कर दिया जाना चाहिये और इसकी राशि श्रम कल्याण कार्यों के हेतु काम में लानी चाहिए। ऐसे उपबन्ध यद्यपि सन्तोषजनक है, किन्तु बहुत से ऐसे उदाहरण है जहा जुर्माने के रजिस्टरों की व्यवस्था नहीं की गई है और वसूल किया हुआ धन भी श्रम कल्याण कार्यों में नहीं लगाया गया है। इस दोष को फैक्ट्री निरीक्षकों के कठोर निरीक्षण द्वारा दूर किया जा सकता है। श्रमिकों को दण्ड देने की और भी विधियाँ है, जैसे—वेतन दरों में कमी, ग्रेड का घटाना, इत्यादि। ऐसी कटौती मजदूरी अदायगी अधिनियम के अन्तर्गत अवैध है, परन्तु इस अधिनियम को कठोरता से कार्यान्वित करने की आवश्यकता है।

यह भी वाञ्छनीय और ध्यान देने योग्य बात है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही मे श्रमिक को कोई ऐसा दण्ड न मिले, जिससे उसके रोजगार पाने की सम्भावना मे कोई कमी हो जाये। दण्ड भी सिद्ध अपराध के लिए ही होना चाहिए और यह नियमानुसार ही मिलना चाहिए। यह तो बहुत ही अच्छा होगा यदि श्रमिकों तथा व्यवस्थापकों मे आपसी सहयोग तथा आपसी सहायता की भावना पैदा करके अनुशासन रखा जा सके। यदि अनुशासनीय पग लेना आवश्यक हो जाये तो दूसरा अच्छा सिद्धान्त यह है कि दण्ड व्यवस्था श्रमिक द्वारा किये गये अपराध के अनुसार ही हो। जहाँ तक हो सके बर्खास्तगी अथवा मुअत्तली का दण्ड न दिया जाना चाहिए। इस विषय मे यह बात उल्लेखनीय है कि भारतीय-टाटा-निगम श्रमिकों के सेवा-कार्ड की व्यवस्था कर दी है। यह प्रथा अन्य कई स्थानों पर भी अपनायी गई है। प्रत्येक श्रमिक के पास एक कार्ड रहता है, जिस पर उसका नाम, श्रेणी, वेतन दर आदि लिखे होते है। उसकी दूसरी ओर अच्छे अथवा बुरे व्यवहार के उल्लेख के हेतु स्थान छोड दिया जाता है। यदि श्रमिक कोई अपराध करता है, चाहे वह अनुशासन से सम्बन्धित हो या श्रमिक द्वारा काम मे ढील डालने के कारण हो अथवा और किसी प्रकार का अपराध हो, तो उसे विभाग अध्यक्ष के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। यदि उसका अपराध सिद्ध हो जाये तो उसे सचेत कर दिया जाता है और उसके सेवा-कार्ड पर इस प्रकार की चेतावनी का विवरण लिख दिया जाता है। दूसरी बार उसी प्रकार के अपराध करने पर उसे पूर्ण सचेत कर दिया जाता है और सेवा-कार्ड पर नोट दे दिया जाता है, तीसरी बार उसी प्रकार के अपराध करने पर उसे तुरन्त बर्खास्त कर दिया जाता है। सेवा या रजिस्ट्री कार्ड की यह प्रणाली बहुत लाभकारी है। ऐसे कार्ड व्यवस्थापकों को पदोन्नति और बर्खास्तगी की बातों को तय करने मे तथा श्रमिकों को ईमानदारी तथा नियमितता के मार्ग पर चलाने में सहायक होते है। ये किसी श्रम सुरक्षा योजना के हेतु आँकड़े एकत्रित करने मे भी बहुत सहायक होते हैं और इस दृष्टिकोण से रोजगार दफ्तरों के लिए भी लाभदायक है। श्रमिकों के बारे मे नाम, आयु, जाति, पते इत्यादि जैसी अस्थायी प्रवृत्ति की और व्यवसाय परिवर्तन, वेतन, उपस्थिति, अवकाश, अनुशासनात्मक कार्यवाही, क्षतिपूर्ति आदि जैसी बदलती हुई प्रवृत्ति की सभी प्रकार

की सूचनाएँ इनमें नोट कर दी जाती हैं। अधिकांश उद्योगों ने यह सेवा-कार्ड-प्रणाली अपना ली है और यह वाञ्छनीय होगा कि इनमें कम से कम कुछ न्यूनतम सूचना के विषय में समानता और कुछ वैधानिक व्यवस्था भी इस उद्देश्य के लिए हो।

विवेकीकरण अर्थात् युक्तिकरण (Rationalization)

परिभाषा

एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या, जिसको हाल ही के कुछ वर्षों में महत्ता दी गई है, भारतीय उद्योगों में वैज्ञानिक प्रबन्ध अथवा विवेकीकरण अथवा युक्तिकरण की है। हम विवेकीकरण की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं--"विवेकीकरण का तात्पर्य उद्योग में उस तकनीक और संगठन की पद्धति से है, जो इसलिए अपनाई जाती है कि श्रमिकों के प्रयत्नों और माल में कम से कम अपव्यय (Waste) हो। इस प्रकार इसके अन्तर्गत श्रम का वैज्ञानिक रूप से संगठन, कच्चे माल एवं उत्पादन का समानीकरण, प्रक्रियाओं की सरलता तथा विपणन एवं यातायात के साधनों में सुधार करना आदि बातें आ जाती हैं।"[5] सारांश में यह मूल्य में कमी करने की वैज्ञानिक योजना है। इसका अर्थ उत्पादन में तर्क और साधारण बुद्धि का उपयोग करना तथा उत्पादन व उपभोग में नियमित एवं वैज्ञानिक ढंग से समायोजता लाना है। विवेकीकरण का मुख्य उद्देश्य उत्पादन के प्राचीन तथा बेढंगे एवं परम्परागत तरीकों के स्थान पर वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग करना है। १९२७ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की 'प्रबन्ध पर सलाहकार समिति' ने बताया था कि विवेकीकरण एक ऐसा सुधार है, जिसके अन्तर्गत उत्पादन की प्राचीन एवं परम्परागत प्रणालियों के स्थान पर तर्कसंगत एवं नियमित प्रणालियों को काम में लाया जाता है। संकुचित रूप में विवेकीकरण का अर्थ ऐसे सुधारों से लिया जा सकता है, जो किसी संस्थान, प्रशासन सम्बन्धी अथवा अन्य सार्वजनिक या निजी सेवाओं में किये जाते हैं परन्तु विस्तृत रूप में इसका अर्थ ऐसे सुधारों से लिया जा सकता है, जो व्यावसायिक संस्थाओं के एक समूह में उनको इकाई मानकर, किये जाते हैं, या बड़े आर्थिक या सामाजिक समूह में होते हैं। दृढ़ रूप से, विचार पश्चात् तथा वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग करके जब यह सुधार होते हैं तो इनसे अनियन्त्रित प्रतियोगिता के कारण जो अपव्यय तथा हानि होती है उनको कम किया जा सकता है।

विवेकीकरण में दो महत्वपूर्ण तकनीकी बातें हैं--(क) केन्द्रीय नियन्त्रण (Centralised Control) एवं यन्त्रीकरण (Mechanisation), (ख) आधुनिकीकरण (Modernisation) एवं समानीकरण (Standardisation)। इसके उद्देश्य

5 *International Economic Conference, Geneva,* May, 1927.

उत्पादन को बढ़ाना एवं उत्पादन मूल्य को घटाना दोनों ही है। केन्द्रीय नियन्त्रण में उत्पादक इकाइयों का निकट सामंजस्य (Co-ordination) होता है। बँधी लागत को कम करने तथा बड़े पैमाने के उद्योग की मितव्ययताओं (Economies) को प्राप्त करने के लिए इन इकाइयों का विलीनीकरण (Amalgamation) भी हो सकता है। जो इकाइयाँ अधिक कमजोर है, वे समाप्त हो जाती है। यन्त्रीकरण का अर्थ है—श्रमिकों का मशीनों द्वारा प्रतिस्थापन। आधुनिकीकरण में समस्त घिसी-पिटी तथा पुरानी मशीनों को हटा दिया जाता है तथा प्रत्येक इकाई में आधुनिक मशीनें तथा उसके साथ ही अन्य चीजें और यन्त्र पूर्ण रूप से लगाये जाते हैं, जिससे उद्योग की प्रत्येक मशीन और सामान सर्वश्रेष्ठ रहे। समानीकरण सामान तथा उत्पादन की रीतियों का होता है। मानव साधन को, अर्थात् श्रमिक को, वैज्ञानिक व्यवस्था द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। विवेकीकरण में 'समय अध्ययन' (Time Study), 'गति अध्ययन' (Motion Study) एवं 'श्रान्ति अध्ययन' (Fatigue Study) किया जाता है। इसका उद्देश्य यह है कि किसी भी कार्य को करने में गति की संख्या न्यूनतम हो और समय भी कम लगे तथा श्रमिकों पर कम से कम जोर पड़े।

सर्वप्रथम विवेकीकरण शब्द का प्रयोग जर्मनी में १९१४–१८ के महायुद्ध के पश्चात् के वर्षों में हुआ, जबकि वहाँ मुद्रास्फीति (Inflation) एवं आर्थिक अव्यवस्था फैली हुई थी। अब इसको संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, जर्मनी, जापान एवं इंगलैण्ड में अधिक विस्तृत रूप से अपनाया गया है। अन्य देश भी १९२९ की आर्थिक मन्दी के पश्चात् इसके बारे में विचार करने लगे हैं और भारत में भी इस ओर कुछ प्रयत्न किये गये हैं। विवेकीकरण की योजना में उत्पादन लागत में कमी की जाती है। इसके लिए श्रम को बचाने वाले उपाय अपनाये जाते हैं तथा उत्पादन को उपभोग के अनुकूल समायोजित किया जाता है तथा श्रमिकों की कुशलता एवं दक्षता में वृद्धि की जाती है। ये बातें अति उत्पादन तथा अपव्यय को दूर करने तथा मूल्यों में कमी करने के लिए नितान्त आवश्यक है। विवेकीकरण के द्वारा कमजोर इकाइयाँ समाप्त हो जाती है, तथा शक्तिशाली इकाइयों का विलयन करके विशाल एवं कुशल इकाइयों का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण व्यवसाय को नये प्रकार की मशीनों, श्रम बचत उपायों एवं वैज्ञानिक प्रयोगों से तथा व्यापार, उद्योग, बैंकिंग, वित्त व्यवस्था एवं राज्य के बीच सहयोग से और समस्त उद्योगों को एक कार्यकुशल संगठन के अन्तर्गत लाकर जितना अधिक से अधिक सम्भव होता है, कुशल बना दिया जाता है। किसी भी उद्योग में विवेकीकरण को लागू करने से पूर्व एक निश्चित आयोजना बनानी पड़ती है। विवेकीकरण एक व्यापक शब्द है, जो उद्योग में केवल आर्थिक दृष्टि से ही नहीं अपितु वैज्ञानिक प्रबन्ध द्वारा तकनीकी संगठन की दृष्टि से भी उन्नति करने पर बल देता है।

विवेकीकरण के गुण एव दोष

विवेकीकरण के अनेक लाभ है। विवेकीकरण से सम्पूर्ण आर्थिक सगठन मे अधिकतम कार्यक्षमता आ जाती है। इससे उत्पादन की लागत कम हो जाती है और साथ ही उत्पादन भी अधिक होने लगता है। श्रमिक की कार्यकुशलता बढ जाती है, किसी प्रकार का अपव्यय नही होता तथा मूल्य भी कम हो जाते है। इस प्रकार माँग भी बढती है तथा बाजार का विस्तार होता है। सारांश मे, इससे न्यूनतम प्रयत्नो से अधिकतम कार्यकुशलता एव अधिकतम उत्पादन की प्राप्ति होती है और उद्योग की प्रतिस्पर्धा-शक्ति बढ जाती है। १६२७ मे अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्मेलन ने विवेकीकरण से सम्बन्धित निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया था— "इस सम्मेलन के विचार मे उत्पादन बढाने, श्रमिको की दशाओ मे सुधार करने और उत्पादन लागत को कम करने का एक मुख्य साधन यह है कि उत्पादन और वितरण की व्यवस्था को विवेकपूर्ण ढँग से सगठित किया जाये। सम्मेलन के विचार मे इस प्रकार के विवेकीकरण का उद्देश्य निम्नलिखित बातो से है जो सब बातें एक साथ लागू होनी चाहियें—(१) न्यूनतम प्रयत्नों द्वारा श्रमिको की अधिकतम कार्यकुशलता प्राप्त करना, (२) जहाँ वस्तु के भिन्न प्रकार के आकार से कोई लाभ न हो वहाँ आकारो मे भिन्नता को कम करना तथा समान प्रकार के भागो को एक दूसरे से हस्तान्तरित करने, उनके निर्माण, उपयोग तथा डिजाइन बनाने मे सहायता देना, (३) कच्चे माल और शक्ति के उपयोग मे अपव्यय को दूर करना, (४) पदार्थों की वितरण व्यवस्था को सरल बनाना, तथा (५) वितरण-व्यवस्था मे अनावश्यक यातायात, भारपूर्ण वित्तीय सम्भार तथा बेकार के मध्यस्थो आदि को दूर करना।" इस बात का भी उल्लेख किया गया था कि विवेकीकरण को बुद्धिमत्ता से तथा निरन्तर रूप से लागू करने से निम्नलिखित लाभ होग— "(i) समाज के लिए अधिक स्थिरता होगी तथा जीवनस्तर ऊँचा हो जायेगा, (ii) उपभोक्ताओ के लिये कम कीमते होंगी तथा आवश्यकतानुसार वस्तुएँ उचित रूप से बनाई जाएँगी, तथा (iii) उत्पादन मे सलग्न विभिन्न वर्गों को अधिक तथा नियमित रूप से पारितोषक मिलेगा जिनका उनमे समान रूप से वितरण भी होगा।" इस बात पर भी जोर दिया गया था कि विवेकीकरण के लिये मालिको का सहयोग तथा व्यापार एव औद्योगिक सगठन की और वैज्ञानिक तथा तकनीकी विशेषज्ञो की सहायता आवश्यक है। विवेकीकरण को सावधानी से लागू करना चाहिये ताकि श्रमिको के हितो को क्षति न पहुँचे।

इससे विवेकीकरण की महत्ता और लाभ स्पष्ट हो जाते है। परन्तु विवेकीकरण मे अनेक कठिनाइयाँ तथा दोष भी हैं। इस योजना का उन मालिको द्वारा विरोध होता है जो कमजोर होते हैं, और जिनका देश म विवेकीकरण की योजना लागू हो जाने पर अस्तित्व ही समाप्त हो जाने का भय रहता है। दूसरी कठिनाई यह है कि विवेकीकरण की योजना के लिये पर्याप्त पूँजी एव व्यापार-विवेक सदा प्राप्त नही हो पाते, जबकि यह विवेकीकरण को लागू करने के लिय नितान्त

आवश्यक है। विवेकीकरण के अन्तर्गत उत्पादक आपस मे संगठित होकर उपभोक्ताओं से अनुचित रूप से उच्च मूल्य वसूल कर सकते हैं। इसलिये विवेकीकरण सदैव लाभदायक नही होता। सब बातों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि विवेकीकरण का प्रभाव उस समय इतना बुरा नही होता, जब औद्योगिक समृद्धि (Prosperity) के दिनो में श्रमिकों को दूसरे उद्योगो मे लगाया जा सकता है, परन्तु साधारणतया विवेकीकरण किसी विशेष उद्योग में अधिक मन्दी के दिनो में ही अपनाया जाता है, ताकि उत्पादन लागत कम हो सके।

श्रमिक विवेकीकरण का विरोध करते हैं, क्योंकि इसे वह कार्य की तीव्रता (Intensification) एवं श्रमिकों के शोषण का साधन समझते हैं। प्रथम, विवेकीकरण की योजना लागू करने का तात्पर्य यह हो जाता है कि श्रम-बचत उपायों तथा नवीनतम मशीनों को अपनाकर श्रमिको की सख्या कम कर दी जाये। इसके फलस्वरूप बेरोजगारी बढ़ती है। दूसरे, व्यावहारिक रूप मे विवेकीकरण कार्य तीव्रता का रूप ले लेता है, क्योकि वस्तुतः होता यह है कि श्रम व्यय को कम करने के हेतु मालिक, कार्य की दशाओं, कच्चा माल, औजारो आदि मे सुधार किये बिना, कार्य-भार मे वृद्धि कर देते है। मालिको द्वारा प्रबन्ध के सभी कार्यो मे विवेकीकरण लागू करने का प्रयत्न नही किया जाता। इस प्रकार विवेकीकरण से श्रमिको पर अत्यधिक भार पड जाता है। तीसरे, श्रमिक यह शिकायत करते है कि विवेकीकरण द्वारा होने वाले समस्त लाभों को मालिक हडप जाते हैं और जिन श्रमिकों पर अधिक कार्य-भार पड़ता है, उन्हें बहुत कम अथवा कुछ भी नही मिलता।

विवेकीकरण की किसी भी योजना के सफल होने के लिये यह आवश्यक है कि इन आपत्तियों का समाधान किया जाये। विवेकीकरण की योजना ऐसी होनी चाहिये, जिससे कम मूल्य पर अधिक उत्पादन हो सके तथा उद्योग के विस्तृत होने के साथ-साथ श्रमिकों को अलग करने की अपेक्षा और अधिक श्रमिकों को कार्य पर लगाया जा सके। अतः विवेकीकरण को सुनियोजित एवं नियमित रूप से लागू करना चाहिये, जिससे बेरोजगारी बिल्कुल न हो और यदि हो भी तो बेरोजगारी सहायता की कोई योजना पहले से ही तैयार रहनी चाहिये। दूसरे, विवेकीकरण की किसी भी योजना को कार्यान्वित करने से पूर्व कार्य-भार को वैज्ञानिक रीति तथा उचित प्रकार से 'समय अध्ययन', 'गति अध्ययन' तथा 'श्रान्ति अध्ययन' आदि से निर्धारित कर लेना चाहिये। मालिको को कार्य की दशाओं, मशीनो, कच्चे माल, आदि मे भी सुधार करना चाहिये एवं श्रमिको के कल्याण के विभिन्न कार्य भी करने चाहियें। तीसरे, विवेकीकरण के फलस्वरूप होने वाले अधिक लाभ मे से श्रमिको को उचित लाभ मिलना चाहिये। विवेकीकरण मे जो लाभ होते है, उनसे मजदूरी को पर्याप्त मजदूरी (Living Wage) के स्तर तक बढ़ाया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त विवेकीकरण के फलस्वरूप अधिक कार्य-

कुशल व्यवस्था एव श्रेष्ठ सगठन होना चाहिये और इसके परिणामस्वरूप मालिको एव श्रमिको के बीच सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होने चाहिये ।

भारतीय उद्योगो मे विवेकीकरण

ससार के विभिन्न औद्योगिक देशो की भाँति विवेकीकरण को भारत मे भी आर्थिक मन्दी के समय कुछ सीमित रूप तक अपनाया गया था । इसका कारण यह था कि इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि श्रम बचत उपायो तथा वस्तुओ और उत्पादन मे समानीकरण द्वारा श्रमिको की कार्यकुशलता और दक्षता को बढाया जाये और सब प्रकार से बचत की जाय । उदाहरण के लिये, 'ससून मिल ग्रुप' के सर फैड्रिक स्टोन ने १६२८ मे बम्बई की कुछ कपडा मिलो मे विवेकीकरण को कार्यरूप दिया । तभी से भारत के सबसे अधिक शक्तिशाली एव प्रतिनिधि श्रमिक सगठन, अर्थात् अहमदाबाद कपडा मिल मजदूर परिषद्, ने विवेकीकरण योजना का विरोध किया है तथा भारतीय उद्योग के विभिन्न क्षेत्रो मे विवेकीकरण के लागू होने से जो गम्भीर कमिया एवम् दोष पाये गये उन पर प्रकाश डाला है । डा० राधाकमल मुकर्जी ने कपडा, इजीनियरिंग एवम् तम्बाकू उद्योगो मे विवेकीकरण की समस्या की समालोचना की है तथा उन सुरक्षात्मक उपायो को भी बताया है, जिनका विवेकीकरण की किसी भी योजना को लागू करने से पूर्व अपनाया जाना आवश्यक है, ताकि श्रमिको के उचित हितो को हानि न पहुँचे ।[6]

कपडा उद्योग के सम्बन्ध मे १६२७ मे टैरिफ बोर्ड ने भारत म प्रति श्रमिक उत्पादन बढाने एव कार्यकुशलता मे सुधार की आवश्यकता पर बल दिया था । उसने बताया था कि जापान मे प्रति श्रमिक द्वारा नियन्त्रित किये जाने वाले तकुओ की सख्या २४०, इगलैण्ड मे ६०० एव सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे १,१२० थी, जबकि भारत मे इनकी सख्या केवल १८० तकुए प्रति श्रमिक ही थी । भारत मे एक बुनकर द्वारा देखभाल किये जाने वाले करघो की सख्या २ थी, जबकि अमेरिका मे ६ एव इगलैण्ड मे ४ से ६ तक थी । जापान मे एक बुनकर लडकी ६ करघो की देखभाल करती थी, जबकि हमारा बुनकर केवल दो करघो की ही देखभाल कर पाता था । इस कारण यह सुझाव दिया गया था कि भारतीय उद्योगो मे माल एव कार्य की दशाओ मे सुधार होना चाहिये तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध अपनाना चाहिये । इसमे कोई सन्देह नही कि विभिन्न देशो के श्रमिको की कुशलता की तुलना भारतीय श्रमिको के जलवायु के प्रभाव एव रहने की असन्तोषजनक दशाओ को दृष्टि मे रखकर ही करनी चाहिये । परन्तु इस बात से भी इन्कार नही किया जा सकता कि कार्यकुशलता म वैज्ञानिक प्रबन्ध द्वारा उन्नति हो सकती है । विवेकीकरण मे न केवल मिल के विभिन्न विभागो मे कार्यकुशलता बढेगी, वरन् इससे उन्नत सामजस्य (Co ordination) एव सर्वेक्षण मे भी वृद्धि होगी । यदि भारतीय सूती मिल उद्योग को इगलैण्ड एव जापान से सफलतापूर्वक

6 Dr R K. Mukerjee *Indian Working Class* p 246-59.

प्रतिस्पर्धा करनी है तो विवेकीकरण की नितान्त आवश्यकता है। अभी तक विवेकीकरण बम्बई एवं अहमदाबाद मे लागू किया गया है, जहाँ १९३५ में श्रमिकों एवं मालिकों के बीच समझौते के पश्चात् कार्यकुशलता के उपाय (Efficiency Methods) अपनाये गये थे। रिंग कताई एवम् बुनाई के विभाग को इससे अत्यधिक लाभ हुआ है। बम्बई की कपड़ा मिल के करघा विभाग में भी काफी उन्नति हुई है। यहाँ ५५६ बुनकर ३ तथा २,७१६ बुनकर ४ एवम् ६०१ बुनकर ६ करघे प्रति बुनकर चलाते है। अधिकाश कताई करने वाले ४०० तकुए अथवा इससे भी अधिक प्रति श्रमिक देखभाल कर लेते हैं। अहमदाबाद में कपड़ा मिल मजदूर परिषद् द्वारा किये गये विरोध के कारण इस क्षेत्र में अधिक उन्नति नही हो सकी है। शोलापुर मे विवेकीकरण बहुत कम हुआ है और यह केवल रिंग कताई के विभाग तक ही सीमित है। यहाँ ११५ श्रमिक दुतरफा कार्य प्रणाली (Double Side System) पर कार्य करते है। अन्य स्थानों पर कपड़ा मिलों में उन्नत मशीनो एवं स्वचालित (Automatic) करघों के कारण श्रमिको की कार्यकुशलता मे वृद्धि होने के अतिरिक्त और कोई सुधार नहीं हुआ है। कानपुर मे मशीनों की गति में वृद्धि की गई है। परन्तु यह वास्तव मे विवेकीकरण न होकर कार्य की तीव्रता है।

फिर भी इसमे सन्देह नही कि भारतीय उद्योगों मे, विशेषकर सूती वस्त्र, जूट मिल, एव कोयला खान उद्योगों मे, विवेकीकरण अत्यधिक आवश्यक है। दूसरे महायुद्ध के पश्चात् भारतीय सूती वस्त्र उद्योग का उत्पादन सामान्यतया २० से ३० प्रतिशत तक घट गया है, जबकि जापान, इंगलैण्ड एवम् अमेरिका जैसे सूती कपड़े के अन्य उत्पादक देशों के उत्पादन मे वृद्धि हुई है। भारत का पिछड़ापन इस बात से स्पष्ट है कि इस समय भी भारतीय सूती उद्योग का एक कर्मचारी औसतन २८० रिंग फ्रेम तकुओ की देखभाल करता है, जबकि इगलैण्ड मे एक कर्मचारी ८०० तकुओ एव अमेरिका का एक श्रमिक १,२०० तकुओं की देखभाल करता है। इसी प्रकार एक भारतीय श्रमिक औसतन २·५ साधारण करघो पर कार्य करता है जबकि इगलैंड मे ५ साधारण करघो तथा अमेरिका मे ३३ स्वचालित करघे एक श्रमिक द्वारा नियन्त्रित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त अधिकाश भारतीय मिलों मे मशीन एवं सामग्री अपेक्षाकृत पुरानी है। यह अनुमान लगाया गया है कि ४६ प्रतिशत करघे, ३६ प्रतिशत 'इण्टर फ्रेम्स', ३१ प्रतिशत 'ड्राइंग फ्रेम्स', २७ प्रतिशत 'स्लेबर एव रोविंग फ्रेम्स' एव १७ प्रतिशत 'वार्प रिंग' और 'वैफ्ट रिंग फ्रेम्स' लगभग ४४ वर्ष से भी अधिक पुराने है। बम्बई मिल मालिको द्वारा सूती वस्त्र उद्योग के कार्यदल (Working Party) को प्रस्तुत किये गए परिपत्र (Memorandum) के अनुसार बम्बई मिलो मे ६० प्रतिशत मशीनें २५ वर्ष से अधिक पुरानी हैं। ऐसी मशीनें जिनसे दूसरे महायुद्ध में परस्पर-व्यापी-पारियों (Multiple Shifts) मे कार्य लिया गया था तथा जो १९३० से पहले लगाई गई थी, पुरानी और बेकार हो गई है। संसद् मे एक बार श्री टी० टी० कृष्णमाचारी ने कहा था कि लगभग ६३ सूती मिलो को, पुरानी एवं घिसी पिटी मशीनों के

कारण, बन्द होने की नौबत आ गई थी। जुलाई १६५८ मे सूती कपडा उद्योग की समस्याओ का अवलोकन करते हुए जोशी समिति ने भी कहा था कि "वर्तमान मशीनो मे से अधिकाश ४० वर्ष पूर्व लगाई गई थी और उनकी उपयोगिता भी लगभग समाप्त हो चुकी है।" स्वचालित करघो का प्रतिशत कुल करघो के अनुपात मे जनवरी १६५८ मे भारत मे ६ ८ था जबकि यह अनुपात अन्य देशो मे इस प्रकार था अमेरिका मे १००, फास मे ५२, इटली मे ५० २, सोवियत सघ मे ४२ ४, पश्चिमी जर्मनी मे २८ २, पाकिस्तान मे २६, जापान मे १७ ६, इगलैण्ड में १५ और चीन मे ११·७। अत विदेशी प्रतिस्पर्धी का सामना करने और निर्यात बाजार को व्यवस्थित रखने के हेतु भारतीय कपडा उद्योग मे विवेकीकरण अत्यन्त आवश्यक है। जूट मिल उद्योग मे भी ऐसी ही दशा है। जूट मिल उद्योग के यन्त्रो एव मशीनो के आधुनिकीकरण की आवश्यकता और भी अधिक हो गई है, क्योकि योरोपीय एव डण्डी के अनेक प्रतिस्पर्धियो ने अपनी उत्पादन लागत को कम करने के लिये अपनी मशीनो एव यन्त्रो का आधुनिकीकरण करने पर बहुत बडी मात्रा मे पूँजी लगाई है। इससे ससार मे भारतीय जूट मिल उद्योग के एकाधिकार (Monopoly) को एक बहुत गम्भीर प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड रहा है। पाकिस्तान, ब्राजील तथा फिलिपाइन्स ने नवीन प्रकार की मशीनो से नई जूट मिलो की स्थापना की है और वे जूट से बनी वस्तुओ को कम कीमत पर देने मे समर्थ हो सकते हैं। १६५४ मे जूट जाच आयोग की रिपोर्ट मे भी जूट मिलो मे तत्काल विवेकीकरण लागू करने की आवश्यकता पर बहुत बल दिया गया था। १६५१ मे कोयला उद्योग पर कार्यदल की रिपोर्ट मे भी कोयला खान उद्योग के लिये आधुनिकीकरण तथा विवेकीकरण की योजनायें लागू करने की सिफारिश की गई थी ताकि खानो की उत्पादन क्षमता बढ सके तथा उनकी उत्पादन लागत कम हो सके।

अधिकाश राज्यो की कपडा मिलो मे विवेकीकरण की योजनाओ को कार्य-रूप मे परिणत कर दिया गया है तथा भारतीय-श्रम सम्मेलन द्वारा नियुक्त की गई जूट उद्योग पर त्रिदलीय औद्योगिक समिति की सिफारिशो के परिणामस्वरूप जूट मिलो मे भी विवेकीकरण योजनायें लागू कर दी गई है। इसके लिए वित्तीय सहायता राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम द्वारा प्रदान की गयी है। विवेकीकरण के सम्बन्ध मे मालिको को मार्ग प्रदर्शन करने के लिये भारतीय श्रम-सम्मेलन ने १६५७ मे एक आदर्श समझौते का मसविदा भी तैयार किया था, जिसको केन्द्रीय श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय द्वारा परिचालित किया गया है। परन्तु विवेकीकरण की योजनाओ का श्रमिक सघो द्वारा बहुत विरोध हुआ है।

भारत मे विवेकीकरण के खतरे

भारत मे अधिकतर यह देखा गया है कि पूर्णत नई मशीनो को लगाने की अपेक्षा पुरानी मशीनो को ही फिर से नया कर दिया जाता है तथा मशीनो की

गति काफी बढा दी जाती है और उन्नत मशीनों की व्यवस्था अथवा उन्नत कार्य नियोजन, वस्तुओं का समानीकरण अथवा सुधार एवं अच्छा सर्वेक्षण आदि कुछ नहीं किया जाता। केवल कार्य करने की गति मे वृद्धि होती है, जिसको कार्य की तीव्रता या अधिकता ही कहा जा सकता है। इस प्रकार भारत में कार्यतीव्रता (Intensification) विवेकीकरण के रूप में आ रही है। यद्यपि कपडा मिलों की मशीनों मे सुधार किया गया है, परन्तु इसके साथ रुई के गुण एवं मजदूरी में सुधार नहीं हुआ है। मशीनो की गति अहमदाबाद एव बम्बई की कपडा मिलो में अमेरिका से भी अधिक है, परन्तु इससे श्रमिको के स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है, दुर्घटनाओं की सख्या बढ जाती है, धागे अधिक टूटने लगते है एव श्रमिकों पर अधिक भार पडता है। इसके अतिरिक्त भारत मे यन्त्रीकरण के साथ-साथ बहुधा छटनी एव तीव्रता दोनो ही होते है, जिनसे, शक्तिशाली श्रमिक सगठन के अभाव के कारण, श्रमिक अपनी रक्षा नही कर पाते। फिर कारखाने में वातावरण की दशाओं के सुधार की ओर नियोजित प्रयत्न बहुत कम होता है, जिनमे सुधार होने से श्रमिकों की कार्यगति, चुस्ती एव कार्यकुशलता पर बहुत अधिक प्रभाव पडता है। अन्य देशो मे शक्तिशाली श्रमिक सघो के कारण श्रमिक विवेकीकरण द्वारा उद्योग के बढ़े हुए लाभो मे से उचित भाग पाने से वचित नही हुए है। परन्तु भारत में अहमदाबाद के अतिरिक्त, जहाँ श्रमिक सघ शक्तिशाली है, यह बात और कहीं नही पाई जाती। बम्बई मे विवेकीकरण के परिणामस्वरूप विभिन्न कार्यो में जो मजदूरी दी जाती है इसमे ३३ प्रतिशत से ५५ प्रतिशत तक वृद्धि हुई है। परन्तु श्रमिक इस बात की बहुधा शिकायत करते है कि उन पर अतिरिक्त भार पडता है, उनकी सख्या घटा दी गई है और यह सब बात कच्चे माल एव कार्य की दशाओं में सुधार किए बिना ही की गई है। साथ ही उन रोजगारों मे, जहाँ विवेकीकरण योजनाओं को लागू किया गया है, श्रमिकों की आय मे पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई है। विवेकीकरण के होने पर बेरोजगारी का भय भी सदा ही बना रहता है।

अहमदाबाद मे शक्तिशाली श्रम सगठन के कारण कार्यकुशलता प्रणाली (Efficiency System) सतोषपूर्वक कार्य कर रही है, परन्तु अन्य स्थानो मे, विशेषकर इजीनियरिंग उद्योग मे, अनियन्त्रित विवेकीकरण के कारण अनेक दोष उत्पन्न हो गये है। उदाहरणार्थ, जमशेदपुर के लोहा एव इस्पात कारखानो के विभिन्न यन्त्रों एव विभागो मे उत्पादन प्रति इकाई बढा ली है, परन्तु श्रमिको की सख्या बहुत घटा दी गई है और इनकी मजदूरी मे कोई उचित वृद्धि नही की गई है। यह स्थिति लगभग समस्त इन्जीनियरिंग मिलो में, जहाँ विवेकीकरण के साथ-साथ श्रमिको की सख्या घटाई गई है या कार्यतीव्रता पाई जाती है, व्याप्त है। भारतीय टीन प्लेट क० मे भी ऐसी ही दशायें पाई जाती है। लोहे के तार उद्योग मे तो कार्यतीव्रता की सीमा ही पहुँच चुकी है। इसी प्रकार की, बिना उचित वेतन वृद्धि के, कार्यतीव्रता की समस्या सिग्रेट उद्योग मे भी है, जहाँ कि आरम्भ से अन्त तक

समस्त प्रक्रियायें मशीनो से होती हैं। कार्यगति मे वृद्धि एव श्रमिको की सख्या मे कमी दोनो ही श्रमिको मे घोर असतोष एव हडतालो के कारण बने है।

सुझाव

इसलिए, अधिक कार्यदक्षता और मेहनत के कारण उत्पादन तथा मजदूरी मे वृद्धि, कार्य गति मे वृद्धि, श्रान्ति, उचित अल्प विरामो की आवश्यकता, मशीनो को लगाने एव कार्य दशा मे सुधार, विवेकीकरण के कारण बेरोजगारी आदि सभी महत्वपूर्ण प्रश्नो का सभी दृष्टिकोणो से अवलोकन करना आवश्यक है। विवेकीकरण की किसी योजना को कुशलता एव सफलतापूर्वक चलाने के लिए पूँजी व श्रमिको के हितो मे सामंजस्य लाना आवश्यक है। यह भी आवश्यक है कि विवेकीकरण को कार्यान्वित करने से पूर्व कार्यकुशलता के सभी उपायो का, श्रमिको व मालिको के प्रतिनिधियो की एक सयुक्त समिति द्वारा, अध्ययन किया जाये। इस समिति मे कुछ तकनीकियो को विशेषज्ञो के रूप मे होना चाहिए, जिससे कार्य की दशाओ का तथा श्रमिको और प्रबन्धको मे विवेकीकरण के लाभ को किस प्रकार से वितरित किया जाय, दोनो का निर्णय हो सके। यदि श्रमिको की छटनी की जाती है तो उन्हे क्षतिपूर्ति दी जानी चाहिये तथा उनको यथासम्भव शीघ्र ही पुन नौकरी पर लगाया जाना चाहिए। आजकल के महगे समय मे उत्पादन लागत तथा मूल्यो मे कमी की अत्यन्त आवश्यकता है और इसको विवेकीकरण के द्वारा ही किया जा सकता है। कम मूल्यो के कारण माँग बढेगी और उद्योगो का विस्तार और विकास हो सकेगा तथा अधिक उत्पादन के कारण निकाले हुए श्रमिको को पुन नौकरी मिल सकेगी। इस प्रकार विवेकीकरण के दीर्घकालीन प्रभाव यह होगे कि सस्ता उत्पादन होगा, अधिक उपभोग एव अधिक रोजगार होगा और यदि विवेकीकरण को ठीक प्रकार से कार्यान्वित किया जाय और पर्याप्त रूप से इस पर नियन्त्रण रखा जाय तो इससे धन मे वृद्धि होगी एव सामान्य जीवन-स्तर मे उन्नति हो सकेगी।

फिर भी डॉ० मुकर्जी ने अन्त मे सावधानी बरतने की चेतावनी दी है। भारत मे विवेकीकरण इस समय केवल पूँजीपतियो के हित व आर्थिक लाभ के लिए ही किया जाता है और इससे छटनी, कार्य तीव्रता, कार्य स्तर का गिरना और मजदूरी मे कमी एव हडतालो का एक दूषित चक्र चालू हो जाता है। इससे पूँजी एव श्रम शक्ति का अपव्यय होता है और उद्योगो मे ऐसी अस्थिरता और श्रमिको एव मालिको के बीच ऐसी कटुता पैदा हो जाती है कि भविष्य मे काफी समय तक इस योजना को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करना सम्भव नही हो पाता।

परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, भारत के अनेक उद्योगो मे विवेकीकरण की नितान्त आवश्यकता और वाछनीयता है। इस समय उत्पादन मे काफी अपव्यय होता है तथा लागत भी अनावश्यक रूप से अधिक बैठती है। इसको वैज्ञानिक प्रबन्ध द्वारा यदि समाप्त नही तो कम से कम घटाया अवश्य जा सकता है। इसलिये यह तो स्पष्ट ही है कि वर्तमान समय के बड़े उद्योगो को और उन

उद्योगों को जो निकट भविष्य मे स्थापित होने वाले है, दोनो को ही, यदि अधिक समय तक एव अच्छी प्रकार से चालू रखना है तो आगे पीछे की सभी बातों को देखकर चलना होगा। वर्तमान समय में प्रत्येक औद्योगिक इकाई तत्कालिक दिनचर्या मे व्यस्त तथा लाभ कमाने की इच्छुक रहती है, ताकि शेयरधारियों को प्रसन्न रखा जा सके। इस प्रकार वह बडी समस्याओं को, जिनपर कि उसका अपना अस्तित्व निर्भर होता है, भुला बैठती है। अब वह समय आ गया है कि जो लोग इस समय उद्योगो को नियन्त्रित करते है, उनको तत्कालिक वातावरण से आगे की सोचनी चाहिए तथा अपने व्यक्तिगत संकुचित दृष्टिकोणों को त्याग कर अपने और सार्वजनिक लाभ के लिये राष्ट्रीय स्तर पर संगठित रूप से कार्य करना चाहिए।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि १६५१ मे आयोजना आयोग के तत्वाधान मे आयोजित जो उद्योग विकास समिति की एक उप-समिति की बैठक नई दिल्ली मे हुई थी उसने औद्योगिक विवेकीकरण के परिणामस्वरूप होने वाली बेरोजगारी को कम करने, बेरोजगारों को पुनर्स्थापित करने, उन्हे प्रशिक्षण देने, एव उन्हे निर्वाह भत्ता देने का सुझाव दिया था। जुलाई १६५७ मे भारतीय श्रम सम्मेलन द्वारा विवेकीकरण के सम्बन्ध में मालिकों का मार्ग-प्रदर्शन करने के लिये एक आदर्श समझौता बनाया गया था। इस समझौते के अनुसार विवेकीकरण की योजनाओं को लागू करने मे निम्नलिखित बातो का ध्यान रखना आवश्यक है—(क) वर्तमान श्रमिकों की कोई छटनी नहीं होनी चाहिए और न ही उनकी आय मे कमी होनी चाहिये। इसका तात्पर्य यह है कि वर्तमान सभी श्रमिकों को कार्य पर लगाये रखना चाहिये—केवल उन मामलों को छोड़कर जिनमे स्वाभाविक रूप से अलहदगी हो जाती है या अपव्यय होता है। (ख) विवेकीकरण से जो लाभ होते है उनका समाज, मालिक तथा श्रमिको के बीच न्यायपूर्ण ढग से वितरण होना चाहिये, तथा (ग) पारस्परिक सहमति से विशेषज्ञो द्वारा कार्य-भार को उचित प्रकार से निर्धारित करना चाहिये तथा कार्य की दशाओ में भी उचित प्रकार से सुधार होना चाहिये।

उत्तर प्रदेश के उद्योगों में विवेकीकरण

सन् १६३७ में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता मे बनाई गई श्रम जाँच समिति के समक्ष कांग्रेस सरकार द्वारा कानपुर की कपडा मिलो के विवेकीकरण का प्रश्न प्रस्तुत किया गया था। यह समिति विवेकीकरण योजना को इसी शर्त पर लागू करने को तैयार थी कि श्रमिकों के हित सुरक्षित रहे और उद्योग का विकास इस प्रकार हो कि विवेकीकरण द्वारा छटनी किये गये श्रमिको को पुन कार्य पर लगाया जा सके। यही प्रश्न निम्बकार श्रम समिति (१६४६) के सम्मुख प्रस्तुत किया गया था एव फरवरी १६४६ के त्रिदलीय सम्मेलन में भी इस प्रश्न पर विचार किया गया था। सितम्बर १६५२ मे नैनीताल मे आयोजित राज्य त्रिदलीय श्रम सम्मेलन मे भी कपडा एव चीनी उद्योगो मे विवेकीकरण के प्रश्न पर विचार हुआ। सम्मेलन में विवेकीकरण के विभिन्न महत्वपूर्ण पहलुओ पर भी विचार किया

गया। उदाहरणत बेरोजगारी पर उसका प्रभाव, अनुचित छटनी एव अनुपयोगी खर्चों के विरुद्ध उपाय, विवेकीकरण के पश्चात मजदूरी एव कार्य दशाओ का निर्धारण, श्रमिको एव मालिको के प्रतिनिधियो द्वारा इस प्रश्न पर विचार, आवश्यक तकनीकी सहायता आदि। सामान्य विचार यह था कि विवेकीकरण मे देर नही करनी चाहिये तथा सरकार को इस सम्बन्ध मे आवश्यक कदम उठाने चाहियें। इसके फलस्वरूप श्रम विभाग ने श्रम कमिश्नर के कार्यालय मे "कार्यकुशलता विभाग" (Efficiency Section) की स्थापना की जिसने जनवरी १९५३ से विभिन्न कपडा एव चीनी मिलो मे विवेकीकरण से सम्बन्धित अनेक प्रश्नो की जाँच की है। "सम्पूर्णानन्द मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला" के नाम से इस विभाग के अन्तर्गत एक औद्योगिक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला (Industrial Psychology Laboratory) भी स्थापित की गई है। इसका कार्य 'समय अध्ययन', 'गति अध्ययन', 'श्रान्ति अध्ययन' प्रकार के अध्ययन करना है। फिर सरकार ने डाक्टर बन्शीधर मिश्रा को कानपुर की कपडा मिलो के सम्बन्ध मे अपनी रिपोर्ट देने के लिये विशेष अधिकारी के रूप मे नियुक्त किया। उनकी रिपोर्ट पर जून १९५४ मे नैनीताल मे हुये त्रिदलीय सम्मेलन मे विचार किया गया और इसके साथ ही सहायक श्रम आयुक्त द्वारा कपडा मिलो के हेतु दी गई विवेकीकरण योजना पर भी विचार-विमर्श हुआ। विभिन्न दलो के बीच हुए समझौते के फलस्वरूप सरकार ने कानपुर की कपडा मिलो मे विवेकीकरण लागू करने के अपने निर्णय को घोषित कर दिया। विवेकीकरण को कार्यान्वित करने के लिये तथा उसकी अन्य विस्तृत बातो पर विचार करने के लिये ७ व्यक्तियो की एक समिति की स्थापना की गई। १९५४ मे नैनीताल के सम्मेलन मे हुये कुछ निर्णय इस प्रकार थे (१) विवेकीकरण के लागू होने के परिणामस्वरूप किसी प्रकार की बेरोजगारी नही होनी चाहिये अर्थात् श्रमिको की सख्या मे कमी केवल अवकाश प्राप्ति एव स्वाभाविक अपव्यय के कारण ही होनी चाहिये। (२) उत्तर प्रदेश श्रम जाच समिति द्वारा सुझाये गये मजदूरी निर्धारण के ढाँचे एव कार्य-भार (Work Load) को स्वीकार कर लिया जाना चाहिये। (३) उच्च स्तर का कार्य करने पर पुरस्कार के रूप मे प्रेरणात्मक मजदूरी (Incentive Wages) की व्यवस्था करनी चाहिये। (४) मिलो मे कार्य की दशाओ की देखभाल होती रहनी चाहिये। (५) इन सब योजनाओ की विस्तृत रूप-रेखाओ को बनाने के हेतु एक समिति की स्थापना होनी चाहिये, जो योजना को कार्यान्वित करने के विभिन्न उपायो एव साधनो पर विचार करे।

परन्तु सूती मिल मजदूर सभा के असहयोग करने के कारण इन ७ व्यक्तियो की समिति को दिसम्बर, १९५४ मे समाप्त कर देना पडा और विवेकीकरण की समस्या को मालिको और कर्मचारियो के आपसी समझौते पर छोड दिया गया। इसके पश्चात् विवेकीकरण के विरोध मे बहुत प्रचार हुआ, जिसके परिणामस्वरूप कानपुर की कपडा मिलो मे एक आम हडताल हुई। यह हडताल २ मई १९५५ से २० जुलाई १९५५ तक चली। मालिको और श्रमिको के नेताओ द्वारा एक-दूसरे

पर गम्भीर आरोप लगाये गये और दोनों ही पक्षो को इससे काफी कठिनाई का सामना करना पड़ा। सारा विवाद मुख्यतः एक बात पर ही केन्द्रित था कि इस योजना का अर्थ विवेकीकरण है अथवा कार्यतीव्रता। सरकार ने नैनीताल सम्मेलन मे तय किये गये सिद्धान्तो से पीछे हटने से इन्कार कर दिया और श्रमिकों ने इस प्रश्न पर फिर से विचार करने की माँग की। अन्त में सरकार ने अगस्त १९५५ में एक समिति की स्थापना की, जिसके अध्यक्ष इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अवकाश प्राप्त न्यायाधीश श्री बी० बी० प्रसाद थे। इस समिति का कार्य नैनीताल त्रिदलीय सम्मेलन के निर्णयो पर विस्तृत रूप से विचार करना और इनके आधार पर कानपुर की सात कपड़ा मिलों में अलग-अलग विवेकीकरण को लागू करना था। समिति ने सितम्बर १९५६ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और बताया कि किसी भी दल को कष्ट पहुँचाये बिना किस प्रकार कानपुर की कपड़ा मिलों में विवेकीकरण लागू किया जा सकता था। यह भी अनुभव किया गया कि नैनीताल सम्मेलन में अपनाये गए सिद्धान्तों को अन्य तीन कपड़ा मिलो मे भी लागू करना चाहिये। इसलिये श्री बी० बी० प्रसाद की एक 'एक-सदस्य-समिति' अन्य मिलों के विषय में सिफारिश करने के हेतु बनाई गई जिसने फरवरी १९५७ मे अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। बी० बी० प्रसाद समिति की रिपोर्ट पर जून १९५७ के रानीखेत मे हुये त्रिदलीय सम्मेलन मे विचार किया गया। इसके तुरन्त बाद ही जुलाई १९५७ में विवेकीकरण के लिये भारतीय श्रम सम्मेलन ने एक आदर्श समझौते का सुझाव दिया, जिसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। इस रिपोर्ट पर और भारतीय श्रम सम्मेलन की विवेकीकरण से सम्बन्धित सिफारिशो पर राज्य सरकार द्वारा विचार किया गया। विवेकीकरण और कार्यकुशलता-उपायो पर अध्ययन जारी रहा। अन्ततः डा० सम्पूर्णानन्द को विवेकीकरण की योजनाओ को कानपुर की सूती मिलो में लागू करने के हेतु विवाचक नियुक्त किया गया। डा० सम्पूर्णानन्द ने अपना जो निर्णय दिया उसको सरकार ने सही अर्थो मे पूर्ण रूप से लागू करने का निश्चय किया और उनके निर्णय को कार्यान्वित करने के लिये एक विभाग (Cell) भी स्थापित किया गया है।

उपसंहार

कानपुर की हड़ताल का परिणाम यह हुआ कि उद्योग मे विवेकीकरण के लागू करने के प्रश्न पर काफी वाद-विवाद आरम्भ हो गया। भारत में इसके लाभ-हानि, खतरो एवं इनसे सुरक्षा के उपायो का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। सबका एकमात्र यही विचार है कि विवेकीकरण योजनाओ के परिणामस्वरूप बेरोजगारी एव श्रमिको की छटनी और उन्हे कष्ट नहीं होना चाहिये। सरकार का दृष्टिकोण तो १० सितम्बर, सन् १९५४ मे लोक सभा द्वारा स्वीकृत विवेकीकरण से सम्बन्धित प्रस्ताव से स्पष्ट हो जाता है, जो इस प्रकार है· "संसद् का विचार है कि जहाँ देश के हित में आवश्यक हो, वहाँ कपड़ा एवं जूट उद्योगो मे विवेकीकरण में प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। परन्तु इस प्रकार की योजना ऐसे

रूप से कार्यान्वित की जानी चाहिये कि श्रमिको का विस्थापन कम से कम हो। विस्थापित श्रमिको के रोजगार के लिये भी उचित सुविधायें प्रदान करनी चाहियें।" तत्कालीन श्रम मन्त्री श्री खन्डुभाई देसाई ने मई १९५५ मे बम्बई मे हुये श्रम सम्मेलन म कहा था "विवेकीकरण स्वय मे अति अच्छा हो सकता है। परन्तु जैसे बढ़िया खाना भूख से पीडित मनुष्य के लिये विष बन सकता है, वैसे ही यदि विवेकीकरण से बेरोजगारी मे वृद्धि होती है तब यह उद्योग के उत्थान के लिये बहुत खतरनाक उपचार हो सकता है। विशेषत श्रम बचत उपायो के विषय म हमे अधिक सावधान रहना चाहिये। ऐसे उपाय श्रमिको को मशीनो की वेदी पर बलिदान कर देते हैं।" स्वर्गीय प० नेहरू ने भी कहा था "विवेकीकरण एक अच्छी चीज है, परन्तु हम अधिक कार्यकुशलता के लिये भी मानव के दुख और पीडा को सहन नही कर सकते।" उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्य मन्त्री डाक्टर सम्पूर्णानन्द ने स्पष्ट शब्दो मे कहा था "जैसी आजकल हमारी राजनैतिक, सामाजिक एव आर्थिक स्थितियाँ है उनको देखते हुये विवेकीकरण का तात्पर्य केवल यही हो सकता है कि इससे देश के वर्तमान साधनो का पूर्णत लाभ उठाया जा सके तथा विवेकीकरण के कारण बेरोजगारी न हो।" उनका यह भी कथन था कि मालिको ने भी बिना हिचक के इस बात को स्वीकार कर लिया है। उनके अनुसार यदि विवेकीकरण योजना कार्यान्वित न हुई तो लगभग ५ से ६ हजार श्रमिक बेरोजगार हो जायेंगे, क्योकि कानपुर का कपडा उद्योग, कानपुर मे मजदूरी की ऊँची दरें होने के कारण, अन्य स्थानो से प्रतिस्पर्धा नही कर सकता और बिना विवेकीकरण के श्रमिको को 'औद्योगिक विवाद (संशोधित) अधिनियम' के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति देकर छटनी करने की सम्भावना हो सकती है। श्री टी० टी० कृष्णमाचारी ने भी कहा था कि वह समय आ गया है जबकि विवेकीकरण की नीति को अपनाना चाहिये। इसको कार्यरूप मे सरलता से लाया जा सकता है और श्रमिको को यह आश्वासन दिया जा सकता है कि इससे उन्हे हानि न होगी। "बिना कष्ट के विवेकीकरण" (Rationalization Without Tears) एक नया नारा था, जो उन्होने आलोचको को सुझाया और जिसमे उन्होने इस बात पर जोर दिया कि विवेकीकरण से श्रमिको को कोई हानि न होगी, क्योकि यदि श्रमिक गतिशील हो तो रोजगार के नये क्षेत्रो का निर्माण हो सकता है।

फिर भी कथनी और करनी मे बहुत अन्तर होता है और यही वाद-विवाद और मतभेद का कारण है। स्वर्गीय प० हरिहर नाथ शास्त्री ने कहा था "विवेकीकरण को विभिन्न उद्योगो मे जिस प्रकार लागू किया गया है, वह भारतीय सरकार द्वारा अपने उस दृढ आश्वासन के बिल्कुल विपरीत हुआ है जो आश्वासन सरकार ने उद्योगो की स्वीकृति से दिया था। यह बडे दुख का विषय है कि अपनी नीति को लागू करने के लिये तथा अनुचित और एकपक्षीय रूप से छटनी को, जो कि देश मे जारी है रोकने के लिए सरकार ने अभी तक कोई वास्तविक पग नही उठाया है।" डा० सम्पूर्णानन्द ने भी उस समय यह कहा था कि पिछले ५ वर्षो

मे १५,००० श्रमिकों की छटनी हुई थी, यद्यपि उनका तर्क यह था कि शेष ४६,००० श्रमिकों को बचाने के लिए विवेकीकरण योजना को कार्यरूप देना चाहिए। परन्तु उत्पादन में वृद्धि से स्पष्ट है कि विवेकीकरण के वेष में कार्य-तीव्रता हो रही है और इसका शेष श्रमिकों के ऊपर बुरा प्रभाव पड रहा है। श्रमिक प्रतिनिधियों द्वारा यह भी बताया गया है कि १९३९ एव १९५१ के बीच मे, जबकि मिलों, तकुओं एवं करघों की संख्या मे कपडा उद्योग में वृद्धि हुई है, वास्तव मे श्रमिकों की संख्या मे कमी हुई है। १९३९ मे जब ३८९ मिलें थीं, एक करोड तकुए थे तथा दो लाख करघे थे। तब इनमे ४,४१,९४९ श्रमिक कार्य पर लगे थे। परन्तु १९५२ मे कपडा अध्ययन दल के अनुसार ४४५ मिलें थीं, १,१२,००,००० तकुए एवं २,०१,००० करघे थे, परन्तु श्रमिकों की संख्या केवल ४,२५,०३२ थी। राजकीय श्रम ब्यूरो के विवेचन के अनुसार भी, यद्यपि श्रमिकों की आय बढ गई है, परन्तु महायुद्ध से पूर्व के मूल्यों को देखते हुए वास्तविक मजदूरी अब भी कम है। अगस्त १९६० में ससद में एक प्रश्न का उत्तर देते समय यह बताया गया कि आन्ध्र प्रदेश की सूती कपडा मिलों में विवेकीकरण के कारण ४७१ श्रमिकों को अपनी नौकरी से हाथ धोना पडा था।

इसलिए श्रमिक नेताओं एव अन्य दलों के वक्ताओं द्वारा विवेकीकरण योजनाओं का विरोध किया जाता है। भारत मे विवेकीकरण के खतरों का उल्लेख ऊपर के पृष्ठों में किया जा चुका है। परन्तु साथ ही यह भी बताया जा चुका है कि विवेकीकरण की वाछनीयता बहुत है और इसके बिना हमारे उद्योग, विशेषकर कपडा एवं जूट उद्योग, ससार के उद्योगों के सम्मुख नहीं टिक सकते। इसलिये वर्तमान समय मे विवेकीकरण योजनाओं को बहुत सावधानी और देख-रेख के साथ कार्यान्वित करने के अतिरिक्त और कोई रास्ता दृष्टिगोचर नहीं होता। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि मालिक, उत्पादन के समस्त क्षेत्रों मे विवेकीकरण योजनाओं को लागू न करके और केवल श्रम-बचत उपायों को ही अपनाकर, विवेकीकरण से अनुचित लाभ न उठायें। यदि मालिकों को ऐसा करने से नहीं रोका जा सकता तब आर्थिक उन्नति की वेदी पर मानव-कल्याण की आहुति नहीं दी जानी चाहिये। महात्मा गाँधी द्वारा श्रम-बचत-उपायों के विरुद्ध दिये गए प्रवचनों को हमें इतना शीघ्र नहीं भूलना चाहिये। जब तक हमारे उद्योगपतियों मे देश-प्रेम की भावना उत्पन्न नहीं हो जाती और सरकार इस मामले में कोई कठोर पग उठाने की परिस्थिति मे नहीं हो पाती, हमें विवेकीकरण अथवा युक्तिकरण योजनाओं को, चाहे उनकी वांछनीयता एवं आवश्यकता कितनी ही अधिक हो, धीरे-धीरे ही लागू करना चाहिये।

१५
औद्योगिक श्रमिकों की मजदूरी
WAGES OF INDUSTRIAL WORKERS

परिभाषा असल तथा नकद मजदूरी (Real and Nominal Wages)

मजदूरी का अभिप्राय उत्पादन म श्रम-सेवा के महनताने स है। यह मालिको द्वारा श्रमिको को उनके उत्पादन के प्रयत्नो के लिए दी गई अदायगी है। यदि अबन्ध नीति (Laissez faire) क दृष्टिकोण से देखा जाय तो मजदूरी की परिभाषा म मालिको और श्रमिको की परस्पर निश्चित या निर्धारित सविदा (Contract) आय का लिया जा सकता है। श्रमिक कुछ धन अथवा वस्तुओ अथवा दानो के लिए अपना श्रम बेचता है। मजदूरी की एक व्यापक परिभाषा यह भी हो सकती है कि मजदूरी का अथ धन के रूप मे दिए गये एसे महनताने से है जो रोजगार के सविदा की शर्तो के अनुसार रोजगार मे लगे व्यक्ति को दिया जाता है या एस रोजगार म किये गए काय के लिये दिया जाता है। अत मजदूरी म यात्रा भत्ता प्रोवीडेन्ट फण्ड मे मालिको का अशदान अवकाश प्राप्ति धन अथवा आवास भत्ता या मालिको द्वारा श्रमिको को दी जाने वाली कल्याण सेवाए सम्मिलित नही होती।

किन्तु इस दृष्टिकोण से नकद मजदूरी और असल मजदूरी म अन्तर किया जाता है। मालिक श्रमिको को प्रति सप्ताह प्रति माह या काय की मात्रा क अनुसार कुछ निश्चित धन देते है। यह राशि नकद अथवा मुद्रा मजदूरी को प्रकट करती है। किन्तु केवल नकद मजदूरी हम श्रमिक की आर्थिक स्थिति का उचित परिचय नही देता। जीवन स्तर को निश्चित करने वाली असल मजदूरी को ज्ञात करने के लिए हम मुद्रा की क्रय शक्ति का ध्यान रखना होगा और अतिरिक्त प्राप्ति जैसे-नि शुल्क आवास सस्ता अनाज अतिरिक्त आय के अवसर बोनस की अदायगी, समयोपरि काय के लिए अदायगी तथा कार्य करने और रोजगार की दशाओ आदि का भी दृष्टि मे रखना होगा।

मजदूरी अदायगी की पद्धतिया (Methods of Wage Payment)

मजदूरी अदायगी की विभिन्न पद्धतिया हैं। काय क अनुसार अथवा श्रमिक के रोजगार की समय अवधि के अनुसार मजदूरी दी जा सकती है। काय के अनुसार दी जाने वाली मजदूरी कार्यानुसार मजदूरी (उजरत) (Piece Wages) तथा समय की अवधि क अनुसार दी जाने वाली मजदूरी समयानुसार मजदूरी

(अमानी) (Time Wages) कहलाती है। "समयानुसार मजदूरी" में एक निश्चित समय के लिए, जैसे—प्रति घण्टा, प्रति दिन, प्रति सप्ताह, प्रति माह, एक निश्चित धन दिया जाता है। "समयानुसार मजदूरी" में श्रमिक अपना कार्य धीमी गति से किन्तु कुशलता पूर्वक करता है और उसकी आय काफी सीमा तक नियमित हो जाती है। यह पद्धति बिल्कुल सरल है और इसके अन्तर्गत श्रमिकों में परस्पर स्पर्धा भी नहीं होती। मालिक ऐसी मजदूरी तब देते हैं जब कार्य का समानीकरण सरलता से नहीं हो सकता अथवा कार्य का निरीक्षण सम्भव नहीं होता या कार्य अस्वाभाविक (Unusual) प्रकार का होता है तथा जब कार्य के गुण को कार्य की मात्रा से अधिक महत्व दिया जाता है। समयानुसार मजदूरी को उस समय भी तरजीह (Preference) दी जाती है जब कार्य में सावधानी एवं उचित ध्यान देने की आवश्यकता होती है तथा जब महगी सामग्री एवं नाजुक प्रकार की मशीनरी का प्रयोग होता है। दो या अधिक व्यक्तियों के सयुक्त उत्पादन में भी समयानुसार मजदूरी देना अधिक उत्तम है। अमानी तब भी ठीक है जब श्रमिक की कोई गलती न होने पर भी कार्य में विघ्न पड जाता है, जैसे खेती में मौसम बदलने के कारण विघ्न पड जाता है। परन्तु समयानुसार मजदूरी में यह हो सकता है कि श्रमिक अधिक कार्य न करे। इस पद्धति में अधिक कार्यकुशल व्यक्ति को अधिक कार्य करने का प्रोत्साहन भी नहीं मिलता और कुल उत्पादन में कमी हो जाती है। इस व्यवस्था में अधिक सर्वेक्षण की भी आवश्यकता होती है। इसके विपरीत 'कार्यानुसार मजदूरी' के अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक को कार्य की मात्रानुसार अदायगी की जाती है, चाहे वह इसे करने में कितना ही समय लगाए। "कार्यानुसार मजदूरी" को तभी तरजीह दी जाती है जब कार्य का समानीकरण तथा माप सरलतापूर्वक हो सकता है तथा मालिक बँधे व्यय को घटाकर अधिक उत्पादन चाहता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत श्रमिक उत्पादन के गुण पर ध्यान दिये बिना ही अधिक से अधिक उत्पादन करना चाहता है। कभी-कभी श्रमिक अधिक उत्पादन करके अधिक आय प्राप्त करना चाहते हैं। इन दशाओं में मालिक मजदूरी की दर घटाने की चेष्टा करता है, जिसका अन्तिम परिणाम यह होता है कि श्रमिक की कार्यकुशलता घट जाती है। इसके अतिरिक्त सतोषजनक उजरत दर निश्चित करना भी कठिन है। इस प्रकार समय-समय पर मजदूरी की दोनों पद्धतियों की वैज्ञानिक प्रबन्ध के विभिन्न विशेषज्ञों द्वारा आलोचना हुई है।

इस बात के प्रयत्न किये गए हैं कि मजदूरी देने में उपरोक्त दोनों पद्धतियों को मिला दिया जाए। फलस्वरूप "आरोही मजदूरी या बढौती बोनस पद्धतियाँ" (Progressive Wage Systems of Premium Bonus Methods) अपनाई गई हैं। इन्हें कभी-कभी मजदूरी अदायगी की प्रेरणात्मक प्रणाली (Incentive Systems of Wage Payments) भी कहा जाता है। इसकी गणना कई प्रकार से की जाती है। एक पद्धति "हैल्से बढौती प्रणाली" (Halsey Premium System) या "वेयर" (Weir) प्रणाली कहलाती है। इस पद्धति में यह प्रयत्न

किया गया है कि ग्रमानी ग्रौर उजरत दोनो के लाभो का समन्वय कर दिया जाय तथा उनकी हानियो को दूर किया जाए। इसके ग्रनुसार कार्य की एक निश्चित मात्रा मानक उत्पादन (Stardard Output) के रूप मे निर्धारित कर दी जाती है जो एक निश्चित समय मे पूर्ण हो जानी चाहिये। यदि कोई श्रमिक इस ग्रवधि से पहिले कार्य समाप्त कर ले तो उसे समय की बचत के लिए भी मजदूरी का एक भाग प्रतिदिन के सामान्य वेतन के ग्रतिरिक्त मिलता है। उदाहरणत, यदि निश्चित समय १० घण्टे है तथा कार्य ६ घण्टे मे पूरा हो जाता है तब श्रमिक को ६ घण्टे की ग्रमानी ग्रौर मजदूरी का एक भाग, (मान लो ५%) ४ घण्टे बचाने के लिए दिया जाता है। इस प्रकार यदि ग्रमानी १० रु० प्रति घण्टा है तो वढौती (Premium) = $\frac{१}{२}$ (द × बचाया हुग्रा समय) ('द' दर के लिए है) ग्रर्थात् $\frac{१}{२}$(१० × ४) = २० रुपये होगी। ग्रत श्रमिक को कुल मिलाकर ६ × १० + २० (लिया हुग्रा समय × द + वढौती) ग्रर्थात् ८० रुपये मिलेंगे। इस प्रकार इस तरीके मे प्रत्येक वचाए हुये घण्टे के लिए निश्चित दर पर एक बोनस दिया जाता है। इस प्रणाली मे श्रमिक को समयानुसार मजदूरी का भरोसा होता है। साथ-साथ मालिक को ऊँची मजदूरी नही देनी पडती। किन्तु इस व्यवस्था का दोष यह है कि कार्य का स्तर कभी-कभी इतना ऊँचा निश्चित कर दिया जाता है कि उसे प्राप्त करने मे श्रमिक को कठिनाई होती है।

एक ग्रन्य तरीका "रोवन बढौती प्रणाली" (Rowan Premium System) है। इसके ग्रन्तर्गत श्रमिको को समयानुसार कम से कम मजदूरी का ग्राश्वासन दिया जाता है। इसके पश्चात् प्रत्येक कार्य को पूर्ण करने का एक मानक समय निश्चित किया जाता है ग्रौर यदि वह इस निश्चित समय से कम मे कार्य पूर्ण कर ले तो पूर्ण समय एव वचाये गए समय मे समानुपात के ग्रनुसार बोनस मिलता है। उदाहरणत, यदि कार्य १० घण्टे मे करना है ग्रौर कार्य ५ घण्टे मे हो जाता है तो बचा हुग्रा समय ४ घण्टे है ग्रर्थात् निश्चित समय के $\frac{४}{१०}$वें भाग के ग्राधार पर बोनस दिया जायगा। इस प्रकार यदि समय की दर १० रुपये प्रति घण्टा है तब "रोवन प्रणाली" के ग्रनुसार वढौती = $\frac{\text{बचाया हुग्रा समय}}{\text{निश्चित समय}}$ × लिया गया समय × दर ग्रर्थात् $\frac{४}{१०}$ × ६ × १० = २४ रुपये ग्रर्थात श्रमिक को कुल मिलाकर ६ × १० + २४ = ८४ रुपय मिलेंगे। इस प्रकार इस प्रणाली मे हैल्से प्रणाली की ग्रपेक्षा ग्रधिक वोनस प्राप्त होता है। किन्तु रोवन प्रणाली द्वारा ग्रधिक बढौती तभी मिलती है जब बचाया हुग्रा समय निश्चित समय के ५०% से कम हो। ५०% पर रोवन तथा हैल्स प्रणाली दोनो मे समान बोनस प्राप्त होता है ग्रौर यदि बचाया हुग्रा समय निश्चित समय के ५०% से ग्रधिक हो तो रोवन प्रणाली की ग्रपेक्षा हैल्से प्रणाली मे बढौती ग्रधिक प्राप्त होती है।

मजदूरी ग्रदायगी की एक ग्रन्य पद्धति भी है जिसे 'नियत-कार्य-मजदूरी' (Task Wages) कहते है। इसके ग्रन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक को एक नियत कार्य दे

दिया जाता है। इस कार्य को उसे एक निश्चित पद्धति के अनुसार तथा एक विशेषज्ञ के सर्वेक्षण में एक निश्चित समय मे पूरा करना होता है। अनुसन्धान और प्रशिक्षित विशेषज्ञों की सहायता से मानक कार्य निर्धारित कर दिया जाता है अर्थात् निश्चित समय में श्रमिक द्वारा कितना उत्पादन हो सकता है। विशेषज्ञ जितने समय की अनुमति देता है, यदि उसी समय में कार्य पूरा कर लिया जाता है और निर्धारित स्तर के अनुसार ही होता है तो श्रमिक को अपने दैनिक वेतन के अतिरिक्त कुछ अन्य लाभ भी दिया जाता है। यह लाभ साधारणतया अनुमोदित समयानुसार वेतन का २०% से ५०% तक होता है। यदि कार्य अनुमोदित समय में पूरा नहीं होता या निर्धारित गुण के स्तर को नहीं पहुँचता तो श्रमिक को केवल उस दिन का वेतन मिलता है। इस पद्धति मे यह दोष है कि विवेकशून्य मालिक कार्य के स्तर निर्धारित करने के अपने अधिकार से अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं।

फिर एक 'टेलर प्रणाली' (Taylor System) भी है जिसके अन्तर्गत प्रथम श्रेणी के श्रमिको को शीघ्र पदोन्नति दी जाती है, यदि वे अपना कार्य निर्धारित समय से पहिले कर लेते हैं। अत. कभी-कभी तो एक समयानुसार मूल मजदूरी तय कर दी जाती है जिसके साथ-साथ उत्पादन के अनुसार उजरत भी दी जाती है और कभी-कभी अतिरिक्त कार्य के लिये बोनस भी दिया जाता है।

मजदूरी, 'समंजित मजदूरी मान' (Sliding Scale System of Wages) की प्रणाली से भी निश्चित की जा सकती है। इसके अन्तर्गत मजदूरी को उत्पादन वस्तुओं के मूल्य, जीवन निर्वाह के व्यय तथा लाभ के अनुसार घटाया बढ़ाया जा सकता है। मालिक इस प्रणाली को तभी अच्छा समझते है जब उत्पादित वस्तु के मूल्य घटते बढ़ते रहते हैं। परन्तु इस प्रणाली में काफी दोष है। विभिन्न कारणों से मूल्यों के परिवर्तित होने से गणना करना बहुत कठिन हो जाता है तथा श्रमिक से आशा नहीं की जा सकती कि वह बाजार के जोखिम मे भाग लेगा। वर्द्धमान प्रतिफल (Increasing Returns) के नियम के अन्तर्गत मूल्य गिर सकते है किन्तु लाभ बढ़ जाते है। इसके अतिरिक्त मालिक तथा श्रमिक अपने लाभ के हेतु मूल्य में परिवर्तन लाने का प्रयास कर सकते हैं। कुछ मालिक अपने कर्मचारियो का पूर्ण सहयोग तथा सहानुभूति प्राप्त करने के लिये लाभ सहभाजन (Profit Sharing) योजना को अपना लेते है। कुछ स्थानो में मजदूरी कानून द्वारा नियमित होती है और कुछ उद्योगो में न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर दी जाती है। कभी-कभी 'कार्यकुशलता अनुसार मजदूरी'' (Efficiency Wages) की प्रणाली भी लागू की जाती है जिससे श्रमिक की समस्त मजदूरी ही नही वरन् मूल मजदूरी भी कार्यकुशलता के अनुसार परिवर्तित होती रहती है, अर्थात् एक व्यक्ति जितना अधिक उत्पादन करता है उसे उतनी ही कार्यानुसार अधिक मजदूरी मिलती है और जितना कम उत्पादन करता है उतनी ही कम कार्यानुसार मजदूरी मिलती है, अथवा, जैसा टेलर प्रणाली के अन्तर्गत होता है, प्रथम श्रेणी के श्रमिकों को शीघ्र पदोन्नतियाँ दी जाती है

कार्यकुशलतानुसार मजदूरी मालिकों के लिये लाभप्रद है। यद्यपि मालिकों को अधिक उत्पादन के लिये अधिक मूल्य देना पड़ता है तथापि बँधी लागत में बचत हो जाती है। किन्तु इसके अन्तर्गत कभी कभी औसत योग्यता के श्रमिक को अपने निर्वाह के लिये पर्याप्त मजदूरी भी नहीं मिल पाती। अत कार्यकुशलतानुसार मजदूरी प्रणाली न्यूनतम मजदूरी का आश्वासन देने के पश्चात् ही अपनाई जानी चाहिये।

संक्षिप्त रूप से मजदूरी देने की विभिन्न पद्धतियों का उपरोक्त उल्लेख इस लिए किया गया है क्योंकि ये पद्धतियाँ श्रमिको की कुल आय, उनकी कार्यकुशलता, राष्ट्रीय लाभांश तथा आर्थिक कल्याण पर प्रभाव डालती है। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि श्रमिक जो उत्पादन करता है वह अधिक होगा यदि मजदूरी देने की जो पद्धति लागू की जा रही है वह ऐसी है कि अदायगी व्यक्तिगत उत्पादन के अनुसार ही की जाती है। इसलिये प्रो० पीगू के अनुसार 'राष्ट्रीय लाभांश और उसके द्वारा आर्थिक कल्याण मे तभी उन्नति हो सकती है जब तत्काल पारितोषिक का जितना भी सम्भव हो, तत्काल उत्पादन मे समजन कर दिया जाय। सामान्यतया प्रभावात्मक रूप से यह तभी हो सकता है जब कार्यानुसार मजदूरी दी जायं जिस पर सामूहिक सौदाकारी द्वारा नियन्त्रण किया जाता हो।"[7] परन्तु यह भी सम्भव है कि कार्यानुसार मजदूरी अदायगी पद्धति के अन्तर्गत जो श्रमिक अधिक उत्पादन करते हैं वह इतनी अधिक मेहनत के द्वारा प्राप्त होता है कि उसमे श्रमिक समय से पूर्व ही थक जाते हैं तथा उनकी कार्यकुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है और इस प्रकार दीर्घकाल मे उत्पादन कम हो जाता है। जब कार्यानुसार मजदूरी अदायगी पद्धति श्रमिकों मे प्रथम बार लागू की जाती है तो श्रमिक, क्योंकि इसके वे पहले से अभ्यस्त नहीं होते है, कई बार बहुत अधिक कार्य करने का प्रयत्न करते है। यह अधिक दिन नही चल पाता और अन्तत इसके बुरे परिणाम निकलते है। परन्तु प्रो० पीगू का विचार है कि अनुभव से यह पता चलता है कि इस पद्धति से अति क्लान्ति नहीं होती क्योंकि जिन श्रमिकों पर यह पद्धति लागू की जाती है वे अपने आपको कुछ समय मे नयी परिस्थितियों के अनुकूल बना लेते है। इसके अतिरिक्त जब कार्य अधिक तीव्रता से होता है तो इसका अर्थ प्राय यह होता है कि कार्य अधिक सोच-विचार से, सावधानी से और रुचि से किया जा रहा है और इसका अर्थ यह नहीं होता कि अधिक शारीरिक या मानसिक प्रयत्नों द्वारा श्रमिको पर बुरा प्रभाव पड रहा है और उनको अधिक थकान हो रही है। यदि उचित प्रकार से प्रशिक्षण दिया जाता है तो श्रमिक साधारणतया इस बात को खोजने का प्रयत्न करता है कि कार्य का शीघ्रातिशीघ्र और सबसे कम थकान वाला कौनसा तरीका है। कार्यानुसार

---

7 *"The interest of the national dividend and through that, of economic welfare, will be best promoted when immediate reward is adjusted as closely as possible to immediate results, and this can in general, be done most effectively by piece wage scales controlled by collective bargaining"*

—Pigou—*Economics of Welfare*

मजदूरी दिये जाने पर यह पाया गया है कि उत्पादन समयानुसार मजदूरी देने की अपेक्षा अधिक होता है। इसका मुख्य कारण यह होता है कि कार्यानुसार मजदूरी देने पर कार्य करने के अच्छे साधन अपनाये जाते हैं। यह विशेषकर उन उद्योगों मे होता है जहाँ हाथ से कार्य किया जाता है। इसलिए प्रो० पीगू के विचार में उनका उपरलिखित निष्कर्ष ही ठीक है।

मजदूरी के सिद्धान्त (Theories of Wages)

कदाचित भारत मे मजदूरी की समस्याओ का विवेचन करने से पूर्व मजदूरी के सिद्धान्तों का भी उल्लेख करना असंगत नही होगा। हम मजदूरी की समस्याओं को दो भागो में बाँट सकते है अर्थात् सामान्य मजदूरी (General Wages) की समस्या तथा सापेक्ष मजदूरी (Relative Wages) की समस्या। सामान्य मजदूरी की समस्या यह है कि श्रमिकों को राष्ट्रीय लाभांश मे से अपना भाग किस आधार पर मिलता है। सापेक्ष मजदूरी की समस्या यह है कि विभिन्न स्थानो तथा विभिन्न समयो पर एक श्रेणी तथा दूसरी श्रेणी के श्रमिकों में मजदूरी की दर किस आधार पर निर्धारित होती है। सामान्य मजदूरी को निर्धारित करने के विभिन्न तर्कों को "मजदूरी के सिद्धान्त" कहते हैं। हम सक्षेप में ही इन सिद्धान्तो का वर्णन करेंगे क्योकि यह 'अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' का विषय है जिसके अन्तर्गत इसका विस्तार से अध्ययन करना चाहिये।

मजदूरी का जीवन-निर्वाह सिद्धान्त (Subsistence Theory of Wages)

मजदूरी को निश्चित करने के लिए एक सिद्धान्त "मजदूरी का निर्वाह सिद्धान्त" है जिसका आविर्भाव (Origin) फिजियोक्रैटिक (Physiocratic) अर्थात् प्रकृतिवादी विचारधारा के फ्रांसीसी अर्थशास्त्रियों द्वारा हुआ और जो १६ वी शताब्दी मे साधारणत मान्य था। जर्मनी का अर्थशास्त्री 'लासाले' (Lassalle) इसे मजदूरी का 'लौह सिद्धान्त' (Iron Law of Wages) कहता था। कार्ल-मार्क्स ने अपने 'शोषण सिद्धान्त' का आधार भी इसी सिद्धान्त को बनाया था। रिकार्डो का नाम भी इस सिद्धान्त से सम्बन्धित है यद्यपि वह इससे पूर्णतया सहमत नही था। इस सिद्धान्तानुसार मजदूरी, श्रमिक और उसके परिवार के न्यूनतम जीवन-निर्वाह के स्तर अनुसार निर्धारित हो जाती है। यदि मजदूरी इस स्तर से अधिक बढती है तो श्रमिको मे विवाह अधिक होने लगते है और परिवार के सदस्यो की संख्या बढ जाती है। स्वभावत. श्रमिको की पूर्ति बढती है और परिणाम-स्वरूप मजदूरी फिर घटकर जीवन-निर्वाह के स्तर पर आ जाती है। दूसरी ओर यदि मजदूरी इस स्तर से नीचे गिरती है तो विवाह और सन्तान उत्पत्ति कम हो जाते है। कम पोषण से मृत्यु दर तेजी से बढती है और अन्त मे श्रम की पूर्ति घट जाती है और मजदूरी जीवन-निर्वाह के स्तर पर आ जाती है।

यह सिद्धान्त अत्यन्त निराशावादी है और माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त पर आधारित है। कभी-कभी यह भारत जैसे पिछड़े देश पर लागू हो जाता है जहाँ श्रमिक अति निर्धन है और शक्तिशाली पूँजीपतियों से अपना भाग लेने में असमर्थ रहते हैं और उन्हें मजदूरी जीवन-निर्वाह के स्तर पर दी जाती है। किन्तु अन्य उन्नत देशों में श्रमिक अधिक मजदूरी पाते हैं। वहाँ मजदूरी में वृद्धि जीवन-स्तर को ऊँचा करती है किन्तु जन्म दर को नहीं बढ़ाती, अतः यह सिद्धान्त उन देशों पर लागू नहीं होता। यह सिद्धान्त विभिन्न रोजगार की विभिन्न मजदूरी के अन्तर को भी स्पष्ट नहीं करता जबकि जीवन-निर्वाह स्तर केवल कुछ अपवादों को छोड़कर लगभग सभी श्रमिक वर्गों के लिए एक जैसा ही होता है। यह सिद्धान्त श्रमिकों की पूर्ति पर अधिक बल देता है तथा माँग के प्रभाव पर विचार नहीं करता जो मजदूरी के निर्धारण में समान रूप से महत्वपूर्ण है।

मजदूरी का जीवन-स्तर सिद्धान्त
(The Standard of Living Theory of Wages)

१९ वीं शताब्दी के अन्त में कुछ लेखकों ने जीवन-निर्वाह सिद्धान्त का रूपान्तरण करके एक अन्य सिद्धान्त दिया जिसको 'मजदूरी का जीवन स्तर सिद्धान्त" कहा जा सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी का निर्धारण जीवन-निर्वाह के स्तर से न होकर श्रमिकों के उस जीवन-स्तर से होता है जिसके वे अभ्यस्त हो जाते है। इस रूपान्तरित सिद्धान्त में कुछ सत्यता भी है क्योंकि श्रमिक अपने जीवन-स्तर से नीचे की मजदूरी स्वीकार नहीं करते। इसके अतिरिक्त ऊँचा जीवन स्तर उनकी कार्यकुशलता को भी बढ़ा देता है, अतः मजदूरी भी बढ़ जाती है। अनेक देशों में श्रमिक अपने संगठन के द्वारा अपनी पूर्ति पर रोक रखते हैं जिससे मजदूरी उनके जीवन-स्तर से नीचे न गिर जाय। तथापि जीवन स्तर का मजदूरी पर केवल अप्रत्यक्ष प्रभाव होता है क्योंकि केवल जीवन स्तर बढ़ाने से ही अधिक मजदूरी नहीं मिल सकती जब तक सीमान्त उत्पादकता भी न बढ़े। यह सिद्धान्त मजदूरी पर माँग के प्रभाव का भी विचार नहीं करता।

मजदूरी का शेषाधिकारी सिद्धान्त
(The Residual Claimant Theory of Wages)

अमरीकन अर्थशास्त्र वॉकर (Walker) ने एक अन्य सिद्धान्त "मजदूरी का शेषाधिकारी सिद्धान्त" के नाम से दिया है। इस सिद्धान्तानुसार उत्पादन के उपादानों (Factors of Production) को लगान, ब्याज तथा लाभ का भुगतान करने के पश्चात् जो कुछ बच जाता है, वही मजदूरी के रूप में मिलता है। वॉकर के अनुसार लगान, ब्याज एवं लाभ निश्चित नियमों से निर्धारित होते हैं। परन्तु क्योंकि मजदूरी को निर्धारित करने का कोई विशेष नियम नहीं है। अतः श्रमिकों को लगान, ब्याज तथा लाभ के भुगतान के पश्चात् जो बच जाता है वही मिलता है। अतः यदि अधिक कार्यकुशलता से राष्ट्रीय आय बढ़ जाए तभी मजदूरी भी बढ़ सकती है।

इस सिद्धान्त में कुछ स्पष्ट दोष हैं। यह इस बात को स्पष्ट नहीं करता कि श्रमिक संघों द्वारा मजदूरी कैसे बढ़ा ली जाती है। यह सिद्धान्त मजदूरी पर पूर्ति के प्रभाव का भी विचार नहीं करता। इसके अतिरिक्त मजदूरी उत्पादन से पूर्व ही तय कर दी जाती है। अतः बचे भाग का अधिकारी श्रमिक नहीं वरन् उद्यमकर्ता होता है। और फिर यदि, जैसा वाँकर कहते हैं, लगान, ब्याज एवं लाभ की निश्चित नियमों द्वारा व्याख्या की जा सकती है तो कोई कारण नहीं है कि मजदूरी निर्धारण की भी व्याख्या उसी प्रकार न हो सके।

मजदूरी-निधि सिद्धान्त (Wages Fund Theory)

मजदूरी का एक अन्य सिद्धान्त "मजदूरी निधि सिद्धान्त" कहलाता है। इस सिद्धान्त का उल्लेख एडम स्मिथ ने भी किया था, किन्तु वह जे० एस० मिल के नाम से सम्बन्धित है। मिल (Mill) के अनुसार मजदूरी जनसंख्या और पूँजी के अनुपात पर निर्भर करती है। यहाँ पर जनसंख्या से अर्थ श्रमिकों की उस संख्या से है जो मजदूरी पर कार्य करने को प्रस्तुत है और पूँजी से तात्पर्य केवल चल पूँजी से है और इसमें भी समस्त पूँजी से नहीं वरन् उस पूँजी से है जो श्रम के सीधे क्रय के लिये व्यय की जाती है। अतः इस सिद्धान्तानुसार मजदूरी दो बातों पर निर्भर करती है। प्रथम, मजदूरी निधि अथवा चल पूँजी पर जो श्रम के क्रय के हेतु अलग रख दी जाती है। द्वितीय, रोजगार ढूँढ़ने वाले श्रमिकों की संख्या पर। अतः मजदूरी तब तक नहीं बढ़ सकती जब तक या तो मजदूरी निधि न बढ़े अथवा श्रमिकों की संख्या में कमी न हो। क्योंकि यह सिद्धान्त मजदूरी निधि को निश्चित मानता है, अतः मजदूरी में वृद्धि केवल श्रमिकों की संख्या में कमी होने पर हो सकती है। इसलिये यदि श्रमिक अपनी दशा में उन्नति करना चाहते हैं तो उन्हें अपनी संख्या पर रोक लगानी होगी। इस प्रकार यदि श्रमिक का कोई वर्ग अधिक मजदूरी प्राप्त करने में सफल हो जाता है तो उसका परिणाम यही होगा कि अन्य श्रमिकों को कम मजदूरी मिलेगी।

इस सिद्धान्त की आलोचना थौर्नटन, जैवन्स और अन्य अर्थशास्त्रियों ने की है। जे० एस० मिल ने स्वयं दूसरे संस्करण में इस सिद्धान्त में संशोधन किया था। इस सिद्धान्त की सबसे अधिक आलोचना इस बात पर की गई है कि मजदूरी निधि केवल अल्पकालीन अवधि को छोड़कर निश्चित और पूर्व निर्धारित नहीं होती। निधि का विचार ही अवैज्ञानिक है। राष्ट्रीय लाभांश निधि न होकर एक बहाव है, तथा मजदूरी की अदायगी किसी ऐसी निधि में से नहीं होती जो मजदूरी भुगतान के लिये अलग रखी हो, वरन् राष्ट्रीय लाभांश से की जाती है। यह सिद्धान्त विभिन्न व्यवसायों में विभिन्न मजदूरी के अन्तर को भी स्पष्ट नहीं करता। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त श्रमिकों की एकरूपता मान लेता है, जो वास्तव में नहीं होती है, वास्तविक जीवन में मजदूरी श्रमिक संघों की कार्यवाही के फलस्वरूप भी बढ़ जाती है और यह कहना असत्य है कि यदि एक उद्योग के

श्रमिको की मजदूरी बढ़ा दी जाय तो अन्य उद्योग के श्रमिको को हानि होगी। इस सिद्धान्त का विवेचन अनेक आधुनिक अर्थशास्त्रियो, जैसे—टौसिग, कीन्स आदि ने भी किया है यद्यपि यह वास्तविक जीवन मे मजदूरी निर्धारित करने वाला सिद्धान्त नही माना जा सकता।

मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (Marginal Productivity Theory of Wages)

मजदूरी का अन्य महत्वपूर्ण सिद्धान्त "मजदूरी की सीमान्त उत्पादकता क सिद्धान्त" है। इस सिद्धान्तानुसार मालिक के लिए श्रम की एक इकाई की जं सीमान्त उत्पादकता होती है उसी के अनुसार मजदूरी निश्चित हो जाती है। एव स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था मे मजदूरी ऐसे श्रमिक के निबल (Net) उत्पादन बे बराबर होती है जिस श्रमिक का रोजगार सीमान्त कहा जाता है। निबर उत्पादन से अर्थ कुल उत्पादन के *मूल्य मे उस अतिरिक्त निबल योग से है जो किस भी एक उपादान को अतिरिक्त रूप से लगाने मे होती है, अर्थात् यह सीमान्त उत्पा* दकता पर निर्भर करती है। अन्य शब्दो मे, यदि हम यह मान ले कि वस्तुओ क पूर्ति तथा उत्पादित वस्तुओ का मूल्य स्थिर है तो श्रमिक की इकाई जितनी अधिक सख्या मे एक उद्योग मे लगायी जायेगी उतनी ही उन इकाइयो द्वारा घटती दर उत्पादन बढेगा। मालिक उस समय तक श्रमिक की इकाई बढाता जाएगा जब तक श्रमिक द्वारा निबल उत्पादन मजदूरी की दर से अधिक है। किन्तु एक स्थिति ऐसे भी आएगी जब श्रमिक की इकाई को रोजगार मे लगाए जाने से जो उत्पादन मे वृद्धि होगी वह श्रमिक को दी गई मजदूरी के बराबर होगी। श्रमिक की इस इका को सीमान्त *श्रमिक कहा जायगा तथा प्रत्येक अन्य श्रमिक की* मजदूरी की दर इस श्रमिक को दी गई मजदूरी की दर पर निर्भर होगी। सरल शब्दो मे मालिक उस समय तक श्रमिको को रोजगार देता रहेगा जब तक श्रमिको को दी गई मजदूरी *उत्पादित वस्तुओ के मूल्य से कम रहती है। यदि मजदूरी सीमान्त निबल उत्पादन* से अधिक है तो मालिक श्रमिको के रोजगार मे कमी कर देगा और यदि मजदूरी सीमान्त निबल उत्पादन से कम है तो वह अधिक श्रमिको को रोजगार देकर अपने लाभ को *बढाएगा। अन्य शब्दो मे मालिक श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता से* अधिक मजदूरी उसको नही देगा। यह भी नही समझना चाहिए कि सीमान्त श्रमिक न्यूनतम कार्यकुशलता का श्रमिक होता है वरन् यह भी साधारण कार्यकुशलता का *श्रमिक होता है। वह इस अर्थ मे सीमान्त है कि वर्तमान मूल्य तथा मजदूरी को* देखते हुए उसको रोजगार देने के पश्चात् मालिक के लिए श्रम की पूर्ति पूर्ण हो जाती है।

यह सिद्धान्त भी कई आधारो पर आलोचित हुआ है। श्रमिको की पूर्ति पर जिन बातो का प्रभाव पड़ता है यह उन पर विचार नही करता। मजदूरी केवल एक उपादान के लिए *दिया गया मूल्य ही* नही है वरन् वह *एक श्रमिक की आय भी*

तथा इसका प्रभाव श्रमिक की कार्यकुशलता पर पड़ता है। मजदूरी केवल श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता के बराबर ही नही होनी चाहिए बल्कि उसके जीवन-स्तर को बनाए रखने के लिए यथेष्ट होनी चाहिए। यदि मजदूरी श्रमिकों के जीवन-स्तर की दृष्टि से अधिक नही है तो या तो जीवन-स्तर गिर जाएगा अथवा उनकी कार्यकुशलता घट जाएगी या जन्म-दर मे कमी हो जायगी। ऐसी परिस्थिति मे श्रम की पूर्ति कम होगी और मजदूरी बढ़ जाएगी। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की परिस्थितियाँ मान लेता है यद्यपि वास्तविक जीवन मे कई बार श्रमिक परस्पर सगठित होकर श्रमिक संघों के द्वारा, श्रम की पूर्ति पर नियन्त्रण कर अपनी मजदूरी बढ़वा लेते है। वास्तविक जीवन मे मजदूरी को निश्चित करने मे मानवीय धारणायें भी कार्य करती है। इसके अतिरिक्त सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि वह अनुपात जिसमें उत्पादन के विभिन्न उपादान रोजगार पर लगाए जाते हैं स्वतन्त्रतापूर्वक बदले जा सकते हैं। अत यदि फर्म में अचल पूँजी लगी हो तो यह सिद्धान्त लागू नही होगा यद्यपि लम्बे समय मे यह बात सम्भव नही है। यह सिद्धान्त यह भी मान लेता है कि किसी एक उपादान मे परिवर्तन किया जा सकता है जबकि अन्य उपादान एक से रहेंगे परन्तु वास्तविक जीवन में ऐसा नही होता क्योंकि श्रमिक की एक इकाई में परिवर्तन करने के साथ ही अन्य उपादानों को भी घटाना-बढ़ाना आवश्यक हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त श्रम की इकाइयों (श्रमिकों) की कार्यकुशलता समान मान लेता है क्योंकि यदि श्रमिक एक जैसे नही होते तो श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता भी नही नापी जा सकती। परन्तु एक अर्थ मे एक ही व्यापार मे लगे विभिन्न कार्यकुशलता के श्रमिक एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी होते हैं। फिर यह पूर्व धारणा सर्वथा सत्य नही है कि प्रत्येक औद्योगिक इकाई अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए कार्य करती है।

इस प्रकार इस सीमान्त उत्पादकता के सिद्धान्त के विरुद्ध विभिन्न आपत्तियाँ की गई है किन्तु उनमें से अधिकतर केवल काल्पनिक है। इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचना यह है कि यह सिद्धान्त मजदूरी निर्धारित करने मे श्रमिकों की पूर्ति तथा उनके जीवन-स्तर का विचार नही करता तथा पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति को मान लेता है, जो सदैव नही पाई जाती।

टौसिग का मजदूरी सिद्धान्त (Taussig's Theory of Wages)

प्रो० टौसिग ने सीमान्त उत्पादकता के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए अपना सिद्धान्त भी दिया है कि मजदूरी श्रमिक उत्पादन की सीमान्त "मितीकाटा" (Marginal Discounted Product of Labour) को बताती है। उनका विचार है कि श्रमिक को सीमान्त उत्पादकता की पूर्ण राशि नही मिल सकती क्योंकि उत्पादन में समय लगता है और श्रमिक का अन्तिम पूर्ण उत्पादन तुरन्त ज्ञात नही किया जा सकता। किन्तु इस समय मे श्रमिकों को निर्वाह के लिए सहायता मिलनी चाहिए। यह सहायता पूँजीपति मालिक द्वारा दी जाती है। मालिक श्रमिक की

आशातीत (Expected) सीमान्त उत्पादकता के अनुसार पूर्ण राशि नहीं देता। वह जो अग्रिम राशि देने मे जोखिम उठाता है उसकी हानि पूर्ति के लिए वह अन्तिम उत्पत्ति में से कुछ निश्चित राशि की कटौती कर लेता है। टौसिग के कथनानुसार यह कटौती ब्याज की चालू दर पर होती है। इस प्रकार जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है मजदूरी श्रमिक के कुल उत्पादन में से मितीकाटा (Discounts) की राशि घटाकर होती है। अतः यह सिद्धान्त इस बात पर आधारित है कि श्रमिक तथा पूँजी में सहयोग के कारण सदा संयुक्त उत्पादन होता है तथा इन दोनों के योगदान को पृथक् पृथक् करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि श्रमिक को संयुक्त उत्पादन के बनने से पूर्व ही अदायगी करनी पड़ती है। उनको यह भुगतान चालू ब्याज की दर पर कुछ राशि काटकर किया जाता है। अतः मजदूरी श्रमिक के उत्पादन के सीमान्त मितीकाटा का प्रतिरूप है।

टौसिग का यह सिद्धान्त बहुत उलझा हुआ है और वास्तविक जीवन की समस्या से दूर अव्यावहारिक तथा अस्पष्ट है। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त श्रम की पूर्ति का ध्यान भी नहीं रखता। यह श्रम की पूर्ति को निश्चित मान लेता है और तब सीमान्त उत्पादन पर विचार करता है। अतः यह सिद्धान्त भी मजदूरी का शेषाधिकारी सिद्धान्त (Residual Claimant Theory) जैसा ही है क्योंकि यह यही बताता है कि मजदूरी समस्त उत्पादन में से उत्पादन के अन्य उपादानों के लिए भुगतान को घटाकर बची हुई शेष राशि है। इस प्रकार इस सिद्धान्त में भी शेषाधिकारी सिद्धान्त के सभी दोष पाए जाते हैं।

मजदूरी का माँग तथा पूर्ति सिद्धान्त
(Demand and Supply Theory of Wages)

जैसा कि डा० मार्शल ने बताया है, वास्तविक जीवन में मजदूरी विभिन्न देशों की विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार श्रमिक की माँग तथा पूर्ति दोनों के ही द्वारा निर्धारित होती है। माँग पक्ष में मालिक श्रमिक को सीमान्त उत्पादकता के अनुसार मजदूरी देता है। सीमान्त उत्पादकता श्रमिक की उस इकाई की उत्पादकता को कहते हैं जिस इकाई को मालिक द्वारा विशेष मजदूरी दर पर तथा उत्पादन के तत्कालीन मूल्य पर रोजगार में लगाना लाभदायक होता है। यह स्वतन्त्र प्रतियोगिता के अन्तर्गत निर्धारित मजदूरी की उच्चतम सीमा है। पूर्ति पक्ष में श्रमिक एक विशेष जीवन-स्तर पर अपने तथा अपने परिवार के जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त राशि से कम मजदूरी स्वीकार नहीं करते। यह विशेष जीवन स्तर श्रमिकों की संगठन शक्ति एवं मालिकों से सौदाकारी शक्ति और देश में श्रमिकों की संख्या पर निर्भर करता है। यदि पूर्ति पर कोई रोक न हो तथा श्रमिक असंगठित हों तो मजदूरी निर्वाह स्तर तक जो न्यूनतम सीमा है गिर जाती है। जहाँ भी श्रमिक संगठित हैं अथवा उनकी पूर्ति सीमित है वहाँ जीवन स्तर उच्चतम स्तर पर निश्चित किया जा सकता है। अतः मालिक सीमान्त उत्पादकता से

अधिक मजदूरी न तो दे सकते है, और न ही देते है। दूसरी ओर, श्रमिक अपने वर्तमान जीवन-स्तर को बनाये रखने के हेतु आवश्यक मजदूरी से कभी कम स्वीकार नही करते। इन दोनो सीमाओ के मध्य श्रमिक की माँग तथा पूर्ति एव प्रत्येक दल की तुलनात्मक शक्ति के अनुसार मजदूरी तय होती है। यदि श्रमिक की अधिक माँग है या श्रमिक पूर्ण रूप से सगठित है तो मजदूरी बढ जाती है और यदि उनकी पूर्ति अधिक है और श्रमिक सगठित नही है तो मजदूरी गिर जाती है। पहले अध्याय मे जैसा कि बताया जा चुका है, श्रम की विशेषतायें श्रमिको की शक्ति पर बहुत प्रभाव डालती है और मालिको की अपेक्षा उनकी शक्ति कम हो जाती है। श्रम की माग तथा पूर्ति की दशाओ पर भी इन विशेषताओं का समुचित प्रभाव पडता है।

आधुनिक दृष्टिकोण

मजदूरी के सिद्धान्तो का उपरोक्त सक्षिप्त वर्णन देने का तात्पर्य इस बात की ओर ध्यान आकर्षित कराना है कि अभी तक मजदूरी का कोई पूर्ण और स्पष्ट सिद्धान्त नही बन पाया है। इस कारण किसी भी देश में मजदूरी नीति निर्धारण मे अनेक कठिनाइयां आती हैं। समाजवादी विचारधारा आने से तथा कल्याण राज्य के विचार के पनपने से अब मजदूरी निर्धारण पर पूर्व के अर्थशास्त्रियो के विचारो से भिन्न एक बिल्कुल नए दृष्टिकोण से विचार किया जा रहा है। श्रमिको को अब उत्पादन का एक उपादान मात्र नही समझा जाता और इस बात को नही माना जाता कि उनका मूल्य भी माँग और पूर्ति की शक्तियो द्वारा निर्धारित किया जा सकता है। रोजगार की सविदा के स्थान पर अब साझेदारी की सविदा का महत्व बढता जा रहा है। श्रमिक की उत्पादकता, श्रमिको की सौदाकारी की क्षमता, सरकार के विधान तथा सरकार का हस्तक्षेप, आर्थिक विकास की तीव्रता, राष्ट्रीय आय, जीवन-निर्वाह लागत, उद्योग की भुगतान क्षमता, सामाजिक न्याय की आवश्यकतायें, मालिको का उपभोग और निवेश, तथा उनके एकाधिकार की सीमा, आदि आदि अब सभी देशो मे मजदूरी नीति-निर्धारण पर प्रभाव डाल रही हैं। भारत जैसे देश मे, जहाँ आर्थिक विकास हो रहा है एक ठोस और उचित मजदूरी नीति के निर्धारण की एक गम्भीर समस्या है। अब औद्योगिक अधिकरणो और मजदूरी बोर्डो द्वारा उन सिद्धान्तों को मजदूरी निर्धारण मे अपनाया जाता है, जो उचित मजदूरी समिति ने अपनी रिपोर्ट मे दी है। न्यूनतम मजदूरी निर्धारण के लिए भी कुछ आदर्श सिद्धान्त (Norms) बनाये गये है। इन सबका उल्लेख आगामी पृष्ठो मे किया गया है।

भारत मे मजदूरी समस्या का महत्व

मजदूरी की समस्या इतनी महत्वपूर्ण है कि समस्त देशो के विवेकशील व्यक्तियो का ध्यान सदैव इसकी ओर आकर्षित हुआ है। यह समस्या भारत मे वर्तमान समय मे अधिक जटिल तथा गूढ हो गई है और इसका शीघ्र समाधान

होना चाहिए। इस सत्य को भी कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि मजदूरी वह धुरी है जिस पर अधिकतम श्रम समस्याएं घूमती हैं। औद्योगिक संघर्षों का मजदूरी ही मुख्य कारण है। यह श्रमिक की आय का मुख्य स्रोत है। उसका तथा उसके परिवार का जीवन निर्वाह उसकी प्राप्त मजदूरी पर निर्भर करता है। अन्य स्रोतों से कोई आय यदि होती भी है तो अत्यंत सीमित होती है। अतः मजदूरी श्रमिक के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। श्रमिक का कल्याण तथा कार्यकुशलता उसकी आय की राशि पर निर्भर करती है। अधिक आय का तात्पर्य यह होता है कि श्रमिक अपनी इच्छाओं की अधिक पूर्ति कर सकता है। अगर खेतीहर श्रमिक को भी ले लिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि जनसंख्या का अधिकांश भाग श्रमिकों का है। अतः समाज का कल्याण श्रमिकों के कल्याण से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। यदि बेरोजगारी और अर्द्ध रोजगारी देश में आर्थिक विपत्ति की ओर संकेत करती है तो मजदूरी और आय इस बात की सूचक है कि जो जनसंख्या काम में लगी हुई है उसकी आर्थिक समृद्धि कितनी है। यही मजदूरी की समस्या का सबसे अधिक महत्व है।

यह भी उल्लेखनीय है कि उस समय मजदूरी की समस्या इतनी गम्भीर नहीं थी जब अधिकांश श्रमिक ग्रामों से कृषि ऋतु के अतिरिक्त खाली समय में अपनी आय बढ़ाने औद्योगिक क्षेत्रों में आ जाते थे और कम मजदूरी स्वीकार कर लेते थे। अधिकांश श्रमिक अपने परिवार को ग्राम में ही छोड़ आते थे जहाँ इनका निर्वाह कृषि धंधे से होता था। किन्तु वर्तमान समय में भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ने से कृषि धंधा इतना लाभप्रद नहीं रहा है और औद्योगिक श्रमिक जो अब तक स्थायी नहीं थे अधिकाधिक स्थायी होते जा रहे हैं। संयुक्त परिवार व्यवस्था भी द्रुत गति से टूटती जा रही है तथा अब श्रमिक अधिकतर अपनी ही आय पर निर्भर हैं। अतः मजदूरी की समस्या और अधिक महत्वपूर्ण हो गई है।

इसके अतिरिक्त श्रमिक साधारणतया अज्ञानी तथा अशिक्षित होते हैं और अधिकांश अपने अधिकार तथा कर्त्तव्य समझने में असमर्थ होते हैं। श्रम की विशेषताओं के कारण मालिकों की अपेक्षा श्रमिकों की सौदाकारी शक्ति कम होती है। श्रमिकों का संगठन अभी भी बहुत दुर्बल है। इसका परिणाम यह है कि मालिकों द्वारा श्रमिकों का सरलता से शोषण होता है तथा उनको अत्यन्त कम मजदूरी दी जाती है। अतः मानवी दृष्टिकोण से भी मजदूरी की समस्या का शीघ्र समाधान आवश्यक है। सरकार के लिये भी मजदूरी समस्या महत्वपूर्ण है क्योंकि यह देश के समस्त वर्गों के लिए आय का मापदण्ड है। मालिकों के दृष्टिकोण से भी मजदूरी महत्वपूर्ण है क्योंकि मजदूरी उत्पादन मूल्य का एक मुख्य अवयव (Component) है। मिल मालिक कच्चे माल मशीनों तथा ईंधन की लागत में और यातायात-व्यय में इच्छानुसार कमी नहीं कर सकता। इनका निर्धारण मुख्यतः ऐसी शक्तियों द्वारा होता है जो उसके नियंत्रण से बाहर होती है। मिल मालिक यह अनुभव करता

2 *Wa es from the p vot round wh ch most labour problems revol e*

है कि मजदूरी का बिल ही उसके नियन्त्रण में होता है अतः जब कभी भी मित-व्ययता की आवश्यकता होती है तभी मजदूरी की दरों मे ही हेर-फेर करने का आश्रय लिया जाता है। अतः मजदूरी की समस्या मालिकों तथा श्रमिकों के बीच संघर्ष का मुख्य कारण बन जाती है।

मजदूरी समस्या का महत्व इस तथ्य मे भी है कि अधिकतर कारखानों में अगणित मजदूरी की दरें एवं अवैज्ञानिक अन्तर पाये जाते है तथा विभिन्न मजदूरी की दरो मे अन्तर निर्धारित करने के हेतु भी किसी योजना का अभाव है। प्रत्येक कारखाने ने स्वयं कार्य का विभाजन कर लिया है और विभिन्न श्रेणियाँ बनाली हैं। इन्होंने इन श्रेणियों की शब्दावली का भी स्वयं निर्धारण किया है। विभिन्न उद्योगो मे विभिन्न विनिर्माण प्रक्रियायें (Manufacturing Processes) है तथा विभिन्न प्रकार की मशीनें प्रयोग मे लाई जाती है। इन बातो ने मजदूरी के 'समानीकरण" (Standardisation) की समस्या को अधिक जटिल कर दिया है। ये अन्तर एक उद्योग से दूसरे उद्योग में, यहां तक कि एक कारखाने से दूसरे कारखाने में भी श्रमिक प्रवासिता का कारण हो जाते है, और कभी-कभी ऐसे अन्तर औद्योगिक अशान्ति और झगडो का कारण बन जाते हैं क्योंकि कम मजदूरी देने वाले उद्योगों के श्रमिक अधिक मजदूरी माँगते है जो अन्य उद्योगों मे पाई जाती है। वर्तमान समय मे श्रमिक की न्यूनतम मजदूरी निश्चित करना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि मालिकों में श्रमिक का शोषण करने की प्रवृत्ति अधिक है। अतः उचित मजदूरी नीति निर्धारित करने मे अनेक समस्यायें आ जाती है। उदाहरणतया, जीवन निर्वाह खर्च, परिवार का विस्तार (आकार), उद्योग की भुगतान क्षमता, श्रम की उत्पादकता, आदि-आदि। समस्या का समाधान आर्थिक ही नही वरन् सामाजिक दृष्टिकोण से भी होना चाहिये जिससे समाज मे आय और धन की असमानता मे कमी हो। अतः मजदूरी की समस्या महत्वपूर्ण तथा गूढ समस्याओ मे से एक है और इसका शीघ्र ही समाधान होना चाहिये।

भारत मे मजदूरी की दरो का अध्ययन

भारत में अब तक मजदूरी तथा निर्वाह खर्च के तुलनात्मक आँकडो के अभाव मे मजदूरी का अध्ययन करने मे कठिनाई होती थी। रॉयल श्रम आयोग ने मजदूरी के विषय मे सूचना एकत्रित करने के लिये कानून बनाने तथा श्रम सम्बन्धी आँकडो मे सुधार करने की सिफारिश की थी। परन्तु खान तथा चाय के बागान के अतिरिक्त जहाँ खानो के प्रमुख निरीक्षक एवं प्रवासी श्रमिक नियन्त्रक (Controller of Emigrant Labour) की वार्षिक रिपोर्टो से उपयोगी सूचना मिलती रही, अन्य कही कई वर्षो तक सारे देश के लिये मजदूरी के आँकड़े एकत्रित करने का समान रूप से यथेष्ट प्रबन्ध नही था। अब पिछले कुछ वर्षो में मजदूरी से सम्बन्धित आँकड़े एकत्रित करने के विषय मे कुछ उपयोगी कार्य हुआ है। १६४५ तक आँकडो का एकत्रित करना अधिकतर प्रादेशिक क्षेत्रो तक सीमित था और

१८७ रुपये, उत्तर प्रदेश मे १२६ रुपये, एवं असम मे ६३ रुपये थी। रायल श्रम आयोग ने श्रमिक क्षति पूर्ति अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले मामलो के आधार पर मजदूरी के आँकड़े एकत्रित किए थे। इसके अनुसार भी विभिन्न प्रान्तों में कम मजदूरी दी जाती थी। आयोग ने यह भी बताया कि जहां तक अकुशल श्रमिकों का सम्बन्ध है वे औसत संख्या के परिवार का पालन तब तक नहीं कर सकते जब तक परिवार मे एक से अधिक मजदूरी कमाने वाले न हो।

इस प्रकार युद्ध से पहिले मजदूरी बहुत कम थी और यद्यपि युद्ध काल में तथा उसके पश्चात् मजदूरी स्तर में अधिकतर वृद्धि हुई है किन्तु मूल्य वृद्धि को विचार में रखते हुए यह वृद्धि अधिक प्रतीत नहीं होती। श्री वी० वी० गिरी ने भी अपनी अंग्रेजी की पुस्तक "भारतीय उद्योग की श्रम समस्यायें" में इंगित किया है। "यद्यपि औद्योगिक अधिकरणों एवं विवाचकों के प्रयत्नों के फलस्वरूप तथा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के लागू होने के पश्चात् बहुत से उद्योगों में गत वर्षों में मजदूरों की दर में वृद्धि हुई है तथापि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आज भी श्रमिकों की अधिक संख्या केवल निर्वाह मात्र मजदूरी प्राप्त कर रही है और कई स्थानों पर असल मजदूरी या तो वैसी ही है जैसी युद्ध से पूर्व थी या कहीं-कहीं उससे भी कम है। असल मजदूरी के सामान्य स्तर को ऊंचा करने के हेतु जहां कहीं मजदूरी अब भी कम है और श्रमिक तथा उसके परिवार का निर्वाह नहीं हो पाता वहाँ मजदूरी बढ़ाने का संगठित रूप से प्रयत्न किया जाना चाहिए।"

फैक्टरी उद्योगों में मजदूरी एवं आय

श्रमिक की समस्त आय मूल मजदूरी, महगाई भत्ता तथा बोनस को मिला कर होती है। महगाई भत्ता समान नहीं मिलता क्योंकि इसका सम्बन्ध विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों के निर्वाह लागत सूचकांकों से है। इसी प्रकार बोनस समान नहीं है क्योंकि यह प्रत्येक उद्योग द्वारा घोषित लाभ पर निर्भर करता है। मूल मजदूरी की दरें विभिन्न विचारकों तथा औद्योगिक अधिकरणों के पंचाट (Awards) द्वारा निश्चित की गई है तथा न्यूनतम मजदूरी की दर १९४८ के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारित की गई है। त्रिदलीय मजदूरी बोर्डों की स्थापना भी कुछ उद्योगों के लिए की गई है जिससे मालिक व मजदूर स्वयं मिलकर मजदूरी निर्धारित कर सकें। कई उद्योगों के सम्बन्ध में इन मजदूरी बोर्डों की रिपोर्ट प्रकाशित भी हो चुकी हैं और उनकी सिफारिशों को लागू भी किया जा चुका है। विभिन्न केन्द्रों में उद्योगों की कई इकाइयों में वार्षिक लाभ बोनस देने की पद्धति भी प्रचलित है। यह बोनस उद्योग के लाभ और श्रमिकों की मूल मजदूरी के आधार पर अनुमानित किया जाता है, किन्तु इसको देने की कुछ शर्तें हैं, उदाहरणतया श्रमिक की उपस्थिति, उसका गैर-कानूनी हड़तालों में भाग न लेना आदि-आदि। बोनस की समस्या का उल्लेख आगामी पृष्ठों में किया गया है।

सन् १९६४ के बीच, ब्योरा देने वाले सस्थानो मे काम पर लगे ऐसे कर्मचारियो की, जो २०० रुपये से कम वेतन पाते थे, औसत दैनिक सख्या १४,८०,००० थी जबकि १९६३ मे यह सख्या २४,१६,००० और १९६२ मे २३,६०,००० थी। सन् १९६४ मे कुल भुगतान की गई मजदूरी की मात्रा लगभग २१८ करोड रुपये (अस्थायी) थी जबकि १९६३ मे यह मात्रा ३७८ करोड और १९६२ मे ३४५ करोड रुपये थी। निम्न तालिकाओ मे रेलवे निर्माणशालाओ मे लगे कर्मचारियो को छोडकर फैक्टरी कर्मचारियो की कुल आय दी गई है तथा राज्यो द्वारा २०० रुपये तथा ४०० रुपये प्रतिमाह से कम पाने वाले कर्मचारियो की औसत वार्षिक आय दिखाई गई है (अ=अस्थायी और अनु०=अनुमानित)।

२०० रुपये प्रतिमाह से कम पाने वाले फैक्टरी कर्मचारियो की आय

राज्य	कुल मजदूरी बिल (हजार रुपये मे)			औसत वार्षिक आय प्रति माह (रुपये)		
	१९६२	१९६३	१९६४ (अ)	१९६२	१९६३	१९६४ (अ)
१	२	३	४	५	६	७
आन्ध्र प्रदेश	६५,२४९	७४,९४३	—	१,०७८	१,२६१	१,२४९ (अनु)
असम	११,६०७	१३,१०४	१२ ८३३	१,०५५	१,२४६	१,१४५
बिहार	१,७२,७६०	१,८२,३३६	१,८८,८१०	१,३८५	१,४३२	१,३५८
गुजरात	४,४६,७९०	४,३५,४५२	४,८३,१९०	१,६६६	१,६१३	१,७५६
केरल	५३,७०७	५५,३५०	५०,२९५	१,१२८	१,१३०	१,१४८
मध्य प्रदेश	५६,५०८	६३,१०८	९४,५३५	१,७९४	१,६८४	१,८३०
मद्रास	३,५०,५९६	३,४१,२५०	—	१,४९६	१,४६८	१,४६८ (अनु)
महाराष्ट्र	९,६७,४२०	९,९९,७०६	—	१,६९९	१,७३२	१,७३२ (अनु)
मैसूर	७८,४८७	१,४४,९८५	१,५३,५८५	१,२१०	१,४३६	१,५१८
उडीसा	३८,३८४	१८,३९०	—	१,३११	१,२९२	१,२९२ (अनु)
पजाब	१,०५,१९३	१,२०,४१२	१,४६,०२७	१,१८०	१,१९२	१,३१७
राजस्थान	३० ६१२	४५,८६१	—	१,३१०	१,२८६	१,२८६ (अनु)
उत्तर प्रदेश	२,५१,५६८	२,६१,०६८	२,९२,२७२	१,२७७	१,२७१	१,३९४
पश्चिमी बगाल	७,२४,५५३	७,२३,११७	७,५७,५६७	१,३२५	१,३५०	१,४१९
अडमान एव निकोबार द्वीप	२,४२६	२,५८६	२,८१३	१,२४४	१,२६२	१,२१३
दिल्ली	९९,८५२	९६,९४२	—	१,६७१	१,५७७	१,५७७ (अनु)
त्रिपुरा	९२	२०९	११५	१,५१३	१,२०३	१,६२२
हिमाचल प्रदेश	९५६	१,२४०	१,६७३	१,२९२	१,१९७	१,३५५
सभी राज्य	३४,५६,७१९	३५,७९,०६१	२१,८३,७६५	१,४६५	१,४७६	१,५२८

४०० रुपये प्रतिमाह से कम पाने वाले फैक्टरी कर्मचारियों की आय

राज्य	कुल आय (हजार रु० में)		प्रति श्रमिक औसत वार्षिक आय (रु० में)		प्रति श्रमिक औसत दैनिक आय (रु० में)	
	१९६३	१९६४ (अनु०)	१९६३	१९६४ (अनु०)	१९६३	१९६४ (अनु०)
१	२	३	४	५	६	७
आन्ध्र प्रदेश	१,४५,१२२	१,४१,६३१	१,३३०	—	२ ७७	३ २३
असम	६५,३१८	४२,४२६	१,६००	१,६३१	३ ६८	३·६२
बिहार	३,०१,३०४	३,१८,६०४	२,८३२	१.७१८	५ ६२	५ २८
गुजरात	५,१७,३०६	५,९३,६८०	१,७१४	१,८८८	५.३४	५·९२
केरल	८४,९५४	५७,४७५	१,२२८	१,२५६	३ ०८	३·१५
मध्य प्रदेश	९०,९०१	१,३४,७१२	१,८९६	२,०५८	५·६६	६·४५
मद्रास	४,२४,२६०	४,४९,७५८	१,५८३	—	४ ७८	५·०७
महाराष्ट्र	१३,२२,८३३	१४,५२,५७१	१,९२०	—	६ १२	६·५२
मैसूर	१,८१,४७४	२,१०,२३७	१,५६७	१,६६८	४ ८३	५·३१
उडीसा	२२,३१९	—	१,०७७	—	३ ८१	—
पंजाब	१,४५,१६३	१,८०,९१५	१,२६६	१,४१८	४·०६	४ ५९
राजस्थान	५१,१०४	४२,११४	१,३३४	—	४·०९	४·४१
उत्तर प्रदेश	३,८२,८९३	४,३३,०४८	१,४४७	१,५५३	४ ६३	४ ९९
प० बंगाल	१०,०१,१०१	११,२२,९५१	१,५७८	१,६५६	५ ०५	५ ४५
अण्डमान व निकोबार द्वीप	२,८९९	३,२३७	१,३४६	१,३२५	४·५४	४·५४
दिल्ली	१,२४,३८६	९५ ९९३	१,७३६	—	५ ६१	५·८३
त्रिपुरा	५९४	४११	१,२०३	१,६६२	१ ९५	२·२१
हिमाचल प्रदेश	१,६९५	१,९१०	१,२४५	१,४३६	२ ८३	४·४६

निम्न तालिका विभिन्न केन्द्रों में सूती कपडा मिलों में न्यूनतम मूल मजदूरी प्रतिमाह तथा औसत महगाई भत्ते के विषय में बताती है --

केन्द्र या राज्य	न्यूनतम मूल मजदूरी (रुपयों में)	महगाई भत्ता (रुपयों में)	
		दिसम्बर १९६६	औसत १९६६
बम्बई	४०·००	१५९ ७५	१४८·६२
अहमदाबाद	३८·००	१५२·३०	१३८·५०
शोलापुर	३४·००	१२४·२८	११३·८२
बडौदा	३६·००	१३७·०६	१२४·९२
इन्दौर	३८·००	१०८·९४	१०१·३५
नागपुर	३२·००	११०·२३	१०२·८१
मद्रास	४०·००	१३४·९६	१२५·४९
कानपुर	३८·००	११४·३६	१०६·७६
पश्चिमी बङ्गाल	३६·१७	७६·७३	७०·०३

मजदूरी तथा आय के आंकड़े मजदूरी अदायगी अधिनियम के अन्तर्गत प्रस्तुत किये गये ब्यौरो से प्राप्त है। सूती कपड़ा उद्योगो मे २०० रुपये प्रतिमाह से कम कमाने वाले कर्मचारियो की प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय १९६४ मे १८२१ रुपय १९६३ मे १७४० रुपए १९६२ मे १५७१ रुपये, १९६१ मे १६७६ रुपये, १९६० मे १५५६ रुपये, १९५९ मे १४७७ रुपये, १९५८ मे १४१५ रुपय, १९५७ मे १३६४ रुपये और १९५६ मे १३६० रुपय थी तथा ४०० रुपय प्रतिमाह से कम कमाने वाल कर्मचारियो की प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय १९६२ मे १८४४ रुपए और १९६३ मे १८५४ रुपये थी। सूती कपड़ा उद्योग के लिये मार्च १९५७ मे जो मजदूरी बोर्ड बना था और उसकी रिपोर्ट दिसम्बर १९५९ मे प्रकाशित हुई। इस बोर्ड ने यह सिफारिश की थी कि ८ रुपये प्रतिमाह प्रति श्रमिक औसत दर के हिसाब से उन सभी श्रमिको के वेतन मे वृद्धि कर देनी चाहिये जो श्रमिक वर्ग (I) की मिलो मे कार्य करते हैं [ऐसी वर्ग (I) की मिल निम्नलिखित स्थानो की मिल है बम्बई नगर तथा द्वीप, अहमदाबाद, बडौदा, बिलीमोरा, नवसारी नादिया, सूरत, फगवाड़ा, हिसार, देहली, मोदीनगर, कलकत्ता नगर, मद्रास राज्य तथा बगलौर]। यह ८ रुपये की वृद्धि पहली जनवरी १९६० से दिये जाने की सिफारिश की गई थी तथा पहली जनवरी १९६२ से २ रुपय प्रति श्रमिक और समान रूप से मजदूरी मे वृद्धि करन की सिफारिश है। अन्य स्थानो क (वर्ग II की मिलें) श्रमिको के लिये इसी प्रकार ६ रुपये प्रति माह की वेतन मे वृद्धि पहली जनवरी १९६० से और २ रुपये प्रतिमाह की वृद्धि पहली जनवरी १९६२ स दी जाने की सिफारिश थी। महगाई भत्ता समस्त केन्द्रो मे निर्वाह खर्च सूचकाक से सम्बद्ध करन की सिफारिश थी। सरकार ने इन सिफारिशो को मान लिया है और अधिकतर सूती कपड़ा मिलो मे यह लागू भी हो चुकी है। सूती कपड़ा मिलो के लिये दूसरा मजदूरी बार्ड नियुक्त कर दिया गया है।

जूट उद्योग मे, २०० प्रतिमाह से कम कमाने वाले कर्मचारियो की प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय सन् १९६४ मे १३४६ रुपये, १९६३ मे १,२२७ रुपये, १९६२ मे १,१५३ रुपये, १९६१ मे १,०८३ रुपये, १९६० मे ११३० रुपये, १९५९ मे १०५७ रुपये, १९५८ मे १०४५ रुपये, १९५७ मे १०३७ रुपये और १९५६ मे १०३४ रुपय थी तथा ४०० रुपये प्रति माह से कम कमाने वाले कर्मचारियो की उक्त आय १९६२ मे ११७० रुपये और १९६३ मे १२४९ रुपये थी। जूट उद्योग के लिए जो केन्द्रीय मजदूरी बोर्ड अगस्त १९६० मे स्थापित किया गया था उसने अपनी अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत करने तक यह सिफारिश की है कि जूट मिलो के समस्त श्रमिको को अन्तरिम (Interim) सहायता के रूप मे पहिली अक्तूबर १९६० से ३१ दिसम्बर १९६० तक की अवधि मे २ ८५ रु० प्रति मास प्रति श्रमिक की दर से वृद्धि की जाए तथा पहिली जनवरी १९६१ से ३ ४२ रुपये की दर से सहायता दी जाय। कठियार की जूट मिलो के लिए इस सहायता की दर पहिली सितम्बर १९६१ से ३ ४२ रुपये होनी चाहिये। सरकार ने जनवरी १९६१ म इन

सिफारिशों को स्वीकार कर लिया था और लगभग सभी जूट मिलों ने इनको लागू कर दिया है। बोर्ड ने अब अपनी अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है और इसकी सिफारिशें भी न्यूनाधिक रूप में सभी लागू कर दी गई हैं। बोर्ड ने न्यूनतम मजदूरी में ८ रुपये ३३ पैसे की सिफारिश की है और सभी मिलों के लिये ४० रुपये १७ पैसे की एक प्रामाणिक मूल मजदूरी का सुझाव दिया है।

ऊनी वस्त्र उद्योग में, सभी राज्यों के अन्तर्गत २०० रुपये प्रतिमाह से कम कमाने वाले कर्मचारियों की प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय सन् १९६४ में १६०८ रुपये, १९६३ में १४६५ रुपये, १९६२ में १४१० रुपये, १९६१ में १३५८ रुपये, १९६० में १३४९ रुपये, १९५९ में ११७९ रुपये, १९५८ में १०७७ रुपये, १९५७ में ९८६ रुपये और १९५६ में १०२५ रुपये थी। रेशमी वस्त्र उद्योग में, प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय १९६४ में १४४२ रुपये, १९६३ में १३७५ रुपये, १९६२ में १३२१ रुपये, १९६१ में १२६६ रुपये, १९६० में १३०१ रुपये, १९५९ में ११४६ रुपये, १९५८ में १३११ रुपये, १९५७ में १२१६ रुपये और १९५६ में १२१८ रुपये थी।

लोहा व इस्पात उद्योग में, २०० रुपये मासिक से कम कमाने वाले कर्मचारियों की प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय १९६३ में २००८ रुपये, १९६२ में २१५४ रुपये, १९६१ में २२४८ रुपये, १९६० में १९२७ रुपये, १९५९ में २११३ रुपये, १९५८ में २१११'६ रुपये, १९५७ में १९२९ रुपये और १९५६ में १५१८ रुपये थी। नवम्बर १९५७ में जमशेदपुर की टाटा लोहा व इस्पात में मूल मजदूरी में वृद्धि की गई (१ रुपये से १ रुपये ४ आ० उन श्रमिकों के लिए जिनकी मजदूरी ३ रुपये प्रतिदिन से कम है तथा ६–८–० रुपये मासिक आधार पर मजदूरी पाने वाले उन श्रमिकों के लिये जिनकी मजदूरी ७५ रुपये प्रतिमाह से कम है)। मैसूर के लोहा व इस्पात कारखाने में वयस्क पुरुष श्रमिक की न्यूनतम मजदूरी १ रुपये प्रतिदिन निश्चित की गई है तथा पाँच वर्ष तक बोनस भुगतान के लिये समझौता किया गया है। टाटा लोहा व इस्पात कम्पनी (TISCO) के श्रमिकों को कम्पनी की लाभ सहभाजन योजना के अन्तर्गत कम्पनी के निबल वार्षिक लाभ में से २७½% भाग मिलता है। लोहा व इस्पात उद्योग के लिए सरकार ने जनवरी १९६२ में मजदूरी बोर्ड की स्थापना की थी। सरकार ने अब इस बोर्ड की सिफारिशों को लगभग स्वीकार कर लिया है तथा इनको लागू करने के लिए विभिन्न कारखानों से कहा गया है। इन सिफारिशों के अनुसार सभी इस्पात कारखानों में उत्पादन विभाग में कम से कम १२५ रुपये प्रति माह के वेतन की सिफारिश की गयी है (मैसूर के लोहा व इस्पात कारखाने में ११५ रुपये प्रति माह), सेवा और बाहरी कार्यों के कर्मचारियों के लिए न्यूनतम वेतन १२० रुपये प्रतिमाह निर्धारित किया गया है (मैसूर के कारखाने के लिये ११० रुपये प्रतिमाह), महिला श्रमिकों के लिये, यदि उनका कार्य पुरुषों से भिन्न होता है, तो न्यूनतम मजदूरी ११५ रु० निर्धारित की गई है (मैसूर में १०५ रुपये प्रति माह उत्पादन कार्यों के लिये और १०४ रुपये

सेवा कार्यों के लिये)। महगाई भत्ता कम वेतन पाने वाले अकुशल श्रमिकों के लिये इस प्रकार है—टाटा लोहा और इस्पात कम्पनी ६४ रुपये, भारतीय लोहा और इस्पात कम्पनी ६४ रुपये हिन्दुस्तान इस्पात लिमिटेड ८५ रुपये, मैसूर लोहा और इस्पात लिमिटेड ५० रुपये।

छपाई, प्रकाशन तथा सम्बन्धित उद्योगो मे, २०० रु० मासिक से कम कमाने वाले कर्मचारियो की प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय सन् १९६४ मे १३४७ रुपये, १९६३ मे १३४२ रुपये, १९६२ मे १३६५ रुपये, १९६१ मे १३१८ रुपये, १९६० मे १२२६ रुपये, १९५९ मे १-१६ रुपये, १९५८ मे १२१० रुपये, १९५७ मे १२१८ रुपये और १९५६ मे ११८६ रुपये थी। असम के छापेखानो मे न्यूनतम मूल मजदूरी ३५ रुपये प्रति माह निश्चित की गई। सन् १९५६-५७ मे, विभिन्न राज्यो मे बोनस भी दिया गया था। कागज की मिलो मे, प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय सन् १९६४ मे १४८० रुपए, १९६३ मे १४४३ रुपये, १९६२ मे ६४२ रुपये, १९६१ मे १३२५ रुपये, १९६० मे १३७६ रुपये, १९५९ मे १४१० रुपये, १९५८ मे १३३१ रुपये, १९५७ म १२१३ रुपये और १९५६ मे १०८१ रुपये थी।

चीनी उद्योग मे, सन् १९५६ मे सभी राज्यो मे प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय ६३२ रुपये थी। यह आय पजाब मे १५२२ रुपये, पश्चिमी बगाल मे १३३० रुपये, मद्रास म ६७७ रुपय उत्तर प्रदेश मे ६२४ रुपये और बिहार मे ६१८ रुपये थी। सन् १९५६ मे, चीनी उद्योग मे मूल मजदूरी तथा महगाई भत्ता (कोष्ठ मे) इस प्रकार था—बिहार ५८ रुपये ७५ पैसे (१०७ रु०), उत्तर प्रदेश ५८ रुपये (१०५ रुपये), पश्चिमी बगाल ५५ रुपये ८० पैसे (१३३ रुपये) और आन्ध्र प्रदेश २६ रुपये से २८ रुपये तक (१११ रुपये)। चीनी उद्योग के लिए केन्द्रीय मजदूरी बोर्ड ने जो दिसम्बर १९५७ मे स्थापित हुआ था, १ जनवरी १९५६ से १४० चीनी कारखानो मे निम्नलिखित अन्तरिम सहायता देने की सिफारिश की थी। उन श्रमिको के लिये, जिनकी कुल मिलाकर मजदूरी १०० रुपये प्रति माह तक है, ५% परन्तु न्यूनतम ३ रु०, १०० रुपये से २०० रुपये तक ४% परन्तु न्यूनतम ५ रुपये, २०० रुपये से ३०० रुपये तक ३% परन्तु न्यूनतम ८ रुपये, ३०० रुपये से ५०० रुपये तक २% परन्तु न्यूनतम ९ रुपये। दिसम्बर १९६० मे चीनी मजदूर बोर्ड ने अपनी अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसकी सिफारिशो को स्वीकार करने की घोषणा सरकार ने फरवरी १९६१ मे की। बोर्ड ने यह सिफारिश की है कि चीनी मिलो मे मजदूरी निर्धारण के हेतु देश को चार भागो मे बाँट दिया जाये। अर्थात् उत्तर, मध्य, महाराष्ट्र तथा दक्षिण। बोर्ड के अनुसार कुल न्यूनतम मजदूरी तो आवश्यक रूप से प्रदेश प्रदेश मे भिन्न होगी परन्तु ६०–१–६५ रुपये की मूल न्यूनतम मजदूरी सभी स्थानो पर होनी चाहिए और इसके अतिरिक्त जो कुछ मिले वह प्रत्येक प्रदेश के लिये महगाई भत्ता माना जाना चाहिए। इन सिफारिशो को पहली नवम्बर १९६० से लागू करने की सिफारिश की गई है। विभिन्न वर्गों के कर्मचारियो के लिये पद क्रमानुसार

वेतन और श्रमिकों के लिये महंगाई भत्ता और अवकाश प्राप्त धन देने की भी सिफारिश है। उत्तर प्रदेश में इन सिफारिशों को लागू करने के लिए सरकार द्वारा आदेश दिये गए है और भारतीय चीनी मिल परिषद् ने भी अपनी सदस्य मिलों को इन सिफारिशों को लागू करने के लिये कहा है। उ० प्र० में ७० चीनी मिलों के लगभग ८० हजार श्रमिकों के मासिक वेतन में १८ रुपये की दर से वृद्धि हो जाएगी। बोर्ड की सिफारिशें न्यूनाधिक रूप में पूरी लागू कर दी गई है। चीनी उद्योग के लिये द्वितीय मजदूरी बोर्ड भी नियुक्त कर दिया गया है जिसने अपनी अन्तरिम रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है। इसकी सिफारिशें लागू की जा रही है।

सीमेन्ट उद्योग में, प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय १९६४ में १५९६ रुपये, १९६३ मे १६०२ रुपये, १९६२ में १८७४ रुपये, १९६१ मे १६२६ रुपये, १९६० मे १४६२ रुपये, १९५९ मे १४७७ रुपये, १९५८ मे १४१० रुपये, १९५७ में १३६३ रुपये और १९५६ मे १२०६ रुपये थी। सीमन्ट उद्योग के लिए मार्च १९६० में सरकार ने सीमेंट मजदूरी बोर्ड की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया। यह सिफारिश इस प्रकार है— सौराष्ट्र व गुजरात को छोडकर सभी क्षेत्रो में न्यूनतम मजदूरी ९४ रुपये प्रति माह निर्धारित की जाय। इनमें से ३ रुपये मालिकों द्वारा प्रदान की जाने वाली सुविधाओं के मूल्य के रूप में कट जायेंगे, अर्थात् श्रमिकों को कुल नकद मजदूरी ९१ रुपये मिलेगी। ९१ रुपये मे से मूल मजदूरी ५२ रुपये, महंगाई भत्ता ३१.५० रुपये तथा मकान किराया भत्ता ७.५० रुपये होगा। गुजरात व सौराष्ट्र के श्रमिको को न्यूनतम मजदूरी १०१ रुपये प्रति माह मिलेगी, अर्थात् इन्हें महगाई भत्ते में ७ रुपये अधिक मिलेंगे। सिफारिशें न्यूनाधिक रूप मे पूरी ही लागू कर दी गई है। सीमेन्ट उद्योग के लिए द्वितीय मजदूरी बोर्ड भी नियुक्त किया गया है जिसने अपनी अन्तरिम रिपोर्ट दी है।

सन् १९६३ मे, कुछ अन्य उद्योगों में प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय इस प्रकार थी :—चमडा कमाने तथा साफ करने का उद्योग—१०४८ रुपये, कृत्रिम खाद —१५८५ रुपये, भारी रसायन—१६३७ रुपये, दियासलाई—१२९८ रुपये, मेटिल कन्टेनर्स तथा इस्पात ट्रक—१२८८ रुपये, वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित मशीनें व पुर्जे—१५६६ रुपये, जलयान निर्माण तथा मरम्मत—१६४८ रुपये।

खानो मे मजदूरी तथा आय

कोयला खानों मे मजदूरी के आँकडे खान के मुख्य निरीक्षक द्वारा एकत्रित और प्रस्तुत किए जाते है। पश्चिमी बगाल तथा बिहार में सुलह बोर्ड की सिफारिशो के परिणामस्वरूप तथा मध्य प्रदेश, उडीसा एव असम मे वास्तविक आँकडे खोज समिति की सिफारिशों के परिणामस्वरूप तथा अभ्रक की खानो मे औद्योगिक अधिकरण की सिफारिशो के परिणामस्वरूप पिछले कुछ वर्षो में खानों मे मजदूरी ढाचे मे आमूल परिवर्तन हुए हैं।

सभी कोयला खानो मे, विभिन्न वर्षो मे श्रमिकों की औसत साप्ताहिक आय

प्रति श्रमिक इस प्रकार थी १९६४ में २९ रुपये ७१ पैसे, १९६३ में २६ रुपये ६३ पैसे, १९६२ में २४ रुपये ३६ पैसे, १९६१ में २३ रुपये ५६ पैसे, १९६० में २३ रुपये ५६ पैसे, १९५९ में २२ रुपए २ पैसे, १९५८ में २१ रुपये ३४ पैसे, १९५७ में १८ रुपये ७४ पैसे और १९५६ में १७ रुपये ६५ पैसे। कोयला खानों में दिसम्बर १९६४ में विभिन्न राज्यों में श्रमिकों की औसत साप्ताहिक आय प्रति श्रमिक इस प्रकार थी आन्ध्र प्रदेश- रुपये २८ ७७, असम रुपये २७ ८५, बिहार (झरिया)—रुपए २६ ५४, बिहार (रानीगंज)—रुपए २५ ६९, महाराष्ट्र—रुपए २६ ४७, मध्य प्रदेश—रुपये २५·९२, उडीसा—रुपए २४ ५९, राजस्थान—रुपए २० ५१, पश्चिमी बंगाल (रानीगंज)—रुपए २७ ०१, भारतीय संघ की खानें—रुपए २६ ७१ पैसे। खानों में कार्य करने वाले श्रमिकों तथा कोयला ढोने वाले श्रमिकों की साप्ताहिक आय (अखिल भारतीय) इस प्रकार थी धरती के नीचे—रुपये २६ ७९, खुले में कार्य करने वालों की—रुपये २४ ५८ पैसे। धरती के ऊपर कार्य करने वाले श्रमिकों की साप्ताहिक आय इस प्रकार थी पुरुष—रुपए २५ १०, स्त्रियां—रुपए २२ ९२ पैसे। खुले में कार्य करने वाले श्रमिकों की साप्ताहिक मजदूरी इस प्रकार थी पुरुष—रुपए २२ ९८ पैसे और स्त्रियाँ—रुपए २१ ५६ पैसे। सन् १९६५ में, कोयला खानों के अन्दर काम करने वाले श्रमिकों तथा कोयला ढोने वाले श्रमिकों की औसत साप्ताहिक आय इस प्रकार थी झरिया—मूल मजदूरी रुपये ९ २१ पैसे महंगाई भत्ता रुपए १२ ९६ पैसे, अन्य नकद अदायगी रुपए ७ १९ पैसे योग—रुपए २९ ३६ पैसे, रानीगंज—मूल मजदूरी रुपये ८ ९१ पैसे, महंगाई भत्ता—रु० १३ ८१ पैसे, अन्य नकद अदायगी—रु० ७ ४५ पैसे, योग—रुपये ३० १७ पैसे। सन १९६२ में कोयला खान उद्योग के लिए जो मजदूरी बोर्ड बना था उसने पहले श्रमिकों को अन्तरिम सहायता देने की सिफारिश की और अब अपनी अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत की है जो कि सरकार के विचाराधीन है।

कोयला खान प्रॉविडेन्ट फंड एवं बोनस योजना अधिनियम, १९४८ के अन्तर्गत जो कोयला खान बोनस योजना बनाई गई थी उसके अनुसार आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, मध्य प्रदेश, उडीसा, राजस्थान तथा पश्चिमी बंगाल की खानों में उन समस्त श्रमिकों को जिनकी मूल मजदूरी ३०० प्रति माह से कम है अपनी मूल मजदूरी का ⅓ भाग वार्षिक बोनस के रूप में लेने का अधिकार है, बशर्ते वह उपस्थिति से सम्बन्धित कुछ शर्तों को भी पूरा करते हों। असम में दैनिक मजदूरी पाने वाले श्रमिकों को साप्ताहिक तथा त्रैमासिक आधार पर और मासिक मजदूरी पाने वाले श्रमिकों को केवल त्रैमासिक आधार पर बोनस दिया जाता है।

कोयला खानों को छोडकर, अन्य खानों में सभी मजदूरों की औसत दैनिक मजदूरी १९६३ में इस प्रकार थी **अभ्रक**—आन्ध्र प्रदेश रुपये २ ३८ पैसे, बिहार रुपए २ १६ पैसे, राजस्थान रुपए २ ०१ पैसे। **मैंगनीज**—महाराष्ट्र रुपए ३ ७३ पैसे, मध्य प्रदेश रुपए २ ६२ पैसे, मैसूर रुपए २ ०५ पैसे, उडीसा रुपये २·१४ पैसे।

कच्चा लोहा—बिहार रुपए २·७५ पैसे ; उड़ीसा रुपए २·३५ पैसे। **तांबा**—बिहार रुपए ४·५६ पैसे। **सोना**—मैसूर रुपये ६·२१ पैसे। **चूना**—बिहार रुपए ४·२१ पैसे; मध्य प्रदेश रुपए २·४६ पैसे; उड़ीसा रुपए २·७६ पैसे। **चीनी मिट्टी**—बिहार रुपए १·३० पैसे। **पत्थर**—बिहार रुपए २·३८ पैसे। अनेक अभ्रक की खानों में लाभ बोनस, उपस्थिति बोनस और सेवा बोनस भी दिया जाता है। कोलार की सोने की खानों में दैनिक व मासिक मजदूरी पाने वाले कर्मचारियों के लिए मजदूरी के विभिन्न क्रम निर्धारित किये गये हैं। दिसम्बर १९६४ में, बिहार की अभ्रक की खानों में औसत दैनिक आय निम्न प्रकार थी : धरती के अन्दर काम करने वाले श्रमिक रुपए २·५१ पैसे; खुले में काम करने वाले श्रमिक २·३४ पैसे; सतह पर काम करने वाले (अकुशल) श्रमिक रुपए २·३२ पैसे। मैंगनीज की खानों (मध्य प्रदेश) में आय इस प्रकार थी : धरती के नीचे काम करने वाले श्रमिक रुपए ३·०५ पैसे, खुले में काम करने वाले श्रमिक रुपए २·३५ पैसे; सतह पर काम करने वाले (अकुशल) श्रमिक रुपए २·०३ पैसे।

१९६३ में चूना तथा डोलोमाइट खान उद्योगों के लिए और कच्चा लोहा खान उद्योग के लिए पृथक्-पृथक् एक-एक मजदूरी बोर्ड की स्थापना की गई। इन बोर्डों ने पहले तो अन्तरिम रिपोर्ट प्रस्तुत की और दोनों ही बोर्डों ने अब अपनी-अपनी अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत की है जो कि सरकार के विचाराधीन है। दोनों ही बोर्डों द्वारा मजदूरी में अन्तरिम वृद्धि की जो सिफारिशें की गई वे इस प्रकार थीं—५२ रुपये प्रतिमास अथवा २ रुपये प्रति दिन पाने वाले श्रमिकों को ६५ रुपये प्रति मास अथवा रुपए २·५० प्रतिदिन दिया जाय, ५२ रुपये से अधिक परन्तु ६५ रुपये तक प्रतिमास अथवा २ रुपये से २·५० रुपए तक प्रतिदिन पाने वाले श्रमिकों को ७२·८० पैसे प्रतिमास अथवा रुपये २·८० पैसे प्रतिदिन दिया जाय; ६५ रुपये से अधिक परन्तु १०० रुपये से कम प्रति मास या रुपए २·५० से रुपये ३·८५ तक प्रतिदिन पाने वाले श्रमिकों को रुपये ७·८० प्रतिमास या ३० पैसे प्रतिदिन की अन्तरिम वृद्धि दी जाए; १०० रुपये या इससे अधिक किन्तु १५० रुपए से कम प्रतिमास अथवा रुपये ३·८५ पैसे से रुपये ५·७७ पैसे तक प्रतिदिन पाने वाले श्रमिकों को रुपए १०·४० पैसे प्रतिमास अथवा ·४० पैसे प्रतिदिन की अन्तरिम वृद्धि दी जाए; और १५० रुपए या इससे अधिक प्रतिमास अथवा रुपये ५·७७ या इससे अधिक प्रतिदिन पाने वाले श्रमिकों को १३ रुपए प्रतिमास या ·५० पैसे प्रति दिन की अन्तरिम वृद्धि दी जाए।

बागान में मजदूरी तथा आय

बागान में त्रिदलीय श्रम सम्मेलन की सिफारिशों के परिणामस्वरूप अप्रैल १९४८ से मजदूरी में वृद्धि हो गई है। असम के चाय बागान में १९६१–६२ में मजदूरी की औसत दरें पुरुषों के लिए ४६·७० रुपये प्रति मास, स्त्रियों के लिए ४६·५३ रुपये प्रति मास तथा बालकों के लिए २८·५४ रुपए प्रति मास थी। दक्षिण भारत कछार घाटी के चाय बागान में मजदूरी की दर पुरुषों, स्त्रियों तथा बालकों

के लिए क्रमश ४६ ५० रुपए, ३२ ७४ रुपये तथा २० ११ रुपए प्रति माह है। दक्षिणी भारत के चाय बागान मे, दैनिक मजदूरी की दरें पुरुषो, स्त्रियो तथा बालको के लिए क्रमश १ ५५ रुपए, १ ६६ रुपये और ० ७८ पैसे है। कुर्ग के कहवा बागान मे मजदूरी की दर पुरुषो के लिए १ ५० रुपए, स्त्रियो के लिए १ १२ रुपए तथा बालको के लिए ० ७५ रुपए प्रतिदिन है। मैसूर कॉफी बागान मे पुरुष, स्त्री तथा बालको के लिये वर्तमान दर क्रमश १ ४० रुपये, १ ०६ रुपये तथा ० ७० रुपए प्रतिदिन है। रबर के बागान मे दैनिक मजदूरी की अधिकतम दरें पुरुषो, स्त्रियो तथा बालको के लिए क्रमश १ ३५ रुपए, १ ०५ रुपये व ० ७० रुपये है। नीलगिरी के चाय बागान मे मजदूरी की दर पुरुष तथा स्त्रियो के लिए क्रमश १ २७ रुपये तथा ० ८६ रुपये है और कॉफी बागान मे मजदूरी की दर पुरुषो के लिए १ २४ रुपये एव स्त्रियो के लिए ० ८९ रुपये प्रतिदिन है। असम तथा पश्चिमी बगाल के चाय बागान मे अनाज कम कीमत की दरो पर प्रदान किया जाता है। सन् १९६४ मे, विभिन्न राज्यो मे बागान मे प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय इस प्रकार थी बिहार २१७ रुपये मद्रास ५३० रुपए, पजाब ४१२ रुपये और त्रिपुरा ५५५ रुपए। पश्चिमी बगाल म, सन १९६३ मे चाय बागान मे प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय इस प्रकार थी दार्जिलिग—पहाडी क्षेत्र ६३४ रुपये और तराई क्षेत्र ६५३ रुपए, जलपाईगुडी दूअर्स ७४६ रुपए, सम्मिलित ७०५ रुपए।

८ जनवरी १९५६ को एक समझौते के अनुसार (जो नई देहली मे हुआ) असम, पश्चिमी बगाल तथा त्रिपुरा के चाय बागान के श्रमिको को १९५३–५६ के वर्षों के लिए बोनस दिया गया। १९५७ के पश्चात् बोनस देने के लिये बागान की औद्योगिक समिति ने एक बोनस उप-समिति स्थापित की। इस समिति ने यह सिफारिश की कि जब कोई अन्य समझौते नही है तब देहली समझौते के अनुसार ही १९५७ और १९५८ के वर्षों के लिए बोनस देना चाहिए। परन्तु असम तथा पश्चिमी बगाल मे १९५७ और १९५८ के वर्षो के लिए बोनस के भुगतान के लिए पृथक् समझौते हो गए। आगामी वर्षो के लिए असम, पश्चिमी बगाल और त्रिपुरा मे बोनस देने के लिए मालिको तथा श्रमिको मे पारस्परिक समझौते हो गए। सरकार ने बगाल के लिये मजदूरी बोर्डो की स्थापना भी की जो इस प्रकार है— चाय बागान के लिए दिसम्बर १९६० मे तथा काफी और रबर बागान के लिए जुलाई १९६१ मे। इन बोर्डों ने अन्तरिम सहायता देने के लिये सिफारिश की जिनको लागू करने के लिए सरकार ने मालिको से कहा। अब बोर्डों की अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है और सिफारिशें लागू कर दी गई है।

परिवहन एव सवादवहन मे श्रमिको की मजदूरी तथा आय

रेलवे मे लगभग ८० प्रतिशत कर्मचारी चतुर्थ वर्ग के है तथा शेष कर्मचारियो को मातहत तथा गजटेड स्टाफ के वर्ग म रखा गया है। चतुर्थ व [illegible] कर्मचारियों के लिये चार वेतन दरें निर्धारित थी— ३०-½-३५ रु०, ३५ १ ४० रु०

३५-१-५० रुपये तथा ४०-१-५०-२-६० रुपये। अकुशल कर्मचारियों को निम्नतम वेतन दर में रखा गया है तथा अर्द्ध कुशल तथा कुशल कर्मचारियों को अन्य वेतन दर दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त दो अन्य वेतन दरें थीं—३५-१-५० कु० रो० २-६० रुपये वेतन दर व्यापार सम्बन्धी कर्मचारी तथा अर्द्ध-कुशल कारीगरों को दिया जाता था। दूसरी वेतन दर ५५-३-८५-४-९३ कु० रो० ४-१२५-५-१३० रुपये की है जो कुशल कारीगरों को कार्य की प्रकृति के अनुसार दी जाती थी। केन्द्रीय वेतन आयोग ने अखिल भारतीय निर्वाह लागत सूचनांक से सम्बन्धित एक महगाई भत्ते की सिफारिश की थी जिसमें ५० रुपये पाने वाले व्यक्तियों को २५ रुपये भत्ता देने की व्यवस्था थी। किन्तु भारत सरकार ने २५० रुपये तक पाने वाले व्यक्तियों के लिये १० रुपये अतिरिक्त भत्ते की स्वीकृति दी। इस समय महंगाई भत्ता ५० रुपये प्रति माह तक वेतन पाने वालों के लिये ४० रुपये था और ७५१ रुपये से १,००० रुपये पाने वालों के लिये उनके वेतनानुसार १०० रुपये तक था। ऐसे व्यक्तियों के लिये, जो अनाज दुकान की सुविधायें चाहते थे महगाई भत्ते की विभिन्न दरें निश्चित की गई थीं। यह दर वेतन का १७½% तथा ५ रुपये प्रति माह थी। परन्तु कुछ न्यूनतम राशि अवश्य मिलनी चाहिये। रेल में साथ चलने वाले कर्मचारियों को मजदूरी तथा महंगाई भत्ते के अतिरिक्त अन्य भत्ता भी दिया जाता था। एक विभागीय समिति की सिफारिशों के पश्चात् ऐसे कर्मचारियों के वेतन की मूल दरों में सरकार द्वारा पुनरावृत्ति कर दी गई थी। "ए" वर्ग के चालकों (ड्राइवरों) को अब मूल वेतन २६०-१५-३५० रुपये तथा ४ रुपये प्रति सौ मील रेल के साथ जाने का भत्ता मिलता था तथा "ए" वर्गों के गार्डों को १५०-७-१८५-८-२२५ रुपये वेतन एवं २ रुपये प्रति सौ मील रेल के साथ जाने का भत्ता मिलता था। "बी" तथा "सी" वर्ग के ड्राइवरों को क्रमशः १६०-१०-३०० रुपये एवं ८०-५-१३० कु० रो० ८-१७० रुपये वेतन मिलता था। "बी" तथा "सी" वर्ग के गार्डों को क्रमशः १००-५-१२५-६-१५५ कु० रो० ६-१८५ रुपये तथा ६०-४-१२० कु० रो० -५-१५० रुपये वेतन दिया जाता था। १९६३-६४ मे सरकारी रेलवे कर्मचारियों की वार्षिक औसत आय प्रति श्रमिक इस प्रकार थी—वर्ग III के कर्मचारी २७६१·७१ रुपये; वर्ग IV के कर्मचारी १३०८·४३ रुपये। फरवरी, १९५७ में 'नान गजेटेड' वर्ग के रेलवे कर्मचारियों के (जिनमें स्टेशन मास्टर, असिस्टेन्ट स्टेशन मास्टर, ड्राइवर, गार्ड, फायरमैन तथा क्लर्क भी सम्मिलित हैं), वेतन दोहराए गये और अब उनको पहले से अधिक अच्छे वेतन तथा पदन्नोति के अवसर प्रदान किये गये हैं। इस योजना को पहली अप्रैल १९५६ से लागू किया गया है और इसके अन्तर्गत एक लाख सत्तर हजार कर्मचारियों को लाभ पहुँचा है। वेतन आयोग की सिफारिशों के अनुसार पहली नवम्बर १९५९ से रेलवे कर्मचारियों के वेतन में फिर संशोधन हुआ है। लगभग पाच लाख कर्मचारियों को, जिनको सबसे कम वेतन मिलता है, अब कुल औसत आय ७८ से बढ़कर ८९ रुपये प्रति माह हो

गई है। अन्य तीसरी तथा चौथी श्रेणी के कर्मचारियों को भी कई प्रकार के लाभ पहुँचे हैं।

डाक तथा तार विभाग में मजदूरी की दरें केन्द्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों द्वारा निर्धारित की गई है तथा वर्तमान समय में डाकिये ७५–१–८५ रुपये प्रति माह पा रहे हैं। ये तृतीय वर्गीय कर्मचारियों के अन्तर्गत आते हैं। इनको ३३ रुपये महगाई भत्ता भी मिलता है। पार्सल बनाने वाले कुली तथा चपरासी ७०–१–८५ रुपये वेतन और ३३ रुपये महगाई भत्ता पाते है।

बन्दरगाहो आदि मे मजदूरी तथा आय

कलकत्ता के अतिरिक्त सभी बडे बन्दरगाहों के अकुशल श्रमिकों की मूल मजदूरी १ १५ रुपये प्रतिदिन या ३० रुपये प्रति माह है। कलकत्ता मे यह मजदूरी २६ रुपये प्रति माह है। श्रमिक विभिन्न श्रेणियों मे विभाजित किये गये हैं और प्रत्येक श्रेणी में भिन्न-भिन्न ग्रड के अनुसार वेतन दर है। केन्द्रीय वेतन आयोग ने जिस महगाई भत्ते की रकम कर्मचारियों के लिए सिफारिश की थी वही महगाई भत्ता बन्दरगाहों के लिए निश्चित कर दिया गया है। बन्दरगाह म विभिन्न प्रकार के श्रमिकों की आय बम्बई म ६५ रुपये से ८० रुपये तक, मद्रास म ६५ रुपये से ८० रुपये तक तथा कलकत्ता मे ६१ रुपये से ८५ रुपये तक है। सन् १९४९ से बम्बई बन्दरगाह ट्रस्ट ने सामान ढोने तथा उतारने वाले श्रमिकों को प्रोत्साहन (Incentive) बोनस देने की योजना भी लागू कर दी है। बम्बई नगर मे गोदी कर्मचारियों के लिये केन्द्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों के अनुसार न्यूनतम मूल मजदूरी ३० रुपये प्रति मास निर्धारित कर दी गई है। अन्य स्थानों पर अधिकरणों द्वारा मजदूरी १ १५ रुपये प्रतिदिन से १ ३७ रुपये प्रतिदिन तक निर्धारित की गई है। बगाल मे मजदूरी ३० रुपये प्रति माह और विशाखापतनम मे १ १२ रुपये प्रतिदिन है। बम्बई मे महगाई भत्ता केन्द्रीय वेतन आयोग द्वारा निर्धारित दर के हिसाब से और कलकत्ता व विशाखापतनम मे ग्रेड के क्रमानुसार दिया जाता है। गोदी कर्मचारियों को बोनस भी विभिन्न दरो पर दिया गया है।

विभिन्न बन्दरगाहों मे मजदूरी की दरो में अब सशोधन कर दिया गया है। १९६३–६४ मे, बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास गोदी श्रम बोर्डो द्वारा काम पर लगाये गये श्रमिकों की औसत मासिक आय इस प्रकार थी गोदी फोरमैन—कलकत्ता रुपये ३६८ ९९, फोरमैन—बम्बई रुपये २७९ ३९, कलकत्ता रुपये २१५ ८४ से रुपये ३६८ ९९ तक, मद्रास रुपये ११६ ००, टिंडल—मद्रास रुपये १९७; ड्राइवर—बम्बई रुपये २९० ९१, कलकत्ता रुपये २१६ ६५, मद्रास रुपये २०६; श्रमिक—बम्बई रुपये २३७ ८०, कलकत्ता रुपये १८२ ६२, मद्रास रुपये १८८; और मिलान क्लर्क—बम्बई रुपये २५३ ७५, कलकत्ता रुपये १९६ ७८; मद्रास रुपये १२०। दैनिक मजदूरी की दरें श्रमिकों की श्रेणी के अनुसार भिन्न-भिन्न हैं। ये दरें बम्बई मे रुपये ४ ७७ से रुपये ६ ३९ तक, कलकत्ता मे ५ रुपये से

रुपये १२·२५ तक ; मद्रास में रुपये ४·१० से रुपये ५·६० तक ; कोचीन में रुपये ४·५० से रुपये ५·५० तक और विशाखापट्टनम मे रुपये ३·८७ से रुपये ५·८७ तक थी। सन् १९६४ मे दास कमेटी की सिफारिशों के फलस्वरूप, १ अक्टूबर १९६४ से मंहगाई भत्ते की दरें भी संशोधित की गई है और विभिन्न मजदूरी क्रमों के अनुसार अब बम्बई, कलकत्ता और मद्रास बन्दरगाहों मे मंहगाई भत्ता २८ रुपये से लेकर ७० रुपये तक है। विशाखापट्टनम मे सब से कम वेतन पाने वाले श्रमिकों की आय ७० रुपये प्रतिमास है और इसके अतिरिक्त २८ रुपये प्रतिमास मंहगाई भत्ता तथा ५ रुपये प्रतिमास मकान भत्ता भी है। अनियत मजदूर को रुपये १·७५ प्रतिदिन दिया जाता है। कोचीन बन्दरगाह में दैनिक दर कुशल श्रमिक के लिये रुपये ३·०८, अर्ध-कुशल श्रमिक के लिए रुपये २·९० और अकुशल श्रमिक के लिये रुपये २·६६ है। कांधला बन्दरगाह में, मजदूरी की दैनिक दरें रुपये २·७५ से लेकर ४ रुपये तक हैं। मारमागोवा बन्दरगाह में, ठेकेदार द्वारा दी जाने वाली मजदूरी स्त्री खलासी के लिए रुपये २·५० से लेकर मिस्त्री के लिये ६ रुपये तक है।

सन् १९६१ में, बन्दरगाह व गोदी श्रमिकों के लिये मजदूरी बोर्ड नियुक्त किया गया। इस बोर्ड ने मजदूरी मे दुगुनी अन्तरिम वृद्धि करने की सिफारिश की है जिसे लागू किया जा रहा है।

खनिज तेल उद्योग मे १९५४ मे श्रम अपीलीय अधिकरण के पंचाट के अनुसार विभिन्न श्रेणियों के श्रमिकों की मूल न्यूनतम मजदूरी १·४४ रुपये से ५·५० रुपये प्रतिदिन तक निश्चित की गई है। महगाई भत्ता तथा बोनस मूल वेतन के आधार पर प्रदान किये जाते है।

नगरपालिकाओं मे १९४४ से मूल मजदूरी बढ़ गई है किन्तु अभी तक देश के विभिन्न भागो में मजदूरी मे अन्तर पाया जाता है। कटक तथा भोपाल में न्यूनतम मासिक मजदूरी १५ रुपये तक है जबकि दूसरी ओर बम्बई में ३५ रुपये है। महगाई भत्ते की दरो में भी बहुत विभिन्नता है। साधारणत विभिन्न आय वर्गों के अनुसार आरोही दर (Graduated rate) पर महगाई भत्ता दिया जाता है। सबसे कम वेतन पाने वाले वर्ग के श्रमिको को जो न्यूनतम महगाई भत्ता मिलता है वह लखनऊ तथा कानपुर में ६·२५ रुपये प्रतिमाह से बम्बई मे ३६ रुपये प्रति माह तक है। इसके अतिरिक्त अनेक नगरपालिकाये मकान-किराया-भत्ता अथवा अनाज-महगाई-भत्ता भी देती हैं। सफाई करने वाले कर्मचारियों की न्यूनतम मासिक आय भोपाल मे २७·७५ रुपये से बम्बई मे ७७ रुपये तक है।

केन्द्रीय सार्वजनिक कार्य विभाग में विभाग द्वारा लगाए गये श्रमिक ३० रुपये प्रतिमाह मूल न्यूनतम मजदूरी पाते है। ठेकेदारो द्वारा लगाये गये श्रमिक विभिन्न क्षेत्रो मे १ रुपये से २·१२ रुपये तक पाते हैं। विभागीय श्रमिक सरकारी दरो पर महंगाई भत्ता पाने के भी अधिकारी है जो न्यूनतम ३५ रुपए प्रतिमाह है। राज्यों मे सार्वजनिक कार्य विभागो मे मजदूरी की दरें एक जिले से दूसरे

जिले मे भिन्न-भिन्न हैं। केवल मासिक वेतन पाने वाले कर्मचारियो को विभिन्न दरो पर महगाई भत्ता दिया जाता है। स्त्रियो की मजदूरी कम है।

नाविको की मजदूरी विभिन्न श्रेणियो के लिए भिन्न भिन्न है। कलकत्ता मे इनकी मजदूरी दर ६० रुपए से ३६० रुपए प्रतिमाह तक है, बम्बई मे मजदूरी दर १०० रुपए से ३६० रुपए प्रतिमाह तक है। युद्ध पूर्व मजदूरी-दर की अपेक्षा इन व्यक्तियो की आय अब पाँच गुनी अधिक है।

ऊपर भारत के विभिन्न उद्योगो तथा विभिन्न राज्यो मे प्रचलित मजदूरी स्तर का केवल एक संक्षिप्त रूप मे उल्लेख किया गया है। इन आँकडो को ध्यान मे रखकर हम भारत मे मजदूरी से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण समस्याओ का विवेचन कर सकते हैं।

न्यूनतम मजदूरी—इसकी वाछनीयता
(Minimum Wages and its Desirability)

सबसे महत्वपूर्ण समस्या भारत मे औद्योगिक श्रमिको की कम मजदूरी की, तथा श्रमिको की न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की आवश्यकता की है। ऊपर दिये गये आकडो से यह स्पष्ट है कि श्रमिको की आय पर्याप्त नही है। यदि कुछ सुधार हुआ भी है तो वह गत कुछ वर्षो से ही हुआ है। वर्तमान समय मे देश की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता श्रमिको को न्यूनतम मजदूरी प्रदान करना है। भारत के अधिकतर श्रमिक असगठित हैं, अत मालिको द्वारा सरलतापूर्वक उनका शोषण किया जाता है। मालिक इन्हे कम से कम मजदूरी देते है। यह भी अनुमान लगाया गया है कि जेल के कैदी औद्योगिक श्रमिको की अपेक्षा अधिक सुविधाये तथा अधिक आहार पाते हैं। श्रमिको को स्वतन्त्र प्रतियोगिता म अपनी सौदा करने की दुर्बल स्थिति तथा श्रम की अन्य विशेषताओ के कारण, शक्तिशाली पूँजीपतियो के समक्ष अपनी स्थिति सुधारने का कोई अवसर नही मिल पाता। श्रमिक की सीमात उत्पादकता पूँजी की उत्पादकता से सदैव कम होती है अत श्रमिक को कम प्रतिफल मिलता है। तथापि श्रमिक मानव है और मानवीय दृष्टिकोण से उनकी रक्षा होनी चाहिये। श्रमिको के लिये सभी देशो मे एक न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने की समस्या उपस्थित हो गई है। यह मजदूरी केवल उनकी कार्यकुशलता के अनुसार ही न हाकर इतनी पर्याप्त होनी चाहिय कि श्रमिक अपनी आवश्यकताओ के अनुसार अपना निर्वाह कर सक। अत १९२८ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन मे न्यूनतम मजदूरी पर एक अभिसमय का मसौदा तैयार किया गया था। इसके अनुसार सब सदस्य राष्ट्रों को एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करने और बनाये रखने के लिये कहा गया जिसके अन्तर्गत कुछ विशेष व्यवसायो मे रोजगार मे लगे श्रमिको के लिये न्यूनतम मजदूरी की दर निर्धारित की जा सके। इन विशेष व्यवसायो से तात्पर्य ऐसे व्यवसायो से है जिनमे सामूहिक समझौते या अन्य किसी प्रकार से प्रभावात्मक रूप से मजदूरी निर्धारित करने की कोई व्यवस्था नही

है और जिनमें मजदूरी भी बहुत कम है। १९५५ में इस अभिसमय को भारत सरकार द्वारा अपना लिया गया है।

ऊपर दिये गये मजदूरी के आंकड़ों से स्पष्ट है कि भारत में मजदूरी असाधारण रूप से कम है। कम मजदूरी की यथार्थता इतनी स्पष्ट है कि इसके लिये विस्तृत खोज अथवा आंकड़ों के सकलन की कोई विशेष आवश्यकता नही है। औद्योगिक विवाद, निम्न जीवन-स्तर, श्रमिक की कार्य-अकुशलता, उसकी ऋण-ग्रस्तता आदि जैसी अनेक समस्यायें कम मजदूरी की समस्या से सम्बन्धित है। सामाजिक दृष्टिकोण से भी यह अनुभव किया जाना चाहिये कि यदि हम समाज में स्थिरता चाहते है तो श्रमिक के लिये पर्याप्त निर्वाहिका (Living Wage) अत्यन्त आवश्यक है। श्रमिकों की निर्धनता ही साम्यवाद का उत्पत्ति स्रोत कही जाती है। यदि हम क्रान्तिकारी विचारो को फैलने से रोकना चाहते हैं तो सभी श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी का आश्वासन मिलना चाहिए। औद्योगिक हड़तालो के दोषो को कम करने तथा मालिको एव श्रमिकों के बीच सद्भावना एव विश्वास उत्पन्न करने के लिये न्यूनतम मजदूरी का होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान मे रखना चाहिये कि श्रमिक को न्यूनतम मजदूरी देना कोई दान का कार्य नही है। उद्योग के लाभ मे श्रमिक का अधिकारपूर्ण (Rightful) भाग होना चाहिये जो वर्तमान समय मे श्रमिक की दुर्बल सौदाकारी सामर्थ्य के कारण उसे नही दिया जाता। अतः औद्योगिक श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी उनके औद्योगिक जीवन, उनके स्वास्थ्य, शक्ति तथा नैतिकता के लिये बहुत अधिक महत्व रखती है। इससे श्रमिक की कार्यकुशलता बढ़ जायेगी, उत्पादन भी अधिक होगा तथा अनेक औद्योगिक समस्याये स्वयं हल हो जायेगी।

न्यूनतम मजदूरी के उद्देश्य

न्यूनतम मजदूरी के उद्देश्य विभिन्न हैं। मजदूरी दर निश्चित करने का आधार तथा इसके लिये प्रशासन व्यवस्थाएँ भी अलग-अलग उद्देश्य के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। इसका एक मुख्य उद्देश्य उद्योग मे शोषण को रोकना है। इसका तात्पर्य यह है कि उन उद्योगों मे मजदूरी को बढाया जाय, जहाँ मजदूरी अनुचित रूप से कम है। कम मजदूरी के कारण आर्थिक मन्दी, अव्यवस्थित संगठन, श्रमिकों की कार्य-अकुशलता अथवा श्रमिकों का शोषण आदि हो सकते है। यदि किसी उद्योग मे स्थायी रूप से मन्दी की परिस्थिति है तथा वह उद्योग रोजगार खोजने वाले सभी व्यक्तियों को उचित मजदूरी देने मे असमर्थ है तो अन्य उद्योगों में न्यूनतम मजदूरी उचित स्तर पर निर्धारित होने से सब उद्योगों मे लागत एक समान हो जायगी तथा विभिन्न उद्योगो मे श्रमिको का समान वितरण भी हो जायगा। यदि कार्य-अकुशलता के कारण मजदूरी कम है तो न्यूनतम मजदूरी से जीवन स्तर मे उन्नति होगी। अतः कार्यकुशलता मे भी सुधार हो जायेगा। फिर, न्यूनतम मजदूरी व्यवस्था का उद्देश्य शोषण रोकना भी है तथा श्रमिक की उत्पादन

समता के अनुसार जो कार्य होता है उस कार्य के मूल्यानुसार मजदूरी दिलवाना भी है। इस दृष्टिकोण से यह उल्लेखनीय है कि श्रमिकों का हित इसमें नहीं है कि समस्त उद्योगों के लिए एक सामान्य न्यूनतम दर निर्धारित कर दी जाय, बल्कि इसमें है कि विभिन्न वर्गों के श्रमिकों के लिये मजदूरी की न्यूनतम दर निश्चित की जाय। अतः यह समस्या मजदूरी समानीकरण की समस्या से सम्बन्धित है, अर्थात प्रत्येक वर्ग के श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी निश्चित होनी चाहिए। न्यूनतम मजदूरी का उद्देश्य उन श्रमिकों की रक्षा करना है जो असंगठित हैं और सामूहिक समझौता द्वारा अपनी मजदूरी बढ़ाने में असमर्थ हैं। न्यूनतम मजदूरी से श्रमिकों के संगठन में सुधार होगा यद्यपि यह न्यूनतम मजदूरी विधान का प्रत्यक्ष उद्देश्य नहीं है। तीसरा उद्देश्य देश की औद्योगिक शान्ति को बनाए रखना है। जहाँ मालिकों तथा श्रमिकों के शक्तिशाली संगठन हैं वहाँ मजदूरी साधारणतः सामूहिक समझौता से नियमित होती है। किन्तु समझौते सदा सम्भव नहीं हैं तथा कई बार ऐसे झगड़े खड़े हो जाते हैं जो कि आर्थिक जीवन को अव्यवस्थित कर देते हैं। इन झगड़ों से बचने का एक उपाय यह भी है कि अतः हड़तालों तथा ताला-बन्दियों को गैरकानूनी घोषित कर दिया जाय। किन्तु इससे पूर्व कि सरकार इस नीति को अपनाए उसे मजदूरी नियमन की सन्तोषजनक प्रणाली की व्यवस्था कर देनी चाहिए। जहाँ विवाचन व्यवस्था है भी वहाँ भी मजदूरी सम्बन्धी झगड़े इस आवश्यकता की ओर संकेत करते हैं कि विभिन्न श्रेणी के श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर देनी चाहिए।

न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने में कठिनाइयाँ

किन्तु न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने का प्रश्न इतना सरल नहीं है जितना यह देखने में प्रतीत होता है। न्यूनतम मजदूरी क्या है? विभिन्न उद्योगों तथा केन्द्रों में इसे कैसे निर्धारित किया जाना चाहिए? इसे लागू करने के हेतु कैसी व्यवस्था की स्थापना करनी चाहिए? क्या पुरुष तथा स्त्री श्रमिकों के लिए अलग अलग न्यूनतम मजदूरी होना चाहिए? इस प्रकार के कई प्रश्न हैं जो इस समस्या के विवेचन में उठते हैं। अतः हम न्यूनतम मजदूरी के निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व कुछ सिद्धान्तों का अनुसरण करना होगा।

श्रमिकों ने सदैव माँग की है कि न्यूनतम मजदूरी राष्ट्रीय जीवन स्तर पर आधारित होनी चाहिए किन्तु दूसरी ओर मालिकों ने सदैव मजदूरी के विभिन्न सिद्धान्तों की ओर संकेत किया है तथा नारा उठाया है कि मजदूरी उद्योग की भुगतान क्षमता के अनुसार दी जानी चाहिए। अतः इस विषय में, कि न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने का क्या उद्देश्य होना चाहिये कई कठिनाइयाँ आती हैं। वास्तव में उद्देश्य यह होना चाहिए कि श्रमिकों का जीवन निर्वाह के लिये ऐसी मजदूरी प्रदान की जाए जो न्यायपूर्ण तथा उचित हो। किन्तु प्रश्न उठता है कि न्यायपूर्ण तथा उचित मजदूरी क्या है? न्याय की परिभाषा करना सम्भव नहीं

है। ('जैस्टिगपाइलट' के पूछने पर कि न्याय क्या है स्वयं ईसा मसीह भी चुप रह गए थे) हम केवल सापेक्ष (Relative) दृष्टिकोण से कह सकते है कि क्या न्यायपूर्ण है एवं क्या न्यायपूर्ण नहीं है। इसी प्रकार न्यूनतम मजदूरी विभिन्न स्थानों की परिस्थितियों पर निर्भर करेगी तथा ऐसी कोई सीमा नहीं हो सकती जिसको एक निश्चित न्यायपूर्ण मजदूरी कहा जा सके। यह स्थानीय परिस्थितियों, जलवायु, फैशन तथा व्यक्तियों की श्रावश्यकता आदि के अनुसार स्थान-स्थान पर भिन्न होगी। साधारणतया हम कह सकते हैं कि न्यूनतम मजदूरी का उद्देश्य तभी भली-भाँति प्राप्त हो सकता है जब सबसे पहिले मानव के भोजन, वस्त्र तथा आवास की न्यूनतम आवश्यकताओं के आधार पर उसे निर्धारित किया जाए, तत्पश्चात् विभिन्न रोजगारों, वर्गों तथा स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार उसे निश्चित किया जा सकता है। आस्ट्रेलिया में न्यूनतम मजदूरी की परिभाषा इस प्रकार की गई है "औसत वर्ग के श्रमिक के साधारण उत्तरदायित्वों का ध्यान रखते हुए श्रमिक को उचित सुख में रहने योग्य जो पर्याप्त मजदूरी मिलती है उसे न्यूनतम मजदूरी कहा जा सकता है।"

इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण का आधार केवल श्रमिक के निर्वाह के उद्देश्य से ही नहीं वरन् उसके समस्त परिवार के निर्वाह के उद्देश्य से होना चाहिये। श्रमिक तथा उसके परिवार को सभ्य जीवन का एक उचित स्तर भी प्रदान करना चाहिये। इस सम्बन्ध मे औसत परिवार का आकार निर्धारित करने मे कठिनाई आती है। भारत मे हम पाँच सदस्यो का औसत परिवार मान सकते है। परन्तु भारतीय श्रम सम्मेलन ने १६५७ मे न्यूनतम मजदूरी के आदर्श सिद्धान्त निर्धारित करते समय यह निश्चय किया कि एक सामान्य श्रमिक परिवार मे एक धनोपार्जन करने वाले व्यक्ति पर निर्भर तीन ऐसे सदस्य माने जाने चाहिएँ जिन्हे उपभोक्ता इकाई कहा जा सकता है।

जहाँ तक न्यूनतम आवश्यकताओ का सम्बन्ध है इसके लिए विभिन्न अनुमान दिये गये है। डा० एक्रोड का विचार है कि एक साधारण श्रमिक को भोजन की २,६०० कैलोरी की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। डा० आर० के० मुकर्जी ने इस अनुमान को कम माना है तथा एक औद्योगिक श्रमिक के लिए ३,००० से ३,५०० कैलोरी भोजन प्रतिदिन की आवश्यकता का सुझाव दिया है। डा० पटवर्धन का यह सुझाव कि श्रमिक के लिये २,७०० कैलोरी भोजन प्रतिदिन की साधारण आवश्यकता है, इस सम्बन्ध मे गणना के लिये आधार माना जा सकता है। श्रम सम्मेलन ने इस विषय मे डा० एक्रोड का सुझाव माना है। आवास के विषय मे यह सुझाव दिया गया था कि छत के साथ १०० वर्ग फीट रहने के लिये न्यूनतम स्थान होना चाहिए। श्रम सम्मेलन ने इस विषय मे सरकार की उपदान प्राप्त आवास योजना के स्तर को माना है। वस्त्र के विषय मे यह सुझाव था कि एक वयस्क श्रमिक के लिए प्रति वर्ष ४५ गज कपड़ा होना चाहिये। श्रम सम्मेलन का अनुमान यह है कि प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति १८ गज कपड़ा होना चाहिये अर्थात्

श्रमिक के ४ सदस्यो के परिवार के लिये ७२ गज कपडा। युद्ध से पूर्व की कीमतो पर जीवन की ये आवश्यकताएँ ही प्रति व्यक्ति २० रुपये से २५ रुपये तक लागत की आती थी और अब तो कीमतें तथा किराये बहुत ऊँचे हो गये हैं।

न्यूनतम मजदूरी को निश्चित करने मे एक अन्य विचारणीय विषय कीमतो को ध्यान में रखते हुए निर्वाह लागत को निर्धारित करना है। निर्वाह लागत सूचकाक (Cost of Living Index Number) समय-समय पर बनाना पडता है और न्यूनतम मजदूरी का इस सूचकाक के अनुसार समजन (Adjustment) करना होता है।

एक अन्य समस्या यह है कि मजदूरी निश्चित करने के लिये एक कुशल व्यवस्था (Efficient Machinery) होनी चाहिये। किन्तु प्रश्न उठता है कि क्या यह व्यवस्था केन्द्रीय, प्रदेशीय अथवा स्थानीय स्तर पर हो? सबसे अधिक उचित तो यह होगा कि केन्द्रीय सरकार मुख्य सिद्धान्त निर्धारित कर दे और प्रदेशीय सरकारें स्थानीय परिस्थितियो के अनुसार इस व्यवस्था की अन्य विस्तृत बातें निर्धारित करें।

भारत मे श्रमिको की न्यूनतम मजदूरी उसकी समस्याए

अब हम यहाँ न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने के आन्दोलन तथा सन् १६४८ के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का उल्लेख कर सकते हैं। रायल श्रम आयोग ने यह सुझाव दिया था कि इस बात की जाँच की जाय कि न्यूनतम मजदूरी निर्धारण करने वाली कोई व्यवस्था हो सकती है या नही, किन्तु उस समय कुछ कठिनाइयो की ओर सकेत किया गया और यह सुधार १६४८ तक नही किया जा सका। रायल श्रम आयोग ने स्वय न्यूनतम मजदूरी लागू करने के लिये उचित व्यवस्था स्थापित करने की कठिनाइयो का उल्लेख किया है। अपने देश मे न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने से सम्बन्धित कुल समस्याओ का पहले ही ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। कानपुर श्रम जाँच समिति के शब्दो मे इन कठिनाइयो को सक्षेप मे बताया जा सकता है—"न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने मे हमे निर्वाह लागत का ध्यान रखना होगा। मजदूरी स्तर भी निर्धारित करना पडेगा। यह सरल कार्य नही है। समस्या के मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा वातावरण सम्बन्धी तत्वो की सावधानीपूर्वक जाँच करनी होगी तथा आँकडे एकत्रित करने होगे। परिवार के बजट प्राप्त करने होगे तथा उनका अध्ययन और विश्लेषण करना होगा। आवश्यक मदो को सावधानी से छाटना होगा तथा उनको गुण तथा मात्रा दोनो रूप से भली भाँति महत्वाकित करना होगा। यह सब कठिन कार्य हैं जिनके लिये धैर्य और यथार्थता की आवश्यकता होगी तथा उन वर्गों को उचित रूप से समझाना होगा जिनकी निर्वाह लागत निर्धारित की जा रही है। परिवार इकाई की भी परिभाषा उचित प्रकार से करनी पडेगी तथा उसे निश्चित करना होगा। भारतीय सामाजिक पद्धति मे यह सब कठिन कार्य हैं। व्यक्तियो की परम्परायें तथा

सामाजिक आचारों को भी ध्यान में रखना होगा तथा इनका समुचित मूल्यांकन करना पड़ेगा ।"

यह भी उल्लेखनीय है कि मालिकों ने भारत की विशेष परिस्थितियों को इंगित करके मजदूरी मे वृद्धि के विरुद्ध तर्क प्रस्तुत किये है। प्रायः यह कहा जाता है कि मजदूरी मे वृद्धि होने से श्रमिक या तो मदिरा पर अधिक व्यय करने लगेंगे या अधिक आलसी हो जायेंगे। आय में यदि आकस्मिक वृद्धि हो जाएगी तो उसका बुद्धिमत्तापूर्ण व्यय नहीं हो सकेगा। इसके अतिरिक्त श्रमिक की पूर्ति भी आय की वृद्धि के साथ बढ़ेगी। यह भी कहा गया है कि मजदूरी में वृद्धि के प्रभाव निर्वाह लागत में वृद्धि होने से समाप्त हो जायेंगे क्योंकि बढ़ी हुई मजदूरी मुद्रा-स्फीति उत्पन्न करेगी। परन्तु यह सभी तर्क एक-पक्षीय हैं और हम पहले ही अपने देश में न्यूनतम मजदूरी की वांछनीयता का उल्लेख कर चुके है। मजदूरी निश्चित करने में जो कठिनाइयाँ आती हैं केवल उन्ही को ध्यान में रखना है तथा इन्हे सावधानी-पूर्वक हल करना है।

यह भी उल्लेखनीय है कि एक व्यापक सामाजिक सुरक्षा योजना के बिना एक राष्ट्रीय न्यूनतम समयानुसार मजदूरी निर्धारित करना कठिन होगा, क्योंकि यदि एक राष्ट्रीय न्यूनतम स्तर लागू किया जायगा तो अनेक श्रमिकों की छटनी हो सकती है। इसके अतिरिक्त एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी से राष्ट्रीय लाभांश में श्रमिकों के भाग में तो वृद्धि हो जाएगी किन्तु उद्यमकर्ताओं के लाभ में कमी हो जाएगी। इससे बचत पर प्रभाव पड़ेगा तथा उपभोग वस्तुओं की माँग भी बढ़ जायेगी। यह बात देश के लिए हितकर न होगी, यदि देश में विकास योजनायें चालू हैं। फिर भी न्यूनतम मजदूरी आरम्भ में ऐसे सभी उद्योगों में लागू की जानी चाहिये, जिनमें श्रमिकों का शोषण होता है।

सन् १९४८ का न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (Minimum Wages Act of 1948)

भारत में विधानीय मजदूरी निर्धारण व्यवस्था की स्थापना करने के प्रश्न पर मई १९४३ में त्रिदलीय संगठन की स्थायी श्रम समिति के तीसरे सम्मेलन में विचार-विमर्श हुआ तथा त्रिदलीय श्रम समिति के १९४३, १९४४ तथा १९४५ के अधिवेशनों में इस पर विचार किया गया। इनमें से अन्तिम अधिवेशन में इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया कि न्यूनतम मजदूरी विधान बनाया जाना चाहिए। ११ अप्रैल सन् १९४६ को डा० बी० आर० अम्बेदकर ने, जो उस समय भारतीय सरकार के श्रम मन्त्री थे, न्यूनतम मजदूरी विधेयक प्रस्तुत किया। किन्तु भारत में संवैधानिक परिवर्तन होने के कारण विधेयक के पास होने में कुछ बिलम्ब हो गया। मार्च १९४८ में फिर यह न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के नाम से पारित हुआ। इस अधिनियम का अभिप्राय उन कुछ रोजगारों में न्यूनतम मजदूरी निश्चित करना है जिनमें श्रमिकों से बहुत परिश्रम लिया जाता है अथवा जहाँ

सलाह देने तथा प्रादेशीय सलाहकार बोर्डों के कार्यों का समन्वय करने के लिए एक केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड की स्थापना भी केन्द्रीय सरकार कर सकती है। इन संस्थाओं में मालिक तथा श्रमिकों के प्रतिनिधि बराबर की संख्या में होंगे तथा कुल सदस्यों की एक तिहाई से कम की संख्या में स्वतन्त्र व्यक्ति होंगे। उपयुक्त सरकारें अधिनियम के अन्तर्गत सूची में अंकित रोजगारों में कार्य के दैनिक घंटे भी निश्चित कर सकती है, एक साप्ताहिक अवकाश दे सकती हैं, तथा समयोपरि मजदूरी की अदायगी का नियम बना सकती हैं। इस अधिनियम के अनुसार उचित रिकार्ड और रजिस्टर भी रखने होंगे। मजदूरी की न्यूनतम दरों से कम अदायगी के कारण उत्पन्न दावों को जाँचने, सुनने तथा निश्चित करने के लिये निरीक्षक तथा प्राधिकारी नियुक्त किये जा सकते है तथा अपराधियों के दण्ड की भी व्यवस्था की गई है।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम में संशोधन

इस अधिनियम के अनुसार कृषि रोजगारों में (अधिनियम से लगी अनुसूची भाग २) अग्रिम तीन वर्षों में तथा अन्य रोजगार में (अनुसूची भाग १) अग्रिम दो वर्षों में न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की व्यवस्था थी। निश्चित न्यूनतम मजदूरी दरों में समय-समय पर, परन्तु अधिक से अधिक ५ वर्षों में संशोधन किया जा सकता है। केन्द्रीय सरकार ने १९४९ में कुछ नियम भी बनाये तथा राज्य सरकारों में इन नियमों का परिचालन किया तथा उनको १५ मार्च १९५० से पूर्व न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की आज्ञा दी। एक केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड तथा राज्यों में सक्षम प्राधिकारियों की नियुक्ति भी कर दी गई। परन्तु तब भी निर्धारित समय में न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने में विलम्ब हुआ तथा सरकार ने एक अध्यादेश तथा बाद में संशोधित अधिनियम द्वारा न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की तिथि १५ मार्च, १९५१ तक बढा दी। यह तिथि फिर ३१ मार्च १९५२ तक बढाई गई। कृषि श्रमिकों की, जिनकी अपनी विशेष समस्यायें है, न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने के लिये एक अतिरिक्त वर्ष दिया गया। तथापि ३१ मार्च १९५२ तक अनुसूची में दिये गये समस्त रोजगारों के लिये न्यूनतम मजदूरी निश्चित न हो सकी और अप्रैल १९५४ में अधिनियम में संशोधन करके यह समय ३१ दिसम्बर १९५४ तक बढा दिया गया। बार-बार तारीखों का बढाना इंगित करता है कि न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करना कितना कठिन कार्य है। १९५७ में अधिनियम में एक अन्य महत्वपूर्ण संशोधन हुआ। १९५७ के संशोधित अधिनियम ने मजदूरी के निश्चित करने की अवधि ३१ दिसम्बर १९५९ तक बढा दी तथा अधिनियम को कार्यान्वित करने में कुछ अन्य कठिनाइयों को दूर किया है। इसके अनुसार मजदूरी की न्यूनतम दरों का पाँच वर्ष पूरे होने पर पुन विचार तथा पुन निर्धारण हो सकता है।

परन्तु अनुसूची मे दिये गये उद्योगों मे दिसम्बर १९५९ तक भी सभी प्रदेशो मे न्यूनतम मजदूरी निर्धारित नही की जा सकी। जनवरी १९६० मे श्रम मन्त्रियो के सम्मेलन ने इस बात का सुझाव दिया कि न्यूनतम मजदूरी लागू करने की तिथि निर्धारित करने के लिये राज्य सरकारें अपने कार्यक्रम के अनुसार स्वयं अधिनियम पारित करें। केन्द्रीय न्यूनतम मजदूरी सलाहकार बोर्ड ने यह सिफारिश की कि न्यूनतम मजदूरी लागू करने का कोई निश्चित समय रखा ही न जाये। इन सिफारिशो को मानते हुये सरकार ने १९६१ मे न्यूनतम मजदूरी (संशोधित) अधिनियम पारित किया। इसके अनुसार न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिए जो निश्चित तिथि की धारा थी उसे समाप्त कर दिया गया। राज्य सरकारें अब आवश्यकतानुसार किसी भी समय, किसी भी रोजगार या किसी भी वर्ग के श्रमिकों के लिये न्यूनतम मजदूरी की दरें राज्य के किसी भी भाग मे निर्धारित कर सकती हैं। यदि कोई विवाद किसी अधिकरण (Tribunal) के सम्मुख है या अधिकरण का निर्णय लागू है तो अनुसूचित रोजगारो मे न्यूनतम मजदूरी निर्धारित नही की जायेगी। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत, यदि सरकार कोई नियम बनाती है तो उसे तीस दिनो के अन्दर संसद् के सम्मुख प्रस्तुत करना होगा।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का कार्यान्वित होना

अधिनियम के उपबन्धो के अन्तर्गत कुछ राज्यो को छोडकर सभी राज्य सरकारो ने अधिनियम मे लगी सूची नम्बर १ मे दिये गये रोजगारो की न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर दी है। कुछ राज्यो में इन दरो मे मँहगाई या निर्वाह लागत भत्ता सम्मिलित कर लिया गया है और कुछ राज्यो मे ये भत्ते सम्मिलित नही किये गये है। विभिन्न राज्यो मे तथा विभिन्न रोजगारो मे दरें भिन्न भिन्न हैं तथा समय-समय पर इनको दोहराया भी गया है (दरो के विस्तृत विवरण के लिये कृपया भारतीय श्रम वार्षिक पुस्तिकायें देखिये)। कुछ राज्य सरकारो ने इस अधिनियम का क्षेत्र, अधिनियम मे लगी सूची मे दिये गये उद्योगो के अतिरिक्त अन्य उद्योगो तक भी बढा दिया है। उदाहरण के लिए, दिल्ली मे इसका प्रसार छापेखानो, ढलाई कारखानो, मोटरगाडी, इजीनियरिंग कारखानो, धातु उद्योग, आकाशवाणी के अन्तर्गत निर्माण मे लगे कर्मचारियो, ईंटो के भट्टे, मिट्टी के बर्तन तथा बटन उद्योग मे किया गया है, आन्ध्र प्रदेश मे लकडी के फरनीचर, होटलो, जलपान गृहो, धाबो और सिनेमा उद्योग मे, बिहार मे छापेखानो, मोटर, इजीनियरिंग सस्थानो, ईंटें बनाने, बाँध व सिचाई के कार्यों, सिनेमा उद्योग, शीत-भण्डार, होटलो, जलपान-गृहो, धाबो, सिल्क उद्योग, वन उद्योग, इमारती लकडी तथा केन्दू की पत्तियो के चुनन आदि पर, महाराष्ट्र तथा गुजरात मे 'राल्टपान उद्योग', होटलों व जलपान गृहो, छपाई उद्योग व सम्बन्धित प्रक्रिया, दुकानो और वाणिज्य सस्थानो, सिनेमा, रूई धुनने व पूनी बनाने के कारखानो आदि मे; मध्य प्रदेश मे सीमेंट, काँच, चीनी के बर्तन, रूई धुनने व पूनी बनाने के

कारखानों, होटलों, जलपान-गृहों, थियेटरों, दुकानों व वाणिज्य संस्थानों, आरा मशीनों तथा छापेखानों आदि मे, पंजाब में वस्त्र उद्योग, ढलाई के कारखानों, छापेखानों, सिनेमा उद्योग, कृषि उपकरणों, धातु व बर्तन उद्योगों, वनों, दुकानों व वाणिज्य संस्थानों तथा रबड़ उद्योग आदि में; मैसूर में काजू उद्योग, छापेखानों, होटलो, ढलाई कारखानों, 'साल्टपान' उद्योग, मोटर इंजीनियरिंग उद्योग आदि मे; उड़ीसा में लवण-पटल (साल्टपान) उद्योग, छापेखानों, टाइल तथा ईंटे बनाने के कार्य, सड़क परिवहन, होटलो व जलपान-गृहों, मद्यशालाओ, दुकानो व वाणिज्य संस्थानो, धातु उद्योग, आरा मशीनी, इमारती लकड़ी, हाथ करघा उद्योग, गुदाम बनाने आदि मे; केरल में जटा उद्योग, इलायची बागान, टाइल उद्योग, दुकानो व होटलों, माचिस उद्योग, इमारती लकड़ी, हाथ करघा, काजू व लवण-पटल उद्योगों, बैंकों, ताड़ी बनाने, वनो, छोटे बन्दरगाहों, यातायात, छापेखानों आदि में; पश्चिमी बंगाल मे अस्थि मिलों, सिनेमा उद्योग, छापेखानों, दर्जी का काम, रेशम की छपाई, चक्की मिलो आदि में; मद्रास मे रुई धुनने व पूनी बनाने के कारखानों, लवण-पटल उद्योग, जटा, दियासलाई व आतिशबाजी, मौजे, ईंटे व टाइल बनाना, काजू तथा कच्चे सूत के उद्योग आदि; राजस्थान मे कपड़ा उद्योग, गोटे व किनारी के उद्योगो, छापेखानो, ऊन की सफाई तथा पूनी बनाने के कारखानों तथा लवण-पटल उद्योग आदि में; और उत्तर प्रदेश में होटल उद्योग, प्राइवेट छापेखानों, ढलाई कारखानों, धातु उद्योग, कांच की चूड़ी के उद्योग, सड़को का निर्माण व मरम्मत, भवन-निर्माण कार्यो आदि मे। जहाँ तक अधिनियम के भाग II का सम्बन्ध है, जिसमे खेतीहर रोजगार का उल्लेख है, अधिकतर राज्यो ने समस्त राज्य के या केवल कुछ निर्धारित क्षेत्रो के खेतीहर श्रमिको के लिए मजदूरी निश्चित कर दी है। केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड की भी १६४६ में स्थापना कर दी गई थी और नवम्बर १६५६ मे इस बोर्ड का पुनर्गठन हुआ है। इस बोर्ड मे अब अनुसूचित रोजगारों के श्रमिको और मालिको में से प्रत्येक के ६ प्रतिनिधि होते है तथा राज्य सरकारों के भी प्रतिनिधि है। केन्द्रीय रोजगार व श्रम मन्त्रालय के संयुक्त सचिव इसके प्रधान हैं। एक अन्य महत्वपूर्ण पग जो इस सम्बन्ध में उठाया गया है वह विभिन्न उद्योगों के लिए मजदूरी बोर्डों की स्थापना है। मजदूरी बोर्ड १६५७ से कई उद्योगो के लिये स्थापित कर दिये गये हैं और इन्होने भी न्यूनतम मजदूरी निश्चित की है।

यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ राज्यो के विभिन्न उद्योगो मे औद्योगिक अधिकरणो के पचाट द्वारा अथवा विभिन्न समितियों की सिफारिशों पर न्यूनतम मजदूरी भी निश्चित की गई है। उदाहरणतया, उत्तर प्रदेश तथा बिहार चीनी फैक्ट्री श्रमिक (मजदूरी) जाँच समिति की सिफारिशों पर उ० प्र० मे चीनी उद्योग के लिये एक न्यूनतम इकट्ठी मजदूरी १६४६ मे ३६ रुपये प्रतिमाह निश्चित की गई जो, १६४७–४८ मे ४५ रुपये प्रतिमाह तक बढा दी गई तथा पुनः १६४८–४६ में ५५ रुपये प्रतिमाह तथा १६५६ मे ५८ रुपये प्रतिमाह कर दी गई। उसके पश्चात्

चीनी उद्योग के मजदूरी बोर्ड की सिफारिशो के अनुसार १ जनवरी १६५६ से चीनी कारखाने के श्रमिको की मजदूरी मे २ से ५ प्रतिशत की वृद्धि की गई। १ नवम्बर १६६० से इनकी कुल न्यूनतम मजदूरी अब ७६ रुपये प्रतिमाह निर्धारित कर दी गयी है, जिसमे से ६० रुपये मूल मजदूरी है और १६ रुपये महगाई भत्ता है। अनुसूची भाग १ मे दिए गये दस उद्योगो मे भी न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दी गई है। कुछ मुख्य उद्योगो मे, जैसे कपास तथा ऊनी कपडा उद्योग, विद्युत व्यवसाय, कानपुर का इन्जीनियरिंग उद्योग बरेली की पश्चिमी भारत दियासलाई कम्पनी सहारनपुर की स्टार मिल मोदीनगर के लालटेन वर्क्स, देहरादून के चाय बागान आदि मे भी उत्तर प्रदेश सरकार ने न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर दी है। मजदूरी का प्रश्न समय-समय पर अनेक समितियो को विचार विमर्श के लिये दिया जा चुका है तथा न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने का आन्दोलन गहरी जड पकड चुका है।

अधिनियम का आलोचनात्मक मूल्याकन

इस विषय मे कोई मतभेद नही हो सकता है कि देश मे न्यूनतम मजदूरी विधान पारित करने की बहुत आवश्यकता है, किन्तु जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है कि इस सम्बन्ध मे कुछ सिद्धान्तो को दृष्टि म रखना होगा तथा कठिनाइयो का समाधान करना होगा। न्यूनतम मजदूरी इतनी अधिक भी निश्चित नही कर देनी चाहिये जिसे उद्योग वहन न कर सके और कुछ उद्योगो को अपना व्यवसाय ही छोडना पडे जिसके कारण बेरोजगारी बढे। यहाँ कानपुर कपडा मिलों का उदाहरण दिया जा सकता है जहाँ उत्तर प्रदेश सरकार ने सन् १६४६ मे न्यूनतम मजदूरी १२० रुपये प्रति माह निश्चित कर दी थी। इस आदेश को वापिस लेना पडा था। १६४८ का न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का क्षेत्र भी बहुत सकुचित प्रतीत होता है। इसमे अनेक नियमित तथा अनियमित उद्योग नही आते जिनमे मजदूरी बहुत कम है तथा जहाँ श्रमिको से अधिक परिश्रम लिया जाता है यद्यपि सरकारो को यह अधिकार दिया गया है कि वे अधिनियम को अनुसूची मे उल्लेख न किये गये उद्योगो पर भी लागू कर सकें। यह उचित होगा कि अधिनियम समस्त रोजगारो मे लागू कर दिया जाय।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की अन्य गम्भीर कमी यह है कि जब तक किसी राज्य मे एक उद्योग म १,००० कर्मचारी न हो, न्यूनतम मजदूरी निश्चित नही की जा सकती। अनेक राज्यो म बहुत स ऐसे उद्योग है जहा श्रमिको की सख्या १,००० से कम है। अत छोटे तथा अनियमित उद्योगो की एक बडी सख्या पर यह अधिनियम लागू नही होता। इन उद्योगो मे भी न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की बहुत अधिक आवश्यकता है। अधिनियम के अन्तर्गत की गई न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था पूर्णरूप से सन्तोषजनक भी नही है। एक स्थायी बोर्ड होना चाहिये अथवा प्रत्येक उद्योग म मजदूरी दरे निश्चित करने तथा दोहराने के लिए

एक समिति होनी चाहिये। अगस्त, १९५४ में स्थायी श्रम समिति ने भी सिफारिश की थी कि न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने वाली व्यवस्था की तत्काल स्थापना होनी चाहिये। यह अधिनियम न्यूनतम मजदूरी की परिभाषा भी नहीं करता जिसके मुख्य सिद्धान्त भली-भांति निश्चित हो जाने चाहियें।

इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि अधिनियम को लागू करने की अवधि बार-बार बढ़ाने से अनेक वर्षों तक अनेक श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी नही दी गई जिसके परिणामस्वरूप उन्हें आर्थिक क्षति पहुँची। एक 'समान राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी' निश्चित करने की आवश्यकता है तथा केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड ने भी सिफारिश की है कि सम्पूर्ण भारत मे राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी १·१२ रुपये से २ रुपये प्रतिदिन तक होनी चाहिये। पिछले कुछ वर्षो मे मंहगाई भत्ते का एक भाग मूल मजदूरी मे मिलाने की माँग की गई है क्योंकि पूर्व युद्ध काल स्तर पर कीमतो के आने की कोई सम्भावना नही है। केन्द्रीय सरकार पहले ही इस दिशा मे कुछ पग उठा चुकी है तथा आशा की जाती है कि निजी क्षेत्र मे भी इसका अनुकरण किया जायगा। अधिनियम को उचित ढंग से कार्यान्वित करने की भी आवश्यकता है और तीसरी पचवर्षीय आयोजना में भी इस ओर संकेत किया गया है कि अनेक उद्योगो मे तथा स्थानों पर यह अधिनियम प्रभावात्मक रूप से लागू नही किया गया है।

न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिये आदर्श सिद्धान्त (Norms)

न्यूनतम मजदूरी सलाहकार समिति की सिफारिशो पर तथा औद्योगिक अधिकरणों के विभिन्न निर्णयों को देखते हुए सरकार ने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारित करने के लिये कुछ सामान्य सिद्धान्त बनाये है। इन मे एक मुख्य सिद्धान्त यह है कि न्यूनतम मजदूरी केवल जीवन-निर्वाह के लिये ही पर्याप्त नहीं होनी चाहिए वरन् इतनी होनी चाहिये कि श्रमिक शिक्षा, चिकित्सा और अन्य सुविधाओ के द्वारा अपनी कार्यकुशलता बनाये रख सके। इसके अतिरिक्त न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करते समय मानवीय आवश्यकताओं, परिवार के जीविकोपार्जन करने वाले सदस्यो की सख्या, निर्वाह खर्च, प्रचलित मजदूरी दर, आदि का भी ध्यान रखना चाहिये और इससे क्षेत्र की प्रचलित मजदूरी में कोई विघ्न नहीं पड़ना चाहिये। एक वयस्क श्रमिक की मजदूरी साधारणतया १·१२ रुपये से लेकर २ रुपये प्रतिदिन तक होनी चाहिये। वह मजदूरी सब सम्मिलित दर के हिसाब से होनी चाहिये जिसमे महगाई भत्ता आदि भी सम्मिलित होना चाहिये। न्यूनतम मजदूरी कुशल, अर्द्ध-कुशल और अकुशल सभी प्रकार के श्रमिकों के लिये प्रत्येक क्षेत्र मे निर्धारित होनी चाहिये।

भारतीय श्रम सम्मेलन के १५ वें अधिवेशन मे, जो नई देहली में ११ व १२ जुलाई १९५७ में हुआ, एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किया गया। इस प्रस्ताव द्वारा यह प्रथम बार स्पष्ट किया गया है कि न्यूनतम मजदूरी का आधार 'आवश्यकता' होना चाहिए और मजदूरी इतनी होनी चाहिए कि औद्योगिक श्रमिकों को

न्यूनतम मानवीय आवश्यकताओ की पूर्ति का आश्वासन रहे। मजदूरी निर्धारित करने वाले प्राधिकारियो के मार्ग प्रदर्शन के लिये, जिनमे मजदूरी समितियाँ, मजदूरी बोर्ड, विवाचक आदि सम्मिलित है, निम्नलिखित आदर्श नियम निर्धारित किये गये हैं—(i) न्यूनतम मजदूरी गणना करते समय एक सामान्य श्रमिक परिवार मे एक धनोपार्जन करने वाले व्यक्ति पर निर्भर तीन एसे सदस्य माने जाने चाहिएँ जिनको उपभोक्ता इकाई (Consumption Units) कहा जा सकता है। इस सम्बन्ध मे स्त्रियो बच्चो और किशोरो द्वारा यदि कोई आय होती है तो उसे सम्मिलित करना चाहिए। (ii) न्यूनतम भोजन की आवश्यकताओ की गणना के लिए एक साधारण कार्य करने वाले औसत वयस्क भारतीय के लिए कैलोरी की मात्रा का आधार वही माना जाना चाहिये जिसका सुझाव डाक्टर एक्रोड ने दिया था (२६०० कैलोरी प्रतिदिन)। (iii) कपडे की आवश्यकता की गणना इस आधार पर की जानी चाहिए कि प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति १८ गज कपडा चाहिये। इस आधार पर चार सदस्यो वाले औसत श्रमिक परिवार के लिए कुल ७२ गज कपडे की प्रति वर्ष आवश्यकता मानी जानी चाहिए। (iv) मकानों के सम्बन्ध मे यह कहा गया कि न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करते समय उस किराये को ध्यान मे रखना चाहिये जो सरकार की औद्योगिक आवास योजना के अन्तर्गत न्यूनतम क्षेत्र के लिए निर्धारित किया जाता है। (v) ईंधन, रोशनी और अन्य विभिन्न मदो पर व्यय के लिए कुल न्यूनतम मजदूरी का २० प्रतिशत माना जाना चाहिए। प्रस्ताव मे यह भी कहा गया था कि यदि कही भी न्यूनतम मजदूरी ऊपर लिखे आदर्श सिद्धान्तो के हिसाब से कम निश्चित की जाये तो मजदूरी निश्चित करने वाली व्यवस्था का यह कर्त्तव्य होगा कि वह उन अवस्थाओ को न्यायोचित सिद्ध करे जिनके कारण वह उपरोक्त आदर्श नियमो का पालन करने मे असमर्थ हो। उचित मजदूरी के सम्बन्ध मे यह सुझाव दिया गया कि उचित मजदूरी समिति की रिपोर्ट की सिफारिश को आधार मानकर मजदूरी बोर्डों को प्रत्येक उद्योग की सभी बातो को विस्तृत रूप से देखना चाहिये।

इस प्रस्ताव को बहुत महत्वपूर्ण माना गया है क्योकि इसने प्रथम बार न्यूनतम मजदूरी के समस्त विचार को एक ठोस आधार प्रदान किया है। मजदूरी बोर्ड अपनी सिफारिशें करते समय प्रस्ताव मे दिये गये आदर्श नियमो को ध्यान मे रखते है। १९६५ मे, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम १९४८ के प्रशासन से सम्बन्धित विभिन्न मामलो का व्यापक सर्वेक्षण करने के लिये भारत सरकार ने एक व्यक्ति की समिति का निर्माण किया। समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है जो कि सरकार के विचाराधीन है।

कृषि श्रमिको के लिये न्यूनतम मजदूरी—इसकी बाधाये

अधिनियम की अनुसूची भाग II खेतीहर श्रमिको से सम्बन्धित है। किन्तु खेतीहर श्रमिको की न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की समस्या फैक्टरियो के

श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने से अधिक जटिल है। हमें देश के विभिन्न भागों में खेतीहर मजदूरी के बहुत कम आँकड़े उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त कृषि-कार्यों में कार्य दिवस के कार्य घण्टों का निश्चित करना सरल कार्य नहीं है। खेतीहर श्रमिकों का कार्य ऐसा है कि वह नियमित रूप से नहीं किया जा सकता तथा साधारणतया एक ही श्रमिक खेती की विभिन्न क्रियाओं में भिन्न-भिन्न कार्य करता है। इसके अतिरिक्त ग्रामों में अधिकतर मजदूरी जिन्स में दी जाती है जिसका मूल्य नकदी में निर्धारित करना कठिन हो जाता है। फिर, छोटे-छोटे जमीदारों की बहुत अधिक संख्या है, जिन्हें इस अधिनियम को कार्यान्वित करना होगा। छोटे-छोटे जमीदारों की अत्यधिक संख्या ऐसे किसी अधिनियम को लागू करने में बहुत अधिक कठिनाई उत्पन्न करेगी। भारत में कृषकों को रजिस्टर तथा लेखा रखने का न तो कोई ज्ञान ही होता है न ही इस सम्बन्ध में कोई रुचि होती है, जबकि यह ज्ञान तथा रुचि अधिनियम को लागू करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अतः यह उचित था कि न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने का प्रश्न उस समय तक स्थगित कर दिया जाता जब तक कि पूर्ण जाँच न कर ली जाये तथा कृषि श्रमिकों में प्रचलित मजदूरी तथा उनकी दशाओं के विषय में आँकड़े एकत्रित न कर लिये जायें। अतः इस विषय में एक अखिल भारतीय कृषि श्रमिक जांच १९५०-५१ में की गई थी। इस जाँच की रिपोर्ट भी प्रकाशित हो गई है तथा अगस्त १९५६ में एक दूसरी अखिल भारतीय कृषि श्रमिक जाँच आरम्भ की गई जो अब पूर्ण हो चुकी है। (देखिये कृषि श्रमिक का अध्याय) इसका ऊपर उल्लेख हो चुका है कि न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की तिथि ३१ दिसम्बर १९५९ तक बढ़ा दी गई थी। अब इस विषय में राज्य सरकारों को छूट दे दी गई है कि वे आवश्यकतानुसार न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर सकती है।

लगभग समस्त राज्यों में कृषि श्रमिकों के हेतु न्यूनतम मजदूरी की दरें निश्चित कर दी गई है। यद्यपि कुछ राज्यों में इसके कुछ विशेष क्षेत्र ही लिए गये है। केन्द्र सरकार के कृषि फार्मों, सैनिक फार्मों तथा संस्थाओं से सम्बन्धित फार्मों में न्यूनतम मजदूरियाँ निश्चित कर दी गई है। उत्तर प्रदेश में १९५१ में एक समिति की सिफारिशों के अनुसार कृषक श्रमिकों के लिये न्यूनतम मजदूरी १२ पूर्वी जिलों (जिन जिलों को कम मजदूरी वाले जिले कहा जाता है) के ५० एकड़ या उससे अधिक के खेतों में कार्य करने वाले श्रमिकों के लिये निर्धारित कर दी गई थी। तत्पश्चात् इन १२ जिलों में सभी खेतों के श्रमिकों के लिये न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दी गई। उत्तर प्रदेश के अन्य जिलों में ५० एकड़ या उससे अधिक के खेतों में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दी गई परन्तु ४ पहाड़ी जिलों को छोड़ दिया गया। मजदूरी की दरें निम्नलिखित है—वयस्कों के लिये १ रुपया प्रतिदिन अथवा २५ रुपये प्रतिमाह तथा १८ वर्ष की आयु से कम के व्यक्तियों के लिए ६२ पैसे प्रतिदिन अथवा १६ रुपये प्रतिमाह। इसके पश्चात् सब जिलों और फार्मों में न्यूनतम दरों को लागू कर दिया गया है। बालकों के लिये दर ६२ पैसे

प्रतिदिन अथवा १६·२५ रुपये प्रति माह निश्चित की गई है। अगस्त १६५८ से नैनीताल जिले के तराई और भाभर क्षेत्र के ५० एकड या अधिक के सभी सगठित कृषि फार्मों पर भी न्यूनतम मजदूरी की उपरोक्त दर लागू कर दी गई है। दिसम्बर, १६६० से अन्य पहाडी जिलो मे भी न्यूनतम मजदूरी इसी दर से निर्धारित कर दी गई है। न्यूनतम मजदूरी नकदी या जिन्स या दोनो मे दी जा सकती है। उत्तर प्रदेश मे अब दरें १ रुपये से १.५० रुपये तक निश्चित की गई हैं। कुछ राज्यो मे दरें १ रुपया प्रतिदिन से कम हैं।

कृषि श्रमिको के लिये न्यूनतम मजदूरियो के प्रश्न पर अगस्त १६६५ में गोष्ठी में विचार किया गया था। गोष्ठी मे सिफारिश की गई कि किसी भी कृषि-कार्य के लिए मजदूरी की न्यूनतम दरें १ रुपये प्रतिदिन से कम नहीं होनी चाहिये और सम्बन्धित सरकारो को ऐसी कमेटियाँ नियुक्त करनी चाहिएँ जो इस बात का निश्चय करें कि क्या मजदूरी की ऊँची न्यूनतर दरें निर्धारित की जा सकती है। गोष्ठी मे लागू करने की यथेष्ठ मशीनरी की व्यवस्था करने की भी सिफारिश की। राज्य सरकारो का ध्यान इस ओर दिलाया जा रहा है कि वे इन सिफारिशो पर आवश्यक कार्रवाई करें।

अत इस प्रकार भारत मे श्रमिको के लिये न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की दिशा मे कार्य प्रारम्भ हो गया है। यह पूर्णरूप से आशा की जाती है कि मजदूरी निश्चित करने की व्यवस्था शनै शनै सुधरेगी तथा एक समान मूल मजदूरी दर का प्रादुर्भाव होगा और उसका कार्यान्वित होना भी सम्भव होगा।

न्यूनतम मजदूरी के प्रश्न से सम्बन्धित मजदूरी के समानीकरण की भी समस्या है तथा "उचित मजदूरी' की परिभाषा देने तथा उसे लागू करने की समस्या भी है। सबसे पहले हम "उचित मजदूरी" के प्रश्न पर विचार करेंगे।

उचित मजदूरी की समस्या (The Problem of a Fair Wage)

उचित मजदूरी की समस्या एक महत्वपूर्ण समस्या है। प्रत्येक देश में अर्थशास्त्रियो ने इस समस्या पर विचार किया है। युद्ध के पश्चात् उत्पादन मे वृद्धि करने के लिये ऐसी सभी सम्भावनाओ पर विचार किया गया है जिनसे देश मे श्रमिको तथा प्रबन्धको के सम्बन्धो में सुधार हो सके। यह सब ही मानते है कि श्रमिको तथा प्रबन्धको के व्यवहार तथा दृष्टिकोण मे केवल मनोवैज्ञानिक परिवर्तन ही नहीं होना चाहिये वरन् कुछ ऐसे स्पष्ट प्रमाण भी प्रस्तुत किये जाने चाहियें जिनसे ऐसा प्रतीत हो कि मालिक तथा उद्योगो के प्रबन्धक श्रमिको के प्रति उचित व्यवहार रखते हैं। इस प्रकार ही सघर्षों के मूल कारणो को दूर किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण समस्यायें लाभ सहभाजन तथा उचित मजदूरी की है। यह समस्यायें १६४७ के उद्योग-सम्मेलन मे उस समय प्रकाश मे आयी जिस समय औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव पारित हुआ था। इस सम्मेलन मे यह प्रस्ताव पारित किया गया था कि पूंजी के प्रतिफल तथा श्रमिक के पारिश्रमिक देने की प्रणाली की इस प्रकार व्यवस्था की जानी चाहिये कि पूँजीपति तथा

श्रमिक, दोनों को ही अपने संयुक्त प्रयत्न से किये गये उत्पादन में उचित भाग मिलता रहे। उपभोक्ताओं तथा मूल उत्पादकों के हित को ध्यान में रखते हुये, कर लगाकर एवं अन्य तरीकों द्वारा अत्यधिक लाभ पर रोकथाम लगाई जा सकती है। श्रमिक को उचित मजदूरी मिलने की व्यवस्था भी इसके साथ ही होनी चाहिये। उद्योग में लागू पूंजी पर उचित प्रतिफल मिलने तथा व्यवसाय को विस्तृत करने व उसे कायम रखने के लिए समुचित आरक्षित निधि (Reserve Fund) की भी व्यवस्था होनी चाहिये। ६ अप्रैल १९४८ को केन्द्रीय सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति के वक्तव्य में इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था। लाभ सहभाजन की समस्या की जाँच करने के लिये एक समिति भी नियुक्त की गई थी। इस समिति ने १९४८ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी थी। केन्द्रीय सलाहकार परिषद् ने एक 'उचित मजदूरी समिति' भी नियुक्त की जिसकी रिपोर्ट १९४९ में प्रकाशित हुई। जून १९५० में इसकी सिफारिशों के आधार पर एक विधेयक का मसौदा तैयार करके संसद् में प्रस्तुत किया गया। परन्तु यह विधेयक स्वीकृत न हो सका और 'व्यपगत (Lapse) हो गया। संविधान में इस बात का उल्लेख है कि राज्य को इस बात का प्रयास करना होगा कि समस्त श्रमिकों को पर्याप्त मजदूरी मिलती रहे। मजदूरी बोर्ड और अधिकरण मजदूरी निर्धारित करते समय उचित मजदूरी समिति की सिफारिशों को ध्यान में रखते हैं।'

उचित मजदूरी क्या है ? इसके बारे में विभिन्न विचार

उचित मजदूरी समिति की रिपोर्ट में उचित मजदूरी पर विभिन्न दृष्टिकोण से बड़ा रोचक अध्ययन किया गया है। समिति के शब्दों में "राष्ट्रीय आय की स्थिति को मजदूरी की समस्या से सबसे अधिक सम्बद्ध (Relevant) कहा जा सकता है क्योंकि किसी भी मजदूरी नीति को उस समय तक न्यायोचित और आर्थिक दृष्टि से ठोस नहीं कहा जा सकता जब तक उस नीति द्वारा राष्ट्रीय आय में वृद्धि नहीं होती और उस वृद्धि में से श्रमिकों को वैध अथवा उचित भाग नहीं मिलता।" प्रथम तो यही प्रश्न सामने आता है कि 'उचित मजदूरी क्या है ?' उचित मजदूरी की परिभाषा सीधी एवं सरल भाषा में देना बहुत कठिन है। उचित मजदूरी को निश्चित करने में देश की विभिन्न परिस्थितियों और देश के विभिन्न उद्योगों एवं क्षेत्रों की परिस्थितियों को दृष्टि में रखना आवश्यक है। "एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज" नामक पुस्तक के अनुसार 'उचित मजदूरी श्रमिकों द्वारा प्राप्त उस मजदूरी को कहते हैं जो उनको एक समान (Equal) कुशल, कठिन और अरुचिकर कार्य करने के लिये मिलती है, किन्तु यह परिभाषा इस बात को मानकर चलती है कि देश की आर्थिक स्थिति की दृष्टि से किसी भी विशेष औद्योगिक संस्था में एक ऐसे आदर्श स्तर बनाने की आवश्यकता है जिस स्तर के अनुसार एक समान तथा एक ही स्थिति के उद्योगों में मजदूरी निश्चित की जा सके। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ ने "न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने

की व्यवस्था (Minimum Wage Fixing Machinery) के नाम से एक सिफारिश की थी। इसमें भी न्यूनतम मजदूरी को निश्चित करने के लिये लगभग इसी प्रकार की पद्धति का सुझाव है। परन्तु उसमें एक अन्य सुझाव यह भी है कि जो भी उद्योग इस हेतु छाँटा जाये कि उसके आधार पर न्यूनतम मजदूरी का स्तर दूसरे उद्योगों तथा व्यवसायों के लिये बनाया जा सके वह उद्योग ऐसा होना चाहिए जिसमें श्रमिक पर्याप्त रूप से संगठित हों और जिसमें सामूहिक समझौते प्रभावशाली हों। यदि ऐसा स्तर निर्धारित करने वाला उद्योग न मिल तो देश में प्रचलित साधारण मजदूरी अथवा किसी क्षेत्र विशेष की मजदूरी को न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने के लिए स्तर मान लेना चाहिए।

यदि हम इस विषय पर अर्थशास्त्र सम्बन्धी साहित्य पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि अर्थशास्त्रियों ने भी किसी विशेष उद्योग में ही एक आदर्श या स्तर को मानकर उचित मजदूरी की परिभाषा देना ठीक समझा है। 'मार्शल' के अनुसार किसी व्यवसाय में मजदूरी की प्रचलित दर को उस समय ही उचित मजदूरी कहा जा सकता है जब यह मजदूरी लगभग उस मजदूरी के स्तर पर हो जो अन्य व्यवसायों में उन कार्यों के करने के लिए औसत रूप से दी जाती है जो कार्य एक सी कठिनाई एवं एक सी अरुचि के हों तथा जो एक सी दुर्लभ प्राकृतिक योग्यता (Equally Rare Natural Abilities) वाले कार्य हों अथवा जिनमें एक सी लागत वाले प्रशिक्षण की आवश्यकता हो। प्रो० पीगू ने भी उचित मजदूरी का विस्तृत एवं संकुचित दोनों दृष्टि से परिभाषा की है। संकुचित दृष्टि से मजदूरी दर को उस समय उचित कहा जाएगा जब मजदूरी उस चालू दर के बराबर हो जो एक ही प्रकार के श्रमिकों को वैसे ही व्यवसाय में तथा आस पास के क्षेत्रों में मिलती है। विस्तृत दृष्टिकोण के अनुसार मजदूरी उचित तभी होगी जब मजदूरी दर सम्पूर्ण देश में एवं अधिकतर व्यापारों में एक जैसे कार्य के लिये जो अधिकतर प्रचलित दर हो उसके बराबर हो। कुछ स्थानों और रोजगारों में मजदूरी अनुचित हो सकती है क्योंकि यदि वहाँ के उपस्थित श्रमिकों के सीमान्त निवल उत्पादन मूल्य के बराबर भी यदि मजदूरी हो फिर भी यह सम्भव है मजदूरी सीमान्त निवल उत्पादन मूल्य के बराबर न हो और इस प्रकार मजदूरी अन्य स्थानों पर उपस्थित श्रमिकों की मजदूरी दर के बराबर न हो। मजदूरी इस कारण भी अनुचित हो सकती है कि श्रमिकों का उनकी अज्ञानता के कारण शोषण होता हो और उन्हें सीमान्त निवल उत्पादकता के अनुसार मजदूरी न मिलती हो।

पर्याप्त, न्यूनतम एवं उचित मजदूरी
(Living, Minimum and Fair Wages)

उचित मजदूरी पर प्रचलित विचारों को ठीक प्रकार से समझने के लिए पर्याप्त एवं न्यूनतम मजदूरी के बीच अन्तर करना आवश्यक है। न्यूनतम मजदूरी

की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—"न्यूनतम मजदूरी वह मजदूरी है जो न केवल निर्वाह के लिए ही पर्याप्त हो वरन् उससे कुछ अधिक भी हो।" समिति का कहना है कि "हमारे विचार से न्यूनतम मजदूरी न केवल निर्वाह के लिये पर्याप्त होनी चाहिये वरन् श्रमिक की कार्य-कुशलता को कायम रखने के लिये भी पर्याप्त होनी चाहिये। इस उद्देश्य से न्यूनतम मजदूरी इतनी अवश्य होनी चाहिये कि इससे शिक्षा, आवश्यक चिकित्सा एवं कुछ सुविधाओं की व्यवस्था भी की जा सके।" अब प्रश्न यह उठता है कि पर्याप्त मजदूरी क्या है? इसका स्तर न्यूनतम मजदूरी के स्तर से ऊँचा होना चाहिये। समिति के शब्दों में: "इस बात से सब सहमत हैं कि न्यूनतम मजदूरी इतनी होनी चाहिये कि पुरुष श्रमिक को अपने व अपने परिवार के लिये न केवल आवश्यक भोजन, वस्त्र एवं आवास ही प्राप्त हो सके, वरन् यह मजदूरी इतनी अवश्य हो कि श्रमिक पर्याप्त सुख में जीवन व्यतीत कर सके, अपने बच्चों को शिक्षा प्रदान कर सके, अस्वस्थता के समय उपचार कर सके, उसकी जरूरी सामाजिक आवश्यकतायें भी पूरी हो सकें तथा बुढ़ापे एवं अन्य महत्वपूर्ण संकटों के लिये बीमा आदि की व्यवस्था भी की जा सके।"

उपरोक्त विवेचन के आधार पर अब हम उचित मजदूरी के प्रश्न पर पुनः विचार कर सकते हैं। समिति के अधिकांश सदस्यों के मतानुसार उचित मजदूरी, पर्याप्त मजदूरी और न्यूनतम मजदूरी के मध्य, किसी बिन्दु पर निश्चित होनी चाहिये। फिर भी समिति के कुछ सदस्य न्यूनतम मजदूरी की सीमा से आगे बढ़ने को तैयार नहीं हैं और कुछ सदस्य पर्याप्त मजदूरी से कम किसी भी मजदूरी को उचित मजदूरी मानने के लिये तैयार नहीं हैं। समिति के अधिकांश सदस्यों का यह विचार कि उचित मजदूरी न्यूनतम मजदूरी से तनिक अधिक और पर्याप्त मजदूरी से तनिक कम होनी चाहिए, ऐसे ही विचार का अनुमोदन है जो प्राय अन्य क्षेत्रों में भी प्रचलित है। भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का विचार है कि "उचित मजदूरी पर्याप्त मजदूरी को धीरे-धीरे प्राप्त करने की ओर उठा हुआ एक कदम है।" उचित मजदूरी के प्रश्न पर बम्बई सरकार के विचार भी उल्लेखनीय हैं, "यदि प्रतियोगात्मक (Competitive) परिस्थितियों में कोई भी उद्योग पर्याप्त मजदूरी दे सकने में समर्थ हो सकता है तो पर्याप्त मजदूरी से कम कोई भी मजदूरी उचित नहीं हो सकती। न्यूनतम मजदूरी तो ऐसा स्तर निर्धारित कर देती है जिससे कम तो मजदूरी हो ही नहीं सकती अर्थात् यह एक ऐसी न्यूनतम सीमा बना देती है जिससे कम मजदूरी किसी श्रमिक को नहीं दी जानी चाहिए। ...उचित मजदूरी न्यूनतम से ऊपर निश्चित की जाती है और पर्याप्त मजदूरी को पाने के लिये जिस प्रक्रिया (Process) का होना आवश्यक है वह उचित मजदूरी द्वारा ही होती है।

उचित मजदूरी कैसे निश्चित की जाय?

उचित मजदूरी का अर्थ समझ लेने के पश्चात् इस बात पर विचार करना आवश्यक हो जाता है कि उचित मजदूरी को कार्यान्वित करने के लिए कौन-

व्यावहारिक प्रणाली अपनाई जाय। समिति के विचारानुसार उचित मजदूरी की कम से कम सीमा तो न्यूनतम मजदूरी द्वारा निश्चित हो जाती है किन्तु उच्चतम सीमा उद्योग की भुगतान क्षमता द्वारा निर्धारित होती है। वह भुगतान क्षमता निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है–(i) श्रमिकों की उत्पादकता, (ii) मजदूरी की प्रचलित दर, (iii) राष्ट्रीय आय का स्तर तथा उसका वितरण, (iv) देश की आर्थिक व्यवस्था में उस उद्योग का स्थान। न्यूनतम मजदूरी का विस्तृत विवरण ऊपर दिया जा चुका है। अब हम उद्योग की भुगतान क्षमता की समस्या का विवेचन करेंगे क्योंकि इस महत्वपूर्ण समस्या पर भी सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है।

उद्योग की भुगतान क्षमता (Capacity of Industry to Pay)

किसी उद्योग की उत्पादकता ही एक ऐसा स्रोत है जिससे मजदूरी दी जाती है। न तो शक्तिशाली श्रमिक संघ के दबाव से और न ही राज्य की किसी व्यवस्था द्वारा कुछ हेरफेर करके असल मजदूरी को उद्योग की भुगतान क्षमता से अधिक बढ़ाया जा सकता है। यह केवल अस्थायी रूप से शायद हो सके वरना, यदि मजदूरी को उद्योग की भुगतान क्षमता से अधिक बढ़ाने के प्रयत्न किये जायेंगे तो, बेरोजगारी, मुद्रास्फीति (Inflation) आदि जैसे कुछ दुःखदायी परिणाम प्रकट हो जायेंगे। यदि किसी समय एक उद्योग में मजदूरी इतनी अधिक बढ़ा भी दी जाय कि उस उद्योग में मशीनरी के घिस जाने पर भी उसे पूर्णरूप से बदला न जा सके, तब इसका परिणाम यह होगा कि उत्पादन कम हो जायगा और इसके फलस्वरूप भविष्य में मजदूरी गिर जायगी। कोई भी उद्योग अपनी भुगतान क्षमता से अधिक मजदूरी तभी दे सकता है जब उस उद्योग को सरकार द्वारा उपदान (Subsidy) दिया जाता हो। परन्तु इसका अर्थ यह होगा कि अन्य उद्योगों की भुगतान क्षमता को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कम कर दिया जाता है। यह भी सम्भव है कि यदि कोई उद्योग किसी ऐसी कठिनाई में ग्रस्त हो, जिससे उसे छुटकारा मिलने की शीघ्र ही सम्भावना हो तब अस्थायी काल के लिये वह अपनी भुगतान क्षमता से अधिक मजदूरी देने के लिये तैयार हो जाय।

श्रमिकों द्वारा जब भी ऊँची दर पर मजदूरी की माँग की जाती है तभी मालिक यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि उद्योग ऊँची मजदूरी देने की परिस्थितियों में नहीं है। दूसरी ओर श्रमिक यह तर्क देते हैं कि ऊँची दर से मजदूरी देने में 'बचत' होती है। श्रमिक कहते हैं कि अधिक मजदूरी वास्तव में कम मजदूरी है। 'ऊँची दर से मजदूरी देने में बचत होती है' इस कथन का आधार यह है कि मजदूरी जितनी ऊँची होगी उद्योग की भुगतान क्षमता उतनी ही अधिक होगी क्योंकि ऊँची मजदूरी के साथ-साथ श्रमिकों की कार्य-कुशलता में भी वृद्धि होगी और इसलिये प्रति इकाई उत्पादन लागत भी घटेगी। अब इसके परिणामस्वरूप उत्पादन की उन्नत पद्धतियों को भी अपनाया जा सकेगा। साथ ही साथ मूल्यों में भी कमी होगी, वस्तुओं की

माँग बढ़ेगी, बाजार विस्तृत होंगे और इससे उत्पादन में पुन: वृद्धि होगी। यह चक्र इस प्रकार ही चलता रहेगा और अन्त में इन सब बातों के फलस्वरूप मालिकों को अथाह लाभ होगा। इस प्रकार उद्योग की भुगतान क्षमता भी अधिक से अधिक होती जायेगी।

उद्योग की भुगतान क्षमता क्या है यह निश्चित करने में अन्य कुछ बातें भी ध्यान में रखनी चाहिएँ। कम आय वाले श्रमिकों की मजदूरी तब ही बढ़ायी जा सकती है जब सब श्रमिकों की मजदूरी का पुन: वितरण कर दिया जाय जिससे कि न्यूनतम आय वाले श्रमिकों को अधिक मजदूरी मिल सके तथा अधिकतम आय वाले श्रमिकों की मजदूरी कम हो जाये। परन्तु ऐसा तभी सम्भव है जबकि कुशल श्रमिकों की मजदूरी बहुत अधिक हो और उसमें कुछ कमी करने की सम्भावना हो। इसके अतिरिक्त यह समस्या भी उठती है कि भुगतान-क्षमता का निर्णय उद्योग की किस प्रकार की फर्म के अनुसार किया जाना चाहिये। डा० मार्शल का "प्रतिनिधि फर्म" (Representative Firm) का विचार भी इस मामले में कुछ अधिक सहायक नहीं है। क्योंकि यह प्रश्न उठता है कि यह प्रतिनिधि फर्म किसी फर्म के आकार का प्रतिनिधित्व करती है या उसकी लागत का। जब लागत का प्रश्न उठता है तो लाभ की समस्या सामने आ जाती है, जिसका समाधान आवश्यक है। मालिक तो सदा सामान्य लाभ पर जोर देंगे और श्रमिक उसका सदैव विरोध करेंगे। एक प्रश्न यह भी उठता है कि उद्योग की भुगतान-क्षमता का अर्थ किसी विशेष उद्योग इकाई की भुगतान क्षमता से है अथवा किसी विशेष सम्पूर्ण उद्योग की भुगतान क्षमता से है अथवा देश के समस्त उद्योगों की भुगतान क्षमता से है। उद्योग की भुगतान-क्षमता के प्रश्न को तय करने से पूर्व इन सब ही कठिनाइयों को ध्यान में रखना होगा।

इस समस्या पर उचित मजदूरी समिति ने अपने विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त किये हैं। उसके शब्दों में . "हमारा विचार यह है कि उद्योग की भुगतान-क्षमता का निश्चय करते समय किसी विशेष उद्योग इकाई या देश के समस्त उद्योगों की भुगतान क्षमता को लेना गलत होगा। इसका उचित आधार तो किसी निर्धारित क्षेत्र के किसी विशेष उद्योग की भुगतान क्षमता होनी चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो उस क्षेत्र के उस उद्योग की समस्त इकाइयों में एक समान मजदूरी निर्धारित होनी चाहिए। मजदूरी निश्चित करने वाले बोर्ड के लिये यह सम्भव नहीं है कि वह प्रत्येक क्षेत्र के किसी उद्योग की प्रत्येक इकाई की भुगतान क्षमता को नापे और व्यावहारिक रूप से यही उचित है कि उस उद्योग का एक उचित मिश्रित (Gross) भाग लेकर मजदूरी निर्धारित की जाये।" परन्तु फिर यह प्रश्न उठता है कि इस भुगतान-क्षमता को नापा कैसे जाए ? इस सम्बन्ध में यह सुझाव दिया गया है कि भुगतान-क्षमता के दो आधार हैं (क) पूँजी पर उचित प्रतिफल और प्रबन्धकर्त्ताओं को उचित पारिश्रमिक, (ख) उद्योग को स्वस्थ दशा में रखने के लिए आरक्षित निधि तथा मूल्य ह्रास (Depreciation) के लिए धन की उचित

व्यवस्था। समिति के विचार स एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त जिसका मजदूरी का स्तर निर्धारित करन क सम्बन्ध म पालन किया जाना चाहिए, यह है कि मजदूरी स्तर एसा हो जिससे कि उद्योग अधिक रोजगार दे सके और दक्षता-पूर्वक उत्पादन को कायम रख सके। किसी विशेष उद्योग म मजदूरी निश्चित करने क लिए इस तथ्य का भी ध्यान रखना चाहिए कि एसी मजदूरी उस क्षेत्र क अन्य उद्योगो म प्रचलित मजदूरी स बहुत भिन न हो। मजदूरी की समस्या म अन्तिम निष्कर्ष यही निकलता है कि श्रमिकों की मजदूरी राष्ट्रीय आय स्तर और इस आय के विभाजन पर निर्भर करती है। तथापि यह तो एक साधारण नियम है कि व्यवहार म श्रमिकों की मजदूरी प्रत्येक उद्योग विशेष की परिस्थितियो के अनुसार तथा उस उद्योग का देश की अर्थ व्यवस्था म क्या स्थान है, इस बात पर निर्भर होनी चाहिए।

उत्पादकता तथा लागत स सम्बन्धित मजदूरी की समस्या

अब हमारे सम्मुख यह समस्या आती है कि मजदूरी का उत्पादन-लागत स क्या सम्बन्ध है। मजदूरी एव लागत का सम्बन्ध व्यावहारिक रूप से अत्यन्त महत्व पूर्ण है। श्रमिको के पक्षपाती यह तक देते है कि ऊँची मजदूरी स उत्पादकता बढ़ती है और परिणामस्वरूप लागत घट जाती है। दूसरी ओर मालिक यह कहते है कि मजदूरी म बढोतरी स उत्पादन की लागत बढती है। समस्या यह है कि ऊँची मजदूरी से कार्य कुशलता बढ़ती है या नही तथा ऊँची मजदूरी के साथ साथ उत्पादकता किस सीमा तक एव किस गति से बढ़ती है?

यह इस बात पर निर्भर करेगी कि जिस वर्ग स श्रमिक सम्बन्धित है उस *वर्ग क व्यक्तियों का आदर्श जीवन स्तर कैसा है। आदर्श जीवन स्तर की परिभाषा* इस प्रकार की जा सकती है कि यह वह स्तर है जिसके फलस्वरूप अधिकतम कार्य कुशलता एव न्यूनतम लागत प्राप्त होती है। परन्तु यह कहना कठिन है कि एसा स्तर क्या होगा? यह स्तर जलवायु जीवन के संस्कारों रिवाजो सामाजिक परम्पराओं, धार्मिक एव नैतिक विचारो द्वारा निर्धारित होता है। इन आदर्श जीवन-स्तरों का अन्तर ही विभिन्न देशो मे समान कार्य कुशलता के होते हुये भी विभिन्न मजदूरी दरों के प्रचलित होने का एक कारण है। किसी भी देश म ऊँची मजदूरी अधिक कार्य कुशलता ला सकती है परन्तु एक सी कार्य कुशलता होने पर या एक सी लागत आने पर भी यह आवश्यक नही है कि विभिन्न देशो मे या विभिन्न वर्गों को एक सी ही ऊँची मजदूरी दी जाय। इसके अतिरिक्त उस कार्य कुशलता की भी एक सीमा है जो मजदूरी मे वृद्धि करने से प्राप्त की जा सकती है। मजदूरी को असीमित प्रकार स बढ़ाने स लागत असीमित रूप स नही घटाई जा सकती। इस सम्बन्ध मे भी एक इष्टतम बिन्दु (Optimum point) होता है जो कुछ विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत उच्चतम जीवन स्तर को इंगित करता है। परन्तु यह बिन्दु भी जीवन को सुखमय बनाने के हेतु किये गये नये नये

आविष्कारों के साथ-साथ आगे बढ सकता है। इसके अतिरिक्त यदि श्रमिक इतनी कम मजदूरी अर्जित कर रहे हों कि उनके जीवन की महत्वपूर्ण आवश्यकतायें भी पूर्ण नहीं होती तो मजदूरी मे तनिक सी वृद्धि भी उनकी कार्य-कुशलता को काफी बढा देगी। परन्तु यदि मजदूरी पहिले से ही इतनी है कि श्रमिकों को न केवल आवश्यकताएँ वरन् सुखमय जीवन भी उपलब्ध है तो मजदूरी मे वृद्धि होने से कार्य-कुशलता मे पहले जैसी बढोतरी नही होगी। अतः आरम्भ मे तो अधिक मजदूरी से लागत अधिक घट सकती है परन्तु कुछ समय पश्चात् लागत धीमी गति से घट सकेगी।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि मजदूरी बढने पर तुरन्त लागत का घटना आवश्यक नही है। मजदूरी को श्रमिकों के उस जीवन-स्तर से ऊँचा उठाने में, जिसका उनको अभ्यास पड गया है, कुछ समय लगता है। यदि जीवन-स्तर को ऊँचा कर भी दिया जाये तो भी श्रमिक के स्वास्थ्य एव साधारण बुद्धिमता के सुधारने मे कुछ समय लगेगा। यदाकदा ऊँची मजदूरी के फलस्वरूप बचत भी हो सकती है। इस बात पर भी विचार किया जाना चाहिए कि एक श्रमिक को अपनी आय से कितने व्यक्तियों का पालन करना पडता है। मजदूरी मे बढोतरी जीवन-स्तर पर, परिवार के आकार और सदस्यों की संख्या के अनुसार, पृथक्-पृथक् प्रभाव डालेगी। इसके अतिरिक्त मानसिक शक्ति, बुद्धिमता का स्तर एव शिक्षा इत्यादि भी विभिन्न जातियो मे भिन्न-भिन्न है और यह आवश्यक नही है कि मजदूरी वृद्धि से सब पर एक-सा ही प्रभाव पडे। फिर अधिकतर उद्योगो मे मजदूरी तो कुल लागत का छोटा-सा भाग होती है। किन्तु यह भी उद्योग की प्रकृति पर निर्भर करता है, अर्थात् कोई उद्योग छोटा है या विशाल, उस उद्योग को अधिक कुशल श्रमिक की आवश्यकता है या नही, आदि। उत्पादन की क्षमता न केवल व्यक्तिगत उपादानो (Factors) की कार्यकुशलता पर वरन् कुशल सम्मिश्रण (Combination) और समन्वय (Co-ordination) पर भी निर्भर है। इन बातो के कारण यह कहना अत्यन्त कठिन है कि मजदूरी और लागत मे क्या सम्बन्ध है। फिर भी चाहे मजदूरी का लागत पर प्रत्यक्ष प्रभाव कम हो परन्तु अप्रत्यक्ष प्रभाव बहुत अधिक होता है। पूँजी की वृद्धि देश मे मजदूरी के सामान्य स्तर से प्रभावित होती है। इन समस्त बातो को दृष्टि मे रखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ऊँची मजदूरी से लागत कम हो जाती है किन्तु यह तभी होता है जब इससे श्रमिक की कार्यकुशलता बढ़े। परन्तु इस प्रणाली से अधिकतम बचत सीमित मात्रा में ही हो सकती है।

उचित मजदूरी और आधार वर्ष (Base Year) की समस्या

उचित मजदूरी को निश्चित करने मे आधार वर्ष की समस्या का भी समाधान करना पड़ेगा। अनेक व्यक्तियों का सुझाव है कि १९३९ से १९४८ तक के समय के बीच कोई वर्ष आधार वर्ष नही माना जाना चाहिये क्योंकि उस समय

असाधारण आर्थिक परिस्थितियाँ थीं। उचित मजदूरी समिति के विचारो के अनुसार केन्द्रीय वेतन आयोग द्वारा लिये गये आधार को स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि १९३९ के निर्वाह लागत सूचकांक को १०० मानकर १६० से १७५ तक निर्वाह लागत सूचकांको के आधार पर मूल मजदूरी निश्चित की जानी चाहिए। किन्तु अब प्रश्न उठता है कि क्या महगाई भत्ता प्रदान करना चालू रखा जाय ? जब तक कि निर्वाह लागत १६० से १७५ के स्तर तक न गिर जाय तब तक तो निर्वाह लागत मे वृद्धि को आशिक या पूरे तौर पर पूरा करने के लिये महगाई भत्ता दिया ही जाना चाहिए। यह भी प्रश्न उठता है कि विभिन्न वर्गों के श्रमिको के लिए १००% क्षतिपूर्ति होनी चाहिए। परन्तु ऊँची मजदूरी पाने वाले श्रमिक वर्गो के लिए क्षतिपूर्ति की दर कम होनी चाहिए। इस क्षतिपूर्ति की सीमा भी वेतन दर आदि पर आधारित होनी चाहिये।

उचित मजदूरी निश्चित करने की व्यवस्था

जहा तक उचित मजदूरी निश्चित करने की व्यवस्था स्थापित करने का सम्बन्ध है समिति इसके लिये मजदूरी बोर्डो (Wage Boards) को स्थापित करने के पक्ष मे है। प्रत्येक राज्य के लिये एक प्रदेशीय बोर्ड होना चाहिए जिसमे स्वतन्त्र सदस्य एव बराबर सख्या मे मालिको व श्रमिको के प्रतिनिधि हो। प्रदेशीय बोर्ड के अतिरिक्त प्रत्येक ऐसे उद्योग मे जो कि मजदूरी नियन्त्रित करने के लिये चुना गया हो क्षेत्रीय बोर्ड होना चाहिये। क्षेत्रीय बोर्ड के कार्य का भी प्रदेशीय बोर्ड द्वारा समन्वय किया जाना चाहिये। अन्त मे एक केन्द्रीय अपीलीय बोर्ड होना चाहिए जिसके सम्मुख मजदूरी बोर्ड द्वारा दिये गये निर्णयो की अपील की जा सके।

सन् १९५० का उचित मजदूरी विधेयक (Fair Wages Bill of 1950)

यहाँ उल्लेख किया जा सकता है कि उचित मजदूरी समिति की सिफारिशो के आधार पर एक विधेयक तैयार करके अगस्त, १९५० मे विधान सभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। किन्तु अब वह व्यपगत (Lapse) हो गया है। सबसे प्रथम तो इस विधेयक मे फैक्ट्री एव खानो मे लगे श्रमिको मे उचित मजदूरी निर्धारित करने की व्यवस्था थी। इस विधेयक मे दी गई उचित मजदूरी मे एक मूल दर तथा निर्वाह लागत भत्ते का समायोजन था किन्तु यह समायोजन तभी तक था जब तक निर्वाह लागत सूचकांक १८५ से २०० तक की स्थिर सीमा से अधिक रहे (१९३९ के निर्वाह लागत सूचकांक को १०० मानकर)। निर्वाह भत्ता समय समय पर विशिष्ट राज्य सरकारो द्वारा निर्धारित आरोही स्तरो (Graduated Scale) के अनुसार निश्चित होना था। विधेयक मे मजदूरी अन्तरो को निश्चित करने के लिये, समयोपरि की गणना के लिये पुरुष एव स्त्रियो को समान मजदूरी देने के सिद्धान्त को निश्चित करने के लिये और समय-समय पर उचित मजदूरी को दोहराने के

लिये व्यवस्था थी। उचित मजदूरी का निर्धारण करने की व्यवस्था उचित मजदूरी समिति की सिफारिशों के अनुसार ही निश्चित की गई थी। कर्मचारियों के लिये मजदूरी की उचित दर किसी भी स्थिति में १९४८ के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत दी गई मजदूरी की न्यूनतम दरों से कम नहीं हो सकती थी। न्यूनतम मजदूरी की परिभाषा उसी प्रकार दी गई थी जिस प्रकार कि उचित मजदूरी समिति ने दी थी। उचित मजदूरी की परिभाषा एवं उद्योग की भुगतान क्षमता के प्रश्न भी उसी प्रकार लिये गये थे जिस प्रकार की समिति ने सिफारिश की थी। मजदूरी की उचित दर भी उस उचित कार्य की मात्रा से सम्बन्धित की गई थी, जिसको करने की श्रमिकों से आशा की जाती थी। मजदूरी कार्य की मात्रा के अनुसार निश्चित की जाने की व्यवस्था थी और अगर श्रमिक निर्धारित समुचित कार्यभार संभालने में असफल रहे, तो उसके आधार पर वह बरखास्त किया जा सकता था। जब उचित मजदूरी देने का विषय बोर्ड के विचाराधीन हो उस समय हड़ताल करने तथा तालाबन्दी घोषित करने पर रोक लगायी गई थी।

अब सरकार पुनः उचित मजदूरी विधेयक को संशोधित करने तथा उसे प्रस्तुत करने के विषय पर विचार कर रही है। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को पर्याप्त नहीं समझा जाता क्योंकि वह उन बड़े उद्योगों को अपने क्षेत्र में सम्मिलित नहीं करता जिनमें मजदूरी सम्बन्धी विवाद भी अन्य साधारण औद्योगिक विवादों के समान समझ लिये जाते हैं। फिर भी उद्योगपतियों ने इसका विरोध किया है और बढ़ती हुई लागत की आवाज उठाई है। यह कहा जाता है कि न्यूनतम मजदूरी को लागू करने में भी कठिनाई हुई है और अब उचित मजदूरी निश्चित करना तो एक हास्यास्पद सा पग होगा। परन्तु उचित मजदूरी निश्चित करने की वाञ्छनीयता इतनी अधिक है कि इस कार्य को अब अधिक समय के लिये स्थगित नहीं करना चाहिये। मजदूरी बोर्डों की नियुक्ति करते समय सरकार ने उचित मजदूरी समिति की रिपोर्ट की ओर विशेष रूप से ध्यान दिलाया है, ताकि मजदूरी निर्धारण करते समय इस रिपोर्ट में दिये गये सिद्धान्तों का ध्यान रखा जाए। इसके अतिरिक्त सरकार ने मजदूरी निर्धारण में निम्नलिखित बातों पर विचार करने के लिये कहा है—(क) विकासोन्मुख आर्थिक व्यवस्था (Developing Economy) में उद्योग की आवश्यकताएँ। (ख) सामाजिक न्याय की माँग। (ग) मजदूरी अन्तरों का समजन इस प्रकार से हो कि श्रमिकों को अपनी कुशलता बढ़ाने में प्रोत्साहन मिले।

पञ्चवर्षीय आयोजनायें तथा मजदूरी

प्रथम पञ्चवर्षीय आयोजना में मजदूरी नीति की महत्ता पर समुचित रूप से बल दिया गया था। परन्तु आयोजना मुद्रा-स्फीति वातावरण में बनी थी। इस कारण आयोजना आयोग के विचारानुसार मजदूरी में वृद्धि केवल असाधारण रूप से कम आय वाले उद्योगों के अतिरिक्त अधिक सहायक न थी क्योंकि उसका प्रभाव

उत्पादन मूल्य और साधारण मूल स्तर पर पडता। अत लाभ के वितरण पर रोक लगाने के साथ-साथ मजदूरी पर रोक लगाने का भी पक्ष लिया गया। आयोजना मे यह भी सिफारिश थी कि सरकारी एव निजी उद्योगो मे मजदूरी समान रहनी चाहिये, त्रिदलीय आधार पर बने स्थायी मजदूरी बोर्ड होने चाहिये। मजदूरी की असमानताए दूर की जानी चाहिय और मजदूरी का समानीकरण होना चाहिये तथा न्यूनतम मजदूरी विधान को प्रभावात्मक रूप स कार्यान्वित किया जाना चाहिये।

तथापि वास्तव मे न तो मजदूरी पर और न ही लाभो पर रोक लगायी गयी और अधिकतर सिफारिशें तो केवल कागज पर ही लिखी रह गयी। अत द्वितीय पचवर्षीय आयोजना मे इस बात पर बल दिया गया कि मजदूरी सम्बन्धी ऐसी नीति बनाई जानी चाहिये जो ऐसे स्तर की स्थापना करे जिसका उद्देश्य वास्तविक मजदूरी मे वृद्धि करना हो। श्रमिको के उचित मजदूरी पाने के अधिकार को मान्यता दी गई थी। किन्तु उसको व्यावहारिक रूप मे लाने के किसी स्थायी नियम को नही बनाया जा सका था। मजदूरी स्तर निर्धारित करने मे एक बडी कठिनाई यह आती है कि मजदूरी वृद्धि मे सीमान्त इकाइयां रुकावट उत्पन्न कर देती है। यदि मजदूरी निश्चित करने का आधार प्रत्यक वेन्द्र की औसत इकाई की आर्थिक स्थिति को लिया जाये तो उचित मजदूरी को प्राप्त करने की ओर अधिक शीघ्रता स उन्नति हो सकती है। किन्तु सीमान्त इकाइयो को उद्योग मे बनाये रखने के लिये कुछ पग उठाये जाने आवश्यक हैं। इस कार्य को करने की एव पद्धति यह है कि इन सीमान्त इकाइयो को मिलाकर एक बडी इकाई मे परिवर्तित कर दिया जाय। इस बात पर भी बल दिया गया था कि मजदूरी मे सुधार मुख्यत उत्पादकता मे वृद्धि द्वारा ही हो सकता था और इसके लिये विभिन्न पग उठाये जाने चाहियें। जो भी लाभ हो उसम श्रमिको को बराबर के भाग का आश्वासन दिया जाना चाहिय। समाज की समाजवादी व्यवस्था के ध्येय की पूर्ति के लिये एक सम्पूर्ण मजदूरी नीति का निर्माण करने के हेतु एक मजदूरी आयोग की नियुक्ति करने की भी सिफारिश की गई थी परन्तु इसके पूर्व मजदूरी के आंकडो की गणना करने का सुझाव था। इस बीच मजदूरी सम्बन्धी विवादो को निपटाने के लिये त्रिदलीय मजदूरी बोर्ड स्थापित किये जाने चाहियें।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे, जहां तक मजदूरियों का सम्बन्ध है, यह कहा गया था कि सरकार ने इस बात की जिम्मवारी ली है कि वह उद्योग तथा कृषि में मजदूरों के कुछ ऐसे वर्गों को न्यूनतम मजदूरी दिलाने की व्यवस्था करेगी जो कि आर्थिक दृष्टि से कमजोर है तथा जिन्हे सरक्षण की आवश्यकता है। परन्तु न्यूनतम मजदूरी अधिनियम अनेक मामलो मे प्रभावशाली सिद्ध नही हुआ। यदि इसको अच्छी प्रकार से लागू किया जाना है तो यह जरूरी है कि निरीक्षण व्यवस्था मजबूत बनाई जाये। योजना मे कहा गया था कि प्रमुख उद्योगो मे मजदूरी निर्धारण का कार्य सामूहिक सौदे की प्रक्रिया, सुलह, पच निर्णय तथा न्याय-निर्णय पर छोड़

दिया जाता है। परिस्थितियों के अनुसार मजदूरी बोर्डों का विस्तार अन्य उद्योगों में भी किया जाना चाहिये। योजना में मजदूरी-निर्धारण के उन सिद्धान्तों का भी उल्लेख किया गया जो कि उचित मजदूरी समिति द्वारा निर्धारित किये गए थे। और उन आदर्श सिद्धान्तों का भी हवाला दिया गया जो भारतीय श्रम सम्मेलन द्वारा प्रस्तावित किये गये थे और जिनमें संशोधन किया गया था और यह स्वीकार किया गया था कि न्यूनतम मजदूरियाँ निश्चित करने के अलावा इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि उचित मजदूरियाँ निर्धारित की जायें जिससे कुशलता की वृद्धि को प्रोत्साहन मिले तथा माल की उपज व किस्म में सुधार हो। यह भी कहा गया कि एक ओर तो श्रमिक-वर्ग की मजदूरियों और दूसरी ओर प्रबन्ध के उच्च स्तरों के वेतनों के बीच भारी असमतायें विद्यमान हैं। योजना में इस बात का भी उल्लेख किया गया कि एक ऐसे बोनस आयोग की नियुक्ति की जाए जो बोनस के दावों से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करे और बोनस की अदायगी के लिए निर्देशक सिद्धान्तों एवं नियमों का प्रतिपादन करे।

चौथी पंचवर्षीय योजना के मसौदे में कहा गया है कि योजनाबद्ध विकास की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि एक एकीकृत आय-नीति अपनाई जाए। मूल्य-स्थिरता का प्रश्न मजदूरी नीति का आधार है क्योंकि वर्तमान समय में मजदूरियाँ बढ़ाने का दबाव प्रत्यक्षत: तभी डाला जाता है जबकि निर्वाह व्यय की कीमतें बढ़ती है। सिद्धान्त रूप में, यह ठीक है कि मंहगाई भत्ते को निर्वाह-व्यय के साथ सम्बन्धित कर दिया जाता है, यद्यपि निर्वाह-व्यय की वृद्धियों का सभी स्तरों पर पूर्ण निराकरण करना सम्भव नहीं होता। कुल मजदूरी के तीन अंग होते है, अर्थात् मूल अथवा न्यूनतम मजदूरी, निर्वाह-व्यय से सम्बन्धित तत्व और उत्पादकता में वृद्धि से सम्बन्धित तत्व। इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिये कि मजदूरियों का मानकीकरण हो जाये और मजदूरियों के अन्तर कम हो जाये, विशेष रूप से उन वर्गों के श्रमिकों के सम्बन्ध में जिनकी मजदूरियाँ वर्तमान में अत्यधिक कम है। प्रयत्न इस बात के किये जाने चाहियें कि ऐसी मजदूरी प्रणालियों के क्षेत्र का विस्तार किया जाये जो परिणामों द्वारा अदायगी पर आधारित हो। मजदूरी-बोर्डों के कार्यों की तथा उनके द्वारा अपनाये जाने वाले सिद्धान्तों की भी सावधानी के साथ समीक्षा की जानी चाहिये। उत्पादन के ऊँचे स्तरों पर पहुँचने के लिये सतत् प्रयास किया जाना चाहिये और मालिकों एवं श्रमिकों द्वारा संयुक्त रूप से सामान्य प्रेरणादायक कार्यक्रम अपनाए जाने चाहिएँ।

द्वितीय आयोजना की सिफारिशों के सदर्भ में अनेक उद्योगों के लिये त्रिदलीय मजदूरी बोर्ड स्थापित किये गये हैं, उदाहरणतः—(१) श्रमजीवी पत्रकारों के लिए (मई १९५६ में), (२) सूती मिलों के लिये (मार्च १९५७ में), (३) चीनी उद्योग के लिये (दिसम्बर १९५७ में), (४) सीमेंट उद्योग के लिये (अप्रैल १९५८ में), (५) जूट उद्योग के लिये (अगस्त १९६० में), (६) चाय बागान के लिये

(दिसम्बर १६६० में) (७) काफी और (८) रबर बागान के लिये (जुलाई १६६१ में) (६) लोहा व इस्पात उद्योग के लिए (जनवरी १६६२ में) (१०) कोयला उद्योग के लिए (जनवरी १६६२ में) (११) कच्चे लोहे की खानों के लिये (१६६३ में) (१२) चूना पत्थर व डोलामाइट की खानों के लिए (१६६३ में) (१) गैर पत्रकार कर्मचारियों के लिए (१६६४ में) (१४) मुख्य बन्दरगाहों के श्रमिकों तथा गोदी श्रमिकों के लिए (१६६५ में) (१५) इंजीनियरिंग उद्योग के लिए (१६६५ में) (१६) भारी रसायन तथा कृत्रिम खाद उद्योग के लिए (१६६५ में) (१७) चमड़ा तथा चमड़े की वस्तुओं के उद्योग के लिए (१६६६ में) (१८) विद्युत संस्थानों के लिए (१६६६) में और (१६) सड़क परिवहन उद्योग के लिए (१६६६ में)। बोर्डों में कहा गया है कि वे उचित मजदूरी के उन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार एक मजदूरी का ढांचा तैयार करें जिनका उल्लेख उचित मजदूरी समिति की रिपोर्ट में किया गया है और साथ ही एक ऐसी मजदूरी नीति का निर्धारण करें जो आर्थिक प्रगति एवं भावना के अनुकूलतम बटवारे में सहायक हो तथा समाजवादी ढंग की समाज की स्थापना के अनुकूल हो। ये त्रिदलीय मजदूरी बोर्ड के उद्योगानुसार मजदूरी निर्धारित करने के लिए काफी लोकप्रिय हो गए हैं। अन्य उद्योगों के लिए भी ऐसे बोर्डों की माँग की जा रही है। इस मजदूरी बोर्डों के लिए कानून बनाने का विचार भी किया जा रहा था जिससे इनकी सिफारिशों को वैधानिक समर्थन प्राप्त हो सके। परन्तु स्थायी श्रम समिति इसके पक्ष में नहीं है और उसके अनुसार विभिन्न दलों को स्वयं ही मजदूरी बोर्डों के निर्णयों को लागू करना चाहिए। परन्तु मजदूरी बोर्डों की सिफारिशों को उद्योग का कई क्षेत्रों ने लागू नहीं किया है। इस कारण सरकार मजदूरी बोर्डों की सिफारिशों को वैधानिक मान्यता देने के लिये कानून बनाने के लिए पग उठा रही है और इसके लिये एक विधेयक प्रस्तुत करने की घोषणा मार्च १६६१ में की भी गई था परन्तु यह मामला स्थगित कर दिया गया यद्यपि सम्मेलनों में इस पर अनेक बार विचार विमर्श किया गया था। ३० सितम्बर १६६७ को स्थायी श्रम समिति ने फिर इस मामले पर विचार किया और एक समिति नियुक्त की। समिति से कहा गया कि वह मजदूरी बोर्डों की सम्पूर्ण व्यवस्था की जाँच करे और ६ माह में अपनी रिपोर्ट दे।

सन् १६५७ से मार्च १६६७ तक स्थापित किये गये मजदूरी बोर्डों के सम्बन्ध में स्थिति इस प्रकार है—

(१) वे मजदूरी बोर्ड जिन्होंने अपनी अन्तिम सिफारिशें प्रस्तुत कर दीं और जो पूर्णांशिक रूप से पूर्णतया लागू भी कर दी गयीं—सूती वस्त्र, सीमेंट और चीनी उद्योग (प्रथम मजदूरी बोर्ड), जूट, लोहा व इस्पात तथा चाय बागान।

(२) वे मजदूरी बोर्ड जिन्होंने अपनी अन्तिम सिफारिशें प्रस्तुत कर दीं और जो लागू की जा रही हैं—काफी तथा रबड़ बागान।

(३) वे मजदूरी बोर्ड, जिन्होंने अपनी अन्तरिम सिफारिशें प्रस्तुत कीं और जो न्यूनाधिक रूप मे लागू कर दी गयी—गैर-पत्रकार कर्मचारी, श्रमजीवी पत्रकार, सीमेन्ट (द्वितीय मजदूरी बोर्ड), बन्दरगाह तथा गोदी श्रमिक (प्रथम अन्तरिम वृद्धि)।

(४) वे मजदूरी बोर्ड, जिन्होने अपनी अन्तरिम सिफारिशें प्रस्तुत की हैं और जो लागू की जा रही है—बन्दरगाह तथा गोदी श्रमिक (द्वितीय अन्तरिम वृद्धि), इन्जीनियरिंग उद्योग, चमड़ा उद्योग, भारी रसायन तथा कृत्रिम खाद और चीनी उद्योग (द्वितीय मजदूरी बोर्ड)।

(५) वे मजदूरी बोर्ड, जिन्होने अभी तक कोई सिफारिशें प्रस्तुत नही की हैं—सूती वस्त्र (द्वितीय मजदूरी बोर्ड), सड़क परिवहन तथा विद्युत् सस्थान।

(६) वे मजदूरी बोर्ड, जिन्होने अपनी अन्तिम सिफारिशें दे दी हैं और जो सरकार के विचाराधीन है—कच्चे लोहे की खाने, चूना-पत्थर तथा डोलोमाइट खानें व कोयला खाने।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है ४४ मुख्य उद्योगों में जो कारखाना, बागान और खानो से सम्बन्धित हैं, एक मजदूरी गणना (Wage Census) की गई है। इसका उद्देश्य व्यावसायिक मजदूरी के विश्वसनीय आंकड़े एकत्रित करना है। सर्वेक्षण १९५८ मे किया गया था। इसके अन्तर्गत ३७ कारखानो, चार खानों और तीन बागान मे २,६४८ सस्थानो मे जाच की गई। श्रम ब्यूरो ने जून १९६३ में सामान्य रिपोर्ट प्रकाशित की और उद्योगानुसार रिपोर्टें तैयार की जा रही हैं। यह भारत मे अपनी प्रकार का प्रथम सर्वेक्षण है। इसके अन्तर्गत कारखानो के ७६ प्रतिशत श्रमिक, खानो के ८५ प्रतिशत श्रमिक और बागान के लगभग १०० प्रतिशत श्रमिक ले लिये गये थे। इसके अन्तर्गत आने वाले मुख्य उद्योग सूती वस्त्र, जूट, लोहा और इस्पात, कोयला और कच्चे लोहे की खाने तथा चाय, काफी और रबर के बागान हैं। श्रम ब्यूरो द्वारा सितम्बर १९६३ से फरवरी १९६५ तक द्वितीय व्यावसायिक मजदूरी सर्वेक्षण किया गया जिसके द्वारा ४५ विनिर्माण, खान एवं बागान उद्योगों मे काम करने वाले औद्योगिक श्रमिको की वेतन-चिट्ठा आय तथा मजदूरी की दरो के सम्बन्ध मे आंकड़े एकत्र किये गये है। इसके अतिरिक्त, समयोपरि काम तथा प्रोत्साहन बोनस योजना की भी जानकारी प्राप्त की गई है। आंकड़ो को क्रमबद्ध किया जा रहा है।

इसके अतिरिक्त मजदूरी से सम्बन्धित एक 'स्टीयरिंग दल' की भी स्थापना की गई है जिसमे केन्द्रीय एव राज्य सरकारो द्वारा नियुक्त व्यक्ति तथा श्रमिक एव मालिको के प्रतिनिधि हैं। यह दल मजदूरी उत्पादन एवं मूल्य सम्बन्धी प्रवृत्तियों का अध्ययन करेगा तथा यह दल भारत मे उद्योग और क्षेत्र के अनुसार एक मजदूरी का नक्शा बनाने के लिये ऐसे आंकड़े एकत्रित करेगा जिससे मजदूरी निश्चित करने के लिये मुख्य सिद्धान्त बनाये जा सकें और प्राधिकारियों को मजदूरी निर्धारित करने में सहायता मिल सके। इस स्टीयरिंग दल की बहुत-सी सभाये हो

चुकी है। दिसम्बर १९६१ मे एक बोनस आयोग की स्थापना की गई थी और इसकी सिफारिशो को कार्यरूप देने के लिये सन् १९६५ मे बोनस अदायगी अधिनियम पास किया गया, जिस पर आगे विचार किया गया है।

एक और उल्लेखनीय कार्य यह है कि भारत सरकार द्वारा वेतन आयोगों की नियुक्ति की गई जो कि केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियो के वेतन-ढाचो, महगाई, भत्तो एव नौकरी की दशाओ और अन्य इसी प्रकार के विषयो से सम्बन्धित है। एक और महत्वपूर्ण घटना मार्च १९५८ मे यह हुई कि उच्चतम न्यायालय ने श्रमजीवी पत्रकारो के लिए वेतन बोर्डों के निर्णयो को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि वे गैरकानूनी थे। अन्त मे जून १९५८ मे एक अध्यादेश निकाला गया। इस अध्यादेश मे एक समिति के निर्माण की व्यवस्था थी जिसकी सहायता से केन्द्रीय सरकार श्रमजीवी पत्रकारो के लिये वेतन की दरो को निश्चित कर सके। यह अध्यादेश सितम्बर १९५८ के एक अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया। एक समिति भी स्थापित कर दी गई। इसने अपनी सिफारिशे भी प्रस्तुत कर दी हैं जिनको सरकार ने कुछ सशोधनो के बाद स्वीकार कर लिया है। श्रमजीवी पत्रकारो के लिए द्वितीय मजदूरी बोर्ड भी स्थापित किया जा रहा है।

यह भी उल्लेखनीय है कि श्रमिक सघो ने सब श्रमिको की मजदूरी मे २५ प्रतिशत वृद्धि की माँग की है जबकि मालिको के सघो ने मजदूरी कम करने की तथा मजदूरी को उत्पादकता से सम्बन्धित करने की माँग की है। 'मजदूरी दरो को जड करने' (Wage Freeze) के विषय मे भी कुछ आवाज उठाई गई है परन्तु ऐसी जडता को व्यावहारिक रूप नही दिया जा सकता। विभिन्न प्रकार के नियन्त्रणो को अपनाये बिना, विशेषकर आवश्यक वस्तुओ के मूल्यो पर नियन्त्रण किये बिना मजदूरी जड नही की जा सकती। जनवरी १९६० मे त्रिदलीय श्रम सम्मेलन ने इस बात का सुझाव दिया था कि अन्तत भारत के औद्योगिक श्रमिको के लिए ११० रु० मासिक न्यूनतम मजदूरी होनी चाहिए। नवम्बर १९६६ मे श्रम नीति पैनल ने भी यह सुझाव दिया कि कम से कम कुछ ऐसे चुने हुए उद्योगो मे, जहाँ कि मजदूरियाँ बहुत कम हैं, राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी अवश्य निश्चित की जानी चाहिए।

मजदूरी अन्तर (Wage Differentials) और मजदूरी का समानीकरण (Standardisation)

भारत मे मजदूरी से ही सम्बन्धित एक अन्य समस्या मजदूरी अन्तर और मजदूरी का समानीकरण है जिसका अध्ययन मजदूरी नीति के निर्माण के लिए काफी महत्व का है। मजदूरी-अन्तरो को कम करने की आवश्यकता को सामान्यत स्वीकार किया जाता है, यद्यपि इस बात पर भी सामान्य सहमति है कि मजदूरी के अन्तरो को कम करने की प्रक्रिया का इतना विस्तार नही होना चाहिए कि उससे कुशलता-वृद्धि पर अप्रेरणात्मक प्रभाव पड़े। मजदूरी-अन्तर अनेक प्रकार के

हो सकते है, उदाहरणतः—क्षेत्र, उद्योग, व्यवसाय, कुशलता, लिंग आदि के कारण अन्तर।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि मजदूरी राज्य-राज्य में, उद्योग-उद्योग में और व्यवसाय-व्यवसाय में भिन्न है तथा वर्ष-वर्ष मे बदलती भी रहती है। मजदूरी स्तर का उपरोक्त विवेचन भी इस बात को स्पष्ट करता है। प्रत्येक राज्य के प्रत्येक उद्योग मे मजदूरी दरों मे अन्तर पाया जाता है, परन्तु क्षेत्रीय अन्तर अधिक स्पष्ट है। कुछ श्रमिक वर्गों की न्यूनतम मूल मजदूरी दरे देखने से ज्ञात होता है कि अन्य ऐसे क्षेत्रो की अपेक्षा, जहां सूती उद्योग फैले हुए है, बम्बई की सूती मिलो में मजदूरी दरें अधिक है। अमानी तथा उजरत की दरों मे भी क्षेत्र-क्षेत्र मे अन्तर है जिसके कारण स्त्री और पुरुषों की निबल (Net) आय में भी अन्तर पाया जाता है। कुशल, अर्द्ध-कुशल तथा अकुशल श्रमिको की मजदूरियों में भी भिन्नता पाई जाती है और इनकी मजदूरी मे अन्तर अन्य देशो की अपेक्षा भारत मे अधिक है। भारत मे मजदूरी की दरों के अध्ययन के अन्तर्गत, जिसका कि ऊपर उल्लेख किया गया है, विभिन्न वर्षो मे श्रमिको की औसत वार्षिक आय से भी यह पता चलता है कि विभिन्न उद्योगो मे मजदूरियो मे भारी असमानतायें है।

मँहगाई भत्ता भी स्थान-स्थान पर भिन्न है क्योकि उसको देने का आधार भी अलग-अलग स्थान पर भिन्न-भिन्न होता है। कुछ स्थानो में तो मँहगाई भत्ता निर्वाह-खर्च से सम्बन्धित है तथा इसकी दर विभिन्न श्रमिक वर्गो के लिए पृथक्-पृथक् है। कुछ मामलो मे मँहगाई भत्ता समान है जबकि अन्य स्थानो में मँहगाई भत्ता आय के समानुपात से घटता-बढ़ता है। यह कभी-कभी मालिको के संघों द्वारा भी निर्धारित किया जाता है और केवल उन्हीं उद्योगों मे लागू होता है जिनके मालिक संघ के सदस्य है। यह समय-समय पर औद्योगिक अधिकरणों के पचाटो द्वारा भी निर्धारित किया गया है। विभिन्न केन्द्रो मे उपभोक्ता मूल्यों के जो सूचकाक है उनके सन्दर्भ मे मँहगाई भत्ते को अब निर्वाह-व्यय से सम्बद्ध कर दिया गया है। इन सब परिस्थितियों का सम्मिलित प्रभाव यह हुआ है कि मजदूरी में विभिन्न क्षेत्रों में बहुत अधिक असमानता आ गई है।

श्रमिको की औसत वार्षिक आय भी राज्य-राज्य मे पृथक्-पृथक् है। जूट उद्योग में मूल-मजदूरी दर पश्चिमी बगाल मे सर्वाधिक है जबकि उत्तर प्रदेश की जूट मिलो के श्रमिको की औसत आय बोनस मिलने के कारण अधिक है। बिहार एव मद्रास की जूट मिलो के श्रमिको की आय कम है। पश्चिमी बगाल के श्रम-मन्त्री के जनवरी १९६० मे दिये गये वक्तव्य के अनुसार, चाय के बागान में श्रमिको को १८४ पैसे प्रतिदिन मिलते हैं। जूट उद्योग मे ६७·१८ रुपये प्रति माह मजदूरी है। इन्जीनियरिंग उद्योग मे ७१ रुपये प्रति माह मजदूरी है, परन्तु बम्बई की कपड़ा मिलो मे मँहगाई भत्ते के अतिरिक्त श्रमिको को १२५ रुपये प्रति मास मिलते है। अन्य उद्योगों मे मजदूरी दरो की असमानता इसी प्रकार प्रचलित है। खानो मे मजदूरी दरो मे इतनी अधिक असमानता नहीं है जितनी कि फैक्टरी की

मजदूरी दरो मे है, फिर भी विभिन्न खानो और विभिन्न क्षेत्रों मे मूल मजदूरी तथा अर्जित आय मे अन्तर है। बागान म भी मजदरी मे काफी अन्तर पाया जाता है।

सन् १९५८–५९ तथा १९६३–६५ मे श्रम ब्यूरो द्वारा व्यावसायिक मजदूरियो के जो दो सर्वेक्षण किये गए उनके परिणामो मे भी मजदूरी के अन्तरो के आँकडे उपलब्ध होते हैं। प्रथम सर्वेक्षण के परिणाम तो प्रकाशित हो चुके हैं। सूती वस्त्र उद्योग म, यदि हावडा तथा कलकत्ता को आधार (१००) माना जाये तो अग्रलिखित स्थानो पर आय के स्तर ऊँचे अर्थात इस प्रकार थे—बम्बई तथा बम्बई उपनगर (१८७), अहमदाबाद (१७६) इन्दौर (१६०), कानपुर (१५६), दिल्ली (१५३), नागपुर (१५१) मदुराई व रामनाथपुरम् (१४३) कोयम्बटूर (१३३), शोलापुर (१२०), अवशिष्ट (१२०) और जयपुर व अजमेर (१०२)। बगलौर मे आय का स्तर नीचा (८७) था। जूट उद्योग मे, पश्चिमी बगाल के (१००) की तुलना मे अवशिष्ट क्षेत्रा म आय का स्तर ८६ था। रेशमी वस्त्र उद्योग मे जम्मू व कश्मीर (१००) की तुलना म अग्रलिखित स्थानो के आय-स्तर ऊँचे अर्थात् इस प्रकार थ—बम्बई तथा बम्बई उपनगर (३०७) अमृतसर (१७०) और अवशिष्ट (Residual) (१८८)। ऊनी वस्त्र उद्योग म अमृतसर के (१००) की तुलना मे आय का स्तर बम्बई तथा बम्बई उपनगर म (२१०) तथा अवशिष्ट क्षेत्र मे (१४७) था। विभिन्न उद्योगो म मजदूरी के अन्तरो के सम्बन्ध मे मजदरी क स्तर जूट के (१००) की तुलना मे सूती वस्त्र मे (१२७), ऊनी वस्त्र मे (११६) तथा रेशमी वस्त्र मे (१११) थ। इन्जीनियरिंग उद्योगो मे, कृषि उपकरणो के निर्माण के उद्योग (१००) की तुलना मे मजदरी का स्तर इस प्रकार है—काबले और ढिबरी के निर्माण म (११६), धातु निष्कर्षण व शुद्धिकरण (९०६) और जलयान-निर्माण व मरम्मत म (२०८)। विभिन्न उद्योगो मे पृथक् पृथक् केन्द्रो पर कुशल तथा अकुशल श्रमिको की औसत दैनिक मजदूरी मे भी अन्तर है।

मजदूरी के समानीकरण की आवश्यकता

मजदूरी दरो मे अन्तर किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित नही है। प्रत्येक फैक्टरी न अपना अलग अलग कार्य विभाजन विभिन्न वर्गो मे किया है तथा प्रत्येक वर्ग की अपनी विशेष शब्दावली बना ली गई है। विभिन्न उद्योगो मे उत्पादन हेतु विभिन्न कार्य प्रणालियाँ अपनाई जाती है और विभिन्न प्रकार की मशीनें कार्य मे लाई जाती हैं। इस प्रकार बहुत सा समय, धन तथा श्रम व्यर्थ जाता है क्योकि अधिकतर श्रमिको के साथ अधिकांश प्रशासन कार्यों के लिए पृथक्-पृथक आधार पर व्यवहार करना पडता है। उद्योग उद्योग मे, एक उद्योग की फैक्टरी-फैक्टरी मे तथा स्थान स्थान मे मजदूरी दरो के अवैज्ञानिक अन्तर के कारण श्रमिको का एक फैक्टरी से दूसरी फैक्टरी म प्रवसन होता रहता है। कभी-

है। अधिकतर श्रमिक उत्तम मजदूरी देने वाले उद्योगों की ओर आकर्षित होते है तथा कम मजदूरी देने वाले उद्योगों में श्रमिक मजदूरी मे वृद्धि की मांग करते है। यदि यह मांगे पूर्ण नही की जाती है तो हड़ताल आदि का अवलम्ब लिया जाता है, जिसके फलस्वरूप उद्योग की शान्ति भंग हो जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि उत्पादन तथा लाभ में कमी हो जाती है। इस प्रकार यदि मजदूरी की विभिन्न दरें प्रचलित होती हैं तो उनके कारण प्रत्येक फैक्टरी एव उद्योग मे न केवल अधिक समय, श्रम एवं कर्मचारी लगाने पड़ते है वरन् ये विभिन्न दरे श्रमिको में असन्तोष तथा श्रमिको एवं मालिकों में विवाद का कारण बन जाती है क्योंकि या तो श्रमिको को अपर्याप्त एवं अपूर्ण मजदूरी दी जाती है अथवा श्रमिक विभिन्न दरो के कारण उत्पन्न जटिलता को समझ नही पाते।

अत. श्रमिको एव मालिकों दोनो की ही ओर से मजदूरी के समानीकरण की बहुत मांग की गई है। समानीकरण का सरल तौर पर अर्थ उद्योग मे समान कार्य वर्ग के लिये मजदूरी के एक समान स्तर को निर्धारित करना है। इसका अर्थ यह नहीं है कि सब श्रमिको को एक समान मजदूरी दी जाये। समान स्तर की मजदूरी का अर्थ अधिकतम मजदूरी निश्चित करना भी नही है वरन् एक ऐसी उचित एव सन्तोषपूर्ण मजदूरी निश्चित करना है जो व्यवहार में एक समान हो। समान स्तर की मजदूरी असामी तथा उजरत के अनुसार भी हो सकती है। असामी दर की मजदूरी का समानीकरण निश्चित करना तब सरल प्रतीत होता है जब अकुशल, अर्द्धकुशल, कुशल एव बहुत कुशल श्रमिको की न्यूनतम मजदूरी निश्चित हो और वह मजदूरी उद्योग के विभिन्न व्यवसायो मे कार्यानुसार, कुशलता के अनुसार तथा श्रमिक के अनुभव के अनुसार दी जाती हो। उजरत (कार्यानुसार मजदूरी) के समानीकरण मे इस प्रकार की कोई कठिनाई नही होती क्योंकि एक अपेक्षाकृत अधिक उत्तम श्रमिक अपने अधिक उत्पादन के कारण अधिक मजदूरी पाता है किन्तु इस उजरत मजदूरी देने से सम्बन्धित समस्या अधिकतर तकनीकी है। कार्य के प्रकार, पद्धति तथा उत्पादक वस्तुओं मे अनेक भिन्नतायें होती है। अत उन विभागो मे, जहाँ उजरत मजदूरी दी जा रही हो, समानीकरण योजना को कार्य रूप देने मे काफी तकनीकी ज्ञान होना आवश्यक है। फिर भी, विभिन्न मिलो मे स्पर्धा को समाप्त करके औद्योगिक विवादो को कम करने तथा मिलो एव श्रमिको दोनो की ही कार्यकुशलता को बढाने में मजदूरी का समानीकरण बहुत अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

मजदूरी समानीकरण का प्रश्न विशेषकर बम्बई के सूती मिल उद्योग मे बहुत समय से विचार-विमर्श का विषय रहा है। १६२२ की बम्बई औद्योगिक विवाद समिति द्वारा भी इस पर विचार किया गया था और १६२७ में कपड़ा टैरिफ बोर्ड ने इस पर पुन विचार किया था। सन् १६२८ मे एक योजना भी बनाई गई परन्तु उसे कार्यरूप न दिया जा सका। इस प्रश्न ने रॉयल श्रम आयोग का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित किया था। उसके शब्दों में, "जहाँ तक कुछ

विशेष प्रमुख उद्योगो मे कार्यरत श्रमिको का सम्बन्ध है वहाँ प्रमुख आवश्यकता एक जैसा कार्य करने वाले श्रमिक वर्गों के लिए मजदूरी के एक समान स्तर की है। हम इस बात से सन्तुष्ट है कि कुछ उद्योगो मे उनकी आर्थिक स्थिति को विशेष हानि पहुँचाये बिना समान स्तर से मजदूरी दी जा सकती है। साथ ही साथ कम मजदूरी पाने वाले श्रमिको को एक उच्चतर मजदूरी स्तर भी प्रदान किया जा सकता है।" श्रम अनुसन्धान समिति ने भी भारतीय उद्योगो मे अवैज्ञानिक मजदूरी स्तरो का उल्लेख किया था और सुझाव दिया था कि विभिन्न उद्योगो तथा उद्योग के समान केन्द्रो की इकाइयो मे व्यवसायो के नामकरण एव मजदूरी के समानीकरण की समस्या शीघ्रतापूर्वक सुलझाई जानी चाहिए। प्रथम पचवर्षीय आयोजना मे भी सिफारिश की गई थी कि मजदूरियो की असमानताओ को दूर किया जाना चाहिये और उनका समानीकरण किया जाना चाहिए। चौथी आयोजना के मसौदे मे भी इस बात पर जोर दिया गया है कि मजदूरियो का समानीकरण किया जाये और मजदूरियो के अन्तरो को दूर किया जाये, विशेष रूप से श्रमिको के उन वर्गों मे जिनकी मजदूरियाँ वर्तमान म अत्यधिक कम है।

सूती मिल उद्योग आदि मे मजदूरी का समानीकरण

केवल सूती मिल उद्योगो मे मजदूरी के समानीकरण म कुछ प्रगति हुई है। बम्बई औद्योगिक न्यायालय के पचाट ने बम्बई तथा इसके उपनगरो के सूती मिल उद्योगो के विषय म १९४७ मे एक अस्थायी योजना बनाने की व्यवस्था की थी जिसका निरीक्षण इसी कार्य हेतु निर्मित एक समानीकरण समिति द्वारा किया जाना था। बम्बई औद्योगिक न्यायालय द्वारा विभिन्न श्रमिक वर्गों के लिए मजदूरी की समानीकरण दरें अहमदाबाद एव शोलापुर की सूती मिलो के लिये निश्चित की गई है। सन् १९४६ के औद्योगिक सम्बन्धी अधिनियम के अन्तर्गत सूती कपडा एव रेशम की फैक्टरियो मे मजदूरी निश्चित करने के लिए मजदरी बोर्ड बना दिये गय हैं। मद्रास पचाट ने राज्य की समस्त सूती मिलो के लिये समानीकरण योजना बनाने के हेतु एक मजदूरी बोर्ड तथा समानीकरण समिति नियुक्त करने का सुझाव दिया था। उसके द्वारा सुझाई गई योजना को कार्यान्वित कर दिया गया है। बगाल के औद्योगिक न्यायालय के पचाट ने विभिन्न व्यवसायो मे न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दी थी किन्तु कुछ व्यावहारिक कठिनाइयो के कारण समानीकरण योजना नही बनाई जा सकी। इन्दौर मे विभिन्न श्रमिक वर्गों के लिये मजदूरी दरो का समानीकरण कर दिया गया है। मध्य प्रदेश की सूती कपडा मिलो मे भी औद्योगिक अधिकरण तथा समानीकरण समिति के सुझाओ के आधार पर मजदूरी तथा कार्य-भार का समानीकरण कर दिया गया है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि द्वितीय पचवर्षीय आयोजना की सिफारिशो पर कई उद्योगो के लिए मजदूरी बोर्डों की स्थापना की गई है। इनका कार्य उचित

मजदूरी के सिद्धान्तों पर आधारित मजदूरी ढाँचा बनाना तथा उद्योग एवं सामाजिक न्याय को ध्यान मे रखकर मजदूरी के अन्तरों को इस प्रकार दूर करना जिससे कि श्रमिकों को अपनी कुशलता में वृद्धि करने का प्रोत्साहन मिले, तथा फल के अनुसार मजदूरी देने की प्रणाली की वांछनीयता के प्रश्न पर सिफारिश करना है। ऐसे मजदूरी बोर्ड क्षेत्रीय मजदूरी अन्तरों मे छानबीन कर सकते है और जहाँ तक सम्भव हो सके अन्तःक्षेत्रीय समानता लाने के लिये आवश्यक पग उठा सकते हैं। एक सुझाव यह भी हो सकता है कि विभिन्न उद्योगों के विभिन्न मजदूरी बोर्डों के कार्यों का समन्वय करने के लिए एक अखिल भारतीय वेतन बोर्ड होना चाहिये जो कि विभिन्न बोर्डों के निर्णयों का अवलोकन कर सके तथा मजदूरी के समानीकरण मे सहायता दे सके।

१९४६–४८ की उ० प्र० श्रम जाँच समिति ने भी मजदूरी दरों के समानीकरण की एक योजना बनाई थी जिसको केवल तीन उद्योगों—अर्थात् सूती, चीनी एवं बिजली—में लागू करने की सिफारिश की थी। १९५० मे चीनी उद्योग मे *मजदूरी समानीकरण के लिये भी एक समिति नियुक्त की गई थी*, परन्तु इस विषय मे अब तक कोई विशेष प्रगति नही हुई है। इस समय सरकार मे मजदूरी समानीकरण का उत्साह प्रतीत होता है। यह इस बात से प्रकट है कि भारतीय उद्योगों में *न्यूनतम एवं उचित मजदूरी तथा मजदूरी बोर्डों को स्थापित करने के लिए सरकार* ने कुछ कानूनी एव प्रशासनीय पग उठाए है, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है।

समान कार्य के लिए समान मजदूरी
(Equal Pay for Equal Work)

यह भी उल्लेखनीय है कि "समान कार्य के लिये समान मजदूरी" का सिद्धान्त अपने विरोधी सिद्धान्त "असमान कार्य के लिए असमान मजदूरी" के साथ-साथ मजदूरी की एक महत्वपूर्ण समस्या है। फिर भी "समान कार्य के लिये समान मजदूरी" का अर्थ एक जैसे कार्य के लिए बराबर मजदूरी देना है और इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी प्रकार के श्रमिकों को एक-सी ही मजदूरी दी जाय। यह भी नही सोचना चाहिये कि इसका यह अर्थ है कि एकसे उत्पादन के लिये या एकसे प्रयत्न एव परिश्रम के लिए समान मजदूरी दी जाए क्योंकि दोनो दशाओ मे उत्पादन के स्तर या प्रयत्नो एव परिश्रम की मात्रा को नापना कठिन है और इसलिये इस सिद्धान्त पर मजदूरी निश्चित करने मे बहुत अधिक कठिनाई होगी। हो सकता है कि बहुत से व्यक्ति एक-सा कार्य करते हो अर्थात् उनके कार्य की दशा, यन्त्र, कच्चा माल आदि एक से हों तथा उत्पादित वस्तुयें भी समान हो फिर भी उनकी कार्यकुशलता एव अनुभव मे काफी अन्तर हो सकता है। अत. उनके उत्पादन की मात्रा एव गुण मे भी अन्तर हो सकता है। इसलिये विभिन्न रोजगारों में विभिन्न स्थानो पर सदैव ही विभिन्न मजदूरी रहेगी और समानीकरण का अर्थ यह नहीं है कि सब स्थानो पर मजदूरी को समान कर दिया जाए। इसका अर्थ

तो केवल यह हो सकता है कि वैज्ञानिक आधार पर मजदूरी निश्चित करने का समान स्तर लागू कर दिया जाए और मजदूरी म जा असमानता है उस इस प्रकार कम कर दिया जाए कि उत्पादकता और कुशलता बढान म जा प्रोत्साहन मिलता है वह बना रह। मजदूरी विभिन्न रोजगारो व्यवसायो और स्थानो म अलग अलग होता है। इसक अनक कारण होते है जस—किसी रोजगार के काय म रुचि या अरुचि हाना नौकरी का स्थायी और अस्थायी होना पदोन्नति की सम्भावना उत्तम वतन स्तर पद का सम्मान अतिरिक्त आय क साधनो की सम्भावना काय-दशाय अतिरिक्त सुविधाय जस—बिना किराय के मकान आदि रोजगार सीखन म कठिनाइया इत्यादि। इन सब कारणा स ही कुछ रोजगारो म मजदूरी कम है और कुछ म अधिक। इसके अतिरिक्त मूल्यो म अन्तर, विभिन्न स्थानो के निर्वाह खच म अ तर तथा उद्योग का दशाग्रा म अन्तर आदि भी मजदूरी म अन्तर उत्पन्न कर देत है। जसा कि प्रथम पचवर्षीय आयोजना म उल्लख किया गया ह मजदूरी म विभिन्नता निम्नलिखित कारणो स होती है (i) कुशल श्रमिको का आवश्यकता के अनुसार (ii) काय क भार तथा थकान क अनुसार (iii) प्रशिक्षण और अनुभव के अनुसार (iv) उत्तरदायित्व की सीमा क अनुसार (v) काय क लिए इच्छित मानसिक तथा शारीरिक आवश्यकताओ क अनुसार (vi) काय की अरुचि क अनुसार (vii) काय म निहित जोखिम के अनुसार। इन समस्त कारणो को पचवर्षीय आयोजनाओ म सामाजिक उद्देश्यो की पूर्ति के अनुसार मानक (Standard) मजदूरी निश्चित करत समय ध्यान मे रखना चाहिय।

पुरुषा एव स्त्रियो का मजदूरी

सदव स ही समान काय के लिय स्त्री श्रमिको का पुरुष श्रमिका की अपेक्षा कम मजदूरी दन की प्रवत्ति रही है। स्त्रिया प्रकृति स ही पुरुषो क समान शारीरिक काय म कुशल नही होती तथा व अधिक समय तक काय नही कर सकती। स्त्रियाँ परिवार का आय म वद्धि करन क लिए ही काय करती है और उन पर पुरुषा क समान कोइ उत्तरदायित्व भी नही होता। स्त्रिया अपन काय का जीवन वत्ति नही समझती और बहुत सी अविवाहित स्त्रियाँ विवाह के पश्चात काय छोड देती है। इसी कारण स्त्रिया स्वय को श्रमिक सघो म सगठित नही कर पाती तथा सयुक्त प्रयत्नो द्वारा ऊची मजदूरी प्राप्त नही कर पाती। मालिका का इनके लिये अनेक प्रकार के हित दन पडत हैं तथा बहुत सी सुविधाय उपलब्ध करनी पडती हैं और मालिक पुरुष श्रमिको क समान उनक साथ व्यवहार नही कर सकते। उन कार्यों म जिनम स्त्रिया काय कर सकती ह स्त्रियो की पूर्ति भी अधिक होती है अत उनको मजदूरी भी कम मिलती है।

आधुनिक प्रगति और स्त्रियो की अधिक शिक्षा क साथ साथ स्त्री एव पुरुषो के लिय समान मजदूरी की माग बढ रही है क्योकि स्त्रिया अपने को पुरुषो

से हीन नहीं समझती। भारतीय संविधान का एक नीति निर्देशक सिद्धान्त यह भी है कि "स्त्री एवं पुरुषों को समान कार्य के लिये समान मजदूरी दी जाए।" अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भी इस विषय पर एक अभिसमय पारित किया है जिसको भारत ने भी अपना लिया है। परन्तु हमारा यह विचार है कि व्यावहारिक रूप से यह सिद्धान्त उचित नहीं है। ऊपर दिये गए कारणों के परिणामस्वरूप मालिक को सदा स्त्रियों को काम में लगाने से हानि होती है। अतः स्वाभाविक ही है कि वह उनको कम मजदूरी देता है। निस्सन्देह सामाजिक जीवन में स्त्री एवं पुरुष दोनों से समान स्तर पर ही व्यवहार अवश्य किया जाना चाहिए, परन्तु इस सिद्धान्त को औद्योगिक मजदूरी पर लागू करने का अर्थ केवल स्त्रियों के रोजगार में कमी करना होगा। जब से स्त्री एवं पुरुषों को समान मजदूरी देने का सिद्धान्त लागू किया गया है तभी से वास्तव में स्त्रियों के रोजगार में कमी हो गई है। अनेक उद्योगों में स्त्री श्रमिकों को पुरुष श्रमिकों द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है और अब पुरुष श्रमिकों की पूर्ति अधिक होने के कारण स्त्रियों की भर्ती बन्द-सी हो गई है। अतः यह देखा गया है कि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत भी अनेक उद्योगों में स्त्रियों एवं पुरुषों के लिये भिन्न भिन्न मजदूरी की दरें निश्चित की गई हैं। सरकार ने भी अब इस बात का अनुभव कर लिया है कि "ऐसे उद्योगों में, जिनमें महिला श्रमिक कम कार्यकुशल हैं, यदि पुरुष व स्त्रियों के लिये समान मजदूरी निर्धारित की जायेगी तो इसका परिणाम यह होगा कि स्त्रियों को रोजगार मिलना धीरे-धीरे समाप्त हो जायेगा।"

मजदूरी और निर्वाह खर्च (*Wages and Cost of Living*)

संक्षेप में यह उल्लेख किया जा सकता है कि मजदूरी की समस्या पर विचार करते समय निर्वाह खर्च का भी ध्यान करना चाहिए, क्योंकि श्रमिक की आर्थिक स्थिति का अनुमान लगाने के लिये हमें उसकी नकद मजदूरी की अपेक्षा असल मजदूरी को देखना चाहिए। हाल ही के वर्षों में मजदूरी में वृद्धि हुई है परन्तु श्रमिकों की आर्थिक स्थिति में कोई सुधार नहीं दिखाई देता जिसका कारण मूल्यों में अति वृद्धि तथा साथ ही निर्वाह खर्च की वृद्धि है। अग्र तालिका से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।*

मजदूरी अदायगी का तरीका (Manner of Payment of Wages)

अब हम मजदूरी की दूसरी समस्या, अर्थात् मजदूरी अदायगी की रीति और स्वरूप तथा मजदूरी में से की जाने वाली कटौतियों आदि पर विचार करेंगे। मजदूरी साधारणतया नकदी में तथा उन श्रमिकों को, जो उन्हें अर्जित करते हैं, प्रत्यक्ष रूप से दी जाती है तथा अदायगी का उत्तरदायित्व मालिकों या उनके उत्तरदायी अभिकर्त्ताओं पर होता है। तब भी भिन्न-भिन्न उद्योगों में मजदूरी भुगतान का आधार भिन्न-भिन्न होता है। साधारणतया सूती वस्त्र उद्योग में

* **Indian Labour Gazette, October 1955; India, 1962 to 1966.**

वर्ष	आय के सामान्य सूचकांक	अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य सूचकांक	असल आय के सूचकांक
१	२	३	४
(आधार वर्ष १९३९=१००)			
१९३९	१०० ०	१००	१००·०
१९४०	१०५·३	९७	१०८ ६
१९४५	२०१·५	२६९	७४ ९
१९४७	२५३ २	३०३	७८ ४
१९४८	३०४ ०	३६०	८४ ४
१९४९	३४० ३	३७१	९१·७
१९५०	३३४·२	३७१	९०·१
१९५१	३५६ ८	३८७	९२·२
१९५२	३८५ ७	३७९	१०१·८
१९५३	३८४ ६	३८५	९९·९
१९५४	३८१ २	३७१	१०२·७
(आधार वर्ष १९४७=१००)			
१९५३	१५२	१२२	१२५
१९५४	१५२	११६	१३१
१९५५	१५९	११०	१४५
१९५६	१६३	१२१	१३५
१९५७	१७०	१२८	१३४
१९५८	१६७	१३३	१२६
१९५९	१७३	१४९	१२४
१९६०	१८३	१४३	१२९
१९६१	१९४	१४५	१३४
१९६२	२०१	१४९	१३५
१९६३	२०५	१५४	१२३
१९६४	२१०	१७५	१२०
आधार १९६१=१००			
१९६२	१०५ ६	१०३·२	१०२ २
१९६३	१०८ ९	१०६ ३	१०२ ४
१९६४	११४ १	१२० ६	९४ ६
१९६५	१२४·७	१३१ ७	९४ ७

मजदूरी भुगतान का समय एक मास होता है, परन्तु अहमदाबाद में यह समय 'हफ्ता' होता है जो १४ से १६ दिन का होता है। पश्चिमी बगाल मे मजदूरी काल एक सप्ताह होता था परन्तु अब यह साधारणतया एक मास का कर दिया गया है। ऊनी वस्त्र उद्योग मे अधिकांश स्थानो मे मजदूरी मासिक दी जाती है, परन्तु कानपुर की मिलो तथा अमृतसर की एक मिल म श्रमिको को मजदूरी पाक्षिक दी जाती है। कोयले की खानो मे मजदूरी साधारणतया प्रति सप्ताह दी जाती है।

रानीगंज की कोयला खानों में कोयला तोडने वालों को मजदूरी दैनिक आधार पर मिलती है। असम के चाय बागान में मजदूरी साधारणत. उजरत दर पर अदा की जाती है, परन्तु दक्षिण भारत में अधिकतर श्रमिक प्रतिदिन की मजदूरी पर रखे जाते है। उत्तरी भारत के बागान में मजदूरी—समय साधारणतया एक सप्ताह है। दक्षिण भारत मे १९३६ के मजदूरी अदायगी अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रो में मजदूरी—समय साधारणतया एक माह है परन्तु अन्य क्षेत्रो में श्रमिक अर्जित की गई मजदूरी के आधार पर प्रति सप्ताह अग्रिम राशि ले लेते है तथा एकत्रित शेष धन को 'हिसाब किताब' साफ करने के समय या उस अवधि अथवा मौसम की समाप्ति पर ले लेते हैं जिसके लिये वह कार्य पर लगाये जाते है। केरल के कुछ भागों मे मजदूरी साप्ताहिक दी जाती है। मद्रास और कुर्ग के अतिरिक्त, जहा मजदूरी अदायगी अधिनियम लागू है, अधिकतर बागान उद्योग में मजदूरी अदायगी की अवधि रीति-रिवाजों द्वारा निर्धारित होती है। अधिकतर कारखानों में अमानी दरे हैं परन्तु उजरत कार्य भी बहुत से कारखानो मे पाया जाता है, विशेषतया सूती उद्योग के कातने और बुनने से सम्बन्धित विभागो मे। तमाम कारखानो मे लगभग १५.१% श्रमिको को साप्ताहिक आधार पर, ३·७% को पाक्षिक आधार पर और ८१·२% को मासिक आधार पर मजदूरी दी जाती है।

वास्तव में मजदूरी निर्धारण के आधार में कोई भी सामान्य रीति लागू नही की जाती है तथा उद्योग, क्षेत्र व कार्य की प्रकृति के अनुसार मजदूरी पृथक्-पृथक् है। मजदूरी भुगतान की रीति का प्रश्न भारत में विशेष महत्व का है क्योकि यहाँ अप्रत्यक्ष अदायगी (इसमे जिन्स अदायगी पद्धति भी सम्मिलित है जिसका अर्थ श्रमिक को वस्तुओ के रूप मे मजदूरी का भुगतान करना है), मजदूरी भुगतान मे देरी, अनुचित जुर्माने और मजदूरियों मे से कटौती आदि जैसी बातें बहुत साधारण रही हैं तथा अब तक कुछ सीमा तक प्रचलित है, यद्यपि १९३६ के मजदूरी अदायगी अधिनियम के पारित हो जाने से स्थिति में बहुत कुछ सुधार हुआ है।

१९३६ का मजदूरी अदायगी अधिनियम (Payment of Wages Act, 1936)

सन् १९३६ से पूर्व, १८६० के मालिक तथा श्रमिक विवाद अधिनियम के अतिरिक्त, श्रमिको की मजदूरी अदायगी को नियन्त्रित करने वाला अन्य कोई कानून नही था। सन् १९२५ मे एक गैर-सरकारी सदस्य द्वारा इस विषय पर एक विधेयक प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया था परन्तु सरकार के इस आश्वासन पर कि वह स्वय इस ओर कदम उठायेगी, इसको वापिस ले लिया गया था। रॉयल श्रम आयोग के सुझावों के परिणामस्वरूप, जिसने मजदूरी अदायगी, की प्रणालियो के दोषो पर काफी प्रकाश डाला था सरकार ने १९३३ मे एक विधेयक प्रस्तुत किया जो कि १९३६ मे "मजदूरी भुगतान अधिनियम" के नाम से पारित हुआ। यह अधिनियम मार्च १९३७ से लागू हुआ। इसमे १९३७, १९५७ और १९६४ में

सशोधन भी हुए है । अनेक राज्य सरकारो ने भी अपने-अपने राज्यो म अधिनियम लागू करने के लिए इसमे सशोधन किये है । जम्मू और कश्मीर राज्य को छोडकर यह अधिनियम समस्त भारत म लागू होता है जहाँ कि पृथक् अधिनियम लागू है जिसे जम्मू व कश्मीर मजदूरी अदायगी अधिनियम, १६५६ कहा जाता है ।

अधिनियम के मुख्य उपबन्ध

यह अधिनियम प्रत्येक कारखाने और प्रत्येक रेलवे के उन श्रमिको पर लागू होता है जो कि ४००) रु० प्रतिमाह स कम मजदूरी और वेतन प्राप्त करते है । पहले यह सीमा २००) रु० थी परन्तु १६५७ से यह सीमा बढाकर ४००) रु० कर दी गई है । अधिनियम को १६४८ म कोयले की खानो पर तथा १६५१ मे तमाम खानो पर १६५७ म निर्माण उद्योग पर और १६६२ म तेल क्षेत्रो पर लागू कर दिया गया । सन् १६६४ मे सशोधन करके अधिनियम को नागरिक वायु परिवहन सवाओ मोटर परिवहन सेवाओ तथा उन सस्थानो पर भी लागू कर दिया गया है जिन्हे सन् १६४८ के फैक्ट्री अधिनियम की धारा ८५ के अन्तर्गत फैक्ट्री घोषित किया गया हो । उपयुक्त सरकार अधिनियम के उपबन्धो को इसके अन्तर्गत की गई व्याख्या के अनुसार किसी भी औद्योगिक सस्थान मे लागू कर सकती है । अधिनियम मे दी गई व्याख्या के अनुसार मजदूरी उस तमाम मेहनताने को कहते है जिसे द्रव्य के रूप म प्रदर्शित किया जा सकता हो तथा जो रोजगार मे लगे हुये श्रमिको को दिया जाता हो । इसम बोनस व अन्य सभी प्रकार का पारिश्रमिक भी सम्मिलित होता है परन्तु इसमे आवास की सुविधा, रोशनी, पानी व चिकित्सा लाभ या यात्रा भत्ता अवकाशोपरान्त धन पशन, प्राविडेन्ट फण्ड अशदान आदि जैसी जीवन की अन्य सुविधाओ का समावेश नही होता है । १६५७ मे किये गये सशोधन के अनुसार मजदूरी मे यह सब मेहनताना भी सम्मिलित कर लिया गया है जो किसी पचाट, समझौते अथवा न्यायालय के आदेशो के परिणामस्वरूप दिया जाता है । अधिनियम के अन्तर्गत यह आवश्यक है कि मजदूरी की अवधि निश्चित कर दी जाये परन्तु यह अवधि एक माह से अधिक न हो । उन सस्थाओ मे जो १,००० से कम व्यक्तियो को रोजगार देते है मजदूरी अदायगी, मजदूरी अवधि के समाप्त होने के ७ दिन के अन्दर ही हो जानी चाहिये तथा अन्य सस्थानो म अवधि समाप्ति क दस दिन के भीतर-भीतर मजदूरी दे देनी चाहिये । हटाए गए श्रमिक को दूसरे दिन के समाप्त होने से पहले अर्थात् जिस दिन से उस श्रमिक का रोजगार समाप्त हुआ है उसके दूसरे दिन उसको मजदूरी का भुगतान कर दिया जाना चाहिए । मजदूरी की सब प्रकार की अदायगी प्रचलित कानूनी ग्राह्य मुद्रा (Current Legal Tender) मे तथा कार्य के दिन ही होनी चाहिये । १६३७ मे किये गये सशोधन द्वारा मालिको को यह अधिकार है कि वह 'हाजिर" हड़ताल की स्थिति मे मजदूरी की अदायगी को रोक सकते है ।

मजदूरी में से कटौतियाँ (Deductions from the Wages)

अधिनियम के अन्तर्गत मजदूरी में से केवल कुछ निश्चित प्रकार की कटौतियाँ की जा सकती है। उदाहरणार्थ (१) जुर्माने, (२) कार्य से अनुपस्थिति पर कटौती, (३) हानि या क्षति के कारण कटौती, (४) मालिक, सरकार या आवास बोर्ड द्वारा प्रदान की गई आवास सुविधाओं और सेवाओं के लिए कटौती, (५) अग्रिम राशि की उगाही के लिये या मजदूरी की अधिक अदायगी को ठीक करने के लिए कटौती, (६) आय-कर के लिए या प्रोविडेण्ट फण्ड के अंशदान के लिए और उसमे से ली गई अग्रिम राशि को पूरा करने के लिये या सहकारी समिति की अदायगी के लिये या डाक-बीमा के सम्बन्ध में बीमे की किश्तों के लिये कटौती, (७) १९५७ मे किए गए सशोधन के अन्तर्गत बीमा किश्तो और मकान के किराये के लिये, यदि कर्मचारी द्वारा लिखकर दे दिया गया हो, या सरकार को प्रतिभूतियों (Securities) के चन्दे के लिये, या रोजगार के अन्तर्गत लगाये लगाये जुर्मानो के कारण की हुई कटौतियाँ अधिकृत (Authorised) मानी गई है। (८) कोयला खानो मे वर्दी और जूते देने के लिये कटौती, (९) १९६२ में एक सशोधन के अनुसार श्रमिक या श्रमिक सघ के अध्यक्ष अथवा सचिव के लिख देने पर राष्ट्रीय सुरक्षा कोष या सुरक्षा बचत योजना मे चन्दा देने के लिये कटौती की जा सकती है। (१०) साइकिल खरीदने के लिये या मकान बनाने के लिये जगह लेने पर या श्रम कल्याण निधि में से रुपया उधार लेने पर अब १९६४ के सशोधन के अनुसार मजदूरी मे से कटौती की जा सकती है।

इन कटौतियों के विरुद्ध कुछ रक्षात्मक उपायो की भी व्यवस्था की गई है। जुर्माने केवल विशेष कार्यों तथा भूलो के लिये किये जा सकते है जो कि किसी अधिकृत सत्ता (Competent Authority) द्वारा सूचना पत्र मे अनुमोदित कर दिये गये हों। जुर्माने की कुल राशि किसी भी मजदूरी काल मे प्राप्त होने वाली मजदूरी से ३ पैसे प्रति रुपये से अधिक नही हो सकती है। सब जुर्माने निर्धारित रजिस्टर मे दर्ज होने चाहियें तथा एक जुर्माना निधि मे जमा किये जाने चाहिएँ। इन जुर्माना निधियों द्वारा प्राप्त आय श्रमिको के ऐसे लाभ के लिये व्यय की जा सकती है जो अधिकृत सत्ता द्वारा अनुमोदित कर दिए गए हो। कार्य से अनुपस्थिति के लिये कटौती उस राशि से अधिक नही होनी चाहिये जो राशि श्रमिक को मजदूरी के रूप मे, यदि वह अनुपस्थित न होता, मिलती। हानि या क्षति के लिये कटौती केवल तब ही की जा सकती है जबकि वह श्रमिक की असावधानी के कारण हुई हो तथा इस प्रकार की कटौती की राशि मालिक को हुई हानि या क्षति की मात्रा से अधिक नही होनी चाहिए। इन सब बातो का उल्लेख एक रजिस्टर मे किया जाना चाहि । आवास तथा अन्य सुविधाओ के लिये भी कटौती इन सेवाओ के मूल्य से अधिक नही बढनी चाहिए और यह तब ही की जा सकती है जबकि श्रमिक ने इस प्रकार की सुविधा या सेवाओं को स्वीकार कर लिया हो।

सन् १९६४ मे सशोधन द्वारा मजदूरियो की कटौती की बाहरी सीमा निश्चित कर दी गई है। यह सीमा मजदूरी काल मे तो मजदूरियो का ५०% है और उस समय ७५% होती है जबकि कटौतियाँ अशत या पूर्णत सहकारी समितियो के देय धन की अदायगी के लिये की जाती है।

अधिनियम का प्रशासन और विस्तार

अधिनियम को विभिन्न राज्य सरकारो ने अनेक उद्योगो तथा सेवाओ तक विस्तृत कर दिया है, उदाहरणत मद्रास, केरल, असम, मैसूर, पजाब और पश्चिमी बगाल मे बागान पर, लगभग सभी राज्यो मे सैलानी बस सेवाओ पर, बिहार, केरल और आध्र प्रदेश मे अन्तर्देशीय जल यातायात पर, आन्ध्र प्रदेश, असम, बम्बई, केरल और पश्चिमी बगाल मे गोदी कर्मचारियो पर, बम्बई मे दुकानो व वाणिज्य सस्थानो पर, उत्तर प्रदेश मे छापेखानो पर और मध्य प्रदेश मे अनियमित फैक्टरियो पर आदि आदि। अधिनियम के प्रशासन का उत्तरदायित्व राज्य सरकारो पर है और इसका भार कारखाना निरीक्षको को सौंप दिया जाता है। कोयले की खानो तेल क्षेत्र तथा रेलवे के सम्बन्ध मे प्रशासन भार केन्द्रीय मुख्य श्रम आयुक्त पर होता है। राज्य सरकारो ने दावो को सुनने तथा फैसला देने के लिये, जो कि मजदूरी मे कटौती तथा मजदूरी अदायगी मे देरी के कारण पैदा होते है, प्राधिकारियो की नियुक्ति की है। पश्चिमी बगाल मे कोयले की खानो के लिये भारत सरकार ने श्रमिक क्षतिपूर्ति आयुक्त की नियुक्ति की है। १९५७ मे किये गये सशोधन के अनुसार दावा को रद्द करने की आज्ञा के विरुद्ध अपील करने का अधिकार श्रमिको को दे दिया गया है। प्राधिकारियो को यह भी अधिकार है कि यदि यह भय हो कि मजदूरी का भुगतान नही किया जावेगा या किसी व्यवसाय के बन्द होने पर मजदूरी भुगतान को प्राथमिकता नही दी जाएगी तो वह मालिक की या मजदूरी के भुगतान करने के लिये उत्तरदायी व्यक्तियो की सम्पत्ति को सशर्त कुर्क करा सकते हैं। बम्बई मे १९५४ मे एक सशोधन के अनुसार इस नियम के अन्तर्गत यदि कोई राशि शेष रह जाती है तो उसकी उगाही उसी प्रकार की जा सकती है जैसे मालगुजारी के बकाया की उगाही होती है।

अधिनियम का कार्यान्वयन व इसकी सीमाएँ

विभिन्न राज्यो द्वारा इस अधिनियम पर प्रस्तुत की जाने वाली वार्षिक रिपोर्टों से यह पता चलता है कि अधिनियम के उपबन्ध उचित रूप से लागू किए जा रहे हैं। परन्तु कुछ राज्यो में शक्तिशाली तथा उत्तरदायी श्रमिक सघो की कमी के कारण श्रमिक इससे लाभ उठाने मे असफल रहे है। मुख्य श्रम आयुक्त के द्वारा अधिनियम के प्रतिपालन (Observance) की कुछ अनियमितताओ (Irregularities) की रिपोर्ट दी गई है। १९६४ मे रेलो मे अनियमितताओ के २१,११८ मामले पाये गये, जिनमे से १७,८२५ मामले रेलवे सस्थानो मे थे और ३,२८३ रेलवे ठेकेदारो के सस्थानो मे। १६,९४१ मामले ठीक किए गए। सन् १९६४ मे

खानों में, १७,६२२ अनियमिततायें पाई गई और १३,०६५ अनियमिततायें ठीक की गई। रेलवे सस्थानों में सन् १९६४ में अधिनियम के अन्तर्गत जो अनियमिततायें पाई गई उनकी कुल संख्या ११,१६८ थी और यह निम्नलिखित बातों से सम्बन्धित थी—अदायगी की तिथि और अन्य सूचियों का नोटिस न लगाने से सम्बन्धित ४,१०८ ; रजिस्टरों का न रखना ६८५ ; रजिस्टरों का उचित प्रकार से न रखना २९१ ; मजदूरी की देर से अदायगी ३,३२२ ; मजदूरी की अदायगी न करना ६,६३२ ; अनुचित कटौतियाँ ८५३ ; जुर्माने ३४४ ; हानि तथा क्षति के लिये कटौती ९३ ; अग्रिम राशि की उगाही १२ ; अन्य १,१९५। परन्तु सब बातों को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि श्रमिकों को इस अधिनियम से बहुत लाभ हुआ है।

श्रम अनुसन्धान समिति के कथनानुसार यद्यपि अधिकांश बड़े-बड़े संस्थानों द्वारा अधिनियम का ठीक पालन किया गया है तथापि ठेके के श्रमिकों के सम्बन्ध मे तथा छोटे-छोटे संस्थानों में, जहाँ पर किसी प्रकार का कोई रिकार्ड तथा उचित रजिस्टर आदि नही रखे जाते, इस अधिनियम मे बचने का काफी प्रयत्न किया जाता है। अधिकांश मामलों में यह पाया गया है कि कटौती, समयोपरि मजदूरी का रिकार्ड, मजदूरी की समयानुसार अदायगी, बोनस, महगाई भत्ता आदि से सम्बन्धित अधिनियम के उपबन्धों का ठीक प्रकार से पालन नही किया जाता है तथा रजिस्टर भी ठीक-ठीक नहीं रखे जाते है। रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि यद्यपि अधिनियम के अन्तर्गत जुर्मानों की मात्रा बहुत कम है तथापि अनेक मालिक श्रमिकों को एक या आधे दिन के लिये मुअत्तल कर देते है और उनकी मजदूरी में से कटौती कर लेते हैं। समिति के अनुसार रेलवे मे अधिनियम के कार्य-रूप के विषय मे यह एक बहुत गम्भीर शिकायत है। बीडी तथा कपडा जैसे कुछ कारखानों में दान तथा असन्तोषजनक कार्य आदि के लिये मजदूरी से अनधिकृत कटौती की प्रथा भी प्रचलित है। हानि या क्षति के लिये कटौती का जो उपबन्ध है वह श्रमिकों के विरुद्ध जाता है क्योंकि मजदूरी की अदायगी को इस आधार पर रोक लिया जाता है कि औजार तथा पदार्थ खराब हो गये है। बहुत से मामलों मे यह देखा गया है कि मजदूरी अदायगी मे देरी की जाती है। सबसे अधिक हानि ठेके के श्रमिकों को उठानी पड़ती है तथा उनके मामले में अधिनियम के उपबन्धों से बचने का प्रयत्न भी किया जाता है। उनका कोई भी रिकार्ड नही रखा जाता और निरीक्षकों के लिये अधिनियम को लागू करना कठिन हो जाता है। समिति ने बहुत से मामलों मे यह पाया कि जुर्माना निधि मे बहुत बडी-बडी राशियाँ एकत्रित हो गई थी तथा इन राशियों को कर्मचारियों के लाभ के लिए उपयोग मे नही लाया जा रहा था। अनेक मामलों में तो जुर्माना निधियाँ ही नही बनाई गई थी। अधिनियम मे इस निधि को किसी निश्चित समय के अन्दर ही श्रमिकों के लाभ के लिये व्यय करने का बन्धन मालिकों पर नहीं लगाया गया है। इन दोषों और कमियों के कारण ही सरकार ने १९५७ में इस अधिनियम में संशोधन किया

जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। संक्षेप मे १९५७ के संशोधित अधिनियम के मुख्य उपबन्ध इस प्रकार है (i) मजदूरी सीमा को २०० रुपए से बढ़ाकर ४०० रुपये कर दिया गया है, (ii) अधिनियम को निर्माण उद्योग तक विस्तृत कर दिया गया है, (iii) मजदूरी की परिभाषा मे संशोधन किया गया है, (iv) बीमा किस्तों, मकान का किराया, सरकारी प्रतिभूतियों के लिये चन्दा तथा सेवा नियमों के अन्तर्गत लगाए गये जुर्मानों आदि के लिय कटौती को अधिकृत रूप दे दिया गया है, (v) दावों को रद्द कर देने के विरुद्ध अपील करने और श्रमिकों के हित की सुरक्षा के लिये मालिकों की सम्पत्ति को कुर्क कराने की व्यवस्था भी की गई है।

मजदूरी अदायगी अधिनियम मे १९६४ मे जो संशोधन हुआ उसे १ जनवरी १९६५ से लागू कर दिया गया है, इसके मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित है–(i) अधिनियम के क्षेत्र का विस्तार करके वायु यातायात सेवायें, मोटर-यातायात सेवायें तथा ऐसी संस्थानों को ले लिया गया है जिन पर धारा ८५ के अन्तर्गत १९४८ का कारखाना अधिनियम लागू कर दिया गया है। (ii) साइकिल खरीदने, मकान निर्माण के लिय ऋण लेने तथा श्रम कल्याण निधि मे से ऋण लेने पर जो अग्रिम राशि दी जाती है उसकी वसूली के लिय मजदूरी मे से कटौती की जा सकती है। (iii) मजदूरी मे से कटौती की सीमा मजदूरी की ५० प्रतिशत निर्धारित कर दी गई है, परन्तु सहकारी समितियों को जो राशि आंशिक अथवा पूर्णरूप से देनी होती है उसके लिय कटौती ७५ प्रतिशत तक हो सकती है। (iv) निरीक्षकों को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह मालिकों से मजदूरी अदायगी के सम्बन्ध के कोई भी कागज ले सकते है। (v) अधिनियम के अन्तर्गत दावे के प्रार्थना पत्र देने की अवधि ६ माह से बढ़ाकर १२ माह कर दी गई है।

बोनस अदायगी (Bonus Payment)

अब हम बोनस अदायगी की समस्या का उल्लेख करेंगे। भारतीय श्रमिकों की आय पूर्णरूप से उनकी नकद आय से ही नही मापी जा सकती क्योंकि उनको अक्सर अनेक प्रकार के बोनस तथा रियायतें आदि भी दी जाती है। बोनस साधारणतया किसी विशेष या अतिरिक्त सेवा के लिये अदायगी है तथा साधारणतया इसका उद्देश्य उपस्थिति मे नियमितता लाना व विशेष प्रकार के अच्छे कार्यों को प्रोत्साहन देना है। इस प्रकार बोनस वह नकद अदायगी है जोकि मजदूरी के अतिरिक्त श्रमिकों द्वारा अधिक प्रयत्नों को प्रोत्साहन देने के लिए की जाती है। परन्तु यह परिभाषा 'प्रोत्साहन बोनस' की ओर संकेत करती है अर्थात जब अधिक प्रयत्नों के लिए बोनस का भुगतान किया जाता है। अब बोनस शब्द ने एक दूसरा अर्थ ग्रहण कर लिया है—अर्थात् लाभ मे श्रमिकों का अधिकारपूर्ण भाग। बोनस मालिक-मजदूर सम्बन्धों का एक मुख्य प्रश्न बन गया है।

जैसा कि मजदूरी स्तर के अन्तर्गत उल्लेख किया जा चुका है, बोनस बहुत से उद्योगों मे नियमित रूप मे दिया जाता है। साधारणतया बोनस उद्योग के लाभ में से अदा किया जाता है तथा अब वह श्रमिकों की मजदूरी का ही भाग समझा जाता है। इस कारण बोनस अदायगी का प्रश्न बहुत-से औद्योगिक विवादों का विषय रहा है। ऐसे अनेक विवाद समय-समय पर औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत की गई सुलह व्यवस्था को सौंपे जाते है। अब यह सुझाव दिया गया है कि श्रमिकों को बोनस देने के लिये कुछ निश्चित सिद्धान्त तथा स्तर होने चाहियें। इनको बनाने के लिए बोनस की प्रकृति से सम्बन्धित बहुत सी बातों की जांच आवश्यक होगी। यह निर्णय करना होगा कि : (क) क्या बोनस अनुग्रहपूर्वक की गई अदायगी (Ex-gratia payment) है जो पूर्ण रूप से मालिकों की इच्छा पर निर्भर करती है तथा क्या इसको उस समय तक कानूनी अधिकार के रूप मे नही माँगा जा सकता जब तक कि यह रोजगार की संविदा में सम्मिलित न हो, या (ख) बोनस, भुगतान की गई मजदूरी तथा जीवन निर्वाह मजदूरी स्तर के अन्तर को कम करने के लिए, श्रमिकों को दी जाने वाली स्थगित मजदूरी है, या (ग) बोनस लाभ मे से एक भाग है जिसका दावा श्रमिक एक अधिकार के रूप में कर सकते हैं क्योंकि लाभ श्रम और पूंजी दोनों के ही, संयुक्त प्रयत्नों का परिणाम होता है तथा किसी भी एक पक्ष को दूसरे पक्ष की उपेक्षा करके इसको पूर्ण रूप से प्राप्त करने का अधिकार नही होना चाहिए।

इन विचारों मे से प्रथम विचार, अर्थात् बोनस अनुग्रहपूर्वक की गई अदायगी है, अर्थशास्त्रियों द्वारा स्वीकार नही किया गया है। औद्योगिक अधिकरणों द्वारा दिये गये निर्णयों से भी यही बात अभिव्यक्त होती है। विवाचकों के हाल ही के निर्णयों से भी यही बात स्पष्ट है कि बोनस अनुग्रहपूर्वक की गई अदायगी नही है और इसको श्रमिकों द्वारा अधिकार के रूप मे माँगा जा सकता है। १६५४ मे इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अनुसार : "इसमे कोई सन्देह नही कि आधुनिक समय मे 'बोनस' को स्पष्ट रूप से ऐसी स्थगित मजदूरी माना गया है जो श्रमिकों को अदा की जाती है तथा श्रमिकों के द्वारा रोजगार की शर्तों के अनुसार अधिकार के रूप मे माँगी जा सकती है। जिन परिस्थितियों के अन्तर्गत वर्तमान उद्योग कार्य करता है, उनमे बोनस श्रमिकों का एक अधिकार समझा जाने लगा है जिसको कि वह कुछ परिस्थितियों मे मालिकों से दावे के रूप में माँग सकते हैं।" इस प्रकार श्रमिकों के इस बोनस अदायगी के दावे ने कानूनी मान्यता प्राप्त कर ली है। यह हमारे संविधान मे दिए गए सामाजिक और आर्थिक न्याय पर आधारित है। बोनस का देना कोई दान का कार्य नही है। यह तो श्रमिकों का लाभ में अधिकार-पूर्ण भाग समझा जाता है, जो लाभ श्रमिकों के सहयोग और सहायता से ही कमाया जाता है।

श्रमिकों को बोनस की अदायगी की मात्रा कितनी हो, इसका निर्णय करने के लिये हमें मालिकों के पास प्राप्त बेशी राशि की मात्रा को देखना होगा। इस

वेशी राशि को निश्चित करने के लिए श्रम अपीलीय अधिकरण (Labour Appellate Tribunal) ने एक सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। यह सिद्धान्त उद्योग द्वारा किसी एक निश्चित वर्ग के कुल लाभ की मात्रा को लेता है तथा यह बताता है कि निम्न बातो को कुल लाभ मे से सबसे पहले अलग कर देना चाहिए मूल्य-ह्रास (Depreciation) की व्यवस्था, पुनर्वास के लिए कुछ आरक्षित निधि, चुकती पूँजी पर ६% का ब्याज, कार्यशील पूँजी पर कम दर पर ब्याज और आयकर अदायगी के लिये व्यवस्था। शेष धन को उस वर्ष के लिए प्राप्त वेशी राशि (Surplus) मान लेना चाहिए जिसमे से श्रमिक अपने लिये उचित भाग के माँगने का अधिकारी है। यह सिद्धान्त जो कि सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) द्वारा मान्य है अब सारे देश मे श्रमिको के बोनस के दावो का निर्णय करने के लिए औद्योगिक विवाचको के लिये एक आधार बन गया है। यह भी माना गया है कि श्रमिको के 'बोनस दावो' को मान्यता देने से पूर्व निम्नलिखित बातो का होना आवश्यक है—(i) जबकि मजदूरी जीवन स्तर के लिए पर्याप्त मजदूरी से कम हो (ii) जबकि उद्योग को अत्यधिक लाभ होते है जिनका अधिकाश श्रमिको के सहयोग द्वारा बनाए गए उत्पादन के कारण ही सम्भव होता है।

बोनस आयोग और बोनस अदायगी अधिनियम, १९६५

मार्च १९६० मे स्थायी श्रम समिति ने एक 'बोनस आयोग' की स्थापना की सिफारिश की थी। इस आयोग का कार्य यह होगा कि नकदी या अन्य रूप मे बोनस की अदायगी के लिए कुछ सिद्धान्त बना दे। ऐसे सिद्धान्त बोनस के झगडो को निबटाने मे बहुत सहायक होगे। तत्कालीन केन्द्रीय श्रम मन्त्री श्री नन्दा ने इस बात की घोषणा भी की थी कि ऐसे बोनस आयोग के कार्य-क्षेत्र को बढा दिया जायेगा और यह बोनस से सम्बन्धित अन्य प्रश्नो पर भी विचार करेगा। उदाहरणत मजदूरी निर्धारण, मूल्यों की स्थिरता, निर्वाह खर्च तथा उत्पादकता आदि जिनका बोनस के प्रश्न से सम्बन्ध है। मालिको के प्रतिनिधियो ने ऐसे आयोग का विरोध किया। उनका कहना था कि जब सर्वोच्च न्यायालय ने बोनस से सम्बन्धित निश्चित सिद्धान्त बना दिए है तो ऐसे आयोग की कोई आवश्यकता नही थी। परन्तु फिर भी सरकार ने दिसम्बर १९६१ मे श्री एम० आर० मिहिर की अध्यक्षता मे बोनस आयोग की नियुक्ति की। मालिको ने श्री मिहिर की नियुक्ति पर आपत्ति की परन्तु सरकार ने उस आपत्ति की परवाह नही की। यह आयोग त्रिदलीय था। यह उल्लेखनीय है कि किसी भी प्रकार के वैधानिक नियमो के अभाव मे बोनस योजनायें ऐच्छिक या विवाचको के पचाट के परिणामस्वरूप निर्धारित की गई हैं। परन्तु इनके अतिरिक्त वेशी राशि की गणना के लिए कोई समान या निर्धारित नियम नही है और न ही यह स्पष्ट किया गया है कि श्रमिको को इसमे से कितना भाग मिलना चाहिए। श्रमिको तथा मालिको, दोनो ही के सघो ने विवाचको तथा अपनाये गये स्तरो की अनेक आधारो पर आलोचना

की है तथा यही बात अनेक वादविवादों और हड़तालों का कारण बनी है। इसलिये यह वांछनीय ही है कि बोनस की प्रकृति तथा लाभ से इसका सम्बन्ध, सब व्ययो को निकाल कर कुल लाभ में से बेशी लाभ की गणना, बोनस तथा लाभ के लिये आदर्श स्तर आदि प्रश्नों पर किसी विशेषज्ञ समिति द्वारा सावधानीपूर्वक विचार किया जाना चाहिये और जो भी निर्णय हो उसे वैज्ञानिक रूप से लागू करना चाहिये। अत कहा जा सकता है कि बोनस आयोग की नियुक्ति सही दिशा मे उठाया गया पग था।

बोनस आयोग की नियुक्ति दिसम्बर १९६१ मे हुई थी। इसका कार्य औद्योगिक व्यवसायों के श्रमिकों को बोनस की अदायगी के प्रश्न पर विचार करना तथा उस सम्बन्ध मे उपयुक्त सिफारिशें प्रस्तुत करना था। आयोग से कहा गया था कि वह बोनस की स्पष्ट व्याख्या करे और लाभों पर आधारित बोनस की अदायगी के प्रश्न पर विचार करे तथा ऐसे सिद्धान्तों की सिफारिशें करे जिनके द्वारा बोनस की गणना, उसकी अदायगी के तरीकों तथा बोनस की मात्रा आदि का निर्धारण किया जा सके। आयोग ने जनवरी १९६४ मे सरकार को अपनी रिपोर्ट दे दी।

बोनस की परिभाषा के सम्बन्ध मे आयोग ने यह मत व्यक्त किया कि बोनस सस्थान की समृद्धि मे से उन कर्मचारियों का एक भाग है जो उसमे कार्य करते हैं। इससे उस खाई को पाटने मे सहायता मिलेगी जो कम मजदूरी वाले श्रमिको की स्थिति मे असल मजदूरियों तथा आवश्यकता पर आधारित मजदूरियों के बीच पाई जाती है। आयोग ने बोनस को मजदूरी मे मिलाये जाने के विचार का इस आधार पर विरोध किया कि जहा मजदूरी की दरें उद्योग एव क्षेत्र के आधार पर निश्चित की जाती है वहाँ लाभ सदा एक से नही रहते और उनका सम्बन्ध इकाई की अदा करने की योग्यता से जुड़ा रहता है। आयोग ने इस विचार को भी स्वीकार नही किया कि बोनस को प्रोत्साहन एव प्रेरणाओं के साथ सम्बद्ध कर दिया जाये क्योंकि लाभ-बोनस प्रेरणा-बोनस से एक बिल्कुल अलग चीज है। कार्यकुशलता को प्रोत्साहन केवल तभी मिलता है जबकि समुचित रूप से बनाई गई ऐसी उत्पादन-बोनस योजनायें लागू की जाती है जो कि अच्छे उत्पादन, कार्य-कुशलता तथा ऊँची मजदूरी में प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित कर देती हैं।

कमीशन ने एक सूत्र दिया है जिसके द्वारा मूल्य-ह्रास, आय कर, अति कर, पूँजी पर प्रतिफल (७ प्रतिशत) तथा आरक्षित निधि (४ प्रतिशत) निकाल कर कुल लाभ निर्धारित करना चाहिए। उपलब्ध बेशी का ६० प्रतिशत बोनस भुगतान के लिये होना चाहिये तथा शेष अवकाश-प्राप्त धन, आवश्यक आरक्षित निधि, अति लाभ-कर आदि के लिये व्यय किया जा सकता है। आयोग की योजनानुसार प्रत्येक ऐसे श्रमिक को, जिसने एक वर्ष नौकरी कर ली हो, अपनी मूल मजदूरी और मँहगाई भत्ते द्वारा जो वार्षिक आय होती है उसका ४% या ४० रु० जो भी अधिक हो, बोनस के रूप मे मिलना चाहिये। जिस श्रमिक ने एक वर्ष से कम

समय काम किया हो उसे आनुपातिक आधार पर बोनस मिलना चाहिये । बोनस की अदायगी की अधिकतम सीमा निश्चित की गई । यह सीमा मूल मजदूरी तथा मँहगाई भत्ते द्वारा होने वाली आय की २०% थी । इस सूत्र को गैर-सरकारी क्षेत्र के उद्योगो पर लागू करना था तथा सरकारी क्षेत्र के ऐसे उद्योगो पर लागू करना था जिनकी उपज की कुल बिक्री के कम से कम २०% तक भाग की गैर सरकारी क्षेत्र की उपज से प्रतियोगिता होती है । नये संस्थानो को ६ वर्ष के लिए छूट देने की सिफारिश थी । आयोग ने सिफारिश की थी कि उसके इस सूत्र का १९६२ मे हिसाब के वर्ष की समाप्ति के किसी भी दिन से लागू किया जाए, किन्तु जिन *मामलो मे समझौते हो चुके हैं अथवा निर्णय दे दिये गये हैं* उनमे इस सूत्र को लागू न किया जाये । प्रारम्भ मे योजना को जूट उद्योग, कोयला तथा अन्य खान उद्योगो, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, अन्य बैंको, चीनी उद्योग तथा विद्युत् संस्थानो पर लागू करने की सिफारिश थी ।

यह उल्लेखनीय है कि जहाँ श्रम अपील न्यायाधिकरण के बोनस सूत्र मे केवल मूल वेतन को ही दृष्टिगत रखा गया है, वहाँ बोनस अदायगी के सम्बन्ध मे आयोग का सूत्र श्रमिक के मूल वेतन तथा मँहगाई भत्ते, दोनो को ही दृष्टिगत रखता है । बोनस के लिये उपलब्ध बेशी की गणना करने के उद्देश्य से कुल लाभो मे से घटाई जाने वाली मदो की जो सूची बनाई गई है, बोनस आयोग ने तो उसमे से पुनर्वास लागतो को भी बाहर रखा है, किन्तु न्यायाधिकरण के सूत्र मे उक्त लागतो को सूची मे सम्मिलित किया गया है ।

बोनस आयोग की रिपोर्ट सर्वसम्मत नही थी अपितु उसके साथ असहमति की टिप्पणी सलग्न थी । इससे काफी मतभेद उत्पन्न हुआ किन्तु सरकार ने सितम्बर १९६४ मे रिपोर्ट की सिफारिशो को कुछ सशोधनो के साथ स्वीकार करने की घोषणा कर दी । सिफारिशो को कार्यान्वित करने के लिए पहले सरकार ने मई १९६५ में एक अध्यादेश जारी किया और बाद में इस अध्यादेश का स्थान बोनस अदायगी अधिनियम १९६५ ने लिया जिस पर २५ सितम्बर १९६५ को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिली । अधिनियम २९ मई १९६५ से पश्चाद्दर्शी प्रभाव के साथ लागू हो गया । मुख्य सशोधन लेखा-वर्ष के सम्बन्ध मे, बोनस के लिये उपलब्ध बेशी के निर्धारण के सम्बन्ध मे और बाद के वर्षो मे उसमे हेर-फेर करने के सम्बन्ध मे थे ।

बोनस भुगतान अधिनियम के मुख्य उपबन्ध इस प्रकार है (१) यह *अधिनियम उन सभी कारखानो और संस्थानो पर लागू होता है जिनमे २० या* उससे अधिक कर्मचारी काम करते हैं और सरकारी क्षेत्र के उन संस्थानो पर भी लागू होता है जो विभाग द्वारा नही चलाये जाते तथा निजी क्षेत्र के संस्थानो से २०% की सीमा तक स्पर्धा करते हैं । वित्तीय निगम और संस्थायें, रिजर्व बैंक, बीमा कम्पनियाँ, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया, जीवन बीमा निगम, नाविक, गोदी श्रमिक, विश्वविद्यालय तथा शिक्षा संस्थायें, अस्पताल तथा समाज कल्याण संस्थायें

(यदि ये लाभ-हेतु स्थापित नहीं किये गये हैं), इमारती कार्यों में ठेके के श्रमिक, केन्द्र या राज्य सरकार अथवा स्थानीय सत्ता द्वारा विभागीय रूप से संचालित संस्थान, भारतीय रैडक्रास सोसाइटी तथा ऐसे अन्तर्देशीय जल यातायात संस्थान, जो अन्य किसी देश से गुजरने वाले मार्गों पर कार्य करते है, छोड़ दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त, अधिनियम ऐसे कर्मचारियों पर भी लागू नहीं होगा जिन्होंने लाभ अथवा उत्पादन बोनस की अदायगी के लिए २६ मई १९६५ से पूर्व अथवा पश्चात् अपने मालिकों से समझौता कर लिया है। (२) अधिनियम में उल्लिखित बोनस सूत्र १९६४ के उस विशेष दिन से लागू होगा जिस दिन से संस्था के हिसाब का वर्ष आरम्भ होता है। परन्तु यदि २६ मई १९६५ तक बोनस विषय पर विवादों का किसी संस्थान मे निर्णय नहीं हुआ था तो सूत्र १९६२ या उसके पश्चात् के हिसाब के वर्ष के दिन से लागू होगा। (३) हिसाब के वर्ष के सम्बन्ध में उपलब्ध बेशी की गणना कुल लाभों में से कुछ पूर्व खर्चों (prior charges) को निकाल कर की जायेगी। पूर्व खर्चों में मूल्य-ह्रास, प्रत्यक्ष कर, निकास निधि, पूँजी पर प्रतिफल और कार्य करने वाले साझेदारों तथा प्रोप्राइटरों का पारिश्रमिक सम्मिलित है। सहकारी समितियों तथा विद्युत संस्थानों के सम्बन्ध में अतिरिक्त पूर्व खर्चों की अनुमति प्रदान की गई है। प्रत्येक हिसाब के वर्ष में उपलब्ध बेशी का ६०% (विदेशी कम्पनियों के लिये ६७%) बोनस भुगतान के लिये रखा जायेगा। *(४) प्रत्येक हिसाब के वर्ष में हर एक श्रमिक को न्यूनतम बोनस उसकी* मजदूरी या वेतन का ४% अथवा ४० रु० जो भी अधिक हो, दिया जायेगा (बाल श्रमिकों के लिए २५ रु०)। अधिकतम बोनस श्रमिक के वेतन या मजदूरी का २०% होगा। "वेतन या मजदूरी" में मूल मजदूरी तथा मँहगाई भत्ता सम्मिलित किया गया है और अन्य भत्तों तथा कमीशन को छोड़ दिया गया है। अधिनियम में यह भी कहा गया है कि जहाँ वितरण योग्य बेशी कर्मचारी को दिये जाने वाले अधिकतम बोनस की राशि से अधिक हो जाये तो अतिरिक्त राशि आगामी लेखा-वर्षों में समायोजित करने के लिए आगे ले जाई जायेगी किन्तु यह राशि कर्मचारी के कुल वेतन या मजदूरी के २०% से अधिक नहीं होगी। इसी प्रकार, जहाँ बेशी न हो अथवा वितरण योग्य बेशी संस्थान में सभी कर्मचारियों को अदा किये जाने वाले न्यूनतम बोनस से कम पड़ जाये और जहाँ इतनी पर्याप्त राशि न हो कि जिसे न्यूनतम बोनस की अदायगी के उद्देश्य से आगे ले जाया जा सके, तब ऐसी राशि अथवा घाटे की राशि आगामी लेखा-वर्षों में समायोजन के लिए आगे ले जाई जायेगी। (५) बोनस उन कर्मचारियों को मिलेगा जिनका वेतन या मजदूरी १६०० रु० प्रति माह तक है। परन्तु ७५० रु० प्रति माह से अधिक वेतन पाने वाले कर्मचारियों के लिए बोनस की गणना उसी प्रकार की जायेगी जैसे उनका वेतन ७५० रु० प्रति माह हो। बोनस केवल उन्हीं कर्मचारियों को मिलेगा जो वर्ष के सभी कार्य-दिवसों में काम करते हैं। यदि कार्य कम दिनों किया जाता है तो उसी अनुपात में बोनस घट जायेगा। परन्तु बोनस पाने का

अधिकारी होने के लिए वर्ष में कम से कम ३० दिन कार्य करना आवश्यक है। जबरी छुट्टी के दिनों, मजदूरी सहित छुट्टियों, मातृत्वकालीन छुट्टियों अथवा व्यावसायिक चोट के कारण अनुपस्थिति के दिनों को कर्मचारी के काम करने के दिनों के रूप में ही माना जायेगा। (६) बोनस का भुगतान हिसाब का वर्ष समाप्त होने पर ८ माह के अन्दर-अन्दर किया जायेगा परन्तु यह अवधि सरकार द्वारा बढ़ाई जा सकती है। (७) नये संस्थान या तो उस लेखा-वर्ष से बोनस देना आरम्भ करेंगे जिस वर्ष उन्हें लाभ हो अथवा छठे लेखा-वर्ष से जबकि वे अपना उत्पादित सामान बेचना आरम्भ करेंगे, इनमें से जो भी पहले हो। (८) किसी संस्थान के कर्मचारियों को इस बात की अनुमति होगी कि वे अधिनियम में दिये गये सूत्र से भिन्न आधार पर बोनस देने के लिये अपने मालिकों से समझौता कर सकें। (९) बोनस से सम्बन्धित विवादों को भी औद्योगिक विवाद अधिनियम, १९४७ तथा समवर्ती राज्य विधियों के अन्तर्गत आने वाले अन्य औद्योगिक विवादों के समान ही माना जायेगा। (१०) अधिनियम के उपबन्धों का उल्लंघन करने पर दण्ड (६ माह की कैद या १००० रु० तक जुर्माना या दोनों) की व्यवस्था की गई है और इसको लागू करने के लिए निरीक्षकों की नियुक्ति का भी प्रावधान किया गया है। (११) यदि किसी कर्मचारी को जालसाजी, हिंसक व्यवहार, चोरी, दुर्विनियोग या तोड़ फोड़ के कारण पदच्युत कर दिया गया हो तो उसे बोनस प्राप्ति के अयोग्य माना जायेगा।

बोनस भुगतान अधिनियम, १९६५ की कुछ धाराओं की सवैधानिक वैधता को उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई। न्यायालय ने धारा १० (न्यूनतम बोनस की अदायगी), धारा ११ (अधिकतम बोनस की अदायगी) और धारा १५ (वितरण योग्य वेशी का समायोजन या मुजराई) की वैधता की पुष्टि की किन्तु धारा ३३ (रुके विवादों पर अधिनियम को लागू करना), धारा ३४ (२) (ऊँचे बोनस लाभों का संरक्षण) तथा धारा ३७ (अधिनियम को लागू करने में उत्पन्न कठिनाइयों को दूर करने के लिए अधिकार) का संविधान के विरुद्ध घोषित किया। उच्चतम न्यायालय के निर्णय से जो स्थिति उत्पन्न हो गई उस पर २६ अक्टूबर १९६६ को स्थायी श्रम समिति ने विचार किया। समिति ने मामले पर आगे विचार करने के लिए एक द्विदलीय समिति की स्थापना की। समिति की दो बैठकें हुई किन्तु किसी समझौते पर न पहुँचा जा सका। मामला अभी भी विचाराधीन है।

भारत में लाभ सहभाजन योजना
(Profit-sharing Scheme in India)

अब हम लाभ-सहभाजन योजनाओं और भारत में उनके क्रियान्वयन पर विचार करते हैं। आज की औद्योगिक प्रणाली में श्रमिकों की मुख्य शिकायत यह है कि न तो उनका उद्योग के प्रबन्ध में सहयोग लिया जाता है और न ही उन्हें

उस व्यवसाय के लाभ में जहाँ वह कार्य करते है कोई भाग प्राप्त होता है। इस आपत्ति को दूर करने के लिये संसार के मुख्य औद्योगिक देशों में सह-साझेदारी (Co-partnership) तथा लाभ सहभाजन की योजनायें लागू की गई हैं। कुछ देशों मे सह-साझेदारी तथा लाभ सहभाजन दोनो ही को साथ-साथ लागू किया गया है। परन्तु दूसरे कुछ देशों में उद्योगपति लाभ का केवल कुछ भाग ही श्रमिकों को देने को तैयार हुए हैं ताकि श्रमिक संतुष्ट रह सकें। अतः साधारण लाभ सह-भाजन से लेकर पूर्ण सह-साझेदारी तक की अनेक योजनायें हो सकती है।

लाभ सहभाजन का अर्थ

लाभ सहभाजन का तात्पर्य ऐसी व्यवस्था से है जिसके अन्तर्गत मालिक कर्मचारियों को मजदूरी के अतिरिक्त व्यवसाय में हुए बेशी लाभ मे से कुछ भाग दे देते है। इसका अर्थ यह भी है कि मालिक तथा कर्मचारियो के मध्य इस भाग को प्राप्त करने के लिये समझौता होता है। अतः लाभ सहभाजन तथा बोनस के भुगतान मे अन्तर है। बोनस की अदायगी अधिकतर मालिको की सद्भावना या न्यायाधिकरण के पंचाट पर अथवा जैसा कि भारत में है, सरकार के अधिनियम पर निर्भर होती है। बोनस को संस्थान की समृद्धि में श्रमिक का हिस्सा या आस्थगित मजदूरी माना जाता है। इसके विपरीत लाभ सहभाजन एक ऐसे निश्चित समझौते पर आधारित होता है जो कि मालिक तथा कर्मचारियों के मध्य होता है और जिसके अन्तर्गत श्रमिको को एक शेयरधारी के समान उद्योग के लाभों मे से हिस्सा मिलता है। आजकल लाभ तथा मजदूरी को एक साथ मानने की प्रवृत्ति हो गई है तथा यह समझा जाता है कि श्रमिकों का मजदूरी के साथ लाभ में भी हिस्सा पाने का अधिकार है। मार्क्स के इस सिद्धान्त को कि लाभ 'चोरी की हुई मजदूरी' है अब कोई महत्व नही दिया जाता क्योकि लाभ औद्योगिक प्रणाली का एक आवश्यक भाग समझा जाता है। श्रम के शोषण की बुराइयों को दूर करने के लिये लाभ सहभाजन की योजना का सुझाव दिया गया है और कोई भी व्यक्ति लाभ को पूर्णतया समाप्त कर देने के बारे में गम्भीरता से नही सोचता।

लाभ सहभाजन की वाँछनीयता

लाभ सहभाजन के पक्ष में सबसे महत्वपूर्ण तर्क सामाजिक न्याय का है। यह सर्वविदित ही है कि श्रम उत्पत्ति का मूल उपादान है तथा श्रमिक यदि कार्य न करे तो लाभ का होना असम्भव है। यह श्रमिक ही तो है जिसके कारण लाभ उत्पन्न होता है तथा यह बहुत ही अन्यायपूर्ण होगा यदि उसको लाभ मे से कोई भाग न दिया जाय। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि पूंजीपति वर्ग द्वारा सारे लाभ का स्वायत्तीकरण (Appropriation) श्रम और पूंजी में तीव्र मतभेद उत्पन्न कर देता है जिसका परिणाम औद्योगिक झगड़े, उत्पादन में कमी और उत्पादन के उपादानों का अपव्यय होता है। वर्तमान समय मे सारा लाभ व्यवसायी ही हड़प

जाते हैं। लेकिन यदि वह अपने लाभ का एक भाग श्रमिक को उनकी मजदूरी के अतिरिक्त दे दे तब यह आशा की जा सकती है कि श्रम और पूंजी के बीच संघर्ष कम हो जायेंगे जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन भी अच्छा होने लगेगा। लाभ सहभाजन श्रम और पूंजी के सामान्य हितों को सुदृढ़ कर देता है। इससे श्रमिकों में स्थायी रूप से एक स्थान पर कार्य करते रहने की प्रवृत्ति भी आ जायेगी तथा निरन्तर श्रमिकावर्त्त के दोष दूर हो जायेंगे। इसके अतिरिक्त वे श्रमिक जिन्हें लाभ में हिस्सा प्राप्त होता है बहुत सावधानी तथा परिश्रम से अपना कार्य करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक माल का अपव्यय कम करते हैं तथा मशीन व उत्पादन के औजारों का विशेष ध्यान करते हैं। उत्पादन की क्षमता बढ़ जाती है जिसका अतत परिणाम अधिकाधिक लाभ होता है। रोबर्ट ओवन के बारे में कहा जाता है कि जब एक बार एक मिल मालिक ने उससे कहा कि, "यदि मेरे श्रमिक चाहें तो वह अच्छा कार्य करके तथा अपव्ययता को दूर करके मेरे १०,००० पौंड प्रति वर्ष बचा सकते हैं", तो ओवन ने प्रत्युत्तर में कहा कि, तब आप उनको ५,००० पौंड प्रतिवर्ष इस कार्य के लिए क्यों नहीं दे देते हैं!' लाभ सहभाजन का एक और लाभ यह होता है कि उच्च योग्यता वाले श्रमिक लाभ सहभाजन वाले संस्थानों की ओर आकर्षित होते हैं और इससे उत्पादन क्षमता और भी बढ़ जाती है।

लाभ सहभाजन योजना में बाधायें

लाभ सहभाजन योजना की व्यवस्था से जहाँ लाभ है वहाँ अनेक दोष तथा त्रुटियाँ भी हैं। यह योजना श्रमिक नेताओं द्वारा पसन्द नहीं की गई है क्योंकि इसके द्वारा मालिक प्राय श्रमिक संघों को निर्बल करने का अवसर ढूंढ़ते हैं और श्रमिकों को श्रमिक संगठनों पर निर्भर होने के स्थान पर अपने ऊपर आश्रित कर लेते हैं। लाभ सहभाजन में कभी कभी श्रमिक अपनी सामर्थ्य से अधिक काम करते हैं। अन्त में इसका परिणाम कम मजदूरी होता है। अनेक बार श्रमिकों को जो लाभ में से भाग मिलता है अधिक नहीं होता और श्रमिक वर्ग लाभ को बाँटने में मालिकों की ईमानदारी और सच्चाई में सन्देह करता है। अत श्रमिक लाभ सहभाजन की योजनाओं में अधिक रुचि नहीं लेते। भारत में इस प्रकार की शंका अधिक है क्योंकि जब चतुर पूंजीपति अपने लाभ के बारे में आय कर अधिकारियों तक को चकमा दे सकते हैं तब उनके लिये बेचारे निर्धन और अशिक्षित श्रमिकों को धोखा देना तो बहुत ही सरल है। इसके अतिरिक्त जब यह व्यवस्था प्रारम्भ की जाती है तो मालिक और श्रमिक दोनों ही यह दिखाने का प्रयत्न करते हैं कि लाभ में जो वृद्धि हुई है वह केवल उनके अपने ही प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हुई है। श्रमिक यह सोचते हैं कि क्योंकि उन्होंने मन लगाकर तथा अधिक उत्साह से कार्य किया है इसलिए लाभ विशेषकर उन्हीं के प्रयत्नों द्वारा हुआ है, परन्तु मालिक इस बात को स्वीकार नहीं करते। परिणामस्वरूप विवाद उत्पन्न होने लगते हैं।

लाभ सहभाजन योजना के विरुद्ध अनेक आपत्तियाँ और भी है। यह बताया जा चुका है कि निबल लाभ का ठीक-ठीक हिसाब लगाना कठिन है क्योंकि मूल्य ह्रास, कराधान (Taxation), आरक्षित धन (Reserves), चुकती पूँजी पर लाभ आदि ऐसी अनेक बाते है, जिनके बारे मे निबल लाभ (Net profits) के निश्चित करने मे बहुत अधिक तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त मालिक सदा यह कहते है कि यदि श्रमिक लाभ में अपने भाग का दावा करते है तो क्या व्यवसाय में हानि होने पर उस हानि का एक भाग देने को तैयार होगे ? दूसरे शब्दों में क्या श्रमिक व्यवसाय की जोखिम को उसी अनुपात मे वहन करने को तैयार हैं जिस अनुपात मे वह लाभ में हिस्सा चाहते है ? लाभ सहभाजन से श्रमिक आलसी भी हो सकते हैं और इस कारण उत्पादन बजाय बढने के घट सकता है।

उपसहार

अत. प्रो० टॉजिग का कथन है "यह आशा बिलकुल नही की जा सकती कि लाभ सहभाजन विश्वव्यापी रूप ग्रहण कर लेगा। इसके विस्तृत रूप मे अपनाये जाने की आशाएँ भी बहुत कम हैं।" तब भी अनेक ऐसे अर्थशास्त्री है जिनका विश्वास है कि लाभ सहभाजन ही श्रमिक वर्ग की मुक्ति का एकमात्र मार्ग है। इसमे तो कोई सन्देह नही कि लाभ सहभाजन योजनाओं से श्रमिको मे सन्तुष्टि उत्पन्न होगी और वह अपना कार्य भी अच्छी प्रकार से करेंगे परन्तु वस्तुतः इन योजनाओं को कार्यान्वित करने मे अनेक बाधाएँ हैं। जब तक कि मालिको और श्रमिकों के मध्य पारस्परिक विश्वास तथा पारस्परिक सौहार्द्र का वातावरण पैदा नही होता ऐसी योजनाएँ कभी भी सफलता प्राप्त नही कर सकती। यह सोचना भी बहुत ज्यादा आशावादी हो जाना होगा कि लाभ सहभाजन योजनाएँ औद्योगिक विवादो को समाप्त कर देगी। अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि ऐसी योजनाओं से विवाद कम हो जाएँगे।

श्रमिक सह-साझेदारी (Labour Co-partnership)

भारतवर्ष मे लाभ सहभाजन की प्रस्तावित योजना पर विचार करने से पूर्व इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि व्यवसाय के प्रबन्ध और निर्देशन मे किसी भी प्रकार के अधिकार के बिना श्रमिको का लाभ में से भाग लेना लाभ सहभाजन का एक आन्तरिक दोष है। इस दोष को दूर करने के लिये बहुत से देशों मे श्रमिकों को प्रबन्धक मण्डल मे प्रतिनिधित्व देने के प्रयत्न किये गये है। इसको सह साझेदारी के नाम से जाना जाता है। इसका क्षेत्र लाभ सहभाजन के क्षेत्र से अधिक विस्तृत है। वास्तव मे इसमे लाभ सहभाजन और प्रबन्ध मे भाग दोनो ही का समावेश हो जाता है और इससे अन्त मे श्रमिक पूँजी मे हिस्सेदार होने के भी योग्य हो जाते है। प्रारम्भ मे श्रमिक सह-साझेदारी को सहकारिता का ही एक रूप समझा जाता था। इस ओर रोबर्ट ओवन द्वारा प्रयत्न किये गये

थे। यह प्रयत्न असफल रहे क्योंकि सहकारिता प्रणाली बड़े पैमाने की उत्पत्ति के अनुकूल नहीं है। रोबर्ट ओवन के आदर्श बहुत ही ऊँचे थे जिनको प्राप्त करना बहुत कठिन था। परन्तु यह एक पृथक् प्रश्न है जिसका अध्ययन 'श्रम और सहकारिता' के अध्याय में किया जायेगा।

सामान्यत सह-साझेदारी उन योजनाओं में होती है जो पूँजीवादी प्रकृति की होती हैं तथा इनमें, जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, लाभ सहभाजन व श्रमिकों का प्रबन्ध म नियन्त्रण की योजनाएँ भी सम्मिलित होती हैं। व्यवसाय का नियन्त्रण प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि या तो शेयर पूँजी प्राप्त की जाए और इस प्रकार से शेयरधारी के साधारण अधिकार तथा उत्तरदायित्व प्राप्त कर लिए जाएँ या श्रमिकों की एक सह साझेदारी समिति बना ली जाए जिसकी आन्तरिक प्रबन्ध में कुछ सुनवाई हो। जहाँ तक शेयर पूँजी प्राप्त करने का सम्बन्ध है, हम भारतीय श्रमिकों से उनकी निर्धनता तथा कम मजदूरी के कारण इसकी आशा नहीं कर सकते। इस कारण इस प्रश्न पर विचार करना कोई विशेष लाभदायक नहीं है। सह साझेदारी समिति का निर्माण नि सन्देह उपयोगी हो सकता है। इससे श्रमिक आन्तरिक प्रबन्ध में भी अपना हाथ रख सकते है। परन्तु यह भी श्रमिकों की शिक्षा, उनकी बुद्धिमत्ता तथा मालिकों को उन पर कितना विश्वास है, इन बातों पर निर्भर करती है। जब तक देश में एक शक्तिशाली श्रमिक संघ आन्दोलन न हो इस प्रकार की समितियाँ न तो बनाई जा सकती हैं और न ही सफल हो सकती है। फिर भी यदि इस प्रकार की समितियाँ बनाई गई तो समिति के सदस्यों को व्यवसाय की गुप्त बातें नहीं बताई जाएँगी तथा मुख्य-मुख्य देखभाल के कार्यों का काम उनको नहीं दिया जाएगा। यह भी बहुत कुछ सम्भव है कि श्रमिक अपने सह श्रमिकों की आज्ञाओं का पालन भी न करे। इसमें भी सन्देह है कि सह-साझेदारी की कोई भी योजना बिना शक्तिशाली श्रमिक संघों के सफल हो सकेगी। श्रम और प्रबन्ध में अधिक सहयोग देने के लिये द्वितीय पचवर्षीय आयोजना में भी जोर दिया गया था जिससे उत्पादन अधिक हो सके तथा औद्योगिक शान्ति स्थापित की जा सके। श्रमिकों को प्रबन्ध में भी कुछ हिस्सा देने की ओर टाटा जैसे कुछ जागरूक उद्योगपतियों द्वारा पग उठाये गये है। प्रबन्ध में श्रम के भाग लेने की योजनाय कई संस्थाओं में लागू की गई है। (देखिये परिशिष्ट 'ग')।

भारत में लाभ सहभाजन के विचार का विकास

परन्तु उपरोक्त बातें लाभ सहभाजन योजना के विषय में लागू नहीं होती। इसके लिये तो देश में एक शक्तिशाली आन्दोलन चालू है और इसका भारत सरकार की श्रम नीति में भी बहुत महत्व है। दिसम्बर १९४७ में तत्कालीन वित्तमंत्री श्री षानुमुकम चैट्टी ने अंतरिम बजट पर बहस के समय यह बताया था कि सरकार उद्योग में लाभ सहभाजन की योजनाओं की सम्भावनाओं पर विचार कर रही थी

जिससे श्रमिको को अधिक उत्पादन करने का पर्याप्त प्रोत्साहन मिल सके। उसी समय सरकार ने एक उद्योग सम्मेलन बुलाया जिसमें प्रान्तीय और देशी राज्य सरकारों के प्रतिनिधि, अनेक महत्वपूर्ण व्यापारी तथा उद्योगपति एवं संगठित श्रम के नेताओं ने भाग लिया। औद्योगिक विराम सधि प्रस्ताव (Industrial Truce Resolution) इसी सम्मेलन में पारित किया गया था। इसमे यह बताया गया कि श्रमिको को बेशी लाभ में से उचित भाग दिया जाये। सन् १९४८ में सरकार द्वारा औद्योगिक नीति की घोषणा में यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। प्रांतीय श्रम मन्त्रियों का एक सम्मेलन नई देहली में यह सलाह देने के लिये हुआ था कि पूँजी का क्या उचित पारिश्रमिक होना चाहिये तथा श्रम और पूँजी के बीच लाभ का वितरण किस प्रकार हो। इस सम्मेलन के निर्णय के परिणामस्वरूप एक विशेषज्ञ लाभ सहभाजन समिति नियुक्त की गई। इस समिति ने सितम्बर १९४८ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

सन् १९४८ की लाभ सहभाजन समिति

इस समिति के मुख्य निष्कर्ष सक्षेप मे निम्न प्रकार है—

इस समिति ने सम्बन्धित अनेक पहलुओ की विस्तारपूर्वक जाँच करने के पश्चात् यह परिणाम निकाला कि लाभ सहभाजन की ऐसी प्रणाली का निर्धारण करना सम्भव नही है जिसमे कि श्रमिको के लाभ का अश उत्पादन के अनुपातानुसार घटता-बढता रहे। समिति ने ६ उद्योगो मे ५ वर्ष के लिये लाभ सहभाजन की योजना को प्रयोगात्मक दृष्टि से लागू करने का सुझाव दिया। उद्योगो के नाम निम्नलिखित हैं—सूती वस्त्र उद्योग, जूट, इस्पात, सीमेंट, टायरों का उद्योग और सिगरेट उद्योग। समिति ने बताया कि उद्योग के द्वारा प्राप्त किया गया लाभ श्रम के अतिरिक्त और बहुत से साधनों पर निर्भर करता है। लाभ द्वारा श्रमिक के कार्य की कोई सापेक्षिक माप नही की जा सकती। इसके अतिरिक्त उद्योग-उद्योग मे और हर उद्योग की इकाई-इकाई मे उत्पादन भिन्न होता है। इसके अतिरिक्त श्रम की उत्पादकता अन्य बहुत सी बातो पर निर्भर करती है, जैसे सामान किस प्रकार का है और सगठन व निर्देशन उचित प्रकार से हो रहा है या नही, आदि। अत. समिति इस परिणाम पर पहुँची कि बेशी लाभ में श्रमिक का भाग केवल एक स्वेच्छ रीति (Arbitrary Way) से ही निश्चित किया जा सकता है। यदि एक बार श्रमिको का कुल भाग बेशी लाभ में से निश्चित हो जाये तब उसे व्यक्तिगत श्रमिकों के मध्य, किसी एक पिछले समय मे उनकी प्राप्त कुल आय के अनुपात में, वितरित किया जाना चाहिये। इस प्रकार की पद्धति से व्यक्तिगत पारिश्रमिक व्यक्तिगत प्रयत्नो के अनुसार कुछ सीमा तक सबद्ध हो जायेगा।

समिति ने यह बताया कि लाभ सहभाजन पर विचार विमर्श अन्तत. तीन मुख्य दृष्टिकोणो को ध्यान मे रखकर किया जाना चाहिये। लाभ सहभाजन उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिये होना चाहिये या लाभ सहभाजन औद्योगिक

शान्ति को प्राप्त करने के लिये होना चाहिये या लाभ सहभाजन श्रमिकों को प्रबन्ध में भाग देने के उद्देश्य से होना चाहिये। प्रथम बात पर, अर्थात् लाभ सहभाजन उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिये होना चाहिये, समिति का मत यह था कि यदि पिछली अवधि की कुल आय के अनुपात में श्रम के उत्पादन का भाग व्यक्तिगत रूप में वितरित कर दिया जाए तब उत्पादन अधिक करने में इससे व्यक्तिगत रूप से प्रोत्साहन मिलेगा। समिति ने जिस कारण लाभ सहभाजन को लागू करने की सिफारिश की वह मुख्यतया यह था कि इससे औद्योगिक शान्ति को प्रोत्साहन मिलेगा। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए उन्होंने यह सुझाव दिया कि किसी ऐसे वर्ष में जब श्रमिक या श्रमिकों के वर्ग उपयुक्त प्राधिकारियों द्वारा घोषित अवैध हड़ताल में भाग लेते हैं, लाभ का सहभाजन पूर्ण अथवा आंशिक रूप से रोक लेना चाहिये। इसी प्रकार यदि कोई अवैध तालाबन्दी है तो बेशी लाभ की गणना इस प्रकार लाभ सहभाजन के लिये की जानी चाहिये मानो कोई तालाबन्दी हुई न हो।

पूंजी पर उचित प्रतिफल क्या होना चाहिये, इस प्रश्न को लेकर समिति ने पूंजी की व्याख्या की है। पूंजी का चुकती पूंजी माना है और इसके साथ-साथ सार सबाग्रा के भुगतान के लिये राशि के साथ उस आरक्षित निधि (Reserve Fund) को भी ले लिया है जो व्यवसाय के लिये सुरक्षित रखी जाती है। आरक्षित निधि में मूल्य-ह्रास राशि को सम्मिलित नहीं किया जायेगा वरन् सिर्फ उसी आरक्षित राशि का लिया जायेगा जो लाभ में से ली जाती है और जिसके ऊपर करों का भुगतान भी किया जाता है। समिति की राय में कुल लाभ में से सर्वप्रथम तो मूल्य-ह्रास के लिये निधि निकाल देनी चाहिये और निवल लाभ में से सबसे पहले आरक्षित निधि निकाल लेनी चाहिये। निवल लाभ के अर्थ यह लिये गये हैं कि कुल लाभ में से मूल्य ह्रास राशि, प्रबन्धक अभिकर्त्ताओं (Managing Agents) को अदायगी और करों की भुगतान राशि निकाल देने के बाद जो कुछ रह जाता है वह निवल लाभ है। पूंजी के उचित प्रतिफल के प्रश्न पर समिति इस परिणाम पर पहुँची कि स्थापित उद्योग में, जिनके लिये लाभ सहभाजन योजना का सुझाव दिया गया था पूंजी का उचित प्रतिफल कम से कम इतना होना चाहिये जिससे प्रोत्साहन मिले और निवेश (Investment) भी बढ़े। सब परिस्थितियों को देखते हुए समिति के विचार में वर्तमान परिस्थितियों में पूंजी पर उचित प्रतिफल की दर चुकती पूंजी पर ६ प्रतिशत होनी चाहिए और इसके साथ-साथ वह सब आरक्षित निधि भी ले लेनी चाहिये जो व्यवसाय के लिये सुरक्षित रखी जाये। उन उद्योगों की इकाइयों में, जो समिति ने चुने थे, आरक्षित निधि की सीमा की जाँच करने के पश्चात समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची कि जो भी पूंजी लगाई जाती है उस पर यदि ६% प्रतिफल मिल जाय और बेशी लाभ में से ५०% मिल जाये तो उद्योग उचित लाभांश घोषित करने में समर्थ हो सकता है।

बेशी लाभ में से श्रम का भाग कितना हो, इस बारे में समिति ने निर्णय दिया कि यह व्यवसाय के बेशी लाभ का ५० प्रतिशत होना चाहिये । प्रत्येक श्रमिक का भाग उसके पिछले १२ महीनों की कुल आय के अनुपात में होनी चाहिये । परन्तु इस आय में मंहगाई भत्ता या अन्य कोई बोनस जो उसके द्वारा प्राप्त किया गया हो, सम्मिलित नही होना चाहिये । यह भुगतान, यदि कोई लाभ सहभाजन बोनस दिया जा रहा हो, उसके बदले में होना चाहिए । यदि किसी श्रमिक का भाग उसकी मूल मजदूरी के २५ प्रतिशत से बढ जाता है तब नकद भुगतान उसकी मूल मजदूरी के २५ प्रतिशत तक सीमित होना चाहिए तथा शेष राशि उसके प्रोविडेन्ट फण्ड या अन्य किसी हिसाब में रखी जानी चाहिए ।

प्रत्येक व्यवसाय या प्रत्येक उद्योग या क्षेत्र विशेष में किसी उद्योग द्वारा श्रम के भाग का वितरण किस प्रकार हो—इसके गुण एवं दोषों तथा कठिनाइयों पर विचार करने के पश्चात् समिति ने यह बताया कि साधारणतया लाभ सहभाजन का आधार उद्योग की इकाई ही होना चाहिये । लेकिन कुछ विशेष स्थितियो में इसका आधार एक उद्योग अथवा क्षेत्र भी हो सकता है । समिति के विचार में आरम्भ मे उद्योग व क्षेत्र के आधार को बम्बई, अहमदाबाद और शोलापुर के सूती वस्त्र उद्योग में लागू करने का प्रयत्न किया जाना चाहिये और सूती वस्त्र उद्योग मे अन्य स्थानों पर इसके विस्तार पर सरकार द्वारा बाद में विचार किया जा सकता है । इन स्थितियों में हर इकाई के बेशी लाभ को इस उद्देश्य से पूल (Pool) कर लेना चाहिए कि उस क्षेत्र के उद्योग के श्रमिकों को लाभ सहभाजन बोनस कितना मिलना चाहिए । यह बोनस प्रत्येक इकाई द्वारा अपने श्रमिकों को बिना लाभ का विचार करे हुये एक न्यूनतम भुगतान के रूप में देना चाहिये । परन्तु उन इकाइयों में जहाँ बेशी लाभ का आधा भाग (अर्थात् वह राशि जो श्रमिक मे बाँटी जानी चाहिये) उस बोनस से, जो कि कम से कम अदा करना है, बढ जाता है, तब यह बढी हुई राशि भी उस इकाई के श्रमिकों को ही अदा की जानी चाहिये । इसका प्रभाव यह होगा कि उस क्षेत्र की प्रत्येक इकाई में लगे हुये श्रमिकों को एक न्यूनतम भाग मिल जायेगा । यह भाग उस क्षेत्र मे लगी सारी इकाइयों के कुल बेशी लाभ की आधी राशि के आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिये यदि उन इकाइयों में बेशी लाभ होता हो । इसी प्रणाली द्वारा लाभ सहभाजन के आधारभूत उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है । उद्देश्य यह है कि श्रमिक जिस व्यवसाय में, कार्य करते है उसके हित मे उन्हे प्रत्यक्ष रूप से रुचि हो । इकाई अनुसार लाभ के वितरण की नीति का निश्चित रूप से यही अर्थ है कि श्रमिकों को उन इकाइयों मे जो लाभ उत्पन्न नही करती, कोई लाभ का भाग नही मिल सकता । इस प्रकार विभिन्न इकाइयों मे श्रमिको के पारिश्रमिक मे भिन्नता आ जायेगी । कार्यकुशल श्रमिकों को, जो कि दुर्भाग्यवश एक ऐसे व्यवसाय मे लगा है जो लाभ नहीं कमा रहा है, केवल अपनी मूल मजदूरी पर सन्तोष करना पडेगा जबकि एक अकुशल श्रमिक, यदि वह लाभ कमाने वाले व्यवसाय मे लगा है, लाभ भी प्राप्त कर सकेगा । परन्तु

ये कठिनाई दूर की जा सकती हैं यदि लाभ सहभाजन को उद्योग व क्षेत्र के आधार पर लागू किया जाये। लेकिन मालिक मूलतः इस प्रकार लाभ को मिलाने का विरोध करते हैं क्योंकि उनके अनुसार इसका अर्थ यह होगा कि उद्योग में अधिक योग्य इकाइयों को अयोग्य इकाइयों की मदद करनी पड़ेगी। मालिकों द्वारा उद्योग आधार पर लाभ सहभाजन के विरोध के कारण ही समिति ने कुछ विशिष्ट स्थितियों को छोड़कर शेष में लाभ सहभाजन का आधार इकाई ही रखा था।

लाभ सहभाजन का आलोचनात्मक मूल्यांकन

लाभ सहभाजन समिति की यह रिपोर्ट एकमत नहीं थी। मालिकों तथा श्रमिकों, दोनों ही के द्वारा विभिन्न कारणों तथा विभिन्न आधारों पर अनेक आपत्तियाँ उठाई गईं। केन्द्रीय सलाहकार परिषद्, जिसने इस रिपोर्ट पर विचार किया, किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकी। अगस्त व सितम्बर १९५१ तथा जून १९५२ में यह मामला बार-बार संयुक्त सलाहकार मण्डल की सभाओं में विचारार्थ आया। औद्योगिक विकास समिति द्वारा स्थापित संयुक्त सलाहकार मण्डल के प्रधान, श्री गुलजारीलाल नन्दा ने विचार प्रकट किया कि लाभ सहभाजन तथा बोनस जैसी समस्याओं की जटिलता को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि अमेरिका, इंगलैंड, जर्मनी, अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ एवं भारतवर्ष के विशेषज्ञों की सहायता से कुछ सिद्धान्त, आदर्श और स्तर बनाये जायें। प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में आयोजना आयोग ने भी उल्लेख किया था कि लाभ सहभाजन तथा बोनस के प्रश्नों के लिये विशेष अध्ययन की आवश्यकता है तथा नकदी के रूप में बोनस की अदायगी सीमित होनी चाहिये तथा शेष राशि श्रमिकों की बचत में जमा कर देनी चाहिये। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में भी यह उल्लेख किया गया था कि इससे पूर्व कि कोई योजना सब पक्षों को मान्य हो, यह आवश्यक है कि लाभ सहभाजन तथा बोनस सम्बन्धी सिद्धान्तों का और अधिक अध्ययन कर लिया जाये। तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में लाभ सहभाजन के बारे में कोई उल्लेख नहीं है।

इस प्रकार लाभ सहभाजन योजना को वैधानिक रूप से लागू करने का प्रश्न पन्द्रह वर्ष से भी अधिक समय से सरकार के विचाराधीन है। मालिकों ने, जैसा कि आशा थी ही, इस योजना का पूर्णरूप से विरोध किया है। कुछ मालिकों ने इसको बिल्कुल असम्भव बताया है। यह तर्क दिया गया है कि वर्तमान समय में, जबकि पूँजी तथा निवेश बाजारों में विश्वास स्थापित करने में बहुत कठिनाई है, इस प्रकार के प्रयोग तो विशेषतया जोखिमपूर्ण हैं। यह भी कहा गया है कि श्रमिकों को पुराने और अनुभवसिद्ध उत्पादन बोनस की पद्धति से कहीं अधिक लाभ हो सकता है और लाभ सहभाजन के इस नये प्रयोग से जो इतना अस्पष्ट है, न श्रमिकों को और न ही पूँजी को लाभ होगा।

परन्तु क्योंकि लाभ सहभाजन योजना को लागू नहीं किया गया है अतः इस नये प्रस्ताव की उपयुक्तता अथवा व्यावहारिकता पर कोई अन्तिम निर्णय नहीं

दिया जा सकता। अन्य देशों में भी लाभ सहभाजन सम्बन्धी प्रयोग उत्साहवर्द्धक सिद्ध नहीं हुए है, वरन् इससे मालिकों और श्रमिको में अविश्वास पैदा हो गया है। हमारे विचार में भारत में वर्तमान परिस्थितियों मे लाभ सहभाजन योजना को लागू करना उचित ही होगा। देश घोर औद्योगिक अशान्ति से पीडित है और उद्योग में शान्ति स्थापित करने की अत्यन्त आवश्यकता है। यह तब ही हो सकता है जब श्रमिक उद्यमकर्त्ता (Entrepreneur) पूंजीपति के साथ ही बराबर का भागी हो। इसलिये ऐसा प्रयोग अवश्य करना चाहिये क्योंकि प्रयोग और त्रुटियो के आधार पर ही लाभ सहभाजन तथा श्रमिक सह-साझेदारी का ऐसा व्यावहारिक सिद्धान्त बनाया जा सकता है जिससे राष्ट्रीय समृद्धि में वृद्धि हो। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उद्योगपति अनिश्चित समय तक श्रमिकों का शोषण नही कर सकते। अब समय आ गया है जबकि उन्हें उद्योग में लगे अपने निर्धन साथियों को अपनी आय का कुछ भाग स्वेच्छा से देना चाहिये। यदि वे इच्छा से ऐसा नही करते है तब सामाजिक शक्तियाँ उनको पूर्ण भाग लेने के लिये बाध्य कर सकती है। देश परिवर्तन काल से गुजर रहा है तथा पंचवर्षीय आयोजनायें देश मे चालू है। अधिक, और अधिक उत्पादन वर्तमान युग की सबसे बड़ी मांग है। हमें अधिक उत्पादन के हित में श्रमिको को सन्तुष्ट रखना पड़ेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये इससे अच्छा और कोई मार्ग नही हो सकता कि श्रमिको को भी उद्योग के लाभ में साझीदार बना लिया जाये।

१६

औद्योगिक श्रमिकों की ऋण-ग्रस्तता

INDEBTEDNESS OF INDUSTRIAL WORKERS

भारत के औद्योगिक श्रमिको के, विशेषकर कारखानो मे कार्यरत लोगो के, आर्थिक जीवन का एक विशेष लक्षण यह है कि वह अधिकतर जन्म से ही ऋण-ग्रस्त होते हैं, ऋण मे ही रहते हैं तथा ऋण मे ही मरते है। रॉयल श्रम आयोग के अनुसार "श्रमिको के निम्न जीवन-स्तर के उत्तरदायी कारणो मे ऋण-ग्रस्तता को उच्च स्थान दिया जाना चाहिये।" आयोग का यह भी कथन है कि "अधिकाश श्रमिक तो वास्तव मे ऋण मे ही पैदा होते हैं। इस बात से हृदय मे दु ख भी होता है और प्रशसा भाव भी आता है कि प्रत्येक पुत्र साधारणत अपने पिता के ऋण का उत्तरदायित्व ले लेता है। यह एक ऐसा उत्तरदायित्व होता है जो कानूनी आधारो की अपेक्षा धार्मिक एव सामाजिक कारणो पर अधिक आधारित है।"[1] इसलिये आयोग के अनुसार औद्योगिक श्रमिको की एक बडी सख्या अपने श्रमिक जीवन के अधिकाश समय मे ऋण ग्रस्त ही रहती है।

ऋण-ग्रस्तता की व्यापकता (Extent of Indebtedness)

यह अनुमान लगाया गया है कि अधिकतर औद्योगिक केन्द्रो मे कम से कम दो तिहाई श्रमिक ऋण ग्रस्त हैं और ऋण की राशि ३ माह के वेतन से भी अधिक है। हाल ही की कुछ जॉचो द्वारा श्रमिक वर्ग की ऋण-ग्रस्तता की व्यापकता ज्ञात होती है,[2] यद्यपि इस सूचना को अधिक विश्वसनीय नही कहा जा सकता क्योंकि जॉच अधिकारियो को श्रमिक अपनी आर्थिक स्थिति बताने मे सकोच करता है। श्रमिको को भी कई बार अपनी ऋण की व्यापकता का पूर्ण ज्ञान नही होता। इसके अतिरिक्त रॉयल श्रम आयोग तथा सन् १९४६ की श्रम अनुसन्धान समिति ने भी ऋण-ग्रस्तता के प्रश्न पर विस्तारपूर्वक विचार किया था। ऋण के विषय मे हमे कुछ ऐसी रिपोर्टों द्वारा भी आँकडे प्राप्त होते हैं जो रिपोर्टें ऐसी पारिवारिक बजट जॉचो की हैं जो कि सन् १९४३–४५ मे भारत सरकार की "निर्वाह खर्च सूचकाक" को तैयार करने की योजना के अन्तर्गत की गई थी। इस विषय पर भारतीय श्रम वार्षिक पुस्तिका, १९४७–४८ (Indian Labour Year Book, 1947–48) के पृष्ठ १६५, पर दिये गये आँकडे अग्रलिखित तालिका मे उद्धृत हैं–

1 Report of the Royal Commission on Labour, p 274

2 Labour Bulletin (U P) June 1955 Report by Dr Vidya Dhar Agnihotri

औद्योगिक श्रमिकों में ऋण-ग्रस्तता

१ केन्द्र	२ सर्वेक्षित परिवारों की संख्या	३ ऋण-ग्रस्त परिवारों की संख्या	४ ऋण-ग्रस्त परिवारों का प्रतिशत मान	५ ऋण-ग्रस्त परिवारों का प्रति परिवार औसत ऋण		
				रुपये	आने	पाई
. बम्बई						
(क) बम्बई	२,०३०	१,३०१	६४ १	१२३	१४	७
(ख) जलगाँव	३३१	२०५	६०·७	२२७	०	०
(ग) शोलापुर	७७८	६६७	८५ ७	आँकड़े प्राप्य नहीं		
. पश्चिमी बंगाल						
(क) कलकत्ता	२,७०७	१,१२४	४१·५	११७	६	१
(ख) हावड़ा व बाली	१,४३५	१,००८	७० २	आँकड़े प्राप्य नहीं		
. बिहार						
(क) देहरी ऑनसोन	२३१	१३४	५८·०	१५७	०	०
(ख) जमशेदपुर	६६१	४१०	६२·२	२३४	११	८
(ग) झरिया	९९९	२२३	२२·३	२८	८	९
(घ) मुँगेर व जमालपुर	५७८	४२६	७३·७	२०३	१०	७
. असम						
(क) गोहाटी	२४१	३२	१३·३	१९७	१	४
(ख) तिनसुकिया	१८५	२२	११·९	७०	०	०
. मध्य प्रदेश व बरार						
(क) अकोला	३१५	२५८	८१·९	९९	१५	३
६. पूर्वी पंजाब						
(क) लुधियाना	२१३	६९	३२·४	१५०	८	४
७. उड़ीसा						
(क) बहरामपुर	१२३	७३	५९ ४	१९१	१२	११
(ख) कटक	१६८	५२	३१·०	१६९	०	०
बागान						
१. चाय						
(क) मद्रास	२७४	१९८	७२ ३	७९	०	०
(ख) कोचीन	२०	१७	८५·८	५५	०	०
२. कॉफी						
(क) मद्रास व कुर्ग	१२२	८७	७१ ३	आँकड़े प्राप्य नहीं		
(ख) कोचीन	१२	१२	१०० ०	२६	२	८
३ रबड़						
(क) मद्रास व कुर्ग	१५	१४	९३·३	४८	३	५
(ख) कोचीन	१५	११	७३·३	४४	१४	१

भिन्न भिन्न औद्योगिक केन्द्रो मे ऋण-ग्रस्तता

श्रम अनुसन्धान समिति ने भिन्न-भिन्न केन्द्रो तथा भिन्न-भिन्न उद्योगो मे ऋण ग्रस्तता की व्यापकता पर एक विस्तृत रिपोर्ट दी थी। बम्बई शहर मे ऋण की मात्रा १० रु० से ७०० रु० तक है। अहमदाबाद मे ५७% श्रमिक परिवार ऋण ग्रस्त थ और औसत ऋण प्रति परिवार २६६ ५० रु० था। शोलापुर मे औसत ऋण प्रति परिवार २३४ रु० था। नागपुर मे प्रान्तीय सरकार द्वारा १९४१-४२ म की गई जाँच म ज्ञात हुआ कि ८२% से अधिक परिवार ऋण ग्रस्त थे और कुल औसत ऋण १३९ रु० था जो कि औसत मासिक आय का चौगुना था। अजमेर ही, जहाँ कि अधिकाश जनसख्या रेलवे उद्योग मे कार्यरत् है, भारत मे एक ऐसा केन्द्र था जहाँ ऋण ग्रस्त परिवारो की प्रतिशत सख्या सबसे कम थी। पारिवारिक बजट जाँच के अनुसार वहाँ केवल ८ ७८ प्रतिशत परिवार ऋण-ग्रस्त थे और औसत ऋण प्रति परिवार लगभग २७१ रु० था। मद्रास मे सन् १९३५ की पारिवारिक बजट जाँच स ज्ञात हुआ है कि ९०% परिवार ऋण-ग्रस्त थे और औसत ऋण प्रति परिवार लगभग २६२ रु० था। मिर्जापुर मे कालीन उद्योग मे ७० ८% श्रमिक ऋण ग्रस्त पाये गये और औसत ऋण प्रति श्रमिक लगभग ११४ रुपये था। श्रीनगर के कालीन बुनने के उद्योग मे ८२% श्रमिक तथा अमृतसर मे ६०% स अधिक श्रमिक ऋण ग्रस्त पाये गये। कलकत्ता कानपुर व मद्रास के चम उद्योग व चमडा रगने के उद्योगो मे ऋण ग्रस्त श्रमिको की प्रतिशत सख्या क्रमश १०० ६६ ३ तथा ६६ ४ थी। विभिन्न स्थानो के छापेखानो मे ऋण ग्रस्त श्रमिको की प्रतिशत सख्या देहली और इलाहाबाद मे क्रमश ५१ ३ और ८७ २ पाई गई। बम्बई के बीडी उद्योग मे प्रत्येक श्रमिक ऋण ग्रस्त पाया गया और ऋण ग्रस्तता की औसत राशि ३०० रु० पाई गई। चीनी उद्योग मे ऋण ग्रस्त श्रमिको की प्रतिशत सख्या मेरठ, गोरखपुर व मद्रास मे क्रमश ७८ ५, ८० व ७४ प्रतिशत थी तथा औसत ऋण प्रति श्रमिक क्रमश ३९० रु०, १११ रु० व १४१ रु० था। अनुसन्धान समिति द्वारा इसी प्रकार चपडा उद्योग, चावल मिलो, कपास की मिलो, भिन्न भिन्न खानो ट्रामवेज व बस सेवाओ मे ऋण ग्रस्तता अधिक पाई गई है। कुछ राज्यो मे श्रम ब्यूरो द्वारा की गई औद्योगिक श्रमिको की पारिवारिक बजट जाँच द्वारा भी अधिक ऋण ग्रस्तता का पता चलता है। ब्यूरो ने सन् १९६६ मे लोहा व इस्पात उद्योग मे काम करने वाले श्रमिको की ऋण ग्रस्तता का सर्वेक्षण किया।

कानपुर मे डॉ० अग्निहोत्री द्वारा की गई जाँच के आधार पर दो तिहाई श्रमिक परिवार ऋण-ग्रस्त है जिनका औसत ऋण प्रति परिवार १३३ ८७ रु० है और निषेधात्मक (Prohibitory) कानून के होते हुए भी ब्याज की दर अधिक है। ब्याज की दर १२ से ३००% प्रतिवर्ष तक है। पठान महाजनो की जगह पजाबी महाजनो ने ले ली है, जो कि अत्यधिक ब्याज की दरें वसूल करते हैं। उधार देने वाली एजेन्सियाँ और उनके द्वारा दिये गये ऋणो का प्रतिशत मान इस

प्रकार है—मित्र तथा सम्बन्धी ४०·८%, बनिया तथा महाजन ३८·७%, सहकारी स्मि- तियाँ ७·४%, मध्यस्थ एवं मिस्त्री २·१%, मकान मालिक ३·५%, पजाबी ५·६% अन्य २·६%। विभिन्न उद्देश्यों के लिये ऋण का प्रतिशत मान इस प्रकार है - रहन-सहन खर्च ४५·१, सामाजिक उत्सव ३३·०, बीमारी १४·४, सम्पत्ति-क्रय २·६ तथा ऋण की अदायगी ४·६।

ऋणग्रस्तता के कारण

औद्योगिक श्रमिकों की ऋणग्रस्तता का उपरोक्त विश्लेषण उनकी गिरी हुई आर्थिक अवस्था की दुखपूर्ण कहानी है—इस अत्यधिक ऋणग्रस्तता के अनेक कारण है। अधिकतर पुत्र अपने पिता के ऋण को पैतृक सम्पत्ति के रूप में ग्रहण करता है। परन्तु ऋणग्रस्तता का सबसे प्रमुख कारण समय-समय पर विवाहोत्सव, मृत्यु-सस्कार, पर्व तथा वार्षिक उत्सव आदि हैं। श्रमिकों की प्रावासिता भी उनकी ऋण-ग्रस्तता का एक महत्वपूर्ण कारण है। जब कोई ग्रामीण प्रथम बार शहर में पहुँचता है तो उसके साधन एक ग्रामीण खेतिहर की अपेक्षा अधिक सीमित होते है। प्रारम्भिक घूस के लिए व पहिले कुछ सप्ताहों में, (जिनमे कि मालिक उसे कोई वेतन नहीं देता), खर्च हेतु, उसे किसी भी शर्त पर ऋण लेने में सकोच नहीं होता। बहुधा किसी बन्धक रखी जाने लायक कोई वस्तु न होने के कारण श्रमिक एक ऐसे प्रलेख पर धन के लिये हस्ताक्षर कर देता है (जो धन सम्भवत ग्राम मे उसे कभी न मिलता) जिसमे लिखी बातों का असर उसे ज्ञान भी नहीं होता। फिर, इस बुराई का एक और कारण अज्ञात विपत्तियों का यकायक सामना करने के लिये किसी भी सचित राशि का न होना है। भारत मे मजदूर का वेतन-स्तर अत्यन्त न्यून है और इस कारण बचत भी कम ही हो सकती है। यद्यपि सरकारी पारिवारिक बजट जाँच से यह ज्ञात होता है कि अल्प वेतन ही ऋणग्रस्तता का एकमात्र कारण नहीं है क्योंकि अधिक वेतन पाने वाले श्रमिक, अल्प वेतन पाने वालों से अधिक ऋणग्रस्त हैं, फिर भी हम यह कह सकते है कि न्यून वेतन श्रमिकों की ऋण-ग्रस्तता का एक महत्वपूर्ण कारण है। निर्धनता कभी तो ऋणग्रस्तता का कारण बन जाती है, कभी उसका परिणाम होती है और कभी दोनो ही। यह सत्य है कि ऋणग्रस्तता का मुख्य कारण सामाजिक रीतियों पर श्रमिकों द्वारा किया गया व्यय है। इस व्यय को साधारणतया अपव्यय समझा जाता है, परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि श्रमिक सामाजिक सगठन का एक अग है अत उसको भी कुछ सामाजिक कार्य एक निश्चित स्तर पर पूर्ण करने होते है, चाहे वह इन पर होने वाले व्यय को वहन न कर सकता हो। इन मामलो मे व्यक्ति प्राय असहाय होता है क्योंकि श्रम अनुसन्धान समिति के शब्दो मे "भारत जैसे देश मे रीति-रिवाज केवल शासक ही नहीं वरन् अत्यन्त निर्दयी शासक है।"[3]

यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक श्रमिक की ऋणग्रस्तता का एक मुख्य

3. *"In a Country like India custom is not only a king but tyrant as well".*

कारण यह है कि उसका व्यय अधिक है और आय कम है। पूँजीपतियों के हाथों शोषण के कारण उसे अपर्याप्त वेतन मिलता है और इसी कारण उसकी आय भी कम है। संघों के शक्तिशाली संगठन न होने के कारण श्रमिक अधिक मजदूरी पाने में असमर्थ रहता है। जब श्रमिक को अपने व अपने परिवार को पालने के लिये पर्याप्त धन प्राप्त नहीं होता तो उसके लिये, यदि मिले तो, केवल ऋण लेने का मार्ग ही खुला रह जाता है। उसका व्यय अधिक होता है क्योंकि उसे सामाजिक उत्सवों, रीतियों और रिवाजों पर व्यय करना पड़ता है और यदि ऐसे व्यय को त्यागा भी जा सकता हो तो भी श्रमिक अपनी अशिक्षितता के कारण नहीं त्याग पाता। फिर शराब व जुआ भी ऋणग्रस्तता के लिये उत्तरदायी हैं। श्रमिक को परिवार में बीमारी, बेरोजगारी, बरखास्तगी, हड़ताल अथवा तालाबन्दी के समय में भी ऋण लेना पड़ता है। सामाजिक उत्सवों पर, विशेषकर विवाहोत्सवों पर, व्यय ऋणग्रस्तता का प्रमुख कारण पाया गया है और ऋणग्रस्तता में सामाजिक उत्सवों पर व्यय का अनुपात जमशेदपुर में ३१.८%, बिहार की कोयला खानों में ८.२%, तथा कानपुर में ३३% पाया गया है। विभिन्न स्थानों में विवाह के कारण लिए गए ऋण का प्रतिशत मान ३० व ४० प्रतिशत के बीच है।

ऋणग्रस्तता का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि श्रमिकों को ऋण सरलता से मिल जाता है। श्रमिक को नगर में महाजन द्वारा, जो कि अधिकतर मारवाड़ी, पठान अथवा पंजाबी होता है, ऋण आसानी से मिल जाता है। बहुधा यह भी देखा गया है कि मिस्त्री अथवा मध्यस्थ भी ऋण देने का धन्धा करते हैं। औद्योगिक क्षेत्र में परचूनिये भी ऋण देते हैं और ऋण जिन्स अथवा सामग्री के रूप में भी दिया जाता है। दुकानदार भोजन एवं मदिरा भी उधार देते हैं। वास्तव में यह देखा गया है कि कोई भी व्यक्ति, जिसके पास तनिक भी बेशी धन हो, ऊँची दर पर ऋण देने के विषय में सोचने लगता है। बहुधा छोटे मोटे क्लर्क, दिवंगत श्रमिकों की विधवाएँ, अथवा वेश्याएँ इस प्रकार से अत्यधिक ब्याज की दरों पर (जो १५०% से ३००% तक होती है) उधार देकर अपनी आय में वृद्धि कर लेती हैं। ब्याज की दर बहुत ऊँची होती है क्योंकि श्रमिक के पास अपनी जमानत के अतिरिक्त कोई जमानत नहीं होती और उसकी प्रवासिता के कारण उसको ऋण देने में बहुत जोखिम भी होता है। अधिकतर श्रमिक महाजनों के चंगुल में फँस ही जाता है और कभी-कभी अपने नीच मित्रों के बहकाने से भी, जो बहुधा महाजन के एजेन्ट ही होते हैं, उधार धन लेने के लिये तैयार हो जाता है। अशिक्षित औद्योगिक श्रमिक के अंगूठे का निशान प्रोनोट पर ले लिया जाता है, और इसमें धोखे की गुंजाइश बहुत अधिक रहती है। यदि लिखित प्रलेख न भी हो तब भी श्रमिक में पठान या पंजाबी महाजन की मांग को ठुकराने का साहस नहीं होता। ये लोग बहुत ऊँची दरों पर ब्याज वसूल करते हैं और यदि श्रमिक ऋण चुकाने में कुछ आनाकानी करे तो शारीरिक शक्ति प्रयोग करने का भय दिखाकर प्रत्येक मास वेतन का अधिकांश ब्याज के रूप में ही ले लेते हैं।

ऋणग्रस्तता के दुष्परिणाम

सरलता से मिला हुआ ऋण श्रमिक के लिए सबसे बड़ा अभिशाप साबित हुआ है और इस रीति का सबसे दुखदायी दोष यह है कि ऐसे बड़े बड़े ऋण भी आसानी से मिल जाते है, जिनको श्रमिक कभी भी चुकाने की आशा नही कर सकते। उनकी अशिक्षितता उनमें व्यावसायिक समझ और दूरदर्शिता पैदा करने मे बाधक सिद्ध होती है और उनकी हिसाब लगाने की असामर्थता के कारण उन्हे इस बात के लिए विवश होना पड़ता है कि महाजनों के द्वारा ही ऋण की राशि, अधिक या कम, जितनी भी बतायी जाये, उसे स्वीकार कर ले। अधिकतर महाजनों को पूरा ब्याज लगातार नही मिलता और इसलिए इस बकाया ब्याज को भी वह मूल-धन मे जोड़ देते है। कुछ ही वर्षों में यह मूल ऋण बहुत बड़े न स्थायी ऋण में परिवर्तित हो जाता है। बहुत बार तो महाजन वेतन मिलने वाले दिन ही श्रमिक एवं उसके सम्पूर्ण परिवार का कुल वेतन ले लेते है और उनको केवल जीवन-निर्वाह हेतु धन फिर ऋण के रूप में दे देते है। बहुत से परिश्रमी श्रमिक केवल ब्याज देने ही के लिये अपने जीवन की आवश्यकताओं को छोडने पर विवश हो जाते है और मूल ऋण चुकाने का तो उन्हे मौका ही नही मिल पाता। इसलिए ऋणग्रस्तता, कार्य-कुशलता की वृद्धि मे बाधक है। ऋणग्रस्त श्रमिक जो कुछ अतिरिक्त प्रयत्न करते है, उसका लाभ केवल महाजन को ही होता है और ऋणग्रस्त श्रमिक सदा ही परेशान रहता है। "इस प्रकार ऋण की विडम्बना श्रमिको के आत्मसम्मान के लिये एक अभिशाप सिद्ध हुई है और उनकी कार्यकुशलता का ह्रास करती है।"[4]

ऋणग्रस्तता की समस्या को सुलझाने के उपाय

ऋणग्रस्तता के उपरोक्त दुष्परिणामो के निवारणार्थ रायल श्रम आयोग ने अनेक उपाय सुझाये है। उनमे प्रमुख यह है कि श्रमिको की ऋण प्राप्त करने की सुविधा को कम किया जाय और महाजन के लिये श्रमिको की शक्ति से बाहर ऋण देना असम्भव बना दिया जाय। ऋणग्रस्तता की समस्या को सुलझाने हेतु राज्यो एव केन्द्रीय सरकारो द्वारा जो वर्तमान वैधानिक पग उठाए गये हैं वे रायल श्रम आयोग की सिफारिशो के परिणामस्वरूप ही है।

मजदूरी की कुर्की के विरुद्ध लिए गए पग (Measures against Attachment of Wages)

आयोग ने पहले मजदूरी की कुर्की के प्रश्न पर विचार किया। उसे पता चला कि यद्यपि सन् १९०८ के नागरिक दण्ड सहिता (Civil Procedure Code) के अन्तर्गत श्रमिको व घरेलू नौकरो की मजदूरी की कुर्की नही हो सकती, परन्तु इस सहिता के उपबन्ध ऐसे थे कि बहुत से सगठित उद्योगो के श्रमिक सहिता मे दी गई श्रमिक की परिभाषा मे नही आते थे। इसके अतिरिक्त इस सहिता के अन्तर्गत महाजनो को इस बात की आज्ञा थी कि वह कुछ वर्ग के श्रमिको के लिये, (जैसे

4 *"The tyranny of debt degrades the employee and impairs his efficiency."*

रेलवे कर्मचारी तथा स्थानीय निकाय कर्मचारी) मालिकों द्वारा ऋण वसूल करने मे सहायता ले सकते थे और वेतन कुर्की के लिए आज्ञा पत्र प्राप्त कर सकते थे। कानून द्वारा महाजनों को दी गई इस सुविधा एवं सुरक्षा को दूर करने के लिए आयोग ने सिफारिश की कि प्रत्येक ऐसे श्रमिक की मजदूरी, जिसका वेतन ३०८ रु० स कम हो कुर्की की सम्भावना स मुक्त कर दी जानी चाहिये।"

इस सिफारिश को कार्यान्वित करन के लिये भारतीय सरकार ने सन् १९०८ म नागरिक दण्ड अधिनियम (Civil Procedure Act) को सशोधित किया। इस सशोधित अधिनियम के अन्तर्गत उन श्रमिको का वेतन, जिनको १००) रु० प्रति मास से कम मिलते है और सरकारी कर्मचारी के वेतन के पहिले सौ रुपय और शष के आधे भाग को कानूनी कुर्की से छूट दे दी गई है। यह अधिनियम निरन्तर कुर्की की अवधि को भी सीमित करता है और इसमे इस बात की एक धारा है कि यदि किसी श्रमिक का २४ माह का वेतन कुर्क कर दिया गया है तो फिर कुर्की से उस एक वष तक छूट रहगी। अक्तूबर सन् १९५० म एक अधिसूचना द्वारा भारत सरकार न निर्वाह खच बोनस और अन्य प्रकार के भत्तो को भी कानूनी कुर्की से मुक्त कर दिया है।

ऋण हेतु कारावास के विरुद्ध उपाय

आयोग की एक अन्य सिफारिश ऋण हतु कारावास के दण्ड से सम्बन्धित थी। आयोग की रिपोर्ट देन के समय जैसा कि कानून था इसके अनुसार किसी भी ऋणी पुरुष को ५० रुपये से अधिक राशि की डिक्री (Decree) के निष्पादन (Execution) के हेतु गिरफ्तार किया जा सकता था और ६ माह का कारावास दिया जा सकता था। यदि ऋण की राशि कुछ कम होती थी तो ६ हफ्ते के कारावास की व्यवस्था थी। आयोग ने यह भी बताया कि केवल इस बात की धमकी ही कि ऋण न अदा करन पर ऋणी को कारावास कराया जा सकता था, ऋणदाता के हाथ म एक शक्तिशाली हथियार था। यद्यपि आयोग की सूचना के अनुसार यह भी पता लगा कि न्यायालय साधारणतया कारावास का दण्ड दन के पक्ष मे न थे और ऋणदाता भी एस व्यक्ति का, जिसके पास रुपया न हो, कारावास दिलान के पक्ष म न थ, क्योंकि उन्हे कारावास काल म ऋणी के खाने पीने की व्यवस्था करनी पडती थी। इसलिए आयोग ने सिफारिश की कि उनके विचार मे ऋणियो के लिए कारावास का दण्ड न्यायोचित नही था और कम से कम उन औद्योगिक श्रमिको के लिए, जिनका मासिक वेतन १००) रु० से कम हो, ऋण के कारण पकडे जान के नियम को तथा कारावास के दण्ड को समाप्त कर देना चाहिये जब तक कि यह न सिद्ध हो जाय कि ऋणी अदायगी की स्थिति मे होते हुए भी ऋण का भुगतान नही कर रहा है।

पजाब सरकार ने १९३४ मे पजाब ऋणग्रस्तता सहायता अधिनियम (Punjab Relief of Indebtedness Act) पारित किया जिसके अन्तगत किसी

भी ऋणी को उस समय तक कारावास नहीं हो सकता था जब तक कि वह अपनी किसी ऐसी जायदाद से जो डिक्री के निष्पादन के लिए कुर्क की जा सकती हो ऋण की राशि देने से इन्कार न करदे। भारत सरकार ने भी १९३६ में ऋण वापिस न करने पर कारावास के दण्ड को रोकने के लिये 'नागरिक दण्ड संहिता' में संशोधन किये। इस संशोधित अधिनियम द्वारा सिवाय उस स्थिति के जबकि ऋणी से यह सम्भावना हो कि वह न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर चला जायगा और इस प्रकार 'डिक्री' निष्पादन में रुकावट डालेगा अथवा देर करेगा, या जहाँ सम्पत्ति बेईमानी से हस्तगत न की गई हो, ऋण के लिये कारावास का दण्ड नहीं दिया जा सकता।

ऋण अपाकरण के उपाय (Measures for Liquidation of Debt)

ऋणियों के संरक्षण के उपरोक्त उपायों से आयोग सन्तुष्ट नहीं था और ऋण अपाकरण के विषय में उसने यह सुझाव दिया कि कानून को इस प्रकार संशोधित किया जाये कि श्रमिकों और महाजनों के बीच ऐसे इकरार न हो सकें जिनको श्रमिक भारी व अनवरत (Prolonged) मुसीबतों के उठाये बिना सम्भवतः पूरा नहीं कर सकता।

भारत सरकार ने देहली प्रदेश में एक योजना को प्रयोग के रूप में कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया, परन्तु योजना को आगे नहीं चला सकी। अभी तक सरकार ने इस विषय में कोई पग नहीं उठाया है। मध्य प्रदेश सरकार (तत्कालीन मध्य प्रान्त) ने १९३६ में "औद्योगिक श्रमिक ऋण समजन एवं अपाकरण अधिनियम" (Adjustment and Liquidation of Industrial Workers' Debt Act) पारित किया। यह केवल उन औद्योगिक श्रमिकों तक सीमित है जो कि ५० रु० प्रति मास तक अर्जित कर रहे हैं, यद्यपि हाल ही में संशोधन द्वारा इस सीमा को ६० रु० तक बढ़ा देने का प्रयास किया गया है। इस अधिनियम के अधीन कोई भी श्रमिक, जिसका ऋण उसकी परिसम्पत्ति (Assets) और तीन माह की मजदूरी से अधिक हो, अपने ऋण के अपाकरण के लिए प्रार्थना-पत्र दे सकता है। परिस्थिति की वास्तविकता और श्रमिकों के वेतन एवं उसके आश्रितों की संख्या को ध्यान में रखते हुए न्यायालय उस राशि को तय कर देता है जिसका कि श्रमिक को एक उचित समय में भुगतान कर देना चाहिये। मजदूरी की राशि, जो कि श्रमिक से ऋण अपाकरण हेतु एक माह में माँगी जा सकती है, ½ से ⅓ तक हो सकती है और इसकी अदायगी ३६ माह से भी अधिक अवधि तक हो सकती है। ब्याज की कुल राशि को 'दामदुपट' के सिद्धान्त के अनुसार कम कर दिया गया है, अर्थात् ब्याज ऋण की मूल राशि से अधिक नहीं हो सकता।

औद्योगिक संस्थानों को घेरने के विरुद्ध उपाय (Measures against Besetting of Industrial Establishments)

एक अन्य समस्या, जिस पर रॉयल श्रम आयोग ने विचार किया, औद्योगिक

संस्थानों को घेरे जाने की थी। घेरने से तात्पर्य किसी भी संस्थान के दरवाजे, फाटक या अहाते के समीप या दिखाई पड़ने तक की दूरी तक घूमना, फिरना लिया जाता है। रॉयल श्रम आयोग ने यह पाया कि "बहुत से साहूकार ऐसे हैं जो कानूनी मार्ग ग्रहण करने की अपेक्षा श्रमिकों पर झपट पड़ते हैं और हिंसात्मक उपायों पर निर्भर रहते हैं। उनके लिये लाठी ही एक ऐसी अदालत है जहाँ वह अपील करते हैं और वेतन वाले दिन कारखानों के फाटक पर ऋणियों के बाहर आते ही उन पर तत्काल झपट पड़ने के लिये प्रतीक्षा करते हुए दिखाई पड़ते हैं।" इसलिये साहूकारों के इस कार्यों को रोकने के लिये आयोग ने सिफारिश की कि ऋण वसूली के लिए औद्योगिक संस्थानों को घेरना फौजदारी व प्रज्ञेय (Cognizable) अपराध बना देना चाहिये।

फिर भी भारत सरकार द्वारा इस सिफारिश पर कोई पग नहीं उठाया गया है। परन्तु बंगाल सरकार ने १९३४ में बंगाल श्रमिक संरक्षण अधिनियम (Bengal Workmen's Protection Act) पारित किया जिसके अनुसार यदि कोई व्यक्ति कारखाना, कार्यशालाओं आदि में कार्य करने वालों से अपना ऋण वसूल करने की दृष्टि से उनके समीप चक्कर काटता हुआ पाया जायेगा तो उसको जुर्माने का दण्ड अथवा कारावास का दण्ड जो कि ६ माह हो सकता है, अथवा दोनों ही दण्ड दिये जा सकते हैं। आरम्भ में तो इस अधिनियम का क्षेत्र केवल कलकत्ता एवं निकट वर्ती तीन क्षेत्रों तक (२४ परगना, हुगली और हावड़ा) ही सीमित था, परन्तु सरकार को इस अधिनियम के क्षेत्र को और भी अधिक विस्तृत कर देने का अधिकार था। अधिनियम के उपबन्धों को अधिक स्पष्ट करने के लिये तथा स्थानीय निकायों, जनोपयोगी सेवाओं व समुद्री कर्मचारियों तक विस्तृत करने के लिये इस अधिनियम में १९४० में संशोधन किया गया। मध्य प्रदेश सरकार ने भी १९३० में मध्य-प्रान्त ऋणी संरक्षण अधिनियम' पारित किया, जो बंगाल के अधिनियम पर ही अधिकतर आधारित था, परन्तु उसका विस्तार कुछ अधिक था। मद्रास सरकार ने भी मद्रास शहर में पठान साहूकारों की निदयता को रोकने के लिये १९४१ में मद्रास श्रमिक संरक्षण अधिनियम' पारित किया। १९४८ का बिहार श्रमिक संरक्षण अधिनियम भी श्रमिकों के कार्य स्थानों को अथवा श्रमिकों की वेतन प्राप्ति की जगहों का घेर कर ऋण वसूली की रीति का रोकने का प्रयास करता है और ऐसे श्रमिकों को महाजनों के द्वारा तंग किये जाने अथवा डराये धमकाये जाने से बचाता है। ऐसे स्थानों पर ऋण वसूली की दृष्टि से घेरा डालने पर जुर्माना अथवा ६ माह के कारावास का दण्ड अथवा दोनों ही दिये जा सकते हैं। उ० प्र० सरकार भी इस प्रकार का विधान बनाने का विचार कर रही है।

अधिनियमों का मूल्यांकन

श्रम अनुसन्धान समिति की रिपोर्ट से यह ज्ञात होता है कि औद्योगिक श्रमिकों की ऋणग्रस्तता के विषय से सम्बन्धित अधिनियमों से बहुत अधिक लाभ

नही हुआ है। फिर भी समिति ने यह सिफारिश की है कि इस प्रकार के ही कानून अन्य राज्य सरकारों द्वारा भी अपनाये जाने जाने चाहियें। समिति के विचार के अनुसार इस प्रकार के प्रयत्नों से श्रमिक की स्थिति में काफी सुधार हो सकता है क्योंकि उनके कष्ट बहुत सीमा तक ऋणग्रस्तता के कारण ही है।

उपसंहार एव सुझाव

श्रम अनुसन्धान समिति ने इस ओर सकेत किया था कि इन उपायों के होते हुए भी औद्योगिक श्रमिकों की ऋणग्रस्तता देश मे कम होती दिखाई नहीं देती। यह तथ्य सत्य प्रतीत होता है क्योंकि महाजनो को औद्योगिक क्षेत्रो मे समाप्त कर देना कठिन है। कानून बनाने से महाजन का मार्ग कठिन अवश्य हो सकता है परन्तु महाजन के लिये श्रमिकों से उनके घरों से अपना ऋण वसूल करना कठिन नही है, विशेषकर ऐसी परिस्थिति में जबकि बहुधा ऋणदाता कारखाने के अन्दर का मध्यस्थ ही होता है। ऐसे अवसर भी आते हैं जबकि श्रमिक को धन की अत्यधिक आवश्यकता होती है। महाजन सकटकालीन परिस्थिति मे श्रमिको को सहायता देकर एक बहुत उपयोगी कार्य करते है। इसमे सन्देह नही कि रॉयल श्रम आयोग श्रमिको द्वारा ऋण पाने की सुविधाओं को कम करने के पक्ष मे था परन्तु चाहे जो भी कानून बनाया जाये, जब तक अत्यन्त अल्प मजदूरी, भरती तथा पदोन्नति मे चलने वाली सर्वव्यापी घूस और भ्रष्टाचार को समाप्त नहीं किया जायेगा, श्रमिक महाजन के बिना नही रह सकता और इस समस्या का कोई विशेष समाधान नही हो सकता। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि श्रमिक इतना अर्जित करने योग्य हो जाये कि वह न केवल अपनी प्रतिदिन की आवश्यकताओ को पूर्ण कर सके वरन् कुछ बचत भी कर सके जो कि भविष्य मे यकायक आने वाले सकटो के समय और कुछ विवाह जैसी रीति-रिवाज की आवश्यकताओ के अवसरों पर व्यय की जा सके। युद्ध काल में मालिको द्वारा अनाज की दुकानो की सुविधा प्रदान की गई थी, जिनका उल्लेख कल्याण कार्यों के अन्तर्गत किया जा चुका है। विभिन्न वस्तुओ को लागत मूल्य पर देने का प्रबन्ध औद्योगिक श्रमिको को महाजनो एव दुकानदारो के चगुल से बचाने मे निस्सन्देह सहायक सिद्ध होगा। यह एक ऐसा कार्य है जो शान्ति काल मे भी श्रमिको के हितो को सुरक्षित रखने के हेतु चालू रखने के योग्य है। सन् १९६२ से श्रम व रोजगार मन्त्रालय ने सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्र के ऐसे उद्यमों मे उपभोक्ता सहकारी भण्डारो अथवा उचित मूल्य की दुकानो के संगठन की एक योजना लागू की है जिनमे ३०० या इससे अधिक श्रमिक काम करते हैं। मार्च १९६७ तक, ३,९५४ सस्थानो मे ऐसे २,७४८ स्टोर चालू हो चुके थे। इसके अतिरिक्त, ऋणग्रस्तता की समस्या को हल करने के लिये श्रमिकों मे शिक्षा के विस्तार एव प्रचार द्वारा अपव्यय को रोकना भी नितात आवश्यक है।

ऋण-ग्रस्तता की समस्या का निवारण करने की दृष्टि से सहकारी साख समितियो और श्रमिक बचत निधियो की स्थापना भी बहुत सहायक सिद्ध हो सकती

है। औद्योगिक केन्द्रों में अधिक ऋण लेने को रोकने, श्रमिकों में दूरदर्शिता उत्पन्न करने तथा कम ब्याज पर ऋण प्रदान करने की सुविधा देने के लिये सहकारी साख समितियों और उत्तम रहन-सहन के हेतु समितियों का विस्तृत रूप से होना नितान्त आवश्यक है। भारत में विभिन्न स्थानों पर औद्योगिक संस्थानों में सहकारी साख समितियाँ और श्रमिकों के बैंक स्थापित किये गये हैं जो श्रमिकों को कम ब्याज पर रुपया उधार देते हैं। इनका उदाहरण बंगाल की जूट मिलों में और कई रेलवे केन्द्रों में मिलता है। अनेक स्थानों पर इन साख समितियों का कार्य बहुत सफल रहा है। १९६० में कोयला खानों में ऐसी ५६४ सहकारी समितियाँ तथा भण्डार कार्य कर रहे थे जो अपने सदस्यों को उचित दर पर ऋण देते हैं और उपभोक्ता माल बेचते हैं। सरकार द्वारा इन समितियों को सहायक अनुदान (Grants-in aid) के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। १९६६-६७ में कोयला खान श्रमिक कल्याण निधि में से १६.८२ लाख रु० की राशि इस हेतु स्वीकृत की गई थी। परन्तु अभी तक श्रमिकों के लिये सहकारी साख समितियों की स्थापना की ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया है जितना दिया जाना चाहिये। इस प्रकार मालिक अग्रणी कदम उठा सकते हैं तथा ऐसी समितियों की स्थापना एवं व्यवस्था कर सकते हैं। मालिकों द्वारा बोनस अथवा प्रॉवीडेन्ट फण्ड में से संकट काल में धन देने की सुविधा भी दी जा सकती है। यह धन श्रमिक की मजदूरी में से छोटी छोटी किस्तों में काटा जा सकता है। अब सहकारी समितियों के शेयर खरीदने के लिये निर्वाह निधियों में से भी रुपये निकालने की अनुमति दे दी गई है।

इन सब बातों पर विचार करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि मजदूरी समानीकरण, न्यूनतम मजदूरी का आश्वासन, साप्ताहिक अदायगी, सहकारी आन्दोलन का विस्तार, सामाजिक बीमा योजनायें, ऋणी श्रमिकों की सुरक्षा के लिये कानून एवं ऋण का अपाकरण (Liquidation) तथा निष्क्रमण (Redemption) आदि सभी बातों की व्यवस्था करने पर ही श्रमिकों की आर्थिक दशा में सुधार हो सकता है और तब ही ऋण-ग्रस्तता की समस्या का भी समाधान हो सकेगा।

१७

जीवन-स्तर

THE STANDARD OF LIVING

जीवन-स्तर की परिभाषा एवं उसका अर्थ

'जीवन-स्तर' एक लचीला वाक्यांश है। इस बात की व्याख्या करना कि जीवन-स्तर क्या है, वास्तव मे बडा कठिन है क्योंकि यह व्यक्ति-व्यक्ति का, वर्ग-वर्ग का और देश-देश का भिन्न होता है। किसी के जीवन-स्तर को मापने के लिये कोई विशेष नियम नही है। जीवन-स्तर को निर्धारित करने वाले तत्व भी निश्चित नही है। अत ऐसी दशा मे किसी निश्चित परिणाम पर पहुँचना कठिन ही नही दुसाध्य भी है। कभी-कभी यह कहते हुए सुना जाता है कि तुलनात्मक दृष्टि मे भारत की अपेक्षा सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे जीवन-स्तर बहुत ऊँचा है। इस बात से सम्पूर्ण समाज के स्तर का बोध होता है और यह जीवन-स्तर किसी देश के प्राकृतिक धन, लोगो की कार्य-कुशलता और उनकी सख्या तथा देश की औद्योगिक अवस्था पर आधारित होता है। कभी-कभी यह कहने मे आता है कि किसी कुशल कारीगर की अपेक्षा डाक्टर का जीवन-स्तर उत्तम है और कुशल कारीगर का स्तर साधारण मजदूर के जीवन-स्तर से उत्तम है। इस कथन से समाज मे स्थित भिन्न-भिन्न वर्गो के जीवन-स्तर का पता लगता है और यह जीवन स्तर अधिकतर इस बात पर निर्भर होता है कि सामाजिक आय मे से प्रत्येक वर्ग प्रतियोगिता द्वारा अपना कितना भाग पाता है। फिर भी, जब तक कि इसके विषय मे विशेष रूप से कुछ कहा न जाये, 'जीवन-स्तर' शब्द का प्रयोग प्राय वर्ग विशेष के लिये ही किया जाता है।

यद्यपि जीवन-स्तर शब्द की परिभाषा करने मे कई कठिनाइयाँ है, तथापि जीवन-स्तर को सामान्य रूप से मालूम किया जा सकता है। जीवन-स्तर का भाव यह कहकर भली प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि जीवन-स्तर शब्द का तात्पर्य आवश्यकता, आराम और विलासिता की वस्तुओ की उस मात्रा से है जिनका कि व्यक्ति उपभोग करता है। इस प्रकार, आवश्यकता, आराम और विलासिता सम्बन्धी वस्तुये, जिनका व्यक्ति जीवन मे अभ्यस्त हो जाता है, उसका जीवन-स्तर नियत करती हैं। परन्तु आवश्यकता, आराम और विलासिता सापेक्ष शब्द है, और स्थान, काल तथा व्यक्ति के अनुसार उनमे भिन्नता पाई जाती है। इसलिये व्यक्ति

का सामाजिक स्तर, सामाजिक वातावरण तथा जलवायु की दशा आदि सभी बातें उसके जीवन स्तर को मालूम करने में देखनी पड़ती है।

इस बात में अन्तर है कि जीवन स्तर वास्तव में कैसा है और कैसा होना चाहिये और कौनसा स्तर ऐसा हो सकता है जिसमें आरामदायक और स्वास्थ्यकर रीति से रहने के लिये सब वस्तुयें प्राप्त हो सकें। वर्तमान काल में कुछ ही लोग इस बात को अस्वीकार कर सकते हैं कि न्यूनतम जीवन-स्तर जीविका निर्वाह के स्तर से स्पष्ट रूप से ऊँचा होना चाहिये। यहाँ यह बात विशेष ध्यातव्य है कि जीवन स्तर का उच्च और निम्न होना व्यक्ति की आदतों पर अवलम्बित होता है और आदतें शीघ्र नहीं बदला करती। इसी प्रकार, जीवन स्तर को परिवर्तित करने में समय लगता है। फिर भी सच तो यह है कि जीवन स्तर को गिराने की अपेक्षा बड़ी सुगमता से ऊँचा उठाया जा सकता है क्योंकि उच्च स्तर से अभिप्राय यह है कि अधिक से अधिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की जाये। इसकी अपेक्षा कि एक मनुष्य ऐसी आवश्यकताओं को, जिनका कि वह अभ्यस्त हो गया है, कम करे, उससे लिये नई नई आवश्यकताओं और नई-नई रुचियों को अपना लेना आसान होता है।

जीवन-स्तर का निर्धारित करने वाले तत्व

कुछ तत्व ऐसे भी है, जिनके द्वारा देश में जीवन-स्तर निर्धारित होता है। मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में उसके वातावरण का बड़ा प्रभाव पड़ता है। जो भावनायें उसके वर्ग में होती है, वही उसमें आ जाती है। वर्ग के प्रभाव के अतिरिक्त जीवन-स्तर निर्धारित करने में व्यक्ति की आय का भी बड़ा महत्वपूर्ण योग है। क्रय-शक्ति उसकी इच्छाओं की मात्रा और गुणों को निश्चित करती है। इस प्रकार जीवन-स्तर आय द्वारा निर्धारित होता है। मार्शल के शब्दों में "सफलता के सोपान पर व्यक्ति जितना ही ऊँचा चढ़ता है, उसका दृष्टिकोण उतना ही विस्तृत और व्यापक होता है। जितना वह देखने की चेष्टा करता है, उसमें उतनी ही ढूंढने की प्रवृत्ति की वृद्धि होती है।' एक अन्य तत्व है — सभ्यता की प्रगति। सभ्यता का ज्यों ज्यों विकास होता है और व्यक्ति अपने उपभोग की अधिक से अधिक वस्तुयें प्राप्त करता है। उसकी चिन्तायें भी बढ़ती जाती है। परन्तु जैसे-जैसे सभ्यता अधिक जटिल होती है जीवन स्तर का उत्थान भी होता है, यद्यपि यह अनियमित रूप से होता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य की व्यक्तिगत विशिष्टतायें, उसकी आदतें शिक्षा और दृष्टिकोण तथा उसके धन व्यय करने का ढंग आदि भी जीवन-स्तर निर्धारण करने में महत्वपूर्ण है। मनुष्य की आय अधिक भी हो सकती है। परन्तु यदि उसमें बुरी आदतें पड़ जाती है और वह अपना धन व्यर्थ ही नष्ट करता है तो उसके जीवन-स्तर में किसी प्रकार की प्रगति नहीं हो सकती। कंजूस व्यक्ति जीवन के आराम और सुविधाओं पर अधिक व्यय नहीं करता। परिणाम यह होता है कि उसका जीवन-स्तर अपेक्षाकृत ऊँचा नहीं हो पाता।

जीवन के प्रति दृष्टिकोण का — अर्थात् किसी मनुष्य का भौतिक उन्नति में विश्वास है, या आध्यात्मिक उन्नति में —भी जीवन स्तर पर बड़ा महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। बहुत से मनुष्य सादा जीवन तथा उच्च विचार के अनुयायी है और यद्यपि सुविधायें उपलब्ध करने की उनकी स्थिति भी होती है, तथापि बहुत से जीवन के आनन्दो से वे अपने आपको वंचित रखते है। डाक्टर मार्शल के शब्दो मे, "जीवन-स्तर को उठाने के लिये यह आवश्यक है कि बुद्धिमत्ता, बल और आत्म-सम्मान मे वृद्धि हो, क्योंकि इन्ही बातो से व्यय करने मे मनुष्य उचित निर्णय और यत्न कर सकता है और ऐसे खान-पान से दूर रह सकता है, जिससे भूख की तृप्ति तो हो जाती है, लेकिन कोई शक्ति प्राप्त नही होती। वह उन बातो से भी दूर रह सकता है, जो शारीरिक और नैतिक दृष्टि से बुरी हैं।" इसके अतिरिक्त, **रीति-रिवाज और फैशन** की भी जीवन स्तर पर बड़ी प्रभावशाली प्रतिक्रिया होती है। क्या चाहिये, क्या नही चाहिये—इस प्रकार की व्यक्ति की आवश्यकतायें मनुष्य के जीवन व्यतीत करने के उस ढङ्ग पर निर्भर करती हे जिसमे कि वह समाज मे प्रचलित रीति-रिवाजो और फैशन के अनुसार अपने आपको ढाल लेता है। यदि डाक्टर और दूकानदारों की एक ही आय हो, तब भी उनके रहन-सहन का स्तर भिन्न ही होगा। डाक्टर अपनी वेश-भूषा अच्छी बनाकर रहेगा, सुन्दर और स्वच्छ मकान मे अपने रहने की व्यवस्था करेगा, स्वास्थ्यकर भोजन आदि पर अधिक धन व्यय करेगा, जबकि दूकानदार अपने अधिक से अधिक समय, धन और शक्ति को अपने व्यापार सम्बन्धी कार्यों के प्रसार मे लगायेगा, गन्दे कपडे पहन कर और कभी-कभी मामूली खाना खाकर साधारण जीवन-व्यतीत करेगा। सभी जानते हैं कि दूकानदार वर्ग के लोग, जिनका भारत मे एक विशेष वर्ग होता है, मकान बनवाने और विवाह आदि के अवसरो पर असाधारण रूप से व्यय करते है, अन्यथा वे सादा जीवन ही व्यतीत करते है।

किसी देश की **सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं** का भी आर्थिक कार्यों और जीवनस्तर पर गहरा प्रभाव पडता है। उदाहरणार्थ, **जाति प्रथा** ने भारत में जनता के एक विशेष वर्ग को निम्न स्तर की कोटि में पहुंचा दिया है और उनकी आय चाहे कुछ भी हो, यह कल्पना भी नही की जा सकती कि किसी मेहतर के घर मे सोफासेट या रेडियो भी हो सकता है। सामाजिक प्रथायें, जैसे—विवाह, जन्म, मरण के समय अन्त्येष्टि सस्कार आदि पर अत्यधिक व्यय आदि मनुष्य की आय का एक बहुत बडा अश ले लेती है और इससे उसका जीवन निम्न कोटि की श्रेणी मे आ जाता है। **सयुक्त परिवार** प्रणाली भी मनुष्य की आय को अन्य मनुष्यो मे वितरित कर देती है। इससे बाल-विवाह और जनसख्या मे वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है और इस प्रकार जीवनस्तर नीचा होता चला जाता है। इस प्रकार यह बात भी कि परिवार में कितने सदस्य है या कितने आश्रित है, जिनका एक व्यक्ति को पालन-पोषण करना है, जीवनस्तर पर प्रभाव डालती है। इसके अतिरिक्त, **कीमतों और निर्वाह खर्च** का भी रहन-सहन के स्तर पर बडा प्रभाव पडता है,

क्योंकि यह बातें तुलनात्मक रूप से मनुष्य की असल मजदूरी और नकद मजदूरी मे भेद डाल देती है।

इस प्रकार, ऐसे अनेक तत्व हैं जिनको किसी देश के या किसी भी वर्ग या समुदाय से सम्बन्धित लोगो के जीवनस्तर की समस्या की विवेचना करते समय ध्यान मे रखना पडता है।

जीवनस्तर किस प्रकार ज्ञात होता है

जीवनस्तर को ज्ञात करने की एक चिरपरिचित विधि है—आय और व्यय की मदों का समुचित ज्ञान प्राप्त करना। इसका अभिप्राय है—परिवार बजट निर्माण और उसके विश्लेषण की विधि को अपना लेना। इस आधार पर कोई भी व्यक्ति बड़ी आसानी से यह निर्णय कर सकता है कि कितनी आवश्यकताओं, आराम और विलासितापूर्ण वस्तुओं का कोई मनुष्य उपभोग कर रहा है। इसके विश्लेषण के उपरान्त जीवनस्तर उच्च कोटि का है या निम्न कोटि का, यह ज्ञात किया जा सकता है। इसलिए हम पहले भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के परिवार बजटों का अध्ययन करेंगे।

परिवार बजट सम्बन्धी पूछताछ (Family Budget Enquiries)

औद्योगिक श्रमिको मे सम्बन्धित कुछ परिवार बजट सम्बन्धी पूछताछ सन् १९२१–२२ मे बम्बई मे की गई थी। परन्तु इससे भी अधिक व्यापक आँकडे उस परिवार बजट पूछताछ के परिणामस्वरूप मिलते है, जो भारत सरकार ने सन् १९४३–४५ मे निर्वाह खर्च सूचकांक बनाने की योजना के अन्तर्गत की थी। २८ केन्द्रो मे व्यापक परिवार बजटों के बारे मे मालूम किया गया था। इनमे लगभग २७,००० बजट एकत्रित किये गए और उनका विश्लेषण किया गया। इन २८ केन्द्रो मे से ६ अब पाकिस्तान मे चले गये है और भारत मे २२ केन्द्रो में से २० की रिपोर्टें प्रकाशित की जा चुकी है। इसी प्रकार की पूछताछ सन् १९४७ मे असम, बगाल और दक्षिण भारत के चुने हुए बागान मे भी की गई थी और इस पूछताछ पर आधारित रिपोर्ट भी प्रकाशित कर दी गई है। सन् १९४५ मे भारत सरकार के आर्थिक सलाहकार के कार्यालय ने भी केन्द्रीय सरकार के मध्य वर्ग के कर्मचारियो के पारिवारिक बजटो की पूछताछ की थी। इसका उद्देश्य यह था कि इस पूछताछ के आधार पर निर्वाह-खर्च-सूचकांक बनाये जायें। इनकी रिपोर्ट भी प्रकाशित कर दी गयी है। भारतीय सांख्यिकी संस्थान, बम्बई ने भी बम्बई नगर के मध्यम श्रेणी के परिवारो से सम्बन्धित स्वास्थ्य और आहार सर्वेक्षण पर अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की है। १९४८ के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को लागू करते समय भी अनेक राज्य सरकारो और श्रमिक ब्यूरो ने कुछ महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्रो मे पारिवारिक बजट सम्बन्धी पूछताछ आरम्भ कर दी है और कुछ के परिणाम प्रकाशित भी किय जा चुके है। इस प्रकार की पूछताछ श्रम ब्यूरो के निदेशक ने सन् १९४६ और १९५० मे बागान मे भी की थी। बाद मे श्रम ब्यूरो

ने ब्यावर, भोपाल, सतना, कुर्ग और विन्ध्य प्रदेश आदि में भी परिवार बजट सम्बन्धी पूछताछ की। त्रिपुरा के चाय बागान मे काम करने वाले कर्मचारियों के लिये न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के हेतु अक्टूबर १९५९ में पारिवारिक बजट सम्बन्धी एक जाँच की गई। १९६१–६२ मे, त्रिपुरा प्रशासन ने भी गैर-शारीरिक एवं गैर-कृषि कर्मचारियों के परिवारो के विषय मे परिवार बजट सम्बन्धी जाँच की। डा० वी० अग्निहोत्री ने सन १९५० में कानपुर के ९०० श्रमिक परिवारों से पारिवारिक बजट पूछताछ की थी। आयोजना आयोग की अनुसन्धान कार्य-क्रम समिति ने भी परिवार बजट पूछताछ के सम्बन्ध में कई योजनाओं की स्वीकृति दी है। १९५९ मे बम्बई सरकार ने ८ पारिवारिक सर्वेक्षण किये और औद्योगिक श्रमिको के परिवार बजटों की भी पूछताछ की। मगलौर मे औद्योगिक श्रमिको के ८२ परिवार बजटो की मैसूर सरकार ने पूछताछ की है। आन्ध्र में ६ केन्द्रो मे इस प्रकार की पूछताछ की गई है और पश्चिमी बगाल के बागान मे भी परिवार बजट पूछताछ की गई है।

सितम्बर सन् १९५८ से भारत सरकार ने फैक्ट्रियो, खानो और बागान के ५० केन्द्रो में श्रमिकों के परिवारों के रहन-सहन का सर्वेक्षण आरम्भ किया है। इस सर्वेक्षण का उद्देश्य विभिन्न केन्द्रो पर और सारे भारत के लिए समान रूप से ऐसे आँकड़े प्राप्त करना है, जिनके आधार पर श्रमिकों के उपभोक्ता सूचकाक फिर से बनाये जा सकें, और श्रमिको के जीवन-स्तर का अध्ययन भी हो सके। ऐसा सर्वेक्षण करते समय श्रमिको के कुछ परिवारों को छाँटकर —परिवार का आकार, आय, उपभोग, विभिन्न मदों का व्यय, जन्म, मरण, बीमारी, शिक्षा, वृद्धि, तकनीकी शिक्षा और प्रशिक्षण, कार्य करने की दशायें, मकानो की स्थिति, श्रम विधान के मुख्य उपबन्धो का ज्ञान, परि-सम्पत्ति और देयता आदि से सम्बन्धित आँकडो को नमूने के तौर पर भी एकत्रित किया गया है। यह सर्वेक्षण सितम्बर १९५९ मे पूरे किये गये तथा इनके आधार पर औद्योगिक श्रमिको के लिये नये उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (आधार वर्ष १९६०=१००) बनाये गये है तथा ४६ केन्द्रो के लिए प्रकाशित भी किये जा चुके है। इसके अतिरिक्त, फरवरी १९६७ के अन्त तक २४ केन्द्रो की रिपोर्टें प्रकाशित हो चुकी थी और अन्य केन्द्रों की तैयारी थी। सामान्य रिपोर्ट (भाग १ व २) का निर्माण भी पूरा हो चुका है। ये सर्वेक्षण हाल के वर्षों में श्रमिकों की आर्थिक स्थिति को ज्ञात कराने मे बड़े सहायक सिद्ध होगे। केन्द्रीय सांख्यिकी सगठन की सहायता से ४५ केन्द्रो मे मध्यम-वर्गीय कर्मचारियो के लिए भी इसी प्रकार के सर्वेक्षण किये गये है। इन सर्वेक्षणों मे जो आँकड़े एकत्र हुए हैं उन्हें सारणीबद्ध किया जा रहा है।

१९६५ मे, श्रम ब्यूरो ने पाँच निम्न अतिरिक्त केन्द्रो में परिवार-जीवन से सम्बन्धित सर्वेक्षण किये कोठागुडियन (आन्ध्र प्रदेश), भीलवाडा (राजस्थान), छिंदवाडा और भिल्लई (मध्य प्रदेश) तथा रूरकेला (उडीसा)। ये सर्वेक्षण अगस्त १९६६ मे पूरे हुए और इनका सम्बन्ध इन केन्द्रो में पजीकृत फैक्टरियों

तथा खानो मे लगे श्रमिको से था। श्रम ब्यूरो ने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम १९०८ के अन्तर्गत १९६४–६५ मे हिमाचल प्रदेश के शहरी तथा अध शहरी औद्योगिक श्रमिको के बीच मजदूर वग के पारिवारिक बजटो से सम्बन्धित जाँच भी की। गोवा डामन व डयू के सघ शासित क्षेत्र मे अगस्त १९६४ स जुलाई १९६५ तक पजाव कस्बे म मध्यम वर्ग के गैर शारीरिक एव गैर कृषि कमचारियो के बीच भी परिवार जीवन सम्बन्धी सर्वेक्षण किया गया। नमूने के तौर पर ६०० परिवारो का सर्वेक्षण किया गया। गोवा म श्रम ब्यूरो न जनवरी १९६६ से फरवरी १९६७ तक पारिवारिक बजट सम्बन्धी जाच भी की। इस जाच मे फैक्टरियो खानो तथा मारमागोवा बन्दरगाह म शारीरिक श्रम करन वाले औद्योगिक श्रमिक सम्मिलित थे। इन सब सर्वेक्षणो का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक श्रमिको के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकाक श्रणी तैयार करना रहा है। सन् १९०, ६७ मे एक और परिवार बजट सम्बन्धी जाच की गई जिसका उद्देश्य ४८ केन्द्रो मे रेलवे कुलिया तथा विक्रताओ की आय तथा व्यय के नामाय प्रतिरूप का अध्ययन करना था।

हाल म कई राज्यो म भी परिवार सम्बन्धी पूछताछ फिर की गई है। १९६३–६४ म असम मे विभिन्न औद्योगिक केन्द्रो मे श्रमिको के परिवार बजट से सम्बन्धित पूछताछ के अन्तगत जो परिवार बजट बनाय गये है उनकी सख्या इस प्रकार है धुबरी ३०० गोहाटी ३५० जोरहट २५० तिनसुखिया २५० और मिलचर २६०। मध्य प्रदेश सरकार ने भी जून १९६३ और मई १९६४ मे थाना कल्याण नासिक और सागली म कारखाना श्रमिको के ४८० परिवार बजट एक त्रित किए है। मैसूर म हुबली–धारवार क्षेत्र मे परिवार बजट पूछताछ की जा रही है। नवम्बर १९६४ स अक्टूबर १९६५ तक महाराष्ट्र सरकार ने अकोला, धूलिया कम्पटी (कन्हान) और खाम गाँव केन्द्रो पर रजिस्टड फैक्टरियो मे काम पर लग श्रमिको की परिवार बजट सम्बन्धी जाच की। राजस्थान सरकार ने जनवरी १९६५ से दिसम्बर १९६५ तक गगानगर म परिवार बजट सम्बन्धी जाँच की। एसी ही जाँच कोटा तथा ब्यावर मे भी की जा रही है। मजदूर वर्ग के परिवारो के सम्बन्ध मे केरल सरकार ने अक्टूबर १९ ५ म १३ केन्द्रो मे परिवार बजट सम्बन्धी जाच की। उड़ीसा के सांख्यिकी तथा अर्थशास्त्र सम्बन्धी ब्यूरो का भी प्रस्ताव है कि चौथी पचवर्षीय योजना के अन्तगत हीराकुड बुरला रायगोडा चौनद्वार बरग जयपुर कटक तथा बरहामपुर के औद्योगिक श्रमिको के सम्बन्ध मे पारिवारिक जीवन सम्बन्धी सर्वेक्षण किय जाय।

जहा तक कृषि श्रमिको का सम्बन्ध है कृषि श्रमिक पूछताछ स, जो १९५०–५१ तथा १९५६–५७ म की गई कृषि श्रमिका की आर्थिक स्थिति के विषय मे उपयोगी जानकारी मिलती है। जब १९६३ म सम्पन्न की गई ग्रामीण श्रम जाँच की रिपोर्टें प्रकाशित होगी तो और अधिक विस्तृत आकडे उपलब्ध होगे। (कृषि श्रमिको का अध्याय देखिये)।

पूछताछ के समय उत्पन्न होने वाली कठिनाइयाँ

सर्वेक्षण और पूछताछ से देश के औद्योगिक श्रमिकों के जीवन-स्तर सम्बन्धी व्यापक आँकड़े प्राप्त हो जाते हैं परन्तु प्रत्येक केन्द्र और प्रत्येक उद्योग मे कार्य और मजदूरी की दशाओं मे अन्तर होने के कारण भारत मे औद्योगिक श्रमिकों के सामान्य स्तर और निर्वाह-खर्च के विषय मे पूर्ण रूप से परिचय प्राप्त करना सम्भव नहीं है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि पारिवारिक बजटों को तैयार करना कोई सरल कार्य नही है। भारतीय जनता अधिकतर अशिक्षित है और परिणामतः पूछे गए प्रश्नों का उत्तर ठीक-ठीक नही दे पाती। कठिन समस्याओं को छोटे-छोटे, सरल,बोधगम्य और नितान्त स्पष्ट प्रश्न बनाकर पूछना चाहिए, जिससे किसी प्रकार के सन्देह या गलत समझने की सम्भावना न रहे। श्रमिकों से प्रश्न इस प्रकार पूछने चाहिएँ कि उन्हें बुरा भी न लगे और साथ ही उनमें विश्वास की भावना भी जागृत हो। कभी-कभी तो वे अपनी अशिक्षा के कारण सरल से सरल प्रश्नों का भी उत्तर नही दे पाते क्योंकि उन्हें अपनी सरल प्रवृत्ति के कारण न तो गिनना ही आता है और न हिसाब लगाना। इसलिए परिवार बजट सम्बन्धी पूछताछ सोच-विचार कर करनी चाहिए।

पारिवारिक बजटो के अध्ययन करने मे सर्वप्रथम परिवार का आकार अर्थात सदस्यों की सख्या जानना आवश्यक है। यह भी देखना होता है कि कितने सदस्य कमाने वाले हैं और कितने आश्रित हैं। भारत मे यह प्रश्न बड़ा पेचीदा है, क्योंकि सच बात तो यह है कि परिवार मे केवल पति, पत्नि और अविवाहित बच्चे ही नही वरन् निकटतम सम्बन्धियों के परिवार भी सम्मिलित होते है। दूसरी बात यह है कि परिवार की आय, जिसका तात्पर्य श्रमिक की मजदूरी और आमदनी से है, स्थान-स्थान पर और उद्योग-उद्योग मे भिन्न होती है। इसका उल्लेख 'औद्योगिक श्रमिकों को मजदूरी' के अध्याय में किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त पारिवारिक बजट मे व्यय की भिन्न-भिन्न मदों का भिन्न-भिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत उल्लेख किया जाना चाहिए।

पूछताछ से निष्कर्ष

सन् १९४३–४४ मे की गई परिवार बजट सम्बन्धी पूछताछ के जो परिणाम प्रकाशित किये गये थे, उनसे श्रमिकों के जीवन-स्तर का ज्ञान होता है। इसके बाद जो पूछताछ हुई है उनसे भी हमें औद्योगिक श्रमिकों के निम्न जीवन-स्तर का पता चलता है। यह भी ज्ञात हुआ है कि श्रमिक परिवारों का औसत आकार दिल्ली मे ३·८० था और मुंगेर और जमालपुर मे ६·८० तक था। अनुपस्थित आश्रितो की सख्या अजमेर में ०·०३ थी और जमशेदपुर में २·६४ तक थी। परिवार मे कमाने वालों की औसत संख्या प्रति परिवार के सदस्यो की तुलना में अधिक नही थी। साधारणत कमाने वालों की सख्या कुल सदस्यों की सख्या से आधी आती थी। प्रत्येक परिवार की औसत आय विभिन्न केन्द्रों में लगभग ५० रु०

से लेकर १२० रु० तक पाई गई। भिन्न-भिन्न बागान मे भी प्रत्येक परिवार की औसत सदस्य संख्या असम में लगभग ४ १५ और मद्रास मे ३ ८० थी। इनकी आय भी ८ रु० से लेकर १३ रु० प्रति सप्ताह तक आती थी।

सन् १९५८–५९ म श्रमिक वर्ग के पारिवारिक बजट सर्वेक्षण के अनुसार, श्रमिक वर्ग क परिवारो का आय के आधार पर किया गया वितरण इस प्रकार था–

मासिक आय के वर्ग (रु० मे)	परिवारो की कुल संख्या पर प्रत्येक आय क वर्ग मे परिवारों का प्रतिशत			
	बम्बई	कलकत्ता	दिल्ली	मद्रास
३० तक	० ९३	० १९	१ ८४	१ ५७
३०— ६०	४ ७०	९ १६	११ ७०	७ ३३
६०— ९०	९ ४७	४३ ७५	१४ १५	२२ २९
९०—१२०	२५ ८२	२७ ९५	२५ ४८	२३ ८६
१२०—१५०	२९ ३४	१३ ०२	१५ ६५	१२ ८०
१५०—२१०	१७ ५२	८ २०	११ ६८	१६ ००
२१० से ऊपर	१२ ७१	२ ७७	९ ६०	५ १५

यह उल्लेखनीय है कि सबसे ऊँचा प्रतिशत १२० रु० से १५० रु० तक के वर्ग मे बम्बई म, ६० रु० से ९० रु० तक वर्ग मे कलकत्ते म और ९० रु० से १२० तक के वर्ग म दिल्ली व मद्रास म था। परिवारो की बहुसंख्या ९० रु० स १५० रुपये तक के आय के वर्गो म बम्बई मे (५५ १६%) और दिल्ली मे (४१ १३%) थी तथा ६० रु० से १२० तक के आय के वर्गों मे कलकत्ता मे (६६ ७०%) व मद्रास म (४६ १५%) थी।

व्यय की विभिन्न मदे

अनेक पूछताछो से जो व्यय की मदें मालूम हुई है उनसे पता चलता है कि आय का ६०% स लकर ७०% तक भाग केवल भोजन पर व्यय हो जाता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि श्रमिक वर्ग के परिवार बजट मे कुल व्यय का आधे से अधिक व्यय भोजन-सामग्री पर हो जाता है। एन्जिल के सुप्रसिद्ध सिद्धान्त के अनुसार इन ऊँची प्रतिशत दर से यह पता चलता है कि औद्योगिक श्रमिक वर्ग के रहन सहन का स्तर बहुत निम्न है। सन् १९५८–५९ मे परिवार-बजट सर्वेक्षण के अनुसार भोजन, पेय, तम्बाकू व मादक पदार्थों पर श्रमिक वर्ग के प्रति परिवार के औसत मासिक व्यय का प्रतिशत बम्बई मे ५९ ५४, कलकत्ता मे ६७ ९२, दिल्ली मे ५३ ९८ और मद्रास मे ५९ ४७ था।

श्रमिकों के भोजन की छानबीन करने से ज्ञात होता है कि उनके भोजन मे गुण और मात्रा दोनो ही की बहुत कमी है। बम्बई श्रम कार्यालय ने तो एक बार यह निष्कर्ष निकाला था कि औद्योगिक श्रमिक जो भी अन्न खाते थ, वह अकाल संहिता मे दिए हुए अन्न के बराबर तो होता था परन्तु बम्बई कारागार ग्रन्थ म जो आहार की मात्रा निश्चित की गई है, उससे यह अन्न कम ही होता था।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर, कपड़ा श्रम जाँच समिति, डा० राधाकमल मुकर्जी और डाक्टर अनवर इकबाल कुरैशी आदि ने भी भारतीय आहार स्तर की समस्याओं का अध्ययन करने पर यह ही निष्कर्ष निकाला कि भारतीय श्रमिकों का आहार अपर्याप्त और असन्तुलित होता है और इसमें कैलोरीज की मात्रा बहुत कम होती है। डा० मुकर्जी के अनुसार श्रमिकों को आहार में कैलोरीज की मात्रा अधिकतर अनाज और दालों से ही मिलती है अर्थात् लगभग ७५% कार्बोहाइड्रेट्स से प्राप्त होती है और जितनी कैलोरीज चाहियें, उनमें से मुश्किल से १०% प्रोटीन से प्राप्त होती है। प्रतिदिन औसतन ३,००० कैलोरीज की आवश्यकता होती है, परन्तु भारत में अधिकतर श्रमिकों के आहार में यह मात्रा नहीं पायी जाती। इस प्रकार अधिकतर श्रमिकों को पर्याप्त भोजन नहीं मिलता और वह अनेक बीमारियों के सरलता से शिकार हो जाते हैं। भारत में १९३५ से किये गये सर्वेक्षणों से भी यह ज्ञात होता है कि भारतीय जनता के आहार में मात्रा तथा गुण दोनों की कमी है, तथा भोजन सामग्री में अशुद्धता व मिलावट भी अत्यधिक पाई जाती है। आहार में कमी इस बात से भी स्पष्ट हो जाती है कि एक ओर तो वे अनाज का अत्यधिक उपभोग करते हैं और दूसरी ओर मास-मछली अण्डा, फल, सब्जी और दूध आदि पदार्थों का बहुत ही कम सेवन करते हैं जिसके कारण विटामिन्स, प्रोटीन, चर्बी आदि की कमी रहती है। साधारण भोजन में आनुपातिक रूप से सभी आवश्यक तत्वों का समावेश होना चाहिये और आहार सन्तुलित होना चाहिये। असन्तुलित भोजन का शरीर और मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है और कार्य-क्षमता में भी कमी आ जाती है।

भोजन के बाद दूसरी मूल आवश्यकता कपड़े की है। कपड़े और जूते पर प्रतिशत व्यय विभिन्न स्थानों में ३ से १४ तक आता है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि श्रमिक कपड़ों पर बिल्कुल ध्यान नहीं दे पाते। भारत की जलवायु की दशाओं के अनुसार भी आनुपातिक रूप से कपड़ों पर व्यय इतना अधिक नहीं है, जितना यूरोपीय देशों में होता है। यहाँ पुरुष अपने शरीर के निचले भाग में धोती, लुंगी तथा पायजामा या पैन्ट पहनते हैं और स्त्रियाँ पेटीकोट या साड़ी जिनसे उनका समस्त शरीर ढक जाता है। शरीर के ऊपरी भाग के लिए पुरुष बनियान, कमीज, कोट या बन्डी और चादर आदि कपड़ों का प्रयोग करते हैं और स्त्रियाँ चोली या जाकिट पहिनती हैं। बहुत से पुरुष सर्दियों को छोड़कर शेष समय में अपने शरीर के ऊपरी भाग पर कोई कपड़ा नहीं पहिनते। पैरों में अधिकतर जूते या सैंडिल पहनते हैं, परन्तु फिर भी बहुत से पुरुष और स्त्रियाँ नंगे पैरों ही घूमते हैं। ऊँची आय वाले वर्ग के लोग कपड़ों और जूतों पर अधिक व्यय करते हैं। उनके व्यय की प्रतिशत इन मदों पर प्रायः एक सी ही रहती है, क्योंकि उन्हें एक न्यूनतम जीवन-स्तर बनाये रखना पड़ता है। परन्तु निम्न आय वर्ग के लोगों का प्रतिशत व्यय अपेक्षाकृत इन मदों पर अधिक हो जाता है। डाक्टर राधाकमल मुकर्जी के अनुसार कपड़े की न्यूनतम आवश्यकता प्रति मनुष्य प्रति वर्ष

४५ गज कही जा सकती है। बिस्तरे के सम्बन्ध में भी, प्रतिशत व्यय नही के समान ही है। गर्मियो मे तो सामान्यत बिस्तरे जैसी कोई चीज प्रयोग की ही नही जाती और सर्दियो मे भी अधिकाश मामलो मे रातें केवल एक चादर मे गुजार दी जाती हैं। सन् १९५८–५९ के परिवार बजट सर्वेक्षण के अनुसार श्रमिक वर्ग के परिवार का वस्त्रो, बिस्तरो, टोपी तथा जूतो पर किया जाने वाले औसत मासिक व्यय का प्रतिशत बम्बई मे १२ ६६, कलकत्ता मे ८ २५, दिल्ली मे १५ १२ तथा मद्रास मे ९ १९ था।

मकान के किराये पर श्रमिक जो धन व्यय करते हैं, उसकी प्रतिशत लगभग ४ से ६ आती है और कभी-कभी बहुत कम अर्थात् १ तक भी हो जाती है। मकानो की दशाओ का पूर्ण विवरण एक पृथक् अध्याय मे दिया जा चुका है जिससे पता चलता है कि हमारे औद्योगिक श्रमिक बहुत ही शोचनीय दशा मे और गन्दे स्थानो मे रहते हैं। घरेलू आवश्यकताओ पर किया जाने वाला व्यय भी अधिक नहीं है। उनके घर मे चारपाइयो के अलावा कोई फरनीचर नही होता और बर्तन अपर्याप्त तथा कच्चे व रद्दी किस्म के होते हैं। सन् १९५८–५९ मे किये गये सर्वेक्षण के अनुसार मकान, घरेलू आवश्यकताओ तथा सेवाओ पर प्रति परिवार किये जाने वाल औसत मासिक व्यय का प्रतिशत बम्बई मे ५ ३६, कलकत्ते मे ८ ६०, दिल्ली मे ७ ६१ तथा मद्रास मे ९ ०५ था।

व्यय की एक और मद **ईंधन और प्रकाश** की है। भारतीय श्रमिक भोजन पकाने के लिये लकड़ी या कोयले का प्रयोग करता है। प्रकाश के लिये मिट्टी का तेल या अन्य किसी वनस्पति तेल का प्रयोग किया जाता है। बिजली या गैस तो श्रमिको के मकान मे बहुत ही कम पाई जाती है। दोनो ही दशाओ मे जीवन-स्तर बहुत ही निम्न श्रेणी का है। इस मद पर ही कभी कभी (१९४३–४४ मे) व्यय का प्रतिशत १२ तक पहुँच गया था। ऐन्जिल के सिद्धान्त के अनुसार इससे निम्न प्रकार के जीवन-स्तर का पता चलता है। सन् १९५८–५९ मे किये गये सर्वेक्षण के अनुसार ईंधन व प्रकाश पर प्रति परिवार किये जाने वाले औसत मासिक व्यय का प्रतिशत ६ से अधिक नही था और यह प्रतिशत बम्बई मे ४ ८२, कलकत्ते मे ४·६४, दिल्ली मे ५ १७ तथा मद्रास मे ५ ८५ था।

आय का ८० प्रतिशत से अधिक केवल भोजन और आवश्यक वस्तुओ पर ही व्यय हो जाता है। इसलिये कोई भी मनुष्य आसानी से यह बता सकता है कि श्रमिको के पास स्वास्थ्य, शिक्षा और अपने तथा अपने परिवार के मनोरजन के लिये बहुत कम बचते रहते जाती है। फुटकर व्ययो का अनुपात २०% से कम ही होता है। परन्तु यह फुटकर व्यय अधिकतर मदिरा और सामाजिक रीति-रिवाजो पर होता है और शिक्षा और मनोरजन के लिए लगभग कुछ भी शेष नही रह जाता। सन् १९५८–५९ मे किये गये सर्वेक्षण के अनुसार, फुटकर व्यय बम्बई मे १७ ६२%, कलकत्ते मे १०·५९%, दिल्ली मे १८ १२% और मद्रास मे १६·४४ प्रतिशत था।

मदिरा पर किये गये व्यय के निश्चित आँकड़े देना तो सम्भव नही है, क्योंकि जो श्रमिक शराब पीता है, वह अधिकाशतः यह बताने के लिये तैयार नही होता कि वह शराब पीता ही है या पीता है तो कितनी शराब पीता है। फिर भी अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि श्रमिकों के कुल व्यय का १०% केवल शराब और अन्य मादक पदार्थों पर होता है। शराब पर आय का औसत व्यय असम में १·% और बंगाल में ११·६% होता है। यह भी पता लगा कि श्रमिको के परिवारो में से ७२% बम्बई में, ४३% शोलापुर मे और २६% अहमदाबाद मे शराब पीते थे। कहा जाता है कि श्रमिक शराब पीकर कठिन परिश्रम के भार को हल्का करता है क्योंकि जीवन की और कोई सुविधायें उसे प्राप्त नही होती। अनेक राज्यो और औद्योगिक नगरों में, विशेषतया मद्रास, बम्बई और कानपुर में, मद्यपान निषिद्ध कर दिया गया है, परन्तु इस बात की छानबीन आवश्यक है कि इस मद्य निषेध से अवैध रूप से कितनी शराब खीची जाती है और इसके अवैध रूप से क्रय करने मे श्रमिक का कितना व्यय बढ गया है।

स्वास्थ्य के मद में हम उस व्यय को लेते हैं, जो औषधियो और चिकित्सा पर होता है। कुछ स्थानों पर मालिक अपने कर्मचारियों के लिये ही नहीं, अपितु उनके परिवार के सदस्यो के लिये भी डाक्टरी सहायता की व्यवस्था करते हे। इस शीर्षक के अन्तर्गत कुछ विशेष स्थानों पर ही कुछ व्यय होता है। अनेक अवसरो पर श्रमिक को अपने परिवार के सदस्यों के लिये चिकित्सा सहायता की बडी आवश्यकता होती है। लेकिन उन्हें कष्ट भोगना ही पडता है क्योंकि डाक्टर की फीस देने के लिये और दवाइयाँ आदि खरीदने के लिये भी उनके पास धन नही होता।

शिक्षा के सम्बन्ध में यह देखा गया है कि बच्चो को स्कूल भेजने का व्यय केवल कुछ ही पारिवारिक बजटो मे पाया जाता है। प्राय. वे ही परिवार शिक्षा पर कुछ व्यय करते है जिनकी आय ३० रु० प्रति मास से अधिक होती है। कठिनता से १५% से २०% श्रमिक परिवार बच्चो को स्कूल भेजने पर व्यय करते है। शिक्षा पर व्यय इसलिये अधिक नही होता, क्योंकि श्रमिको के पास इसके लिए कुछ बचता ही नही।

इसी प्रकार **मनोरञ्जन** पर भी व्यय बहुत कम होता है। इसका कारण यह है कि श्रमिक की आय कम होती है और मनोरंजन की सुविधाओं का अभाव होता है। मनोरंजन के लिये कल्याण-कार्यों के अतिरिक्त यदि कोई अन्य सरल सुविधा उपलब्ध है तो वह केवल सिनेमा है। इस पर श्रमिक कुछ धन व्यय करते हुए पाये जाते है।

पान, तम्बाकू और बीड़ी आदि भी कुछ ऐसी उल्लेखनीय वस्तुयें है, जिन पर श्रमिक कुछ धन व्यय करते है। श्रमिक और उनके परिवार की एक बहुत बड़ी संख्या लगभग, ७०% से ८०% तक, ऐसी होती है, जो पान, बीडी और खाने की तम्बाकू की अभ्यस्त होती है। श्रमिक वर्ग में केवल यही विलासिता की वस्तुयें

कही जा सकती हैं और इन पर प्रतिशत व्यय कभी-कभी २% से ५% तक हो जाता है।

फुटकर व्यय के अन्तर्गत एक और मद यात्रा की है। श्रमिकों में अधिकांश प्रवासी होते हैं इसलिये कम से कम साल में एक बार वे अपने घर जाने का अवश्य प्रयत्न करते हैं, परन्तु यात्रा पर किया गया प्रतिशत व्यय बहुत कम है। यह तथ्य भी पिछड़ी हुई दशा और निम्न कोटि के रहन-सहन का स्तर प्रकट करता है।

इसके अतिरिक्त, श्रमिक को लिये गये ऋण पर ब्याज के रूप में भी कुछ न कुछ देना पड़ता है। यह ऋण उसको सामाजिक रीति-रिवाजों और संकट काल, जैसी—बीमारी, बेराजगारी, हड़ताल आदि में व्यय करने के लिये लेना पड़ता है। जैसा कि स्पष्ट है, श्रमिक की आय का अधिकतर भाग जीवन की आवश्यकताओं पर खर्च हो जाता है और इसलिए सामाजिक मान्यताओं को सम्पन्न करने के लिए उसके पास किसी प्रकार की आरक्षण निधि नहीं होती। इस मद पर उसका व्यय अधिक हो जाता है और जो धन वह व्यय करता है, आमतौर से वह महाजनों से ऋण के रूप में लिया हुआ धन होता है। ऋण-ग्रस्तता की यह समस्या पिछले अध्याय में बताई जा चुकी है। यहाँ केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि ऋण-ग्रस्तता का श्रमिकों के जीवन-स्तर पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है और उनकी कार्य-कुशलता भी कम हो जाती है।

सन् १९५८–५९ के श्रमिक वर्ग के परिवार-बजट, बजट-सर्वेक्षण के अनुसार, श्रमिक वर्ग के प्रति परिवार का औसत मासिक व्यय निम्न तालिका में दिखाया गया है—

(कोष्ठ में दिए हुए आँकड़े कुल व्यय पर प्रतिशत के सूचक है)

व्यय की मदें	व्यय (रु० में) (कोष्ठ में प्रतिशत)			
	बम्बई	कलकत्ता	दिल्ली	मद्रास
(१) भोजन, पेय, तम्बाकू व मादक पदार्थ	७८.३५ (५९.५४)	५४.४९ (६७.९२)	६५.३० (५३.९८)	८७.०८ (५९.४७)
(२) ईंधन व प्रकाश	६.२४ (४.८२)	४.०६ (४.९४)	६.२५ (५.१७)	८.५६ (५.८५)
(३) मकान, घरेलू वस्तुएँ व सेवाएँ	७.६ (५.३६)	७.५३ (८.६०)	९.२० (७.६१)	१३.२६ (९.०५)
(४) कपड़े, बिस्तरा, टोपी व जूते	१६.६६ (१२.६६)	७.२३ (८.२५)	१८.२९ (१५.२२)	१३.४५ (९.१९)
(५) विविध	२३.१९ (१७.६२)	९.२८ (१०.५९)	२१.९२ (१८.१२)	२४.०८ (१६.४४)

उपसंहार

श्रमिकों के व्यय करने की मदों का संक्षिप्त अवलोकन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि औद्योगिक श्रमिकों का जीवन-स्तर बड़ी निम्न श्रेणी का है। यह भी देखने में आता है कि भारतीय श्रमिक का जीवन ऐसा नहीं होता जिसे आधुनिक सभ्य संसार में एक अच्छा और आरामप्रद जीवन कहा जा सके। न तो श्रमिक को पर्याप्त भोजन मिलता है और न कपड़ा। मकानों की दशा ऐसी होती है कि कल्पना भी नहीं की जा सकती कि ऐसे वातावरण में भी मनुष्य रह सकते है।

निम्न जीवन-स्तर के कारण

औद्योगिक श्रमिको का निम्न जीवन-स्तर होने के अनेक कारण है। मुख्य कारण वास्तव मे यह है कि श्रमिक की आय कम होती है और निर्वाह-खर्च अधिक होता है। भारत मे श्रमिकों को पर्याप्त मजदूरी नहीं दी जाती, यह बात भारतीय मजदूरी-स्तर का अध्ययन करने से भली-भाँति स्पष्ट हो जाती है। यद्यपि मजदूरी मे युद्धकाल के समय और बाद में भी कुछ सुधार किये गये है तथापि मूल्यो की वृद्धि के कारण निर्वाह-खर्च अधिक हो गया है। सन् १९४७ में श्री सी० डी० देशमुख ने कहा था, "भारत इस समय एक मजदूरी-मूल्य-चक्र से पीड़ित है। जैसे ही श्रमिको को अधिक मजदूरी दी जाती है, उसका लाभ निर्वाह-खर्च के अधिक बढ़ जाने से अपने आप समाप्त हो जाता है।" युद्ध के पश्चात् एशिया के कुछ देशो मे असाधारण अनुपात में निर्वाह-खर्च मे वृद्धि हुई हैं, परन्तु अधिकांश पश्चिमी देशो में इतनी वृद्धि नहीं हुई है। यह बात निम्न तालिका* से स्पष्ट हो जाती है।

निर्वाह-खर्च सूचकांक
(आधार वर्ष १९३७=१००)

वर्ष	इंगलैण्ड	अमरीका	कनाडा	भारत (बम्बई)
१९३९	१०३	९७	१००	१००
१९४५	१३२	१२५	११८	२२२
१९४८	१०८	१६७	१५३	२८६
१९४९	१११	१६५	१५९	२९०

भारत के श्रमिक वर्ग का निर्वाह-खर्च और उसकी वास्तविक आय का तुलनात्मक विवेचन करने से यह सिद्ध होता है कि श्रमिको का जीवन-स्तर गिर गया है। यह किस सीमा तक गिर गया है, यह मजदूरी की वृद्धि और सूचकांक की वृद्धि में भिन्नता से ज्ञात हो जाता है। यह बात भी पृष्ठ ६०२ पर दी गई तालिका से स्पष्ट हो जायेगी। जो महँगाई भत्ता दिया जाता है, वह अपर्याप्त होता है और वह सामान्य मूल्य-स्तर और निर्वाह-खर्च मे जो वृद्धि हुई है, उसकी क्षति-

* See "A Survey of Labour in India" by V. R. K. Tilak, Chapter III and Reserve Bank of India Reports.

पूर्ति करने मे असमर्थ है। अत मूल्यो मे वृद्धि का सारा भार श्रमिको के जीवन-स्तर पर पडता है।*

१६५६ मे औसत सूचकाक
(आधार वर्ष १६५५=१००)

देश	थोक मूल्य	निर्वाह-खर्च
भारत	११६	११८
कनाडा	१०५	१०६
मिस्र	११७	१०६
जापान	१०१	१०४
नीदरलैण्ड	१०४	१११
स्वीडन	१०५	११४
स्विटजरलैण्ड	१००	१०३
इगलैण्ड	१०६	११२
अमरीका	१०७	१०६

जीवन-स्तर को ऊचा उठाने के प्रयत्न

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि केवल मजदूरी समजन (Adjustment) कर देने या महँगाई भत्तो के भुगतान आदि से ही समस्या का समाधान नही हो जाता। हमारे सामने वर्तमान जीवन-स्तर को बनाये रखने की ही समस्या नही है, अपितु इसको इतना ऊँचा उठाना है कि श्रमिक भली-भाँति अपना निर्वाह कर सकें। इसलिए जहाँ तक सम्भव हो, श्रमिको को जल्दी से जल्दी पर्याप्त मजदूरी देनी चाहिये और इस बीच मे औद्योगिक श्रमिको की न्यूनतम मजदूरी और उचित मजदूरी निर्धारित करने मे विलम्ब नही करना चाहिए। भारतीय उद्योगो की मजदूरी का ढांचा विद्वत्तापूर्वक (Judiciously) इस प्रकार बनाना चाहिए कि श्रमिक वर्ग का आर्थिक कल्याण भी हो सके और न तो मूल्य सन्तुलन (Price Equilibrium) मे किसी प्रकार का विघ्न पडे और न ही देश के औद्योगिक विकास मे बाधा आये। श्रमिक के लिए जब तक पर्याप्त आय की व्यवस्था नही की जाती, हम उसका जीवन-स्तर ऊँचा नही उठा सकते। उत्तर प्रदेश श्रम जाँच समिति के शब्दो मे "यह बात स्वय-सिद्ध है कि मजदूरी एक चक्र (Pivot) है, जिसके चारो ओर श्रमिको की अधिकाश समस्यायें घूमती रहती है। इस प्रकार जीवन-स्तर से सम्बन्धित प्रश्न, श्रमिक की सामान्य आर्थिक क्षमता, उसकी सापेक्ष कुशलता, श्रम की लागत आदि सभी बाते इसी समस्या के अन्तर्गत आती हैं।"

* 'निर्वाह खर्च सूचकाक' (Cost of Living Index Numbers) के लिए, जो अब "उपभोक्ता मूल्य सूचकाक" (Consumer Price Index) कहलाते है, परिशिष्ट 'क' देखिए।

श्रमिकों के जीवन-स्तर को ऊँचा करने का एक अन्य उपाय यह है कि उनके लिए पर्याप्त मात्रा में कल्याण-कार्यो और सामाजिक सुरक्षा के साधन उपलब्ध किये जाये। पृथक्-पृथक् अध्यायों में इन बातों का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है और श्रमिकों के स्वास्थ्य, कार्य-कुशलता एवं जीवन-स्तर को उन्नत करने के लिये उनका महत्व भी बताया जा चुका है। इसी प्रकार आवास, ऋण-ग्रस्तता, काम करने की परिस्थितियों की कार्य-कुशलता पर प्रतिक्रिया, आदि दूसरी समस्याओं पर भी विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला जा चुका है।

कुछ अन्य सुझाव

यह कहा जा सकता है कि जीवन-स्तर एक ऐसी समस्या है, जो श्रमिकों के सुधार सम्बन्धी सभी उपायों से सम्बन्धित है। सच तो यह है कि हमारी सभी आर्थिक प्रक्रियाओं का लक्ष्य आवश्यकताओं की पूर्ति है और इसलिये श्रमिकों के कल्याण के लिये जो भी पग उठाया जाये, उससे उनके जीवन-स्तर में उन्नति होनी चाहिये अन्यथा ऐसे पग उठाने के लिए सोचना भी नहीं चाहिए।

इस विषय में एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या भारतीय सामाजिक रीति-रिवाजों में यथासम्भव सुधार करने की है। श्रमिको को उचित रूप से शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे कि वे सामाजिक और धार्मिक अनुष्ठानो तथा त्यौहारो पर व्यर्थ अपव्यय न करे। अनेक सामाजिक उत्तरदायित्व ऐसे होते है, जिन पर श्रमिक को धन व्यय करना पडता है, यद्यपि वह यह भली-भांति अनुभव भी करता है कि उसकी स्थिति ऐसी नही है कि अपने धन को वह इस प्रकार व्यय करे। उदाहरणार्थ, पुत्री या बहन के विवाह मे श्रमिक को भारी दहेज देना पडता है।

इसके अतिरिक्त श्रमिकों को बड़े परिवार की हानियो से भी अवगत कराना चाहिये। विस्तृत दृष्टिकोण से भी वर्तमान समय मे जनसख्या की रोकथाम सबसे बडी आवश्यकता है। खाद्य समस्या का समाधान तब तक नही किया जा सकता, जब तक उत्पादन मे वृद्धि के साथ-साथ जनसंख्या की वृद्धि में रोक नही लगाई जाती। आधुनिक समय मे जनसख्या इस प्रकार बढ रही है कि निर्धनों मे बच्चे अधिक होते हैं। इसलिए परिवार का आकार श्रमिक वर्ग मे अपेक्षाकृत बडा होता है। अनेक बार यह बात सामने आई है कि अपनी सीमित आय के कारण जब श्रमिक को अपने परिवार का भरण-पोषण करना और अपने शरीर और आत्मा को सबल बनाये रखना भी कठिन होता है, तब इस आडे समय में उसके परिवार में कोई नया बच्चा जन्म ले लेता है। ऐसे अवसरो पर उसके समक्ष इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नही रहता कि वह महाजनो के पास जाए और उनसे ऋण ले। ऋणग्रस्तता की बुराइयाँ पहले ही बताई जा चुकी है। इसलिए परिवार नियोजन के प्रचार की बहुत आवश्यकता है। श्रमिक वर्ग को इस बात की सुविधायें प्रदान की जानी चाहिये कि वे अपने परिवार मे जन्म-दर को कम कर सकें। इससे उनके जीवन-स्तर पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त श्रमिको को उचित रीति से धन को व्यय करने का ढग भी बताया जाना चाहिए। अधिकाँश श्रमिको को तो यह भी ज्ञान नहीं होता कि वे कितना कमाते है और कितना उपभोग करते है। अनपढ श्रमिको से इस बात की आशा नही की जा सकती कि वे अपना बजट ठीक प्रकार से बनायेंगे और अपने धन को सम-सीमान्त तुष्टीगुण नियम (Law of Equi marginal Utility) के अनुसार व्यय करेंगे। इस समस्या का समाधान तो केवल अधिक प्रचार, शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओ के प्रसार और श्रमिक वर्ग की महिलाओ मे शिक्षा के विकास से ही हो सकता है।

इसके अतिरिक्त जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने मे छुट्टियो, सवेतन अवकाश तथा मनोरजन की सुविधाओ के महत्व को भी ध्यान मे रखना चाहिए। इनकी महत्ता का पूर्व अध्यायों मे उल्लेख किया जा चुका है।

औद्योगिक श्रमिको की कार्य-कुशलता पर जीवन-स्तर का भी बड़ा प्रभाव पडता है। उन श्रमिको से जो निर्धनता, अपर्याप्त भोजन, कपडे के अभाव, बेरोजगारी, बीमारी और ऋण-ग्रस्तता के वातावरण मे पल कर बडे होते है, अच्छे काम की आशा नही की जा सकती। मालिको को अपने कर्मचारियो की अकुशलता की शिकायत रहती है। वे इस बात का अनुभव नहीं करते कि जब तक श्रमिको के जीवन स्तर मे सुधार नही हो जाता उनसे काम मे कुशलता की आशा करना व्यर्थ है। वर्तमान समय मे शारीरिक, नैतिक और मानसिक भार वहन करने मे श्रमिक असमर्थ है और इसीलिए वे अधिक परिश्रम नही कर पाते।

उपसहार

इसमे कोई सन्देह नही कि श्रमिको के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के प्रश्न पर विचार करने से पूर्व अनेक अन्य सुधारो की आवश्यकता है। डा० राधाकमल मुकर्जी के शब्दो मे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि, "उद्योग मे तब तक न शाति स्थापित हो सकती है, न प्रगति आ सकती है जब तक श्रमिको को केवल उत्पादन का उपादान न मानकर अपितु उन्हे मनुष्य समझकर उनकी मूल आवश्यकताओं को सन्तुष्ट नहीं किया जाता · · । औद्योगिक शान्ति और प्रगति की नीव, श्रमिक वर्ग की कार्यकुशलता, उन्नत जीवन-स्तर, सामाजिक सुरक्षा तथा समस्त जनता मे क्रय शक्ति के उचित वितरण पर ही आधारित होती है।"

१८

औद्योगिक श्रमिकों का स्वास्थ्य और उनकी कार्यकुशलता

HEALTH AND EFFICIENCY OF INDUSTRIAL WORKERS

श्रमिकों के स्वास्थ्य की समस्या

औद्योगिक श्रमिकों की स्वास्थ्य समस्या का दो पहलुओं से अध्ययन किया जा सकता है। प्रथम, स्वास्थ्य की हानि की दृष्टि से, जो सभी नागरिकों के लिए स्वाभाविक है और द्वितीय, व्यवसायजनित स्वास्थ्य संकट की दृष्टि से जिनका कुछ उद्योगों में औद्योगिक श्रमिकों के लिए भय रहता है। औद्योगिक श्रमिक भी एक नागरिक होता है, इसलिए अन्य नागरिकों के समान सब पर आने वाले स्वास्थ्य संकट उसको भी झेलने पड़ते हैं। नागरिक होने के नाते श्रमिक की आवश्यकताओं की पूर्ति सामान्य स्वास्थ्य सेवाओं द्वारा, जो समाज में सब के लिए उपलब्ध है, होनी चाहिए। परन्तु औद्योगिक श्रमिक के रूप में उसके व्यवसायजनित संकट, जिनका उसे भय रहता है, उचित रीति से निर्मित औद्योगिक श्रम स्वास्थ्य सेवा द्वारा ही दूर किये जा सकते हैं। ऐसी सेवायें काम करने के स्थान के वातावरण से सम्बन्धित उन बातों की रोकथाम करने की व्यवस्था करती है जो श्रमिक के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालती है।

असन्तोषजनक स्वास्थ्य पर कुछ रिपोर्ट

हमारे देश के लोगों का असन्तोषजनक स्वास्थ्य इस बात से विदित होता है कि यहाँ के जीवन की औसत आयु अपेक्षाकृत कम है। अनुमान किया गया था कि सन् १९४१–५० के बीच भारत में यह औसत आयु पुरुषों की ३२·५ तथा स्त्रियों की ३१·७ वर्ष रही। अभी हाल के वर्षों में औसत आयु कुछ बढ़ी है। यह आयु सन् १९५६ में पुरुषों के लिए ४१·९ वर्ष तथा स्त्रियों के लिए ४०·६ वर्ष थी और १९६३ में पुरुषों के लिए ४८·७ वर्ष व स्त्रियों के लिए ४७·४ वर्ष थी। परन्तु अन्य देशों की तुलना में यह अभी भी कम है। यह आयु आस्ट्रेलिया में ६३ वर्ष, इंगलैंड और वेल्स में ५९ वर्ष, जर्मनी में ६० वर्ष और जापान में ४५ वर्ष है। भारत में यद्यपि श्रमिकों के स्वास्थ्य सम्बन्धी आंकड़े पूर्णतया उपलब्ध नहीं हैं, तथापि सामान्य स्वास्थ्य की दशाओं के विवरण भारत के अनेकानेक प्रकाशनों [जैसे स्वास्थ्य सर्वेक्षण और विकास समिति रिपोर्ट (भोर समिति), भारत सरकार

के सार्वजनिक स्वास्थ्य आयुक्त की वार्षिक रिपोर्ट सन् १९६१ की स्वास्थ्य सर्वेक्षण व नियोजन समिति की रिपोर्ट आदि] मे मिलते हैं। पचवर्षीय आयोजनाओ मे आयोजना आयोग ने सम्पूर्ण देश मे पाई जाने वाली स्वास्थ्य विषयक परिस्थितियो का चित्राकन किया है। कर्मचारी राज्य बीमा निगम की वार्षिक रिपोर्टों से भी श्रमिको की बीमारी के कुछ आकडे प्राप्त होते हैं।

भोर समिति न अपनी रिपोट म कहा था कि भारत मे औद्योगिक श्रमिको क स्वास्थ्य सम्बन्धी आँकडे प्राप्त करने की कोई उचित व्यवस्था नही थी। बहुत से कारखानो मे तो औषधालय ही नही होते। यही कारण है कि सभी औद्योगिक श्रमिको का कोई विश्वसनीय अभिलेख (Record) नही रक्खा जा सकता। इसके अतिरिक्त, जिन औद्योगिक सस्थानो मे हस्पताल और औषधालय होते हैं, उनसे भी पूरी सूचनायें नही मिल पाती। उद्योगजनित बीमारियो (Industrial Diseases) से सम्बन्धित विवरण भी पूर्णतया प्राप्त नही होता है। केवल कुछ ही प्रगतिशील औद्यौगिक सस्थानो मे बीमारी और अनुपस्थिति के आँकडे एकत्रित किये जाते हैं। टाटा उद्योग के औद्योगिक स्वास्थ्य विभाग ने टाटा की मिलो के विभिन्न औषधालयो मे हो रहे उपचार के आँकडे प्रस्तुत किये हैं। अनुपस्थिति सम्बन्धी आँकडो को देखने से प्रतीत होता है कि बीमारी के कारण होने वाली अनुपस्थिति की प्रतिशत दर काफी अधिक है। सन् १९६६ में, बीमारी, दुर्घटना अथवा प्रसूत काल के कारण अनुपस्थित रहने वालो का प्रतिशत उत्तर प्रदेश की आर्डिनेंस फैक्टरियो मे ११ ३% पश्चिमी बगाल तार निर्माणशालाओ मे १० २% और मद्रास की माचिस फैक्टरियो मे ७ २%। कर्मचारी राज्य बीमा निगम की १९६४–६५ की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार विभिन्न राज्य बीमा चिकित्सालयो मे ७६,१६,७३२ नये और १,८६,२३,१०१ पुराने रोगियो का इलाज किया गया और ५२,७५३ मरीजो को हस्पतालो मे भर्ती किया गया। बीमारी के लिये कुल ४६४ लाख रु० नकद लाभ के रूप मे दिये गये।

प्रो० बी पी० अदारकार ने औद्योगिक श्रमिको के लिये स्वास्थ्य बीमा पर अपनी रिपोर्ट देने के सम्बन्ध मे जो आँकडे एकत्रित किये थे उनसे पता चलता है कि बीमारी की अधिकतम दर १·९% प्रति श्रमिक प्रति वर्ष है। सन् १९४६ मे प्रकाशित दो और रिपोर्टों मे भी श्रमिको की स्वास्थ्य-अवस्थाओ का वर्णन मिलता है। इनमे से एक रिपोर्ट तो स्वास्थ्य सर्वेक्षण समिति की है और दूसरी औद्योगिक श्रमिको के स्वास्थ्य पर भारत सरकार को डा० टामस वेडफोर्ड द्वारा दी गई रिपोर्ट है। दानो रिपोर्टों से यह पता चलता है कि औद्योगिक कर्मचारियो के रहने और काम करने की अवस्थायें वास्तव में सन्तोषजनक नही है। काम करने की दशाओ का अध्ययन करने पर यह ज्ञात हुआ है कि कुछ थोडे ही कारखाने सुव्यवस्थित और अच्छे ढग से बने हुए है। अधिकतर कारखानो की रचना दोषपूर्ण है और उनमे श्रमिको के आराम के लिय कोई व्यवस्था नही पाई जाती है। साधारणतया उनका तापक्रम अधिक होता है और नमी भी बहुत होती है। प्रकाश

का प्रबन्ध भी ठीक से नहीं होता और धूल उड़ती रहती है। अग्नि के पत्थर उछल-उछल कर चारों ओर गिरते हैं। इस प्रकार उद्योगजनित संकटों को कम करने की कोई व्यवस्था नहीं होती। दुर्घटना और बीमारी से सम्बन्धित आँकड़े तो यद्यपि पूर्णतया उपलब्ध नहीं हैं, तथापि साधारणतया यही मानना पड़ता है कि पश्चिमी देशों की अपेक्षा भारत मे दुर्घटनाओं और बीमारी की दर अधिक है। डा० बेडफोर्ड ने इस बात पर भी बल गया है कि फैक्ट्री निरीक्षकों द्वारा निरीक्षण प्रभावात्मक होना चाहिये और सुरक्षा नियमों में सभी को प्रशिक्षण भी विस्तृत रूप से देना चाहिये। जहाँ तक फैक्ट्री की सीमा से बाहर रहने की परिस्थितियों का सम्बन्ध है, दोनों ही रिपोर्टों ने औद्योगिक क्षेत्रों में फैली हुई अस्वच्छता और भीड़-भाड़ तथा श्रमिकों के अपर्याप्त पोषण की ओर ध्यान आकर्षित किया है।

खानों और बागान में श्रमिकों का स्वास्थ्य

कोयले की खानों मे श्रमिकों के असन्तोषजनक स्वास्थ्य के महत्वपूर्ण कारणों में मलेरिया सबसे बड़ा कारण है। काम करने की असन्तोषजनक परिस्थितियों का भी स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। अनेक खानों मे वायु में नमी होती है और जहाँ पर सुरंगें उड़ाई जाती है, वहाँ की हवा में धुआँ भर जाता है। बडी-बडी कोयले की खानों में आखों की बीमारियाँ, विशेषत: रात का अन्धापन, कर्मचारियों में बहुधा पाया जाता है। दमा और निमोनिया जैसी बीमारियाँ भी देखने में आती हैं। धरातल के नीचे जल-मल निकास की व्यवस्था के अभाव में अंकुश कृमि (Hookworm) की बीमारी भी देखने में आती है। खानों के क्षेत्रों मे क्षेत्रीय अस्पताल, प्रसूति तथा शिशु कल्याण केन्द्रो तथा औषधालयों की स्थापना की जा चुकी है।

डा० ई० लायड जोन्स द्वारा असम, बंगाल और दक्षिण भारत के चाय बागान में की गई सन् १९४७ की पूछताछ से बागान कर्मचारियों के स्वास्थ्य सम्बन्धी कुछ आँकड़े उपलब्ध होते हैं। डा० जोन्स ने अनुभव किया कि असम में श्रमिकों के स्वास्थ्य की दशा बडी शोचनीय है और उनमें से अधिकांश अपर्याप्त पोषण व सामान्य दुर्बलता और जीव-शक्ति के अभाव से पीडित हैं। लोगों के आहार की कुछ अच्छी दशा होने के कारण उत्तरी बंगाल मे स्वास्थ्य की दशा असम की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी थी। अनेक कारणों से (जैसे कि श्रमिकों मे शिक्षा का उच्चतर स्तर, स्वास्थ्यप्रद जलवायु, मकानो की अच्छी दशायें तथा चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवाओं का अधिक अच्छा होना, आदि) दक्षिण भारत में सामान्य स्वास्थ्य की दशा उत्तर भारत की अपेक्षा बहुत अच्छी पाई गई थी। डा० जोन्स ने सिफारिश की थी कि चिकित्सा सेवाओं की व्यवस्था को दो चरणों में विभक्त कर देना चाहिये। प्रथम चरण में राजकीय अस्पतालों तथा औषधालयों की व्यवस्था पर तथा दूसरे चरण मे सामूहिक तथा केन्द्रीय अस्पतालों की व्यवस्था

पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। उन्होंने अस्पतालों और औषधालयों में कुछ स्तरों को बनाये रखने की भी सिफारिश की। मार्च, अप्रैल १९४८ में नई देहली में हुई बागान की औद्योगिक समिति के द्वितीय अधिवेशन में सरकार द्वारा उनकी सिफारिशों को स्वीकार कर लिया गया। (पृष्ठ ३३२-३३५ भी देखिये) चाय बागान में १९६१ में श्रमिकों की मृत्यु दर प्रति हजार ६ ३९ थी तथा सभी जनसंख्या के लिये ११ ३८ प्रति हज़ार थी।

बुरे स्वास्थ्य के मुख्य कारण और उनको दूर करने के लिए राजकीय प्रयत्न

भोर समिति के अनुसार भारत में बुरे स्वास्थ्य के निम्नलिखित कारण हैं–(क) गन्दी अवस्थाओं का होना, (ख) त्रुटिपूर्ण आहार, और (ग) चिकित्सा व रोग निवारक संगठनों की अपर्याप्तता। भारत सरकार ने औद्योगिक श्रमिकों की स्वास्थ्य-रक्षा की आवश्यकता को मान्यता प्रदान कर दी है और जिन परिस्थितियों में वे काम करते हैं उनका अन्वेषण करने के लिये अनेकानेक पूछताछ की गई है। इन जांचों की रिपोर्टों में निहित कुछ सिफारिशों को सरकार ने लागू करने का निश्चय किया है और औद्योगिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित रोकथाम और उपचार के उपायों को वैधानिक रीति से कार्यान्वित किया है। इन उपायों में सन् १९४८ का कारखाना अधिनियम, सन् १९४७ का कोयला खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम और १९४८ का कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम अधिक महत्वपूर्ण है। पिछले पृष्ठों में इन सबका उल्लेख किया जा चुका है। सन् १९३९ का कोयला खान (सफाई) अधिनियम भी, जो सन् १९५२ में कोयला खान (संरक्षण और सुरक्षा) अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था, खानों में प्रचलित था। इसका हम खान विधान के अन्तर्गत उल्लेख करेंगे। औद्योगिक श्रमिकों के हेतु मालिकों द्वारा किये गये कल्याण-कार्यों के अन्तर्गत औषधालयों के प्रबन्ध के विषय में उल्लेख किया जा चुका है।

एक अन्य महत्वपूर्ण पग जो उठाया गया है वह यह है कि भारतीय गवेषणा निधि परिषद् (Research Fund Association) के अन्तर्गत कुछ विशिष्ट उद्योगों की स्वास्थ्य समस्याओं को हल करने के लिये एक विशेष सलाहकार समिति की स्थापना की गई है। इस परिषद् की औद्योगिक स्वास्थ्य गवेषणा इकाई ने स्वास्थ्य समस्याओं पर कुछ अनुसन्धान (Investigations) किये हैं। वर्तमान काल की कुछ ऐसी समस्यायें जिन पर अनुसन्धान कार्य किया जा रहा है, निम्नांकित हैं: (क) श्रमिकों पर शोरगुल की अधिकता का प्रभाव, (ख) दुर्घटनाओं के कारण बीमारियां होने से अनुपस्थिति, (ग) छापाखानों में सीसे द्वारा उत्पन्न मादक विष का प्रभाव, और (घ) औद्योगिक गर्द के विष का मूल्यांकन। कुछ उद्योगों, जैसे लोहा उद्योग, इंजीनियरिंग और कपड़ा उद्योग, में इतना अधिक शोरगुल होता है कि अन्त में श्रमिकों की कार्यकुशलता और उनके सुनने की शक्ति पर बुरा प्रभाव

(५) फरवरी १९६८ तक, कर्मचारी राज्य बीमा योजना २८५ केन्द्रों पर लागू हो चुकी थी जिसमें ३२.२८ लाख श्रमिक सम्मिलित थे। २७४ केन्द्रों में, बीमाकृत श्रमिकों के परिवारों को चिकित्सा लाभ प्रदान किये जाने लगे थे। (देखिये अध्याय १२)।

(६) १९६७ के अन्त तक, कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम ११२ उद्योगों तथा संस्थानों पर लागू हो चुका था। भविष्य निधि में अंशदान देने वाले श्रमिकों की संख्या छूट-प्राप्त संस्थानों में १९,४७,२२६ और गैर-छूट प्राप्त संस्थानों में ३२,४८,४६२ थी। अंशदान की बढ़ी हुई ८% की दर ७१ उद्योगों में लागू हो चुकी थी, (देखिये अध्याय १२)।

(७) सन् १९६७ में, खानों में हुई दुर्घटनाओं में मरने वालों की संख्या २९२ थी (२१८ कोयला खानों में और ७४ अन्य खानों में)। इसी प्रकार, गम्भीर रूप से चोट लगने वालों की संख्या २,६८४ थी (१,८३२ कोयला खानों में और ८५२ गैर-कोयला खानों में)। (देखिये अध्याय १४)।

(८) अगस्त १९६८ तक, श्रमिकों की शिक्षा के लिये बनाये गये केन्द्रीय बोर्ड ने ३१ क्षेत्रीय केन्द्रों और ७० उप-क्षेत्रीय केन्द्रों की स्थापना की थी। ६४३ अधिवेशनों (sessions) में १४,३५० श्रमिक शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया गया था और २७,९३१ अधिवेशनों में ६,५४,५४६ श्रमिकों को प्रशिक्षण दिया गया था। (देखिये अध्याय १२)।

(९) फिल्म उद्योग में श्रमिकों के कार्य करने की दशाओं का नियमन करने के लिये एक योजना बनाने का प्रस्ताव भारत सरकार के विचाराधीन है। आजकल स्थायी श्रम समिति की सिफारिशों के आधार पर बनी हुई एक त्रिदलीय उपसमिति इस मामले की देख-भाल कर रही है।

(१०) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन (I. L. O.) का छठा एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन सितम्बर १९६८ में टोकियों में हुआ था। (देखिये अध्याय २०)।

(११) मजदूरी बोर्ड की सिफारिशों को लागू करने के प्रश्न पर अगस्त–सितम्बर १९६८ में कुछ बड़े समाचार-पत्रों के संस्थानों में श्रमिकों की हड़ताल हुई थी। सरकार ने यह मामला पंचनिर्णय के लिये सौंप दिया है। यह हड़ताल ५७ दिन तक चली थी।

(१२) केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों ने अक्तूबर १९६८ में हड़ताल करने की धमकी दी थी। यह धमकी मंहगाई भत्ते के बारे में थी जो कि राष्ट्रपति द्वारा जारी किये गये एक अध्यादेश द्वारा रोक दिया गया था। १९ सितम्बर १९६८ को जो सांकेतिक हड़ताल की गई वह आंशिक रही और नई दिल्ली में कुछ कर्मचारियों पर लाठी चार्ज भी किया गया।

(१३) श्रम मन्त्रालय द्वारा सम्पादित अस्थायी आँकड़ों के अनुसार ब्रिटेन में श्रमिक संघों की कुल सदस्य संख्या १९६४ के अन्त में लगभग १,००,६५,०००

थी। किन्तु १९६३ और १९६२ के अन्त की कुल सदस्य संख्या से इसकी तुलना करने से विदित होता है कि यह संख्या इन दोनों वर्षों की संख्या से क्रमश: १,३८,००० और १,८३,००० अधिक थी। १९६४ के अन्त में ५९१ श्रमिक संघ थे जबकि १९६३ के अन्त में ६०२ थे। (देखिये अध्याय ६)।

(१४) मार्च १९६६ में संसद् में यह कहा गया था कि देश में श्रमिकों में पाई जाने वाली ऋणग्रस्तता को दूर करने की कोई ऐसी योजना नहीं है जिसके अन्तर्गत कि सम्पूर्ण श्रमिक आ जाते हों। तथापि, कर्मचारी भविष्य निधि योजना के अन्तर्गत, अनेक ऐसे कार्यों के लिये न वापिस की जाने वाली अग्रिम धनराशियाँ देने की व्यवस्था अवश्य है जैसे कि जीवन बीमे की किश्तों की अदायगी, रहने के लिये मकान या प्लाट की खरीद अथवा रहने के मकान का निर्माण, अस्थायी कार्य-समाप्ति के कारण बेरोजगारी की अवधि पर काबू पाना उपभोक्ता सहकारी समितियों के शेयर खरीदना और कुछ मामलों में डाक्टरी चिकित्सा कराना। कोयला खानों में सहकारी आन्दोलन को प्रोत्साहन देने के लिये सहकारी ऋण समितियाँ तथा उपभोक्ता भण्डार स्थापित किये जा रहे हैं और ऋण समितियों को कोयला खान श्रम कल्याणनिधि से इसलिये कर्ज देने की भी व्यवस्था की गई है ताकि वे ब्याज की रियायती दरों पर ऋण की सुविधायें प्रदान कर सकें आदि। भारत सरकार के परामर्श पर औद्योगिक संस्थानों द्वारा जो उचित मूल्य की दुकानें तथा उपभोक्ता सहकारी भण्डार स्थापित किये जा रहे हैं वे भी ऊँची कीमतों की अवधि में श्रमिकों की सहायता प्रदान करते हैं।

(१५) आयोजना आयोग ने केन्द्र सरकार को यह सुझाव दिया है कि वह अपने बजट में लगभग १० करोड रुपये की अतिरिक्त व्यवस्था करे ताकि इंजीनियरों में बढ़ती हुई बेरोजगारी की समस्या का सामना करने के लिये अल्पकालीन प्रबन्ध किये जा सकें। प्रधान मन्त्री के संकेत पर जो कार्यक्रम बनाया गया है उसमें निम्न उपाय सम्मिलित किये गये हैं सैनिक तकनीकी कोर सहित सरकारी संस्थानों में इंजीनियरों व तकनीशनों (technicians) के सभी रिक्त स्थानों को भरा जाये, चौथी तथा पाँचवीं आयोजनाओं में जो बड़ी-बड़ी प्रायोजनायें हाथ में ली जानी है उनका प्रारम्भिक सर्वेक्षण तथा जाँच पड़ताल तुरन्त आरम्भ कर दी जाये और औद्योगिक प्रशिक्षण एवं शिक्षुता (apprentice ship) की सुविधाओं का विस्तार किया जाय। अनुमान है कि इन तीन उपायों द्वारा १९६८-६९ में २०,००० इंजीनियरिंग स्नातकों तथा डिप्लोमा-धारकों को अतिरिक्त रोजगार प्राप्त होगा। इंजीनियरिंग स्नातकों को छोटे पैमाने के उद्योगों की स्थापना के लिये वित्तीय सहायता प्रदान किये जाने के उद्देश्य से आयोग ने एक विशेष योजना का भी सुझाव दिया है। यह योजना राज्य सरकारों द्वारा लागू की जानी है। निर्माण के क्षेत्र में इंजीनियरों की सहकारी समितियों को भी प्रोत्साहन दिये जाने का विचार है। अन्य जिन महत्वपूर्ण उपायों की सिफारिश की गई है उनमें है संस्थागत वित्तीय सहायता चाहने वाली फर्मों द्वारा देशी परामर्श का अनिवार्य

Employment Exchange रोजगार दफ्तर
Employment-oriented रोजगार प्रधान
Endorsement पृष्ठांकन
Enquiry जाँच, पूछताछ
Entrepreneur उद्यमकर्त्ता
Environment पर्यावरण, माहौल, वातावरण
Establishment प्रतिष्ठान, सिबबन्दी
Evaluation मूल्यांकन
Evasion अपवचन
Exception अपवाद
Execute निष्पादन करना
Executive कार्यांग
Ex-officio पदेन
Ex-party एक-पक्षीय
Ex-serviceman भूतपूर्व सैनिक
Extend व्यापकता, सीमा
Extensive विस्तार
External वाह्य
Extra-mural वहिर्मुखी

F

Fact तथ्य
Fatigue श्रम थकान, श्रांति, क्लांति
Fatal घातक
Factionalism गुटबन्दी
Factors उपादान
Factory कारखाना, फैक्ट्री
Fair Wage उचित मजदूरी
Federation संगम
Follow up methods पुनः निरीक्षण
Forced labour बेगार
Frictional असन्तुलनात्मक
Full Employment पूर्ण रोजगार
Fund निधि
Funded निधिबद्ध

G

Gainful अर्थकर, लाभदायक
Gentleman's Agreement भद्र करार
Go-slow-tactics कार्य मंदन युक्तियाँ
Graduated wage आरोही मजदूरी
Grant अनुदान
Gratuity अनुतोषिक, अवकाश प्राप्त धन
Grievance Procedure शिकायत-निवारण-क्रियाविधि
Guarantee गारन्टी

H

Handicapped विकलांग
Hobby centre शगल केन्द्र
Housing आवास
Human मानवीय
Hygiene स्वास्थ्य विज्ञान

I

Idle resources निष्क्रिय साधन
Illegal अवैध
Illegitimate अवैध
Immobility गतिहीनता
Immigrant अप्रवासी
Implementation कार्यान्वित, लागू होना
Indebtedness ऋणग्रस्तता
Indentured करारबद्ध
Index-number सूचकांक
Industrial-disease उद्योगजनित बीमारी
Industrial peace औद्योगिक शांति
Industrial relations मालिक-मजदूर सम्बन्ध
Inequalities असमानतायें
Injunction *निषेधाज्ञा*
In kind जिन्स में
Instalment किस्त, अंशिका
Instigate उकसाना
Institute संस्थान
Institutional संस्थानिक
Instructor अनुदेशक
Insured बीमाकृत
Intermediary मध्यस्थ, मध्यग
Interim अन्तरिम

Bye law उपविधि
By-product गौण उत्पादन

C

Casual labour नैमित्तिक श्रमिक
Casual leave आकस्मिक छुट्टी
Censure निन्दा करना
Children's allowance सन्तान भत्ता
Circulate परिचालन
Circular निर्देशन-पत्र
Class consciousness वर्ग चेतना
Classical Economists
सस्थापक अर्थशास्त्री
Class Struggle वर्ग संघर्ष
Code संहिता
Cognizable प्रज्ञेय
Collective Bargaining
सामूहिक सौदाकारी
Commerce वाणिज्य
Compensable injury
पूर्तियोग्य क्षति
Compensation हानि पूर्ति, क्षतिपूर्ति
Complementary पूरक
Comprehensive व्यापक
Concentration सकेन्द्रण
Concept सकल्पना
Conciliation सुलह
Conduct आचरण
Consumer Price Index
उपभोक्ता मूल्य सूचकाक
Consumption उपभोग
Contingency आकस्मिकता
Contract सविदा
Contract labour ठेके के श्रमिक
Contribution अशदान
Convention अभिसमय
Co-ordination समन्वय
Co-partnership सह-साझेदारी
Corporation निगम
Cost of living निर्वाह खर्च
Council परिषद्
Craft guild दस्तकार श्रेणी
Craftsman शिल्पी
Credit worthiness उधार पात्रता
Cumulative सचयी
Current wage प्रचलित मजदूरी
Cyclical चक्रीय

D

Day wages दिहाड़ी
Decasualisation स्थायीकरण
Decentralisation विकेन्द्रीकरण
Defaulter बाकीदार
Deferred आस्थागित
Demand, Effective समर्थ माँग
Depression मन्दी
Depreciation मूल्य ह्रास
Desirability वाछनीयता
Direct labour प्रत्यक्ष श्रम
Director निदेशक
Disability अशक्तता
Discharge अलहदगी
Discipline अनुशासन
Disequilibrium असन्तुलन
Discretionary सविवेक
Dismissal बर्खास्तगी
Displacement विस्थापन
Dispute विवाद
Dividend लाभांश
Division प्रभाग, मण्डल, विभाजन
Dock गोदी
Domicile अधिवासी

E

Earning अर्जन
Efficiency कार्यकुशलता
Eject बेदखल करना
Eligibility पात्रता
Emigration परावास, उत्प्रवास
Employability रोजगार क्षमता
Employee कार्मिक, कर्मचारी
Employer मालिक
Employment रोजगार, काम, नौकरी
Employment Counselling
रोजगार सम्बन्धी सलाह देना

परिशिष्ट घ

शब्दावली (Glossary)
(English to Hindi)

A

Able-bodied — समर्थ
Absenteeism — अनुपस्थिति
Absolute — निरंक्ष
Accession rate — नियुक्ति दर
Accident Prevention — दुर्घटना निवारण
Accrue — प्रोदभवन
Achievement — उपलब्धियाँ
Acquisition — अभिग्रहण, अर्जन
Acquit — निमुक्ति
Act — अधिनियम
Ad hoc — तदर्थ
Adjudicator — न्याय निर्णायक, विवाचक
Adjustment — समजन
Administration — प्रशासन
Adolescent — किशोर
Adult — वयस्क
Adulteration — मिलावट
Advisory — सलाहकार
Affiliation — सम्बद्ध
Agent — अभिकर्ता, एजेन्ट
Agreement — करार
Allocation — विनिधान
Allotment — नियतन
Amalgamation — समामेलन
Amendment — संशोधन
Analysis — विश्लेषण
Annul — रद्द करना
Anti labour — श्रमिक विरोधी
Appellate — अपीलीय
Appendix — परिशिष्ट
Appointment — नियुक्ति
Apprentice — शिक्षार्थी
Apprenticeship — शिक्षुता
Approach — विचारधारा
Aptitude — रुझान
Arbitration — विवाचन
Arrears — बकाया, शेष
Artisan — शिल्पी, दस्तकार
Asset — परिसम्पत्ति
Assignment — अधिन्यास
Association — परिषद्, संस्था
Assumption — पूर्वधारणा
Attachment — कुर्की
Attendance Wage — हाजिरी की मजदूरी
Audit — लेखा परीक्षा
Authorised — प्राधिकृत
Authority — प्राधिकारी
Automatic — स्वतः
Auxiliary — सहायक
Avocation — उप-व्यवसाय
Award — पचाट, विवाचन, निर्णय

B

Back-log — पिछली
Bargaining — सौदा, सौदाकारी
Basic — मूल
Benefit — हित
Bill — विधेयक
Bonus — बोनस
Boss — अफसर, हाकिम
Bourgeois — बुर्जुआ
Boycott — बहिष्कार
Breach of Contract — संविदा भंग
Breach of Trust — न्यास भंग
Bureau — ब्यूरो
Bureaucracy — नौकरशाही
Business Union — कारबारी संघ

उपयोग करना और सरकारी ठेकेदारो द्वारा अर्ह इजीनियरो को काम पर लगाना। अनुमान लगाया गया है कि देश मे बेरोजगार तकनीकी कर्मचारियो की सख्या लगभग ४०,००० है जिसमे ६,५०० इजीनियरिंग स्नातक तथा ३३,५०० डिप्लोमा धारी हैं। यह सख्या देश मे तकनीकी कर्मचारियो की कुल सख्या की १३ प्रतिशत से अधिक है। सरकारी सस्थानो मे सभी रिक्त स्थानो को भरने की सिफारिश करते समय आयोग ने यह भी कहा है कि सरकारी क्षेत्र के उद्यमो द्वारा इजीनियरो को बाजार, बिक्री तथा प्रबन्ध के क्षेत्र मे काम देने पर भी विचार किया जाये। सेना तकनीकी कोर द्वारा ४,००० पद गैर तकनीकी कर्मचारियो द्वारा भरे जाने के अलावा भी, रिपोर्ट के अनुसार, १,००० पद अभी रिक्त हैं।

पड़ता है। भिन्न भिन्न परिस्थितियों में पहले शोरगुल के मध्य और उसके बाद शान्त वातावरण में काम करते हुए अनेक श्रमिकों की जूट के कारखानों में डाक्टरी परीक्षा की गई। प्राथमिक परिणामों से यह सिद्ध होता है कि शोरगुल जब कम होता है, तब कार्यकुशलता में लगभग २·१८ प्रतिशत वृद्धि हो जाती है। कलकत्ता के निकट बाटा शू कम्पनी में दुर्घटनाओं के कारण बीमार होने से अनुपस्थिति के विषय में भी अनुसन्धान किये जा रहे हैं। अन्य महत्वपूर्ण अनुसन्धान जो किये गये हैं, उनका सम्बन्ध कागज और कपड़ा मिलों के श्रमिकों की क्लान्ति (Fatigue) तथा कार्यकुशलता से है। इसके अतिरिक्त यातायात की दुर्घटनाओं और कलकत्ता के बस तथा ट्राम चालकों का दुर्घटनाओं के रोहजान (Proneness) से सम्बन्धित अनुसन्धान भी हुये हैं। यौन सम्बन्धी रोगों से पीड़ित रोगियों का भी सर्वेक्षण किया गया था। इससे यह स्पष्ट हो गया कि विवश होकर परिवारों से पृथक् रहने के कारण इस प्रकार की बीमारियां श्रमिकों में बहुत पाई जाती थी। जूट के कारखानों में महिला श्रमिकों के विषय में यह देखा गया कि उनके ११ प्रतिशत गर्भ गिर जाते थे।

इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने औद्योगिक स्वास्थ्य में प्रशिक्षण देने के हेतु सुविधायें प्रदान की हैं। औद्योगिक श्रमिकों के स्वास्थ्य और सुरक्षा से सम्बन्धित एक पत्रिका का नियमित रूप से प्रकाशन हो रहा है। जो भी चिकित्सा या चिकित्सा से सम्बन्धित कर्मचारी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इन उद्योगों से सम्बन्धित हैं उनके प्रशिक्षण के हेतु कलकत्ता में अखिल भारतीय स्वास्थ्य विज्ञान तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थान (All India Institute of Hygiene and Public Health), में एक विशेष औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान पाठ्यक्रम का आयोजन किया गया है। कारखानों के मुख्य सलाहकार ने राज्य के कारखानों के राज्य-निरीक्षकों को औद्योगिक स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधायें भी प्रदान की हैं। असम, बम्बई, बिहार, मैसूर, उड़ीसा तथा पश्चिमी बंगाल राज्यों में चिकित्सा-निरीक्षकों की नियुक्ति की गई है। श्रमिकों व मालिकों में सुरक्षा सम्बन्धी विचारों को उत्पन्न करने के लिये एक स्वास्थ्य, सफाई व सुरक्षा परिषद् की भी स्थापना बम्बई में की गई है। राज्य के कारखानों में श्रमिकों के काम करने की परिस्थितियों और उनके सामान्य स्वास्थ्य में अनुसन्धान और सुधार करने के उद्देश्य को दृष्टि में रखकर उत्तर प्रदेश की सरकार ने एक औद्योगिक स्वास्थ्य संगठन की स्थापना की है। एक अनुसंधान इकाई कानपुर के चमड़ा उद्योग में स्वास्थ्य संकटों की जाँच के लिये १९६१ में बनाई गई थी। इसके अतिरिक्त भारत सरकार की एक प्रार्थना के प्रत्युत्तर में अमेरिका की सरकार ने तकनीकी सहयोग कार्यक्रम (Technical Cooperation Programme) के अन्तर्गत एक औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान संघ की सेवायें उपलब्ध कर दी हैं। कुछ उद्योगों में स्वास्थ्य संकट और व्यवसाय-जनित रोगों के प्रश्न पर भी विशेषज्ञों के दल ने अनुसंधान कार्य किया है। मैसूर में क्रोमाइट की खानों और अभ्रक की खानों के क्षेत्रों का पहले ही सर्वेक्षण किया

जा चुका था और उनकी रिपोर्टों मे दी गई सिफारिशें विचाराधीन हैं। सरकार ने एक औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान सगठन की भी स्थापना की है, जिसने अनेक सकटपूर्ण व्यवसायों के सर्वेक्षण किये हैं। इसके अतिरिक्त एक केन्द्रीय स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो भी है जिसका कार्य स्वास्थ्य प्रचार और स्वास्थ्य शिक्षा कार्य से सम्बन्धित है। ऐसे ब्यूरो की स्थापना राज्यो मे भी की जा रही है। सन् १९५६ से बम्बई मे एक केन्द्रीय श्रम सस्थान (Central Labour Institute) की स्थापना की जा चुकी है। इसमे औद्योगिक स्वास्थ्य, सुरक्षा तथा कल्याण का राष्ट्रीय सग्रहालय, औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान प्रयोगशाला, प्रशिक्षण केन्द्र तथा पुस्तकालय तथा सूचना केन्द्र आदि भी सम्मिलित हैं। सन् १९६५ से कानपुर, कलकत्ता और कोयमुतूर मे भी तीन क्षेत्रीय सग्रहालयो की स्थापना की जा चुकी है। एक भारतीय औद्योगिक चिकित्सा सर्विस को सुचारु रूप से विकसित करने और चलाने के ऊपर भी विशेष जोर दिया जा रहा है। (देखिये पृष्ठ ३५१ तथा ४६७–५०२)। सयुक्त राज्य अमेरिका के विशेषज्ञो की सहायता से इस बात का पता लगाने के लिये कि श्रमिको मे गर्मी को सहन करने की क्षमता, गर्मी की प्रचण्डता का प्रभाव और वायु मे नमी का उनके स्वास्थ्य तथा उनकी कार्यकुशलता पर क्या प्रभाव पडता है, एक अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन मे उद्योग मे गर्म वातावरण और कार्य से सम्बन्धित विश्राम को निर्धारित करने की बातो को लिया गया है। इस प्रकार का अध्ययन अहमदाबाद की ६ कपडा मिलो मे किया जा रहा है। जून १९५९ से डा० ए० एल मुदालियर की अध्यक्षता मे एक स्वास्थ्य सर्वेक्षण व आयोजना समिति की स्थापना की गई है। इस समिति का कार्य स्वास्थ्य कार्यक्रम व चिकित्सा सुविधाओं का अवलोकन करना तथा सिफारिशें करना है। समिति ने सन् १९६१ मे अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। कारखानो के मुख्य सलाहकार के सगठन द्वारा भी कई उद्योगो मे स्वास्थ्य सम्बन्धी सर्वेक्षण किये गए हैं। अनेक राज्यो मे अब फैक्टरियो के चिकित्सा निरीक्षक भी नियुक्त किये गये हैं।

प्रथम पचवर्षीय आयोजना मे आयोजना आयोग ने इस बात पर विशेष बल दिया था कि औद्योगिक श्रमिको के कार्य करने की दशाये ऐसी होनी चाहिएँ जिनसे श्रमिको के स्वास्थ्य की भी रक्षा हो और व्यवसायजनित सकटो से उनका बचाव भी हो सके। इस आवश्यकता की पूर्ति के निमित्त आयोजना आयोग ने अन्य बातो के साथ-साथ निम्न सिफारिशें की थी (१) औद्योगिक स्वास्थ्य सुरक्षा और कल्याण के लिए एक राष्ट्रीय सग्रहालय की स्थापना, (२) फैक्टरी के निरीक्षण-मण्डल मे पूर्णकालिक चिकित्सा निरीक्षको की नियुक्ति, (३) फैक्टरियों मे वर्तमान डाक्टरो और चिकित्सा-निरीक्षको के लिये औद्योगिक स्वास्थ्य सम्बन्धी छोटे-छोटे शिक्षा पाठयक्रमो की व्यवस्था और (४) व्यवसायजनित बीमारियो, अन्य स्वास्थ्य समस्याओ तथा औद्योगिक प्रक्रियाओ के सम्भाव्य सकटो को आँकने और उनका मूल्यांकन करने के उद्देश्य को दृष्टि मे रखकर सूचना प्राप्त करने के हेतु अनुसधानो और सर्वेक्षणों का आयोजन। आयोजना आयोग ने सम्पूर्ण देश

की स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान्य परिस्थितियों की विवेचना करते हुए बताया कि स्वास्थ्य की दशा अत्यन्त शोचनीय है और स्वास्थ्य उन्नति का सम्पूर्ण कार्यक्रम समाज-सुधार की विस्तृत योजनाओं से सम्बद्ध है। प्रथम आयोजना में स्वास्थ्य कार्यक्रमों पर कुल १४० करोड रु० व्यय किया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना के अनुसार स्वास्थ्य कार्यक्रमों का उद्देश्य यह है कि वर्तमान स्वास्थ्य सेवाओं में विस्तार किया जाय ताकि सभी लोग उन सेवाओं से लाभ उठा सकें और राष्ट्रीय स्वास्थ्य के स्तर में भी प्रशंसनीय सुधार हो। इसके विशिष्ट उद्देश्य निम्नलिखित हैं : (१) हस्पताल आदि जैसी संस्थाओं की स्थापना, (२) तकनीकी श्रम शक्ति का विकास और प्रशिक्षित व्यक्तियों को रोजगार पर लगाना, (३) संक्रामक बीमारियों की रोकथाम के लिये व्यवस्था करना, (४) वातावरण अनुकूल स्वास्थ्य विज्ञान आन्दोलन, और (५) परिवार नियोजन तथा अन्य सम्बन्धित सहायता। द्वितीय आयोजना काल में स्वास्थ्य कार्यक्रमों पर २२५ करोड रुपये व्यय करने की व्यवस्था थी। प्रथम आयोजना में यह राशि १४० करोड रुपये थी।

तीसरी आयोजना में स्वास्थ्य और परिवार नियोजन कार्यक्रमों पर ३४२ करोड रु० की व्यवस्था थी, जिसमें से २६७ करोड़ रु० राज्यों द्वारा और शेष केन्द्र द्वारा व्यय किये जाने थे। किन्तु वास्तविक व्यय २०६ करोड रु० हुआ। इसका मुख्य उद्देश्य स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार करना है और जनता के स्वास्थ्य में धीरे-धीरे सुधार लाना है। निरोधात्मक जन स्वास्थ्य सेवाओं पर विशेष जोर दिया जायेगा। दूसरी आयोजना की तरह तीसरी आयोजना में वातावरण में स्वच्छता, विशेषतः ग्रामीण और शहरी जल-व्यवस्था की उन्नति, संक्रामक रोगों के नियमन, स्वास्थ्य सेवाओं की व्यवस्था के लिए संस्थाओं द्वारा दी जाने वाली सुविधा का संगठन और स्वास्थ्य और चिकित्सा सम्बन्धी कर्मचारियों के प्रशिक्षण और जच्चा-बच्चा के स्वास्थ्य की देखभाल, स्वास्थ्य शिक्षा और पौष्टिक आहार जैसी सेवाओं की व्यवस्था के लिए विशेष कार्यक्रम बनाये गये हैं। तृतीय आयोजना में परिवार नियोजन को भी विशेष प्राथमिकता दी गई है। चौथी आयोजना के मसौदे में स्वास्थ्य कार्यक्रमों पर ४६२ करोड रुपये के व्यय की व्यवस्था है।

सुझाव

सरकार के यह प्रयत्न वास्तव में प्रशंसनीय है। भोर समिति के कथन के अनुसार स्वास्थ्य का अर्थ यह नहीं है कि किसी व्यक्ति को कोई रोग नहीं है या वह बीमार नहीं है वरन् इसका तात्पर्य इस स्थिति से है जिसमें शरीर और मस्तिष्क एक साथ सुचारु रूप से कार्य करते रहें, ताकि मनुष्य अपने भौतिक व सामाजिक जीवन में पूर्ण लाभ और आनन्द उठा सके और उत्पादन क्षमता के अधिकतम बिन्दु तक पहुँच सके। बीमारी की रोकथाम व स्वास्थ्य का बने रहना अधिकतर उस वातावरण पर निर्भर करता है जिसमें मनुष्य पैदा होते हैं, पढ़ते-

लिखते हैं, खाते-पीते हैं, चलते-फिरते हैं, काम करते हैं और आराम करते हैं। इसलिये जब तक जीवन-स्तर मे सुधार नही होता और रहन-सहन की समुचित व्यवस्था नही की जाती, तब तक औद्योगिक श्रमिक के स्वास्थ्य मे सुधार करना सम्भव नही है। अपर्याप्त भोजन और रहने की गन्दी अवस्थायें ही सोचनीय, स्वास्थ्य का मुख्य कारण हैं और सर्वप्रथम इन्ही को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिये। केवल चिकित्सा सुविधाओं मे सुधार करना ही पर्याप्त नही है।

व्यवसायजनित रोग (Occupational Diseases)

जहाँ तक व्यवसायजनित रोगो का सम्बन्ध है, इनका श्रमिको की क्षतिपूर्ति के अन्तर्गत पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। जैसा कि बताया जा चुका है, मालिक व्यवसायजनित रोगो की रिपोर्ट नही देते और अनेक बार, जबकि श्रमिकों को क्षतिपूर्ति मिलनी चाहिए, उन्हें क्षतिपूर्ति नही दी जाती क्योंकि इस बात की उचित रूप से जाँच नही हो पाती कि किसी मृत्यु या असमर्थता का कारण व्यवसायजनित बीमारी ही है। सन् १९४८ के फैक्ट्री अधिनियम के अन्तर्गत फैक्ट्री मे प्रबन्धको के लिये यह बात अनिवार्य कर दी गई है कि यदि उनका कोई कर्मचारी किसी व्यवसायजनित रोग से ग्रस्त हो जाता है तो उसकी सूचना दे। चिकित्सको के लिए भी यह अनिवार्य है कि यदि कोई ऐसा रोगी उनके पास इलाज के लिए आता है तो उसकी सूचना मुख्य निरीक्षक को दें। इस कानूनी व्यवस्था से अब व्यवसायजनित रोगो के सम्बन्ध मे ठीक प्रकार से रिपोर्ट होने लगेगी। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, भारतीय अनुसन्धान निधि परिषद् के औद्योगिक स्वास्थ्य अनुसंधान विभाग ने व्यवसायजनित रोगो के विशेषतया छापाखानो मे सीसे और औद्योगिक गर्द से उत्पन्न हुई विषैली हवा के कारण बीमारियो के सम्बन्ध मे सर्वेक्षण किये हैं। बम्बई मे इस उद्देश्य के लिए एक अनुसंधानशाला की पहले ही स्थापना की जा चुकी है। अखिल भारतीय स्वास्थ्य विज्ञान और सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थान ने भी एक पुस्तक तैयार की है जिसका नाम 'भारत मे व्यावसायिक स्वास्थ्य अनुसंधान सर्वेक्षण' है। इसमे अनेक अन्वेषणों और जाँचो का सारांश दिया गया है। सरकार ने व्यवसायजनित रोगो की सूची को दोहराने और उनमे वृद्धि करने का परामर्श देने के लिए १२ सदस्यो की एक तकनीकी समिति नियुक्त की है। फैक्ट्रियो के प्रधान सलाहकार का कार्यालय कुछ विशिष्ट उद्योगो मे व्यवसायजनित स्वास्थ्य संकट निर्धारित करने के लिए सर्वेक्षण का कार्य करता है। इसके द्वारा दी गई रिपोर्टें भी जारी की गई है। व्यवसायजनित रोग औद्योगिक श्रमिको के गिरे हुए स्वास्थ्य के महत्वपूर्ण कारण है। इनके लिए श्रमिको को पर्याप्त क्षतिपूर्ति मिलनी चाहिये। जो श्रमिक इस प्रकार के रोगो से ग्रस्त हो जाते है, उन्हें नि शुल्क चिकित्सा की सुविधायें देने की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

जहाँ तक शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं और उनके महत्व का सम्बन्ध है,

उनकी कल्याण कार्य के अध्याय (पृष्ठ ४५२–५६) में विवेचना की गई है। औद्योगिक दुर्घटनाओं और उनको रोकने की व्यवस्था का उल्लेख कार्य की दशाओं के अन्तर्गत (पृष्ठ ४९७–५०२) पर किया गया है।

श्रमिक की कार्यकुशलता (Efficiency of Labour) और उसका अर्थ

श्रमिक की कार्यकुशलता से हमारा अभिप्राय कार्य के उस स्तर और कार्य की उस मात्रा से है, जो किसी निर्धारित अवधि में कोई श्रमिक करता है। दूसरे शब्दों में, कार्यकुशलता शब्द का तात्पर्य किसी निर्धारित अवधि में किसी श्रमिक के अधिक और अच्छे कार्य करने की क्षमता से है। इसलिये उत्पादन के किसी भी उपादान की कार्यकुशलता का उत्पादित धन की कुल मात्रा पर बहुत प्रभाव पड़ता है। लेकिन यह बात विशेष ध्यातव्य है कि कार्यकुशलता एक सापेक्ष शब्द है। इसका किसी निश्चित समय में उत्पादन के उपादान द्वारा किये गये कार्य की मात्रा और स्तर से ही तात्पर्य नहीं है, अपितु इसका अर्थ यह भी है कि कार्य लेने वाले को उस उपादान की जो लागत आती है, उसकी तुलना में कितना कार्य होता है। यदि इस शब्द का निरपेक्ष शाब्दिक अर्थ लें तो निर्धारित समय में किसी अन्य श्रमिक की अपेक्षा यदि एक श्रमिक अच्छा और अधिक कार्य करता है तो वह अधिक कार्यकुशल है। लेकिन यदि पहला श्रमिक बहुत अधिक मजदूरी माँगता है, जिसका भुगतान करना मालिक के लिये लाभदायक नहीं है, तो ऐसी परिस्थिति में मालिक के दृष्टिकोण से पहला श्रमिक इतना कार्यकुशल नहीं होगा जितना कि दूसरा श्रमिक, जो कि कम मजदूरी माँगता है। इसलिये निर्पेक्ष दृष्टिकोण से जब हम कार्यकुशलता के विषय में बात करते हैं तो हम कार्य की मात्रा, प्रकृति और गुण और कितने समय में कार्य हुआ, आदि बातें देखते हैं और सापेक्ष दृष्टिकोण से हम यह भी देखते हैं कि श्रमिक द्वारा माँगी गई मजदूरी कितनी है।

श्रमिक की कार्यकुशलता पर प्रभाव डालने वाले तत्व

कार्यकुशलता श्रमिक के स्वास्थ्य और शक्ति तथा उसके प्रशिक्षण पर मूलतः निर्भर होती है। परन्तु श्रमिक के स्वास्थ्य और शक्ति पर प्रभाव डालने वाले बहुत से तत्व होते हैं।

पहला तत्व तो वंशानुगत गुण है। पैतृक प्रभावों की सुगमता से व्याख्या करना सरल नहीं है, परन्तु इनका कार्यकुशलता पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक समाज में कुछ ऐसी जातियां होती हैं, जिनके सदस्य किसी विशेष कार्य को करने में अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक दक्ष होते है। उदाहरणतः पठान श्रमिक उत्तर प्रदेश अथवा बंगाल के श्रमिकों की अपेक्षा अधिक बलवान होते हैं। यह बात उनकी शिक्षा, प्रशिक्षण या अन्य सुविधाओं में किसी प्रकार के अन्तर के कारण नहीं है, अपितु पैतृक गुणों के कारण है। कभी-कभी जुलाहों या बढ़इयों के लड़के ऐसी योग्यता प्राप्त कर लेते है, जो साधारणतया दूसरों में नहीं पायी जाती। दूसरा तत्व जलवायु का है। गर्म और नम जलवायु शारीरिक बल और शक्ति के

विकास के लिए उपयुक्त नही है, जबकि ठण्डी और शुष्क जलवायु का मनुष्य के स्वास्थ्य पर लाभदायक प्रभाव पड़ता है। गर्म देशो की जलवायु का शारीरिक शक्ति पर कोई अच्छा प्रभाव नही पड़ता। साथ ही जहाँ कहीं गर्मी के साथ नमी का सयोग हो जाता है तो वह प्रदेश बहुत अस्वास्थकर हो जाता है। जहाँ तक शारीरिक कार्य-कुशलता पर प्रभाव का सम्बन्ध है, गर्म देश की जलवायु की अपेक्षा समशीतोष्ण (Temperate) जलवायु निश्चित ही अच्छी है। परन्तु केवल जलवायु का ही श्रमिक की कार्यकुशलता पर प्रभाव नही पड़ता, कुछ अन्य बातें भी हैं, जिनसे जलवायु के अप्रिय प्रभाव दूर हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक विधि के द्वारा भी जलवायु के प्रभाव को दूर किया जा सकता है।

एक और महत्वपूर्ण तत्व, जिसका कार्यकुशलता पर प्रभाव पड़ता है, **जीवन-स्तर** है। पर्याप्त तथा पौष्टिक भोजन, अच्छे आवासो की व्यवस्था, पर्याप्त वस्त्र, आराम और विलासिता की वस्तुयें आदि भी व्यक्ति के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव डालती हैं और इनसे उसकी कार्यकुशलता मे भी वृद्धि हो जाती है। किसी मनुष्य को यदि ये वस्तुयें प्राप्त नही है तो वह काम मे अपना मन नहीं लगा पाता और उसके काम करते रहने की क्षमता का ह्रास हो जाता है। एक और तत्व जिसका कार्य-कुशलता पर प्रभाव पड़ता है, वह श्रमिको की **मजदूरी** है। मजदूरी का केवल रहन-सहन के स्तर पर ही प्रभाव नहीं पड़ता, बल्कि इसकी श्रमिक के अधिक या कम काम करने की योग्यता पर भी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया होती है। अच्छी मजदूरी पाने वाला श्रमिक सामान्यतया अपने जीवन से सन्तुष्ट होता है और इसीलिए वह मन लगाकर भली-भांति कार्य करता है, विशेषकर उस दशा मे जबकि उसे शीघ्र और नियमित रूप से मजदूरी मिलती है। सापेक्ष दृष्टिकोण से भी मालिक के लिये श्रमिक की कार्य-कुशलता उसकी मजदूरी पर भी निर्भर करती है।

इसके अतिरिक्त, सामान्य और तकनीकी, दोनो प्रकार की **शिक्षाओं** का भी कार्यकुशलता पर प्रभाव पड़ता है। शिक्षा के बिना न तो मनुष्य निखर पाता है और न अपने वातावरण के प्रति उसमे रुचि उत्पन्न हो पाती है। इस बात मे तनिक भी सदेह नही है कि शिक्षित श्रमिक अपेक्षाकृत अधिक बुद्धिमान होता है और अपने उत्तरदायित्व को अशिक्षित श्रमिको की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह समझता है। तकनीकी प्रशिक्षण पाये हुये कर्मचारी निश्चय ही अधिक कार्यकुशल होते हैं। **काम करने की दशाओं** का भी कार्यकुशलता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। प्रकाश की समुचित व्यवस्था, सवातन, स्वच्छता, भवन की कलात्मक आकृति, शात और सुन्दर वातावरण आदि का भी मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है और अच्छे वातावरण में ही मनुष्य दत्तचित होकर अपने काम मे मन लगाकर उत्पादन मे वृद्धि कर सकता है। कार्यकुशलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि **काम के घन्टे** कितने हैं। यदि कार्य के घन्टे लम्बे हों और अल्प विराम या विश्राम या मनोरजन के समय की व्यवस्था न हो तो कार्य-कुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

यदि कार्य दिवस कम समय का नियत किया जाता है और कार्य समय में बीच-बीच में अल्प विराम दे दिये जाते है तो श्रमिक अपने कार्य को और अच्छी प्रकार कर सकता है।

पारिवारिक जीवन का भी श्रमिक की कार्यकुशलता पर बडा प्रभाव पडता है। घर के जिस वातावरण मे व्यक्ति का पालन-पोषण होता है, और जिस पारिवारिक जीवन को व्यक्ति को अपनाना पडता है, उसका श्रमिक पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव होता है। इसका कारण यह है कि घर में ही व्यक्ति को शान्ति मिलती है और वह अधिक अच्छा कार्य करने के लिये अपनी शक्तियों को पुन. अर्जित कर लेता है। बच्चे पर माता का भी अधिक प्रभाव होता है। इसके अतिरिक्त थोड़े या अधिक दिनो के लिए सैर सपाटे भी व्यक्ति के दृष्टिकोण को विस्तृत कर देते है और उसकी कार्यकुशलता अपेक्षाकृत बढ़ जाती है। जीवन के प्रति व्यक्ति के सामान्य दृष्टिकोण को भी कार्य की मात्रा पर बड़ी प्रभावशाली प्रतिक्रिया होती है। कुछ लोग आरम्भ से ही भाग्यवादी होते है। वे यह समझते है कि उनके कारण कुछ नही होता। जो कुछ होता है, सब भाग्य से ही होता है। वे अपने प्रयत्नों से अपनी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने की स्वयं कभी चेष्टा नही करते। इस प्रकार के दृष्टिकोण से व्यक्ति मे उन्नति करने की भावना कभी उत्पन्न नही हो पाती। धर्म को गलत प्रकार से समझने का भी इस प्रवृत्ति से घनिष्ट सम्बन्ध है। लेकिन सामाजिक और राजनैतिक तत्व भी जीवन के प्रति इस उदासीनता के लिए उत्तरदायी है। उदाहरण के लिए, देश की जातीयता, सामाजिक मर्यादायें और राजनैतिक दासता आदि भी बहुत समय तक भारत मे अधिकांश लोगो के दृष्टिकोण को विस्तृत करने के अनुकूल नही थी।

इसके अतिरिक्त किसी व्यक्ति की कार्यकुशलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि उस व्यक्ति की कार्य करने में रुचि या इच्छा है या नही अथवा वह जीवन मे तथा रोजगार में उन्नति करने की आशा कर सकता है या नही तथा उसे स्वतन्त्र रूप से कार्य करने में कोई बाधा तो नही है। स्वतन्त्र व्यक्ति की तुलना मे परतन्त्र व्यक्ति कभी अधिक कार्यकुशल नही हो सकता। इसके अतिरिक्त श्रमिक का चरित्र, ईमानदारी, नियमितता, आत्मविश्वास, आत्मसम्मान, कठिन परिश्रम की आदत तथा अन्य नैतिक गुणों से भी कार्यकुशलता मे वृद्धि होती है। हीन बुद्धि वाले श्रमिक की अपेक्षा बुद्धिमान श्रमिक कही अधिक कार्यकुशल होता है। एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व जिसका श्रमिक की कार्यकुशलता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है, उद्योग का संगठन और उसके कार्य की सामग्री है। किसी श्रमिक को उसी काम पर लगाना चाहिये, जिसके लिये वह उपयुक्त है। इसके साथ ही साथ उसे काम के लिए सही प्रकार की मशीन और उपकरण दिये जाने चाहियें। एक कम बुद्धिमान उद्यमकर्त्ता, जो पुरानी मशीन और रद्दी सामान का प्रयोग करता है, कभी उत्तम श्रेणी का उत्पादन नहीं कर सकता। इस प्रकार श्रमिक की कार्यकुशलता प्रबन्धक की योग्यता और बुद्धि तथा कार्याध्ययन और मशीन व्यवस्था की आधुनिक

तकनीकी पद्धति अपनाने पर भी निर्भर होती है। मजदूरी वितरित करने की प्रणाली, जैसे परिमाण के अनुसार मजदूरी देने की विधि, मे भी कार्यकुशलता मे वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त श्रमिक सगठन से भी श्रमिको की कार्यकुशलता मे उन्नति होती है। जब श्रमिक उचित रूप से श्रमिक सघ मे सगठित होता है, तब उसे अधिक आत्मविश्वास हो जाता है और उसमे अधिक काम करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। कल्याण कार्य भी आमोद-प्रमोद और मनोरजन की व्यवस्था करके श्रमिको की कार्यकुशलता पर बडा प्रभाव डालते हैं, जिससे वे अपनी शक्तियाँ पुन अर्जित कर लेते हैं।

इस प्रकार श्रमिक की कार्यकुशलता अनेक परिस्थितियो पर निर्भर होती है और यह कहना बडा ही कठिन है कि किसी एक देश के श्रमिक किसी अन्य देश के श्रमिको की तुलना मे अधिक कार्यकुशल हैं या नही। किसी सामान्य निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले हमे इन सभी तत्वो को ध्यान मे रखना चाहिए।

कार्यकुशल श्रमिको के लाभ

यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि किसी देश की कार्यकुशल श्रम-शक्ति उस देश के लिये बहुत बडा वरदान होती है, और देश के आर्थिक जीवन मे उन्नति करने के लिये और देश के आर्थिक विकास के लिये भी यह एक शक्तिशाली उपकरण है। कार्यकुशल श्रमिको के लिये अधिक पर्यवेक्षण की आवश्यकता नही होती। न तो वे अधिक सामग्री नष्ट करते हैं और न ही मशीनो को कोई हानि पहुँचाते हैं। वे अपना काम बडी चतुरता से करते हैं और उनके कार्य स दक्षता और उत्तरदायित्व का बोध होता है। इस प्रकार वे उद्योग म स्वदेशानुरागी रुचि लेने म समर्थ हो जाते हैं। जब चारो ओर मैत्रीपूर्ण सहयोग का वातावरण होता है तो देश के उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि हो जाती है।

भारतीय श्रमिको की कार्यकुशलता

भारतीय श्रमिक अन्य देशो के श्रमिको की अपेक्षा साधारणत कम कार्यकुशल समझा जाता है। यदि इस बात से हम यह अर्थ लें कि यारोपियन श्रमिक भारतीय श्रमिक से किसी निर्धारित समय मे अधिक उत्पादन करने मे समर्थ होता है तो इस प्रकार के वक्तव्य का विरोध करना सम्भव नही है। टैरिफ बोर्ड ने सन् १९२७ मे यह कहा था कि भारत मे प्रत्येक श्रमिक केवल १८० तकुओ की देखभाल करता था, जबकि यह सख्या जापान मे २४०, इगलैण्ड मे ५४० से ६०० तक और अमेरिका मे १,१२० थी। एक बुनकर जितने करघो पर काम करता है, उन करघो की सख्या औसत रूप से जापान मे २ ५, इगलैण्ड मे ६ तक और सयुक्तराज्य मे ९ थी, जबकि भारत मे यही सख्या साधारणतया लगभग २ थी। कानपुर श्रम जाँच समिति न भी कहा था कि जापान मे प्रत्येक एक हजार तकुओ के लिये ६·१ श्रमिक हैं जबकि भारत मे १५ हैं। इसका तात्पर्य यह है कि भारत मे एक श्रमिक कताई के चरखे के एक ओर ही ध्यान देता है जबकि जापान मे एक लडकी श्रमिक

तीनों ओर ध्यान देती है। जापान में एक लड़की बुनकर ६ करघों की देखभाल करती है, जबकि हमारे यहाँ का बुनकर लगभग दो करघों की ही देखभाल करता है। सर अलेक्जेन्डर मैकराबर्ट ने औद्योगिक आयोग के समक्ष यह कहा था कि अंग्रेज श्रमिक भारतीय श्रमिक की अपेक्षा ३·५ या चार गुना अधिक कार्यकुशल है। सर क्लेमेन्ट सिम्पसन की गणना के अनुसार, भारतीय कपास की कताई व बुनाई मिल के १·६७ श्रमिक लंकाशायर की मिल के एक श्रमिक के समान है। (पृष्ठ ५२८–२६ भी देखिये)।

परन्तु इस प्रकार के विवरण से यह स्पष्ट नहीं हो सकता कि भारतीय श्रमिकों में कोई सहज स्वाभाविक हीनता है। भारत में प्रत्येक मशीन पर अधिक श्रमिक इसलिये लगाये जाते हैं कि श्रमिक सस्ते हैं और मशीने मंहगी हैं। इंगलैण्ड में मजदूरी अपेक्षाकृत अधिक है और इसलिये श्रम की बचत करना आवश्यक हो जाता है। भारत में प्रत्येक श्रमिक द्वारा कम उत्पादन होने के कारण केवल श्रमिकों की कम कार्यकुशलता पर ही पूर्णतया आधारित नहीं किया जा सकता। प्रबन्ध की अकुशलता, कच्चे माल की घटिया किस्म, अच्छी मशीनों का अभाव और उत्पादन क्रिया में आधुनिक तकनीक को न अपनाने के कारण ही उत्पादन कम होता है। इसके अतिरिक्त भारत में काम करने के घण्टे अधिक और मजदूरी कम है; साथ ही रहन-सहन की दशायें भी शोचनीय है। अतः विभिन्न देशों के श्रमिकों की कार्यकुशलता की तुलना करते समय हम भारतीय श्रमिकों की अकुशलता के सम्बन्ध में बिना सोचे-समझे कोई निर्णय नहीं दे सकते।

लेकिन वर्तमान समय में जो परिस्थितियाँ हैं, उनसे यह विदित होता है कि भारतीय श्रमिक इतना कार्यकुशल नहीं है, जितना उसे होना चाहिये। बहुत से ऐसे कारण है जिन्होंने हमारे श्रमिकों को अकुशल बना दिया है और इन्हीं कारणों के प्रकाश में हमें यह देखना है कि श्रमिकों की अकुशलता वास्तविक है या मालिकों द्वारा बढ़ा-चढ़ा कर कही जाती है, क्योंकि मालिक अकुशलता की दुहाई देकर मजदूरी कम देने का एक बहाना बना लेते हैं।

भारतीय श्रमिक की अकुशलता के कारण

प्रथम तो हमारे देश की जलवायु कुशल-कार्य के अनुकूल नहीं है। भारतीय जलवायु गर्म है और कठोर तथा सुस्थिर कार्य करने के लिए इसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता, विशेषतया गर्मी की ऋतु में घण्टों बैठकर निरन्तर काम करना सम्भव नहीं हो पाता। लेकिन जैसा कि संकेत किया जा चुका है, कारखानों में तापक्रम को नियन्त्रित करके जलवायु की परिस्थितियों पर नियन्त्रण हो सकता है और कठोर परिश्रम के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण किया जा सकता है। 'कार्य की दशाओं' के अन्तर्गत यह उल्लेख किया गया है कि मालिक तापमान पर नियन्त्रण रखने की ओर बहुत ही कम ध्यान देते हैं। इसलिये कठोर और निरन्तर

कार्य श्रमिक के लिये बडा कठिन हो जाता है और वह अपनी थकान मिटाने के लिये कुछ न कुछ समय अवश्य नष्ट करता है।

इसके अतिरिक्त, जैसा कि शिक्षात्मक सुविधाओ के अन्तर्गत उल्लेख किया जा चुका है भारतीय श्रमिक मे अशिक्षितता अधिक पाई जाती है। इसके अतिरिक्त उसे मशीनो का दक्षतापूर्वक सचालन करने के लिये समुचित प्रशिक्षण भी नही दिया जाता। रॉयल श्रम आयोग और मिस्टर हैराल्ड बटलर ने इस विषय मे अपने विचार जोरदार शब्दो मे व्यक्त किये हैं (देखिये पृष्ठ ३५३)। काम मे उचित प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिये श्रमिको को न तो स्वय और न ही सस्थानो मे सुअवसर प्राप्त हो पाते है। इसलिये यह कहना नितान्त अनुचित है कि औसत भारतीय श्रमिक ब्रिटेन के औसत श्रमिक की अपेक्षा कम बुद्धिमान है। वास्तविकता यह है कि श्रमिक की मानसिक शक्तियाँ प्रशिक्षण के अभाव मे विकसित नही हो पाती है।

कम मजदूरी और निम्न कोटि का जीवन-स्तर सम्भवतया भारतीय श्रमिको की कार्य-अकुशलता का सबसे महत्वपूर्ण कारण है। श्रमिको को मजदूरी इतनी कम मिलती है कि यह आशा नही की जा सकती कि श्रमिक कुछ प्रगति कर सकेंगे या अपने जीवन-स्तर को ऊँचा उठा सकेंगे। श्रमिको को अस्वास्थ्यकर असन्तुलित भोजन तथा पहनने के लिए फटे-पुराने अपर्याप्त कपडे ही मिल पाते है और जिन मकानो मे वे रहते है उनकी भी दशा अत्यन्त शोचनीय होती है। इन सबका पिछले पृष्ठो मे विस्तृत वर्णन किया जा चुका है। निम्न कोटि के जीवन-स्तर के कारण श्रमिको की आदते बिगड जाती है और उनके रहने का वातावरण भी दूषित हो जाता है। परिणामस्वरूप वे अनेक बीमारियो के शिकार हो जाते है और उनकी कार्य-शक्ति तथा कार्यकुशलता का ह्रास हो जाता है। इसके अतिरिक्त काम करने की परिस्थितियाँ भी अत्यन्त विषम है तथा कारखाना का वातावरण भी सन्तोषजनक नही होता। ऐसी अस्वस्थ परिस्थितियो के होते हुये हम यह कैसे आशा कर सकते है कि श्रमिक अपना कार्य परिश्रम से तथा मन लगाकर करेंगे।

श्रमिको की **प्रवासिता** भी उनकी कार्यकुशलता पर प्रभाव डालती है। प्रवासिता के कारण न केवल उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है वरन् उन्हे शहरी जीवन मे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडता है। इसके अतिरिक्त श्रमिक की मदिरा पान की आदत भी उसकी कार्य-अकुशलता के लिए उत्तरदायी है। परन्तु इस विषय मे साधारणतया यही कहा जाता है कि श्रमिक अपने कठोर परिश्रम की क्लान्ति को मिटाने के लिये ही मदिरा का सहारा लेता है और शराब पीकर वह अपने जीवन की कटुताओ को भूलने का प्रयत्न करता है। जब श्रमिको के लिए अच्छी सुख-सुविधाए उपलब्ध नही है और उन्हे उचित शिक्षा देने की भी व्यवस्था नही है तब यह कोई आश्चर्य की बात नही है कि उनमे मद्यपान तथा वेश्यागमन जैसी बुरी आदते पड जाती हैं जिनसे उनके स्वास्थ्य और कार्यकुशलता

पर बुरा प्रभाव पड़ता है। श्रमिकों की ऋणग्रस्तता भी उनकी कार्यअकुशलता के लिये कुछ सीमा तक उत्तरदायी है।

कार्यअकुशलता का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण कारखानों में अच्छी व्यवस्था का अभाव है। अधिकतर प्रबन्ध दोषपूर्ण और अनुभव-शून्य होता है। न तो मशीनें अच्छी होती है और न ही काम करने के लिये श्रमिकों को अच्छा सामान दिया जाता है। अतः यह स्वाभाविक है कि पुरानी व अप्रचलित मशीनों और घटिया प्रकार के कच्चे माल के कारण श्रमिक अधिक उत्पादन नहीं कर पाता। निरीक्षण कर्मचारी वर्ग को इसका प्रशिक्षण नहीं दिया जाता कि वे श्रमिकों का उचित प्रकार से निर्देशन कर सकें। उत्पादकता बढ़ाने के लिए आधुनिक तकनीक को भी नहीं अपनाया जाता।

क्या भारतीय श्रमिक वास्तव में कार्य-अकुशल है ?

जैसा कि पिछले पृष्ठों मे उल्लेख किया जा चुका है श्रमिक की रहन-सहन और कार्य करने की शोचनीय दशाएँ ही उनकी कार्य-अकुशलता का प्रमुख कारण हैं। यदि आज का भारतीय श्रमिक इतना अधिक कार्यकुशल नहीं है जितना कि ससार के अन्य उन्नत देशों के श्रमिक हैं तो इसका कारण यह नहीं ह कि भारतीय श्रमिक में अधिक कार्यकुशल होने की क्षमता का अभाव है। यदि श्रमिक की शोचनीय दशाओं को देखा जाये तो उस पर यह दोष नहीं लगाया जा सकता कि वह अपने कार्य में रुचि नहीं लेता। श्रमिक बेचारा अपने परिवार और घरेलू वातावरण से दूर होता है तथा घनी और गन्दी बस्तियों मे उसे रहना पड़ता है। उसको कार्य भी अधिक घण्टों तक घुटन और धुएँ से भरे वातावरण में करना पड़ता है। उसे उचित प्रकार से निर्वाह करने के लिए पर्याप्त मजदूरी भी नहीं मिलती। महाजनों और मध्यस्थों द्वारा उचित एव अनुचित, हर प्रकार से श्रमिकों से रुपया वसूल किया जाता है। ऐसी परिस्थितियों में यह कठिन है कि श्रमिक कुशलतापूर्वक कार्य कर सके। यदि हमारे देश में भी वे सब परिस्थितियाँ आ जायें जिनसे श्रमिक की कार्यकुशलता बढ़ती है और जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है तो भारतीय श्रमिक भी थोड़े ही समय मे आश्चर्यजनक रूप से उन्नति कर लेगा। भारतीय श्रमिक की यह विशेषता है कि वह कठिन और असाध्य (Trying) परिस्थितियों मे भी कुशलतापूर्वक कार्य कर लेता है और परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल अपने आपको बड़ी शीघ्रता से ढाल लेता है।

श्रम अनुसधान समिति के शब्दों मे : "हमें जो भी प्रकाशित प्रमाण मिले है और अपनी जाँच-पड़ताल की अवधि मे जो भी सूचनायें एकत्रित कर सके है उन से यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय श्रमिक की तथाकथित कार्यकुशलता एक कोरी कल्पना है। यदि हम अपने श्रमिकों को वैसी ही कार्य करने की दशायें, मजदूरी, उचित व्यवस्था, मशीनें और यन्त्र आदि प्रदान करें जो दूसरे देशों में श्रमिकों को मिलते हैं तो भारतीय श्रमिकों की कार्यकुशलता भी अन्य देशों के

और कल्याण सम्बन्धी सुविधाओं का स्तर बहुत निम्न है तथा अन्य देशों की अपेक्षा मजदूरी भी बहुत कम है तो श्रमिकों की तथाकथित कार्य अकुशलता का कारण यह नही हो सकता कि हमारे देश के लोगों की बुद्धिमत्ता में कुछ कमी है या हमारे श्रमिको में कार्य करने की रुचि नही है।" श्रमिकों की कार्य अकुशलता का कारण वैज्ञानिक प्रबन्ध का अभाव, व्यवसाय मे उच्चतम नैतिक स्तरो का अभाव, वातावरण मे गर्मी और नमी तथा श्रमिको की निर्धनता आदि कुछ ऐसी परिस्थितियाँ है जिनके लिये श्रमिकों को उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता। इसलिये श्रमिको के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये, उनके काम करने और रहने की अच्छी दशाये उपलब्ध करने के लिये तथा उनको उचित प्रशिक्षण की सुविधाये देने के लिये यदि निरन्तर प्रयत्न किये जाये तो वह दिन दूर नही जब भारतीय श्रमिक, यदि अधिक नही तो अन्य देशों के श्रमिकों के समान ही, कार्यकुशल हो जायेगा। इन विषयों मे यदि उनके लिये सरकार द्वारा आवश्यक पग उठाये जाये तो भारतीय श्रमिक बहुत शीघ्र अपने में सुधार कर लेगा क्योकि उसमे सीखने और उन्नति करने की बहुत क्षमता है। भारतीय श्रमिक में मूलत. कोई कमी नही है और कोई कारण नही है कि भारत के निवासी इस सम्बन्ध मे किसी प्रकार की हीनता का अनुभव करें।

गत वर्षों मे कार्य-अकुशलता की शिकायतों के कारण

गत कुछ वर्षों से श्रमिको की कार्यकुशलता मे कमी हो जाने की शिकायतें सुनने मे आती है। यह कहा जाता है कि अब श्रमिक अपने अधिकारो के प्रति तो बहुत सजग हो गया है और अधिक से अधिक मजदूरी माँगने लगा है, परन्तु वह अपने कर्तव्यो को भूल गया है और काम करने में रुचि नही लेता है। सन् १६४६ मे टाटा लोहा और इस्पात की कम्पनी के अध्यक्ष ने वार्षिक उत्सव के अवसर पर यह कहा था कि इस्पात का औसत उत्पादन सन् १६३६-४० में प्रति कर्मचारी २४·३६ टन था जो सन् १६४८-४६ मे गिर कर १६·३० टन रह गया। उन्होने इस बात की भी शिकायत की कि कुछ विभागों मे श्रमिक अधिकतर अपनी वास्तविक क्षमता से आधा या एक तिहाई काम कर रहे थे। श्रमिक ऐसा क्यों करते है। इसका कारण ढूँढने के लिये हमे दूर नही जाना पड़ेगा। देश की परिवर्तित राजनैतिक परिस्थितियाँ, श्रम आन्दोलन की बढ़ती हुई शक्ति, निर्वाह खर्च मे वृद्धि, कुछ राजनैतिक दलों का अनुचित प्रचार, आदि सभी बातो ने मिलकर श्रमिकों में असन्तोष की भावना उत्पन्न कर दी है और वे अपनी परिस्थितियो मे तत्काल सुधार की माँग करने लगे है। प्रबन्ध मे जो परम्परागत प्रणालियाँ चली आ रही हैं, उनसे भी वह सन्तुष्ट नही है और कठोर अनुशासन की वह अवहेलना करने लगे है। विवेकीकरण और कार्य तीव्रता की योजनाओ ने भी श्रमिकों में बेरोजगारी का भय उत्पन्न कर दिया है और उनमे यह धारणा उत्पन्न हो गई है कि यदि वह अधिक कार्य करेंगे तो उनमें से कुछ श्रमिकों की छटनी हो जायेगी।

इसलिये अधिक कार्य करके रोजगार को कम करने की अपेक्षा वे अपने सहयोगियों के साथ मिल बांट कर कार्य करना चाहते हैं। अतः मजदूरी के ढांचे में किसी प्रकार का परिवर्तन न होने के कारण और कार्य करने के तथा रहने की दशाओं में किसी उल्लेखनीय सुधार के अभाव में श्रमिक पहले की अपेक्षा आज अधिक असन्तुष्ट है।

उत्पादकता (Productivity)

भारत में श्रमिकों की उत्पादकता बढ़ाने का बहुत महत्व है, विशेषकर जब देश में आर्थिक विकास के लिये पंचवर्षीय आयोजनायें चालू की गई हैं। श्री गुलजारी लाल नन्दा का कथन है "उत्पादकता प्रगति का लगभग पर्यायवाची है। हमारे लिये इसका अर्थ केवल प्रगति ही नहीं वरन् जीवन है।' संसार की वर्तमान प्रतियोगी अर्थ-व्यवस्था को देखते हुये यह बहुत आवश्यक है कि हम अपने देश के माल को अधिक अच्छे प्रकार का बनायें, उत्पादन लागत को कम करें और कीमतों को घटायें। इस प्रकार ही हम विश्व बाजार में अपने देश के माल के लिये स्थान बना सकते हैं तथा अपने देश के भीतर भी बाजार को विस्तृत कर सकते हैं यदि हम विश्व बाजार में सफलतापूर्वक स्पर्धा करना चाहते हैं तो श्रमिकों की उत्पादकता बढ़ाने की ओर पग उठाना आवश्यक है। अधिक उत्पादकता से जो लाभ होंगे वे सभी वर्गों को उपलब्ध होंगे। बाजारों के विस्तृत होने से उत्पादन लाभ भी बढ़ेगा और उद्योग को भी फायदा पहुँचेगा। उत्पादन लागत घटने से मूल्यों में कमी हो जायगी अधिक अच्छे प्रकार का माल तैयार होगा और उपभोक्ताओं को भी लाभ होगा। अधिक उत्पादकता के कारण श्रमिकों को भी अधिक मजदूरी मिलेगी और उनका जीवन स्तर ऊँचा हो जायगा। उद्योग की उत्पादकता ही वह स्रोत है जिसमें से ऊँची मजदूरी का भुगतान किया जाता है। किसी प्रकार क किसी भी ओर से कोई भी दबाव उद्योग की भुगतान क्षमता से अधिक मजदूरी दिलाने में समर्थ नहीं हो सकता क्योंकि यदि ऐसा किया जायगा तो बेरोजगारी व मुद्रा-प्रसार जैसी दुखदायी स्थितियों का सामना करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त उत्पादकता बढ़ने से देश के प्रत्येक प्राकृतिक साधन से अधिक उत्पादन उपलब्ध होगा, कुल उत्पादन बढ़ जायेगा, और परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी निवेश भी अधिक होगा, रोजगार अधिक मिलेगा तथा जीवन स्तर भी ऊँचा हो जायेगा। उत्पादकता बढ़ाने का उद्देश्य यह है कि प्राप्य (Available) साधनों द्वारा अधिकतम उत्पादन हो और किसी भी प्रकार की सामाजिक या आर्थिक विपत्ति (Distress) का सामना न करना पड़े। ऐसे उचित वातावरण बनाने के लिये जिसमें मालिक व मजदूरों के सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण हो तथा श्रमिकों की कार्यकुशलता अधिक हो और उनका जीवन-स्तर ऊँचा हो उत्पादकता आन्दोलन की ओर अच्छे प्रकार से ध्यान देना चाहिये तथा उसे प्रोत्साहन मिलना चाहिये।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि अधिक उत्पादकता से अधि

उत्पादन होता है तथापि इसका अर्थ यह नही है कि यदि उत्पादन में वृद्धि होती है तो आवश्यक रूप से उत्पादकता मे भी वृद्धि होती है। हम उत्पादन मे दो प्रकार से वृद्धि कर सकते है—प्रथम तो अधिक साधन और उपादानो को लगाकर उत्पादन बढाया जा सकता है और द्वितीय, उत्पादन में वृद्धि, प्रति श्रमिक, प्रति घण्टे, प्रति दिन या प्रति वर्ष उत्पादन बढाकर की जा सकती है। उत्पादकता में वृद्धि का अर्थ द्वितीय प्रकार की वृद्धि से लिया जाता है। किसी भी संस्था मे एक ही समान मात्रा और विशिष्ट गुण वाला उत्पादन एक निश्चित समय मे यदि १० व्यक्तियों द्वारा किया जाता है और दूसरी संस्था मे उसी समान मात्रा और गुण वाला उत्पादन उतने ही समय मे १५ व्यक्तियों द्वारा किया जाता है तो 'उत्पादन' तो बराबर होगा परन्तु पहली सस्था में 'उत्पादकता' अधिक होगी।

श्रम उत्पादकता की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि श्रम श्रम-समय के अनुपात में प्रत्येक इकाई मे जितना निपज (Output) होता है उसे श्रम उत्पादकता कहते है। श्रम ब्यूरो द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसार श्रम उत्पादकता का अर्थ भौतिक उत्पादन या निपज के उस अनुपात से है जो उद्योग मे श्रम निवेश (Input) की मात्रा से प्राप्त होता है। परन्तु यह एक बहुत विस्तृत परिभाषा है। श्रम के निपज और उद्योग में श्रम के निवेष की मात्रा को किस प्रकार मापा जाता है, उसके अनुसार इसके कई अर्थ हो सकते है। इस प्रकार से श्रम उत्पादकता श्रम की आन्तरिक कार्यक्षमता से हुये परिवर्तनो को स्पष्ट नही करती वरन् उस परिवर्तनशील प्रभाव को प्रदर्शित करती है जिसमे श्रम का अन्य साधनों के साथ प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार श्रम उत्पादकता पर अनेक बातो का प्रभाव पडता है। परन्तु इससे बडी सख्या मे अलग-अलग, परन्तु फिर भी एक दूसरे से आपस मे सम्बन्धित साधनो का सम्मिलित प्रभाव होना प्रकट होता है; उदाहरणत तकनीकी सुधार, उत्पादन की गति, उत्पादन की विभिन्न प्रक्रियाओं में प्राप्त की गई कार्यक्षमता की मात्रा, सामग्री की उपलब्धि, माल आदि के प्राप्त होने की गति, मालिक-मजदूर सम्बन्ध, श्रमिकों की कुशलता और उनके प्रयत्न, प्रबन्ध की कार्यक्षमता, आदि-आदि। उत्पादन के सभी उपादानो की उत्पादक कार्यक्षमता मे परिवर्तन और उपादानो की स्थानापत्ति के कारण वास्तविक श्रम लागत से जो बचत प्राप्त होती है अथवा उससे जो अधिव्यय होता है, उससे श्रम उत्पादकता के परिवर्तनो का पता लग सकता है। भौतिक निपज से सम्बन्धित प्रश्नों के अध्ययन के लिये श्रम निवेश को ही उपयुक्त समझा गया है क्योकि श्रम निवेश अन्य उपादानो के निवेश की अपेक्षा सरलता से मापा जा सकता है। इसके अतिरिक्त श्रम निवेश मे एक ऐसी समानता होती है जो तमाम उद्योगो, प्रक्रियाओ और मशीनो मे पाई जाती है। लेकिन यदि आवश्यक हो तो किसी भी उपादान की उत्पादकता का अध्ययन करने के लिये उस उपादान की एक इकाई की उत्पत्ति को लिया जा सकता है।

ब्यूरो ने जो भी अध्ययन किया है उसमे श्रम निपज ग्रौर श्रम निवेश को दो अर्थों मे लिया है। निपज के जो दो अर्थ लिये हैं वह हैं स्थिर मूल्यो पर 'कुल (Gross) निपज' और 'निबल (Net) निपज'। कुल निपज उद्योग की अन्तिम निपज को बताती है। विनिर्माण प्रक्रियाओं द्वारा जो निवेश की हुई सामग्री मे मूल्य उत्पन्न हो जाता है निबल निपज उस ओर सकेत करती है। कुल निपज मे साधारणतया सामग्री की लागत का अधिक समानुपात होता है। इस कारण श्रम निवेश मे परिवर्तन होने से इस पर कम प्रभाव पडता है। परन्तु क्योकि निवल निपज, जो भी सामग्री का प्रयोग किया जाता है और जो मूल्य ह्रास होता है उसे कुल लागत मे से घटा कर आती है, इस कारण श्रम निवेश के परिवर्तनो का इस पर अधिक प्रभाव पडता है। श्रम निवेश को श्रम वर्षों और श्रम घन्टो मे मापा जाता है। इन अर्थो के आधार पर श्रम उत्पादकता को चार प्रकार से मापा जा सकता है—

(क) प्रति श्रमिक कुल निपज $= \dfrac{\text{कुल निपज}}{\text{रोजगार पर लगे श्रमिक}}$

(ख) प्रति श्रम घंटे कुल निपज $= \dfrac{\text{कुल निपज}}{\text{जितने श्रम घंटे काम हुआ}}$

(ग) प्रति श्रमिक निबल निपज $= \dfrac{\text{निबल निपज}}{\text{रोजगार पर लगे श्रमिक}}$

(घ) प्रति श्रम घण्टे निवल निपज $= \dfrac{\text{निबल निपज}}{\text{जितने श्रम घण्टे काम हुआ}}$

जिस किसी विशेष उद्देश्य के लिए उत्पादकता सूचकाक की आवश्यकता होती है उसी दृष्टि से इन चारो प्रकार के सूचकाको का अलग-अलग प्रयोग हो सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के प्रकाशन के अनुसार [विनिर्माण उद्योगो मे अधिक उत्पादकता (Higher Productivity in Manufacturing Industries)] ऐसे तत्वो को, जिनका उत्पादकता पर प्रभाव पडता है, तीन मुख्य श्रेणियो मे बाँटा जा सकता है (१) मशीन, यन्त्र व सामग्री, (२) सगठन और उत्पादन पर नियन्त्रण, (३) कार्मिक नीति (Personnel Policy)। प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें आती हैं प्रत्येक श्रमिक के लिये अधिक पूँजी देना, उत्पादन की पद्धति ऐसी लागू करना जिसमे अधिक पूँजी हो, माल और सामग्री का अधिक उचित प्रकार से उठाना, धरना और प्रयोग करना, कम लागत वाले सामान, उदाहरणत शक्ति द्वारा चालू औजारो आदि का प्रयोग करना, मशीनो की भली-भाति देखभाल करना और मशीनो को अच्छे ढग से लगाना। सगठन और उत्पादन के नियन्त्रण के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें आती है अधिक अच्छा प्रबन्ध व प्रशासन, उत्पादन आयोजन तथा नियन्त्रण, लागत और बजट नियन्त्रण, सरल विधि, समानीकरण तथा विशिष्टीकरण, कम लागत वाले डिजाइन, कार्यविधि

अध्ययन, कार्य का मापदण्ड, मूल्य नीति तथा बिक्रीकारी। कार्मिक नीति मे निम्नलिखित बातें आती है : श्रमिक प्रबन्धक सहयोग, विवेकपूर्ण रोजगार नीति, उचित प्रकार से श्रमिकों का चुनाव और उन्हें कार्य पर लगाना, विभिन्न स्तरों पर व्यवसाय सम्बन्धी प्रशिक्षण, आगमिक (Inductive) पाठ्य-क्रम, पदोन्नति तथा स्तर-उन्नति, कुशल पर्यवेक्षण, कार्य सन्तुष्टि, निपुण श्रमिकों को कार्य पर लगाना, विवेकपूर्ण मजदूरी नीति, उचित पारियाँ तथा उचित कार्य के घण्टे, कार्य की दशाओं और कल्याण सुविधाओं में उन्नति, उद्योग मे स्वास्थ्य और सुरक्षा नीति तथा अनुपस्थिति और श्रमिकावर्त में कमी।

इगलेंड की 'इम्पीरियल केमीकल इन्डस्ट्रीज' के श्री रसल क्यूरी (Mr. Russel Currie) ने उत्पादकता की सरल शब्दों में व्याख्या की है। उनके अनुसार "किसी भी सस्थान की उत्पादकता का अर्थ उस अनुपात से होता है जो उत्पादित माल और सेवाओं तथा उपयोग मे लाये गये साधनों के बीच में आता है। उत्पादकता को प्राप्त करने के लिये सबसे अच्छी विधि यह है कि वर्तमान साधनों का अधिक अच्छे ढग से प्रयोग किया जाय तथा उन्नत साधनों से और उन्नत रूप से इन साधनो का विकास करके और प्रयोग करके कम निवेश से अधिक मात्रा मे माल का उत्पादन किया जाय।" इसको प्राप्त करने के लिए उन्होंने प्रबन्ध तकनीक के रूप मे कार्य अध्ययन योजनाओं को लागू करने पर बल दिया है।

उपरोक्त विवेचन से यह भ्रम हो सकता है कि उत्पादकता का विचार बहुत ही अधिक तकनीकी है और बिना अधिक तकनीकी ज्ञान व बुद्धिमत्ता के हमारे जैसे देश मे उत्पादकता बढाना कठिन होगा। परन्तु ऐसा नही है। उत्पादकता का अर्थ विवेकीकरण से नही लेना चाहिए। विवेकीकरण (Rationalization) मे (क) केन्द्रीय नियन्त्रण एवं यन्त्रीकरण तथा (ख) आधुनिकीकरण एवं समानीकरण आते हैं। विवेकीकरण का श्रमिकों द्वारा विरोध हुआ है क्योंकि इसके कारण कई स्थानो पर कार्यों मे तीव्रता लाकर श्रमिको को निकाल दिया गया है। उत्पादकता आन्दोलन मे इस प्रकार का कोई भय नही होना चाहिए। द्वितीय पंच-वर्षीय आयोजना मे यह कहा गया था : "उत्पादकता में वृद्धि करने से यह तात्पर्य नही है कि नई मशीनो को लगाया ही जाय अथवा श्रमिकों को अधिक भार उठाना पड़े। मशीनो को उचित प्रकार से लगाना, कार्य की दशाओ मे उन्नति करना और श्रमिको को प्रशिक्षण देना ऐसे पग हैं, जिनसे श्रमिकों पर बिना अधिक भार डाले उत्पादन मे वृद्धि हो सकती है।" अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का जो उत्पादकता सम्बन्धी दल (Productivity Mission) आया था उसने भी इस ओर सकेत किया था कि उत्पादकता का अर्थ यन्त्रीकरण से नहीं है। इसका अर्थ यह है कि प्रबन्धकों और श्रमिको मे ऐसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास किया जाये जिससे वैज्ञानिक सिद्धान्तो और उचित तकनीक द्वारा वर्तमान साधनों का अच्छी प्रकार से प्रयोग हो सके।

उत्पादकता के विचार का हमे कार्यकुशलता के विचार के साथ ही अध्ययन करना चाहिए। कार्यकुशलता का विचार बहुत पुराना है। उत्पादकता के विचार मे हमे केवल उत्पादन या निपज पर ही बल नही देना चाहिए वरन् अच्छे निपज पर जोर देना चाहिये। इसका अर्थ यह है कि हमे उत्पादन की मात्रा के साथ-साथ उसके गुण का भी ध्यान रखना चाहिए।

उत्पादकता और कार्य कुशलता पर श्रमिको के सामाजिक जीवन का भी प्रभाव पड़ता है। घरेलू वातावरण का, जिसमे व्यक्ति का पालन पोषण होता है और पारिवारिक जीवन जो व्यक्ति व्यतीत करता है, श्रमिक पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। यदि कोई श्रमिक घर मे अपनी पत्नी से झगडा करके फैक्ट्री मे कार्य करने आता है तो वह कुशलतापूर्वक कार्य नही कर सकता। इसलिए हमे उन तत्वो मे, जिनका प्रभाव उत्पादकता पर पड़ता है, सामाजिक तथा सस्थावादी (Institutional) तत्व भी सम्मिलित कर लेने चाहिएँ।

इसके अतिरिक्त जैसा कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के दल का कथन है, जिन बातो से उत्पादकता मे वृद्धि होती है वह बातें तभी आ सकती है जबकि उद्योग मे मानवीय सम्बन्ध पारस्परिक मान्यताओ पर आधारित हो और इस बात का विश्वास हो कि परिवर्तित और नवीन पद्धतियो से न केवल सभी दलो को लाभ होगा वरन् आय तथा कार्य करने की दशाओ मे भी उन्नति होगी और रोजगार के अवसरो मे वृद्धि होगी। यह बहुत आवश्यक है कि उद्योग मे श्रमिक और मालिको के आपसी सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण और रचनात्मक ढग के हो। श्रमिक सघ श्रमिको को समझाने और इस बात का विश्वास दिलाने म कि अधिक उत्पादकता से उनको भी लाभ होगा, बहुत महत्वपूर्ण कार्य कर सकते है। मालिको मे भी विश्वास उत्पन्न करने की बहुत आवश्यकता है और समाजवाद या पूंजीवाद के विवादो को समाप्त कर देना चाहिये। मालिको और श्रमिको के बीच जो आपसी सन्देह का वातावरण है उसे दूर करना होगा और अधिक उत्पादकता लाने के लिए दोनो का सहयोग बहुत आवश्यक है। मालिको को चाहिए कि अधिक उत्पादकता से जो लाभ हो उनसे श्रमिको को वचित रखने का प्रयत्न न करें।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि अधिक उत्पादकता का वातावरण बनाने के लिए श्रम सम्बन्धी अधिनियमो को पूर्ण और प्रभावात्मक रूप से लागू करना चाहिए। यदि किसी अधिनियम मे कोई दोष है तो उस अधिनियम मे सशोधन कर देना चाहिए या उसे परिवर्तित कर देना चाहिए। परन्तु जब तक अधिनियम लागू है उसके उपबन्धो के अपवचन का कोई प्रयत्न नही करना चाहिए और न ही उसकी कमियो से अनुचित लाभ उठाना चाहिए।

भारत म श्रमिको की उत्पादकता के अध्ययन का प्रारम्भ अभी हाल ही मे हुआ है। २२ जनवरी १९५२ के एक समझौते के परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने इगलैण्ड के पाँच प्रमुख विशेषज्ञो के एक दल को दिसम्बर १९५२ मे भारत भेजा था। इस दल का कार्य यह बताना था कि कार्य-अध्ययन की आधुनिक

तकनीकी प्रणालियों से और मशीनों के उचित संगठन से तथा उत्पादन के अनुसार भुगतान करने की पद्धति से कपड़ा और इन्जीनियरिंग उद्योगों के श्रमिकों की उत्पादकता और आय में किस प्रकार वृद्धि की जा सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का एक अन्य दल १९५४ में आया। कलकत्ता के इन्जीनियरिंग उद्योग में तथा अहमदाबाद और बम्बई की कपड़ा मिलों में इन दलों ने सराहनीय कार्य किया। उसी मशीन, यन्त्र व सामग्री और उन्हीं कर्मचारियों के होते हुए इस दल ने उत्पादकता की तकनीकी बातों में बहुत उन्नति कर दी। दल निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचा—(१) भारत में कार्य-अध्ययन की तकनीक को लागू किया जा सकता है और इससे उत्पादन बढ़ाने में बहुत सफलता मिलेगी। (२) अगर उचित रीति से लागू की जाय तो कार्य-अध्ययन की तकनीक औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार कर सकती है। (३) पूँजी के निवेश के बिना भी उत्पादकता में पर्याप्त वृद्धि हो सकती है। (४) कार्य करने की दशाओं में सुधार करना भी एक ऐसा अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है जिससे उत्पादकता में वृद्धि हो सकती है। (५) कार्य करने की दशाओं में सुधार करके, शारीरिक श्रम को कम करके और उत्पादन तथा मजदूरी में वृद्धि करके कार्य-अध्ययन पद्धति श्रमिकों को लाभ पहुँचा सकती है।

इन सुझावों के परिणामस्वरूप अक्तूबर १९५४ में सरकार ने बम्बई में 'केन्द्रीय श्रम संस्थान' के एक भाग के रूप में एक "राष्ट्रीय उत्पादकता केन्द्र" की स्थापना की। तभी से कुछ कार्य-अध्ययन की व्यापक प्रायोजनाओं को विभिन्न केन्द्रों में प्रारम्भ कर दिया गया है। पूना के निकट दापोदी नामक स्थान पर महाराष्ट्र राज्य की यातायात-कार्यशाला में एक कार्य-विधि सुधार प्रायोजना चालू की गई। दिल्ली और श्रीनगर में भी यातायात-कार्यशालाओं में कार्य-अध्ययन प्रायोजनाओं को कार्यान्वित किया जा चुका है। पर्यवेक्षकों के लिए एक 'अंतकार्य-प्रशिक्षण केन्द्र' की भी व्यवस्था की गई है (देखिये परिशिष्ट 'ग')। सन् १९५७ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की सहायता से उत्पादक दल ने मद्रास और कोयम्बटूर के उद्योगों में तथा कलकत्ता की इंजीनियरिंग परिषद् के कारखानों में भी उत्पादकता प्रायोजनायें चालू की थी। मद्रास प्रायोजना की रिपोर्ट प्रकाशित कर दी गई है। १९५८ और १९५९ में बम्बई में उच्च कार्य-अध्ययन पाठ्यक्रमों का आयोजन किया गया था, तथा एक उत्पादकता प्रदर्शनी की भी व्यवस्था की गई थी और एक शिखर प्रबन्ध सेमिनार का आयोजन भी किया गया। केन्द्र ने अनेक प्रायोजनाओं, प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा क्षेत्रीय अनुसंधानों का संगठन किया है। कार्यालयों में कार्य सरल बनाने के लिये १९६१ में एक प्रायोजना चलाई गई। दिसम्बर १९६१ में मजदूरी प्रशासन तकनीक पर एक आठ दिन की गोष्ठी भी हुई। अप्रैल १९५८ में कलकत्ता में एक शिखर प्रबन्ध सेमिनार का भी आयोजन किया गया और अनेक प्रायोजनायें चालू की गईं। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने संयुक्त रूप से १४ नवम्बर १९६० से बंगलोर में एक उच्च प्रबन्ध प्रायोजना प्रारम्भ की। सन् १९६१ में, श्रम प्रशासन पर ए

आठ दिन की सेमिनार का आयोजन किया गया। अभी हाल के वर्षो मे केन्द्र ने विभिन्न केन्द्रो व उद्योगो मे अपनी गतिविधियाँ वार्ताओ, सेमिनारो, कार्य अध्ययन-पाठ्यक्रमो व कार्य-माप, रीति-अध्ययन, प्रबन्ध, प्रक्रिया, उद्योगो मे उत्पादकता, कार्य मूल्यांकन, कार्य-भार और उत्पादकता-वृद्धि आदि को सगठित करने मे भी चालू की है।

उत्पादकता अभियान मे एक महत्वपूर्ण पग जो उठाया गया है वह राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् (National Productivity Council) की स्थापना का है। परिषद् की रजिस्ट्री फरवरी १९५८ मे हुई थी। ऐसी परिषद् की स्थापना का विचार सर्वप्रथम भारतीय उत्पादकता प्रतिनिधि मण्डल द्वारा सुझाया गया था। यह मण्डल अक्तूबर १९५६ मे इस उद्देश्य से जापान गया था कि उस देश मे उत्पादकता योजनाओ का अध्ययन करे। नवम्बर १९५७ मे एक उत्पादकता सेमिनार मे दल की रिपोर्ट पर विचार किया गया। इस सेमिनार की सिफारिशो के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् की स्थापना फरवरी १९५८ मे की गई जिससे उत्पादकता की विशेष समस्याओ पर अनुसन्धान किया जा सके और उत्पादकता सम्बन्धी सूचनाओ का प्रसार हो सके। यह परिषद् एक स्वायत्त (Autonomous) संस्था है। परिषद् का उद्देश्य उन्नत पद्धतियो, साधनो के उचित प्रयोग उच्च जीवन स्तर और उन्नत कार्यदशाओ के द्वारा उत्पादकता मे वृद्धि का आन्दोलन करना है। इस परिषद् म मालिको और श्रमिको के राष्ट्रीय सगठनो के, सरकार के तथा अन्य हितो, जैसे—तक्नीकी व्यक्ति, सलाहकार, छोटे उद्योग व विद्वानो आदि के प्रतिनिधि सदस्य है जिनकी संख्या लगभग ६० है। डॉ० पी० एस० लोकनाथन को इस परिषद् का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था, जो फरवरी १९६३ तक इसके अध्यक्ष रहे। इसके पश्चात श्री आयगर इसके अध्यक्ष बनाये गय। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् ने देश भर मे विभिन्न उत्पादकता तक्नीक सम्बन्धी अनेक पाठ्यक्रमो का आयोजन किया है। परिषद् औद्योगिक इजीनियरिंग, औद्योगिक प्रबन्ध और औद्योगिक सम्बन्धो मे प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षार्थियो को विदेश भी भेजती है। परिषद् ने उत्पादकता बढाने, गहन कार्य अध्ययन और उद्योग के अन्दर ही तक्नीकी ज्ञान विनिमय के लिये देश भर म उत्पादकता दलो का भी आयोजन किया है। परिषद् कार्यक्रम मे सहायता देने के लिये भाषण, सेमिनार सम्मेलन, वाद-विवाद गोष्ठियो आदि का भी आयोजन करती है। अनेको सेमिनार तथा प्रशिक्षण-कार्यक्रम पहले ही सगठित किये गय है। परिषद् प्रशिक्षणार्थियो को औद्योगिक इजीनियरिंग, प्रबन्ध तथा औद्योगिक सम्बन्धो म प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिये विदेशो म भी भेजती है। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, कानपुर, बगलौर तथा लुधियाना मे विशेषज्ञो से युक्त ६ क्षेत्रीय उत्पादकता निदेशालय भी स्थापित किये गये है और महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्रो मे ४७ स्थानीय उत्पादकता परिषदो की भी स्थापना की जा चुकी है। इन स्थानीय परिषदो मे मालिक, श्रमिक, राज्य सरकार और अन्य हितो के प्रतिनिधि होते है। इनमे मालिक और श्रमिक दोनो मिलकर अधिक

उत्पादकता के ध्येय की प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं। इन परिषदों के माध्यम से ही संयन्त्र-स्तर पर उत्पादकता-समितियाँ बनाकर अधिक उत्पादकता अभियान को औद्योगिक इकाइयों तक पहुँचाया जाता है। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् ने भौतिक उत्पादन, कार्मिक प्रबन्ध तथा उत्पादकता विधियों आदि पर प्रशिक्षण पाठ्यक्रम संगठित किये हैं। इसने अनेक सेवाओं की स्थापना की है, उदाहरणत उत्पादकता सर्वेक्षण तथा कार्यान्वयन सेवायें, ईंधन कुशलता सेवायें आदि। इन सेवाओं का संचालन तथ्यान्वेषण सर्वेक्षणों, सेमिनारों, परिसम्वादों तथा सम्मेलनों द्वारा किया जाता है। कृषि उपज में वृद्धि करने के लिये उठाये जाने वाले पगों पर विचार करने के लिए इसने एक कृषि उत्पादकता संभाग भी स्थापित किया है। परिषद् ने १९६६ के वर्ष को राष्ट्रीय उत्पादकता वर्ष के रूप में मनाया। इसका उद्देश्य था कि उत्पादकता के महत्व के सम्बन्ध में राष्ट्रीय जागरण उत्पन्न किया जाये क्योंकि उत्पादकता ही विकास की कुंजी है। भारत एशियायी उत्पादकता संगठन का एक निर्माता देश है। यह संगठन एक अन्तर्सरकारी संस्था है जिसकी स्थापना मई १९६१ में उत्पादकता के क्षेत्र में पारस्परिक सहयोग बढ़ाने के लिये की गई थी।

इस प्रकार भारत में उत्पादकता आन्दोलन तीव्र गति से प्रगति कर रहा है। इसका अर्थ अब केवल श्रमिकों की उत्पादकता से ही नहीं वरन् सभी उपादानों की उत्पादकता से लिया जाता है। परन्तु श्रमिक वर्ग को इस उत्पादकता आन्दोलन से कुछ सन्देह भी उत्पन्न हो गये हैं। इसलिये यह बहुत आवश्यक है कि श्रमिक वर्ग को इस बात का विश्वास दिलाया जाय कि उत्पादकता का अर्थ कार्य-भार में वृद्धि करना नहीं है और इसके परिणामस्वरूप बेरोजगारी नहीं होगी तथा श्रमिकों को, अधिक उत्पादकता से जो लाभ होंगे उसमें से, उचित भाग दिया जायेगा।

तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में उत्पादकता पर बहुत बल दिया गया है। आयोजना में कहा गया है : "उत्पादकता के अनेक पहलू होते हैं परन्तु उत्पादकता को इसलिये हानि पहुँचती है कि मालिक और श्रमिक इसके लिये इकतरफा कार्य करते हैं। उत्पादकता का वास्तविक आधार तो यह है कि सब प्रयत्नों को विवेक-पूर्ण दृष्टि से करना चाहिये। उत्पादकता का प्रायः यह त्रुटिपूर्ण अर्थ लगा लिया जाता है कि कार्य-भार को बढ़ाया जाये तथा निजी लाभ में वृद्धि करने के लिये श्रमिकों पर अधिक भार डाला जाये। वास्तव में बिना श्रमिकों पर भार डाले, उनके स्वास्थ्य को बिना हानि पहुँचाये तथा बिना अधिक व्यय के उत्पादकता से अधिक लाभ तथा लागत में कमी प्राप्त की जा सकती है। इस सम्बन्ध में अधिक उत्तरदायित्व प्रबन्धकों का है। प्रबन्धकों को चाहिये कि वे श्रमिकों के लिये सर्वोत्तम मशीनें व सामग्री, काम करने की उपयुक्त स्थिति और तरीके, पर्याप्त प्रशिक्षण, तथा उपयुक्त मनोवैज्ञानिक और भौतिक प्रेरणायें प्रदान करें। कार्य में रत श्रमिकों तथा नये श्रमिकों की योग्यता तथा दक्षता में वृद्धि करने के लिये उद्योग, श्रमिक संघों तथा सरकार को मिलजुल कर प्रशिक्षण कार्यक्रम आरम्भ

करने चाहियें। इस देश में जब तक उत्पादकता से निरन्तर वृद्धि नहीं होती तब तक श्रमिकों के रहन-सहन के स्तर में वास्तविक सुधार नहीं हो सकता। श्रमिकों को अपने तथा देश के हित में विवेकीकरण के रास्ते में रुकावटें नहीं डालनी चाहियें, बल्कि उन्हें इसकी मांग करनी चाहिये। विवेकीकरण का अधिक से अधिक विस्तार हो सकता है बशर्ते कि इसके फलस्वरूप निकाले हुए लोगों को श्रमिकों की सहमति से नौकरी में रखने तथा दूसरे कार्यों में लगाने की उचित प्रकार से व्यवस्था हो। यदि ठीक प्रकार का वातावरण बनाया जाता है तो यह पूर्ण आशा है कि श्रमिक भी पीछे नहीं रहेंगे। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् द्वारा आयोजित सेमिनार में जो समझौता हुआ है वह अधिक उत्पादकता में सहयोग देने के लिये आधार माना जा सकता है। भारतीय श्रम सम्मेलन अब कार्य-कुशलता और कल्याण सहिता बनाने के कार्यों को अपने हाथ में लेगा। उत्पादकता केन्द्र और अन्तर्कार्य-प्रशिक्षण केन्द्रों द्वारा जो कार्यक्रम इस सम्बन्ध में किये जा रहे हैं वह प्रशंसनीय हैं।'

विभिन्न उद्योगों व प्रत्येक उद्योग के विभिन्न संस्थानों के लिए १९५० में निर्माण उद्योग की गणना के आधार पर १९५२ में श्रम उत्पादकता सम्बन्धी आंकड़ों का संकलन किया गया था। निम्न तालिका से कुछ विशिष्ट उद्योगों में ऐसे आंकड़ों का पता चलता है।

श्रम की उत्पादकता (१९५०)

प्रति व्यक्ति कार्य घण्टे के मूल्य के आधार पर (रुपयों में)

उद्योग	सभी आकार के	छोटे आकार के	मध्यम आकार के	बड़े आकार के
चीनी	१ ५	१ ४	१ ५	१ ४
सीमेंट	१ ४	१ ३	१ ४	१·५
सूती वस्त्र	० ७	० ७	० ८	०·७
ऊनी वस्त्र	१ २	० ४	१ २	१·४
जूट वस्त्र	० ५	० ५	० ७	०·६
लोहा व इस्पात	१ ४	० ४	० ८	१·५
रसायन	१ ६	१ ५	१ ७	२ ६
सब उद्योग	०·८	० ६	० ८	१·०

खानों के मुख्य निरीक्षक द्वारा प्रकाशित आँकड़ों से पता चलता है कि १९५५ में कोयला खानों में लगे हुए श्रमिकों की उत्पादकता (प्रत्येक श्रमिक पारी की निपज) निम्न प्रकार थी—(औसत) खनिक और ढोने वाले—१ ४६ मीट्रिक टन, भूमि के नीचे और खुले में काम करने वाले सभी श्रमिक—० ७८ मीट्रिक टन, भूमि के ऊपर और भूमि के नीचे काम करने वाले सभी श्रमिक—० ५५ मीट्रिक टन।

कुछ उद्योगों में उत्पादकता और आय के सम्बन्ध में जो परिवर्तन हुए उसके अध्ययन की रिपोर्ट १९५५ में प्रकाशित हुई थी। इससे यह पता चलता है कि—(१) कोयला खान उद्योग में खनिज और ढोने वालों की उत्पादकता में १९५१ और १९५८ के मध्य वृद्धि की दर ०·७६ प्रति माह थी। परन्तु उनकी औसत साप्ताहिक नकदी आय में वृद्धि की दर ०·२६ थी। (२) कागज उद्योग में १९४८ तथा १९५३ के बीच श्रमिकों की औसत आय तो बढ़ गई थी परन्तु उनकी उत्पादकता बढ़ोत्तरी का कोई प्रमाण नहीं मिलता था। (३) जूट कपड़ा उद्योग में, उत्पादकता में वृद्धि की दर १९४८ और १९५३ के मध्य २·९ प्रति वर्ष थी और आय में वृद्धि की दर ३·७ थी, तथा (४) सूती कपड़ा उद्योग में १९४८ और १९५३ के मध्य उत्पादकता में वार्षिक वृद्धि की दर २·२८ थी तथा आय में वृद्धि की दर १·१४ थी।

१९५५ में कारखाना श्रमिकों की उत्पादकता के सूचकांक और वास्तविक आय के सूचकांक के सम्बन्धों का अध्ययन किया गया था और इसके जो परिणाम निकले वह निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायेंगे।* (पृष्ठ ६०२ पर दी गई तालिका भी देखिये)।

(आधार वर्ष -१९३९=१००)

वर्ष	वास्तविक आय सूचकांक	रोजगार सूचकांक	उत्पादन सूचकांक	उत्पादकता सूचकांक
१९३९	१००·०	१००	१००	१०० ०
१९४०	१०८·६	१०४	१०८	१०४·२
१९४५	७४·९	१४१	११२	७९·५
१९४७	७८·४	१३७	९९	७२·५
१९४८	८४·४	१४१	११२	७९·४
१९४९	९१·७	१४३	१०८	७५·६
१९५०	९०·१	१३६·०	१०७·२	७८·८
१९५१	९२·२	१३५·७	१२०·४	८८·७
१९५२	१०१·८	१३६·७	१३३ २	९७·४
१९५३	९९·९	१३३·१	१४०·८	१०५·८
१९५४	१०२·७	१३५·६	१५३ ६	११३·०

"भारतीय निर्माण उद्योगों की गणना" की रिपोर्टों के आधार पर श्रम ब्यूरो ने जूट वस्त्र, लोहा व इस्पात, चीनी, सूती वस्त्र, काँच, सीमेंट, कागज, दियासलाई, तथा ऊनी वस्त्र उद्योगों में, जिन उद्योगों की संख्या ९ है, उत्पादकता सूचकांक बनाने के लिए प्रयोजनायें आरम्भ की हैं। इनमें से कुछ उद्योगों की रिपोर्टों को अन्तिम रूप दिया जा रहा है। यह वार्षिक सूचकांक १९४८ से १९५६ तक के वर्षों के तैयार किये जायेंगे और इनके लिए १९४७ को आधार वर्ष माना

* *Indian Labour Gazette*, November 1955 and India 1961.

गया है। तृतीय आयोजना की अवधि में, ब्यूरो ने ऊपर उल्लेख किये गये ६ उद्योगों में से ७ मे उत्पादकता के सूचकाकों को अद्यावधिक (Uptodate) बना दिया। इन उद्योगों के नाम हैं—जूट वस्त्र, सूती वस्त्र, चीनी, दियासाई, सीमेंट, कागज और गत्ता, तथा काँच व काँच का सामान। इनकी रिपोर्ट मृत्तिका उद्योग तथा खाने के हाइड्रोजनीकृत तेल उद्योगों की रिपोर्ट के साथ ही प्रकाशित हो गई। लोहा व इस्पात, ऊनी वस्त्र, साइकिल तथा बिजली के लैम्पों के उद्योगों के सम्बन्ध में सन् १६५८ तक के उत्पादकता सम्बन्धी सूचकाकों को अब अन्तिम रूप दे दिया गया है।

सुझाव

कार्यकुशलता में उन्नति करने के हेतु यह नितान्त आवश्यक हो गया है कि श्रमिकों के उत्थान के लिये और उत्पादन की वैज्ञानिक प्रणालियों को लागू करने के लिए एक व्यापक कार्यक्रम को अपनाया जाय। तकनीकी और सामान्य शिक्षा का अधिक से अधिक विस्तार, मजदूरी मे उपयुक्त स्तर तक वृद्धि काम करने के घण्टो मे कमी, रहने-सहने और काम करने की दशाओं मे आवश्यक सुधार आदि से निश्चय ही श्रमिकों की कार्यकुशलता पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। हमारे आदर्शों में आमूल परिवर्तन की भी बड़ी आवश्यकता है। जब तक श्रमिक के मन मे असुरक्षा की भावना तथा बेरोजगारी का भय रहता है, और श्रमिक यह अनुभव करता है कि वह दूसरों के लिये कार्य कर रहा है, तब तक उसकी कार्य कुशलता में उच्चतम सीमा तक कभी भी वृद्धि नहीं हो सकती, और वह कम से कम कार्य करने तथा अधिक से अधिक मजदूरी पाने का प्रयत्न करता रहेगा। उसे इस बात का अनुभव करा दिया जाना चाहिये कि उसके कार्य से किसी सामाजिक लक्ष्य की भी पूर्ति होती है। साथ ही उसे अपनी आवश्यकताओं के पूर्ण होने और किसी भी प्रकार का भय न होने का पूरा-पूरा आश्वासन मिलना चाहिए। इसी प्रकार श्रमिकों में उचित प्रकार की नैतिकता तथा हौसले का विकास हो सकता है। यह बड़े खेद का विषय है कि जब हमारे श्रमिकों में अधिक से अधिक और अच्छे से अच्छा काम करने की क्षमता है तो भी परिस्थितियों ने उन्हें इस बात के लिए विवश कर दिया है कि वे अपने कर्तव्यों की ओर से उदासीन हो जायें तथा देश के उत्पादन को इस प्रकार धक्का पहुँचाएँ जिस प्रकार वे आजकल कर रहे हैं। हम यह आशा करते हैं कि समस्या पर उचित प्रकार से विचार किया जाएगा और श्रमिकों की कार्य-कुशलता के प्रश्न को केवल एक साधारण समस्या नहीं समझा जाएगा।

५६

भारत तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन

INDIA AND THE INTERNATIONAL LABOUR ORGANISATION

जिन निराशावादियों को इस बात का विश्वास नहीं होता कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से बहुत व्यावहारिक लाभ हो सकते हैं और जो अपनी इस विचारधारा का प्रमाण संयुक्तराष्ट्र संघ के कटु वाद-विवादों से देते हैं, उनको अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के उस कार्य से प्रोत्साहन प्राप्त हो सकता है, जो कार्य यह संगठन ४५ वर्षों से शान्त भाव से और चुपचाप करता चला आ रहा है। प्रथम तो यह 'लीग ऑफ नेशन्स' (राष्ट्र संघ) के एक अंग की भाँति कार्य करता रहा और १९४६ से यह संयुक्त राष्ट्र संघ की एक विशेषज्ञ संस्था की भाँति कार्य कर रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का प्रारम्भ

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना प्रथम महायुद्ध के अन्त में 'वरसाइल' की सन्धि (Treaty of Versailles) के परिणामस्वरूप हुई। इस सन्धि का प्राथमिक उद्देश्य शान्ति बनाये रखना था, परन्तु यह अनुभव किया गया कि "शांति केवल उसी दशा में स्थापित हो सकती है, जबकि यह सामाजिक न्याय पर आधारित हो।" इसलिए यह विचार किया गया कि औद्योगिक परिस्थितियों के लिये कुछ अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रणों का होना आवश्यक है। साथ ही श्रमिकों में शान्ति बनाए रखने के उद्देश्य की पूर्ति के लिये भी किसी अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा की व्यवस्था करना नितान्त आवश्यक है। अतः २८ जून, सन् १९४९ को "उच्च कोटि के समझौते करने वाले दल" (High Contracting Parties) श्रमिकों की दशाओं में सुधार करने के निमित्त किसी स्थायी संगठन की स्थापना करने पर सहमत हो गये। यह सुधार विभिन्न उपायों द्वारा किया जा सकता था, जैसे "कार्य के घण्टों का नियमन और साथ ही साथ अधिक कार्य दिवस और सप्ताह को निश्चित कर देना, श्रम सम्भरण (Supply) का नियमन, बेरोजगारी की रोकथाम, निर्वाह के लिये पर्याप्त मजदूरी, रोजगार से उत्पन्न होने वाली बीमारियाँ, रोग और क्षति से श्रमिकों की सुरक्षा, बालकों, किशोरों और स्त्रियों की सुरक्षा, वृद्धावस्था और क्षतिपूर्ति आदि के लिए प्रबन्ध, अपने देश से बाहर जब श्रमिक दूसरे देशों में रोजगार पर लग जाते हैं तब उनके हितों की सुरक्षा, संघ बनाने की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त की मान्यता, व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था तथा अन्य

साधन।" अत राष्ट्र सघ के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अग के रूप मे 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन' का निर्माण हुआ।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के आधारभुत (Fundamental) सिद्धान्त

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का आधार ऐसे तौ आधारभूत सिद्धान्तो पर है, जो कि एक 'श्रमिक चार्टर' अथवा श्रमिको की 'स्वतन्त्रता के चार्टर' मे दिये गये है। राष्ट्र सघ के प्रत्येक सदस्य को इन सिद्धान्तो को स्वीकार करना होता है। ये सिद्धान्त निम्नलिखित है (१) मार्गदर्शक सिद्धान्त यह होगा कि श्रम को केवल पदार्थ अथवा वाणिज्य की वस्तु नही समझा जाना चाहिए। (२) मालिक और कर्मचारियो के सभी प्रकार के वैधानिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए सघ बनाने के अधिकारो को मान्यता प्रदान की जानी चाहिये। (३) देश और समय के अनुसार उचित प्रकार के जीवन-स्तर को बनाये रखने के लिये कर्मचारियो को पर्याप्त मजदूरी के भुगतान की व्यवस्था होनी चाहिए। (४) दिन मे ८ घण्टे के कार्य और सप्ताह मे ४८ घण्टे के कार्य के सिद्धान्त को उन सभी स्थानो पर लागू कर देना चाहिये जहाँ अब तक लागू नही है। (५) सप्ताह मे कम से कम २४ घण्टे का अवकाश मिलना चाहिए और जहा भी सम्भव हो यह अवकाश रविवार को होना चाहिए। (६) बालको से काम लेना बन्द कर देना चाहिये और किशोरो के रोजगार पर भी रोक-थाम होनी चाहिए, ताकि उनकी शिक्षा के चालू रहने के साथ-साथ उन्हे उचित रीति से शारीरिक विकास का भी अवसर प्राप्त हो सके। (७) यह सिद्धान्त लागू करना चाहिए कि समान मूल्य के समान कार्यों के लिये स्त्री तथा पुरुषो को समान पारिश्रमिक मिले। (८) श्रमिकों के लिए किसी देश मे जो भी कानून बनाये जायें, उनमे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सभी श्रमिको को, चाहे वे देशवासी हो अथवा विदेशी, बराबर का आर्थिक व्यवहार मिले। (९) प्रत्येक राज्य को निरीक्षण की ऐसी पद्धति अपनानी चाहिये, जिसमे स्त्रियाँ भी भाग ले सकें ताकि कर्मचारियो की सुरक्षा के लिए जो भी नियम अथवा विधान बनें, उन्हे उचित रीति से लागू किया जा सके।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की स्थापना से पूर्व श्रमिको की दशाओ के लिए अन्तर्राष्ट्रीय नियमन

यद्यपि १९१९ के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का जन्म हो चुका था तथापि अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि द्वारा श्रमिको की दशाओं को नियमित करने का विचार बहुत समय से लोगो के मस्तिष्क मे घूम रहा था। इगलैड के राबर्ट औवन तथा फ्रांस के कुछ अर्थशास्त्रियो ने श्रमिको के लिए कुछ अन्तर्राष्ट्रीय नियमन (Regulations) के बनाने पर सदैव से बल दिया था। इसी विषय को लेकर जर्मन सरकार द्वारा आयोजित प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन १८९० मे हुआ और १८९७ मे ब्रूसल्स मे एक अन्य सम्मेलन हुआ। सन् १९०० में श्रम विधान के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् का निर्माण किया गया। इस परिषद् की १५ राष्ट्रो मे समितिया थी, और

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के प्रथम निदेशक एलबर्ट थोमस इस परिषद् की फ्रांसीसी समिति के सदस्य थे। १६०५ तथा सन् १६०६ में 'बर्न' नामक स्थान पर दो औपचारिक (Official) श्रम सम्मेलनों का आयोजन किया गया। इनमे दो अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय पारित किये गये, जिनमे से एक मे स्त्री श्रमिकों का रात्रि में काम करना तथा दूसरे मे दियासलाइयो के निर्माण में सफेद फास्फोरस का प्रयोग करना निषिद्ध कर दिया गया।

यहां इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि सन् १६००-६० के बीच श्रमिकों की सुरक्षा के सम्बन्ध मे पाँच प्रस्तावों पर समान रूप से सभी ने अपनी सहमति प्रकट की थी। यह प्रस्ताव निम्नलिखित हैं . (क) औद्योगिक रोजगार में बालको के लिए कम से कम १४ वर्ष की आयु निर्धारित की जाए, (ख) काम करने के घण्टो का नियमन, (ग) साप्ताहिक अवकाश, (घ) किशोरों तथा स्त्रियो के लिये रात्रि में काम करने पर निषेध तथा, (ड) व्यवसाय सम्बन्धी संकटो से श्रमिको की सुरक्षा।

सन् १८६० और १६२० की अवधि में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के समर्थक दस अन्य सिद्धान्तों पर सहमत हो गये। ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं (१) श्रम विधान से सम्बन्धित तथ्यो का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विनियम, (२) फास्फोरस से सम्बन्धित विषो से सुरक्षा, (३) सीसे से सम्बन्धित विषो से सुरक्षा, (४) अन्य व्यावसायिक विषो और रोगो से सुरक्षा, (५) सामाजिक बीमे मे, विशेषतया प्रत्येक देश के दुर्घटना बीमा नियमो मे, देशवासी और विदेशियो के लिए समान व्यवहार के सिद्धान्तो को अपनाना, (६) क्रमबद्ध निरीक्षण तथा काम का नियमन, (७) स्त्रियो और किशोरो के लिये कार्य दिवस की सीमा का निर्धारण करना, (८) बेरोजगारी की समस्या, (६) प्रसव से पहले या बाद मे स्त्रियो को रोजगार पर न लगाना, तथा (१०) समुद्री कर्मचारियों की सुरक्षा।

इस प्रकार हमे ज्ञात होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की स्थापना से पहले भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक श्रम समस्याओ पर विचार विनिमय किया गया था। कुछ भी हो, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की स्थापना ने पहली बार एक नियमित अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम समस्याओ को रक्खा। तभी से यह सभी देशो के श्रमिको की उन्नति के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर स्थापित करने मे बहुत ही उपयोगी कार्य कर रहा है। सन् १६२० से आज तक अनेकानेक अभिसमयो के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने उन सभी बातो को, जिनका उल्लेख किया जा चुका है, तथा अन्य कई बातों को अपना लिया है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सगठन का सविधान

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के अनेक देश सदस्य है। १६६७ मे इनकी कुल सख्या ११८ थी। इस प्रकार सरकारो द्वारा वित्त-प्रदत्त (Financed) यह राष्ट्रों का परिषद् है और श्रम सगठनो, मालिको तथा सरकारों के प्रतिनिधि इस पर

प्रजातान्त्रिक रूप से नियन्त्रण रखते हैं। इसका उद्देश्य ससार के सभी देशो में सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा करना है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह श्रमिको और उनकी सामाजिक परिस्थितियो से सम्बन्धित तथ्यो का सकलन करती है, उनके लिय न्यूनतम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर निर्धारित करती है और उनके प्रत्येक देश मे लागू होने का पर्यवेक्षण करती है। भारत इस सगठन का प्रारम्भ से ही सक्रिय सदस्य रहा है और ससार के आठ महत्वपूर्ण औद्योगिक देशो मे इसकी गणना की गई थी। सगठन की कुल आय का लगभग ३ से ७ प्रतिशत तक भारत ने वार्षिक अशदान दिया है। सन् १९५० मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने अपने सदस्य देशो के लिये अशदान का एक पैमाना निश्चित किया। यह पैमाना वैसा ही है जैसा कि सयुक्त राष्ट्र सघ मे है, अन्तर केवल सदस्यता का ही है। अशदान की दरे वर्ष के वर्ष अनौपचारिक विचार-विमर्श द्वारा निश्चित की जाती हैं। सन् १९६६ मे, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के बजट का कुल व्यय २,१०,३४,४१२ अमरीकी डालर था जबकि सन् १९६५ मे यह व्यय १,९३,०४,३४७ डालर था। सन् १९६६ मे भारत का अशदान ५,९१,८३३ अमरीकी डालर (२८,१७,१२५ रुपये) अर्थात् २ ९१ प्रतिशत था। बजट के अशदान के रूप मे, भारत की स्थिति अब भी सयुक्त राज्य अमरिका, ब्रिटेन, सोवियत रूस, फास, जर्मन गणराज्य तथा कनाडा के बाद सातवी है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ३ प्रधान अगो के माध्यम से कार्य करता है—(क) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय, जो इसका स्थायी सचिवालय है, (ख) अन्तरग सभा (Governing Body) जो इसकी कार्यांग (Executive) है, तथा (ग) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय (International Labour Office)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय एक सचिवालय, एक ससार सूचना केन्द्र तथा एक प्रकाशन ग्रह के रूप मे कार्य करता है। इसके प्रधान कार्यालय जेनेवा मे स्थित है। यह श्रम सम्बन्धी समस्याओ पर अनुसन्धान और अध्ययन करने के कार्यो मे निरन्तर व्यस्त रहता है और एक अनुसन्धान केन्द्र तथा सामाजिक व औद्योगिक प्रश्नो पर जानकारी प्रदान करने वाले गृह के रूप मे कार्य करता है। भिन्न-भिन्न देशो के विशेषज्ञ इसमे कार्य करते है, जिनके ज्ञान, अनुभव और परामर्श सभी सदस्य राष्ट्रो के लिय उपलब्ध है। एक महा निदेशक (Director General) इस कार्यालय का मुख्य कार्यांग अधिकारी है। अनेक देशो मे इसकी शाखायें खुली हुई है तथा उनमे इसके सम्वाददाता भी रहते हैं। सन् १९६६ मे इसके कर्मचारियो की कुल सख्या ११४५ थी। इनमे से ५८२ अधिकारी तो 'मेम्बर ऑफ डिवीजन' अथवा इससे ऊपर के पद के थे। जेनेवा म इसके कार्यालय मे लगे उन भारतीय कर्मचारियो की सख्या १६ थी जो 'मेम्बर आफ डिवीजन' तथा इससे ऊपर के पदाधिकारी थे। ये सख्या विभिन्न क्षेत्रो मे विशेषज्ञो के रूप मे काम करने वाले

भारतीय कर्मचारियों से अलावा थी। इसमें एक भारतीय अधिकारी सहायक डायरेक्टर जनरल के पद पर भी रहा है, एक सलाहकार है, २ सदस्य विभागों के अध्यक्ष है तथा एक महानिदेशक के कार्यालय में कार्याग सहायक रहा है। कार्यालय द्वारा 'इन्टरनेशनल लेबर रिव्यू' के नाम से एक मासिक पत्रिका, 'इण्डस्ट्री एण्ड लेबर' के नाम से एक 'पाक्षिक पत्रिका' तथा कई अन्य पत्र-पत्रिकाओं का भी प्रकाशन होता है। भारत सहित ६ देशों मे इसकी शाखायें खुली हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की भारतीय शाखा देहली में है, जिसके कर्मचारियो मे एक डायरेक्टर श्री वी० के० आर० मैनन के अतिरिक्त अन्य पाँच अधिकारी भी है। इस देहली शाखा की स्थापना सन् १६२८ में की गई थी। यह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय भारत सरकार, मालिको एव श्रमिको के सगठनो के मध्य घनिष्ठ सम्पर्क बनाये रखती है और यह श्रम सम्बन्धी सूचनाओ को देने के लिये एक समाशोधन गृह (Clearing House) का कार्य करती है। इसने श्रम तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के कार्यों से सम्बन्धित उपयोगी साहित्य का भी प्रकाशन किया है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कर्मचारियो मे भारतीयो की सख्या अपर्याप्त है।

अन्तरग सभा (Governing Body)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की अन्तरंग सभा इस सगठन की कार्याग परिषद् है। यह कार्यालय के कार्य का सामान्य पर्यवेक्षण करती है, इसके बजटों का निर्माण करती है, और प्रभावात्मक कार्यक्रमो के लिये नीति बनाने और औद्योगिक विशेषज्ञ समितियो आदि की स्थापना करने का भी इस पर उत्तरदायित्व है। महानिदेशक का चुनाव भी यही करती है। वर्ष मे इसकी बैठकें साधारणतया तीन बार होती है तथा अध्यक्ष व उपाध्यक्ष का चुनाव हर वर्ष होता है। प्रारम्भ में इसके ३२ सदस्य थे, जिनमें १६ सरकारो के प्रतिनिधि थे, ८ मालिको के तथा ८ श्रमिको के। सरकार के सदस्यो मे से ८ स्थान स्थायी रूप से ८ औद्योगिक महत्व के सदस्य देशों के लिये सुरक्षित कर दिये गये थे। मई सन् १६५४ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की इस अन्तरग सभा मे रूस, जापान और पश्चिमी जर्मनी को सम्मिलित कर लिया गया और प्रमुख औद्योगिक देशो के रूप मे उनको कार्याग मे स्थायी स्थान दे दिया गया। स्थायी स्थानो की सख्या को बढाकर ८ से १० कर दिया गया और इसमे से ब्राजील को स्थायी स्थान से निकाल दिया गया। इस प्रकार अन्तरग सभा के ४० सदस्य हो गये जिसमे २० सरकार के, १० मालिको के और १० श्रमिकों के प्रतिनिधि है। जून १६६२ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के संविधान मे किये गये संशोधन के आधार पर, सन् १६६३ मे अन्तरग सभा का फिर निर्माण किया गया। १६६३ मे इसके सदस्यो की संख्या बढाकर ४८ कर दी गई है—इसमें २४ सरकारों के, १२ मालिको के और १२ श्रमिकों के प्रतिनिधि होते हैं। सरकार के २४ सदस्यों में से १० तो स्थायी सदस्यो द्वारा नियुक्त किये जाते है और १

का प्रत्येक तीन वर्षों म अ य सरकारो द्वारा चुनाव होता ह। कनाडा, चीन फ्रास भारत इटली जापान सोवियत सघ इगलैण्ड सयुक्त राज्य अमेरिका तथा पश्चिमी जर्मनी के १० स्थायी सदस्य है। इस प्रकार प्रारम्भ स ही भारत को अ तरग सभा म एक स्थायी स्थान प्राप्त है। शेष १४ सरकारी सदस्य उन सरकारो द्वारा नियुक्त किय जात ह जो तीन वर्ष म एक बार इसी काय क लिय चुनी जाती हैं। मालिकों तथा श्रमिको का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य भी तीन वर्ष के लिय वर्ष के सम्ब धित प्रतिनिधियो द्वारा चुन जाते हैं। सरकार क स्थान के अतिरिक्त भारत के दो अ य सदस्य भी अ तरग सभा म इस समय ह जो भारतीय मालिको और श्रमिको का प्रतिनिधित्व करते ह। जनवरी सन् १९५० मे इस अन्तरग सभा का ११० वा अधिवेशन मसूर म हुआ था। भारत के प्रतिनिधि श्री एस० लाल इसके अध्यक्ष थे। १९६१-६२ के लिय इस अन्तरग सभा का अध्यक्ष भारतीय सरकार के प्रतिनिधि डा० एस० टी० मरानी को चुना गया। १९६७ तक इसके १६७ से अधिक अधिवेशन हो चुके हैं।

अ तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन
(International Labour Conference)

अ तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन श्रमिको और उनके सामाजिक प्रश्नो क लिए एक विश्व ससद् का काय करता ह। इस सम्मेलन मे जो साधारणतया प्रतिवर्ष होता है प्र यक सदस्य राष्ट चार प्रतिनिधियो का एक प्रतिनिधि मण्डल भेजता है। इनमे स दो प्रतिनिधि सरकार क एक प्रतिनिधि सगठित मालिको का तथा एक प्रतिनिधि सगठित श्रमिको का होता है। इसमे अनेक सलाहकार भी सम्मिलित होते हैं जिनकी सख्या सम्मेलन की कार्यावली के प्रत्येक-प्रकरण के लिय दो स अधिक नही हो सकती। सरकारो मालिको और श्रमिको के प्रतिनिधि स्वतन्त्रता पूवक अपन विचार प्रकट करत है और अपना मत देते ह ताकि सभी प्रकार क दृष्टिकोणो का पूणरूप से अभिव्यक्ति हो सके। यह सम्मेलन अ तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की नीति निर्धारण सस्था के रूप मे काय करता है। सम्मेलन का मुख्य काय यह ह कि अभिसमय (Conventions) और सिफारिशो (Recommendations) के रूप म अ तर्राष्ट्रीय सामाजिक स्तर स्थापित हो सक। इन अभिसमयो और सिफारिशो का सामूहिक रूप से अ तर्राष्ट्रीय श्रम सहिता (International Labour Code) का नाम दिया जाता ह। सम्मेलन सगठन के चालू तथा भावी काय के सम्ब ध म भी प्रस्ताव पास करता है। यह वर्ष के वर्ष सगठन के बजट का भी निर्धारण करता ह।

सम्मेलन के अभिसमय और उनकी सिफारिश

प्रतिनिधियो के दो तिहाई मतो के बहुमत से सम्मेलन इस बात का निणय करता है कि जो भी सुझाव है उसका रूप निम्नलिखित दो बातो में से कौन सा होना चाहिए– (क) एक सिफारिश का रूप जो सदस्यो के सामने इस हेतु प्रस्तुत

की जाये कि वे इस पर विचार करके अपने राष्ट्रीय विधान द्वारा अथवा किसी अन्य प्रकार से इसे कार्यान्वित करे। (ख) एक अन्तर्राष्ट्रीय 'अभिसमय' के मसौदे का रूप, जिसको सदस्यों द्वारा अपनाया जाए। इन दो में से चाहे कोई भी रूप हो, यह प्रत्येक राष्ट्र के प्रतिनिधि के लिए अनिवार्य है कि वह जो भी विषय हो, उसे सम्मेलन के अधिवेशन के समाप्त होने पर १८ महीनों की अवधि के भीतर अपने देश की संसद् के सम्मुख अथवा किसी अन्य उचित अधिकारी संस्था के सम्मुख प्रस्तुत करे जो इसके लिए विधान बनाए अथवा इसको कोई और कार्य-रूप दे। 'सिफारिशें' केवल श्रम विषयों पर सदस्य सरकारों का मार्ग प्रदर्शन करती है, परन्तु अभिसमयों को सदस्य सरकारों द्वारा पूर्ण रूप से या तो अपनाना होता है या अस्वीकार करना होता है। यदि कोई अभिसमय सदस्य सरकार की संसद् द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है, तब यह कहा जाता है कि इसे अपना (Ratified) लिया गया है। इसके बाद इसको लागू करना पड़ता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के संविधान में इस बात का उल्लेख किया गया है कि प्रत्येक राष्ट्र सदस्य को इस सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय को एक वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होगी कि उसने किसी ऐसे अभिसमय को, जिसको पारित करने में उसका भी हाथ था, कार्यान्वित करने में क्या-क्या पग उठाये है। जब कोई राज्य सदस्य किसी अभिसमय को अपना लेता है, तो उसे उसकी सरकार को लागू करना पड़ता है। यदि अपनाये गए अभिसमय को लागू नहीं किया जाता है अथवा किसी ऐसे अभिसमय को, जिसको पारित करने में राज्य सदस्य का हाथ होता है, मान्यता नहीं दी जाती है तो उसके विरुद्ध मालिकों या श्रमिकों द्वारा शिकायत की जा सकती है। इस प्रकार प्रत्येक राज्य सदस्य को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभिसमयों को अपनाने या अस्वीकार करने के पूरे-पूरे अधिकार प्राप्त है।

यह प्रस्ताव या अभिसमय (Conventions) और सिफारिशें (Recommendations) श्रम विधान बनाने तथा श्रम सम्बन्धी अन्य पग उठाने के लिए न्यूनतम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर निर्धारित करती हैं। ये अभिसमय और सिफारिशें यत्नपूर्वक की गयी खोजों और वाद-विवादों पर आधारित होती है और एक प्रकार से यह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संहिता का निर्माण करती है। क्योंकि सम्मेलन के दो तिहाई बहुमत से इनको अपनाया जाना आवश्यक होता है, इसलिए इनसे इस बात की ओर भी संकेत मिल जाता है कि विश्व की समस्याओं के प्रति जागरूक व्यक्ति इनमें दी गई बातों से सहमत है। सन् १९१९ में हुए प्रथम सम्मेलन से लेकर जून १९६६ तक इस सम्मेलन ने अपने ५० अधिवेशनों में १२६ अभिसमय और १२७ सिफारिशें अपनाई है। इन अभिसमय और सिफारिशों में काम करने के घण्टों, सवेतन छुट्टियाँ, स्त्रियों के कार्य, बच्चों की सुरक्षा, औद्योगिक दुर्घटनाओं की रोकथाम और उनकी क्षतिपूर्ति, बेरोजगारी, बीमारी, वृद्धावस्था तथा मृत्यु आदि में बीमा, न्यूनतम मजदूरी, उपनिवेशों की श्रम समस्यायें, समुद्री कर्मचारियों और मछेरों की दशायें आदि जैसे प्रश्नों का विवेचन किया गया है। जैसा कि ऊपर

उल्लेख किया जा चुका है सम्मेलन के निर्णय आप से आप सदस्यो के लिये अनिवार्य नही हो जाते वरन् सदस्य देशो की सरकारो का कर्तव्य है कि वे इन अभिसमयो को अपने-अपने राष्ट्रीय विधान मण्डलो के समक्ष प्रस्तुत करें। यदि विधान मे इन अभिसमयो को स्वीकार कर लिया जाता है, तब सरकार को इन्हे अनिवार्य रूप से लागू करना पडता है। किसी भी अभिसमय को या तो अक्षरश: स्वीकार करना होता है अथवा एकदम अस्वीकार। परन्तु किसी सिफारिश को पूर्णतया लागू करना आवश्यक नही है। यह तो राष्ट्रीय कार्यक्रम के लिये पथ-प्रदर्शन मात्र है। सदस्य राष्ट्र सिफारिशो को अपने देश की परिस्थितियो के अनुसार कार्यरूप दे सकते हैं। भारत ने अब तक २६ अभिसमय अपनाए है जिनमे से २८ लागू हैं। लेकिन इसके साथ ही साथ भारत ने अन्य अभिसमयो के आवश्यक तत्वो को भी अपने राष्ट्रीय विधान मे सम्मिलित कर लिया है।

फिलाडेलफिया की घोषणा (Declaration of Philadelphia)

सन १९३९ मे युद्ध छिड जाने के उपरान्त अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के कार्यालय को जेनेवा से हटाकर कनाडा मे 'माट्रियल' नामक स्थान पर ले जाया गया था। यद्यपि लीग ऑफ नेशन्स (राष्ट्रसघ) इस समय अधिक क्रियाशील नही रहा था, तथापि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने माट्रियल मे अपना कार्य जारी रक्खा। मई, सन् १९४४ मे फिलाडेलफिया की घोषणा द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सम्मेलन मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के उद्देश्यो और लक्ष्यो की फिर से व्याख्या की गई। यह घोषणा अन्तर्राष्ट्रीय नीति मे सामाजिक लक्ष्यो को प्राथमिकता देती है और इस उद्देश्य से उन परिस्थितियो की भी व्याख्या करती है, जिनमे कि सभी मनुष्यो को, चाहे वह किसी भी जाति या धर्म के हो, अथवा स्त्री या पुरुष हो, इस बात का अधिकार हो कि वह अपने भौतिक कल्याण और आध्यात्मिक विकास के लिये स्वतन्त्र रूप से और आत्म-सम्मान से कार्य कर सके और उन्हे आर्थिक सुरक्षा तथा समान अवसर आदि प्राप्त हो सकें। यह घोषणा कई बातो पर बल देती है, जैसे पूर्ण रोजगार, जीवन-स्तर को ऊंचा करना, श्रमिको को प्रशिक्षण के लिए सुविधायें देना, मजदूरी और आय से सम्बन्धित नीति अपनाना, काम करने की परिस्थितियो और समय मे सुधार करना, सामूहिक सौदाकारी के अधिकार को मान्यता देना, मालिको और श्रमिको के मध्य सहयोग स्थापित करना, सामाजिक सुरक्षा साधनो का विस्तार करना, कल्याण-कार्य, शिक्षात्मक और व्यावसायिक अवसरो मे समानता प्रदान करना, आदि आदि। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के आधारभूत सिद्धान्तो को फिलाडेलफिया की घोषणा मे निम्नलिखित शब्दो मे फिर से दोहराया गया है :—

"(क) श्रम कोई पदार्थ नही है। (ख) अभिव्यक्ति (Expression) तथा साहचर्य (Association) की स्वतन्त्रता निरन्तर प्रगति के लिए बहुत आवश्यक है। (ग) यदि किसी स्थान पर भी निर्धनता होती है तो उसके कारण हर स्थान

पर सम्पन्नता को खतरा उत्पन्न हो जाता है। (घ) दरिद्रता और अभाव के विरुद्ध युद्ध करने के लिए प्रत्येक देश में पूर्ण रूप से शक्ति लगानी होगी। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि निरन्तर तथा पूर्ण रूप से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ही प्रयत्न किये जायें। ऐसे प्रयत्न इस प्रकार हो कि मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधि सरकार के प्रतिनिधियों के साथ समान प्रतिष्ठा से स्वतन्त्र रूप से वाद-विवाद कर सकें तथा अपने सम्मान को बढाने तथा कल्याण के लिये लोकतन्त्रात्मक निर्णय कर सकें।"

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन तथा संयुक्त राष्ट्र संघ (I. L. O. and U. N. O.)

संयुक्त राष्ट्र संघ बनने के पश्चात् इस बात की व्यवस्था की गई कि संयुक्त राष्ट्र संघ और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के मध्य नियमित सम्पर्क और सहयोग बना रहे। एक समझौते द्वारा, जिसको प्रथम तो अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के माट्रियल सम्मेलन में अपनाया गया, तत्पश्चात् राष्ट्रीय संघ की सामान्य सभा मे भी अपनाया गया, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन अब राष्ट्रीय संघ के एक विशेषज्ञ ऐजेंसी के रूप में सम्बद्ध हो गया है। सन् १९४५ के पेरिस सम्मेलन तथा सन् १९४६ के माट्रियल सम्मेलन मे इस विषय में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के संविधान मे संशोधन करने की व्यवस्था पर प्रस्ताव भी पारित कर दिये गये थे।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की विभिन्न समितियाँ

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का कार्य औद्योगिक समितियो, विशेषज्ञ समितियो तथा पत्र-व्यवहार समितियों, क्षेत्रीय सम्मेलनो व सलाहकार पैनलो, प्रादेशिक समितियों और अन्य विशेष सभाओ तथा सम्मेलनो द्वारा भी सम्पादित होता है। श्रम संगठन द्वारा स्थापित औद्योगिक समितियाँ निम्नलिखित ९ उद्योगो के लिए हैं—कोयला खान, अन्तर्देशीय यातायात, लोहा और इस्पात, धातु का व्यापार, कपड़ा उद्योग, भवन निर्माण, सिविल इन्जीनियरिंग तथा सार्वजनिक कार्य, पैट्रोल का उत्पादन तथा उसका विशुद्धीकरण, रासायनिक उद्योग तथा बागान। इनके अतिरिक्त अनेक सम्बन्धित समितियाँ भी है, उदाहरणतया वेतन पाने वाले कर्मचारियो के लिए व्यावसायिक श्रमिको के लिए, आदि। ये समितियाँ त्रिदलीय होती है। इन समितियो मे प्रत्येक सदस्य राष्ट्र से २ सरकार के, २ मालिकों के और २ श्रमिकों के प्रतिनिधि होते है। भारत पैट्रोल के उत्पादन और विशुद्धीकरण के उद्योग को छोडकर अन्य सभी औद्योगिक समितियो का सदस्य रहा है और इसने उनकी कार्यवाहियों मे सक्रिय भाग लिया है। नवम्बर १९५९ से यह पैट्रोल समिति का भी सदस्य हो गया है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने कृषि, सामाजिक बीमा, दुर्घटनाओं की रोकथाम, औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान, स्त्रियों का कार्य, बाल श्रमिक, प्रवासिता और सांख्यिकी जैसी समस्याओ के लिए विशेषज्ञ समितियों तथा पत्र-व्यवहार समितियों की भी स्थापना की है। भारत अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन

की इन समितियो और सम्मेलनो मे सक्रिय भाग लेता है। भारत ने जेनेवा मे 'कौसलेट जनरल ऑफ इण्डिया' के कार्यालय मे एक श्रम अधिकारी की नियुक्ति की है, जिससे वह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की कार्यवाहियो के साथ निकट सम्पर्क रख सके। यह विभिन्न समितियो और सम्मेलनो मे भारत का प्रतिनिधित्व करता है। इसका पदनाम अब अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सलाहकार (International Labour Adviser) कर दिया गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के क्षेत्रीय श्रम सम्मेलन तथा एशियाई कार्य (Regional Labour Conferences and Asian Activities of I L O)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य क्षेत्रीय सम्मेलनो की व्यवस्था करना है। यह सम्मेलन सभी एशियाई देशो के लिए जिनमे भारत भी है, बड़ा महत्व रखते है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के सविधान मे यह बात दी हुई है कि अभिसमय अथवा सिफारिशो का निर्माण करते समय उन देशो का भी उचित रूप से ध्यान रखना चाहिये, जिनमे जलवायु औद्योगिक विकास की अपूर्णता या किन्ही अन्य विशेष परिस्थितियो के कारण औद्योगिक अवस्थाओ मे बहुत भिन्नता पाई जाती है तथा सम्मेलन को इन देशो के लिए सुधार के सुझाव देने चाहियें। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के विचार मे इस उद्देश्य की पूर्ति का सबसे अच्छा मार्ग यही था कि सदस्य राज्यो के क्षेत्रीय श्रम सम्मेलनो की व्यवस्था की जाये। इसलिए १९३६ और १९३९ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने अमेरिकन राज्यो मे प्रथम तथा द्वितीय क्षेत्रीय श्रम सम्मेलना का आयोजन किया। समय-समय पर एशियाई देशो के लिए भी इस प्रकार के सम्मेलनो का सुझाव दिया गया। सन् १९२७-२८ मे जापान के प्रतिनिधि तथा १९३० मे भारत के श्री एस० सी० जोशी ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन को इस बात के लिए प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया कि वह एक त्रिदलीय एशियाई श्रम सम्मेलन को बुलाये। श्री जोशी ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक प्रस्ताव का मसौदा रखा, जिसे 'कोरम' के अभाव मे अस्वीकार कर दिया गया। लेकिन सन् १९३१ मे जब इसी प्रस्ताव को भारत के श्री आर० आर० भाखले द्वारा पुन रखा गया, तो यह निर्विरोध स्वीकार कर लिया गया। परन्तु फिर भी अनेक कारणो से एशियाई सम्मेलन की व्यवस्था करना तो सम्भव नही हो सका यद्यपि अन्तरग सभा ने इसके महत्व का अनुभव अवश्य कर लिया था। १९३५ तथा १९३६ मे इस बात के लिए प्रस्ताव पारित किये गये कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के अन्तर्गत ही एक एशियाई समिति की स्थापना की जाय जो प्रत्येक वर्ष के बाद अपनी सभा किसी एशियाई देश मे करे।

परन्तु इस विषय पर १९४४ मे ही फिलाडेलफिया मे हुए २६वें अधिवेशन मे प्रस्ताव पारित करना सम्भव हो सका। इस प्रस्ताव मे इस बात की सिफारिश की गई कि यदि सम्भव हो तो एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन की व्यवस्था शीघ्रातिशीघ्र

की जाये, ताकि एशियाई क्षेत्रों की विशिष्ट समस्याओं पर उचित रूप से विचार-विनिमय किया जा सके। भारत सरकार ने भारत में एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन का आयोजन करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन को आमन्त्रित किया और इस निमन्त्रण को स्वीकार भी कर लिया गया। सन् १९४७ मे २७ अक्तूबर से लेकर ८ नवम्बर तक एक प्रारम्भिक एशियाई क्षेत्रीय श्रम सम्मेलन नई दिल्ली मे हुआ। सम्मेलन मे अनेक देशो के प्रतिनिधि-मण्डलो ने भाग लिया था। इनमे निम्नलिखित देश थे—अफगानिस्तान, आस्ट्रेलिया, बर्मा, लका, कोचीन-चायना, चीन, फ्रांस, भारत मे फ्रांस की बस्तियाँ, इगलैण्ड, मलाया, हिन्दचीन, नीदरलैण्ड, न्यूजीलैण्ड, स्याम, सिंगापुर, भारत और पाकिस्तान। इस सम्मेलन मे पर्यवेक्षक प्रतिनिधि-मण्डल अमेरिका और नेपाल से भी आये तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की अतरग सभा का भी एक प्रतिनिधि-मण्डल था। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की अतरग सभा के अध्यक्ष श्री जी० एम० ईवान्स ने इस सम्मेलन का उद्घाटन किया। इस अवसर पर प० नेहरू ने इस बात की आशा प्रकट की कि सम्मेलन एशिया के सामान्य व्यक्ति को दृष्टिकोण मे रखकर सभी समस्याओ पर विचार करेगा, ताकि केवल यही नही कि "इस या उस देश मे जीवन-स्तर ऊँचा हो वरन् प्रत्येक स्थान पर जीवन-स्तर ऊँचा हो सके।" भारत सरकार के तत्कालीन श्रम मन्त्री श्री जगजीवन राम को इस सम्मेलन का सर्वसम्मति से अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। अपने अध्यक्ष पद से बोलते हुए उन्होने कहा था कि एशियाई क्षेत्रीय श्रम सम्मेलनो का कार्य इस विषय पर विचार करना होना चाहिये कि आर्थिक विकास की भावी योजनाओं मे हम कैसे सहयोग दे और इस प्रकार के विकास से जो राष्ट्रीय सम्पत्ति मे वृद्धि हो उसका समय-समय पर कैसे मूल्यांकन करे तथा न्यायोचित आधार पर इस सम्पत्ति के वितरण करने की योजनाओ का कैसे निर्माण करें। इस सम्मेलन में २३ प्रस्ताव पारित किये गये। इनमें से महत्वपूर्ण प्रस्ताव निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित थे—सामाजिक सुरक्षा, श्रम नीति, उत्पादन कार्यकुशलता, कृषि उत्पादन तथा सहकारिता पद्धति का महत्व, रोजगार सेवायें, पारिवारिक बजट पूछताछ, कार्यवाही का कार्यक्रम, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के एशियाई कार्य मे तीव्रता, जापान और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की त्रिदलीय व्यवस्था तथा श्रम सगठन के सामाजिक उद्देश्य।

उसी समय से एशिया मे क्षेत्रीय सम्मेलन नियमित रूप से होने लगे हैं और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन एशिया और उसकी समस्याओ में अधिक रुचि प्रकट कर रहा है। अन्तरग सभा के १११वें अधिवेशन ने एशियाई समस्याओं तथा समान समस्याओ के एशियाई पहलुओ पर अन्तरग सभा को परामर्श देने के लिए त्रिदलीय आधार पर एक एशियाई सलाहकार समिति की स्थापना करने का निश्चय किया। २४ जून, सन् १९५० को जेनेवा मे इस समिति की प्रथम सभा का आयोजन किया गया। तब से नवम्बर १९६६ तक इस एशियाई सलाहकार समिति के १३ अधिवेशन हो चुके हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का द्वितीय एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन

जनवरी सन् १९५० में श्रीलंका में 'नुवारा इलियो' नामक स्थान पर हुआ। भारत ने इस सम्मेलन में एक त्रिदलीय प्रतिनिधि-मण्डल भेजा था। इस सम्मेलन में १६ प्रस्ताव स्वीकार किये गये, जो निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित थे—अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एशियाई कार्यों में तीव्रता लाना, अन्तरंग सभा में एशियाई प्रतिनिधित्व, एशियाई समुद्री कर्मचारियों की समस्या, तकनीकी सहायता, श्रम निरीक्षण, सहकारिता आन्दोलन, श्रमिक कल्याण, व्यावसायिक तथा तकनीकी प्रशिक्षण, कृषि श्रमिक और उनकी मजदूरी, श्रम शक्ति का उचित संगठन, आदि।

तीसरा एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन सितम्बर, सन् १९५३ में जापान में टोकियो में हुआ। सम्मेलन में पहले की भाँति अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के डायरेक्टर जनरल की रिपोर्ट पर विचार-विनिमय हुआ। इस सम्मेलन ने बहुत तर्क-वितर्क के उपरान्त तीन मुख्य विषयों पर प्रस्ताव पारित किये - एशियाई देशों में मजदूरी की समस्याओं की नीति, श्रमिकों के मकानों की समस्यायें तथा किशोरों की सुरक्षा।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन का चौथा अधिवेशन नवम्बर, सन् १९५७ ई० में नई दिल्ली में हुआ। इसकी कार्यावली में डायरेक्टर जनरल की रिपोर्ट के अतिरिक्त निम्नलिखित विषय थे—(१) एशियाई देशों में छोटे पैमाने के दस्तकारी उद्योगों में श्रम और सामाजिक समस्यायें, (२) कृषि में कार्य करने वाले स्वतन्त्र और अर्द्ध स्वतन्त्र वर्गों के श्रमिकों, जैसे—बटाई पर कार्य करने वाले और आसामी कृषक के जीवन और कार्य की दशायें, तथा (३) श्रमिक और प्रबन्धकों के पारस्परिक सम्बन्ध। इस सम्मेलन का उद्घाटन प० नेहरू ने किया था। उन्होंने श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने पर विशेष बल दिया। तात्कालिक केन्द्रीय श्रम तथा आयोजना मंत्री श्री गुलजारीलाल नन्दा इस सम्मेलन के अध्यक्ष थे।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन का पाचवाँ एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन 'मेलबोर्न' में २६ नवम्बर १९६२ से ७ दिसम्बर १९६२ तक हुआ। इस सम्मेलन में निम्नलिखित विषयों पर प्रस्ताव बहुमत से पारित किया गया, जिस प्रस्ताव को मेलबोर्न प्रस्ताव कहा जाता है —(क) श्रम शक्ति का अपव्यय दूर करने के लिये तथा आर्थिक विकास के लिये मानवीय साधनों का पूर्ण रूप से उपयोग करने के लिए रोजगार में वृद्धि करना, (ख) व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा प्रबन्ध व्यवस्था का विकास, तथा (ग) श्रमिक प्रबन्धक सम्बन्धों में उन्नति करने के लिये तथा औद्योगिक विवादों के निपटारे के लिये सरकारी सेवाओं की व्यवस्था। इस सम्मेलन में १९ देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। भारत को इस समय राष्ट्रीय संकट कालीन अवस्था के कारण अपना प्रतिनिधि मण्डल इस सम्मेलन से वापिस बुलाना पड़ा परन्तु भारत का प्रतिनिधित्व एक पर्यवेक्षक द्वारा किया गया।

यह उल्लेखनीय है कि फिलीपाइन की सरकार की प्रेरणा पर मनीला में १२ से १६ दिसम्बर १९६६ तक एशियायी श्रम मन्त्रियों का एक सम्मेलन आयोजित हुआ था। भारत से केन्द्रीय श्रम मन्त्री सम्मेलन में सम्मिलित हुये थे। सम्मेलन में

१३ देशों ने भाग लिया था और इस बात पर विचार किया था कि श्रम कल्याण, मानवशक्ति के नियोजन तथा आर्थिक विकास के मामलों में एशिया के देशों के बीच पारस्परिक सहायता एवं विचार-विमर्श की कितनी अधिक आवश्यकता है। सम्मेलन ने एशियाई मानव शक्ति योजना के उस प्रस्ताव का स्वागत किया जिसकी सिफारिश २८ नवम्बर से ७ दिसम्बर १९६६ तक सिंगापुर में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की एशियाई सलाहकार समिति के १३वें अधिवेशन द्वारा की गई थी। सम्मेलन ने इस बात पर जोर दिया कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन एशिया में शीघ्र ही एक क्षेत्रीय सेमिनार का आयोजन करे। सेमिनार में कृषि श्रमिकों के निम्न स्तरों से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार किया जाए और उस क्षेत्र के देशों के लिए उनके समाधान के लिये समुचित पगों का सुझाव दिया जाए।

इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भारत तथा विभिन्न एशियाई देशों में सम्मेलनों के लिए सामग्री एकत्रित करने, सहकारिता आन्दोलन का अध्ययन करने, सामाजिक सुरक्षा पर सलाह देने, श्रम शक्ति के क्षेत्र मे तकनीकी सहायता की आवश्यकताओं की जांच करने, उत्पादकता और प्रशिक्षण आदि के लिये अनेक मिशन भेजे है। इसने एशियाई देशों में केवल अपने विशेषज्ञ ही नही भेजे है, अपितु एशियाई देशों के नागरिकों के लिए अधिछात्रवृत्तियां और छात्रवृत्तियाँ भी प्रदान की हैं। सन् १९५९ में जेनेवा मे हुए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के ४३वें अधिवेशन में भारत और अमेरिका ने संयुक्त रूप से यह प्रस्ताव रखा कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की क्षेत्रीय कार्यवाहियों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। ऐशियन सलाहकार समिति के आधार पर ही अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की एक विशेष अफ्रीकन सलाहकार समिति बनाई गई है। दिसम्बर १९६० मे लागोस (Lagos) नामक स्थान (नाइजीरिया) में पहला अफ्रीकन क्षेत्रीय सम्मेलन हुआ, जिसमे अफ्रीका के ३० राज्यो ने भाग लिया। इस सम्मेलन में अफ्रीका में व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण तथा मालिक-मजदूर सम्बन्धों पर विचार विमर्श हुआ।

यहाँ यह बात भी विशेष उल्लेखनीय है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने एशियाई श्रमिको के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम भी प्रारम्भ किए हैं। इस कार्यक्रम के अनुसार पहला क्षेत्रीय कार्यालय सन् १९४९ में बना, जबकि बंगलौर में एशियाई श्रमशक्ति फील्ड कार्यालय (Asian Manpower Field Office) के नाम से एक सस्था की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य यह था कि संसार की श्रम-शक्ति का कठिन कार्यों में भी उचित प्रकार से उपयोग हो सके। यह कार्यालय एशियाई तथा सुदूर पूर्व के देशों को उनके तकनीकी प्रशिक्षण कार्यक्रम में सुधार करने के लिये तकनीकी सहायता प्रदान करता है। यह तकनीकी प्रशिक्षण में एक क्षेत्रीय अनुसंधान तथा सूचना केन्द्र के रूप मे भी कार्य करता है। भारतीयों के अन्तर्कार्य-प्रशिक्षण कार्य-क्रम के दो अधिवेशन पहले ही हो चुके है। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के अर्द्ध-विकसित देशों के लिये 'तकनीकी सहायता कार्यों' के अन्तर्गत २६ अप्रैल सन् १९५१ के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के साथ किये गये

समझौते पर भारत सरकार ने हस्ताक्षर किये । श्रम सांख्यिकी पर दिसम्बर, १९५१ मे नई दिल्ली मे, कारखाना निरीक्षण पर फरवरी १९५२ मे कलकत्ते मे, पर्यवेक्षण प्रशिक्षण पर अगस्त, १९५७ मे सिंगापुर में और व्यावसायिक मार्ग प्रदर्शन तथा रोजगार सम्बन्धी परामर्श पर नवम्बर, १९५७ मे नई दिल्ली मे क्षेत्रीय गोष्ठियों का आयोजन किया गया । एशियाई देशो के नागरिको के लिए सहकारिता पर १९५२ मे कोपिनहैगन १९५३ तथा १९५४ मे लाहौर, १९५५ म बाडुंग, १९५६ मे मैसूर तथा १९५७ मे श्रीलका मे प्रशिक्षण पाठ्यक्रमो की व्यवस्था की गई । भारत सरकार न अनेक समस्याओ पर तकनीकी परामर्श और सहायता की प्रार्थना की है । सन १९५३ की शरद ऋतु मे कर्मचारी 'राज्य बीमा योजना' के सगठन तथा चिकित्सा लाभ के लिए डाक्टरो की सूची प्रणाली पर परामर्श देने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के तीन विशेषज्ञो की सेवाये भारत द्वारा प्राप्त की गई । दिसम्बर १९५२ मे परिणाम देखकर भुगतान करने की पद्धति पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के पाँच विशेषज्ञ भारत मे आये । इन्होने वषडा तथा इजीनियरिंग उद्योगो मे इन विषयो पर तकनीकी सहायता प्रदान की । फरवरी १९५३ मे बागान कर्मचारियो को अन्य रोजगार प्राप्त करने के सम्बन्ध मे परामर्श देने के निमित्त एक जापानी व्यावसायिक प्रशिक्षण के विशेषज्ञ की सेवायें अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के द्वारा प्राप्त की गयीं । अगस्त, १९५३ मे 'अन्तर्वर्ग प्रशिक्षण तकनीक' को प्रसार और बढावा देने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के एक विशेषज्ञ की सेवायें भी प्राप्त की गयी । १९५४ मे एक अन्य विशेषज्ञ आये । जून, १९५६ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने दो प्रवर शिक्षक भेजे जिनमे से एक तो इजीनियरिंग और उससे सम्बद्ध व्यवसायो के लिये था तथा दूसरा मशीनो को चालू रखने का विशेषज्ञ था । भारत ने सन् १९५७ तथा १९५८ मे भी उत्पादकता, रोजगार सूचना, बेरोजगारों के लिए व्यावसायिक शिक्षा, व्यावसायिक विश्लेषण तथा सुरक्षा आदि के क्षेत्रो मे विशेषज्ञो की सेवायें प्राप्त की । १९५८ मे औद्योगिक सम्बन्धों के ब्रिटिश विशेषज्ञ प्रो० जे० एच० रिचर्डसन की सेवायें प्राप्त की गई १९५९–६० तथा उसके पश्चात् भी विशेषज्ञो की सेवाये चालू रही हैं । सन् १९५९ मे प्रशिक्षण और श्रमिक शिक्षा के लिए भी दो विशेषज्ञ आये और तीन विशेषज्ञ—एक उत्पादकता पर और दो खानो की सुरक्षा पर—१९६० मे भारत आये । श्रमिक सघवाद, श्रम प्रशासन, सामाजिक सुरक्षा, श्रमिक शिक्षा सुरक्षा, निरीक्षण आदि के प्रशिक्षण के लिये ५० प्रशिक्षार्थियो का विभिन्न देशो मे भेजा गया । अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की छात्रवृत्ति लिए हुए इंडोनेशिया, थाइलेण्ड, श्रीलका व पीरू के चार छात्रो ने भारत मे प्रशिक्षण पाया है । अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के विशेषज्ञो के रूप मे दो भारतीयो को विदेशो मे भेजा गया जिनमे से एक कुटीर उद्योगो के क्षेत्र मे सहायता देने के लिए वर्मा गया तथा दूसरा सहकारिता क्षेत्र मे सहायता देने के लिए फिलीपाइन्स गया था । कुछ अन्य विशेषज्ञो को भी भारत से बुलाया गया । १९५९ के अन्त तक सात भारतीय विशेषज्ञो के रूप म दूसरे

देशों में कार्य कर रहे थे। १९६३ में उनकी संख्या २३ हो गयी थी। नवम्बर १९६० में नई दिल्ली में एक 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का एशियाई क्षेत्रीय सामाजिक सुरक्षा में प्रशिक्षण पाठ्यक्रम' का भारत सरकार तथा अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा परिषद के सहयोग से आयोजन किया गया। इसमें विभिन्न एशियाई देशों के तीस व्यक्तियों ने भाग लिया। १९६१ में इन्जीनियरिंग उत्पादकता प्रशासन तथा कार्मिक प्रबन्ध पर चार विशेषज्ञ भारत आये। ९ व्यक्ति विदेशों में प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिये भेजे गये और सात व्यक्ति प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिये अन्य देशों से भारत आये। सन् १९६३ में, उत्पादकता में दो विशेषज्ञों की और 'व्यावसायिक मार्ग दर्शन' में एक विशेषज्ञ की सवायें भारत को प्राप्त हुई। सन् १९६४ में, 'औद्योगिक मनोविज्ञान' पर एक विशेषज्ञ, पंच निर्णय, मध्यस्थता व सुलह' पर एक और श्रमिक संघ सेवाओं के क्षेत्र में एक विशेषज्ञ भारत आये। भारत ने भी अन्य देशों को सहायता दी। जनशक्ति नियोजन के विशेषज्ञ संयुक्त अरब गणराज्य तथा थाईलैंड को और नियोजन के विशेषज्ञ ईराक भेजे गये। संयुक्त राष्ट्र के विशेष निधि कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत को प्रशिक्षकों की प्रशिक्षण संस्थाओं के अनेक विशेषज्ञों की सेवायें प्राप्त हुई। इन संस्थानों को निधि से कीमती सामान भी मिला।

क्षेत्रीय सम्मेलनों का महत्व तथा उनसे लाभ

क्षेत्रीय श्रम सम्मेलनों के अनेक लाभ हैं और यदि स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखना है तो ऐसे सम्मेलनों की बहुत आवश्यकता है। एशिया की श्रम शक्ति की कुछ अपनी विशेषतायें हैं, जो पश्चिमी औद्योगिक उन्नत देशों में नहीं पाई जाती। एशियाई देशों में यह भावना बहुत दिनों से चली आ रही है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के आम सम्मेलनों में उनकी विशेष सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं पर पर्याप्त रूप से ध्यान नहीं दिया जाता, क्योंकि इन सम्मेलनों में पश्चिमी देश अधिकतर छाए हुए हैं। इस प्रकार के क्षेत्रीय सम्मेलन होने से ऐसी शिकायतें दूर हो जाएँगी। भारत और अन्य एशियाई देश अब अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में दिन-प्रतिदिन अपना महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करते जा रहे हैं। अतः यह स्वाभाविक ही है कि वे इस प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनों के केवल पर्यवेक्षक (Observers) मात्र न रहें, अपितु उनमें अधिक से अधिक सक्रिय भाग लें। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की जब स्थापना हुई थी तब पश्चिमी देशों ने औद्योगिक विकास में परिपक्वता प्राप्त कर ली थी और उनकी मुख्य समस्यायें पूँजी तथा श्रम में समझौता श्रमिकों की परिस्थितियों में सुधार तथा सामाजिक सुरक्षा आदि थी। ये समस्यायें एशिया के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण हैं, लेकिन जैसा कि १९४७ में एशियाई श्रम सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए प० नेहरू ने अपने भाषण में कहा था कि एशियाई देशों की मुख्य आर्थिक और श्रम समस्यायें ऐसी है जिनके अन्तर्गत हमें यह देखना है कि मध्यकालीन कृषि अर्थ व्यवस्था को बदल कर आधुनिक

वैज्ञानिक कृषि और औद्योगिक अर्थ व्यवस्था मे कैसे लाया जाये । अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने इन समस्याओ पर बिल्कुल ध्यान नही दिया था। क्षेत्रीय सम्मेलन अब इन दोषो को दूर कर देंगे । इन सम्मेलनो के उपरान्त अब इस बात का अनुभव कर लिया गया है और इस बात पर जोर भी दिया जा रहा है कि अधिक विकसित देशो द्वारा अर्द्ध-विकसित देशो को तकनीकी और आर्थिक सहायता मिलने की आवश्यकता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन अब एशियाई और अफ्रीकी देशो की ओर भी अधिक ध्यान दे रहा है।

इसमे तो कोई सन्देह नही कि एशियाई समस्याओ के लिये क्षेत्रीय रूप से जो प्रयत्न किये जा रहे हैं, वह सराहनीय हैं। परन्तु इसके साथ ही हमे अन्तरग सभा के अध्यक्ष की इस चेतावनी को भी ध्यान मे रखना चाहिये कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के मूल आधारो मे जो सामान्य आदर्श और सामान्य जीवन-स्तर का आधार है उसमे किसी प्रकार की रुकावट नही पडनी चाहिए। एशिया के आर्थिक पिछड़ेपन को केवल एक अस्थायी अयोग्यता समझना चाहिये और जितनी जल्दी सम्भव हो इसको समाप्त कर देने के प्रयत्न करने चाहिये। यदि क्षेत्रीय सम्मेलनो द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस पिछडेपन को स्थिर रखने के लिए कोई कार्य किया जाता है और यह सम्मेलन एशिया को एक हीन आर्थिक इकाई के रूप मे मानकर चलते हैं तो इससे लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक होगी। क्षेत्रीय श्रम सम्मेलनो को एशिया के आर्थिक पिछडेपन को दूर करने की भावना से ही कार्य करना चाहिये जिससे इन देशो के ग्रामीण और शहरी श्रमिक उसी प्रकार का जीवन स्तर अपना सकें और सामाजिक बुराइयो से अपनी उसी प्रकार रक्षा कर सकें जिस प्रकार कि प्रगतिशील देशो के श्रमिक करते हैं। इसके साथ ही जो भी क्षेत्रीय कार्य होते हैं उनको अन्तर्राष्ट्रीय ढाँचे मे ही करना चाहिये क्योकि निर्धनता और अभाव की समस्याओं के समाधान के लिये केवल उन्ही लोगो का सहयोग नही चाहिये जो उनसे पीडित हैं वरन् सभी लोगो के सहयोग की आवश्यकता है।

भारत द्वारा अपनाये गये अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के अभिसमय

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने १९६६ तक अपने ५० अधिवेशनो मे १२६ अभिसमय और १२८ सिफारिशें पारित की हैं जिनमे से केवल २६ अभिसमय भारत द्वारा अपनाए गए हैं। ये अभिसमय निम्नलिखित है—

(१) कार्य के घण्टो (उद्योग) से सम्बद्ध सन् १९१९ का अभिसमय नं० १— यह अभिसमय औद्योगिक व्यवसायों मे काम करने के घण्टो को एक दिन मे ८ और सप्ताह मे ४८ तक सीमित करने के सम्बन्ध मे है। इस अभिसमय को भारत ने अपने लिए पारित किये गये कुछ विशेष नियमो के आधार पर १४ जुलाई १९२१ को अपनाया था। वह आधार यह था कि "ब्रिटिश भारत मे उन समस्त श्रमिको के लिए, जो कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले उद्योगो मे काम करते है, या खानो मे काम करते हैं या रेलवे कार्य के उन विभागो मे कार्य करते है जो

किसी उचित प्राधिकारी द्वारा निश्चित कर दी गई है, "६० घन्टे प्रति सप्ताह" का सिद्धान्त लागू किया जाए।"

(२) स्त्रियों के लिये रात्रि में काम करने से सम्बद्ध १६१६ का अभिसमय नं० ४—यह अभिसमय रात्रि में स्त्रियों को कार्य पर लगाना निषेध करता है। भारत सरकार ने एक विशेष नियम के आधार पर १४ जुलाई १६२१ को इसे अपनाया था। इस विशेष नियम के अनुसार भारत सरकार को यह अधिकार है कि किसी भी औद्योगिक व्यवसाय के सम्बन्ध में इस अभिसमय को निलम्बित (Suspend) कर सकती है।

(३) किशोरों के रात्रि में काम करने से सम्बद्ध १६१६ का अभिसमय नं० ६—इसके अन्तर्गत उद्योगों में लगे हुये किशोरों को रात्रि में काम पर लगाना निषिद्ध है। एक विशेष नियम के आधार पर १४ जुलाई १६२१ को इसे अपनाया गया था, अर्थात् भारतीय कारखाना अधिनियम द्वारा पारिभाषित कारखानों में १४ वर्ष से, कम आयु के बालकों को रात्रि के समय कार्य पर नहीं लगाया जा सकता।

(४) कृषि कर्मचारियों के संगठन और समुदाय बनाने के अधिकार से सम्बद्ध १६२१ का अभिसमय नं० ११—यह ११ मई १६२३ को अपनाया गया।

(५) 'साप्ताहिक अवकाश (उद्योग) अभिसमय' नामक १६२१ का अभिसमय नं० १४—यह अभिसमय औद्योगिक व्यवसायों में कर्मचारियों के लिये सप्ताह में २४ घण्टे के अवकाश की व्यवस्था करता है। इसे ११ मई १६२३ को अपनाया गया।

(६) सन् १६२१ का अभिसमय नं० १५—ट्रीमर या स्टोकस का कार्य करने वाले किशोरों को रोजगार पर लगाने की न्यूनतम आयु इस अभिसमय द्वारा निर्धारित की गई है। यह अभिसमय २० नवम्बर १६२२ को भारत द्वारा अपनाया गया।

(७) समुद्र में रोजगार पर लगे हुए किशोरों और बालकों के लिये अनिवार्य चिकित्सा जांच उपलब्ध करने से सम्बद्ध १६२१ का अभिसमय नं० १६—यह अभिसमय २० नवम्बर १६२२ को अपनाया गया।

(८) व्यवसायजनित रोगों में श्रमिकों की क्षति पूर्ति की व्यवस्था करने से सम्बद्ध १६२५ का अभिसमय नं० १८—इसे ३० सितम्बर १६२७ को भारत ने अपनाया।

(६) दुर्घटनाओं में श्रमिकों को क्षति पूर्ति देने के विषय में देशी और विदेशी कर्मचारियों से समान व्यवहार करने से सम्बद्ध १६२५ का अभिसमय नं० १६—यह भी ३० सितम्बर १६२७ को अपनाया गया।

(१०) १६२६ का अभिसमय नं० २१—इस अभिसमय में जहाज पर पहुँचे हुये उप-प्रवासियों के निरीक्षण को सरल करने के नियमों का उल्लेख किया गया है। इसमें इस बात की व्यवस्था है कि इस प्रकार का निरीक्षण एक से अधिक

सरकारें किया करेंगी और उपप्रवासियों (Emigrants) के सरकारी निरीक्षक की नियुक्ति उस देश की सरकार करेगी जिस देश का उस जहाज पर भण्डा लहरा रहा होगा। १४ जनवरी सन् १९२८ को भारत ने यह अभिसमय अपनाया।

(११) सन् १९२६ का अभिसमय न० २२—इस अभिसमय में जहाज के मालिकों और उनके समुद्री कर्मचारियों के मध्य समझौते के अन्तर्नियमों की व्यवस्था की गई है। जहाज के मालिकों और समुद्री कर्मचारियों दोनों को ही समझौते के अन्तर्नियमों पर हस्ताक्षर करने होंगे। साथ ही समझौते पर हस्ताक्षर करने से पूर्व अन्तर्नियमों की जाँच करने की सुविधायें भी प्रदान की जायेंगी। भारत ने यह अभिसमय ३१ अक्तूबर १९३२ को अपनाया।

(१२) १९२९ का अभिसमय नं० २७—इस अभिसमय में जहाजों द्वारा यातायात किये गये भारी-भारी गट्ठरों पर भार का चिह्न लगाने की व्यवस्था की गई है। भारत ने यह अभिसमय ७ सितम्बर १९३१ को अपनाया।

(१३) जहाजों पर माल चढ़ाने और उतारने में होने वाली दुर्घटनाओं से श्रमिकों की सुरक्षा की व्यवस्था से सम्बद्ध १९३२ का अभिसमय न० ३२ यह अभिसमय १९३४ के भारतीय गोदी कर्मचारी अधिनियम को कार्यान्वित करके फरवरी १९४८ को अपनाया गया।

(१४) रात्रि के समय स्त्रियों को रोजगार पर न लगाने से सम्बद्ध १९३४ का अभिसमय न० ४१ —भारत ने २२ नवम्बर १९३५ को यह अभिसमय उसी प्रकार अपनाया था जिस प्रकार १९१९ का अभिसमय न० ४ अपनाया गया था। १९३४ का यह अभिसमय संशोधित अभिसमय था। इसमें एक नया उपबन्ध इस विषय में था कि जो स्त्रियाँ प्रशासन में उत्तरदायी पदों पर आसीन है और जो साधारण तथा सामान्य कार्य नहीं करती हैं उन पर १९१९ का मूल अभिसमय लागू नहीं होगा। लेकिन यह अभिसमय अब प्रचलन में नहीं रहा है क्योंकि इसी विषय से सम्बन्धित नवीनतम अभिसमय न० ८९ को भारत ने अपना लिया है।

(१५) १९३५ का अभिसमय न० ४५—यह अभिसमय किसी भी खान के भीतर स्त्रियों को काम पर न लगाने के सम्बन्ध में था। इसे २५ मार्च १९३८ को अपनाया गया।

(१६) १९४६ का अभिसमय न० ८०—इसको "अन्तिम अन्तर्नियम संशोधित अभिसमय" (Final Articles Revision Convention) भी कहा जाता है। यह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के संविधान में परिवर्तन करने से सम्बद्ध है। भारत ने यह अभिसमय १७ नवम्बर १९४७ को अपनाया।

(१७) १९४७ का अभिसमय न० ८१—इसको श्रम निरीक्षण अभिसमय भी कहा जाता है। यह अभिसमय उद्योग और वाणिज्य में श्रमिकों के निरीक्षण के सम्बन्ध में है। ७ अप्रैल १९४९ को यह अपनाया गया।

(१८) उद्योग में काम पर लगी हुई स्त्रियों को रात्रि में रोजगार देने से

सम्बद्ध १९४८ का **अभिसमय नं० ८९**—यह एक सशोधित अभिसमय था। २ मार्च १९५० को यह भारत द्वारा अपनाया गया।

(१९) १९४८ का अभिसमय नं० ९०—उद्योग में रोजगार पर लगे हुए किशोरो के रात्रि में काम करने से सम्बद्ध यह एक सशोधित अभिसमय था। २७ फरवरी १९५० को यह भारत द्वारा अपनाया गया।

(२०) १९३० का **अभिसमय नं० २९**—यह अभिसमय सभी प्रकार की बेगार को समाप्त करने के सम्बन्ध में है। भारत मे यह अभिसमय ३० नवम्बर १९५४ को अपनाया गया।

(२१) १९२८ का **अभिसमय नं० २६**—इसके अन्तर्गत इस बात की व्यवस्था है कि कुछ व्यवसायो में एक न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की जाये। भारत ने यह अभिसमय १० जनवरी १९५५ को अपनाया। १९४८ को न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत इस प्रकार की व्यवस्था पहले ही से कर दी गई थी।

(२२) १९३० का न्यूनतम आयु (उद्योग) नामक १९१९ का **अभिसमय न० ५**—इसे भारत ने ९ सितम्बर १९५५ को अपनाया।

(२३) पुरुषो और स्त्रियों के लिये समान मूल्य के समान कार्यो के लिये समान पारिश्रमिक से सम्बद्ध १९५१ का **अभिसमय** नं० १००—भारत ने यह अभिसमय २५ सितम्बर १९५८ को अपनाया।

(२४) १९५७ का स्वतन्त्र देशो की देशीय व अन्य आदिम तथा अर्ध-आदिम जातियो की सुरक्षा तथा संगठन से सम्बन्धित **अभिसमय** नं० १०७—भारत ने यह अभिसमय २९ सितम्बर १९५८ को अपनाया।

(२५) १९४८ का रोजगार सेवा सगठन सम्बन्धी **अभिसमय** न० ८८—भारत ने इसे २४ जून १९५९ को अपनाया।

(२६) १९५८ का **अभिसमय नं० १११**—यह रोजगार और व्यवसाय में भेद-भाव करने से सम्बन्धित है। भारत ने इसे ३ जून १९६० को अपनाया।

(२७) १९६१ का ***अभिसमय नं० ११६***—इसको "अन्तिम अन्तर्नियम सशोधित अभिसमय" भी कहा जाता है। यह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के संविधान मे परिवर्तन करने से सम्बद्ध है। भारत ने यह अभिसमय २२ जून १९६२ को अपनाया।

(२८) १९३४ का सशोधित श्रमिक क्षति पूर्ति (व्यवसायजनित रोग) **अभिसमय नं० ४२**—भारत ने इसे १३ जनवरी १९६४ को अपनाया।

(२९) १९६२ का **अभिसमय नं० ११८**—जिसे सामाजिक सुरक्षा मे राष्ट्रीय तथा विदेशी लोगो से व्यवहार की समानता का अभिसमय कहा जाता है। यह अभिसमय भारत ने १९ अगस्त १९६४ को अपनाया।

इन अभिसमयो को अपनाये जाने से विभिन्न कारखाना अधिनियमो मे सशोधन किये गए है। यह सशोधन ऐसे अभिसमयों को कार्यान्वित करने के लिये किए गए हैं जो काम करने के घण्टो, स्त्रियो के रात्रि मे काम करने, साप्ताहिक

अवकाश आदि से सम्बन्धित है तथा कई अधिनियमो मे, जैसे भारत खान अधिनियम, रेलवे अधिनियम, श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम आदि, मे संशोधन हुये हैं। अनेक अन्य अभिसमयो को सरकारी अधिसूचना द्वारा अपनाया गया है।*

१९५४ मे सरकार ने ३ सदस्यो की एक त्रिदलीय समिति अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के ऐसे अभिसमयो और सिफारिशो पर विचार करने के लिये बनाई जो भारत ने नही अपनाये थे ताकि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम स्तर को भारत मे भी लागू करने का कार्य तेजी से हो सके। इस समिति की सिफारिशो के परिणामस्वरूप ही अन्तिम ६–७ अभिसमय, जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, भारत द्वारा अपनाये गये है। कुछ अन्य अभिसमयो को भी अपनाने का सुझाव दिया गया है, उदाहरणतया 'काम करने के घण्टो तथा मजदूरी के आँकडो से सम्बद्ध १९३८ का अभिसमय न० ६३' तथा 'कृषि मे न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था करने से सम्बद्ध १९५१ का अभिसमय न० ९९'।

अन्य अभिसमयो का प्रभाव

इसके अतिरिक्त भारत ने विभिन्न अभिसमयो के अनेक आवश्यक भागों को अपने राष्ट्रीय विधान मे सम्मिलित कर लिया है। उदाहरणतया १९१९ के प्रसव काल से सम्बद्ध अभिसमय न० ३ की धारायें विभिन्न मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियमो मे आ गई हैं, १९३६ के सवेतन छुट्टियो से सम्बद्ध अभिसमय न० ५२ के परिणामस्वरूप ही अनेक राज्यों में श्रमिकों को छुट्टियां देने के लिये पग उठाये गये हैं, आदि आदि।

भारत मे अधिक अभिसमय न अपनाये जाने के कारण

साधारणतया यह शिकायत की जाती है कि भारत द्वारा अपनाये गये अभिसमयो की सख्या बहुत कम है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के १२६ अभिसमयो मे से भारत ने अब तक केवल २६ अभिसमय अपनाये है, जिनमे से एक को त्याग दिया गया है। परन्तु सच यह है कि इन अभिसमयो के न अपनाये जाने का कारण यह नही है कि इनमे जो आवश्यक अच्छाइयाँ निहित हैं उनको मान्यता नही दी गई है, वरन् इसका कारण अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का वह नियम है जिसके अनुसार यह अनिवार्य है कि प्रत्येक अभिसमय को बिना किसी परिवर्तन या सशोधन के अपनाया जाय। अत या तो किसी भी अभिसमय को पूर्ण रूप से स्वीकार करना होता है अथवा अस्वीकार करना पडता है। भारत में अनेक अभिसमय कुछ शर्तों के अनुसार ही अपनाये जा सकते थे, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के नियमो

* अभिसमय न० २ (१९१९ का बेरोजगारी अभिसमय) को भारत ने अपनाया था परन्तु सन् १९३८ मे इसे त्याग दिया। १९३४ का अभिसमय न० ४१ भी अब प्रचलन में नही है, क्योकि इसके स्थान पर अब १९४८ के अभिसमय न० ८९ को अपना लिया गया है।

ने इस बात की अनुमति नहीं दी। अतः इस विषय में संशोधन की आवश्यकता है, जिससे कुछ विशेष अभिसमयों को यदि पूर्ण रूप से सम्भव न हो सके तो शनैः शनैः अपनाया जा सके। इसके अतिरिक्त, अनेक अभिसमय ऐसे विषयों से सम्बद्ध है जिनका भारत से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। अतः उनके अपनाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का श्रम विधान पर प्रभाव

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भारतीय श्रम विधान की प्रगति को अत्यधिक मात्रा में प्रभावित किया है। जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, भारत ने अनेक महत्वपूर्ण अभिसमय अपनाये हैं, जिनको देश के श्रम विधान में सम्मिलित कर लिया गया है। अन्य अभिसमयों का भी अनेक अधिनियमों की प्रगति पर प्रभाव पड़ा है। इसके अतिरिक्त इस बात को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि भारतीय विधान सभा द्वारा कई अभिसमयों पर विचार-विनिमय करने के फलस्वरूप सामाजिक प्रगति को एक नई प्रेरणा मिली है, जिस पर विभिन्न मत के लोगों द्वारा भी एक-मत प्रकट किया गया है। किसी अभिसमय पर वाद-विवाद करने से ही अनेक श्रम समस्याएँ प्रकाश में आ जाती हैं। 'सर एण्ड्रयू क्लोव' ने, जो किसी समय भारत सरकार के सदस्य थे, एक बार कहा था कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन श्रमिकों की समस्याओं में जनता की रुचि को उभारने का साधन रहा है। कभी-कभी तो इस संगठन ने श्रमिकों के हित के लिये ऐसे पग उठाने के लिये प्रोत्साहित किया है जो संगठन के अभाव में कदाचित कभी सम्भव न हो पाते। परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से भारतीय श्रम सुधार कार्यों में जो भी प्रगति हुई है, उसके लिये रॉयल श्रम आयोग ने भी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रयत्नों की प्रशंसा की है। मालिक भी उन पर्याप्त लाभों को स्वीकार करते हैं, जिन्हें हमारा देश अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन से सम्बन्धित होने के नाते प्राप्त कर रहा है। परन्तु मालिकों को यह भी भय रहा है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन प्रत्यक्ष रूप से प्रयत्न किये बगैर भी देश में श्रम विधान की प्रगति में तीव्रता न ला दे।

इसके अतिरिक्त अनुभव ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि यदि कुछ अभिसमय किसी देश में अपनाये नहीं भी जाते, फिर भी उनसे एक निश्चित सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति होती है। अनेक बार ऐसा होता है कि यदि संसार के प्रमुख देश किसी अभिसमय को अपना लेते हैं, तब इसी कारण सामान्य रूप से अभिसमयों को मान्यता प्राप्त हो जाती है, चाहे कई देशों में उनको औपचारिक रूप से न भी अपनाया गया हो। यही कारण है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रस्ताव या तो अधिक व्यावहारिक अनुभव पर आधारित है, या कम से कम अनेक देशों में जो एक निश्चित सामाजिक आवश्यकता अनुभव होती है, उन पर आधारित है। परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन द्वारा पारित अभिसमय सामान्यतः ऐसे व्यवहार के स्तर बन जाते हैं जिनको सब स्वीकार कर लेते हैं। ऐसे स्तर को

को इस सम्बन्ध मे चेतावनी देता रहता है कि सरकारों और जनता का सब जगह यह आवश्यक कार्य है कि इस सम्बन्ध में जो भी उन्नति की जा रही है, उसमें तीव्रता लाई जाये। वास्तविकता यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के कार्यों के बिना करोडों श्रमिकों की दशा जैसी आज है, उससे भी बुरी होती और कई सरकारो, मालिको और श्रमिकों के दलो को आधुनिक सामाजिक विधान और राष्ट्रीय सहयोग से आर्थिक उन्नति करने में अनुभव और परामर्श के अभाव में बहुत बाधाये पडती। यह बात ऐसे देशो के लिये, जिन्हे अभी तीस-चालीस वर्षो से ही स्वतन्त्रता मिली है, अधिक लागू होती है। इसके अतिरिक्त यदि व्यवसाय मे अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा चलती रहती तो सामाजिक प्रगति मे एक बहुत बडी बाधा पडती, क्योंकि ऐसी प्रतिस्पर्धा मे 'कम लागत और मूल्य को सामाजिक हितो की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है। यह सर्वविदित है कि ऐसी सामाजिक प्रगति की हर देश की राजनैतिक और आर्थिक स्थिरता के लिये बहुत आवश्यकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन अपने सदस्यो की तीन प्रकार से सेवा करता है। प्रथम, यह तथ्यों की खोज करने वाली एजेन्सी के रूप में कार्य करता है और अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक विकास की वर्तमान स्थिति मे सामाजिक और श्रमिक सम्बन्धो के क्षेत्र में उठने वाले कई प्रकार के प्रश्नो का अध्ययन करता है और विशिष्ट समस्याओं पर इसके द्वारा प्रकाशित साहित्य की मात्रा भी काफी होती है। इस सगठन के विशेषज्ञ, जो सभी सदस्य राष्ट्रो की सरकारो, मालिको और श्रमिको के प्रतिनिधियों मे से चुने जाते है और इस अन्तर्राष्ट्रीय व्यापक सगठन के कार्यो और उद्देश्यो में जिन्हे विशेष प्रशिक्षण प्राप्त होता है, प्रत्येक देश की अनेक समस्याओ पर अपनी रिपोर्ट देते है कि अमुक देश इन विशेष समस्याओ का कैसे समाधान कर सकते है। ऐसी समस्यायें निम्नलिखित है—कुशल श्रम-शक्ति, बेरोजगारी, अपूर्ण रोजगार, रोजगार दफ्तर, श्रमिक संघो को सगठित करने का श्रमिको का अधिकार आदि तथा सामाजिक सुरक्षा के प्रश्न, काम करने की दशाये, औद्योगिक कल्याण आदि-आदि।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का द्वितीय कार्य भी प्रथम कार्य का ही एक अग है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय, जिसका स्थायी सचिवालय जेनेवा मे है, सदा ऐसे प्रत्येक राष्ट्र को जो सामाजिक विधान बनाने या सामाजिक सगठन से सम्बन्धित अपनी कोई छोटी या बडी समस्या को हल करना चाहते है, सम्पूर्ण आवश्यक सूचना, परामर्श और व्यावहारिक सहायता देने के लिये इच्छुक और तत्पर रहता है। सदस्य सरकारों द्वारा आमन्त्रित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के मिशन ऐसा विशिष्ट परामर्श देते है जो सम्पूर्ण ससार की विशिष्ट समस्याओ के अनुभव पर निर्धारित होता है।

इस अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का तीसरा कार्य अपने निर्वाचित क्षेत्रो मे सामाजिक प्रगति के रीति-निर्धारक (Pace-setter) के रूप मे कार्य करना है।

यह सामाजिक न्याय का एक केन्द्रीय अन्तर्राष्ट्रीय अन्त करण का रूप ले लेता है, क्योंकि अपने वार्षिक सम्मेलनों में यह अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमयों, निबन्धों और सिफारिशों के मसौदे प्रस्तुत करता है, जो स्वीकृत होने के पश्चात् उचित कार्यवाही या अपनाने के लिये सदस्य सरकारों को प्रस्तुत कर दिये जाते हैं। इनमें से बहुत से अभिसमय ऐसे होते हैं जिनका उद्देश्य यह होता है कि प्रत्येक राष्ट्र के सुधार करने के उपायों को एक निश्चित अन्तर्राष्ट्रीय स्तर दे दिया जाये। यह अभिसमय सदस्य सरकारों द्वारा अपना लिये जाते हैं और अनेक देशों के श्रम विधान में बहुत से अन्य अभिसमयों का सारांश पाया जाता है।

सन् १९६४ में, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने अपने ४८ वें अधिवेशन में जातीय पृथग्वासन (apartheid) को रद्द करने की घोषणा को सर्वसम्मति से स्वीकार किया और श्रम सम्बन्धी मामलों में जातीय पृथग्वासन को समाप्त करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यक्रम का अनुमोदन किया। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के संविधान में संशोधन किया गया और सम्मेलन को यह अधिकार दिया गया कि वह किसी भी ऐसे सदस्य-देश को सम्मेलन में भाग लेने से रोक सकता है जो वर्ण-भेद की नीति को अपनाता हो। इसी कारण दक्षिणी अफ्रीका को संगठन को छोड़ना पड़ा।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यक्रम और नीतियों से यह स्पष्ट हो जाता कि यह एक सक्रिय और गत्यात्मक (Dynamic) संस्था है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम स्तर का निर्धारण करके यह श्रमिकों के लिये न केवल उचित व्यवहार ही दिलाने का प्रयत्न करती है वरन् यह एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बन गई है जो सदस्य-राष्ट्रों तथा उनके नागरिकों की आवश्यकताओं के अनुसार अपने आपको सदैव ढालती रहती है। इस समय यह संस्था अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं पर बल दे रही है, उदाहरणतया—पूर्ण रोजगार, उत्पादकता, श्रम शक्ति का निर्धारण, रोजगार सम्बन्धी सूचनायें, व्यावसायिक प्रशिक्षण, तकनीकी सहायता, ग्राम सुधार, कृषि श्रमिक, मजदूरी तथा निर्वाह खर्च, सामाजिक सुरक्षा, श्रम प्रशासन, श्रमिकों की शिक्षा, श्रमिक-प्रबन्धक सम्बन्ध, श्रम अनुसन्धान, व्यवसायों में, सुरक्षा तथा स्वास्थ्य, आदि।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यों में भारत का योगदान

भारत अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना करने वाले सदस्यों में से एक सदस्य है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की विभिन्न समितियों में भारत के कार्य, सदस्यता आदि का तथा संगठन की निधि में भारत के अंशदान का विवरण ऊपर दिया जा चुका है। भारत आजकल अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का एक प्रमुख सदस्य है, और उन देशों में से एक है जिनको इस संगठन के प्रगतिशील कार्यों के कारण अत्यधिक लाभ पहुँचा है। जो लोग अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की प्रशंसा करते हैं, वे इस सम्बन्ध में भारत का भी उल्लेख करते हैं। इसका कारण यह है कि

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का जो सामाजिक उन्नति मे प्रयत्न रहा है, उसमें कम से कम भारत सरकार ने तो अपनी सक्रिय रुचि प्रकट की है। इस प्रकार भारत इसके कार्य में अधिक से अधिक सक्रिय योग दे रहा है और यह कहना कोई अतिशयोक्ति नही होगी कि भारत का इस संगठन के प्रति योग उतना ही पर्याप्त रहा है जितना अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन का प्रभाव भारत में सामाजिक विधान पर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन ने संसार में सामाजिक सुरक्षा की प्रगति पर जो वार्षिक रिपोर्ट दी हैं, उनमें भारत का उल्लेख कई बार आता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्टों के अनुसार भारत ने गत वर्षों में जिन विषयो पर प्रगति की है, वे विषय निम्नलिखित है—रोजगार दफ्तर, रोजगार नीति, व्यावसायिक प्रशिक्षण योजना, सामाजिक सुरक्षा विधान, कार्य के घण्टों को सीमित करना, सवैतनिक छुट्टियाँ, स्त्री श्रमिकों और बालकों की सुरक्षा, समान कार्य के लिये समान वेतन का सिद्धान्त, कल्याण कार्य, न्यूनतम मजदूरी—विशेषतया कृषि श्रमिकों के लिये, औद्योगिक सुरक्षा विधान, उपभोग सहकारिता तथा सहकारिता सिद्धान्तों का प्रसार आदि। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की जो रिपोर्टें स्थूल दृष्टि से की गई हैं, यदि उनको ध्यान में रखकर देखा जाये तो भारत के वे सभी प्रयत्न, जो सामाजिक उन्नति के लिये किये जा रहे है, बहुत उत्साहवर्द्धक प्रतीत होते है। समस्त संसार में और अपने देश में जो निश्चित रूप से प्रगति हुई है, उसका उचित प्रकार से मूल्यांकन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन पर अब तक जितना भी ध्यान दिया गया है, उससे अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि मानवीय श्रम को गौरव और स्वतन्त्रता प्रदान करने में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का प्रभाव भारत में अत्यधिक रहा है।

५०

भारत में श्रम विधान

LABOUR LEGISLATION IN INDIA

श्रम विधान का सामान्य सर्वेक्षण —इतिहास

पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे भारत मे उद्योग धन्धो के आरम्भ होने के समय की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि पूंजीपति इस बात के लिये बहुत उत्सुक रहते थे कि उन्हें शीघ्र और अधिकतम लाभ हो। मालिक कम मजदूरी पर अधिक समय तक काम करने वाले असहाय और निधन श्रमिको को काम पर लगाने का प्रलोभन न छोड सके थे और उन्होने पुरुषो, स्त्रियो तथा बच्चो से कठोर परिश्रम करा कर और कम वेतन देकर अत्यधिक लाभ उठाया। उस समय सरकार की नीति श्रमिको से सामाजिक प्रणाली की रक्षा करने की थी न कि सामाजिक प्रणाली से श्रमिको की रक्षा की। अत १८५९ और १८६० म जो विधान बनाए गये—अर्थात १८५९ का श्रमिको का सविदा की शर्तों को भंग करने का अधिनियम और १८६० का मालिक व श्रमिक (विवाद) अधिनियम दोनो ही सविदा की शर्तों को भग करने वाले श्रमिको को अपराधी मानकर दण्ड देने के हेतु बनाए गये थे और सविदा भग करना फौजदारी अपराध मान लिया गया था। प्रारम्भ मे जो भी श्रम विधान बनाए गए वह औद्योगिक श्रमिको के सामान्य वर्ग से सम्बन्धित न होकर उद्योग विशेष से सम्बन्धित होते थ। भारत म पहला सगठित उद्योग, जिसके कारण वैधानिक नियन्त्रण हुआ असम का बागान उद्योग था। यहाँ श्रमिको की भर्ती की दोषपूर्ण प्रणाली के कारण भर्ती को नियन्त्रित करने के लिये बगाल तथा केन्द्रीय सरकार ने कुछ वैधानिक कदम उठाये जिनको असम श्रमिक अधिनियमो के नाम से पुकारा गया। प्रथम कारखाना अधिनियम तथा खान अधिनियम क्रमश १८८१ तथा १९०१ म पारित किये गये। कारखाना अधिनियम १८९१ तथा १९११ म भी पारित किये गए। इस प्रकार प्रथम महायुद्ध से पूर्व श्रमिक क्षतिपूर्ति श्रमिक सघ व व्यावसायिक विवाद आदि से सम्बन्धित

औद्योगिक श्रमिकों के सम्बन्ध में कोई विधान नहीं था।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात श्रम विधान

प्रथम महायुद्ध के अनुभवो के कारण श्रम के प्रति सरकार और मालिको के दृष्टिकोण म काफी परिवतन आया। राज्य क हस्तक्षेप के सिद्धान्तो को औद्योगिक मामलो म और भी विस्तृत रूप से लागू कर दिया गया। एक सँतुष्ट

श्रमजीवी वर्ग की आवश्यकता का तीव्रता से अनुभव किया जाने लगा तथा मालिकों और श्रमिकों के द्वारा सामूहिक कार्यवाही के लाभों की ओर भी ध्यान गया। युद्ध के पश्चात् श्रमिकों में चेतना अधिक आ गई तथा श्रमिक संघों का भी विकास हुआ और साथ ही औद्योगिक अशान्ति भी बढ़ी (देखिये पृष्ठ ९४–९५)। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना से भारत मे श्रम विधान को काफी प्रोत्साहन मिला क्योंकि इसने अनेक अभिसमय और सिफारिशें पारित की तथा श्रम के उत्थान के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों को निर्धारित किया।

१९२० के पश्चात् भारत में श्रम विधान बनाने की ओर तीव्र गति से प्रगति हुई। कारखानों से सम्बन्धित कानूनों को १९२२ के कारखाना अधिनियम में समायोजित कर दिया गया। अनेक नवीन और महत्वपूर्ण अधिनियम भी पारित किये गये। उदाहरणार्थ, १९२३ का भारतीय खान अधिनियम, १९२३ का श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, १९२६ का भारतीय श्रमिक संघ अधिनियम तथा १९२९ का व्यापार विवाद अधिनियम। भारतीय व्यापारिक जहाजरानी अधिनियम १९२३ में पारित किया गया। १८९० के रेलवे अधिनियम में कार्य के घन्टों को नियमित करने के लिये १९३० में संशोधन किया गया। १९२९ में भारत में रॉयल श्रम आयोग की नियुक्ति की गई जिसने अपनी रिपोर्ट १९३१ में प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में श्रम समस्याओं के सभी पहलुओं पर तथा श्रम कानूनों को बनाने और उनके प्रशासन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सिफारिशें की गई थी। इसके परिणामस्वरूप अनेक वैधानिक कदम उठाये गये। १९३२ में चाय क्षेत्र प्रवासी श्रमिक अधिनियम पारित किया गया। १९३४ में कारखाना अधिनियम को पूर्णतया दोहराया गया। व्यापार विवाद अधिनियम में संशोधन किया गया तथा १९३४ में इसे वैधानिक पुस्तिका में स्थायी स्थान दे दिया गया। १९३६ में मजदूरी अदायगी अधिनियम पारित किया गया। १९३३ में बाल (श्रम अनुबन्ध) अधिनियम तथा १९३४ में भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियम पारित हुए। श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के सम्बन्ध में रॉयल श्रम आयोग की अधिकांश सिफारिशों को इस समय लागू किया गया तथा १९३५ में खान अधिनियम में भी संशोधन किया गया। किसी भी कम्पनी अर्थात् समवाय को श्रमिकों के रहने के लिये मकान बनाने तथा उससे सम्बन्धित सुविधाओं की व्यवस्था करने के हेतु अनिवार्य रूप से भूमि प्राप्त करने के लिए १८९४ के भूमि अभिग्रहण अधिनियम में १९३३ में संशोधन हुआ। आयोग की रिपोर्ट के प्रकाशित होने से पूर्व मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम केवल बम्बई तथा मध्य प्रदेश में बनाये गये थे। अन्य प्रदेशों में भी इसी प्रकार के विधान बनाये गये। केन्द्रीय सरकार ने भी सभी खान उद्योगों के लिए १९४१ में खान मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम पारित किया।

प्रान्तों (राज्यों) में श्रम विधान

१९३५ के भारत सरकार अधिनियम से पूर्व श्रम के क्षेत्र में यद्यपि केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के विधान बनाने के अधिकार संयुक्त थे तथापि प्रान्तों ने

इस ओर बहुत कम पग उठाए थे। मुख्यत प्रान्तो क अधिनियम निम्नलिखित थे बम्बई (१६२६), मध्य प्रान्त (१६३०) और मद्रास (१६३५) के मातृत्व कालीन-लाभ अधिनियम, १६३४ का बम्बई औद्योगिक विवाद सुलह अधिनियम १६३५ का गोदी श्रमिक अधिनियम, १६३५ का बगाल श्रमिक सरक्षण अधिनियम १६३६ का मध्य प्रान्त औद्योगिक श्रमिक ऋण समजन एव अपाकरण अधिनियम, १६३७ का मध्य प्रान्त अनियत्रित कारखाना अधिनियम और १६३७ का मध्य प्रान्त ऋणी सरक्षण अधिनियम।

१६३७ मे प्रान्तीय स्वायत्तता के पश्चात् जनप्रिय सरकारो ने और अधिक उत्साह के साथ श्रम विधान बनाये। प्रान्तो मे कांग्रेस मन्त्रिमण्डलो ने कांग्रस की श्रम नीति को ही ध्यान मे रखा। कांग्रेस की श्रम नीति यह थी कि जहाँ तक देश की आर्थिक स्थिति सहन कर सकती हो वहाँ तक औद्योगिक श्रमिको के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के अनुकूल रहन-सहन के स्तर कार्य के घण्टो तथा रोजगार की दशाओ को प्राप्त करना चाहिये तथा मालिको और श्रमिको के विवादो को सुल-झाने की उचित व्यवस्था करनी चाहिये तथा वृद्धावस्था बीमारी और बेरोजगारी के आर्थिक दुष्परिणामो से रक्षा होनी चाहिये तथा श्रमिका को सघ बनाने और अपने हितो की रक्षा के लिये हडताल करने का अधिकार भी होना चाहिये।" बम्बई मध्य प्रान्त, उत्तर प्रदेश तथा बिहार की सरकारो ने श्रम दशाओ का अध्ययन करने के लिये समितियाँ नियुक्त की। इससे पूर्व कि इन समितियो की सिफारिशो को पूर्णतया कार्यान्वित किया जा सकता, काग्रस सरकार ने नवम्बर १६३६ मे त्याग-पत्र दे दिये। परन्तु गैर कांग्रेस सरकारो ने भी श्रम समस्याओ मे बहुत रुचि ली। अनेक प्रान्तो ने अपने अपने क्षेत्र की श्रम समस्याओ के लिए श्रम कमिश्नरो अर्थात आयुक्तो की नियुक्तियाँ की। कमिश्नरो का यह पद आज तक चला आ रहा है। इस अवधि म प्रान्तीय श्रम विधान का सबसे महत्वपूर्ण अधि नियम १६३८ का "बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम था। प्रान्तीय स्तर पर अपनी प्रकार का यह एकमात्र ऐसा विधान था जिसमे औद्योगिक विवादो को शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाने की व्यवस्था की गई थी। एक अन्य महत्वपूर्ण श्रम विधान बम्बई म १६३६ का दुकान तथा सस्थान अधिनियम था। इसके अतिरिक्त बगाल उत्तर प्रदेश पजाब असम और सिन्ध मे मातृत्व कालीन लाभ अधिनियम, बगाल और सिन्ध म दुकान और सस्थान अधिनियम तथा पजाब म व्यावसायिक कर्मचारी अधिनियम आदि श्रम दशाओ को उन्नत करने के लिए जनप्रिय सरकारो के उत्साह के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

हाल के वर्षो मे श्रम विधान

इतनी प्रगति होने पर भी इन विधानो मे समायोजना का अभाव था तथा इनके प्रशासन म कुछ कमियाँ रह गई थी। इन दोषो को दूर करने के लिये भारत सरकार १६४० से श्रम मन्त्रियों के सम्मेलन का आयोजन करती आ रही

है। सरकार को श्रम समस्याओं पर सलाह देने के लिये १९४२ में त्रिदलीय श्रम सम्मेलन की व्यवस्था की गई। १९४३ में इसकी सिफारिशों के परिणामस्वरूप श्री डी० वी० रीगे की अध्यक्षता में एक श्रम अनुसन्धान समिति की नियुक्ति की गई। इसने अपनी रिपोर्ट १९४६ में प्रस्तुत की। विभिन्न श्रम समस्याओं पर इस समिति ने व्यापक रूप में सिफारिशें की। एक स्थायी श्रम समिति की भी स्थापना की गई। इस त्रिदलीय व्यवस्था से सरकार और श्रमिकों के प्रतिनिधियों के बीच नियमित रूप से समय-समय पर विचार-विमर्श का जो अवसर प्राप्त हुआ उससे श्रम की मुख्य समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित होने में सहायता मिली। १९४२ से १९४८ के वर्षों में श्रम विधान के क्षेत्र और विषयों का काफी विस्तार हुआ। देश की स्वतन्त्रता के पश्चात् सरकार द्वारा श्रम की दशाओं को सुधार कर उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता का और अधिक अनुभव करने के कारण देश में श्रम विधान की गति और तीव्रतर हो गई।

हाल ही के वर्षों में श्रमिकों की रक्षा व कल्याण के हेतु अनेक विधान पारित किये गये हैं। इनमें मुख्य निम्नलिखित अधिनियम हैं—१९४६ में कारखाना अधिनियम में संशोधन, १९४८ का कारखाना अधिनियम, जिसमें १९५४ में संशोधन हुआ, गोदी कर्मचारी (रोजगार का नियमन) अधिनियम, १९४८ और १९६२ में उसमें संशोधन, कोयला खान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम, १९४७, १९५२ का कोयला खानों (बचत व सुरक्षा) अधिनियम, अभ्रक खान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम, १९४६; १९५० का उत्तर प्रदेश चीनी एवं चालक मद्यसार उद्योग श्रम कल्याण एवं विकास निधि अधिनियम; बम्बई (१९५३) तथा उत्तर प्रदेश (१९५६), मैसूर (१९६५), पंजाब (१९६५) और बागान श्रमिकों के लिए (१९५९) में श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम, असम चाय बागान कल्याण निधि अधिनियम, १९५९; न्यूनतम मजदूरी अधिनियम १९४८; श्रमिक संघ (संशोधन) अधिनियम १९४६, १९४७, १९६० व १९६४ औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम १९४६, (१९६१ व १९६३ में संशोधन), कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम १९४८, १९५१ व १९६६ में संशोधन), कोयला खान प्रॉविडेन्ट फण्ड तथा बोनस योजना अधिनियम १९४८, औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७, बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम १९४६; मध्य प्रदेश (तत्कालीन सी० पी०) औद्योगिक विवाद निबटारा अधिनियम १९४७, उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७; औद्योगिक विवाद (अपीलीय अधिकरण) अधिनियम १९५०, १९५३, १९५६–५७, १९६४ तथा १९६५ में औद्योगिक विवाद संशोधित अधिनियम; कर्मचारी प्राविडेन्ट फण्ड अधिनियम १९५२ (१९६० व १९६३ में संशोधन); बागान श्रमिक अधिनियम १९५१ (१९६० में संशोधन); भारतीय खान अधिनियम १९५२ (१९५९ में संशोधन); बम्बई १९४८, मैसूर (१९४९ व १९५५), मध्य प्रदेश (१९५०), हैदराबाद (१९५२), उत्तर प्रदेश (१९५५), पंजाब (१९५६) और मैसूर (१९६२) में आवास अधिनियम; सांख्यिकी संचय अधिनियम १९५३;

श्रमजीवी पत्रकार (काम की शर्तें एव विविध उपबन्ध) अधिनियम, १९५५ तथा श्रमजीवी पत्रकार (वेतन की दरो का निर्धारण) अधिनियम १९५८ (१९६२ मे सशोधन), मद्रास (१९५८), केरल (१९५८) और उत्तर प्रदेश (१९६१) मे औद्योगिक सस्थान (राष्ट्रीय व त्यौहार छुट्टी) अधिनियम, मद्रास (१९५८) तथा केरल (१९५९) मे 'बीडी' श्रमिको के लिए अधिनियम, रोजगार दफ्तर (रिक्त स्थानो की अनिवार्य सूचना) अधिनियम १९५९, भारतीय व्यापार जहाज अधिनियम, १९५८, मध्य प्रदेश औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम, १९६०, मोटर यातायात श्रमिक अधिनियम १९६१, मातृत्व कालीन-लाभ अधिनियम १९६१, शिक्षुता (Apprenticeship) अधिनियम १९६१, कच्चा लोहा खान श्रमिक कल्याण उपकर (Cess) अधिनियम १९६१ तथा अनेक राज्यो मे दुकान तथा वाणिज्य सस्थान अधिनियम, बोनस भुगतान अधिनियम १९६५, बीडी व सिगार (काम की शर्तें) अधिनियम १९६६। केन्द्रीय और राज्य सरकारो ने समय-समय पर विभिन्न अधिनियमो में सशोधन भी किये है। उदाहरणत, मजदूरी अदायगी अधिनियम मे १९५७, १९६२ तथा १९६४ मे, श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम मे १९५९ तथा १९६२ मे, तथा श्रमिक सघ अधिनियम में १९६० और १९६४ मे सशोधन किये गये। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पिछले कुछ वर्षों मे श्रम विधान बनाने की गति बहुत तीव्र रही है। अब हम विभिन्न शीर्षको के अन्तर्गत देश के श्रम विधान की विवेचना करेंगे।

भारत मे कारखाना विधान
(Factory Legislation in India)

प्रारम्भिक प्रयत्न

भारत मे आधुनिक उद्योगो के विकास के पश्चात् से मालिको को बहुत दिनो तक इस बात की स्वतन्त्रता रही कि वे अपने श्रमिको से किसी भी प्रकार से जैसा भी चाहे कार्य लेते रहे और उन पर किसी भी कारखाना कानून का बन्धन नही था। फलस्वरूप, कार्य के घण्टे बहुत अधिक हो गये थे। श्रम का, विशेषतया महिला एव बालको का, शोषण होने लगा और कारखानो मे कार्य की दशायें अमानवीय तथा असहनीय हो गई। कारखानो मे मशीनो के चारो ओर कोई घेरा न होने के कारण श्रमिको को बहुधा चोट लगती थी, परन्तु उनको क्षतिपूर्ति मिलने की कोई व्यवस्था न थी। इस प्रकार भारत मे मिल-मालिक, अन्य देशो के उद्योगपतियो की अपेक्षा, लाभ मे रहते थे क्योकि अन्य देशो मे अनेक श्रम-विधान थे।

आरम्भ मे भारतीय कारखाना श्रमिको की अवस्थाओ मे रुचि लेने का कारण यह नही था कि कुछ जागरूक मालिको, राजनीतिज्ञो अथवा औद्योगिक नगरो मे रहने वाले कुछ नागरिको मे इगलैण्ड के नागरिको की तरह कुछ दया-भावना आ गई थी, वरन् इसका कारण यह था कि बम्बई मे सूती कपडा मिल

उद्योग की सन् १८७० में स्थापना लंकाशायर के कपड़ा उद्योगपतियों एवं व्यापारियों की घोर चिन्ता का विषय बन गया था। अन्य देशों की तुलना में भारत के उद्योगपतियों को कुछ विशेष सुविधायें थीं। उनको श्रमिक कम मजदूरी पर उपलब्ध हो जाते थे। इससे लंकाशायर के उद्योगपतियों को द्वेष होने लगा तथा वह भारतीय कपड़ा मिल उद्योग के विकास में हर सम्भव अड़चनें डालने का प्रयत्न करने लगे। मैनचेस्टर के चेम्बर ऑफ कामर्स ने सन् १८७४ में भारतीय राज्य सचिव के पास अपना एक प्रतिनिधि-मण्डल भेजा तथा प्रार्थना की कि भारतीय मिलों पर भी वे समस्त कारखाना विधान लागू कर देने चाहिएँ जो इंगलैण्ड के कारखानों पर लागू होते थे। परिणामस्वरूप भारत में श्रम विधान की आवश्यकता की जांच के लिये सन् १८७५ में एक आयोग नियुक्त किया गया। इस आयोग की रिपोर्ट के अनुसार उस समय भारतीय कारखाने सूर्योदय से सूर्यास्त तक कार्य करते थे और श्रमिकों को कठोर परिश्रम करना पड़ता था। उनको साप्ताहिक अवकाश भी प्रदान नहीं किया जाता था तथा सात-सात, आठ-आठ वर्ष के बच्चे तक भी श्रमिकों के रूप में कार्य करते थे। आयोग ने इन दोषों के निवारणार्थ यह सुझाव दिया कि एक ऐसा साधारण अधिनियम पारित किया जाये जिसके अनुसार कार्य के घण्टों की सीमा १० हो जाये, बालकों की एक न्यूनतम आयु निर्धारित कर दी जाये तथा जिसमें एक साप्ताहिक छुट्टी, सवातन, मशीनों से सुरक्षा आदि के भी उपबन्ध हो। परन्तु सरकार ने तत्काल इस ओर कोई ध्यान न दिया। जैसा कि श्रमिक संघ अध्याय में बताया जा चुका है, श्रमिकों की दयनीय दशा देखकर कुछ जन-सेवी उदार हृदयों में सहानुभूति उमड़ी और श्रमिकों की रक्षा के हेतु कुछ वैधानिक नियम बनाने के लिए भारत और इंगलैण्ड में आन्दोलन चलता रहा। इन सबके परिणामस्वरूप सन् १८८१ में प्रथम कारखाना अधिनियम पारित किया गया।

१८८१ का प्रथम कारखाना अधिनियम

१८८१ का कारखाना अधिनियम ऐसे सभी संस्थानों पर लागू होता था जिनमें १०० या १०० से अधिक श्रमिक कार्य करते थे और जिनमें वर्ष में चार माह से अधिक कार्य होता था। इसके अन्तर्गत ७ वर्ष से कम आयु के बच्चों को कार्य पर लगाना तथा ७ से लेकर १२ वर्ष की आयु के बच्चों से ९ घण्टे से अधिक कार्य लेना निषिद्ध कर दिया गया। उनके लिये दिन में १ घण्टे का विश्राम तथा मास में ५ दिन की छुट्टियों की भी व्यवस्था थी। खतरनाक मशीनों के चारों ओर घेरा लगाने की तथा दुर्घटनाओं की सूचना देने की भी व्यवस्था की गई। इन सुधारों को कार्यान्वित करने के लिये कारखाना निरीक्षकों की नियुक्ति का भी आयोजन था। अधिनियम में स्त्री और पुरुष वयस्क श्रमिकों को कोई सुरक्षा प्रदान नहीं की गई थी और उन्हें पूर्णतया मालिकों की इच्छा अथवा दया पर छोड़ दिया गया था।

१८६१ का कारखाना अधिनियम

१८८१ के अधिनियम से श्रमिको, उनके साथ सहानुभूति रखने वाले व्यक्तियो और यहाँ तक कि ब्रिटिश उत्पादको तक को सन्तुष्टि नही हुई। सब यह चाहते थे कि अधिक कठोर पग उठाये जायें। अधिनियम के बनते ही उसमे संशोधन करने की माँग की जाने लगी। भारत के राज्य सचिव से पुन प्रार्थना की गई। परिणामस्वरूप १८८४ मे बम्बई सरकार ने एक और कारखाना आयोग की नियुक्ति की। इस आयोग ने बालको और स्त्रियो की रक्षार्थ विधान बनाने की सिफारिश की, परन्तु इसका परिणाम कुछ भी नही निकला। १८६० मे बर्लिन मे एक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन हुआ था जिसकी सिफारिशो को इगलैण्ड ने स्वीकार कर लिया था। अब यह वाछनीय समझा गया कि इन सिफारिशो को भारत मे भी कार्यान्वित किया जाए। अत भारत सरकार ने १८६० मे एक कारखाना आयोग की नियुक्ति की और इसकी सिफारिशो के आधार पर १८६१ मे दूसरा कारखाना अधिनियम पारित किया। यह अधिनियम ५० या इससे अधिक श्रमिको को कार्य पर लगाने वाले तथा शक्ति का प्रयोग करने वाले सभी सस्थानो पर लागू होता था। स्थानीय सरकारो को यह अधिकार था कि यदि वे चाहे तो अधिनियम को २० या इससे अधिक श्रमिको को कार्य पर लगाने वाले कारखानो पर लागू कर सकती थी। ६ वर्ष से कम आयु के बच्चो को कार्य पर लगाना निषिद्ध कर दिया गया तथा ६ से १४ वर्ष तक के बच्चो से प्रतिदिन ७ घण्टे से अधिक काम नही लिया जा सकता था। स्त्रियो एव बच्चो को रात्रि ८ बजे से प्रात ५ बजे के बीच काम पर नही लगाया जा सकता था। स्त्रियो से ११ घण्टे से अधिक काम नही लिया जा सकता था तथा उनको दिन मे कुल मिला कर १½ घण्टे का विश्राम देने की भी व्यवस्था की गई थी। प्रत्येक श्रेणी के श्रमिक को एक साप्ताहिक अवकाश देने की व्यवस्था थी तथा पुरुष श्रमिको को दोपहर १२ बजे से लेकर २ बजे के भीतर आधा घण्टे का विश्राम समय देना अनिवार्य कर दिया गया था। कारखाना के निरीक्षण, सवातन और सफाई आदि के सम्बन्ध मे भी इस अधिनियम मे विस्तृत उपबन्ध थे।

१९११ का कारखाना अधिनियम

१८६१ के कारखाना अधिनियम पारित हो जाने के पश्चात् आगामी २० वर्षो तक कारखाना विधान के बारे मे कोई पग नही उठाया गया। सन् १९०५ मे बम्बई की मिलो मे विद्युत प्रकाश के आ जाने से सूती वस्त्र मिलो के लिये रात्रि मे भी कार्य करना सम्भव हो गया और इस प्रकार से कार्य के घण्टे अत्यधिक लम्बे हो गये। कलकत्ते की जूट मिलो मे भी कार्य के घण्टे अधिक होने की शिकायतें आने लगी। इसके परिणामस्वरूप लकाशायर के उत्पादको ने पुन आन्दोलन शुरू कर दिया। इसी समय देश मे समाचार पत्रो तथा समाज-सेवको ने श्रम दशाओ की आलोचना शुरू कर दी तथा इन्होने माँग की कि श्रमजीवी वर्ग को और अधिक

रियायतें तथा सुविधायें प्रदान की जायें। परिणामस्वरूप एक श्रम आयोग की फिर नियुक्ति की गई जिसने १६०८ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसकी सिफारिशों के फलस्वरूप १६११ में तीसरा कारखाना अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम मे कारखाने की परिभाषा वही रही जो १८६१ के अधिनियम में थी। इसके द्वारा प्रथम बार पुरुष श्रमिकों के कार्य के अधिकतम घण्टे प्रतिदिन १२ निश्चित कर दिये गये जिसमें बीच मे १ घण्टे का विश्राम समय भी था। पारियों की स्वीकृत प्रणाली को छोड़कर कोई भी श्रमिक किसी भी कारखाने में रात्रि ७ बजे से प्रातः ५ बजे के बीच काम नही कर सकता था। बच्चो के लिये सूती वस्त्र मिलों मे कार्य के अधिकतम घण्टे प्रतिदिन ६ निश्चित कर दिये गये तथा उनका रात्रि मे कार्य करना निषेध कर दिया गया। स्त्रियों के कार्य के घण्टे ११ ही रहे परन्तु उनका विश्राम समय घटाकर एक घण्टा कर दिया गया। उनके लिये रात्रि में कार्य भी निषिद्ध कर दिया गया। मौसमी कारखानों को भी अधिनियम के नियन्त्रण मे ले आया गया। बच्चो के लिये आयु का प्रमाण-पत्र रखना आवश्यक कर दिया गया। श्रमिको के स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिये तथा निरीक्षण को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये अधिनियम मे अनेक नये उपबन्ध भी थे।

१६२२ का कारखाना अधिनियम

तत्पश्चात् १६१४–१८ का महायुद्ध शुरू हो गया। इससे देश मे तीव्र गति से औद्योगिक विकास हुआ। साथ ही साथ श्रमिक वर्ग भी अपने अधिकारो के प्रति जागरूक होता गया। वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो जाने से उद्योगपतियो के लाभ अधिक बढ गये थे परन्तु श्रमिकों की मजदूरी मे वृद्धि मूल्य-वृद्धि की अपेक्षा कम हुई। १६१८ के पश्चात् देश में औद्योगिक विवाद बहुत सामान्य हो गये। १६२० में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की स्थापना के परिणामस्वरूप कारखाना अधिनियम में सशोधन करना अनिवार्य सा हो गया। फलत चतुर्थ कारखाना अधिनियम सन् १६२२ में पारित किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत वे सभी कारखाने आ गये जिनमे शक्ति का प्रयोग होता था तथा जिनमें २० या इससे अधिक श्रमिको को कार्य पर लगाया जाता था। स्थानीय सरकारों को यह अधिकार प्रदान कर दिये गये कि यदि वह चाहें तो इस अधिनियम को १० या उससे अधिक श्रमिको को कार्य पर लगाने वाले कारखानों पर भी लागू कर सकती थीं। वयस्क श्रमिकों के लिये अधिकतम कार्य के घण्टे प्रतिदिन ११ तथा प्रति सप्ताह ६० निश्चित कर दिये गये। सभी प्रकार के कारखानो में बालको के कार्य के घण्टे घटाकर प्रतिदिन ६ कर दिये गए। बालको के लिये रोजगार पर लगाने की न्यूनतम आयु ६ वर्ष से बढाकर १२ वर्ष कर दी गई तथा कायविस्था की उच्चतम सीमा १२ वर्ष से बढाकर १५ वर्ष कर दी गई। महिलाओ और बालको को रात्रि के ७ बजे के पश्चात् तथा प्रातः ५–३० से पूर्व कार्य पर लगाना निषिद्ध कर दिया गया। बच्चों के लिये प्रति चार घण्टे कार्य करने के पश्चात् आधे घण्टे का विश्राम-समय अनिवार्य

वयस्कों का काम करने योग्य होने का डाक्टरी प्रमाण-पत्र नहीं प्राप्त होता था। कारखाने की परिभाषा १६२२ के अधिनियम जैसी ही रही। कल्याण कार्यों, मशीनों की पट्टेबाजी, सुरक्षा साधनों, नमी आदि के लिए भी अनेक उपबन्ध बनाए गए। अधिनियम के प्रशासन का भार प्रान्तीय सरकारों को सौंप दिया गया। इन सरकारों ने इस उद्देश्य के लिये कारखानों के निरीक्षकों और मुख्य निरीक्षकों की नियुक्ति की।

१६४६ में कारखाना अधिनियम में संशोधन

१६३४ के अधिनियम में १६३६, १६४०, १६४१, १६४४, १६४५, १६४६ तथा १६४७ में सात बार संशोधन किए गए। अन्त में इसे पूर्ण रूप से संशोधित और परिवर्तित करके १६४८ के कारखाना अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया। १६४६ का संशोधन बहुत महत्वपूर्ण था। नवम्बर १६४५ में सातवें श्रम सम्मेलन ने ४८ घण्टे कार्य करने के सिद्धान्त को मान लिया गया था। इस आधार पर सरकार ने १६४६ में एक कारखाना अधिनियम पारित किया। इसके अनुसार निरन्तर चालू कारखानों में कार्य के घण्टे ४८ प्रति सप्ताह तथा प्रतिदिन ६ निश्चित कर दिये गये। मौसमी कारखानों में कार्य के घण्टे प्रतिदिन १० तथा प्रति सप्ताह ५४ निश्चित कर दिए गए। समय विस्तार निरन्तर चालू कारखानों में १३ घण्टों से घटाकर १०½ घण्टे तथा मौसमी कारखानों में ११½ घण्टे निर्धारित कर दिया गया। समयोपरि के लिये सामान्य मजदूरी से दुगनी मजदूरी निर्धारित की गई। सन् १६४७ के कारखाना अधिनियम में संशोधन द्वारा २५० या उससे अधिक श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले कारखानों में कैंटीन की व्यवस्था करना अनिवार्य कर दिया गया।

१६४८ का कारखाना अधिनियम (Factories Act of 1948)

१६३४ के कारखाना अधिनियम में इतने संशोधन हो जाने के पश्चात भी यह अनुभव किया गया कि इसके प्रभावपूर्ण ढंग से प्रशासन में अब भी अनेक बाधायें थी। श्रमिकों की सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण के लिए जो उपबन्ध बनाये गये थे वह अपर्याप्त और असंतोषजनक थे। इसके अतिरिक्त अधिनियम द्वारा प्रदान की गई इस प्रकार की सुरक्षा बहुत से छोटे-छोटे संस्थानों में काम करने वाले श्रमिकों की एक बड़ी संख्या को प्राप्त नहीं थी। अतः यह आवश्यक समझा गया कि इस अधिनियम में पूर्णरूपेण परिवर्तन करने में विलम्ब नहीं करना चाहिये। फलतः नवम्बर १६४७ में इस विषय पर एक विधेयक प्रसारित किया गया जो संसद् में थोड़े से संशोधन के पश्चात् २३ सितम्बर १६४८ से कानून बना दिया गया तथा १ अप्रैल १६४६ से लागू कर दिया गया। यह '१६४८ का भारतीय कारखाना अधिनियम' के नाम से जाना जाता है। इस अधिनियम में और सन् १६३४ के अधिनियम में बहुत अन्तर है। इसके अन्तर्गत अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं तथा यह एक व्यापक अधिनियम है। इस अधिनियम में १६५४ में

संशोधन हुआ। इस संशोधन का उद्देश्य उन कठिनाइयों को दूर करना था जो सवेतन अवकाश की गणना में उत्पन्न होती थी। इसके अतिरिक्त स्त्री व किशोरों को कारखानों में रात्रि में रोजगार पर लगाने के उपबन्धों को उस अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभिसमय के अनुकूल बनाना था जिसे भारत सरकार ने अपना लिया था। अधिनियम में कुछ और संशोधन करने के विषय में विचारविमर्श मार्च १९५५ में, राज्यों के मुख्य कारखाना निरीक्षकों के सम्मेलन में हुआ। कारखानों के मुख्य सलाहकार द्वारा इस सम्बन्ध में जाच हो रही है।

कारखाना अधिनियम १९४८ के मुख्य उपबन्ध

अधिनियम के मुख्य-मुख्य उपबन्ध निम्न प्रकार हैं—(पृष्ठ ८०–८१, २१४, ४८७–४९१, ५०५–५०६ भी देखिए) —

जहाँ तक क्षेत्र का सम्बन्ध है जहाँ सन् १९३४ का अधिनियम उन औद्योगिक संस्थानों में लागू होता था जिनमें निर्माण-कार्य में शक्ति का प्रयोग होता था और जिनमें २० या ३० से अधिक श्रमिक काम करते थे, वहाँ १९४८ का अधिनियम शक्ति प्रयोग करने वाले उन सभी कारखानों पर लागू होता है जिनमें १० या अधिक श्रमिक कार्य करते है। जिन कारखानों में शक्ति का प्रयोग नहीं होता वहाँ २० श्रमिकों के होने पर यह अधिनियम लागू हो जाता है। १९३४ के अधिनियम के अन्तर्गत प्रान्तीय सरकारों का यह अधिकार प्रदान किय गये थे कि यदि वे चाहे तो इसको १० या उससे अधिक श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले तथा शक्ति का प्रयोग करने वाले किसी भी कारखाने पर लागू कर सकती थी। १९४८ के अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारों के इस अधिकार पर कोई बन्धन नहीं लगाया गया है और उनको यह अधिकार प्रदान कर दिया गया है कि यदि वे चाहे तो इस अधिनियम को निर्माण कार्य करने वाले किसी भी संस्थान पर लागू कर सकती हैं, चाहे उसमें कितने ही श्रमिक कार्य करते हो तथा चाहे उसमें शक्ति का प्रयोग होता हो या न होता हो। परन्तु यह उन स्थानों पर लागू नहीं होगा जहाँ कार्य केवल परिवार के सदस्यों की सहायता से किया जाता हो। इस अधिनियम द्वारा मौसमी एवं निरन्तर चालू कारखानों के अन्तर को भी समाप्त कर दिया गया है। यह अधिनियम जम्मू व कश्मीर राज्य को छोड़कर सारे भारत में लागू होता है। जम्मू व कश्मीर में सन् १९५७ में पास किया गया अधिनियम लागू है।

स्वास्थ्य, सुरक्षा और कल्याण के सम्बन्ध में १९३४ के अधिनियम में जो उपबन्ध थे वह सामान्य प्रकार के थे और यह प्रान्तीय सरकारों का काम था कि वह नियम बनाकर इस सम्बन्ध में ठीक-ठीक आवश्यकताओं का उल्लेख कर दें। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रान्तों द्वारा निर्धारित स्तरों में भिन्नता आ गई। इस दोष को दूर करने के लिए १९४८ के अधिनियम में विस्तृत उपबन्ध दिये गये है तथा इन विषयों के लिए स्पष्ट और ठीक-ठीक शब्दों में आवश्यकताओं का

उल्लेख किया गया है। सफाई, प्रकाश, संवातन आदि के उपबन्धों के अतिरिक्त, जिनका उल्लेख १९३४ के अधिनियम में भी किया गया था, १९४८ के अधिनियम में २५० या इससे अधिक श्रमिकों वाली फैक्टरियों में निरर्थक और क्षेप्य पदार्थों को फेंकने, धूल और धुए को समाप्त करने, थूकदानों की व्यवस्था करने, तापक्रम को नियन्त्रित करने, ग्रीष्म काल में पीने के लिये ठण्डे पानी की व्यवस्था करने तथा पानी रखने के स्थान को साफ करने के लिये नौकर लगाने की भी व्यवस्था की गई है। भीड़-भाड़ को समाप्त करने के लिए उन तमाम कारखानों में जो इस अधिनियम के लागू होने के पश्चात् बने यह बात अनिवार्य कर दी गई है कि प्रत्येक श्रमिक के लिए कम से कम ५०० घन फीट का स्थान होना चाहिए। अन्य कारखानों में प्रत्येक श्रमिक के लिए कम से कम ३५० घन फीट स्थान की व्यवस्था की गई है। (पृष्ठ ४८७–९१ देखिये।)

अधिनियम में उन सावधानियों का भी विस्तृत रूप से उल्लेख किया गया है जिनको श्रमिकों की सुरक्षा के लिये लागू करना आवश्यक है। इनका उल्लेख कार्य की दशाओं वाले अध्याय में किया जा चुका है। कुछ नए उपबन्ध जो इस सम्बन्ध में इस अधिनियम में बनाये गये हैं वह निम्नलिखित बातों के लिए है: नई मशीनों के खोल की व्यवस्था, शक्ति को तत्काल बन्द करने की व्यवस्था तथा पानी ऊपर फेंकने के यन्त्र व लिफ्ट, क्रेन व दूसरे बोझ उठाने वाले यन्त्र, प्रेशर मशीनें, आँखों की सुरक्षा, खतरनाक गैसों व विस्फोटक तथा आग पकड़ने वाले पदार्थों से सुरक्षा आदि। अधिनियम में इस बात की व्यवस्था भी है कि कोई भी श्रमिक न तो इतना बोझ उठाएगा और न ले जाएगा जिससे उसे क्षति पहुँचने की सम्भावना हो। राज्य सरकारों को यह अधिकार है कि वह स्त्री, पुरुषों तथा बच्चों द्वारा उठाये जाने अथवा ले जाने वाले बोझ की अधिकतम सीमा निर्धारित कर दें।

अधिनियम में धोने की सुविधाओं, प्राथमिक चिकित्सा साधनों, कैन्टीन, विश्राम स्थानों तथा शिशु-गृह आदि जैसे कल्याण कार्यों के लिए एक अलग अध्याय है। इनमें से अधिकतर तो १९३४ के कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत बनाये गये नियमों में आ जाते हैं। १९४८ के अधिनियम में दो नए कल्याणकारी उपबन्ध और जोड़े गए हैं जो श्रमिकों के बैठने की व्यवस्था से सम्बन्धित हैं और राज्य सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि वे कारखानों में ऐसे उपयुक्त स्थान बनाने के लिए नियम बनायें जहाँ श्रमिक अपने कपड़े रख सकें और गीले कपड़ों को सुखा सकें। अधिनियम में राज्य सरकारों को यह भी अधिकार प्रदान किया गया है कि वह ऐसे नियम बना दें जिनके अनुसार इस बात की व्यवस्था हो कि श्रमिकों के प्रतिनिधि भी कल्याण-कार्यों के प्रबन्ध में हाथ बटा सकें। अधिनियम के एक अन्य उपबन्ध के अनुसार प्रत्येक ऐसे कारखाने के मालिक को, जहाँ ५०० या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं, कल्याण अधिकारियों की नियुक्ति करनी होगी। उनके कार्य, योग्यतायें आदि राज्य सरकारें निश्चित करेंगी। जिन कारखानों

मे २५० या अधिक श्रमिक रोजगार मे लगे हैं वहाँ कैंटीन की तथा जिन कारखानो मे १५० से अधिक श्रमिक काम करते है वहाँ भोजन कक्ष की तथा जहाँ ५० या अधिक स्त्री श्रमिक कार्य करती हैं वहाँ शिशु-गृहो की व्यवस्था करने के लिये भी उपबन्ध हैं।

जहाँ तक युवा व्यक्तियो को रोजगार पर लगाने का सम्बन्ध है, १६३४ के अधिनियम के अन्तर्गत, बालको के लिए न्यूनतम आयु १२ वर्ष निश्चित की गई और १५ व १७ वर्ष के बीच के व्यक्तियो को भी बालक माना गया बशर्ते कि वे वयस्क व्यक्ति के रूप मे काम पर लगने के लिए फिट न हो। १६४८ के अधिनियम के अनुसार १४ वर्ष से कम आयु के बालको को रोजगार पर लगाना निषिद्ध है तथा १५ से १८ वर्ष क श्रमिको को किशोर माना गया है। १६३४ के अधिनियम की भाँति ही १६४८ के अधिनियम म भी बालको और किशोरो को रोजगार पर लगाने से पूर्व उनकी डाक्टरी परीक्षा करने और प्रमाण पत्र लेने की व्यवस्था है, परन्तु इस प्रकार का प्रमाण-पत्र केवल १२ माह तक ही वैध माना जाएगा। अधिनियम म इस बात की भी व्यवस्था है कि युवा व्यक्तियो की प्रारम्भ मे तथा उसके पश्चात् समय समय पर प्रमाणित डाक्टरो से जाँच की जाती रहे। कुछ खतरनाक व्यवसायो मे स्त्रियो और बालको को रोजगार देने पर नियन्त्रण भी लगाये गय हैं।

जहाँ तक कार्य के घण्टो का सम्बन्ध है, यह १६४८ के अधिनियम के अन्तर्गत वयस्क श्रमिको के लिये ४८ घण्टे प्रति सप्ताह तथा प्रतिदिन ६ घन्टे हैं एव समय विस्तार प्रतिदिन १०½ घण्टे है। बालको और किशोरो के कार्य के घण्ट ५ से घटा कर प्रतिदिन ४½ निर्धारित किये गये हैं तथा श्रम समय विस्तार ५ घण्टे निश्चित किया गया है। किसी भी वयस्क श्रमिक को ५ घण्टे से अधिक कार्य करने की तब तक अनुमति नही है जब तक कि उसे विश्राम के लिये कम से कम आधे घण्ट का मध्यान्तर न मिल जाये। पारियो की बदली को सुविधाजनक बनाने के लिए फैक्टरियो के मुख्य निरीक्षक काम के दैनिक घण्टो की सीमा मे छूट दे सकते हैं और यदि आवश्यक समझें तो ६ घण्टे के काम के बाद विश्रामान्तर दे सकते हैं। अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारो को यह अधिकार दिया गया है कि वह कुछ विशेष परिस्थितिया म कुछ व्यक्तियो को कार्य के घण्टो, साप्ताहिक छुट्टी आदि से सम्बन्धित अधिनियम की धारा से छूट प्रदान कर सकती है, परन्तु जहाँ भी ऐसी छूट प्रदान की जाए वहाँ अधिनियम में शर्त है कि (१) कार्य के घण्टो की कुल सख्या एक दिन मे १० से और सप्ताह मे ५० से अधिक न हो, (२) किसी भी तिमाही मे समयोपरि घन्टों की कुल सख्या ५० से अधिक न हो, (३) श्रम समय विस्तार किसी भी दिन १२ घण्टे से अधिक न हो। स्त्रियो को रात्रि ७ बजे से प्रातः ६ बज तक रोजगार पर लगाना निषेध है तथा बालको और १७ वर्ष से कम आयु के किशोरो को रात्रि मे काम पर नहीं लगाया जा सकता। समयोपरि

काम के लिए श्रमिकों को सामान्य वेतन से दुगनी मजदूरी दिए जाने की व्यवस्था है। (१९५४ के संशोधन के लिए पृष्ठ ५०२—६ देखें)।

जहाँ तक सवेतन अवकाश का प्रश्न है, अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक श्रमिक साप्ताहिक छुट्टी के अतिरिक्त निरन्तर १२ माह का सेवा काल (जिसका अर्थ एक वर्ष मे २४० दिन होते हैं) पूरा हो जाने के पश्चात् निम्नलिखित हिसाब से सवेतन अवकाश प्राप्त करने का अधिकारी होगा : वयस्क श्रमिक २० दिन कार्य करने के पश्चात् एक दिन का सवेतन अवकाश तथा वर्ष में कम से कम १० दिन का सवेतन अवकाश। बालक १५ दिन कार्य करने के पश्चात् १ दिन का तथा वर्ष में कम से कम १४ दिन का सवेतन अवकाश। यदि कोई श्रमिक अपने अर्जित अवकाश का लाभ प्राप्त किये बिना नौकरी से निकाल दिया जाता है या नौकरी छोड जाता है तो ऐसी दशा मे मालिको को उसे उन दिनों का वेतन देना होगा। वयस्क श्रमिक छुट्टियों को ३० दिन तक तथा बालक ४० दिन तक एकत्रित कर सकते हैं। ये छुट्टियाँ अन्य होने वाली सामान्य छुट्टियो के अलावा है और इनका उपभोग वर्ष मे तीन किस्तों से अधिक में नहीं किया जा सकता। (संशोधन के लिये पृष्ठ ८० देखें)।

व्यवसायजनित बीमारियों के सम्बन्ध में भी अधिनियम मे व्यवस्था की गई है। कारखानों के प्रबन्धकों के लिये यह अनिवार्य है कि ऐसी सभी विशेष दुर्घटनाओं की सूचना दें जिनके कारण श्रमिकों की मृत्यु हो गई हो अथवा उन्हें गम्भीर शारीरिक चोट पहुँची हो अथवा श्रमिकों को कोई व्यवसायजनित बीमारी लग गई हो। व्यवसायजनित बीमारियों के रोगियों की चिकित्सा करने वाले डाक्टरों के लिये यह आवश्यक है कि वह भी ऐसे रोगियों की सूचना कारखानों के मुख्य निरीक्षक को दें। अधिनियम के अन्तर्गत कारखाना निरीक्षकों को यह अधिकार है कि वे उत्पादन प्रक्रिया में प्रयोग होने वाले पदार्थों का नमूना ले सकें जिससे यह पता चल सके कि उनका प्रयोग अधिनियम के उपबन्धों के प्रतिकूल तो नही हो रहा है या इससे श्रमिको को कोई शारीरिक चोट या उनके स्वास्थ्य को कोई हानि तो नही पहुँच रही है। राज्य सरकारो को यह अधिकार है कि वह किसी भी दुर्घटना के कारणों अथवा व्यवसायजनित बीमारी के किसी भी कारण की जाँच के लिये उपयुक्त व्यक्तियों को नियुक्त कर सकें।

जहाँ तक कानून के प्रशासन तथा लागू करने का सम्बन्ध है १९४८ के अधिनियम ने पूर्व के अधिनियमो द्वारा की गई व्यवस्था मे कोई परिवर्तन नही किया है। अधिनियम के प्रशासन की जिम्मेवारी राज्य सरकारो पर आती है जो इसका प्रशासन फैक्टरी निरीक्षको तथा प्रमाणित सर्जनो द्वारा करती हैं। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक जिला मजिस्ट्रेट अपने जिले का निरीक्षक होता है। परन्तु अधिनियम के विस्तार और विस्तृत क्षेत्र के कारण राज्य सरकारो के लिये यह आवश्यक हो गया है कि वह कारखाना निरीक्षकों की संख्या मे वृद्धि करें। इस कारण अनेक राज्य सरकारो ने कारखाना निरीक्षकों की सख्या मे वृद्धि की है

यद्यपि कारखानो की बन्ती हुई सख्या को देखते हुये निरीक्षको की सख्या बहुत अपर्याप्त है। इस कारण लगभग १५ से २० प्रतिशत कारखाने प्रतिवर्ष विना निरीक्षण के रह जाते है। यद्यपि अधिनियम के प्रशासन के लिए केन्द्रीय सरकार का कोई उत्तरदायित्व नहीं है तथापि उसने एक सलाहकारी सगठन की स्थापना की है। इसको कारखाने के मुख्य सलाहकार के कार्यालय के नाम से जाना जाता है। यह सगठन श्रम सूचनाओ के विषय में एक प्रकार से निवासी गृह का काम करता है तथा सुरक्षा कल्याण व ऐसे ही सम्बन्धित विषयों में मालिकों और श्रमिकों की जानकारी हेतु छोटी छोटी पुस्तिकाये, पोस्टर्स आदि प्रकाशित करता है। इसने कारखाना निरीक्षकों के हेतु कुछ प्रशिक्षण पाठ्यक्रमो की भी व्यवस्था की है। १९५१ के श्रम मन्त्रियो के सम्मेलन मे यह सुझाव दिया गया था कि राज्यो मे प्रति २५० कारखाना के लिये कम से कम एक निरीक्षक अवश्य होना चाहिये। १९५० मे श्रम निरीक्षकों का एक सेमिनार का आयोजन किया गया था। अनेक निरीक्षको को विदेश भी भेजा गया है (देखें पृष्ठ ५०३)। अधिनियम के उपबन्ध लागू न करने पर दण्ड की भी व्यवस्था है (५०० रु० तक जुर्माना या तीन माह का कारावास या दोनो) दूसरी बार दण्ड दुगुना हो सकता है। बच्चो से दुगुना काम कराने पर तथा निरीक्षकों के कार्य मे बाधा डालने पर भी दण्डो की व्यवस्था है।

अधिनियम मे निम्नलिखित अन्य सशोधन भी भारत सरकार के विचाराधीन हैं—(क) श्रमिक शब्द की व्याख्या में सशोधन करना ताकि फैक्टरियो मे काम करने वाले ठेके के श्रमिक तथा कुछ अन्य श्रेणियो के श्रमिक इसकी परिधि मे आ सकें। उदाहरणत मशीनरी को खडा करने के काम मे, पहरे तथा निगरानी व सफाई या परिवहन कार्यों मे लगे श्रमिक तथा कैन्टीन मे काम करने वाले कर्मचारी आदि (ख) सुरक्षा उपायो को मजबूत बनाना ताकि सुरक्षात्मक कमियों का पता लग सके और श्रमिको के लिये सुरक्षा की अच्छी दशाएं उत्पन्न की जा सकें, (ग) उन कारखाना मे सुरक्षा अधिकारियो की नियुक्ति करना जिनमे एक हजार या अधिक श्रमिक काम करते हैं अथवा जिनमे जारी निर्माण-प्रक्रिया से श्रमिको का शारीरिक चोट जहर अथवा बीमारी का गम्भीर खतरा बना रहता है, (घ) नियमानुसार खतरनाक घटनाओ की अधिसूचना, और (ङ) व्यावसायिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण करने तथा घातक दुर्घटनाओ की जांच आदि करने के लिये अधिकारो की व्यवस्था।

औद्योगिक विकास काल भूतपूर्व भारतीय राज्यो ने भी कुछ कारखाना अधिनियम पारित किए थे जो लगभग १९३४ के अधिनियम जैसे ही थे। १९४८ के भारतीय कारखाना अधिनियम के परिणामस्वरूप उनमे सशोधन भी किये गए। परन्तु १९५१ के भाग ब राज्य अधिनियम के पारित हो जाने के परिणामस्वरूप इन राज्य-अधिनियमो को निरस्त कर दिया गया और जम्मू व कश्मीर

है। जनवरी १६५७ मे जम्मू और कश्मीर में केन्द्रीय अधिनियम के आधार पर एक नया कारखाना अधिनियम पारित किया गया। अन्तर केवल इतना ही है कि कारखानो में कैन्टीन, शिशु-गृह और कल्याण अधिकारियों की दृष्टि से श्रमिकों की संख्या क्रमश: १००, २५ तथा २० निर्धारित की गई है। १६५६ में कारखाना अधिनियम में संशोधन करके उडीसा मे यह व्यवस्था की गई है कि यदि कोई श्रमिक अपना काम समाप्त होने के पश्चात् भी स्वेच्छा से या किसी अन्य कारण से कारखाने के अन्दर ठहरता है तो समयोपरि काम के लिए यह समय कार्य के घण्टे माने जायेंगे।

अनियन्त्रित कारखानों अथवा कार्यशालाओं के सम्बन्ध में विधान -

अनियन्त्रित (Unregulated) कारखानो अथवा कार्यशालाओ (Workshops) के सम्बन्ध में विधान मध्य प्रदेश तथा मद्रास में पारित हुए है। भारत रॉयल श्रम आयोग ने अपनी जाँच के समय अनियन्त्रित कारखानो मे अनेक दोष पाये तथा उनको दूर करने की अनेक सिफारिशें कीं। आयोग का सुझाव था कि अधिनियम की कुछ धाराओ को शक्ति प्रयोग करने वाले तथा १० से २० श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले छोटे कारखानो तक विस्तृत कर देना चाहिए। उन्होने यह भी सिफारिश की कि शक्ति का प्रयोग न करने वाले कारखानो मे कार्य की दशाओ को नियन्त्रित करने के लिए एक साधारण-सा अलग से अधिनियम भी बनाना चाहिए।

यद्यपि शक्ति का प्रयोग करने वाले कारखानों के सम्बन्ध मे १६४० मे कारखाना अधिनियम मे संशोधन करके आयोग की सिफारिशों को कार्य रूप दे दिया गया था, परन्तु शक्ति का प्रयोग न करने वाले कारखानो के सम्बन्ध मे उनकी सिफारिशो को कार्य रूप देने के लिए कोई अखिल भारतीय पग नही उठाया गया। केवल 'कारखाना (संशोधन) अधिनियम १६४०', में "छोटे कारखाने" (Small Factories) नामक एक और अध्याय जोड दिया गया था। यह अध्याय शक्ति का प्रयोग करने वाले तथा १० से १६ व्यक्तियों को रोजगार पर लगाने वाले छोटे-छोटे औद्योगिक संस्थानों मे बालकों के शोषण तथा उन्हे अस्वास्थ्यकर एवं खतरनाक दशाओं मे रोजगार पर लगाने के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता था। प्रान्तीय सरकारो को यह अधिकार था कि जहाँ बालक कार्य करते हो ऐसे किसी भी संस्थान को "छोटा कारखाना" घोषित कर सकती थी, चाहे श्रमिकों की संख्या १० से भी कम क्यो न हो।

जहाँ तक शक्ति का प्रयोग न करने वाले कारखानो का सम्बन्ध है, मध्य प्रदेश सरकार ने सबसे पहले १६३७ में 'सी० पी० अनियन्त्रित कारखाना अधिनियम' पारित किया। इस अधिनियम के अन्तर्गत अनियन्त्रित कारखाने की परिभाषा किसी भी ऐसे संस्थान से की गई थी जहाँ कारखाना अधिनियम लागू नही होता था तथा ५० या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते थे तथा जहाँ बीड़ी बनाने,

चपड़ा उत्पादन करने व चमड़ा रंगने व साफ करने का काम होता था। अधिनियम के द्वारा दैनिक कार्य के घण्टे पुरुषों के लिए १०, स्त्रियों के लिए ६ तथा बालकों के लिए ७ निर्धारित किये गये थे तथा ५ घण्टे कार्य करने के पश्चात् कम से कम आधा घण्टे के विश्राम मध्यान्तर की व्यवस्था थी। अधिनियम के अन्तर्गत १४ वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों को बालक माना गया था। किसी भी बालक को उस समय तक काम पर नहीं लगाया जा सकता था जब तक कि उसने १० वर्ष की अवस्था न पार कर ली हो तथा किसी भी प्रामाणिक चिकित्सक द्वारा कार्य करने के लिए योग्य होने का उसे प्रमाण पत्र न मिल गया हो। अधिनियम में स्त्रियों और बालकों की कार्य अवधि को भी नियमित करने की व्यवस्था थी। अधिनियम में साप्ताहिक छुट्टी के भी उपबन्ध थे। इस अधिनियम के अतिरिक्त बीड़ी कारखानों की दशाओं को नियन्त्रित करने के लिए मध्य प्रदेश सरकार द्वारा १९४१ और १९४८ में मध्य प्रदेश नगरपालिका अधिनियम के अन्तर्गत भी अनेक उपनियम बनाये गये थे। १९४७ में इस अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले कारखानों की कुल संख्या १३९ थी। श्रम अनुसंधान समिति की जाँच के अनुसार इन दोनों अधिनियमों से कोई अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई।

मद्रास में १९४७ में 'मद्रास गैर-शक्ति कारखाना अधिनियम' (Madras Non-power Factories Act) पारित किया गया। मध्य प्रदेश के अधिनियम की भाँति इस अधिनियम में भी उन संस्थानों के श्रमिकों की कार्य की दशाओं को नियन्त्रित करने का प्रयत्न किया गया था जो कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आते हैं। परन्तु इस अधिनियम का विस्तार और क्षेत्र अधिक था। प्रारम्भ में यह अधिनियम २३ ऐसे विशिष्ट उद्योगों और दस्तकारी में लागू किया गया जहाँ १० या अधिक श्रमिक कार्य करते थे, परन्तु सरकार को यह अधिकार था की वह रोजगार के परिशिष्ट में परिवर्तन कर सकती थी तथा अधिनियम को ऐसे स्थानों अथवा कारखानों में भी लागू कर सकती थी जहाँ १० से कम श्रमिक कार्य करते हों। अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले प्रत्येक गैर-शक्ति कारखाने के स्वामी को कारखाना चलाने के लिए लाइसेन्स लेना होता था। रोजगार के लिए न्यूनतम आयु १४ वर्ष निर्धारित कर दी गई थी। १४ से १७ वर्ष तक के श्रमिकों को कार्य करने के योग्य होने का डाक्टरी प्रमाण-पत्र देना पड़ता है। कार्य के घण्टे प्रतिदिन ९ अथवा प्रति सप्ताह ४८ निर्धारित किये गये थे और श्रम समय-विस्तार की सीमा प्रतिदिन १० घण्टे निर्धारित की गई थी। एक साप्ताहिक छुट्टी की भी व्यवस्था की गई थी। प्रत्येक वर्ष की नौकरी पर १२ बीमारी की छुट्टियों तथा मजदूरी सहित १२ आकस्मिक छुट्टियों के लिए भी उपबन्ध थे। मौसमी कारखानों में अवकाश की अवधि का निर्धारण श्रमिक द्वारा किये गए कार्य-दिनों के अनुसार होता था। स्वास्थ्य और सुरक्षा सम्बन्धी उपबन्ध १९३४ के कारखाना अधिनियम जैसे ही थे। किसी भी श्रमिक को, जिसने लगातार ६ मास तक काम किया हो,

बिना कोई उपयुक्त कारण बताये अथवा एक माह का वेतन या इसके बदले में एक माह का नोटिस दिये बिना बर्खास्त नहीं किया जा सकता था।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, अनियन्त्रित कारखाने अब १९४८ के कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत भी आते है। इसके अन्तर्गत राज्य सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि वे स्वास्थ्य, सुरक्षा, कल्याण, कार्य के घण्टे, रोजगार के लिये कम से कम आयु का निर्धारण, आदि से सम्बन्धित अधिनियम के कुछ उपबन्धों को किसी भी कारखाने पर लागू कर सकती है, चाहे उनमें कितने ही श्रमिक कार्य करते हों या शक्ति का प्रयोग होता हो अथवा नही। सी० पी० (मध्य प्रदेश) अनियन्त्रित कारखाना अधिनियम को जुलाई १९५२ मे १९५२ के मध्य प्रदेश अधिनियम VII तथा मद्रास गैर-शक्ति कारखाना अधिनियम १९४७ को मई १९५१ मे १९५१ के मद्रास अधिनियम XIV द्वारा निरस्त कर दिया गया। मद्रास सरकार ने एक अधिसूचना द्वारा १९४८ के कारखाना अधिनियम को उन सभी स्थानो पर लागू कर दिया है जहाँ (क) बिना शक्ति की सहायता के उत्पादन प्रक्रियायें होती है, या साधारणतया शक्ति का उपभोग नही किया जाता, तथा (ख) १० या अधिक परन्तु २० से कम श्रमिक कार्य करते है।

१९५८ मे मद्रास सरकार ने मद्रास बीडी औद्योगिक स्थान (कार्य की दशाओं का विनियमन) अधिनियम [Madras Beedi Industrial Premises (Regulation of Conditions of Work) Act] भी पारित किया। इसके अन्तर्गत १९५९ मे नियम बनाये गये और लागू कर दिये गये हैं। अधिनियम में बीडी औद्योगिक संस्थानों के लिये लाइसेंस लेने, निरीक्षकों की नियुक्ति और उनके अधिकारों का निर्धारण करने, स्वच्छता और संवातन के स्तर को निर्धारित करने, बीडी उद्योग के स्थानों में भीड-भाड को रोकने, पीने के पानी की व्यवस्था करने, तथा शौचालय और मूत्रालय, धोने की सुविधायें, शिशु-गृह, प्राथमिक चिकित्सा, श्रमिकों के लिये कैन्टीन, कार्य के घण्टे (प्रतिदिन ९ और प्रति सप्ताह ४८ घण्टे), आराम समय, साप्ताहिक छुट्टियाँ, सवेतन वार्षिक छुट्टी, समयोपरि काम के लिये मजदूरी, बालकों को रोजगार पर लगाने की रोक आदि के १९४८ के कारखाना अधिनियम के समान ही उपबन्ध है। इसी प्रकार के उपबन्ध केरल मे "बीडी व सिगार औद्योगिक (कार्य की दशाओं का विनियमन) अधिनियम १९५९" नामक अधिनियम मे तथा मैसूर मे "बीडी औद्योगिक (कार्य की दशाओं का विनियमन) अधिनियम, १९६९" मे भी किये गये थे।

केन्द्र सरकार ने नवम्बर १९६६ में एक अधिनियम पास किया है जिसे 'बीडी व सिगार श्रमिक (काम की शर्तें) अधिनियम' का नाम दिया गया है। अधिनियम में निम्न बातो की व्यवस्था की गई है—ठेके द्वारा काम की पद्धति का नियमन, बीडी तथा सिगार औद्योगिक संस्थानों के लिये लायसेंस देना तथा स्वास्थ्य, काम के घण्टे, श्रम समय-विस्तार, विश्राम के घण्टे, समयोपरि काम,

पहलुओं पर ही अपना ध्यान एकत्रित करते हैं। निरीक्षकों का वेतन भी कम है और समाज मे उनकी प्रतिष्ठा भी कम ही होती है। अतः वह प्रभावशाली उद्योग-पतियो के विरुद्ध कोई कार्य करने में अपने आपको असहाय पाते हैं और हिच-किचाते हैं।

अधिनियम के अपवंचन का एक कारण यह भी है कि नियम भंग करने वालो को, विशेषतया मुफस्सिल न्यायालयो द्वारा, बहुत कम दण्ड दिया जाता है। इस सम्बन्ध में रॉयल श्रम आयोग के शब्दो में कहा जा सकता है कि "अधिकांश प्रान्तो मे ऐसे अनेक मामले मिलते है जिनमें बहुत कम जुर्माना किया गया है, विशेषतया ऐसे मामलो मे जहाँ नियम बार-बार भंग किये गये हो। नियम भग से अपराधी को जो लाभ होता है उसकी अपेक्षा जुर्माना बहुत कम किया जाता है।" रॉयल श्रम आयोग की रिपोर्ट के बाद से इस अवस्था मे कोई सुधार नही हुआ है। हल्का दण्ड देने का परिणाम यह होता है कि इसकी अपेक्षा कि अपराधियो पर अच्छा प्रभाव पड़े, उन्हें अपराध के लिए प्रोत्साहन मिलता है। अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारो को अनेक छूटे प्रदान करने का अधिकार है। परन्तु ऐसी छूटे सब जगह एक समान नही हैं और अनेक मामलों में तो ये न्यायोचित भी नही होती।

कारखाना विधान का एक अन्य दोष यह रहा है कि १६४८ के कारखाना अधिनियम से पूर्व सस्थानों की एक बड़ी सख्या पर कोई कानून लागू नही होता था। १६४८ का कारखाना अधिनियम भी उन सस्थाओं पर लागू नही होता जो शक्ति का प्रयोग नही करते तथा जहाँ २० से कम श्रमिक काम करते है, यद्यपि राज्य सरकारो को यह अधिकार है कि वह अधिनियम को, यदि चाहें तो ऐसे सस्थानो पर भी लागू कर सकती है। बीडी, अभ्रक, चपडा, कालीन बुनने, चमड़े की देशी विधि से साफ करने, ऊन साफ करने, चटाई बुनने, दस्तकारी आदि जैसे अनियन्त्रित उद्योगो में औद्योगिक श्रमिकों को सबसे कम सुरक्षा प्रदान की गई है और मद्रास, मध्य प्रदेश और केरल को छोड़कर इनके ऊपर कोई विधान लागू नही होता। ऐसे उद्योगों को 'शोषित उद्योग' (Sweated Trades) कहा जाता है। इस बात की बहुत अधिक आवश्यकता है कि विधान को इन उद्योगो तक विस्तृत किया जाय। ऐसे उद्योगो में कार्य की दशायें अत्यन्त शोचनीय हैं, श्रमिको को बहुत कम मजदूरी दी जाती है तथा बाल श्रमिको का खूब शोषण किया जाता है। शिक्षुओं को विविध प्रकार के सभी काम करने पड़ते हैं, यहाँ तक कि मालिकों का घरेलू काम भी करना पडता है। इस प्रकार उन्हें कार्य सीखना बहुत महगा पडता है। केन्द्रीय सरकार को उनके लिए अलग से विधान बनाना चाहिए और इस विषय को राज्य सरकारो पर ही नही छोड देना चाहिए। (शिक्षुओं के लिए अब १९६१ का शिक्षुता अधिनियम, जिसका उल्लेख आगामी पृष्ठों मे किया गया है, पारित किया गया है।) देश मे कारखाना अधिनियम को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिए यह आवश्यक है कि अधिनियम को दृढ़तापूर्वक लागू किया जाय,

निरीक्षक दल की सख्या मे वृद्धि की जाय, निरीक्षको को अधिक अधिकार और प्रतिष्ठा दी जाय, विभिन्न राज्यो के कानूनो मे समानता लाई जाय तथा अधिनियम को अनियन्त्रित कारखानों तक विस्तृत कर दिया जाय। जहाँ तक अधिनियम के उपबन्धो का सम्बन्ध है वह जिस उद्देश्य से अधिनियम बनाया गया है उसके लिये पर्याप्त प्रतीत होता है।

खानो मे श्रम विधान
(Mining Legislation)

१९२३ का भारतीय खान अधिनियम
(The Indian Mines Act, 1923)

कोयले की खानो मे श्रमिको के रोजगार की दशाओं को विनियमित करने के हेतु सर्वप्रथम प्रयास १८९४ मे किया गया था, जब खानो के एक निरीक्षक की नियुक्ति की गई थी। यह नियुक्ति १८९० मे बर्लिन मे हुए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के फलस्वरूप हुई थी, परन्तु कारखानो मे कार्य की दशाओं को विनियमित करने वाला प्रथम भारतीय खान अधिनियम १९०१ मे पारित हुआ। इसके अन्तगत निरीक्षको की नियुक्ति की व्यवस्था की गई थी। इस अधिनियम मे अनेक दोष थ तथा कई बार सशोधन के पश्चात् इस अधिनियम को पूर्णत परिवर्तित कर दिया गया और इसके स्थान पर १९२३ का अधिक व्यापक "भारतीय खान अधिनियम' पारित किया गया। इस अधिनियम मे १९२८ मे सशोधन हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन द्वारा १९३१ म पारित एक अभिसमय के मसौदे के परिणामस्वरूप, जो अभिसमय कोयले की खानो मे कार्य के घण्टो के सम्बन्ध मे था तथा रायल श्रम आयोग की सिफारिशो के अनुसार इस अधिनियम में १९३५ मे फिर सशोधन हुआ जिसके अन्तर्गत इसमे कुछ आमूल परिवर्तन किये गये। इस अधिनियम मे इसके पश्चात् भी १९३६, १९३७, १९४० तथा १९४६ मे सशोधन हुए तथा अन्त म इसके स्थान पर १९५२ का भारतीय खान अधिनियम पारित किया गया।

१९५२ से पूर्व सशोधित १९२३ के भारतीय खान अधिनियम के मुख्य उपबन्धो का सक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

यह अधिनियम समस्त खानो पर लागू होता था। खान की परिभाषा इस प्रकार की गई थी • "कोई खुदाई जहाँ खनिज पदार्थों को प्राप्त करने या उनकी खोज करने के हेतु कार्य किया जाता है या किया जा रहा है।" इस अधिनियम मे खान के ऊपर काय मे लगे हुए व्यक्तियो के लिय कार्य के घन्ट प्रतिदिन १० निर्धारित किए गए थे और अधिकतम श्रम समय विस्तार भी १२ घण्टे निश्चित कर दिया था जिसमे प्रत्येक ६ घन्टे कार्य के पश्चात् १ घन्टे के विश्राम मध्यान्तर की भी व्यवस्था थी। खान के भीतर रोजगार मे लग व्यक्तियो के लिये दैनिक

कार्य-समय तथा श्रम-समय-विस्तार ६ घन्टे निश्चित किया गया था। समस्त कर्मचारियों के लिये साप्ताहिक कार्य घन्टे ५४ निर्धारित किये गये थे। किसी भी व्यक्ति को खान मे सप्ताह के ६ दिन से ज्यादा कार्य करने की अनुमति नही थी। निरीक्षण तथा प्रबन्ध करने वाले कर्मचारी इन उपबन्धो के अन्तर्गत नही आते थे। १५ वर्ष की आयु से कम के बालको को रोजगार मे लगाना निषेध था तथा १७ वर्ष से कम आयु वाले व्यक्तियों को खान के भीतर कार्य करने की तब तक अनुमति नही थी जब तक वे इसके योग्य होने का डाक्टरी प्रमाण-पत्र न दे।

अधिनियम में पीने के पानी का समुचित प्रबन्ध, चिकित्सा यन्त्रो की व्यवस्था तथा उचित रूप से जल-मल निकास के प्रबन्ध की व्यवस्था भी की गई थी। १९४६ के सशोधित अधिनियम द्वारा इस बात की भी व्यवस्था कर दी गई थी कि खानो के ऊपर या उनके समीप स्त्री और पुरुषो के लिए अलग अलग ऐसे स्नानगृह बनाये जाये जो बन्द हों और जिनमे फव्वारे से स्नान करने की व्यवस्था हो। १९४५ में खान (सशोधित) अध्यादेश द्वारा खानो मे शिशुगृहो की व्यवस्था की गई थी। १९४७ मे इस अध्यादेश को निरस्त कर दिया गया। किन्तु इसके उपबन्धो का अधिनियम मे समावेश कर लिया गया। खान मे कार्य करने वालो की सुरक्षा के लिए विनियम भी बनाये गये। इनके अन्तर्गत महत्वपूर्ण खान क्षेत्रो में ऐसे खान बोर्डों के निर्माण की व्यवस्था थी जिनमे मालिको, कर्मचारियो तथा सरकार के प्रतिनिधि हो। ऐसे बोर्डो का कार्य सरकार के अधिनियम के अन्तर्गत नियम बनाने में सहायता करना था। उत्पादन, रोजगार, श्रमिको की आय, कार्य के घन्टे आदि के विषय मे आकड़े एकत्रित करने के हेतु सरकार ने कोयला खान विनियमो मे सशोधन भी किया। यह अधिनियम हिमाचल प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में कुछ भारतीय राज्यों मे भी लागू होता था तथा तिरुवांकुर व मैसूर की खानो के लिए अलग अधिनियम थे। अधिनियम के प्रशासन का उत्तरदायित्व भारत सरकार का था तथा इस अधिनियम का प्रशासन करने तथा उसे लागू करने के लिये खानो का एक मुख्य निरीक्षक नियुक्त किया गया था।

खानो मे रोजगार की दशाओ का विनियमन खान अधिनियम के अतिरिक्त खानो में स्वास्थ्य बोर्डो की स्थापना करके भी किया गया है। ये बोर्ड श्रमिको के स्वास्थ्य की देखभाल करते है। इन बोर्डों को यह अधिकार दिया गया है कि वह खानो के मालिकों को इस बात के लिए बाध्य करें कि वे खानो के क्षेत्र मे आवास, जल, सफाई की सुविधायें एव चिकित्सा सहायता की व्यवस्था करे।

जहाँ तक खान के भीतर कार्य करने वाली स्त्रियो के रोजगार का सम्बन्ध है मार्च १९२९ मे ऐसे विनियम बनाये गये थे, जिनसे अगले १० वर्षों मे, अर्थात् १९३९ तक, स्त्रियो का खान के भीतर कार्य करना धीरे-धीरे समाप्त कर दिया जाये। परन्तु १९३७ मे एक अधिसूचना द्वारा स्त्रियो का खान के भीतर कार्य करना निषेध कर दिया गया। युद्धकाल मे श्रमिको की कमी के कारण १९४३ में यह रोक हटा ली गई थी, किन्तु पुनः १९४६ में यह रोक लगा दी गई।

१९५२ का भारतीय खान अधिनियम (Indian Mines Act of 1952)

खानो के श्रमिक सम्बन्धी विधान को कारखानो के श्रमिक सम्बन्धी विधान के समान करन के लिए भारत सरकार ने १८ दिसम्बर १९४९ को ससद मे एक विधेयक प्रस्तुत किया जो १५ फरवरी १९५२ को पारित किया गया। इस भारतीय खान अधिनियम १९५२ कहा जाता है। १९५९ मे इसमे सशोधन किया गया। यह अधिनियम पिछले सभी ऐसे अधिनियमो को निरस्त करके उनका समन्वय करता है जो खानो मे सुरक्षा तथा श्रमिको के विनियमन से सम्बन्धित थे। यह अधिनियम अन्य बातो के अतिरिक्त कम काय घण्ट समयोपरि तथा वेतन सहित छुट्टियो की भी व्यवस्था करता है तथा सुरक्षा व स्वास्थ्य सम्बन्धी उपवन्धो को दढ बनाता है। अधिनियम के मुख्य उपवन्ध निम्नलिखित है—

(क) यह अधिनियम उन समस्त व्यक्तियो पर लागू होता है जो खान के कार्यो म या उससे सम्बन्धित किसी भी काय म लग हुए है। जम्मू व कश्मीर के अतिरिक्त समस्त भारत पर यह लागू होता है। खानो के अन्तर्गत खानो स सम्बन्धित अन्य काय तथा स्थान जहा भी श्रमिक काय करते है सम्मिलित कर लिए गए है। खान की परिभाषा अधिक विस्तत कर दी गइ है और उसम निम्न लिखित सम्मिलित किए गये हैं—खानो के रास्ते समतल क्षत्र मशीन टाम गाडिया कायशालाय बिजली घर टाम गाडियो आदि के ठहरन के स्थान खनिज पदाथ और कायला धोने के स्थान आदि। (ख) खान के ऊपर तथा खान के भीतर काय करन वाले समस्त वयस्क श्रमिको के काय घण्ट घटाकर प्रति सप्ताह ४८ कर दिय गए हैं तथा अधिनियम मे यह भी व्यवस्था है कि खान के अन्दर प्रतिदिन ८ घण्ट स अधिक एव खान के ऊपर प्रतिदिन ९ घण्टे स अधिक किसी श्रमिक को काय करन की अनुमति नही हागी। काम करने के प्रत्येक पाच घण्टो के पश्चात आधे घण्टे का एक विश्राम मध्यान्तर देना होगा और कोई भी श्रमिक सप्ताह मे ६ दिन म अधिक काय नही करेगा। १९२३ के अधिनियम न समयोपरि देन की दर निश्चित नही की थी किन्तु १९५२ के अधिनियम मे यह व्यवस्था थी कि खान के ऊपर काय करन वाल श्रमिका को मजदूरी की साधारण दरो स १½ गुनी दरो पर समयोपरि दी जायेगी तथा खान के भीतर काय करने वाले श्रमिको को मजदूरी की साधारण दर स दुगनी दर पर समयोपरि दी जायेगी, परन्तु कोई भी श्रमिक समयोपरि सहित एक दिन मे १० घण्टो से अधिक काय नही कर सकता। काय का अधिकतम समय विस्तार खान के ऊपर काय करने वाले श्रमिको के लिए १२ घण्ट तथा खान क भीतर काय करन वालो क लिए ८ घण्टे निश्चित किया गया है। (ग) अधिनियम के अन्तगत खान के अन्दर रोजगार मे लगे व्यक्तियो की आयु सीमा बढाकर १७ से १८ कर दी गई है तथा किशोर (अर्थात १५ से १८ वष की आयु के बीच क व्यक्ति) श्रमिको के लिए प्रतिदिन ४½ घण्ट

कार्य की सीमा निर्धारित की गई है। (घ) खान के अन्दर स्त्रियों को रोजगार पर लगाने पर प्रतिबन्ध इस अधिनियम में भी है, तथा इस बात की व्यवस्था है कि खान के ऊपर किसी भी स्त्री को प्रातः ६ बजे से सन्ध्या ७ बजे के अतिरिक्त कार्य करने की अनुमति नहीं दी जायेगी। राज्य सरकारें इन सीमाओं को कम या अधिक कर सकती है, किन्तु १० बजे रात्रि से ५ बजे प्रात के बीच कार्य करने की अनुमति नही दे सकती। (ङ) अधिनियम मे एक साप्ताहिक विश्राम दिवस के अतिरिक्त श्रमिको को वेतन सहित छुट्टियो तथा एवजी छुट्टियो को प्रदान करने की भी व्यवस्था है। श्रमिक १२ माह की निरन्तर नौकरी पूर्ण करने के पश्चात् निम्न दरों पर छुट्टी ले सकते हैं—(i) मासिक वेतन पाने वाले श्रमिक १४ दिन, (ii) साप्ताहिक मजदूरी पाने वाले श्रमिक अथवा सामान चढाने वाले या खान के भीतर उजरत पर कार्य करने वाले श्रमिक ७ दिन। मासिक मजदूरी पाने वाले श्रमिक ३८ दिन तक छुट्टियाँ एकत्रित कर सकते है (१६५६ मे सशोधन के अनुसार ३० दिन)। (च) १६४८ के फैक्टरी अधिनियम के आधार पर इस अधिनियम मे स्वास्थ्य, सुरक्षा तथा कल्याण सम्बन्धी पर्याप्त उपबन्ध भी बनाये गये ह। कल्याण अधिकारी की नियुक्ति, प्राथमिक उपचार का सामान, शिशु-गृह, विश्राम-गृह, खान के ऊपर स्नान-घर, बचाव करने वाले केन्द्रीय स्थान, कैन्टीन, एम्बुलेंस तथा रोगी को ले जाने वाले स्ट्रेचर, ठण्डा और शुद्ध पीने का जल, शौचालय, मूत्रालय आदि की अधिनियम मे व्यवस्था है। (छ) अधिनियम के उपबन्धो का उल्लंघन करने वालो को समुचित दण्ड देने की भी व्यवस्था है, यह दण्ड कारावास या जुर्माना या दोनों के रूप में दिया जा सकता है। (ज) प्रशासन के हेतु अधिनियम में खानो के मुख्य निरीक्षक की नियुक्ति की व्यवस्था है, जिसकी सहायता खानो के निरीक्षक तथा जिलाधीश करेगे। निरीक्षक ऐसे औपचारिक कार्यों को करने की आज्ञा दे सकते हैं जो श्रमिको की सुरक्षा के लिए आवश्यक हो।

१६५२ के भारतीय खान अधिनियम में १६५६ के खान (सशोधन) अधिनियम द्वारा सशोधन किया गया है। यह सशोधन अधिनियम १६ जनवरी १६६० को लागू किया गया। सशोधित अधिनियम की कुछ मुख्य धारायें निम्नलिखित है— 'खान' शब्द की परिभाषा को और अधिक स्पष्ट कर दिया गया है और अब इसके अन्तर्गत सभी प्रकार के बोरिंग, बरमे के छेद, तेल के कुएँ, खानो के मार्ग, पत्थर की खानें, खुले स्थान पर किये जाने वाले कार्य, रेले, हवाई रज्जुमार्ग, वाहक, ट्राम्बे, सरकनें (slidings), निर्माणशालायें तथा विद्युत घर आदि और वे समस्त स्थान जो खानो के समीप या खानो से सम्बन्धित हैं और जिनमे खानो से सम्बन्धित कार्य होते है, खान के अन्तर्गत आ जाते हैं। सशोधित अधिनियम में यह व्यवस्था भी है कि जिन खानो मे १५० या उससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं वहाँ प्राथमिक उपचार के लिये पृथक् कमरे होने चाहियें। १६५२ के अधिनियम मे इसके लिये ५०० श्रमिको की शर्त थी। अधिनियम में यह भी धारा है कि उस खान मे श्रमिको को रोजगार पर नहीं लगाया जा सकता जिसका पर्याप्त राम

निरीक्षक की चेतावनी पर भी ऐसी बातों को ठीक नहीं करता जिनसे मानव-जीवन का, अंगों अथवा सुरक्षा का खतरा हो। इस अधिनियम में खान के अन्दर और खान के ऊपर दोनों ही स्थानों पर किये जाने वाले समयोपरि काम के लिये साधारण मजदूरी से दुगुनी मजदूरी देने की व्यवस्था की गई है जबकि मूल अधिनियम में ये दरें खान के ऊपर काम करने वाले श्रमिकों के लिये डेढ़ गुनी और खान के अन्दर काम करने वाले श्रमिकों के लिये दुगुनी थी। संशोधित अधिनियम में यह भी व्यवस्था की गई है कि खान के अन्दर काम करने वाले श्रमिकों को प्रति २० दिन काम के उपरान्त एक सवेतन छुट्टी दी जायगी और खान के ऊपर काम करने वालों को प्रति १६ दिन काम के उपरान्त एक सवेतन छुट्टी मिलेगी। इस प्रकार की छुट्टियाँ ३० दिन तक एकत्रित की जा सकती है। अधिनियम के उपबन्धों का उल्लंघन करने पर और अधिक दण्ड देने की व्यवस्था है।

खानों के लिए अन्य विधान

१९४७ का कोयला खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, १९४६ का अभ्रक खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम तथा कच्चा लोहा खान श्रम कल्याण उपकर अधिनियम, १९६१ भी सरकार द्वारा पारित किये गये हैं। पिछले पृष्ठों में कल्याण कार्यों के अन्तर्गत (देखिये पृष्ठ ३३४–३३९) इन अधिनियमों का उल्लेख किया जा चुका है। सरकार ने १९४८ का कोयला खान प्राविडेंट फण्ड एवं बोनस योजना अधिनियम भी पारित किया है जिसका सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत पृष्ठ (४४०–४४७) पर उल्लेख किया जा चुका है तथा सरकार ने खान मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम भी पारित कर दिया है (देखिये पृष्ठ ३८६–३८९)। खानों में दुर्घटनाओं की रोकथाम के लिये १९५५ में कोयला खान (अस्थायी) विनियम भी सरकार ने घोषित किये (देखिये पृष्ठ ५००)। अक्टूबर १९५७ से कोयला खानों के लिये विनियमों (Regulations) की एक पूर्ण संशोधित संहिता लागू कर दी गई है और अब तक जो भी विनियम थे वह समाप्त कर दिये गये हैं। यह विनियम इस बात की व्यवस्था करते हैं कि जलने वाली तथा जहरीली गैसों, धूल, खानों में पानी भर जाने या आग लग जाने या तापक्रम एकदम से बढ़ जाने आदि से खान के भीतर कार्य करने वाले श्रमिकों की प्रभावात्मक रूप से सुरक्षा हो सके। खानों में "बचाव नियम (Rescue Rules), जो १९३९ में बनाये गये थे, पुन. १९४९ में बनाये गये हैं। खानों में शिशुगृहों के लिये भी १९४६ में नियम बनाये गये थे तथा १९५९ में यह नियम फिर से बनाये गये और इनमें १९६१ में संशोधन भी किया गया। इस प्रकार खान श्रमिकों की सुरक्षा तथा श्रमिकों के स्वास्थ्य तथा आवास दशाओं को सुधारने के लिये सरकार ने उपयोगी विधान बनाये।

सन् १९३९ का कोयला खान सुरक्षा (उचित व्यवस्था) अधिनियम [The Coal Mines Safety (Stowing) Act, 1939]

यह अधिनियम कोयला ठिकाने से रखने के कार्यों में सहायता करने के लिये

एक निधि की स्थापना करने की व्यवस्था करता था। अधिनियम के अनुसार इस निधि का धन एक उत्पादन-कर द्वारा संचित किये जाने की व्यवस्था थी तथा उसका प्रशासन एक कोयला खान स्टोइङ्ग बोर्ड को सौंपा गया था जिसमें ६ व्यक्ति थे। इस अधिनियम के अन्तर्गत खानों के निरीक्षकों तथा मुख्य निरीक्षक को यह अधिकार दिया गया था कि वे खानों के मालिकों, अभिकर्त्ताओं अथवा प्रबन्धकों को खानों के श्रमिकों के लिये आवश्यक सुरक्षात्मक कार्य करने को बाध्य करें। किन्तु, जैसा कि १९४६ में कोयला खानों में श्रम की दशाओं की जाँच से स्पष्ट है, कुछ खानों ने ही इस अधिनियम का लाभ उठाया। १९४५ की भारतीय कोयला खान समिति ने यह जांच की थी कि यह अधिनियम किस प्रकार लागू किया जा रहा था। इस समिति की कुछ सिफारिशों को लागू किया गया। अन्त में इस अधिनियम के स्थान पर १९५२ का निम्नलिखित अधिनियम पारित किया गया।

१९५२ का कोयला खान (बचत तथा सुरक्षा) अधिनियम [The Coal Mines (Conservation and Safety) Act, 1952]

यह अधिनियम, जो जम्मू व कश्मीर राज्य को छोड़कर, समस्त देश में लागू होता है, केन्द्रीय सरकार को ऐसे कार्य अपनाने का अधिकार देता है जिन्हें सरकार कोयला बचत के लिये या कोयला खानों में सुरक्षा व्यवस्था बनाये रखने के लिये आवश्यक समझे। सरकार कोयले की राख कम करने के लिये कोयला धोने की आज्ञा दे सकती है तथा कोयला बचत के लिये मालिकों को कोयला ठिकाने से रखने को कह सकती है। इस अधिनियम में एक कोयला बोर्ड तथा सलाहकार समितियों के निर्माण की व्यवस्था भी है। सरकार को कोयला ठिकाने से रखने में सहायता देने के हेतु कोयले पर उत्पादन कर लगाने का भी अधिकार दिया गया है। उत्पादन कर की दर एक रुपये प्रति टन कोयले से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती थी, परन्तु १९६१ में संशोधन के अनुसार यह मात्रा ४ रुपये प्रति टन कर दी गई है। सरकार सब कोयले पर एक अतिरिक्त उत्पादन कर भी लगा सकती है जिसकी दर पहले दो चुने हुए (क), (ख) ग्रेड के लिये ५ रुपये प्रति टन तथा अन्य ग्रेड (I) के लिये दो रुपये प्रति टन से अधिक नहीं हो सकती। कर से प्राप्त धन बोर्ड को दिया जायेगा तथा 'कोयला खान बचत तथा सुरक्षा निधि' में जमा हो जायेगा। यह निधि अधिनियम के अन्तर्गत बनाई गई है। इस निधि का उपयोग अधिनियम के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये तथा खानों में सुरक्षा से सम्बन्धित सुरक्षा कार्य के अनुसन्धान के लिये किया जा सकता है। मुख्य निरीक्षक तथा अन्य निरीक्षकों को यह अधिकार है कि वह कोयला ठिकाने से रखने के लिये या अन्य किसी भी कार्य के लिये, जिसे वह सुरक्षा के लिये आवश्यक समझते हो, खानों के मालिक, प्रबन्धक या अभिकर्त्ता को आज्ञा दे सकते है।

बागान श्रम विधान
(Plantation Labour Legislation)

बागान म श्रमिक

बड़े नगरो क कारखाना श्रमिको की भाति बागान क श्रमिक न तो इतने वाचाल (Vocal) ह और न ही जनता इन्ह इतना अधिक जानती है। फिर भी अपनी सख्या के कारण और देश की अथ व्यवस्था म महत्वपूर्ण भाग लेने के कारण उनका महत्व कम नही है यद्यपि इस महत्व का जनता को बहुत कम ज्ञान कराया जाता है। बागान १२३ लाख श्रमिको को रोजगार देते हे तथा निर्यात व्यापार म इनका महत्वपूर्ण योगदान है। बागान श्रमिको की अपनी विशेष प्रकार की समस्याय है। अधिकतर श्रमिक दूर के क्षेत्रा से भर्ती किये जाते हैं तथा इनमें प्रवासिता पाइ जाती है। बागान म काय भी साधारणतया मौसमी होता है। अन्य कारखाना की तुलना म बागान के श्रमिको की आय भी कम होती है। बागान म चिकित्सा तथा शिक्षा की सुविधाओ का अभाव है और कल्याण सुविधाय भी अपर्याप्त ह। मलेरिया बुखार आम बात हे तथा श्रमिको का स्वास्थ्य साधारणत असन्तोषजनक रहता है। आवास की दशाओ म भी काफी सुधार की आवश्यकता ह। ये समस्त बात बताती ह कि बागान के श्रमिको के जीवन के सब पहलुओ पर ध्यान देने वाले एक व्यापक विधान की बहुत अधिक आवश्यकता रही है। परन्तु १९५१ तक इस दिशा म कोई पग नही उठाया गया। १९५१ म ही एक पृथक बागान श्रमिक अधिनियम पारित किया गया परन्तु इसको भी अप्रैल १९५४ तक लागू नहीं किया गया।

आरम्भ म उठाए गए कुछ पग

भारतीय श्रम विधान क इतिहास म प्रारम्भ म उठाए गए वैधानिक पग बागान म काय पर लगे हुए श्रमिको स सम्बन्धित थे। असम क बागान उद्योग का अपने विकास के प्रारम्भिक चरणो म श्रमिको की कमी की समस्या का सामना करना पड़ा था। मालिको को दूर दूर स तथा अन्य राज्यो से श्रमिक भर्ती करने पड़ते थ जिसके कारण अनेक कठिनाइया तथा समस्याय उत्पन्न हो गई थी। इन कठिनाइयो को हल करने के लिए १८६३ म १९०१ तक अनेक अधिनियम पारित किये गये थ जिनम पाच बगाल म थ तथा एक मद्रास म था। इन अधिनियमो ने भर्ती करने वालो क लाइसेंस स परावासी (Emigrants) श्रमिको की रजिस्ट्री यात्रा म स्वास्थ्य सम्बन्धी सावधानिया श्रमिको के सविदा की ३ स ५ साल तक का अवधि तथा मजदूरी निर्धारण आदि की व्यवस्था की गई थी। मालिको का यह अधिकार दे दिया गया था कि भागे हुए श्रमिको को गिरफ्तार करा ल। सविदा भग करना एक कानूनी अपराध बना दिया गया था। किन्तु इन सब व्यवस्थाओ ने अनुबन्ध श्रम (Indentured Labour) पद्धति को जन्म दे दिया। इस पद्धति ने श्रमिको की पर्याप्त रूप स पूर्ति की समस्या को हल करने के स्थान पर नवीन कठिनाइयाँ

उत्पन्न कर दी। अतः १६०१ में असम श्रम तथा परावासी अधिनियम पारित किया गया। १६०८ में तथा १६१५ में दो संशोधित अधिनियम पारित किये गये, जिन्होंने अनुबन्ध श्रम पद्धति समाप्त कर दी तथा मालिकों द्वारा श्रमिकों को निजी रूप से गिरफ्तार कर लेने के अधिकार को वापिस ले लिया। तथापि यह अधिनियम उद्योग की समस्याओं को हल करने में असफल रहा। १६२६ तथा १६३२ में १८५६ एवं १८६० के अधिनियम निरस्त कर दिए गये। भारत में रॉयल श्रम आयोग ने इन सब प्रश्नों पर विस्तार से विचार किया था तथा अनेक सिफारिशें भी की थीं। इन सिफारिशों के आधार पर ही चाय क्षेत्र परावासी श्रमिक अधिनियम १६३२ में पारित किया गया जो अक्टूबर १६३३ में लागू कर दिया गया।

१६३२ का चाय क्षेत्र परावासी श्रमिक अधिनियम (The Tea Districts Emigrant Labour Act, 1932)

यह अधिनियम जम्मू एवं कश्मीर के अतिरिक्त समस्त भारत पर लागू होता है। यह अधिनियम मुख्यतया असम के चाय बागान के श्रमिकों की भर्ती पर नियन्त्रण लागू करने से सम्बन्धित है और इस बात की व्यवस्था करता है कि धोखे से और फुसलाकर श्रमिकों की भर्ती न की जा सके तथा असम तक यात्रा के लिए उचित सुविधायें प्रदान की जाएँ। यह अधिनियम केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण में राज्य सरकारों को यह अधिकार देता है कि राज्य के किसी क्षेत्र को नियमित परावासी क्षेत्र घोषित कर दें तथा किसी व्यक्ति को मालिक अथवा मालिकों की ओर से आगे भेजने वाले स्थानीय अभिकर्ता (Agent) का कार्य करने का लाइसेंस दे दे। नियन्त्रित परावासी क्षेत्रों से भर्ती किए हुए श्रमिक लाइसेंस-युक्त स्थानीय अभिकर्त्ता द्वारा तथा निर्धारित मार्गों से ही असम भेजे जा सकते है तथा उनके भेजे जाने के मार्ग में भोजन तथा ठहरने का अभिकर्त्ताओं द्वारा प्रबन्ध होता है। राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार की अनुमति से किसी नियन्त्रित परावासी क्षेत्र या उसके किसी भाग को सीमाबद्ध (Restricted) भर्ती क्षेत्र भी घोषित कर सकती है। ऐसी स्थिति में लाइसेन्स-युक्त आगे भेजने वाले अभिकर्त्ता के या लाइसेंन्स-युक्त भर्ती करने वाले के अथवा किसी ऐसे बागान सरदार के अतिरिक्त, जो चाय बागान के मालिक या प्रबन्धक का प्रमाण-पत्र रखता हो, अन्य कोई व्यक्ति किसी भी व्यक्ति को सहायता प्राप्त परावासी के रूप में असम जाने में सहायता नहीं दे सकता।

अधिनियम १६ वर्ष की आयु से कम के बालकों को असम जाने के लिए सहायता करने पर रोक लगाता है, जब तक कि बालक अपने माता-पिता या ऐसे वयस्क रिश्तेदारों के साथ न हो जिन पर वे आश्रित हों। इसी प्रकार किसी विवाहित स्त्री को भी, जो अपने पति के साथ रहती हो, बिना उसके पति की अनुमति के असम जाने के लिए सहायता नहीं दी जा सकती। इसके अतिरिक्त

असम में प्रवेश करने की तिथि से तीन वर्ष की अवधि समाप्त होने पर, या कुछ विशेष परिस्थितियों में इसके पूर्व भी, प्रत्येक परावासी तथा उसके परिवार को स्वदेश लौटने का अधिकार है। इस प्रकार वापिस लौटने का व्यय भी मालिकों को वहन करना पड़ता है। अधिनियम के अनुसार मालिक को यात्रा के लिए केवल किराया ही नहीं देना होता वरन् यात्रा की अवधि में निर्वाह भत्ता भी देना पड़ता है तथा श्रमिकों के लिए उचित स्थानों पर विश्राम गृहों की भी व्यवस्था करनी पड़ती है।

अधिनियम एक परावासी श्रमिक के नियन्त्रक (Controller) तथा एक या अधिक उपनियन्त्रकों की नियुक्ति की व्यवस्था करता है जिन्हें अधिनियम में दिये गये कार्यों तथा कर्तव्यों का पालन करना होता है। नियन्त्रक तथा उसके सिब्बन्दी (Establishment) के व्यय का वहन करने के लिए अधिनियमों में मालिकों पर एक उप कर लगाने की व्यवस्था है। इस उप-कर की दर असम में प्रवेश करने वाले प्रत्येक सहायता-प्राप्त परावासी श्रमिक के हिसाब से ९ रुपये तक हो सकती है और यह दर प्रत्येक वर्ष निर्धारित की जा सकती है। १९५८ के लिए सरकार ने उप कर की दर ५ रु० निश्चित की थी। १९५९ में इस दर को बढ़ा कर ८ रु० कर दिया गया और १९६४ में ९ रु० की दर थी। परावासी श्रमिक का नियन्त्रक इस अधिनियम के प्रशासन की वार्षिक रिपोर्ट भी तैयार करता है।

अधिनियम के अन्तर्गत बनाये गये नियमों को १९३३ में लागू किया गया। इन नियमों में १९५४ में संशोधन भी हुआ। इस संशोधन के अनुसार असम जाने वाले श्रमिक केवल उस रेलवे मार्ग से ही जा सकते हैं जो भाग भारत में पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त जो श्रमिक असम में बचपन से ही आ गये थे उन्हें भी अपने घरों को वापिस लौटने का अधिकार दे दिया गया है। गलत सूचना देने वाले मध्यस्थों के लिए दण्ड की व्यवस्था भी की गई है। वापिस भेजे गये श्रमिकों की तथा भागे हुए श्रमिकों की सूचना देना मालिकों के लिए अनिवार्य कर दिया गया है। १९५९ में एक संशोधन के अनुसार रास्ते में पड़ने वाले डिपो में २ से १० वर्ष तक के बच्चों के लिए भी १० छटाक दूध प्रतिदिन देने की व्यवस्था कर दी गई है। दो साल से कम के बच्चों को जो दूध दिया जाता था उसकी मात्रा ६ छटाक से बढ़ाकर १२ छटाक कर दी गई है।

यह अधिनियम केवल श्रमिकों की भर्ती तथा भर्ती हुए श्रमिकों को असम भेजने तथा उनके स्वदेश लौटने को विनियमित करता है। किन्तु चाय बागान में श्रमिकों की कार्य दशाओं को विनियमित नहीं करता। केवल कोचीन राज्य में मई १९३७ में बनाये गये कुछ नियमों के अन्तर्गत बागान श्रमिकों की कार्य दशाओं को विनियमित करने की व्यवस्था थी। १९५५ में इस अधिनियम के अन्तर्गत बनाये गये नियमों को उड़ीसा में भी लागू कर दिया गया था।

अगस्त १९६० में बागान औद्योगिक समिति ने असम के चाय क्षेत्रों में श्रमिकों की भर्ती का अवलोकन कर यह निर्णय किया कि केन्द्रीय सरकार की

अनुमति के बिना राज्य के क्षेत्र मे बाहर कोई नई भर्ती न की जाये। अक्तूबर १९६४ में बागान औद्योगिक समिति द्वारा यह भी सुझाव दिया गया कि चाय जिला परावासी श्रमिक अधिनियम में समुचित संशोधन किया जाये ताकि इसके अपवंचन को रोका जा सके और मालिकों को अवैध रूप से श्रमिक भर्ती करने पर दण्ड दिया जा सके। बाद मे यह निश्चय किया गया कि इस अधिनियम को निरस्त कर दिया जाये और 'परावासी श्रमिक नियन्त्रक' शिलांग के उस संगठन का समापन कर दिया जाये जिसकी स्थापना अधिनियम के अन्तर्गत की गई थी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'चाय जिला परावासी श्रमिक (निरसन) विधेयक, १९६६' प्रस्तुत किया गया, परन्तु सामान्य निर्वाचन से पूर्व तृतीय लोकसभा के भंग हो जाने के कारण वह पारित न हो सका।

१९५१ का बागान श्रमिक अधिनियम
(The Plantation Labour Act of 1951)

बागान की कार्य दशाओं को विनियमित करने के पूर्ण अभाव पर श्रम अनुसन्धान समिति (१९४६) ने अपने विचार प्रकट किये तथा बागान के लिए एक पृथक् अधिनियम बनाने की सिफारिश की थी। १९४७ में बागान के लिए एक औद्योगिक समिति की नियुक्ति की गई तथा भारत सरकार ने राज्य सरकारों, मालिकों तथा श्रमिकों के प्रतिनिधियों का बागान उद्योग की समस्याओं पर विचार करने के लिए एक सम्मेलन बुलाया। औद्योगिक समिति ने सिफारिश की कि उपयुक्त मजदूरी निश्चित करने के लिए बागान मे श्रमिकों के जीवन-स्तर तथा निर्वाह लागत की जाँच की जानी चाहिए। यह कार्य श्रम ब्यूरो के निदेशक को सौंपा गया। सम्मेलन में यह भी तय हुआ कि बागान में डाक्टरी सहायता के वर्तमान स्तर का अध्ययन करने तथा उसमें सुधार के लिए सुझाव देने के हेतु एक चिकित्सक विशेषज्ञ नियुक्त किया जाये। यह कार्य स्वास्थ्य सेवाओं (सामाजिक बीमा) के उप-महानिदेशक, मेजर ई० लायड जोन्स को सौंपा गया था। मार्च १९४८ में इन सबकी रिपोर्टों पर औद्योगिक समिति द्वारा विचार किया गया। इस समिति ने सिफारिश की कि बागान मे १२ वर्ष से कम आयु वाले बालकों को रोजगार देने पर रोक लगा देनी चाहिए तथा डाक्टरी सहायता का स्तर कानून द्वारा निर्धारित कर दिया जाना चाहिए तथा बागान में कार्य की दशाओं में भी सुधार होना चाहिए। इन सबके परिणामस्वरूप अक्तूबर १९५१ मे सरकार ने बागान श्रमिक अधिनियम पारित किया। किन्तु बागान में मन्दी आने के कारण इसे लागू करने में विलम्ब हो गया। अप्रैल १९५४ में यह अधिनियम लागू किया गया। १९६० में इसमें एक संशोधन किया गया। अधिनियम का उद्देश्य बागान के श्रमिकों को कल्याण सुविधायें प्रदान करना तथा उनकी कार्य की दशाओं को नियन्त्रित करना है। अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्न प्रकार हैं—

(१) यह अधिनियम उन समस्त चाय, कॉफी, रबर तथा सिनकोना बागान में लागू होता है जिनका २५ एकड या अधिक क्षेत्र हो तथा जो ३० या अधिक

गया है। राज्य सरकारों को यह अधिकार है कि वह विश्राम के लिए साप्ताहिक दिन की व्यवस्था के लिए नियम बनाये तथा यदि साप्ताहिक छुट्टी के दिन काम कराया जाता है तो उसका भुगतान कैसे किया जाये, इसके लिए भी नियम बनायें। श्रमिकों को इस बात की छूट है कि वे विश्राम के किसी भी दिन काम कर सकें बशर्ते कि विश्राम का वह दिन बन्द छुट्टी का दिन न हो। परन्तु उन्हें बिना एक दिन के भी विश्राम-दिवस के लगातार १० दिन से अधिक काम करने की अनुमति नहीं दी जाती। यदि कोई श्रमिक दैनिक कार्य के लिए निश्चित समय से आध घण्टे के अन्दर नहीं आता तो मालिक उसे रोजगार में लगाने से मना कर सकता है। १२ वर्ष से कम के बालक बागान में काम नहीं कर सकते तथा ७ बजे सायं से ६ बजे प्रातः के बीच का रात्रि कार्य स्त्रियों तथा बालकों के लिये निषेध कर दिया गया है। समस्त बालकों एवं किशोरों को (१५ से १८ तक की आयु के बीच के व्यक्तियों को) अच्छे स्वास्थ्य का प्रमाण-पत्र देना होता है तथा उनकी प्रमाणित (Certifying) सर्जन द्वारा जाँच की जा सकती है। यह प्रमाण-पत्र केवल १२ माह तक ही वैध होता है।

(६) प्रत्येक श्रमिक को सवेतन अवकाश निम्नलिखित दर पर दिये जाने की व्यवस्था है—(क) यदि श्रमिक वयस्क है तो कार्य के प्रत्येक २० दिनों पर एक दिन का अवकाश, (ख) यदि किशोर है तो कार्य के प्रत्येक १५ दिनों पर एक दिन का अवकाश। छुट्टियाँ ३० दिन तक एकत्रित की जा सकती हैं।

(७) अधिनियम के उपबन्धों का उल्लंघन करने पर अथवा कार्य योग्यता का झूठा प्रमाण-पत्र देने पर दण्ड भी निर्धारित कर दिये गये है।

अधिनियम के अन्तर्गत नियम बनाकर अनेक राज्यों में लागू भी कर दिये गये हैं। परन्तु अनेक राज्य ऐसे हैं जिन्होंने नियमों को अभी तक पूर्ण रूप से लागू नहीं किया है। असम, पश्चिमी बंगाल एवं केरल में मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियमों के अन्तर्गत बागान की स्त्री श्रमिकों को मातृत्व-कालीन लाभ प्रदान किये जाते थे जहाँ अब केन्द्रीय मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम १९६१ लागू है।

बागान श्रमिक अधिनियम को १९६० में संशोधित किया गया और संशोधित अधिनियम २१ नवम्बर १९६० से लागू कर दिया गया है। इस संशोधित अधिनियम का उद्देश्य यह है कि इस बात को रोका जाये कि मालिक १९५१ के अधिनियम से बचने के लिए अपने बागान को छोटे-छोटे टुकड़ों में न बाँटें क्योंकि मालिकों ने ऐसा करना आरम्भ कर दिया था। संशोधित अधिनियम के मुख्य उपबन्ध इस प्रकार है- (क) राज्य सरकारों को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि वह अधिनियम के सभी या किसी भी उपबन्ध को किसी भी ऐसे बागान में लागू कर सकते है जिसका क्षेत्रफल १०·११७ हैक्टर्स (२५ एकड़) से कम है या जिसमें ३० से कम श्रमिक कार्य करते है। परन्तु यह बात उन बागान पर लागू नहीं होगी जो अधिनियम के लागू होने से पहिले ही मौजूद थे। (ख) चिकित्सा सुविधाओं को श्रमिकों के परिवारों तक विस्तृत कर देने का उपबन्ध है। (ग) नौकरी

छोड़ने पर क्षतिपूर्ति मिलती थी। समयोपरि कार्य के लिये भुगतान की दर साधारण मजदूरी से १½ गुनी निर्धारित की गई थी। अधिनियम के अन्तर्गत सरकार को यह अधिकार भी था कि अधिनियम में दी हुई कुछ विशेष बातों के लिए सरकार नियम बनाये। इस प्रकार के बनाये गये नियमों को रेलवे कर्मचारियों के (रोजगार के घन्टों से सम्बन्धित) नियम कहा जाता रहा है। परन्तु अधिनियम तथा नियम दोनों को साधारणतया "रोजगार घन्टो के विनियम" (Hours of Employment Regulations) कहा जाता है।

१९५६ का भारतीय रेलवे (संशोधन) अधिनियम [Indian Railways (Amendment) Act, 1956]

श्रम अनुसंधान समिति की रिपोर्ट तथा रोजगार घण्टों के विनियमों के कार्य पर वार्षिक रिपोर्टों में अधिनियम के उपबन्धों की नए सिरे से जाँच करने की आवश्यकता की ओर संकेत किया गया था। मई १९४७ मे न्यायाधीश राजाध्यक्ष के विवाचन निर्णय मे भी (जिसका नीचे उल्लेख किया गया है) नियमो के दोहराने की सिफारिश की गई थी। नियमों में संशोधन कर दिये गये थे। परन्तु सरकार ने यही उचित समझा कि अधिनियम के अध्याय VI (A) मे संशोधन कर दिया जाय जिसमे विवाचकों के विवाचन निर्णयों को वैधानिक मान्यता मिल सके। परिणामस्वरूप भारतीय रेलवे (संशोधन) अधिनियम १९५६ के द्वारा इस अध्याय मे संशोधन कर दिया गया यद्यपि विवाचन निर्णय १९५१ तक धीरे-धीरे सभी रेलों पर लागू हो गया था। न्यायाधीश राजाध्यक्ष के विवाचन निर्णय में रेलवे कर्मचारियों के वर्गीकरण, काम के घन्टे और विश्राम अवधि आदि के विषयों मे जो सिफारिशे की गई थीं, संशोधित अधिनियम उन्ही से सम्बन्धित हैं। सभी रेलवे कर्मचारियों को कम से कम २४ घन्टे का लगातार विश्राम देना होगा जो रविवार को प्रारम्भ होगा। आपतकाल अथवा काम की असाधारण अधिकता के समय अधिनियम के अनुसार उपयुक्त अधिकारियों को यह भी अधिकार है कि वह काम के घन्टे और विश्राम समय के उपबन्धों से अस्थाई रूप से छूट दे दे। *समयोपरि काम के लिये साधारण मजदूरी की अपेक्षा कम से कम डेढ़ गुनी मजदूरी देने की व्यवस्था है।*

न्यायाधीश राजाध्यक्ष का विवाचन निर्णय (Justice Rajadhyaksha Award)

१९४६ मे अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी संगम ने रेलवे कर्मचारियों की कुछ माँगों के सम्बन्ध में भारत सरकार से एक विवाचक नियुक्त करने की प्रार्थना की, तथा अप्रैल १९४६ मे भारत सरकार द्वारा न्यायाधीश श्री जी० एस० राजाध्यक्ष विवाचक नियुक्त किये गये। विवाद के विषय दैनिक मजदूरी पर कार्य करने वाले एवं अवर (Inferior) वर्ग के कर्मचारियों की निम्नलिखित बातो से सम्बन्धित थे : काम के घन्टे, अवधि पश्चात् विश्राम व्यवस्था, अवकाश, बदली

श्रमिक अवकाश के नियम छुट्टियो की सुविधाय आदि। विवाचक ने अपना पचाट सरकार को मई १६४७ मे प्रस्तुत किया तथा रोजगार घन्टो के विनियमो के क्षेत्र का विस्तार करन की सिफारिश की ताकि अब तक जिन विभिन्न अन्य श्रमिक वर्गों को सम्मिलित नही किया जाता था उन्हे भी सम्मिलित कर लिया जाये। पचाट मे श्रमिकों के निम्न चार वग बनान का सुझाव दिया गया—(क) **श्रम प्रधान** (Intensive) अर्थात वे श्रमिक जो ऐसा काय करते है जो कठोर प्रकार का है और जिसम निरन्तर ध्यान अथवा कठिन शारीरिक परिश्रम की आवश्यकता होती है। इनके कार्यो के घण्टे महीन मे औसतन प्रति सप्ताह ४५ होने चाहियें और इन्हे प्रत्येक सप्ताह ३० घन्टे की लगातार विश्राम अवधि मिलनी चाहिये। (ख) निरन्तर (Continuous)—इस प्रकार के श्रमिको के काय के घन्टे महीन म औसतन प्रति सप्ताह ५४ होने चाहिय और प्रत्येक सप्ताह म ३० घन्टे की लगातार विश्राम अवधि मिलनी चाहिए। ये श्रमिक अन्य किसी वग म नही आते। (ग) **आवश्यक रूप से सविराम श्रमिक** (Essentially Intermittent)—अर्थात वे श्रमिक जिनके दैनिक काय घन्टो म कुछ ऐसी अवधि आ जाती है जब उन्हे कोई काय नही करना पडता। इनके साप्ताहिक घन्टे ७५ होन चाहियें और साथ साथ एक पूण रात्रि सहित प्रति सप्ताह २४ घन्टो की लगातार विश्राम अवधि मिलनी चाहिये। (घ) **इनके अतिरिक्त** (Excluded)–इनम रात्रि काय पर लग हुए कुछ चतुथ वर्गीय कमचारी आते है जैसे—सैलून परिचालक (Attendant) गेट कीपर आदि तथा विश्वसनीय कार्यो म लगे व्यक्ति पयवेक्षक कमचारी तथा स्वास्थ्य एव चिकित्सा सम्बन्धी कमचारी। इन कमचारियो को एक महीने मे कम से कम ४८ घन्टो की एक लगातार विश्राम अवधि अथवा प्रत्येक पखवाडे मे २४ घण्टो की एक लगातार विश्राम अवधि प्राप्त होनी चाहिए। गाडी पर चलने वाले कर्मचारियो के लिए विवाचक न सिफारिश की थी कि इनका एक बार म काय का समय १० घन्टे से अधिक नही होना चाहिए तथा उनके लिए विश्राम समय एक माह म ३० निरन्तर घण्टो की चार अवधियो का अथवा २२ निरन्तर घन्टो की पाँच अवधियो का होना चाहिए। विवाचक ने छुट्टिया लने अ य कमचारियो को लगाने सवतन अवकाश तथा छुट्टियो के सम्बन्ध म भी कुछ सिफारिश की थी।

भारत सरकार ने काय के घण्टे विश्राम अवधि तथा छुट्टियाँ लेने पर अन्य कमचारियो के लगान के विषय मे पचाट को स्वीकार कर लिया तथा एक आदेश द्वारा जून १६४८ म इस पचाट को ३ वष की अवधि के लिये रेलवे प्रशासन पर लागू कर दिया। अवकाश नियमो तथा छुट्टी की सुविधाओ के सम्बन्ध म निणय स्थगित कर दिया गया था। जुलाई १६४८ म तथा पुन फरवरी १६५० मे रेलवे मन्त्रालय ने निर्धारित तिथियो म तथा विभिन्न चरणो म पचाट का लागू करने की आज्ञायें दी। १६३१ के रेलवे कमचारी (रोजगार के घण्टे) के जो नियम थे उनको विवाचक की सिफारिशो का समावेश करके १६५१ के नवीन नियमो द्वारा स्थानान्तरित कर दिया गया। ३१ माच १६५१ तक पचाट समस्त रेलवे म लागू कर

दिया गया था। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, सरकार ने नियमों को कानूनी मान्यता देने के हेतु १९५६ मे इस अधिनियम में संशोधन किया। सन् १९५१ के नियमो को समाप्त करके सरकार ने रेलवे कर्मचारी (काम के घण्टे) नियम, १९६१ में बनाये जो २३ दिसम्बर १९६१ से लागू हुये। नये नियमों में अधिक रेल कर्मचारियों को लाने की व्यवस्था है। रोजगार घण्टों के इन विनियमों का प्रशासन मुख्य श्रम आयुक्त (केन्द्रीय) का उत्तरदायित्व है यद्यपि प्रशासन का वास्तविक कार्य प्रत्येक रेलवे क्षेत्र में नियुक्त केन्द्रीय क्षेत्रीय श्रम कमिश्नरों, सुलह अधिकारियो तथा श्रम निरीक्षको के द्वारा किया जाता है। १९६४–६५ मे इन विनियमों के अन्तर्गत आने वाले रेलवे कर्मचारियो की संख्या १५,८६,००० थी। कार्य की प्रकृति के अनुसार इनका वर्गीकरण इस प्रकार था—श्रम प्रधान: २४२२ (०·१५%); निरन्तर. १३,७०,२६२ (८६·२४%); सविराम १,५६,०२१ (९·८२%); अतिरिक्त ६०,२६५ (३·७९%)।

जहाज सम्बन्धी श्रम विधान

जहाजो मे रोजगार पर लगे किशोरों तथा बालको के कार्यों के विनियमन का महत्व सर्वप्रथम भारत सरकार के समक्ष अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा लाया गया जिसने १९२० मे नाविको की न्यूनतम आयु से सम्बन्धित एक अभिसमय का मसौदा पारित किया था। यह अभिसमय भारत सरकार ने उस समय नही अपनाया। परन्तु १९२१ मे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन ने जब दो और अभिसमय पारित किये तो भारत सरकार ने इन्हे स्वीकार कर लिया। १९२३ में भारतीय व्यापारी जहाज अधिनियम पारित किया गया जिससे भारतीय नाविको के रोजगार की दशाओं का विनियमन हो सके। अधिनियम बनने के पश्चात् इसमें अनेक अवसरो पर संशोधन किया गया और अन्तत. १९५८ मे 'व्यापारी जहाज अधिनियम' द्वारा इसे निरस्त कर दिया गया। १९४९ का संशोधन नाविको के लिये रोजगार दफ्तर खोलने की व्यवस्था करता था तथा १९५१ का संशोधन नाविकों की डाक्टरी जाँच की व्यवस्था से सम्बन्धित था।

१९२३ का भारतीय व्यापारी जहाज अधिनियम (Indian Merchant Shipping Act, 1923)

इस अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित थे—

अधिनियम के अनुसार एक जहाजी कर्मचारी अर्थात नाविक की भारतीय, ब्रिटिश अथवा विदेशी जहाज पर भर्ती केवल जहाज के 'मास्टर' (मुख्य प्रवन्धक) द्वारा या उसकी उपस्थिति में तथा अधिनियम मे दिये गये एक निर्धारित ढंग से ही हो सकती थी। ऐसे जहाजो के अतिरिक्त जो स्वदेशी व्यापार में लगे है और जिनका भार ३०० टन से अधिक नहीं है, प्रत्येक अन्य भारतीय और ब्रिटिश जहाज के मास्टर को रोजगार मे लगाते समय प्रत्येक नाविक के साथ एक करार करना होता था। इस करार से, जो एक निर्धारित फार्म पर होता था, यात्रा, कार्य की दशायें एवं मजदूरी आदि के विषय में विस्तृत विवरण होता था। ऐसी

स्थिति में जब किसी भारतीय नाविक की नौकरी विदेशी बन्दरगाह पर समाप्त कर दी गई हो, तो अधिनियम के अनुसार उसे किसी ऐसे जहाज पर नौकरी दिये जाने की व्यवस्था थी, जो या तो उस बन्दरगाह को जा रहा हो जहाँ उस नाविक की भर्ती की गई थी या किसी ऐसे अन्य भारतीय बन्दरगाह को जा रहा हो जहाँ जाने के लिये कर्मचारी सहमत हो। इसके अतिरिक्त यह भी व्यवस्था की जा सकती थी कि ऐसे नाविक को किसी अन्य भारतीय बन्दरगाह को बिना किराया आदि लिये या आपसी शर्तों के अनुसार भेज दिया जाये। विदेशी जहाज के मास्टर के लिये भी यह अनिवार्य था कि यदि कोई नाविक विदेशी यात्रा के लिये किसी भारतीय बन्दरगाह पर भर्ती किया गया है। तो ऐसे नाविक से इसी प्रकार का करार करे। इसके अतिरिक्त प्रत्येक ऐसे नाविक की, जो विदेश जाने वाले किसी भारतीय या ब्रिटिश जहाज पर नौकरी करता हो, अलहदगी भी जहाज के मास्टर के सम्मुख ही होती थी और उसे अलहदगी का सर्टिफिकेट भी मिलता था। १९३१ एक संशोधित अधिनियम के अनुसार नाविक को इस बात का अधिकार दे दिया गया कि वह जहाज के मास्टर से इस बात का सर्टिफिकेट ले कि उसका कार्य कैसा रहा या और उसने करार के अन्तर्गत अपने उत्तरदायित्व को पूरा किया या या नहीं।

१३ दिसम्बर १९४९ को जहाजी श्रमिकों के सम्भरण का विनियमन करने के हेतु एक संशोधित अधिनियम १९४९ पारित किया गया। इस अधिनियम को भारतीय व्यापारी जहाज (संशोधित) अधिनियम कहते हैं। अधिनियम में बन्दरगाहों पर नाविकों के लिये रोजगार दफ्तरों की स्थापना की व्यवस्था थी जिससे व्यापारिक जहाजों के लिये नाविकों की भर्ती और पूर्ति की उचित व्यवस्था हो सके। जहाँ भी ऐसे दफ्तर स्थापित किये गये हों वहाँ ऐसे दफ्तरों के द्वारा किसी जहाज पर नाविकों को रोजगार पर लगाया जा सकता था। अधिनियम की इस धारा को भंग करने वाले व्यक्तियों पर १०० रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है। बम्बई में जून १९५४ तथा कलकत्ता में मार्च १९५५ में ऐसे दफ्तर स्थापित किये जा चुके थे। १९३१ में अधिनियम में एक अन्य संशोधन द्वारा नाविकों की एक निर्धारित ढंग से डाक्टरी जाँच करने की व्यवस्था की गई थी, तथा यह नियम बनाया गया कि कोई भी व्यक्ति नौकरी योग्य स्वास्थ्य के प्रमाण पत्र के बिना जहाज पर किसी रोजगार पर नहीं लगाया जा सकता था।

कुछ अपवादों के अतिरिक्त १४ वर्ष से कम आयु वाले बालकों को रोजगार पर लगाना इस अधिनियम द्वारा निषेध कर दिया गया था। इसी प्रकार कुछ विशेष परिस्थितियों के अतिरिक्त १८ वर्ष की आयु से कम वाले किशोरों को भारत के किसी भी रजिस्टर्ड जहाज में ट्रीमर्स और स्टोकर्स के रोजगार पर लगाना निषेध कर दिया गया था। जहाँ तक मजदूरी की अदायगी का सम्बन्ध है, नाविक का मजदूरी प्राप्त करने का अधिकार उस समय से प्रारम्भ हो जाता था जब वह कार्य आरम्भ करता था अथवा जब करार के अन्तर्गत वह जहाज पर उपस्थित

होता था (इन में से जो भी अधिक पहिले हो)। जहाजी माल के लादने अथवा उतारने के तीन दिन के अन्दर या नाविक की अलहदगी के पांच दिन के अन्दर (जो भी अवधि पहिले हो) मजदूरी की अदायगी कर देनी होती थी। यदि अदायगी में विलम्ब होता हो तो नाविक को प्रत्येक दिन के विलम्ब पर दो दिन के वेतन की दर से क्षति-पूर्ति प्राप्त करने का अधिकार था। परन्तु ऐसी क्षति-पूर्ति की कुल राशि दस दिन के दुगने वेतन से अधिक नहीं हो सकती थी। प्रत्येक भारतीय तथा ब्रिटिश जहाज को मजदूरी तथा कटौती का ब्यौरा भी प्रस्तुत करना होता था। अधिनियम मजदूरी से कटौती करने तथा नाविक को पेशगी देने की व्यवस्था पर भी विनियमन करता था। यदि करार निश्चित अवधि के पहिले समाप्त कर दिया जाय जो ऐसी स्थिति में मजदूरी अदायगी की व्यवस्था कर दी गई थी। यदि कोई नाविक करार की शर्तों के विरुद्ध हटा दिया जाता था तब उसे न केवल अपनी मजदूरी पाने का अधिकार था वरन् वह एक माह की मजदूरी भी क्षति-पूर्ति के रूप में पाने का अधिकारी था। अदायगी से पूर्व मजदूरी को न तो किसी के नाम किया जा सकता था, न ही मजदूरी की कुर्की कराई जा सकती थी।

अधिनियम में नाविकों के **स्वास्थ्य एवं कल्याण** के लिये भी उपबन्ध थे। उदाहरणतया, जहाज पर पर्याप्त पीने के पानी के लिये, यात्रा पर बीमारी एव दुर्घटनाओं आदि की स्थिति मे उचित सामग्री के लिये तथा औषधियों की पर्याप्त रूप से प्राप्ति के लिये व्यवस्था की गई थी। मास्टर, नाविक तथा शिक्षार्थी नि:शुल्क चिकित्सा सहायता पाने के अधिकारी थे। जहाज पर प्रत्येक नाविक को कम से कम १२ साधारण फीट तथा ७२ घन फीट रहने का स्थान दिये जाने की व्यवस्था थी। अधिनियम के अन्य उपबन्ध अनुशासन सम्बन्धी विषयों, मृत नाविकों की सम्पत्ति का निबटारा, विपदग्रस्त नाविकों की सहायता आदि के सम्बन्ध मे थे। ऐसा नाविक जिसको वैधानिक रूप से रोजगार पर लगाया गया है, अपने करार के समाप्त होने तक जहाज नहीं छोड सकता था। नौकरी से भागने वाले नाविक की जहाज पर छोडी हुई समस्त वस्तुयें तथा उसकी मजदूरी जब्त की जा सकती थी। यदि भारत के बाहर वह जहाज से भागे तो उसे १२ सप्ताह तक का कारावास भी दिया जा सकता था। कार्य करने से मना करने पर अथवा अपने जहाज पर समय पर नौकरी पर न आने पर या बिना पर्याप्त कारणों के बगैर छुट्टी अनुपस्थित होने पर नाविक को दण्ड दिये जाने की व्यवस्था थी। १९२३ का श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम कुछ परिवर्तनों के साथ किसी शक्ति से चलने वाले जहाज पर अथवा ५० या अधिक टन वाले जहाज पर लगे मास्टर तथा नाविकों पर लागू होता था। १९३९ एव १९४२ के युद्ध-काल में बनाये गये कुछ विशेष कानूनों के अन्तर्गत युद्ध मे घायल होने पर नाविकों को क्षति-पूर्ति तथा भत्ता भी दिया जाता था।

अधिनियम का प्रशासन जहाजी मास्टरों द्वारा अथवा कुछ कार्यालयों, जैसे सीमा-कर (Customs) कार्यालय द्वारा होता था। यह जहाजी मास्टरों का

कर्त्तव्य था कि वे अधिनियम द्वारा निर्धारित ढंग से नाविकों को हटाने तथा लगाने के कार्य में सुविधायें दें और देखभाल करें तथा उपयुक्त समय पर नाविकों की उपस्थिति प्राप्त करने के साधनों की व्यवस्था करें।

१९५८ का व्यापारी जहाज अधिनियम (The Merchant Shipping Act, 1958)

१९५८ में एक नया अधिनियम '१९५८ का व्यापारी जहाज अधिनियम' पारित किया गया। १ जनवरी १९६१ से इसके लागू होने के पश्चात् १९२३ के जहाज अधिनियम को निरस्त कर दिया गया है। नये अधिनियम में व्यापारी जहाज से सम्बन्धित कानूनों में संशोधन किया गया है और उन्हें समायोजित भी किया गया है जिससे भारतीय समुद्री व्यापार यातायात में और अधिक कुशलता आ जाय। यह नवीन अधिनियम निम्नलिखित बातों से सम्बन्धित है : एक राष्ट्रीय जहाजी बोर्ड की स्थापना और उसके कार्य, सामान्य प्रशासन, एक जहाजी विकास निधि की स्थापना, भारतीय जहाजों का रजिस्ट्रेशन, जहाज के अधिकारियों द्वारा सामर्थ्य के प्रमाण-पत्र, समुद्री सेवा के लिये नाविकों और शिक्षार्थियों का वर्गीकरण, यात्री जहाजों का सर्वेक्षण, सुरक्षा, पोत का टूट जाना और जहाज को डूबने से बचाना एवं उबारना, दण्ड देने की व्यवस्था, कार्य विधि आदि। केन्द्रीय सरकार को इस अधिनियम के अन्तर्गत नाविकों के रोजगार दफ्तर स्थापित करने का अधिकार दे दिया गया है ताकि नाविकों के रोजगार पर नियन्त्रण और विनियमन किया जा सके। जहाँ कहीं ऐसे दफ्तर स्थापित हो जाते हैं वहाँ किसी भी जहाज पर कोई भी नाविक केवल इन दफ्तरों के द्वारा ही भर्ती किया जा सकता है। प्रत्येक नाविक के पास अलहदगी का एक प्रमाण-पत्र होना आवश्यक है। १९२३ के अधिनियम के समान ही प्रत्येक भारतीय जहाज के 'मास्टर' को (२०० टन से कम के देशीय व्यापारी जहाजों को छोड़कर) एक करार करना होता है। बच्चों को रोजगार पर लगाने की आयु बढ़ाकर १५ वर्ष कर दी गई है। और १८ वर्ष से कम आयु वाले 'ट्रिमर' या 'स्टोकर' के कार्य पर नहीं लगाये जा सकते। एक राष्ट्रीय जहाजी बोर्ड जिसमें ६ संसद के सदस्य हैं तथा १६ सदस्य केन्द्रीय सरकार, जहाज मालिकों और नाविकों के प्रतिनिधि के रूप में हैं, सरकार को इस अधिनियम से सम्बन्धित सभी बातों पर सलाह देने के लिये बनाया गया है। जहाजी विकास निधि में सरकार द्वारा उपदान और ऋण के रूप में धन दिया जायगा और सरकार द्वारा नियुक्त की गई एक ६ सदस्यों की समिति द्वारा इसका प्रशासन होगा। सरकार द्वारा बनाई हुई शर्तों के अनुसार इस निधि में से कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को ऋण तथा वित्तीय सहायता प्रदान की जायेगी। सरकार जब भी आवश्यक समझेगी, भारत के अथवा बाहर के बन्दरगाहों पर नाविकों के कल्याण अधिकारियों की नियुक्ति करेगी। अधिनियम के अन्य उपबन्ध उसी प्रकार के हैं जैसे १९४९ और १९५१ में संशोधित १९२३ के अधिनियम के

हैं। इस अधिनियम का प्रशासन जहाजों के महा-निदेशक द्वारा किया जायेगा। १९५८ के व्यापारी जहाज अधिनियम को संशोधित करने का प्रस्ताव है ताकि 'समुद्र पर जीवन की सुरक्षा' से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के १९६० के उस अभिसमय को कार्यरूप दिया जा सके जिसने कि १९४८ के अभिसमय का स्थान लिया था।

गोदी श्रमिक विधान (Dock Labour Legislation)

यातायात श्रमिको का अन्य वर्ग गोदी, अर्थात् बन्दरगाहो पर रोजगार मे लगे श्रमिको का है। विभिन्न समितियो आदि ने, जिन्होने गोदी श्रमिको की दशाओ का सर्वेक्षण किया था, यह सिफारिश की थी कि रोजगार मे आकस्मिकता के कारण उत्पन्न कठिनाइयो को कम करने की दृष्टि से गोदी श्रमिको के स्थायीकरण (Decasualisation) की नीति अपनाई जाए। भारत सरकार द्वारा स्थायीकरण की ऐच्छिक आयोजनाओ को लागू करने के प्रयत्न किए गए थे किन्तु इन प्रयासो का कोई परिणाम नहीं निकला। कार्य की आकस्मिक प्रकृति के कारण गोदी कर्मचारियो को जो कठिनाइयाँ होती थी उनको दूर करने के लिए सरकार ने मार्च १९४८ मे 'गोदी श्रमिक (रोजगार विनियमन) अधिनियम १९४८ को पारित किया।

आरम्भ में उठाए गए कुछ पग

१९२२ तथा १९३१ में सशोधित १९०८ का भारतीय बन्दरगाह अधिनियम स्थानीय सरकारो द्वारा ऐसे नियम बनाये जाने की व्यवस्था करता है, जिनके अन्तर्गत ऐसे बन्दरगाहो मे, जहाँ अधिनियम लागू होता है, कहीं भी १२ वर्ष से कम के बालको द्वारा सामान लाने या ले जाने के कार्य को निषेध कर दिया जाय। इसके अतिरिक्त १९२९ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के एक अभिसमय के मसौदे, जिसे १९३२ मे सशोधित किया गया, तथा रॉयल श्रम आयोग की सिफारिशो के परिणामस्वरूप १९३४ का भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियम पारित किया गया। किन्तु इसको १० फरवरी १९४८ तक लागू नहीं किया जा सका। अधिनियम जहाजो मे सामान चढाने तथा उतारने के कार्य मे लगे गोदी श्रमिको की सुरक्षा के लिए सरकार को विनियम बनाने का अधिकार देता है। सरकार ने जनवरी १९४८ मे विनियम बनाए जो गोदी श्रमिको की उन खतरों या सकटो से रक्षा करने की व्यवस्था करते है जिन खतरो की उन्हे सम्भावना है। उदाहरणतया, कार्य स्थानो की सुरक्षा एव कार्य पर पहुँचने के रास्ते मे सुरक्षा, प्रकाश, बाड़ (Fence) आदि का प्रबन्ध, जहाजो पर पहुँचने और आने जाने के साधन एव यातायात, मशीनो के चारो ओर घेरा तथा अन्य कई सुरक्षात्मक व्यवस्थायें, प्राथमिक उपचार के यन्त्र, डूबते हुए व्यक्ति की जीवन रक्षा का सामान आदि। अधिनियम को लागू करने के लिए विभिन्न बन्दरगाहो मे गोदी सुरक्षा निरीक्षक नियुक्त किए गये है। १९५३ के संशोधन द्वारा दुर्घटनाओ की सूचना का

उत्तरदायित्व पूर्णरूप से मालिको का कर दिया गया है। अधिनियम का प्रशासन कारखानो के मुख्य सलाहकार का उत्तरदायित्व है।

१९४८ का गोदी श्रमिक (रोजगार विनियमन) अधिनियम (The Dock Workers (Regulation of Employment) Act, 1948)

यह अधिनियम इगलैन्ड के एक ऐसे ही अधिनियम के सामान्य सिद्धान्तो का अनुकरण करता है। अधिनियम मुख्य बन्दरगाहो के लिये केन्द्रीय सरकार को अधिकार देता है तथा अन्य बन्दरगाहो के सम्बन्ध मे राज्य सरकारो को अधिकार देता है कि वे गोदी श्रमिको की रजिस्ट्री की योजना बनाये जिससे उनके रोजगार मे अधिक नियमितता आ सके तथा गोदी श्रमिको के, चाहे वे पजीकृत हो या न हो, रोजगार को एव किसी भी बन्दरगाह मे ऐसे रोजगार की दशाओ तथा शर्तो का विनियमन किया जा सके। योजना मे निम्नलिखित बातें विशेष रूप से होनी चाहिये (क) गोदी कर्मचारियो की भर्ती का विनियमन तथा उनका पजीकरण, (ख) रोजगार की दशाओ एव शर्तो का विनियमन, जैसे मजदूरी दर, कार्य के घण्टे, सवेतन अवकाश आदि, (ग) उन गोदी कर्मचारियो के रोजगार पर, जिन पर योजना लागू नही होती, नियन्त्रण रोक या प्रतिबन्ध लगाना, (घ) गोदी कर्मचारियो के लिये प्रशिक्षण एव कल्याणकार्य, (च) ऐसे स्थानो मे, जहाँ गोदी कर्मचारी कार्य पर लगे है वहा, उनके स्वास्थ्य एव सुरक्षा की व्यवस्था, (छ) ऐसी अवधि मे जब योजना के अन्तर्गत आये हुए गोदी कर्मचारियो को रोजगार या पूर्ण रोजगार प्राप्त न हो, उनको एक न्यूनतम वेतन की अदायगी।

अधिनियम म इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि एक ऐसी सलाहकार समिति बनाई जावे जो इस अधिनियम के प्रशासन या योजना से सम्बन्धित अन्य विषयो पर सरकार को परामर्श दे। इस समिति मे १५ से अधिक सदस्य नही होग और यह सदस्य बराबर की सख्या मे सरकार, श्रमिक और मालिको के प्रतिनिधि होगे और सरकार द्वारा मनोनीत एक अध्यक्ष होगा। निरीक्षको की नियुक्ति की व्यवस्था भी कर दी गई है। जून १९४९ मे केन्द्रीय सरकार न नियम बनाये तथा फरवरी १९५० मे इस अभिप्राय से एक सलाहकार समिति की स्थापना की है। नियमो म १९६२ में सशोधन भी हुआ। इसके अतिरिक्त बम्बई मे गोदी कर्मचारियो तथा उनके मालिको म हुये आपसी समझौते के आधार पर भारत सरकार ने एक समिति इस हतु नियुक्त की कि स्टेवडोर श्रमिको का पजीकरण करने, उनकी मजदूरी निश्चित करने तथा बारी-बारी से उन्हें रोजगार पर लगाने के सम्बन्ध म एक व्यापक योजना बनायें। यह योजना, जिसे बम्बई गोदी कर्मचारी (रोजगार विनियमन) योजना कहते हैं, १९५१ मे बनाई गई थी। इस योजना के प्रशासन के लिए बम्बई गोदी श्रमिक बोर्ड की स्थापना की व्यवस्था है तथा नित्य-प्रति के प्रशासन क लिये बम्बई स्टेवडोर सघ की नियुक्ति की व्यवस्था है।

अनुशासनात्मक विषयों के लिये एक विशेष अधिकारी और अपीलों को सुनने के लिए अपीलीय अधिकरण भी नियुक्त किये गये है। योजना में मालिकों के लिये एक रजिस्टर, एक सुरक्षित पूल रजिस्टर तथा एक मासिक रजिस्टर बनाने की भी व्यवस्था है। जिन श्रमिको को जिस मालिक के साथ काम करना होता है वे उसके अतिरिक्त किसी अन्य मालिक के साथ कार्य नही कर सकते और न ही वह मालिक पजीकृत श्रमिको के अतिरिक्त किसी अन्य को अपने यहाँ कार्य पर लगा सकता है। अप्रैल १९५१ मे १२ सदस्यों के बम्बई गोदी श्रमिक बोर्ड की स्थापना हुई। इसी प्रकार की योजनाओ के अन्तर्गत ही कलकत्ता (सितम्बर १९५२), मद्रास (जुलाई १९५३), कोचीन (जुलाई १९५९), विशाखापट्नम (नवम्बर १९५९), तथा मारमागोवा (अप्रैल १९६५) में त्रिदलीय गोदी श्रमिक बोर्डों की स्थापना हो गई है। इस योजनाओ को जनवरी १९५५ में सरकार द्वारा नियुक्त गोदी कर्मचारी जांच समिति की सिफारिशों के आधार पर १९५६ मे दोहराया भी गया है। १९५७ मे एक अन्य योजना, जिसको अपजीकृत गोदी कर्मचारी (रोजगार का विनियमन) योजना [Un-registered Dock Workers (Regulation of Employment) Scheme] कहते हैं, बम्बई, कलकत्ता व मद्रास में नये वर्ग के गोदी श्रमिको के लिए लागू की गई है।

१९४८ के गोदी कर्मचारी (रोजगार विनियमन) अधिनियम को मार्च १९६२ मे सशोधित किया गया। सशोधित अधिनियम के मुख्य उपबन्ध, जो कि १ जून १९६२ से लागू हुए, निम्न बातो से सम्बन्धित थे—(क) मालिको का रजिस्ट्रेशन तथा उनसे रजिट्रेशन शुल्क लिया जाना; (ख) योजनाओ के प्रशासन के लिये गोदी श्रमिक बोर्डों की स्थापना; (ग) लेखा-परीक्षको (Auditors) की नियुक्ति, और (घ) गोदी श्रमिक सलाहकार समितियो मे जहाज से सम्बन्धित व्यक्तियो को प्रतिनिधित्व दिया जाना।

मोटर यातायात के श्रमिको के लिए विधान

१९३९ का मोटर गाडी अधिनियम (Motor Vehicles Act of 1939) मोटर चालको के रोजगार की न्यूनतम आयु, कार्य के घण्टे व विश्राम अवधि को नियमित करता है। अधिनियम द्वारा १८ वर्ष से कम की आयु के किसी भी व्यक्ति को मोटर गाडी के चालक के रूप में तथा २० वर्ष से कम के किसी भी व्यक्ति को यातायात गाडी के चालक के रूप में नियुक्त करना निषेध है। परन्तु यह बात केन्द्रीय सरकार के रोजगारो पर लागू नही होती और वहाँ पर न्यूनतम आयु १८ वर्ष है। अधिनियम द्वारा यातायात श्रमिको के कार्य के घण्टो को प्रतिदिन ९ अथवा प्रति सप्ताह ५४ निर्धारित किया गया है तथा इन्हे ५ घण्टे लगातार काम के पश्चात् कम से कम आधा घण्टे का विश्राम देने की व्यवस्था है। परन्तु इस अधिनियम मे केवल चालको के घण्टे निर्धारित किये गये है और परिचारक (Attendant), कण्डक्टर (सवाहक), क्लीनर और निरीक्षको आदि अन्य श्रमिको को

छोड दिया गया है। इनके रोजगार, कार्य और मजदूरी के लिये अभी हाल तक कोई पृथक् विधान नही था।

मार्च १९५५ म दहली मे प्रथम अखिल भारतीय राज्य यातायात श्रमिक सम्मेलन हुआ। इसन यातायात श्रमिको क कार्य की दशाओ के विनियमन के लिये एक केन्द्रीय विधान बनाने की सिफारिश की। अप्रैल १९५६ मे तथा अक्तूबर १९५८ म स्थायी श्रम समिति द्वारा, फरवरी १९५८ मे त्रिदलीय समिति द्वारा और केन्द्र व राज्य सरकारो द्वारा मामले की जाँच की गई। अन्तत १५ दिसम्बर १९६० का मोटर यातायात श्रमिक अधिनियम पास किया गया जिस पर २० मई १९६१ को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिली। मार्च १९६२ तक यह सभी राज्यो मे लागू कर दिया गया था।

१९६१ का मोटर यातायात श्रमिक अधिनियम (The Motor Transport Workers Act, 1961)

इस विधान म मोटर यातायात सस्थानो मे श्रमिको के लिये कार्य के घण्टे, श्रम समय विस्तार, समयोपरि, सवेतन अवकाश, कल्याण सुविधाओ आदि पर नियन्त्रण रखने की व्यवस्था है। यह अधिनियम उन समस्त मोटर यातायात सस्थानो मे लागू होता है जहा पांच या उससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं। राज्य सरकार उनको एसे मोटर यातायात सस्थानो पर लागू कर सकती है जहाँ पाँच से कम व्यक्ति कार्य करते है। बालको का रोजगार पर लगाना निषेध कर दिया गया है। किशोर भी तभी कार्य कर सकते हैं जब उनको कार्य करने की समर्थता का प्रमाण पत्र मिल जाय वयस्क श्रमिको के कार्य घण्ट प्रतिदिन ८ तथा प्रति सप्ताह ४८ निर्धारित किये गय है और यह कार्य घण्ट एक दिन म दो से अधिक टुकडो म नही बाट जा सकते। लम्ब सफर पर तथा विशेष अवसरो पर कार्य के घण्ट प्रतिदिन १० तथा प्रति सप्ताह ५४ निश्चित किये गये। मोटर मे खराबी हो जाने आदि पर काम के घण्ट कुछ अधिक हो सकते है। किशोरो के लिए कार्य के घण्ट प्रतिदिन ६ निर्धारित किय गय हैं और उनको १० बजे रात्रि स ६ बजे प्रातः तक कार्य पर नही लगाया जा सकता। श्रम समय विस्तार वयस्को के लिय प्रतिदिन १२ घण्ट व किशोरो के लिये प्रतिदिन ९ घण्टे निर्धारित किया गया है। समयोपरि कार्य के लिये दोनो का ही दुगनी दर से मजदूरी देने की व्यवस्था है। सप्ताह मे एक विश्राम दिन दिया जाना अनिवार्य है। सवेतन छुट्टियो की व्यवस्था इस प्रकार है—१ कलैण्डर वर्ष मे २४० दिनो की उपस्थिति के पश्चात् वयस्को के लिये २० दिन के कार्य पर १ दिन की छुट्टी और किशोरो के लिये १५ दिन के कार्य पर एक दिन की छुट्टी। जिस सस्थान मे १०० या उससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं वहाँ कैन्टीन की व्यवस्था की जायेगी। मालिको द्वारा अच्छे प्रकार के विश्राम स्थल, वर्दी, बरसाती, प्राथमिक उपचार की सुविधायें, कपडे धोने के लिये भत्ता आदि का प्रबन्ध करने के लिय भी उपबन्ध है। १९३६ का मजदूरी

अदायगी अधिनियम मोटर यातायात श्रमिकों पर भी लागू होगा। अधिनियम के उपबन्धों का उल्लघन करने पर दण्ड की व्यवस्था की गई है। अधिनियम के प्रशासन का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों पर डाला गया है।

अन्य श्रम विधान

दुकानों और वाणिज्य संस्थानों मे काम करने वाले श्रमिकों के लिये भी वैधानिक पग उठाये गये है। भारत सरकार ने सबसे पहले अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के १९३० के एक अभिसमय को अपनाने के सम्बन्ध में दुकानों और वाणिज्य संस्थानों मे कार्य करने वाले श्रमिको को सुरक्षा प्रदान करने के प्रश्न पर विचार किया था, परन्तु अभिसमय को अपनाया नही गया। इस विषय में बम्बई सरकार ने सर्वप्रथम नवम्बर १९४० में एक अधिनियम पारित किया। इसके पश्चात् इसी प्रकार के अधिनियम अन्य राज्यो मे भी पारित किये गये। राज्यों के पुनर्गठन से पूर्व २५ राज्यो मे ऐसे अधिनियम लागू थे। अब ऐसे अधिनियम सभी राज्यो तथा सघ शासित क्षेत्रो में लागू हैं जहाँ कि या तो उन्होंने अपने ही अधिनियम बना रखे है अथवा अन्य राज्यो द्वारा पारित किये गये अधिनियमो को अपने यहाँ लागू कर दिया है। साप्ताहिक छुट्टी अधिनियम १९४२ नामक एक केन्द्रीय अधिनियम भी है जो केवल दुकानो व वाणिज्य संस्थानों आदि मे काम पर लगे व्यक्तियो के लिये साप्ताहिक छुट्टी की स्वीकृति की व्यवस्था करता है। यह अधिनियम अनुज्ञात्मक प्रकृति का है और केवल उन्ही राज्यो मे लागू होता है जो अपने क्षेत्रो मे इसके लागू होने की सूचना प्रसारित करते है। जहाँ तक राज्य अधिनियमो के क्षेत्रो का सम्बन्ध है यह विशिष्ट नगरो मे दुकानो और वाणिज्य संस्थानों, बैंकिंग और बीमा फर्मो, जलपानगृहों व भोजनालयो, थियेटर व सिनेमा जैसे मनोरजन के स्थानों पर लागू होते है। सरकार को इनके क्षेत्रो को विस्तृत करने का अधिकार है। ये अधिनियम अन्य बातो के अलावा इन बातो का नियमन करते हैं काम के दैनिक व साप्ताहिक घण्टे, विश्रामान्तर, संस्थानो के खुलने व बन्द होने का समय, मजदूरियो की अदायगी, समयोपरि वेतन, सवेतन अवकाश, वार्षिक छुट्टी, बच्चो तथा युवा व्यक्तियो आदि को काम पर लगाना। अनेक राज्यो में समय-समय इन अधिनियमो में सशोधन एव परिवर्तन किया जाता रहा है और कुछ राज्यो मे इनके स्थान पर नये अधिनियम लागू हो गये है।

जहाँ तक **कार्य के घण्टों** का सम्बन्ध है, यह विभिन्न राज्यो मे भिन्न-भिन्न है (देखें पृष्ठ ५१०)। अधिनियमों में संस्थानों के खोलने और बन्द करने के घण्टे, विश्राम मध्यान्तर, समय-विस्तार, समयोपरि दर आदि के सम्बन्ध मे भी उपबन्ध दिये हुये हैं। छुट्टी और अवकाश के सम्बन्ध मे उपबन्धो का उल्लेख पृष्ठ ७९–८० पर किया गया है। जहाँ तक किशोरो और बालको के रोजगार की न्यूनतम आयु का सम्बन्ध है, यह आयु आन्ध्र प्रदेश, केरल, उत्तर प्रदेश, पजाब व मद्रास को छोड़कर (जहाँ १४ वर्ष है), सब राज्यो मे १२ वर्ष है। उनके लिये

रात्रि म कार्य करना निषेध है। बालको और किशोरो के काय के घण्टे आंध्र प्रदेश मद्रास और पश्चिमी बगाल म प्रतिदिन ७ हैं तथा महाराष्ट्र गुजरात उत्तर प्रदेश तथा देहली म प्रतिदिन ६ है और मैसूर उडीसा पजाब म प्रतिदिन ५ हैं। मध्य प्रदेश म प्रतिदिन ५½ है राजस्थान म प्रतिदिन ३ है। इनम अधिकतर स्थानो म घण्टे या आधे घण्टे का विश्राम समय भी सम्मिलित है। बिहार म काम के ये घण्टे बालको के लिये प्रतिदिन ५ तथा किशोरो के लिये प्रतिदिन ७ है। बगाल म बालको के रोजगार के ऊपर कोई प्रतिबन्ध नही है। असम तथा केरल म काम के घण्टे निश्चित नही है।

इसके अतिरिक्त सभी अधिनियमो म श्रमिको की मजदूरी की अदायगी को नियन्त्रित करने वाले उपबन्ध है। उत्तर प्रदेश आंध्र मद्रास पजाब बिहार केरल व देहली म मजदूरी समय एक माह से अधिक नही होना चाहिये। असम म यह अवधि एक मास है। मजदूरी अवधि के समाप्त होने के पश्चात मजदूरी का भुगतान बगाल और असम मे १० दिन के अन्दर उत्तर प्रदेश पजाब व देहली म ७ दिन के अन्दर तथा मद्रास व आंध्र म ५ दिन के अन्दर हो जाना चाहिये। समयोपरि काम तथा कटौती और जुर्माने के नियम भी उपबन्ध बनाये गये हैं। सभी अधिनियमो म यह व्यवस्था की गई है कि समयोपरि काम के लिये सामान्य मजदूरी का दुगुना दिया जाना चाहिये किन्तु राजस्थान व पश्चिमी बगाल म तथा महाराष्ट्र के मनोरजन स्थानो के लिये डेढ गुनी मजदूरी दिये जाने की व्यवस्था है। अधिकाश अधिनियमो म यह व्यवस्था की गई है कि नौकरी समाप्ति की अवस्था म या तो एक माह का नोटिस देना चाहिये अथवा इसके स्थान पर एक माह का वेतन देना चाहिये। पश्चिमी बगाल उत्तर प्रदेश आंध्र और पजाब म अधिनियमो के प्रशासन के लिये दुकानो और वाणिज्य सस्थानो के मुख्य निरीक्षक नियुक्त किये गये हैं। कुछ राज्यो म इस काय के लिये कारखाना निरीक्षको की ही नियुक्ति कर दी गई है। उत्तर प्रदेश बिहार मध्य प्रदेश राजस्थान मैसूर आंध्र प्रदेश तथा देहली के अधिनियमो मे यह भी व्यवस्था की गई है कि श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के उपबन्ध दुकानो और वाणिज्य सस्थानो के श्रमिको पर भी लागू होगे। बम्बई मध्य प्रदेश व राजस्थान के अधिनियमो म राज्य सरकारो को इस बात के अधिकार है कि वह मजदूरी अदायगी अधिनियमो के उपबन्धो को किसी भी सस्थान अथवा सब सस्थानो अथवा श्रमिको के वर्ग या वर्गो पर लागू कर सकती है। मध्य प्रदेश के अधिनियम मे प्राविडेण्ट फण्ड के सम्बन्ध म भी उपबन्ध है। उडीसा और राजस्थान के अधिनियम मातृत्व कालीन लाभ की भी व्यवस्था करते है। कुछ प्रदेशो के अधिनियमो मे सफाई सवातन प्रकाश सुरक्षा आदि से सम्बन्धित उपबन्ध भी है।

विभिन्न राज्यो म उपबन्धो की कार्यान्विति से पता चलता है कि निरीक्षक दल की अपर्याप्तता के कारण उनका उचित रूप से पालन नही किया जाता है। छुट्टी आदि के सम्बन्ध म अधिनियम के उपबन्धो को साधारणतया माना ही नही

जाता। उत्तर प्रदेश और मद्रास जैसे कुछ राज्यों में, जहाँ अधिनियमों को हाल ही में लागू किया गया है, श्रमिकों और मालिकों को अधिनियम के उपबन्धों के विषय में पूर्ण ज्ञान भी नही है। बहुधा देखा गया है कि श्रमिकों को साप्ताहिक छुट्टियों के दिन भी काम पर बुलाया जाता है, समयोपरि की अदायगी नहीं की जाती, कोई ब्यौरा नही रखा जाता तथा मजदूरी की अदायगी नियमित रूप से नहीं की जाती। अत इन अधिनियमों को दृढ रूप से लागू करने की आवश्यकता है। यह भी सुझाव है कि दुकानों और वाणिज्य सस्थानों के लिये केन्द्रीय अधिनियम बनाया जाय तथा कुछ ऐसे स्तर निर्धारित कर दिये जायें जिनका सभी राज्य अनुसरण करें।

इस अध्याय मे श्रम विधान का उल्लेख कारखाना, खान, बागान, यातायात तथा दुकान व वाणिज्य संस्थान, बीडी औद्योगिक स्थानों के वर्गों के अन्तर्गत किया गया है। श्रम विधान का निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत भी उल्लेख किया जा सकता है। श्रमिकों की सुरक्षा के अन्तर्गत जो अधिनियम पारित हुए है, वह निम्नलिखित है : १९३४ का भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियम, १९३९ का कोयला खान सुरक्षा अधिनियम, १९५२ का कोयला खान (बचत और सुरक्षा) अधिनियम। इनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। कल्याण के सम्बन्ध मे सरकार ने निम्नलिखित अधिनियम पारित किये है : १९४७ का कोयला खान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम, १९४६ का अभ्रक खान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम, १९५० का उत्तर प्रदेश चीनी एवं चालक मद्यसार उद्योग श्रम कल्याण एव विकास निधि अधिनियम, १९५६ का उत्तर प्रदेश श्रम कल्याण निधि अधिनियम, १९५३ का बम्बई श्रम कल्याण अधिनियम, १९६५ का मैसूर श्रम कल्याण निधि अधिनियम, १९६५ का पजाब श्रम कल्याण निधि अधिनियम, १९६१ का कच्चा लोहा खान कल्याण उपकर अधिनियम तथा १९५९ का असम चाय बागान कर्मचारी कल्याण निधि अधिनियम। इन सब का उल्लेख 'श्रम कल्याण कार्य' के अध्याय में किया गया है। जहा तक मजदूरी का सम्बन्ध है सरकार ने १९३६ का मजदूरी अदायगी अधिनियम, १९३८ का न्यूनतम मजदूरी अधिनियम और १९६५ का बोनस अदायगी अधिनियम पारित किये। इनका उल्लेख "औद्योगिक श्रमिको की मजदूरी" अध्याय मे किया गया है। सामाजिक सुरक्षा के मुख्य अधिनियम निम्नलिखित हैं। १९२३ का श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, १९४८ का कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, १९४८ का कोयला खान प्रोविडेन्ट फन्ड और बोनस योजना अधिनियम, १९५२ के मातृत्व-कालीन-लाभ अधिनियम, १९५५ का असम चाय बागान प्रोविडेन्ट फण्ड योजना अधिनियम तथा १९५२ का श्रमिक प्रोविडेन्ट फण्ड अधिनियम। इन सबका उल्लेख 'भारत मे सामाजिक सुरक्षा' वाले अध्याय में किया जा चुका है। औद्योगिक सम्बन्धों के विषय मे निम्न अधिनियम पारित किये गये है। १९४७ का औद्योगिक विवाद अधिनियम, १९४६ का बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम, १९४७ का उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम तथा १९६० का मध्य प्रदेश

औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम। इन सबका विस्तृत वर्णन औद्योगिक विवाद वाले अध्याय मे औद्योगिक विवाद विधान के अन्तर्गत किया जा चुका है। उसी अध्याय में १९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम का भी उल्लेख किया गया है। १९२६ के भारतीय श्रमिक संघ अधिनियम, जिसमे १९४७, १९६० तथा १९६४ मे सशोधन किया गया, का उल्लेख भी श्रमिक संघ आन्दोलन अध्याय ५ में किया जा चुका है। ऋण-ग्रस्तता के सम्बन्ध मे विधान का उल्लेख ऋण-ग्रस्तता अध्याय मे किया गया है। आवास के सम्बन्ध मे विभिन्न राज्यो मे आवास अधिनियमो का उल्लेख आवास के अध्याय में किया गया है। बाल श्रमिक के सम्बन्ध मे १९३३ का बाल (श्रम अनुबन्ध) अधिनियम तथा १९३८ का बाल श्रमिक रोजगार अधिनियम पारित किये जा चुके हैं। इनका वर्णन 'बाल और स्त्री श्रमिकों' के अध्याय मे किया जाएगा। रोजगार दफ्तर (रिक्त स्थानों की अनिवार्य सूचना) अधिनियम का उल्लेख भर्ती के अध्याय मे किया जा चुका है। श्रम सम्बन्धी कुछ अन्य अधिनियम निम्नलिखित है —

१९४२ का औद्योगिक सांख्यिकी अधिनियम (Industrial Statistics Act, 1942)

१९४२ मे सरकार ने औद्योगिक सांख्यिकी अधिनियम पारित किया जिसमे निम्नलिखित विषयो से सम्बन्धित आकड़ो का एकत्रित करने के उपबन्ध थे: (क) कारखानो से सम्बन्धित कोई भी विषय (ख) वस्तुओ के मूल्य, उपस्थिति, आवास और रहने की दशायें, ऋण-ग्रस्तता, मकानो का किराया, मज्दूरी और वेतन, प्रोविडेन्ट तथा अन्य निधियाँ, लाभ व सुविधायें, कार्य के घन्टे, रोजगार और बेरोजगारी तथा औद्योगिक व श्रमिक विवाद, आदि जैसे श्रम दशाओं और कल्याण से सम्बन्धित विषय। अधिनियम राज्य सरकारों द्वारा नियुक्त सांख्यिकी प्राधिकारियो को यह अधिकार देता था कि वह आवश्यक ब्यौरे की मांग कर सकें तथा सम्बन्धित कागज-पत्रो की जाँच पड़ताल कर सकें। सूचना देने से मना करने अथवा गलत सूचना देने पर दण्ड की व्यवस्था भी की गई थी। अधिनियम को लागू करने के विषय मे केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों को निर्देश देने की व्यवस्था थी।

१९४५ मे राज्य सरकारो से २९ उद्योगो की पूँजी, उत्पादन लागत और उत्पादन मात्रा के सम्बन्ध में सूचना एकत्रित करने का कहा गया। बाद में ३४ और उद्योगो को सम्मिलित कर लिया गया था। परन्तु यह अनुभव किया गया कि अधिनियम और ब्यौरा देने के फार्म सरल होते हुए भी ब्यौरे सन्तोषजनक रूप से नही दिये गये। सरकार ने यह निर्णय किया कि इस योजना को अन्य उद्योगो तक विस्तृत कर दिया जाय तथा औद्योगिक विवादो व अन्य मामलो के सम्बन्ध मे भी सूचना एकत्रित की जाये। सरकार ने १९५१ मे नमूने के तौर पर कुछ नियमों के मसौदे तैयार किये और इन्हे राज्य सरकारों को अपनाने के लिए भेजा।

इन नियमों को औद्योगिक सांख्यिकी श्रम नियम के नाम से जाना जाता है। इनके आधार पर अनेक राज्य सरकारें नियम बनाकर प्रकाशित कर चुकी है।

१९५३ का सांख्यिकी एकत्रित करने का अधिनियम
(The Collection of Statistics Act, 1953)

१९४२ के औद्योगिक सांख्यिकी अधिनियम को निरस्त कर दिया गया और अब उसके स्थान पर अपेक्षाकृत अधिक व्यापक १९५३ का सांख्यिकी एकत्रित करने का अधिनियम पारित किया गया है। अधिनियम १० नवम्बर १९५६ से लागू किया गया है और इसके अन्तर्गत नियम भी बना दिये गये है। इस अधिनियम का उद्देश्य उद्योग, व्यापार और वाणिज्य के सम्बन्ध मे विशेष प्रकार की सांख्यिकी को एकत्रित करना है। सांख्यिकी एकत्रित करने के सम्बन्ध मे इसके उपबन्ध लगभग वैसे ही है जैसे १९४२ के अधिनियम मे थे। परन्तु नये अधिनियम मे सांख्यिकी एकत्रित की जाने वाली इकाइयो की सख्या बढा दी गई है। सूची में श्रमिकावर्त और श्रमिक सघो के विषयो को भी जोड दिया गया है। केन्द्रीय सरकार स्वय भी, यदि चाहे तो, सांख्यिकी एकत्रित कर सकती है। जम्मू व कश्मीर राज्य को छोड़कर अधिनियम सारे भारत में लागू होता है। फरवरी १९६० मे एक अधिसूचना द्वारा 'राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे' के महानिदेशक को वाणिज्य और औद्योगिक सस्थानों तथा कारखानो से आंकड़े एकत्रित करने के लिए सांख्यिकी प्राधिकारी नियुक्त कर दिया गया है। औद्योगिक विवादो के आंकड़े एकत्र करने के लिए भी नियम बनाये जा रहे है।

श्रमजीवी पत्रकार (काम की शर्तें) तथा विविध उपबन्ध अधिनियम, १९५५
(The Working Journalists' (Conditions of Service) and Miscellaneous Provisions Act, 1955)

२० दिसम्बर १९५५ मे श्रमजीवी पत्रकार (काम की शर्तें व विविध उपबन्ध) अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के महत्वपूर्ण उपबन्ध वेतन बोर्डों की नियुक्ति, उनके निर्माण और अधिकारो से सम्बन्धित है। श्रमजीवी पत्रकारों के लिए वेतन की दरो को निर्धारित करते समय बोर्ड को इस बात का ध्यान रखकर चलना होगा कि अन्य तुलनात्मक नौकरियो मे निर्वाह लागत और मजदूरी कितनी है। जिस समय तक वेतन बोर्ड की रिपोर्ट प्रकाशित न हो उस समय तक सरकार को वेतन की अन्तरिम दरें निर्धारित करने का अधिकार है। यदि छटनी करनी हो तो यह आवश्यक है कि मालिक सम्पादक को ६ माह का तथा अन्य श्रमजीवी पत्रकारो को ३ माह का पूर्व नोटिस दें। मृत्यु, अवकाश प्राप्ति, त्याग पत्र और सेवा समाप्ति के मामलो को निर्धारित दर पर अवकाश प्राप्ति धन देना होगा। उन सभी समाचार पत्र सस्थानो में जहाँ २० या अधिक श्रमजीवी पत्रकार

कार्य करते हैं १९५२ के श्रमिक प्रोविडेन्ट फण्ड अधिनियम तथा १९४६ के ओद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम को लागू कर दिया गया है। अधिनियम मे यह व्यवस्था है कि चार लगातार सप्ताहो मे किसी पत्रकार से अधिक से अधिक १४४ घण्टे काम लिया जा सकता है। अधिनियम मे पत्रकारो के लिए साप्ताहिक छुट्टी, आकस्मिक छुट्टी, अर्जित छुट्टी और बीमारी की छुट्टी प्रदान करने की भी व्यवस्था है। यदि मालिक पर श्रमिक के किसी धन की देनदारी है तो उसकी उगाही उसी प्रकार से हो सकती है जैसे मालगुजारी के बकाया की होती है। १९५५ के श्रमजीवी पत्रकार (औद्योगिक विवाद) अधिनियम को निरस्त कर दिया गया है और इसके उपबन्धो को नये अधिनियम मे समायोजित कर दिया गया है। अप्रैल १९५६ से अधिनियम के प्रशासन का दायित्व, सूचना एव प्रसारण मन्त्रालय से हटाकर श्रम मन्त्रालय को स्थानान्तरित कर दिया गया है। मई १९५६ मे श्रमजीवी पत्रकारो के लिए वेतन दरो का निर्धारण करने के हेतु एक वेतन बोर्ड बनाया गया। परन्तु वेतन बोर्ड के निर्णयो को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा "अवैध और शून्य" घोषित कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप जून १९५८ मे पहले एक अध्यादेश जारी किया गया और फिर इसके स्थान पर सितम्बर १९५८ मे **श्रमजीवी पत्रकार (वेतन दरो का निर्धारण)** अधिनियम पारित किया गया। अधिनियम मे केन्द्रीय सरकार द्वारा श्रमजीवी पत्रकारो के लिये वेतन दरो का निर्धारण करने के हेतु एक समिति बनाने की व्यवस्था थी। यह समिति स्थापित की गई और इसने अपनी सिफारिशें भी प्रस्तुत कर दी। सरकार ने इन सिफारिशो को कुछ रूपान्तरण के पश्चात् स्वीकार कर लिया है।

१९५५ और १९५८ के इन अधिनियमो मे "**श्रमजीवी पत्रकार (सशोधित) अधिनियम १९६२**' द्वारा सशोधन किया गया। इसके मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित हैं (१) यदि कोई पत्रकार अपनी इच्छा से किसी भी कारण दस वर्ष की नौकरी के बाद त्यागपत्र देता है, या तीन वर्ष की नौकरी के पश्चात् ही किसी ऐसे कारण से त्यागपत्र देता है जिसमे उसके अन्त करण का प्रश्न आ जाता है, तो उसे अवकाश प्राप्ति धन दिया जायेगा, (२) केन्द्रीय सरकार को श्रमजीवी पत्रकारो के लिये मजदूरी बोर्ड नियुक्त करने का अधिकार होगा, (३) श्रमजीवी पत्रकारो के अधिनियमो को प्रभावात्मक रूप से लागू करने के लिए निरीक्षकों की नियुक्ति का अधिकार राज्य सरकारो को दे दिया गया है।

शिक्षु अधिनियम, १९६१ (The Apprentices Act, 1961)

इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य यह था कि विभिन्न व्यवसायो मे शिक्षुओ को प्रशिक्षण देने और उनसे सम्बन्धित अन्य बातो पर नियत्रण किया जाए। शिक्षु उस व्यक्ति को कहा जाएगा जो किसी विशिष्ट व्यवसाय मे शिक्षुता के सविदा के अन्तर्गत शिक्षुता प्रशिक्षण प्राप्त कर रहा है। शिक्षु की न्यूनतम आयु १४ वर्ष निर्धारित की गई। अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्येक शिक्षु को या उसके

अभिभावक को मालिक से एक शिक्षुता की संविदा करनी होगी और इस संविदा को 'शिक्षुता सलाहकार' के पास रजिस्ट्री कराना होगा। अधिनियम में शिक्षा के स्तर, शिक्षुओं की शारीरिक योग्यता, प्रशिक्षण की अवधि, संविदा की समाप्ति, छात्रवृत्ति की अदायगी आदि के लिए नियम बनाने की व्यवस्था है। यदि समय से पूर्व किसी भी पक्ष द्वारा संविदा समाप्त कर दिया जाता है तो मालिकों द्वारा समाप्त किये जाने की स्थिति में शिक्षु को क्षतिपूर्ति दी जायेगी और शिक्षु द्वारा समाप्ति की स्थिति में उसके द्वारा मालिक को प्रशिक्षण की लागत अदा करनी होगी। शिक्षुओं के स्वास्थ्य, सुरक्षा और कल्याण के सम्बन्ध में १९४८ के कारखाना अधिनियम और १९५२ के खान अधिनियम के उपबन्ध लागू होंगे। १९२३ का श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम भी इन पर लागू कर दिया गया है। अधिनियम के अन्तर्गत काम के घन्टो, छुट्टियो तथा अवकाश का भी निर्धारण कर दिया गया है। शिक्षुता सलाहकार के अनुमोदन के बिना समयोपरि काम का निषेध कर दिया गया है। केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार है कि वह विशिष्ट व्यवसायों में श्रमिको की कुल सख्या के अनुपात मे शिक्षुओ की सख्या निर्धारित कर दें। यदि किसी संस्थान मे ५०० या उससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं तो शिक्षुओ के प्रशिक्षण की व्यवस्था मालिक द्वारा की जाएगी, और जहा ५०० से कम श्रमिक कार्य करते है वहाँ उनको प्रशिक्षण सरकार द्वारा स्थापित संस्थानो मे दिया जायेगा। अधिनियम के प्रशासन के लिए निम्नलिखित व्यवस्था की गई है (१) एक राष्ट्रीय परिषद्, (२) एक केन्द्रीय शिक्षुता परिषद्, (३) एक राज्य परिषद्, (४) एक राज्य शिक्षुता परिषद्, (५) एक केन्द्रीय शिक्षुता सलाहकार, तथा (६) एक राज्य शिक्षुता सलाहकार। अधिनियम के उपबन्धो का उल्लंघन करने पर दण्ड देने की व्यवस्था है। इस अधिनियम से पूर्व शिक्षुओ के लिए १८५० में एक अधिनियम पारित हुआ था जो इस अधिनियम के पश्चात् निरस्त कर दिया गया है।

व्यक्तिगत क्षति (सकटकाल व्यवस्था) अधिनियम, १९६२ [Personal Injuries (Emergency Provisions) Act, 1962]

अधिनियम के अन्तर्गत सकटकाल मे कुछ विशेष व्यक्तिगत क्षति होने पर सहायता देने की व्यवस्था है। केन्द्र सरकार को इस अधिनियम के अन्तर्गत यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह (क) काम पर लगे हुए व्यक्तियों को या किसी भी विशेष वर्ग के व्यक्तियों को और (ख) नागरिक सुरक्षा स्वयंसेवकों को व्यक्तिगत क्षति पहुँचने पर सहायता के लिये योजना या योजनायें बनाये। इस अधिनियम के अनुसार सकटकाल मे काम पर लगे व्यक्तियो तथा नागरिक सुरक्षा स्वयं-सेवकों को व्यक्तिगत क्षति पहुँचने पर क्षतिपूर्ति देने का दायित्व केन्द्र सरकार का हो गया और कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम तथा कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति देने का जो मालिकों का दायित्व है वह सकटकालीन क्षति के लिये नहीं रहा। परन्तु अधिनियम के अन्तर्गत चूँकि सहायता एक

सामान्य व समान दर पर दी जाती है। अत अधिक वेतन पाने वाले कर्मचारियो को कम क्षतिपूर्ति मिलने की सम्भावना हो गई है। अत १९६३ मे, **व्यक्तिगत क्षति (क्षतिपूर्ति बीमा) अधिनियम** इसलिये पारित किया गया ताकि इस विषय मे आश्वस्त हुआ जा सके कि ऐसे श्रमिको को दी जाने वाली क्षतिपूर्ति उसी स्तर की हो जैसी कि श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के अन्तर्गत होती है। अधिनियम के अन्तर्गत मालिको पर अब यह दायित्व डाल दिया गया कि वे शत्रु की कार्यवाहियो के कारण व्यक्तिगत चोटो से पीडित श्रमिको की क्षतिपूर्ति करें। यही नही, वे अपने इस दायित्व को निभाने के लिये सरकार से बीमा पालिसियाँ लें और प्रत्येक तिमाही के बाद बीमे की किश्त अदा करें। अधिनियम को १ नवम्बर १९६५ से लागू किया गया और इसके अन्तर्गत योजनायें व नियम बनाये गये। इस कार्य के लिये जीवन बीमा निगम को केन्द्र सरकार का एजेन्ट नियुक्त किया गया।

भवन तथा निर्माण श्रमिको की नौकरी की शर्तों का नियमन करने के लिए विधान (Legislation for regulating the Conditions of Work of Building and Construction Workers)

भवन तथा निर्माण उद्योग मे श्रमिको की सुरक्षा के सम्बन्ध मे देश मे कोई कानून नही था। जुलाई १९६५ मे भवन तथा निर्माण उद्योग की औद्योगिक समिति के प्रथम अधिवेशन मे सबसे पहले ऐसे श्रमिको के लिये पृथक् विधान बनाने पर विचार किया गया और इसकी सिफारिश पर भवन तथा निर्माण श्रमिको की नौकरी की शर्तों का नियमन करने के लिए एक विधेयक तैयार किया गया और इसे समालोचना के लिये प्रसारित किया गया। प्राप्त हुई समालोचनाओ के सदर्भ मे विधान की योजना को अन्तिम रूप दिया गया। विधान के उपबन्धो मे निम्न बातें सम्मिलित की गईं भवन व निर्माण कार्य के लिये लायसेस, निरीक्षकों की नियुक्ति, स्वास्थ्य व कल्याण सम्बन्धी अनेक सुविधायें, व्यापक सुरक्षात्मक कार्रवाइयाँ, काम के घण्टे, सवेतन अवकाश आदि।

ठेका श्रमिक विधेयक, १९६६ (The Contract Labour Bill, 1966)

ठेके के श्रमिको से काम लेने की पद्धति मे अनेक दोष पाये जाते हैं। इस प्रथा को समाप्त करने का प्रश्न काफी समय से सरकार के विचाराधीन रहा है। द्वितीय पचवर्षीय योजना मे, आयोजना आयोग ने कुछ सिफारिशें की जिनमे सम्बन्धित सिफारिशें इस प्रकार थी ठेके के श्रमिको की समस्या की गहनता को आँकने के लिये अध्ययन की व्यवस्था, इस प्रथा का क्रमश उन्मूलन और जहाँ इसका उन्मूलन सम्भव न हो वहाँ इसकी सेवा-शर्तो मे सुधार। त्रिदलीय समितियो की अनेक बैठको मे, जिनमे कि राज्य सरकारो का भी प्रतिनिधित्व था, इस मामले पर विचार किया गया। सामान्य मत यह था कि जहाँ तक भी सम्भव तथा व्यावहारिक

हो, इस प्रथा को समाप्त किया जाना चाहिये और यदि कहीं इस प्रथा को बिल्कुल समाप्त न किया जा सके तो उस स्थिति में ठेके के श्रमिकों की काम की दशाओं का नियमन इस प्रकार किया जाना चाहिये कि श्रमिकों को मजदूरी की अदायगी तथा आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था के विषय में आश्वस्त हुआ जा सके।

इसके फलस्वरूप, नवम्बर १९६६ को लोक सभा मे एक विधेयक प्रस्तुत किया गया किन्तु सामान्य निर्वाचन से पूर्व तृतीय लोक सभा भंग हो जाने के कारण इस पर विचार न हो सका। ठेका श्रमिक विधेयक का उद्देश्य यह है कि ऐसी श्रेणी के ठेके-श्रम को समाप्त किया जाये जिनकी सूचना उपयुक्त सरकार द्वारा कुछ निर्धारित सिद्धान्तो के आधार पर दी गई हो और जहाँ इस प्रथा की समाप्ति सम्भव न हो वहाँ ठेके के श्रमिकों की सेवा की शर्तों का नियमन किया जाए। विधेयक मे अन्य के अलावा निम्न बातो की व्यवस्था है : त्रिदलीय प्रकृति के ऐसे सलाहकार बोर्डों की स्थापना जिनमे विभिन्न हितों के प्रतिनिधि हों और ये बोर्ड विधान के प्रशासन मे केन्द्र तथा राज्य सरकारो को सलाह दें तथा संस्थानो व ठेकेदारो का रजिस्ट्रेशन। ठेके के श्रमिको के लिये पीने के पानी तथा प्राथमिक चिकित्सा जैसी कुछ मूलभूत कल्याणकारी सुविधाओं की व्यवस्था तथा प्रबन्ध, और कुछ स्थितियों मे विश्राम-गृहो व कैन्टीनो की व्यवस्था को भी अनिवार्य बना दिया। इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि मजदूरियो की अदायगियो के मामले मे होने वाली हरकतो के विरुद्ध मजदूरो को सुरक्षा प्रदान की जाये।

फरवरी १९६६ मे स्थायी श्रम समिति द्वारा फिल्म उद्योग में काम की दशाओं का नियमन करने के लिये विधान तैयार किया गया और उस पर विचार किया गया। इस प्रस्तावित विधान की बारीकियों की जांच करने के लिये एक त्रिदलीय समिति की स्थापना की गई है।

श्रम विधान का आलोचनात्मक मूल्याकन

किसी भी देश मे श्रम विधान का बनना कई बातो पर निर्भर करता है; उदाहरणतया उस देश का संविधान, सरकार द्वारा देश के साधनों के विकास के लिये अपनाई गई आर्थिक तथा सामाजिक नीतियाँ, श्रम विषयो पर जनता में चेतना, श्रमिक संघो का शक्तिशाली होना आदि। जिस समय श्रम अनुसन्धान समिति ने अपनी रिपोर्ट दी थी उस समय से भारत मे श्रम विधान के क्षेत्र में यद्यपि पर्याप्त प्रगति हो चुकी है तथापि श्रम विधान के विषय मे उसके विचार बहुत महत्वपूर्ण है। समिति के विचार मे यद्यपि लगभग आधी शताब्दी बीत चुकी है जब राज्य ने श्रम विधान बनाने शुरु किये थे परन्तु जो कुछ भी प्रगति हुई है वह बहुत उत्साहवर्द्धक नही है। इसके मुख्यत तीन कारण है। प्रथम तो श्रमिकों और श्रमिक सघो की सापेक्ष शक्ति सब स्थानों पर एक समान न होने के कारण विभिन्न उद्योगों में कार्य की दशाओं और मजदूरी दरों में भिन्नता पाई जाती

है। दूसरे, श्रमिक वर्ग की अवस्थाओ को सुधारने मे राज्य सरकारो द्वारा किये जाने वाले प्रयत्नो मे भिन्नता पाई जाती है। तीसरे, विभिन्न राज्यो मे श्रम विधानो को लागू करने के लिये जो स्तर निर्धारित किये गये हैं उनमे महान् अन्तर पाया जाता है। इसमे कोई सन्देह नही कि हाल ही के वर्षों मे अनेक श्रम कानून पारित किये गये हैं। परन्तु जैसा कि श्री बी० के आर० मेनन ने श्रम विधान के ऊपर एक लेख मे कहा है "सामाजिक न्याय की राह मे अभी हमे बहुत लम्बी यात्रा तय करनी है।"

दूसरी ओर कुछ ऐसे व्यक्ति भी हैं जिनका कहना है कि हाल ही के वर्षों मे श्रम विधान की एक बाढ सी आ गई है। परन्तु श्री खण्डूभाई देसाई का कथन है कि प्रजातन्त्र मे विधान बनाने का तात्पर्य केवल नियन्त्रण रखना ही नही है वरन् मुख्य उद्देश्य यह होता है कि विधान श्रमिको और प्रबन्धको के लिये मार्ग-दर्शक का कार्य करे। विधान से अव्यवस्था फैलाने वाली शक्तियो को रोका जा सकता है और शोषण को दूर किया जा सकता है।

छोटे पैमाने के उद्योगो के लिए विधान की आवश्यकता

देश के श्रम विधान मे एक भारी कमी यह है कि असगठित और अनियन्त्रित छोटे पैमाने के और कुटीर उद्योगो के श्रमिको के लिए कोई उपयुक्त विधान नही है। ऐसे उद्योग निम्नलिखित हैं चपडा, अभ्रक काटना, चटाई बुनना, कांच की चूडियां बनाना कालीन बुनना, बीडी बनाना, देशी प्रणाली से चमडे को रगना तथा साफ करना, हाथ करघो से बुनाई आदि। इन तथाकथित कुटीर उद्योगो मे श्रम की दशायें अत्यन्त शोचनीय है और इनको 'शोषित' (Sweated) उद्योग कहा जाता है। साधारणतया यह विश्वास किया जाता है कि छोटे और कुटीर उद्योग धन्धे कुछ ऐसी बुराइयो से मुक्त होते हैं जिनकी बडे पैमाने वाले उद्योगो मे सम्भावना होती है। परन्तु वास्तविकता यह है कि इन उद्योगो की अवस्था विभिन्न कारखाना अधिनियमो के अन्तर्गत आने वाले नियन्त्रित उद्योगो की अपेक्षा अधिक शोचनीय है। ऐसे कारखानो मे साधारणतया दोषपूर्ण सवातन, कम प्रकाश, भीडभाड का वातावरण और गन्दगी रहती है। कार्य के घण्टो का इनमे कोई नियम नही होता। बहुधा श्रमिक सुबह जल्दी आते है और सध्या समय देर तक कार्य करने के पश्चात् वापिस जाते हैं। कार्य भी बडा नीरस और थकाने वाला होता है। चपडा, कालीन, नारियल की रस्सी आदि के कारखानो मे और उनके आसपास सफाई की दशाये बहुत ही अधिक असन्तोषजनक पाई गई हैं। ऐसे अधिकाश उद्योगो में बाल श्रमिको को बेरोकटोक कम मजदूरी पर रोजगार पर लगाया जाता है और लगभग सभी स्थानो पर उनका शोषण किया जाता है। अधिकाश ऐसे उद्योगो मे अस्थायी रूप से कार्य करने वाले श्रमिको के लिये न तो रोजगार की सुरक्षा है और न ही उन्हे कोई अधिकार प्राप्त है। अत श्रमिक वर्ग के हित मे छोटे पैमाने के और कुटीर उद्योगो को कानून द्वारा उसी प्रकार से

विनियमित करना आवश्यक है जैसे बड़े पैमाने के उद्योगों को किया जाता है। जैसा कि पिछले पृष्ठों में बताया जा चुका है, कुछ राज्यों में कुछ कानून बनाये गये हैं और केन्द्र सरकार ने भी बीड़ी श्रमिकों के सम्बन्ध में अधिनियम पास किया है। फिर भी, सामान्यतः छोटे पैमाने के उद्योगों में श्रमिकों की दशा अत्यधिक असन्तोषजनक है।

औद्योगिक आवास अधिनियम तथा अन्य अधिनियमों की आवश्यकता

यदि हम चाहते हैं कि श्रमिकों के रहने-सहने की अत्यन्त शोचनीय, अमानवीय और असन्तोषजनक अवस्थाओं में सुधार किया जाये, तो जैसा कि आवास के अध्याय में बताया जा चुका है, यह आवश्यक है कि एक अनिवार्य औद्योगिक आवास अधिनियम पारित किया जाये। इसके अतिरिक्त देश में सामाजिक सुरक्षा के लिये और पग उठाने चाहियें। विभिन्न राज्यों में कल्याण कार्यों का सामञ्जस्य करने के दृष्टिकोण से एक व्यापक औद्योगिक कल्याण अधिनियम की भी आवश्यकता है। देश में बेरोजगारी के विरुद्ध भी कुछ सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिये। विवेकीकरण आदि के परिणामस्वरूप जिन श्रमिकों की छटनी की जाती है उनके लिये सरकार को अन्य रोजगारों की व्यवस्था करनी चाहिये तथा कार्य के घण्टों के नियम को कठोरता से लागू करना चाहिए और समयोपरि को निषेध कर दिया जाना चाहिये। श्रमिकों का एक अन्य वर्ग कृषक श्रमिकों का है जिन्हें सुरक्षा की बहुत आवश्यकता है। इनकी समस्या का वर्णन एक अलग अध्याय में किया जायेगा। कुछ बड़े शहरों में घरेलू नौकरों ने स्वयं को संगठित कर लिया है और अब अपने लिये कुछ वैधानिक सुरक्षा पाने के लिए आन्दोलन कर रहे हैं। देहली में घरेलू नौकरों की समस्या का समाधान करने के लिये एक समिति की नियुक्ति की गई है।

सुझाव और उपसंहार

श्रम विधान के सम्बन्ध में सबसे पहली आवश्यकता यह है कि विभिन्न राज्यों के अनेक अधिनियमों को समायोजित किया जाये, विधान को श्रमिकों के कुछ अन्य वर्गों तक विस्तृत किया जाये तथा श्रमिकों को और अधिक सुरक्षा प्रदान की जाये। अब तक देश के श्रम कानूनों में समानता नहीं है। इसका कारण यह है कि श्रम विधान को केन्द्रीय, राज्य और समवर्ती तीनों ही सूचियों में रख दिया गया है, जिसके परिणामस्वरूप विधान बनाने में भिन्नता आ जाती है। इन समायोजित श्रम कानूनों और विनियमनों का दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम यह हुआ है कि उद्योग एक स्थान से दूसरे और दूसरे से तीसरे स्थान में प्रव्रजन कर जाते हैं और उद्योगों का विकास ऐसे क्षेत्रों में हो जाता है जो कि सामान्यतः उनके लिये उपयुक्त नहीं होते, परन्तु जहाँ कुछ श्रम कानून लागू नहीं होते। इसका परिणाम यह होता है कि देश के औद्योगिक साधनों का बड़ा असमान और अनुपयुक्त विकास होता है। श्रम की प्रवृत्ति भी एक स्थान से दूसरे स्थान में प्रवास करने की हो

जाती है और इसका प्रभाव यह होता है कि देश मे श्रमिको की अवस्था मे सुधार होने की अपेक्षा दशायें और भी अधिक शोचनीय हो जाती है।

यही नही, वरन् श्रम कानूनो के प्रशासन मे भी समानता होनी चाहिए। कुछ राज्यो मे तो कानूनो का कठोरता से पालन किया जाता है और कुछ मे इस सम्बन्ध मे शिथिलता पाई जाती हैं। इसके कारण प्रवासिता के अवांछनीय परिणाम प्रकट होने लगते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के संविधान की भूमिका मे उल्लेख है कि "किसी भी राष्ट्र की श्रम के लिये मानवीय अवस्थाओं को अपनाने मे असफलता उन अन्य राष्ट्रो के मार्ग मे भी बाधा बन जाती है जो अपने देश मे दशाओं को सुधारना चाहते हैं।" अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे जब श्रम विधान मे समानता की इतनी आवश्यकता है तब भारत जैसे देश मे तो समानता की और भी अधिक आवश्यकता है।

इस सम्बन्ध मे श्री ए० जी० क्लो का कथन है कि "श्रमिक वर्ग को किस सीमा तक सुरक्षा प्रदान की जाती है यह इस बात से प्रमाणित नही होती कि उनके लिये बनाये गये श्रम कानूनो की संख्या कितनी है, वरन् यह इस बात पर निर्भर है कि ऐसे कितने विधान है जिनका उचित प्रकार से प्रशासन किया जाता है तथा किस सीमा तक उनके उपबन्धो को लागू किया जाता है।' यह ऊपर बताया जा चुका है कि अधिकांश उद्योगो मे मालिको द्वारा अधिकांश श्रम कानूनो का किस प्रकार अपवचन किया जाता है। प्रशासन के लिये उत्तरदायी अधिकारियो द्वारा भी अधिकांश श्रम कानूनो को उचित प्रकार से लागू नही किया जाता। अधिनियमो को लागू करने की व्यवस्था मे न केवल सुधार किया जाना चाहिये, वरन् इनका विस्तार करना भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त प्रशासन अधिकारियो से अधिनियम के उन दोषो व कमियो को जानने के लिये परामर्श लिया जाना चाहिये जिनके कारण मालिक कानून से बचने के लिए लाभ उठाते हैं और फिर अधिनियम मे इन दोषो को दूर करने के लिये संशोधन कर देना चाहिये। बागान मे १९५१ के अधिनियम के दायित्व से बचने के लिये मालिको द्वारा अनेक बागो का विभाजन किया जा रहा है। दुकान अधिनियम मे श्रमिको की नौकरी की सुरक्षा की अधिक व्यवस्था नही है और इसके कारण श्रमिक मालिको के विरुद्ध गवाही देने मे हिचकते है। कानून के अपवचन के लिये अथवा उसे टालने के लिए कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए। अब एक केन्द्रीय मूल्यांकन तथा कार्यान्विति प्रभाग की व्यवस्था केन्द्र और राज्यो मे कर दी गई है जिसका उद्देश्य यह है कि श्रम विधान, विवाचन निर्णय, संघता नियमो, मालिक-मजदूर करार आदि की कार्यान्विति की ओर ध्यान रखा जाये (देखिये पृष्ठ १९६)।

एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह ध्यान मे रखनी चाहिये कि वैधानिक उपबन्ध श्रमिको की रुचि और आदतो को ध्यान मे रखते हुये बनाये जायें। उदाहरण के लिए, कोयला खानो मे श्रमिको के लिए खानो के ऊपर स्नानगृहो की व्यवस्था है।

परन्तु अनेक स्थानों पर उनका निर्माण योरोपियन ढंग से किया गया है जिसके कारण खनिकों में वह लोकप्रिय नहीं हो पाये। ऐसे दोषों को दूर करना चाहिये।

इस बात की भी शिकायत है कि श्रम विधान को सार्वजनिक, अर्थात् सरकारी उद्योगों में उचित प्रकार से लागू नहीं किया जाता। विधान को लागू करने मे सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्र में भेद नहीं होना चाहिये। इस दोष को दूर करने के लिये अब ध्यान दिया जा रहा है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति और जनप्रिय उत्तरदायी सरकार की स्थापना के पश्चात् श्रम समस्याओं के प्रति सरकार का दृष्टिकोण अधिक सहानुभूतिपूर्ण हो गया है। श्रमिकों के जीवन-स्तर को ऊँचा करने तथा सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिये जो पग उठाये जाने आवश्यक है, उनके लिये सरकार ने अपने उत्तरदायित्व को भलीभाँति अनुभव कर लिया है। श्रमिकों को मान्यता देने में एक नये प्रकार की यह भावना आ गई है कि श्रमिक उद्योग में एक अवर (Junior) साथी नहीं है जिसे केवल निर्वाह मजदूरी ही मिलनी चाहिये, वरन् उत्पादन में उसका स्थान पूँजीपतियों के साथ बराबर का है और वह उद्योग के लाभ मे बराबर का हिस्सा पाने का अधिकारी है। सरकार के इस उत्तरदायित्व का भारत के संविधान मे भी उल्लेख किया गया है। अतः आगामी वर्षों में यह आशा की जा सकती है कि शिल्पी और कृषि श्रमिकों जैसे वर्गों तक कानूनी सुरक्षा का विस्तार धीरे-धीरे कर दिया जायेगा तथा रोजगार में लगी हुई जनसंख्या के सभी महत्वपूर्ण वर्ग सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र के अन्तर्गत धीरे-धीरे आ जायेगे और नियमित रूप से श्रम सुरक्षा के स्तरों को ऊँचा उठाकर देश के श्रम विधान को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संहिता के उपबन्धों के अनुरूप बना दिया जायेगा।

२१

ब्रिटेन मे श्रम विधान

LABOUR LEGISLATION IN BRITAIN

प्रारम्भिक इतिहास और अधिनियम

इगलैण्ड मे औद्योगिक क्रांति के पश्चात कारखाना प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ। इससे पूर्व सैकडो वर्षों तक श्रमिक वर्ग की दशाय रीति रिवाजो द्वारा निर्धारित होती रही जिनका प्रभाव कानून जसा ही था। मध्य युग मे भी उद्योगो पर राज्य का थोडा बहुत निरीक्षण और नियन्त्रण था। १३५१ के श्रमिक विधान (Statute of Labourers) द्वारा मजदरी को विनियमित करने का प्रयत्न किया गया था। १३८८ म जस्टिसेज आफ पीस (Justices of Peace) को अपने अपने जिलो म मजदूरी निर्धारित करने का अधिकार दे दिया गया था। सालहवी शताब्दी के प्रारम्भ मे विशेष उद्योगो स सम्बन्धित अनेक कानून पारित किये गये परन्तु व निष्क्रिय ही रहे। कुछ कानून दस्तकारी श्रेणियो के प्रशासन अधिकार से सम्बन्धित थे। १४३७ मे एक विधान पारित किया गया जिसके अन्तर्गत दस्तकारी श्रेणियो (Craft Guilds) के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह अपने नियमो को अनुमोदन हेतु जस्टिसेज आफ पीस के सम्मुख प्रस्तुत कर। १५०४ म इन श्रेणियो को न्यायाधीशो के सम्मुख अपने नियमो को प्रस्तुत करने का आदेश दिया गया। न्यायाधीशो को यह अधिकार था कि वह किसी भी ऐसे नियमो को रद्द कर सकते थे जिस पर उन्हे आपत्ति हो।

१५६३ म एक महत्वपूर्ण विधान शिल्पकारो का विधान (Statute of Artificers) जिसे शिक्षुओ का विधान (Statute of Apprentices) भी कहा जाता था पारित किया गया। इसका उद्देश्य यह था कि ग्रामीण शिल्पियो के लिये कुशल शिक्षा की व्यवस्था की जा सके कृषि श्रमिक पर्याप्त मात्रा म उपलब्ध होते रहे मजदूरी की दर नियमित हो जाये और समय के विचारों और आवश्यकताओ के अनुकूल एक पूर्ण औद्योगिक सहिता बनाई जाये। १२ से ६० वर्ष तक की आयु के सब शारीरिक रूप से योग्य (समर्थ) व्यक्तियो को कृषि कार्य पर लगाया जा सकता था यदि वह किसी अन्य व्यवसाय म नही लगे हुए होते थे या उनके पास एक निर्धारित मात्रा म सम्पत्ति नही होती थी। इस उद्देश्य स कि रोजगार निरन्तर रहे यह व्यवस्था की गई थी कि सारे व्यवसायो मे एक साल से कम की अवधि के लिए किसी को मजदूरी पर नही लगाया जा सकता था और

नौकरी को समाप्त करने के लिए तीन मास का नोटिस देना होता था। उचित प्रकार का प्रशिक्षण देने के लिए तमाम व्यवसायों में सात साल की अवधि तक प्रत्येक श्रमिक के लिये शिक्षु के रूप में कार्य करना अनिवार्य कर दिया गया। परन्तु यह अवधि २१ वर्ष की आयु से पूर्व ही हो सकती थी। व्यवसाय का छटाव भी कुछ हद तक सीमित था। कुछ व्यवसाय धनी अथवा उच्च स्तरों के परिवारों के युवकों के लिए सुरक्षित थे। जहाँ तक मजदूरी का सम्बन्ध है 'जस्टिसेज ऑफ पीस' को मजदूरी दरो को निर्धारित करने का अधिकार दिया गया था। इनके निर्णयों को मालिको और श्रमिको दोनों को ही मानना पडता था।

कारखानों मे घोर शोचनीय दशाये

जार्ज तृतीय के समय तक उद्योग धन्धो पर दस्तकारी श्रेणियों का नियन्त्रण समाप्त हो चुका था और शिक्षुओ अथवा शिल्पकारो के विधान को भी लागू नही किया जाता था। अदन्ध नीति के सिद्धान्त को साधारणतया स्वीकार कर लिया गया था, और इस बात मे पूर्ण रूप से विश्वास किया जाता था कि वर्ग-वर्ग मे और हर वर्ग के व्यक्तियों के बीच में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा होने के अनेक लाभ है। १८वी शताब्दी के मध्य तक मजदूरी का निर्धारण एक अतीत की बात बन चुकी थी। ससद् द्वारा १८१३ मे मजदूरी के निर्धारण सम्बन्धी विधान के उपबन्धो को तथा १८१४ मे शिक्षुओं की आवश्यकता सम्बन्धी विधान के उपबन्धों को निरस्त कर दिया गया। देश मे बड़े पैमाने के कारखानो की स्थापना हो रही थी। परन्तु बहुत से कारखाने ऐसी इमारतो (भवनो) मे बनाये गये थे जो इस उद्देश्य के लिए नहीं बनाई गई थी और इनकी दशायें बहुत ही असन्तोषजनक थी। कारखानो का निर्माण इस प्रकार किया जाता था कि उनके मालिको को अधिकतम लाभ हो और श्रमिको के स्वास्थ्य, आराम, सुविधा और सुरक्षा पर कोई ध्यान नही दिया जाता था। यदि आधुनिक स्तरो से देखा जाए तो ऐसी इमारतें बहुत ही अपर्याप्त रोशनी वाली, सवातनहीन, गन्दी और भीड़-भाड वाली होती थी। खतरनाक मशीनों के चारों ओर घेरा नही लगाया जाता था। गम्भीर और घातक दुर्घटनाओ का होना साधारण सी बात थी।

बाल श्रमिक और उनकी दयनीय स्थिति

कारखानो के मालिको ने शीघ्र ही यह अनुभव किया कि स्त्रियों और बालकों से अधिकाश कार्य लिया जा सकता था और यह पुरुष श्रमिकों की अपेक्षा सस्ते पडते थे। १६०१ के निर्धन कानून (Poor Law) द्वारा यह आदेश दिया गया कि भिखमगे बालकों को किसी व्यवसाय मे शिक्षुओं के रूप मे लगा देना चाहिए। अत मालिको के लिए यह साधारण बात हो गई कि वह कार्य भवनो (Work Houses) मे जाते थे और भिखमगे बालको की टोलियां की टोलियाँ शिक्षुओ के रूप मे भर्ती कर लेते थे। इन बालको को कारखानो मे ले जाया जाता था और इनसे दिन मे १२ से १६ घण्टो तक काम लिया जाता था। उनको रविवार तक

की छुट्टी नही दी जाती थी और इस दिन उन्हे साधारणतया चिमनियो को साफ करना पडता था। कई बार चिमनी के नीचे आग जला दी जाती थी ताकि बालक सफाई के लिये चिमनी के ऊपर तक चढ जायें। घुटन के कारण बहुत से बालको की मृत्यु हो जाती थी। बालको के लिए कारखानो के मालिको की ओर से भोजन, कपडे और रहने की व्यवस्था तो होती थी परन्तु कुछ मालिको को छोड कर अधिकतर मालिक बाल श्रमिक प्रणाली को लाभ का ही साधन समझते थे। बालको को कार्य के लिये ओवरसियरो के अधीन लगाया जाता था। इन ओवरसियरो का वेतन बालको से लिए गए काम की मात्रा पर निर्भर होता था। अत बालकों को कोडे लगाये जाते थे, बेडिया बाधी जाती थी, सताया जाता था, उनका हर प्रकार से दमन होता था और उनके साथ क्रूर व्यवहार किया जाता था। उनकी अवस्था अमरीका मे उन दिनो के दास प्रथा वाले राज्यो से भी अधिक खराब थी।

कारखानो मे काम करने वाले बाल श्रमिको की दयनीय दशा की वास्तविकता की ओर जनसाधारण का ध्यान नही गया था। जब इनके विषय मे जनता को ज्ञात भी हुआ तब भी इस बात से उन्हे कोई चिन्ता नही हुई कि ५, ६ या ७ वर्ष की आयु के बालक कारखानो मे काम करते थे। यह विचार तो आधुनिक समय मे ही आया है कि श्रमिक वर्ग के बालको को १४, १५ वर्ष की आयु तक जीविकोपार्जन के कार्य मे नही लगाना चाहिए और तब तक उनका समय केवल पढाई व मनोरञ्जन मे ही व्यतीत होना चाहिये। कारखाना प्रणाली के पूर्व भी बाल श्रमिक पाए जाते थे। तीन-तीन चार-चार वर्ष के मासूम बच्चो तक से यह आशा की जाती थी कि वह कपडा बुनने के कार्य तथा कुटीर उद्योगो की सरल प्रक्रियाओ मे मदद देंगे। अत कारखानो म बाल श्रमिको को कार्य पर लगाना बुरा नही समझा जाता था।

वैधानिक सुरक्षा प्रदान करने के विचार का विकास

फिर भी जैसे-जैसे समय बीता और कारखानो मे कार्य करने वाले बाल श्रमिको की दयनीय अवस्था का पता चला जनसाधारण की सहानुभूति इन बालको की ओर जाग्रत हो गई। उदार हृदय पुरुषो और स्त्रियो को यह ध्यान आया कि यदि बालको को काम पर लगाया भी जाता था फिर भी उन पर अत्याचार करने, कम भोजन देने और लम्बे घण्टो तक काम लेने का तो कोई न्यायोचित आधार नही था। परन्तु ऐसे अर्थशास्त्री व राजनीतिज्ञ, जो अबध नीति के सिद्धान्त मे विश्वास रखते थ, राज्य के हस्तक्षेप को अनुचित समझते थे और चाहते थे कि उद्योगो को स्वतन्त्र छोड दिया जाय। परन्तु शीघ्र ही इस बात को मान लिया गया कि यह बात अबध नीति के प्रतिकूल नहीं होगी कि सरकार हस्तक्षेप करे और उन लोगो की सहायता करे जो उचित रूप से अपने लिये सौदाकारी करने की परिस्थिति मे नही थे, क्योकि श्रम एक नाशवान वस्तु है और श्रमिक प्रतीक्षा नही कर सकते और मालिको से समान स्तर पर सौदा करने की परिस्थिति मे नही होते।

१७८४ में मैनचेस्टर में न्यायाधीशों के एक प्रस्ताव में एक लंकाशायर के कारखानों में व्याप्त बुराइयों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया। कारखानों में काम करने वाले बाल श्रमिकों की अवस्थाओं की जाँच करने के लिए १७९५ में मैनचेस्टर में एक स्वास्थ्य बोर्ड की स्थापना की गई। इसने अपनी रिपोर्ट में यह बताया कि प्रचलित दशायें बालकों के सामान्य स्वास्थ्य के लिये हानिकारक थी और बालकों को न तो किसी प्रकार की शिक्षा मिलती थी और न ही नैतिक व धार्मिक उपदेश दिये जाते थे तथा उनसे लम्बे घण्टों तक काम लिया जाता था।

१९ वीं शताब्दी में अनेक कारखाना अधिनियम पारित किये गये। उनका उद्देश्य केवल उन व्यक्तियों को ही सरक्षण प्रदान करना था जिनको रोजगार की दशाओं की व्यवस्था करने में सहायता और सरक्षण की आवश्यकता होती थी। अत. प्रारम्भ में कानून केवल शिक्षुओं पर ही लागू होता था और १९वीं शताब्दी के मध्य तक यह अनुभव नही किया गया कि वयस्कों को भी सरक्षण की आवश्यकता थी।

१८०२ का प्रथम कारखाना अधिनियम

१८०२ में प्रथम कारखाना अधिनियम पारित किया गया। यह शिक्षुओं के स्वास्थ्य और चरित्र अधिनियम (Health and Morals of Apprentices Act) के नाम से जाना जाता था और केवल सूती व ऊनी कारखानों के शिक्षुओं से सम्बन्धित था। उनके कार्य के घण्टो को प्रतिदिन १२ तक सीमित कर दिया गया और उनको रात्रि में ९ बजे के पश्चात् कार्य पर रोका भी नही जा सकता था। ९ वर्ष से कम आयु के बालकों का कारखानों में काम करना निषेध कर दिया गया। जिन कारखानों में बालक काम करते थे उनकी दीवारों पर सफेदी करानी आवश्यक थी और इमारत में पर्याप्त हवा और प्रकाश की व्यवस्था करनी होती थी। बाल श्रमिकों को प्रारम्भिक और धार्मिक शिक्षा की सुविधायें भी प्रदान करनी होती थी। कारखानों का निरीक्षण करने और अधिनियमों का उल्लघन करने की रिपोर्ट देने के लिये निरीक्षण नियुक्त किए गए थे।

१८०२ के अधिनियम द्वारा समस्या का केवल छोर ही पकडा जा सका था और यह अधिनियम बहुत अधिक प्रभावात्मक नही था। वयस्क श्रमिकों के वेतन इतने कम थे कि उन्हे मजबूर होकर अपने बालकों को रोजगार पर लगाना पड़ता था। यदि बालकों से लम्बे घण्टों तक काम लिया जाता था और उनके साथ क्रूर व्यवहार भी किया जाता था तो भी माता-पिता विरोध करने का साहस नही कर सकते थे कि कहीं उन्हीं की नौकरी मुसीबत में न पड जाए। हाउस ऑफ कामन्स में सर रोबर्ट पील ने बालकों की दशा से सम्बन्धित एक विधेयक प्रस्तुत किया और उनकी अवस्थाओं की जाँच करने के लिए एक समिति की भी नियुक्ति की गई। रोबर्ट ओवन ने भी समस्त कारखानों पर कुछ निश्चित बन्धनों को लागू करने पर जोर दिया। रोबर्ट ओवन का न्यू लेनार्क में स्वय का कारखाना एक

आदर्श माना जाता था जिसमें १० वर्ष से कम का कोई बालक रोजगार पर नहीं लगाया जाता था और जिसमें कार्य के घंटे भी उचित थे।

१८१९ का कारखाना विनियम अधिनियम

१८१९ में कारखाना विनियम अधिनियम पारित किया गया। सूती उद्योग में इस अधिनियम द्वारा ९ वर्ष से कम आयु के बालकों को लगाना निषेध कर दिया गया। ९ वर्ष से लेकर १६ वर्ष तक की आयु के बच्चों को दिन में १२ घण्टे से अधिक या रात्रि ८ बजे से प्रातः ५ बजे तक किसी भी समय रोजगार पर नहीं लगाया जा सकता था। भोजन के लिये १½ घण्टे के मध्यान्तर की व्यवस्था भी की गई थी।

यह अधिनियम भी पूर्ण रूप से लागू नहीं किया गया और इसका सरलता से उल्लंघन किया जा सकता था। कारखाना विधान के विरोधियों ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि बालकों को काम पर लगाने से रोकना बड़ी निर्दयतापूर्ण बात होगी क्योंकि यदि उन्हें काम करने की आज्ञा न दी गई तो वे भूखे मर जायेंगे। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि यह बालकों के लिये अच्छा ही था कि उन्हें काम पर लगाया जाता था और इस प्रकार उन्हें गन्दी व दूषित आदतों से दूर रखा जा सकता था।

१८२० और १९०० के बीच कारखाना अधिनियम

कारखाना विधान बनाने के लिये आन्दोलन जारी रहा और १८२०, १८२५ तथा १८३० के अधिनियमों से कानून की केवल विस्तृत धाराओं में संशोधन हुआ। अन्त में १८३१ के अधिनियम द्वारा इस अधिनियम को निरस्त कर दिया गया। १८३१ के अधिनियम द्वारा सूती कपड़ा कारखानों में काम करने वाले १८ वर्ष से कम आयु के श्रमिकों के कार्य के घंटे प्रतिदिन १२ और रविवार को ९ घंटे निर्धारित किये गये। २१ वर्ष से कम आयु के श्रमिकों के लिये रात्रि कार्य निषेध कर दिया गया। यह अधिनियम केवल सूती वस्त्र कारखानों पर ही लागू होता था और अधिक प्रभावशाली सिद्ध नहीं हुआ।

एक अन्य महत्वपूर्ण अधिनियम १८३३ का कारखाना अधिनियम था। पहला प्रभावात्मक अधिनियम था जिसमें इसके उपबन्धों को लागू करने के लिये निरीक्षकों की व्यवस्था की गई थी। ऐसे निरीक्षक सरकार द्वारा नियुक्त किये जाते थे और उन्हें वेतन भी सरकार द्वारा ही मिलता था। रेशमी वस्त्र मिलों को छोड़कर यह अधिनियम सभी कपड़ा मिलों पर लागू होता था। ९ वर्ष से कम की आयु के बालकों को रोजगार पर लगाना इस अधिनियम द्वारा निषेध कर दिया गया। १३ वर्ष से कम आयु के बालकों के अधिकतम कार्य घण्टे प्रतिदिन ९ एवं प्रति सप्ताह ४८ तथा १८ वर्ष से कम आयु के श्रमिकों के प्रतिदिन १२ एवं प्रति सप्ताह ६९ निर्धारित किये गये। १८ वर्ष से कम की आयु के श्रमिकों को रात्रि ८-३० बजे से प्रातः ५-३० तक काम पर लगाना निषेध था। बाल श्रमिकों को

दिन में कम से कम २ घण्टे स्कूल जाना जरूरी था। एक साल में दो पूरी और आठ आधी छुट्टियाँ उन्हें दिये जाने की व्यवस्था थी। अधिनियम में चार कारखाना निरीक्षकों की नियुक्ति की भी व्यवस्था थी। जिन क्षेत्रों में कारखाने स्थापित होते थे उसी क्षेत्र के निवासी निरीक्षक नहीं रखे जा सकते थे। कानून का उल्लंघन करने वाले मालिकों पर ये निरीक्षक जुर्माना कर सकते थे। १८३३ के अधिनियम मे जिन सिद्धान्तों को अपनाया गया था वे काफी समय तक कारखाना अधिनियमों का आधार रहे। यही नहीं, इनकी नकल भी दूसरे देशों ने की।

उसके बाद बच्चों, युवा पुरुषो तथा स्त्रियों के श्रम का नियमन करने के के लिये अनेक फैक्टरी अधिनियम पारित किये गये और इन अधिनियमों का अनेक उद्योगो मे विस्तार किया गया। १८४४, १८४५, १८४७, १८५०, १८६०, १८६४, १८६७, १८७० और १८७४ में अधिनियम बनाये गये जो अन्त मे १८७८ के फैक्टरी तथा कार्यशाला अधिनियम में संहित (codified) कर दिये गये। इस समय से लेकर १९१४ तक इंगलैण्ड मे श्रम विधान के दो महत्वपूर्ण पहलू सामने आये। प्रथम तो लाभजनक व्यवसायो में लगे श्रमिकों के लिये राज्य संरक्षण जारी रहा और दूसरे खतरनाक व्यवसायों मे श्रम दशाओं को विनियमित करने के लिये विशेष पग उठाये गये। १८८३ और १८८६ मे भी फैक्टरी अधिनियम पास किये गये। १८६१ में कारखाना व कार्यशाला नाम का एक महत्वपूर्ण अधिनियम पारित किया गया और इसमे सम्बन्धित विषय को पूर्णतया दोहराया गया। कारखानों मे कार्य करने के लिये बालकों की न्यूनतम आयु बढाकर ११ वर्ष कर दी गई। जल-मल निकास की व्यवस्था का निरीक्षण स्थानीय प्राधिकारियों के निरीक्षकों को स्थानान्तरित कर दिया गया। १८६५ मे बालकों के कार्य-घण्टे ३० प्रति सप्ताह तक सीमित कर दिये गये। १४ वर्ष से कम आयु वाले बालकों के लिये रात्रि-कार्य निषेध कर दिया गया। १८६६ में यह व्यवस्था की गई कि व्यवसायजनित बीमारियों की सूचना कारखाना निरीक्षकों को देनी होगी।

१६०१ का कारखाना और कार्यशाला अधिनियम

संहिताबद्ध करने का एक और प्रयत्न १६०१ मे कारखाना व कार्यशाला अधिनियम मे किया गया। यह काफी समय तक इंगलैण्ड मे कारखाना विधान का आधार रहा। श्रमिकों की आयु तथा शारीरिक योग्यता, कार्य के घण्टे, सफाई, दुर्घटना आदि से सुरक्षा आदि के विषय मे इस अधिनियम मे विस्तृत उपबन्ध थे। संस्थानो को दो भागों मे बाँट दिया गया—कारखाने व कार्यशालाये। कारखाने की परिभाषा के अन्तर्गत वह स्थान आते थे जहाँ उत्पादन प्रक्रिया में यान्त्रिक शक्ति का प्रयोग किया जाता था तथा कार्यशाला के अन्तर्गत वह स्थान आते थे जहाँ यान्त्रिक शक्ति का प्रयोग नहीं होता था। यह अधिनियम रेलों तथा २० फीट से अधिक गहरी खानो पर लागू नहीं होता था। इनके लिये अलग से अधिनियम बनाये गये थे। इस अधिनियम मे १२ वर्ष से कम आयु के बालकों का किसी भी

कारखाने व कार्यशाला मे नौकरी पर लगाना निषिद्ध कर दिया गया। १६ वर्ष से कम आयु के श्रमिको के लिये शारीरिक योग्यता का प्रमाण-पत्र देना अनिवार्य कर दिया गया। गैर-वस्त्र उद्योगो मे प्रतिदिन १० घण्टे काम लिया जाता था। श्रम-समय विस्तार के लिये भी उपबन्ध था परन्तु छुट्टियो के लिये कोई व्यवस्था नही थी। इन अधिनियमो के अन्तर्गत जो विनियम बनाये गये थे वह १२ से १४ वर्ष के बालको, १४ से १८ वर्ष के किशोरो तथा १८ वर्ष से अधिक की स्त्री श्रमिको पर भी लागू होते थे। परन्तु सफाई और सुरक्षा के उपबन्ध सभी श्रमिको पर लागू होते थे।

१९३७ का कारखाना अधिनियम

इसके पश्चात् १९३७ का कारखाना अधिनियम पारित हुआ। इसमे अब तक के सभी कानूनो का समायोजन कर दिया गया। स्त्री और युवक श्रमिको के कार्य के घण्टे प्रतिदिन ९ अथवा प्रति सप्ताह ४८ निर्धारित कर दिये गये। कुल कार्य-घण्टे, भोजन के समय को मिलाकर, प्रतिदिन ११ से अधिक नही हो सकते थे और इनको प्रात ७ बजे से साय ८ बजे के बीच मे ही नियत करना होता था। यह भी व्यवस्था की गई कि रविवार को पूरे दिन तथा शनिवार को १ बजे के पश्चात् कोई कार्य नही होगा, तथा आधा घण्टे का विश्राम या भोजन के लिये मध्यान्तर दिये बिना ४½ घण्टे से अधिक लगातार कार्य नही होना चाहिये। कार्य की अधिकता के समय समयोपरि की अनुमति तो थी परन्तु फिर भी वास्तविक कार्य घण्टे प्रतिदिन १० से अधिक नही हो सकते थे। १६ वर्ष से कम आयु के श्रमिको को साय ६ बजे तक अपना कार्य बन्द कर देना होता था और जब तक गृह सचिव ४८ कार्य-घण्टो की विशेष अनुमति न दे दे, सामान्यत उनसे प्रति सप्ताह ४४ घण्टो से अधिक कार्य नही लिया जा सकता था। समयोपरि या पारी के कार्य के लिये भी उन्हे नही लगाया जा सकता था। दुकानो पर कार्य करने वाले किशोरो के लिये कार्य के सामान्य घण्टे १९३४ के दुकान अधिनियम के द्वारा प्रति सप्ताह ४८ निश्चित किये गये थे तथा इनके लिये समयोपरि को भी नियन्त्रित कर दिया गया था।

१९४८ का कारखाना अधिनियम (Factories Act of 1948)

यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने कार्य घण्टो से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के अभिसमय को स्वीकार नही किया था तथापि १९३९–४५ के युद्ध से पूर्व ब्रिटिश उद्योगो मे सामान्यत प्रति सप्ताह ४४ घण्ट कार्य किया जाता था। १९४८ के कारखाना अधिनियम द्वारा १९३७ के कारखाना अधिनियम मे कुछ परिवर्तन किये गये तथा उसके उपबन्धो को अधिक दृढ बना दिया गया। यह १९४८ का अधिनियम इस समय लागू है। १९५९ मे इसमे सशोधन भी हुआ। इसके उपबन्ध अग्राकित है—

इस १९४८ के कारखाना अधिनियम में एक शताब्दी से अधिक से चले आ रहे कारखाना विधानो का समायोजन और संशोधन किया गया है, विशेषतया सामान्य कल्याण से सम्बन्धित इसमे अनेक नये उपबन्ध भी हैं। यह अधिनियम ७० लाख से अधिक श्रमिको को कार्य पर लगाने वाले २½ लाख औद्योगिक संस्थानों पर लागू होता है, जिनमे कारखाने, बन्दरगाह तथा निर्माण कार्य आदि सभी आ जाते हैं। अधिनियम के प्रशासन का अधिकार श्रम मन्त्रालय के कारखाना विभाग तथा राष्ट्रीय सेवा कार्यांग को दिया गया है। यह देखने का उत्तरदायित्व कि अधिनियम के उपबन्धो को ठीक प्रकार से लागू किया जा रहा है तथा सुरक्षा, स्वास्थ्य व कल्याण के ऊँचे आदर्शों को कायम रक्खा जा रहा है, कारखाना निरीक्षकों का है। मुख्य रूप से अधिनियम में जो सुरक्षा के हेतु विनियम बनाए गये है वह निम्नलिखित विषयो से सम्बन्धित हैं। मशीनों की उचित प्रकार से देखभाल और उनके चारों ओर रोक, बोझ या सामान उठाने वाले यन्त्र, भाप के बॉयलर्स तथा दबाव आदि से सम्बन्धित यन्त्र, काम के स्थान पर सुरक्षापूर्वक पहुँचने की व्यवस्था, विस्फोट होने तथा आग लगने पर रोकथाम और नियन्त्रण आदि। यदि किसी विशेष प्रक्रिया या मशीन से सम्बन्धित किसी विशेष खतरे का भय हो तो उनके लिये इन नियमो के अनुपूरण या सशोधन के लिये विनियम सहितायें भी बनाई जा सकती हैं। सुरक्षा पर्यवेक्षण के लिये भी उपबन्ध बनाए गए हैं। साधारणतया तो फर्मे स्वय ही इस प्रकार की व्यवस्था कर लेती हैं और सुरक्षा अधिकारी अथवा सुरक्षा समिति नियुक्ति कर देती हैं। अधिनियम में इस बात की व्यवस्था की गई है कि सभी प्रकार की दुर्घटनाओं की सूचना, चाहे वह गम्भीर हों अथवा न हों परन्तु जिनमें श्रमिक कम से कम तीन दिन कार्य करने मे असमर्थ हो जाय, कारखाना निरीक्षकों को देनी होगी जो मालिक और उसके सुरक्षा सगठन के साथ रोकथाम के उपाय भी कर सकता है।

स्वच्छता, प्रति श्रमिक घन स्थान, तापक्रम, सवातन, धूल और धुयें को दूर करने की व्यवस्था, प्रकाश, धोने की सुविधायें, कपड़े, लॉकर्स, प्राथमिक उपचार व पीने के पानी की व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में भी अधिनियम में व्यवस्था की गई है। १६ से १८ वर्ष की आयु के किशोरों तथा स्त्रियों के कार्य-घण्टे ४८ नियमित किये गए है। १६ वर्ष से कम आयु वालों के लिये कार्य-घण्टे प्रति सप्ताह ४४ निश्चित किये गए है। भोजन मध्यान्तरों, रात्रि मध्यान्तरो व एक नियमित साप्ताहिक विश्राम दिन की भी व्यवस्था करने के उपबन्ध है। स्त्रियो और किशोरो के लिये समयोपरि कार्य को सीमित कर दिया गया है तथा १६ वर्ष से कम आयु के बालको के लिये समयोपरि कार्य निषिद्ध है। इन उपबन्धो से तथा बालकों व स्त्रियो के रात्रि कार्य पर निषेध लगाने के उपबन्ध से छूट देने की भी व्यवस्था की गई है क्योंकि कार्य-घण्टो को कुछ अन्तर के साथ लागू करने की आवश्यकता अनुभव की गई थी ताकि बिजली की शक्ति से एक ही समय कार्य लेने के स्थान पर इसके भार का विस्तार हो सके। अधिनियम में यह व्यवस्था भी की गई है कि

१६ वर्ष से कम आयु के सभी श्रमिकों की कारखानों के मुख्य निरीक्षक द्वारा नियुक्त सर्जनों द्वारा डाक्टरी परीक्षा की जाये और यह देखा जाये कि वह कार्य करने के योग्य है अथवा नहीं। कुछ विशेष उद्योगों व प्रक्रियाओं के लिए कुछ विशेष विनियम बनाए गए हैं। इनका उद्देश्य यह है कि श्रमिकों का हानिकारक पदार्थों तथा अन्य विशेष प्रकार के खतरों से बचाव किया जाये तथा उनकी सर्जनों द्वारा समय समय पर डाक्टरी परीक्षा भी की जाये ताकि व्यवसायजनित बीमारियों की रोकथाम हो सके और उन पर काबू पाया जा सके। कारखानों के कुछ विशेष वर्गों के लिये या किसी विशेष कारखाने के लिए कुछ विशेष मामलों में डाक्टरी पर्यवेक्षण के हेतु विनियम बनाने की व्यवस्था भी की गई है। सुरक्षा पर्यवेक्षण की भाँतिऐसी व्यवस्था को ऐच्छिक रूप से अपनाने के लिए मालिकों से भी कहा गया है।

१९५९ का कारखाना अधिनियम अब सुरक्षा स्वास्थ्य और कल्याण कार्यों की सूचना एकत्रित करके तथा इनसे सम्बन्धित विषयों का प्रचार करके इन्हे उन्नत करने का तथा सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर अनुसन्धान करने का उत्तरदायित्व श्रम व राष्ट्रीय सेवा के मन्त्री पर डालता है। ये कार्य इस मन्त्रालय द्वारा १९५९ के अधिनियम से पूर्व भी किये जा रहे थ। अब इस अधिनियम ने इन्हे वैधानिक रूप दे दिया है। इस सम्बन्ध मे सबसे अन्तिम अधिनियम १९६१ का फैक्टरी अधिनियम है जिसमे पहले सभी अधिनियमों का एकीकरण कर दिया गया है।

प्रतिरक्षा विनियमों के अन्तर्गत जारी किये गये १९४३ के कारखाना (कैन्टीन) आदेश के अतिरिक्त कारखानों के मुख्य निरीक्षक को भी यह अधिकार दिया गया है कि उन सस्थानों में, जहाँ २५० या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं, वह ऐसी कैन्टीनों की स्थापना का आदेश दे सकें जिनमे गर्म-गर्म भोजन खरीदा जा सके।

खानों के सम्बन्ध मे विधान

ब्रिटन मे खानों के लिए काफी समय से 'खान विनियम अधिनियम' (Mines Regulation Acts) चलते आ रहे हैं। उदाहरणत १८४२ म स्त्रियों व १० वर्ष से कम आयु के बालकों को काम पर लगाना निषिद्ध कर दिया गया था। खानों मे कार्य-घण्टों को नियमित करने के लिए १८६० १८७० १८८१ तथा १८८६ में विनियम बनाये गये। १८५० म कारखानों क निरीक्षण की भी व्यवस्था की गयी थी। १९११ में कोयला खानों से सम्बन्धित सभी कानूनों को कोयला खान विनियम अधिनियम' में सहिता बद्ध कर दिया गया। १९५४ का कोयला और पत्थर खानों का अधिनियम (Mines and Quarries Act of 1954) सबसे अन्तिम विधान है। यह अधिनियम एक व्यापक वैधानिक सुरक्षा सहिता का आधार है। इस सहिता मे खान के भीतर काम करन वाल श्रमिकों के विषय मे कई नियम हैं। उदाहरणत, सवातन, खान के भीतरी भाग की उचित प्रकार से

सुरक्षा, परिवहन व गलियाँ, विकल्प द्वार, विस्फोट का संकट, सुरक्षा दल एवं प्राथमिक उपचार आदि। इसके अतिरिक्त प्रबन्धक, सर्वेक्षक और निरीक्षकों की योग्यता की परीक्षा और खानों में कार्य-रीति आदि के सम्बन्ध में भी उपबन्ध हैं। १८४२ से ही स्त्रियों व बालकों को खानों के भीतर रोजगार पर लगाना निषिद्ध है। बालकों की न्यूनतम आयु को भी समय-समय पर बढ़ाया गया है। खानों के भीतर श्रमिकों के कार्य-घण्टे १९१९ में एक अधिनियम द्वारा प्रति पारी ७ और १९४० में कोयला खान अधिनियम द्वारा प्रति पारी ७½ निर्धारित किये गये थे। १९४६ में कोयला राष्ट्रीयकरण अधिनियम द्वारा राष्ट्रीय कोयला बोर्ड की स्थापना की गई और इसे श्रमिकों की सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण को उन्नत करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया। इसने १ जनवरी १९४७ से इस उद्योग के निर्देशन के कार्य को सम्भाल लिया है। कोयला व पत्थर की खान अधिनियमों के प्रशासन तथा राष्ट्रीय कोयला बोर्ड के ऊंचे स्तरों को बनाये रखने में सहायता देने का उत्तरदायित्व ईंधन तथा शक्ति मन्त्रालय के कोयला व पत्थर की खानों के विभाग पर है। कार्यांग उत्तरदायित्व कोयला व पत्थर की खानों के निरीक्षक दल पर है। यह दल विभाग का ही एक अंग होता है।

जन स्वास्थ्य अधिनियम (Public Health Acts)

इंगलैण्ड में जन स्वास्थ्य अधिनियम भी बनाए गए हैं। इनके अन्तर्गत स्थानीय प्राधिकारियों को मकानों तथा कार्य करने के स्थानों में सफाई की व्यवस्था का विनियमन करने का अधिकार दिया गया है और गन्दे, हानिकारक, बे-हवादार अथवा अति भीड़ वाले कार्य के स्थानों को 'परेशान करने वाले स्थान' (Nuisance) घोषित करके इनकी बुराइयों को दूर करने के नियमों को लागू करने का अधिकार भी दे दिया गया है।

दुकान अधिनियम (Shops Acts)

इंगलैण्ड में दुकान अधिनियमों को १९५० के दुकान अधिनियम में समायोजित कर दिया गया है। इसके अन्तर्गत स्थानीय प्राधिकारियों को अधिकार है कि वह यह देखें कि उनके क्षेत्र में आने वाली सभी दुकानों में उचित सवातन, ताप-क्रम, प्रकाश, सफाई और धोने की सुविधाओं तथा दुकान बन्द करने के घण्टों के उपबन्धों का उचित प्रकार से पालन किया जाता है। जब तक विशेष छूट न प्रदान की गई हो सभी दुकानों को रविवार के दिन तथा सप्ताह में एक दिन १ बजे एवं शेष दिन ८ बजे सायं बन्द करने का आदेश है, परन्तु एक दिन दुकानें ६ बजे बन्द की जा सकती है। १६ वर्ष से कम आयु के श्रमिकों के लिए कार्य के घण्टे प्रति सप्ताह ४४ तथा १६ वर्ष से १८ वर्ष की आयु के श्रमिकों के लिए प्रति सप्ताह ४८ निर्धारित किये गये हैं।

बालकों के सम्बन्ध में विधान

१९२० एवं १९२८ में बालक एवं किशोर अधिनियमों का १९३३ एवं १९३८ के अधिनियमों तथा १९४४ से १९४८ तक के शिक्षा अधिनियमों द्वारा विवरण (Modified) किया गया। अधिनियम के अन्तर्गत १३ वर्ष से कम आयु के बालकों को काम पर लगाना निषिद्ध है। १५ वर्ष से कम आयु के बालकों को स्कूल के दिनों में स्कूल के समय के अतिरिक्त केवल दो घण्टे के लिए काम पर लगाया जा सकता है, और वह भी प्रातः ६ बजे से रात्रि के ८ बजे के समय के बीच में। परन्तु स्थानीय अधिकारी बालकों के रोजगार व कार्य के घण्टों और दशाओं को नियमित कर सकते हैं। ऐसे बालकों को जो कारखाना, खान अथवा दुकान अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आते १९३८ के एक अन्य अधिनियम द्वारा (Young Persons Employment Act, 1938) सुरक्षा प्रदान की गई है और इस अधिनियम के अन्तर्गत उनके कार्य के घण्टे निर्धारित कर दिये गये हैं—(१८ वर्ष से कम आयु के बालकों के लिए प्रति सप्ताह ४८ तथा १६ वर्ष से कम आयु के बालकों के लिये प्रति सप्ताह ४४)।

मजदूरी विनियमन अधिनियम (Wage Regulation Acts)

इस सम्बन्ध में पहला अधिनियम १९०९ का व्यापार बोर्ड अधिनियम (Trade Boards Act) था। इसके पश्चात १९१२ का कोयला खान (न्यूनतम मजदूरी) अधिनियम पारित किया गया। १९०९ के अधिनियम के अन्तर्गत व्यापार बोर्ड को (१९१७ के पश्चात् से श्रम मन्त्रालय को) यह अधिकार था कि ऐसे किसी भी व्यापार के लिये जिसमें अन्य व्यवसायों की अपेक्षा मजदूरी बहुत ही कम है न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिए एक बोर्ड की नियुक्ति कर दे। आरम्भ में तो यह अधिनियम ऐसे व्यवसायों में लागू होता था जो कि शोषित समझे जाते थे, परन्तु १९१४ तक यह अधिनियम लगभग ८ व्यवसायों पर लागू हो गया था जिनमें लगभग ५ लाख श्रमिक काम करते थे। १९१८ के संशोधित अधिनियम में श्रम मन्त्रालय को यह अधिकार दे दिया गया कि वह ऐसे व्यवसायों के लिये जिनमें मजदूरी को नियमित करने की कोई व्यवस्था नहीं थी व्यापार बोर्डों की नियुक्ति कर सके। इस अधिनियम में मजदूरी को नियमित करने की किसी उचित व्यवस्था के अभाव की ओर ध्यान आकर्षित किया गया था।

इसके पश्चात् इंगलैण्ड में मजदूरी नियमित करने की वैधानिक व्यवस्था का विकास हुआ। इस समय मजदूरी कौंसिल, 'कैटरिंग मजदूरी बोर्ड' और 'कृषि मजदूरी बोर्ड' पाये जाते हैं जो ऐसे उद्योगों के लिये हैं जिनमें मालिकों व श्रमिकों के संगठन के अभाव के कारण रोजगार की शर्तों और दशाओं पर प्रभावपूर्ण समझौता करने के लिए एच्छिक रूप से बातचीत करने की कोई व्यवस्था नहीं है, और यदि है भी तो इतनी पर्याप्त नहीं है कि एच्छिक रूप से समझौतों का पालन तमाम उद्योगों में करा सके। मजदूरी कौंसिल तथा मजदूरी बोर्डों में उद्योग से

सम्बन्धित श्रमिकों व मालिकों के प्रतिनिधि होते हैं। इसमें कुछ स्वतन्त्र सदस्य भी होते हैं। इनको यह अधिकार है कि वह न्यूनतम दशाओं और शर्तों के लिये सम्बन्धित मन्त्री को, जो सामान्यत. श्रम मन्त्री होता है, प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकें। इन प्रस्तावों को बाद में वैधानिक रूप दे दिया जाता है। लगभग २० से ३० लाख श्रमिक अपनी रोजगार की शर्तों को ऐसी वैधानिक व्यवस्था द्वारा निर्धारित कराने मे सफल हुये हैं। दैनिक आधार पर मजदूरी पाने वाले श्रमिकों के लिये उचित दर की व्यवस्था की गई है। समयोपरि मजदूरी को भी निश्चित कर दिया गया है। १९५४ में एक मजदूरी कौंसिल अधिनियम पारित किया गया जिसके अन्तर्गत ऐसे सभी बोर्डों तथा कौंसिलों को वैधानिक मान्यता प्रदान कर दी गई है तथा श्रम मन्त्री को यह अधिकार दिया गया है कि वह इनके निर्णयों को कानूनी रूप से लागू कर सके।

कृषि के लिये भी न्यूनतम मजदूरी विधान पारित किया गया है। १९१७ के अनाज उत्पादन अधिनियम (Corn Production Act) के अन्तर्गत कृषि श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी २५ शिलिंग प्रति सप्ताह निर्धारित की गई थी। परन्तु इस अधिनियम को १९२१ में निरस्त कर दिया गया और मजदूरी बोर्डों के स्थान पर ऐच्छिक सुलह समितियों की स्थापना की गई। ये समितियाँ प्रत्येक क्षेत्र के लिए मजदूरी की न्यूनतम दरें निर्धारित करती थी और यदि इन दरों से कृषि मन्त्री सहमत हो जाता था तब इनको मानना अनिवार्य हो जाता था। परन्तु इन समितियों को सफलता प्राप्त नही हुई। अगस्त १९२४ मे कृषि मजदूरी अधिनियम पारित किया गया जो अभी तक चला आ रहा है। १९४० मे इसमें कृषि मजदूरी (विनियमन) अधिनियम द्वारा सशोधन किया गया था। अधिनियम के अन्तर्गत कृषि एव मत्स्य (Fisheries) मन्त्री को प्रत्येक प्रदेश मे कृषि मजदूरी समितियों की स्थापना करने का आदेश दिया गया। ये समितियाँ कृषि श्रमिको के कार्य के घण्टे तथा मजदूरी की न्यूनतम दरें निर्धारित करती है। यदि इन दरो को केन्द्रीय कृषि मजदूरी बोर्ड की स्वीकृति प्राप्त हो जाती है तो इन्हे वैधानिक रूप प्रदान कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त इगलैण्ड मे न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने वाले अनेक और अधिनियम हैं। उदाहरण के लिए, १९१२ का कोयला खान न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, १९३८ का सडक परिवहन मजदूरी अधिनियम (Road Haulage Wages Act), १९४३ का कैटेरिंग मजदूरी अधिनियम (Catering Wages Act) आदि। १९३८ के सवेतन छुट्टी अधिनियम के अन्तर्गत सब वैधानिक मजदूरी निर्धारित करने वाली सस्थायें इस बात की भी सिफारिश कर सकती है कि ६ नियमित सार्वजनिक छुट्टियो के अतिरिक्त वर्ष मे सात दिन की सवेतन छुट्टियाँ भी प्रदान की जायें।

अन्य श्रम विधान

जहाँ तक इगलैण्ड मे श्रमिक सघो के विधान का सम्बन्ध है इसके विषय मे अध्याय ६ में विवेचन किया जा चुका है। औद्योगिक सम्बन्धो के विषय मे विधान

का उल्लेख अध्याय ८ मे, सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के सम्बन्ध म अध्याय १३ मे तथा आवास के सम्बन्ध मे अध्याय १० मे उल्लेख किया जा चुका है। दो अधिनियमों द्वारा कृषि श्रमिकों को भी सरक्षण दिया गया है। कृषि मे रसायन के उपयोग स होने वाली हानियों से सुरक्षा के लिए कृषि (विषैले तत्व) अधिनियम १९५२ और सामान सुरक्षा के लिए कृषि (सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण उपबन्ध) अधिनियम १९५६ पास किया गया।

अभी हाल मे बनाये गये दो कानूनों से कर्मचारियों के वैधानिक अधिकारो मे वृद्धि हुई है। रोजगार ठेका अधिनियम १९६३ के अन्तर्गत, मालिको के लिए अब यह आवश्यक हो गया है कि वे रोजगार की शर्तों का लिखित विवरण कर्मचारियों को दें और कर्मचारियों को यह अधिकार प्राप्त हो गया है कि जब उन्हें नौकरी से हटाया जायेगा तो उन्हें एक न्यूनतम अवधि का नोटिस अवश्य दिया जायगा। अतिरिक्त अदायगी अधिनियम १९६५ के अन्तर्गत, एस कर्मचारी उस स्थिति म एक मुश्त अदायगियों के अधिकारी होते हैं, जिन्होने कम से कम दो वर्ष का सेवा-काल पूरा कर लिया हो, जबकि उनकी नौकरी समाप्त हो रही हो और मालिक उन्हे अन्य कोई वैकल्पिक काम न दे सकते हो।

ऐच्छिक समझौते तथा प्रयत्न
(Voluntary Agreements and Efforts)

यहाँ यह बात उल्लखनीय है कि वैधानिक उपबन्धों के अतिरिक्त श्रमिको की सुरक्षा, कल्याण और कार्य घण्टो के सम्बन्ध मे एच्छिक समझौता और एच्छिक सगठनो द्वारा भी अनेक पग उठाये गये हैं। इनके द्वारा स्थापित किये गये स्तर कहीं कहीं तो कानून द्वारा निर्धारित स्तरो से भी ऊँचे हैं। रोजगार की शर्ते व दशायें अधिनियम १९५९ म यह व्यवस्था की गई है कि मालिको पर इस बात का दबाव डाला जा सके कि वे अपने उद्योग मे सामूहिक समझौतो द्वारा निर्धारित शर्तों का पालन करें। एच्छिक समझौता द्वारा निर्धारित कार्य के घण्टे औसतन ४० स ४२ तक प्रति सप्ताह हैं और पाँच या साढे पाँच दिन का सप्ताह है। अधिकांश श्रमिकों को सार्वजनिक छुट्टियों के अतिरिक्त दो सप्ताह की सवेतन छुट्टी प्रदान की जाती है। शारीरिक परिश्रम करने वाले श्रमिकों को भी ६ वैधानिक सार्वजनिक छुट्टियों के अतिरिक्त एक सप्ताह की वेतन सहित छुट्टी प्रदान की जाती है। जहाँ तक सुरक्षा का सम्बन्ध है, कारखाना, खान तथा पत्थर की खानों के निरीक्षकों द्वारा दुर्घटना निरोध आन्दोलन का जोरदार समर्थन किया जाता है, जो एक एच्छिक शिक्षाप्रद अभियान है। सुरक्षा समस्याओं के सम्बन्ध मे अन्वेषण किय जाते हैं। सुरक्षा अधिकारियों एव दुर्घटना निरोध समितियों की भी स्थापना की गई है। जहाँ तक स्वास्थ्य व कल्याण का सम्बन्ध है, अधिकतर कारखाने पूर्ण समय के लिये या आंशिक समय के लिए डाक्टर एव औद्योगिक नर्स तथा गर्म भोजन के लिए कैन्टीन आदि की व्यवस्था करते है। क्लब तथा खेल के स्थलो का

पूर्ण अथवा आंशिक व्यय मालिकों द्वारा दिया जाता है। मालिक राज्य बीमा योजना के अनुपूरक के रूप में अवकाश प्राप्ति तथा बीमारी बीमों की व्यवस्था करते हैं। प्रशिक्षण और शिक्षा की सुविधायें भी कारखानों द्वारा प्रदान की जाती हैं। कुछ कारखानों में स्वयं नर्सिंग होम व पुनर्वास केन्द्र भी है। कुछ कारखाने तो श्रमिकों के बच्चों के लिए छात्रवृत्ति भी प्रदान करते हैं तथा श्रमिकों के लिए स्कूलों अथवा कॉलिजों की व्यवस्था भी करते हैं। सभी कोयला खानों में खानों के ऊपर स्नान-गृहों की व्यवस्था है। कल्याण और सुरक्षा के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर अधिक जोर दिया जाता है।

उपसंहार

इगलैण्ड में यद्यपि श्रम विधान से यह प्रकट हो जाता है कि उद्योग में राज्य ने किस सीमा तक हस्तक्षेप किया है। परन्तु श्रमिकों की कार्य की दशायें, सुरक्षा और कल्याण के लिए हमें विधान के उपबन्धों पर ही दृष्टिपात नहीं करना चाहिए वरन् श्रमिकों के कल्याण व स्वास्थ्य के हेतु ऐच्छिक समझौतों और ऐच्छिक उपायों की ओर भी ध्यान देना चाहिए। भारत ग्रेट ब्रिटेन के अनुभवों से बहुत लाभ उठा सकता है। परन्तु जब तक श्रमिकों के संगठन शक्तिशाली नहीं हो जाते और मालिक ऐच्छिक रूप से श्रमिकों के लिए अच्छी कार्य की दशाओं और कल्याण साधनों में उन्नति नहीं करते, हमें श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए राज्य पर निर्भर रहना पड़ेगा।

२२
बाल तथा स्त्री श्रमिक
CHILD AND WOMAN LABOUR

बालको को रोजगार पर लगाने की समस्या

आधुनिक औद्योगीकरण के आगमन के साथ मालिको मे यह प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई कि कम लागत लगाकर अधिक लाभ प्राप्त किया जाये। अत प्रत्येक देश म बालको का अधिक सख्या म कारखानो मे राजगार पर लगाया गया। इन बालको को बहुत कम मजदूरी दी जाती थी और उनस अत्यधिक समय तक कार्य कराया जाता था। य बालक अत्यन्त कष्टप्रद परिस्थितियो म कार्य करते थ। पिछल अध्याय मे इगलैण्ड म औद्योगिक क्रान्ति क प्रारम्भ म बालको की दशा का वणन किया जा चुका ह। भारत म भी औद्योगीकरण के साथ बालको को अधिक सख्या म कारखानो म राजगार पर लगाया गया। कुछ उद्योगो म इनको अब भी रोजगार पर लगाया जाता ह यद्यपि इनकी आयु काय घण्ट आदि के लिए कुछ विशष कानूनी उपबन्ध बना दिय गय है। श्रम अनुसधान समिति के शब्दो मे कुछ उद्योगो म बालका को अवैध रूप स रोजगार मे लगाना भारत की श्रम दशाओ पर एक काला धब्बा है। *

कृषि व्यापार उद्योग खान तथा यातायात म काम करन वाल बालका की सख्या के निश्चित और विस्तृत आकडे प्राप्त नही ह। किन्तु यह साधारण ज्ञान का विषय है कि दश क बालका की एक बडी सख्या जाविकोपाजन मे व्यस्त ह, जबकि उन्ह सामान्य एव व्यावसायिक शिक्षा मिलनी चाहिए जो उनके भावी जीवन क लिय अत्यधिक आवश्यक ह। भारत म मुख्यत कृषि व्यापार, अनियन्त्रित कायशालाओ बागान और कारखानो म भी बालका का राजगार पर लगाया जाता है।

अभी हाल (जून १९६५) म रजिस्ट्रार जनरल की एक रिपोट क अनुसार भारत म १½ करोड बाल-श्रमिक हैं। १९६१ की जनगणना के अनुसार लगभग १८ ८६ करोड काय करन वाला का सख्या म स ७ ५ प्रतिशत १५ साल स कम आयु के बालक थ। रिपोट क अनुसार ग्रामीण क्षत्रा म बाल श्रमिको की सख्या अधिक है। खती म और कृषि श्रमिको के रूप म लगभग १ करोड ५½ लाख

* "One black spot of labour conditions in India is the illegal employment of children in certain industries"

बालक-बालिकायें कार्य करते है। नगरीय क्षेत्रों मे बच्चे अधिकतर घरेलू और निजी सेवाओं मे कार्य पर लगाये जाते है।

बालकों को रोजगार पर लगाने के कारण

बालकों को रोजगार पर लगाने के मुख्य कारणों मे से एक कारण तो यह है कि वयस्क श्रमिकों की आय बहुत कम है। इसके अतिरिक्त भारत मे राज्य द्वारा संचालित किसी पारिवारिक भत्ते की ऐसी योजना का अभाव है जिसके द्वारा निर्धन माता-पिता अपने बालको को पर्याप्त एव संतुलित आहार और रहने योग्य उचित परिस्थितियाँ दे सकें। किसी ऐसी सामान्य शिक्षा योजना का भी अभाव है जिसमे निर्धारित न्यूनतम आयु वाले बालकों को स्कूलों में शिक्षा पाना अनिवार्य हो। सुरक्षात्मक श्रम विधान का भी देश में धीमा विकास हुआ और ऐसा विधान कृषि और छोटे पैमाने के उद्योग जैसे अनेक महत्वपूर्ण रोजगारों पर अब तक लागू नही होता। बालको की सुरक्षा के लिये जो वर्तमान कानून है उनका भी अपवंचन होता है क्योंकि राज्य की निरीक्षण व्यवस्था पर्याप्त नही है। कारखाना प्रणाली के आ जाने से बालको को कार्य पर लगाना अधिक सम्भव हो गया है क्योंकि मशीनों की देखभाल में अधिक कुशलता या शक्ति की आवश्यकता नहीं होती। बालको को कार्य देना केवल सस्ता ही नही पडता, वरन् मालिक यह भी समझते है कि बाल श्रमिको से कोई झगडा, हडताल, आदि की सम्भावना नहीं होगी। ये समस्त परिस्थितियाँ इंगित करती हैं कि शिक्षालयों को न जाने वाले बालको की अधिकाश सख्या अपने माता-पिता की अल्प आय की कमी-पूर्ति हेतु कार्य करने के लिये भेजी जाती है।

बागान मे बाल श्रमिक

बागान के क्षेत्रो मे बालको की अधिक सख्या मूलत चाय एव कॉफी की उपज मे लगी है। बागान मे बालक ६ या ७ वर्ष की आयु से ही कार्य करना आरम्भ कर देते है। श्रम अनुसन्धान समिति के अनुसार समस्त श्रमिको मे से १५ वर्ष की आयु से कम के बालको की प्रतिशत सख्या इस प्रकार थी बगाल के 'द्वारस' नामक क्षेत्र मे २५.७%, दार्जिलिंग में २१%, असम की तराई मे १४.५%, सुरमा घाटी मे १६%, दक्षिणी भारत के चाय एव कॉफी के बागान मे ११%, और रबर के बगीचो मे ४.१%। बागान मे लगे बालको के विस्तृत आंकड़े केवल असम के चाय बागान से प्राप्त है। चाय क्षेत्र प्रवासी श्रमिक नियन्त्रक की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार १९३८-३९ में रजिस्टर मे लिखित बालको की सख्या इस प्रकार थी : बसे हुये बाल श्रमिक ८१,६९८ और फालतू बाल श्रमिक ९,९८७। १९४४-४५ मे बसे हुये बाल श्रमिको की सख्या ८६,६३५ थी और फालतू बाल श्रमिको की सख्या ६,०२५ थी। १९५०-५१ मे बसे हुए बाल श्रमिक ७३,७७६ और फालतू बाल श्रमिक ६,१६८ थे। १९५३ मे चाय के बागान मे रोजगार पर लगे बालकों की संख्या १३६,२६४ थी; अर्थात् श्रमिकों की दैनिक औसत संख्या में से १३.६%

बालक थे। १६५४ मे यह प्रतिशत घटकर १० रह गई थी। अन्य बागान के विषय मे आंकडे प्राप्त नही है, किन्तु श्री पी० एस० नरसिंहमन के मतानुसार अन्य बागान मे बालको की कुल सख्या ६५,००० हो सकती है।* अत बागान मे कार्य करने वाले बालको की कुल सख्या लगभग २ लाख से अधिक अनुमानित की जा सकती है। १६४८ म १२ वर्ष की आयु से कम के बालक बागान मे रोजगार पर नही लगाए जा सकते तथा १६५१ के बागान श्रम अधिनियम ने बालको की आयु १२ एव किशोरो की आयु १५ से १८ वर्ष तक निर्धारित कर दी है।

कारखानो मे बाल श्रमिक

केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय के ब्यूरो द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण की रिपोर्ट ने, जो १६५४ मे प्रकाशित हुई थी, विभिन्न उद्योगो मे बालको के रोजगार की दशाओ पर काफी प्रकाश डाला है। कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत प्राप्त विवरण से ज्ञात होता है कि कारखाना उद्योगो मे लगे बालको की सख्या धीरे-धीरे कम होती जा रही है। इनके सम्बन्ध मे आकडे निम्न प्रकार हैं—

वर्ष	रोजगार मे लगे बालको की सख्या	कुल श्रमिक सख्या मे से बालको का प्रतिशत
१८६२	१८,८८८	५ ६
१६२३	७४,६२०	५ ३
१६३३	१६,०६१	१ ४
१६४३	१२,४८४	० ५
१६४८	११ ४४४	० ४८
१६५०	७,७६४	० ३१
१६५१	६,८५३	० २७
१६५२	६,१५६	० २५
१६५३	५,०५६	० २०
१६५४	४ ६६५	० १८
१६५५	४ ६७५	० १६
१६५६	४ ३१०	० १५
१६६०	३,२२०	० १०

परन्तु इन आंकडो से वास्तविक स्थिति का पता नही चलता। बहुत से स्थानो पर बालको को यह सिखा दिया जाता है कि वे अपनी आयु १८ वर्ष बता दें। अधिकतर यह भी देखा गया है कि कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत जो आयु के प्रमाण-पत्र लिये जाते है वह भी ठीक नही होते। श्रम ब्यूरो की रिपोर्ट के शब्दो मे, 'इसमे सन्देह है कि कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत प्राप्त विवरण से बाल श्रमिको

* A N Agrawal *Indian Labour Problems* Page 142

के विषय में जो आंकड़े मिलते हैं उनसे वास्तविक स्थिति का पता चलता है क्योंकि कार्य-क्षेत्रों की जाँच में लगे हुये अधिकारी तथा कारखाना निरीक्षकों का प्रायः यह अनुभव है कि जैसे ही वे फैक्टरियों में पहुँचते हैं वैसे ही बालकों की एक बड़ी संख्या कारखानों से भाग जाती है। ये प्रायः रोजगार के लिये निर्धारित न्यूनतम आयु से कम आयु के बालक होते हैं।" श्रम अनुसंधान समिति ने भी यह बताया था कि कई उद्योगों में बालकों को रोजगार पर लगाने पर प्रतिबन्ध की अवहेलना की जाती है और प्रत्येक स्थान पर १२ वर्ष से कम आयु के बालक रोजगार में लगे हुए पाए जाते हैं। १९५३ में दक्षिण भारत के काजू उद्योग में श्रम दशाओं की एक जाँच की रिपोर्ट में इस सम्बन्ध में कुछ शब्द बहुत महत्वपूर्ण हैं तथा दूसरे उद्योगों पर भी लागू हो सकते हैं। रिपोर्ट में कहा गया है : "प्रबन्धकों के पास ऐसे समस्त बालकों की आयु का प्रमाण-पत्र मौजूद होता है जो उनके द्वारा कार्य पर लगाये जाते हैं। परन्तु ये प्रमाण-पत्र किसी को धोखा नहीं दे सकते। अनेक उदाहरणों में ऐसे बालकों को, जो कठिनाई से ८ या १० वर्ष के हैं, इस प्रकार का प्रमाण-पत्र दे दिया जाता है कि उन्होंने १५ वर्ष की आयु पूरी कर ली है। वास्तविक स्थानों पर गुप्त खोजों से ज्ञात हुआ है कि आयु के प्रमाण-पत्र प्रत्येक बालक पर २ या ३ रु० देकर प्राप्त किये जा सकते हैं।"

कारखानों में रोजगार पर लगे श्रमिकों की औसत दैनिक संख्या

राज्य	रोजगार में लगे कुल श्रमिक	वयस्क		किशोर	बालक
		पुरुष	स्त्री		
आन्ध्र	१,१३,४९९	६४,७५६	४८,२००	२९८	२४१
असम	६८,५५०	५७,६६६	८,३५५	१,८१५	७१४
बिहार	१,६४,१०३	१,५२,३०६	१०,०४२	१,०८७	६६८
बम्बई	८,५८,२८५	७,७६,८८२	७९,३१२	१,९४७	१४४
मध्य प्रदेश	१,३०,५७६	१,००,०३५	३०,००५	४९१	४५
मद्रास	३,२७,९२६	२,५८,५२०	६२,३२२	४,४०८	२,६७६
उड़ीसा	२०,३११	१७,१४२	२,७५२	४११	१४
पंजाब	६३,३८९	६०,२०७	२,७३८	२६१	१८३
उत्तर प्रदेश	२,४५,२७९	२,४२,११२	२,५६१	५३१	७५
प० बंगाल	६,१६,७३९	५,७३,४५४	४१,४५५	१,६११	१६९
अजमेर	१४,६०९	१३,७९७	८०५	७	—
कुर्ग	४३९	१५८	२८१	—	—
देहली	४७,२५२	४६,३६४	७४१	१०१	४६
अण्डमान एवं निकोबार द्वीप	१,९२८	१,९०३	१४	११	—
योग (१९५५)	२,६७२,८९२ (१०० ००)	२,३६५,३०५ (८८·४९)	२८९,५८३ (१०·८३)	१३,०२९ (०·४९)	४,९७६ (०·१९)
योग (१९५४)	२,५६४,५३४ (१००·००)	२,२६८,०३४ (८८·४४)	२७९,५७६ (१०·९०)	१२ ३२९ (०·४८)	४,६९५ (०·१८)

१९५२ में श्रम ब्यूरो की जाँच के अनुसार कारखानों में बालकों की संख्या ६,१५६ आनी थी और किशोरों की संख्या १८,१६२ थी। कारखानों में बाल श्रमिकों में अधिक संख्या लड़कों की थी जिनकी प्रतिशत ७४ थी। किशोरों में लड़कों की प्रतिशत ८४ थी। सामाजिक रीतियाँ, जैसे–शीघ्र विवाह, लड़कियों को कारखाना के काम पर भेजने के विषय में विरोधात्मक धारणायें, पर्दे का रिवाज आदि के कारण ही लड़कियों का कारखाने में काम पर बहुत कम लगाया जाता है।

श्रम ब्यूरो के अनुसार बाल श्रमिक मद्रास असम, बिहार तथा प० बंगाल में अधिक हैं। बालकों को अधिक संख्या में लगाने वाले औद्योगिक वर्ग निम्न-लिखित हैं—रसायन, रसायन पदार्थ, खाद्य, अधातु खनिज पदार्थ तथा तम्बाकू। रसायन वर्ग में दियासलाई फैक्टरियाँ, खाद्य में चाय फैक्टरियाँ, खनिज उत्पादन में अभ्रक फैक्टरियाँ तथा तम्बाकू में बीड़ी कारखाने ऐसे मुख्य उद्योग हैं जहाँ बालक अविवेकपूर्ण ढंग से लगाये जाते हैं। १९५९ में राज्यानुसार आँकड़े पिछले पृष्ठ पर तालिका में दिये गये हैं।

इनसे स्पष्ट है कि मद्रास की फैक्टरियों में सबसे अधिक संख्या में बालक तथा किशोर रोजगार में लगे हैं।

खानों में बाल श्रमिक

जहाँ तक खानों का सम्बन्ध है, सन् १९२३ में खान अधिनियम के पारित होने से पूर्व अनेक खानों में १२ वर्ष से कम आयु के बालक रोजगार में लगाये जाते थे। सन् १९२५ में समस्त खानों में रोजगार पर लगे हुए बालकों की कुल संख्या ४,१३५ थी। इनमें से ४९·१ प्रतिशत बालक अभ्रक की खानों में, २९·३ प्रतिशत कोयले की खानों में ११·२ प्रतिशत चूने के पत्थर की खानों में, तथा १०·४ प्रतिशत अन्य खानों में रोजगार पर लगे हुए थे। सन् १९३५ में बालकों के लिए खानों में रोजगार पर लगाने की न्यूनतम आयु बढ़ाकर १५ वर्ष कर दी गई थी, जो आज तक चली आती है। लेकिन बिहार, मद्रास तथा राजस्थान की अभ्रक की खानों में अधिकांश बालक खानों के भीतर कार्य करते हुए पाए जाते हैं। श्रम अनुसंधान समिति के अनुमान के अनुसार केवल बिहार में अभ्रक की खानों में लगभग १,२५० बालक कार्य करते हैं और मद्रास तथा राजस्थान की अभ्रक की खानों में ५,००० बालक रोजगार पर लगे हैं।

अनियन्त्रित कारखानों आदि में बाल श्रमिक

बाल श्रमिकों को रोजगार पर लगाने के सबसे बुरे दोष अनियन्त्रित कार-खानों और वायशालाओं में पाये जाते हैं। इनमें से कुछ ही कारखाने ऐसे हैं जो यांत्रिक शक्ति का उपयोग तो करते हैं परन्तु दस से कम श्रमिकों को ही रोजगार पर लगाते हैं। लेकिन अधिकांश कारखाने ऐसे हैं जो किसी यांत्रिक शक्ति का उपयोग नहीं करते, लेकिन अधिक संख्या में श्रमिकों को रोजगार पर लगाते हैं, जैसा कि कारखाना विधान के अन्तर्गत उल्लेख किया जा चुका है कि ये कारखाने

और कार्यशालायें न तो कारखाना अधिनियम के ही अन्तर्गत आते है और न ही मद्रास, केरल तथा मध्य प्रदेश के अतिरिक्त इनके लिये कही किसी पृथक् विधान की व्यवस्था की गई है। ऐसे उद्योग निम्नलिखित हैं– बीडी, चमडा, अभ्रक कूटना, कालीन बुनना, काँच की चूडियाँ बनाना तथा अन्य छोटे पैमाने के उद्योग आदि। दक्षिण भारत के दियासलाई उद्योग तथा राजस्थान के इसी प्रकार के उद्योगों में भी बाल श्रमिकों को अधिक संख्या में रोजगार पर लगाया जाता है। उदाहरण के के लिए, सन् १९५२ में मद्रास राज्य के छोटे पैमाने के दियासलाई उद्योग में ४१२ बालक रोजगार मे लगे थे, जिनमे ११० लडके थे तथा ३०२ लडकिया थी। बीडी बनाने के सबसे अधिक महत्वपूर्ण केन्द्र मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मद्रास तथा बंगाल में पाये जाते है और लगभग इन सभी क्षेत्रो मे ५ वर्ष से लेकर १२ वर्ष के मध्य की आयु के बालको को अधिकतर पत्तियाँ काटने तथा बीडियाँ लपेटने के कार्य पर नियुक्त किया जाता है। श्रम अनुसंधान समिति ने इस बात का उल्लेख किया था कि इन बीडी के कारखानों में श्रमिकों की कुल सख्या मे से २९ प्रतिशत वेलोर (मद्रास) में, १८% मद्रास नगर मे, २१·४४% शोलापुर में, ७·५५% बम्बई नगर में तथा ७% मध्य प्रदेश मे बालकों की थी। कारखानो के रजिस्टरों मे इन बालकों का प्राय नाम नही लिखा जाता। इन बालको के माँ-बाप या पडौसी अपने काम मे सहायता देने के लिये इन्हे लाते है। सन् १९५२ मे विभिन्न राज्यो मे बीडी उद्योग मे रोजगार पर लगे हुए बालको की जो सख्या अनुमानित की गई थी, वह निम्नलिखित है—असम १८०, बिहार १,०४०; पश्चिमी बगाल ३,०००; हैदराबाद ४६७९; ट्रावनकोर-कोचीन १,४००; भोपाल १,१५०; विन्ध्य प्रदेश १०,०००। इसके अतिरिक्त मद्रास राज्य, राजस्थान तथा सौराष्ट्र के छोटे-छोटे बीडी के कारखानो मे बालको की एक अगणित सख्या रोजगार पर लगी हुई थी। श्रम अनुसधान समिति के अनुसार अभ्रक के विनिर्माण मे कानून का खुले आम उल्लघन करते हुए ६ वर्ष से लेकर १२ वर्ष के मध्य की आयु के बालको को इतनी अधिक संख्या मे रोजगार पर लगाया जाता है कि देखकर आश्चर्य होता है। समिति ने बड़े विस्मय से इस बात का भी उल्लेख किया है कि बिहार मे पचम्बा नामक स्थान पर सरकारी कारखानो मे भी बाल श्रमिक रोजगार पर लगे थे। समिति ने अभ्रक उद्योग मे रोजगार पर लगे हुए बालको की कुल सख्या लगभग १२,००० अनुमानित की है। युद्धकाल मे श्रमिकों की कमी के कारण बालको को खुलेआम रोजगार पर लगाया गया था और कोई इसका विरोध भी नही करता था। बिहार, मध्य प्रदेश तथा बंगाल के चपड़ा उद्योग में लगभग ३५२ कारखानो मे से केवल १८ कारखाने ही कारखाना अधिनियम के क्षेत्राधिकार या मध्य प्रदेश के अनियन्त्रित कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत आते है। यहाँ भी बालको के रोजगार के सम्बन्ध मे विधान व्यवस्था की खुले रूप से उपेक्षा की जाती है और १४ वर्ष से कम आयु के बालको को अधिक सख्या म रोजगार पर लगाया जाता है। चपडा उद्योग मे रोजगार पर लगे हुए बालको की सख्या लगभग १,८०० अनुमानित की

जा सकती है। अभी हाल ही म हुए एक सर्वेक्षण के अनुसार केरल की काजू निकालने की प्रक्रियाओं के कारखानों म ६,००० से भी अधिक बाल श्रमिक कार्य पर लगे हुए है।

एक अन्य अपने ही प्रकार का कारखाना उद्योग जिसमे बालको को रोजगार पर लगाया जाता है, उत्तर प्रदेश मे फिरोजाबाद का काँच की चूडियो का उद्योग है। इस उद्योग मे ६,००० श्रमिको की कुल सख्या मे से ३५ प्रतिशत श्रमिक १४ वर्ष से कम आयु के बालक है। कालीन बुनने के उद्योग मे ऊन चुनने तथा उसके साफ करने मे, कपडो की बुनाई, छपाई तथा रगाई करने मे, चमडा रगने तथा साबुन बनाने मे तथा कृषि एव व्यापार मे बालको को अधिकतर रोजगार पर लगाया जाता है। दुकानो पर नौकरो के रूप मे भी बालको को अधिक सख्या मे कार्य करते हुये पाया जाता है। यह बात कभी भी बाजार मे जाकर देखी जा सकती है। लेकिन एसे बाल श्रमिको के अभी तक कोई विश्वसनीय आँकडे उपलब्ध नही किये जा सके हैं। परन्तु विभिन्न राज्यो मे दुकान एव वाणिज्य सस्थान अधिनियमो द्वारा उनको कुछ सुरक्षा प्रदान की गई है (देखिये पृष्ठ ७४७–४६) घरेलू नौकरो के रूप मे रोजगार पर लगे हुए अगणित बालको का भी उल्लेख किया जा सकता है। इनके लिये न तो कोई आँकडे ही प्राप्त किये गये हैं और न ही इनको कानून द्वारा कोई सुरक्षा प्रदान की गई है। नगरपालिकाओ तथा सार्वजनिक निर्माण-कार्यों मे भी बाल श्रमिक पाये जाते हैं। सन् १९५७ मे विभिन्न राज्यो की नगर-पालिकाओ मे रोजगार पर लगे हुए बालको की कुल सख्या ५७१ थी। केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण-कार्यों मे १७२ बालक प्रत्यक्ष रूप से तथा ४२० बालक ठेके के श्रमिको के रूप मे रोजगार पर लगे थे। राज्य के सार्वजनिक निर्माण-कार्यो मे और मुख्य आयोजनाओ मे बालको की सख्या इस प्रकार थी . प्रत्यक्ष श्रमिक ६,४५६, ठेके के श्रमिक ६,४७३।

कृषि मे बाल श्रमिक

गावो मे बालक बचपन से ही खेतो मे अपने माता-पिता की सहायता करना आरम्भ कर देते है और साधारणतया उनका स्कूल जाना एक अपवाद माना जा सकता है। श्रम मन्त्रालय की प्रथम कृषि श्रमिक पूछताछ के अनुसार कुल कृषि श्रमिको मे से लगभग ४ ६ प्रतिशत १५ वर्ष से कम आयु के बालक है। इस प्रकार कृषि मे बाल श्रमिको की सख्या लगभग २० लाख १९५०–५१ मे आती थी। द्वितीय कृषि श्रमिक पूछताछ के अनुसार बाल श्रमिको की सख्या १९५६–५७ मे ३० लाख (९%) थी। रजिस्ट्रार जनरल की रिपोर्ट के अनुसार १९६५ मे खेती और कृषि श्रमिको के रूप मे लगभग १ करोड ५३ लाख बालक-बालिकाये कार्य करते थे। इन बालको से अनेक कार्य कराये जाते हैं, जिनमे पशु चराना, खेतो की रखवाली करना, रोपाई करना, फसलें इकट्ठी करना तथा बोझा लादना आदि मुख्य हैं। यह बालक केवल खेतो मे ही अपने माता-पिता की सहायता नही करते, अपितु मजदूरी

पर भी कार्य करते है तथा ऐसे पारिवारिक श्रमिक के रूप मे कार्य करते हैं, जिनको कोई मजदूरी नही दी जाती। गाँवो मे लगभग ७ वर्ष से लेकर ६ वर्ष तक की आयु के बालकों को खेतो में कार्य करते हुये देखा जा सकता है।

बाल श्रमिकों के कार्य करने की दशायें तथा उनकी मजदूरी

इन सब बातों से यह ज्ञात होता है कि भारत के विभिन्न उद्योगों मे बालकों की एक बडी सख्या रोजगार मे लगी हुई है। उनके कार्य करने की दशायें, अनियन्त्रित कारखानों में विशेष रूप से, बहुत ही असन्तोषजनक है। इन अनियन्त्रित कारखानों मे बाल श्रमिक बे-हवादार, कम-प्रकाश तथा भी ड-भाड वाले और अत्यन्त गन्दे वातावरण में कार्य करते हैं। शिशुओं को सभी प्रकार के फुटकर कार्य करने पड़ते है, जिनमे घरेलू कार्य भी सम्मिलित होता है। इस प्रकार कार्य सीखने के लिये उन्हे प्रायः बहुत भारी मूल्य चुकाना पडता है। इन बाल श्रमिको को केवल खुलेआम गालियाँ ही नही दी जाती, अपितु उनके मालिक उन्हे कई बार मार भी बैठते है। बाल श्रमिकों की मजदूरी भी बहुत कम होती है। मजदूरी सामान्यतया वयस्क श्रमिकों की मजदूरी का ३० प्रतिशत से लेकर ५० प्रतिशत तक होती है। चाय बागान मे बालको की दैनिक मजदूरी असम में ३७ पैसे से लेकर ५० पैसे तक रही है, और दक्षिण भारत मे ५० पैसे से लेकर ६२ पैसे तक रही है। 'कॉफी' बागान में अब बालको की दैनिक मजदूरी ६० पैसे थी और इससे पूर्व उनकी मजदूरी केवल २५ पैसे प्रतिदिन थी। मैसूर के कॉफी बागान में बालको को ४८ पैसे प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी मिलती है और रबड के बागान मे दैनिक मजदूरी ३७ पैसे से ४२ पैसे तक है। दैनिक मजदूरी की दर चपडा उद्योग में ५० पैसे तथा बीडी उद्योग मे केवल २० पैसे से ३७ पैसे तक है। इन आँकडो से यह ज्ञात होता है कि बालकों को बहुत कम मजदूरी दी जाती है। (मजदूरी का अध्याय भी देखिये)।

बालकों की आयु तथा उनके कार्य करने के घण्टे

कारखानों, खानो, यातायात, बागान तथा दुकान आदि में बालको की आयु तथा उनके कार्य करने के घण्टो से सम्बन्धित विधान का उल्लेख अध्याय २० तथा १४ मे पहले किया जा चुका है। बालकों के कार्य करने के घण्टे सीमित है, उनका रात्रि मे काम करना निषिद्ध कर दिया गया है, उन्हें साप्ताहिक छुट्टियां देने की भी व्यवस्था की गई है तथा समय-समय पर उनकी आयु भी निर्धारित कर दी गई है। सन् १९४८ के अधिनियम के अनुसार बालको की आयु १२ वर्ष से बढ़ाकर १४ वर्ष कर दी गई है। किशोरो की आयु, जो १५ से लेकर १७ वर्ष तक थी, अब एक वर्ष और बढा दी गई है अर्थात् १७ वर्ष से १८ वर्ष कर दी गई है। इस अधिनियम में बालकों तथा किशोरों को रोजगार देने से पूर्व उनकी डाक्टरी परीक्षा तथा आयु का प्रमाणीकरण भी अनिवार्य कर दिया गया है। उनके प्रतिदिन कार्य करने के घण्टे ५ से घटाकर ४½ कर दिये गये हैं। श्रम समय-विस्तार ५ घण्टे

निर्धारित कर दिया गया है। १२ महीने निरन्तर नौकरी करने के उपरान्त बालकों को कम से कम १४ दिन की सवेतन छुट्टी मिलने की व्यवस्था है जो प्रत्येक १५ दिन के कार्य पर एक दिन की छुट्टी की दर से मिल सकती है। खानों में भी १५ वर्ष से कम आयु के बालकों को रोजगार पर लगाना निषिद्ध कर दिया गया है। कार्य-समर्थता का डाक्टरी प्रमाण-पत्र के बगैर १८ वर्ष से कम आयु के किसी भी बालक को खानों के भीतर कार्य करने की अनुमति नहीं है। सन् १९४८ से तथा सन् १९५१ के बागान श्रम अधिनियम के अन्तर्गत १२ वर्ष से कम आयु के बालकों को बागान में कार्य करने की अनुमति नहीं है। इन बालकों के कार्य घण्टे भी प्रति सप्ताह ४० निर्धारित कर दिये गये हैं। मध्य प्रदेश के नियन्त्रित कारखानों में बालकों के कार्य घण्टे प्रतिदिन ७ नियत किये गये हैं और बालकों की कार्य करने की आयु १० वर्ष से बढ़ाकर १४ वर्ष कर दी गई है। मद्रास में शक्ति से न चलने वाले कारखानों में बालकों के रोजगार की न्यूनतम आयु १४ वर्ष नियत की गई है। १४ वर्ष से लेकर १७ वर्ष के मध्य की आयु के किशोरों को तो केवल उसी दशा में रोजगार पर लगाया जा सकता है जबकि वे कार्य-समर्थता का डाक्टरी प्रमाण पत्र दे दें। परन्तु बालकों के कार्य करने के घण्टों और उनकी आयु से सम्बन्धित दोनों नियमों का सभी स्थानों पर उल्लंघन किया जाता है। बालकों का रात्रि में काम करना प्रत्येक स्थान पर निषिद्ध हो गया है और इस सम्बन्ध में सन् १९५४ में कारखाना अधिनियम में संशोधन किया गया था (देखिये पृष्ठ ५०६)। १९६१ का मोटर-यातायात श्रमिक अधिनियम भी मोटर यातायात संस्थानों में बालकों को कार्य पर लगाने पर रोक लगाता है। दुकान और वाणिज्य संस्थान अधिनियम भी बालकों की आयु और कार्य के घण्टे निर्धारित करते हैं (देखिये पृष्ठ ७४६–४८)। १९५८ के व्यापारी जहाज अधिनियम ने रोजगार के लिए बच्चों की आयु बढ़ाकर १५ वर्ष कर दी है और १८ वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों पर कोयला वाले या आग वाले के रूप में कार्य करने पर रोक लगा दी है।

सन् १९३३ का बाल (श्रम अनुबन्ध) अधिनियम
[The Children (Pledging Labour) Act, 1933]

भारत सरकार ने बाल श्रमिकों से सम्बन्धित दो विशेष अधिनियम पारित किये हैं, जो अब जम्मू और कश्मीर के अतिरिक्त सम्पूर्ण भारत में लागू हैं। इनमें एक तो १९३३ का बाल (श्रम अनुबन्ध) अधिनियम है। यह अधिनियम रॉयल श्रम आयोग की सिफारिशों के परिणामस्वरूप पारित किया गया था। रॉयल श्रम आयोग ने अपनी जाँच में यह देखा कि अनेक उद्योगों में विशेषतया कालीन बुनने तथा बीड़ी उद्योग में, माता-पिता या संरक्षक अपने छोटे छोटे बालकों को, उनके श्रम का अनुबन्धन करके मालिकों के पास कार्य के लिए छोड़ देते थे। श्रम आयोग के अनुसार यह प्रथा बन्धक श्रमिकों (Indentured Labour) की प्रथा से भी

अधिक बुरी थी। इस प्रथा के अन्तर्गत किसी अग्रिम धन या ऋण के हेतु एक अनिश्चित अवधि के लिए श्रमिकों को अनुबन्ध कर दिया जाता था। इसलिए आयोग ने बड़े जोरदार शब्दों में इस बात का सिफारिश की थी कि श्रम अनुबन्धन को एक दण्डनीय अपराध बनाने के लिए पग उठाये जायें। फलस्वरूप फरवरी, १९३३ मे इस विषय पर एक अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के अनुसार कोई भी ऐसा समझौता, चाहे वह लिखित हो या अलिखित, अवैध हो गया है जिसके अन्तर्गत किसी बालक के माता-पिता या उसके संरक्षक किसी लाभ या धन के बदले उस बालक की सेवाओं को किसी भी रोजगार में उपयोग करने की अनुमति देकर उसके श्रम को अनुबन्धित कर देते है। परन्तु इस अधिनियम के अन्तर्गत ऐसा कोई समझौता अवैध नही है जिसके अनुसार बालकों की सेवाओं के बदले केवल मजदूरी के अतिरिक्त अन्य कोई लाभ नही लिया जाता है और जो बालकों के हित के विरुद्ध नही है और जिसे एक सप्ताह की सूचना पर समाप्त किया जा सकता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत १५ वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों को बालक माना जाता है। इस कानून का उल्लंघन करने पर मालिकों पर २०० रु० तक जुर्माने की तथा माँ-बाप पर ५० रु० तक जुर्माने की व्यवस्था की गई है।

बाल श्रमिकों की अनुबन्धन के सम्बन्ध मे स्थिति

श्रम अनुसंधान समिति के अनुसार उसकी जाँच के समय दक्षिण भारत तथा मैसूर राज्य के बीडी उद्योग के अतिरिक्त शेष किसी भी उद्योग में बाल श्रमिकों की अनुबन्धन जैसी बुराई नही पाई गई। बीडी, चुरुट, सूंघनी तम्बाकू साफ करने तथा चमड़ा रंगने के उद्योग मे लगे हुए श्रमिकों की दशाओं के विषय मे पूछताछ करने के लिए सन् १९४६ में मद्रास सरकार द्वारा नियुक्त किये गये एक जाँच न्यायालय ने इस बात की भी रिपोर्ट दी थी कि मद्रास के बीडी उद्योग मे छोटे-छोटे बालकों की सेवाओं की अनुबन्धन की प्रणाली पाई जाती थी। मद्रास मे यह बुराई इसलिये चली आ रही है कि वहाँ के श्रमिक बहुत निर्धन हैं। बीडी उद्योगों में प्रवर श्रमिक अपने बालकों या सहायक लड़कों को कुछ अग्रिम धन देते रहते है। ये बालक वैसे तो इस कर्ज को चुकाने के लिए स्वतन्त्र होते हैं और कही भी जाकर अपने लिये नौकरी ढूंढ सकते है, परन्तु वास्तविक जीवन मे इस कर्ज के कारण ये बालक इन विशेष श्रमिकों से बंध जाते हैं। अभी हाल ही में मद्रास सरकार ने इस अधिनियम को दृढ रूप से लागू करने के लिये आदेश जारी किए हैं। मैसूर श्रम आयुक्त द्वारा दी गई सूचनाओं से भी यह ज्ञात होता है कि मैसूर के कृषि श्रमिकों की दलित जातियों में बाल श्रमिकों के अनुबन्धन की प्रथा अब भी पाई जाती है। सरकार इस बुराई को शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने पर विचार कर रही है।

सन् १९३८ का बाल श्रमिक रोजगार अधिनियम (The Employment of Children Act 1938)

इस अधिनयम के अनुसार उन समस्त व्यवसायो मे १५ वर्ष से कम आयु के वालको को कार्य पर लगाना निषिद्ध कर दिया गया है जो रेलवे यातायात द्वारा ले जाए गए यात्रियो, सामान या डाक से सम्बन्धित हैं या जिनका सम्बन्ध भारतीय बन्दरगाह अधिनियम के द्वारा विनियमित बन्दरगाहो मे सामान चढाने या उतारने से है। इस १९३९ के अधिनियम के अनुसार उपयुक्त व्यवसायो मे, शिशुओ को छोडकर अन्य १५ वर्ष से लेकर १७ वर्ष के मध्य की आयु के वालको को एक दिन मे निरन्तर १२ घण्टे का अवकाश मिलना चाहिए। इनमे मे ७ घण्टे रात्रि के १० बजे से लेकर प्रात काल के ७ बजे तक होने चाहियें। बीडी बनाने, कालीन बनाने, सीमेंट बनाने तथा उसे बोरियो मे भरने, कपडे की छपाई, रगाई तथा बुनाई करने, दियासलाइयाँ बनाने, विस्फोटक तथा आतिशबाजी का सामान तैयार करने, अभ्रक काटने तथा उसे कूटने, चमडा बनाने, साबुन बनाने, चमडा रगने तथा ऊन साफ करने से सम्बद्ध कारखानो मे १२ वर्ष से कम आयु के बालको का रोजगार पर लगाना निषिद्ध करने के लिए सन् १९३९ मे इस अधिनियम मे सशोधन किया गया। क्योंकि सन् १९४८ के फैक्टरी अधिनियम द्वारा बालको के रोजगार पर लगाने की न्यूनतम आयु १२ वर्ष से १४ वर्ष कर दी गई थी, इसलिए सन् १९४८ मे उपयुक्त कारखानो मे बालको के रोजगार की न्यूनतम आयु १२ वर्ष से १४ वर्ष करने के लिए इस अधिनियम म पुन सशोधन किया गया। सन् १९४९ के निरसन तथा सशोधन अधिनियम द्वारा इस अधिनियम मे कुछ छोटे-छोटे परिवर्तन भी किये गये, जिनके अन्तर्गत बालको की आयु के सत्यापन (Verification) के सम्बन्ध मे मालिको और निरीक्षको के बीच हुए मतभेद और विवाद के निपटारे की भी व्यवस्था की गई है। राज्य सरकारो को इस अधिनियम मे सशोधन करने या इसके क्षेत्र का विस्तार करने के अधिकार दिये गये हैं। सन् १९४७ मे मद्रास सरकार ने मोटर यातायात कम्पनियो से सम्बद्ध कारखानो मे सफाई करने वाले बाल श्रमिको पर भी इस अधिनियम को लागू कर दिया। अगस्त, सन् १९३८ मे पीतल के वर्तना तथा काँच की चूडियो के उद्योगो म रोजगार पर लगे हुए बाल श्रमिको के लिए उत्तर प्रदेश सरकार न इस अधिनियम का विस्तार किया। किशोरो के रात्रि मे काम करने से सम्बद्ध अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के अभिसमय को कार्यान्वित करने के लिये सन् १९५१ मे इस अधिनियम मे पुन सशोधन किया गया। इस सशोधन के अन्तर्गत रेलवे तथा बन्दरगाह के प्राधिकारियो द्वारा ऐसे रजिस्टर रखना अनिवार्य कर दिया गया है, जिनमे १७ वर्ष से कम आयु के बालको के नाम, जन्म-तिथि तथा उनके विश्राम मध्यान्तरो आदि का विवरण हो। इसके साथ ही १५ से लकर १७ वर्ष के मध्य की आयु के किशोरो को रेलवे और बन्दरगाहो मे रात्रि मे कार्य पर लगाना निषेध कर दिया गया है। इस अधिनियम का उल्लघन करने पर १ मास के कारावास या ५०० रु० के जुर्माने के दण्ड या दोनो की

व्यवस्था है। यह अधिनियम राज्यों में मुख्य कारखाना निरीक्षक, तथा केन्द्रीय व्यवसायों में मुख्य श्रम आयुक्त द्वारा प्रशासित किया जाता है। रेलवे में इस अधिनियम का प्रशासन मुख्य श्रम आयुक्त, प्रादेशिक श्रम आयुक्त तथा श्रम निरीक्षक द्वारा होता है। बन्दरगाहों में श्रम निरीक्षक इस अधिनियम का प्रशासन करते है।

रिपोर्टों से यह ज्ञात होता है कि केवल ठेकेदारो के श्रमिकों को छोड़कर रेलवे मे इस अधिनियम को उचित रूप से लागू किया जाता है। श्रम अनुसंधान समिति ने इस ओर ध्यान दिलाया था कि कई उद्योगों मे—जैसे दक्षिण भारत के बीडी तथा दियासलाई के कारखानों में, इस अधिनियम को पर्याप्त रूप से लागू नही किया जा रहा था। बीडी की फैक्टरियों में इस अधिनियम को लागू होने में सबसे बड़ी कठिनाई यह रही है कि इन छोटे-छोटे कारखानो के मालिक अपने कार्य स्थानो मे नित्य परिवर्तन करते रहते हैं। अब मद्रास सरकार ने 'बीडी औद्योगिक संस्थान (कार्य की दशाओं का विनियमन)' नाम का १९३८ मे एक अधिनियम बना दिया है। ऐसे ही अधिनियम १९५९ में केरल व मैसूर मे भी पारित कर दिये गये हैं। केन्द्र सरकार ने १९६६ में, बीडी तथा सिगार श्रमिक (रोजगार की दशायें) अधिनियम पास किया है।

निष्कर्ष तथा सुझाव

संक्षेप में कहा जा सकता है कि इन अधिनियमों से कोई विशेष सहायता नही मिल सकी है। इसका कारण यह है कि लोग सामान्यतया इन कानूनो से बचने की चेष्टा करते हैं। इसके अतिरिक्त कृषि व्यवसायों मे तथा घरेलू नौकरों के रूप में रोजगार पर लगे हुए बालकों के लिये कोई व्यवस्था नही है। अतः बाल श्रमिकों के रोजगार से सम्बद्ध बुराइयों को रोकने के लिये पग उठाये जाने नितान्त आवश्यक हैं। एक सुधार, जिसको तत्काल किया जाना चाहिये, वह श्रम निरीक्षण को दृढ करने की व्यवस्था करना है ताकि कानून की धाराओं का उल्लंघन न किया जा सके। मालिक प्रायः यह तर्क देते हैं कि वे बालको को रोजगार पर लगाकर श्रमिकों की पारिवारिक आय को, जो बहुत कम है, बढ़ाते है और इस प्रकार, जब शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव है, बालकों को रोजगार देकर उनको बुरी आदतों और आलस्य में पड़ने से बचा लिया जाता है। परन्तु इस प्रकार के तर्कों में कोई विशेष बल नही है। कोई भी राष्ट्र अपने बालकों की उपेक्षा नहीं कर सकता, क्योंकि यही बालक तो राष्ट्र के भावी श्रमिक और नागरिक बनते हैं। केवल बालकों को रोजगार देने पर निषेध लगाने से ही काम नही चलेगा, अपितु आवश्यक यह है कि औद्योगिक रोजगारों से बाल श्रमिकों को हटाने के लिये ठोस कदम उठाये जायें। जैसा कि श्रम अनुसन्धान समिति ने कहा था : "श्रमिकों की भावी सन्तान की ओर ध्यान देना सरकार का कर्त्तव्य है और सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिये कि कहीं बालकों का बचपन स्कूलों से पढ़ने,

पालित-पोषित होने और खेलो के मैदान में खेलने के स्थान पर कार्यशालाओ और फैक्टरियो के गन्दे स्थानो मे तो नष्ट नही हो रहा है।" इसमे सन्देह नही है कि सरकार इस ओर अब ध्यान दे रही है और बालको के हित की नीति को अपना लिया गया है, परन्तु इस नीति को पूर्ण रूप से लागू करने की आवश्यकता है। यह तभी हो सकता है जब उचित प्रकार के निरीक्षण और श्रमिको के बच्चो के लिए शिक्षा और अधिक सुविधाओ की व्यवस्था की जाये। इसके अतिरिक्त, जैसा कि श्री वी० वी० गिरि ने सुझाव दिया है, बालको के रोजगार की आयु बढाकर १६ वर्ष कर दी जानी चाहिये, तथा इस आयु तक बालकों को नि शुल्क तथा अनिवार्य रूप से शिक्षा मिलनी चाहिये।

जब से १९६५ मे रजिस्ट्रार जनरल की रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, जिसमे देश मे बाल श्रमिको की सख्या १½ करोड बताई गई थी, बाल श्रमिको की समस्या पर फिर ध्यान आकर्षित हुआ है। सरकार के श्रम मन्त्रालय के विचार के अनुसार रजिस्ट्रार जनरल ने जो सख्या दी है, उसमे ऐसे बालक और बालिकायें भी सम्मिलित है जो घरेलू कार्यों, घरेलू उद्योग, खेती और पशु-पालन के कार्य मे सहायता तो देते है, परन्तु जो सम्भवतया स्कूल भी जाते है। इसके अतिरिक्त, भारत मे आयु का ढाँचा मूल रूप मे कठोर है और छोटी आयु वाले वर्गो मे जनसख्या का अनुपात विकसित देशो की अपेक्षा ऊँचा है। भारत में १५ वर्ष से कम आयु वाले बच्चो का अनुपात कुल जनसख्या मे ४० प्रतिशत है जबकि विकसित देशो मे ऐसा अनुपात २० और ३० प्रतिशत के बीच है। परन्तु बाल श्रमिको की समस्या को मानवीय दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिये और जैसा कि भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ कॉंग्रेस ने सुझाव दिया है, १५ वर्ष तक के बाल श्रमिको को शिक्षा की सुविधायें प्रदान की जानी चाहियें। केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय, भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ कांग्रेस के एक प्रस्ताव पर विचार कर रहा है। इसके अन्तर्गत, भारत मे बाल श्रमिको की सख्या कम करने के लिये एक त्रिदलीय कार्यक्रम समिति बनाये जाने की व्यवस्था है।

यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि बाल श्रमिको की समस्या सभी वयस्क कमाने वालो के लिए पर्याप्त मजदूरी की समस्या से सम्बन्धित है। वयस्क कमाने वालो को जो बहुत कम मजदूरी मिलती है, उसी कारण वे अपने बालकों को काम पर भेजने के लिए विवश हो जाते है और कानून के अपवचन मे मालिको से मिल जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने बालको तथा किशोरो की सुरक्षा पर अपनी रिपोर्ट म इस बात पर ठीक ही बल दिया है कि बाल-श्रमिकों को कार्य पर लगाना निषिद्ध कर देने की जो समस्या है, वह आवश्यक रूप से इस समस्या से सम्बन्धित है कि बालको का निर्वाह किस प्रकार से हो और रोजगार पर लगे हुये सभी श्रमिको को इतनी पर्याप्त मजदूरी मिले कि वे अपने परिवार का एक उचित स्तर पर निर्वाह कर सकें। औद्योगिक श्रमिको के लिये न्यूनतम मजदूरी तथा उचित मजदूरी का निर्धारण तथा उनके लिये सामाजिक बीमा की योजनायें ही

बहुत सीमा तक इस समस्या का समाधान कर सकी हैं। समाज को इस बात का उत्तरदायित्व लेना चाहिये कि वह बालकों के निर्वाह और उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करे ताकि बालकों को इस बात का पूरा अवसर मिले कि उनकी मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास हो सके। इस प्रकार जब वे बड़े होंगे तो *अपने और समाज के हित के लिये कार्यकुशल श्रमिक, बुद्धिमान नागरिक और* ऐसे स्त्री और पुरुष बन सकेंगे, जो अपना उत्तरदायित्व समझते हों। भारत के संविधान में भी इस बात का उल्लेख है कि १४ वर्ष से कम आयु का कोई भी बालक किसी भी कारखाने, खान या अन्य किसी खतरे वाले कार्य में रोजगार पर नहीं लगाया जा सकता और यह राज्य का कर्त्तव्य होगा कि वह यह देखे कि सुकुमार आयु के बालकों से अनुचित लाभ तो नहीं उठाया जाता तथा शैशवकाल व युवावस्था का शोषण नहीं होता है और उनको निर्धनता और नैतिक पतन के गर्त में नहीं गिरने दिया जाता है।

उद्योगों में स्त्री श्रमिक
(Women Labour in Industries)

भारत के औद्योगिक व्यवसायों में स्त्री श्रमिकों की संख्या भी काफी अधिक है। राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में जिन क्षेत्रों में स्त्री श्रमिकों को अधिक संख्या में कार्य पर लगाया जाता है, वह निम्नलिखित हैं: (१) कृषि, (२) बागान, (३) खानें, (४) कारखाना उद्योग, (५) लघु उद्योग-धन्धे, (६) समाज सेवा के कार्य, (७) सफेद पोष नौकरियाँ (White-Collar Jobs)। अन्य संगठित उद्योगों की अपेक्षा बागान में स्त्रियों को रोजगार पर अधिक लगाया जाता है। ब्यौरा देने वाले कारखाना उद्योगों में काम पर लगी हुई स्त्रियों का दैनिक औसत ४,०८,५२४ था। यह संख्या विभिन्न उद्योगों में इस प्रकार थी—कृषि से सम्बन्धित उद्योग ५२,४६८; खाद्य उद्योग १,१२,७४३; तरल पदार्थ उद्योग १४५; तम्बाकू ६६,४०६; कपड़ा ६५,०३२; जूता तथा सिले हुए कपड़े ८३४; लकड़ी व कार्क ३,३०८; फर्नीचर १२२; कागज व कागज का सामान २,१४८; छपाई, प्रकाशन तथा सम्बन्धित उद्योग ८४६; चमड़ा और चमड़े का सामान ६४४; रबर और रबर का सामान १,१८६; रसायन तथा रासायनिक पदार्थ १६,२२३; पेट्रोल और कोयले के पदार्थ ३६६; अधातु खनिज पदार्थ २६,६४१; मूल धातु उद्योग ५,६१८, धातु सम्बन्धी पदार्थ २,००५; मशीन विनिर्माण १,७७२; बिजली का सामान ५,२४६; यातायात का सामान १,३१५; विविध उद्योग ८,३६२; बिजली, भाप व गैस ३८७; पानी और सफाई की सेवायें ११५; मनोरंजन सेवायें ३३; निजी सेवायें १६३। मद्रास, महाराष्ट्र, पश्चिमी बंगाल तथा मध्य प्रदेश में महिला श्रमिक की संख्या सबसे अधिक है। फैक्टरियों में लगी स्त्रियों का प्रतिशत १९६५ में कुल रोजगार का ११·२ था।

सन् १९२९ में खानों में भीतर काम करने वाली स्त्रियों की संख्या २४,०८६

थी। इसके पश्चात् खानों के भीतर काम करना उनके लिये निषिद्ध कर दिया गया। लेकिन युद्धकाल मे यह प्रतिबन्ध हटा लिया गया था और सन् १९४५ में खानों के भीतर कार्य करने वाली स्त्रियों की संख्या २२,५१७ तक पहुँच गई थी। सन् १९४६ मे यह संख्या घटकर केवल १०,७८८ रह गई थी। उसी समय से खानों के भीतर स्त्रियों को कार्य पर लगाना फिर से निषेध कर दिया गया है। सन् १९६४ म ६१,७०६ स्त्री श्रमिक खानों के बाहर खुले मे कार्य करती थी। ३५,८११ स्त्री श्रमिक खान के ऊपर कार्य करती थी। इस प्रकार स्त्री श्रमिको की कुल संख्या ९७,५१७ थी। विभिन्न खानों मे स्त्री श्रमिकों की कुल संख्या १९६५ में इस प्रकार थी। कोयला २१ ४ हजार, अभ्रक १ ६ हजार, मैंगेनीज १८ ५ हजार, कच्चा लोहा १५ १ हजार, अन्य ३३ २ हजार, योग ९९ ८ हजार। सन् १९५०-५१ मे असम के चाय बागान में अप्रवासित स्त्री श्रमिको की कुल संख्या रजिस्टरों के अनुसार २,०४,४४९ थी, तथा फालतू वर्ग की स्त्री श्रमिकों की संख्या ४३,१३८ थी। सन् १९५६–५७ में चाय बागान मे रोजगार पर लगी हुई स्त्रियों की संख्या लगभग १,९९,२६१ थी, अर्थात औसतन दैनिक कार्य पर लगे हुए श्रमिको मे से ४७ ६ प्रतिशत स्त्रियाँ थी। असम के चाय बागान मे यदि स्त्री और बाल श्रमिकों की संख्या को एक साथ जोड़ दिया जाय, तो वह संख्या पुरुष श्रमिको की संख्या से अधिक हो जाती है।

चपड़ा तथा बीड़ी उद्योगो मे भी अधिक संख्या में स्त्रियों को रोजगार पर लगाया जाता है। अन्य उद्योग जिसमे स्त्रियों को रोजगार पर अधिक लगाया जाता है, वह चावल की मिलें हैं। यह मिलें बगाल, बिहार तथा मद्रास मे अधिक पाई जाती हैं। इन मिलों मे स्त्रियों को चावल सुखाने, फैलाने तथा उन्हे उलटने-पलटने के काम पर लगाया जाता है। ये स्त्रियाँ धान में से चावल निकालने तथा भूसी आदि के फटकने का भी काम करती हैं। इन स्त्रियों को अपने पैरों या करछुल से चावल फैलाने तथा उन्हे उलट-पलट करने के लिए आँगन में घण्टो कड़ी धूप में इधर उधर चलना पड़ता है। नगरपालिकाओं तथा सार्वजनिक कार्यों में भी स्त्री श्रमिकों को रोजगार पर लगाया जाता है। सन् १९५७ में विभिन्न राज्यों की नगरपालिकाओं मे रोजगार पर लगी हुई स्त्रियों की कुल संख्या ११,७७९ थी तथा सार्वजनिक कार्यों मे सीधे रूप से भर्ती की हुई स्त्रियों की संख्या केन्द्र मे ७७ थी तथा राज्यों मे ९,११७ थी। ठेकेदारों द्वारा लगाई हुई स्त्री श्रमिकों की संख्या केन्द्र म ४,३१२ थी तथा राज्यों म २४,७६७ थी। मार्च सन् १९६३ में सरकारी रेलवे मे १४,६३७ स्त्रियाँ रोजगार पर लगी हुई थी तथा रेलवे बोर्ड और कार्यालयों म रोजगार पर लगी हुई स्त्रियों की संख्या ७६ थी। इन आँकड़ो से स्त्रियों का रोजगार पूर्णतया ज्ञात नहीं होता क्योंकि सूचना सीमित रूप से ही प्राप्त हो पाती है। कृषि में स्त्री श्रमिकों की संख्या कृषि-श्रम-जाँच के अनुसार १९५०–५१ मे एक करोड़ चालीस लाख थी तथा १९५६–५७ में एक करोड़ बीस लाख थी।

जनगणना के आंकड़ों के अनुसार महिला श्रमिकों की संख्या सन् १९०१ में ३·७३ करोड़ थी, १९११ में ४·१८ करोड़, १९२१ मे ४·०१ करोड़ और १९३१ में ३·७६ करोड़ महिला श्रमिक थी। १९५१ में इनकी संख्या ४·०४ करोड़ आती थी। इस प्रकार १९०१ व १९५१ के मध्य महिला श्रमिकों की संख्या में तो बहुत अन्तर नहीं हुआ, परन्तु क्योंकि कुल श्रमिको की संख्या बढ गई थी इसलिये कुल श्रमिको मे से इनका अनुपात घट गया था। १९६१ की जनगणना के अनुसार महिला श्रमिको की संख्या बढी है। १८·८४ करोड़ कुल श्रमिकों मे से ५·९४ करोड़ महिला श्रमिक थी, अर्थात् प्रत्येक १०० पुरुष श्रमिको पर ४६·०४ महिला श्रमिक आती थी। जैसा ऊपर बताया जा चुका है इनमें से अधिकांश (लगभग ८०%) कृषक के रूप में (३·३१ करोड़) या कृषि श्रमिक के रूप मे (१·४२ करोड़) कार्य कर रही थी। १९६१ की जनगणना के अनुसार, पहले अध्याय मे दी हुई तालिका में विभिन्न व्यवसायों में काम पर लगी महिलाओ की संख्या दिखाई गई है।

श्रम ब्यूरो द्वारा १९५८–५९ में एक व्यावसायिक मजदूरी सर्वेक्षण की रिपोर्ट के अनुसार महिला श्रमिको के रोजगार के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों का पता चलता है—बागान को छोड़कर लगभग सभी उद्योगों मे अधिकाश पुरुष *ही कार्य करते हैं। कारखाना उद्योग में २४·५३ लाख श्रमिकों में से १३·५%* महिला श्रमिक थी, बागान मे १८·७४ लाख श्रमिकों मे से ५०% महिलायें थी और खानो में ५·०१ लाख श्रमिकों में से १७·०% महिला श्रमिक थी। कारखाना उद्योगो मे या इन्जीनियरिंग उद्योग में कम महिला श्रमिक थी। कपडा उद्योग मे लगभग ७% महिला श्रमिक थी। अधिकांश महिला श्रमिक कुछ विविध उद्योगो में थी, जैसे—दियासलाई के कारखाने, काजू के कारखाने, तम्बाकू के कारखाने तथा चाय बागान। बीडी के कारखाने, कपडा सिलने के कार्य, कॉफी तथा रबर के बागान तथा मैंगनीज और कच्चा लोहा खानो में कुल श्रमिकों मे से ⅓ महिला श्रमिक थी। सूती कपडा उद्योग मे ४%, जूट में ४% और रेशम उद्योग में ८% महिला श्रमिक थी।

स्त्री श्रमिकों के रोजगार की समस्या : हाल मे हुए एक सर्वेक्षण के निष्कर्ष

सन् १९०१–५१ की ५० वर्ष की अवधि में कृषि-रोजगारो की अपेक्षा गैर-कृषि रोजगारो में स्त्रियो के लिए कार्य करने के अवसरों में बहुत कमी आ गई थी।

यह निष्कर्ष उस अध्ययन से ज्ञात होता है, जो भारत सरकार के श्रम ब्यूरो तथा आयोजना आयोग के श्रम तथा रोजगार विभाग ने मिलकर १९५८ मे किया था और जिसका उद्देश्य यह था कि १९०१ से स्त्रियो के लिए जो रोजगार में कमी या अधिकता आ गई थी, उसका अध्ययन किया जाये। अध्ययन से होता है कि स्त्री श्रमिको की संख्या १९११ में ४३०· कर ४००·७० लाख रह गई थी, जबकि उसी

१,४६० ६० लाख से बढकर १,७३० ४० लाख हो गई थी। दूसरे शब्दो मे, स्त्री श्रमिको की सख्या २०·३० लाख के लगभग घट गई थी जबकि स्त्रियो की जनसख्या २३०·५० लाख बढ गई थी।

सन् १६०१–५१ की अवधि मे, सन् १६३१ के वर्ष को छोडकर, स्त्रियो का अपने तथा दूसरे के खेतो मे कृषि कार्यो मे भाग लेना निर्पेक्ष दृष्टि से पर्याप्त मात्रा मे बढ गया था। सन् १६३१ मे जो आँकडे एकत्रित किये गये थे, वे ठीक नही थे, क्योकि जनगणना के आँकडो के अन्तर्गत घरेलू महिलाओ को घरेलू नौकरा की तरह मान लिया गया था। यदि स्त्रियो का रोजगार स्त्री और पुरुष दोनो की कुल जनसख्या को मिलाकर १०,००० मे से सापेक्ष दृष्टिकोण लिया जाये तो इस अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि कृषि कार्यो मे स्त्रियो के भाग लेने मे तथा कृषि श्रमिको के रूप मे उनके रोजगार मे अधिक परिवर्तन नही हुआ था, यद्यपि एक दशी (Decade) से दूसरे दशी मे कुछ भिन्नता अवश्य आ गई थी। परन्तु इस अवधि मे ऐसी स्त्रियो को, जो लगान प्राप्त करने वाले वर्ग के अन्तर्गत आती है, काफी क्षति पहुँची। इस अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि कृषि, वाणिज्य तथा अन्य सेवाओ और विविध कार्यो पर लगी हुई स्त्रियो की सख्या मे निर्पेक्ष तथा सापेक्ष दोनो दृष्टिकोणो से कमी आ गई थी। परन्तु परिवहन के कार्यो मे स्त्रियो के रोजगार मे वृद्धि हुई थी।

इस पचास वर्ष की अवधि म स्त्रियो के रोजगार मे निम्नलिखित उद्योगो मे वृद्धि हुई थी कोयले की खाने, तम्बाकू, लोहा तथा इस्पात तथा लोहा विज्ञान सम्बन्धी धातु उद्योग, परिवहन सामग्री, ईंट, खपरैल तथा मिट्टी के अन्य रचनात्मक उत्पादन, फर्नीचर तथा उसके बनाने का सामान, कागज तथा कागज के उत्पादन, छपाई तथा उसके साथ के अन्य उद्योग, शिक्षात्मक सेवायें तथा अन्वेषण, नगरपालिकाये तथा स्थानीय बोर्ड, होटल, भोजनालय तथा चाय-गृह और अन्य कानून सम्बन्धी सेवायें आदि। लेकिन विविध खाद्य उद्योगो, अनाजो तथा दालो, अधातु खनिज उत्पादनो, ईंधन के फुटकर व्यापारी, सफाई के कार्यो तथा अन्य सेवाओ और कपडा धोने तथा कपडा धोने की सेवाओ के कार्यो म इन स्त्रियो के रोजगार मे कमी हो गई थी।

सगठित रोजगारो से सम्बद्ध अन्तिम सूचनाये सन् १६५६ तक की थी। और इनको भी इस अध्ययन म सम्मिलित कर लिया गया है। सन् १६५०–५६ की ६ वर्ष की अवधि मे विभिन्न औद्योगिक समूहो मे स्त्रियो के रोजगार की अवस्था एक समान नही थी। तम्बाकू उद्योगो तथा रसायन पदार्थों तथा रासायनिक उत्पादनो मे तो स्त्रियो के रोजगार मे वृद्धि हुई थी, परन्तु लकडी तथा फर्नीचर उद्योगो, कागज तथा कागज के उत्पादनो, कपडा मिलो तथा अन्य मूलभूत धातु उद्योगो मे स्त्रियो के रोजगारा म कमी हो गया थी। अन्य औद्योगिक समूहो, जैसे कृषि सम्बन्धी प्रक्रियाओ, मादक पेयो के अतिरिक्त खाद्य तथा अधातु खनिज उत्पादनो मे स्त्रिया का रोजगार कुछ अधिक स्थिर था। कपडा मिलो तथा जूट

उद्योगों में जहाँ तक स्त्रियों के रोजगार का प्रश्न था, सन् १६५० में स्त्रियों की संख्या ३७,००० से घटकर सन् १६५६ में २१,००० रह गयी थी। बीड़ी तथा दियासलाई उद्योगों में रोजगार की स्थिति अच्छी थी। काजू के उद्योग तथा चाय की फैक्ट्रियों में स्त्रियों के रोजगार में अत्यन्त महत्वपूर्ण कमी आ गई थी। जहाँ तक खानों का सम्बन्ध है, मैंगनीज तथा कच्चे लोहे की खानों में स्त्रियों के रोजगार में अधिक वृद्धि हुई थी। लेकिन इसके साथ ही कोयला तथा अभ्रक की खानों में उनका रोजगार अधिकतया कम हो गया था। चाय बागान में स्त्रियों का रोजगार सन् १६५०–५१ में २·४८ लाख से घटकर सन् १६५६–५७ में १·६६ लाख रह गया था, लेकिन स्त्री तथा पुरुष दोनों प्रकार के वयस्क श्रमिकों की कुल संख्या में जो कमी हुई थी, स्त्रियों के रोजगार में यह कमी उसी अनुपात से हुई थी। जहाँ तक कारखाना उद्योगों का प्रश्न है उनमें स्त्रियों का कुल रोजगार १६५१ में २३·३ लाख से बढ़कर १६५७ में २५·२ लाख हो गया था। परन्तु स्त्री श्रमिकों की संख्या इस अवधि में ५·१ लाख से घटकर ४·६६ लाख रह गई थी।

इस अध्ययन के अनुसार देश में जैसे-जैसे औद्योगीकरण में वृद्धि होती जायेगी वैसे-वैसे स्त्री श्रमिकों की संख्या में भी वृद्धि होती जायेगी और इस संख्या में तृतीय वर्ग की अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत विशेष रूप से वृद्धि होगी।

ऐसी अनेक महत्वपूर्ण बातें है जो स्त्री श्रमिकों के रोजगार की कमी के लिए उत्तरदायी हैं। यह बातें तकनीकी, वैज्ञानिक तथा आर्थिक है। एक महत्वपूर्ण कारण तो यह है कि प्राचीन काल में जो कार्य स्त्रियाँ अपने हाथों से किया करती थी, उसके स्थान पर अब नई मशीनों का प्रचलन हो गया है। कारण यह भी है कि स्त्रियों के लिये खानों के भीतर कार्य करना तथा सब उद्योगों में रात्रि में कार्य करना वैधानिक रूप से निषेध कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त, स्त्रियों से सम्बन्धित विभिन्न श्रम कानूनों के अन्तर्गत मालिकों पर जो अधिक वित्तीय भार पड़ता है, उसके कारण भी स्त्री श्रमिकों को रोजगार देने में कमी हो गयी है। ऐसे वैधानिक विषय निम्नलिखित हैं—मातृत्व-कालीन-लाभ की अदायगी, शिशु-गृहों की व्यवस्था, समान कार्य के लिए समान वेतन का सिद्धांत तथा मजदूरी समानीकरण प्रणाली का लागू करना आदि।

१६५६ में पश्चिमी बंगाल में स्त्रियों की बेरोजगारी की समस्या पर एक अध्ययन से भी यह ज्ञात होता है कि स्त्रियों के रोजगार में पिछली कई दशाब्दियों (Decades) से कमी होती जा रही है।

स्त्री श्रमिकों के कार्य की प्रकृति

इन आंकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि देश में बाल श्रमिकों को रोजगार पर लगाने के समान ही स्त्रियों को रोजगार पर लगाना एक आम बात है। वास्तविकता भी यह है कि यदि स्त्रियों के कार्य करने की दशाओं को उचित रूप से विनियमित कर दिया जाए तो वे भी उत्पादन के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण योग

दे सकती है। कुटीर उद्योगो में पारिवारिक कर्तव्यो की पूर्ति के साथ-साथ स्त्रियाँ कातने और बुनने जैसे व्यवसायो मे भी पुरषो की सहायता करती हैं। कृषि में भी स्त्रिया खेतो मे पुरुषो की बडी सहायता करती हैं। परन्तु बडे पैमाने के उद्योगो मे स्त्रियो को रोजगार देना कुछ वर्षों से ही आरम्भ हुआ है। अधिकाश स्त्री श्रमिक पुरुष श्रमिको के परिवारो से ही सम्बद्ध होती है और वे प्राय अपने परिवारो की आय के अनुपूरण के हेतु ही कार्य करती हैं। कारखानो मे रोजगार पर लगी हुई ऐसी बहुत कम स्त्रिया हैं, जो किसी पुरुष पर आश्रित नही हैं। विभिन्न उद्योगो म उनके कार्यो की प्रकृति भी भिन्न-भिन्न होती है। सगठित तथा निरन्तर चालू कपास और जूट आदि जैसे कारखानो में स्त्रिया सामान्यतया कुलियो के रूप में चर्खी लपेटने तथा वेठन करने के विभागो में अधिक सख्या मे रोजगार पर लगाई जाती हैं। मौसमी कारखानो मे, विशेषतया कपास मे से बिनौले निकालने और उसे दबाने तथा चावल के कारखानो मे स्त्रियो को साधारण कुलियो के रूप मे रोजगार पर लगाया जाता है। बागान मे भी अधिक सख्या म स्त्री श्रमिक पाई जाती है, क्योकि बागान मे कार्य करने की पद्धति पारिवारिक आधार पर है और वहा केवल छोट छोट बच्चो और अशक्त प्राणियो को छोड़कर परिवार क शेष सभी सदस्य काय करते हैं। प्राय यह देखा गया है कि असम म बागान श्रमिको के परिवार मे औसतन लगभग ४ १५ व्यक्ति हाते है, जिनम स कम से कम २ ४४ व्यक्ति कमान वाल होत है। इनम १ १० पुरुष, ० ६६ स्त्रिया तथा ० ३१ बालक होत हे। खानो म, विशेषतया कोयले की खानो म, स्त्रियो को सामान्यतया बोभा ढोन या ठना लादन के कार्य पर नियुक्त किया जाता है, यद्यपि कुछ विशेष परिस्थितियो मे उन्ह ट्रामे चलाते हुए भी देखा जाता है।

स्त्री श्रमिको की मजदूरी तथा उनकी आय

स्त्रियो की मजदूरी तथा उनकी आय के सम्बन्ध म यह कहा जा सकता है कि जब स्त्रियो को उसी या उसी प्रकार के व्यवसायो पर भी नियुक्त किया जाता है जिनम पुरुष काय करते हैं ता भी उनकी मजदूरी अपेक्षाकृत पुरुषो से कुछ कम ही होती है। कपडा मिल उद्योगा के अनक केन्द्रो में स्त्रिया की आय दो बातो पर निर्भर करती है (क) काय की उपलब्धता तथा (ख) उनको कितने घण्टो के लिये काम पर लगाया जाता है, क्योकि स्त्रियो के लिए नियमानुसार कार्य के घण्ट कई बार लागू नही किये जाते, जिसका कारण यह है कि उन्ह घरेलू कर्तव्यो का भी पालन करना पडता है। कुछ रिपोर्टों से यह भी ज्ञात हुआ है कि कोयले की खानो तथा बागान में कुछ कार्यों मे स्त्रिया उतनी ही कार्यकुशल पाई गई है जितने कि पुरुष, यद्यपि उनकी मजदूरी में थोडा अन्तर है। जहाँ तक भारतीय सगठित उद्योगो में स्त्री श्रमिको का सम्बन्ध है, सन् १९४८ के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम मे समान कार्य के लिए समान वेतन का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है। परन्तु इस सिद्धान्त के अपनाये जान के कारण अनेक स्थानो पर स्त्री श्रमिको को

रोजगार पर लगाना कम कर दिया गया है, क्योंकि, जैसा कि मजदूरी के अध्याय मे उल्लेख किया गया है, मालिकों को स्त्रियो को नौकरी देने में हानि उठानी पडती है। इसका कारण यह है कि इन स्त्रियों को उन्हे बहुत से लाभ देने पडते है और स्त्रियां बहुत समय तक नौकरी पर टिकती भी नही हैं। इसलिये मालिक उन्हे केवल कम मजदूरी पर ही नौकरी देते हैं।

स्त्री श्रमिकों के लिए लाभ

स्त्री श्रमिको के लिए मातृत्व-कालीन-लाभ अधिनियम अब अधिकांश राज्यों मे प्रचलित है, इसका उल्लेख सामाजिक सुरक्षा के अध्याय में विस्तृत रूप से किया जा चुका है। सन् १९४८ के कारखाना अधिनियम और १९५२ के खान अधिनियम के अनुसार जहाँ भी ५० स्त्री श्रमिको से अधिक स्त्रियाँ कार्य करती है, वहा शिशु गृहों की व्यवस्था कर दी गई है। सन् १९४७ के अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित कोयला खान श्रम कल्याण निधि की एक विशेष शाखा भी स्त्रियो तथा बालको के हितो की देखभाल करने के लिए खानो में प्रारम्भ कर दी गई है। सभी उद्योगों मे स्त्रियों के लिये रात्रि मे काम करना निषिद्ध कर दिया गया है। मातृत्व-कालीन लाभ तथा रात्रि के काम करने पर निषेध के अतिरिक्त, अन्तिम कारखाना अधिनियम मे कार्य करने के घण्टो, मध्यान्तरों तथा छुट्टियो आदि के सम्बन्ध मे स्त्री श्रमिको को कोई अन्य विशेष अधिकार नही दिये गये हैं, यद्यपि जब कारखाना विधान बने थे तो प्रारम्भ मे स्त्रियों तथा बालको के ही कार्य करने के घण्टे विनियमित किये गये थे।

स्त्रियों के लिए खानो के भीतर कार्य करने की समस्या

स्त्रियों के खानों के भीतर कार्य करने पर रोक लगाने से भी कई विशेष प्रकार की समस्यायें उत्पन्न हो गई है। इस प्रकार के कार्यो को निषिद्ध करने की सदा से बहुत आवश्यकता रही है और कोई भी सभ्य देश इस बात को सहन नही कर सकता कि उनके देश मे महिलाओ को, जो सामान्यतया शरीर से अत्यन्त कोमल होती हैं, ऐसे अस्वास्थ्यकर वातावरण मे खानों के भीतर कार्य करने की अनुमति दी जाये। इसके अतिरिक्त यह बात भी विशेष ध्यान देने योग्य है कि यदि स्त्रिया खानो के भीतर जाकर पुरुषो के साथ कार्य करे तो इससे कई सामाजिक और नैतिक दोष पैदा हो सकते हैं। जैसा कि खान विधान के अन्तर्गत उल्लेख किया गया है, सन् १९२९ मे इस बात के लिए विनियम बनाये गये थे कि १० वर्ष की अवधि के भीतर, अर्थात् १९३९ तक, स्त्रियों का खान के भीतर कार्य करना धीरे-धीरे बिल्कुल समाप्त कर दिया जाए। लेकिन सन् १९३७ मे एक अधिसूचना के द्वारा स्त्रियो के लिए खानो के भीतर कार्य करना निषिद्ध कर दिया गया, परन्तु युद्ध की आवश्यकताओ के कारण सन् १९४३ मे यह प्रतिबन्ध उठा लिया गया था। लेकिन सन् १९४६ मे इसे पुनः लागू कर दिया गया और तब से

आज तक यह प्रतिबन्ध लागू है। इस प्रकार वर्तमान समय मे स्थिति यह है कि स्त्रियो को खानों के भीतर रोजगार पर नही लगाया जाता।

डा० आर० के० मुकर्जी ने कुछ ऐसी बुराइयो का उल्लेख किया है, जो स्त्रियो को खानों के भीतर कार्य करने पर प्रतिबन्ध लगाने से आ गई हैं। यह प्रतिबन्ध लगाने के बाद कोयले की खानो मे अधिकाश स्त्रिया गांव वापिस चली गई और उसके बाद उनका गाँवो से आना भी बन्द हो गया। केवल बडी बडी खानो मे ही स्त्री श्रमिकों को खानों के ऊपर कुछ कार्य देना सम्भव हो सका और उनमें से बहुत सी स्त्रियो को ठेला लादने, सडकें तथा नालिया बनाने और उनकी मरम्मत करने, बत्तियो को साफ करने, राजगीरो के साथ कार्य करने तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान्य दशाओ मे सुधार करने के कार्यों पर रोजगार मिल गया, परन्तु इन सब बातो को देखते हुए ऐसी स्त्रियो की, जो खानो के भीतर कार्य करती थी, एक बहुत थोडी प्रतिशत, अर्थात् कठिनाई से १० प्रतिशत ही खान के ऊपर विविध प्रकार के कार्यों मे रोजगार पा सकी। इसके पूर्व जब खानो के भीतर पति-पत्नि दोनो मिलकर कार्य करते थ, तो कोयला काटने तथा लादने मे यह दम्पत्ति बडी सुगमता से कोयले की कम से कम तीन नांदें भर लिया करते थे अर्थात् उनकी कुल आय १५ आना (६४ पैसे) प्रतिदिन थी, परन्तु स्त्री श्रमिको को रोजगार पर न लगाये जाने के बाद से पुरुष श्रमिक अकेले प्रतिदिन कोयला काटकर एक नाद से अधिक नही भर सकता अर्थात् उसकी आय घटकर ५ आना (३१ पै०) प्रतिदिन रह गई है। यदि कोई कम्पनी उसकी पत्नी को खान के ऊपर रोजगार पर लगा भी लेती है, तो भी उसे ४ आना या ५ आना (२५ या ३१ पै०) प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी दी जाती है और यदि वह ठेकेदारो के लिये आकस्मिक रूप से कार्य करती है, तो भी उसे २ आने से ५ आने प्रतिदिन तक ही मजदूरी मिल पाती है। इस प्रकार पति और पत्नि दोनो की कुल आय कम हो गई है और उनका जीवन-स्तर गिर गया है। अविवाहित स्त्रियो तथा विधवाओ की स्थिति तो और भी शोचनीय हो गई है, क्योकि स्त्रियों के लिय खानो के ऊपर बहुत ही कम नौकरियाँ उपलब्ध होती हैं। प्रबन्धकर्त्ता खानो मे कार्य करने वाले श्रमिको की पत्नियो को ही रोजगार पर लगाने मे प्राथमिकता देते हैं और असम्बद्ध (Unattached) स्त्रियो को ठेकेदारो द्वारा सयोग से कोई कार्य मिल जाय, इस बात पर निर्भर रहना पडता है।

रॉयल श्रम आयोग ने यह आशा व्यक्त की थी कि यदि स्त्रियो को खानो के भीतर काम करने से मना कर दिया जाय तो इससे कोयले की खानो मे कार्य करने वाले श्रमिकों के जीवन की दशाओं मे सुधार हो जायेगा तथा उनकी कार्य-कुशलता मे भी वृद्धि होगी। इस कारण यदि पारिवारिक आय मे कुछ कमी भी हो तो उसकी क्षतिपूर्ति इस सुधार द्वारा हो जायेगी, परन्तु प्रतिबन्ध लगाने के पश्चात् से खानो मे कार्य करने वाले श्रमिको के जीवन की दशाओ मे कुछ अधिक सुधार नहीं हुआ है। इसलिए जब स्त्रियां आय अर्जन के योग्य नही रही हैं तो

खान श्रमिक अपनी स्त्रियों को खानों के क्षेत्र में लाते ही नहीं है। इस प्रकार स्त्रियों की संख्या पुरुषों के अनुपात में बहुत कम हो गई है और इस कारण पुरुषों में अनुपस्थिति अधिक बढ़ गई है। स्थानीय खान श्रमिक अपने परिवारों को देखने के लिये प्राय: नित्य ही अपने घर जाया करते हैं। इसी कारण बिलासपुरी तथा मथल के श्रमिकों की सख्या खानों में कम हो गयी है, क्योंकि ये लोग अपनी स्त्रियों को गाँवों मे छोड़ना पसन्द नही करते। स्त्री-पुरुषों की संख्या में समान अनुपात न रहने के कारण कोयला खान क्षेत्रों में नैतिक पतन बहुत हो गया है। पहले पति और पत्नी दोनों ही खानों के भीतर साथ-साथ जा सकते थे और हर समय पत्नी को अपने पति का संरक्षण मिलता रहता था। लेकिन अब, जब श्रमिक खानो के भीतर कार्य करने जाते हैं, तो वे अपनी युवा पत्नियों या युवा पुत्रियों को पीछे छोड़ने में संकट अनुभव करते हैं।

परन्तु इस समस्या का समाधान यह नहीं है कि स्त्रियों को पुन: खानों के भीतर कार्य करने की अनुमति दे दी जाय। डा० मुकर्जी ने यह सुझाव दिया है कि श्रमिकों को अपने परिवारों को साथ लाने के लिये कुछ सुविधायें तथा आकर्षण देने चाहिये ताकि वर्तमान बुराइयों को दूर किया जा सके। खान के ऊपर यदि कोई नौकरी खाली होती है तो जहां तक सम्भव हो उसे स्त्री श्रमिक को देना चाहिए, तथा उनके लिये सहायक उद्योगों की स्थापना की सम्भावना पर भी ध्यान देना चाहिए। इन सहायक उद्योगो मे कोलतार तथा कोयले के अन्य गौण उत्पादनों का उपयोग हो सकता है। इसके अतिरिक्त मकानों तथा जल-मल निकास व्यवस्था में सुधार करने के लिये नियमित रूप से प्रबन्धकों द्वारा प्रयत्न किये जाने चाहियें, ताकि खान श्रमिको को अपनी स्त्रियों को खान क्षेत्रों मे लाने के लिये प्रेरित किया जा सके। अन्त मे यह कहा जा सकता है कि खान श्रमिकों की औसत आय तथा कार्यकुशलता मे वृद्धि किये बिना उनकी पारिवारिक आय में जो वर्तमान हानि हुई है, उसका न तो किसी प्रकार प्रतिकार ही किया जा सकता है और न ही उनके जीवन-स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है। गत वर्षों में कोयला खान श्रम कल्याण निधि तथा अभ्रक खान श्रम कल्याण निधि की स्थापना से और न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण से खानो में कार्य करने वाले श्रमिको की स्थिति में सुधार हुआ है और स्त्रियों का खानो के भीतर कार्य करना निषिद्ध करने से जो आय की हानि हुई है वह इन श्रमिको को स्वास्थ्यकर तथा मधुर पारिवारिक जीवन व्यतीत करने की सुविधायें देकर तथा स्त्री श्रमिकों के स्वास्थ्य तथा उनकी कार्यकुशलता में सुधार करके पूरी की जा सकती है।

स्त्री श्रमिक तथा सामाजिक वातावरण

स्त्रियों के रोजगार से सम्बन्धित एक अन्य समस्या, जिसकी ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है वह स्त्रियों को रोजगार पर लगाने से जो सामाजिक वातावरण पैदा हो जाता है और रोजगार पर लगी स्त्रियों को जो सामाजिक स्तर

दिया जाता है, उस विषय की समस्या है। यह तो एक साधारण ज्ञान की बात है कि हमारे देश मे स्त्रियो को पुरुषो की अपेक्षा हीन समझा जाता रहा है और यह पुरानी रूढिगत विचारधारा अब भी प्रचलित है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आत्म सम्मान प्रतिष्ठा तथा आत्म विश्वास की जो भावना हमे पश्चिमी देशो की स्त्रियो मे मिलती है, वह हमारे देश की स्त्रियो मे अब तक विकसित नहीं हो सकी है। मजदूर वर्ग की स्त्रियो को उन गाँवो के बडे सामाजिक दायरो मे भी सम्मान की दृष्टि से नही देखा जाता, जहाँ से वे कार्य करने आती है। यह भी सभी जानते है कि हमारे औद्योगिक क्षेत्र मे अधिकांश स्त्री श्रमिको को ऐसे मध्यस्थो तथा अन्य दुराचारी व्यक्तियो द्वारा अनैतिक जीवन व्यतीत करने के लिये विवश कर दिया जाता है जो औद्योगिक क्षेत्रो मे अधिकतर पाये जाते हैं। कभी-कभी तो मालिक भी औद्योगिक क्षेत्रो मे इन स्त्रियो के पतन के लिये उत्तरदायी होते है। गाँवो मे जो नैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक प्रतिबन्ध होते है, वे नगरो मे नही पाये जाते। श्रम आयोग और बगाल मे डा० कर्जेल द्वारा कुछ ऐसे उदाहरण इकट्ठे किये गये थे जिनसे यह ज्ञात होता है कि कुछ सख्या ऐसी विधवाओ और परित्यक्त स्त्रियो की पाई जाती है, जो दिन मे कारखानो से होने वाली आय के अतिरिक्त रात्रि मे कुछ पुरुषो से अस्थायी सम्बन्ध बनाये रखकर या वेश्यावृत्ति का पेशा अपनाकर अपनी आय मे वृद्धि करती है। ऐसी स्त्रियो के बच्चे भी होते है, जिनका पालन पोषण करना पडता है। बम्बई मे डा० एस० डी० पुनेकार द्वारा एक जाँच के अनुसार भी महिला श्रमिको के पतन के उदाहरण मिलते है।

यह सामाजिक तथा आर्थिक समस्या दिन पर दिन प्रबल होती जा रही है। फिर भी, जैसा कि श्री पनान्डीकर ने उल्लेख किया है, आज तक इस समस्या की ओर ध्यान नही दिया गया है। श्रम आयोग ने भी इस समस्या पर अपने विचार प्रकट नही किये, यहा तक कि श्रम अनुसन्धान समिति ने भी इस समस्या की ओर ध्यान नही दिया। इसलिये इस बात की बहुत आवश्यकता है कि इस समस्या की उचित प्रकार से जांच की जाये तथा इन स्त्रियो का उत्थान करने तथा इनकी सहायता करने के लिये अच्छे से अच्छे प्रकार के साधन अपनाये जायें। औद्योगिक क्षेत्रो मे सम्पूर्ण वातावरण कुछ इस प्रकार का है कि जिन स्त्रियो मे कुछ सम्मान तथा प्रतिष्ठा की भावना होती है, वे कार्य करना ही पसन्द नही करती और जिन स्त्रियो को विवश होकर नौकरी करनी पडती है वे नगरो मे प्रचलित इन बुराइयो की बडी सुगमता से शिकार हो जाती हैं। हम सभी लोग यह बात जानते हैं, इसका अनुभव भी करते हैं, फिर भी सरकार ने इस सामाजिक समस्या की ओर अभी तक ध्यान नही दिया है।

स्त्री श्रमिक तथा सघ

जहाँ तक श्रमिक सघो तथा स्त्री श्रमिको की समस्या का सम्बन्ध है, देश मे स्त्रियो के किसी पृथक् श्रमिक सघ का विकास नही हुआ है। स्त्री श्रमिको को

अपने कुछ पारिवारिक कर्त्तव्यों का भी पालन करना पड़ता है और इस प्रकार अपने संगठन में सक्रिय रूप से रुचि लेने के लिये उनके पास कोई समय नहीं बच पाता। वे स्थायी रूप से कोई नौकरी भी नहीं कर पाती और न ही उनमें उत्साह तथा संगठन बनाने की क्षमता होती है। देश में कुछ ऐसी परम्परायें पड़ गई हैं, जिन्होंने स्त्रियों को सदा पुरुषों के ऊपर आश्रित रखा है और अनपढ़ स्त्री श्रमिक तो कोई पृथक् संगठन बनाने की कल्पना भी नहीं कर सकतीं। वास्तविकता तो यह है कि जब पुरुषों के ही श्रमिक संघ दृढ़ और शक्तिशाली नहीं हैं, तो यदि स्त्री श्रमिकों ने अपने संगठनों के प्रति अधिक ध्यान नहीं दिया है, तो उन्हें इस सम्बन्ध में अधिक दोषी नहीं ठहराया जा सकता। लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं है कि स्त्रियों ने देश के श्रम आन्दोलन में कोई रुचि नहीं ली है। इस बात का प्रमाण मिलता है कि सन् १८६० में श्री लोखण्डे द्वारा आयोजित की गई सभा में दो स्त्री श्रमिकों ने भाषण दिया था (देखिये पृष्ठ ६३)। श्रमिक संघों में स्त्रियों की सदस्यता में भी वृद्धि हुई है और सन् १९२९ में स्त्री श्रमिकों की सदस्यता ३,८४२ से बढ़कर सन् १९४६–४७ में ६४,७६८ हो गई थी। सन् १९५७–५८ में यह सदस्यता ३,३१,८८२ (११·०%), १९५८–५९ में ३,९२,३५४ (१०·८%), १९५९–६० में ३,९१,००० (१०·०%), १९६०–६१ में ३,६५,००० (९·८%), १९६१–६२ में ३,७०,००० (९·३%), १९६२–६३ में ३,४७,००० (९·४%) और १९६३–६४ में ३,४९,००० (८·८%) थी। कारखानों, खानों तथा बागान में कुल स्त्री श्रमिकों की लगभग १·७ प्रतिशत स्त्रियाँ पञीकृत श्रमिक संघों की सदस्य हैं। इस बात से यह विदित होता है कि स्त्री श्रमिकों की श्रमिक संघों में रुचि रही है, यद्यपि श्रमिक संघों में स्त्री श्रमिक अभी और अधिक कार्य कर सकती हैं विशेष रूप से, इस दृष्टि से कि अभी हाल के वर्षों में स्त्री श्रमिकों की प्रतिशत सदस्यता में गिरावट आई है। कपड़ा मिल उद्योगों में स्त्री श्रमिकों के श्रमिक संघों की सबसे अधिक प्रगति हुई है। बम्बई और मद्रास का इस सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है।

उपसंहार

इस प्रकार हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भारत के उद्योगों में स्त्रियाँ अब स्थिर रूप से रोजगार पाने लगी हैं। उद्योगों में स्त्रियों द्वारा काम पाने के सम्बन्ध में जो परम्परागत विचार थे, वह समस्त संसार में और भारत में भी समाप्त होते जा रहे हैं। भारत के संविधान में भी इस बात का उल्लेख किया गया है कि "राज्य अपनी नीति द्वारा इस ओर ध्यान देगा कि प्रत्येक नागरिक को, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, इस बात का समान अधिकार हो कि वह अपनी पर्याप्त रूप से जीविका अर्जित कर सके·········और स्त्री तथा पुरुष दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन मिले, तथा स्त्री व पुरुष श्रमिकों की शक्ति और स्वास्थ्य का और बालकों की कोमल आयु का अनुचित लाभ न उठाया जाय और

नागरिको को आर्थिक आवश्यकताओ के कारण ऐसा रोजगार अपनाने के लिए विवश न होना पडे जो उनकी आयु और शक्ति के अनुसार अनुपयुक्त हो।" परन्तु सभी देशो मे इस बात को स्वीकार किया गया है कि स्त्रियो के साथ विशेष प्रकार के व्यवहार की आवश्यकता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने भी स्त्री श्रमिको की समस्याओ पर एक पृथक् २७ सदस्यो की परामर्श देने वालो की नामिका (Panel) बनाई है और भारत का भी इसमे प्रतिनिधित्व है। भारत मे भी हमे इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि स्त्रियो मे कोमलता और भावुकता होती है और परिवार पर तथा देश की भावी सन्तति के पालन मे उनका बहुत प्रभाव होता है। हमे यह भी विस्मरण नही करना चाहिये कि "जो हाथ पालना झुलाते हैं, वही ससार पर शासन करते हैं।" अत स्त्रियो को एक विशेष प्रकार की सुरक्षा की आवश्यकता है। भारत मे स्त्री श्रमिको की शिक्षा, स्वास्थ्य तथा कल्याण के लिये विशेष पग उठाये जाने चाहियें। इनके सामाजिक स्तर को भी ऊँचा उठाने का प्रयत्न करना चाहिये, ताकि वे पुरुषो के साथ बराबर के साथी बनकर कार्य कर सकें।

२३

भारतीय कृषि श्रमिक

AGRICULTURAL LABOUR IN INDIA

कृषि श्रमिकों की संख्या

भारत सदैव से एक कृषि-प्रधान देश रहा है। सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार कृषि २४९,१२२,४४९ व्यक्तियों की जीविका का मुख्य साधन था, अर्थात् लगभग ६९·८ प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर ही निर्भर थी। इस कृषि जन-संख्या को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जाता है—

	पुरुष	स्त्रियाँ	योग
क) कृषक, जिनकी अपनी भूमि भी है ...	८५,११५,४४९	८२,२३१,०५२	१६७,३४६,५०२
ख) कृषक, जिनकी अपनी भूमि नहीं है ...	१६,२५६,१९५	१५,३८३,५२४	३१,६३९,७१९
(ग) खेतिहर श्रमिक ...	२२,३९५,८५२	२२,४१६,०७६	४४,८११,९२८
(घ) अखेतिहर भू-स्वामी...	२,४३८,१९०	२,८८६,१११	५,३२४,३०१
योग	१२६,२०५,६८६	१२२,९१६,७६३	२४९,१२२,४४९

१९६१ की जनगणना के अनुसार १८·८४ करोड़ कार्य करने वालों में से कृषि श्रमिकों की संख्या ३१,४८२,३०५ थी जिनमें १७,३११,४७४ पुरुष और १४,१७०,८३१ महिलायें थीं (पृष्ठ १२ भी देखिये)।

प्रथम तथा द्वितीय कृषि श्रमिक पूछताछ के अनुसार १९५०–५१ में देश में लगभग ३½ करोड़ कृषि श्रमिक थे जिनमें से १ करोड़ ९० लाख पुरुष, १ करोड़ ४० लाख स्त्रियाँ तथा २० लाख बालक थे। १९५६–५७ में कृषि श्रमिकों की अनुमानित संख्या ३ करोड़ ३० लाख थी, जिनमें से १ करोड़ ८० लाख पुरुष, १ करोड़ २० लाख स्त्रियाँ तथा ३० लाख बालक थे। १९५६–५७ में कृषि श्रमिक परिवारों की अनुमानित संख्या १ करोड़ ६३ लाख थी और १९५०–५१ में यह संख्या १ करोड़ ७९ लाख थी। ५७% १९५६–५७ में तथा ५०% १९५०–५१ में

भूमिहीन श्रमिक थे। सन् १६५१ की जनगणना के अनुसार खेतिहर श्रमिको की सख्या लगभग ४ करोड ४० लाख है। इस सम्बन्ध मे यह भी उल्लेखनीय है कि सन् १८८२ मे कृषि श्रमिको की कुल सख्या केवल ७५ लाख थी। इस प्रकार गत ६० या ७० वर्षों मे उनकी सख्या मे बडी तीव्रगति से वृद्धि हुई है। इसका कारण भी स्पष्ट है। डा० राधाकमल मुकर्जी के शब्दो मे "ऐसी प्रत्येक परिस्थिति ने जिसने छोटे-छोटे काश्तकारो की आर्थिक दशा को गिराया है, कृषि श्रमिको के सम्भरण (Supply) मे वृद्धि की है, उदाहरणार्थ, ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था मे सामान्य अधिकारो का नष्ट हो जाना जोतो का उप विभाजन, सामूहिक उद्यम (Collective Enterprise) का प्रचलित न रहना, लगान प्राप्त कर्ताओ की सख्या मे बढोतरी, बिना किसी रोक के भूमि का हस्तान्तरण तथा बन्धक रखना और कुटीर-उद्योगो का पतन।" इसके अतिरिक्त जनसख्या मे निर्पेक्ष वृद्धि, जमीदारी और जागीरदारी प्रथाओ का उन्मूलन, जैसे—भूमि सुधार के कार्य (जिनके कारण व्यक्तिगत कृषि और कृषि यन्त्रीकरण मे वृद्धि हुई), छोटे-छोटे काश्तकारो द्वार भूमि का विक्रय, आदि-आदि भी कृषि श्रमिक-वर्ग की सख्या मे वृद्धि का कारण बने है।

अग्र तालिका मे कुल जनसख्या, श्रमिको की कुल सख्या और कृषि श्रमिको (agricultural labourers) सहित कृषि कर्मियो (acricultural workers) की सख्या दी गई है। ये आंकडे (१६४१ को छोडकर) १६०१ से १६६१ तक की जन गणना (census) से लिये गये हैं—

कृषि श्रमिको के प्रकार (Kinds of Agricultural Workers)

सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि भारत मे कृषि श्रमिक निम्न लिखित परिवारो से प्राप्त होते है—(१) भूमिहीन ग्रामीण श्रमिक परिवारो से, (२) अशकालिक कृषक परिवारो से, तथा (३) अशकालिक शिल्पकारो अथवा ग्रामीण अनुचरो के परिवारो से। इस प्रकार कृषि श्रमिको को तीन भागो मे विभाजित किया गया है—(१) खेतो मे कार्य करने वाले श्रमिक, जैसे—कटाई करने वाले, हल चलाने वाले, इत्यादि। (२) साधारण श्रमिक, जैसे—कुआँ खोदने वाले और विविध कार्य करने वाले व्यक्ति, इत्यादि। (३) कुशल श्रमिक, जैसे—राज, मिस्त्री, बढई इत्यादि। कृषि श्रमिको की सख्या मे उपरोक्त वर्ग किस अनुपात से होते हैं, यह बात एक-समान नही पाई जाती वरन् क्षेत्र-क्षेत्र मे भिन्न होती है। खेत जोतने वाले दास श्रमिको (Serf Labour) का भी देश के कुछ भागो में प्रचलन है। दासता अधिकतर ऋण ग्रस्तता मे फँस जाने के कारण होती है। श्रमिक साधारणतया कुछ सामाजिक या धार्मिक दायित्वो को सम्पन्न करने के लिये ही जमीदार से ऋण लेता है। ऋण के बदले मे उसे ऋण का भुगतान करने तक काम करने की सहमति देनी पडती है। लेकिन यह ऋण घटने की अपेक्षा बढता ही चला जाता है। कभी-कभी तो केवल श्रमिक ही नही, अपितु उसका परिवार भी

(दस लाख की संख्या में)

वर्ष	कुल जनसंख्या	कुल श्रमिक	कृषि कर्मी				कुल श्रमिकों व कृषि कर्मियों में कृषि श्रमिकों का प्रतिशत	
			कृषि श्रमिक	कृषक	योग	कुल श्रमिकों का प्रतिशत	कुल श्रमिकों में	कृषि कर्मियों में
१	२	३	४	५	६	७	८	९
१९०१	२८६·२८	११०·७१	१७·२६	५१·९५	६९·२१ (२९·३)	६२·५२	१५·५९	२४·९४
१९११	२५२·१२	१२१·३०	२४·०६	५८·४७	८२·५३ (३२·७)	६८·०४	१९·८४	२९·१५
१९२१	२५१·३५	११७·७५	१९·६५	६१·६०	८१·२५ (३२·३)	६९·००	१६·६९	२४·१८
१९३१	२७९·०२	१२०·६७	२२·११	५७·६७	७९·७८ (२८·६)	६६·१२	१८·३३	२७·७२
१९५१	३६१·१३	१३९·४२	२७·५०	६९·७४	९७·७४ (२६·९)	६९·७५	१९·७२	२८·२८
१९६१	४३९·२४	१८८·५२	३१·४८	९९·५१	१३०·९९ (२९·८)	६९·४८	१६·७०	२४·०३

टिप्पणी—(१) ये आंकड़े 'इण्डियन लेबर इयर बुक १९६५' से लिये गये है।
(२) कालम नं० ६ में कोष्ठ के अन्दर जो आंकड़े दिये हैं, वे कालम नं० २ का प्रतिशत प्रकट करते हैं।

जीवन-भर के लिये इस दासता मे बध जाता है। ऐसे श्रमिको के रहने और कार्य करने की दशायें भी बडी शोचनीय होती है। इस प्रकार के दास बहुधा आदिम जातियो और दलित जातियो के होते हैं, और विभिन्न राज्यो में इन्हे भिन्न भिन्न नामों से पुकारा जाता है। उदाहरणतया, इन्हे बम्बई में 'कोलीज' और 'हालीज', मद्रास में 'पुलियान', बिहार मे 'कामिया', उडीसा मे 'चाकर', मध्य प्रदेश मे 'शलकारी' और उत्तर प्रदेश मे 'गोवरी' कहते हैं।

यहाँ यह बात भी विशेष ध्यातव्य है कि कृषि श्रमिक शब्द के अन्तर्गत वे सभी व्यक्ति आ जाते हैं, जो नकद या जिन्स के रूप मे मजदूरी लेकर कृषि कार्य करते है। ऐसे व्यक्तियों की अपनी भूमि होती भी है और नही भी होती। कृषि मे रोजगार का अर्थ खेतो तथा बागो आदि मे रोजगार से है तथा रोपाई करना (planting), मिट्टी तैयार करना, जोतना, बोना, निराई करना, काट-छांट करना तथा फसल की कटाई करने से सम्बन्धित उस विभिन्न कार्यो से है जो किसी अन्य व्यक्ति के निर्देशन मे किये जायें। १९६१ की जनगणना मे कृषि श्रमिको की परिभाषा निम्न प्रकार की गई है "कृषि श्रमिक उस व्यक्ति को कहते हैं जो किसी अन्य व्यक्ति की भूमि पर केवल एक मजदूर के रूप मे कार्य करता है (कृषि मे कोई निरीक्षण या निर्देशन का कार्य नही करता) और उसके लिए नकद, वस्तु के रूप मे या उपज के भाग के रूप मे मजदूरी प्राप्त करता है। उसे अन्तिम या चालू काम के मौसम मे कृषि श्रमिक के रूप मे ही काम करना होता है।" द्वितीय पचवर्षीय आयोजना के अनुसार कृषि श्रमिको की परिभाषा मे ऐसे व्यक्तियों को ले सकते हैं जो वर्ष मे जितने दिनो वास्तव मे कार्य करते है, उनमे से आधे से अधिक दिनो कृषि श्रमिक का कार्य करते हैं। इस आधार पर, प्रथम कृषि श्रमिक पूछताछ के अनुसार ग्रामीण परिवारो मे से ३०.४ प्रतिशत कृषि श्रमिक थे जिनमे से आधे व्यक्तियों के पास भूमि भी नही थी। अधिक स्पष्ट शब्दो में यह भी कहा जा सकता है कि कृषि श्रमिको की परिभाषा मे निम्नलिखित व्यक्ति आते हैं—हलवाहे, फसल की कटाई करने वाले, बीज की बुवाई करने वाले, निराई करने वाले और रोपाई करने वाले, आदि। यह भी विशेष उल्लेखनीय है कि खेतिहर श्रमिको की सख्या मे स्त्री तथा बाल श्रमिको की प्रतिशत सख्या काफी अधिक है। कृषि-कार्य, जैसे—निराई करना, सैलाई करना, फटकोरना, खाद डालना, फसलो की देखभाल करना आदि, बहुधा स्त्रियो और बाल श्रमिको द्वारा किये जाते हैं। बगाल के कुछ जिलो की सथल जाति मे यह बात अधिक पाई जाती है। सच यह है कि सथल जाति की स्त्रियाँ खेतिहर कार्यों और कृषि-कार्यों में अपने पुरुषो की अपेक्षा कई बातो मे अधिक श्रेष्ठ होती हैं। बाल श्रमिको को, जो निर्धन माता-पिता के यहाँ जन्म लेते है और रूढिवादी रीति-रिवाजो मे जिनका पालन-पोषण होता है, अत्यन्त कोमल आयु मे ही कृषि कार्यों पर लगा दिया जाता है। मुख्यतया बाल श्रमिक कार्य इसलिये करते है कि अपने परिवार की आय मे, जो पहले ही बहुत कम होती है, कुछ उन्नति कर सकें या कम से कम मालिक से खाना या जिन्स के रूप मे

मजदूरी लेकर परिवार का भार हल्का कर सकें। देश के लगभग सभी प्रदेशों में इन अल्प-वयस्क श्रमिकों का अत्यधिक शोषण किया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे कृषि श्रमिक भी हैं, जो भूमि पर कार्य करते हैं और कुल उपज का एक निश्चित भाग उन्हें मजदूरी के रूप में दे दिया जाता है। यह श्रमिक बटाई पर कार्य करते हैं और सामान्यतया बड़े-बड़े जमींदारों से पट्टे पर जमीन ले लेते हैं। ऐसे श्रमिकों की दशा अन्य श्रमिकों की अपेक्षा अधिक अच्छी होती है। इसका कारण यह है कि उनके पास कुछ अपनी पूंजी होती है और उनमें उद्यम करने का उत्साह भी होता है।

कृषि कार्यों की प्रकृति तथा रोजगार
(Nature of Agricultural Work and Employment)

कृषि रोजगार बहुधा मौसमी और सविराम प्रकृति का होता है। इसलिए कुशलता के अनुसार श्रमिकों का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता और यह वर्गीकरण केवल रोजगार की अवधि के आधार पर किया जा सकता है। कृषि श्रमिकों को कृषि मौसम में या तो अंशकालिक आधार पर स्थायी रूप से नियुक्त किया जाता है या कार्य की आकस्मिक आवश्यकताओं के अनुसार उन्हें नैमित्तिक रूप से रोजगार पर लगाया जाता है। रोजगार की अवधि फसल की किस्म तथा कृषि की उस पद्धति पर निर्भर होती है, जो सामान्यतया अपनाई जाती है। उदाहरणार्थ, नहर द्वारा सिंचित उत्तर पश्चिमी प्रदेश के भूखण्डों में तथा उत्तर-प्रदेश के केन्द्रीय तथा उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों के उन भूखण्डों में जहाँ गेहूँ पैदा होता है, रोजगार की अधिकतम अवधि, जिसके लिए श्रमिकों को कृषि-कार्य पर लगाया जाता है, वर्ष में लगभग ९ महीने आती है। पूर्वी प्रदेश के उन भूखण्डों में जहाँ गेहूँ पैदा नहीं होता यही अवधि वर्ष में केवल चार माह की होती है। सन् १९४९–५१ की कृषि श्रमिक पूछताछ के अनुसार यह अनुमान किया गया है कि रोजगार की अवधि वर्ष में केवल २१८ दिन है। इनमें से १८९ दिन श्रमिक कृषि-कार्य और शेष २९ दिन गैर-कृषि कार्य करते हैं। इस प्रकार कृषि श्रमिक साधारणतया दो प्रकार के होते हैं : *'सम्बद्ध' (Attached) तथा 'नैमित्तिक' (Casual)। सम्बद्ध श्रमिक वे श्रमिक होते हैं, जो एक ही बार में एक या एक से अधिक महीनों के लिए काम पर नियुक्त किये जाते हैं।* ऐसे श्रमिक निरन्तर कार्य में लगे रहते हैं और उनका मालिकों से किसी न किसी प्रकार का संविदा (Contract) भी होता है। नैमित्तिक श्रमिकों को समय-समय पर कार्य की आवश्यकताओं के अनुसार रोजगार दिया जाता है। सम्बद्ध श्रमिकों की संख्या कृषि श्रमिकों की कुल संख्या का लगभग १० प्रतिशत से १५ प्रतिशत तक होती है। कृषि श्रमिक पूछताछ के अनुसार नैमित्तिक वयस्क पुरुष श्रमिक को १९५०–५१ में औसत रूप से वर्ष में २०० दिन रोजगार मिलता था और १९५६–५७ में केवल १९७ दिन रोजगार मिलता था। १९५०–५१ में ७५ दिन और १९५६–५७ में ४० दिन वे स्वयं के कार्य पर लगे रहते थे। १९५०–५१ में ९० दिन तथा १९५६–५७ में १२८ दिन वे बेरोजगार रहते थे।

कृषि श्रमिकों की दशायें

देश के अधिकाश श्रमिक नितान्त दुःखी हैं। उनकी शोचनीय अवस्था के विषय मे भी सभी जानते हैं। उनका रोजगार स्थायी नही होता है, और वे बार-बार अनेक प्रकार की सामाजिक कठिनाइयो मे फस जाते हैं। ये कठिनाइयाँ उनकी दुर्बलता का गम्भीर कारण बन जाती है और वर्तमान कृषि-पद्धति में अस्थिरता आ जाती है। श्री जगजीवनराम ने इन अभागे करोडो श्रमिकों का अपने एक लेख मे बडा ही मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।[1] ये श्रमिक बहुधा अब भी आधे पेट भोजन करके ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उनकी आय इतनी भी नही होती कि वे दो समय ढग से भोजन भी कर सकें। किसी आरामदायक या सुख की वस्तु का तो उनके लिए प्रश्न ही नही उत्पन्न होता। जिन झोपड़ियो और छप्परों मे ये श्रमिक रहते है वे मनुष्य के आवास के लिये सर्वथा अनुपयुक्त होते है। कृषि श्रमिकों का वर्ग देश की अर्थ व्यवस्था का सबसे अधिक दुर्बल वर्ग है और इन्होंने सदा दैवी-दैवी आपत्तियां और कष्ट सहे हैं। ऊँचे मूल्यों और वस्तुओं के अभाव के भी सर्वप्रथम यही लोग शिकार होते है। सन् १९४५ मे अकाल जाँच आयोग ने बताया था कि बगाल के अकाल म भूख से मरने वालो की सबसे अधिक सख्या कृषि श्रमिकों की ही थी। कृषि मे चाहे जितने सुधार किये जायें, लेकिन खाद्य के उत्पादन मे तब तक वृद्धि नही हो सकती जब तक कि प्राथमिक उत्पादकों, अर्थात् भूमि को जोतने वालो को न्यूनतम आय की सुरक्षा का आश्वासन नही दिया जाता, और उनके देखभाल की समुचित व्यवस्था नही की जाती।

कार्य करने के घण्टे

कृषि श्रमिकों के कार्य घण्टे किसी श्रम विधान द्वारा नियमित नही किये गए हैं। इनके कार्य-घण्टे स्थान-स्थान पर मौसम-मौसम मे, तथा फसल-फसल में भिन्न भिन्न होते है। सामान्यतया कृषि में कार्य करने के घण्टे सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक होते है जबकि कारखानो मे कृत्रिम प्रकाश की सहायता से किसी भी समय काम किया जा सकता है। कृषि के कुछ विशिष्ट कार्यों मे, जैसे—हल चलाने, सिचाई तथा कटाई करने मे, कार्य-घण्टे भिन्न भी होते है। कभी कभी प्रातःकाल की ठडी ठडी वायु के समय तथा यदाकदा चांदनी रातो मे भी ढेकली से सिंचाई और फटकोरने आदि जैसे कार्य कर लिये जाते हैं। हलवाहे या तो मध्यान्तर लेकर लगातार कार्य करते हैं या फिर दो पारियों मे कार्य करते हैं जिनमे से एक पारी प्रातःकाल की होती है तथा दूसरी सध्या को। दोनो पारियों के मध्य में साधारणतया ४ से लेकर ६ घण्टे तक कार्य नही होता। ढेकली से सिंचाई करने वाले श्रमिक एक समय मे एक या दो घण्टे की पारियो मे कार्य करते है। इस कार्य के लिये साधारणतया श्रमिकों को दो टोलियों मे काम पर लगाया जाता है। इनमे से एक टोली पानी निकालने का काम करती है तथा दूसरी नालियो के माध्यम से

1. Sri Jagjivan Ram in an article "The Unfortunate Millions"

इस पानी को खेतों में पहुँचाने की व्यवस्था करती है। श्रमिकों की अपेक्षा छोटे-छोटे काश्तकार और उनकी पत्नियाँ लगातार कई घण्टो तक अधिक कार्य कर लेते है और मजदूरी पर लगाये गये ऐसे श्रमिको को वे पसन्द नही करते जो कार्य के घण्टो में कमी और अधिक मजदूरी की माँग करते हैं। यदि श्रमिको को मजदूरी कार्य के अनुसार या परिणाम के अनुसार मिलती है तो वह अधिक घण्टो तक कार्य करने में आपत्ति नही करते। सच तो यह है कि यदि उन्हे इस प्रकार मजदूरी दी जाती है तो फसल की कटाई के समय ये अधिक श्रम करने को तैयार हो जाते हैं, परन्तु यह बात वर्ष मे कुछ ही दिनों के लिए लागू होती है। इस बात को देखते हुए कि कृषि मे कार्य इतना थकाने वाला नही होता, जितना कारखानों मे होता है, यह कहा जा सकता है कि कृषि मे कार्य के घण्टे अधिक नही है। श्रमिक सामान्यतया दैनिक मजदूरी पर दिन मे लगभग ८ घण्टे कार्य करते हैं और दोपहर मे उन्हे दो घण्टे का मध्यान्तर भी मिल जाता है। सामान्यतया कार्य की आकस्मिक प्रकृति के कारण श्रमिकों को वर्ष के कुछ दिनो मे बहुत अधिक घण्टों तक कार्य करना पड़ता है, जबकि अन्य दिनो में वे प्राय बेकार ही रहते है। ठेका पर कार्य करने वाले श्रमिक अन्य श्रमिकों को अपेक्षा बहुत कम घण्टे कार्य करते है, परन्तु उनकी आय अधिक हो जाती है।

भारत की वर्तमान दशाओ मे कार्य के घण्टों से सम्बन्धित कोई भी विनियमन कृषि मे लागू करना सरल नही है। इसका कारण यह है कि भारत मे खेत बहुत छोटे-छोटे है और प्राय टुकड़ो मे बट गये है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन भी आज तक कृषि श्रमिको के लिए उनके कार्य करने के घण्टो मे सम्बद्ध कोई अभिसमय पारित नही कर सका है। कुछ देशों मे वर्ष भर के तथा दिन भर के कार्य करने के घण्टो को नियत करने के लिये विधान बनाये गये है। परन्तु इन विधानो मे स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार कार्य के घण्टे नियमित करने के लिये छूट देनी पड़ी है। श्रमिको को केवल अति-श्रम करने के विरुद्ध कुछ सुरक्षा प्रदान की गई है।

कृषि मे अपूर्ण रोजगार (Under-Employment)

कृषि श्रमिको की एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या मौसमी और सविराम प्रकृति के रोजगार की है। यह समस्या औद्योगिक संस्थाओ मे नही पाई जाती क्योकि कारखानो मे श्रमिको को सम्पूर्ण वर्ष के लिए काम पर लगाया जाता है। श्रम मन्त्रालय ने कुछ राज्यो के थोड़े से गावो मे पारिवारिक गहन सर्वेक्षण किए थे। पश्चिमी बगाल के एक गाँव मे सर्वे करने पर ज्ञात हुआ कि कृषि श्रमिक वर्ष मे औसतन केवल २२० दिन कार्य करते है। इनमे से १६६ दिन वे कृषि कार्य करते थे और शेष ५४ दिन गैर-कृषि कार्य। मद्रास के एक अन्य गाँव मे सर्वेक्षण करने पर ज्ञात हुआ कि कृषि श्रमिको को वर्ष मे २०० दिन रोजगार मिलता है। इसी प्रकार बिहार मे १५१ दिन, और मैसूर मे १२१ दिन वर्ष भर मे कार्य मिल पाता

है। अन्य पूछताछो से भी यह पता चलता है कि मद्रास मे, जहाँ एक तिहाई भाग मे धान की खेती की जाती है, यदि एक फसल हो तो वर्ष मे केवल १० सप्ताह कार्य मिलता है, और यदि दो फसलें हो तो वर्ष मे लगभग १६ सप्ताह कार्य मिलता है। बाजरा और तिलहन आदि के लिए सूखी भूमि पर खेती करने से भी वर्ष मे केवल तीन या चार सप्ताह ही कार्य मिलता है। पजाब मे, मि० कैलबर्ट ने अनुमान लगाया था, कि कृषि मे प्रति वर्ष केवल २०० दिन ही कार्य मिल पाता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कृषि श्रमिक पूछताछो के अनुसार भी यह ज्ञात होता है कि कृषि श्रमिको का रोजगार बहुत अपूर्ण है। यही निष्कर्ष कृषि श्रमिको की अन्य पूछताछो से भी निकलता है। इन सब बातो से यह ज्ञात होता है कि कृषि श्रमिको को वर्ष मे अधिक से अधिक ६ माह के लिये ही मजदूरी पर रोजगार मिल पाता है। वर्ष के शेष काल मे वे या तो कोई दस्तकारी कार्य करते हैं या फिर किसी अन्य प्रकार के कार्य, जैसे—बैलगाडी पर सामान ढोने का, खाई खोदने और सडक बनाने का कार्य दैनिक मजदूरी पर करते हैं। परन्तु ऐसे रोजगार उनकी आर्थिक आवश्यकताओ की पूर्ति करने मे पर्याप्त नही होते।

कृषि श्रमिको की मजदूरी

केवल यही समस्या नही है कि कृषि श्रमिको को सम्पूर्ण वर्ष के लिये लाभदायक रोजगार नही मिलता अपितु वह मजदूरी भी, जो उन्हे कृषि कार्य के लिए मिलती हैं औद्योगिक श्रमिको की मजदूरी की अपेक्षा बहुत कम होती है तथा ऐसे श्रमिको की मजदूरी से भी कम होती है जो उसी क्षेत्र मे लगभग उसी प्रकार के गैर कृषि व्यवसायो म कार्य करते है। कृषि मजदूरी और उसकी अदायगी की पद्धति मे भी बहुत कम समानता पाई जाती है। मजदूरी और उसकी अदायगी की पद्धति केवल राज्य राज्य म ही भिन्न नही होती, अपितु हर राज्य के प्रत्येक जिले और जिले के हर उपक्षत्र मे भी भिन्न होती है। एक ही प्रकार के कार्य के लिए भी निम्न जाति के श्रमिको, स्त्रियो और बालको को उच्च जाति के श्रमिको और पुरुषो की अपेक्षा प्राय कम मजदूरी दी जाती है। कुछ व्यवसायो मे स्त्री श्रमिको को रोजगार पर तो लगाया जाता है परन्तु उनकी मजदूरी पुरुषो की मजदूरी की अपेक्षा कम होती है यद्यपि यह भी सत्य है कि वे पुरुषो की अपेक्षा निश्चय ही कही अधिक कार्यकुशल होती हैं।

मजदूरी की अदायगी की पद्धतियो मे भी अधिक भिन्नता पाई जाती है। कुछ राज्यो के गाँवो मे नकद रूप से अदायगी करने की प्रथा है और कुछ राज्यो मे केवल जिन्स के रूप मे ही अदायगी की जाती है, तथा कुछ राज्यो मे जिन्स और नकदी दोनो रूप मे मजदूरी दी जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ कृषि कार्यों के लिये, जैसे—कटाई करने तथा फटकोरने आदि के लिये, मजदूरी की अदायगी उजरत के रूप मे की जाती है। कृषि श्रमिको के पारिश्रमिक कभी कभी विभिन्न रीतियो से नियत किये जाते है, जैसे-जोत के लिए भूमि देना, कपडा और अनाज देना, नकदी

देना, भोजन और मकान की व्यवस्था कर देना, आदि। इस प्रकार उनकी वित्तीय क्षमता का मूल्यांकन करना सरल नहीं है। यद्यपि नकद रूप मे अब मजदूरी की अदायगी करने का अधिक प्रचलन हो गया है, तथापि जिन्स के रूप में मजदूरी देना अब भी काफी प्रचलित है, विशेषतया कृषि अनुचरों को जिन्स के रूप मे ही मजदूरी मिलती हैं।

कृषि श्रमिकों के लिए मजदूरी की दरों का अनुमान करने के हेतु विभिन्न राज्यों में पूछताछ की गई है। बम्बई मे सन् १९४९–५० के खेतिहर श्रमिको के लिए प्रतिदिन मजदूरी की दरें लगभग १ रु० २ आने से लेकर १ रु० ८ आ० ५ पा० तक अनुमानित की गई थी। अकुशल श्रमिकों के लिये यही दरे १ रु० ६ आ० १ पा० और १ रु० ९ आ० १ पा० के मध्य अनुमानित की गई थी। इसके अतिरिक्त कुशल श्रमिकों के लिये यह दरें २ रु० ७ पा० और ३ रु० ६ आने ६ पा० के मध्य थीं। बिहार में जिन्स के रूप मे अदायगी करने की प्रथा अब भी प्रचलित है, यद्यपि कुछ स्थानो में नकद रूप में भी मजदूरी दी जाती है। अगस्त सन् १९५१ में पुरुष खेतिहर श्रमिकों की मजदूरी १ रु० २ आ० ९ पाई तथा १ रु० १० आने के मध्य और स्त्री श्रमिकों की मजदूरी १२ आ० तथा १ रु० ८ आ० ४ पा० के मध्य थी। उत्तरी बिहार में दक्षिण बिहार की अपेक्षा कम मजदूरी दी जाती है। 'सम्बद्ध' श्रमिको को सामान्यतः १½ सेर धान और ६ छटाँक पका हुआ चावल प्रति दिन दिया जाता है, जिसकी लागत ११ आ० ६ पा० प्रतिदिन आती है। अनेक जिलों मे मजदूरी बहुत कम पाई जाती है। पश्चिमी बंगाल के विभिन्न गावों मे अनेक पूछताछें की गई है, जिनसे यह ज्ञात हुआ है कि दैनिक मजदूरी विभिन्न स्थानो पर १ रु० ८ आ० से लेकर २ रु० १२ आ० तक है।

उत्तर प्रदेश के चार गाँवो मे ग्रामीण मजदूरी के विषय में पूछताछ की गई थी। इसमें से दो गाँव मेरठ जिले मे और दो गाँव झाँसी जिले मे थे। मेरठ जिले के एक गाँव मे पूछताछ करने से यह ज्ञात हुआ कि 'सम्बद्ध' श्रमिको को हल आदि चलाने के लिये एक रुपया प्रतिदिन दिया जाता था और साथ ही ४ छटाँक आटा और २ छटाँक गुड भी दिया जाता था। नैमित्तिक हलवाहो को दो रुपया प्रतिदिन मजदूरी दी जाती थी। मेरठ के एक अन्य गाँव में नकद रूप मे मजदूरी दिये जाने का प्रचलन था। सम्बद्ध हलवाहो को २० रु० मासिक मजदूरी के अतिरिक्त ३ छटाँक आटा भी प्रतिदिन दिया जाता था। जिन श्रमिको को निराई तथा कटाई आदि के कार्यों में उजरत दर पर नियुक्त किया जाता था, उन्हे बिना किसी अन्य लाभ के आठ आना प्रति बीघा के हिसाब से मजदूरी दी जाती थी। कटाई के लिये पुरुष श्रमिको को ५ सेर और स्त्री श्रमिको को ३ सेर कटा हुआ अनाज प्रतिदिन उजरत के रूप में दिया जाता था। झाँसी के एक गाँव मे खेतिहर अनुचरों को हल चलाने और हेंगी चलाने आदि कार्यों के लिए प्रतिदिन आठ आना मजदूरी दी जाती थी। कटाई के लिए मजदूरी जिन्स के रूप में दी जाती थी। यह जिन्स २ सेर ८ छटाँक गेहूँ या अनाज के रूप में होती थी। नैमित्तिक श्रमिकों

को १२ आना प्रतिदिन मजदूरी दी जाती थी। भाँसी के अन्य गाँवों मे स्थायी खेतिहर अनुचरो को १६ रु० मासिक तो मिलता ही था, इसके अतिरिक्त उन्हें चार रोटियां भी प्रतिदिन दी जाती थीं। दो बीघा भूमि भी उन्हे प्रदान की जाती थी, जिस पर उन्हे किसी प्रकार का लगान नही देना पडता था। इसके अतिरिक्त निराई के लिये उन्हे १० आना प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी दी जाती थी और कटाई के लिये उन्हे तीन सेर अनाज मिलता था। निराई और कटाई के लिए स्त्रियो को भी नैमित्तिक श्रमिको के रूप मे रोजगार पर लगाया जाता था। निराई की दर आठ आना प्रतिदिन थी। कटाई के लिए काटे गये अनाज का २ सेर ८ छटाक अनाज मजदूरी के रूप मे दिया जाता था। इस गाँव के हलवाहे दिन मे १० घण्टे कार्य करते थे, जबकि अन्य कार्यों मे लगे हुए श्रमिक दिन मे केवल ८ घण्टे ही कार्य करते थे। आजमगढ जिले के एक अन्य पाँचवें गाँव मे की गई पूछताछ से यह ज्ञात हुआ है कि नैमित्तिक कृषि श्रमिको को चार आने से लेकर ८ आने तक प्रतिदिन मजदूरी दी जाती थी और २ आने प्रतिदिन इसके अतिरिक्त मिलते थे। सम्बद्ध श्रमिको को दो रुपया प्रतिमाह इस मजदूरी से ऊपर मिलते थे या उनको बिना लगान की एक बीघा भूमि तथा ४ रुपया प्रतिवर्ष इसके अतिरिक्त मिलता था।

अजमेर मे कृषि श्रमिको की दैनिक मजदूरी पुरुषो के लिए १ रु० ४ आ०, स्त्रियो के लिए १० आ० तथा बालको के लिए ८ आ० है। कुर्ग मे मजदूरी की दरें सामान्यतया पुरुषो के लिए १ रु० १२ आ०, स्त्रियो के लिए १ रु० ८ आ० तथा बालको के लिए १ रु० है। हैदराबाद मे मजदूरी सामान्यतया पुरुषो के लिए १ रु० से लेकर १ रु० ८ आ० तक, स्त्रियो के लिए ४ आ० से लेकर १२ आ० तक तथा बालको के लिये ३ आ० से लेकर १२ आ० तक होती है। सन् १९५१ मे मद्रास मे प्रतिदिन मजदूरी सामान्यतया पुरुषो के लिए १० आ० ६ पाई से लेकर २ रु० ८ आ० तक तथा स्त्रियो के लिए ८ आ० से लेकर १ रु० १४ आ० तक थी। यह युद्धोपरान्त बढी हुई मजदूरी की दर थी। सन् १९४१ में तो यह मजदूरी और भी कम थी। पुरुषो को ४ आ० ५ पाई तथा स्त्रियो को ३ आ० २ पाई प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी दी जाती थी। मद्रास के गावो मे की गई पूछताछ से भी यह पता चलता है कि 'सम्बद्ध' श्रमिको को ८ रु० प्रति माह मजदूरी दी जाती थी। इसके अतिरिक्त उन्हे कुछ कपडे भी दिये जाते थे और दोपहर मे 'काँजी' भी मिलती थी। मध्य प्रदेश मे सभी प्रकार के कृषि श्रमिको की सामान्य मजदूरी १ रु० से लेकर १ रु० ४ आ० तक थी। कुछ स्थानो पर बडे-बडे जमीदार लगभग ७० रु० से लेकर ८० रु० तक तथा ३ खन्दी ज्वार से लेकर ४ खन्दी ज्वार तक वार्षिक मजदूरी देते थे (एक खन्दी=२० मन)। सन् १९४८-४९ मे ज्वार का मूल्य ६० रु० प्रति खन्दी था। अतः खेतिहर अनुचरो की कुल आय लगभग २५ रु० प्रति माह आती थी। मध्य प्रदेश मे नैमित्तिक श्रमिको को १ रु० ४ आ० प्रतिदिन मजदूरी मिलती थी जबकि नैमित्तिक स्त्री श्रमिको और बाल श्रमिको को ६ आ०

से लेकर ८ ग्रा० तक प्रतिदिन मजदूरी दी जाती थी। कृषि श्रमिक पूछताछ के अनुसार कृषि श्रमिक परिवार की वार्षिक औसत आय सन् १६५०-५१ मे ४४७ रु० तथा सन् १६५६-५७ में ४३७ रु० थी और पुरुष नैमित्तिक श्रमिकों की औसत दैनिक मजदूरी सन् १६५०-५१ मे १०६ नये पैसे तथा सन् १६५६-५७ में ६६ नये पैसे थी। स्त्री श्रमिको की दैनिक मजदूरी सन् १६५०-५१ में ६८ नये पैसे तथा सन् १६५६-५७ मे ५६ नये पैसे थी। बाल श्रमिकों की औसत दैनिक मजदूरी सन् १६५०-५१ मे ७० नये पैसे और सन् १६५६-५७ में ५३ नये पैसे थी। कृषि श्रमिकों और औद्योगिक श्रमिकों की मजदूरी का अन्तर भी बहुत अधिक है। कृषि श्रमिको की प्रति व्यक्ति वार्षिक आय औद्योगिक श्रमिकों की अपेक्षा इस प्रकार है : बंगाल में १६० रु०, (औद्योगिक श्रमिकों की २६८ रु०) ; बिहार में ११६ रु०, (औद्योगिक श्रमिकों की ३३२ रु०) ; उड़ीसा में ७६ रु०, (औद्योगिक श्रमिकों की १४५ रु०) ; मध्य प्रदेश में ८७ रु०, (औद्योगिक श्रमिकों की २६२ रु०) ; पंजाब मे १२१ रु०, (औद्योगिक श्रमिकों की २१६ रु०) ; बम्बई मे ८८ रु०, (औद्योगिक श्रमिको की ३६८ रु०)।

कृषि श्रमिको का जीवन-स्तर

कृषि श्रमिकों की यह न्यून मजदूरी ही इस बात के लिए उत्तरदायी है कि उनका जीवन-स्तर मानवीय-स्तर से भी नीचा होता है। वर्ष मे लगभग ६ माह कृषि-कार्य करके अर्जित की गई इस थोड़ी सी मजदूरी से कृषि श्रमिक के लिये निर्वाह करना असम्भव हो जाता है, क्योंकि शेष समय उसके पास कोई अन्य रोजगार नही होता। इसका परिणाम यह निकलता है कि वे प्राय. आधे पेट भूखे रहते है। सभी प्रकार के कृषि-कार्यों को उचित रीति से करने के लिये भी उनमे पर्याप्त शारीरिक बल नही होता। उनके पारिवारिक बजटों में सदा घाटे का ही रोना रहता है।

कृषि श्रमिको के पारिवारिक बजटों का विश्लेषण करने से यह भी ज्ञात होता है कि कृषि श्रमिक का आहार, स्तर और मात्रा दोनों ही रूप मे, असन्तोष-जनक होता है। भोजन पर सबसे अधिक व्यय होता है जिस पर कृषि श्रमिको के परिवार की कुल आयु की ७० प्रतिशत से लेकर ८४ प्रतिशत राशि व्यय हो जाती है। साधारणतया कुल व्यय का ८५ प्रतिशत तो भोजन सामग्री पर तथा १·५% चीनी और साग-सब्जियों पर और २·४ प्रतिशत केवल नमक और मसालों पर होता है। अन्य आवश्यक भोजन सम्बन्धी वस्तुओं, जैसे दूध तथा घी आदि, का तो कभी-कभी ही प्रयोग किया जाता है। जहां तक माँस का प्रश्न है, यह केवल विशेष सामाजिक अवसरों पर ही खाया जाता है। २·२ प्रतिशत वार्षिक व्यय ईंधन, प्रकाश और मकान के किराए आदि पर होता है। पान सुपारी, तम्बाकू और मद्यपान तथा अन्य विविध मदों पर ८·३ प्रतिशत व्यय होता है। कृषि श्रमिक पूछताछों के अनुसार ग्रामीण परिवारों का उपभोग वस्तुओं पर वार्षिक व्यय

१६५०–५१ मे ४६१ रु० था और यह बढकर १६५६–५७ मे ६१७ रु० हो गया था। १६५६–५७ मे प्रतिशत व्यय निम्न प्रकार था (१६५०–५१ के आँकडे कोष्ठक मे दिए हुए है)। आहार ७७ ३ (८५ ३), कपडा और जूते ६·१ (६ ३), ईंधन व प्रकाश ७·६ (१ १); विविध मदें तथा सेवायें ८ ७ (७ ३)।

इस प्रकार श्रमिक के पास किसी आराम या विलासिता की वस्तु पर व्यय करने के लिय कुछ नही बच पाता और न ही वह कुछ बचत कर सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि आकस्मिक सकट या सामाजिक उत्सवो तथा धार्मिक त्यौहारो के अवसरो आदि पर वह धन उधार लेने के लिये विवश हो जाता है। क्योंकि श्रमिको का भोजन बडा असन्तोषजनक होता है, इसलिये वे सामान्यतया बडी आसानी स अनेक प्रकार के रोगो का शिकार हो जाते हैं और इनका उनके स्वास्थ्य तथा उनकी कार्यकुशलता पर बहुत बुरा प्रभाव पडता है। कभी-कभी एक छोटी सी महामारी भी श्रमिक वर्ग के असख्य प्राणियो का सहार कर देती है।

केवल मजदूरी की दरो से ही हमे कृषि श्रमिको के जीवन-स्तर का ज्ञान नही हो सकता, अपितु उनके रोजगार की मौसमी प्रकृति का भी विचार करना होगा। जैसा कि मिसेज होवर्ड ने अपनी पुस्तक 'कृषि मे श्रमिक' (Labour in Agriculture) मे लिखा है 'श्रमिको की सबसे बडी समस्या यह नही है कि उनको मजदूरी की दर कितनी मिलती है, अपितु यह है कि उन्हे काम मिलता भी हैं या नहीं। इस प्रकार समस्या यह नही है कि वह कितना कमाते है, अपितु यह है कि उन्हे कमाने का अवसर भी मिलता है या नहीं।" भारत के ऐसे भूखण्डो मे, जहाँ सिंचाई की व्यवस्था नही होती, कृषि अधिकतर वर्षा पर निर्भर रहती है। *यह वर्षा कृषि के लिये एक जुआ है। यदि वर्षा हो गई तो खेती अच्छी हो जाती* है, अन्यथा फसल खराब हो जाती है। जब मानसून नही आती, तो श्रमिको को प्राय बेकार रहना पडता है। ऐसी स्थिति मे अपने जीवन-निर्वाह के लिये वे बहुत अल्प मजदूरी पर कार्य करने के लिये बाध्य हो जाते हैं। अत रोजगार इस बात पर अधिक निर्भर करता है कि भूमि मे सिंचाई की व्यवस्था है या नही, कितनी फसलें बोई जाती हैं तथा परिवार के कितने सदस्य कृषि-कार्य मे लगे हुये हैं।

कृषि श्रमिको की ऋणग्रस्तता

कृषि श्रमिको के जीवन मे एक अन्य बाधा यह भी है कि वे निरन्तर ऋण से लदे रहते है। एक बार ऋणग्रस्त होने के उपरान्त वे आजीवन उससे अपना उद्धार नहीं कर पाते। ग्रामीण ऋण की समस्या ने समय-समय पर अनेक राज्य सरकारो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है और देश मे ऋणग्रस्तता कितनी है, इस विषय मे अनेक अनुमान लगाय गए है। सन् १८७५ के 'दक्षिण रैय्यत आयोग' के अनुसार सरकारी भूमि के जोतने वालो मे से एक तिहाई ऋणग्रस्त थे और उनका ऋण मालगुजारी से १८ गुना था। सन् १८८० के अकाल आयोग ने

यह निष्कर्ष निकाला था कि भारत में कृषक वर्ग का एक तिहाई भाग बुरी तरह ऋण मे जकड़ा हुआ था। सन् १९०१ का अकाल आयोग इस परिणाम पर पहुँचा था कि ऋण के कारण बम्बई के २५ प्रतिशत किसान अपनी भूमि से बेदखल कर दिये गये थे। सन् १९११ में सर एडवर्ड मैकलेगन ने ब्रिटिश भारत में कुल ग्रामीण ऋण ३०० करोड रुपये अनुमानित किया था। श्री एम० एल० डार्लिंग ने सन् १९१८ में यही ऋण ६०० करोड रुपये का आँका था। सन् १९३० में भारतीय बैंकिंग पूछताछ समिति ने इस ऋण को ९०० करोड़ रुपये बताया था। उत्तर प्रदेशीय 'ऋण सहायता समिति' तथा बगाल के आर्थिक पूछताछ बोर्ड ने भी कृषक वर्ग की ऋणग्रस्तता का उल्लेख किया था। युद्ध-काल में सन् १९४५ के अकाल आयोग के अनुसार मूल्यों में वृद्धि और कृषि के लाभों के कारण ग्रामीण ऋण की मात्रा में बहुत अधिक कमी हो गयी थी। 'रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया' की रिपोर्ट में भी इस बात की ओर संकेत किया गया था कि अधिकाश ग्रामीण ऋण युद्ध-काल मे अदा कर दिये गये थे।

परन्तु जो भी अनुमान लगाये गए थे वे सम्पूर्ण कृषक वर्ग के लिए थे। जहाँ तक कृषि श्रमिक का सम्बन्ध है, इस विषय मे यही सूचनायें मिली है कि वह आज भी ऋण के बोझ से पीडित है। श्री बी० वी० नारायण स्वामी ने मद्रास में ग्रामीण ऋणग्रस्तता से सम्बद्ध अनुसन्धान किये थे। इसके उपरान्त उन्होने यह निष्कर्ष निकाला थ कि युद्धकाल में भूमिहीन श्रमिकों की ऋणग्रस्तता मे लगभग ४५·६ प्रतिशत वृद्धि हुई थी। कुल ऋणग्रस्तता में जो कमी आई भी है उसका लाभ भी भूमिधर कृषक वर्ग को ही मिला है। भूमिहीन श्रमिकों का ऋण ५·७ रु० से बढ कर ८·३ रु० प्रति व्यक्ति हो गया है। कृषि श्रमिक पूछताछो के अनुसार भी कृषि श्रमिको का कुल ऋण १९५०–५१ में ८० करोड रुपए और १९५६–५७ मे १४३ करोड रुपए था। ऋण की औसत राशि प्रति परिवार १९५०–५१ में १०५ रु० और १९५६-५७ मे १३८ रु० आती थी तथा १९५०-५१ मे ४५ प्रतिशत तथा १९५६–५७ में ६४ प्रतिशत परिवार ऋणग्रस्त थे। इस प्रकार मूल्यों मे वृद्धि होने से कृषि श्रमिकों को अधिक लाभ नही हुआ है, क्योकि उसी अनुपात मे उनकी मजदूरी में वृद्धि नही हो सकी है। इसके अतिरिक्त कृषि व्यवसाय मे जो लाभ हुये हैं उनमें से भी उन्हें अधिक भाग नहीं मिल पाया है, परन्तु उनके निर्वाह-खर्च मे वृद्धि हो गई है।

कृषि श्रमिक को उपभोग के लिये तथा सामाजिक दायित्व को सम्पन्न करने के लिए प्राय: धन उधार लेना पडता है। यह ऋण स्थायी होता है और कभी-कभी पैतृक सम्पत्ति के रूप में इसका भार पुत्र को वहन करना पडता है। धन उधार देने की प्रणाली भी बडी दोषपूर्ण रही है और ऐसे ऋणों पर सामान्यतया ब्याज की बहुत ऊँची दर ली जाती है। कृषि श्रमिको के पास भूमि भी नही होती, जिसकी जमानत पर वह धन उधार ले सकें। इसके अतिरिक्त वह ऋण भी सामान्यतया उन्ही जमीदारो से लेते है, जिनके यहाँ वे कार्य करते है। इसका

परिणाम यह होता है कि श्रमिक ऋणग्रस्तता का अनुचित लाभ उठाकर उसका शोषण किया जाता है और उसे बहुत न्यून मजदूरी पर कार्य करने के लिये बाध्य कर दिया जाता है। अपने दिन प्रतिदिन के व्ययों को पूर्ण करने के लिए यदि वह ऋण न लेता तो निश्चय ही, इस मजदूरी से कहीं अधिक मजदूरी वह पा सकता था। जैसा कि पहले ही संकेत किया जा चुका है, इस ऋणग्रस्तता ने ही दास श्रमिक की प्रथा को जन्म दिया है, अर्थात् जब तक ऋण की अदायगी नहीं हो जाती, श्रमिक ऋणदाता के यहाँ कार्य करने के लिये विवश होकर बंध जाता है।

कृषि श्रमिकों के मकानों की दशायें

इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि कृषि श्रमिकों के मकानों की दशायें अत्यन्त शोचनीय हैं। वे गाँवों के सबसे बुरे मकानों या झोंपड़ियों में रहते हैं। सामान्यतया उनके पास अपनी कोई भूमि भी नहीं होती। इसका परिणाम यह होता है कि छोटे-छोटे मकान बनाने के लिये भी भूमि के लिये उन्हें जमींदारों की दया पर आश्रित रहना पड़ता है। यदि मकानों के लिये भूमि मिल भी जाती है, तो बेगार के रूप में श्रमिक को बहुत ही निम्न मजदूरी पर अपनी सेवायें अर्पित करनी पड़ती है। उनके मकानों में स्वच्छता का पूर्णतया अभाव होता है। सच बात तो यह है कि पुरुषों और पशुओं दोनों को एक ही छत के नीचे रहना और सोना पड़ता है। इसलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि कृषि श्रमिक-वर्ग में बीमारियाँ अधिक पायी जाती हैं। वर्षा-ऋतु तथा शीतकाल के महीनों में मकानों की बुरी दशा होने के कारण श्रमिक को बहुत कष्ट भोगना पड़ता है।

कृषि श्रमिकों के मकानों की दशाओं में सुधार करने के लिये कुछ न कुछ पग उठाये जाना अत्यन्त आवश्यक है। शहरी मकानों के सम्बन्ध में तो हम बहुत कुछ सुनते हैं, अब वह समय आ गया है कि ग्रामीण मकानों की ओर भी कुछ ध्यान दिया जाय, विशेषतया भूमिहीन कृषि श्रमिकों के मकानों की ओर ध्यान देना आवश्यक है। यदि मकानों के लिये भूमि उपलब्ध कर दी जाती है और सस्ती दरों पर सामान की व्यवस्था कर दी जाती है तो श्रमिक को अपने ही श्रम से मिट्टी या फूस के स्वच्छ मकानों का निर्माण करने के लिये प्रेरित किया जा सकता है। केन्द्रीय सरकार ने अक्तूबर १९५७ में एक ग्रामीण आवास प्रायोजना बनाई है। इस योजना के अन्तर्गत सरकार द्वारा मकान बनाने के खर्चे का दो तिहाई भाग ऋण के रूप में दिया जाता है, जो २० वार्षिक किस्तों में अदा किया जा सकता है। सामुदायिक विकास खण्डों में लगभग ५ हजार गाँवों में आवास प्रायोजनायें प्रारम्भ की गई है और गुजरात को छोड़कर विभिन्न राज्यों में ग्रामीण आवास विभाग खोले गये हैं। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में ग्रामीण मकानों के लिये १० करोड़ रु० की व्यवस्था की गई थी तथा तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में ग्रामीण

आवास के लिये १२·७ करोड रु० की व्यवस्था थी। ग्रामीण आवास योजना के लिए चौथी आयोजना के मसौदे में २५ करोड रु० की व्यवस्था है। तृतीय आयोजना काल में, कृषि श्रमिकों को मकानों की भूमि उपलब्ध कराने के लिए गाँवो में भूमि-अधिग्रहण के लिए ५ करोड रु० नियत किये गये थे। मकान बनाने के लिये निर्माण-लागत की दो तिहाई भाग (किन्तु प्रति गृह २००० रु० से अधिक नहीं) कर्ज के रूप मे देने की भी व्यवस्था की गई थी। सामुदायिक योजना के अन्तर्गत भी गावों मे नए मकान बनाए गए हे और पुराने मकानो की मरम्मत की गई है। कुछ राज्य सरकारों ने भी कृषि श्रमिकों को मकान सम्बन्धी सुविधायें प्रदान करने के हेतु पग उठाये है और उन्हे जबर्दस्ती बेदखल कराने के विरुद्ध संरक्षण दिया है। पचायत समितियो तथा ग्रामीण पंचायतों को इस योग्य बनाया जा रहा है कि वे भूमिहीन कृषि श्रमिको के लिये मकानों की अतिरिक्त भूमि प्राप्त करने का प्रबन्ध कर सकें। आन्ध्र में सरकार ने हरिजनों के लिये बिना मूल्य के मकानों की व्यवस्था करने के हेतु १० लाख रु० की एक विशेष निधि बनाई है। ये हरिजन बहुधा कृषि श्रमिक ही होते हैं। बिहार सरकार ने भूमिहीन और गृह-हीन हरिजनो के लिए झोंपडियो के निर्माण की योजना बनाई है। इस योजना मे प्रति झोपडी ७६८ रु० की लागत का अनुमान किया गया है। लागत का ५० प्रतिशत सरकार अशदान के रूप मे देगी। मध्य प्रदेश मे कृषि कारीगरों या श्रमिकों को बिना किराया लिए मकान बनाने के लिए भूमि प्रदान कर दी गई है। मद्रास के हरिजनों के लिए भी, जो प्रायः कृषि श्रमिक ही होते हैं, यही व्यवस्था की गई है। उत्तर प्रदेश में भूमिहीन श्रमिकों को मकान बनाने के लिए आबादी मे भूमि निर्दिष्ट करने में प्राथमिकता दी गई है। केरल मे कृषि श्रमिकों के लिये ग्रामीण क्षेत्रो मे १०० मकानो का निर्माण करने के लिये आवास बोर्ड की स्थापना की गई है और हरिजनों के मकानों के लिए १·३० लाख रु० की व्यवस्था की गई है। मद्रास में हरिजनों के आवास के लिए ३४·८४ लाख रु० की व्यवस्था की गई है। चकबन्दी योजनाओं के अन्तर्गत भी पजाब तथा देहली जैसे कुछ राज्यो मे हरिजनो और कृषि श्रमिको के रहने के लिये मकान बनाने के लिए भूमि प्रदान की गई है।

कृषि श्रमिकों का सगठन

यह भी देखने मे आता है कि कृषि श्रमिको का औद्योगिक श्रमिको जैसा कोई सगठन नही है। औद्योगिक श्रमिक तो संघों के माध्यम से अपने हितों की रक्षा कर लेते हैं, लेकिन कृषि श्रमिक अभी तक अपने आपको सगठित नही कर पाये है। इसका कारण यह है कि वे दूर-दूर तथा अलग-अलग गाँवो मे रहते हैं। जैसा कि श्री जगजीवन राम ने सुझाव दिया है, कृषि श्रमिकों को सगठित करने का सबसे अच्छा उपाय सहकारी समितियाँ ही है। उन्हे सहकारी समितियो का सदस्य बनने का अवसर देना चाहिये, जिसके लिये यदि आवश्यक हो तो समिति के नियमो को सरल कर देना चाहिये। इन समितियो की पचायतो मे भी कृषि श्रमिको का

विशेष रूप से प्रतिनिधित्व होना चाहिये। उनके लिये पृथक् समितियो का भी निर्माण किया जा सकता है। यदि वे एक बार किसी तरह सगठित हो गये, तो अपनी देखभाल करने मे स्वय समर्थ हो जायेंगे। इसके अतिरिक्त ऐसी समितियाँ लाभदायक कार्य भी कर सकती हैं, जैसे—गौण व्यवसायो का सचालन करना, ग्रामीण मकानो की दशा मे उन्नति करना, कृषि श्रमिको द्वारा उत्पादित सामान की बिक्री की व्यवस्था करना, ब्याज की कम दरो पर कृषि श्रमिको को ऋण दिलाना तथा उनमें मितव्ययिता की आदत डालना, आदि। यहाँ यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ काँग्रेस ने कृषि श्रमिको के क्षेत्र में स्वय कार्य करने का निश्चय किया है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह कुछ श्रमिको को प्रशिक्षण भी दे रही है।

कृषि भूमि सुधार

यहाँ इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि गत कुछ वर्षों से कृषक वर्ग की उन्नति के लिये कई विधान बनाये गये है। भारत सरकार ने कृषि सम्बन्धी विवादो को रोकने तथा लगान उपकर और इसी प्रकार के सम्बन्धित विषयो मे विकास तथा आसामियो को तत्काल सहायता देने के लिये सन् १९४९ मे अजमेर मारवाड कृषि सहायता अध्यादेश जारी किया। बिहार, उत्तर प्रदेश तथा मद्रास आदि मे जमीदारी उन्मूलन अधिनियम पारित किये गये हैं और लगभग सभी राज्यो मे भूमि सुधार के लिये पग उठाये गये है। लेकिन यह विधान किसानो को कृषि उपज मे से उचित भाग दिलाने के सम्बन्ध मे तथा भूधृति, अर्थात् पट्टेदारी पद्धति मे सुधार करने के हेतु ही बनाये गये हैं। कृषि श्रमिको की समस्याओ पर तो बहुत ही कम ध्यान दिया गया है।

कृषि श्रमिको के लिए न्यूनतम मजदूरी

एक अन्य पग जो कृषि श्रमिको के हित के लिए उठाया गया है, वह १९४८ का न्यूनतम मजदूरी अधिनियम है। इसमे कुछ निश्चित कृषि रोजगारो मे न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने की व्यवस्था की गई है। इस अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारो को कृषि श्रमिको के लिये तीन वर्ष के अन्दर-अन्दर न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करनी थी। इसमे इस बात की भी व्यवस्था है कि मजदूरी की दरो का समय-समय पर, परन्तु ५ वर्ष के भीतर ही, पुनरावलोकन किया जाये। अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में कृषि श्रमिको का विवेचन है। यह अधिनियम कृषि मे रोजगार की निम्नलिखित व्याख्या करता है "कृषि मे रोजगार से तात्पर्य यह है कि किसी भी प्रकार की खेती मे श्रमिक लगा हो, अर्थात् इसमे भूमि की जुताई और बुवाई भी आ जाती हैं और अन्य कार्य भी सम्मिलित हो जाते है, जैसे—दुग्धशाला उद्योग, कृषि या उद्यान से सम्बन्धित किसी भी वस्तु का उत्पादन, खेती, बुवाई और कटाई, पशु-पालन, मधुमक्खी या मुर्गी पालन और अपनी खेती के कार्यों के साथ-साथ या उससे सम्बन्धित किसान द्वारा कई अन्य कार्य (इसमे वन-

सम्बन्धी कार्य, जैसे—शहतीर काटना, बाजार में अनाज ले जाने की तैयारी तथा व्यवस्था करना, अनाज को गोदाम में भरवाना या बेचना या अनाज को बाजार तक ले जाने के लिये गाडी चलाना आदि) भी सम्मिलित हैं।"

न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने की कार्य-प्रणाली निम्नलिखित है : राज्य सरकारें यह जाँच करने के लिये कि मजदूरी कितनी दी जाये या तो किसी समिति की नियुक्ति करती है या फिर किसी सरकारी गजट में अपने प्रस्तावों को प्रकाशित करती है और उन प्रस्तावों को कार्य-रूप में परिणत करने से पूर्व उन पर वाद-विवाद करने के लिये कुछ समय देती हैं। इसके पश्चात् न्यूनतम मजदूरी की दरों को प्रकाशित करना होता है, जो तीन महीने के बाद लागू हो सकती हैं। इन सभी न्यूनतम मजदूरी के प्रस्तावों का पुनरावलोकन करने के लिये प्रत्येक राज्य में एक सलाहकार बोर्ड स्थापित करने की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त एक केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड स्थापित करने की भी व्यवस्था है जो विभिन्न निर्णयों में सामंजस्य कर सके। जहाँ कहीं आवश्यक हो वहाँ सलाहकार समितियाँ भी नियुक्त की जा सकती हैं। इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि मजदूरी नकद रूप में दी जानी चाहिए, लेकिन यदि सरकार से अनुमति प्राप्त हो गई है तो अदायगी जिन्स के रूप में भी की जा सकती है। समयोपरि के लिए भी अदायगी की व्यवस्था की गई है और यह अधिनियम कार्य के सामान्य घण्टों तथा अवकाश के दिनों की भी व्यवस्था करता है।

सन् १९४९ में केन्द्रीय सरकार ने इस सम्बन्ध में नियम बनाये और उन्हें राज्य सरकारों में परिचालित किया तथा आदेश दिया कि वे १५ मार्च सन् १९५० से पूर्व न्यूनतम मजदूरी नियत करने के सम्बन्ध में कार्यवाही करें। लेकिन इस योजना को कार्य-रूप में परिणत करने में कुछ विलम्ब हो गया और सरकार ने इस अधिनियम में विभिन्न संशोधन करके इसकी तारीख बढा दी। पहले यह तारीख १५ मार्च, सन् १९५१ रक्खी गई, इसके बाद ३१ मार्च, सन् १९५२ कर दी गई, तत्पश्चात् इसे बढाकर ३१ दिसम्बर, सन् १९५४ कर दिया गया। कृषि श्रमिकों के लिये न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिये एक अतिरिक्त वर्ष और दिया गया। फिर नवम्बर, सन् १९५६ से एक अन्य संशोधन के अनुसार न्यूनतम मजदूरी नियत करने की अवधि बढाकर ३१ दिसम्बर, सन् १९५९ कर दी गई, परन्तु सभी राज्यों में इस तिथि तक भी न्यूनतम मजदूरी निर्धारित नहीं की जा सकी। सन् १९६१ में सरकार ने फिर एक संशोधित अधिनियम पारित किया जिसके अन्तर्गत अब राज्य सरकारों को छूट दे दी गई है कि वे आवश्यकतानुसार न्यूनतम मजदूरी किसी भी समय निर्धारित कर सकती हैं (देखिये पृष्ठ ५७३–७४ तथा ५७८)।

कृषि श्रमिकों के लिये न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने की कठिनाइयों का मजदूरी के अध्याय (पृष्ठ ५७८–७९) में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। उदाहरणार्थ, यह कठिनाइयां निम्नलिखित हैं : सांख्यिकीय सूचनाओं का ठीक-ठीक प्राप्त न होना, कृषि का मौसमी और सविराम प्रकृति का रोजगार, कृषि में विभिन्न

सकते हैं। यह जांच राज्य सरकारों के सहयोग से श्रम मन्त्रालय द्वारा पूर्ण की गई और उसके निष्कर्ष १९५४–५५ में प्रकाशित किये गये।

इस पूछताछ का उद्देश्य रोजगार, आय, निर्वाह-खर्च तथा जीवन-स्तर और कृषि श्रमिकों की ऋण-ग्रस्तता से सम्बन्धित आंकड़े एकत्रित करना था। यह पूछताछ इस बात को दृष्टि में रखकर की गई थी कि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के अतिरिक्त श्रमिकों की दशाओं में सुधार करने के लिए क्या-क्या सुरक्षात्मक तथा सुधारात्मक पग उठाये जाने चाहियें। भारत के सभी राज्यों में तथा जम्मू और कश्मीर में भी यह पूछताछ की गई थी। क्योंकि अखिल भारतीय आधार पर इससे पूर्व कृषि श्रमिकों की दशाओं के सम्बन्ध मे अभी तक कोई पूछताछ नहीं की गई थी इसलिये यह कृषि श्रमिक पूछताछ धीरे-धीरे विभिन्न चरणों में की गई। जो पहला चरण था उसमे सन् १९४९ में जून से लेकर नवम्बर तक २७ गांवों मे प्रारम्भिक पूछताछ की गई। इनमें से एक गांव मैसूर में, दो-दो असम, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश में, तीन मद्रास मे, चार बिहार में, पांच पश्चिमी बंगाल मे, तथा आठ उत्तर प्रदेश में थे। इन जांचों की रिपोर्टों को प्रकाशित किया जा चुका है।

कार्यकर्त्ताओं, धन और समय के सीमित होने के कारण यह सम्भव नहीं था कि देश के सभी ५,६०,००० गांवों में पूछताछ की जाय। अतः नमूने के तौर पर ८१२ गांवों को जांच के लिए छांट लिया था। पूछताछ की अवधि एक वर्ष थी और इस पूछताछ द्वारा एकत्रित किये गये आंकड़े भी इसी अवधि से सम्बद्ध थे। यह पूछताछ तीन विभिन्न अनुसूचियों (कार्य-क्रम) के माध्यम से तीन विभिन्न चरणों मे की गयी। पहले दो चरणों का मुख्य उद्देश्य सामान्य आर्थिक दशाओं तथा गावों मे रोजगार के ढांचों और उन परिवारों के आकारों के सम्बन्ध में निश्चय करना था जिन्हें पारिवारिक गहन सर्वेक्षण (Intensive Family Survey) के हेतु कृषि श्रमिक परिवार माना जाता था। यह पारिवारिक गहन सर्वेक्षण जाँच का तीसरा चरण था। कृषि श्रमिक परिवार उस परिवार को माना गया जिसके सबसे बड़े सदस्य (मुखिया) का या रोजी कमाने वालों मे से ५० प्रतिशत या उससे अधिक सदस्यों का मुख्य रोजगार कृषि था। इस प्रकार कृषि परिवार को निर्धारित करके ऐसे परिवारों में से "रेन्डम" आधार पर कुछ विशेष परिवारों को नमूने के तौर पर तीसरे चरण के लिए चुन लिया गया। इस प्रकार पूछताछ के प्रथम दो चरणों के नमूने की इकाई गाँव थे तथा तृतीय चरण की इकाई कृषि श्रमिक परिवार थे।

राज्य सरकारों, अर्थशास्त्रियों और विशेषज्ञों के परामर्श से इस विषय पर एक व्यापक प्रश्नावली का निर्माण किया गया। यह प्रश्नावली तीन भागों मे विभाजित की गई थी। प्रथम भाग में सामान्य ग्राम कार्यक्रम (General Village Schedule) दिया गया था। इसके अन्तर्गत ग्रामों की सामान्य आर्थिक दशाओं, भूमि पट्टा पद्धतियों, परिवारों के रोजगार के ढांचों, भूमि के उपयोगों, प्रचलित

मजदूरी की दरो, मजदूरी अदायगी की पद्धतियो, उपभोग की मुख्य-मुख्य वस्तुओ के थोक तथा फुटकर मूल्यो तथा अनैच्छिक और बाहर से आए हुए श्रमिक यदि हो तो उनके विषय मे सूचनायें एकत्रित करना था। एकत्रित किए गए आँकडे चुने हुए ८१२ गाँवो के स्थानीय अधिकारियो के रिकार्डो पर आधारित थे।

द्वितीय भाग मे सामान्य पारिवारिक कार्य-क्रम (General Family Schedule) था। इसके अन्तर्गत रोजगार, चुने हुये गाँवो के परिवारो के आकार तथा उनकी आय अर्जन की क्षमता, आवास, जोतो के आकार, मजदूरी पर लगे श्रमिको के रोजगार की सीमा, पशुओ तथा कृषि उपकरणो आदि के सम्बन्ध में आँकडे एकत्रित करना था। इस चरण मे बाह्य जाँचो द्वारा १०४,००० ग्रामीण परिवारो का सर्वेक्षण किया गया।

तृतीय भाग गहन पारिवारिक कार्य-क्रम का था। इसके अन्तर्गत केवल कुछ चुने हुए कृषि श्रमिको के ऐसे परिवारो को लिया गया था, जिनको प्रतिनिधि के रूप मे माना जा सकता था। इन परिवारो को "रेन्डम" आधार पर चुना गया था। इस भाग मे रोजगारी तथा बेरोजगारी से सम्बद्ध सूचना, कुल आय तथा निवल आय अनैच्छिक श्रम, कृषि श्रमिक परिवारो के निर्वाह-खर्च तथा जीवन-स्तर और ऋणग्रस्तता से सम्बन्धित आँकडे एकत्रित किये गये थे। इस गहन पारिवारिक सर्वेक्षण कार्य के लिये देश को ६ क्षेत्रो मे विभक्त किया गया था। इस सर्वेक्षण से सम्बद्ध सात रिपोर्टें भी प्रकाशित की जा चुकी हैं। इनमे से एक रिपोर्ट सम्पूर्ण भारत तथा शेष ६ रिपोर्टें प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित हैं।

इस सर्वेक्षण के तीनो चरणो के कार्यक्रम से जो आँकडे एकत्रित किये गये, वे इस प्रकार थे प्रपत्र III 'क' के मासिक आँकडे थे, इनमे से ८१२ सामान्य गाँव से, १०४,००० सामान्य परिवार से और १,६१,००० गहन परिवार से सम्बन्धित थे। प्रपत्र III 'ख के वार्षिक आँकडे थे, जो १३,००० गहन परिवार कार्य क्रम से सम्बन्धित थे। प्रपत्र III 'ग' मे दैनिक आँकडे थे, जो २१,००० गहन परिवार कार्य क्रम से सम्बन्धित थे। इन कार्य क्रमो द्वारा जो आँकडे प्राप्त हुए उनकी बडी सावधानी से जाँच की गई। इसके पश्चात उन्हे श्रम मन्त्रालय के सांख्यिकीय विभाग मे भली भाँति जाँच-पडताल करने के बाद सारिणी-बद्ध कर दिया गया। प्रत्येक क्षेत्र तथा प्रत्येक राज्य के लिये कुल १६ क्षेत्रीय तथा १६ राजकीय सारणियाँ बनाई गई थी। न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिये प्रदेशीय सरकारो को इन आँकडो को उपलब्ध कर दिया गया था।

पहली पूछताछ की रिपोर्ट "भारत मे कृषि सम्बन्धी मजदूरी' (Agricultural Wages in India) नामक अंग्रेजी पुस्तिका—भाग १ तथा भाग २—मे प्रकाशित की गई। दूसरी पूछताछ की रिपोर्ट 'ग्रामीण श्रम शक्ति तथा व्यावसायिक आकार (Rural Manpower and Occupational Structure) नामक पुस्तिका मे दी गई है। पूछताछ के इन तीनो चरणो के परिणामो का सारांश 'कृषि श्रमिक—वह कैसे कार्य करते हैं और कैसे रहते है" (Agricultural Labour—

How They Work and Live) नामक एक प्रकाशन में दिया गया है। अब इस पूछताछ की सभी रिपोर्टें प्रकाशित की जा चुकी हैं। पूछताछ में सन् १९४९ से सन् १९५१ तक की अवधि ली गई है।

आयोजना आयोग की सिफारिशों के फलस्वरूप श्रम व रोजगार मन्त्रालय ने केन्द्रीय संख्यान संस्था तथा राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे निदेशालय तथा भारतीय संख्यान संस्थान के सहयोग से १९५६–५७ में द्वितीय कृषि श्रमिक पूछताछ आरम्भ की। यह पूछताछ ३,६०० गांवों में की गई जिनको 'विशिष्ट रेन्डम' आधार पर छांटा गया था और १२ मास की अवधि में इनमें पूछताछ की गई थी। नमूने के तौर पर छांटे हुए इन गाँवों में से २८,९६० कृषि श्रमिक परिवारों से (जिन्हें नमूने के तौर पर छांट लिया गया था) रोजगार, बेरोजगारी, मजदूरी आय, व्यय तथा ऋण-ग्रस्तता से सम्बन्धित आंकड़े एकत्रित किये गये थे। इस द्वितीय पूछताछ का एक मुख्य उद्देश्य यह था कि १९५०–५१ तथा १९५६–५७ के मध्य में जो प्रथम पंचवर्षीय आयोजना की विकास योजनाओं से उन्नति हुई है उसका प्रभाव कृषि श्रमिकों पर कितना हुआ है—इस बात को आंका जाय। परन्तु जांच में इस बात का उल्लेख किया गया है कि इस प्रकार की तुलना पूर्णरूप से सही नहीं हो सकती क्योंकि दोनों जांचों में परिभाषाओं, प्रत्यक्ष (Concept) तथा पद्धतियों में भिन्नता थी। द्वितीय पूछताछ की रिपोर्ट १९६० में प्रकाशित हुई। द्वितीय पूछताछ के निष्कर्ष प्रथम पूछताछ की तुलना में निम्नलिखित है—

व्यावसायिक ढांचा (Occupational Structure)

(१) कृषि श्रमिक परिवारों की औसत संख्या १९५६–५७ में १ करोड़ ६३ लाख थी तथा १९५०–५१ में यह संख्या १ करोड़ ७९ लाख थी। इस प्रकार संख्या १६ लाख कम हो गई थी। यह कमी इस कारण हो सकती है कि दोनों पूछताछों में "कृषि श्रमिक परिवार" की परिभाषा में कुछ भिन्नता थी।

(२) भूमिहीन कृषि श्रमिक परिवार १९५६–५७ में ५७ प्रतिशत थे तथा १९५०–५१ में कुल संख्या का ५० प्रतिशत थे।

(३) १९५०–५१ की पूछताछ के अनुसार सम्बद्ध और नैमित्तिक कृषि श्रमिक परिवारों का अनुपात १० : ९० था। १९५६–५७ की जाँच के अनुसार २७ प्रतिशत तो सम्बद्ध श्रमिक परिवार थे तथा शेष नैमित्तिक श्रम परिवार थे।

(४) कृषि श्रमिक परिवारों का औसत आकार १९५०–५१ में ४·३० था और यह बढ़कर १९५६–५७ में ४·४० हो गया था। १९५६–५७ में धनोपार्जन करने वाले सदस्यों की संख्या प्रति परिवार २·०३ थी जिनमें से १·१३ पुरुष, ०·७४ महिलायें तथा ०·१६ बालक थे। १९५०–५१ में ऐसे सदस्यों की संख्या २·० थी जिनमें से १·१ पुरुष, ०·८ महिलायें तथा ०·१ बालक थे।

(५) १९५६–५७ में कृषि श्रमिकों की अनुमानित संख्या ३ करोड़ ३० लाख थी जिसमें से १ करोड़ ८० लाख पुरुष, १ करोड़ २० लाख महिलायें तथा ३० लाख

बालक थे। १६५०-५१ मे कृषि श्रमिको की सख्या ३ करोड ५० लाख थी जिनमें से १ करोड ६० लाख पुरुष, १ करोड ४० लाख महिलायें तथा २० लाख बालक थे।

रोजगार व बेरोजगारी (Employment and Unemployment)

(१) नैमित्तिक वयस्क पुरुष श्रमिको को औसत रूप से १६५०-५१ के वर्ष मे २०० दिन तथा १६५६-५७ मे १६७ दिन मजदूरी पर रोजगार मिलता था। १६५०-५१ मे ७५ दिन तथा १६५६-५७ मे ४० दिन ये स्वय के रोजगार पर लगे रहते थे।

(२) नैमित्तिक वयस्क महिला श्रमिको को १६५०-५१ मे १३४ दिन तथा १६५६-५७ मे १४१ दिन मजदूरी पर रोजगार मिलता है।

(३) बालको के रोजगार दिवस की सख्या १६५०-५१ के वर्ष मे १६५ थी और १६५६-५७ मे २०४ थी।

(४) नैमित्तिक वयस्क पुरुष श्रमिक १६५६-५७ मे १२८ दिन तथा १६५०-५१ मे ६० दिन बेरोजगार रहते थे।

रिपोर्ट के अनुसार, प्रथम पूछताछ (१६५०-५१) मे रोजगार सम्बन्धी आँकडे पूर्ण रूप से एकत्रित नही किये गये थे। द्वितीय पूछताछ (१६५६-५७) मे, उतनी गहनता को दृष्टिगत रखा गया था जिसके द्वारा बडी या छोटी क्रिया की रूपरेखा का निर्धारण होना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए चार गहनता वर्ग बनाये गये, अर्थात् पूर्ण, आधी, नाममात्र की (nominal), तथा शून्य।

प्रथम पूछताछ मे स्वय रोजगार के आँकडे भी पृथक् रूप से एकत्रित नहीं किये गये थे वरन् उनका अनुमान लगा लिया गया था।

मजदूरी (Wages)

(१) कृषि श्रमिक परिवारो की कृषि कार्यों तथा गैर-कृषि कार्यो से औसत आय १६५०-५१ में ७६% थी तथा १६५६-५७ मे ८१% थी। १६५०-५१ मे ५६% तथा १६५६-५७ मे ४८ ७% कार्य दिनो के लिए नकदी मे भुगतान किया गया था। जिन्स मे पूर्ण रूप से अदायगी १६५०-५१ मे ३१·३% तथा १६५६-५७ मे ४० ५% कार्य दिनो के लिये की गई थी। १६५०-५१ मे ६ ८% तथा १६५६-५७ मे १० ८% कार्य दिनो के लिये भुगतान जिन्स और नकदी दोनो के रूप मे किया गया था।

(२) वयस्क पुरुष श्रमिक की औसत दैनिक मजदूरी १६५०-५१ मे १ ०१ रु० थी जो गिर कर १६५६-५७ मे ६६ नये पैसे रह गई थी। वयस्क महिला श्रमिको की भी औसत दैनिक मजदूरी १६५०-५१ मे ६८ नये पैसे थी और १६५६-५७ मे ५६ नये पैसे रह गई थी। बाल श्रमिको की औसत दैनिक मजदूरी १६५०-५१ मे ७० नये पैसे तथा १६५६-५७ मे ५३ नये पैसे थी।

(३) दोनो पूछताछो मे औसत मजदूरी की तुलना करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि भुगतान पद्धतियाँ जिन्स और नकदी मे अदायगी की नमहत्त

आदि में भिन्नता थी तथा जिन्स अदायगी का मूल्यांकन १९५६–५७ में तो थोक कीमतों के अनुसार किया गया था तथा १९५०–५१ मे फुटकर कीमतों के अनुसार किया गया था।

(४) कृषि में कुल मजदूरी का अनुमान १९५६-५७ मे लगभग ५२० करोड़ रुपये था और १९५०–५१ में ५०० करोड़ रुपये था। इस वृद्धि का कारण यह था कि १९५६–५७ में सम्बद्ध श्रमिक परिवारों का औसत (लगभग २७ प्रतिशत) १९५०–५१ के औसत (लगभग १० प्रतिशत) से अधिक था और सम्बद्ध श्रमिक परिवारों की वार्षिक औसत आय १९५६-५७ में १९५०-५१ की अपेक्षा अधिक थी।

पारिवारिक आय (Household Income)

(१) कृषि श्रमिक परिवार की वार्षिक औसत आय १९५०–५१ में ४४७ रु० थी और १९५६–५७ में ४३७ रु० थी।

(२) विभिन्न स्रोतों से कृषि श्रमिक परिवारो को दोनों पूछताछों की अवधि में जो औसत आय हुई वह निम्न प्रकार थी—(कोष्ठक में दिये गए आँकड़े तमाम स्रोतों से जो आय हुई उसका प्रतिशत बताते है।

आय का स्रोत	१९५१–५२ (रुपये)	१९५६–५७ (रुपये)
(क) भूमि की जुताई से	५९ ९० (१३·४९)	३०·०७ (६·८७)
(ख) कृषि श्रम से	२८६·९० (६४·२०)	३१९·५५ (७३·०४)
(ग) गैर-कृषि श्रम से	५३·१९ (११·९०)	३४·६४ (७·९९)
(घ) अन्य	४६·६४ (१०·५१)	५२·९१ (१२·१०)

खेतो की जुताई से तथा गैर-कृषि श्रम से तो आय १९५६–५७ में कम हो गई थी, परन्तु कृषि श्रम से आय बढ़ गई थी।

उपभोग तथा निर्वाह लागत खर्च (Consumption and Cost of Living)

(१) कृषि श्रमिक परिवार का वार्षिक औसत उपभोग व्यय १९५०–५१ मे ४६१ रुपये था जो बढ़कर १९५६–५७ में ६१७ रुपये हो गया। विभिन्न मदों पर दोनो वर्षों मे प्रतिशत व्यय निम्न प्रकार था—

	१९५०–५१	१९५६–५७
भोजन	८५·३	७७·३
कपड़ा तथा जूता	६·३	६·१
ईंधन व प्रकाश	१·१	७·९
विविध मद तथा सेवायें	७·३	८·७

(२) १९५६–५७ मे प्रति परिवार औसत आय ४३७ रुपये थी परन्तु औसत उपभोग व्यय ६१७ रु० था। इस प्रकार १८० रु० का घाटा था। इस घाटे की

पूर्ति पिछली बचत, सम्पत्ति का क्रय, दूसरे साधनो से धन की प्राप्ति तथा ऋण लेकर की गई थी।

ऋणग्रस्तता (Indebtedness)

(१) १६५६-५७ मे ६४% और १६५०-५१ मे ४५% कृषि श्रमिक परिवार ऋणग्रस्त थे। १६५०–५१ मे प्रति परिवार ऋण की औसत मात्रा ४७ रुपये थी और १६५६–५७ मे ८८ रुपये थी।

(२) प्रति ऋणग्रस्त परिवार का औसत ऋण भी १६५०–५१ मे १०५ रु० से बढकर १६५६–५७ म १३८ रुपये हो गया था।

(३) कृषि श्रमिक परिवारो का कुल अनुमानित ऋण १६५६–५७ मे १४३ करोड रुपये था तथा १६५०–५१ मे ८० करोड रुपये था।

(४) कुल ऋण मे से लगभग ४६% ऋण तो उपभोग व्यय के लिये लिया गया था। सामाजिक कार्यो के लिए ऋण का प्रतिशत २४ तथा उत्पादन कार्यों के लिये १६ था। शेष ११% ऋण विविध मदो पर व्यय करने के लिए लिया गया था।

(५) कुल ऋण मे से ३४% महाजन से, ४४% मित्रो व सम्बन्धियो से, १५% मालिको स ५% दुकानदारो से तथा १% सहकारी साख समितियो से लिया गया था।

अन्य पूछताछ १६६३ मे की गई जिसे 'ग्रामीण श्रम पूछताछ' का नाम दिया गया है। यद्यपि प्रारम्भ मे विचार यही था कि यह पूछताछ पहली दोनो पूछताछ से अधिक व्यापक होगी, परन्तु राष्ट्रीय सकट के कारण इसका क्षत्र सीमित करना पड गया। राष्ट्रीय सैम्पिल सर्वे' के १८ वें दौर (फरवरी १६६३ – फरवरी १६६४) के बीच कृषि श्रमिक परिवारो सहित ग्रामीण श्रमिक परिवारो की आय तथा उपभोग पर व्यय के आँकडे एकत्र किये गय और राष्ट्रीय सैम्पिल सर्वे के १६ वें दौर तथा २०व दौर के प्रथम उप-दौर (जुलाई १६६४–जुलाई १६६५) मे ग्रामीण श्रमिक परिवारो के रोजगार, बेकारी, आय तथा ऋणग्रस्तता से सम्बन्धित आँकडे एकत्र किये गय। एकत्रित आकडो के सारणीकरण का कार्य प्रगति पर है और १६६८ के अन्त तक उसके पूरे हो जान की आशा है। यह भी आशा की जाती है कि इस पूछताछ की रिपोट अधिक व्यापक तथा विश्वस्त होगी क्योकि पहली दोनो पूछताछ की रिपोर्टों पर काफी नुक्ताचीनी की गई थी। यह कहा गया था कि इन दोनों पूछताछ मे आँकडे एकत्र करने के लिए जो रीतिया काम मे लाई गई, वे अधिक वैज्ञानिक नही थी। सर्वेक्षण जल्दी मे किये गये और रिपोर्टों मे जो परिणाम निकाले गये वे भी जल्दबाजी म। यह भी उल्लेखनीय है कि ग्रामीण श्रमिको की समस्याओ के सम्बन्ध मे देश के विभिन्न भागो मे समय समय पर अनुसधान छात्रो द्वारा तथा आयोजना आयोग की अनुसधान कार्यक्रम समिति द्वारा चालू कार्यक्रमो के अन्तर्गत गहन अध्ययन किया जाता रहा है। इन सर्वेक्षणो की

रिपोर्टों से भी ऐसे महत्वपूर्ण आंकड़े प्राप्य होंगे जिनके द्वारा कृषि श्रमिकों की समस्याओं के समाधान के लिये नीतियों का निर्माण करने में सहायता मिलेगी।

बेगार की समस्या (Problem of Forced Labour)

बेगार या अनिवार्य श्रम का उस कार्य या सेवा से अभिप्राय है जिसके लिए चाहे मजदूरी अदा की जाती हो या न की जाती हो, परन्तु जो किसी व्यक्ति से उसकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक कराई जाती है। बेगार की समस्या एक गम्भीर सामाजिक बुराई है और यह बुराई ग्रामीण भारत के अनेक भागों में पाई जाती है। जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, कृषि श्रमिक पूछताछ ने कुछ पिछड़े हुए गाँवों में इस दासता की प्रथा के पाये जाने की ओर संकेत किया है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सन् १९३० के बेगार से सम्बन्धित अभिसमय के परिणामस्वरूप सन् १९३१ में भारतीय विधान सभा में एक प्रस्ताव पारित किया था, जिसमें भारत सरकार से यह माँग की गई थी कि वह इस बेगार की बुराई को दूर करने के लिये कुछ आवश्यक कार्यवाही करे। फलस्वरूप भारत सरकार ने प्रान्तीय सरकारों को यह आदेश दिया कि वे उन विभिन्न अधिनियमों की जाच करें, जिनके अन्तर्गत बेगार ली जाती थी। ऐसे अधिनियम अपराधी प्रवृत्ति की जातियों के तथा अच्छा व्यवहार करने वाले कैदियों को छोड़ने के सम्बन्ध में थे। इसी प्रकार के कुछ अन्य सामाजिक विधान भी थे। राज्य सरकारों को यह भी आदेश दिया गया कि वे यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र इस बेगार की प्रथा को समाप्त कर दें। इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने केन्द्रीय अधिनियमों की भी जाँच की। जमींदार या अन्य लोग वैयक्तिक रूप से बेगार न ले सकें, इसके लिए सन् १८०६ के बंगाल विनियमन अधिनियम में तथा मालगुजारी के कुछ अधिनियमों में संशोधन किये गये। कुछ प्रान्तीय सरकारों ने दौरा करने वाले अधिकारियों द्वारा इस बेगार लेने की प्रथा को रोकने के लिये प्रशासनिक आदेश भी जारी किए। अनेक देशी राज्यों ने भी बेगार के विषय पर विधान बनाये थे।

परन्तु इस प्रथा में अधिक परिवर्तन नहीं हो सका। इसलिए सन् १९४७ में भारत सरकार ने केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा भारतीय राज्यों के विभिन्न अधिनियमों तथा बेगार पर उपलब्ध सम्पूर्ण साहित्य का अध्ययन करने के लिये एक विशेष अधिकारी नियुक्त किया। इस अधिकारी को इस विषय पर रिपोर्ट देनी थी कि तत्कालीन विधान किस सीमा तक बेगार को रोकने में समर्थ था तथा भविष्य में इस बेगार को रोकने के लिये क्या करना आवश्यक था। यह रिपोर्ट, जो प्रस्तुत की जा चुकी है, कई स्थानों पर बेगार की बुराइयों की ओर संकेत करती है तथा बेगार करने वाले श्रमिकों के प्रकार आदि के सम्बन्ध में व्यापक सूचनायें देती है।

निम्नलिखित तीन शीर्षकों के अन्तर्गत बेगार का वर्गीकरण किया जा सकता है—(१) सार्वजनिक कार्यों के लिए सरकार द्वारा वैध रूप से ली गई अधिग्रसित (Requisitioned) बेगार। (२) जमींदारों या ऋण-दाताओं द्वारा बलपूर्वक ली

गई बेगार, तथा (३) रीति-रिवाजो के अन्तर्गत ली जाने वाली बेगार, जो निजी व्यक्तियो द्वारा ली जाती है।

अपने कर्तव्य-पालन मे सार्वजनिक अधिकारियो द्वारा अनिवार्य श्रम या बेगार सार्वजनिक कार्यो के लिए सभी वर्गों के व्यक्तियो से ली जाती है। उदाहरणार्थ, लोगो को अनिवार्य रूप से कुछ कार्य करने पडते हैं, जैसे—पुलिस या मजिस्ट्रेट को किसी अपराध की सूचना देना, किसी अपराधी को पकडना, किसी सार्वजनिक अधिकारी को उसके कर्तव्य-पालन मे सहायता देना, सार्वजनिक सम्पत्ति की सफाई या देखरेख करना, आग, बाढ, महामारी आदि जैसे सकटो मे सहायता देना और सार्वजनिक हित के कार्य करना, आदि। यह भी देखा गया है कि कुछ अधिनियमो मे ऐसे उपबन्ध हैं जिनके अन्तर्गत कुछ विशेष कार्यों के लिए बेगार की अनुमति या सुविधा है। भारत सरकार इन अधिनियमो मे सशोधन करने का विचार कर रही है।

अन्य प्रकार की एक और बेगार भी है। यह बेगार जमीदार अपने आसामियो तथा गाँव के अन्य निवासियो से अपने स्वामित्व के बल पर लेते रहे हैं। वास्तव मे इन जमीदारो को अपने आसामियो से लगान लेने के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त करने का अधिकार नही होता। सभी राज्य सरकारो ने अपने रैयतदारी विधान मे ऐसी व्यवस्था की है, जिसके अन्तर्गत आसामियो से अवैधानिक रूप से बेगारें या सेवायें लेना एक दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया है। लेकिन इन सब बातो के होते हुए भी मालिक वर्ष मे कई बार आसामियो को बिना मजदूरी दिये या थोडी सी मजदूरी देकर अपने खेतो पर कार्य करने के लिए विवश कर देते है। कभी-कभी यह जमीदार गाँव के कुछ निवासियो को मकानो के लिये या खेती के लिये भूमि दे देते हैं, जिसका लगान उन्हे या तो नकद रूप मे अदा करना पडता है या फिर उपज के कुछ भाग के रूप मे। ऐसे आसामी को प्राय या तो अपने जमीदार के खेतो मे कार्य करना पडता है या फिर उसके घरेलू कार्य करने पडते हैं। अनेक बार तो उसके परिवार के सदस्यो को भी जमीदार के लिए कार्य करना पडता है, जिसके लिये प्राय उन्हे कोई मजदूरी नही दी जाती, और यदि दी भी जाती है, तो वह बहुत कम होती है। इस सम्बन्ध मे विशेष बात यह है कि आसामी न तो कार्य करने के लिये मना ही कर सकते है और न मजदूरी ही के लिये किसी प्रकार का मोल भाव कर सकते हैं, क्योकि उन्हें इस बात का भय होता है कि कही ऐसा न हो कि उन्हे उनके खेतो या मकान की भूमि से निकाल दिया जाय। भारत मे अनेक ग्रामीण क्षेत्रो मे जहाँ-जहाँ यह जमीदारी प्रथा विद्यमान थी या विद्यमान है, जमीदारो द्वारा बेगार लिए जाने के विषय मे साधारणतया यही बातें अधिक पाई गई हैं।

इसके अतिरिक्त एक और बेगार है। यह बेगार ऋणदाता लेते हैं। दास श्रमिकों का वर्णन करते समय इस बेगार का उल्लेख किया जा चुका है। कभी-कभी जमीदार अपने आसामियो को ऋण देते हैं, तथा मकानो के लिये भूमि देते हैं और इस प्रकार सदा के लिये उन्हे अपने यहाँ नौकरी करने के बन्धन मे आबद्ध

कर लेते हैं। यह प्रथा ग्रामीण भारत के अनेक भागों मे प्रचलित है। इस प्रथा को भिन्न-भिन्न नाम भी दिये गये हैं। उदाहरणार्थ, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा मध्य भारत के कुछ भागों में इस प्रथा को 'हरवाही' पद्धति कहते है। यही प्रथा बिहार के अन्य भागो में 'कैमुती', उडीसा तथा मद्रास के कुछ भागो में 'गोठी', मद्रास के कुछ अन्य भागों में 'वेथ' तथा गुजरात आदि में 'हाली' कहलाती है। ऋण के लेने-देने में कानूनी दायित्व केवल इतना ही होता है कि ऋण को ब्याज सहित चुका दिया जाये। लेकिन इस प्रथा के अन्तर्गत जब तक ऋण की अदायगी नही हो जाती, देनदार को अपने ऋणदाता के लिए शारीरिक श्रम करना पड़ता है। यह ऋण यथार्थ में घटने की अपेक्षा बढता ही चला जाता है। ऐसा भी होता है कि देनदार तथा कभी-कभी उसके परिवार के सदस्य भी आजीवन इस बन्धन मे बँध जाते है, और देनदार की मृत्यु के बाद भी उसके पुत्र को पैतृक सम्पत्ति के रूप में अपने पिता के सभी अधिकारों तथा दायित्वों का भार वहन करना पड़ता है। अनेक राज्य सरकारों ने इस बुराई को दूर करने के लिये पग उठाये हैं। सन् १९२० में बिहार तथा उडीसा सरकार ने इस बुराई को जड से दूर करने के लिए "बिहार तथा उडीसा कैमुती समझौता अधिनियम" पारित किया। मद्रास सरकार ने सन् १९४० में "मद्रास अभिकरण ऋण दासत्व उन्मूलन विनियम" (Madras Agency Debt Bondage Abolition Regulation) पारित किया। उडीसा सरकार ने सन् १९४८ मे उडीसा ऋण दासत्व उन्मूलन विनियम बनाया। अन्य राज्य सरकारों के ऋण विधान ने भी कुछ सीमा तक इस प्रथा की बुराई को कम करने में सहायता दी है।

इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रो में परम्परागत बेगार भी पाई जाती है। चमारों, कुम्हारो, नाइयों तथा धोबियों आदि द्वारा अन्य वर्गों के व्यक्तियों के प्रति की गयी व्यावसायिक सेवाये इसी बेगार के अन्तर्गत आती है। इन सेवाओं के लिये पारिश्रमिक या तो कटाई के समय कृषि की कुछ उपज के रूप में या उत्सवो या त्यौहारो के अवसर पर भोजन तथा कपड़ों के कुछ उपहारों के रूप मे दिया जाता है। इस प्रकार की बेगार सामान्यतया दोनों पक्षो के लिये लाभदायक समझी जाती है। लेकिन इस पद्धति में भी शोषण का अवसर रहता है। आजकल आधुनिक शिक्षा के प्रभाव तथा गांवो की पृथकता समाप्त हो जाने के कारण इस प्रकार की सेवाये अधिक प्रचलित नहीं हैं और ऐसे लोग, जो इस प्रकार की सेवायें करते हैं, अब सामान्यतया नकद रूप में तत्काल मजदूरी की अदायगी की माँग करते है।

इन सब बातो को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि किसी भी प्रकार की बेगार लेना अच्छा नहीं है। इस प्रकार की बेगार मानवी सम्मान के सर्वथा विरुद्ध है। जिस व्यक्ति से भी बेगार के किसी काम के लिये कहा जाता है, वह साधारणतया बुरी तरह कुढ़ जाता है, चाहे वह कार्य सार्वजनिक हित के लिये ही क्यों न हो। अत भारतीय संविधान के अनुच्छेद २३ के अन्तर्गत मनुष्य जाति का पणन तथा हर प्रकार की बेगार को निषेध कर दिया गया है। परन्तु सार्वजनिक

कार्यों के लिये राज्य द्वारा कुछ अनिवार्य सेवायें बलपूर्वक ली जा सकती हैं। भारतीय दण्ड विधान की धारा ३७४ मे भी इस बात की व्यवस्था की गई है कि जो लोग अवैध रूप से बेगार लेते है उन्हे या तो कारावास का दण्ड दिया जा सकता है या उन पर कुछ जुर्माना किया जा सकता है। सन् १६२४ के 'अपराधी जाति अधिनियम' मे कुछ सीमा तक बेगार लेने की अनुमति दी गई थी, परन्तु इस अधिनियम को १६५२ मे निरस्त कर दिया गया। १६५७ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के ४१वे अधिवेशन मे बेगार उन्मूलन पर एक अभिसमय (अभिसमय नं० १०५) अपनाया गया। यह अभिसमय इस बात की सिफारिश करता है कि समस्त सदस्य राष्ट्रो को तत्काल और पूर्णरूप से बेगार या अनिवार्य श्रम समाप्त करने के लिये प्रभावात्मक पग उठाने चाहियें। यह अभिसमय जनवरी १६५६ से लागू करने की सिफारिश थी। भारत ने इस अभिसमय को अभी तक नही अपनाया है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन तथा कृषि श्रमिक

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन अब कुछ समय से कृषि श्रमिको मे रुचि ले रहा है। मिश्रित सलाहकार कृषि समिति का प्रथम अधिवेशन सन् १६२३ मे किया गया था, और इसके पश्चात् युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व इस समिति के नियमित रूप से आठ अधिवेशन हुए। इसके पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने अपनी एक स्थायी कृषि समिति बनाई। यह समिति युद्ध काल के उपरान्त पुनर्निर्मित की गई। भारत ने इस समिति के विचार-विमर्श मे सक्रिय भाग लिया है। सन् १६४७ मे दिल्ली मे तथा जनवरी, सन् १६५० मे 'नावरा ईलिया' (श्री लंका) मे किये गए एशियायी प्रादेशिक सम्मेलनो मे कृषि रोजगार मे मजदूरी के विनियमन के प्रश्न पर विचार किया गया था और सन् १६५० मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के ३३वें अधिवेशन के कार्यक्रम मे 'कृषि मे न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने की व्यवस्था' तथा 'कृषि म श्रम समस्यायें' नामक विषय विचार-विमर्श के लिए रक्खे गए थे। सन् १६५१ मे सम्मेलन के ३४वे अधिवेशन तथा सन् १६५२ के ३५वें अधिवेशन मे 'कृषि मे सवेतन छुट्टियों' के विषय पर विचार किया गया। 'कृषि मे व्यावसायिक प्रशिक्षण' तथा कृषि मे किशोरो तथा बालको के रोजगार' से सम्बद्ध प्रस्तावो को स्थायी कृषि समिति द्वारा पारित किया गया था। सन् १६५५ मे सम्मेलन के ३८वें तथा ३६वें अधिवेशन मे 'कृषि के व्यावसायिक प्रशिक्षण' पर विचार हुआ। स्थायी कृषि समिति तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की एशियायी सलाहकार समिति ने भी समय-समय पर कृषि श्रमिको की विभिन्न समस्याओ पर विचार विमर्श किया है। उदाहरणत, नवम्बर १६५५ मे एशियायी सलाहकार समिति ने कृषि सम्बन्धी साख तथा एशियाई देशो मे आर्थिक विकास के सामाजिक पहलू के विषयो पर कृषि मे पूँजी निर्माण और उत्पादकता के सम्बन्ध मे विचार किया। नवम्बर १६५७ मे चौथी एशियायी क्षेत्रीय सम्मेलन मे भी बटाई वाले श्रमिक, किसान श्रमिक तथा अन्य कृषि श्रमिको के कार्य व रहन-सहन के विषयो पर विचार विमर्श हुआ।

जून १६६० में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के ४४वें अधिवेशन में ऐसे देशों के, जिनमें विकास कार्यक्रम हो रहे थे, ग्रामीण समुदाय की आय तथा रहन-सहन की दशाओं में उन्नति के सम्बन्ध में एक व्यापक प्रस्ताव पारित किया तथा १६६१ के अधिवेशन में १६६२ के बजट में ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों के सम्बन्ध में १६६३ के लिये एक विशेष व्यवस्था की गई जिसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार देने की समस्या पर अधिक बल दिया गया।

कृषि श्रमिकों की दशा में उन्नति करने के सम्बन्ध में कार्यक्रम

कृषि श्रमिकों की दशाओं में सुधार करने के लिये सर्वांगीण प्रयत्नों की बड़ी आवश्यकता है। यह समस्या कृषि में सामान्य सुधार तथा परती भूमि के पुनरुद्धार तथा अन्य ऐसे विषयों से सम्बन्धित है जैसे ग्रामीण आवास, स्वच्छता तथा स्वास्थ्य योजनायें, वयस्क शिक्षा, श्रमिकों की ऋणग्रस्तता से निवृत्ति, बहु-उद्देशीय सहकारी समितियों की स्थापना, ग्राम पंचायतों का निर्माण, आदि। अनेक राज्य सरकारें कृषि श्रमिकों के कल्याण के लिए इन विषयों पर पहले ही कुछ पग उठा चुकी हैं। प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में भी भूमिहीन श्रमिकों तथा घाटे की जोतों के मालिकों को भूमि देने की नीति पर अधिक बल दिया गया है। अभी हाल ही में पुनरुद्धारित की गयी भूमि तथा ऐसी भूमि जो अब तक बेकार पड़ी हुई थी, उनके लिये पहले ही अलग कर दी गई है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये २ करोड़ रुपए की धनराशि निश्चित की गई थी। एक करोड़ रुपये भूमिहीन श्रमिकों के पुनर्वास के लिये व्यय किये गये थे। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में यह सुझाव दिया गया था कि भूमिहीन श्रमिकों को भूमि पर फिर से बसाने के लिये व्यापक योजनायें तैयार की जायें तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये बोर्ड बनवाये जायें। श्रमिक सहकारी उत्पादन समितियों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये तथा कृषि श्रमिकों को मकान बनाने के लिये भूमि भी बिना लागत के उपलब्ध होनी चाहिये। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में ५ करोड़ रुपए की लागत से २० हजार भूमिहीन श्रमिक परिवारों को १ लाख एकड़ भूमि पर बसाने की योजना थी तथा ऐसे श्रमिकों की कठिनाइयों को कम करने के लिये निम्नलिखित ४ सुझाव दिये गये थे -(१) कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि करने और पशु पालन के लिए पग उठाने चाहिएँ। (२) कृषि कार्यों और ग्रामीण व कुटीर उद्योग धन्धों का विस्तृत रूप से विकास करके ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में ही रोजगार के अवसर प्रदान करने चाहियें। (३) भूमि का पुर्नवितरण करके तथा शिक्षा की सुविधाओं को विस्तृत करके हीन कृषि श्रमिकों का सामाजिक स्तर, कार्य कुशलता, उत्साह तथा योग्यता में वृद्धि करनी चाहिये। (४) ग्रामीण क्षेत्र में जो विकास सम्बन्धी व्यय हो रहा है उसमें से अधिकांश व्यय कृषि श्रमिकों की रहने की दशाओं में उन्नति करने पर होना चाहिये।

तीसरी पचवर्षीय आयोजना में कहा गया है कि कृषि श्रमिकों की दो प्रमुख समस्यायें भावी ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में उनके स्थान तथा उनके लिए कार्य की व्यवस्था से सम्बन्धित हैं। उनकी मुख्य समस्या ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी तथा अपूर्ण रोजगार की व्यापक समस्या का ही एक अंग है। तीसरी आयोजना में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास के लिये बहुत बड़ी राशि व्यय करने की व्यवस्था की गई है। इससे कृषि श्रमिकों को भी लाभ होगा। आयोजना आयोग द्वारा हाल ही में स्थापित केन्द्रीय कृषि श्रमिक सलाहकार समिति की सिफारिश के अनुसार ५० लाख एकड़ से भी अधिक क्षेत्र में भूमिहीन कृषि श्रमिकों के ७ लाख परिवारों को बसाने का प्रयत्न किया जायगा। राज्यों ने कृषि श्रमिकों को बसाने के लिए ४ करोड़ रुपए की योजना बनाई है। इसके अतिरिक्त राज्य सरकारों को इस कार्य के लिये केन्द्र भी ८ करोड़ रुपए देगा। सन् १९६५–६६ के अन्त तक ७५,२६४ भूमिहीन परिवारों को कृषि योग्य घटिया भूमि पर बसाया गया। सभी राज्यों में भूमि की सीमा नियत करने के लिए विधान बनाये गए हैं और फालतू भूमि का उपयोग भूमिहीन श्रमिकों को बसाने के लिए किया गया है। कृषि श्रमिकों के लाभ के लिये तीसरी आयोजना में जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण कदम उठाने का सुझाव है, वह है देहाती क्षेत्रों में सकार्य प्रायोजनाओं (Work Projects) का कार्यक्रम। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत विशेषकर उस समय जब खेती का कार्य मन्दा हो, अतिरिक्त रोजगार देने की व्यवस्था है। मजदूरियाँ ग्रामीण दरों पर दी जाती हैं। १९६०–६१ में ३२ अग्रगामी प्रायोजनायें चालू की गईं। इनमें सिंचाई, वन लगाना, भूमि संरक्षण, पानी की निकासी, भूमि को खेती योग्य बनाने तथा सड़कों के विकास की अनुपूरक योजनायें सम्मिलित हैं। तृतीय आयोजना के अन्त तक, देश भर में फैले हुए ९९८ विकास खण्ड इनके अन्तर्गत आ गए थे। इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत रोजगार की मात्रा तृतीय आयोजना के प्रथम वर्ष के १९ लाख श्रम-दिनों से बढ़ कर १९६४–६५ में २१७ लाख श्रम दिन हो गई और १९६५–६६ में इसके २५० लाख श्रम-दिन (man days) हो जाने की आशा थी। चौथी आयोजना में भी एक बड़े ग्रामीण मानव शक्ति कार्यक्रम की व्यवस्था है। कृषि श्रमिकों की श्रमिक सहकारी समितियों पर भी जोर दिया जा रहा है। तृतीय आयोजना में भी ऐसी व्यवस्था की गई थी कि निर्माण कार्यक्रमों के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में प्रथम वर्ष में लगभग १ लाख व्यक्तियों को, द्वितीय वर्ष में लगभग ४ या ५ लाख व्यक्तियों को, तृतीय वर्ष में लगभग १० लाख व्यक्तियों को और आयोजना के अन्तिम वर्ष तक लगभग २५ लाख व्यक्तियों को वर्ष में लगभग १०० दिन के लिये, विशेषकर उस समय जब कि खेती का कार्य मन्दा हो, रोजगार दिया जायेगा। इन कार्यक्रमों पर लगभग १५० करोड़ रु० व्यय होने का अनुमान था।

इस सम्बन्ध में विनोबा भावे के भूदान आन्दोलन का भी उल्लेख किया जा सकता है। इस आन्दोलन का उद्देश्य बड़े-बड़े जमींदारों में दानशीलता की प्रवृत्ति को उभार कर भूमिहीन श्रमिकों को भूमि दिलाना है। इस आन्दोलन की

सहायता के लिए उत्तर प्रदेश में भूदान योजना अधिनियम पारित किया जा चुका है। ऐसे ही विधान अन्य राज्यों में भी बनाये गये है। विभिन्न राज्यों में लगभग १२ लाख एकड़ भूमि, जोकि भूदान के रूप मे प्राप्त हुई थी, भूमिहीन श्रमिकों में बांटी भी जा चुकी है। सामुदायिक योजना और राष्ट्रीय विस्तार सेवा के अन्तर्गत भी कृषि श्रमिको के कल्याण कार्यों पर बल दिया जा रहा है। परिगणित और पिछड़ी हुई जाति के बच्चो के लिये, जो अधिकतर भूमिहीन कृषक वर्ग के होते हैं, अब शिक्षा के लिये वजीफे, निःशुल्क पढाई, पुस्तको के लिये अनुदान, छात्रावास की सुविधायें आदि प्रदान की जा रही है। ग्राम पंचायतें भी भूमिहीन श्रमिकों के लिये कल्याण-कार्य करती हैं। आयोजना आयोग द्वारा चालू किया गया एक अन्य कार्यक्रम यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे पैमाने के उद्योगों का विस्तार किया जाये। यह अनुमान लगाया गया था कि तृतीय आयोजना की अवधि में ग्रामीण एवं लघु उद्योग कार्यक्रम से, सम्पूर्ण रूप से, ८० लाख लोगों को तो आंशिक रोजगार और लगभग ६० लाख लोगो को पूर्णकालिक रोजगार प्राप्त होगा। एक ग्रामीण उद्योग नियोजन समिति की भी स्थापना की गई है। इन सब बातों से यह प्रकट होता है कि कृषि श्रमिकों की समस्याओं पर सरकार तथा जनता द्वारा बहुत ही गम्भीर रूप से ध्यान दिया जा रहा है। फिर भी कृषि श्रमिको की समस्याओं को मान्यता देने की और इन समस्याओं का यथार्थ रूप से समाधान करने की बहुत आवश्यकता है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि श्रम व रोजगार विभाग ने कुछ क्रियाशील कार्यक्रमों का प्रस्ताव किया है। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य आदर्श कल्याण केन्द्रों, चल स्वास्थ्य इकाइयों तथा दूकान व सिनेमा गाड़ियों आदि के द्वारा कृषि श्रमिको के कल्याण में वृद्धि करना तथा फैक्टरी सलाहकार सेवा की तरह ही एक ऐसी सलाहकार सेवा चालू करना है जो कृषि के क्षेत्र में कार्य का अध्ययन करे, कृषि श्रमिकों को प्रशिक्षण की सुविधायें तथा सहायता प्रदान करे और सुरक्षा तथा स्वास्थ्य व सफाई की समस्याओं पर ध्यान दे। इस उद्देश्य के लिये जैसे ही धन प्राप्त होगा, इसी रूपरेखा के आधार पर कार्यारम्भ कर दिया जायेगा।

कृषि श्रमिको से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करने के लिये श्रम व रोजगार मन्त्रालय ने अगस्त १९६५ में नई दिल्ली में एक अखिल भारतीय सेमिनार का आयोजन किया। सेमिनार की कुछ प्रमुख सिफारिशें इस प्रकार थी : (१) कृषि के क्षेत्र मे श्रमिकों की काफी बहुतायत हैं। यदि कृषि श्रमिकों तथा उनके बच्चों को प्रशिक्षण दिया जाये तथा उन्हें नये कौशल का ज्ञान कराया जाये तो कृषि से अन्य क्षेत्र की ओर को स्थानान्तरण होने में सुविधा होगी। गाँवों में ग्रामीण औद्योगिक संस्थाओं का जाल बिछा दिया जाना चाहिये। (२) कृषि श्रमिको को नियमित रोजगार मे लगाने के लिये सार्वजनिक निर्माण कार्य आरम्भ किये जाने चाहिएं और ग्रामीण मानव-शक्ति कार्यक्रमों पर काफी जोर दिया जाना चाहिये। (३) सामुदायिक विकास कार्यक्रमों, रोजगार-पक्षों पर तथा छोटी सिंचाई,

तालाब व पोखरो के निर्माण एव कुयें खोदने आदि के कार्यक्रमो पर अधिक बल दिया जाना चाहिये। (४) ग्रामीण व लघु उद्योगो के विकास को सक्रिय रूप से प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। (५) श्रमिक सहकारी समितियो के कार्यों की समय-समय पर जाँच की जानी चाहिये और इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिये, कि ठेकेदारो द्वारा उनका शोषण न किया जा सके। (६) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत न्यूनतम मजदूरी १ रु० प्रतिदिन से कम नही होनी चाहिये और अधिनियम को दृढता से लागू किया जाना चाहिये। (७) प्रचलित ग्रामीण आवास योजना मे उपयुक्त सशोधन किया जाना चाहिये ताकि कृषि श्रमिक सामूहिक आधार पर आवास की व्यवस्था कर सके।

सेमिनार की सिफारिशो के सदर्भ मे, नवम्बर १९६६ मे एक कृषि श्रमिक समन्वय समिति की स्थापना की गई। इस समिति मे कृषि श्रमिको से सम्बन्धित मन्त्रालयो व विभागो के तथा आयोजना आयोग के प्रतिनिधि थे। इस समिति को यह कार्य सौंपा गया कि यह कृषि श्रमिको की दशाओ मे सुधार के लिये अपनाई गई विभिन्न योजनाओ के क्रियान्वयन की प्रगति की समीक्षा करे और उनमे समन्वय स्थापित करे।

उपसहार

सक्षेप मे हम कह सकते है कि कृषि श्रमिको की समस्याओ को हल करने का प्रश्न वर्तमान समय का अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है। कृषि श्रमिको की सख्या मे निरन्तर वृद्धि हो रही है। प्रत्येक ऐसी परिस्थिति, जिसके कारण छोटे-छोटे काश्तकारो की आर्थिक दशा दुर्बल हो जाती है, कृषि श्रमिको की सख्या मे वृद्धि कर देती है। इसके फलस्वरूप उनकी मजदूरी की दरें बहुत कम हो गई हैं। मूल्यों मे वृद्धि होने का लाभ भूमिधर कृषक वर्ग को ही मिलता है। इसके साथ ही निर्वाह खर्च मे वृद्धि होने से कृषक श्रमिको पर ऋण का भार और भी बढ गया है। भूमि की माँग के बढ जाने के कारण गाँवो मे चरागाह समाप्त होते जा रहे हैं। इसलिए कृषि श्रमिक अपनी आय की कमी को पूरा करने के लिए दुग्धधारी पशुओ को भी नही पाल पाते। उद्योगो मे जो विवेकीकरण किया जा रहा है, उसका प्रभाव भी कृषि श्रमिको पर पडेगा, क्योकि कृषि व्यवसाय पर भार अधिक हो जायेगा। कृषि में मध्यस्थो की प्रथा के समाप्त हो जाने से भी भूमिधर किसान और कृषि श्रमिको के मध्य आपसी सम्बन्ध अच्छे नही रहे हैं। छोटे छोटे ऐसे जमींदार भी विभिन्न राज्यो मे अनेक 'जमींदारी उन्मूलन अधिनियमों' के लागू हो जाने से समाप्त हो गये हैं, इस कृषि श्रमिक वर्ग की सख्या मे वृद्धि कर रहे हैं। इस प्रकार कृषि श्रमिको की वर्तमान दशायें बहुत ही असन्तोषजनक हैं। "उन्हे वर्ष मे केवल ६ महीने के लिए रोजगार मिलता है चौपायो और पशुओ के साथ एक ही मकान मे रहना पडता है, तथा भोजन भी उन्हे बहुधा आधे पेट ही मिलता है। परिणाम यह होता है कि वे बडी आसानी से महामारियो और साहूकारो के

शिकार हो जाते हैं, और बहुत ही कम मजदूरी पर वे बेगार करने के लिए विवश हो जाते हैं।" जनसंख्या में वृद्धि से तथा बेरोजगारी और अपूर्ण रोजगार में कोई विशेष अन्तर न होने की कठिनाई से यह समस्या और भी जटिल हो गई है। जागीदारी प्रथा के उन्मूलन से कृषि श्रमिकों ने जमीदारों का परम्परागत संरक्षण भी खो दिया है। गाँवों में अब जो नये स्वामी और नेता बने हैं, उनका इन श्रमिकों के प्रति व्यवहार और भी बुरा है।

यह बात भी विशेष ध्यान देने योग्य है कि जब तक कृषि श्रमिक निराश और असन्तुष्ट रहते है, वे खाद्य उत्पादन की वृद्धि मे दत्तचित्त होकर योग नही दे सकते। सर्वत्र खाद्य की कमी के परिणामस्वरूप अधिक लागत पर अनाज का बहुत मात्रा मे आयात करना पड़ता है। देश में जो सामान्य आर्थिक तंगी है, उससे भी इस बात की आवश्यकता प्रतीत होती है कि खाद्य के उत्पादन में व्यापक रूप से वृद्धि की जाये ताकि अनाजों की लागत मे आशातीत कमी की जा सके। परन्तु कितने खेद की बात है कि प्रति वर्ष लाखों टन अनाज की हमारे देश में हानि हो रही है। इसका कारण यह है कि कृषि श्रमिको को अच्छी मजदूरी नही दी जाती, भूमि पर उनका कोई अधिकार नही होता और वे काम करने में कोई रुचि नहीं लेते। श्री जगजीवन राम के शब्दों मे : "यह कभी नही भूलना चाहिए कि यदि किसी भी स्थान पर निर्धनता होगी तो उसके कारण हर स्थान पर सम्पन्नता को खतरा उत्पन्न हो जायेगा। जो व्यक्ति कृषि वस्तुओं का उत्पादन कर रहे है उनकी निर्धनता और मलीनता से उत्पादन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। उत्पादन के लिए जो मानवी साधन आवश्यक होता है, उसकी यदि हम उपेक्षा करेंगे, तो उससे सारे राष्ट्र को संकट पैदा हो जायेगा। अतीत काल से उपेक्षित तथा बुरी तरह शोषित कृषि श्रमिक वर्तमान समाज के अत्यन्त ही मार्मिक अंग हैं। अव्यवस्था और अशान्ति फैलाने वाले लोगों के यह बड़ी जल्दी शिकार हो जाते हैं। अतः इस खतरे को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि निर्धन परिश्रमी श्रमिकों के साथ सहानुभूति का व्यवहार किया जाये। प्रत्येक विचारशील प्राणी को यह अनुभव करना चाहिए कि इस समस्या का शीघ्रातिशीघ्र समाधान होना आवश्यक है। यदि इस समस्या की अधिक दिनों तक उपेक्षा की गई तो इसका सम्भालना कठिन हो जायेगा और फिर यह इतनी गम्भीर बन जायेगी कि इससे सामाजिक ढाँचे को न केवल धक्का ही पहुँचेगा, वरन् उसके नष्ट होने का भय उत्पन्न हो जायेगा।" हमें आशा है कि भारत सरकार द्वारा पारित न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, कृषि तथा ग्रामीण श्रमिक पूछताछें, राज्य सरकारो की विभिन्न योजनायें और पंचवर्षीय आयोजनाओं के सुझाव सभी कृषि श्रमिकों की समस्या का समाधान करने मे सहायक होंगे।

२४

श्रम और सहकारिता

LABOUR AND CO OPERATION

सहकारिता का अर्थ और उसके सिद्धान्त

सहकारिता व्यक्तियों की उस सामुदायिक भावना को कहते हैं जिसका उद्देश्य उचित साधनों द्वारा सामान्य आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करना है। विभिन्न लेखकों ने सहकारिता की अनेक प्रकार से व्याख्या की है, जिनका विषद उल्लेख करना यहाँ आवश्यक नहीं है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि जब व्यक्ति यह अनुभव करते हैं कि उनका किसी वर्ग द्वारा शोषण किया जा रहा है तब वह उस वर्ग से छुटकारा पाने के लिए स्वयं ही कार्य को अपने हाथ में ले लेते हैं। सहकारिता की अनेक ऐसी विशेषतायें हैं जिनके कारण एक सहकारी समिति और श्रम संघ जैसे अन्य संगठनों में अन्तर होता है। सहकारिता एक ऐसा संगठन है जिसमें पारस्परिक आर्थिक हित सम्पादन के लिए व्यक्ति समानता के आधार पर ऐच्छिक रूप से संगठित होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति मानव-प्राणी के रूप में, न कि पूँजीपति के रूप में संगठित होते हैं। यह सहकारिता का प्रथम सिद्धान्त है। दूसरे, सब सदस्य समानता के आधार पर संगठित होते हैं और आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के उद्देश्य से उनके बीच कोई अन्तर नहीं होता। तीसरा सिद्धान्त यह है कि संगठित होने का कार्य ऐच्छिक होता है और उसमें कोई बन्धन नहीं होता। चौथे, सदस्य केवल स्वयं के हितों का सम्पादन करने के हेतु संगठित होते हैं और जो सदस्य नहीं हैं उनसे उनका सम्बन्ध नहीं होता। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि सहकारिता व्यवसाय संगठन का ही एक प्रकार है। अतः यह एक व्यवसाय संस्था भी है। सहकारी संगठन में लाभ का उद्देश्य भी हो सकता है परन्तु इस प्रकार के लाभ को स्वयं सदस्यों में बाँट लिया जाता है, जो मालिक व कर्मचारी दोनों स्वयं ही होते हैं। सहकारिता का आधार पारस्परिक सहायता है, अर्थात् प्रत्येक सदस्य सबके लिए और सब प्रत्येक सदस्य के लिए (All for each and each for all) कार्य करते हैं।

संगठन के अन्य प्रकार तथा सहकारिता

सहकारिता पूँजीवादी व्यवस्था से भिन्न है। सहकारिता का उद्देश्य सदस्यों की आर्थिक स्थिति को सुधारना ही नहीं है वरन् उनके नैतिक स्तर का भी उन्नत करना है। यह समाजवाद से भी भिन्न है, क्योंकि यह व्यक्ति की स्वतन्त्रता का

समर्थक है। इसका उद्देश्य यह है कि व्यक्ति भूमि और पूंजी का स्वामी बना रहे। सहकारिता राज्य के स्वामित्व का समर्थन नहीं करती। सहकारिता वर्तमान प्रणाली का ही एक अंग है और इसका उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था और वर्तमान आर्थिक व्यवस्था को उखाड़ फेंकना नहीं है। इसका उद्देश्य यह है कि शान्ति बनी रहे और झगड़ा न हो तथा व्यक्ति निःस्वार्थ हों और केवल स्वयं का ही लाभ न देखें।

सहकारिता मिश्रित पूंजी कम्पनियों से भी भिन्न होती है क्योंकि कम्पनियाँ पूंजी की संस्था होती हैं। सहकारिता व्यक्तियों की एक संस्था है। मिश्रित पूंजी कम्पनियों (Joint Stock Companies) में मत का अधिकार व्यक्ति द्वारा क्रय किए गए शेयरों के आधार पर होता है, और इस प्रकार एक व्यक्ति एक से अधिक मत दे सकता है। सहकारिता 'एक व्यक्ति एक मत' के सिद्धान्त पर आधारित होती है। इसमें इस बात का विचार नहीं किया जाता कि एक व्यक्ति के पास कितने शेयर हैं या उसका पूंजी में कितना अंशदान है। सहकारिता में मनुष्य प्रधान है, पूंजी नहीं। इसका आधार केवल भौतिक ही नहीं है वरन् सामाजिक और नैतिक भी है।

सहकारिता श्रमिक संघों से भी भिन्न होती है। श्रमिक संघ श्रमिकों के ऐसे संगठन होते हैं जो सामूहिक सौदाकारी और सामूहिक कार्यवाही के द्वारा अपने रहन-सहन और कार्य की दशाओं को सुधारने तथा मजदूरी में वृद्धि करने के लिए बनाए जाते हैं। इस प्रकार श्रमिक संघ मजदूरी-प्रणाली को मानकर चलते हैं और मालिकों से सौदा करते हैं। सहकारिता के अन्तर्गत किसी मजदूरी प्रणाली या मालिकों का प्रश्न ही पैदा नहीं होता; प्रत्येक व्यक्ति स्वयं ही मालिक और श्रमिक होता है। श्रमिक संघ श्रमिकों के संगठन की मात्रा हैं जबकि सहकारिता एक व्यावसायिक संगठन का रूप है। श्रमिक संघ राजनैतिक गतिविधियों में भी भाग लेते हैं। सहकारी समितियों का ऐसा कोई उद्देश्य नहीं होता है।

सहकारिता के विचार का विकास

समाज में निर्धनता व शोषण के होने से तथा उनके दुष्परिणामों से बचने की आवश्यकता के कारण सहकारिता का अभ्युदय हुआ। जब पूंजीवाद और स्वतन्त्र प्रतियोगिता के दोष बहुत गम्भीर हो गए तब ऐसे व्यक्तियों ने, जो राज्य के हस्तक्षेप में विश्वास नहीं करते थे, शोषक वर्ग से बचने के लिए विभिन्न कार्यों को अपनी ही भलाई के लिए स्वयं ही करना शुरू कर दिया। सहकारिता को इस प्रकार हम पूंजीवाद एवं समाजवाद के बीच एक समझौता कह सकते हैं।

सहकारिता के अनेक प्रकार : विभिन्न देशों में सहकारिता आन्दोलन

सहकारिता को आर्थिक गतिविधि के किसी भी क्षेत्र में आरम्भ किया जा सकता है। समाज में अनेक प्रकार की सहकारी समितियां पाई जाती हैं। सहकारिता के विचार का जन्म इंगलैंड में उस समय हुआ जब औद्योगिक क्रांति के दोषों के कारण श्रमजीवी-वर्ग के हितों का हनन होने लगा था तथा मध्यस्थों के द्वारा

उपभोक्ताओं का शोषण होता था। इस आन्दोलन के नेता रोबर्ट ओवन थे जिन्होंने न्यू लेनार्क में, जहाँ इनका कारखाना था, श्रमिकों की एक बस्ती का निर्माण किया। उन्होंने श्रमिकों को व्यवसाय के प्रबन्ध में यथासम्भव भाग देने की व्यवस्था की। बाल श्रम को समाप्त करने, काम के घण्टे घटाने तथा जुर्माने को समाप्त करने जैसे महत्वपूर्ण सुधार भी रोबर्ट ओवन ने किए और श्रमिकों के लिए अनेक कल्याण कार्य भी किये। ओवन चाहते थे कि सहकारिता के आधार पर श्रमिकों को स्वयं ही प्रबन्ध का उत्तरदायित्व सौंपा जाय। उन्होंने निर्धन, असहाय एवं बेकारों के लिए सहकारी गाँवों अथवा सहकारी बस्तियों के निर्माण का समर्थन किया जहाँ श्रमिकों को काम दिया जा सके और इस प्रकार उन्हें आत्म निर्भर बनाया जा सके। ओवन के अनुगामियों ने एक सहकारी समिति 'National Equitable Labour Exchange' के नाम से स्थापित की। इस समिति में सब कारखानों के मजदूर ही थे जो माल बनाते भी थे और खरीदते भी थे। वस्तुओं का मूल्य मुद्रा में नहीं बरन् उन घण्टों में नियत किया जाता था जो हर वस्तु के बनाने में लगते थे। इस प्रकार 'लाभ' का विचार ही समाप्त कर दिया गया था। रोबर्ट ओवन को अपने प्रयत्नों में विशेष सफलता न मिली क्योंकि उसने जनता के सामने ऐसे ऊँचे आदर्श रखे थे जिनको व्यावहारिक रूप में प्राप्त करना कठिन था।*

विभिन्न देशों में सहकारी आन्दोलन के उद्गम और उसके इतिहास का यहाँ विस्तृत रूप से उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। यहाँ इतना उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा कि मालिकों द्वारा श्रमिकों का शोषण करने के कारण ही श्रमिक सहकारी उत्पादन समितियाँ अर्थात् उत्पादक सहकारी समितियों का जन्म हुआ। इन समितियों में श्रमिक स्वयं ही विभिन्न कार्यों के प्रबन्धक बन जाते हैं और विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। इस प्रकार की सहकारी समितियों में कोई मालिक अथवा कोई नौकर नहीं होता। इस विचार का जन्म रोबर्ट ओवन द्वारा इंगलैंड में हुआ और फ्रांस में भी फैला जहाँ यह कुछ सीमा तक सफल रहा। मध्यस्थों द्वारा उपभोक्ताओं का शोषण होने से इंगलैण्ड में राकडेल के अग्रगामियों (Rochdale Pioneers) द्वारा वितरण सहकारिता अथवा उपभोक्ता सहकारी समितियों की स्थापना की गई जो बाद को अन्य देशों में भी फैल गयी। महाजन द्वारा ऋणी के शोषण के कारण जर्मनी में 'रेफिसन' और 'शूलजे' के तथा इटली में 'सीनोर लज्जटाई' के प्रयत्नों के द्वारा सहकारी साख समितियों की स्थापना हुई जो अन्य देशों में भी लोकप्रिय हो गयी। शीघ्र ही सहकारी आन्दोलन शक्तिशाली हो गया तथा कई अन्य प्रकार की सहकारी समितियों का जन्म हुआ। डेनमार्क में दुग्ध-उत्पादन (डेयरी) उद्योग में सहकारिता का

* रोबर्ट ओवन और उसके प्रयत्नों के विषय में प्रो० नन्दलाल भटनागर की 'सहकारिता के सिद्धान्त एवं भारतीय सहकारिता', पृष्ठ १८–३६ देखिये।

प्रयोग बहुत सफल रहा है। उपज की बाजार में बिक्री और आवास निर्माण जैसी अनेक अन्य आर्थिक क्रियाओं के लिए भी सहकारी समितियाँ पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त सहकारी समितियाँ सदस्यों की शिक्षा, मितव्ययता तथा नैतिक उत्थान की शिक्षा जैसे अन्य कार्य भी करती हैं।

सहकारिता के लाभ

सहकारी आन्दोलन का यह संक्षिप्त वर्णन यहाँ केवल इस तथ्य की ओर संकेत करने के लिए दिया गया है कि सहकारिता निर्धन व असहाय व्यक्तियों के उत्थान के लिए बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है। पिछड़े हुए देशों एवं देश में पिछड़ी हुई जातियों के विकास व उन्नति के लिए सहकारिता एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि किसी बाह्य सहायता की अपेक्षा अपने ही प्रयत्नों एवं पारस्परिक सहायता द्वारा अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है। सहकारिता देश में श्रमजीवी वर्ग की अवस्था को सुधारने में भी बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। भारत जैसे देश में सामान्य जनता के उत्थान के लिए तो सहकारिता की बहुत ही महत्ता है।

भारत में सहकारी आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास

भारत में सहकारिता का जन्म ग्रामीण ऋणग्रस्तता एवं महाजन के अत्याचारों के कारण हुआ। १९वीं शताब्दी के अन्त में मद्रास सरकार ने ग्रामीण ऋण की समस्या का अध्ययन करने के लिए श्री फ्रेडरिक निकलसन को नियुक्त किया। उनकी रिपोर्ट १८९७ में प्रकाशित हुई। उन्होंने ग्रामीण ऋण की समस्या को सुलझाने के लिए रेफिसन आधार की सहकारी साख-समितियों की स्थापना का सुझाव दिया और अपनी रिपोर्ट का सारांश दो शब्दों में व्यक्त किया—"रेफिसन को लाओ" (Find Raiffeisen)। प्रारम्भ में उनकी रिपोर्ट पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। १९०२ में उत्तर प्रदेश के उच्च अधिकारी श्री डुपरनेक्स ने "The People's Bank of India" नामक पुस्तक लिखी तथा स्वयं अपने उत्तरदायित्व पर उत्तर प्रदेश में कुछ सहकारी समितियाँ चलाई। १९०१ के अकाल आयोग ने भी जोरदार शब्दों में साख संस्थाओं को प्रारम्भ करने की सिफारिश की थी। इन सबके परिणामस्वरूप १९०४ में प्रथम सहकारी साख समिति अधिनियम पारित किया गया और इससे देश में सहकारी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इस अधिनियम के अनुसार सहकारी साख समितियाँ स्थापित की जा सकती थीं, जिनको 'ग्रामीण' एवं 'शहरी' दो श्रेणियों में विभाजित किया गया था। ग्रामीण समितियों में असीमित देयता के सिद्धान्त को रखा गया था। समितियों के कार्य की देख-रेख करने के हेतु प्रत्येक प्रान्त में रजिस्ट्रार नियुक्त किये गये। सरकार ने आय-कर, रजिस्ट्रेशन शुल्क तथा स्टाम्प-कर आदि से छूट आदि की अनेक रियायतें भी दी।

इस अधिनियम का विस्तार करने तथा इसके दोषों को दूर करने के लिए १९१२ में 'सहकारी समिति अधिनियम' पारित किया गया। इसमें क्रय, विक्रय,

उत्पादन, बीमा, आवास जैसी गैर-साख समितियो के गठन की भी आज्ञा दे दी गई और देखभाल करने के लिए केन्द्रीय सगठनो को भी मान्यता दी गई। समितियो का वैधानिक रूप से वर्गीकरण किया गया, अर्थात् ग्रामीण व शहरी समितियो के स्थान पर अब इनका वर्गीकरण सीमित व असीमित देयता वाली समितियों के आधार पर किया गया।

इस अधिनियम के पारित होने के बाद समितियो की सख्या और सदस्यता मे काफी वृद्धि हुई। १९१४ मे सरकार ने आन्दोलन की समीक्षा करने के लिए मैक्लॉगन समिति नियुक्त की। समिति ने आन्दोलन के अनेक दोषो की ओर सकेत किया तथा सुधार के लिए कई महत्वपूर्ण सुझाव भी दिये परन्तु युद्ध छिड जाने के कारण इस पर कोई कार्यवाही नही की जा सकी। १९१९ के पश्चात् सहकारिता एक ऐसा प्रान्तीय विषय बन गया जिसके लिए मन्त्रीगण विधान सभा के सम्मुख उत्तरदायी थे। मन्त्रियो ने लोकप्रियता प्राप्त करने के उद्देश्य से सहकारिता का तीव्रता से विस्तार किया। बहुत बडी सख्या मे समितियाँ बनाई गईं परन्तु उनके गुण एव सुनियोजन की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया। १९२६ में रायल कृषि आयोग और प्रान्तीय व केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति ने भी सहकारिता के विचार और साहित्य मे महत्वपूर्ण योगदान दिया।

१९२९ मे आर्थिक मन्दी के आरम्भ होने से पूर्व तक यह आन्दोलन प्रगति करता रहा। परन्तु कृषि मूल्यो के गिरने तथा साथ ही किसानो की आय मे कमी हो जाने के कारण आन्दोलन को बहुत बडा धक्का लगा। अनेक समितियो का समापन (Liquidation) हो गया तथा आन्दोलन के अनेक दोष सामने आ गये। १९३५ मे रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना के पश्चात् यह आशा प्रकट की गई कि यह बैंक आन्दोलन की प्रगति मे सहायता करेगा। कृषि साख की समस्याओ का अध्ययन करने के लिए रिजर्व बैंक ने एक कृषि साख विभाग भी खोला। परन्तु रिजर्व बैंक ने आरम्भ मे इस सहकारिता आन्दोलन को कोई भी सहायता देने से तब तक के लिए इन्कार कर दिया जब तक कि आन्दोलन स्वय ही अपने दोषो को दूर न कर ले। परन्तु रिजर्व बैंक ने समय-समय पर अनेक रिपोर्टों एव समालोचनाओ के द्वारा देश मे सहकारिता आन्दोलन के पुनर्गठन एव पुनर्वास के सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण सुझाव दिये तथा बहु-उद्देशीय सहकारी समितियो की महत्ता पर बल दिया। १९३७ मे प्रान्तीय स्वायत्तता के पश्चात् मन्त्रियो ने किसानो की अवस्थाओ मे सुधार की ओर विशेष ध्यान दिया और इसका प्रभाव सहकारी आन्दोलन पर भी पडा। परन्तु फिर भी युद्ध से पूर्व आन्दोलन की स्थिति विशेष सन्तोषजनक नही थी।

१९३९-४५ के युद्ध के समय और उसके पश्चात् कृषि वस्तुओ के मूल्य बढ जाने के कारण आन्दोलन की स्थिति मे कुछ सुधार हुआ। सहकारी समितियो के सदस्यो ने अपने अधिकाश ऋणो को अदा कर दिया और इससे आन्दोलन की वित्तीय स्थिति अच्छी बन गई। उपभोक्ता सहकारिता एव सहकारी खेती जैसी

अन्य सहकारी क्रियाओं में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। आन्दोलन की प्रगति का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि १९३८-३९ में सहकारी आन्दोलन केवल ६ प्रतिशत जनसंख्या तक पहुँच पाया था। १९४५-४६ में यह प्रतिशत १६ हो गया था। १९४५ में भारत सरकार ने 'सहकारिता आयोजन समिति' की नियुक्ति की। इसने आन्दोलन का विकास करने, बहु-उद्देशीय समितियों का गठन करने तथा रिजर्व बैंक द्वारा अधिकाधिक सहायता देने की सिफारिश की। १९५१ में रिजर्व बैंक ने एक निर्देशन समिति नियुक्त की, जिसने देश में ग्रामीण साख व्यवस्था का अध्ययन किया और १९५४ मे अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसने ग्रामीण साख के लिए एक समठित (Integrated) योजना की सिफारिश की। इसके परिणाम-स्वरूप १ जुलाई, १९५५ को इम्पीरियल बैंक, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया के रूप में परिणत कर दिया गया ताकि ग्रामीण क्षेत्रों मे ४०० नई शाखायें खोली जा सकें। १९५६ मे रिजर्व बैंक ने कृषि साख के लिए दो निधियों की स्थापना की। १९५७ मे केन्द्रीय गोदाम निगम की स्थापना हुई ताकि मुख्य-मुख्य केन्द्रो मे १०० गोदामों की स्थापना की जा सके। १९५३ मे भारत सरकार तथा रिजर्व बैंक ने सहकारी कर्मचारियों को सहकारिता मे प्रशिक्षण देने के लिए संयुक्त रूप से मिलकर एक केन्द्रीय समिति की स्थापना की। पूना मे एक सहकारी कालिज तथा पाँच अन्य सहकारी प्रशिक्षण केन्द्रो की स्थापना भी की जा चुकी है। पचवर्षीय आयोजनाओ मे भी देश मे सहकारिता को, जो विकास का मुख्याधार बन गया है, भारत मे विकास कार्यक्रमो के लिए बहुत महत्वपूर्ण बताया गया है। इस प्रकार से आन्दोलन का, विशेषतया गैर-साख समितियों का, निरन्तर विकास हुआ है तथा आन्दोलन का भविष्य भी उज्ज्वल प्रतीत होता है। जनवरी १९५९ मे कांग्रेस दल ने अपने नागपुर अधिवेशन मे एक नये कृषि ढाँचे (सहकारी खेती) की घोषणा की। पचवर्षीय आयोजनाओ का मुख्य आधार भी सहकारिता को ही माना गया है। उत्तर प्रदेश मे पचायतो के साथ-साथ बहु-उद्देशीय सहकारी समितियो की योजना चालू की जा चुकी है। सेवा सहकारी समितियो की स्थापना का कार्यक्रम भी आरम्भ कर दिया गया है। इसका उद्देश्य यह है कि चाहे उत्पादन या खेती का कार्य सदस्यो द्वारा व्यक्तिगत रूप से किया जाये, परन्तु सामान्य सेवायें 'सेवा सहकारी समितियों' द्वारा प्रदान की जाये। यह भी प्रस्ताव है कि तृतीय पचवर्षीय आयोजना के अन्त तक तमाम ग्रामीण परिवारो को सहकारिता आन्दोलन के अन्तर्गत ले लिया जावे।

भारत मे सहकारी आन्दोलन के दोष

भारत मे सहकारी आन्दोलन का कुछ कठिनाइयों के कारण, अभी तक विकास बहुत उत्साहवर्द्धक ढंग से नही हो पाया है यद्यपि रॉयल कृषि आयोग ने कहा था कि "यदि भारत में सहकारिता असफल होती है तब भारतीय कृषि की उज्ज्वलतम आशायें असफल रहेगी।"* हमारे देश के सहकारी आन्दोलन मे अनेक

* *"If Co-operation fails, there will fail the best hope for Indian agriculture."*

त्रुटियाँ पाई गई है। सबसे बड़ा दोष जनसाधारण की अशिक्षितता है। लोग सहकारिता के सिद्धान्तो को ठीक प्रकार से नही समझते। गांवो मे यह धारणा-सी बन गई है कि सहकारी समितियाँ केवल महाजनो की स्थानापन्न मात्र हैं। शहरों मे भी अधिकतर यह देखा गया है कि लोग लाभ पाने के अधिक उत्सुक रहते हैं और अपनी समितियो के प्रबन्ध मे विशेष रुचि नही लेते। अधिकतर समितियों मे प्रबन्ध भी बड़ा ही दोषपूर्ण पाया जाता है। हिसाब-किताब ठीक से नही रखा जाता, लेखा-परीक्षा ठीक से नही होती है और केवल फाइल व रिकार्ड रखने मे ही अधिकतर समय और शक्ति नष्ट की जाती है। ऋण देने मे पक्षपात होता है और परिणामस्वरूप जरूरतमन्द व्यक्तियो को कभी-कभी ऋण नही मिल पाता। किसी भी कृषक अथवा श्रमिक को कर्ज की तत्काल ही आवश्यकता हुआ करती है, परन्तु इसके लिए उसे प्रार्थना-पत्र देना पड़ता है और कई सप्ताह तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। वह हताश होकर महाजन के पास जाने को बाध्य हो जाता है। समितियो के कर्मचारी भी अधिकतर प्रशिक्षित नही होते। समितियो के धन मे बेईमानी और गबन के भी अनेक उदाहरण पाये जाते है। ऋण का निश्चित तिथि पर भुगतान भी बहुत कम किया जाता है और बकाया राशि की मात्रा भी बहुत अधिक पाई जाती है। दिन-प्रतिदिन के कार्यों के लिए बिना वेतन पर काम करने वालो पर बहुत अधिक निर्भर रहा जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रबन्ध मे अकुशलता आ जाती है। आरम्भ मे सहकारिता आन्दोलन केवल साख-समितियो पर बल देता रहा और काफी समय तक गैर-साख सहकारी कार्यों पर ध्यान नही दिया गया।

सहकारी आन्दोलन का एक अन्य दोष यह है कि अभी तक यह बहुत कम अनुभव किया गया है कि सहकारिता जनसाधारण का आन्दोलन है एव इसके प्रबन्ध का भार भी जनता पर ही सौंपना चाहिए। जनसाधारण पर सहकारिता सरकार द्वारा थोपी गई है। समितियो के दिन-प्रतिदिन के कार्यों मे भी रजिस्ट्रार और सहायक रजिस्ट्रार द्वारा अत्यधिक हस्तक्षेप किया जाता है। इसके अतिरिक्त सहकारी आन्दोलन मे राजनीति भी आ गई है और सहकारी खेती के कार्यक्रम मे भी यह देखा गया है कि न केवल आपसी मतभेद है वरन् जो कुछ भी किया जा रहा है वह स्थानीय राजनैतिक नेताओ के कहने से और उनके प्रभाव से किया जा रहा है।

सहकारिता आन्दोलन का ढाँचा

आन्दोलन के ढांचे को केन्द्रीय सहकारी समितियो व प्रारम्भिक सहकारी समितियो के बीच विभाजित किया जा सकता है। केन्द्रीय सहकारी समितियाँ इस प्रकार है प्रान्तीय अर्थात् राज्य या शिखर सहकारी बैंक, केन्द्रीय सहकारी बैंक, तथा सहकारी सघ। इनका कार्य मुख्यत निरीक्षण का तथा प्रारम्भिक समितियो को ऋण देने का है। समस्त राज्य के लिए सहकारी सगम भी स्थापित किये गये

है। प्रारम्भिक समितियाँ कृषि अथवा गैर-कृषि होती हैं तथा साख अथवा गैर-साख समितियाँ होती हैं। कृषि सहकारी साख समितियाँ कृषको को रुपया उधार देने के लिए बनाई जाती है। बाजार में बिक्री करने, जोतो की चकबन्दी करने, अच्छे बीज व खाद का प्रबन्ध करने आदि कार्यों के लिए कृषि गैर-साख समितियों की स्थापना की जाती है। औद्योगिक श्रमिकों, शिल्पियों आदि को ऋण देने के लिए गैर-कृषि साख समितियाँ बनाई जाती है। आवास, निर्माण, बिक्री, उपभोक्ता, उत्पादन, आदि अनेक कार्यों के लिए गैर-कृषि गैर-साख समितियाँ स्थापित की जाती हैं। इस प्रकार राज्य-स्तर पर शिखर सहकारी समितियाँ, जिला-स्तर पर केन्द्रीय सहकारी समितियाँ तथा स्थानीय-स्तर पर प्रारम्भिक सहकारी समितियाँ होती है। एक अन्य नये प्रकार की समिति बहु-उद्देश्य सहकारी समिति है। इसमे साख व गैर-साख दोनो ही प्रकार के कार्य सम्मिलित रहते हैं। एक नई प्रकार सेवा सहकारी समितियो की है जिसमे सामान्य सेवायें तो समिति द्वारा प्रदान होती हैं, परन्तु उत्पादन व्यक्तिगत रूप से सदस्यो द्वारा किया जाता है।

सहकारिता एव श्रम : सहकारी उत्पादन

सहकारिता आन्दोलन के इस सक्षिप्त विवरण को ध्यान मे रखते हुए अब हम भारत मे श्रमिक वर्ग एव सहकारिता के विषय पर विचार करेंगे। देश में औद्योगिक श्रमिको के लिए सहकारी समितियों को प्रारम्भ करने की ओर अभी तक कोई विशेष ध्यान नही दिया गया है। प्रथम समस्या तो यह है कि देश मे सहकारी उत्पादन समितियाँ स्थापित हो सकती हैं या नही। इंगलैण्ड मे रोबर्ट ओवन द्वारा औद्योगिक सहकारी समितियों को चलाने का प्रयत्न किया गया था। परन्तु इसमें वह सफल न हो सका था। वास्तव मे सच तो यह है कि किसी भी देश मे बड़े पैमाने के उद्योग मे सहकारी उत्पादन सफल नही हुआ है। इसके कारण स्पष्ट हैं : प्रथम तो आर्थिक जीवन के विकास के साथ-साथ उत्पादन प्रक्रिया बडी विषम हो गई है। उद्यमकर्त्ता के कार्य इतने कठिन एवं अधिक हो गये है कि प्रत्येक व्यक्ति उन्हे सन्तोषजनक ढंग से पूरा नही कर सकता। उद्यमकर्त्ता के लिए पर्याप्त कुशलता एव चातुर्य का होना आवश्यक है। इस प्रकार की उच्च योग्यता एवं कुशलता किसी साधारण श्रमिक में अथवा कारखाने मे श्रमिको के द्वारा चुने गये प्रतिनिधियो मे पाना कठिन है। यह आशा नही की जा सकती कि उद्यमकर्त्ता के कार्यों को श्रमिक उतनी ही कुशलतापूर्वक निभा सकेंगे जितना कि योग्य एव अनुभवी व्यक्ति कर सकते हैं और फिर उत्पादन की आधुनिक प्रक्रिया मे अत्यधिक पूँजी की आवश्यकता होती है, जिसको विनियोजित अथवा एकत्र करना श्रमिकों की क्षमता के बाहर है। यह भी कहा जा सकता है कि एक बड़ी सीमा तक श्रमिक स्वय ही उत्पादन सहकारिता की असफलता के लिए उत्तरदायी है। उनमे पारस्परिक ईर्ष्या होती है तथा वह अपने ही साथी द्वारा दिये गये आदेशो एव निर्देशों को उतनी ही तत्परता व वफादारी से पालन नही करते जितना कि वे किसी बाह्य

उद्यमकर्त्ता अथवा प्रबन्धकर्त्ता के द्वारा दिये गये आदेशों का पालन करते हैं। अत इंगलैण्ड व अन्य देशो मे अनेक बार प्रयत्न करने पर भी उत्पादन सहकारिता बड़े पैमाने के उद्योगो मे कही भी सफल नही हुई हैं। भारत मे तो इसकी सम्भावना बहुत ही कम है, क्योकि यहाँ के श्रमिक अत्यन्त निर्धन एव अशिक्षित हैं। इस सम्बन्ध में, देश मे प्रचलित कुछ सहकारी उद्यम वस्तुत मिश्रित पूँजी सगठन जैसे ही है।

श्रम सह-साझेदारी समितियाँ
(Labour Co-Partnership Societies)

परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि उत्पादन सहकारिता किसी भी क्षेत्र में सम्भव नही है। छोटे पैमाने के उद्योगो मे तथा कृषि मे श्रमिक स्वय उत्पादन-कार्य कर सकते है। औद्योगिक सहकारिता का एक मुख्य रूप श्रम सह-साझेदारी समितियाँ हैं जो इगलैण्ड मे स्थापित की गई हैं। ये समितियाँ उत्पादन के उन क्षेत्रों से अलग रहने का प्रयत्न करती हैं जहाँ फैक्टरी उत्पादन से सघर्ष होने की सम्भावना होती है। वह केवल ऐसी ही वस्तुओ का उत्पादन करती है जो छोटे पैमाने पर उत्पादन के लिए उपयुक्त होती हैं और जिनकी बिक्री शीघ्र हो सकती है। इगलैण्ड म उपभोक्ता आन्दोलन ने इन समितियो के सचालन को सरल बनाने मे सहायता दी है, क्योंकि इसने इनकी वस्तुओ की बिक्री का भार अपने ऊपर ले लिया है तथा इन समितियो को ही विभिन्न वस्तुओ के लिए आर्डर दिया जाता है। इगलैण्ड मे सहकारी उत्पादन केवल तीन प्रकार के उद्योगो मे, अर्थात् कपड़ा, बूट व जूते और छपाई उद्योग मे, पाया जाता है। ये समितियाँ अपने सदस्यो से इस बात का अनुरोध करती है कि वे सहकारी रूप से उत्पादित वस्तुओ को ही खरीदें क्योकि एसी वस्तुयें गुण मे अच्छी होने के साथ-साथ अच्छी श्रम दशाओ मे उत्पादित की जाती हैं।

श्रमिक सहकारी कार्य समितिया
श्रम ठेका तथा निर्माण सहकारी समितियाँ
(Labour Co operatives .
Labour Contract and Construction Co-operatives)

श्रम सहकारी कार्य समितियाँ भी बहुत लोकप्रिय रही है और फ्रांस, इटली, पैलस्टाइन और न्यूजीलैण्ड जैसे देशो मे इनको पर्याप्त सफलता भी मिली है ऐसी समितियाँ श्रमिको के समूहो को रोजगार पर लगाने के लिए सगठित की जाती हैं और इनमे श्रमिक सयुक्त रूप से कार्य करने के लिए सगठित होते है। भारत मे, अनेक राज्यो मे श्रम ठेका तथा निर्माण सहकारी समितियो का सगठन किया गया है। इनका उद्देश्य है कि भूमिहीन श्रमिको जैसे कमजोर वर्गों को जितना रोजगार अब प्राप्त है उससे अधिक तथा लगातार रोजगार प्राप्त कराने मे उनकी सहायता की जाये। ऐसी श्रमिक सहकारी समितियो के सगठन को प्राथमिकता दी जाती

है, विशेष रूप से ग्रामीण निर्माण तथा सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रमों के सम्बन्ध में। कृषि श्रमिक इन समितियों के द्वारा अपनी सौदा करने की क्षमता मे वृद्धि कर सकते है और ठेके के श्रम के दोषो को दूर कर सकते है। सन् १६६४–६५ में श्रम ठेका तथा निर्माण समितियो की संख्या ४,३८५ तथा सदस्यता की संख्या १·७६ लाख थी। सन् १६६५–६६ मे, श्रमिक सहकारी समितियों तथा उसके सदस्यों की संख्या क्रमशः ५,००० तथा ३ लाख होने की आशा की गई थी। सन् १६६४–६५ में इन समितियों द्वारा ७·८५ करोड़ रुपये के मूल्य के कार्य किये गये थे और सन् १६६५–६६ में ८·५ करोड़ रुपये के मूल्य के कार्य किये जाने का अनुमान था। उड़ीसा, पंजाब, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान और आन्ध्र प्रदेश में ऐसी सहकारी समितियो ने काफी प्रगति की है। अन्य राज्यों में भी काम आगे बढ़ाया जा रहा है।

सितम्बर १६६२ मे नागपुर मे श्रम ठेका तथा निर्माण सहकारी समितियों की एक अखिल भारतीय गोष्ठी (सेमिनार) हुई थी। सेमिनार में श्रमिक सहकारी समितियो की महत्ता पर जोर दिया गया और कहा गया कि ऐसी समितियाँ विकास कार्यो के सम्पादन करने तथा श्रमिको को उचित मजदूरी दिलवाने की उपयोगी साधन हैं। सेमिनार मे ऐसी सहकारी समितियो के विकास के लिए अनेक सुझाव दिये गये, उदाहरणत, काम का आरक्षण, बयाना और जमानत की रकम की अदायगी से छूट, प्रारम्भिक अग्रिम धन को स्वीकृति, निविदाओं के सम्बन्ध मे मूल्य-अधिमान अथवा छूट और नियमित पाक्षिक अदायगियाँ आदि। अनेक राज्य सरकारो ने सिफारिशो को कार्यान्वित किया है। उड़ीसा, गुजरात तथा केरल मे इन श्रमिक सहकारी समितियो को बिना टेडर माँगे ही ५०,००० रु० के मूल्य का कार्य, पजाब मे सभी प्रकार के अकुशल कार्य, मैसूर मे २५,००० रु० तक के कार्य, राजस्थान, दिल्ली, महाराष्ट्र मे और केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग को २०,००० रु० के मूल्य के कार्य और आन्ध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश तथा मणिपुर मे १०,००० रु० तक के मूल्य के कार्य सौंपे जाते हैं। मद्रास, मैसूर, केरल, उड़ीसा और राजस्थान मे श्रमिक सहकारी समितियो को बयाने तथा जमानत की अदायगी से भी मुक्त कर दिया गया है किन्तु अन्य राज्यों में सीमित छूट प्रदान की गई है। मैसूर मे २५% अग्रिम राशि दी जाती है। इसके अतिरिक्त, श्रमिक सहकारी समितियो के टेण्डरो पर ५% की छूट दी जाती है (यह छूट गुजरात तथा उड़ीसा मे ५० हजार रु० से लेकर १ लाख रु० तक के काम पर, राजस्थान में २० हजार रु० से लेकर १ लाख रु० तक के काम पर और महाराष्ट्र में २० हजार रु० से लेकर २ लाख रु० तक के काम पर दी जाती है)।

सामुदायिक विकास तथा सहकारिता मन्त्रालय ने श्रमिक सहकारी समितियो के लिये राष्ट्रीय स्तर पर एक सलाहकार बोर्ड की स्थापना की है। बोर्ड ने एक योजना तैयार की है जिसमे कुछ चुने हुए जिलो तथा क्षेत्रो मे श्रमिक सहकारी समितियो के गहन विकास की व्यवस्था है। अब तक ११ राज्यों ने ऐसे अग्रगामी

जिलो का चुनाव कर लिया है जहाँ यह कार्यक्रम आरम्भ हो चुका है। तृतीय आयोजना ने भी श्रमिक सहकारी समितियो क विकास पर काफी जोर दिया गया है और कहा गया है कि ये समितियाँ विकास कार्यो को लागू करने तथा रोजगार प्रदान करने का मुख्य साधन है। चौथी आयोजना मे भी मुख्य जोर इस बात पर दिया गया है कि प्रारम्भिक श्रमिक सहकारी समितियो की स्थापना की जाये, शिखर निकायो तथा जिला निकायो का निर्माण किया जाए, ग्रामीण मानव शक्ति कार्यक्रम से उन्हे सम्वद्ध किया जाए और कार्यकर पूँजी तथा पर्याप्त तकनीकी सहायता की व्यवस्था की जाए। आशा की जाती है कि चौथी आयोजना की अवधि मे ३,३०० प्रारम्भिक श्रमिक सहकारी समितियो और १२५ जिला सघो की स्थापना हो जायेगी।

इसके अतिरिक्त, बनो का उपयोग करने के लिए अनेक राज्यो मे वन श्रमिक सहकारी समितियाँ बनाई गई है। राष्ट्रीय वन नीति सम्बन्धी प्रस्ताव मे कहा गया है कि वन श्रमिक सहकारी समितियो को, जहाँ तक भी सम्भव हो सके, वनो का शोषण करना चाहिये। वन सहकारी समितियो पर एक कार्यकारी दल बनाया गया है जो विभिन्न प्रकार की प्रचलित वन समितियो के कार्यों से प्राप्त अनुभव की इस उद्देश्य से समीक्षा कर रहा है ताकि उनके तीव्र विकास के लिए अन्य सुभाव दिय जा सके। सन् १९६४–६५ मे इन वन श्रमिक ठेका सहकारी समितियो की सख्या ११४३, सदस्यता १,१२,२४२, शेयरपूँजी २२·९० लाख रु० और कार्यकर पूँजी १७५ ३८ लाख रु० थी जबकि १९६३–६४ म इन समितियो की सख्या १०१७ सदस्यता ९८,९३६, शेयर पूँजी २५ ४६ लाख रु० तथा कार्यकर पूँजी १६२ ५७ लाख रु० थी। इसी अवधि मे इन समितियो द्वारा किए गए कार्य का मूल्य २९८ ३४ लाख रु० से बढकर ३६६ २६ लाख रु० हो गया था।

श्रमिक सहकारी कार्य समितियो की विशेषतायें

इस प्रकार की श्रमिक सहकारी कार्य समितिया श्रमिक व मालिक दोनो ही के लिए बहुत लाभदायक होती हैं। इन श्रमिक सहकारी कार्य समितियो की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित है (क) श्रमिक अपने साथ कार्य करने वालो को स्वय छाटते है तथा अपन नेता को चुनते ह (ख) श्रमिक अपनी सामूहिक श्रम की आय को अपनी इच्छानुसार बाँट लेते है, (ग) श्रमिको को इस बात की स्वतन्त्रता रहती है कि वह जिस प्रकार चाहे कार्य करने की व्यवस्था कर सकते है। (घ) श्रमिक किसी वाह्य ठेकेदार की अधीनता मे कार्य नही करते, वे कार्य को स्वय तथा अपने उत्तरदायित्व पर करते हैं, (ङ) श्रमिक मालिक के निरीक्षण मे कार्य नही करते। कार्य पूरा हो जाने के बाद मालिक केवल यह देखता है कि कार्य योजनानुसार किया गया है अथवा नही, (च) यदि कार्य उत्पादन के हिसाब से निर्धारित होता है तब उनको उजरत दर पर मजदूरी दी जाती है। ऐसी समितियो को कार्य सौंपने से मालिक को लाभ होता है क्योंकि एक तो कार्य शीघ्र पूरा हो जाता है

तथा दूसरे उसको ऊपरी खर्चों में बचत हो जाती है। मालिक को श्रमिकों में अनुशासन रखने का भार भी नहीं लेना पड़ता क्योंकि श्रमिक स्वयं ही कार्य को हाथ में ले लेते हैं और पूरा करते हैं।

उत्पादन सहकारिता एवं छोटे पैमाने के उद्योग

भारत में उत्पादन सहकारिता छोटे पैमाने के उद्योग-धन्धों में सफल हो सकती है। कुछ राज्यों में उत्पादन सहकारिता को सफलता भी मिली है। मद्रास में औद्योगिक सहकारी बुनकर समितियाँ सबसे अधिक महत्वपूर्ण है और उनकी संख्या २५० से भी अधिक है। ये समितियाँ मद्रास हाथ-करघा बुनकर राज्य सहकारी समिति से सम्बद्ध है। यह समिति प्रारम्भिक समितियों को कच्चा माल प्रदान करती है, उनके तैयार माल को बेचती है, उनको सहायता देती है तथा उनके कार्यों का नियन्त्रण तथा विकास करती है। इस समिति ने मद्रास में तीन रगाई कारखाने, तीन हाथ-करघा कारखाने तथा एक कपड़ा छपाई कारखाने की स्थापना की है। मद्रास में अन्य औद्योगिक समितियों की संख्या १०६ है जो कागज, खिलौने आदि बनाती है। बम्बई में ६ औद्योगिक सहकारी संस्थायें बनाई गई है, जिनका कार्य यह है कि हाथ-करघा उद्योग को सगठित करके कपड़े के डिजाइनों को अधिक अच्छा बनायें तथा इस हेतु उन्नत यन्त्र व कच्चे माल को उपलब्ध करे, तथा छपाई व रगाई का कार्य भी करे और बिक्री के लिए माल को खरीद भी ले। सरकार इन संस्थाओं को अशदान देकर सहायता करती है। उत्तर प्रदेश में ७८ बुनकर समितियाँ और एक राज्य औद्योगिक सगम है। उत्पादन व बिक्री सहकारी समितियों की कुल संख्या १०० है। हाथ-करघों के सूत की कुल मात्रा को वितरित करने के लिए राज्य में ३५ उत्पादन केन्द्र स्थापित किए गए है। बिहार, मध्य प्रदेश और केरल में भी बुनकर समितियाँ बनाई गई है जो कपड़े व सूत का क्रय-विक्रय करती है।

हाथ-करघा उद्योग में श्रमिक उत्पादन सहकारी समितियों के बनाये जाने का कारण यह है कि देश में कपड़े की कमी रही है जो युद्ध के दिनों में विशेषतया अनुभव की गई थी। परन्तु इससे यह विदित होता है कि उत्पादन सहकारी समितियाँ उन उद्योगों में विशेषकर सफल हो सकती हैं जहाँ थोड़े धन व अधिक श्रम शक्ति की आवश्यकता होती है। तांबे, पीतल, लोहे आदि की वस्तुयें बनाने के तथा चमड़े, रेशम, गुड़, साबुन, बीड़ी, सिगार, टोकरी आदि के छोटे पैमाने के उद्योगों में औद्योगिक सहकारी उत्पादन समितियों के लिये अच्छा क्षेत्र है। मदुरा शहर में काफी समय से एक सहकारी सिगार कारखाना चालू है। इसमें श्रमिक ही शेयर-धारी व मालिक हैं तथा कार्य के लिए प्रचलित दर पर मजदूरी पाते हैं। व्यापार में जो लाभ होता है उस पर उन्हें लाभांश मिलता है। अत श्रमिक सहकारी उत्पादन समितियों के विस्तार और छोटे पैमाने के उद्योगों में उनके विकास के लिए प्रयत्न किये जाने चाहिये। सरकार को इन समितियों को कुछ अनुदान देकर

सहायता करनी चाहिये तथा इनकी सहायता के लिये कोई वित्तीय सस्था को स्थापित करने के लिये प्रोत्साहन देना चाहिए। ऐसी सहकारी समितियो को वित्तीय सहायता देने के लिये राज्य और केन्द्रीय सहकारी बैंक काफी सहायक सिद्ध हो सकते हैं। केन्द्रीय सरकार द्वारा औद्योगिक सहकारी उत्पादन समितियो के विकास के लिये अधिकारियो को विशिष्ट प्रशिक्षण देने हेतु एक योजना चालू की गई है।

मार्च १९६६ मे, औद्योगिक सहकारी समितियो की सख्या निम्न प्रकार थी —चीनी सहकारी कारखाने—७६, कपास ओटने तथा धुनने की समितियाँ, धान कूटने की समितियाँ—८२४, फल तथा वनस्पति सरक्षण समितियाँ—३०, अन्य समितियाँ—१३३, तेल पेलने की समितियाँ—२५०। सन् १९६४ मे, अन्य समितियो की सख्या इस प्रकार थी—बुनकर समितियाँ—राज्य २१; केन्द्रीय ११७, प्रारम्भिक १२,७३३, कताई मिलें—४७; अन्य औद्योगिक समितिया—२५०६५। मार्च १९६६ मे औद्योगिक सहकारी समितियो की कुल सख्या ५३००० थी जबकि १९६५ मे यह सख्या ५१,००० ही थी। १९६६ से ही औद्योगिक सहकारी समितियो के एक राष्ट्रीय सघ ने भी कार्य करना आरम्भ कर दिया है।

अन्य क्षेत्रो मे सहकारिता

कृषि के क्षेत्र मे उत्पादन सहकारिता से तात्पर्य सहकारी खेती से है। परन्तु इसका विवेचन इस अध्याय के क्षेत्र से बाहर है। जहाँ तक श्रमिक सह साझेदारी का सम्बन्ध है यह भी उत्पादन सहकारिता से एक भिन्न समस्या है और यह उद्योग मे प्रबन्धको के साथ श्रमिको के सहयोग से सम्बन्धित है। इस पर विचार 'लाभ सहभाजन' के अन्तर्गत पृष्ठ ६१७-१८ पर पहले ही किया जा चुका है। कुछ अन्य सहकारी समितिया भी हैं जो इस प्रकार है —रिक्शा खीचने वालो की (जून १९६५ मे १३१), धोबियो की सहकारी समितियाँ (जून १९६५ मे ३५), यातायात सहकारी समितियाँ (१९६५ मे १०५०) और मछेरो की सहकारी समितियाँ (१९६५ मे ३१७७)। इन सब आकडो से पता चलता है कि समाज के कमजोर वर्ग अपने को अधिकाधिक रूप मे सहकारी समितियो के रूप मे सगठित करते जा रहे हैं।

सहकारिता और श्रमिको की ऋणग्रस्तता

अन्य क्षेत्रो मे भी देश के श्रमिक वर्ग के लिए सहकारिता सहायक सिद्ध हो सकती है। एक महत्वपूर्ण समस्या, जिसका सहकारिता द्वारा सफलतापूर्वक समाधान किया जा सकता है, ऋणग्रस्तता की है। ऋणग्रस्तता की बुराइयो की ओर सकेत 'औद्योगिक श्रमिको की ऋणग्रस्तता' वाले अध्याय मे किया जा चुका है। यदि श्रमिक एक सहकारी साख समिति का सगठन कर लें तो उन्हे बहुत कम सूद की दर पर ऋण मिल सकता है। इस प्रकार से महाजनो के अनेक दोषो को दूर किया जा सकता है। इस प्रकार की समितियाँ देश मे सफलतापूर्वक कार्य कर रही

है। रेलवे में ऐसी समितियों के उदाहरण मिलते हैं जो युद्ध से पूर्व सफलतापूर्वक कार्य कर रही थीं, उदाहरणतः, मद्रास व दक्षिणी मराठा रेलवे श्रमिक सहकारी शहरी बैंक, तथा मद्रास तथा दक्षिणी भारत रेलवे कर्मचारी सहकारी समिति, तिरुचिरापल्ली। मद्रास की समिति सबसे पुरानी है। यह १६०७ में प्रारम्भ की गई थी और इसके २५,००० सदस्य थे। १६४४-४५ में इसकी शेयर पूंजी १३.६४ लाख रुपये थी व आरक्षित निधि की राशि ५ लाख रुपये से भी अधिक थी। यह सहकारी समिति अपने सदस्यों की बचत की राशि का १० लाख रुपया जमा करने में समर्थ हुई थी। १६४६ में इसकी कार्यशील पूंजी की कुल राशि लगभग ८० लाख रुपया थी। इसने कभी किसी बाहरी संस्था से रुपया उधार नहीं लिया था, जो बहुत प्रशंसनीय बात थी। ११.३ लाख रुपये का सिब्बदी का व आकस्मिक व्यय निकाल कर भी इस बैंक को १६४४-४५ में ६२,७०० रु० का लाभ हुआ था। दक्षिण भारत रेलवे कर्मचारी सहकारी साख समिति के २५,००० श्रमिक सदस्य थे। कुल श्रमिक संख्या ७५,००० थी। इस समिति की स्थापना १६१६-२० में हुई थी। इसकी कार्यशील पूंजी की राशि ३५.७ लाख रु० से भी अधिक थी। इस समिति को १६४४-४५ में ५२,००० रुपये का लाभ हुआ था। यह बैंक अपने सदस्यों की बचत की राशि का ७ लाख रु० एकत्रित करने में सफल हो सका था। सन् १६६५-६६ में, रेलवे कर्मचारियों की २६ सहकारी साख समितियाँ थीं जिनकी सदस्य संख्या ७,२७,८८६ और चुकती शेयर पूंजी (Paid up share capital) ६५२.५५ लाख रु० थी। इसी प्रकार डाक व तार कर्मचारियों की सहकारी साख समितियों की संख्या १४५, उनकी सदस्य संख्या १,६४,५४१ और स्वीकृत पूंजी (Subscribed capital) १.६० करोड़ रु० थी। कोयला क्षेत्रों में, ५६४ सहकारी समितियाँ कार्य कर रही हैं। इनका मुख्य कार्य सदस्यों को उचित दामों पर उपभोक्ता वस्तुयें तथा कर्ज प्रदान करना है। ब्याज की नीची दर पर ऋण की सुविधाओं का विस्तार करने के लिए १६६६-६७ के मध्य १६.८२ लाख रु० की धनराशि कोयला खान श्रम-कल्याण निधि द्वारा स्वीकृत की गई थी। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि श्रमिक सहकारी साख समितियाँ बना लें और इनके प्रति वफादार रहें तो उन्हें बहुत लाभ हो सकता है।

सहकारिता और आवास

एक अन्य क्षेत्र जिसमें औद्योगिक श्रमिकों के लिए सहकारिता लाभदायक सिद्ध हो सकती है वह आवास निर्माण के लिये सहकारी समितियों का बनाना है। आवास की घोर शोचनीय दशाओं का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है और इनमें सुधार करने की तीव्र आवश्यकता को भी बताया जा चुका है। इस सम्बन्ध में सहकारी प्रयत्न बहुत महत्वपूर्ण और उपयोगी हो सकते हैं। श्रमिकों के लिए सहकारी आधार पर मकान बनाने के लिये सफल परीक्षण का उदाहरण मदुरा मिल्स लिमिटेड का है। इस मिल ने मदुरा के निकट हारवेपट्टी में एक गृह निर्माण समिति की स्थापना की है। "इस योजना का उद्देश्य यह है कि मिल के निकट घने

तथा भीडभाड पूर्ण वाले स्थान से दूर स्वस्थ ग्रामीण क्षेत्रो मे श्रमिको के लिए मकान बनाए जायें और श्रमिक किराया देते हुए निरन्तर कई वर्षों तक रहने पर अन्तत स्वय ही इनके स्वामी बन जायें।" इस गृह निर्माण समिति की स्थापना सितम्बर १९३८ मे की गई थी जबकि प्रत्येक मकान की लागत ६०० रु० आती थी। मकान का किराया ४ रु० प्रति माह निश्चित किया गया था और जो श्रमिक मकान मे १२½ वर्ष तक रह लेता था वह उसका स्वामी बन जाता था। इस क्षेत्र मे विद्युत प्रकाश, पानी, नाली, सडकें, पार्क, स्कूल आदि सभी सुविधाओ सहित लगभग ६०० मकानो का निर्माण किया गया था। इस समिति को मालिको द्वारा पर्याप्त वित्तीय सहायता भी मिली थी। इससे देश के दूसरे मालिको को भी प्रेरणा लेनी चाहिये। मदुरा मिल्स ने ४० ००० रुपये की शेयर पूँजी लगाई थी और २ लाख रुपये का ऋण भी बिना ब्याज के दिया था। इसके लिए मदुरा मिल्स ने लगभग ५ मील दूर १०० एकड भूमि खरीदी गई थी। स्कूल, अस्पताल, भण्डार आदि की व्यवस्था करने के पश्चात् प्लाट बाँट दिये गये थे और इस प्रकार ६०० मकान बनाये गये थ। स्वच्छ जल पूर्ति, मल मल निकास का प्रबन्ध, विद्युतीकरण तथा श्रमिको को मदुरा से मिल तक लाने व वापिस ले जाने के लिए विशेष ट्रेन आदि की व्यवस्था करने मे मालिको ने १ ७० लाख रुपया व्यय किया। स्कूल, औषधालय व जल पूर्ति का प्रबन्ध मालिको द्वारा किया जाता है। इस बस्ती मे भगियो की व्यवस्था करन के लिए पचायत प्रति मकान ८ आने एकत्रित करती है। बस्ती का प्रबन्ध सहकारी आवास समिति द्वारा किया जाता है जिसका एक निदेशक मण्डल है। इस मण्डल मे मिल मालिक, श्रमिक सघ तथा मिल श्रमिको के एक-एक प्रतिनिधि, जिला कलक्टर तथा मदुरा जिला बोर्ड का अध्यक्ष अथवा उप अध्यक्ष हाते है। यदि इस उदाहरण का सर्वत्र पालन किया जाये तो औद्योगिक श्रमिको की आवास दशाओ मे पर्याप्त सुधार हो सकता है। उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना के अन्तर्गत सरकार सहकारी गृह-निर्माण समितियो को आर्थिक सहायता व ऋण प्रदान करती है। परन्तु इस सम्बन्ध मे विशेष सफलता नही मिल सकी है।

सहकारिता और कैन्टीन

कार्य के घण्टो के मध्य मे कारखाने मे श्रमिको को भोजन प्रदान करने मे भी सहकारिता के लिए पर्याप्त क्षेत्र है। इस उद्देश्य के लिए कारखानो मे कैन्टीन की व्यवस्था की गई है (देखिये पृष्ठ २५८-५९), परन्तु अधिकाशत उनका सचालन कारखाना मालिको या ठेकेदारो द्वारा किया जाता है। यदि कैन्टीन का सचालन सहकारिता के आधार पर किया जाये तो उससे तीन लाभ होगे—श्रमिको को स्वच्छ भोजन मिलेगा, मूल्य कम होगे तथा वे स्वय-सहायता व स्वय निर्भरता के सिद्धान्तो को समझ सकेगे। परन्तु सहकारी आधार पर कैन्टीन चलाने के लिए आरम्भ मे मालिको की पर्याप्त सहायता की आवश्यकता है। मदुरा की श्री मीनाक्षी

मिल्स मे सहकारी आधार पर कैन्टीन का संचालन किया जाता है। पहले कैन्टीन का संचालन मिल प्रबन्धकर्त्ताओं द्वारा किया जाता था, परन्तु मई, १९४० मे इसका प्रबन्ध सहकारी भण्डार को स्थानान्तरित कर दिया गया। कैन्टीन अब सहकारी भण्डार के एक पृथक् विभाग के रूप मे चलाया जाता है तथा अपनी सभी आवश्यकताओं की चीजें भण्डार से प्राप्त कर लेता है। कैन्टीन विभाग मे भोजन को लागत मूल्य या लागत मूल्य से कम पर बेचने के कारण जो हानि होती है उसकी पूर्ति मिल के द्वारा की जाती है। मिल ने सहकारी भण्डार को बिना मूल्य लिए भोजन बनाने के बर्तन तथा फर्नीचर भी प्रदान किये हैं। इस सहकारी आधार पर प्रबन्ध करने की प्रणाली को कारखानों की सभी कैन्टीनो मे लागू करने का प्रयत्न करना चाहिए तथा प्रारम्भिक अवस्था में मालिकों को पर्याप्त वित्तीय सहायता देनी चाहिए।

उपभोक्ता सहकारी भण्डार
(Consumer's Co-operative Stores)

कारखाने के अहाते या श्रम बस्ती मे 'उपभोक्ता सहकारी भण्डार' की यदि स्थापना करके उसका सचालन किया जाये तो इससे अनेक लाभ होंगे—प्रथम तो दिन भर कार्य करने के पश्चात् श्रमिक को इस बात के लिए कठिनता से ही समय मिल पाता है कि वह बाजार जाकर अपनी आवश्यकता की वस्तुये खरीद सके। दूसरे, दुकानदार के बहुत अधिक लाभ लेने के कारण वस्तुओ का मूल्य बहुत अधिक होता है और मिलावट होने के कारण शुद्ध वस्तुयें भी नही मिल पाती। तीसरे, जब श्रमिको को आर्थिक कठिनाई होती है तो उन्हे उधार चीजें लेनी पडती हैं। इससे उन्हे दोहरी हानि होती है—एक तो वस्तुओं का अधिक मूल्य देना पडता है और दूसरे, उनसे ब्याज भी लिया जाता है। सहकारी भण्डार की स्थापना से ये सब दोष दूर हो सकते है। उधार खरीदने के लिए उप-नियमों में सशोधन किया जा सकता है। मद्रास में विशेषतया ऐसी समितियाँ मालिको द्वारा स्थापित की गई हैं और उनको प्रशसनीय सफलता भी प्राप्त हुई है। कुछ स्थानों पर मालिक श्रमिको की मजदूरी मे से वह राशि काट लेते है जो श्रमिकों को उपभोक्ता सहकारी भण्डार को देनी होती है। कुछ स्थानो पर मालिकों ने अनेक रियायतें भी प्रदान की हैं। उदाहरणत, भण्डार के लिए नि:शुल्क इमारत, एकाउन्टेन्ट व क्लर्क आदि का कार्य करने के लिए कर्मचारियो की निःशुल्क सेवा देना, कागज, पेन्सिल, फर्नीचर आदि को भी बिना दाम के देना, भण्डार तक सामान लाने ले जाने के लिए यातायात की सुविधायें प्रदान करना, कपडा आदि क्रय करने के लिए उपदान देना, आदि आदि। यह तो ठीक है कि प्रारम्भ मे श्रमिक सहकारी भण्डारो को इस प्रकार की सहायता मिलनी चाहिए, परन्तु सहकारिता के सच्चे आदर्शों को प्राप्त करने के लिए इन भण्डारो को शीघ्र ही आत्म-निर्भर व स्वतन्त्र होने का प्रयत्न करना चाहिए।

केन्द्रीय श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय ने औद्योगिक श्रमिको के लिए उपभोक्ता सहकारी भण्डार स्थापित करने की एक योजना चालू की है। यह योजना १९६२ से लागू की गई है और इसका उद्देश्य यह है कि बढती हुई कीमतो के कारण जो श्रमिकों को हानि पहुंच रही है उससे उनकी रक्षा की जा सके। ऐसे भण्डार उन सभी संस्थानो पर स्थापित किये जाने की योजना है जहाँ ३०० से अधिक श्रमिक कार्य करते हैं। उपभोक्ता सहकारी भण्डार के शेयर खरीदने के लिये श्रमिको को अपनी निर्वाह निधि से २० रु० तथा ३० रु० तक की पेशगियाँ देने की अनुमति है। ये पेशगियाँ लौटाई नही जाती। सरकार ऐसा विधान बनाने का भी विचार कर रही है जिसके अन्तर्गत उचित कीमत वाली दूकानो (Fair Price Shops) की स्थापना का वैधानिक दायित्व मालिको पर डाल दिया जाये। अप्रैल, १९६७ तक ३०० या ३०० से अधिक श्रमिको वाले ३,९५४ संस्थानो मे २ ७४८ उपभोक्ता सहकारी भण्डार तथा उचित कीमत की दूकानें स्थापित की जा चुकी थी। इस सम्बन्ध मे प्रगति के आंकडे निम्न प्रकार हैं—

	जुलाई, १९६३	१. ३ ६६	१ ४ ६७
संस्थानो की संख्या	२,८१२	३,८७५	३,९५४
उपभोक्ता सहकारी भण्डारो की संख्या	६७२	१ ८८०	२,०४३
उचित कीमत वाली दूकानो की संख्या	कोई नही	६५६	७०५
व्याप्ति का क्षेत्र (Coverage)	२४%	६५%	लगभग ७०%

उपसंहार श्रमिको के लिए सहकारिता का महत्व

पिछले पृष्ठो मे श्रमिको के द्वारा सहकारी प्रयत्नो का जो विवेचन किया गया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि सहकारिता द्वारा श्रमिक काफी सीमा तक ऋणग्रस्तता से बच सकते हैं और गन्दी बस्तियो मे रहने से छुटकारा पा सकते हैं। सहकारिता से ही वह निजी भोजनालयो मे गन्दा व अशुद्ध और इस पर भी महँगा भोजन करने से छुटकारा पा सकते हैं तथा अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए लोभी व अत्यधिक लाभ लेने वाले दूकानदारो के चगुल से भी बच सकते हैं। परिणामस्वरूप श्रमिको के सामाजिक व आर्थिक कल्याण मे अधिक उन्नति हो सकेगी। सहकारिता से श्रमिको मे मितव्ययता और पारस्परिक सहायता की भावनायें भी बढेगी तथा वह अच्छे नागरिक बन सकेंगे। उनमे अनुशासन से रहने और कार्य करने का स्वभाव पड जायेगा और उनका नैतिक स्तर भी ऊँचा हो जायेगा। श्रम-कल्याण कार्य भी श्रमिक स्वयं अपने हाथो मे ले सकते है। स्वय श्रमिको द्वारा इन कार्यों को अपने हितो के लिए अधिक कुशलतापूर्वक चलाया जा सकता है।

परन्तु फिर भी, जैसा कि आन्दोलन के संक्षिप्त विवेचन मे ऊपर बताया जा चुका है, देश मे सहकारी आन्दोलन के दोषो और कमियो को दूर करने के

प्रयत्न किये जाने चाहियें। यह आवश्यक है कि श्रमिकों को सहकारिता के सिद्धांतों को समझाया जाये तथा उन्हें स्वयं अपने ही कल्याण में रुचि लेने के लिए उचित शिक्षा दी जाये। जो कठिनाइयाँ एक शक्तिशाली श्रमिक संघ को बनाने में सामने आती हैं बहुधा वही कठिनाइयाँ श्रमिक सहकारी समिति के सफलतापूर्वक संचालन में आती हैं। परन्तु जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, सहकारी समितियाँ श्रमिक संघ से भिन्न होती है और उनके निर्माण में मालिकों से कोई संघर्ष नहीं होता। मालिकों को तो श्रमिकों के कल्याण के लिए सहकारी समितियों की स्थापना को प्रोत्साहन ही देना चाहिए। प्रारम्भिक अवस्था में तो सहकारिता भारतीय श्रमिकों में बिना किसी बाह्य सहायता के सफल नहीं हो सकती, परन्तु अन्ततः श्रमिकों को स्वयं अपने पैरों पर ही खड़ा होना पड़ेगा अन्यथा यह सच्चे अर्थों में सहकारिता नहीं होगी।

श्रम प्रशासन

LABOUR ADMINISTRATION

१९३५ का भारत सरकार अधिनियम

अप्रैल, १९३७ से पूर्व भारत सरकार को श्रम मामलों में प्रान्तीय सरकारों के ऊपर निरीक्षण, निर्देशन और नियन्त्रण का अधिकार था। परन्तु १९३७ में प्रान्तीय स्वायत्तता के पश्चात से राज्य अधिकांशतः इस सम्बन्ध में अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतन्त्र हो गये थे। १९३५ के भारत सरकार अधिनियम के अनुसार श्रम विधान बनाने और अधिनियमों और विनियमों के प्रशासन के कार्यों को केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों के बीच स्पष्ट रूप से विभाजित कर दिया गया था। संक्षेप में खानों और तेल निकालने वाले क्षेत्रों में श्रम की सुरक्षा और विनियमन, बन्दरगाहों में संगरोध (क्वारंटाइन), नाविकों और जहाजों के लिए अस्पताल, बन्दरगाहों के संगरोधों से सम्बन्धित अस्पताल के विषयों को संघीय (केन्द्रीय) विधायी सूची में रखा गया था तथा निर्धन और बेरोजगारों की सहायता के विषयों को प्रान्तीय विधायी सूची में रखा गया था। समवर्ती (Concurrent) विधायी सूची में, अर्थात् ऐसी सूची जिसमें दिये हुए विषयों पर केन्द्रीय और प्रान्तीय दोनों ही के विधान मण्डल कानून बना सकते थे, निम्न विषय थे: कारखाने, श्रम कल्याण, श्रम की दशायें, प्रोविडेन्ट फण्ड, मालिकों की देयता और श्रमिकों की क्षतिपूर्ति, स्वास्थ्य बीमा जिसमें असमर्थता पेन्शन भी सम्मिलित है, वृद्धावस्था पेन्शन, बेरोजगारी बीमा, व्यापार संघ, औद्योगिक व श्रम विवाद। श्रम कानूनों के प्रशासन का उत्तरदायित्व प्रान्तों पर था।

युद्ध-काल और इसके बाद से केन्द्रीय नियन्त्रण

परन्तु द्वितीय महायुद्ध छिड़ जाने के पश्चात् इस बात की तीव्र आवश्यकता अनुभव की गई कि उत्पादन को अधिकतम बढ़ाने के लिए पर्याप्त और सन्तुष्ट श्रमिकों का होना नितान्त आवश्यक है। इस कारण केन्द्रीय सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ा और औद्योगिक श्रमिकों के कल्याण और कार्य की दशाओं को नियन्त्रित और विनियमित करने के लिए सरकार ने विस्तृत अधिकारों को ग्रहण किया। जैसे-जैसे युद्ध बढ़ता गया और गतिविधियाँ विस्तृत होती गईं वैसे ही समय-समय

पर भारत सरकार के श्रम विभाग को अनेक दिशाओं मे दृढ किया गया। उदाहरणार्थ, केन्द्रीय नियन्त्रित संस्थाओं में औद्योगिक सम्बन्धों की देख-रेख के लिए व्यवस्था की गई तथा एक समायोजित पुन.स्थापन संस्था की स्थापना की गई जिसका कार्य सेना से निकले हुए सैनिकों का पुनर्स्थापन करना और उन्हें पुनः रोजगार पर लगाना था। एक अन्य सस्था कारखानों के मुख्य सलाहकार के अधीन स्थापित की गई जिसका कार्य कारखानों मे कार्य की दशायें सुधारने के लिए केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों को सलाह देना था। युद्ध के तत्काल पश्चात् ही श्रम समस्याओं की अनेकरूपता और गम्भीरता के कारण सरकार को श्रम विभाग का विभाजन करना पडा तथा ऐसे अनेक विषयो को, जिनका श्रम से सीधा कोई सम्बन्ध नही था, परन्तु जिनको श्रम विभाग द्वारा प्रशासित किया जाता था, नवीन स्थापित निर्माण, खान और शक्ति विभाग को हस्तान्तरित कर दिया गया। अक्तूबर, १९४६ में प्रान्तीय श्रम मन्त्रियो के सम्मेलन मे यह बात स्वीकार कर ली गई कि जहां तक हो सके, श्रम विधान बनाने का कार्य केन्द्रीय सरकार द्वारा ही हो ताकि समान रूप से इस सम्बन्ध में तीव्र गति से पग उठाये जा सकें। इस बात को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार के श्रम मन्त्रालय ने श्रमिको के स्वास्थ्य, कार्यक्षमता, कार्य की दशाओ और जीवन-स्तर मे सुधार के लिए श्रम विधान और श्रम प्रशासन का एक पचवर्षीय कार्यक्रम तैयार किया।

युद्ध काल में श्रम सम्मेलन

युद्ध-काल मे यह भी अनुभव किया गया कि युद्धोपरान्त श्रम कार्यक्रमों की योजना बना लेनी चाहिये तथा श्रम कानूनों मे भी कुछ समायोजन होना चाहिए। फलस्वरूप १९४०, १९४१ और १९४२ मे प्रान्तीय श्रम मन्त्रियों के सम्मेलन आयोजित किये गये। १९४१ और १९४२ मे भारत सरकार ने श्रमिको और मालिकों के प्रतिनिधियो से परामर्श भी किया। इन सम्मेलनो से सरकार आश्वस्त हो गई कि यदि सरकार, श्रमिको और मालिको की एक सयुक्त सभा आयोजित की जाती है तो अधिक प्रभावात्मक रूप से और शीघ्रता से कार्य किया जा सकता है क्योंकि इससे मालिको और श्रमिकों के पारस्परिक मतभेदो को वाद-विवाद और पारस्परिक समझौते से दूर करना सरल हो जाएगा। फलस्वरूप, अगस्त १९४२ के चतुर्थ श्रम सम्मेलन में केन्द्रीय और प्रान्तीय अधिकारियों के अतिरिक्त मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों को भी सम्मिलित किया गया। इस सम्मेलन ने स्थायी त्रिदलीय सगठित व्यवस्था करने का निर्णय किया तथा परिपूर्ण (Plenary) श्रम सम्मेलन और स्थायी श्रम समिति (Standing Labour Committee) का गठन किया। परिपूर्ण सम्मेलन मे, जिसकी सभा वार्षिक होती थी, ४४ सदस्य होते थे–२२ सदस्य तो केन्द्र, प्रान्त तथा देशी राज्य सरकारों का प्रतिनिधित्व करते थे तथा ११ सदस्य मालिकों का और ११ सदस्य श्रमिको का प्रतिनिधित्व करते थे। इसका कार्य "उन विषयों पर केन्द्रीय सरकार को सलाह देना था जो विषय सलाह के लिये इस सम्मेलन

को भेजे जाते थे। सलाह देते समय यह सम्मेलन उन सुझावो का ध्यान रखता था जो श्रमिको श्रौर मालिको के मान्यता प्राप्त सगठनो के प्रतिनिधियो द्वारा तथा प्रान्तीय श्रौर देशी राज्य सरकारो द्वारा तथा राजा महाराजाश्रो की परिषद् द्वारा दिये जाते थे।" स्थायी श्रम समिति की सभा, जब भी आवश्यक हो तब ही बुलाई जा सकती थी। इसमे २० सदस्य होते थे—१० सरकार का प्रतिनिधित्व करते थे श्रौर ५-५ सदस्य मालिको श्रौर श्रमिको का प्रतिनिधित्व करते थे। इसका कार्य "सरकार द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले किसी भी मामले पर सलाह देना था।" समिति को सम्मेलन द्वारा सौंपे जाने वाले किसी भी मामले पर अपनी रिपोर्ट देनी होती थी।

जब इस नवीन व्यवस्था के कार्य का कुछ अनुभव हो गया तब यह पता लगा कि सम्मेलन श्रौर स्थायी श्रम समिति के कार्यो के बीच कोई स्पष्ट विभाजन नही किया गया था। अक्तूबर, १९४४ के छटे श्रम सम्मेलन में यह निर्णय किया गया कि विभिन्न विषयो को दो श्रेणियो मे विभाजित किया जाये, एक तो परिपूर्ण श्रम सम्मेलन के लिए श्रौर दूसरी एक अन्य सस्था—श्रम कल्याण समिति के लिए। स्थायी श्रम समिति को विचार-विमर्श करने वाली सस्था के रूप मे ही नही, वरन् स्थायी श्रम समिति के एजेन्ट के रूप मे भी कार्य करना चाहिए। परन्तु कोई भी निर्णय न हो सका श्रौर त्रिदलीय व्यवस्था यथावत् बनी रही। वाद-विवाद के दौरान श्रमिको के प्रतिनिधियो ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के आधार पर भारत मे श्रौद्योगिक समितियाँ बनाए जाने का सुझाव दिया। सरकार द्वारा उन सुझावो को मान लिया गया श्रौर तब से बागान, सूती वस्त्र, कोयला खान, सीमेंट, चमडा व चमडा रगने, अन्य खानें, जूट, आवास का निर्माण, रसायन तथा लोहा व इस्पात जैसे महत्वपूर्ण उद्योगो के लिए श्रौद्योगिक समितिया स्थापित की जा चुकी हैं। इन समितियो की समय-समय पर बैठकें होती रहती हैं श्रौर उद्योग से सम्बन्ध रखने वाली विशेष समस्याश्रो पर विचार किया जाता है तथा श्रमिकों के कल्याण के लिए सुझाव भी दिए जाते हैं।

त्रिदलीय श्रम व्यवस्था (Tripartite Labour Machinery)

१९४७ मे आठवें श्रम सम्मेलन मे त्रिदलीय व्यवस्था के पुनर्गठन पर पुन. विचार किया गया परन्तु कोई भी निर्णय न हो सका। इस प्रकार इस समय सरकारी त्रिदलीय व्यवस्था मे भारतीय श्रम सम्मेलन, जिसको साधारणतया त्रिदलीय श्रम सम्मेलन कहते हैं, स्थायी श्रम समिति, श्रौद्योगिक समितिया श्रौर कुछ त्रिदलीय प्रकार की समितिया आती हैं। इसके अतिरिक्त श्रम मन्त्रियो के सम्मेलन का, यद्यपि वह त्रिदलीय नही है, इससे घनिष्ट सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त १९५१ से उद्योग श्रौर श्रम अर्थात् मालिक श्रौर मजदूरो का एक सयुक्त सलाहकार बोर्ड भी बनाया गया है। इस व्यवस्था मे श्रम विधान, श्रम नीति तथा श्रम प्रशासन से सम्बन्धित अनेक बातो पर विचार श्रौर वाद विवाद करने का अवसर मिलता है।

अनेक राज्यों ने भी श्रम और पूँजी के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखने के लिये त्रिदलीय श्रम व्यवस्था गठित की है। (देखिये पृष्ठ २०१–२)। श्रम और रोजगार मन्त्रालय की एक अनौपचारिक (Informal) सलाहकार समिति भी है। अन्य समितियां, सलाहकार बोर्ड आदि निम्नलिखित हैं : अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के अभिसमयों पर एक समिति (देखिये पृष्ठ ६६८); 'केन्द्रीय कार्यान्वित तथा मूल्यांकन समिति' (देखिये पृष्ठ १६६); मजदूरी से सम्बन्धित एक स्टीयरिंग दल (देखिये पृष्ठ ५६०); मजदूरी अर्थात् वेतन बोर्ड (देखिये पृष्ठ ५८६); केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा बोर्ड (देखिये पृष्ठ ३५२–५३) तथा सुरक्षा, निरीक्षण, श्रम अनुसन्धान आदि पर कई सम्मेलन तथा गोष्ठियां। इसी प्रकार श्रम अनुसधान पर एक केन्द्रीय समिति, रोजगार पर एक केन्द्रीय समिति तथा औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव पर एक स्थायी समिति भी बनाई गई है।

भारत सरकार का श्रम और रोजगार मन्त्रालय

श्रम व रोजगार मन्त्रालय में मुख्य मत्रालय (सचिवालय) तथा निम्नलिखित सम्बद्ध एव अधीनस्थ कार्यालय आते है : (१) रोजगार तथा प्रशिक्षण महानिदेशालय, नई देहली; (२) निदेशक, श्रम ब्यूरो, शिमला का कार्यालय; (३) कार्यालय, मुख्य श्रम आयुक्त नई देहली; (४) कार्यालय, कोयला खान कल्याण आयुक्त, धनबाद; (५) कार्यालय, कोयला खान प्रोविडेण्ट फण्ड आयुक्त, धनबाद; (६) कार्यालय, कल्याण आयुक्त अभ्रक खान श्रम कल्याण निधि, धनबाद; (७) कार्यालय, अध्यक्ष, अभ्रक खान श्रम कल्याण निधि परामर्श समिति, आंध्र प्रदेश (नीलोर) तथा राजस्थान (भीलवारा); (८) कार्यालय, मुख्य खान निरीक्षक, धनबाद; (९) कार्यालय, महानिदेशक, फैक्टरी सलाहकार सेवा तथा श्रम सस्था, नई देहली; (१०) कार्यालय, परावासी श्रम नियन्त्रक, शिलांग; (११) कार्यालय औद्योगिक अधिकरण बम्बई, धनबाद, कलकत्ता व देहली; (१२) राष्ट्रीय औद्योगिक अधिकरण, बम्बई, (१३) विभिन्न उद्योगों के लिए केन्द्रीय मजदूरी बार्ड, उदाहरणत: सूती कपडा व सीमेंन्ट के लिए बम्बई में, चीनी के लिए गोरखपुर मे, (१४) नागपुर मे श्रमिकों की शिक्षा के लिए केन्द्रीय बोर्ड, (१५) कार्यालय महानिदेशक राज्य कर्मचारी बीमा निगम, नई देहली; (१६) कार्यालय केन्द्रीय प्रोविडेन्ट फण्ड आयुक्त, नई देहली, (१७) केन्द्रीय श्रम सगठन, गोरखपुर; (१८) केन्द्रीय श्रमन्यायालय, धनबाद और (१९) कच्चा लोहा खान श्रम कल्याण निधि सलाहकार समितियां, आन्ध्र प्रदेश, मैसूर, बिहार, मध्य-प्रदेश, महाराष्ट्र और उडीसा।

जहाँ तक भारत सरकार का सम्बन्ध है श्रम व रोजगार मन्त्रालय श्रम से सम्बन्धित प्रश्नों के विचार के लिये केन्द्रीय स्थल है। श्रम नीति निर्धारित करने, श्रम कानूनों को लागू करने तथा श्रम कल्याण को विकसित करने मे मन्त्रालय केन्द्रीय प्रशासकीय अग है। श्रम क्षेत्र मे यह राज्य सरकारों की गतिविधियों को समायोजित करता है। यह त्रिदलीय श्रम सम्मेलन तथा भारत सरकार द्वारा

आयोजित उद्योग विशेष की समितियों के लिए सचिवालय का काम करता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की कार्यवाहियों में भारत इसके द्वारा ही भाग लेता है। श्रम मन्त्रालय ने कृषि श्रमिको की स्थिति का अध्ययन करने के लिए अखिल भारतीय पूछताछ भी की थी जिसका वर्णन २३वे अध्याय में किया जा चुका है। इस मन्त्रालय में एक मूल्यांकन और कार्यान्वित विभाग तथा त्रिदलीय समिति की भी स्थापना की गई है। इसका कार्य यह देखना है कि श्रम विधान, विवाचन निर्णय, फैसले, अनुशासन सहिता आदि को शीघ्रातिशीघ्र कार्यान्वित किया जाय। (देखिये पृष्ठ १६६)।

१६४६ में निदेशक श्रम ब्यूरो, शिमला के कार्यालय की स्थापना की गई। इसका कार्य श्रम साख्यिकी को एकत्रित करना, उपभोक्ता मूल्य सूचकाको को बनाना, कार्य की दशाओं के नवीनतम आकडो को एकत्रित करना, मासिक 'इण्डियन लेबर गजट' (जिसको अब जरनल कहा जाता है) का सम्पादन करना, देश में श्रम मामलों का अधिकृत रूप से वर्णन करने वाली श्रमिक वार्षिक पुस्तिका (लेबर ईयर बुक) का प्रकाशन करना तथा नीति निर्धारण करने के लिये विशेष समस्याओं का अन्वेषण कर आकडे प्रस्तुत करना है। इसी ब्यूरो ने कृषि श्रमिक पूछताछ और मजदूरी गणना, पारिवारिक बजट जाँच, आदि भी की है। विभिन्न श्रम अधिनियमों के कार्यों पर यह रिपोर्ट भी प्रकाशित करता है।

केन्द्रीय सरकार के क्षेत्र में आने वाले उद्योगो और सस्थानों में औद्योगिक सम्बन्धो का निबटारा करने के लिये १६४५ में **मुख्य श्रम आयुक्त** की नियुक्ति की गयी। इन सस्थानों में औद्योगिक विवादों की रोकथाम करना या निपटारा करना, कल्याणकारी कार्यों की देखभाल करना, श्रम कानूनो को लागू करना, पचनिर्णयो, समझौतो तथा विरामसन्धि प्रस्ताव को क्रियान्वित करना तथा कैंटीनों का सगठन करना इस आयुक्त का उत्तरदायित्व है। मुख्य श्रम आयुक्त की सहायता करने के लिए ६ क्षेत्रीय श्रम आयुक्त भी है जिनके प्रधान कार्यालय बम्बई, कलकत्ता, धनबाद, कानपुर, नागपुर और मद्रास में है। धनबाद के क्षेत्रीय श्रम आयुक्त के अन्तर्गत न केवल बिहार की कोयला खानें वरन् पश्चिमी बगाल तथा अन्य स्थानों की कोयला खानें भी आती हैं। इसके अतिरिक्त अनेक सुलह अधिकारी तथा एक कल्याणकारी सलाहकार भी हैं। इस सब व्यवस्था को केन्द्रीय औद्योगिक सम्बन्ध व्यवस्था भी कहा जाता है (Central Industrial Relations Machinery)। सगठन के अन्तर्गत औद्योगिक सम्बन्धो के प्रशिक्षण की एक केन्द्रीय सस्था भी चालू की गई है। यह सस्था नई दिल्ली में है।

धनबाद में कोयला खान कल्याण आयुक्त का कार्यालय कोयला खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम के प्रशासन के लिये उत्तरदायी है। इसी प्रकार कोयला खान प्रोविडेन्ट फण्ड आयुक्त का कार्यालय कोयला खान बोनस तथा प्रोविडेन्ट फण्ड निधि योजनाओं के प्रशासन के लिए उत्तरदायी है। अभ्रक खानो में अभ्रक खान श्रम कल्याण निधि के प्रशासन के लिये धनबाद में कल्याण आयुक्त नियुक्त

किया गया है और आंध्र (निलोर) और राजस्थान (जयपुर) में अध्यक्षों के कार्यालय है। खानों के मुख्य निरीक्षक का कार्यालय धनबाद में है और इसका उत्तरदायित्व भारतीय खान अधिनियम तथा खान मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम को लागू करना, खानों का निरीक्षण करना, दुर्घटनाओं की जाँच-पड़ताल करना, सांख्यिकी को एकत्रित करना, खान स्वामियों को तकनीकी सलाह देना, मशीनरी की जाँच-पड़ताल करना तथा विभाग की रिपोर्ट प्रकाशित करना, आदि है।

फैक्टरी सलाहकार सेवा तथा श्रम संस्थाओं के महानिदेशक का कार्यालय, जिसे कि पहले फैक्टरियों के मुख्य सलाहकार का कार्यालय कहा जाता था, ऐसे सभी मामलों से सम्बन्धित तकनीकी विषयों पर विचार करता है, जैसे कि कार्य की दशायें, कारखानों के डिजाइन, श्रमिकों का आवास, बम्बई में केन्द्रीय श्रम संस्था की स्थापना तथा कलकत्ता, कोयम्बटूर व कानपुर में औद्योगिक सुरक्षा, स्वास्थ्य तथा कल्याण के तीन प्रादेशिक संग्रहालयों की स्थापना। यह कार्यालय कारखानों के प्रशासन पर विचार करता है, स्वास्थ्य व सुरक्षा से सम्बन्धित पोस्टर व चित्र तैयार करता है, कारखाना-निरीक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है, सूचनायें एकत्र करता है और गोदी श्रमिक अधिनियम का प्रशासन करता है। महानिदेशक को उसके काम में सहायता देने के लिए ३ उप-मुख्य सलाहकार तथा ६ निरीक्षक है। संगठन को राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् की स्थापना तथा शूरवीर व सुरक्षा पचाट को क्रियान्वित करने का काम भी सौंपा गया है।

शिलाग में परावासी श्रमिक नियन्त्रक कार्यालय का कार्य १९३२ के चाय क्षेत्र परावासी श्रमिक अधिनियम के उपबन्धों का निर्वाचन तथा उसका प्रशासन करना है तथा श्रमिकों की भर्ती व उन्हें घर वापिस भेजने की व्यवस्था एव चाय बागान व डिपो के निरीक्षण आदि कार्यों का करना है।

औद्योगिक अधिकरणों के कार्यों का उल्लेख औद्योगिक विवाद के अध्याय में, मजदूरी बोर्डों के कार्यों का उल्लेख मजदूरी के अध्याय में तथा कर्मचारी राज्य बीमा निगम और केन्द्रीय प्रोविडेन्ट फण्ड आयुक्त के कार्यों का उल्लेख सामाजिक सुरक्षा के अध्याय में किया जा चुका है। रोजगार तथा प्रशिक्षण महानिदेशालय तथा गोरखपुर श्रम संगठन का उल्लेख भर्ती के अध्याय में किया जा चुका है। केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा बोर्ड का उल्लेख पीछे किया गया है।

राज्यों में श्रम प्रशासन (Labour Administration in States)

१९५१ के 'ब' भाग राज्य (कानून) अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय श्रम कानून सभी 'ब' भाग के राज्यों पर लागू कर दिए गए थे। राज्यों के पुनर्गठन के पश्चात् यह अधिनियम सब राज्यों पर लागू होते है। अपने क्षेत्र के लिए पारित किए गए एव अपने क्षेत्र में लागू श्रम कानूनों के प्रशासन और कार्यान्विति के लिये तथा श्रम से सम्बन्धित आंकड़ों तथा अन्य सूचनाओं को एकत्रित, संचित तथा विज्ञापित करने के लिये सभी उद्योग प्रधान राज्यों ने अपनी अलग-अलग व्यवस्था

की है। सभी राज्यों मे श्रम विभाग की स्थापना के अतिरिक्त श्रम आयुक्तों को भी नियुक्त किया गया है जो श्रम प्रशासन के लिये उत्तरदायी है। इनके अधीन अनेक अधिकारी होते हैं, उदाहरणतया कारखानों के मुख्य निरीक्षक कारखाना अधिनियम १९४८ के अन्तर्गत रोजगार, दुर्घटनाओं आदि से सम्बन्धित आँकड़े तथा मजदूरी भुगतान अधिनियम के अन्तर्गत मजदूरी एवं आय की सूचनायें एकत्रित करते हैं, श्रमिक संघों के रजिस्ट्रार, श्रमिक संघों, उनकी सदस्यता एवं उनकी निधि से सम्बन्धित आकड़े एकत्रित करते हैं, श्रमिक क्षतिपूर्ति के आयुक्त, दुर्घटनाओं, क्षतिपूर्ति भुगतान आदि से सम्बधित आँकड़ों को एकत्रित करते हैं, आदि। १९४२ के औद्योगिक सांख्यिकी अधिनियम के अन्तर्गत अनेक राज्यों में समान आधार पर विस्तृत रूप से आँकड़ों को एकत्रित करने के लिये सांख्यिकी प्राधिकारियों की भी नियुक्ति की गई है। इस प्रकार से जो आँकड़े एकत्रित होते हैं उनका विश्लेषण किया जाता है और उनमें से कुछ को राज्य सरकारों द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं तथा 'इण्डियन लेबर जनरल' में प्रकाशित किया जाता है।

उत्तर प्रदेश में श्रम प्रशासन
(Labour Administration in U P)

जिस प्रकार की सूचना का ऊपर उल्लेख किया गया है वह उत्तर प्रदेश में श्रम आयुक्त की अधीनता में सांख्यिकी संगठन द्वारा एकत्रित तथा प्रकाशित की जाती है। हाल ही में इस संगठन का पुनर्गठन किया गया है तथा इसको और अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। कानपुर के लिये श्रमिक-वर्ग के जीवन-निर्वाह सूचकांकों को एकत्रित करने के अतिरिक्त अनेक ग्रामों में कृषि श्रमिकों की मजदूरी से सम्बन्धित, तथा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले रोजगारों में औद्योगिक श्रमिकों की दशाओं से सम्बन्धित तथा कुछ विशेष क्षेत्रों में औद्योगिक श्रमिकों के पारिवारिक बजटों से सम्बन्धित पूछताछ भी की गई हैं और की जा रही हैं।

उत्तर प्रदेश में श्रम विभाग के अध्यक्ष श्रम आयुक्त हैं। यह १९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम के अन्तर्गत प्रमाण अधिकारी का, कर्मचारी प्रोवीडेन्ट फण्ड योजना के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में क्षेत्रीय प्रोवीडेण्ट फण्ड आयुक्त का, १९५१ के उत्तर प्रदेश चीनी एवं चालक मद्यसार उद्योग श्रमिक कल्याण तथा विकास निधि 'अधिनियम' के अन्तर्गत श्रम कल्याण आयुक्त का तथा १९५३ के औद्योगिक आवास अधिनियम के अन्तर्गत आवास आयुक्त का भी कार्य सम्पन्न करते हैं। श्रम आयुक्त को अनेक कार्यों में सहायता देने के लिये एक अतिरिक्त श्रम आयुक्त, चार उप श्रम आयुक्त, एक कारखानों का मुख्य निरीक्षक, एक 'बॉयलर्स' का मुख्य निरीक्षक, एक कार्य-कुशलता सलाहकार, एक आवास तथा कल्याण सलाहकार तथा राजपत्रित अधिकारी होते हैं। ये अधिकारी श्रम आयुक्त के कार्यालय के विभिन्न अनुभागों (Sections) के कार्यों की उच्चस्तर पर देख-

भाल के लिए उत्तरदायी होते हैं। कानपुर में श्रम आयुक्त के कार्यालय में निम्न-लिखित पूर्ण विकसित अलग-अलग भाग हैं और प्रत्येक अनुभाग में अनेक अधिकारी निरीक्षक आदि नियुक्त है—(१) कल्याण अनुभाग—यह अनुभाग अतिरिक्त श्रम आयुक्त (कल्याण) के अधीन है और इसकी सहायता के लिए एक सलाहकार, एक सहायक श्रम आयुक्त और दो सहायक कल्याण अधिकारी है। इसके अन्तर्गत पाँच क्षेत्रीय कल्याण कार्यालय है, जो कानपुर, आगरा, बरेली, इलाहबाद तथा मेरठ में है। (२) औद्योगिक सम्बन्ध अनुभाग—यह अनुभाग एक उप-श्रम आयुक्त के अधीन है। इसके अन्तर्गत एक श्रम अधिकारी अनेक सुलह अधिकारी, स्थानीय श्रम निरीक्षक, श्रम निरीक्षक तथा श्रम सहायक आते हैं। कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, गोरखपुर, आगरा, बरेली और मेरठ में सात क्षेत्रीय कार्यालय हैं। कानपुर क्षेत्र उप-श्रम आयुक्त के अधीन है और केवल गोरखपुर क्षेत्र को छोड़कर जो कि इलाहबाद के सहायक श्रम आयुक्त के अधीन है, अन्य सभी क्षेत्र सहायक श्रम आयुक्तों के अधीन हैं। रामपुर, सहारनपुर, वाराणसी तथा अलीगढ़ में उप-क्षेत्रीय कार्यालय भी है। (३) कारखानों के मुख्य निरीक्षक की अध्यक्षता में कारखाना अनुभाग—इसमे कारखानो का एक उप-मुख्य निरीक्षक तथा अनेक कारखाना निरीक्षक है। कारखानों के मुख्य निरीक्षक बागान के मुख्य निरीक्षक भी हैं। यह अनुभाग फैक्टरी अधिनियम, मजदूरी अदायगी अधिनियम तथा मातृत्व-कालीन अधिनियम आदि के प्रशासन की देखभाल करता है। औद्योगिक सम्बन्ध अनुभाग के समान ही इसमे भी सात क्षेत्रीय कार्यालय है। (४) न्यूनतम मजदूरी और दुकान अनुभाग—यह अनुभाग उप-श्रम आयुक्त (न्यूनतम मजदूरी) की अधीनता मे है। इसकी सहायता के लिए दो सहायक श्रम आयुक्त तथा एक उप-श्रम आयुक्त (सामान्य) है जिसकी सहायता के लिए दुकान और वाणिज्य संस्थानो का एक मुख्य-निरीक्षक तथा अनेक श्रम निरीक्षक और अन्य कर्मचारी है। (५) 'बॉयलर्स' के मुख्य-निरीक्षक की अधीनता मे एक बॉयलर्स अनुभाग—इसमें बॉयलर्स के ६ निरीक्षक है। (६) एक सहायक रजिस्ट्रार और श्रमिक संघ निरीक्षक की अधीनता मे एक श्रमिक संघ स्थायी आदेश अनुभाग। (७) सॉंख्यिकी अनुभाग—इसकी चार शाखायें हैं—सॉंख्यिकी, अन्वेषण प्रचार और प्रशिक्षण। प्रत्येक शाखा एक उत्तर-प्रदेश राजकीय सेवा के अधिकारी के अधीन है। इसमे प्रवर और अवर अन्वेषक, सॉंख्यिकी सहायक आँकड़ो का सकलन करने वाले क्लर्क तथा अन्य सहायक होते हैं। सभी अनुभाग उप-श्रम आयुक्त (सामान्य) के अधीन है। (८) उत्तर-प्रदेश राजकीय सेवा के एक लेखा अधिकारी की अधीनता में एक लेखा और संस्थान अनुभाग। (९) आवास से सम्बन्धित एक अनुभाग। (१०) कार्यक्षमता और विवेकीकरण से सम्बन्धित एक अनुभाग। (११) वृद्धावस्था पेंशन योजना से सम्बन्धित एक अनुभाग। (१२) मोटर यातायात श्रमिक अधिनियम से सम्बन्धित एक अनुभाग और (१३) प्रचार से सम्बन्धित एक अनुभाग।

औद्योगिक विवादो की रोकथाम करने और उनके निबटारे से सम्बन्धित व्यवस्था का उल्लेख सातवें अध्याय मे किया जा चुका है।

वर्तमान सविधान मे श्रम विषय (Labour in the Present Constitution)

सविधान सभा द्वारा पारित भारत के नये सविधान को राष्ट्रपति द्वारा २६ नवम्बर, १६४६ को प्रमाणित किया गया। यह सविधान २६ जनवरी १६५० से लागू हुआ जब भारत का सम्पूर्ण प्रभुता-सम्पन्न प्रजातन्त्रात्मक गणराज्य घोषित किया गया।

सविधान के प्राक्कथन म कहा गया है कि हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुता सम्पन्न प्रजातन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिये तथा उसके सभी नागरिको को सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक न्याय देने के लिए, तथा विचार अभिव्यक्ति विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता के लिये, तथा स्थिति और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा सब म बन्धुत्व की ऐसी भावना, जिससे व्यक्ति का गौरव और राष्ट्रो की एकता सुनिश्चित हो सके, वर्धन करने के लिए दृढ सकल्प करके इस सविधान को स्वीकृत, अधिनियमित और आत्म-अर्पित करते है।

सविधान के अनुच्छेद २३ के अन्तर्गत मानव के पराग (Traffic), बेगार तथा अन्य जबरदस्ती से कराये गये श्रम को निषेध कर दिया गया है। अनुच्छेद २४ के अन्तर्गत १४ वर्ष से कम आयु के बालको को कारखानो, खानो या किसी भी सकटमय कार्यों मे रोजगार पर नही लगाया जा सकता।

सविधान के भाग IV मे राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तो का वर्णन किया गया है। यह देश के शासन के लिए मूल सिद्धान्त हैं और विधान बनाने मे इनको लागू करना तथा जन कल्याण को विकसित करना राज्य का कर्त्तव्य है। सविधान के अनुच्छेद ३६, ४१, ४२ और ४३ श्रम नीति से सम्बन्धित हैं और उन्हे नीचे उद्धृत किया जाता है—

अनुच्छेद ३६ मे उन अनेक नीति सिद्धान्तो का उल्लेख है जिनका राज्य को पालन करना चाहिये। राज्य अपनी नीति का विशेषतया ऐसा सचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से (क) नर और नारी सभी नागरिको को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो (ख) समुदाय के भौतिक साधनो का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्रकार से वितरित हो जिससे सार्वजनिक हितो का सर्वोत्तम अनुसेवन हो (ग) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले कि धन और उत्पादन साधनो का सकेन्द्रण इस प्रकार न हो पाये कि जनसाधारण के हितों को हानि पहुँचे। (घ) पुरुषो और स्त्रियो दोनो को समान कार्य के लिये समान वेतन मिले। (ङ) पुरुषो और स्त्री श्रमिको का स्वास्थ्य और शक्ति तथा बालको की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो तथा नागरिक आर्थिक आवश्यकताओ के कारण एस

व्यवसायों को करने को बाध्य न हों जो उनकी आयु और सामर्थ्य को देखते हुए अनुपयुक्त हों। (च) बालक और किशोरों का शोषण तथा नैतिक पतन से रक्षा हो और उनको आर्थिक अभाव न रहे।

अनुच्छेद ४१ कार्य करने के अधिकार, शिक्षा पाने के अधिकार तथा विशेष मामलों में राज्य सहायता पाने के अधिकार से सम्बन्धित है। इसमें उल्लेख है कि राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर कार्य और शिक्षा पाने के तथा बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी, असमर्थता तथा अनावश्यक अभाव की अन्य अवस्थाओं मे सार्वजनिक सहायता पाने के अधिकारों की पूर्ति की व्यवस्था करेगा।

अनुच्छेद ४२ में उल्लेख है कि राज्य कार्य की यथोचित और मानवीय दशाओं को सुनिश्चित करने के लिये तथा मातृत्व-कालीन लाभ के लिए व्यवस्था करेगा।

अनुच्छेद ४३ श्रमिकों के लिए निर्वाह मजदूरी इत्यादि से सम्बन्धित है। इसमे उल्लेख है कि राज्य उपयुक्त विधान, आर्थिक व्यवस्था के संगठन अथवा अन्य किसी प्रकार से सभी कृषि, औद्योगिक एवं अन्य प्रकार के श्रमिकों के लिये ऐसे कार्य, निर्वाह मजदूरी, तथा कार्य की दशाओं को प्राप्त करने की व्यवस्था करेगा, जिनसे उनका रहन-सहन का स्तर उच्च और उचित हो सके तथा उनको विश्राम और सामाजिक तथा सांस्कृतिक सुविधाओं का पूर्ण लाभ उठाने का अवसर प्राप्त हो सके। ग्रामीण क्षेत्रों में राज्य निजी अथवा सहकारिता के आधार पर कुटीर उद्योग धन्धों को विकसित करने का प्रयत्न करेगा।

संविधान के भाग ११ अध्याय १ में केन्द्र और राज्यों (संघीय इकाइयों) के बीच विधायी सम्बन्धो की व्याख्या की गई है। विधान बनाने के सम्बन्ध मे विषयो को तीन सूचियो मे विभाजित किया गया है—

(१) केन्द्रीय सूची—इस सूची मे दिये गये विषयों मे से किसी पर भी विधान बनाने का एकमात्र अधिकार संसद् को है।

(२) समवर्ती सूची—इस सूची मे दिये गये विषयों मे से किसी पर भी विधान बनाने का अधिकार संसद् अथवा राज्य विधान मण्डलों दोनों को ही है।

(३) राज्य सूची—कुछ परिस्थितियों के अन्तर्गत इस सूची मे दिये गये विषयों मे से किसी पर भी राज्य या इसके किसी भाग के लिए विधान बनाने का एकमात्र अधिकार राज्य विधान मण्डलों को है।

संसद् को ऐसे किसी भी विषय पर कानून बनाने का एकमात्र अधिकार है जिसका उल्लेख समवर्ती सूची अथवा राज्य सूची में नहीं है।

संविधान के भाग २२, अनुसूची ७ मे केन्द्रीय सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची के विषयो का उल्लेख है। इन सूचियो में श्रम से सम्बन्धित विषयों का उल्लेख निम्नलिखित है—

(१) केन्द्रीय सूची—

मद सख्या १३—अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो, परिषदो एवं अन्य निकायों (Bodies) मे भाग लेना और उनके द्वारा किये गये निर्णयों को लागू करना।

मद सख्या २८—बन्दरगाह सगरोध (क्वारटाइन) और उनसे सम्बन्धित अस्पताल तथा नाविको के जहाजी अस्पताल।

मद सख्या ५५—खानो तथा तेल क्षेत्रो मे श्रम सम्बन्धी व सुरक्षा की व्यवस्था का विनियमन।

मद सख्या ६१—केन्द्रीय कर्मचारियो से सम्बन्धित औद्योगिक विवाद।

मद सख्या ६५—(क) रोजगार, व्यावसायिक तथा तकनीकी प्रशिक्षण तथा (ख) विशेष अध्ययन एव अनुसन्धान के विकास के लिये केन्द्रीय एजेन्सी एव सस्थाओ की व्यवस्था।

मद सख्या ६४—इस सूची मे दिये गये किसी भी विषय पर जाँच पडताल, सर्वेक्षण एव आँकडे एकत्रित करना।

(२) राज्य सूची—

मद सख्या ६—बेरोजगार एव असमर्थ व्यक्तियो की सहायता।

(३) समवर्ती सूची—

मद सख्या २०—आर्थिक एव सामाजिक आयोजन।

मद सख्या २१—वाणिज्य एव औद्योगिक एकाधिकार, गुट (Combines) एव प्न्यास (Trust)।

मद सख्या २२—व्यापार सघ, औद्योगिक एव श्रम विवाद।

मद सख्या २३—सामाजिक सुरक्षा तथा सामाजिक बीमा, रोजगार तथा बेरोजगारी।

मद सख्या २४—श्रम कल्याण, इसमे कार्य की दशायें, प्राविडेन्ट फण्ड, मालिको की देयता, श्रमिक क्षतिपूर्ति, निबल एव वृद्धावस्था की पेशनें एव मातृत्व-कालीन लाभ आदि सम्मिलित है।

मद सख्या २५—श्रमिको का व्यावसायिक एव तकनीकी प्रशिक्षण।

मद सख्या ३६—कारखाने।

मद सख्या ४५—समवर्ती सूची तथा राज्य सूची मे दिये गये किसी भी विषय के लिए जाँच पडताल एव आँकडे एकत्रित करना।

उपसहार

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि श्रम प्रशासन मे सरकार की अनेक कार्यवाहियाँ और सविधान मे श्रम का विशेष रूप से उल्लेख श्रम समस्याओ की बढती हुई महत्ता और राज्य द्वारा उसकी मान्यता के स्पष्ट प्रमाण है। यह आशा की जा सकती है कि श्रम समस्याओ के सम्बन्ध मे एक उचित व्यवस्था करने तथा श्रम कानूनो का उचित रूप से प्रशासन करने पर देश मे श्रमिक वर्ग की अवस्थाओ मे बहुत सीमा तक सुधार हो सकेगा। यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि सम्मेलन, समितियाँ, प्रस्ताव और कानून कितने भी क्यो न हो, परन्तु उस समय तक वह सहायक नही हो सकते जब तक इन प्रस्तावों, सिफारिशो और कानूनो

को सच्चे हृदय, ईमानदारी और उचित प्रकार से लागू नहीं किया जाता। दुर्भाग्य-वश हमारे देश में कागजी कार्यवाही एवं लालफीताशाही अधिक है। अधिकारी-वर्ग अधिकतर कागजों पर आँकड़ों द्वारा परिणाम दिखाने में लिप्त रहते है। परिस्थिति का इस व्यावहारिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने का प्रयत्न नहीं किया जाता कि वास्तव में श्रमिकों का हित हो भी रहा है या नहीं। इसका परिणाम यह होता है कि सुधार करने के लिए सरकार के अनेक प्रयत्नो का कोई लाभदायक फल नहीं निकलता और वास्तविक स्थिति वैसी ही बनी रहती है। सरकार को यह नहीं करना चाहिये कि, जिस प्रकार से ब्रिटिश शासन में होता था उसी प्रकार से, समितियों की नियुक्ति करने और सम्मेलनों को बुलाने की व्यवस्था ही करती रहे, वरन् उसका यह कर्तव्य है कि जन-साधारण के उद्धार के लिए व्यावहारिक पग उठाने की ओर अधिक ध्यान दे।

२६

पंचवर्षीय आयोजनायें और श्रम

THE FIVE YEAR PLANS AND LABOUR

अबन्ध नीति का सिद्धान्त (The Doctrine of Laissez Faire)

अबन्ध नीति का प्रभाव बहुत समय तक प्रत्येक देश में व्यक्तियों पर छाया रहा और राष्ट्रों की आर्थिक नीतियाँ भी इस नीति से प्रभावित रहीं। यह विश्वास किया जाता था कि यदि स्व हित सम्पादन को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाये तो इससे अधिकतम निजी हित प्राप्त हो सकेगा। अबन्ध नीति में विश्वास रखने वालों की धारणा थी कि आर्थिक मामलों में सर्वोत्तम परिणामों को प्राप्त करने के लिये राज्य को आर्थिक क्षेत्र से बाहर ही रहना चाहिए। निजी उद्यम ही सब आवश्यक बातों को पूरा करने के लिये पर्याप्त है क्योंकि इससे उपभोक्ताओं को तो कम मूल्यों के कारण तथा उत्पादकों को अधिक लाभ प्राप्ति के कारण फायदा होगा। लाभ कमाने की इच्छा का परिणाम यह होगा कि अधिकतम उत्पादन हो सकेगा। प्रतियोगिता के कारण लाभ अधिक न हो पायेंगे और जितना कि उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिये आवश्यक होंगे वहीं तक सीमित रहेंगे। परिणामस्वरूप, प्रत्येक उत्पादक यथा-सम्भव कुशल होने का प्रयत्न करेगा और उपभोक्ताओं की इच्छाओं का यथा-सम्भव ध्यान रखेगा।[1]

जब स्व हित स्वतन्त्र रूप से छाया रहता है तो उसके अन्तर्गत आर्थिक प्रणाली निजी लाभ की प्रेरणा से शासित होती है। उत्पादक वही वस्तुयें और उतनी ही मात्रा में उत्पन्न करते हैं जितनी कि उपभोक्ताओं द्वारा माग की जाती है। उपभोक्ता अपनी तरजीह (Preferences) को मूल्यों के रूप में प्रकट करते हैं। विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों से ही इस बात का निर्धारण होता है कि कौन-कौन सी वस्तुयें तथा कितनी मात्रा में उत्पन्न की जायें। उत्पादन साधनों का विभिन्न उपयोगों में किस प्रकार विनिधान (Allocation) किया जाये इसका निर्धारण भी मूल्यों के द्वारा ही होता है। इस प्रकार मूल्य वह अदृश्य शक्ति है जिसके द्वारा सम्पूर्ण आर्थिक गतिविधियों का नियन्त्रण और पथ प्रदर्शन होता है।[2]

---

1. *G D H. Cole Practical Economics*, Pages 7 8

2 आयोजना की समस्याओं का विस्तृत विवरण लखक तथा प्रो० पी० सी० माथुर द्वारा लिखित पुस्तक 'सार्वजनिक अर्थशास्त्र' में देखिए।

आयोजना के विचार का विकास

अबन्ध नीति सदैव ही अपने दृष्टिकोण से पूँजीवादी रही है। यह नीति निजी मालिकों के अस्तित्व को मान कर बनाई गई थी जिनके पास उत्पादन के विशेष साधन तथा श्रम को रोजगार पर लगाने की क्षमता होती है। इस नीति में पूँजी का निजी स्वामित्व भी मान लिया गया था। परन्तु पिछले कुछ वर्षों से इस अबन्ध नीति पर से लोगों का विश्वास उठ गया है। यह देखा गया है कि स्वतन्त्र प्रतियोगिता मे उत्पादन प्रणाली बहुधा अस्त-व्यस्त हो जाती है और इसके कारण जनसाधारण को घोर परेशानियों का सामना करना पड़ता है। पूँजीवादी समाज की प्रगति बिना बाधाओं के नहीं हो पाती। पूँजीवादी प्रणाली मे आर्थिक मन्दी और तेजी जैसी कई अवस्थाओं का सामना करना पड़ता है। निर्बल का सबल द्वारा शोषण किया जाता है और सामाजिक कल्याण की क्षति होती है। अतः यह आवश्यक समझा गया कि आर्थिक प्रणाली को इस प्रकार सगठित किया जाना चाहिये कि शोषण तथा तेजी व मन्दी जैसी आर्थिक अस्थिरता से छुटकारा पाया जा सके। रूस ने यह सिद्ध कर दिया कि आर्थिक आयोजना के द्वारा यह सम्भव हो सकता है। १९२९ मे जब समस्त ससार मन्दी और बेरोजगारी से पीड़ित था तब रूस मे श्रमिको की कमी की समस्या थी।

अत आर्थिक मन्दी के समय में जब ससार ने यह असामान्य और बुरी स्थिति देखी कि वस्तुओं की बाहुल्यता होने पर भी लोग भूख से मर रहे थे तब से समस्त ससार के लोगों में आयोजना का विचार दृढ होता चला गया है। अब आर्थिक प्रणाली को माँग और पूर्ति की दशाओं के अन्दर स्वतन्त्र छोड़ देना सुरक्षित नहीं समझा जाता। अब ऐसे व्यक्ति बहुत कम है जो इस बात में विश्वास करते हैं कि यदि आर्थिक शक्तियों को स्वतन्त्र छोड दिया जाए तो उनके द्वारा देश के आर्थिक साधनो का स्वत. सर्वोत्तम वितरण हो जायेगा। सर विलियम बेवरिज ने कहा है "यह आशा करना कि व्यक्तिवादी रूप से छोटे-छोटे और पृथक् उद्योग-धन्धो से एक ऐसा उद्योग बन जायेगा जिसमे हर प्रकार से अधिकतम कुशलतापूर्वक कार्य होगा, वैसा ही होगा जैसे— यह आशा की जाय कि असख्य छोटे-छोटे सम्पत्ति के मालिक और निर्माणकर्त्ता अपनी अनियन्त्रित व अव्यवस्थित कार्यवाहियों से कोई ऐसा नियोजित नगर बना लेंगे जिसमें अनावश्यक स्थान, दोहरी गलियाँ तथा यातायात का अवरुद्ध होना जैसी बातें न हों।" उत्पादकता और आय को बढ़ाने के लिये तथा देश के बहुमुखी विकास में तीव्रता लाने के लिये अब नियोजित अर्थ-व्यवस्था को स्वीकार कर लिया गया है।

आयोजना का अर्थ और उसकी परिभाषा

आयोजना केन्द्रीय नियन्त्रण को मान कर चलती है और इसमे यह अन्तर्निहित है कि राष्ट्र के साधनो का जो भी उपयोग होता है वह सोच समझकर और विचारपूर्वक तथा एक निश्चित उद्देश्य को ध्यान मे रखते हुए किया जाता है।

इसमे जितनी भी आर्थिक क्रियायें हैं उन सबको निश्चित रूप से समायोजित और समन्वित कर लिया जाता है ताकि व्यर्थ की प्रतियोगिता और कार्य का दुहरापन समाप्त हो जाये। जार्ज फ्रेड्रिक ने अपनी एक पुस्तक 'Readings in Economic Planning' मे 'लुई लारविन' की परिभाषा उद्धृत की है जिसने एक आयोजित अर्थ व्यवस्था की व्याख्या इस प्रकार की है "आयोजित अर्थ व्यवस्था आर्थिक सगठन की एक ऐसी योजना है जिसमे प्रत्यक व्यक्ति तथा पृथक पृथक् मशीन, उद्यम और उद्योग सबको एक ही प्रणाली की समायोजित इकाइयाँ माना जाता है और इसका उद्देश्य यह होता है कि जितने भी उपलब्ध साधन हैं उनका इस प्रकार से उपयोग किया जाए कि एक निश्चित समय मे मनुष्य की आवश्यकताओ की अधिकतम सतुष्टि हो सके।" डिकन्सन के शब्दो मे 'आर्थिक आयोजना का अर्थ यह है कि समस्त आर्थिक प्रणाली के व्यापक सर्वेक्षण के आधार पर एक निर्धारित करने वाली सत्ता द्वारा सोच-समझ कर इरादतन मुख्य आर्थिक निर्णय लिये जाते हैं—जैसे क्या और कितना उत्पादन होना चाहिये और किन किन मे उसका विनिधान होना चाहिये।" डब्लू० एन० लूक ने आयोजना की निम्नलिखित शब्दो में व्याख्या की है "आयोजना से तात्पर्य यह है कि राष्ट्रीय भावना से प्रेरित सामाजिक व्यापक उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिये समस्त आर्थिक क्रियाओ को, राष्ट्रीय आधार पर निश्चित किये और ढाले हुए क्षेत्रो मे तथा एक समायोजित इकाई मे इस प्रकार यथास्थान स्थित कर दिया जाता है, जैसे—किसी पच्चीकारी का भाग हो।"[3]

इस प्रकार आर्थिक आयोजना से आर्थिक क्रियाओ को नियन्त्रित करने वाली सत्ता मूल्य के स्थान पर राज्य हो जाता है। आर्थिक प्रणाली का मूल्य पर नियन्त्रण समाप्त हो जाता है। विभिन्न उद्योगो मे साधनो का विनिधान राज्य द्वारा किया जाता है, और जिस मात्रा मे राज्य चाहता है उसी मात्रा मे वस्तुओ का उत्पादन होता है। इस प्रकार आयोजना द्वारा अबन्ध नीति की अर्थ-व्यवस्था समाप्त हो जाती है और उसके स्थान पर देश की आर्थिक प्रणाली पर प्रभावात्मक नियन्त्रण लागू कर दिया जाता है। उत्पादन, विनिमय, वितरण आदि सब एक पूर्व निश्चित आयोजना के अनुसार होते है। उपभोक्ता के स्थान पर आर्थिक विषयो मे, राजनैतिक विषयो के साथ-साथ, राज्य का प्रभुत्व आ जाता है। स्व-हित के स्थान पर समाज हित के उद्देश्य से आर्थिक प्रक्रियायें प्रभावित होती है। आर्थिक आयोजना का उद्देश्य विभिन्न देशो मे विभिन्न हो सकता है परन्तु सामान्य लक्ष्य यही है कि आर्थिक जीवन मे स्थिरता लाई जाय, न्यायोचित वितरण हो और देश के साधनो का अधिकतम उपयोग हो सके जिससे अधिक उत्पादन हो, पूर्ण रोजगार

3 *'The Shaping of all economic activities into group defined spheres of action which are nationally mapped out and fitted as part of a mosaic, into a coordinated whole, for the purpose of achieving certain nationally conceived and socially comprehensive goals."*

हो तथा जीवन-स्तर ऊँचा हो जाय। इस प्रकार आर्थिक आयोजना को "उस व्यापक प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग समझा जाना चाहिये जिसका लक्ष्य केवल संकीर्ण तकनीकी अर्थ में ही साधनों का विकास करना नहीं होता, बल्कि जो मानवीय गुणों के विकास पर तथा एक ऐसे संस्थागत ढाँचे के निर्माण पर भी ध्यान देती है जो कि जनता की आवश्यकताओं तथा महत्वाकांक्षाओं की दृष्टि से भी पर्याप्त हो।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आयोजना से तात्पर्य यह नहीं है कि राज्य का उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व हो। आयोजना के लिये मुख्य बात तो यह है कि साधनों पर राज्य का प्रभावात्मक ढंग से नियन्त्रण हो। अतः पूँजीवादी व्यवस्था में भी नियोजन सम्भव है। आयोजित अर्थ-व्यवस्था किसी भी प्रकार की अर्थ-व्यवस्था में चल सकती है। परन्तु, क्योंकि आयोजना में राज्य का नियन्त्रण अधिक होता है, इस कारण समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे आयोजना अधिक सरल और स्थायी होती है। परन्तु हम लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था में भी आयोजना लागू कर सकते हैं। आर्थिक आयोजन एक तो निदेशन (Direction) द्वारा किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत निजी उद्यम बिल्कुल भी नहीं होता तथा आयोजन करने वाली सत्ता कुछ उद्देश्य तथा लक्ष्य निश्चित कर देती है। फिर इन उद्देश्यों और लक्ष्यों की पूर्ति के लिये वह लोगों को कुछ विशेष रीतियों के अनुसार कार्य करने का आदेश देती है तथा कुछ अन्य विशेष रीतियों के अनुसार कार्य करने से रोकती भी है। आयोजन की दूसरी रीति प्रोत्साहन (Inducement) द्वारा है। इसके अन्तर्गत निजी उद्यम सरकारी उद्यम के साथ-साथ चलता है तथा आयोजना करने वाली सत्ता राजकोषीय (Fiscal) व वित्तीय (Financial) नीतियों द्वारा तथा कीमत पद्धति के द्वारा लोगों को इस बात के लिये प्रोत्साहित करती है कि वे कुछ वांछित रीतियों व तरीकों के अनुसार ही कार्य करें। अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट द्वारा 'न्यू डील' आयोजना का लागू करना, रूस की पंचवर्षीय आयोज-नायें, हिटलर के अधीन जर्मनी में आर्थिक अर्थ-व्यवस्था, आदि सभी से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आयोजित अर्थ-व्यवस्था से, अनियोजित आर्थिक प्रणाली की अपेक्षा, थोड़े समय में अधिक समृद्धि प्राप्त की जा सकती है और देशों में उन्नति हो सकती है। अतः आज यह समस्या नहीं है कि आयोजना हो या न हो वरन् जो कुछ भी मतभेद है वह विभिन्न प्रकार की आयोजनाओं पर और राज्य द्वारा किस सीमा तक आयोजना की जाय इस विषय पर है।

आयोजना के कुछ आवश्यक तत्व
(Essentials or Pre-requisites of Planning)

प्रत्येक देश में आयोजना के लिये कुछ आवश्यक बातें होती हैं तथा आयो-जित अर्थ-व्यवस्था की सफलता के लिये कुछ सिद्धान्तों का होना बहुत आवश्यक है। प्रथम तो, एक ऐसी राष्ट्रीय सरकार होनी चाहिये जिसे जनता का पूर्ण

विश्वास व सहयोग प्राप्त हो। इसके अभाव मे आर्थिक आयोजना को सन्देह की दृष्टि से देखा जायेगा और उसका सफल होना सम्भव नही होगा। दूसरे, आयोजको और विचारको का एक विशेषज्ञ दल होना चाहिये जो नि:स्वार्थ कार्यकर्त्ता, कुशल सगठनकर्त्ता और पूर्णरूप से देश-भक्त हो। ऐसे व्यक्तियो के हृदय मे देश हित के अतिरिक्त और कोई विचार नही होना चाहिये। तीसरे, आयोजना को कार्यान्वित करने के लिये प्रशिक्षित और विशेषज्ञ व्यक्ति होने चाहियें। चौथे, विभिन्न आर्थिक गतिविधियो को समायोजित और आयोजित करने के लिये एक अविभाज्य (Definite) सत्ता होनी चाहिये, चाहे वह राजकीय हो या अन्य कोई सस्था हो। पाँचवें, आयोजना सोच विचार, विवेकपूर्ण व निश्चित उद्देश्यो को सामने रखकर की जानी चाहिये। छठे, आयोजना के लिये एक आवश्यक बात यह है कि पर्याप्त मात्रा मे साख्यिकी, सूचनाओ तथा आँकडो को एकत्रित कर लेना चाहिये। किसी भी आयोजना को बनाने से पूर्व आयोजको को देश का तथा उसकी आवश्यकताओ, उसकी क्षमता और उसकी कठिनाइयो का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये। सातवें, आयोजना काफी व्यापक होनी चाहिये, जिससे उनके अन्तर्गत देश के सम्पूर्ण आर्थिक जीवन को लिया जा सके। आयोजना विभिन्न उद्योगो और सरकारी विभागो की अलग-अलग विकास योजनाओ की एक मिली-जुली योजना पेबन्ददार कपडे की तरह नही होनी चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को यह ज्ञान होना चाहिये कि उसको आयोजना के अन्तर्गत क्या करना है और क्या नही करना है। आयोजना की सफलता के लिये सुदृढ वित्तीय और मुद्रा-प्रणाली का होना भी आवश्यक है। अन्त मे यह भी आवश्यक है कि जन साधारण आयोजना को ठीक प्रकार से समझ सकें और आयोजना की अन्तत सफलता के लिये वर्तमान मे कुछ कष्ट सहने को भी तैयार हो। 'बिना कष्टो के आयोजना" (Planning without Tears) बहुत कठिन है।

भारत मे आयोजना के विचार का विकास

विभिन्न आयोजनाओ की सक्षिप्त रूपरेखा

भारत मे आयोजना के विचार का विकास उस समय हुआ जब देश मे घोर आर्थिक मन्दी के दुष्परिणाम प्रकट होने लगे थे। भारत के लिये आयोजित अर्थ-व्यवस्था के ऊपर अनेक लेख व छोटी-छोटी पुस्तिकायें आदि प्रकाशित हुईं। १९३४ मे सर एम० विश्वेश्वरैया ने 'भारत के लिये आयोजित अर्थ-व्यवस्था" (Planned Economy for India) नामक एक पुस्तक प्रकाशित की। १९३७ मे कुछ प्रान्तीय आयोजनायें भी बनाई गईं, उदाहरणतः बिहार के विकास के लिये माननीय सईद महमूद द्वारा तथा पजाब के लिये प्रो० के० टी० शाह द्वारा। १९३७ मे भारतीय राष्ट्रीय आयोजना समिति की स्थापना की गई जिसके अध्यक्ष पण्डित जवाहरलाल नेहरू तथा महामन्त्री प्रोफेसर के० टी० शाह थे। परन्तु यह समिति अध्यक्ष और कुछ सदस्यो की गिरफ्तारी के कारण अपने कार्य को पूरा न कर सकी। इस समिति ने देश के सामने विभिन्न समस्याओ की जाँच करने के लिये

जो अनेक उप-समितियाँ बनाई थी उनकी रिपोर्ट युद्ध के पश्चात् ही प्रकाशित की जा सकी। अन्तिम रिपोर्ट काफी समय पश्चात् १९४९ में प्रकाशित की गई। श्रम उप-समिति की रिपोर्ट दिसम्बर १९४७ में प्रकाशित हुई। राष्ट्रीय आयोजना समिति ने समाजवाद और निजी व्यवसाय के बीच समझौता करने का प्रयत्न किया था। इसके सुझावों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिये समान अवसर तथा पिछड़े हुए वर्गों के लिये विशेष अवसर प्रदान किये जाने चाहियें। निजी सम्पत्ति का उन्मूलन नहीं होना चाहिये परन्तु मूल उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में ही होने चाहियें। यह भी सुझाव दिया गया था कि भूमि का प्रयोग सहकारी आधार पर हो तथा जमींदारी प्रणाली का उन्मूलन कर दिया जाये। छोटे पैमाने के उद्योगों का संगठन सहकारी आधार पर किया जाना चाहिये तथा उनको ग्रामीण क्षेत्रों में प्रोत्साहन देने की भी सिफारिश थी।

आयोजना में देश-व्यापी रुचि वास्तव में 'बम्बई आयोजना' के प्रकाशन से उत्पन्न हुई। यह आयोजना १९४४ में बम्बई के आठ उद्योगपतियों द्वारा बनाई गई थी। आयोजना मे १५ वर्षों के दौरान १०,००० करोड़ रुपये व्यय करके राष्ट्रीय आय को दुगुना करने का सुझाव था। इसने देश के लिये संतुलित अर्थ-व्यवस्था की दलील दी तथा उद्योग, कृषि, सचार, शिक्षा और आवास के लिये लक्ष्य निर्धारित किये। आयोजना के दूसरे भाग मे वितरण की समस्या का उल्लेख किया गया था तथा इसका उद्देश्य राज्य द्वारा समाजवाद और पूँजीवाद के बीच समझौता स्थापित करना था। इस आयोजना की आलोचना इस आधार पर की गई कि यह पूँजीवादी थी। इसकी महत्ता भी अब समाप्त हो गई है क्योंकि मूल्यों में वृद्धि तथा देश में बदली हुई राजनैतिक व आर्थिक परिस्थितियों के कारण इसके अनुमान सब गलत हो गये हैं।

इसके अतिरिक्त श्री एम० एन० राय द्वारा बनाई गई "जन आयोजना" (People's Plan) भी थी। इसकी लागत १० वर्षों के दौरान १५,००० करोड़ रुपया अनुमानित की गई थी, जो कृषि, उद्योग, संचार व स्वास्थ्य पर व्यय की जानी थी। इस आयोजना में कृषि के विकास पर बल दिया गया था। भूमि के राष्ट्रीयकरण की दलील दी गई थी तथा कृषि के क्षेत्र को ५०% तक बढाये जाने का सुझाव दिया गया था। परन्तु यह अनुमान असम्भव प्रतीत होते थे। अतः इस आयोजना पर कोई विशेष ध्यान नही दिया गया।

वर्धा के प्रो० एस० एन० अग्रवाल (श्री श्रीमन नारायण) ने भी 'गाँधीवादी आयोजना' (Gandhian Plan) बनाई। इस आयोजना के उद्देश्य बहुत ऊँचे नही थे। इसमे घोषणा की गई थी कि भारतवर्ष एक निर्धन देश था अत. आयोजनाओं पर बड़ी धनराशि व्यय नहीं कर सकता था। इसकी अनुमानित लागत ३,५०० करोड रुपये थी और उसको कृषि, उद्योग, यातायात, जन स्वास्थ्य, शिक्षा आदि-आदि अनेक मदो मे बांटा गया था। आयोजना का मुख्य उद्देश्य कुटीर उद्योगों की पुनर्स्थापना, कृषि मे सुधार और आत्म-निर्भरता का आदर्श था। यह आयोजना

के लिये पश्चिमी प्रणाली अपनाने के विरुद्ध थी। आयोजना की यह आलोचना की गई कि यह आधुनिक ससार मे घोर आदर्शवादी व अव्यावहारिक थी।

युद्धोत्तर पुनर्निर्माण के लिये भारत सरकार ने भी कुछ आयोजनायें बनाईं। जून १९४१ मे अनेक पुनर्निर्माण समितियो की स्थापना की गई। जुलाई १९४४ मे आयोजना और विकास विभाग की स्थापना की गई। सरकार की आयोजना दो भागो मे विभाजित थी तत्कालीन और दीर्घकालीन। तत्कालीन आयोजना मे युद्ध मे शातिकालीन अर्थ-व्यवस्था मे परिवर्तन की समस्या को सुलझाना था—उदाहरणत युद्ध सामग्री व अतिरिक्त स्टॉक को काम मे लाना, युद्ध सैनिको का पुनर्वास, युद्धकालीन नियन्त्रणों को कम करना और धीरे-धीरे दूर करना आदि। यह १,००० करोड रुपये की लागत की पचवर्षीय आयोजना थी। दीर्घकालीन आयोजना मे विद्युत शक्ति के विकास, सिंचाई, ग्रामीण एव बडे उद्योग धन्धे, यातायात सेवा तथा कृषि मे सुधार के द्वारा देश के आर्थिक जीवन का सर्वांगीण विकास करने का उद्देश्य था। धन के समान वितरण पर जोर दिया गया था।

१९५० का आयोजना आयोग (Planning Commission of 1950)

ये सब आयोजनायें इस धारणा पर आधारित थी कि भारतवर्ष अविभाजित रहेगा। शरणार्थी पुनर्वास, कश्मीर युद्ध, युद्धोत्तर मुद्रा प्रसार, खाद्य की कमी और व्यापार अवरोध जैसी घोर समस्याओ के बारे मे किसी ने सोचा भी न था। युद्धोत्तर घटनाओ से यह सब आयोजनायें बेकार हो गयी। अत यह आवश्यक हो गया है कि भारत मे उपलब्ध मानवीय व भौतिक साधनो को ध्यान मे रखकर एक नई आयोजना बनाई जाये। अत मार्च १९५० मे श्री नेहरू की अध्यक्षता मे एक आयोजना आयोग की स्थापना की गई। इसका कार्य यह था कि भौतिक, पूंजीगत व मानवीय साधनो का ठीक ठीक अनुमान लगाये तथा "देश के स्रोतो के सन्तुलित व बहुत प्रभावात्मक उपयोग के लिए एक आयोजना बनाये जिससे देश के हर नागरिक को, चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष, जीविकोपार्जन के पर्याप्त साधन उपलब्ध हो सकें।' राज्यो में आयोजना तथा विकास प्रभागो की स्थापना की गई। आयोग ने तत्काल ही अपना काम प्रारम्भ कर दिया और १९ महीनें पश्चात्, जुलाई १९५१ में, सरकार को प्रथम पचवर्षीय आयोजना की प्रारम्भिक रूपरेखा प्रस्तुत कर दी। पचवर्षीय आयोजना अन्तिम रूप मे श्री नेहरू द्वारा ससद मे ८ दिसम्बर १९६२ को प्रस्तुत की गई। इस आयोजना की अवधि अप्रैल १९५१ से मार्च १९५६ तक रखी गई।

कोलम्बो आयोजना (The Colombo Plan)

कोलम्बो आयोजना राष्ट्रमडलीय (Commonwealth) देशो के आर्थिक सम्बन्धो का ही एक भाग है। इस आयोजना का अभ्युदय जनवरी १९५० मे कोलम्बो मे हुए राष्ट्रमण्डलीय देशो के विदेश मन्त्रियो के विचार-विमर्श के परिणामस्वरूप हुआ। इस सम्मेलन में विश्व समस्याओ पर, विशेषतया दक्षिण

और दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों की घोर आवश्यकताओं पर विचार विनिमय हुआ। इस सभा में एक सलाहकार समिति बनाई गई। इसका कार्य आवश्यकताओं का सर्वेक्षण करना, उपलब्ध साधनों का मूल्यांकन करना तथा इस क्षेत्र मे किये जाने वाले विकास कार्यों की ओर संसार का ध्यान आकर्षित कराना था। इसका यह भी कार्य था कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के ऐसे प्रयत्न किये जायें जिनके अन्तर्गत इस क्षेत्र के देशों के निवासियों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाया जा सके। प्रारम्भ मे इसके सदस्य आस्ट्रेलिया, कनाडा, श्रीलंका, भारत, न्यूजीलैण्ड, पाकिस्तान, इंगलैंड, मलाया तथा ब्रिटिश बोर्नियो थे। इसके पश्चात् १९५१ में कम्बोडिया, लाओस, वियतनाम तथा संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, १९५२ मे बर्मा और नेपाल, १९५३ में इन्डोनेशिया तथा १९५४ मे जापान, फिलिपाइन्स और थाइलैण्ड भी इसके सदस्य हो गये। इस समय 'कोलम्बो आयोजना' में २३ सदस्य हैं।

कोलम्बो आयोजना का औपचारिक रूप से उद्घाटन १ जुलाई, १९५१ को किया गया था। यह ३० जून १९५७ को समाप्त होने को थी। अक्तूबर १९५५ में सलाहकार समिति के सिंगापुर सम्मेलन मे आयोजना को ३० जून १९६१ तक बढाना स्वीकार कर लिया गया। १९६० में इसे १९६७ तक बढाया गया और अब यह योजना स्थायी रूप से चल रही है। इस आयोजना के अन्तर्गत इस क्षेत्र के देश अपने विकास का यथासम्भव प्रयत्न करते हैं। इन प्रयत्नो मे क्षेत्र के बाहर के देशों द्वारा सहायता दी जाती है। आयोजना के पास १८,६८० लाख पौण्ड की निधि थी। निधि मे से राशि मुख्यतः यातायात और सन्देशवाहन कृषि, (इसमें नदी घाटी योजनायें भी सम्मिलित हैं), आवास, स्वास्थ्य व शिक्षा, उद्योग और खनिज (इसमें कोयला, ईंधन व शक्ति सम्मिलित नही है) के लिए दी जाती है। १८,६८० लाख पौंड जो व्यय होगा उसके लिए १०,८६० लाख पौण्ड आन्तरिक साधनों से और ७,८४० लाख पौण्ड बाह्य साधनों से प्राप्त करने की व्यवस्था थी।

आयोजना के अन्तर्गत भारत सहायता ले भी रहा है और दे भी रहा है। भारतवर्ष ने रेलवे के पुनर्स्थापन तथा आकाशवाणी के विस्तार के लिए आस्ट्रेलिया से, मयूराक्षी और कुन्दा योजनाओं के लिये कनाडा से, अखिल भारतीय चिकित्सा विज्ञान संस्था व देहली दुग्ध वितरण योजना के लिये न्यूजीलैण्ड से तथा दुर्गापुर इस्पात कारखाने के लिये ग्रेट ब्रिटेन से सहायता ली है। तकनीकी सहायता योजना के अन्तर्गत जून १९६५ के अन्त तक भारत ने ३६२ विदेशी विशेषज्ञों की सेवायें प्राप्त की तथा ३८८७ भारतीयों के लिये कोलम्बो योजना के देशो में प्रशिक्षण सुविधायें प्राप्त की। ये सेवायें स्वास्थ्य तथा चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा, खाद्य तथा कृषि, उद्योग तथा व्यापार शक्ति और ईंधन के साधन, यातायात व संचार वाहन, बैंकिंग, सांख्यिकी, छपाई आदि से सम्बन्धित थी। योजना के प्रारम्भ से ३१ दिसम्बर १९६५ तक भारत ने निम्न देशों से वित्तीय सहायता प्राप्त की थी. आस्ट्रेलिया १५·२१ करोड रु०; न्यूजीलैण्ड ४·१३ करोड़ रु०; कनाडा १४८·७३ करोड रु०; और इगलैण्ड १·४३ करोड़ रु०। १९५९ में, सात श्रमिक संघ के कार्यकर्ताओं

को श्रमिक सघवाद का प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए और सात सरकारी अधिकारियो को श्रम प्रशासन का प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए इगलैण्ड भेजा गया। श्रमिक शिक्षा, श्रम आकडो, व्यावसायिक मार्गदर्शन, रोजगार, बाजार सूचनाओं, सहकारिता, तथा खानो की सुरक्षा आदि मे प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए अनेकों प्रशिक्षणार्थी विभिन्न देशो को भेजे गये। ब्रिटेन की सरकार बम्बई की केन्द्रीय श्रम सस्था को तथा कलकत्ता, मद्रास व कानपुर की तीन क्षेत्रीय श्रम सस्थाओं को २१०० डालर तक की सहायता देने को सहमत हो गयी है।

दूसरी ओर भारत ने नेपाल तथा कोलम्बो क्षेत्र के कुछ अन्य देशों को भी सहायता दी है। सन् १९५९-६० मे, भारत द्वारा नेपाल को दी जाने वाली सहायता का मौद्रिक मूल्य २१ करोड रु० था। भारत ने नेपाल को उसकी द्वितीय आयोजना की प्रायोजनाओ (Projects) के लिये भी १८ करोड रु० की सहायता का प्रस्ताव किया है। तकनीकी सहकारिता योजना के अन्तर्गत, भारत ने दिसम्बर १९६५ के अन्त तक क्षेत्र के विभिन्न देशो के ३११६३ व्यक्तियो को प्रशिक्षण की सुविधायें प्रदान की। इन व्यक्तियो को सिविल व मैकेनिकल इन्जीनियरिंग, चिकित्सा, सदेशवाहन, कृषि, उद्योग, सांख्यिकी, सहकारिता आदि मे प्रशिक्षण दिया गया। इसके अतिरिक्त भारत ने अन्य देशो को विशेषज्ञो की सेवायें भी प्रदान की हैं। य सेवायें सिचाई, बैंकिंग, लोहा व इस्पात, हवाई सर्वेक्षण, रेशम उद्योग, दुग्ध वितरण, आलू उत्पादन, ट्रैक्टर इन्जीनियरिंग, दाहतीर अनुसन्धान, चीनी तथा चपडा बनाने की तकनीक, रेडियो प्रसार, अल्प बचत योजनायें, कराधान सुधार, आयुर्वेदिक अनुसन्धान, सडक यातायात अनुसन्धान, हवाई जहाजो का चलाना, बीमा योजना का राष्ट्रीयकरण, कीट विज्ञान, छोटे पैमाने के उद्योग, योजना प्रचार, तथा नदी-घाटी प्रायोजनाओ आदि से सम्बन्धित थी।

प्रथम पचवर्षीय आयोजना का प्रारूप
(A Brief Outline of the First Five Year Plan)

उपरोक्त वर्णन को ध्यान मे रखते हुये अब भारत की प्रथम पचवर्षीय आयोजना पर विचार किया जा सकता है। जुलाई, १९५१ में आयोजना की प्रस्तावित रूपरेखा प्रकाशित की गई जो पाच वर्षो की अवधि, अर्थात् अप्रैल, १९५१ से मार्च, १९५६ तक के लिये थी। प्रस्तावित रूपरेखा का उद्देश्य यह था *कि आयोजना पर, जितना भी सम्भव हो, जनता द्वारा विचार-विमर्श किया जाये।* इसको प्रस्तुत करते हुये आयोग ने कहा था "प्रजातान्त्रिक राज्य मे आयोजना एक सामाजिक प्रक्रिया है और इसमे प्रत्येक नागरिक को किसी न किसी प्रकार से भाग लेने का अवसर मिलना चाहिये।" आयोजना आयोग ने केन्द्रीय व राज्य सरकारो, मुख्य राजनैतिक दलो के प्रतिनिधियो तथा अन्य विशिष्ट व अनुभवी व्यक्तियो से परामर्श करके आयोजना को अन्तिम रूप दिया। ८ दिसम्बर, १९५२ को ससद् के समक्ष प्रथम आयोजना का यह अन्तिम रूप प्रस्तुत किया गया।

आयोजना का मुख्य उद्देश्य विकास की ऐसी प्रक्रिया को चालू करना था जिससे जीवन-स्तर ऊँचा हो जाये तथा व्यक्तियों को अधिक सम्पन्न और विविध प्रकार का जीवन व्यतीत करने के नये-नये अवसर प्राप्त हो सके। इस आयोजना पर इस दृष्टिकोण से विचार किया जाना था कि इससे इस बात को नींव पड सके कि देश का भावी विकास तीव्रगति से हो।

आयोजना एक निरन्तर प्रक्रिया है। इसलिये इस बात का विवेचन किया गया था कि प्रथम पंचवर्षीय योजना का मुख्य कार्य भारतीयों के सामाजिक और आर्थिक स्तरों को पर्याप्त रूप से ऊँचा उठाना था। उद्देश्य यह था कि प्रति व्यक्ति आय १९७७ तक बढ़कर दुगुनी हो जाये तथा राष्ट्रीय आय १९५१ में ९,००० करोड़ रुपयो से बढकर १९५६ में १०,००० करोड़ रु० तक पहुँच जाये। यह भी आशा व्यक्त की गई थी कि इस अवधि में राष्ट्रीय आय के अनुपात मे बचत की दर १९५१ मे ५ प्रतिशत से बढ़कर १९५५-५६ मे ६·७५%, १९६०-६१ मे ११% तथा १९६७-६८ में २०% हो जायेगी। इसके पश्चात् अनुपात अधिक बढाने की आवश्यकता न पड़ेगी, परन्तु देश के जो भी साधन निवेश में लगाये जावेंगे वह निरपेक्ष दृष्टि से बढ़ते चले जायेंगे।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना मे आरम्भ में सार्वजनिक क्षेत्र मे २,०६९ करोड़ रुपयो के व्यय की व्यवस्था की गई थी। १९५३-५४ मे यह अनुभव किया गया कि रोजगार की स्थिति का दृढ़ता के साथ सामना किया जाना चाहिये। अतः आयोजना में कुछ श्रम-प्रधान योजनाओं को सम्मिलित करके इसे दृढ बना दिया गया और निवेश का लक्ष्य बढ़ाकर २,३७८ करोड़ रुपये कर दिया गया। इसमें पुनर्संशोधन करके २,३५६ करोड रुपये कर दिया गया। परन्तु वास्तविक व्यय केवल २,०१२ करोड़ रुपये था।

आयोजना का उद्देश्य उपभोग की वस्तुओं की अपेक्षा उत्पादन साधनो का निर्माण करना था। आयोजित व्यय का लगभग ६०% केन्द्र और राज्य सरकारों के स्वामित्व में उत्पादन पूँजी बनाने पर व्यय होना था। इस व्यय को सिंचाई व शक्ति, यातायात एवं संचारवहन तथा उद्योग में किये जाने की व्यवस्था थी। शेष ४० प्रतिशत मे से कुछ व्यय तो निजी क्षेत्र के उत्पादक साधनों में होना था तथा कुछ व्यय कार्यशील पूँजी के रूप मे सहायता देने के लिये और परामर्श व प्रशासन सेवाओं पर व्यय किया जाना था; कुछ व्यय सामाजिक सेवाओं और उनके विस्तार के लिये था और कुछ व्यय जनता में विकास की प्रेरणा को उभारने के लिए किया जाना था।

अग्र तालिका में सार्वजनिक क्षेत्र में विकास कार्यक्रमों पर व्यय के वितरण का उल्लेख किया गया है—

(करोड़ रुपयों में)

मद	मूल अनुमान		संशोधित अनुमान		वास्तविक व्यय	
	राशि	प्रतिशत	राशि	प्रतिशत	राशि	प्रतिशत
कृषि व सामुदायिक विकास	३६०·४३	१७ ५	३५७	१५·१	२९९	१४·८
सिंचाई एवं शक्ति	५६१ ४१	२७ १	६६१	२८·१	५८५	२९ १
यातायात व संचार-वाहन	४९७ १०	२४ ०	५५७	२३ ६	५३२	२६·४
उद्योग एवं खान	१७३ ०४	८ ४	१७९	७ ६	१००	५·०
सामाजिक सेवायें	३३९ ८१	१६ ४	५३३	२२ ६	४२३	२१·०
पुनर्वास	८५ ००	४ १	—	—	—	—
विविध	५१ ९९	२ ५	६९	३ ०	७४	३·७
योग	२,०६८ ७८	१०० ०	२,३५६	१०० ०	२,०१३	१००·०

आयोजना में सबसे अधिक प्राथमिकता कृषि विकास, सिंचाई कार्यक्रमों व विद्युत शक्ति के उत्पादन को दी गई थी। यातायात व संचार साधनों के विकास को भी पर्याप्त प्राथमिकता दी गई थी। इस अवधि में औद्योगिक प्रसार का कार्य मुख्यतया निजी क्षेत्र व स्रोतों पर ही छोड़ दिया गया था, परन्तु कुछ मामलों में सार्वजनिक क्षेत्र व विदेशी निवेश द्वारा भी पूरक के रूप में सहायता दिये जाने की व्यवस्था थी। सामाजिक सेवाओं के विषय में यह अनुभव किया गया था कि आवश्यकतायें बहुत अधिक थीं और इस अवधि में इनका विकास बहुत सीमित रूप में ही हो सकता था तथा विस्थापित व्यक्तियों के पुनर्वास पर पर्याप्त मात्रा में धन व्यय करना आवश्यक था।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में व्यय की पूर्ति निम्न प्रकार होनी थी—

(करोड़ रुपयों में)

विकास पर आयोजित व्यय	केन्द्र	राज्य	योग
	१,२४१	८२८	२,०६९
बजट के स्रोत			
(१) चालू व्यय से बचत (इसमें रेलवे के १७० करोड़ रुपये का *अंशदान भी सम्मिलित है)*	३३०	४०८	७३८
(२) जनता से ऋण	३६	७९	११५
(३) अल्प बचत व अल्पकालीन ऋण	२७०	—	२७०
(४) जमा राशि, निधि व अन्य साधनों से प्राप्त आय	९०	४५	१३५
(५) केन्द्र द्वारा राज्यों को सहायता	(-)२२९	२२९	—
योग	४९७	७६१	१,२५८

वित्तीय साधनों की ८११ करोड़ रु० की कमी को (अर्थात् २,०६९ करोड़ रुपये—१,२५८ करोड़ रुपये), विदेशी सहायता (१५६ करोड़ रुपये), देश में करारोपण, ऋण अथवा घाटे का बजट बनाकर पूरा करने की व्यवस्था थी। यह अनुमान था कि घाटे का बजट २९० करोड़ रुपये का होगा। १५६ करोड़ रुपये की सहायता विदेशों से पहले ही प्राप्त हो चुकी थी। इतना होने पर भी कमी बनी रही जिसके कारण आयोजना में अनिश्चितता आ गई थी और उसकी आलोचना भी हुई।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है १९५३–५४ में आयोजित व्यय पर पुनर्विचार किया गया और यह राशि २,३७८ करोड़ रुपये निश्चित की गई तथा उसे पुनः दोहरा कर १९५३–५४ में २,३५६ करोड़ रु० अनुमानित की गई। वित्त के सामान्य स्रोतों (१,२५८ करोड़ रु०) में तो कोई परिवर्तन नहीं हुआ। परन्तु ८११ करोड़ रु० की कमी बढ़कर १,१२० करोड़ रु० हो गई और फिर यह कमी १,०९८ करोड़ रुपये हो गई। आयोजना आयोग की समीक्षा के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र में पांच वर्षों में जो वास्तविक व्यय हुआ वह केवल २,०१२ करोड़ रुपये था, अर्थात् २,३७८ करोड़ रुपये के संशोधित लक्ष्य में १५.४ प्रतिशत की कमी। इस व्यय की राशि निम्नलिखित साधनों से पूरी की गई थी : बजट के साधन १,२७७ करोड़ रुपये ; प्राप्त विदेशी सहायता २०३ करोड़ रुपये ; घाटे के बजट से ५३२ करोड़ रुपये।

	(करोड़ रुपयों में)
(१) राजस्व खाते से प्राप्त आय (रेलवे के अंशदान सहित)	७५०
(२) जनता से लिये गये ऋण	२०२
(३) अल्प बचत और अल्पकालीन ऋण	३०४
(४) अन्य विविध उपलब्धियाँ	२१
(५) देश के बजट स्रोतों से प्राप्त आय (१ से ४ तक)	१२७७
(६) विदेशों से सहायता	२०३
(७) घाटे के बजट द्वारा	५३२
योग	२०१२

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना की प्रगति

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना ३१ मार्च, १९५६ को समाप्त हुई। अग्र तालिका में १९४८-४९ के मूल्यों के आधार पर राष्ट्रीय आय, निवेश और उपभोग के क्षेत्र में आयोजना की मुख्य उपलब्धियों का ब्यौरा दिया गया है—

	१९५०-५१	१९५५-५६
१. राष्ट्रीय आय (करोड रुपयो मे)	८,८७०	१०,४८०
२ निवेश (करोड रुपयो मे)	४५०	७९०
३. राष्ट्रीय आय का प्रतिशत निवेश	४ ९	७ ३
४. राष्ट्रीय आय (सूचकांक)	१००	११७·५
५ प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय (सूचकांक)	१००	११०·५
६ प्रति व्यक्ति उपभोक्ता व्यय (सूचकांक)	१००	१०८·०
७ प्रति व्यक्ति आय (करोड रुपयो मे)	२४६ ३	२७२ १

इस प्रकार इस अवधि मे राष्ट्रीय आय मे १८ ४% की वृद्धि हुई। प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय १९५०-५१ मे २४६ ३ रुपये से बढकर १९५५-५६ मे २७२ १ रुपये हो गई थी, अर्थात् इसमे १० ५% की वृद्धि हुई। १९५०-५१ की तुलना मे कृषि उत्पादन मे भी १९% की वृद्धि हुई। खाद्य उत्पादन मे २९·८% की वृद्धि हुई। रूई के उत्पादन की वृद्धि ३७ ५% तथा मुख्य-मुख्य तिलहन मे उत्पादन की वृद्धि १२ २% रही। सिंचाई की बडी-बडी योजनाओ के परिणामस्वरूप ६० लाख एकड भूमि तथा छोटी योजनाओ के परिणामस्वरूप १ करोड एकड अतिरिक्त भूमि सिंचाई के अन्तर्गत आ गई। औद्योगिक उत्पादन मे भी स्थायी गति से वृद्धि हुई जो १९५१ की अपेक्षा १९५६ मे ४०% अधिक था। विद्युत शक्ति का उत्पादन १९५०-५१ मे २३ लाख किलोवाट था परन्तु १९५५-५६ मे बढकर ३४ लाख किलोवाट हो गया। सीमेंट का उत्पादन भी १९५०-५१ मे २७ लाख टन से बढकर १९५५-५६ मे ४६ लाख टन हो गया। सार्वजनिक क्षेत्र मे अनेक महत्वपूर्ण औद्योगिक प्रायोजनायें पूर्ण की गई और उनके अन्तर्गत कार्य आरम्भ हो गया था। तीन इस्पात कारखानो के सम्बन्ध मे प्रारम्भिक कार्य को पूरा किया जा चुका था।

इन पाँच वर्षों मे अर्थ-व्यवस्था मे निवेश का अनुमान लगभग ३,१०० करोड रुपये का है। १९५०-५१ मे निवेश ४५० करोड रुपयो से बढकर १९५५-५६ मे ७९० करोड रु० हो गया था (अर्थात् राष्ट्रीय आय का ७ ३%)। प्रथम आयोजना आरम्भ होते समय जितने मूल्य थे, उससे आयोजना के अन्त मे मूल्य १३% कम थे। मूल्यो मे बढने की प्रवृत्ति १९५५ के मध्य मे दृष्टिगोचर होने लगी थी। देश के व्यापार सन्तुलन मे भी सन्तोषजनक सुधार हुआ और इसमे १९५२-५३ मे ७७ करोड रुपये तथा १९५३-५४ मे ५७ करोड रुपये की बेशी (Surplus) हुई। विदेशी खाते मे भी सन्तुलन रहा। आयोजना मे विकास योजनाओ के फलस्वरूप तथा पांच वर्षों की अवधि मे निजी क्षेत्र मे निवेश के फलस्वरूप अतिरिक्त प्रत्यक्ष नौकरियो मे अनुमानत ४५ लाख की वृद्धि हुई परन्तु इस पर भी बेरोजगारी की समस्या गम्भीर रूप धारण किये रही।

समय-समय पर आयोजना की आलोचना भी की गई है। यद्यपि यह कहा गया है कि आयोजना वास्तविक है तथापि इसमे अनेक भावपूर्ण विचार मिलते

है। केवल सुझावों को आयोजना नहीं कहा जा सकता। आयोजना के उद्देश्य सीमित थे तथा अधिक ऊँचे नहीं थे। उदाहरणतः योजना समाप्ति तक खाद्य स्थिति को केवल युद्ध-पूर्व स्तर की स्थिति पर लाना था। आयोजना में जो प्राथमिकतायें दी गई थी उनकी भी आलोचना की गई। उदाहरणतः, शिक्षा के विकास की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया था। यह नागरिकों के चरित्र बनाने व उनमें राष्ट्रीय भावनाओं के संचार के लिये बहुत आवश्यक है। इसके बिना कोई भी आयोजना सफल नहीं हो सकती। वित्तीय साधनों की भी आलोचना की गई। घाटे के बजट पर भी चिन्ता व्यक्त की गई। आयोजना में बेरोजगारी की समस्या का भी कोई ठोस हल प्रस्तुत नहीं किया गया था। प्रथम योजना में बड़े पैमाने के उद्योगों की तो न्यूनाधिक रूप से उपेक्षा ही कर दी गई। यह भी कहा जा सकता है कि जनता के धन और शक्ति का बहुत अपव्यय होता रहा है तथा निवेश के अनुपात में उपलब्धियाँ कम प्राप्त होती हैं। खाद्य के क्षेत्र में देश की आत्म-निर्भरता का श्रेय पंचवर्षीय आयोजना को नहीं दिया जा सकता क्योंकि यह आत्म-निर्भरता स्व० श्री रफी अहमद किदवई की दृढ नीति के परिणामस्वरूप ही आ सकी थी। १९७७-७८ तक राष्ट्रीय आय दुगुनी होने का लक्ष्य भी बहुत ऊँचा नहीं था। इसके अतिरिक्त आयोजना में भौतिक साधनों का विस्तृत अध्ययन करने की अपेक्षा वित्तीय आयोजना पर अधिक बल दिया गया था। यही नहीं, वित्तीय आयोजना में भी अनेक दोष थे, जो इस बात से स्पष्ट है कि वास्तविक व्यय (२,०१२ करोड़ रुपये) तथा दोहराये गये अनुमानित व्यय (२,३७८ करोड़ रुपये) में काफी अन्तर था।

यहाँ पर आयोजना और उसकी आलोचना के विषय में विस्तारपूर्वक विवरण की आवश्यकता नहीं है। इसके लिये लेखक की पुस्तक 'सार्वजनिक अर्थशास्त्र'[४] का अध्ययन किया जा सकता है। यहाँ केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि यह प्रथम अवसर था जबकि देश में अखिल भारतीय स्तर पर आयोजना का प्रयत्न किया गया। निःसन्देह प्रथम पंचवर्षीय आयोजना के लागू होने से हमारी अर्थ-व्यवस्था को बल और स्थायित्व मिला है। प्रथम आयोजना बहुत ऊँचे लक्ष्यों की आयोजना नहीं थी और इसकी अवधि में अधिक बल इस बात पर दिया गया था कि खाद्य की कमी को पूरा किया जाय और मुद्रा-स्फीति के भार को कम किया जाय। कोलम्बो आयोजना सलाहकार समिति ने अपनी चतुर्थ वार्षिक रिपोर्ट में आयोजना की सफलताओं व असफलताओं का विश्लेषण किया है। समिति के मतानुसार आयोजना की सफलताओं में कमी का कारण यह था कि व्यय किये जाने वाले धन की राशि संशोधित आँकड़ों तक भी नहीं पहुँच सकी, सार्वजनिक क्षेत्र में भी साधनों का प्रशंसनीय विकास नहीं हुआ तथा निवेश की दर भी इतनी

४. 'सार्वजनिक अर्थशास्त्र' —लेखक डाक्टर सक्सेना एवं डाक्टर माथुर—अध्याय ३०–३४।

ऊँची न थी जिससे रोजगार की स्थिति पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव पड सके। परन्तु साथ ही उत्पादन अधिक करने तथा देश की उत्पादन क्षमता बढाने मे आयोजना अपने मुख्य उद्देश्य में सफल रही। उत्पादन सामान्यत निर्धारित लक्ष्यो से भी बढ गया। देश की अर्थ-व्यवस्था मे पूँजी निर्माण की गति भी बढी। मुद्रा-स्फीति पर पर्याप्त नियन्त्रण कर लिया गया था तथा वस्तुओ के अभाव का वातावरण भी समाप्त हो गया था। सफलता असफलता दोनो को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि आयोजना सफल तो रही परन्तु आशातीत रूप से नहीं। आयोजना आयोग का कथन है कि 'सब बातो को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि द्वितीय आयोजना के आरम्भ होने के समय आर्थिक स्थिति प्रथम आयोजना प्रारम्भ होने के समय से अपेक्षाकृत अच्छी थी, व्यक्तियों में विश्वास अधिक था और सब ओर अधिक प्रयत्नो के लिये बडी तत्परता दिखाई देती थी। परन्तु इसके साथ ही कोलम्बो समिति के शब्दो को भी भूलना नही चाहिये। समिति ने कहा था कि सब कुछ होते हुये भी हमारे अन्दर भविष्य के लिये आत्म सन्तुष्टि की भावना नहीं आनी चाहिये।'

द्वितीय पचवर्षीय आयोजना

द्वितीय पचवर्षीय आयोजना की प्रस्तावित रूपरेखा आयोजना आयोग द्वारा फरवरी १९५६ मे प्रकाशित की गई। इससे पूर्व मार्च, १९५५ मे प्रो० पी० सी० महालानवीस द्वारा आयोजना के मसौदे की रूपरेखा प्रकाशित की गई थी, तथा आयोजना आयोग एव वित्त मन्त्रालय के अर्थ विभाग द्वारा भी कुछ मसौदे प्रस्तुत किये गये थे। आयोजना अन्तिम रूप से १५ मई, १९५६ को ससद् के सम्मुख प्रस्तुत की गई और इसमे निवेश और उत्पादन के लक्ष्यो को बढा दिया गया था। इसका कारण यह था कि रोजगार के अवसरो मे वृद्धि की आवश्यकता अनुभव की गई थी तथा द्वितीय पचवर्षीय आयोजना मे औद्योगीकरण का बहुत ऊँचा कार्यक्रम होने के कारण अधिक यातायात सेवाओ के लिये व्यवस्था करने की भी आवश्यकता थी।

द्वितीय पचवर्षीय आयोजना के मुख्य-मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार हैं, यद्यपि यह सब उद्देश्य परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित हैं—

(१) राष्ट्रीय आय मे इतनी वृद्धि करना जिससे राष्ट्र का रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो।

(२) मूल और भारी उद्योगो के विकास पर जोर देते हुये देश का तेजी से औद्योगीकरण।

(३) रोजगार के अवसरो का अधिक विस्तार।

(४) आय और सम्पत्ति की विषमताओ का निराकरण तथा आर्थिक शक्ति का पहले से अधिक समान वितरण।

आर्थिक नीति का उद्देश्य समाज के समाजवादी ढाँचे की स्थापना होनी चाहिये, यह बात ससद्, सरकार और आयोजना द्वारा स्वीकृत की जा चुकी है।

राज्य को अपने ऊपर भारी उत्तरदायित्व लेने होंगे क्योंकि राज्य ही समस्त समाज के मुख्य प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार तीव्र गति से होना चाहिए। किसी क्षेत्र को भी अपना कार्य समाज द्वारा अपनाई गई आयोजना के क्षेत्र में ही रहकर करना होगा। राज्य को उन क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण कार्य करना होगा जहां निजी उद्यम सरकारी सहायता के बिना प्रगति नहीं कर सकता। आर्थिक असमानता में निरन्तर कमी होनी चाहिये तथा धन, सम्पत्ति और आर्थिक अधिकारों के एकत्रीकरण में भी कमी करनी चाहिये। राज्य को क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने का प्रयत्न भी करना चाहिये।

३० अप्रैल, १९५६ का औद्योगिक नीति प्रस्ताव इन्हीं बातों पर आधारित है। इसमें उद्योगों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। प्रथम श्रेणी में वह उद्योग आते है जिनके लिये राज्य का पूर्णतः उत्तरदायित्व है, यद्यपि राष्ट्रीय हित के लिये आवश्यक होने पर निजी उद्यम का सहयोग भी लिया जा सकता है। दूसरी श्रेणी में वे उद्योग आते हैं जिनमें नये संस्थानों को स्थापित करने का उत्तरदायित्व राज्य पर रहेगा परन्तु राज्य के प्रयत्नों के पूरक के रूप में निजी उद्यम भी चलता रहेगा। शेष सभी उद्योग साधारणतया निजी उद्यम के क्षेत्र में रहेंगे। इस प्रकार सार्वजनिक व निजी दोनों ही क्षेत्रों को सम्मिलित रूप से विकास करने के पर्याप्त अवसर है।

आयोजना का मुख्य उद्देश्य यह था कि "पाँच वर्षों की अवधि में राष्ट्रीय आय में २५% की वृद्धि की जाये और रोजगार के अवसरों में इस दर से वृद्धि की जाये कि जनसंख्या के बढ़ने के कारण श्रम शक्ति में जो वृद्धि हो उसे आसानी से रोजगार दिया जा सके तथा औद्योगीकरण की दिशा में कुछ ऐसे विशेष पग उठाये जा सकें जिनके परिणामस्वरूप आने वाली आयोजनाओं की अवधि में भी तीव्र गति से प्रगति हो सके।

केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा दूसरी आयोजना के पांच वर्षों में जो व्यय किये जाने की व्यवस्था थी उसकी राशि ४,८०० करोड रुपये थी। इस व्यय का विकास के मुख्य कार्यों में निम्न प्रकार विनिधान किया गया था—

(करोड रुपयों में)

	केन्द्र	राज्य	योग	निवेश व्यय	चालू व्यय
१. कृषि और सामुदायिक विकास	६५	५०३	५६८	३३८	२३०
२. सिंचाई और शक्ति	१०५	८०८	९१३	८६३	५०
३. उद्योग और खनिज	७४७	१४३	८९०	७९०	१००
४. यातायात और संचार	१,२०३	१८२	१,३८५	१,३३५	५०
५. समाज सेवायें	३९६	५४९	९४५	४५५	४००
६. विविध	४३	५६	९९	१९	८०
योग	२,५५९	२,२४१	४,८००	३,८००	१,०००

कुल व्यय मे से ३,८०० करोड रुपयो का तो निवेश था, अर्थात् उत्पादक साधनो के निर्माण पर व्यय होना था। १,००० करोड रुपये चालू विकास व्यय के लिये थे।

यदि प्रथम पचवर्षीय आयोजना मे विभिन्न मदों के विनिभान से तुलना करें तो हमे द्वितीय आयोजना की विभिन्न मदो पर व्यय म वृद्धि तथा प्राथमिकताओ मे परिवतन की स्थिति का पता चल जायेगा।

	प्रथम पचवर्षीय आयोजना (वास्तविक व्यय)		द्वितीय पचवर्षीय आयोजना	
	कुल व्यवस्था (करोड रु० मे)	प्रतिशत	कुल व्यवस्था (करोड रु० मे)	प्रतिशत
१ कृषि और सामुदायिक विकास	२९९	१४ ८	५६८	११ ८
२ सिचाई व शक्ति	५८५	२९ १	९१३	१९ ०
३ उद्योग और खनिज	१००	५ ०	८९०	१८ ५
४ यातायात और सचार	५३२	२६ ४	१ ३८५	२८ ९
५ समाज सेवायें	४२३	२१ ०	९४५	१९ ७
६ विविध	७३	३ ७	९९	२ १
योग	२ ०१२	१०० ०	४ ८००	१०० ०

इस प्रकार द्वितीय आयोजना का आकार प्रथम आयोजना से लगभग दुगुना था। मुख्य परिवतन यह था कि उद्योग व खानो पर अधिक जोर दिया गया था। इस मद पर व्यय प्रथम आयोजना की अपेक्षा लगभग पाँच गुना अधिक था तथा व्यय का प्रतिशत भी ५ से बढकर १८ ५ हो गया था। कृषि सिंचाई व शक्ति पर व्यय के प्रतिशत को यद्यपि कम कर दिया गया था परन्तु फिर भी उन पर किये जाने वाले व्यय की राशि मे काफी वृद्धि हुई थी। खाद्य व कच्चे पदार्थों के अधिक उत्पादन के महत्व पर प्रथम आयोजना की भाति जोर दिया गया था और यह आशा व्यक्त की गई थी कि यह मद आगे आने वाले अनक वर्षों तक महत्वपूर्ण रहेगी। यातायात और सचारवहन पर भी प्रतिशत व्यय अधिक था और यह प्रस्तावित व्यय प्रथम आयोजना की अपेक्षा ढाई गुना अधिक था। यद्यपि समाज-सेवाओ पर प्रतिशत व्यय मे कमी की गई थी परन्तु निरपेक्ष दृष्टिकोण से व्यय की राशि मे काफी वृद्धि हुई थी।

यह आवश्यक है कि सार्वजनिक क्षेत्र मे ३,८०० करोड रुपये के इस प्रस्तावित निवेश पर विचार निजी क्षेत्र म निवश को ध्यान म रखते हुए किया जाये। आयोजना अवधि मे निजी क्षेत्र द्वारा निवेश का अनुमान लगभग २ ४०० करोड रुपये था (सगठित उद्योग व खानें, ५७५ करोड रु०, बागान, विद्युत सस्थान तथा

रेलवे को छोड़कर यातायात, १२५ करोड़ रु०; निर्माण कार्य १,००० करोड़ रु०; कृषि, ग्रामीण व लघु उद्योग धन्धे ३०० करोड रु० तथा अन्य सामान ४०० करोड़ रुपये) । प्रथम आयोजना अवधि में अर्थ-व्यवस्था में कुल निवेष का अनुमान लगभग ३,१०० करोड रुपये किया गया था । सार्वजनिक व निजी क्षेत्र के व्यय का अनुपात लगभग ५० : ५० आता था । द्वितीय आयोजना में दोनों क्षेत्रों के व्यय की कुल राशि का लक्ष्य ६,२०० करोड रुपये रखा गया था जिसमें सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों के व्यय का अनुपात क्रमशः ६१ : ३९ था ।

विकास के कार्यक्रम तथा उत्पादन के लक्ष्य भी निर्धारित किये गये थे । कृषि उत्पादन के लक्ष्यों को अपर्याप्त समझा गया था और बाद में इनमें संशोधन कर दिया गया था, परन्तु इन पर व्यय की राशि में कोई परिवर्तन नहीं किया गया था । यह अनुमान किया गया था कि कृषि उत्पादन में १८%, (संशोधित २७·१%) तथा खाद्य उत्पादन में १५% (संशोधित २२·८%) की वृद्धि हो जायेगी । कपास, ईख, तिलहन और जूट के उत्पादन में क्रमशः ३१, २२, २७ तथा २५ प्रतिशत वृद्धि होने का अनुमान था (संशोधित क्रमशः ५४·८, ३४·५, ३८·२ तथा ३७·५ प्रतिशत) । २ करोड १० लाख एकड अतिरिक्त भूमि पर सिंचाई की जानी थी । ३५ लाख एकड भूमि पर विकास और भूमि पुनरुद्धार के कार्यक्रम लागू किये जाने थे । ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति की सिफारिशों के अनुसार साख, बिक्री व उत्पादन की समायोजित योजना को कार्यान्वित किया जाना था । सामुदायिक विकास व राष्ट्रीय प्रसार कार्यक्रमों को आगे बढाया जाना था जिससे कि द्वितीय आयोजना समाप्त होने तक सम्पूर्ण देश इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत आ जाए । इस कार्य के लिए २०० करोड रुपये की व्यवस्था की गई थी । ग्राम पंचायतों की संख्या को बढ़ाकर २,४५,००० कर देने की योजना थी । विद्युत शक्ति का उत्पादन भी बढ़ाकर ३५ लाख किलोवाट किया जाना था । औद्योगिक विकास के सम्बन्ध में द्वितीय आयोजना में प्रथम आयोजना की अपेक्षा काफी अन्तर था । औद्योगिक विकास मे सार्वजनिक क्षेत्र का महत्वपूर्ण भाग था । खाद के दो कारखाने खोले जाने की व्यवस्था थी तथा सिन्दरी कारखाने की उत्पादन क्षमता को बढाने का सुझाव था । सार्वजनिक क्षेत्र में रूरकेला, भिलाई और दुर्गापुर मे तीन इस्पात कारखानों की स्थापना किये जाने की व्यवस्था थी । अन्य आयोजनाओं के भी विस्तार का सुझाव था । निजी क्षेत्र में भी अधिकतर निवेश मूल उद्योगों में किये जाने की आशा थी । निजी क्षेत्र में इस्पात, सीमेंट, रसायन, कपड़ा तथा अन्य उद्योगों का पर्याप्त विस्तार किया जाना था । ग्रामीण व कुटीर उद्योग धन्धों के विकासार्थ २०० करोड रुपये की व्यवस्था की गई थी । आयोजना अवधि मे देश में खनिज पदार्थों के ५८% बढाए जाने की आशा थी । यातायात तथा संचार के लिये १,३८५ करोड रुपये की व्यवस्था की गई थी, इसमें से ९०० करोड रुपये रेलवे के लिये थे । डाकघरों की संख्या ५५,००० से बढ़ाकर ७५,००० की जानी थी । सामाजिक सेवाओं पर ९४५ करोड़ रुपये व्यय करने का अनुमान था ।

१३ लाख मकानो के निर्माण के हेतु १२० करोड रुपये की व्यवस्था की गई थी। विस्थापित व्यक्तियों के पुनर्वास के लिये ६० करोड रुपयो की योजना थी। आयोजना मे राष्ट्रीय आय मे २५% तथा प्रति व्यक्ति आय मे १८% वृद्धि का अनुमान था। रोजगार के अवसरो मे भी वृद्धि करने के सुझाव दिये गये थे (देखिये परिशिष्ट 'ख')।

द्वितीय आयोजना काल मे केन्द्र व राज्य सरकारो के विकास कार्यक्रमो के लिए वित्तीय साधनो का विवेचन निम्न तालिका मे दिया गया है—

	(करोड रुपयो मे)
१ चालू राजस्व की आय से बचत	
(क) करो की वर्तमान (१९५५–५६) दरो के आधार पर	३५०
(ख) नये करो से अतिरिक्त आय	४५०
२ जनता से प्राप्त होने वाला ऋण	
(क) खुले बाजार के ऋण	७००
(ख) अल्प बचतें	५००
३ बजट के सूत्रो से अन्य आय	
(क) विकास कार्यक्रमो मे रेलो का योगदान	१५०
(ख) प्रोविडेन्ट फण्ड और इसी प्रकार के अन्य खातो से	२५०
४ विदेशो से मिलने की आशा	८००
५ घाटे के बजट द्वारा	१,२००
६ कमी–जो आन्तरिक साधनो को बढाने के लिये अतिरिक्त उपायो से पूरी की जाएगी	४००
योग	४,८००

इस प्रकार द्वितीय आयोजना देश के आर्थिक विकास के सतत् प्रयत्नो मे एक अग्रणी पग थी। इस कारण इस आयोजना के उद्देश्य भी लगभग प्रथम आयोजना जैसे ही थे। इसमे जो विकास के कार्यक्रम दिये गये थे वे प्रथम पचवर्षीय आयोजना के कार्यक्रमो पर ही आधारित थे और उन्ही का विस्तार करते थे।

तथापि, द्वितीय आयोजना प्रथम आयोजना से कई बातो मे भिन्न थी। यह अपेक्षाकृत बडी आयोजना थी इसमे निवेश व उत्पादन के ऊँचे लक्ष्य रखे गये थे जिनमे पर्याप्त मात्रा मे धन व्यय होना था। राष्ट्रीय आय मे २५% वृद्धि का लक्ष्य था, कुल व्यय का अनुमान प्रथम आयोजना की अपेक्षा लगभग दुगुना था, निवेश का विस्तार भी राष्ट्रीय आय का ७% से बढाकर ११% करना था, ६१% निवेश सार्वजनिक क्षेत्र मे किया जाना था जबकि प्रथम आयोजना मे यह प्रतिशत ५० से भी कम था। इसमे सापेक्षिक रूप से औद्योगिक विकास को (मुख्यतया भारी उद्योगो के विकास को) अधिक महत्व दिया गया था। इसमे रोजगार के स्तर को बढाने के निश्चित प्रयत्न किये गये थे। अन्तत आयोजना का उद्देश्य 'समाज के समाजवादी ढाँचे' की स्थापना करना था।

आयोजना पर काफी विचार-विमर्श हुआ तथा अनेक समस्यायें और विवाद उठाए गये। श्री के० सी० नियोगी (आयोजना आयोग के एक सदस्य) का कहना था कि आयोजना "अवास्तविक व अति महत्वाकांक्षी है तथा आयोजना का विशाल ढांचा दुर्बल नीव पर बनाया गया था।" श्री नियोगी का विचार था कि वित्तीय साधनों के अनुमान उचित प्रकार से सोच-समझकर नहीं बनाये गये थे वरन् इनके बनाने में ऐसा प्रतीत होता था कि जैसी जिसकी इच्छा थी वैसे बना दिये गये थे। उनका कहना था कि यदि आयोजना का वर्तमान आकार ही बनाये रखा जायेगा तब घाटे के बजट की व्यवस्था आयोजना अनुसार केवल १,२०० करोड रु० की ही न होगी वरन् इससे अधिक करनी पड़ेगी। वित्तीय साधनों में जो कमी थी वह भी अधिक हो सकती थी। राजस्व की आय में से जो बचत का अनुमान था उसमें भी निराशा हो सकती थी। उन्होंने यातायात तथा प्रायोजनाओं को चलाने के लिये योग्य व्यक्तियों के अभाव की ओर भी संकेत किया था। अनेक अन्य व्यक्तियों ने भी आयोजना के आकार की आलोचना की थी। विश्व बैंक मिशन भी आयोजना को 'कुछ अति महत्वाकांक्षी' मानता था। घाटे के बजट की व्यवस्था की भी काफी आलोचना की गई थी। यह भी सन्देह प्रकट किया गया था कि कुटीर उद्योग पर निर्भर रहने से उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ति हो सकेगी या नहीं। श्री बी० आर० शिनोनाय का कथन था कि कोई भी आयोजना उपलब्ध साधनों से बड़ी या अधिक नहीं हो सकती तथा जब तक बड़े पैमाने पर विदेशी सहायता नहीं मिलती अथवा सर्व-अधिकारवाद (Totalitarian) साधन नहीं अपनाये जाते, राष्ट्रीय आय में प्रतिवर्ष ५ प्रतिशत वृद्धि के प्रयत्न करने से मुद्रा-प्रसार ही बढ़ेगा और यह प्रयत्न असफल रहेगा। इन सब आलोचनाओं का विस्तार में अध्ययन करने की आवश्यकता है जिसके लिये लेखक तथा प्रो० माथुर की पुस्तक 'सार्वजनिक अर्थशास्त्र' को देखिये।

मई १९५९ में आयोजना आयोग ने द्वितीय आयोजना के मूल्यांकन और सफलताओं की सम्भावनाओं पर एक ज्ञापिका (Memorandum) निकाली। इसमें बताया गया था कि आयोजना के प्रथम दो वर्षों में आयोजना के लक्ष्यों की २५ प्रतिशत से भी कम पूर्ति हो पाई थी, और इन दो वर्षों में १,४६६ करोड रु० व्यय हुये थे। तीसरे वर्ष के लिये व्यय का अनुमान ९६० करोड रुपये था। तखमीनों के अनुसार द्वितीय आयोजना की अवधि में वित्तीय साधनों से ४,८०० करोड रु० के स्थान पर कुल ४,२६० करोड़ रु० ही प्राप्त हो सकते थे (देश के बजट सम्बन्धी स्रोतों से २,०२२ करोड रु०; बाह्य सहायता से १,०३८ करोड रु० तथा घाटे के बजट से १,२०० करोड रु०)। परन्तु आयोजना आयोग आयोजना के परिमाण को काटकर ४,५०० करोड रु० से कम करने को तैयार नहीं था। अतः राष्ट्रीय विकास परिषद् ने जून १९५८ में आयोजना की प्रायोजनाओं को दो श्रेणियों में विभक्त कर दिया: भाग 'क' तथा भाग 'ख'। भाग 'क' में ४,५०० करोड़ रु० कुल व्यय करने की व्यवस्था थी। इस भाग की आयोजनाओं को हर

हालत में कार्यान्वित करना था। इस भाग मे कृषि उत्पादन बढाने की योजनायें एव कार्यक्रम थे, तथा ऐसी आयोजनायें थी जिनको आयोजना का अन्तर्सार (Core) कहा जाता है, तथा ऐसी आयोजनायें थी जिनका विकास कार्य कुछ प्रगति कर चुका था, अथवा जिनको छोडना अब सम्भव नही था। भाग 'ख' में ३०० करोड रु० व्यय की व्यवस्था थी, इसमे शेष योजनायें थी। यह योजनायें उस स्थिति मे कार्यान्वित की जानी थी जब इनके लिये पर्याप्त आय तथा साधन उपलब्ध हो जायें। विभिन्न कार्यक्रमो पर व्यय के विनिधान मे भी कुछ परिवर्तन किये गये थे, क्योकि आयोजना के लिये जो भी आय के स्रोत उपलब्ध हुये वह आशा से बहुत कम थ। सशोधित विनिधान (Allocation) निम्न तालिका मे दिया गया है—

(करोड रुपयो मे)

	सशोधित विनिधान	प्रतिशत (सशोधित)	आयोजना का 'क' भाग (विनिधान)	प्रतिशत
१ कृषि और सामुदायिक विकास	५६८	११ ८	५१०	११ ३
२ सिचाई और शक्ति	८६०	१७ ९	८२०	१८ २
३ ग्रामीण और लघु उद्योग धन्धे	२००	४ २	१६०	३ ६
४ उद्योग और खनिज	८८०	१८ ४	७९०	१७ ५
५ यातायात और सचार	१,३४५	२८ ०	१,३४०	२९ ८
६ समाज सेवायें	८६३	१८ ०	८१०	११·०
७ विविध	८४	१ ७	७०	१·६
योग	४,८००	१०० ०	४,५००	१०० ०

४५,००० करोड रुपये का जो सशोधित व्यय था उसको निम्न प्रकार विभाजित किया गया था केन्द्र २,५१२ करोड रु०, राज्य १,९८८ करोड रुपये। नवम्बर १९५८ मे आयोजना पर कुल व्यय अन्तिम रूप से ४,५०० करोड रुपये निर्धारित कर दिया गया और 'ख' भाग के अन्तर्गत जो आयोजनायें थीं उन्हे समाप्त कर दिया गया।

जुलाई १९५९ मे आयोजना आयोग ने आयोजना के स्रोतो और व्यय की एक समीक्षा पुन प्रस्तुत की। स्रोतों का और आयोजना व्यय का अनुमान इसमे निम्न प्रकार था प्रथम तीन वर्षों (१९५६–५९) के लिये अनुमान—२,४६६ करोड रु०। अन्तिम दो वर्षों (१९५९–६१) के लिये अनुमान—१,७५४ करोड रु०। पांच वर्षों के लिये योग—४,२२० करोड रु०। इस प्रकार से ज्ञापिका की अपेक्षा समीक्षा में व्यय होने वाले धन का अनुमान कम था। परन्तु राष्ट्रीय विकास परिषद् ने निर्णय किया कि कुल व्यय ४,५०० करोड़ रु० से कम नही

होना चाहिए। तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में, जैसा कि अगले पृष्ठों में वर्णन किया गया है, द्वितीय आयोजना की अवधि में जो व्यय हुआ और जो वित्तीय साधन थे उनका उल्लेख भी है। कुल व्यय द्वितीय आयोजना अवधि में ४,६०० करोड़ रुपये का हुआ।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना ने हमारी शक्ति और हमारी कमजोरियों, दोनों को ही प्रकट कर दिया। शक्ति इस बात से प्रकट होती थी कि समस्त देश आयोजना के विचार के प्रति सजग हो गया। हम अनेक बाधाओं और कठिनाइयों के होते हुये भी आयोजनाओं की नाव को खेते रहे। परन्तु कठिनाइयाँ और बाधायें यह प्रकट करती है कि आयोजना के संगठन और विचारधारा में कुछ कमजोरियाँ थीं। प्रथम आयोजना की आलोचना जहाँ लोगों ने उसे "कृपण व सीमित" कह कर की, वहाँ द्वितीय आयोजना को "अत्यधिक महत्वाकांक्षी" बताया गया। योजना काल में अनेक सकट तथा दबाव उत्पन्न हुए और अर्थव्यवस्था भी गहरे आर्थिक पानी में डूब गई थी। खाद्य पदार्थ तथा आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि, विदेशी मुद्रा की घोर कमी, बढती हुई बेरोजगारी, बजट के स्रोतों की अपर्याप्तता, उद्यम करने की योग्यता की कमी, प्रशासनीय दोष, कम अनुमान, निष्कपटता और अनुशासन का अभाव, आदि अनेक कारण थे जिन्होंने अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न कर दी और जो भविष्य के लिये हमारे लिये चुनौती बन गये हैं।

तीसरी पंचवर्षीय आयोजना पर विचार-विमर्श

३१ मार्च १९६१ को द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना की अवधि समाप्त हो गई। तीसरी आयोजना के स्वरूप और आकार के विषय में पर्याप्त विचार-विमर्श और वाद-विवाद हुआ था। मार्च १९६० में राष्ट्रीय विकास परिषद् ने तीसरी आयोजना के सम्बन्ध में आयोजना आयोग के प्रस्ताव स्वीकृत किये। तीसरी आयोजना की प्रस्तावित रूप-रेखा ६ जुलाई १९६० को प्रकाशित हुई। अन्तिम रूप में तृतीय आयोजना ७ अगस्त १९६१ को संसद् के सम्मुख प्रस्तुत की गयी।

द्वितीय पचवर्षीय आयोजना में आगामी आयोजनाओं के लिये आय और निवेश की मात्रा के विषय में कुछ अनुमान लगाये गये थे। अग्र तालिका से यह बात स्पष्ट हो जायेगी—

द्वितीय पचवर्षीय आयोजना में निवेश की दर राष्ट्रीय आय का १९५५-५६ में ७% से बढकर १९६०-६१ में ११% हो जाने का अनुमान था। यह अनुमान लगाया गया था कि तीसरी पचवर्षीय आयोजना में ९,९०० करोड रुपये के निवेश की आवश्यकता होगी (१९५२-५३ की कीमतों के आधार पर), यदि यह मान लिया जाय कि राष्ट्रीय आय १७,२६० करोड़ तथा प्रति व्यक्ति आय ३६६ रुपये होगी।

मद	प्रथम आयोजना (१९५१—५६)	द्वितीय आयोजना (१९५६—६१)	तीसरी आयोजना (१९६१—६६)	चौथी आयोजना (१९६६—७१)	पाचवीं आयोजना (१९७१—७६)
१ अवधि की समाप्ति के समय राष्टीय आय (करोड रुपये मे)	१० ८००	१३ ४८०	१७,२६०	२१ ६८०	२७ २७०
२ कुल निबल निवेश (करोड रुपयो म)	३ १००	६ २००	९ ९००	१४ ८००	२० ७००
३ अवधि की समाप्ति पर राष्टीय आय का प्रतिशत निवेश	७ ३	१० ७	१३ ७	१६ ०	१७ ०
४ अवधि की समाप्ति पर जनसख्या (करोड म)	३८ ४	४० ८	४३ ४	४६ ५	५० ०
५ पूजी की बढ़ोत्तरी तथा निपज का अनुपात	१ ८८ १	२ ३० १	२ ६२ १	, २६ १	२ ७० १
६ अवधि की समाप्ति पर प्रति व्यक्ति आय (रुपयो म)	२८१	३३१	३९६	४६६	५४५

मई जुन १९५९ म उटकमण्ड म काँग्रेस दल की आयोजना उपसमिति द्वारा आयोजित किये गये समिनार म तीसरी आयोजना के प्रस्तावो पर विचार हुआ था। उपसमिति न एक रिपोट भी प्रकाशित की थी। काग्रसी आयोजना म कहा गया था कि तीसरी आयोजना समाजवादी ढग की समाज की स्थापना की दिशा मे एक महत्वपूर्ण पग होनी चाहिये और अथ व्यवस्था को एक स्व निर्मित आत्म निभर एव प्रगतिशील अथव्यवस्था म परिवर्तित किया जाना चाहिये। इसके अनुसार तृतीय आयोजना काल म १० ००० करोड रुपये का निवेश देश के साधनो से बाहर नही था और इस निवेश को सरकारी तथा गैर सरकारा क्षत्रो म ६६⅔ ३३⅓ क अनुपात म बाटा जाना चाहिय। भारतीय उद्योग और वाणिज्य चेम्बर की सगम ने तीसरी आयोजना की रूपरेखा' प्रकाशित की। सगम ने १० ००० करोड रु० के निवेश का और उसको सरकारी तथा गैर सरकारी क्षत्रो म ५५ ४५ के अनुपात मे बाटने का सुझाव दिया। बम्बई के भारतीय व्यापार चेम्बर ने भी तृतीय आयोजना की रूपरेखा प्रकाशित की। चेम्बर का विश्वास था कि तृतीय आयोजना अति महत्वाकाक्षी नही होनी चाहिये। उसने ७ ५०० करोड रु० के निवेश व्यय की सिफारिश की और बाद म यदि व्याव हारिक हो तो इस बढा कर ८ ५०० करोड रु० कर दिया जाये। माच १९६० मे राष्ट्रीय विकास परिषद् ने तृतीय आयोजना के लिये ९ ९५० करोड रुपये के व्यय

का अनुमोदन किया। परिषद् का सुझाव था कि तृतीय आयोजना का निर्माण इस आधार पर किया जाना चाहिये कि मूल्य-रेखा स्थिर रखी जा सके। तृतीय आयोजना की अवधि में केन्द्र द्वारा उगाहे जाने वाले १,१५० करोड़ रु० के अतिरिक्त करों के साथ-साथ राज्य भी इस बात पर सहमत हो गये कि वे ५०० करोड़ रु० तक के अतिरिक्त कर प्राप्त करेंगे। निजी क्षेत्र में कुल ४,००० करोड रुपये के निवेश का अनुमान लगाया गया था। तीसरी पचवर्षीय आयोजना की प्रस्तावित रूप-रेखा ६ जुलाई १९६० को समाचार-पत्रों को प्रकाशन के लिये दी गई। इसके अन्तर्गत देश की अर्थव्यवस्था मे १०,२०० करोड रु० का कुल निवेश—६,२०० करोड रु० सरकारी क्षेत्र में और ४,००० करोड रु० निजी अथवा गैर-सरकारी क्षेत्र मे—किये जाने का अनुमान था। सरकारी क्षेत्र मे ७,२५० करोड रुपये के व्यय की आयोजना थी (१,०५० करोड रुपये चालू व्यय के रूप में और ६,२०० करोड रु० निवेश के रूप में)। अन्तिम रिपोर्ट अगस्त १९६१ मे प्रकाशित की गई।

तृतीय पचवर्षीय आयोजना

भारत की तीसरी पंचवर्षीय आयोजना अन्तिम रूप मे श्री गुलजारीलाल नन्दा, आयोजना मन्त्री, द्वारा ७ अगस्त, १९६१ को संसद् के सम्मुख प्रस्तुत की गई। यह रिपोर्ट ७७० पृष्ठ की है। इस रिपोर्ट मे पचवर्षीय आयोजना की अवधि में आयोजना के विकास सम्बन्धी लक्ष्यों, नीतियों और कार्यक्रम का वर्णन है। यह १०,४०० करोड रुपये की आयोजना है और इसमें ६,३०० करोड रुपये के निवेश का अनुमान तो सरकारी क्षेत्र में तथा ४,१०० करोड रु० के निवेश का अनुमान निजी क्षेत्र में किया गया है। सरकारी क्षेत्र के लिये स्वीकृत विकास कार्यों के लिये कुल ८,००० करोड रुपयों की व्यवस्था की गई है परन्तु वित्तीय साधनों से व्यवस्था केवल ७,५०० करोड रुपयों की है। (निवेश ६,३०० करोड रुपये तथा चालू व्यय १,२०० करोड रुपये)। परन्तु, यह आशा प्रकट की गई है कि विकास की गति के साथ अतिरिक्त साधन उपलब्ध हो जायेंगे।

तीसरी पचवर्षीय आयोजना मे सामाजिक लक्ष्यों को अधिक यथार्थ रूप दिया गया है और यह आयोजना इन लक्ष्यों की सिद्धि की दशा मे बहुत बडा कदम है। इसमे पहली दो आयोजनाओं की सफलता और विफलता को ध्यान में रखा गया है और वे कार्य निर्धारित किये गये हैं जो अगले १५ वर्ष और उससे भी आगे के विकास को दृष्टि मे रखकर पूरे करने है।

भारत के विकास का बुनियादी उद्देश्य निश्चयतः यह होना चाहिये कि भारतीय जनता के लिये सुखी जीवन व्यतीत करने का अवसर प्रदान किया जाये। इस उद्देश्य की पूर्ति का विश्व मे शान्ति स्थापना के साथ गहरा सम्बन्ध है और वह इसी बात पर निर्भर है। इसलिए शान्ति की बहुत महत्ता है और राष्ट्रीय उन्नति के लिये शान्ति का होना बहुत आवश्यक है। परन्तु अल्प विकसित और

निर्धन देशो का होना ही विश्व शान्ति के लिये एक स्थाई खतरा है। यह सर्वत्र स्वीकार किया जा रहा है कि विश्व के कल्याण और शान्ति के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक देश से गरीबी, रोग और अज्ञान को मिटा दिया जाय जिससे एक स्वतन्त्र मानवता का निर्माण किया जा सके। भारत मे तत्कालिक समस्या यह है कि गरीबी के अभिशाप और उससे पैदा होने वाली सभी बुराइयो का सामना किया जाए। यह कार्य सामाजिक और आर्थिक प्रगति के द्वारा ही किया जा सकता है जिससे कि प्रौद्योगिक (Technological) दृष्टि से परिपक्व समाज का निर्माण किया जा सके और एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित की जा सके जिसमे सभी नागरिको को समान अवसर प्राप्त हो। इस प्रक्रिया के दौरान सामाजिक रिवाजो और सस्थाओ मे दूरगामी प्रयत्न करने होगे और पुरानी परम्परागत व्यवस्था के स्थान पर एक गतिशील समाज की स्थापना करनी होगी तथा आधुनिक प्रौद्योगिक विज्ञान का दृष्टिकोण और प्रयोग स्वीकार करना होगा। परिवर्तन का यह दोहरा पहलू धीरे धीरे आयोजना का आधार बन गया है।

सविधान मे बुनियादी उद्देश्यो का, जो 'राजनीति के निर्देशक सिद्धान्त' मे बताय गय है वर्णन करने के पश्चात् रिपोर्ट मे यह कहा गया है कि स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् स आयोजनाबद्ध विकास के सामने दो मुख्य उद्देश्य रहे है—, प्रजातन्त्रीय साधनो द्वारा शीघ्रता से बढ़न वाली और प्रौद्योगिकी दृष्टि से प्रगतिशील अर्थव्यवस्था की स्थापना करना तथा न्याय पर आधारित एक ऐसी सामाजिक/ व्यवस्था का निर्माण करना जिसमे प्रत्येक नागरिक को समान अवसर प्राप्त हो। एक ऐसे देश मे, जिसकी बहुत अधिक जनसख्या हो और जनसख्या भी ऐसी हो जो भूतकाल से बुरी तरह बधी हुई हो, परम्परागत समाज को बदलकर एक गतिशील समाज की स्थापना करना बहुत बडा कार्य है। चूँकि यह कार्य शान्तिमय और प्रजातन्त्रीय साधनो द्वारा तथा जनता की रजामन्दी से करना है इसलिये इसमे और भी अधिक कठिनाइयाँ है।

पचवर्षीय आयोजनाओ मे विकास के जिस स्वरूप की कल्पना की गई है उसका बुनियादी उद्देश्य यह है कि निरन्तर आर्थिक उन्नति की दृढ नीव रखी जाय, लाभदायक रोजगार के अवसरो मे निरन्तर वृद्धि की जाय और जनता के जीवन-स्तर तथा कार्य करने की परिस्थितियो मे सुधार किया जाय। निश्चिततः कृषि को सर्वाधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिये और इसलिये कृषि उत्पादन मे यथा-सम्भव ऊँचे स्तर तक वृद्धि करनी चाहिये। इसके साथ ही उद्योग की उन्नति और अधिक तेजी से करनी होगी तथा आर्थिक प्रगति की रफ्तार भी बढानी होगी, मुख्य रूप से भारी उद्योगो और मशीन बनाने वाले उद्योगो का विकास करना होगा, सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार करना होगा तथा एक विशाल और प्रगतिशील सहकारी क्षेत्र का निर्माण करना होगा। सार्वजनिक क्षेत्र पूर्णरूप से तथा तुलनात्मक दृष्टि से निजी क्षेत्र की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ेगा परन्तु निजी क्षेत्र के विकास और विस्तार के लिये भी एक बहुत बड़ा क्षेत्र है। किन्तु इसका ध्यान रखना

आवश्यक है कि निजी क्षेत्र राष्ट्रीय आयोजना के ढांचे में कार्य करे और निजी क्षेत्र में जो अवसर उपलब्ध हैं उनके परिणामस्वरूप थोड़े से व्यक्तियों अथवा व्यापारियों के हाथ में आर्थिक शक्ति का संचय न हो जाय। इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि आय और सम्पत्ति की विषमताओं को निरन्तर कम किया जाय।

भारत की पंचवर्षीय आयोजनाओं की बुनियादी धारणा यह है कि समाजवादी ढंग पर देश का विकास किया जायगा। यह विकास प्रजातन्त्र के द्वारा होगा और इसमें जनता व्यापक रूप से भाग लेगी। इस प्रकार के विकास द्वारा आर्थिक उन्नति शीघ्रता से होगी, रोजगार का विस्तार होगा तथा न्यायोचित वितरण होगा, आय और धन की विषमताओं में कमी होगी, आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण को रोका जायगा तथा एक ऐसे दृष्टिकोण और जीवन मूल्यों का निर्माण होगा जिससे एक ऐसे स्वतन्त्र समाज की स्थापना होगी जिसमें सब समान होंगे। ये महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं। इसलिये आर्थिक कार्यों का इस प्रकार संगठन किया जाना चाहिए कि उत्पादन और उन्नति तथा न्यायोचित वितरण की कसौटियां समान रूप से सही उतरें। समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के लिए आवश्यक है कि वह कुशल हो, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रति इसका दृष्टिकोण प्रगतिशील हो, इसमें प्रत्येक नागरिक को समान रूप से अवसर प्राप्त हो, जिसमें आर्थिक शक्ति का सकेन्द्रण न हो तथा एकाधिकार न बन सके तथा सामाजिक मूल्यों और प्रेरणाओं पर तथा समाज के समस्त वर्गों में सर्वमान्य हित और एक दूसरे के प्रति दायित्व की भावना विकसित करने पर सबसे अधिक बल दिया जाता हो।

समाज के समाजवादी संगठन की स्थापना निश्चय ही एक संचयी प्रक्रिया है। ऐसा समाज कई विभिन्न मार्गों से प्रगति करने पर ही स्थापित हो सकता है। इस उद्देश्य तक पहुँचने के लिये इस समय यह आवश्यक है कि हमारे अन्दर यह भावना हो कि हमें बहुत शीघ्र इस उद्देश्य तक पहुँचना है और अपनी गति बढानी है, क्योंकि आर्थिक और सामाजिक विकास में समय का व्यवधान पड जाने से नये दबाव पैदा हो जाते है। इस समय इस विषय पर ठीक-ठीक आंकड़े उपलब्ध नही हैं और इनके बिना निश्चित उपाय मालूम करना कठिन है। आयोजना आयोग द्वारा स्थापित एक विशेषज्ञ समिति इस बात की जाँच कर रही है कि पहली और दूसरी आयोजना की अवधि मे जीवन स्तर में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं। यह समिति यह भी अध्ययन कर रही है कि आय और धन के वितरण मे हाल ही मे क्या-क्या प्रवृत्तियां रही है और विशेष रूप से वह इस बात का पता लगा रही है कि किस सीमा तक आर्थिक प्रणाली के संचालन के परिणामस्वरूप सम्पत्ति और उत्पादन के साधनों का संकेन्द्रण हुआ है।

दीर्घकालीन आर्थिक विकास की दृष्टि से आयोजना मे कहा गया है कि विकास की तेज गति को बनाये रख सकने वाली आत्म-निर्भर अर्थ-व्यवस्था के

निर्माण के लिये मुख्य शर्तें ये हैं कि देश मे पूंजी का निर्माण पर्याप्त रूप से होता रहे, निर्यात के विकास के लिये यथासम्भव अधिकतम प्रयत्न किया जाय और अन्तरिम सकट काल मे विदेशी सहायता मिलती रहे। विकास की नीति का एक मूल्य लक्ष्य ऐसे हालात तैयार करना है जिनमें बाहरी सहायता पर निर्भरता शीघ्र से शीघ्र समाप्त हो जाय। भारतीय अर्थ व्यवस्था क विकास को मोटे तौर पर नजर मे रखकर यह अनुमान किया गया है कि १९६०–६१ के मूल्यो के आधार पर राष्ट्रीय आय दूसरी आयोजना के अन्त मे लगभग १४,५०० करोड रु० से बढकर तीसरी आयोजना के अन्त तक लगभग १९ ००० करोड रु०, चौथी आयोजना के अन्त तक लगभग २५,००० करोड रु० और पांचवी आयोजना के अन्त तक ३३,००० करोड रु० से ३४,००० करोड रु० तक हो जानी चाहिए। जनसख्या मे लगभग दो प्रतिशत की अनुमानित वार्षिक वृद्धि को ध्यान मे रखा जाय तो प्रति व्यक्ति आय १९६०–६१ के अन्त मे ,३० रु० से बढकर १९६६, १९७१ और १९७६ मे क्रमश ३८५ रु०, ४५० रु० और ५३० रु० हो जानी चाहिये। इसके लिये आवश्यक होगा कि राष्ट्रीय आय के अनुपात मे जो पूंजी का निवेश हो वह वर्तमान ११% से बढकर तीसरी आयोजना मे १४–१५ चौथी आयोजना मे १७-१८ तथा पाँचवी आयोजना में १९–२० प्रतिशत प्रतिवर्ष हो। दूसरे शब्दो मे, तीसरी आयोजना म लगाई जाने वाली लगभग १०,५०० कराड रु० की पूंजी की तुलना म चौथी आयाजना म १७ ००० करोड रु० और पानवी आयोजना मे २५,००० करोड रु० की पूजी लगनी चाहिये। घरेलू (आन्तरिक) बचत भी इसी अनुपात स वतमान ८ ५% स बढकर तीसरी, चौथी व पाँचवी आयोजनाओ के अन्त तक क्रमश ११ ५% १५ १६% तथा १८ १९% होनी चाहिये। पाँचवी आयोजना का अन्त तक अर्थ व्यवस्था इतनी मजबूत हो जायगी कि उसका बाह्य सहायता के बिना भी सन्तोषजनक गति स विकास होता रहेगा और केवल वही विदेशी पूंजी देश म आयगी जो सामान्य रूप से आती रहती है।

आयोजना के दस वर्ष—द्वितीय पचवर्षीय आयोजना की मार्च १९६१ मे समाप्ति के साथ साथ भारत के आर्थिक विकास की प्रथम दशी (Decade) की भी समाप्ति हुई। इस अवधि म सरकारी और निजी क्षेत्रो म जो आर्थिक व्यवस्था मे निवेश हुआ वह प्रथम पचवर्षीय आयोजना क प्रारम्भ मे ५०० करोड रु० प्रति वर्ष से बढकर प्रथम आयोजना क अन्त म ८५० करोड रु० हो गया था और दूसरी आयोजना क अन्त तक निवेश की यह राशि बढकर लगभग १,६०० करोड रु० हो गई थी। सरकारी क्षेत्र मे निवेश की राशि इस अवधि मे क्रमश २०० करोड रु०, ४५० करोड रु० तथा ८०० करोड रु० प्रतिवर्ष हो गई थी। वर्तमान मूल्यो के आधार पर पहली और दूसरी आयोजना मे १०,११० करोड रु० का निवेश हुआ जिसमे से ५ २१० करोड रु० सरकारी क्षेत्र मे और ४,९०० करोड रु० निजी क्षेत्र मे लगा। अग्राकित तालिका मे इसका विवरण दिया गया है —

प्रथम तथा द्वितीय आयोजना में व्यय तथा निवेश
(प्रचलित मूल्यों के आधार पर संशोधित आंकड़े)

(करोड़ रुपयों में)

क्षेत्र	प्रथम आयोजना (१९५१-५६)	द्वितीय आयोजना (१९५६-६१)	योग (१९५१-६१)
सरकारी क्षेत्र का व्यय	१,९६०	४,६००	६,५६०
सरकारी क्षेत्र का निवेश	१,५६०	३,६५०	५,२१०
निजी क्षेत्र का निवेश	१,८००	३,१००	४,९००
कुल निवेश	३,३६०	६,७५०	१०,११०

सरकारी क्षेत्र में व्यय का विनिधान विकास के मुख्य कार्यों में निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जायेगा—

व्यय का वितरण

(करोड़ रुपयों में)

	प्रथम आयोजना		द्वितीय आयोजना	
	व्यय	प्रतिशत	व्यय	प्रतिशत
कृषि और सामुदायिक विकास	२९१	१५	५३०	११
सिंचाई के बड़े और मध्यम कार्य (जिनमें बाढ़ नियन्त्रण भी सम्मिलित है)	३१०	१६	४२०	९
शक्ति (बिजली)	२६०	१३	४४५	१०
ग्राम उद्योग व छोटे उद्योग	४३	२	१७५	४
बड़े उद्योग और खनिज	७४	४	९००	२०
यातायात तथा संचार	५२३	२७	१,३००	२८
सामाजिक सेवायें तथा विविध	४५९	२३	८३०	१८
योग	१,९६०	१००	४,६००	१००

सरकारी क्षेत्र में दोनों आयोजनाओं में वित्तीय साधन निम्न प्रकार से प्राप्त हुये—

(करोड़ रुपयों में)

	प्रथम आयोजना		द्वितीय आयोजना	
	वास्तविक आंकड़े	प्रतिशत	अनुमानित आंकड़े	प्रतिशत
आयोजना का व्यय	१,९६०	१००	४,६००	१००
आन्तरिक स्रोतों द्वारा	१,७७२	९०	३,५१०	७६
विदेशी सहायता द्वारा	१८८	१०	१,०९०	२४

मद	इकाई	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९५०-५१ की अपेक्षा १९६०-६१ में हुई वृद्धि का प्रतिशत
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)
राष्ट्रीय आय (१९६०–६१ के मूल्यों के आधार पर)	करोड़ रु०	१०,२४०	१२,१३०	१४,५००	४२
जनसंख्या	करोड़ में	३६·१	३९·७	४३·८	२१
प्रति व्यक्ति आय (१९६०–६१ के मूल्यों के आधार पर)	रुपयों में	२८४	३०६	३३०	१६
कृषि उत्पादन सूचकांक	१९४९–५० =१००	९६	११७	१३५	४१
अनाज का उत्पादन	करोड़ टन	५·२२	६ ५८	७ ६०	४६
नत्रजन वाले उप-भुक्त रासायनिक खाद	हजार टन	५५	१०५	२३०	३१८
सिंचित क्षेत्र (निबल योग)	करोड़ एकड़	५·१५	५·६२	७·००	३६
सहकारी आन्दोलन (किसानों को दिया जाने वाला अग्रिम धन)	करोड़ रु०	२२·९	४९·६	२००·०	७७३
औद्योगिक उत्पादन सूचकांक	१९५०–५१ =१००	१००	१३९	१९४	९४
उत्पादन .					
इस्पात के ढोके	लाख टन	१४	१७	३५	१५०
एल्युमीनियम	हजार टन	३ ७	७ ३	१८·५	४००
मशीनी औजार	करोड़ रु०	०·३४	० ७८	५ ५	१,५१८
गन्धक का तेजाब	हजार टन	९९	१६४	३६३	२६७
पैट्रोलियम के उत्पादन	लाख टन	—	३६	५७	—
कपड़ा :					
मिल का कपड़ा	करोड़ गज	३७२	५१०·२	५१२·७	३८
खादी हाथ करघे तथा बिजली के करघे का कपड़ा	करोड़ गज	८९·७	१७७·३	२३४ ९	१६२
योग	करोड़ गज	४६१·७	६८७·५	७४७ ६	६२

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)
खनिज पदार्थ :					
निज लोहा	लाख टन	३२	४३	१०७	२३४
कोयला	लाख टन	३२३	३८४	५४६	६६
निर्यात	करोड़ रु०	६२४	६०६	६४५	३
बिजली-लगे हुए कारखानों की क्षमता	लाख किलोवाट	२३	३४	५७	१४८
रेलों द्वारा ढोया हुआ माल	लाख टन	६१५	१,१४०	१,५४०	६८
सड़कें :					
राष्ट्रीय राजपथ सहित पक्की सड़कें	हजार मील	९७·५	१२२·०	१४४·०	४८
सड़कों पर व्यापारिक वाहन	हजार अदद	११६	१६६	२१०	८१
जहाजरानी	लाख जी० आर० टी०	३·६	४·८	९·०	१३१
सामान्य शिक्षा :					
विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या	करोड़ों में	२·३५	३·१३	४·३५	८५
तकनीकी शिक्षा :					
इंजीनियरिंग और टैक्नोलोजी की डिग्री देने वाली संस्थाओं की क्षमता	हजारों में	४·१	५·६	१३·६	२३६
स्वास्थ्य :					
अस्पतालों में रोगी शय्यायें	हजारों में	११३	१२५	१८६	६५
डाक्टरों की संख्या (जो प्रैक्टिस करते हैं)	हजारों में	५६	६५	७०	२५
उपभोग स्तर :					
भोजन	प्रति व्यक्ति प्रतिदिन कैलोरी	१,८००	१,६५०	२,१००	१७
कपड़ा	प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष (गजों में)	९.२	१५·५	१५·५	६८

मुख्य लक्ष्य

मद	इकाई	१९६०–६१	१९६५–६६	१९६०–६१ की अपेक्षा १९६५–६६ में हुई वृद्धि का प्रतिशत
१	२	३	४	५
कृषि उत्पादन सूचकांक	१९४९–५० = १००	१३५	१७६	३०
अनाज का उत्पादन	करोड़ टन	७·६	१०·०	३२
नत्रजन वाले उपभुक्त रासायनिक खाद	हजार टन	२३०	१,०००	३३५
सिंचित क्षेत्र (निबल योग)	करोड़ एकड़	७·०	९·०	२९
सहकारी आन्दोलन :				
किसानों को दिया जाने वाला अग्रिम धन	करोड़ रु०	२००	५३०	१६५
औद्योगिक उत्पादन	सूचकांक १९५०–५१ = १००	१९४	३२९	७०
उत्पादन :				
इस्पात के ढोंके	लाख टन	३५	९२	१६३
अलमुनियम	हजार टन	१८·५	८०	३३२
मशीनी औजार	करोड़ रु०	५·५	३०·०	४४५
गन्धक का तेजाब	हजार टन	३६३	१,५००	३१३
पेट्रोलियम के उत्पादन	लाख टन	५७	९९	७०
कपड़ा :				
मिल का कपड़ा	करोड़ गज	५१२·७	५८०·०	१३
खादी, हाथ करघे तथा बिजली के करघे का कपड़ा	करोड़ गज	२३४·९	३५०·०	४९
योग	करोड़ गज	७४७·६	९३०·०	२४
खनिज पदार्थ				
खनिज लोहा	लाख टन	१०७	३००	१८०
कोयला	लाख टन	५४६	९७०	७६
निर्यात	करोड़ रु०	६४५	८५०	३२
बिजली लगे हुए कारखानों की क्षमता	लाख किलोवाट	५७	१२७	१२३
रेलों द्वारा ढोया हुआ माल	लाख टन	१,५४०	२,४५०	५९
सड़कों पर व्यापारिक वाहन	हजार अदद	२१०	३६५	७४
जहाज रानी	लाख जी. आर. टी.	९·०	१०·९	२१

१	२	३	४	५
सामान्य शिक्षा :				
विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या	करोड़ में	४·३५	६·३६	४७
तकनीकी शिक्षा :				
इन्जीनियरिंग और टैक्नोलोजी की डिग्री देने वाले संस्थानों की क्षमता	हजारों में	१३·९	१९ १	३७
स्वास्थ्य :				
अस्पताल में रोगी शय्यायें	हजारों में	१८६	२४०	२९
डाक्टरों की संख्या (जो प्रैक्टिस करते हैं)	हजारों में	७०	८१	१६
उपभोग स्तर				
भोजन	प्रति व्यक्ति प्रति दिन कैलोरी	२,१००	२,३००	१०
कपड़ा	प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष गजों में	१५ ५	१७ २	११

निम्नलिखित तालिका में यह दिखाया गया है कि ७,५०० करोड़ रुपये किन मुख्य-मुख्य मदों पर व्यय किये जायेंगे—

वित्तीय-व्यवस्था

(करोड़ रुपये)

मद	द्वितीय आयोजना		तृतीय आयोजना—वित्तीय व्यवस्था				
	कुल खर्च	प्रतिशत	राज्य	केन्द्र शासित प्रदेश	केन्द्र	कुल खर्च	प्रतिशत
१ कृषि तथा सामुदायिक विकास	५३०	११	९१९	२४	१२५	१,०६८	१४
२. सिंचाई के बड़े और मध्य कार्य	४२०	९	६३०	२	१८	६५०	९
३. शक्ति (बिजली)	४४५	१०	८८०	२३	१०९	१,०१२	१३
४. ग्राम उद्योग व छोटे उद्योग	१७५	४	१३७	४	१२३	२६४	४
५ बड़े उद्योग व खनिज	९००	२०	७०	—	१,४५०	१,५२०	२०
६. यातायात व संचार	१,३००	२८	२२६	३५	१,२२५	१,४८६	२०

७. सामाजिक सेवायें तथा विविध	८३०	१८	८६३	८७	३५०	१,३००	१७
कच्चा और अर्ध-तैयार माल (Inventories)	—	—	—	—	२००	२००	३
योग	४,६००	१००	३,७२५	१७५	३,६००	७,५००	१००

निम्नांकित तालिका में यह दिखाया गया है कि मुख्य-मुख्य मदों पर सरकारी और निजी क्षेत्रों में कितना निवेश होगा—

द्वितीय तथा तृतीय आयोजनाओं में निवेश

(करोड़ रुपये)

मद	द्वितीय आयोजना				तृतीय आयोजना			
	सरकारी क्षेत्र	निजी क्षेत्र	योग	प्रति-शत	सरकारी क्षेत्र	निजी क्षेत्र	योग	प्रति-शत
१. कृषि और सामुदायिक विकास	२१०	६२५	८३५	१२	६६०	८००	१,४६०	१४
२. सिंचाई के बड़े व मध्यम कार्य	४२०	*	४२०	६	६५०	*	६५०	६
३. शक्ति (बिजली)	४४५	४०	४८५	७	१,०१२	५०	१,०६२	१०
४. ग्राम उद्योग व छोटे उद्योग	९०	१७५	२६५	४	१५०	२७५	४२५	४
५. बड़े उद्योग व खनिज	८७०	६७५	१,५४५	२३	१,५२०	१,०५०	२,५७०	२५
६. यातायात व संचार	१,२७५	१३५	१,४१०	२१	१,४८६	२५०	१,७३६	१७
७. सामा० सेवायें तथा विविध	३४०	९५०	१,२९०	१९	६२२	१,०७५	१,६९७	१६
८. कच्चा और अर्ध-तैयार माल	—	५००	५००	८	२००	६००	८००	८
योग	३,६५०	३,१०० **	६,७५०	१००	६,३००	४,१०० **	१०,४००	१००

* कृषि और सामुदायिक विकास के अन्तर्गत सम्मिलित।

** इनमे सरकारी क्षेत्र से निजी क्षेत्र को हस्तान्तरित होने वाली पूंजी सम्मिलित नहीं है।

निजी क्षेत्र मे २०० करोड रुपया सरकारी क्षेत्र से हस्तान्तरित साधनो से उपलब्ध किये जायेंगे। इस प्रकार निजी क्षेत्र मे कुल निवेश ४,३०० करोड रुपये का होगा। नीचे दी गई तालिका मे निजी क्षेत्र मे कुल निवेश राशि के विभिन्न मदो पर होने वाला व्यय और दूसरी आयोजना अवधि के अनुमान (प्रारम्भिक तथा बाद मे संशोधित) दिये गये है—

निजी क्षेत्र मे कुल निवेश

(करोड रुपये)

	द्वितीय आयोजना		तीसरी
	प्रारम्भिक अनुमान	संशोधित अनुमान	आयोजना के अनुमान
१ कृषि (सिंचाई सहित)	२७५	६७५	८५०
२. शक्ति (बिजली)	४०	४०	५०
३. यातायात	८५	१३५	२५०
४ ग्राम उद्योग व छोटे उद्योग	१००	२२५	२२५
५ बड़े और मध्यम उद्योग तथा खनिज पदार्थ	५७५	७२५*	१,१००*
६ आवास और अन्य निर्माण कार्य	६२५	१,०००	१,१२५
७ कच्चा व अर्ध तैयार माल	४००	५००	६००
योग	२४००	३,२००	४,३००

तृतीय आयोजना मे जो भौतिक कार्यक्रम दिये गये है उन्हे पूरा करने के लिये सरकारी क्षेत्र मे कुल व्यय ८,००० करोड रुपए का होगा परन्तु उपलब्ध वित्तीय साधनो का अनुमान ७,५०० करोड रुपये है। इसमे से ६,३०० करोड रुपये तो पूँजी निवेश मे लगाये जायगे तथा १ २०० करोड रुपये चालू व्यय के लिये है जिनमे कर्मचारियो का वेतन, उपदान के रूप मे सहायता, आदि सम्मिलित है। वित्तीय व्यवस्था की तालिका मे जो ऊपर दी गई है, तीसरी आयोजना के व्यय के अन्तर्गत वह व्यय सम्मिलित नही किया गया है जो द्वितीय आयोजना के अन्त तक विकास सेवाओ तथा संस्थानो की स्थापना पर किया जा चुका था और जिसका अनुमान पाच वर्षो की अवधि मे ३ ००० करोड रुपये लगाया गया है। राज्यो का वित्तीय व्यय तालिका मे ३ ७२५ करोड रुपये दिखाया गया है परन्तु राज्यो की आयोजनाओ म जो भौतिक कार्यक्रम सम्मिलित किये गये है उनका कुल व्यय ३,८४७ करोड रुपये आता है। इस बात का विश्वास प्रकट किया गया है कि राज्यो की आय मे वृद्धि होने से राज्यो के लिये सम्भव हो जायगा कि वे भौतिक कार्यक्रमो के लिये पूर्णरूप से वित्तीय साधन जुटा सकें।

* इन आँकडो मे यन्त्रो को आधुनिक बनाने और बदलने के लिय किया जाने वाला निवेश सम्मिलित नही है जिसका अनुमान १५०–२०० करोड़ रुपया लगाया गया है।

राज्यों और केन्द्र शासित क्षेत्रों के लिये प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय आयोजनाओं में व्यय का ब्यौरा निम्नलिखित तालिका में दिया गया है :—

(करोड़ रुपये)

राज्य/केन्द्रीय शासित क्षेत्र	प्र०आयोजना (वास्तविक)	द्वि०आयोजना (अनुमान)	तृ०आयोजना (कार्यक्रम व्यय)
आन्ध्र प्रदेश	१०८	१७५	३०५
असम	२८	५१	१२०
बिहार	१०२	१६६	३३७
गुजरात	२२४(क)	१४३	२३५
जम्मू व कश्मीर	१३	२५	७५
केरल	४४	७६	१७०
मध्य प्रदेश	६४	१४५	३००
मद्रास	८५	१६७	२९०·९
महाराष्ट्र	(ख)	२०७	३९०
मैसूर	९४	१२२	२५०
उडीसा	८५	८५	१६०
पंजाब	१६३	१४८	२३१·४
राजस्थान	६७	९९	२३६
उत्तर प्रदेश	१६६	२२७	४९७
पश्चिमी बंगाल	१५४	१४५	२५०(ग)
कुल राज्य	१,४२७	१,९८१	३,८४७·३
अण्डमान व निकोबार द्वीप	२	३	९·८
दिल्ली	१०	१४	८१·८
हिमाचल प्रदेश	८	१६	२७·९
मणिपुर	२	६	१२·९
उत्तरी पहाड़ियाँ व त्वेनसांग क्षेत्र	—	४	७·१
त्रिपुरा	३	९	१६·३
लक्षदीव, अमीनदीवी और मिनिकाय द्वीप	—	०·४	१·०
उत्तरपूर्व सीमा एजेन्सी	४	५·६	७·१
पाण्डिचेरी	१	४	६·९
कुल संघीय क्षेत्र	३०	६२	१७४·८(घ)
समस्त भारत	१,४५७	२,०४३	४,०२२·१

[(क) अविभाजित बम्बई के लिए। (ख) गुजरात के सामने देखिये। (ग) अस्थाई। (घ) इनमे बिना विनिधान (Allocation) किये हुए ४ करोड़ रु० भी सम्मिलित हैं।]

१०,४०० करोड रु० के निवेश के लिये जो विदेशी मुद्रा की आवश्यकता पडेगी उसका अनुमान २,०३० करोड रु० से कुछ अधिक लगाया गया है। सरकारी और निजी क्षेत्र मे जो निवेश किया जायेगा उसकी राशि द्वितीय पचवर्षीय आयोजना के अन्तिम वर्ष मे १,६०० करोड रु० से बढकर तृतीय आयोजना के अन्तिम वर्ष मे २,६०० करोड रु० हो जाने की आशा है। सरकारी क्षेत्र में निवेश इस अवधि मे ८०० करोड रु० से बढकर १,७०० करोड रु० हो जायेगा। तीसरी आयोजना मे कुल निवेश लगभग ५४% बढाने का लक्ष्य है—७०% सरकारी क्षेत्र मे और लगभग ३०% निजी क्षेत्र मे। सरकारी क्षेत्र मे अनुपात अधिक भी हो सकता है क्योकि इस क्षेत्र मे भौतिक कार्यक्रम ८,००० करोड रु० से अधिक के हैं। भौतिक कार्यक्रमो का सकेत पीछे की तालिका मे दिया जा चुका है। तृतीय आयोजना मे जो कार्यक्रम रखे गये हैं उनसे १ करोड ४० लाख व्यक्तियो को रोजगार मिलने की आशा है। यदि तृतीय आयोजना के सारे कार्यक्रम समय से पूरे हो गये तो १९६०–६१ के मूल्यो के आधार पर हमारी राष्ट्रीय आय लगभग ३४ प्रतिशत बढ जायेगी। कृषि और उससे सम्बन्धित धन्धो का निबल उत्पादन लगभग २५ प्रतिशत खानो व कारखानो का लगभग ८२ प्रतिशत और अन्य क्षेत्रो का लगभग ३२ प्रतिशत बढ जाने का अनुमान है। १९६०–६१ के मूल्यो के आधार पर राष्ट्रीय आय का दूसरी आयोजना के अन्त तक लगभग १४,५०० करोड रु० का अनुमान था। तीसरी आयोजना के अन्त तक यह आय बढकर १९,००० करोड रु० हो जाने का अनुमान है। वर्तमान जनसख्या, जो ४३ ८ करोड है, के आधार पर प्रति व्यक्ति आय १९६०–६१ मे ३३० रु० आती है। तृतीय आयोजना के अन्त तक १९६५–६६ मे प्रति व्यक्ति आय ४८ ० करोड जनसख्या के आधार पर ३८५ रु० हो जाने का अनुमान है।

तृतीय पचवर्षीय आयोजना के कुछ लक्ष्य निम्नलिखित है —

मद	१९५०–५१	१९५५–५६	१९६०–६१	१९६५–६६
१ राष्ट्रीय आय १९६०–६१ के मूल्यो के आधार पर (करोड रु० मे)	१०,२४०	१२,१३०	१४,५००	१९,०००
२. जनसख्या (करोड मे)	३६ १	३९·७	४३ ८	४८ ०
३. प्रति व्यक्ति आय १९६०–६१ के मूल्यों के आधार पर (रु० मे)	२८४	३०६	३३०	३८५
४. कृषि उत्पादन का सूचकांक १९४९-५०=१००	९६	११७	१३५	१७६
५. अनाज का उत्पादन (करोड टन मे)	५·२२	६·५८	७·६०	१० ०
६. सिंचित क्षेत्र (निबल योग) (करोड एकड)	५ १५	५·६२	७ ००	९·००
७ औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक १९५० ५१=१००	१००	१३९	१९४	३२९

तीसरी पंचवर्षीय आयोजना की अवधि आत्म-निर्भर और स्वनिर्मित अर्थ-व्यवस्था के लिये आवश्यक गहन विकास की दशा का प्रथम चरण है। तीसरी आयोजना में विकास की सामान्य शैली अधिकांशतः दूसरी आयोजना की मूल नीतियों तथा अनुभवों के आधार पर ही बनी है। लेकिन फिर भी कुछ महत्वपूर्ण विषयों में इसमें विकास की समस्याओं को विस्तृत दृष्टिकोण से लिया गया है और इसके कार्यों की पूर्ति के लिये अधिकाधिक प्रयत्न और शीघ्र कार्य पूरा करने की भावना की आवश्यकता है। तीसरी आयोजना विशेषकर कृषि अर्थ-व्यवस्था मजबूत बनाने, उद्योग, बिजली व यातायात का विकास करने, औद्योगिक तथा प्रौद्योगिक परिवर्तनों को तीव्र करने, अवसरों की समानता और समाजवादी समाज की स्थापना की दशा मे प्रगति करने और रोजगार चाहने वाले समस्त व्यक्तियों को रोजगार देने का उद्देश्य लेकर चलेगी। तृतीय आयोजना में विकास के कार्यक्रम में कृषि का सर्वप्रथम स्थान है। कृषि उत्पादन में जहाँ तक भी सम्भव है अधिकतम सीमा तक वृद्धि की जायेगी तथा ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था मे उपलब्ध जनशक्ति का विकास-कार्यक्रमों के माध्यम से पूर्ण रूप से उपयोग किया जायेगा। खाद्य में आत्म-निर्भरता लाई जायेगी। औद्योगिक विकास के कार्यक्रम सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था तथा सरकारी और निजी दोनों क्षेत्रों की आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं को ध्यान में रखकर बनाये गये हैं। आयोजना मे छोटे उद्योगों को औद्योगिक ढाँचे का महत्व-पूर्ण अंग बनाने के प्रयास जारी रहेंगे। तीसरी आयोजना मे शिक्षा एवं अन्य सामाजिक सेवाओं के विकास पर भी काफी बल दिया गया है। विकास की संचयशील (Cumulative) दर ५% प्रतिवर्ष करने के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय का १४ प्रतिशत से भी अधिक निवेश मे लगाया जाय जबकि वर्तमान स्तर केवल ११·५ प्रतिशत है। इसका अर्थ यह होगा कि घरेलू बचत १९५९ में ८·५ प्रतिशत से बढाकर तृतीय आयोजना के अन्त तक ११·५ प्रतिशत की जाय। आयोजना में ऐसी मूल्य नीति अपनाई गई है जिसके अनुसार सापेक्ष मूल्यों का उतार-चढाव आयोजना के लक्ष्यों और प्राथमिकताओं के अनुसार रह सके और कम आय वाले समुदाय जिन आवश्यक वस्तुओं का उपभोग करते है उनके मूल्य अधिक न बढ सके। तीसरी आयोजना मे इस बात पर भी बल दिया गया है कि विभिन्न आयोजनाओं का कार्यक्रम, आयोजनाओं के एक दूसरे से सम्बन्ध को ध्यान मे रखकर, सोच विचार कर बनाया जाय।

तृतीय आयोजना की अन्य मुख्य बातें निम्नलिखित हैं—विभिन्न राज्य कृषि, शिक्षा, सामुदायिक विकास, सिंचाई तथा बिजली, ग्रामीण उद्योग तथा सामाजिक सेवाओं के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये मुख्य रूप से प्रयत्न करेंगे। केन्द्रीय सरकार बडे उद्योगों, खनिज तथा यातायात एवं संचार के विकास पर ध्यान केन्द्रित करेगी। रिपोर्ट मे दूसरी आयोजना की इस सिफारिश को फिर से दोहराया गया है कि चीनी कारखानों द्वारा चालू गन्ने के फार्मों तथा कुशलतापूर्वक संचालित फार्मों को जोत की अधिकतम सीमा से छूट मिलनी चाहिए क्योंकि इससे अधिक लाभ

होगा। सहकारी खेती के सम्बन्ध मे इस बात पर बल दिया है कि यह ऐच्छिक आन्दोलन है और किसी भी किसान को सहकारी कृषि समिति मे सम्मिलित होने के लिए बाध्य करने का कोई प्रश्न नही होना चाहिए। उद्योगो का विस्तार अप्रैल, १९५६ की औद्योगिक नीति प्रस्ताव के द्वारा निर्धारित होता रहेगा। साधनों का जो विनिधान (Allocation of Resources) किया गया है उसके अनुसार सरकारी क्षेत्र का विकास अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता से होगा और मुख्यत. यह भारी उद्योगो के क्षेत्र में होगा। संगठित निर्माण उद्योगो के निबल उत्पादन मे सरकारी क्षेत्र का भाग १९५६ मे केवल ⅛ था। आशा थी कि १९६५-६६ तक यह भाग बढकर ¼ हो जायगा। निजी क्षेत्र मे उद्योगों के विकास पर इस प्रकार से नियन्त्रण चालू रहेगा कि घरेलू बचत और बाह्य सहायता दोनो ही विकास के मूल क्षेत्रों मे लगते रहें तथा आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण केवल कुछ उद्योगपतियों के हाथ मे ही न हो सके। साधारण व्यक्ति के लिए जो भौतिक लाभ होंगे वे अधिक तथा विस्तृत सामाजिक सेवाओं के रूप मे होंगे। इन पर १ ३०० करोड रु०, अर्थात् आयोजना के विकास का १७%, सरकारी क्षेत्र मे खर्च किया जायगा। निःशुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का कार्यक्रम इस प्रकार विकसित किया जायगा कि उसके अन्तर्गत ६ से ११ वर्ष की आयु के ७६ ४% बच्चे आ जायेंगे। स्कूलो मे विद्यार्थियों की संख्या ४ ३५ करोड से बढकर ६ ३९ करोड हो जाएगी। रिपोर्ट में सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों म जनता के सहयोग, कार्य-क्रमो मे जनता के विस्तृत रूप मे भाग लेने पर तथा ऐच्छिक रूप से कार्य करने पर बहुत अधिक बल दिया गया है। आयोजना मे जो सन्देश था वह समस्त देश मे जनता के सम्मुख रखने की आवश्यकता थी।

आयोजना मे ५ वर्ष की अवधि के लिये महान् उद्देश्य और लक्ष्य निर्धारित किये गये है, परन्तु यह लक्ष्य केवल बीते समय की तुलना मे बडे हैं, राष्ट्र की आवश्यकताओं और देश की लक्ष्य प्राप्ति की सामर्थ्य की दृष्टि से नही। रिपोर्ट मे कहा गया है कि आयोजना के लिये भौतिक रूप मे पूंजी लगानी होती है किन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि मानव की समृद्धि के लिये शक्ति लगाई जाय। अपने समस्त भार और समस्याओ के साथ आज भारत के लोग एक ऐसे नये विश्व के सीमान्त पर रह रहे है जिसे बनाने मे भी वे सहायता कर रहे हैं। इस सीमान्त को पार करने के लिये उनमें साहस और उद्यम तथा सहन शक्ति की भावना और कठोर परिश्रम करने की शक्ति और भविष्य की कल्पना होनी चाहिये।

वित्तीय साधन

एक अर्ध विकसित अर्थव्यवस्था मे आयोजन की समस्या की एक मुख्य बात यह है कि विकास की पर्याप्त दर के लिये साधन किस प्रकार एकत्रित किए जायें। आयोजना मे ५ वर्षो की अवधि मे १०,४०० करोड रुपये के निवेश की व्यवस्था है। इसका अर्थ यह है कि हमे निवेश दर को बढाना होगा अर्थात् इस समय राष्ट्रीय आय का ११% निवेश मे लगता है, इसे बढाकर लगभग १४% करना

होगा। इस निवेश के लिये हमें कुछ सीमा तक विदेशी सहायता भी लेनी होगी। देश में बचत की दर को भी, वर्तमान समय की राष्ट्रीय आय के ८.५ प्रतिशत से तीसरी आयोजना के अन्त तक लगभग ११.५ करना होगा। सरकारी क्षेत्र में आयोजना के कार्यक्रमों पर ७,५०० करोड रुपये व्यय किये जायेंगे। इनके लिये जो वित्तीय व्यवस्था की गई है वह निम्नलिखित तालिका मे दी गई है --

वित्तीय साधन

(दूसरी और तीसरी आयोजना के अनुमान) (करोड रुपये)

मद	दूसरी आयोजना		तीसरी आयोजना		
	आरम्भिक अनुमान	वर्तमान अनुमान	योग	केन्द्र	राज्य
१. वर्तमान राजस्व से बची हुई राशि (अतिरिक्त करों को छोड़कर)	३५० (-)	५०	५५०	४१०	१४०
२. रेलों का अंशदान	१५०	१५०(क)	१००	१००	—
३. अन्य सरकारी उद्यमों से बेशी बचत	(ख)	(ख)	४५०	३००	१५०
४. जनता में ऋण (निबल)	७००	७८०(ग)	८००	४७५	३२५
५. अल्प बचतें (निबल)	५००	४००	६००	२१३	३८७
६. प्रोविडेण्ट फण्ड निबल	२५० (६–८ का संयुक्त)	१७०	२६५	१८३	८२
७. इस्पात समीकरण निधि (निबल)		३८	१०५	१०५	—
८. पूंजी खाते में जमा विविध राशि (गैर-आयोजना व्यय के अतिरिक्त)		२२	१७०	४२८(-)	२५८
९. १ से ८ तक का योग	[illegible]६५०	१,५१०	३,०४०	२,२१४	८२६
१०. अतिरिक्त कर जिनमे सरकारी उद्योगो में बेशी बचतों में वृद्धि करने के लिये किये जाने वाले उपाय सम्मिलित है	४५०(घ)	१,०५२	१,७१०	१,१००	६१०
११. विदेशी सहायता के रूप में बजट में दिखाई गई राशि	८००	१,०९० (ङ)	२,२००	२,२००	—
१२. घाटे की अर्थ-व्यवस्था	१,२००	९४८	५५०	५२४	२६
योग	४,८००	४,६००	७,५००	६,०३८	१,४६२

[(क) किराये और माल भाड़े मे हुई वृद्धि सहित। (ख) तालिका के १ से ८ तक की मदो में सम्मिलित। (ग) इसमे पी० एल० ४८० निधि मे से स्टेट बैंक द्वारा किये गये निवेश भी सम्मिलित हैं। (घ) इसके अतिरिक्त ४०० करोड़ रुपये का अन्तर था जो आंतरिक प्रयासों द्वारा पूरा किया जाना था। (ङ) इसमे रिजर्व बैंक द्वारा पी० एल० ४८० निधि में से १९६०–६१ मे विशेष ऋण-पत्रों में लगाई गई राशि भी सम्मिलित है।]

इस प्रकार अतिरिक्त कराधान का आयोजना के लिये वित्तीय साधन उपलब्ध करने मे मुख्य हाथ रहेगा। करो मे वृद्धि करके १,७१० करोड रुपये प्राप्त किये जायेंगे। दूसरी आयोजना मे अतिरिक्त कराधान से १,०५२ करोड रुपये प्राप्त किये गये थे। कर आय का राष्ट्रीय आय मे जो अनुपात है वह ८ ६ प्रतिशत से बढकर ११ ४ प्रतिशत हो जायेगा। करो मे जो आवश्यक वृद्धि की जायेगी वह अधिकतर अप्रत्यक्ष करो के अन्तर्गत होगी। आयोजना की सफलता के लिए देश क उपभोक्ताओ को यह बलिदान स्वीकार करना पडेगा।

जहाँ तक विदेशी सहायता के रूप म बजट मे दिखाई गई राशि का सम्बन्ध है इसके लिये २,२०० करोड रुपये का अनुमान है। वह ३,२०० करोड रु० की उस कुल विदेशी सहायता का भाग होगे जो आयोजना अवधि मे मिलने की आशा है। ३,२०० करोड रुपए की पूरी राशि सरकार की आय मे सम्मिलित नही होगी। इस कुल विदेशी सहायता मे से ५०० करोड रुपए तो उन ऋणो के भुगतान के लिये दे दिए जायेंगे जो तृतीय आयोजना अवधि मे परिपक्व हो जायेंगे। लगभग ३०० करोड रुपए प्रत्यक्ष रूप स निजी क्षेत्र मे लग जायेंगे क्योकि यह वह राशि होगी जिसके अन्तर्गत निजी विदेशी पूंजी का अन्तर्प्रवाह (Inflow) सम्मिलित होगा तथा एसे ऋण सम्मिलित होग जो विश्व बेंक, अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय निगम, अमरीकी आयात निर्यात बेंक आदि जैसी सस्थाओ से प्राप्त होगे। २०० करोड रुपये इस बात के लिए निकल सकते हैं कि अमरीकन प्राधिकारियो द्वारा उनको रुपयो के रूप म रखा जाये तथा पी० एल० ४८० के आयात मे से समीकरण भण्डार (Buffer Stock) मे वृद्धि की जाए। इस प्रकार बजट के लिए लगभग १,००० करोड रुपए की विदेशी सहायता उपलब्ध नही होगी और ३,२०० करोड रुपए की विदेशी सहायता मे से आयोजना के वित्तीय साधनो म विदेशी सहायता के अन्तर्गत २,२०० करोड रुपए ही रक्खे जा सकते हैं।

तृतीय आयोजना म विदेशी मुद्रा की जो आवश्यकता होगी उसका अनुमान भी ३,२०० करोड रुपया लगाया गया है जो निम्न प्रकार है—

	(करोड रुपए)
१ आयोजना की प्रायाजनाओ के लिय सामान तथा पूंजीगत माल का आयात	१,९००
२ पूंजीगत वस्तुओ के उत्पादन बढाने क लिए पुर्जे तथा सन्तुलित और मध्यवर्ती वस्तुयें इत्यादि	२००
३. परिपक्व ऋणो के भुगतान की पुन वित्त व्यवस्था	५००
४. अमरीका से अनाज का आयात	६००
योग	३,२००

देश में भुगतान सन्तुलन (Balance of Payment) सम्बन्धी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था और इन कठिनाइयो का आने वाले कुछ वर्षों तक हमें सामना करना पड़ेगा। द्वितीय आयोजना मे भुगतान सन्तुलन घाटा २,१०० करोड़ रुपये का था जबकि आयोजना मे इसका अनुमान केवल १,१०० करोड रु० लगाया गया था। तृतीय आयोजना विदेशी मुद्रा की एक ऐसी आरक्षित राशि से प्रारम्भ होती है जिस राशि पर अधिक भार डालना सम्भव नही होगा। इसलिए आगामी वर्षों में हमें निर्यात बढ़ाने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करने होंगे और उसके साथ ही विदेशी मुद्रा के विनिधान और बजट व्यवस्था के लिये कठोर नीति अपनानी पड़ेगी परन्तु सभी बातो को देखते हुए विदेशी सहायता मिलने के अच्छे लक्षण थे।

तृतीय आयोजना मे वित्तीय साधनों की स्थिति बहुत अच्छी नही कही जा सकती। परिस्थिति ऐसी है कि देश को अधिक से अधिक प्रयास तथा बलिदान करना पड़ेगा। लेकिन आयोजना मे यह भी कहा गया है कि वित्तीय साधनो की समस्या प्रशासनिक और संगठन सम्बन्धी कार्य-कुशलता की समस्या से सम्बद्ध है। तीसरी आयोजना की सफलता दो महत्त्वपूर्ण बातो पर निर्भर करती थी— (क) खाद्य पदार्थों और कच्चे माल का उत्पादन किस सीमा तक बढ़ाया जाता है तथा (ख) निर्यात आय बढाने के लिये किस जोर-शोर से प्रयत्न किये जाते है। इन दोनो दिशाओ मे सफलता प्राप्त होने पर वित्त सम्बन्धी वर्तमान कठिनाइयो पर अधिकाधिक सीमा तक काबू पाया जा सकता है।

मूल्य नीति (Price Policy)

विकासोन्मुख अर्थ-व्यवस्था में मूल्य नीति के दो मुख्य उद्देश्य होते है— (क) आयोजना मे जो लक्ष्य और प्राथमिकतायें निश्चित की गई है उसी के अनुसार सापेक्ष मूल्यो मे उतार-चढाव होता रहे और (ख) आवश्यक वस्तुओ के मूल्यो मे अधिक वृद्धि को रोका जाय। पहली आयोजना की अवधि मे फिर भी मूल्यों मे बहुत उतार-चढ़ाव होता रहा और दूसरी आयोजना की पूरी अवधि मे उनका रुख चढाव की ओर रहा। दूसरी आयोजना के पाच वर्षों की अवधि मे थोक मूल्यो के सामान्य सूचकाँक मे ३०% की वृद्धि हुई। खाद्य वस्तुओ के मूल्यो में २७% की, औद्योगिक कच्चे माल के मूल्यो मे ४५% की तथा निर्मित माल के मूल्यों मे २७% की वृद्धि हुई। द्वितीय आयोजना में थोक मूल्यो मे जो यह बढाव का रूख रहा उसका मुख्य कारण यह था कि जनसख्या मे वृद्धि तथा नकद आय में वृद्धि होने से माँग बहुत बढ गई थी। सम्भरण (Supply) मे भी अनेक बार कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जिसके कारण मूल्यो मे वृद्धि हुई। तृतीय आयोजना मे यह कहा गया है कि यद्यपि पिछले वर्षों मे देश मे कृषि और उद्योग दोनों की ही उत्पादन-शक्ति मे काफी बढ़ोत्तरी हुई है तथा तीसरी आयोजना में घाटे की वित्त-व्यवस्था बहुत सीमित स्तर पर की गई फिर भी मूल्यो का अधिक

ही नही वरन विक्षुब्ध (Disturbing) रूप से बढने की आशका बनी रहगी। प्रथम तो वर्षा का जसा सदा होता है कुछ भरोसा नही दूसरे उपभोग या खपत पर रोक लगाने के जो उपाय आयोजना म दिये गये हैं वे पूण रूप से कार गर हो जायगे इसमे सन्देह है और इसलिये सम्भव है कि आयोजना अवधि म कुछ समय तक माग अधिक रहे अर्थात वस्तुओ की कमी रहे तीसरे यद्यपि आयोजना म यह ध्यान रखा गया कि विभिन्न क्षत्रो मे विकास सन्तुलित रूप स होता रहे फिर भी यह सम्भावना रहती है कि किसी क्षेत्र मे विकास अधिक हो और किसी मे कम। उपरोक्त कारणो से तीसरी आयोजना मे मूल्यो पर विशेषतया आवश्यक चीजो के मूल्यो पर कडी नजर रखनी होगी और कठिनाई उपस्थित होने से पहले ही उपाय सोच कर तयार रखने होगे। परन्तु आयोजना मे यह भी कहा गया कि विकास की अवधि म मूल्यो का बिल्कुल स्थिर रखना सम्भव नही है। कुछ चीजो का मूल्य आवश्यक रूप से बढ जाता है फिर भी हम यह प्रयत्न करना चाहिये कि मूल आव श्यकता की वस्तुओ का मूल्य एक विशेष सीमा स ऊपर न चढे और न ही बहुत घटे। एसी वस्तुओ का मूल्य जो कम आवश्यक है और जिन्हे आराम या विला सिता की वस्तुए कहा जा सकता है यदि बढता भी है ता हम इस मूल्य वद्धि का सहन करना पडगा। मूल्य नियन्त्रण की तक्नीक इस प्रकार प्रत्येक वस्तु के लिये भिन्न होगी।

मूल्य नीति के अ तगत वित्त और अथ नीति भी आ जाती है। वित्त नीति का उद्देश्य लोगो के हाथ से बेशी रुपये को खीचना होना चाहिए जिसस चीजो की माँग उपलब्ध वस्तुओ के अनुपात से अधिक न बढे तथा बचत म वद्धि हो और बचत और निवेश म समानता की वाछनीय दशाये आ जाय। सरकारी उद्यम बचत बढान म एक महत्वपूर्ण काय कर सकते हैं इसलिए उन्हे इस ढग स काय करना चाहिये जिसस मुनाफा हो और कुशलता का स्तर भी ऊचा रहे। अर्थनीति भी वित्त नीति के साथ साथ चलनी चाहिये। जसे वित्त नीति का उद्देश्य यह है कि सरकार एसी कायवाही करे जिसस लोगो के हाथ स बेशी रुपया खिच जाय, वैसे ही अथ नीति का उद्देश्य बको के लेन देन को नियमित करना है तथा सट्टेबाजी को रोकना है और कच्चे तथा अध तयार माल का अत्यधिक सचय न होता रहे यह देखना है। व्यापार नीति द्वारा भी देश म आवश्यक वस्तुओ की कमी को रोका जा सकता है। परन्तु इस नीति का सीमित रूप स ही प्रभाव पड सकता है क्योकि अभी कई वर्षो तक हमे आयात को घटाना और निर्यात को बढाना है और इस कारण देश म मूल्यो का रुख तेजी की ओर ही रहेगा।

केवल वित्त और अथ नीतियो द्वारा पर्याप्त रूप स मूल्यो का नियन्त्रण नही होता और कम आमदनी तथा बधी आमदनी वाले लोगो को मूल्यो के बढने से जो कष्ट होता है उसे रोका नही जा सकता। इसलिये कुछ क्षत्रो म प्रत्यक्ष नियन्त्रण और भौतिक रूप स विनिधान करना अर्थात परिमाण नियत करना आवश्यक हो जाता है। इसलिए तृतीय आयोजना म आवश्यक वस्तुओ के उत्पादन बढान के

लिए लक्ष्य निर्धारित किये गये है और मुख्य कार्य इन लक्ष्यों को पूरा करने का है। सरकार को इस समय भी अनेक वस्तुओ के उत्पादन की मात्रा निर्धारित करने और मूल्यो मे नियन्त्रण प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त है। उदाहरणतया इस्पात, सीमेंट, कपास, चीनी, कोयला, रसायन, जूट आदि। जिन वस्तुओं पर उत्पादन-कर लग सकता है उनके मूल्यो को नियन्त्रित करने के लिए भी सरकार समय-समय पर उत्पादन कर की दरों मे परिवर्तन कर सकती है। एक और समस्या यह है कि इस बात का ध्यान रखना है कि अनाज पैदा करने वाले किसान को उचित दाम मिले और साथ ही जन-साधारण को अनाज का अत्यधिक दाम न देना पड़े। इसलिए अनाज के मूल्यों का उचित स्तर पर स्थिर रहना बहुत महत्वपूर्ण है। मूल्यो को स्थिर रखने के लिए अनाज का सुरक्षित भण्डार रखना होगा और बड़े पैमाने पर क्रय-विक्रय करना होगा। सरकार को अपने अधीन अनाज की खत्तियों या गोदामो की सख्या तेजी से बढानी होगी। तृतीय आयोजना की पूरी अवधि मे यदि अनाज का दाम गिरने लगेगा तो सरकार खरीद करेगी और यदि मूल्य बढने लगेगा तो अपने भण्डार से अनाज बेचना शुरू कर देगी। इस प्रकार समीकरण भण्डार (Buffer Stock) तथा अनाज के खुले व्यापार (Open Market Operation) द्वारा विशिष्ट क्षेत्रो में असन्तुलन दूर किया जा सकेगा। आयोजना में यह भी व्यवस्था थी कि सरकार अनाज की खरीद और बिक्री के लिये सहकारी और सरकारी दोनो प्रकार का सगठन स्थापित करे, ताकि मूल्यो के उतार-चढाव, मुनाफाखोरी और अनुचित सचय को रोका जा सके।

रोजगार और जन-शक्ति के सम्बन्ध मे तृतीय आयोजना के उद्देश्य और सुझाव परिशिष्ट 'ख' मे 'बेरोजगारी की समस्या' के अन्तर्गत दिये है। आयोजना के अनुसार भारत मे नियोजन का मुख्य उद्देश्य रोजगार दिलाना था परन्तु आगामी पाँच वर्षो मे पर्याप्त रोजगार की सुविधायें दिलाना अत्यन्त कठिन कार्य मालूम होता था। द्वितीय आयोजना के अन्त मे पिछली बेरोजगारी का अनुमान ९० लाख था। तृतीय आयोजना अवधि में लगभग एक करोड ७० लाख कार्य-योग्य मनुष्य और बढ जायेंगे परन्तु इनको देखते हुए तृतीय आयोजना अवधि मे अधिक रोजगार की सुविधायें केवल १ करोड ४० लाख व्यक्तियों को प्रदान करने का कार्यक्रम है। इनमे से १ करोड ५ लाख व्यक्तियों को कृषि के अतिरिक्त और ३५ लाख व्यक्तियो को कृषि मे रोजगार प्रदान होगे। इस प्रकार तृतीय आयोजना के अन्त तक देश में बेरोजगारी की संख्या १ करोड २० लाख होगी।

तृतीय पचवर्षीय आयोजना से संविधान के सामाजिक लक्ष्यों को अधिक यथार्थ रूप दिया गया है और वास्तविक दृष्टि से यह आयोजना इन लक्ष्यों की सिद्धि की दिशा मे बहुत महत्वपूर्ण पग है। इसमे प्रथम दो आयोजनाओं की सफलता तथा विफलता को ध्यान में रखा गया है और वह कार्य निर्धारित किये गये है जो आगामी पाँच वर्षो मे तथा उससे भी आगे के विकास को दृष्टि में रख कर पूर्ण करने हैं, परन्तु कुछ लोगो के विचारानुसार द्वितीय आयोजना की भाँति

तृतीय आयोजना भी बहुत महत्वाकांक्षी है तथा इसमे कार्यक्रमो को पूर्ण करना कठिन होगा। इसमे भी सन्देह है कि घाटे की वित्त व्यवस्था केवल ५५० करोड रु० तक सीमित रहेगी। बहुत अधिक सीमा तक विदेशी सहायता पर निर्भर रहना भी वांछनीय नही था। विदेशी सहायता मे एक बडा दोष यह उत्पन्न हो जाता है कि योजनाओ के लागू करने मे बहुत अधिक व्यय कर दिया जाता है और अपव्यय होता है। आयोजना म बेरोजगारी की समस्या का समाधान नही किया गया और प्रत्येक आयोजना के अन्त मे जो बेरोजगारी की बडी सख्या रह जाती है वह बहुत गम्भीर परिस्थिति है।

तृतीय आयोजना की प्रगति

तृतीय आयोजना, जो कि ३१ मार्च, १९६६ को समाप्त हुई, पूरे पाँच वर्ष तक बडी उलट-फेर तथा परिवर्तित परिस्थितियो के बीच से गुजरती रही। आयोजना का केवल डेढ वर्ष ही बीता था कि अक्तूबर, १९६२ मे चीन ने भारत पर विशाल आक्रमण कर दिया और यद्यपि लडाई केवल एक महीने ही चली, किन्तु चीन की ओर से दी जाने वाली धमकी एक आये दिन की चीज़ बन गई। परिणामस्वरूप प्रतिरक्षा की आवश्यकताओ को भी आयोजना की आवश्यकताओ मे सम्मिलित करना पडा। आयोजना काल के अन्त मे, अगस्त, १९६५ मे जम्मू कश्मीर म पाकिस्तानी घुसपैठियो न घुसना आरम्भ कर दिया जिसने अन्त मे बडे पैमाने के सशस्त्र पाकिस्तानी आक्रमण का रूप ले लिया। इस प्रकार, प्रतिरक्षा व्यवस्था को मजबूत बनाने की आवश्यकता और भी तीव्रता स अनुभव की जाने लगी। तृतीय आयोजना के प्रारम्भ से ही मौसम बडा प्रतिकूल रहा। आयोजना के प्रथम तीन वर्षों मे वर्षा पर्याप्त तथा समयानुकूल नही हुई जिससे कृषि उत्पादन पर गम्भीर प्रतिकूल प्रभाव पडा। आयोजना के चौथे वर्ष (१९६४–६५) मे मौसम अच्छा रहा और फसल भी अच्छी हुई, परन्तु आयोजना के अन्तिम वर्ष १९६५-६६ मे भारी सूखा पडा जिसके कारण अर्थ व्यवस्था पर अत्यधिक प्रतिकूल दबाव पडा।

कृषि उत्पादन का सूचकांक (१९४९–५०=१००), जो कि द्वितीय आयोजना के अन्तिम वर्ष मे १३९ ७ था, तृतीय आयोजना के प्रथम वर्ष १९६१–६२ मे कुछ बढकर १४१ ४ हो गया, परन्तु १९६२–६३ मे घटकर १३७ २ रह गया। १९६३–६४ म इसम फिर थोडी-सी वृद्धि हुई और यह १४२ ६ हो गया। १९६४–६५ मे इसमे पिछले वर्ष के मुकाबले १० प्रतिशत की वृद्धि हुई और यह बढकर १५७ ६ हो गया। परन्तु आयोजना के अन्तिम वर्ष मे देश भर मे सूखा पडने के कारण कृषि उत्पादन मे १५ प्रतिशत की कमी हो गई। खाद्यान्न का उत्पादन, जो कि द्वितीय आयोजना के अन्तिम वर्ष मे ८ १ करोड टन तक पहुँच गया था, तृतीय आयोजना के प्रथम वर्ष १९६१–६२ म उसी स्तर पर बना रहा और अगले दो वर्षों मे तो और भी गिर कर क्रमश ७ ८४ तथा ७ ९४ करोड टन रह गया। सन् १९६४–६५ मे, जबकि मानसून अनुकूल रहा, यह बढकर ८·९०

करोड टन हो गया, परन्तु आयोजना के अन्तिम वर्ष १९६५–६६ मे फिर इसमे तेजी से गिरावट आई और यह घटकर ७२·० करोड टन रह गया। तृतीय आयोजना मे खाद्यान्न उत्पादन का लक्ष्य प्रारम्भ मे १० करोड टन रखा गया था, किन्तु बाद मे संशोधित करके ९·२० करोड टन रखा गया था। परन्तु इसके बावजूद यह संशोधित लक्ष्य भी पूरा न हो सका। इस प्रकार, सम्पूर्ण आयोजना की अवधि मे देश की खाद्य अर्थ-व्यवस्था को गम्भीर संकट के बीच से गुजरना पडा। देशी खाद्यान्न उत्पादन की कमी पूरी करने के लिये बड़े पैमाने पर आयात करना पडा। उदाहरण के लिए, १९६५ मे, कुल उपलब्ध अनाज मे १०·३ प्रतिशत भाग आयात का था और गेहूँ के मामले में यह प्रतिशत काफी ऊँचा अर्थात् ४०·६ था।

औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र मे, तृतीय आयोजना की अवधि के लिए उत्पादन वृद्धि की औसत वार्षिक दर ११ प्रतिशत निर्धारित की गई थी। किन्तु औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि की यह दर किसी भी वर्ष प्राप्त न हो सकी। आयोजना के प्रथम चार वर्षों मे प्रतिशत वृद्धि क्रमश. ७·३, ७·७, ८·५ और ७ थी। अन्तिम वर्ष में इसमे और भी कमी हुई, विशेष रूप से वर्ष के उत्तरार्ध मे –जबकि अप्रैल से सितम्बर तक की छमाही की अवधि मे पिछले वर्ष की इसी अवधि के मुकाबले औद्योगिक उत्पादन ७ ३ प्रतिशत अधिक था, किन्तु वर्ष के उत्तरार्ध मे उत्पादन मे बहुत कम वृद्धि हुई; परिणामस्वरूप वर्ष मे कुल मिलाकर वृद्धि की दर केवल ३·८ प्रतिशत ही रही। औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि की धीमी दर के लिये जो कारण उत्तरदायी थे उनमे कृषि उत्पादन मे वृद्धि की धीमी दर तथा विदेशी विनिमय की कठिन परिस्थिति मुख्य थे जिसके कारण देशी तथा आयातित कच्चे माल आदि की कमी रही। सूखा पडने के कारण सन् १९६५–६६ मे विद्युत् शक्ति की कमी का भी औद्योगिक उत्पादन पर प्रभाव पडा। ऐसे उद्योगो मे फिर भी प्रगति अच्छी थी जो कि मुख्यत कृषिद्धत कच्चे माल अथवा आयातित माल पर निर्भर नही थे। उदाहरण के लिये, आयोजना के अन्तिम वर्ष तक में भी, निर्मित इस्पात, सीमेंट, एल्यूमिनियम तथा कुछ रसायनो के उत्पादन में अच्छी वृद्धि हुई।

तृतीय आयोजना की अवधि मे कीमतो में लगातार बढने की प्रवृत्ति पाई गई। थोक कीमतों का सूचकांक (१९५२–५३=१००), जो कि पहले ही प्रथम आयोजना के अन्त में ९३ से बढकर द्वितीय आयोजना के अन्त मे १२८ हो गया था, तृतीय आयोजना के पहले दो वर्षों में न्यूनाधिक रूप मे स्थिर रहा, परन्तु १९६२–६४ मे बढकर १३५ हो गया। सन् १९६४–६५ मे कीमतें तेजी से बढी और सूचकांक भी बढकर १५३ हो गया। १९६५–६६ के अन्त में यह १७४ तक पहुँच गया। इस प्रकार तृतीय आयोजना की अवधि में मूल्य-स्तर मे ३६·४ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस वृद्धि मे खाद्य पदार्थो ने भी महत्वपूर्ण भाग अदा किया। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि खाद्य पदार्थो के सूचकांक में भी आयोजना-काल में ऐसी ही वृद्धि हुई। यह सूचकांक १९६१-६२ मे १२० था और बढ़कर १९६४-६५

मे १६० तथा १९६५–६६ के अन्त म १७६ हो गया। तुलनात्मक दृष्टि से तैयार विनिर्मित पदार्थों के सूचकांक मे कुछ कम वृद्धि हुई। यह सूचकांक आयोजना के प्रारम्भ मे १२५ से बढ़कर १९६४–६५ मे १३५ तथा १९६५–६६ के अन्त मे १५३ हो गया। कीमतो की वृद्धि का मुख्य कारण यह था कि एक और खाद्यान्न का उत्पादन स्थिर रहा और दूसरी ओर खाद्यान्न की माँग बराबर बढ़ती रही। खाद्यान्न की माग बढ़ने के लिये कई कारण उत्तरदायी थे। कुछ कारण तो दीर्घकालीन प्रकृति के थे, जैसे—जनसंख्या की वृद्धि और जनसंख्या का शहरीकरण। इसके अतिरिक्त कुछ कारण अल्पकालीन प्रकृति के थे, जैसे कि लोगो की प्राथमिक आय मे वृद्धि होना। एक कारण यह भी था कि व्यापारियो ने सट्टेबाजी एव मुनाफाखोरी की दृष्टि से माल का स्टाक कर लिया था और बड़े किसानो मे माल को रोकने की शक्ति बढ़ गई थी। इस अन्तिम तथ्य का परिणाम यह हुआ कि मुख्य-मुख्य खाद्यान्नो की आमद बाजार मे कम हो गई थी। विदेशी मुद्रा की कमी के कारण भी कुछ ऐसे किस्म के औद्योगिक पदार्थों की कीमतों मे वृद्धि हुई जो कि आयात किये गय कच्चे माल पर निर्भर थे, और आयोजना के अन्तिम भाग म विशेष रूप स ऐसा हुआ। थोक कीमतो की इस वृद्धि का अनुसरण फुटकर कीमतो ने भी किया। श्रमिक वर्ग के अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य सूचकाक (१९४९=१००) मे मार्च, १९६५ व मार्च, १९६६ क बीच ६ ४ प्रतिशत की वृद्धि हुई। १९६३–६४ मे भी यह प्रतिशत ६ ४ ही रहा, किन्तु १९६४–६५ मे यह बढ़कर ११ २ हो गया था। देश भर म कीमतो मे होने वाली सामान्य वृद्धि के अतिरिक्त, विभिन्न वस्तुओ की कमी व कमी वाल क्षेत्रो मे भी कीमतो मे भारी असमानतायें बनी रहीं। बढ़ती हुई कीमतो को रोकने के लिए जो पग उठाये गये उनमे से कुछ इस प्रकार थ कृषि उत्पादन बढ़ाने क लिये रासायनिक खाद जैसी विभिन्न कृषि सामग्रियो की पूर्ति मे वृद्धि करना, खाद्य पदार्थों का बड़े पैमाने पर आयात करना, रासायनिक खाद का आयात करना और किसानो क लिये पारिश्रमिक मूल्यो की व्यवस्था करना, तथा वितरण के क्षेत्र मे, कुछ खाद्यान्नो के सम्बन्ध मे क्षेत्रीय प्रणाली को लागू करना, भारतीय खाद्य निगम की स्थापना करना (जो कि उत्पादको से खरीद करने की तथा समीकरण भण्डार बनाने की एक प्रमुख एजेन्सी होगी), अनौपचारिक राशनिंग पद्धति के साथ ही साथ उचित मूल्य की दूकानो की विस्तृत पैमाने पर स्थापना करना और कलकत्ता व दिल्ली जैसे स्थानों पर कानूनी राशनिंग लागू करना। कुछ औद्योगिक पदार्थों के सम्बन्ध मे नियन्त्रण का युक्तिकरण (rationalisation) करने का भी प्रयास किया गया। उदाहरण के लिए, जनवरी, १९६६ मे सीमेंट पर से मूल्य व वितरण सम्बन्धी नियन्त्रण हटा लिये गय थे।

तृतीय आयोजना की अवधि मे सरकारी क्षेत्र का कुल व्यय ८,६३० करोड़ रुपये रहा। प्रतिरक्षा तथा अन्य योजनेतर व्यय की वृद्धि क कारण सम्पूर्ण आयोजना काल मे चालू राजस्व के शेष शीर्षक मे ४७० करोड रु० का घाटा था।

किन्तु अतिरिक्त कराधान शीर्षक के अन्तर्गत, ११०० करोड़ रु० के लक्ष्य के विरुद्ध लगभग २,२७० करोड़ रु० की केन्द्रीय प्राप्तियों का अनुमान था, जब कि राज्यों ने अपना ६१० करोड रु० का लक्ष्य ही पूरा किया था। इस प्रकार इस शीर्षक के अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्यों को कुल २,८८० करोड रु० की प्राप्तियाँ हुई थीं। अल्प बचतों के क्षेत्र में, ५८५ करोड रुपये एकत्र हुए जब कि आयोजना का लक्ष्य ६०० करोड रु० का था। बाजार ऋण के रूप में वसूल की जाने वाली धन राशि की मात्रा ८०० करोड रु० के लक्ष्य से भी बढकर ६१५ करोड रुपये हो गई थी। रेलों ने ८० करोड रु० का अंशदान दिया और अन्य उद्यमों ने ३६१ करोड रु० का (जबकि लक्ष्य ४५० करोड रु० का था। बढते हुये प्रतिरक्षा व्यय के कारण घाटे की वित्त व्यवस्था को ५५० करोड रु० की सीमा मे बांध कर न रखा जा सका और आयोजना की अवधि मे १,१५० करोड रु० की घाटे की वित्त-व्यवस्था का आश्रय लेना पडा।

सम्पूर्ण आयोजना की अवधि मे विदेशी विनिमय की स्थिति कठिन ही बनी रही। द्वितीय आयोजना की समाप्ति तक विदेशी मुद्रा का कोष पहले ही कम हो चुका था और १९६०–६१ के अन्त तक ३०४ करोड रु० रह गया था। मार्च १९६५ में यह घट कर २५० करोड रु० रह गया था, यद्यपि तृतीय आयोजना के अन्त मे यह २९८ करोड रु० था। कोष मे कमी मुख्य रूप से १९६४–६५ मे हुई क्योंकि आयोजना के प्रथम दो वर्षों में जो कमी हुई थी, उसकी पूर्ति १९६३–६४ की वृद्धि से हो गई थी। विदेशी मुद्रा के कोष से धनराशि निकालने के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रति भारत की कर्जदारी मे वृद्धि हुई। आयोजना के प्रारम्भ मे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रति भारत की देनदारी १२·७५ करोड डालर (लगभग ६० करोड रुपये) थी किन्तु तृतीय आयोजना के अन्त में यह बढ़ कर ३२·५० करोड डालर (लगभग १५५ करोड़ रु०) हो गई थी। इसमें मार्च १९६५ मे लिया गया २० करोड डालर (लगभग ९५ करोड रु०) का आपत्कालीन उधार भी सम्मिलित है। सन् १९६४–६५ में विदेशी मुद्रा की स्थिति पर जो प्रतिकूल दबाव पडा वह खाद्यान्न तथा रासायनिक खाद के अधिक आयात के कारण, ऋण-भार के भुगतान मे वृद्धि हो जाने के कारण तथा निर्यात की स्थिरता के कारण था। आयात की मात्रा जो कि सन् १९५०–५१, १९५५–५६ तथा १९६०–६१ मे क्रमश: ६५० करोड, ७७४ करोड़ और १,१२२ करोड रु० थी, बढकर सन् १९६४–६५ में १,३१४ करोड़ और १९६५–६६ में १,३५० करोड रु० हो गई। निर्यात की मात्रा, जोकि प्रथम दो आयोजनाओं की अवधि में लगभग स्थिर रही (अर्थात् उपर्युक्त वर्षों में ६०१ करोड, ६०६ करोड तथा ६४२ करोड रु० रही), उल्लेखनीय रूप से बढी और १९६३–६४ में ७९३ करोड रु० हो गई। परन्तु १९६४–६५ मे यद्यपि निर्यात की मात्रा और भी बढ कर ८१६ करोड रु० हो गई किन्तु वृद्धि की दर घट गई। सन् १९६५–६६ में निर्यात घट कर ८१० करोड रु० हो गया। इसके कई कारण थे जिनमें फसल का खराब होना तथा भारत-पाकिस्तान

संघर्ष मुख्य थे। उधर आयात की मात्रा बराबर बढ़ती रही, विशेष खाद्यान्नों का लगातार आयात करने के कारण। तृतीय आयोजना काल की सम्पूर्ण अवधि मे ३,८१२ करोड रु० का निर्यात हुआ। आयोजना-काल मे निर्यात के स्तर में लगभग २३ प्रतिशत की वृद्धि हुई– अर्थात निर्यात की मात्रा जो कि सन् १९६०–६१ में ६६० करोड रु० थी, सन् १९६५–६६ मे बढकर ८१० करोड रु० हो गई। और यदि १९६५–६६ मे सूखे की स्थिति के कारण कृषि व बागान फसलों के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव न पडता तो यह वृद्धि और भी अधिक होती। विदेशी विनिमय की स्थिति उस समय और भी खराब हो गई जबकि भारत व पाकिस्तान के बीच संघर्ष छिड जाने के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका तथा अन्य सहायता करने वाले देशों ने सहायता देना स्थगित कर दिया। बाद मे सहायता-कार्य फिर चालू हो गया था। विदेशी विनिमय की कठिन स्थिति का सामना करने के लिये तृतीय आयोजनाकाल मे जो पग उठाये गये उनमे ये मुख्य थे निर्यात बढाने तथा आयात कम करने के लिये अनेक कार्रवाइयाँ की गई, आयात घटाने के लिये विशेष आयात-कर लगाये गये और विदेशी पूँजी को प्रोत्साहन देने के लिये कार्रवाइयाँ की गई। पर इस सबके बावजूद, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, मार्च १९६५ मे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से २० करोड डालर का आपत्कालीन उधार लेना पडा और फिर तृतीय आयोजना के समाप्त हो जाने पर अप्रैल १९६६ मे १८.७५ करोड डालर (लगभग ८८ करोड रु०) का फिर उधार लेना पडा। विदेशी विनिमय की लगातार बनी रहने वाली कठिनाइयों के कारण जून १९६६ मे सरकार को रुपये का ३६.५ प्रतिशत अवमूल्यन करना पडा।

राष्ट्रीय आय मे वृद्धि बहुत धीमी तथा असमान रूप से हुई। इसका मुख्य कारण १९६४–६५ को छोडकर शेष वर्षों मे लगातार मौसम का खराब होना था। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है औद्योगिक उत्पादन मे भी आशानुकूल दर से वृद्धि नही हुई। आयोजना के प्रथम दो वर्षों, अर्थात् १९६१–६२ तथा १९६२–६३—मे उत्पादन-वृद्धि की दर बहुत धीमी, अर्थात् दोनों वर्षों मे क्रमश २.५% तथा १.७ प्रतिशत रही। आयोजना के तीसरे वर्ष मे कुछ वृद्धि हुई और दर ४.९ प्रतिशत हो गई। चौथे वर्ष अर्थात १९६४–६५ मे, मुख्यत अनुकूल ऋतु तथा कृषि उत्पादन मे वृद्धि के कारण राष्ट्रीय आय मे ७.६ प्रतिशत की वृद्धि हुई। परन्तु आयोजना के अन्तिम वर्ष अर्थात् १९६५–६६ मे, देश मे बडा भयानक सूखा पडा जिसके फलस्वरूप कृषि उत्पादन मे भारी गिरावट आ गई। कृषि उत्पादन मे कमी के कारण तथा विदेशी मुद्रा की कठिन स्थिति के कारण औद्योगिक उत्पादन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पडा। सन् १९६५–६६ मे, राष्ट्रीय आय मे ४.२ प्रतिशत की कमी हुई। इस प्रकार, आयोजना की अवधि मे सम्पूर्ण रूप मे राष्ट्रीय आय मे वृद्धि की दर बहुत धीमी तथा असमान रही और सम्भावना यही है कि आयोजना का राष्ट्रीय आय म प्रति वर्ष ५ प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य अपूर्ण ही रहेगा। तृतीय आयोजना के प्रथम चार वर्षों म वृद्धि की औसत दर ४.२ प्रतिशत रही और

अन्तिम वर्ष की तीव्र गिरावट के कारण आयोजना की सम्पूर्ण अवधि में राष्ट्रीय आय मे वृद्धि की औसत दर केवल २·५ प्रतिशत रही। जहाँ तक मात्रा का प्रश्न है, राष्ट्रीय आय सन् १९६०–६१ में १४,१४० करोड रु० थी जो १९६४–६५ में बढकर १६,६३० करोड़ रुपये और १९६५–६६ में घटकर १५,६३० करोड रु० हो गई जब कि (१९६०–६१ के मूल्यों के आधार पर) आयोजना का लक्ष्य १९,००० करोड रु० का था। प्रति व्यक्ति आय भी (१९६०–६१ के मूल्यों के आधार पर) सन् १९६०–६१ में ३२६ रु० थी जो १९६४–६५ मे बढकर ३४८ रु० और १९६५–६६ मे घटकर ३२५ रु० रह गई।

जैसा कि हम ऊपर बतला चुके है, तृतीय आयोजना काल में लगातार कठिनाइयां ही कठिनाइयाँ उत्पन्न होती गई जिनमें मुख्य ये थी : चीनी तथा पाकिस्तानी आक्रमण और सीमाओं पर बना रहने वाला लगातार खतरा, लगातार खराब मौसम के कारण फसलों को हानि पहुँचना, विशेष रूप से १९६५–६६ मे सूखा पड़ना और सम्पूर्ण आयोजना की अवधि मे विशेषतः अन्त में विदेशी मुद्रा की कठिन स्थिति। इसका परिणाम यह हुआ कि अधिकांश क्षेत्रो में आयोजना की उपलब्धियाँ लक्ष्य तक न पहुँच सकी। विशेष रूप से कृषि उत्पादन में आशानुकूल वृद्धि न हो सकी। खाद्यानों का उत्पादन १२ करोड टन के अपने लक्ष्य से और यहाँ तक कि ९·२ करोड टन के अपने संशोधित लक्ष्य से भी कम रहा। अन्य कृषि सम्बन्धी वस्तुओं के उत्पादन का भी यही रुख रहा। औद्योगिक उत्पादन भी औसत रूप मे आशा के अनुसार वृद्धि की ११ प्रतिशत की वार्षिक दर के स्तर तक न पहुँच सका। आयोजना के प्रारम्भिक वर्षों मे यातायात, कोयला तथा बिजली की कमी बनी रही। बाद मे यह कमी गायब हो गई परन्तु ऐसा मुख्यतः इसलिये हुआ क्योकि औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि की दर मन्द पड गई थी। अंशतः तो कृषि एव औद्योगिक उत्पादन मे कमी होने के कारण और अंशतः (प्रतिरक्षा तथा विकास का व्यय बढने एवं जनसंख्या की स्वाभाविक वृद्धि होने व जनसख्या का शहरीकरण होने के फलस्वरूप) मॉग में वृद्धि हो जाने के कारण कीमतों में ऐसी वृद्धि हुई जिससे परेशानी उत्पन्न हुई और विशेषतः आयोजना के अन्तिम वर्षों मे। खाद्यान्नों तथा अन्य आवश्यक पदार्थों के वितरण मे उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों के कारण यह मूल्य-स्थिति और गम्भीर हो गई। अदायगी-शेष की स्थिति सम्पूर्ण आयोजनाकाल मे बडी संकटपूर्ण बनी रही, विशेषत· आयोजना के अन्तिम वर्षो में। इसका कारण यह था कि खाद्यान्नो तथा अन्य पदार्थों के आयात में वृद्धि हो गई थी और आयोजना के अन्तिम काल मे विदेशी सहायता मिलनी बन्द हो गई थी। ऐसा इस सब के बावजूद हुआ कि निर्यात बढाने के लिये, आयात घटाने के लिये और विदेशी पूंजी के आगमन को प्रोत्साहन देने के लिए अनेक कारंवाइयाँ की जाती नही। इससे मजबूर होकर अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से उधार लेना पड़ा और अन्त मे रुपये का अवमूल्यन भी करना पड़ा (यद्यपि यह पग तृतीय आयोजना के पश्चात् उठाया गया था)।

पर इसके बावजूद कुछ पग उठाये गये हैं, विशेष रूप से आयोजना के अन्तिम वर्षों में, जिनसे और अनुकूल मौसमी दशाओं के कारण यह आशा की गई कि कृषि उत्पादन मे सुधार होगा। उठाये जाने वाले इन पगो मे किसानो के लिये प्रोत्साहन-मूल्यों की व्यवस्था, उत्पादन बढाने एव रासायनिक खाद के आयात पर जोर और उन्नत किस्म के बीजों का प्रयोग आदि मुख्य थे। जैसा कि चौथी आयोजना की रूपरेखा मे कहा गया है कि "श्रम प्रधान खेती के जिलानुसार कार्यक्रमो द्वारा हुई प्रगति से, कुछ खाद्यान्न फसलो की अधिक उपज देने वाली किस्मो का विकास करने से, रासायनिक खाद व कीटाणुनाशक पदार्थों को लोकप्रिय बनाने से और तृतीय आयोजना-काल मे सिंचाई-क्षेत्र मे किये गये विस्तार से इस बात के विश्वास के पर्याप्त कारण हैं कि ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो गई हैं जिनसे भविष्य म अच्छे परिणाम प्राप्त होंगे।" विदेशी सहायता के पुन आरम्भ होने से आयात मे उदारता बरतने से औद्योगिक उत्पादन मे भी वृद्धि की सम्भावना है। यहाँ फिर चौथी आयोजना की रूपरेखा के इन शब्दों का उल्लेख किया जा सकता है "वास्तविक स्थिति उससे अच्छी है जैसी कि प्रथम दृष्टि मे दिखाई पड़ती है । अनेक उद्योगो मे, विशेष रूप से मशीनरी, धातु, रसायन तथा उर्वरक के उद्योगो मे ठोस प्रगति हुई है। अन्य उद्योगो मे भी, जहाँ कि ऐसा नही है, पहले से ही उत्पन्न उत्पादन-क्षमता काफी मात्रा मे आयात-पदार्थों की कमी के कारण बेकार पडी है। निर्यात की स्थिति मे सुधार होने और विदेशी ऋणो की पुन प्राप्ति होने के साथ ही साथ, सम्भावना यही है कि बेकार पडी हुई उत्पादन क्षमता को सक्रिय बनाया जा सकेगा और उससे अल्पावधि मे ही औद्योगिक उत्पादन में इतनी ठोस वृद्धि होगी जिससे न केवल पहली कमी ही पूरी होगी, बल्कि अर्थ-व्यवस्था को एक नयी प्रेरणा प्राप्त होगी। इसके अतिरिक्त, अनेक ऐसी प्रायोजनायें, जो कि तृतीय आयोजना-काल मे उत्पन्न अनेक कठिनाइयो के कारण पूरी नही हो सकी थी, सम्भावना यह है कि चौथी आयोजना के प्रथम १२ से १८ माह की अवधि मे ही पूरी हो जायेंगी।" खाद्य पदार्थों के आयात मे होने वाली हानि की वृद्धि के कारण और माँग मे कमी करने की कुछ ऐसी कार्रवाइयो, जैसे कि सरकारी खर्च म किफायतें तथा उधार पर प्रतिबन्ध आदि के कारण तथा कृषि व औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि के कारण यह भी सम्भावना है कि कीमतो मे स्थिरता आयगी। यह भी स्मरणीय है कि १९६५-६६ का वर्ष बडा ही प्रतिकूल वर्ष सिद्ध हुआ था जिसमे इतिहास का एक भयकरतम सूखा पडा। उत्पादन तथा राष्ट्रीय आय मे १९६३-६४ से ही वृद्धि शुरू हो गई थी जो १९६४-६५ मे भी जारी रही थी किन्तु १९६५-६६ मे इसको भारी धक्का लग गया। वित्त मन्त्रालय द्वारा जुलाई १९६६ के अन्त मे किये गय अनुपूरक आर्थिक सर्वेक्षण मे कहा गया था कि यदि राजकोषीय एव मौद्रिक अनुशासन बनाये रखा गया तो "वर्ष के अन्त तक मुद्रा स्फीति की स्थिति को नियन्त्रित किया जा सकता है और देश यथार्थता

और विश्वास की भावना से चौथी आयोजना के प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन की आशा कर सकता है।"

निष्कर्ष

जैसा कि आयोजना आयोग ने स्वयं ही चौथी आयोजना की रूपरेखा में कहा है कि तृतीय पंचवर्षीय योजना का रिकार्ड पहली दृष्टि में ही अच्छा प्रतीत नहीं होता। परन्तु जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, तृतीय आयोजना का काल अनेक पहलुओं से बड़ा असाधारण रहा। इसके अतिरिक्त, जैसा कि राष्ट्रीय आय एवं उसकी वृद्धि की दर के आँकड़ों तथा खाद्य उत्पादन जैसे कुछ प्रमुख लक्ष्यों के समस्त आँकड़ों से स्पष्ट है, तृतीय आयोजना में प्राप्त सफलता बड़ी निराशाजनक है, परन्तु फिर भी अनेक क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें कि लक्ष्यों की यथेष्ठ मात्रा से पूर्ति हुई है, जैसे कि मशीनरी, धातुओं, रसायनों व उर्वरक आदि के मूलभूत औद्योगिक क्षेत्र, जिनमें कि वृद्धि की दर १५% वार्षिक से भी अधिक रही है। अनेक मामलों में क्षमता की वृद्धि की दर उत्पादन-वृद्धि की दर से भी तेज रही है—अर्थात् भविष्य में अधिक तीव्र दर से वृद्धि की सम्भावनायें उत्पन्न हो गई हैं। अनेक प्रायोजनायें, जिनमें कि पूर्वोक्त कारणों से देरी हो गई थी, अब पूर्ण होने को है और यह आशा की जाती है कि चौथी आयोजना के प्रारम्भ में ही उनमें उत्पादन-कार्य शुरू हो जायेगा। इस प्रकार, आयोजना आयोग के इस निष्कर्ष में पर्याप्त औचित्य प्रतीत होता है कि "तृतीय आयोजना की सभी कमियों एवं निराशाओं के बावजूद, चौथी आयोजना के प्रारम्भ में तथा आने वाले वर्षों की अवधि में देश अधिक तीव्र गति से विकास के लिये प्रस्तुत है।" (चौथी आयोजना की रूपरेखा)।

यदि हम आयोजना की अब तक की सम्पूर्ण अवधि पर विचार करें, तो कहा जा सकता है कि आयोजना के प्रारम्भिक काल की अपेक्षा आज अर्थ-व्यवस्था निश्चय ही अधिक बड़ी तथा शक्तिशाली है। राष्ट्रीय आय की मात्रा जो कि (१९६०–६१ के मूल्यों के आधार पर) सन् १९५०–५१ में ९,८५० करोड़ रु० थी, सन् १९६४–६५ में बढ़कर १६,६३० करोड़ रु० हो गई। इस प्रकार इसमें कुल लगभग ६९ प्रतिशत की अथवा प्रति वर्ष ३·८ प्रतिशत की संयुक्त दर से वृद्धि हुई। आयोजना में निर्धारित लक्ष्य के मुकाबले यद्यपि वृद्धि की यह दर नीची है परन्तु दर्शनीय बात यह है कि राष्ट्रीय आय की दर में ऊर्ध्वमुखी प्रवृत्ति पाई जाती है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि की औसत दर, जो कि आयोजना से पूर्व की अनेक दशाब्दियों तक केवल १ प्रतिशत ही थी, आने वाली अनेक बाधाओं एवं कठिनाइयों के बावजूद बढ़कर प्रथम आयोजना में ३·४ प्रतिशत, द्वितीय आयोजना में ४ प्रतिशत और तृतीय आयोजना के प्रथम चार वर्षों में ४·२ प्रतिशत हो गई। प्रति व्यक्ति आय की मात्रा में १९५०–५१ तथा १९६४–६५ के मध्य कुल २८ प्रतिशत की तथा प्रति वर्ष औसतन १·८ प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई। कृषि उत्पादन के क्षेत्र में,

आयोजना के १४ वर्षों मे लगभग ६५ प्रतिशत की औसत वृद्धि हुई। कृषि उत्पादन के सूचकाक (१९४९–५०=१०० के आधार पर) सन् १९५०–५१ मे ९६ था और तब से बराबर बढ रहा है। वृद्धि की दर सयुक्त रूप से लगभग ३ प्रतिशत प्रतिवर्ष रही है जब कि उससे पहली दशाब्दियो मे उस वृद्धि का औसत वार्षिक प्रतिशत ½ से भी कम था। खाद्यान्नो का उत्पादन १९५०–५१ मे ५·४९ करोड़ टन था जो बढकर १९६४–६५ मे ८.९ करोड टन हो गया। आयोजना के प्रारम्भिक वर्षों मे कृषि उपज मे जो बढोत्तरी हुई वह प्रति एकड उत्पादन की वृद्धि से उतनी नही थी जितनी कि कृषि-क्षेत्र के विस्तार से थी। आयोजना के कुछ वर्षों के पश्चात से ही प्रति एकड उपज मे वृद्धि का रुख रहा है। परन्तु इसके भी अलावा कृषि उत्पादकता मे वृद्धि की जो सम्भावनाये विद्यमान है वे बहुत अधिक है। उद्योगो के क्षेत्र मे, १४ वर्षों की उक्त अवधि मे लगभग १४६ प्रतिशत की वृद्धि हुई है और अनेक प्रकार के नये-नये उद्योग चालू हुए है। उद्योगो मे बडे महत्वपूर्ण रचना सम्बन्धी परिवर्तन हुए हैं और उत्पादन वृद्धि मे सहायक कुछ महत्वपूर्ण उद्योगो, जैसे—इस्पात, एल्यूमिनियम, रसायन उर्वरक, मशीनरी तथा पेट्रोल पदार्थों के उद्योगो मे प्रगति की दर बडी उल्लेखनीय एव विस्मयकारी रही है। यद्यपि औद्योगिक मोर्चे पर किये गये सभी प्रयत्न समय पर फलदायी नहीं हो सके अथवा उतनी मात्रा मे फल नहीं प्रदान कर सके जितनी कि आशा की गई थी, फिर भी, जैसा कि आयोजना आयोग ने चौथी आयोजना की रूपरेखा मे कहा है कि "औद्योगिक उत्पादन का ढाँचा आज उससे कहीं अधिक सन्तुलित है जितना कि वह इस शताब्दी के प्रथम अर्धभाग मे था, और यद्यपि इस ढाँचे की कमियो को दूर करके तथा उसमे परस्पर समुचित सम्बन्ध स्थापित करके बहुत कुछ किया जाना अभी शेष है तथापि यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक रचना मे पहले की अपेक्षा आज इस बात की अधिक क्षमता है कि वह उत्पादन-वृद्धि एव विविधताओ के साथ आगे कदम बढा सके।" एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि औद्योगिक उत्पादन के अनेक क्षेत्रो मे, जैसे कि मशीनी औजारो के क्षेत्र मे, आयातो (imports) पर सापेक्षिक निर्भरता आज उससे काफी कम है जितनी की होनी चाहिये थी। परन्तु यहाँ इस तथ्य की भी उपेक्षा नही की जा सकती कि उत्पादन वृद्धि के कारण आयात में कमी होने के बावजूद, नये-नये किस्म के आयात करने आवश्यक हो गये हैं और अनेक मामलो में तो कुल माँग इतनी अधिक हो गई है कि इन वस्तुओ का देश में ही काफी बडे अनुपात में उत्पादन होने के बावजूद, कुल आयात की मात्रा बढी ही है। बिजली तथा परिवहन के क्षेत्र में भी प्रभावपूर्ण प्रगति हुई है। उदाहरण के लिये, प्रस्थापित विद्युत क्षमता जो कि सन् १९५०–५१ मे २३ लाख किलोवाट थी, बढकर सन् १९६५–६६ में १०२ लाख किलोवाट हो गई, अर्थात् उसमें चारगुनी से भी अधिक वृद्धि हुई है।

हम अपनी इस विवेचना को प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के शब्दो में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं. "यह सत्य है कि ऐसे क्षेत्र हैं जिनमे कि हम

अधिक कुछ नहीं कर सके हैं, कभी-कभी तो ऐसी परिस्थितियों के कारण जो हमारे नियन्त्रण से बाहर थीं और कभी-कभी अपनी असफलताओं एवं भूलों के कारण। परन्तु इसके बावजूद, आयोजनाओं ने भारत में विकास का एक अच्छा आधार प्रस्तुत किया है। मेरे विचार से अपनी असफलताओं को स्वीकार करते समय यदि हम आयोजनाओं की महान सफलताओं पर विचार नहीं करते हैं तो ऐसा करके हम स्वयं अपने प्रति ही बड़ा अन्याय करेंगे।"

तृतीय आयोजना में सरकारी क्षेत्र का व्यय (करोड़ रुपयों में)

	मौलिक योजना	अन्तिम अनुमान
१. कृषि, सामुदायिक विकास तथा सहकारिता	६६०	१,१०३
२. सिंचाई	६५०	६५७
३. शक्ति	१,०१२	१,२६२
४. लघु तथा ग्रामीण उद्योग	१५०	२२०
५. संगठित उद्योग तथा खनिज कर्म	१,५२०	१,७३५
६. परिवहन व संचार	१,४८६	२ ११६
७. समाज सेवायें	६२२	१,४२२
८. अन्य	२००	११६
योग	६,३००	८,६३१

तृतीय आयोजना के वित्तीय साधन (करोड़ रुपयों में)

	मौलिक योजना	अन्तिम अनुमान
१. चालू राजस्वों से होने वाली बचत (१९६०–६१ की करों की दरों के आधार पर)	५५०	–४७०
२. रेलों का अंशदान (किरायों व भाड़ों की १९६०–६१ की दरों से)	१००	८०
३. अन्य सरकारी उद्यमों की बेशियाँ (पदार्थों की १९६०–६१ की कीमतों से)	४५०	३९५
४. जनता से ऋण (निबल)	८००	९१५
५. अल्प बचतें	६००	५८५
६. अनिधिजन्य ऋण (निबल)	२६५	३४०
७. अनिवार्य जमा तथा वार्षिकी जमा (निबल)	—	११५
८. विविध पूंजीगत प्राप्तियाँ (निबल)	२७५	१८५
९. विदेशी सहायता के रूप में दिखाई गई बजट सम्बन्धी प्राप्तियाँ	२,२००	२,४५५
१०. अतिरिक्त कराधान, जिसमें सरकारी उद्यमों की बेशियों में वृद्धि करने के लिए किये जाने वाले उपाय भी सम्मिलित हैं।	१,७१०	२,८८०
११. घाटे की वित्त व्यवस्था	५५०	१,१५०
योग	७,५००	८,६३०

चौथी पचवर्षीय आयोजना (The Fourth Five Year Plan)

चौथी पचवर्षीय आयोजना के मसौदे की रूप-रेखा २६ अगस्त १६६६ को ससद् के समक्ष रखी गई थी। इससे पूर्व, २ दिसम्बर १६६४ को ससद् मे चौथी आयोजना पर एक स्मरण-पत्र प्रस्तुत किया गया था जिसमे चौथी आयोजना की अवधि मे कुल २२,६०० करोड रुपये के व्यय का प्रस्ताव था। किन्तु १६६५ मे पाकिस्तानी आक्रमण से उत्पन्न सकट के कारण तथा जून १६६६ मे रुपये का अवमूल्यन होने के कारण उस व्यय मे सशोधन करना पडा और इसी कारण मसौदे मे इस राशि मे वृद्धि की गई। चौथी आयोजना के मसौदे के अनुसार, आयोजना का कार्य है "पहली तीनो आयोजनाओ की उपलब्धियो अथवा सफलताओ को एकीकृत करना तथा आगे बढाना, उनकी कमियों को, जहाँ तक भी व्यावहारिक हो, दूर करना और एक ऐसा आधार तैयार करना कि जिसके द्वारा पाँचवी आयोजना के अन्त तक एक स्वावलम्बी एव आत्मनिर्भर अर्थ-व्यवस्था की स्थापना की जा सके।"

लक्ष्य तथा उनकी पूर्ति के लिए व्यूह रचना

आयोजना के मसौदे मे अगले पाँच वर्षो के लिए निम्नलिखित आठ प्रमुख लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं—

(१) यथासम्भव आत्मनिर्भरता प्राप्त करना। इस उद्देश्य के लिये कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन के ऐसे सभी कार्यक्रमो को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की जायेगी जिनसे निर्यात को बढावा मिले और आयात घटे।

(२) मूल्य-स्थिरता के विषय मे आश्वस्त होना। इस विषय मे ऐसे पग उठाये जायेंगे कि जिनसे मुद्रा-स्फीति सम्बन्धी कारणों पर रोक लगे और घाटे की वित्त व्यवस्था से बचा जा सके।

(३) ग्रामीण जनसख्या की आय मे वृद्धि करना और खाद्य पदार्थों व कृषि सम्बन्धी कच्चे माल की पूर्ति को बढाना। इसके लिये कृषि उत्पादन को अधिकतम करने के उद्देश्य से सभी सम्भव प्रयास किये जायेंगे।

(४) इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये, औद्योगिक विकास के कार्यक्रमो मे रासायनिक खाद, कीटाणुनाशक पदार्थ, कृषि सम्बन्धी औजार, डीजल इजिन तथा ट्रैक्टरो जैसी वस्तुओ के उत्पादन को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जायेगी।

(५) अत्यावश्यक सामूहिक उपभोग की ऐसी वस्तुओ के सम्भरण में वृद्धि करने के लिये, जिन पर कि अतिरिक्त आमदनियाँ व्यय की जायेंगी, वस्त्र, चीनी, औषधियाँ, मिट्टी के तैल तथा कागज जैसे पदार्थों के उत्पादन मे वृद्धि की जायेगी।

(६) धातु, मशीनरी, रसायन, खनिज, बिजली तथा परिवहन जैसे उद्योगों मे, जो कि प्रतिरक्षा तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता, दोनो के लिये ही महत्वपूर्ण हैं, निरन्तर प्रगति के विषय मे आश्वस्त होने के लिए चालू कार्यक्रमो को अधिकतम सम्भव गति से पूरा किया जायेगा और कुछ ऐसे नये कार्यक्रम हाथ मे लिये जायेंगे

जो कि पहले से ही चालू विकास की गति को बनाये रखने के लिये तथा पाँचवीं आयोजना की अवधि में देश की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यक हों।

(७) जनसंख्या की वृद्धि को रोकने के लिए तथा जनता के लिए श्रेष्ठतर जीवन-स्तर के विषय में आश्वस्त होने के लिये ऐसे सभी आवश्यक साधनों की व्यवस्था की जायेगी जिनके द्वारा कि परिवार नियोजन-कार्यक्रम को सामूहिक एवं देशव्यापी स्तर पर लागू किया जा सके।

(८) मानवीय साधनों का विकास करने के लिए, सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र मे काफी मात्रा में अतिरिक्त सुविधायें प्रदान की जायेंगी और उत्पादकता बढाने की दिशा मे इनका समुचित रूप से पुनर्गठन किया जायेगा।

इन लक्ष्यों की पूर्ति की दिशा में किये जाने वाले प्रयत्नों को इस प्रकार संगठित किया जायेगा कि उससे अधिक रोजगार तथा सामाजिक न्याय के क्षेत्र में तीव्र गति को प्रोत्साहन मिले। आयोजना के मसौदे में इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए निम्नलिखित पगों को युद्धस्तर पर उठाये जाने का उल्लेख किया गया है—

(१) अर्थ-व्यवस्था को आत्मनिर्भरता की ओर ले जाने के लिए निर्यात की वृद्धि तथा आयात की कमी को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान करनी होगी। अनावश्यक वस्तुओ के उपभोग को सीमित करना होगा, विशेष रूप से ऐसी वस्तुओं के उपभोग को, जिनका निर्यात किया जा सकता है। ऐसे सभी उद्योगों मे, जो निर्यात के लिये उत्पादन कर सकते हैं अथवा ऐसी वस्तुओं का उत्पादन कर सकते हैं जो आयात का स्थान ले लें, उनकी वर्तमान क्षमता का अधिक से अधिक उपयोग किया जायेगा। ऐसे सभी विदेशी ऋण का, जो कि नई आयोजनाओ के निर्माण के लिये अथवा पहले से ही निर्मित आयोजनाओं के रक्षण के लिये प्राप्त होगा, मुख्य रूप से देश की कृषि व उद्योग की निर्यात-वर्धन तथा आयात-प्रतिस्थापन करने वाली क्षमता का विकास करने में उपयोग किया जायेगा। यह सब कार्य अधिकतम सम्भव तीव्र गति से किया जायेगा।

(२) हमारी अर्थ-व्यवस्था विकासोन्मुख है, अतः यह तो सम्भव नही होगा कि सभी कीमतो के बढने पर रोक लगाई जा सके, परन्तु खाद्यान्न, वस्त्र, खाने के तेल जैसी मूल उपभोग की वस्तुओं की कीमतों को बढने से अवश्य रोकना होगा। इसी प्रकार, औद्योगिक कच्चे माल की कीमतों को भी बढने से रोकना होगा जिससे कि वस्तुओ की उत्पादन-लागत अधिक न बढ जाये, विशेष रूप से निर्यात-वर्धन तथा आयात-प्रतिस्थापन के क्षेत्र मे। इस बात के भी प्रयत्न करने होगे कि लागत तथा कीमतो में वृद्धि के बीच अथवा कीमतो तथा मजदूरियों की वृद्धि के बीच स्वचालित सम्बन्धो की गुंजाइश कम हो जाये।

(३) आवश्यक वस्तुओं के वितरण एवं उनकी कीमतों का नियमन करने के लिये विशेष पग उठाये जायेंगे। इसके लिये भौतिक नियन्त्रणों तथा राजकीय व्यापार के चुनीदा उपयोग की आवश्यकता होगी।

(४) घाटे की वित्त-व्यवस्था से बचना होगा। इस सम्बन्ध में आश्वस्त होने के लिए कि समाज की बढ़ी हुई अतिरिक्त क्रय-शक्ति कहीं आयोजना को ही नष्ट-भ्रष्ट न कर दे, कुछ मौद्रिक एवं राजकोषीय कार्यवाहियाँ करनी होंगी। बचत भी अधिकतम सम्भव मात्रा में करनी होगी—केवल इसलिये ही नहीं कि साधनों को आयोजना के लिये गतिशील करता है, अपितु इसलिये भी कि मुद्रास्फीति सम्बन्धी शक्तियों को वश में रखा जा सके। सामान्य उधार नीति का निर्धारण भी इस प्रकार किया जाना चाहिये कि जिससे स्फीति सम्बन्धी दबाव कम हो सकें। कुछ चुनींदा साख-नियन्त्रण को ऐसी रीति से लागू किया जाना चाहिये कि जिससे आयोजना में उल्लिखित प्राथमिकताओं को पूरा करने के लिये गैर-सरकारी क्षेत्र निवेश करने को प्रेरित हो, अर्थ-व्यवस्था को प्रोत्साहन मिले और तिसचय (Hoarding) हतोत्साहित हो। राजकोषीय नीति का उद्देश्य भी ऐसा होना चाहिये कि उससे अतिरिक्त क्रय-शक्ति का सफाया हो और प्रेरणाओं तथा अप्रेरणाओं के मिश्रण की व्यवस्था हो ताकि आयोजना के लक्ष्य पूरे किये जा सकें।

(५) प्रायोजनाओं तथा कार्यक्रमों का चुनाव करने में, उनसे सम्बन्धित वित्त के मामलों में तथा प्रशासन में अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में अनुशासन कायम करना होगा जिससे कि इस दिशा में किये जाने वाले प्रयत्न आवश्यक कार्यक्रमों पर तथा आयोजनाकाल में उनके सावधानीपूर्ण क्रियान्वयन पर केन्द्रित किये जा सकें। सभी अनावश्यक खर्चों को कम किया जाना है, लागतों की सतर्कता के साथ छानबीन की जानी है और उनको न्यूनतम रखना है।

(६) कार्यक्रमों का सबसे अधिक कुशल एवं आर्थिक क्रियान्वयन ही इस विषय में आश्वस्त कर सकता है कि उनसे अधिकतम प्रतिफल प्राप्त हो सके। उन प्रायोजनाओं को यथासम्भव शीघ्र से शीघ्र पूर्ण किया जाना चाहिये जिनमें कि पहले से ही काफी प्रगति हो चुकी है। सभी सम्बन्धित प्रायोजनाओं की प्रगति पर भी निरन्तर और सतर्क दृष्टि रखी जानी चाहिये ताकि उनमें से कोई भी प्रगति के मार्ग से भटक कर बिछुड़ न जाये। नई प्रायोजनायें तब तक आरम्भ नहीं की जानी चाहियें जब तक कि उनसे सम्बन्धित सभी प्रकार के विवरण का पूरी तरह हिसाब न लगा लिया जाये और इस विषय में पूर्ण निश्चिन्तता न हो जाये कि उनसे सम्बन्धित आवश्यक साधन समय पर प्राप्त भी हो जायेंगे। इन सब बातों के अतिरिक्त उनका क्रियान्वयन भी इस प्रकार होना चाहिये कि उससे लक्ष्यों की पूर्ति के विषय में आश्वस्त हुआ जा सके।

(७) प्रशासकीय मशीनरी, कार्य-विधियाँ तथा साथ ही प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य सभी स्तरों पर इस प्रकार सचालित किये जाने चाहियें कि वे मूलभूत आर्थिक एवं सामाजिक कार्यों की दृष्टि से उपयुक्त तथा अनुकूल रहें और जिसके फलस्वरूप आयोजना के लक्ष्य निर्धारित अवधि में पूरे किये जा सकें तथा उन परिसम्पत्तियों से अनुकूलतम लाभ प्राप्त किये जा सकें जो कि अर्थ-व्यवस्था में पहले से विद्यमान हैं।

व्यय तथा निवेश

चौथी आयोजना का कुल प्रस्तावित व्यय २३,७५० करोड़ रुपये है—१६,००० करोड़ रु० सरकारी क्षेत्र में और ७,७५० करोड रु० गैर-सरकारी क्षेत्र में। सरकारी क्षेत्र के कुल व्यय में से १३,६०० करोड़ रु० निवेश में और २,४०० करोड रु० चालू व्यय में काम आयेंगे। इस प्रकार, कुल प्रस्तावित निवेश व्यय २१,३५० करोड रु० है (१३,६०० करोड रु० सरकारी क्षेत्र मे और ७,७५० करोड़ रु० गैर-सरकारी क्षेत्र मे)। कुल निवेश का ६४ प्रतिशत भाग सरकारी क्षेत्र द्वारा लगाया जायेगा जबकि तृतीय आयोजना में यह प्रतिशत ६१ था। यह आशा की जाती है कि देश के पुनरुत्पादनीय गोचर धन मे सरकारी क्षेत्र का भाग, जो कि सन् १९६५–६६ में ३५ प्रतिशत था, बढ़कर १९७०–७१ में ४३ प्रतिशत हो जायेगा। सरकारी क्षेत्र के १६,००० करोड़ रु० के कुल व्यय में केन्द्र, राज्यों तथा केन्द्रशासित क्षेत्रों का भाग क्रमशः ८,५३६ करोड, ७,०७३ करोड़ और ३९१ करोड रुपये रहने की आशा है।

सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्रानुसार कार्यक्रम

निम्न तालिका में आयोजना के मसौदे मे दिये गये सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्र के अनुसार व्यय दिखाये गये है—

तालिका—१

चौथी आयोजना में व्यय तथा निवेश

(करोड रुपयों में)

	सरकारी क्षेत्र			गैर-सरकारी क्षेत्र का निवेश	कुल निवेश	कुल आयोजना व्यय
	योग	चालू व्यय	निवेश			
१. कृषि, सा० वि० तथा सहकारिता	२,४१०	८३५	१,५७५	९००	२,४७५	३,३१०
२. सिंचाई	९६४	—	९६४	—	९६४	९६४
३. बिजली	२,०३०	—	२,०३०	५०	२,०८०	२,०८०
४. लघु व ग्रामीण उद्योग	३७०	१४०	२३०	३२०	५५०	६९०
५. संगठित उद्योग व खनिज कर्म	३,९३६	—	३,९३६	२,३५०	६,२८६	६,२८६
६. परिवहन व सचार	३,०१०	—	३,०१०	६३०	३,६४०	३,६४०
७. समाज सेवायें	३,२१०	१,४०५	१,८०५	१,६००	३,४०५	४,८१०
८. अन्य कार्यक्रम	७०	२०	५०	—	५०	७०
९. वस्तु सूचियाँ (Inventories)	—	—	—	१,९००	१,९००	१,९००
	१६,०००	२,४००	१३,६००	७,७५०	२१,३५०	२३,७५०

कृषि की सकट कालीन महत्ता एव इस क्षेत्र में अभी हाल मे उत्पन्न हुई कमियों को दृष्टिगत रखते हुए कृषि उत्पादन के कार्यक्रमो को तथा साथ ही साथ विभिन्न प्रकार के ऐसे कृषि सम्बन्धी सामान के सम्भरण को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गई है, जैसे कि उर्वरक, कीटाणुनाशक पदार्थ, कृषि सम्बन्धी यन्त्र व उपकरण, बीज तथा सिंचाई और विशेष रूप से लघु सिंचाई। इस दिशा मे किये जाने वाले मुख्य प्रयत्न पाँच प्रकार के हैं—

(१) उन क्षेत्रो मे, जहाँ सिंचाई की निश्चित सुविधायें उपलब्ध हैं, श्रम-प्रधान खेती के नये-नये उपायों का जोरदार प्रयोग करना।

(२) कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिये किसानों को अनेक ऐसी आवश्यक वस्तुयें व जानकारी उपलब्ध कराना, जैसे कि रासायनिक खाद, अच्छे बीज, कीटाणुनाशक पदार्थ, तकनीकी परामर्श तथा कृषि सम्बन्धी अन्य ज्ञान आदि।

(३) ऐसे कृषि-आर्थिक उद्योगों का जाल फैलाना जोकि ट्रैक्टरो, श्रेष्ठ कृषि उपकरणों, रासायनिक खाद व कीटाणुनाशक पदार्थों का उत्पादन करें।

(४) ऐसे क्षेत्रों मे, जहाँ सिंचाई की सुविधायें उपलब्ध होना कठिन है तथा वर्षा अनिश्चित है भूमि तथा नमी सरक्षण के उपाय अपनाना और अनावृष्टि सहन कर सकने वाली फसलों व चारागाहों के विकास तथा पशु पालन पर विशेष ध्यान देना।

(५) निर्यात की जाने वाली व्यापारिक फसलों के उत्पादन मे तेजी लाकर कृषि को यथासम्भव निर्यात प्रधान अथवा निर्यात-अभिमुखी बनाना तथा इस योग्य बनाना कि वह देश के उद्योगों को मूलभूत कच्चा माल दे सके।

सरकारी क्षेत्र मे कृषि सामुदायिक विकास तथा सहकारिता के लिये २,४१० करोड रु० के कुल व्यय का प्रस्ताव है जबकि तृतीय आयोजना मे इस मद की धनराशि १०९८.७ करोड रु० थी।

यह आशा की जाती है कि कृषि की प्रति एकड़ उपज मे वृद्धि इस प्रकार होगी खाद्यान्नो म लगभग २६ प्रतिशत, तिलहन मे २० प्रतिशत, गन्ने मे लगभग १४ प्रतिशत, कपास में ३० प्रतिशत और जूट मे १३ प्रतिशत। आयोजना के अन्त तक प्राप्त किये जाने वाले उत्पादन के कुछ प्रमुख लक्ष्य इस प्रकार हैं (कोष्ठकों मे सन् १९६५–६६ का अनुमानित उत्पादन दिखाया गया है) खाद्यान्न १२ करोड टन (७.२ करोड टन), तिलहन १.०७ करोड टन (७५ लाख टन); कपास ८६ लाख गाठ (६३ लाख गाठें); और जूट ६० लाख गाठें (६२ लाख गाठें)। इन लक्ष्यो की प्राप्ति का परिणाम यह होगा कि कृषि उत्पादन में प्रतिवर्ष ५.६% की मिश्रित दर से वृद्धि होगी। यह प्रस्ताव है कि चौथी आयोजना के अन्त तक ६० लाख टन खाद्यान्न के समीकरण भण्डार बनाये जायें। कृषि विकास की योजनाओं मे, उधार, बाजार, माल तैयार करन, पशु पालन, दुग्ध व्यवसाय व मछली पालन तथा अन्य सम्बन्धित क्षेत्रों मे सहकारी सगठनो को अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग अदा करना है।

चौथी आयोजना के अन्त तक लगभग १·३ करोड़ एकड़ की (कुल) अतिरिक्त सिंचाई क्षमता उत्पन्न की जायेगी। इससे उपलब्ध सिंचाई क्षमता का योग (कुल) ५.५ करोड एकड हो जायेगा। इसमें से ३·१ करोड़ एकड की क्षमता सन् १९५०–५१ से उत्पन्न की गई है। चौथी आयोजना में सिंचाई तथा बाढ़-नियन्त्रण के कार्यक्रमों के लिये ९६४ करोड रुपये व्यय करने का प्रस्ताव है जिसमें से ११५ करोड रुपये बाढ-नियन्त्रण, जलाक्रान्त निरोधी तथा समुद्र-अपरदन विरोधी कार्रवाइयों के लिये है। चालू योजनाओं की शीघ्र पूर्ति के कार्य को, जिसमें कि किसानो के खेतो तक जलमार्गों का निर्माण भी सम्मिलित है, प्राथमिकता दी जायेगी। नई प्रायोजनाओं के सही क्रियान्वयन पर अत्यधिक जोर दिया जायेगा जिससे कि प्रायोजना के विभिन्न चरणों की पूर्ति के साथ ही साथ उनसे लाभ भी प्राप्त होते रहे।

सरकारी क्षेत्र मे विद्युत शक्ति में २०३० करोड़ रुपये का निवेश होगा जो कि १·०१७ करोड किलोवाट की प्रस्थापित क्षमता को तथा साथ ही २,५०,००० परिपथ किलोमीटर (circuit kilometres) के वर्तमान संचरण कार्य को भी दुगुना कर देगा। ग्रामीण क्षेत्रो के विद्युतीकरण के कार्यक्रमों पर बराबर अधिकाधिक जोर दिया जाता रहेगा जिससे कि हमारे ग्रामीण क्षेत्र श्रेष्ठतर जीवन-स्तर के नये युग मे प्रवेश करें और गांवो मे औद्योगिक हलचलों मे वृद्धि हो।

चौथी आयोजना के कार्यक्रमों का खाका खीचते समय आगामी १०–१५ वर्षों का दीर्घकालीन चित्र सामने रखा गया है। इस मद मे सरकारी क्षेत्र का निवेश ३०१० करोड रुपये निर्धारित है। यह आशा की जाती है कि रेलों पर माल यातायात की मात्रा २०·५० करोड़ टन से बढ कर ३०·८० करोड टन, सडको द्वारा होने वाले माल यातायात की मात्रा ३५० खरब टन किलोमीटर से बढ़कर लगभग ६५० खरब टन किलोमीटर और बन्दरगाहों द्वारा किये जाने वाले माल-यातायात की मात्रा ५·६० करोड टन से बढकर ६·५० करोड टन हो जायेगी। सडको के विकास के कार्यक्रमों में ५०,००० किलोमीटर लम्बी सडकों के निर्माण की अतिरिक्त व्यवस्था है। जहाजरानी के विकास कार्यक्रमों के अनुसार टनभार (ton nage) १५ लाख जी० आर० टी० से लगभग ३० लाख जी० आर० टी० होकर दुगुना हो जायेगा।

उद्योग और खनिज कर्म के लिये कुल ६२८६ करोड रु० की व्यवस्था की की गई है—३९३६ करोड रुपये सरकारी क्षेत्र में और २३५० करोड रुपये गैर-सरकारी क्षेत्र मे। सरकारी क्षेत्र मे जो धनराशि निवेश की जायेगी उसमें ३९३ करोड़ रुपये संस्थागत वित्तीय एजेन्सियों और राज्य-वित्त निगमो तथा औद्योगिक विकास निगमो की सहायता के लिये होंगे।

औद्योगिक कार्यक्रम मे, सर्वोच्च प्राथमिकता ऐसे उद्योगों को प्रदान की गई है जो कि कृषि के लिये ऐसे आवश्यक सामान का उत्पादन करेंगे, जैसे कि रासायनिक खाद, कीटाणुनाशक औषधियाँ तथा कृषि यन्त्र व उपकरण। इसके बाद जिन

उद्योगों का नम्बर आयेगा वे हैं : धातु उद्योग तथा मशीन-निर्माण उद्योग जिनमें इस्पात, एल्म्यूनियम तथा जस्ता भी सम्मिलित हैं, उत्पादक वस्तुओं के उद्योग जैसे औद्योगिक रसायन, पेट्रोल, कोयला, लोहा व इस्पात की ढली व गढ़ी वस्तुयें, ऊष्मसह भट्टियाँ तथा सीमेंट और ऐसे उद्योग जो कि आवश्यक उपभोग की वस्तुओं—जैसे चीनी, कपड़ा तथा मिट्टी के तेल—का उत्पादन करें। औद्योगिक कार्यक्रम को लागू करते समय ऐसे प्रयत्न किये जायेंगे कि निवेशों का उपयुक्त सन्तुलन बनाये रखकर वर्तमान क्षमता का पूरा उपयोग किया जाये, तृतीय आयोजना की अधूरी प्रायोजनाओं (projects) को शीघ्रता से पूर्ण किया जाये और अधिक तत्परता से व कम निवेश के द्वारा अतिरिक्त क्षमता पैदा की जाये और ऐसा किया जा सकता है यदि नई इकाइयों की स्थापना की बजाय चालू इकाइयों का ही विस्तार किया जाये। कुछ औद्योगिक लक्ष्य इस प्रकार निर्धारित किये गये हैं तैयार इस्पात १४८ करोड़ टन की क्षमता तथा ८८ लाख टन का उत्पादन जबकि वर्तमान उत्पादन ४६ लाख टन है, मिश्र तथा औजारी इस्पात १४८ करोड़ टन की क्षमता तथा ४ लाख टन का उत्पादन, एल्म्यूनियम, कास्टिक सोडा तथा सोडा-राख में आत्मनिर्भरता, ट्रान्सफार्मरों, बड़े आकार की बिजली की मोटरों व विद्युत-प्रेषण साज-सज्जा में आत्मनिर्भरता तथा इनकी निर्यात-क्षमता का विकास, औद्योगिक मशीनरी का उत्पादन ५०० करोड़ रुपये वार्षिक से १६०० करोड़ रुपये वार्षिक, नये इस्पात सयन्त्रों के लिये लगभग ५० प्रतिशत धातुकर्मक उपकरणों का निर्माण, मशीनी औजारों का उत्पादन २३ करोड़ रुपये की वर्तमान क्षमता से बढ़ाकर १०५ करोड़ रुपये, रासायनिक खाद का उत्पादन २,४४,००० टन से ३३,५० ००० टन प्रतिवर्ष २ नये रासायनिक खाद के कारखाने लगाने के लिये आवश्यक सयन्त्र और मशीनरी के काफी भाग का निर्माण, कीटाणुनाशक औषधियाँ १८ ००० टन से १ लाख टन, सूती वस्त्र ७६० करोड़ मीटर से १००५ ८ करोड़ मीटर; २ २ करोड़ टन पेट्रोलियम उत्पादन की शुद्ध करने की क्षमता, कोयले का उत्पादन ७ करोड़ टन से १० ६ करोड़ टन और कच्चे लोहे का २ २ करोड़ टन से ५ ४ करोड़ टन। दुर्गापुर मिश्र तथा औजारी इस्पात सयन्त्र की क्षमता तिगुनी हो जायेगी, ताँबे की अतिरिक्त खानों के विकास का कार्य हाथ में लिया जायेगा, राँची का भारी मशीनें बनाने वाला सयन्त्र पूरा किया जायेगा और रासायनिक खाद के नये कारखाने दुर्गापुर, कोटा, गोवा, कोचीन, मद्रास, कानपुर, काठगोदाम और हल्दिया में स्थापित किये जायेंगे और कुछ वर्तमान इकाइयों का विस्तार किया जायेगा।

शिक्षा के क्षेत्र में जिन तीन मुख्य कार्यों को पूरा करने का प्रयत्न किया जायेगा वे है वर्तमान शिक्षा-पद्धति के दोषों को दूर करना और सामाजिक एवं आर्थिक विकास की बढ़ती हुई माँगों के साथ उसको प्रभाव-पूर्ण रीति से सम्बद्ध करना; शिक्षा-पद्धति में वर्तमान आन्तरिक दबावों व तनावों को दूर करना जो कि अनिवार्यतः इस कारण उत्पन्न हुए हैं क्योंकि प्रथम तीन आयोजनाओं में शिक्षा

का तेजी से प्रसार हुआ है ; और शिक्षा-पद्धति को सामाजिक आवश्यकताओं एवं आर्थिक माँगों के अनुसार विस्तृत करना। शिक्षा पर किया जाने वाला कुल व्यय १२१० करोड़ रु० रखा गया है।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में, प्रस्ताव यह है कि परिवार-नियोजन कार्यक्रम को अत्यन्त प्रबलता तथा शीघ्रता के साथ सम्पन्न किया जाये। उद्देश्य यह है कि जितनी भी शीघ्र सम्भव हो सके, जन्म दर ४० से २५ प्रति हजार हो जाये। डाक्टरों तथा नर्सों आदि के प्रशिक्षण-कार्य को तेज करना है। स्कूल, स्वास्थ्य कार्यक्रमों, मातृत्व तथा शिशु, स्वास्थ्य एवं पोषण योजनाओं पर विशेष ध्यान दिया जाना है। स्वास्थ्य और परिवार-नियोजन पर ५८७ करोड़ रुपये व्यय होने हैं।

५० करोड़ रुपये की व्यवस्था समाज-कल्याण के विशिष्ट कार्यक्रमों के लिये की गई है। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य है : स्त्रियों, बच्चों तथा युवकों की उन्नति, असमर्थों एवं बाल अपराधियों का पुनर्वास और भीख माँगने जैसी सामाजिक बुराइयों पर नियन्त्रण। १८० करोड़ रुपये की व्यवस्था हरिजनों, जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिये की गई है। ६० करोड़ रुपये पुनर्वास के लिये रखे गये हैं ; इस सम्बन्ध में विशेष जोर पूर्वी पाकिस्तान से आये विस्थापितों के पुनर्वास के विकास-पक्ष पर दिया जायेगा।

निर्यात और आयात

आयोजना में इस बात को पर्याप्त महत्व प्रदान किया गया है कि निर्यात से होने वाली कमाई में यथेष्ट वृद्धि के प्रयत्न किये जायें, क्योंकि दूसरी ओर जैसे-जैसे उत्पादन तथा निवेश में वृद्धि होगी, वैसे-वैसे ही अनुरक्षण-आयात तथा साथ ही साथ आयोजना-आयात की मात्रा भी काफी बढ़ जायेगी। फिर, विदेशी ऋणों के भार को हल्का करने का व्यय भी तृतीय आयोजना के मुकाबले अधिक हो जायेगा।

चौथी आयोजना में यह व्यवस्था की गई है कि अवमूल्यन से पूर्व के मूल्यों के अनुसार ५,१०० करोड़ रुपये के अथवा अवमूल्यन से बाद के मूल्यों में ८,०३० करोड़ रुपये के कुल निर्यात किये जायेंगे। यह आशा की जाती है कि निर्यात की मात्रा, जो कि १९६५–६६ में ८१० करोड़ रुपये थी, बढ़कर १९७०–७१ में (अव-मूल्यन से पूर्व के मूल्यों के अनुसार) १२२५ करोड़ रुपये अथवा (अवमूल्यन से बाद के मूल्यों में) १९२९ करोड़ रुपये हो जायेगी, अर्थात् चौथी आयोजना की अवधि में इसमें ५१·२ प्रतिशत की वृद्धि होगी। निर्यात में मुख्य वृद्धियाँ चाय, कच्चा लोहा, इंजीनियरिंग का सामान, जूट का सामान, वनस्पति तेल, खली, अनिर्मित तम्बाकू, सूती धागे, लोहा व इस्पात तथा रासायनिक एवं समवर्ती उत्पादन में होने की आशा है। इसके अतिरिक्त चीनी, कॉफी, मसाले, नारियल की जटा तथा उससे बने सामान एवं दस्तकारी के बने सामान के निर्यात में भी वृद्धि होने की आशा की जाती है।

निर्यात कार्यक्रम को पूरा करने के लिये आयोजना की रूपरेखा में कुछ पूर्व• शर्तों का भी उल्लेख किया गया है जो कि निम्न प्रकार है—

(१) कृषि, खनिज तथा उद्योग के क्षेत्रों में निर्यात करने योग्य पदार्थों के उत्पादन के लक्ष्य अवश्य पूरे किये जायेंगे।

(२) निर्यात-योग्य पदार्थों में देशी उपयोग में कमी करनी होगी।

(३) निर्यात पदार्थों का स्टाक किया जायेगा जिससे कि निर्यात का क्रम टूटने न पाये।

(४) भारतीय माल की लागत तथा उसकी कोटि को भी ऐसा बनाना होगा कि वह प्रतियोगिता में टिक सके।

(५) विशिष्ट निर्यात इकाइयों की स्थापना की सम्भावना पर भी विचार किया जायेगा।

(६) निर्यात वृद्धि में सरकारी क्षेत्र के उद्यमों को और भी ज्यादा ठोस भाग अदा करना होगा।

(७) निर्यात कार्यक्रम को इसलिये ठेस नहीं पहुँचनी चाहिये कि कच्चे माल, उत्पादक वस्तुओं तथा ऐसी चीजों की कमी है जो कि निर्यात पदार्थों के उत्पादन के लिये आवश्यक है।

चौथी आयोजना की अवधि में किये जाने वाले कुल आयात की मात्रा पी० एल० ४८० आयातों को छोड़कर, अवमूल्यन से पूर्व के मूल्यानुसार ७,६५० करोड़ रुपये अथवा अवमूल्यन से बाद के मूल्यों में १२,०४१ करोड़ रुपये होने का अनुमान है। इसमें ५,२०० करोड़ रुपये अनुरक्षण-आयातों की आवश्यकताओं के लिये है (जिसमें कि मशीनों तथा उपकरणों का देश में ही निर्माण करने के लिये आवश्यक कल-पुर्जों का आयात तथा साथ ही साथ बदली जाने वाली मशीनरी एवं पुर्जों का आयात भी सम्मिलित है)। २,४५० करोड़ रुपये की शेष धनराशि प्रायोजना-आयातों के लिये है (अर्थात् ऐसी पूरी मशीनों तथा तत्सम्बन्धी साज सज्जा के आयातों के लिये जो कि आयोजना में सम्मिलित प्रायोजनाओं को लागू करने के लिए आवश्यक हो)। इन अनुमानों का हिसाब लगाने में कुछ पूर्व धारणाएं भी बनाई गई हैं। उदाहरण के लिए, आयोजना में उत्पादन के जो लक्ष्य निर्धारित किये गये है उनकी पूर्ति के विषय में आश्वस्त होने के लिए पग उठाये जायेंगे, विशेष रूप से इस्पात तथा रासायनिक खाद जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों के उत्पादन के सम्बन्ध में, उपभोक्ता माल के आयात पर तथा उपभोग्य वस्तुओं के उद्योगों के लिये आवश्यक कच्चे माल के आयात पर वर्तमान में जो प्रतिबन्ध लगे है, वे आयोजना की अवधि में जारी रहेंगे, मिट्टी के तेल तथा अखबारी कागज जैसे कुछ पदार्थों की माँग पर नियन्त्रण रखने के लिये राजकोषीय तथा अन्य कार्यवाहियाँ की जायेंगी, अलोह धातुओं के उपयोग में किफायत करने के लिये सभी सम्भव उपाय किये जायेंगे, और जहाँ पूंजीगत माल के उद्योगों की आयात किये गये कच्चे माल एवं कल-पुर्जों से सम्बन्धित माँग पूर्णतः पूरी क

जायेगी, वहाँ इस सम्बन्ध में भी प्रभावशाली पग उठाये जायेंगे कि देश मे ही उत्पन्न मशीनरी का अधिकतम उपयोग किया जा सके। अनुरक्षण-आयात की आवश्यकताओं का एक बडा भाग (कुल का लगभग ⅚ भाग) लोहा व इस्पात, अलोह धातुओ, पेट्रोल तथा उससे बनी वस्तुओ, रासायनिक खाद तथा तत्सम्बन्धी कच्चे माल, मशीनो के लिये आवश्यक कल-पुर्जो तथा परिवहन उपकरणो से सम्बद्ध है। आयोजना आयात की आवश्यकताओं के काफी भाग की मॉंग उद्योग तथा खनिजों, परिवहन तथा संचार-साधनो और सिंचाई व बिजली से सम्बन्धित है।

रोजगार

चौथी आयोजना की अवधि में श्रम-शक्ति मे लगभग २·३ करोड की वृद्धि की आशा है। आयोजना की रूपरेखा में रोजगार देने के जो कार्यक्रम बनाये गये है उनसे १·८५ करोड से लेकर १·६० करोड तक व्यक्तियों को अतिरिक्त रोजगार मिलने की सम्भावना है—४५ लाख से लेकर ५० लाख तक लोगों को कृषि मे और लगभग १·४० करोड़ लोगो को कृषि के बाहर। कृषि से बचे खाली मौसम की अवधि मे ग्रामीण निर्माण-कार्यक्रम से लगभग १५ लाख लोगो को वर्ष मे १०० दिन का काम मिलने की आशा है। रूपरेखा मे बताया गया है कि देश के अनेक भागों मे यह अत्यन्त आवश्यक होगा कि रोजगार की स्थिति पर कड़ी नजर रखी जाये और रोजगार के अतिरिक्त अवसर प्रदान करने के लिये भी तैयार रहा जाये। घने बसे हुये क्षेत्रो मे तथा अधिक पिछड़े इलाकों में ऐसा करना विशेष रूप से महत्वपूर्ण होगा। आयोजना की रूपरेखा मे इस बात पर भी जोर दिया गया है कि जिला तथा क्षेत्रीय स्तरो पर उपलब्ध क्षमताओं के समन्वित क्रियान्वयन तथा कुशल उपयोग द्वारा इस बात के प्रयत्न किये जाने चाहिये कि रोजगार की अधिकतम सम्भव सुविधाएँ उपलब्ध कराई जायें।

आयोजना की रूपरेखा में बताया गया है कि चौथी आयोजना के लिये उपलब्ध हो सकने वाले साधनो के सम्बन्ध में की गई भविष्यवाणी इस पूर्वधारणा पर आधारित है कि अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे उत्पादन की जिन वृद्धियो की आशा की गई है वे प्राप्त हो जायेंगी। चौथी आयोजना के प्रारम्भ के वर्षों मे, उत्पादन मे होने वाली वृद्धि का काफी भाग उन निवेशो द्वारा पूरा होना है जो पहले ही पूर्ण हो चुके है अथवा पूर्ण होने ही वाले हैं। इसके अतिरिक्त, रूप-रेखा मे इस आशा को भी तर्कसंगत बताया गया है कि चालू वर्ष में मौसम सामान्य रहने के कारण कृषि-उत्पादन मे ठोस वृद्धि होगी।

आयोजना से पूर्व के करों की दरों के आधार पर 'चालू स्रोतो से होने वाली बचत' के ३,०१० करोड रु० के आँकड़े इस पूर्व-धारणा पर आधारित है कि आयोजना इतर व्यय मे वृद्धि की वार्षिक दर को पूर्ववत् ५ प्रतिशत तक ही सीमित रखा जायेगा। तथापि, आयोजना की रूपरेखा मे बताया गया है कि वर्तमान परिस्थितियो के अन्तर्गत और भी अधिक कठोर नियन्त्रण की आवश्यकता

है और यदि केन्द्र तथा राज्य सरकारे सुनिश्चित प्रयत्न करें तो यह सम्भव हो सकता है कि इस व्यय को उक्त सीमा से भी नीचे रखा जा सके। यदि इस व्यय मे होने वाली वार्षिक वृद्धि को ५ प्रतिशत के स्थान पर ३½ प्रतिशत तक सीमित कर दिया गया, तो अनुमान लगाया गया है कि उससे ३३५ करोड रुपये का लाभ होगा। तालिका मे यह राशि 'आयोजना-इतर व्यय मे किफायतें' शीर्षक के अन्तर्गत दिखाई गई है।

वित्तीय साधन

चौथी आयोजना के वित्तीय साधन निम्न तालिका मे दिखाये गये हैं—

तालिका—२

(करोड रुपयो मे)

	केन्द्र	राज्य	योग
१ चालू राजस्व से बचत (आयोजना से पूर्व के करो की दरो के आधार पर)	२,०९०	९२०	३,०१०
२ रेलो का अशदान (आयोजना से पूर्व के किरायो व भाडो के आधार पर)	२६०	—	२६०
३. अन्य सरकारी उद्यमो की बेशियाँ (आयोजना स पूर्व की उपज की कीमतो के आधार पर)	७६०	३२५	१,०८५
४. जनता म ऋण (निवल)	७००	८००	१,५००
५. अल्प बचतें	३६०	६४०	१,०००
६ अनिधिजन्य ऋण (निवल)	४००	१६५	५६५
७ अनिवार्य जमा व वार्षिकी जमा (निवल)	१५०	—	१५०
८. विविध पूंजीगत प्राप्तियां (निवल)	६६५	६६५	१,२३०
९. विदेशी उधारा के अनुरूप बजट सम्बन्धी प्राप्तियां	४,७००*	—	४,७००*
१०. आयोजना इतर व्यय मे किफायतें	८५	२५०	३३५
११. साधनो का अतिरिक्त सग्रह	१,७४५	९८५	२,७३०
(क) १९६६–६७ मे की गई कार्यवाहियो द्वारा	८०५	१२५	९३०
(ख) आयोजना की शेष अवधि म की जाने वाली अतिरिक्त कार्यवाहियाँ	१,१००	७००	१,८००
(ग) सन् १९६६–६७ मे अतिरिक्त केन्द्रीय कराधान से राज्यो को दिये गये साधनो के लिए समायोजन	—१६०	+१६०	—
१२ घाटे की वित्त व्यवस्था	—	—	—
	१३ ६६०	५,७३५	१९,३९५

* अवमूल्यन से पूर्व की विनिमय दरो के आधार पर।

जहाँ तक सरकारी उद्यमों के अंशदानों का सम्बन्ध है, १,०८५ करोड रु० के आँकड़े इस पूर्वधारणा पर आधारित हैं कि उसमें निवेश की गई पूँजी पर ११–१२ प्रतिशत तक का प्रतिफल प्राप्त होगा। सरकारी उद्यमों के कार्य-संचालन में सुधार के उद्देश्य से, रूपरेखा में इस बात पर जोर दिया गया है कि प्रशासकीय अथवा अन्य परिवर्तनों के सम्बन्ध में शीघ्रता के साथ निर्णय किये जाने की आवश्यकता है ताकि उन निवेशों से अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके जो पहले से ही उद्यमों में किये जा चुके हैं और जो आगे किये जाते रहेंगे। इस बात पर भी जोर दिया गया है कि इन उद्यमो को यथासम्भव यह प्रयत्न करना चाहिये कि क्षमता के श्रेष्ठतर उपयोग से अधिक मात्रा में आयात-प्रतिस्थापन के द्वारा तथा सचालन सम्बन्धी व्यवस्थाओं में सामान्य सुधार करके वे अवमूल्यन के फलस्वरूप आयात किये जाने वाले कच्चे माल की बढी हुई लागत की क्षतिपूर्ति कर सकें, ताकि उनकी उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतो मे अनुचित वृद्धि किये बिना ही उनमें लगाई गई पूंजी पर निर्धारित प्रतिफल प्राप्त हो सके।

उधार तथा अल्प-बचत कार्यक्रमो के सम्बन्ध मे जो अनुमान लगाये गये है उनमे केवल अब तक होने वाली वृद्धियों के रुख का ही ध्यान नही रखा गया है अपितु धनसग्रह को लोकप्रिय बनाने तथा उसमें तेजी लाने के लिये विशेष कार्यक्रम भी बनाये गये है। नये किस्म की संस्थाओं अथवा साधनों का उपयोग करने की सम्भावनाओ पर भी विचार किया जायेगा। रूपरेखा मे इस बात पर जोर दिया गया है कि निर्धारित धनराशि को एकत्र करने के लिये अतिरिक्त प्रयत्नों की आवश्यकता होगी।

विदेशी सहायता (पी० एल० ४८० के अन्तर्गत प्राप्त होने वाली सहायता को छोडकर) की अनुरूपी बजट प्राप्तियों के आँकड़े चौथी आयोजना की अवधि के अदायगी-शेष के अनुमानों पर आधारित हैं। कुल विदेशी उधार की आवश्यकताओं का अनुमान ८·४ बिलियन डालर का है (इसमे पी० एल० ४८० के आयात सम्मिलित नहीं हैं)। १·७ बिलियन डालर की ऋण-अदायगियों तथा ०·६ बिलियन डालर के अनुमानित आयातों की अदायगी के पश्चात् शेष ५·८ बिलियन डालर अर्थात् विनिमय की नई दरों के आधार पर ४,३४० करोड रुपये बजट में वृद्धि के लिये प्राप्त होने का अनुमान है।

पी० एल० ४८० आयातो के अनुरूप रुपयो में होने वाली प्राप्तियों के अनुमान इस पूर्व धारणा पर आधारित हैं कि लगभग १·६ करोड टन खाद्यान्न के आयात होंगे (अधिकांशतः प्रारम्भिक वर्षों में) और लगभग ८,६०,००० गाठें कपास का आयात किया जायेगा। खाद्यान्नों के सम्बन्ध मे की गई गणनायें निर्गम-मूल्यों पर हैं जो कि आर्थिक सहायता के रूप में प्राप्त होंगे। आयोजना की रूपरेखा में कहा गया है कि निर्वाह-व्यय में होने वाली वृद्धियों को रोकने के लिये जहां कुछ मात्रा में आर्थिक सहायता आवश्यक है, वहाँ बजट सम्बन्धी घाटो को रोकने के

लिये यह भी आवश्यक है कि आर्थिक सहायता से सम्बन्धित नीति की समय-समय पर समीक्षा की जाती रहे।

आयोजना की रूपरेखा मे जोर दिया गया है कि विदेशी प्राप्तियो के अनुरूप बजट सम्बन्धी प्राप्तिया इस बात पर निर्भर होगी कि आयातो तथा निर्यातो का वास्तविक रुख क्या है, फलस्वरूप वे अनिश्चित ही रहेगी। आयोजना की अवधि मे की जाने वाली वास्तविक बचन बद्धताओ के आधार पर समय-समय पर उनका पुनर्निर्धारण करना होगा।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, चूंकि कीमतो मे पहले ही काफी वृद्धि हो चुकी है, अत चौथी आयोजना मे घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा नही लिया जायेगा।

उपर्युक्त सभी मदो का हिसाब लगा लेने के पश्चात्, लगभग २,७३० करोड रुपए के साधनो की प्राप्ति के लिये और अतिरिक्त प्रयत्न करने होंगे। १९६६-६७ मे इस सम्बन्ध मे जो कार्रवाइयाँ की गई है उनसे पाँच वर्षों की अवधि मे ९३० करोड रुपये की आय होने की आशा है। इसके पश्चात् १,८०० करोड रुपये की शेष धनराशि रहगी जिसे आयोजना की बाकी अवधि मे प्राप्त करना होगा। यह रकम करो तथा सरकारी उद्यमो की मूल्य-नीतियो मे परिवर्तन करके और अल्प बचतो एव निर्वाह निधियो आदि से होने वाली प्राप्तियो मे वृद्धि करके प्राप्त की जानी है। यह आशा की जाती है कि लगभग ७०० करोड रुपये के अतिरिक्त साधन राज्यो द्वारा गतिशील किए जायगे और शेष केन्द्र द्वारा। रूपरेखा मे इस बात पर जोर दिया गया है कि साधनो को गतिशील करने के प्रयत्नो मे आयोजना के लक्ष्यो—मूल्य स्थिरता, आत्म-निर्भरता, सरकारी क्षेत्र द्वारा अधिक प्रभावपूर्ण अशदान और सामाजिक न्याय की प्राप्ति—का भी अवश्य ध्यान रखना है।

इन लक्ष्यो के प्रकाश म, कर नीति के निर्धारण के लिये कुछ मार्ग-दर्शक बातो का सुझाव दिया गया है। उन साधनो को, जिनकी कमी है, अपेक्षाकृत कम आवश्यक पदार्थो के उत्पादन म जान से रोकना होगा। प्राइवेट व्यक्तियो के पास धन तथा सम्पत्ति का सचय न हो, इसके लिए उनके मार्ग मे कर सम्बन्धी रुकावटें खडी करनी होगी। करो मे ऐसी हेर-फेर करनी होगी कि जिससे (अवमूल्यन के फलस्वरूप उत्पन्न हुई दशाओ मे), देशी उत्पादको द्वारा अनुचित रूप से भारी लाभो की प्राप्ति पर रोक लग तथा और भी अधिक उपलब्ध माल निर्यात क्षेत्र की ओर को भेजा जाये, विशेषरूप स ऐसे पदार्थ जिनके आयात पर पूर्णतया रोक लगी है अथवा कठोर प्रतिबन्ध लागू हैं या जिनके सम्भरण मे तेजी से वृद्धि नही की जा सकती अथवा केवल अतिरिक्त आयात करके ही उनके सम्भरण मे वृद्धि की जा सकती है। सामूहिक उपभोग क अत्यावश्यक पदार्थों को छोडकर, उपभोग्य वस्तुओ, विशेष रूप से टिकाऊ उपभोग्य वस्तुओ पर अपेक्षाकृत ऊँचे कर लगाये जाने चाहिएँ जिसम कि इन वस्तुओ के निजी उपभोग मे पर्याप्त मितव्ययता लाई

जा सके और उनके सम्भरण विदेशी बाजारों की ओर को मोड़े जा सकें। जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था का विकास होता है और वह अधिक विभिन्नता मूलक बनती है, वैसे-वैसे ही अनेक प्रकार की नई-नई वस्तुयें (जिनमे कि सभी मूलरूप से अत्यावश्यक नही होती) उपलब्ध होने लगती है। इन वस्तुओं पर प्रारम्भ से ही उत्पादन-कर लगाया जाना चाहिये। चौथी आयोजना की अवधि में, कृषि आय में काफी वृद्धि की आशा की जाती है, परन्तु इस तथ्य को दृष्टि से कि कृषि कराधान का वर्तमान ढाचा ऐसा नही है कि उसके किसी भी उल्लेखनीय भाग को निकाम-व्यय की वित्तीय व्यवस्था के लिए उपयोग में लाया जा सके और इसके साथ ही साथ, ग्रामीण क्षेत्रो मे वित्तीय संस्थायें इतनी विकसित भी नही होती कि अतिरिक्त कृषि आय मे से की जाने वाली निजी बचतों का सचय सुविधापूर्वक हो सके, अतः यह आवश्यक है कि करो तथा वित्तीय संस्थाओं के ढाँचे में परिवर्तन किए जायें। भू-राजस्व की दरों में परिवर्तन करके, सिंचाई की दरों में हेर-फेर करके अथवा व्यापारिक फसलो पर विशेष अधिभार लगाकर ठोस साधन प्राप्त किये जा सकते है। भू-राजस्व मे आरोहण का तत्व लागू करना होगा। ऐसे पग उठाने होगे कि जिससे सिंचाई प्रायोजनाओ से प्राप्त होने वाले प्रतिफल मे वृद्धि हो। आयोजना की रूपरेखा में इस बात पर जोर दिया गया है कि सम्पत्ति तथा धन के कराधान के क्षेत्र में और भी आगे कार्रवाई करने की गुँजाइश है। ऐसे कर अपेक्षाकृत धनी वर्गों पर पड़ेंगे। रूपरेखा मे लोगों के पास एकत्र हुए अतिरिक्त धन तथा सम्पत्ति केमूल्यो मे तीव्र वृद्धि की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया है। अन्त में यह भी आवश्यक होगा कि आय के कराधान की परिधि तथा उसकी प्रभावशीलता मे वृद्धि की जाए। ऐसा करना दोनों दृष्टियों से उचित होगा — राजस्व प्राप्ति की दृष्टि से भी और उपभोग में किफायतों को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से भी।

आयोजना आयोग ने एक तकनीकी समिति की नियुक्ति की है जो इस बात का अनुमान लगायेगी कि गैर-सरकारी क्षेत्र को निवेश के लिये प्रत्यक्ष रूप से कितनी बचतें उपलब्ध होने की सम्भावना है। समिति ने चौथी आयोजना की अवधि मे इस प्रकार की लगभग ७,७५० करोड रुपए की बचतों का अनुमान लगाया है। ऐसा करते समय उस रूपरेखा का भी ध्यान रखा गया है जिसके अनुसार सरकारी क्षेत्र में करो और उधार के रूप में साधनो का संग्रह किया जायेगा।

विदेशी साधन

अनुमान लगाया गया है कि चौथी आयोजना की अवधि मे अनुरक्षण तथा प्रायोजना-आयातों के लिए विनिमय की नई दरों के अनुसार १२,०५० करोड़ रुपए की अदायगियाँ करनी होंगी। इसके अतिरिक्त, २,२८४ करोड रुपए के विदेशी ऋणभार के भुगतान की भी व्यवस्था करनी होगी। इस प्रकार, विदेशी खातों में की जाने वाली अदायगियो का योग लगभग १४,३३० करोड़ रुपये हो जाता है,

जिसकी वित्तीय व्यवस्था देश के विदेशी विनिमय की कमाई से तथा और अधिक विदेशी उधार लेकर करनी होगी।

इसके विरुद्ध योजना के पाँच वर्षों की अवधि मे निर्यात से ८,०३० करोड रुपए की कमाई होने की आशा है।

चूँकि देश के पास ऐसे विदेशी विनिमय प्रारक्षण नही है कि जिनमें से विदेशी मुद्रा प्राप्त करके आयात सम्बन्धी भुगतान अथवा विदेशी ऋणभार के भुगतान किए जा सक। अत विदेशी भुगतान की स्थिति को सन्तुलित करने के लिए लगभग ६,३०० करोड रुपए की विदेशी पूँजी इस देश मे आयगी (अवमूल्यन से पूर्व की विनिमय दरो के अनुसार ४,००० करोड रुपए की पूँजी)। इस पूँजी-प्रवाह का एक भाग तो प्रत्यक्ष विदेशी निवेशो के रूप मे ही होगा, और वह भी मुख्यत गैर सरकारी औद्योगिक क्षेत्र मे। शेष मुद्रा के लिये विकसित देशों तथा अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ से कर्ज तथा अनुदान की व्यवस्था करनी होगी।

राष्ट्रीय आय

रूपरेखा में यह अनुमान लगाया गया है कि यदि चौथी आयोजना में निर्धारित लक्ष्य पूरे कर लिये गये, तो राष्ट्रीय आय बढ कर (१९६५-६६ के मूल्यों के आधार पर) सन् १९७०-७१ में ३०,५३० करोड रुपए हो जायेगी। परन्तु कुछ ऐसी सम्भावनाओ, जैसे कि खराब मौसम, विदेशी उधार प्राप्त करने में अथवा आयोजना को कार्यान्वित करने में देरियां तथा कुछ अदृश्य सम्भावित घटनाओं का ध्यान रखते हुए, राष्ट्रीय आय के लक्ष्य में कुछ गुंजाइश छोडना ठीक समझा गया है। अत सन् १९७०-७१ मे सम्भावित राष्ट्रीय आय (१९६५-६६ के मूल्यो के आधार पर) लगभग २९ ५०० करोड रुपये निश्चित की गई है, जबकि १९६४-६५ मे यह २१,४०० करोड रुपए और १९६५-६६ में १९,९०० करोड रुपए थी। राष्ट्रीय आय म सन् १९६५-६६ के स्तर के ऊपर ४८ प्रतिशत की वृद्धि होगी। किन्तु चूँकि १९६५-६६ का वर्ष एक असाधारण वर्ष था, अत अधिक व्यावहारिक एव वास्तविक यही होगा कि हम १९६५-६६ के स्थान पर सन् १९६४-६५ के वर्ष के स्तर के आधार पर राष्ट्रीय आय की वृद्धि पर विचार करे और इस स्थिति मे यह वृद्धि ३८ प्रतिशत होगी। प्रति व्यक्ति आय के सम्बन्ध मे यह आशा की जाती है कि यह सन् १९७०-७१ मे ५३२ रुपए हो जायेगी, जब कि १९६४-६५ मे ४४८ रु० थी। इस प्रकार, इसमे प्रतिवर्ष ३ प्रतिशत की वृद्धि होगी।

सन् १९६०-६१ की कीमतो के आधार पर, सन् १९६४-६५ मे १६,६३० करोड रुपये के मुकाबले सन् १९७०-७१ मे राष्ट्रीय आय २३,१०० करोड रुपए और प्रति व्यक्ति आय सन् १९६४-६५ मे ३४८ के मुकाबले सन् १९७०-७१ मे ४१७ रुपए हो जाने की आशा है।

किन्तु चौथी पचवर्षीय आयोजना स्थगित कर दी गई और अब यह अप्रैल १९६९ से आरम्भ होगी। इस बीच लागू करने के लिए वार्षिक आयोजनाओं का

निर्माण किया गया है। चौथी आयोजना के ढाँचे के निर्धारण का कार्य आरम्भ हो गया है। अतः चौथी आयोजना का यह मसौदा इसकी अन्तिम रूपरेखा के निर्धारण के लिये आधार का कार्य करेगा।

पंचवर्षीय आयोजनाओं में श्रम

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना से पूर्व की आंशिक आयोजनाओं में श्रम को क्या स्थान प्रदान किया गया था, इस पर भी विचार कर लेना चाहिये। बम्बई आयोजना ने सबके लिये सामाजिक सुरक्षा पर बल दिया था तथा औद्योगिक श्रमिकों के लिये एक न्यूनतम जीवन-स्तर एवं न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने का सुझाव दिया था। श्रम समस्याओं पर राष्ट्रीय आयोजना समिति ने भी विस्तृत रूप से विचार किया था तथा इस समिति के अन्तर्गत श्रम विषय पर एक उप-समिति की स्थापना की गई थी। इसकी रिपोर्ट पर राष्ट्रीय आयोजना समिति ने श्रमिकों के रहने व उनकी कार्य की दशाओं के नियन्त्रण हेतु प्रस्ताव पारित किये थे। कार्य के घण्टे प्रति सप्ताह ४८ तथा प्रतिदिन ९ निर्धारित करने की सिफारिश की गई थी। रोजगार के लिये बालकों की न्यूनतम आयु को बढ़ाकर १५ वर्ष करने की सिफारिश थी। श्रमिकों को जीवन निर्वाह मजदूरी दिलाने, उनके लिये न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने तथा मजदूरी से सम्बन्धित अन्य सभी प्रश्नों पर विचार करने के लिये एक मजदूरी-निर्धारण व्यवस्था स्थापित करने का सुझाव दिया गया था। स्वास्थ्य, सुरक्षा व रात्रि-कार्य की दशाओं में सुधार करने के लिये सुझाव देने के हेतु एक विशेष समिति की स्थापना की भी सिफारिश की गई थी। आवास की व्यवस्था करना राज्य का एक राष्ट्रीय कर्तव्य माना गया था। राज्य द्वारा आवास की व्यवस्था के साथ ही, स्थानीय निकाय (Bodies), मालिकों तथा सहकारी आवास समितियों द्वारा भी आवास योजनाओं को बनाने की सिफारिश की गई थी। सभी श्रमिकों के लिए एक वर्ष तक कार्य करने के पश्चात् दस लगातार सवेतन छुट्टियों की सिफारिश थी। श्रमिक क्षतिपूर्ति की दरों में भी संशोधन करने का सुझाव था। मातृत्व-कालीन लाभ के लिये एक विशेष निधि बनाने का सुझाव भी दिया गया था। समान कार्य के लिये समान वेतन की नीति को लागू करने की सिफारिश की गई थी। औद्योगिक श्रमिकों के लिये अनिवार्य और अंशदान वाली बीमा प्रणाली का भी सुझाव दिया गया था। पढ़ाई-लिखाई, तकनीकी शिक्षा, श्रमिक संघ, व्यापार विवाद, श्रम व्यवस्था व कानूनों का लागू करना तथा नाविकों व गोदी श्रमिकों के लिये कानून बनाने आदि के सम्बन्ध में भी अनेक सिफारिशें की गई थीं। औद्योगिक विवादों के लिये विवाचन का समर्थन किया गया था। एक विशेष बात यह थी कि घरेलू नौकरों के कार्यों के घण्टे, मजदूरी, छुट्टियां, सामाजिक बीमा आदि के लिये विधान बनाने की भी सिफारिश की गई थी।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना के प्रारूप का भाग ३ अध्याय १४ श्रम व औद्योगिक सम्बन्धों के विषय में था और प्रथम आयोजना के अन्तिम मसौदे में तृतीय

भाग का ३४वां अध्याय श्रम विषय पर था। श्रम समस्याओं पर आयोग की विचार-धारा एक ओर तो इस बात पर आधारित थी कि श्रमिक वर्ग के कल्याण पर ध्यान दिया जाय और दूसरी ओर इस बात पर भी बल दिया गया था कि श्रम समस्याओं का देश के विकास तथा आर्थिक स्थिरता मे महत्वपूर्ण योगदान होता है। आयोजना आयोग के अनुसार श्रमिको की भोजन, वस्त्र एव आवास व्यवस्था की आधारभूत आवश्यकतायें अवश्य पूर्ण होनी चाहियें। श्रमिको को उन्नत स्वास्थ्य सेवाओ, विस्तृत सामाजिक सुरक्षा, उत्तम शैक्षणिक अवसरो तथा आमोद-प्रमोद व सांस्कृतिक सुविधाओ से पूर्ण लाभ उठाने के अवसर भी मिलने चाहियें। कार्य की दशायें इस प्रकार की होनी चाहिये कि उनके स्वास्थ्य पर कुप्रभाव न पडे और उनकी व्यवसाय-जनित तथा अन्य खतरो से सुरक्षा भी हो सके। प्रबन्धको को श्रमिको का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये। यदि उन्हे उचित व्यवहार नही मिलता तो उनको यह सुविधा होनी चाहिए कि किसी निष्पक्ष व्यवस्था तक अपना मामला प्रस्तुत कर सकें। अन्त मे, उनको अपने अधिकारो तथा हितो की रक्षा करने के लिये सगठित होने और अन्य वैधानिक साधन अपनाने की स्वतन्त्रता भी होनी चाहिये।

आयोग ने यह भी कहा कि इनमे अधिकांश अधिकारो को भारत के सविधान मे मान्यता प्रदान कर दी गई है तथा केन्द्रीय व राज्य सरकारें इनके प्रति सजग भी है। इस सम्बन्ध में अनेक श्रम कानूनो की ओर सकेत किया गया था और आयोग ने इस बात पर जोर दिया था कि नये विधानों को बनाने से पूर्व वर्तमान विधानो को पूर्ण रूप से कार्यान्वित करने के लिये हर सम्भव प्रयत्न करने चाहियें। भूमिहीन कृषक श्रमिको को पुन स्थापित करने की योजनाओ के लिये तथा उनके आवास के लिये जो भी धन निश्चित किया गया था उसके अतिरिक्त आयोजना अवधि मे केन्द्रीय एव प्रदेशीय सरकारो द्वारा श्रम कल्याण के लिये ७ करोड रुपये व्यय करने की व्यवस्था थी।

आयोजना ने श्रम से सम्बन्धित जो सिफारिश की थी वह निम्नलिखित विषयो पर थी—

(१) औद्योगिक सम्बन्ध, (२) मजदूरी और सामाजिक सुरक्षा, (३) कार्य की दशायें, (४) रोजगार और प्रशिक्षण, व (५) उत्पादकता।

(१) औद्योगिक सम्बन्ध (अध्याय ७ भी देखिए) —

आयोग ने इस ओर सकेत किया था कि आयोजना के लक्ष्यो की पूर्ति के लिए यह आवश्यक था कि निजी क्षेत्र मे मालिको और श्रमिको के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध हो। दूसरे शब्दो मे आर्थिक प्रगति के लिये औद्योगिक शान्ति का होना अत्यावश्यक है। औद्योगिक सम्बन्धो का इस प्रकार से विकास होना चाहिये कि श्रमिको को उद्योग के सचालन मे अधिक भाग लेने का अवसर प्राप्त हो सके। श्रमिको के सगठित होने, सघ बनाने और सामूहिक रूप से सौदाकारी करने के अधिकार को मान्यता देनी चाहिये और इस प्रकार श्रमिक सघो का स्वागत किया जाना

चाहिये। जो भी मत-भेद हो उनको पारस्परिक उचित समझौते की भावना से सुलझाना चाहिये और जब कोई अन्य साधन न रहे तब ही उनको सुलझाने के लिये निष्पक्ष रूप से जाँच या विवाचन का सहारा लेना चाहिये। उन विशेष मामलों के अतिरिक्त जब यह पाया जाये कि निर्णय विप्रतीप (Perverse) है या प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त के विपरीत है, अन्य मामलों में औद्योगिक न्यायालय या अधिकरण के निर्णय के विरुद्ध कोई अपील नहीं होनी चाहिए। परन्तु आयोग विवादों के असाधारण मामलो तथा मुख्य प्रश्नों को सुलझाने के लिये किसी व्यवस्था के बनाये जाने के विरुद्ध नही था। इसके अनुसार सुलह बोर्डों, जाच तथा विवाचन की भी व्यवस्था हो सकती है। परन्तु व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिये कि उसमें कानूनी बारीकियाँ और कागजी कार्यवाहियाँ कम से कम हो। इसके लिये प्रशिक्षित व्यक्ति तथा विशेषज्ञ भी होने चाहियें। आयोग ने मालिकों, श्रमिकों व सरकार के प्रतिनिधियो की एक त्रिदलीय व्यवस्था द्वारा मालिकों व श्रमिको के पारस्परिक सम्बन्धो को निर्धारित करने के लिये 'आदर्श नियमों' व 'स्तरो' को बनाने की सिफारिश की थी तथा विवाद होने की अवस्था मे यह कार्य केवल सरकार द्वारा करने का सुझाव था। इस प्रकार के समझौतो अथवा निर्णयो को न्यायालय या अधिकरणो द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिये। अखिल भारतीय प्रकृति के विवादो का सुलझाने के लिये एक केन्द्रीय अधिकरण की स्थापना की सिफारिश की गई थी। तत्काल ही विवादो का निबटारा करने के लिये मालिक मजदूर समितियाँ बनाने का सुझाव दिया गया था। अधिक व्यापक प्रकृति के विवादों के लिये, सम्पूर्ण उद्योग के लिये व केन्द्र में, सयुक्त समितियों की स्थापना का सुझाव दिया गया था।

विवादो की रोक-थाम के लिये आयोग ने यह सुझाव दिया था कि मालिकों व श्रमिको के कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वो का उल्लेख स्पष्ट रूप से होना चाहिये। प्राधिकारियो तक श्रमिकों की पहुँच होनी चाहिये। उन्हे उद्योग से सम्बन्धित बातो तथा उनके हित मे परिवर्तन लाने वाली सभी बातों का ज्ञान होना चाहिये और उनके सम्बन्ध में सूचनाये मिलती रहनी चाहिएं। श्रमिकों में सामाजिक मेल-मिलाप बढ़ाने के लिये भी कार्य करने चाहियें। सार्वजनिक क्षेत्र के सम्बन्ध से आयोग का कथन था कि श्रमिक एक नागरिक के रूप मे मालिक तथा श्रमिक के रूप मे सेवक है। ऐसे सस्थानो मे कार्य की दशायें तथा कल्याण सम्बन्धी प्रबन्ध ऐसे होने चाहियें जो दूसरो के लिये आदर्श हों। इनमें समस्त श्रम-कानूनों को भी लागू किया जाना चाहिये तथा निर्देशको के मण्डल मे कुछ व्यक्ति श्रमिको से सहानुभूति रखने वाले भी होने चाहिये। आयोग ने आयोजना की सफलता के लिये श्रमिक व मालिको के सघो के सहयोग पर भी जोर दिया था।

(२) मजदूरी और सामाजिक सुरक्षा—

आयोजना आयोग के अनुसार हाल ही के वर्षों मे मूल्यो में वृद्धि होने के साथ-साथ मजदूरी और लाभ मे भी बढ़ोतरी हुई है। आयोजना अवधि मे मुद्रा-

स्फीति को रोकने के लिये लाभ और मजदूरी को नियन्त्रित करना आवश्यक है। आयोग मजदूरी मे वृद्धि करने के पक्ष मे नही था, सिवाय उस परिस्थिति के जहाँ मजदूरी मे अनुचित रूप से असमानतायें थी या जहाँ पर मजदूरी बहुत कम थी। मजदूरी बोर्डों तथा अधिकरणो की मजदूरी नीति यह होनी चाहिये कि आय की असमानतायें कम हो तथा राष्ट्रीय आय मे श्रमिक को उचित भाग मिले। न्यूनतम मजदूरी विधान को पूर्ण और प्रभावशाली ढग से आयोजना काल मे कार्यान्वित करने का सुझाव था। मजदूरी के समानीकरण का भी सुझाव दिया गया था। बोनस की अदायगी नकदी मे सीमित रूप से करनी चाहिये तथा शेष राशि श्रमिक की बचत मे जमा हो जानी चाहिये। लाभ-सहभाजन तथा बोनस के बारे मे आयोग ने केवल इतना ही सकेत किया था कि इन समस्याओ के लिये एक विशेषज्ञ स्तर पर अध्ययन की आवश्यकता थी। मजदूरी की समस्यायें सुलझाने के लिये त्रिदलीय आधार पर स्थायी मजदूरी बोर्डों की स्थापना की सिफारिश थी। (अध्याय १५ भी देखिये)।

सामाजिक सुरक्षा के सम्बन्ध मे आयोग का कथन था कि इसकी कमी के कारण स्थायी एव कार्य-कुशल श्रमिक वर्ग की स्थापना मे बाधा पडती है। तथापि, आयोजना की अवधि मे, आयोग ने सुझाव दिया कि श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, मातृत्व कालीन लाभ अधिनियम, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, कर्मचारी प्रोविडेन्ट फण्ड अधिनियम, कोयला खान प्रोविडेन्ट फण्ड निधि और बोनस योजनाओ को पूर्ण तथा उचित रूप से कार्यान्वित करना चाहिये।

(३) कार्य की दशायें—

आयोग के अनुसार कारखानो मे कार्य की दशाओ मे बहुत अधिक सुधार करने की आवश्यकता थी। इस दृष्टि से सन् १९४८ के कारखाना अधिनियम, सन् १९५१ का बागान श्रम अधिनियम तथा दुकानो एव वाणिज्य संस्थानो व मोटर यातायात आदि के लिये जो विधान थे वह पर्याप्त थे, परन्तु उनको उचित रूप से कार्यान्वित किये जाने की आवश्यकता थी। आयोग ने एक औद्योगिक स्वास्थ्य, सुरक्षा व कल्याण के राष्ट्रीय सग्रहालय की स्थापना करने का भी सुझाव दिया था (अध्याय १४ तथा १८ भी देखिये)।

(४) रोजगार और प्रशिक्षण—

आयोजना आयोग ने मानव शक्ति के उचित प्रकार से प्रयोग करने की महत्ता पर विशेष बल दिया था और भर्ती-प्रणाली मे सुधार करने के लिये सुझाव दिये थे। रोजगार दफ्तरो का सगठन सुदृढ रूप से किया जाना चाहिये। प्रशिक्षण सुविधाओ का उचित रूप से समन्वय किया जाना चाहिये (अध्याय ३ भी देखिये)। उत्पादन व्यय को कम करने के लिये कुछ उद्योगो मे सतर्कतापूर्वक विवेकीकरण लागू करने का भी सुझाव दिया गया था।

(५) उत्पादकता—

मालिक श्रम की उत्पादकता की शिकायत करते हैं परन्तु श्रमिक इस बात को स्वीकार नहीं करते। अतः आयोग ने सुझाव दिया था कि कार्य-प्रणाली, नौकरियों का वर्गीकरण, मजदूरी दर आदि की चालू व्यवस्था का अध्ययन किया जाना चाहिये ताकि कार्यकुशलता तथा उत्पादकता में वृद्धि करने के लिये सुझाव दिये जा सकें। एक अन्तर-कार्य प्रशिक्षण योजना का भी सुझाव दिया गया था।

आयोजना आयोग ने *आवास व्यवस्था* का एक पृथक् अध्याय में विवेचन किया था। इसका उल्लेख आवास समस्या वाले अध्याय में किया जा चुका है। (अध्याय ६ देखिये)।

कृषक श्रमिकों का भी आयोग ने एक पृथक् अध्याय में विवेचन किया था। १९५१ की जनगणना के अनुसार २९·५ करोड़ ग्रामीण जनसंख्या में से २४·९ करोड़ व्यक्ति कृषि-कार्य में लगे हुये थे। इनमें से १८ प्रतिशत कृषक मजदूर एवं उनके आश्रित थे। पंचवर्षीय आयोजना में कृषि व गाँव की उन्नति के लिये जो कार्यक्रम दिये गये थे उनका उद्देश्य इन श्रमिकों की सहायता करना भी था। आयोग ने कृषि श्रमिकों के हित के लिये निम्नलिखित अन्य सुझाव भी दिये थे: मकानों की जमीनों में मौरूसी अधिकार प्रदान करना, भूदान आन्दोलन का अनुमोदन, श्रम उत्पादन, सहकारी समितियों की स्थापना, वित्तीय सहायता, शिक्षा छात्रवृत्ति और न्यूनतम मजदूरी आदि।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना के २७वें अध्याय में *श्रम नीति* और *कार्यक्रमों* का उल्लेख किया गया था। राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में औद्योगिक श्रमिक की महत्ता के प्रति बढ़ती हुई चेतना को दृष्टिगत रखते हुये प्रथम पंचवर्षीय आयोजना का निर्माण किया गया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् श्रमिकों को उनके ऐसे अधिकारों को मान लेने के लिये अनेक आश्वासन दिये गये थे जिनकी बहुत समय से उपेक्षा होती रही थी। इन आश्वासनों को वास्तविक रूप देने तथा अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों की आवश्यकताओं के अनुसार श्रमिकों से उचित व्यवहार करने के लिये प्रथम आयोजना के अन्तर्गत कुछ प्रयत्न किये गये थे। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में यह उल्लेख था कि औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार, विभिन्न स्तरों पर संयुक्त परामर्शों की व्यवस्था की सफलता तथा गत पाँच वर्षों में श्रमिकों की वास्तविक आय में वृद्धि को दृष्टिगत रखते हुए यह कहा जा सकता है कि श्रम के क्षेत्र में प्रथम आयोजना सफल रही थी। द्वितीय आयोजना में प्रथम आयोजना के अन्तर्गत निर्धारित श्रम नीति को कुछ संशोधनों के साथ चालू रखा गया। यह संशोधन समाज के समाजवादी ढांचे के उद्देश्य को मान लेने के कारण किये गये थे। (अध्याय १ भी देखिये)।

आयोजना में इस ओर संकेत किया गया था कि *औद्योगिक प्रजातन्त्र* स्थापित करने के लिये शक्तिशाली श्रमिक संघ आन्दोलन का होना आवश्यक है। यह तभी हो सकता है जब श्रमिक संघों की वित्तीय स्थिति में सुधार किया जाये,

श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने के अधिकार को मान लिया जाये तथा श्रमिकों के नेता भी श्रमिकों में से ही बनाने के प्रयत्न किये जायें। इन सब कार्यों के लिये श्रमिकों को श्रमिक संघवाद और संघ प्रणाली में प्रशिक्षण देना आवश्यक है। (अध्याय ५ भी देखिये)।

औद्योगिक सम्बन्धों के विषय में द्वितीय आयोजना की सिफारिशों का उल्लेख अध्याय ७ में किया जा चुका है। आयोजना में औद्योगिक अनुशासन के विभिन्न पहलुओं पर जोर दिया गया है। समाज के समाजवादी ढाँचे के लिये यह आवश्यक है कि श्रमिकों की यह माँग कि उनके आर्थिक एवं सामाजिक स्तर में सुधार हो, स्वीकार कर लेनी चाहिये। परन्तु दूसरी ओर यह भी आवश्यक है कि श्रमिक अपने उत्तरदायित्व को समझें। इसका अर्थ यह है कि हिंसा व अनुशासन-हीनता की प्रवृत्तियों को रोकने के लिये उनके ऊपर कड़ी निगरानी रखनी पड़ेगी।

मजदूरी के सम्बन्ध में आयोजना के प्रस्तावों का उल्लेख अध्याय १५ में किया जा चुका है। कर्मचारी प्रोविडेन्ट फण्ड योजना और कर्मचारी राज्य बीमा योजना को विस्तृत करने का प्रस्ताव था तथा प्रोविडेन्ट फण्ड में अंशदान की दर ६¼% से बढ़ाकर ८⅓% करने का सुझाव दिया गया था। बोनस और लाभ सह-भाजन के सिद्धान्त का और अधिक अध्ययन करने का सुझाव दिया गया था। (अध्याय १६ भी देखिये)।

आयोजना के अनुसार विवेकीकरण की योजनाओं को सम्बन्धित पक्षों में आपसी समझौते के अनुसार लागू करना चाहिये। विशेष समस्याओं के समाधान हेतु केन्द्रीय सरकार द्वारा एक उच्च प्राधिकारी की नियुक्ति की भी सिफारिश की गई थी।

निर्माण उद्योग व यातायात सेवाओं में काम की दशाओं को विनियमित करने का सुझाव था। ठेके के श्रमिकों को निरन्तर रोजगार प्रदान करने के लिए तथा उनकी काम की दशाओं को उत्तम बनाने के लिये भी पग उठाये जाने चाहिये। कृषक श्रमिकों के लिये न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने तथा उन्हें रोजगार की अन्य सुविधायें प्रदान करने के लिये भी हर प्रकार के प्रयत्न करने चाहिये। (अध्याय २३ भी देखिये)। स्त्री श्रमिकों की विशेष समस्याओं की ओर भी उचित ध्यान देना आवश्यक है।

द्वितीय आयोजना में श्रम और श्रम-कल्याण से सम्बन्धित योजनाओं पर १९.८१ करोड़ रुपये की धनराशि व्यय किये जाने की व्यवस्था थी। इसमें से १२ करोड़ रुपये केन्द्र की तथा ७.८१ करोड़ रुपये राज्यों की आयोजनाओं पर व्यय किये जाने का सुझाव था। इस सम्बन्ध में जो मुख्य योजनायें थीं वह प्रशिक्षण सुविधाओं, भर्ती के दफ्तरों की स्थापना तथा रोजगार सेवा संगठन को विस्तृत करने की थीं। (अध्याय ४ भी देखिये)। 'श्रव्य दृष्टि (Audio visual) के माध्यम से श्रमिकों को शिक्षा देने के लिये एक फिल्म शाखा की स्थापना भी करने का सुझाव था। आयोजना में यह भी प्रस्ताव था कि कृषि श्रमिकों, मजदूरों और

श्रमिक-वर्ग के पारिवारिक बजटों से सम्बन्धित विषयों पर सर्वेक्षण और जाँच की जायें। राज्यों द्वारा प्रदान की गई कल्याण सुविधाओं की प्रशंसा की गई थी। कोयला व अभ्रक खान कल्याण निधियों के समान ही मैंगनीज उद्योग के लिये एक कल्याण निधि बनाने की सिफारिश की गई थी। आयोजना में औद्योगिक आवास के लिये भी धनराशि निर्धारित की गई थी जिसका उल्लेख अध्याय ६ में किया जा चुका है।

आयोजना के सुझावों को कार्यान्वित करने के लिये जो पग उठाये गये थे उनकी प्रगति का उल्लेख भी प्रत्येक सम्बन्धित अध्याय में ऊपर दिया जा चुका है।

यह सुझाव दिया गया था कि तृतीय आयोजना में श्रम-नीति का लक्ष्य यह होना चाहिये कि प्रथम दो आयोजनाओं की नीतियों व कार्यक्रमों में जो भाग अपूर्ण रह गये है उन्हें पूर्ण किया जाये, विशेष रूप से इन बातों के सम्बन्ध में : उचित तथा आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम मजदूरी, प्रबन्ध में श्रमिकों का भाग, अधिक रोजगार और औद्योगिक विवादों का शीघ्र एवं अन्तिम निपटारा। भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने एक स्मृति-पत्र में यह सुझाव दिया था कि तेजी से बढ़ती हुई कीमतों के विरुद्ध श्रमिकों को सुरक्षा प्रदान करने के लिये खाद्यान्न की उपदान-प्राप्त कीमतें निश्चित की जायें, इस बात का निश्चय करने के लिये कि बोनस की मात्रा तथा उसके देने की कसौटी क्या हो एक बोनस आयोग की नियुक्ति की जाये, सरकारी, गैर-सरकारी तथा सहकारी क्षेत्रों के लिये एक सी श्रम-नीति निश्चित की जाये, मुख्य उद्योगों की जर्जरित, सीमान्त तथा कुप्रबन्धित इकाइयों को अपने हाथ में लेने के लिये प्रत्येक उद्योग के लिये एक राज्य द्वारा सहायता-प्राप्त एवं प्रेरित निगम की स्थापना की जाये और उपर्युक्त तीनों ही क्षेत्रों के लिये खातों का लेखा-परीक्षण के कार्य का राष्ट्रीयकरण किया जाये। कांग्रेस ने औद्योगिक सम्बन्धों में प्रत्यक्ष बातचीत, श्रम समितियों तथा ऐच्छिक पंच-निर्णयों के योगदान पर भी जोर दिया और सुझाव दिया कि सरकार को जो यह अधिकार प्राप्त है कि वह किसी पंचाट (Award) को स्वीकृत, अस्वीकृत अथवा संशोधित कर सके, केवल संकट काल के लिये ही सीमित कर दिया जाना चाहिये। मार्च १९६० में, स्थायी श्रम समिति ने यह सिफारिश की कि विवादों का निपटारा करने के लिए ऐच्छिक विवाचन का अधिकाधिक आश्रय लिया जाये, मालिकों व श्रमिकों के संगठनों के परामर्श से विवाचकों (Arbitrators) की सूची तैयार की जाये तथा मालिकों द्वारा श्रमिक संघों को मान्यता प्रदान की जाये।

जनवरी १९६० में, मद्रास में तृतीय अखिल भारतीय श्रम आर्थिक सम्मेलन में यह सुझाव दिया गया था कि तृतीय आयोजना में श्रम-नीति इस बात पर आधारित होनी चाहिये कि औद्योगिक मामलों में राज्य का कम से कम हस्तक्षेप हो और श्रमिक ही अधिकाधिक हिस्सा लें तथा विधान पर कम से कम निर्भर रहा जाये। परन्तु श्रम सम्बन्धी जो भी विधान बने, उसे दृढ़ता से लागू किया

जाये श्रौर श्रम-निरीक्षको को इतने अधिकार दिये जायें कि श्रम कानूनो के प्रभाव-पूर्ण क्रियान्वयन के सम्बन्ध मे आश्वस्त हुआ जा सके। श्रम-प्रशासन से सम्बन्धित सरकारी अधिकारियो तथा प्रबन्ध करने वाले कर्मचारी वर्ग को समुचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। अभी तक बेरोजगारी बराबर बढ रही है श्रौर श्रमिको मे भारी निराशा व्याप्त है। इन दोनो ही बातो से यह प्रकट होता है कि हम प्रथम दो आयोजनाश्रो मे निर्धारित विभिन्न लक्ष्यो को पूरी तरह लागू करने मे समर्थ नही हुए हैं। इस बात मे भी सन्देह व्यक्त किया गया था कि सामाजिक रचना तथा संस्थागत ढाँचे पर परिवर्तन किये बिना क्या हम श्रौद्योगिक लोकतन्त्र की स्थापना कर भी सकते है।

तृतीय पचवर्षीय श्रायोजना मे श्रम नीति

तृतीय पचवर्षीय श्रायोजना की अन्तिम रिपोर्ट मे अध्याय २५ श्रम नीति के विषय मे है। रिपोर्ट में कहा गया है कि उद्योग श्रौर श्रमिक वर्ग की विशेष आवश्यकताश्रो श्रौर आयोजित अर्थ-व्यवस्था की जरूरतो को देखते हुए श्रम नीति का विकास किया गया है। मालिको, मजदूरो श्रौर सरकार—तीनो दलो की राय विचार विनिमय से जान ली जाती है तथा तीनो दलो के प्रतिनिधियो के सयुक्त परामर्श के फलस्वरूप कुछ सिद्धान्त श्रौर व्यावहारिक नीतियाँ बना ली गई हैं। यह परामर्श विभिन्न स्तरो पर किया जाता है श्रौर इस त्रिदलीय व्यवस्था के सर्वोच्च शिखर पर भारतीय श्रमिक सम्मेलन है। उक्त त्रिदलीय मत सरकार द्वारा जो वैधानिक तथा प्रशासनिक कार्य श्रम क्षेत्र मे किये जाते हैं उनका आधार बन कर राष्ट्रीय श्रम नीति की शक्ति तथा प्रकृति मे परिणित होता है। यह नीति ऐच्छिक आधार पर चालू रहती है।

दूसरी श्रायोजना की अवधि मे अनुचित प्रवृत्तियो को रोकने श्रौर श्रौद्योगिक सम्बन्धो को सुदृढ करने के लिये एक नये दृष्टिकोण को अपनाया गया था, जो कानूनी शक्ति के स्थान पर नैतिक मान्यताश्रो पर आधारित था। इस समय प्रत्येक स्तर पर यथासम्भव कार्यवाही करके अशान्ति को रोकने पर बल दिया जा रहा है। दूसरी श्रायोजना की अवधि मे जो उल्लेखनीय विकास हुये उनमे से कुछ निम्नलिखित हैं—उद्योग मे अनुशासन सहिता श्रौर आचरण सहिता का लागू करना, प्रबन्ध मे श्रमिकों के भाग लेने की योजनायें श्रौर उद्योग मे उत्पादकता बढाने के प्रति बढती हुई जागरुकता। आगामी वर्षों में उन विचारो को पूर्ण रूप से लागू करना है जिनको दूसरी पचवर्षीय श्रायोजना की अवधि मे लागू करके उपयोगी पाया गया है। श्रौद्योगीकरण की बढती हुई गति को देखते हुये, तीसरी श्रायोजना म श्रमिको को महत्वपूर्ण योग देना है श्रौर अपने बढते हुये उत्तरदायित्वो को पूरा करना है। सरकारी क्षेत्र के विस्तार के फलस्वरूप श्रम आन्दोलन के कर्त्तव्यो मे गुणगत (Qualitative) अन्तर आ जायगा श्रौर इसके फलस्वरूप सामाजिक व्यवस्था को समाजवाद की श्रोर ले जाने मे आसानी होगी।

तृतीय आयोजना मे जो श्रम सम्बन्धी कार्यक्रम व सुझाव दिये गये है उनका उल्लेख पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है । औद्योगिक सम्बन्धों के बारे में अध्याय ७ देखिये । आयोजना में इस बात पर भी बल दिया गया है कि औद्योगिक सम्बन्धी व्यवस्था मे जो कर्मचारी कार्य करते हैं उनके चुनाव और प्रशिक्षण की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है । इसके लिये एक प्रशिक्षण कार्य-क्रम लागू करने का प्रस्ताव है । श्रमिक शिक्षा कार्य-क्रम के लिये अध्याय ११ देखिये । श्रमिक सघों के सम्बन्ध मे आयोजना के सुझाव अध्याय ५ मे देखिये । मजदूरी के सम्बन्ध में अध्याय १५ देखिये । सामाजिक सुरक्षा के सम्बन्ध मे अध्याय १२ देखिये । कृषि श्रमिकों के लिये आयोजना के सुझाव अध्याय २३ में देखिए । आवास के लिये अध्याय ६ देखिए । प्रशिक्षण कार्य-क्रमो के लिये अध्याय ३ तथा रोजगार दफ्तरों के सम्बन्ध मे सुझाव के लिये अध्याय ३ देखिए । मिलों के बन्द हो जाने से श्रमिकों की सहायता के लिये कार्य-क्रम अध्याय १२ में देखिए । उत्पादकता के सम्बन्ध में आयोजना के विचार अध्याय १८ मे देखिए ।

कार्य की दशायें, सुरक्षा और कल्याण सम्बन्धी जो कानूनी व्यवस्थाये हैं उनको और अच्छी तरह कार्यान्वित करवाने के लिये, आयोजना के अनुसार, आवश्यक पग उठाने होंगे । इस सम्बन्ध में कार्य दशायें और कुशलता मे उन्नति करने मे केन्द्रीय श्रम सस्थान और क्षेत्रीय श्रम सस्थानो का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है । कारखाना सम्बन्धी अधिनियमो के प्रशासन के लिए जो राज्य सरकारों ने व्यवस्था की है उसे दृढ बनाना होगा । कारखानों मे दुर्घटना कम करने के लिए आवश्यक पग उठाने के लिये एक स्थायी सलाहकार समिति की नियुक्ति की जायेगी । खान उद्योग में सुरक्षा-शिक्षा और प्रचार के लिए एक राष्ट्रीय खान सुरक्षा परिषद् की स्थापना करने का सुझाव है । इमारती और निर्माण कार्य के श्रमिको के लिये अलग सुरक्षा कानून बनाने के प्रश्न पर विचार किया जाएगा । जिस प्रकार कोयला और अभ्रक खान श्रमिकों के लिये कल्याण निधियाँ हैं उसी प्रकार मैंगनीज और कच्चा लोहा खान उद्योगो के श्रमिको के लिये कल्याण निधियों की स्थापना की जाएगी ।

जहाँ तक श्रमिक सहकारी समितियों का सम्बन्ध है । आयोजना में यह कहा गया है कि श्रमिक वर्ग के लिए सहकारिता ने अभी तक कुछ अधिक कार्य नही किया है । केवल खान श्रमिकों के लिए कुछ खान समितियाँ है तथा कुछ सहकारी आवास समितियाँ भी है परन्तु सहकारिता और विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियो का श्रमिको के लिए बहुत लाभ होगा । सहकारी साख समितियों और सहकारी उपभोग समितियों के चलाने मे श्रमिक सघो और स्वय-सेवी संस्थाओं को अधिक रुचि लेनी चाहिये ।

ठेके के श्रमिकों के सम्बन्ध में आयोजना मे यह कहा गया है कि विभिन्न अध्ययनो की सहायता से ऐसे व्यवसाय चुनना सम्भव हो सकता है जिनमे ठेके के श्रमिको की पद्धति को चलाने की इजाजत दी जा सकती है और जहाँ इस पद्धति

को समाप्त करना सम्भव नहीं है वहाँ ऐसे श्रमिकों के हितों की सुरक्षा के लिए पग उठाए जाने आवश्यक हैं। कृषि और असंगठित उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों की समस्याओं पर सरकार और श्रमिक संघों को विशेष ध्यान देना चाहिए।

तृतीय पंचवर्षीय आयोजना अवधि में श्रम अनुसन्धान का कार्य भी विस्तृत किए जाने की व्यवस्था है। श्रम अनुसन्धान का समन्वय करने के लिए एक छोटी केन्द्रीय समिति की नियुक्ति की जायगी। इसके अतिरिक्त सरकारी क्षेत्र के बाहर श्रम सम्बन्धी मामलों पर अनुसन्धान करने के लिये संस्थाओं को सुविधायें देने का विचार है।

तृतीय आयोजना में श्रम और श्रम कल्याण के कार्यक्रमों पर जो व्यय होगा उसका अनुमान ७१ ०८ करोड़ रुपये है। इसमें से ४४ करोड़ रुपये केन्द्र द्वारा, २५ १६ करोड़ रुपए राज्यों द्वारा तथा १ ८६ करोड़ रुपये केन्द्रीय प्रशासित क्षेत्रों में व्यय किया जाने का कार्यक्रम है।

चौथी आयोजना के मसौदे की रूपरेखा के अध्याय २२ में श्रम नीति व तत्सम्बन्धी कार्यक्रमों की विवेचना की गई है जिनका उल्लेख अध्याय १, ३, ५, ७, ६, ११ १२, १५ और २३ में विभिन्न स्थानों पर किया गया है। चौथी आयोजना में श्रमिकों के प्रशिक्षण एवं अन्य कार्यक्रमों के लिए १४५ करोड़ रुपए नियत किए गए हैं।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

इसमें सन्देह नहीं कि आयोजना के सभी सुझाव एवं प्रस्ताव अति सुन्दर हैं परन्तु बहुत कुछ उनके उचित प्रकार से कार्यान्वित होने पर निर्भर करता है अन्यथा केवल कोरी आशाओं से अधिक सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती। औद्योगिक श्रमिकों से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान के लिये एक निश्चित मार्ग को अपनाना अति आवश्यक है। तृतीय आयोजना की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि इसमें बेरोजगारी की समस्या का कोई समाधान नहीं है। जब तृतीय आयोजना आरम्भ हुई थी तो देश में ६० लाख व्यक्ति बेरोजगार थे, जब कि द्वितीय आयोजना के प्रारम्भ में यह संख्या ५३ लाख थी। तृतीय आयोजना के अन्त में, देश में बेरोजगार लोगों की अनुमानित संख्या १ करोड़ २० लाख थी। चौथी आयोजना की अवधि में इनमें २ करोड़ ३० लाख और रोजगार ढूँढने वालों की वृद्धि होगी। चौथी आयोजना के अन्तर्गत अपनाये जाने वाले कार्यक्रमों से इन ३ करोड़ ५० लाख लोगों में से केवल १ करोड़ ६० लाख लोगों को ही रोजगार मिल सकता है। परिणामस्वरूप १ करोड़ ६० लाख व्यक्ति फिर भी अगली आयोजना के प्रारम्भ में बेकार होंगे। एक आयोजना से दूसरी में पुरानी बेरोजगारी का बढ़ना बहुत गम्भीर समस्या है। तृतीय आयोजना में लाभ सहभाजन के बारे में भी कुछ नहीं कहा गया है। अनिवार्य विवाचन के सम्बन्ध में भी आयोजना

में कोई निश्चित बात नहीं कही गई है। श्रमिक संघों मे जो बाहरी नेता पाए जाते हैं इस समस्या पर भी आयोजना में और अधिक ध्यान देना चाहिये था। कई स्थानों पर इन बाहरी नेताओं की मालिकों द्वारा तथा श्रमविभाग के अधिकारियों द्वारा भी खुशामद की जाती है और इस कारण श्रमिकों को कई बार उचित व्यवहार प्राप्त नही हो पाता। इसके कारण मालिकों को भी कई बार ऐसी मांगों का सामना करना पडता है, जिन्हे वह पूरा नही कर सकते। मालिक मजदूर सम्बन्धो की समस्या को सुलझाने के लिये अभी तक पूर्ण रूप से मानवीय दृष्टि-कोण को नही अपनाया गया है। इस ओर अधिक प्रयत्न करने की आवश्यकता है। मालिको को यह बात समझानी है कि वह श्रमिकों से एक भाईचारे के नाते से व्यवहार कर तथा उद्योग मे उन्हे बराबर का भागी मानें। मालिको को युद्ध तथा उसके पश्चात् के काल में जो अत्यधिक लाभ हुए, उनकी आदत पड गई है। उनके दृष्टिकोण मे परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में भी एक दृढ नीति अपनानी होगी। औद्योगिक क्षेत्रो मे व्याप्त सामाजिक वातावरण की ओर भी अधिक ध्यान नही दिया गया है। इस सम्बन्ध मे सामाजिक कार्यकर्ताओ के कार्य की स्पष्ट व्याख्या होनी चाहिये। इस आरोप की ओर भी अधिक जाँच की आवश्यकता है कि श्रम सम्बन्धी कानूनों का अपवंचन किया जाता है तथा कई स्थानो पर उन्हें लागू नही किया जाता। गन्दी बस्तियों की समस्या का समाधान भी तब तक कठिन प्रतीत होता है जब तक सरकार अथवा स्थानीय निकायों द्वारा इनका अधिग्रहण नही कर लिया जाता। जब जमीदारी प्रथा को कृषि अर्थ-व्यवस्था मे समाप्त कर दिया गया है तो सरकार द्वारा इन गन्दी बस्तियो के मालिकों को भी सहन नही करना चाहिये क्योंकि जैसा श्री शिवाराव एम० पी० ने कहा है कि गन्दी बस्तियों के मालिको के प्रति कोई सहानुभूति नही दिखाई जानी चाहिये। आयोजना मे इन बस्तियों के अर्जन के लिए वित्तीय व्यवस्था होनी चाहिये थी।

उपसंहार

किसी भी आयोजना की सफलता के लिये देश के नागरिकों के हृदय में उत्साह, आयोजना मे विश्वास, व्यक्तियों में राष्ट्रीय चरित्र तथा अपने कर्त्तव्य के प्रति स्पष्ट बोध होना अति आवश्यक है। भारत जैसे निर्धन देश मे जहाँ व्यक्ति पिछड़े हुए व अज्ञानी है तथा अपने ही हितों को ठीक-ठीक नही समझते, एक अधिक तकनीकी आयोजना को लागू करने से कोई विशेष लाभ नही होगा। आयोजना सरल होनी चाहिये जिसे देश का प्रत्येक व्यक्ति सरलता से समझ सके और जो देश के हर नागरिक को स्पष्ट रूप से बता सके कि उसे क्या करना चाहिये। आयोजना जनसाधारण के लिये होनी चाहिये जिससे सब ही उसमें रुचि ले सकें और आयोजना पर विचार-विमर्श और वाद-विवाद कर सकें। सर्वप्रथम तो व्यक्तियो के चरित्र-निर्माण का प्रयत्न करना चाहिये तथा जीवन के सभी क्षेत्रों में कार्यकुशलता, ईमानदारी, सच्चरित्रता आदि पर बल देना चाहिये। देश के नेताओं

को जनता से निकट सम्पर्क स्थापित करना चाहिये, और उन्हें यह नहीं करना चाहिये कि स्वय तो भाषण देते रहें तथा दूसरो से कार्य करने के लिये कहते रहें। भारत मे ईमानदार और निष्कपट व्यक्तियो की कमी नही है ; आवश्यकता केवल इस बात की है कि उनके लिये कार्य करने का उचित वातावरण उत्पन्न किया जाय। हम आशा करनी चाहिये कि सरकार, आयोजना एवं जनता का इस महान कार्य मे पूर्ण रूप मे सहयोग होगा और वास्तविक दृष्टिकोण से सब कार्य किये जायेंगे। यह स्मरण रखना चाहिये कि देश का भविष्य इन पचवर्षीय आयोजनाओ की सफलता अथवा विफलता पर ही निर्भर करता है।

अन्त मे, हम तृतीय पचवर्षीय आयोजना के शब्दो मे कह सकते हैं कि—"कार्य की विशालता और उनकी बहुमुखी-चुनौती को कम नही आंकना चाहिये। आयोजना मे सबसे अधिक बल उसे कार्यान्वित करने, शीघ्र गति और सम्पूर्ण रूप से उसके व्यावहारिक परिणामो पर पहुँचने, अधिकाधिक उत्पादन और रोजगार की स्थिति उत्पन्न करने और मानवी साधनो का विकास करने पर ही होगा। अनुशासन और राष्ट्रीय एकता, सामाजिक एव आर्थिक उन्नति तथा समाजवाद के लक्ष्य की प्राप्ति के मूल आधार हैं। तीसरी आयोजना के प्रत्येक पग पर निष्ठा-पूर्ण नेतृत्व, सार्वजनिक सेवाओ की अधिकतम कर्त्तव्यपरायणता और कार्यकुशलता, जनता के व्यापक सहयोग और सहानुभूति तथा अपने उत्तरदायित्व को पूर्णतया निभाने और भविष्य मे अधिक भार वहन करने की तत्परता की आवश्यकता होगी।" हम आशा करते हैं कि हम सब इस चुनौती को स्वीकार करेंगे, ताकि "भारतीय जनता के लिये सुखी जीवन व्यतीत करने का अवसर प्रदान किया जा सके" और विदेशी आक्रमण से देश की रक्षा सफलतापूर्वक की जा सके।

परिशिष्ट क

उपभोक्ता मूल्य सूचकांक

CONSUMER PRICE INDEX NUMBERS

सूचकांक का अर्थ तथा उसका महत्व

सूचकांक एक ऐसी प्रणाली है जिसके माध्यम से किसी आर्थिक क्रिया के स्तर में हुए परिवर्तनों को मापा जाता है। ऐसे परिवर्तन सदा होते रहते हैं। विभिन्न अभिप्रायों की पूर्ति के लिये प्रायः यह आवश्यक होता है कि ऐसे परिवर्तनों की दिशाओं और सीमाओं को मापा जाए। उदाहरणार्थ–मूल्य कभी घटते हैं कभी बढ़ते हैं, उत्पादन भी कभी अधिक होता है कभी कम, मजदूरी में भी कभी बढ़ोत्तरी होती है और कभी घटोत्तरी, आदि-आदि। सूचकांक द्वारा इस प्रकार के परिवर्तनों को न केवल मापा जाता है वरन् उसके माध्यम से किसी स्थान या वर्ग के निर्वाह खर्च में बढ़ोत्तरी या घटोत्तरी का भी ज्ञान हो सकता है। अनेक ऐसे कारण हैं जिन से इन विशिष्ट घटनाओं या क्रियाओं से सम्बन्धित सूचनाओं को प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ जाती है। ऐसे सूचकांकों से जीवन-स्तर का बोध होता है। इसके अतिरिक्त जीवन-स्तर पर मूल्यों के परिवर्तन की क्या प्रतिक्रिया होती है यह भी विदित हो जाता है। आर्थिक, सामाजिक तथा प्रशासनिक कार्यों में भी इस प्रकार की सूचनाओं का विशेष महत्व होता है। सम्भवतः इन सूचकांकों की सबसे महत्व-पूर्ण व्यावहारिक उपयोगिता यह है कि मजदूरी को इन सूचकांकों से सम्बन्धित कर दिया जाता है और इन सूचकांकों के साथ-साथ मजदूरी भी घटती-बढ़ती रहती है। इस प्रकार मूल्यों तथा निर्वाह-खर्च के बढ़ने या घटने के साथ-साथ मजदूरी में भी वृद्धि या ह्रास स्वतः होते रहते है।

निर्वाह-खर्च स्वभावतः उपभोग के अन्तर्गत आने वाली विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों पर निर्भर रहता है। किन्तु सभी वस्तुओं के मूल्य सदा एक साथ नहीं घटते-बढ़ते हैं। कुछ वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि होती है तो कुछ वस्तुओं के मूल्य गिरते भी है। इसके अतिरिक्त विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों में भिन्न-भिन्न दरों पर बढ़ोत्तरी या कमी भी हो सकती है। अतः विभिन्न समयों पर विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों की सूची से स्थिति स्पष्ट रूप से प्रकाश में नहीं आ पाती। सूचकांकों का उद्देश्य यह होता है कि ऐसी विभिन्नताओं को कम कर दिया जाए और मूल्य परिवर्तनों की मुख्य प्रवृत्तियों या उनके व्यापक आँकड़ों को ज्ञात करने में सहायता मिले। सूचकांकों द्वारा आर्थिक क्रियाओं की तुलना करना सम्भव हो जाता है, इसलिये उन्हें कभी-कभी 'आर्थिक बैरोमीटर' (Economic Barometers) भी कहा जाता है।

गत कुछ वर्षो मे निर्वाह खर्च सूचकाक से सम्बद्ध साहित्य का पर्याप्त मात्रा मे प्रकाशन हुआ है । इस विषय पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय द्वारा तैयार की गई निर्वाह खर्च सांख्यकीय रिपोर्ट से भी बहुमूल्य सूचना प्राप्त होती है । यह रिपोर्ट श्रम सांख्यिकी शास्त्रियो के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के उस छठे अधिवेशन मे प्रस्तुत करने के लिये तैयार की गई थी जो अगस्त १९४७ मे 'मान्ट्रीयल' नामक स्थान पर हुआ था । नवीनतम परिभाषा के अनुसार *"निर्वाह-खर्च सूचकांक इस उद्देश्य से* बनाये जाते है कि जिन सेवाओ और वस्तुओ की उपभोक्ता माँग करता है उनके फुटकर मूल्यो के परिवर्तनो को उचित प्रकार से महत्वांकन (Weighting) करके मापा जाये ।" अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली के प्रयोग के अनुसार 'निर्वाह खर्च सूचकाक' के स्थान पर अब 'उपभोक्ता मूल्य सूचकाक' वाक्यांश का प्रयोग होने लगा है । यह नया वाक्यांश इस कारण भी अधिक उपयुक्त है कि सूचकाक वास्तव मे उपभोक्ता की वस्तुओ के मूल्यो को ही मापते है ।

सूचकाक की निर्माण विधि

उपभोक्ता मूल्य सूचकाक की निर्माण विधि से उपरोक्त बात और भी स्पष्ट हो जायेगी । क्योकि जीवन स्तर तथा निर्वाह खर्च स्थान-स्थान पर तथा वर्ग वर्ग मे भिन्न होता है इसलिए यह आवश्यक है कि सूचकाक के निर्माण मे प्रारम्भ मे उस वर्ग या क्षेत्र की सीमायें नियत कर ली जायें जिसके लिये सूचकाक का निर्माण किया जा रहा हो । इसके पश्चात एक आधार काल (Base Period) का निर्वाचन किया जाता है । इस आधार काल से भावी वर्षों के मूल्य का तुलनात्मक स्तर नियत किया जाता है । किसी एक वर्ष का सूचकांक यह सूचित करता है कि आधार वष के मूल्यो के अनुसार उस वर्ष के मूल्य का क्या प्रतिशत है । एक साधारण उदाहरण से ही यह बात स्पष्ट हो जायेगी । यदि किसी विशेष वर्ष के मूल्य निर्वाचित किये गये आधार वर्ष के मूल्यो से चार गुना अधिक है तो उस वर्ष का सूचकाक ४०० माना जायेगा जब कि आधार वर्ष का सूचकांक सदा १०० माना जाता है । तुलना करने वाले स्तर को आधारित करने के लिये आधार वर्ष को स्पष्टतया साधारण वष होना चाहिये, अर्थात् उस वर्ष मे मूल्य न तो बहुत अधिक होने चाहिएँ और न बहुत कम । उदाहरणत उपभोक्ता मूल्य सूचकाक का आधार वर्ष सन् १९३९ का वर्ष आरम्भ मे माना गया था । इस समय तक कम मूल्यो का काल समाप्त हो चुका था जबकि ऊँचे मूल्यो का काल प्रारम्भ भी नही हुआ था । कभी-कभी केवल एक वष को ही आधार वर्ष मानने के स्थान पर सभी असाधारणताओ को दूर करने के लिये एक लम्बी अवधि को भी आधार वर्ष के रूप मे मान लिया जाता है ।

इसके अतिरिक्त जो वस्तुयें किसी सम्बन्धित वर्ग के रहन सहन के अन्तर्गत आती हैं, उनका निर्वाचन करके उनके मूल्यो के आँकडे एकत्रित कर लिये जाते हैं ।

समय-समय पर भिन्न-भिन्न स्थानों से उनके मूल्यों के भाव प्राप्त किये जाते हैं, ताकि उनका प्रतिनिधित्वात्मक (Representative) रूप से ज्ञान हो सके।

जब सब वस्तुओं के मूल्य प्राप्त हो सकते हैं तो उन्हें 'मूल्य प्रतिशत' या 'मूल्य सापेक्ष' (*Price Relatives*) कहा जाता है, अर्थात् आधार वर्ष के मूल्यों के अनुसार उनका प्रतिशत निकाला जाता है। तदुपरान्त इन 'मूल्य सापेक्षों' का औसत निकाल लिया जाता है। महत्वांकित औसत को सामान्यतया अधिक प्राथमिकता दी जाती है, ताकि प्रत्येक मद को उचित रूप से महत्व दिया जा सके। अमहत्वांकित (Unweighted) औसत सभी मदों को समान रूप से महत्व देते हैं, परन्तु ठीक यही है कि कुछ मदों को दूसरी मदों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाए। प्रत्येक वस्तु के मूल्य सापेक्ष को एक महत्वांकन से गुणा कर दिया जाता है और इस प्रकार प्राप्त किये गए आँकड़ों को जोड़कर उनमें महत्वांकन के कुल योग से भाग दे देते है। भिन्न-भिन्न वस्तुओं का महत्वांकन करने के लिये अनेक प्रणालियाँ अपनाई जाती है।

सामान्यतया जो विधि अपनाई जाती है वह यह है कि प्रथम तो जिस स्थान के लिए सूचकांक का निर्माण करना होता है, उस विशेष स्थान में पारिवारिक बजट की पूछताछ की जाती है और प्रत्येक मद पर प्रत्येक परिवार द्वारा व्यय की गई औसत धनराशि ज्ञात कर ली जाती है। यही आँकड़े—जो आधार वर्ष में उपभोग की गई वस्तुओं के प्रत्येक मद के मूल्यों को बताते हैं—महत्वांकन देने का कार्य करते हैं। महत्वांकित औसत निकालने की प्रणाली यह है कि प्रत्येक मूल्य सापेक्ष को इसके महत्वांकन से गुणा कर दिया जाता है और इस प्रकार प्राप्त किये गए आंकडों को उसमें जोड़कर महत्वांकन के कुल योग से उसमें भाग दे देते हैं।

इसके अतिरिक्त एक अन्य प्रणाली यह है कि उपभोग के अन्तर्गत आने वाली समस्त वस्तुओं के मदों को विभिन्न वर्गों में विभाजित कर दिया जाता है, उदाहरणतः खाद्यान्न वर्ग, वस्त्रादिक वर्ग, आदि। प्रत्येक वस्तु का मूल्य-सापेक्ष उस अनुपात से महत्वांकित किया जाता है ; जो अनुपात इस विशेष वस्तु पर किए गए व्यय का उस वर्ग पर किए गए कुल व्यय से होता है। इस प्रकार प्रत्येक वर्ग के लिए एक मूल्य सापेक्ष प्राप्त हो जाता है। इन वर्गों के मूल्य-सापेक्षों के महत्वांकित औसत से सूचकांकों का निर्माण होता है और प्रत्येक वर्ग के व्यय का जो अनुपात कुल व्यय से होता है, उससे महत्वांकन निकाला जाता है।

उपभोक्ता मूल्य सूचकांक तथा उनकी सीमायें

उपभोक्ता मूल्य सूचकांक, जिसको पहले निर्वाह खर्च सूचकांक कहा जाता था, विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों के निर्वाह खर्च मे जो परिवर्तन होते हैं उन्हें मापने के लिये बनाया जाता है। भारत मे ऐसे सूचकांक अधिकांशतः श्रमिक वर्गों से सम्बन्धित हैं। उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों से निर्वाह खर्च मे हुए परिवर्तनों का

पर्याप्त सीमा तक प्रतिनिधित्वात्मक ज्ञान हो जाता है। लेकिन सच तो यह है कि उनसे इन परिवर्तनो का कोई ठीक-ठीक बोध नही हो सकता। भिन्न-भिन्न वस्तुओ पर व्यय की गई आय का अनुपात प्रत्येक परिवार मे भिन्न होता है। इसके अतिरिक्त इस अनुपात मे समयानुकूल परिवर्तन भी होते रहते हैं। अत यह भी सम्भव है कि सूचकाक प्रत्येक परिवार की स्थिति को अथवा लम्बे काल तक वास्तविकता को ठीक-ठीक व्यक्त न कर सकें। फिर भी जिन मूल्यो का निर्वाह-खर्च पर प्रभाव पड़ता है, सूचकाको से उनका सामान्य ज्ञान तो हो ही जाता है।

भारत मे उपभोक्ता मूल्य सूचकाक

भारत मे उपभोक्ता मूल्य सूचकाको का सकलन अपेक्षाकृत अभी हाल मे प्रारम्भ मे किया गया है। निर्वाह खर्च सम्बन्धी विश्वसनीय आँकडो के अभाव मे प्रथम महायुद्ध के पश्चात औद्योगिक विवादो का निपटारा करन मे बडी असुविधा अनुभव की गई थी। बम्बई राज्य प्रथम प्रान्त था, जिसने निर्वाह खर्च सूचकाक तैयार करने के लिए 'महत्वाकन' पर पहुँचने के अभिप्राय से सर्वप्रथम पारिवारिक बजट पूछताछ की। बम्बई श्रम कार्यालय ने सन् १९२१-२२ मे शोलापुर और अहमदाबाद आदि मे इसी प्रकार की अन्य पूछताछे करके बम्बई नगर की पूछताछ का अनुकरण किया। जहाँ तक अन्य प्रान्तो का सम्बन्ध था सन् १९२६ मे मध्य-भारत सरकार ने नागपुर मे तथा सन् १९२३ मे बिहार तथा उडीसा सरकार ने झरिया तथा जमशेदपुर मे पारिवारिक बजट पूछताछ की थी। रॉयल श्रम आयोग ने पारिवारिक बजट के आंकडो के अभाव की ओर ध्यान आकर्षित किया था और दिल्ली, मद्रास, कानपुर, जमशेदपुर और भरिया की कोयला खानो के केन्द्रो मे व्यापक रूप से पारिवारिक बजट पूछताछ करने की सिफारिश की थी। इसके अतिरिक्त आयोग ने यह भी कहा था "विश्वसनीय निर्वाह खर्च सूचकाको का निर्माण जो उस पूछताछ के परिणामस्वरूप होगा जिसकी हम सिफारिश करते हैं, मालिको तथा सम्बन्धित प्रान्तीय सरकारो के लिए बडा लाभप्रद प्रमाणित होगा।" इस आयोग की रिपोर्ट के प्रकाशित होने के पश्चात् सन् १९३२-३३ मे बम्बई श्रम कार्यालय ने बम्बई नगर मे पूछताछ की थी। मद्रास सरकार ने सन् १९३५-३६ मे मद्रास मे पूछताछ की थी और उत्तर प्रदेश सरकार ने सन् १९३८-३९ मे इसी प्रकार की पूछताछ कानपुर मे की थी, जो किसी कारणवश प्रकाशित नही हो सकी। (अध्याय १७ भी देखिए)।

भारत मे अब अनेक उपभोक्ता मूल्य सूचकाक निर्मित किए जाते है। निर्वाह खर्च सूचकाको के निर्माण की विधि का ब्यौरा उस ज्ञापिका (Memorandum) मे मिलता है जो भारत सरकार के आर्थिक सलाहकार से सम्बन्धित सांख्यिकी-शास्त्री ने १९४२ मे नई देहली में जो श्रम-मन्त्री सम्मेलन हुआ था उसके लिये तैयार किया था। एक अन्य प्रकाशन "भारत मे व्यापारिक स्थिति से सम्बद्ध मासिक सर्वेक्षण" मे भी बम्बई, अहमदाबाद, कानपुर, जमशेदपुर और भरिया इत्यादि

औद्योगिक केन्द्रों के २७ श्रमिक वर्ग उपभोक्ता मूल्य सूचकांक प्रकाशित किये जाते हैं। भारत सरकार की योजना का विवरण नीचे दिया गया है। उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों का निर्माण राज्य सरकारों तथा केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय के 'श्रम ब्यूरो' द्वारा भी किया जाता है।

भारत में उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों के दोष

विभिन्न सूचकांक एक ही आधार पर या एक ही पद्धति के अनुसार नहीं बनाये जाते। बम्बई उपभोक्ता मूल्य सूचकांक जून सन् १९३४ को समाप्त होने वाले वर्ष के आधार पर बनाया जाता था। अहमदाबाद सूचकांक जुलाई, सन् १९२७ को समाप्त होने वाले वर्ष के आधार पर संकलित किये जाते थे। कानपुर सूचकांक का आधार अगस्त, सन् १९३९ का वर्ष था। जमशेदपुर सूचकांक सन् १९०९-१९१४ की पंचाब्दि के आधार पर संकलित किया जाता था। अब कुछ गत वर्षों से विभागीय सांख्यिकी-शास्त्रियों की स्थायी समिति के कार्य दल की सिफारिशों के फलस्वरूप विभिन्न सूचकांकों के लिये सन् १९४९ के केलेन्डर वर्ष को आधार वर्ष मान लिया गया है। (१९४९=१००)। सितम्बर, १९५८ में, श्रम ब्यूरो ने फैक्टरियों, खानों तथा बागानों के ५० चुने हुए केन्द्रों में काम करने वाले श्रमिकों के पारिवारिक रहन-सहन सम्बन्धी सर्वेक्षण किये हैं। इन सर्वेक्षणों के अनुसार, १९६०=१०० के आधार पर ४६ केन्द्रों के औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों का नया संकलन तथा प्रकाशन किया गया है। कृषि श्रमिकों के सम्बन्ध में भी १९६०–६१=१०० को आधार मानकर उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों की नई श्रृंखला का संकलन व प्रकाशन किया गया है।

इसके अतिरिक्त ऐसी मदें भी, जिन पर विभिन्न केन्द्रों के सूचकांक आधारित हैं, स्थान-स्थान पर भिन्न होती हैं। सामान्यतया ऐसी मदों का जिनके आधार पर सूचकांक बनाए जाते हैं ५ मुख्य वर्गों में वर्गीकरण किया गया है। (१) खाद्य पदार्थ, (२) ईंधन और प्रकाश, (३) मकान का किराया, (४) कपड़े, बिस्तर तथा जूते, (५) विविध। खाद्यान्न मदों के सम्बन्ध में काफी सीमा तक अधिकांश सूचकांक व्यापक हैं। लेकिन झरिया के सूचकांक में ईंधन और प्रकाश को सम्मिलित नहीं किया गया था। बिहार के विभिन्न केन्द्रों में मकान का किराया सूचकांक की मदों में सम्मिलित नहीं था। अधिकांश सूचकांकों में कपड़े की मद को अपर्याप्त महत्व दिया जाता है। बिहार तथा उड़ीसा में 'विविध' मद को सम्मिलित ही नहीं किया गया है, जबकि मद्रास में इस प्रकार की ९ मदें सम्मिलित हैं।

स्थान-स्थान पर महत्वांकनों में भी अन्तर होता है। यह महत्वांकन सामान्यतया व्यापक पारिवारिक बजट पूछताछ पर आधारित होने चाहिएँ। लेकिन विस्तृत रूप से पूछताछ तो केवल कुछ ही केन्द्रों में की गई है। इनमें बम्बई, अहमदाबाद या मद्रास आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उत्तर-प्रदेशीय श्रम कार्यालय द्वारा सन् १९३८–३९ में एकत्रित किए गये केवल ३०० पारिवारिक

बजटो के आधार पर ही कानपुर सूचकाक का महत्वाकन किया गया था। पजाब सूचकाँको मे महत्वाकन उन श्रमिको के १३८ पारिवारिक बजटो पर आधारित था, जिनकी मासिक आय ५० रु० से कम थी। यह आकडे रॉयल श्रम आयोग ने अपनी जॉच के सम्बन्ध मे एकत्रित किये थे।

इसके अतिरिक्त मूल्य सग्रह की ऐजेन्सी या पद्धति मे भी समानता नही पाई जाती। मध्य प्रदेश तथा पजाब मे इस कार्य के लिये प्रशिक्षित कर्मचारी ही नही हैं। कुछ केन्द्रों मे, जैसे मद्रास मे, सप्ताह मे एक दो बार मूल्य सग्रहीत किये जाते हैं। बम्बई अहमदाबाद और कानपुर मे सप्ताह मे एक बार और मध्य प्रदेश तथा पजाब मे महीने मे एक बार मूल्य सग्रहीत किये जाते हैं।

इस प्रकार वर्तमान प्रकाशित सूचकाको मे अनेक त्रुटियॉ हैं और निर्वाह खर्च के परिवर्तनो को व्यक्त करने मे यह उचित रूप से सहायता नही दे सकते। इसके अतिरिक्त स्थान-स्थान पर उनमे विभिन्न प्रकार की असमानतायें पाई जाती हैं और उनमे तुलना करने मे कठिनाई होती है। आजकल सूचकाको का निर्माण प्राय औद्योगिक क्षेत्रो के लिये ही होता है। गैर औद्योगिक क्षेत्रो के लिये बहुत कम सूचकॉक मिलते है और ग्रामीण क्षेत्रो के लिये तो वे बिल्कुल ही नही पाये जाते। जी० आई० पी० रेलवे म महगाई भत्ते से सम्बन्धित एक विवाद की जॉच करते हुये १९४० मे 'राव' जॉच न्यायालय ने यह कहा था "वर्तमान उपलब्ध सूचकाको मे से तो कोई भी सूचकाक पूर्णतया सतोषप्रद नही है। जिन भत्तो की हमने सिफारिश की है उनमे किसी प्रकार के सतोषजनक सशोधन के लिये सर्व-प्रथम इस बात की आवश्यकता है कि शहर, नगर तथा ग्राम, तीनो प्रकार के विभिन्न क्षेत्रो के लिये आज तक की तिथि के निर्वाह खर्च सूचकाको को तैयार किया जाये। इसलिये हम इस बात की सिफारिश करते है कि केन्द्रीय सरकार के कार्य के लिये इस प्रकार के आकडो को तैयार करने और उनके अभिरक्षण (Maintenance) के प्रश्न पर भारत सरकार द्वारा विचार विनिमय किया जाना चाहिए।"

भारत सरकार की योजना

तदुपरान्त उपभोक्ता मूल्य सूचकाको को तैयार करने तथा उनके अभिरक्षण के लिये ५० निर्वाचित स्थानो पर नवीन केन्द्रीय नियन्त्रित योजना बनाई गई थी। प्रारम्भिक पग के रूप मे सरकार ने यह निश्चय किया कि उन केन्द्रो के लिए पृथक-कर मूल्य सूचकॉक तैयार कर लिये जायें, जिनके लिये उपभोक्ता मूल्य सूचकाक अन्तत' तैयार करने की योजना थी। परिणामस्वरूप सितम्बर १९५८ मे श्रम ब्यूरो द्वारा फैक्ट्रियो, खानो तथा बागान के ५० केन्द्रो मे श्रमिको के परिवारो के रहन-सहन का सर्वेक्षण किया गया। इस सर्वेक्षण का उद्देश्य था कि ऐसे आकडे एकत्र किये जायें जिनमे अनेक केन्द्रो के लिये तथा सम्पूर्ण भारत के लिये समान रूप से, श्रमिक वर्ग के उपभोक्ता मूल्य सूचकाको की नई शृ खला का निर्माण किया जाए तथा

श्रमिकों के रहन-सहन के स्तर का भी अध्ययन किया जाये। इसके आधार पर औद्योगिक श्रमिकों के लिये नये उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (आधार वर्ष १९६०=१००) बनाये गये है तथा ४६ केन्द्रों के लिये प्रकाशित भी किये जा चुके है। अन्य केन्द्रों से सम्बन्धित कार्य भी प्रगति पर है। जहाँ तक ग्रामीण क्षेत्रो का सम्बन्ध है, इनके लिये देश के विभिन्न भागो मे १५ केन्द्र निर्वाचित किये गये है; जो सामान्यतः छोटे-छोटे रेलवे स्टेशनों के पास हैं। फुटकर मूल्य स्टेशन-मास्टरो द्वारा एकत्रित किये जाते हैं। इस प्रकार नियमित रूप से सूचकाक बनाये जाते है। १९५०-५१ तथा १९५६-५७ की कृषि श्रमिक पूछताछ से प्राप्त सूचना के आधार पर भी ग्रामीण क्षेत्रो के लिये सूचकांक बनाने में सहायता मिली है। कुछ नगर और ग्रामीण क्षेत्रो के लिये भारतीय 'लेबर जरनल' में भी सूचकाक प्रकाशित किये जाते हैं।

इस प्रकार सरकार इस सम्बन्ध मे तीन योजनाओ को साथ-साथ चला रही है :—(क) मुख्य उपभोक्ता मूल्य सूचकाक योजना, (ख) फुटकर मूल्य सूचकाक योजना (शहरी केन्द्र), तथा (ग) फुटकर मूल्य सूचकाक योजना (ग्रामीण केन्द्र)।

विभिन्न स्थानों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक

अनेक राज्य सरकारें भी फुटकर मूल्य एकत्रित करने मे सलग्न है और मूल्य संकलित करके श्रमिक वर्ग उपभोक्ता मूल्य सूचकाक प्रकाशित करती है। ऐसे कुछ विख्यात सूचकाँक बम्बई, कानपुर तथा मध्य-प्रदेश के हे। राज्य सरकारो तथा श्रम ब्यूरो द्वारा जो श्रमिक वर्ग उपभोक्ता मूल्य सूचकाक संकलित किये जाते है उनका ब्यौरा प्रत्येक मास 'इण्डियन लेबर जरनल' मे प्रकाशित होता है। अत. विस्तृत रूप से यदि पता लगाना हो तो इस जरनल में ब्यौरा मिल सकता है। अब सभी केन्द्रो के लिये १९४९=१०० को आधार वर्ष मानकर यह सूचकाक प्रकाशित किये जाते हैं। आरम्भ मे भिन्न-भिन्न केन्द्रो के लिये आधार वर्ष भी भिन्न होता था। भारत सरकार के श्रम ब्यूरो द्वारा सूचकांक दो योजनाओ के अन्तर्गत प्रकाशित किये जाते हैं—(१) श्रम ब्यूरो अन्तरिम क्रम के श्रमिक वर्ग के लिये अखिल भारतीय औसत उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (१९४९=१०० को आधार वर्ष मानकर)। (२) २१ केन्द्रो के लिये श्रमिक वर्ग के लिये श्रम ब्यूरो उपभोक्ता मूल्य सूचकाक। इसका आधार वर्ष १९४९ है; परन्तु ब्यावर के लिये अगस्त १९५१ से जुलाई १९५२ तक का आधार वर्ष है। (३) १९६०=१०० के आधार पर कुछ केन्द्रो के औद्योगिक श्रमिको के उपभोक्ता मूल्य सूचकाकों की नयी श्रेणी (४६ केन्द्रो से सम्बन्धित आँकड़े प्रकाशित हो चुके है)। ऐसे सूचकांक आगे दिये गये है—

(१) सम्पूर्ण भारत के श्रमिक वर्ग के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक

(१६४६=१०० के आधार पर अन्तरिम श्रेणी)

वर्ष	अखिल भारतीय (अन्तरिम श्रेणी)	वर्ष	अखिल भारतीय (अन्तरिम श्रेणी)	वर्ष	अखिल भारतीय (अन्तरिम श्रेणी)
१६५१	१०५	१६५८	११६	१६६३	१३४
१६५३	१०६	१६५६	१२१	१६६४	१५२
१६५५	६.	१६६०	१२४	१६६५	१६६
१६५६	१०५	१६६१	१२६	१६६६ दिस०	१८४
१६५७	१११	१६६२	१३०	१६६६	१६७

(२) श्रम ब्यूरो का श्रमिक वर्ग के लिए औसत उपभोक्ता मूल्य सूचकाक (सामान्य) आधार १६४६=१००

	१६६३	१६६४	१६६५
श्रम ब्यूरो द्वारा एकत्रित सूचकाक			
१ अजमर	११८	१३३	१४१
२ दहरी आनसोत	११८	१३५	१५५
३ कटक	१४८	१७१	१८०
४ वहरामपुर	१४०	१५५	१५८
५ गोहाटा	१११	१२४	१३४
६ मिलचर	१२०	१२८	१४६
७ तिनसुखिया	१२६	१४७	१५४
८ लुधियाना	११६	१२६	१३७
६ अकाला	११६	१३६	१४३
१० जबलपुर	१३७	१६०	१६४
११ सटनपुर	१३३	१३६	१४२
१२ बागान केन्द्र	१४८	—	—
१३ ब्यावर	१०८	१३५	१३६
राज्यों द्वारा एकत्रित सूचकाक			
१४ मद्रास नगर	१५१	१६६	१८७
१५ बम्बई	१४६	१६८	१७६
१६ सोलापुर	१२७	१५३	१५६
१७ जलगांव	१२३	१६१	१७०
१८ नागपुर	१३६	१७३	१६०
१६ मैसूर	१५२	१६५	१६१
२०. इरनाकुलम	१४१	१५७	१७२
२१. त्रिपुरा	१४४	१६१	१७८

(३) औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों की श्रम ब्यूरो की नई श्रेणी (आधार १९६०=१००)

केन्द्र	१९६१	१९६५	१९६६	केन्द्र	१९६१	१९६५	१९६६
दिल्ली :—				पश्चिमी बंगाल:—			
दिल्ली	१०३	१३४	१४७	कलकत्ता	१०१	१२८	१४४
पंजाब :—				हावड़ा	१००	१३२	—
अमृतसर	१०२	१३६	१५१	आसनसोल	९९	१३४	—
असम :—				रानीगंज	९८	१३३	—
डिगबोई	१०४	१३५	१५५	दार्जिलिंग	९९	१४०	—
लबाक	१०२	१२५	१५४	जलपाईगुडी	१०१	१४२	—
रंगपाडा	१०५	१३२	१५४	आन्ध्र प्रदेश :—			
मरियानी	९९	१३२	१४५	गन्टूर	१०५	१.१	१४९
डोमडुमा	१०२	१३१	१४४	हैदराबाद	१०४	१३७	१५४
बिहार :—				गुडूर	१०६	१३३	१४७
जमशेदपुर	१०१	१३३	—	मैसूर :—			
मौंगहिर	१०४	१४७	१७५	बंगलौर	१०५	१३९	१५६
झरिया	१००	१४२	१५९	कोलार स्वर्ण-क्षेत्र	१०२	१३२	१५०
न्योमण्डी	९९	१३६	१७५	चिकमोगलूर	१०२	१४८	१८०
कोडरमा	१०६	१४९	—	अम्मालकी	१०५	१४७	१७३
हरियाणा :—				उड़ीसा :—			
यमुनानगर	१०२	१३४	१५३	सम्भलपुर	१००	१३३	१५७
जम्मू व कश्मीर :—				बरबिल	९८	११९	१५९
श्रीनगर	१०४	१३५	१५१	केरल .—			
मध्य प्रदेश :—				अल्वाई	१०४	१४२	१५६
भोपाल	१०८	१३८	१५५	अलेप्पी	१०२	१३२	१४७
इन्दौर	१०६	१४०	१५४	मुन्दकायम	१०३	१३५	१४९
ग्वालियर	१०६	१३७	१५४	राजस्थान :—			
बालाघाट	१०५	१४१	१५३	अजमेर	१०५	१३०	१४७
उत्तर प्रदेश :—				जयपुर	१०६	१३७	१५५
कानपुर	१०१	१४५	१५०	महाराष्ट्र :—			
वाराणसी	१०२	१६१	१७४	बम्बई	१०३	१२४	१४३
सहारनपुर	१०२	१४१	१५२	नागपुर	९७	१३९	१४४
गुजरात :—				शोलापुर	९९	१२३	१४५
भावनगर	१०२	१३२	१४३	त्रिपुरा :—			
अहमदाबाद	१०२	१२९	१४०	आधार (१९६१)	—	१२८	१५०

परिशिष्ट ख

बेरोजगारी

UNEMPLOYMENT

बेरोजगारी का अर्थ व परिभाषा

बेरोजगारी का अध्ययन बहुत ही जटिल है क्योंकि इसके अध्ययन मे सम्पूर्ण आर्थिक प्रणाली के कार्य-सचालन की जाच करनी पडती है। बेरोजगारी जैसी बुराई के प्रस्तावित उपचार अनेक हैं। परन्तु बेरोजगारी के कारणों की जितनी अधिक जाँच की जाती है उतना ही अधिक यह ज्ञात होता है कि किसी एक उपचार से इस बुराई को दूर नही किया जा सकता। प्राय लोग यह ठीक-ठीक नही समझते कि बेरोजगारी के कारण आर्थिक प्रणाली मे बहुत गहराई तक पहुँचे होते है। आर्थिक विकास के लिए रोजगार की समस्या जितनी अधिक महत्व रखती है उतना अन्य किसी समस्या का महत्व नही है। जब तक आर्थिक क्रियाओ का मूल उद्देश्य मानव आवश्यकताओ की सन्तुष्टि रहेगा तब तक बेरोजगारी एव अपूर्ण रोजगार के होने का अर्थ यही होगा कि देश मे आर्थिक असन्तोष तथा निर्धनता व्याप्त है। रोजगार के अवसर जितने अधिक होगे उतनी ही व्यक्तियो की समृद्धि अधिक होने की सम्भावना होगी तथा वस्तुओ का उत्पादन बढेगा और सेवाओ मे वृद्धि होगी। इनसे अन्तत राष्ट्रीय कल्याण मे भी वृद्धि होगी।

किसी विशेष काल मे किसी व्यवसाय या उद्योग मे रोजगार की मात्रा से तात्पर्य उन मानव घण्टो के कार्य से होता है जो उस विशेष समय मे किया जाता है। परन्तु बेरोजगारी का विचार इतना स्पष्ट नही है। बेरोजगारी की परिभाषा इस प्रकार से नहीं की जा सकती कि जब भी कोई व्यक्ति कार्य नही कर रहा है तो वह बरोजगार है। उदाहरणत, यदि रात्रि मे व्यक्ति सोता है तो उसे बेकार अथवा बरोजगार नही कहा जा सकता। प्रोफेसर पीगू के अनुसार किसी व्यक्ति को तभी बेरोजगार कहा जा सकता है जब उसे रोजगार प्राप्त करने की इच्छा तो होती है परन्तु उसे रोजगार नही मिलता। इसके अतिरिक्त रोजगार प्राप्त करने की इच्छा के विचार की विवेचना प्रतिदिन कार्य करने के घण्टे, मजदूरी की दरे तथा मनुष्य के स्वास्थ्य की दशाओ को ध्यान मे रख कर करनी चाहिये। यदि किसी उद्योग मे काय करने के सामान्य घण्टे आठ हैं परन्तु कोई व्यक्ति नौ घण्टे कार्य करने की क्षमता तथा इच्छा रखता है तो कोई यह नही कह सकता कि वह दिन मे एक घन्टा बेकार रहता है। दूसरे, मजदूरी प्राप्त करने की इच्छा का अर्थ प्रचलित मजदूरी की दरो पर कार्य करने की इच्छा से लेना चाहिए। उदाहरण के

लिये, एक ऐसे व्यक्ति को बेरोजगार नहीं कहा जा सकता जो तब कार्य करना पसन्द करता है जब प्रचलित मजदूरी की दर १० रु० प्रतिदिन हो, परन्तु उस समय कार्य नहीं करना चाहता जब प्रचलित मजदूरी की दर ५ रु० प्रतिदिन हो। इसके अतिरिक्त ऐसे व्यक्ति को बेरोजगार नहीं कहा जा सकता जो कार्य करने की इच्छा तो रखता है परन्तु बीमारी के कारण कार्य नहीं कर पाता।

अतः बेरोजगारी की परिभाषा में उस अवस्था को लिया जाता है जिस अवस्था में देश में कार्य करने वाली आयु के योग्य व समर्थ व्यक्ति बहुसंख्या में होते हैं और ऐसे व्यक्ति कार्य करना चाहते हैं परन्तु उनको प्रचलित मजदूरी पर कार्य प्राप्त नहीं हो पाता। ऐसे व्यक्ति जो शारीरिक व मानसिक कारणों से कार्य करने के लिये अयोग्य हैं अथवा जो कार्य करना नहीं चाहते, बेरोजगारों की श्रेणी में नहीं आते। जो कार्य करने के अयोग्य हैं उनको "रोजगार अयोग्य" (Unemployables) कहा जा सकता है और जो योग्य है परन्तु कार्य करने से मना करते हैं वे समाज के लिये पराश्रयी (Parasites) हैं। बालक, रोगी, वृद्ध तथा अपाहिज ऐसे व्यक्ति हैं जिनको रोजगार अयोग्य कहा जा सकता है और साधु, पीर, भिखमंगे तथा कार्य न करने वाले जमींदार आदि ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें पराश्रयी कहा जा सकता है।

बेरोजगारी पर भिन्न विचार तथा उनके सिद्धान्त

रोजगार व बेरोजगारी के सिद्धान्तों की विवेचना अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का एक रोचक परन्तु जटिल विषय है जिसके विस्तार में जाना यहाँ हमारे लिये शायद आवश्यक नहीं है। यहाँ पर केवल इतना कहा जा सकता है कि संस्थापक अर्थशास्त्रियों (Classical Economists) ने बेरोजगारी का वर्णन श्रम की माँग व पूर्ति की दशाओं के अनुसार किया था। उन्होंने दो प्रकार की बेरोजगारी का उल्लेख किया था। असंतुलनात्मक (Frictional) तथा ऐच्छिक (Voluntary)। असंतुलनात्मक बेरोजगारी श्रम की माँग में परिवर्तन के कारण होती है, जिसके परिणामस्वरूप श्रम की माँग व पूर्ति की अवस्थाओं में अस्थायी असंतुलन हो जाता है। ऐच्छिक बेरोजगारी तब होती है जब मजदूर अपनी वास्तविक मजदूरी की दर में कटौती को स्वीकार नहीं करते। परन्तु इस प्रकार की बेरोजगारी पूर्ण संतुलन की अवस्था में नहीं हो सकती जबकि स्वतन्त्र प्रतियोगिता होती है। इस प्रकार से संस्थापक अर्थशास्त्रियों के अनुसार बेरोजगारी श्रम की माँग व पूर्ति की असंतुलित दशा का प्रमाण है।

प्रो० जे० एम० कीन्स संस्थापक अर्थशास्त्रियों के इस तर्क को नहीं मानते कि बेरोजगारी संतुलन की अवस्था में नहीं हो सकती। उन्होंने रोजगार का अपना अलग सिद्धान्त दिया है। उन्होंने अनैच्छिक (Involuntary) बेरोजगारी की धारणा को भी सम्मिलित कर लिया है। इस अनैच्छिक बेरोजगारी की परिभाषा उन्होंने इस प्रकार दी है : जब कोई व्यक्ति प्रचलित वास्तविक मजदूरी से कम

वास्तविक मजदूरी पर काय करने के लिये तैयार हो जाता है चाहे वह कम नकद मजदूरी स्वीकार करने के लिये तैयार न हो तब इस अवस्था को अनैच्छिक बेरोजगारी कहते हैं। इस प्रकार किसी उत्पादक व्यवसाय मे केवल लगे रहन का अथ आवश्यक रूप स यह नही लिया जा सकता कि अब बेरोजगारी नही है। ऐसे व्यक्तियो को पर्याप्त रूप से रोजगार पर लगा हुआ नही कहा जा सकता जो केवल आशिक रूप से रोजगार म लगे हैं या जो उच्च प्रकार के कार्य करन की क्षमता रखते हुऐ भी निम्न प्रकार के काय करते हैं।

इस प्रकार विभिन्न प्रकार की बेरोजगारी म भेद किया जा सकता है। ऐच्छिक बेरोजगारी उस समय उत्पन्न होती है जब व्यक्ति स्वय काय स हाथ खीच लेते हैं अथवा जब कोई श्रमिक उस पारिश्रमिक को स्वीकार करने से इन्कार कर देता है या स्वीकार नही कर पाता जो पारिश्रमिक उसकी सीमान्त उत्पादकतानुसार दिया जाता है। एसी परिस्थिति का कारण कोई कानून हो सकता है उदाहरणत जब मजदूरी निर्धारित कर दी जाती है। सामाजिक चलन और रीति रिवाज द्वारा भी एसी परिस्थिति आ सकती है उदाहरणत जब किसी व्यक्ति को उत्तराधिकार म बहुत ब ी सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है या रीति रिवाजो के कारण उस कुछ विशेष कार्यों को करने की मनाही होती है। इस परिस्थिति का एक अन्य कारण यह भी है कि सामूहिक सौदाकारी के लिए श्रमिक सगठन बना लेते हैं या किसी भी परिवर्तन के प्रति उनका उत्साह मन्द होता है। कभी कभी केवल मनुष्य के हठ के कारण भी एसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। अनैच्छिक रोजगारी दृश्य (Visible) या अदृश्य (Invisible) किसी भी प्रकार की हो सकती है। दृश्य बेरोजगारी का अथ अल्पकाल या दीघकाल के लिये रोजगार के पूण अभाव से है। अदृश्य बेरोजगारी किसी भी प्रकृति की हो सकती है—जैसे छिपी हुई (Disguised) बेरोजगारी अपूण रोजगार और असतुलनात्मक बेरोजगारी। छिपी हुई बेरोजगारी उस समय उत्पन्न होती है जब बर्खास्त या छटनी किये गये श्रमिक या अपनी योग्यता व कुशलतानुसार काय न पाने वाला श्रमिक ऐसे विभिन्न उद्योगो मे काम करने को विवश हो जाते हैं जो घटिया प्रकार के अथवा कम उत्पादक होते है। उदाहरणत भारत म बहुत से श्रमिको को जब कोई उचित काय नही मिलता तो व रिक्शा चलाने लगते है। अपूण रोजगार की अवस्था उस समय होती है जब श्रमिक को उस प्रकार का काय नही मिलता जिस प्रकार का काय करने की वह क्षमता रखता है। यह अपूण रोजगार काय की मात्रा काय के घण्टे या श्रमिको की मजदूरी मे से किसी से भी सम्बन्धित हो सकता है। असतुलनात्मक बेरोजगारी उस समय होती है जबकि माग और पूर्ति की अवस्थाओ मे कुसमायोजन होने के कारण श्रमिक अस्थाई काल के लिए बेरोजगार हो जाते हैं। एसी परिस्थिति श्रमिक की अगतिशीलता काम की मौसमी प्रकृति कच्चे पदार्थों की कमी या मशीनरी के टूट जाने आदि के कारण उत्पन्न हो जाती है।

कीन्स ने रोजगार का अपना अलग सिद्धान्त दिया है जो रोजगार और निपज (Output) के तकनीकी सम्बन्ध पर आधारित है। इस सिद्धान्त का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है—जनता की मनोवृत्ति यदि एक समान रहे तो रोजगार की मात्रा समर्थ माँग (Effective Demand) की मात्रा पर निर्भर करती है, परन्तु यह तभी हो सकता है जब वास्तविक रोजगार पूर्ण रोजगार से अधिक न हो। समर्थ माँग निवेश की दर तथा उपभोग प्रवृत्ति (Propensity to Consume) से निर्धारित होती है। (उपभोग प्रवृत्ति ज्ञात करने के लिये उपभोग पर कुल राष्ट्रीय आय का जितना प्रतिशत व्यय होता है उसको कुल आय से भाग दे देते हैं) निवेश की दर, ब्याज की दर तथा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Efficiency of Capital) पर निर्भर होती है और ब्याज की दर द्रव की मात्रा तथा नक़दी तरजीह (Liquidity Preference) की स्थिति से निश्चित होती है। कीन्स ने निवेश तथा रोजगार को स्पष्ट करने के लिए सर्वप्रथम 'निवेश गुणांक' (Investment Multiplier) का विचार प्रस्तुत किया था। कुल निवेश में हुई वृद्धि तथा उसके परिणामस्वरूप कुल राष्ट्रीय आय में हो जाने वाली वृद्धि के अनुपात को निवेश गुणांक कहा गया है। उद्योगों में जो समस्त पूँजी लगाई जाती है उसे कुल निवेश कहते हैं। यदि उद्योगों में कुल निवेश को बढ़ा दिया जाए तो देश की आय में केवल इतनी ही वृद्धि नहीं होगी जितनी निवेश में हुई है बल्कि इससे भी अधिक होगी। यदि समाज के सदस्यों की उपभोग मनोवृत्ति ऐसी है कि वह बढ़ी हुई आय का $\frac{9}{10}$ भाग उपभोग में लगा देते हैं तो गुणांक १० होगा और इस प्रकार सार्वजनिक कार्यों में वृद्धि द्वारा जो समस्त रोजगार उत्पन्न होगा वह उस मूल रोजगार से दस गुना होगा जो स्वयं सार्वजनिक कार्यों द्वारा उत्पन्न होता है।

इस प्रकार पूर्ण रोजगार से सम्बन्धित समर्थ माग उस समय फलीभूत होती है जब उपभोग प्रवृत्ति और निवेश की प्रेरणा दोनों का एक दूसरे से एक निश्चित सम्बन्ध रहता है। ऐसी स्थिति तब ही उत्पन्न हो सकती है जब संयोग से या योजना से, चालू निवेश द्वारा ऐसी माँग उत्पन्न हो जाय जो पूर्ण रोजगार के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है और यह माँग उस माँग से अधिक हो जो पूर्ण रोजगार की स्थिति में जनता द्वारा उपभोग की वस्तुओं पर व्यय करने से उत्पन्न होती है। अन्य शब्दों में कीन्स के अनुसार, बेरोजगारी का मूल कारण आय के कुविभाजन के कारण उत्पन्न अधि-बचत (Over-saving) और अपूर्ण व्यय (Under-spending) हैं। व्यक्तियों द्वारा जो भी उपभोग पर व्यय होता है उससे रोजगार उत्पन्न होता है परन्तु उनके द्वारा जो भी बचाया जाता है उससे रोजगार तभी उत्पन्न होता है जब इस बचत का पूँजी पदार्थों में वृद्धि करने के लिये निवेश होता है।

बेरोजगारी के कारण

वेरोजगारी के सम्बन्ध मे जो कुछ ऊपर वर्णन किया गया है वह रोजगार तथा वेरोजगारी उत्पन्न करने वाली परिस्थितियो को समझाने के हेतु केवल सैद्धान्तिक विचारविमर्श है। आधुनिक सिद्धान्तो की गूढता मे उलझे बिना यह कहा जा सकता है कि बेरोजगारी के कारण व्यक्तिगत और अव्यक्तिगत दोनो ही हो सकते है जिन्हे आन्तरिक अथवा बाह्य कारण कहा जा सकता है। व्यक्तिगत कारण चरित्र मे दोष, तथा शारीरिक अयोग्यता है, अर्थात् श्रमिक की शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक कमियो के कारण बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है। कई बार यह देखा गया है कि इच्छा होते हुए भी एक व्यक्ति अपनी शारीरिक विकृति, दुर्बल मानसिक अवस्था, किसी दुर्घटना, दोषपूर्ण शिक्षा एव प्रशिक्षण आदि के कारण कार्य नही कर पाता। तथापि यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि इन कारणो को पूर्णतया व्यक्तिगत कह देने का तात्पर्य यह हो जाता है कि इन कारणो का उत्तरदायित्व हम ऐसी परिस्थितियो पर डाल देते हैं जो इसके लिए उत्तरदायी नही है। इसमे कोई सदेह नही कि अनेक शारीरिक कमियाँ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप मे फैक्टरी प्रणाली के कारण ही उत्पन्न होती है। यदि यह कारण मालिक से सम्बन्धित है तो इन कमियो का उत्तरदायित्व मालिक का ही होना चाहिये अन्यथा यदि कारण कम विशिष्ट प्रकार का है तो इसका उत्तरदायित्व राज्य पर होना चाहिये।

इसके अतिरिक्त वेरोजगारी के वाह्य कारण भी हैं जिन्हे आर्थिक कारण कहा जा सकता है। इनमें से प्रथम कारण सामयिक उतार-चढाव (Cyclical Fluctuations) है। यह देखा गया है कि समृद्धि तथा मन्दी के काल लगभग नियमित रूप से कुछ मध्यान्तर पर एक दूसरे के पश्चात् आते है तथा इस चक्र ने इस विश्वास को जन्म दे दिया है कि आर्थिक व्यवस्था मे कुछ ऐसे अन्तर्निहित दोष हैं जो व्यापार मे चक्र उत्पन्न कर देते हैं। मन्दी के काल मे व्यवसाय मे कमी आ जाती है तथा वेरोजगारी वढ जाती है। समृद्धि और मन्दी कालो के विभिन्न कारण है जिन्हे व्यापार चक्रो के सिद्धान्तो द्वारा समझाया गया है। यह एक पृथक् विषय है। द्वितीय कारण औद्योगिक परिवर्तन है, अर्थात माँग मे परिवर्तन के कारण अथवा नवीन खोजो या तकनीकी उन्नति के कारण उत्पादन प्रणालियो मे परिवर्तन हो जाता है, अर्थात् विवेकीकरण योजनायें लागू करने के कारण बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है। तृतीय कारण यह है कि कुछ आर्थिक क्रियायें अल्पकालीन या मौसमी होती है जिनके कारण अपूर्ण रोजगार ही मिल पाता है। मकान, सडकें आदि बनाने वाले तथा खेती मे कार्य करने वाले श्रमिक वर्ष भर पूर्णतया रोजगार नही पाते। इसके अतिरिक्त नैमित्तिक श्रमिक प्रणाली से यह स्पष्ट है कि कुछ कार्यों के लिये अस्थायी रूप से श्रमिक लगा दिये जाते हैं। ऐसे व्यक्ति तभी रोजगार पाते हैं जब व्यापार तीव्र होता है अन्यथा अन्य काल मे वह बेरोजगार ही रहते हैं। यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि यदा-कदा श्रमिक

संघ मालिकों को श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता से अधिक मजदूरी देने को विवश करके बेरोजगारी उत्पन्न कर देते है क्योंकि इस कारण कभी न कभी मालिक श्रमिक की माँग घटा देते हैं।

इस प्रकार प्रत्येक देश में बेरोजगारी के अनेक कारण हैं। मुख्य कारण तो आर्थिक तथा सामाजिक ढाँचा ही है। बेरोजगारी मूल्य-कीमत ढाँचे मे असतुलन के कारण, पूँजीगत सामान की कमी के कारण और समर्थ माँग घटने के कारण उत्पन्न होती है। बेरोजगारी तब तक चलती रहेगी जब तक उत्पादन का उद्देश्य लाभ प्राप्त करना रहेगा तथा सरकार जनता के लिये पर्याप्त मात्रा मे देश के साधनों को विकसित नही कर पाती।

बेरोजगारी के प्रभाव

बेरोजगारी के दुष्परिणाम इतने स्पष्ट हैं कि उनको विस्तार मे वर्णन करने की आवश्यकता नही है। बेरोजगारी का भय ही श्रमिक की प्रसन्नता तथा कार्य-कुशलता पर बुरा प्रभाव डालता है। वास्तविक बेरोजगारी सम्भवतः इतनी ही विपत्तियाँ उत्पन्न कर देती है जितनी अस्वास्थ्य तथा रोग से उत्पन्न होती हैं। बेरोजगारी का तत्काल प्रभाव स्पष्ट रूप से यह होता है कि श्रमिक की आय कम हो जाती है। श्रमिक के पास यदि कुछ बचत होती भी है तो वह साधारणतः इतनी अपर्याप्त होती है कि उससे बहुत दिनो तक परिवार का गुजारा नही चल सकता। परिणामस्वरूप जीवन-स्तर गिर जाता है और भोजन, वस्त्र आदि में अभाव उत्पन्न हो जाता है तथा प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित व्यक्ति पर ही नही वरन् उसके समस्त परिवार पर संकट आ जाता है। यदि बेरोजगारी चलती रहे तो इससे स्थायी रूप से स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है तथा नैतिक बन्धनों में स्थायी रूप से ढील आ जाती है। जब जीवन-स्तर गिर जाता है तो शीघ्र ही श्रमिक की कार्यकुशलता पर प्रभाव पड़ता है और श्रमिक पुनः रोजगार में लगने के पश्चात् भी यह अनुभव करता है कि उसकी तकनीकी कुशलता कम हो गई है जिससे उसकी धनोपार्जन की शक्ति घट गई है। परिणामस्वरूप, उसे इस बात के लिये विवश होना पड़ता है कि जो भी अकुशल कार्य उसे मिले वह ही कर ले। इस प्रकार कभी-कभी अपना पूर्व का कुशल-कार्य श्रमिक सदा के लिये खो बैठता है।

इसके अतिरिक्त सामाजिक दृष्टिकोण से भी बेरोजगारी बहुत अवांछनीय है। इस कथन मे कोई सन्देह नही है कि, "खाली समय मे मस्तिष्क शैतान की कार्यशाला बन जाता है।" अनेक बेरोजगार व्यक्तियो को भीख माँगने को आदत पड़ जाती है। बेरोजगारी व्यक्ति के धैर्य तथा उत्तरदायित्व की भावना को नष्ट कर देती है। मदिरा-पान कम रोजगार के समय सबसे अधिक होता है। क्रान्तिकारी विचार बेरोजगार व्यक्ति के मस्तिष्क मे बहुत जल्दी आ जाते हैं। समाज मे कोई व्यक्ति अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वो को तभी पूरा कर सकता है जब वह लाभदायक रोजगार पर लगा हुआ हो। जीविकोपार्जन करने वाले को यदि

रोजगार का आश्वासन रहता है तब उसके परिवार मे भी स्थायित्व बना रहता है तथा वह सामाजिक उत्तरदायित्वो को निभाने योग्य भी बन जाता है। रोजगार के अभाव मे अनेक सामाजिक समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। इस प्रकार रोजगार के अभाव से जो हानि होती है वह नकदी के रूप मे ही हानि नही होती वरन् उससे कही अधिक होती है। बेरोजगारी से उन आवश्यक शक्तियो का ह्रास होता है जिन्हे मुद्रा मे नही नापा जा सकता। कोई भी व्यक्ति कितना ही कार्यकुशल क्यो न हो अधिक समय बेरोजगार रहने पर अवश्य ही उसकी कुशलता मे कमी आ जायेगी। उसके हाथो से पूर्व प्रकार का कुशल कार्य नही हो सकेगा और उसमे आलस्य की आदत पड जाएगी। यह प्रवृत्ति बेरोजगार व्यक्ति को रोजगार के अयोग्य बना देती है। कार्य की खोज वास्तविक कार्य से अधिक थकाने वाली होती है। इसके अतिरिक्त बेरोजगारी से उत्पन्न निम्न जीवन-स्तर के कारण अपर्याप्त भोजन से माता तथा बालको पर बहुत बुरा प्रभाव पडता है। अधिकतर माताओ को रोजगार पाने के लिये निकलना पडता है, जिसके परिणामस्वरूप गृहस्थी मे विघ्न पड जाता है। यदि माता को स्थानीय कार्य मिल भी जाता है तो वेतन की दर बहुत कम होती है। परिणामस्वरूप, फैक्ट्रियो के श्रमिको की मजदूरी भी गिर जाती है। बालको को विद्यालय से उठाना पडता है और अधिकतर इन बालको को ऐसे रोजगार मे लगाना पडता है जिनमे भविष्य मे उन्नति की कोई सम्भावना नही होती।

ऊपर लिखी बातो का प्रभाव एक साथ पडता है और यदि अच्छे दिन आ भी जाते हैं तब भी जो हानि हो चुकी होती है उसकी पूर्ति कभी नही हो पाती। श्रमिक की कार्यकुशलता मे स्थायी रूप से कमी आ जाती है तथा उसका चरित्र भी बहुत अधिक गिर जाता है। माता का स्वास्थ्य इतना गिर जाता है कि आने वाली सन्तानो पर इसका बुरा प्रभाव पडता है। बालक बडे होने पर उचित प्रकार से अपना जीवन-निर्वाह करने के योग्य नही रह जाते क्योकि उन्हे उचित शिक्षा नही मिल पाती। इस प्रकार बेरोजगारी के जो आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिक परिणाम होते हैं वह आरम्भ मे भी और अन्त मे भी बहुत गम्भीर होते है। अत देश मे बेरोजगारी होने से राष्ट्रीय लाभाश तथा समाज कल्याण दोनो को ही हानि पहुँचती है।

बेरोजगारी के उपचार

बेरोजगारी के उपचार के लिये यह सुझाव दिया जाता है कि श्रम की माग तथा पूर्ति मे सन्तुलन लाने, श्रमिको को अधिक नियमित प्रकार का कार्य दिलाने, तथा नैमित्तिक श्रम की बुराइयो को कम करने के लिये रोजगार दफ्तरो की स्थापना करनी चाहिये। व्यापार चक्रो के कारण उत्पन्न बेरोजगारी–अर्थात् मन्दी के काल मे उत्पन्न बेरोजगारी को राजकीय कार्यवाहियो द्वारा कम किया जा सकता है। मन्दी से ग्रसित समस्त व्यवसायो मे कार्य के घन्टो को कम करके अथवा

कम समय की पारियाँ चलाकर श्रम की माँग बढ़ाई जा सकती है। श्रमिकों की माँग सार्वजनिक इमारतों, रेलो, सड़कों, नहरों आदि का निर्माण जैसे सार्वजनिक कार्यों को करके भी बढ़ाई जा सकती है। यह कार्य न केवल इनमे लगे हुये व्यक्तियों को रोजगार देते है वरन् इनमे लगे हुये श्रमिको मे विभिन्न वस्तुओं की माँग उत्पन्न करके इन वस्तुओं के निजी उत्पादन को भी प्रोत्साहित करते हैं। किन्तु इन समस्त कार्यों को सावधानी से आयोजित करना चाहिए जिससे विशेष संस्थायें, जैसे—राष्ट्रीय रोजगार तथा विकास बोर्ड, स्थापित हो सकें, जिनके द्वारा ऐसे सार्वजनिक व्यय को ठीक प्रकार से किया जा सके जो व्यय मन्दी के प्रभाव दूर करने के लिये किया जाता है। सरकार को भी तेजी के व्यापार काल मे ऐसी सार्वजनिक प्रायोजनायें नही चालू करनी चाहियें जिन्हें स्थगित किया जा सकता है या जिन्हे निजी उद्योगपतियो को दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मौसमी तथा अल्पकालीन बेरोजगारी विभिन्न व्यापारों का सम्मिश्रण करके हल की जा सकती है, जिससे पूर्ण वर्ष रोजगार मिलता रहे। रोजगार के अयोग्य व्यक्तियो से से उनका राज्य द्वारा उपचार होना चाहिये जो शारीरिक रूप से अयोग्य हैं किन्तु ठीक हो सक्ते है। जो सामाजिक पराश्रयी हैं उनके सुधार का भी प्रबन्ध किया जाना चाहिये। बेरोजगारी के काल मे कष्टो को कम करने के लिये बेरोजगारी बीमा योजनाओं को लागू किया जाना चाहिए। इनका विवेचन सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत किया जा चुका है।

भारत में बेरोजगारी तथा उसके विभिन्न प्रकार

भारत जैसे देश में बेरोजगारी के दुष्परिणाम पूर्णतया असहनीय हो जाते हैं। बेरोजगारी देश के लिए बहुत महँगी पड़ती है। ऐसा देश जो खनिज, कृषि तथा शक्ति के साधनों में धनी माना जाता है, परन्तु जिन साधनों का अभी तक पूर्ण लाभ नही उठाया गया है, तथा जिसमें निःसन्देह मानव-शक्ति का अभाव नही है, उस देश मे बेरोजगारी होने का अर्थ यह होता है कि सम्भाव्य (Potential) राष्ट्रीय धन की बहुत हानि हो रही है।

भारत में साधारण समय मे भी समस्त वर्गों में बेरोजगारी व्यापक रूप से पाई जाती है। शिक्षित वर्ग मे, अशिक्षित वर्ग मे, औद्योगिक श्रमिको में तथा खेती-हरो मे बेरोजगारी की विकट समस्या है। देश में अपूर्ण रोजगार भी बहुत अधिक है। जैसा कि स्वर्गीय पंडित नेहरू ने संसद् में प्रथम पंचवर्षीय आयोजना पर वाद-विवाद के समय बताया था, भारत में दो प्रकार के बेरोजगार व्यक्ति हैं—एक अपेक्षाकृत कम संख्या वाले वर्ग के व्यक्ति है और दूसरे बड़ी संख्या वाले वर्ग के। कम संख्या वाला वर्ग तो उन व्यक्तियों का है जो बिल्कुल परिश्रम नही करते और न कोई उत्पादक प्रयत्न करते है, वल्कि दूसरो के श्रम पर जीवित रहना चाहते हैं। इनकी आय किराये के रूप में या अन्य किसी प्रकार की होती है। ये व्यक्ति अनुत्पादक तथा बेरोजगार होते हैं। ये ऐसे व्यक्ति हैं जो समाज के उच्च शिखर

पर आसीन हैं। इन्हें कार्य करने की आवश्यकता नही है क्योकि अन्य व्यक्ति इनके लिए पहले से ही या अन्य किसी समय धन उपार्जन कर चुके थे। यह उच्च स्तर पर बेरोजगार व्यक्ति होते है। ये न ही कार्य करते हैं और न ही उत्पादन करते हैं वरन् सम्भवतः दूसरो से अधिक उपभोग करते है। अतः ये समाज पर भार हैं। दूसरी प्रकार की बेरोजगारी दो श्रेणियो मे विभाजित की जा सकती है। बेरोजगारो मे से कुछ व्यक्ति आलसी होते हैं क्योकि हमारे देश मे आलस्य को दान देने वाले व्यक्तियो द्वारा बढ़ावा दिया जाता है। ऐसे आलसी व्यक्तियो की सख्या कई लाख भी हो सकती है, किन्तु तब भी ऐसे व्यक्ति अपेक्षाकृत कम हैं। इसके पश्चात् वास्तविक बेरोजगार आते हैं, अर्थात वे व्यक्ति जो यदि अवसर दिया जाये तो कार्य कर सकते हैं, जिनको सरलता से ऐसा अवसर नही मिल पाता। देश मे ऐसे व्यक्तियो की ही बेरोजगारी की वास्तविक समस्या है।

देश मे खेतीहर बेरोजगारी तथा अपूर्ण बेरोजगारी पाई जाती है। भूमि पर अधिक जनसख्या का दबाव, उपांग उद्योगो की कमी तथा खेतीहर कार्यों की मौसमी प्रकृति इस प्रकार की बेरोजगारी के कारण है। कृषि अनेक दोषो से परिपूर्ण है तथा इस पर निर्भर रहने वाले लाखो भारतीयो को इससे पूर्ण रोजगार नही मिलता। यद्यपि इस प्रकार की बेरोजगारी के सही आकडे प्राप्त नही हैं किन्तु इसकी सीमा इसी बात से ज्ञात हो जाती है कि भारतीय कृषक का अपूर्ण रोजगार के कारण जीवन स्तर बहुत गिरा हुआ है तथा अधिक सख्या मे भूमिहीन श्रमिक पाये जाते है।

इसके अतिरिक्त देश मे औद्योगिक बेरोजगारी भी है, क्योकि औद्योगिक विकास की गति बहुत धीमी रही है। उद्योगो का स्थानीयकरण भी दोषपूर्ण है जिसके कारण कुछ केन्द्रो मे बहुत उद्योग स्थापित हो गये है तथा बहुत भीड-भाड हो गई है। परिणामस्वरूप श्रमिको को खपाने की क्षमता कम हो गई है। हमारे उद्योगो मे उत्पादन की लागत भी काफी ऊँची हैं और वे उचित प्रकार से विकसित नही हो पाते हैं। कुछ उद्योगो मे विवेकीकरण योजनाओ ने भी श्रमिको को रोजगार विहीन कर दिया है। कुछ उद्योग, जैसे चीनी उद्योग, मौसमी होते हैं और वह पूर्णकालिक रोजगार नही दे पाते।

शिक्षित वर्ग मे भी बेरोजगारी पाई जाती है। इसका कारण भी स्पष्ट है। हमारी शिक्षा प्रणाली बहुत अधिक साहित्यिक है तथा हमारे स्नातक क्लर्को अथवा साहित्यिक कार्यों के अतिरिक्त अन्य कार्यो के लिए उपयुक्त नही रहते। स्नातको की बढती सख्या को सीमित कार्यो मे खपाना सम्भव नही है। अतः शिक्षित वर्ग मे भी व्यापक रूप से बेरोजगारी फैली हुई है।

समस्त प्रकार की बरोजगारी का मूल कारण देश का आर्थिक पिछडापन है। आर्थिक क्रियायें बढती हुई जनसख्या के साथ गति नही रख सकी हैं। समस्त प्रकार के रोजगार योग्य श्रमिको की सख्या प्राप्त रोजगार की मात्रा से कही अधिक है। इसका कारण यह है कि देश के उत्पादक साधनो का पूर्णतया तथा उचित रूप

से उपयोग नहीं किया गया। हमारी अर्थ-व्यवस्था की असन्तुलित प्रकृति ही बेरोजगारी का मुख्य कारण है। आयोजना आयोग बेरोजगारी के लिए निम्नलिखित बातों को मुख्यतः उत्तरदायी मानता है : (क) जनसंख्या में तीव्र वृद्धि, (ख) पुरातन ग्रामीण उद्योगों का विलीन होना, (ग) गैर-खेतीहर क्षेत्र का अपर्याप्त विकास, (घ) विभाजन के कारण जनसंख्या का अधिक संख्या मे विस्थापन।

भारत में बेरोजगारी की सीमा

उपरोक्त बातों से यह परिणाम निकलता है कि देश मे बेरोजगार लोगों की संख्या बहुत अधिक है। युद्ध-काल में बेरोजगारी की समस्या दूर हो गई थी। क्योंकि युद्ध के सफलतापूर्वक संचालन के लिये सरकार ने बहुत अधिक सख्या में व्यक्तियों को नौकरी पर लगाया था। परन्तु युद्ध समाप्त होने के पश्चात् लाखों व्यक्ति बेरोजगार हो गये और उनको शान्तिकालीन अर्थ-व्यवस्था मे पुनः रोजगार पर लगाने की समस्या उत्पन्न हो गई है। बेरोजगारी की समस्या निश्शापितों के कारण और भी अधिक गम्भीर बन गई है। ऐसे विस्थापितो की सख्या लगभग ७०-८० लाख है। इनमें से २०-३० लाख ऐसे व्यक्ति है जो कार्य करने के सर्वथा योग्य है। जून १६५० की अन्तर्राष्ट्रीय श्रम समीक्षा के अनुसार अप्रैल १६५० मे भारत में बेरोजगारी की संख्या २,८१,६७२ थी। १६४८ से रोजगार दफ्तरों के चालू रजिस्टरों मे दर्ज प्रार्थियों की संख्या मे निरन्तर वृद्धि हो रही है। ऐसे प्रार्थियों की औसत संख्या प्रति वर्ष के अन्त में निम्न प्रकार थी : १६४८—२,३६,०३३ ; १६५०—३,३०,७४३ ; १६५२—४,३०,५७१ ; १६५४—६,०६,७८० ; १६५५— ६,६१,६५८ ; १६५६— ७,५८,५०३ ; १६५७—६,२२,०६६ ; १६५८— ११,८३,२६६ ; १६५६— १४,२०,६०१ ; १६६०—१६,०६,२४२ ; १६६१—१८,३२,७०३ ; १६६२—२३,७६,५३० ; १६६३—२५,१८,४६३ ; १६६४—२४,६२,८७४ ; १६६५—२५,८५,४७३ ; १६६६—२६,२२,४६० ; १६६७—२७,४०,४३५। अक्तूबर १६५२ में शिक्षित बेरोजगारो की सख्या इस प्रकार थी : तकनीकी—४६,८७६; क्लर्की—१,२०,१२१। सितम्बर १६५५ में रोजगार दफ्तरो मे आंकडो के अनुसार हाई स्कूल के स्तर तथा इससे अधिक शिक्षा के २·३० लाख व्यक्तियों के नाम रोजगार दफ्तर के चालू रजिस्टरो मे दर्ज थे जो निम्न प्रकार थे : हाई स्कूल—१·७४ लाख ; इन्टरमीडिएट—०·२८ लाख ; स्नातक—०·२८ लाख। वास्तव मे बेरोजगारो की सख्या तो इससे भी बहुत अधिक होगी क्योंकि एक तो सभी बेरोजगार व्यक्ति रोजगार के दफ्तर में अपना नाम नहीं लिखाते और दूसरे, रोजगार के दफ्तर मुख्यतः शहरी क्षेत्रो में ही कार्य करते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि बेरोजगारो की संख्या रोजगार के दफ्तरों में पंजीकृत आँकड़ों से लगभग चार गुना अधिक है। सच तो यह है कि बेरोजगारी के ठीक-ठीक आँकड़े उपलब्ध ही नही हैं। १६५३ मे किये गये एक राष्ट्रीय सैम्पिल सर्वेक्षण से पता चलता है कि कलकत्ता शहर की ७·१० प्रतिशत

जनसख्या बेरोजगार थी। उसी वर्ष किये गये एक दूसरे सर्वेक्षण से यह भी पता चला है कि उन शहरो मे जिनकी जनसख्या ५०,००० या इससे अधिक है, २ ५६ प्रतिशत जनसख्या, अथवा श्रमिक शक्ति का ७ ४४ प्रतिशत, बेरोजगार थी। इनमे कलकत्ता, बम्बई, मद्रास व देहली जैसे बडे-बडे नगर सम्मिलित नही थे। बाद वाले सर्वेक्षण से यह भी पता चला है कि इन नगरो की ८·४८ प्रतिशत जनसख्या अपूर्ण रोजगार वाली भी थी, जिसमे ३ १७ प्रतिशत व्यक्तियो का रोजगार अत्यधिक ही अपूर्ण था। इस आधार पर द्वितीय आयोजना के आरम्भ मे शहरी क्षेत्रों मे अत्यधिक अपूर्ण रोजगार वाले व्यक्तियो की सख्या २७ ४ लाख थी। प्रथम कृषि श्रमिक जाच के अनुसार ग्रामीण बेरोजगारो की सख्या १९५०–५१ मे लगभग २८ लाख थी। द्वितीय कृषि श्रमिक जांच (१९५६–५७) के अनुसार रोज़गार स्थिति और अधिक शोचनीय हो गई है तथा ग्रामीण क्षेत्रो मे भूमिहीन कृषि श्रमिको की जीविकोपार्जन शक्ति और कम हो गई है। कार्यक्रम मूल्याकन सगठन (Programme Evaluation Organization) की एक रिपोर्ट के अनुसार यह अनुमान किया गया है कि किसान, शिल्पी तथा कृषि श्रमिक अधिक और कम कार्य वाली दोनो ही अवधियों को मिलाकर कुल कार्य दिवसो मे से ३० प्रतिशत से अधिक दिन बेरोज़गार रहते हैं या उनका रोजगार अपूर्ण रहता है। उपलब्ध आँकडो के आधार पर आयोजना आयोग ने अनुमान लगाया था कि १९५६ के प्रारम्भ मे देश मे बरोज़गारो की सख्या लगभग ५३ लाख थी। उनमे से २५ लाख शहरी क्षेत्रो मे तथा २८ लाख ग्रामीण क्षेत्रों में थे।

द्वितीय पचवर्षीय आयोजना अवधि मे जितने रोज़गार के अवसर उपलब्ध हुए थे वे प्रत्येक वर्ष श्रम शक्ति मे वृद्धि के अनुपात से बहुत कम थे। यह कमी लगभग २० लाख की थी। द्वितीय आयोजना अवधि मे श्रमिक शक्ति मे अनुमानित वृद्धि से कही अधिक वृद्धि हुई और यह अधिक वृद्धि १७ लाख की थी। तीसरी आयोजना के आरम्भ होने पर पिछली बेरोजगारी का अनुमान ९० लाख का है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रो में विशेषत बहुत अधिक अपूर्ण रोजगार है। मई १९५५ और अगस्त १९५७ के मध्य राष्ट्रीय सेम्पिल सर्वेक्षण के ९वें तथा १२वे दौर द्वारा अनुसन्धान से यह पता चलता है कि काम पर लगी हुई जनसख्या मे से शहरी क्षेत्रो मे ८ से ९% तक तथा ग्रामीण क्षेत्रो मे १० से १२% तक जनसख्या प्रति सप्ताह औसत रूप से ४२ घण्टे कार्य करती थी और वह अतिरिक्त रोजगार के लिए उपलब्ध थी। इस आधार पर आयोजना आयोग ने अनुमान लगाया है कि देश मे बेरोज़गारो की सँख्या १ ५ करोड से १ ८ करोड तक है।

प्रयुक्त मानव शक्ति अनुसन्धान सस्था (Institute of Applied Man power Research) के श्री वाई० एस० यगनारमण ने १९६१ की जनसख्या के आँकडो तथा राष्ट्रीय 'सेम्पिल सर्वे' के ११वें और १२वें दौर के आँकडो के आधार पर विभिन्न आयु वर्गो मे बेरोज़गारो की सख्या १९६१ मे अग्राकित अनुमानित की है —

(लाखों में)

आयु वर्ग (वर्षों में)	ग्रामीण			नगरीय			समस्त भारत		
	पुरुष	महिला	योग	पुरुष	महिला	योग	पुरुष	महिला	योग
५–१५	४.१	३·८	७·९	०·८	०·२	१·०	४·९	४·०	८·८
१६–२१	९·८	६·६	१६·४	५·५	०·९	६·४	१३·२	७·५	२२·८
२२–२६	७·९	५·७	१३·६	३·२	०·५	३·७	११·२	६·२	१७·३
२७–३६	९·३	९·७	१९·०	३·०	०·६	३·६	१२·४	१०·४	२२·७
३७–४६	६·५	७·७	१४·२	२·१	०·४	२·४	८·५	८·१	१६·६
४७–५६	४·१	३·८	७·९	१·२	०·२	१·४	५·४	४·०	९·३
५७–६१	१·४	०·८	२·२	०·५	०·१	०·६	१·९	०·९	२·८
६२ से ऊपर	१·३	०·६	१·६	०·२	०·०	०·२	१·५	०·६	२·१
योग	४४·४	३८·७	८३·१	१६·५	२·९	१९·४	६०·९	४१·६	१०२·४

श्रम व रोजगार मन्त्रालय के अन्तर्गत जो रोजगार दफ्तरों के निदेशालय का श्रम शक्ति विभाग है उसके द्वारा १५ मई १९५७ की स्नातकों में बेरोजगारी के स्वरूप का एक अध्ययन किया गया था। इसके अनुसार अन्य राज्यों की अपेक्षा पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, बम्बई व देहली में बेरोजगार स्नातकों की संख्या अधिक थी। बेरोज़गार महिला स्नातकों की सबसे अधिक संख्या केरल में थी। रोजगार के इच्छुक बेरोज़गारों में ९३% संख्या पुरुषों की थी तथा ७% संख्या महिलाओं की थी। ४८·५% कला स्नातक, २२·७% विज्ञान स्नातक तथा १२·८% वाणिज्य स्नातक थे। कला व विज्ञान के स्नातकों की अपेक्षा वाणिज्य स्नातकों में बेरोज़गारी अधिक थी।

राष्ट्रीय रोजगार सेवा द्वारा १९५३–५७ में रोज़गार पाने वाले व्यक्तियों की संख्या और प्रकार का एक अध्ययन किया गया था। इससे पता चलता है कि देश में बेरोज़गारी तीव्र गति से बढ़ रही है और नई नौकरियों की संख्या बढ़ती हुई बेरोजगारी से मेल नहीं खा पा रही है। अध्ययन से यह पता चलता है कि इस अवधि में प्रति १०० नौकरियों के लिए प्रार्थियों की संख्या २,००० से भी अधिक थी। अध्ययन के लिए चालू रजिस्टरों में प्रार्थियों को ७ व्यावसायिक श्रेणियों में बाँटा गया था। दिसम्बर १९५८ में इनकी संख्या अग्र तालिका में बताई गई है।

इस प्रकार अकुशल नौकरियों की श्रेणी में सबसे अधिक व्यक्ति थे। इसके बाद बेरोज़गारों में क्लर्कों की श्रेणी आती है। अध्ययन से यह भी पता चला कि औद्योगिक पर्यवेक्षण की नौकरियों की श्रेणी में बेरोजगारों की संख्या सीमित थी और इस श्रेणी में प्रार्थियों को शीघ्रता से रोजगार भी मिल जाता था। कुशल एवं अर्द्धकुशल श्रेणी में तकनीकी व्यक्तियों को अपेक्षाकृत अधिक सरलता से कार्य मिल जाता था तथा इस श्रेणी में प्रार्थियों की कमी भी अनुभव की गई थी।

अध्यापन-कार्य और इसी प्रकार के अन्य व्यवसायो मे नौकरी पाने के इच्छुक व्यक्तियो की सख्या मे तीव्र गति से वृद्धि हुई थी। घरेलू नौकरी पाने वालो की श्रेणी मे प्रार्थी निजी व्यक्तियो की नौकरी की अपेक्षा अस्पताल आदि जैसी सार्वजनिक सस्थाओ मे नौकरी करना अधिक पसन्द करते थे। अकुशल व क्लर्को की श्रेणी मे बेरोजगारो की सख्या मे निरन्तर वृद्धि हुई है। शैक्षणिक वर्ग को भी नौकरी दिलाने मे सबसे अधिक वृद्धि हुई और इसके पश्चात् क्लर्क वर्ग आता था। इस अवधि मे ऐसे प्रार्थियो की सख्या जो शिक्षा के कार्य मे नौकरी पाना चाहते थे दुगुने से भी अधिक हो गई थी।

विभिन्न प्रकार की नौकरियो के प्रार्थी		सख्या	योग का प्रतिशत
औद्योगिक पर्यवेक्षण की नौकरिया	...	९,९२३	० ८
कुशल एव अर्द्ध कुशल नौकरियाँ	...	८९,६६५	७·५
क्लर्की की नौकरियाँ	..	३,०९,२०३	२६·१
शैक्षणिक नौकरियाँ	...	५६,१५७	४·८
घरेलू नौकरियाँ	.	४३,८२३	३ ७
अकुशल कार्य की नौकरियाँ	...	६,२०,२४६	५२·३
अन्य	...	५७,२७६	४·८
	योग	११,८३,२९९	१०० ०

दिसम्बर १९६६ के अन्त मे रोजगार दफ्तरो के चालू रजिस्टर मे जो प्रार्थियो की सख्या थी उनका धन्धे के हिसाब से वितरण पृष्ठ ९६५ पर दी गई तालिका मे दिया गया है।

रोजगार दफ्तरो के चालू रजिस्टरो मे शिक्षित बेरोजगारो (हाई स्कूल तथा उससे ऊपर के व्यक्ति) की सख्या इस प्रकार थी– दिसम्बर १९५९ मे ४,३३,१११; दिसम्बर १९६० मे ५,०७,२२० (इनमे से ४६,५८४ स्नातक थे), दिसम्बर १९६१ मे ५,९०,२३०, दिसम्बर १९६२ मे ७,०८,३५६ तथा दिसम्बर १९६३ मे ७,३९,०६६; १९६४ मे ८ ०५ लाख, १९६५ मे ८ ४२ लाख, १९६६ मे ९·१७ लाख और १९६७ के अन्त मे १० ८७ लाख। (इनमे १,२१,४७९ स्नातक तथा स्नातकोत्तर थे)। १९६६ मे, शिक्षित प्रार्थियो मे लगभग ९४,००० स्नातक या स्नातकोत्तर थे। रोजगार पाने के लिए इच्छुक स्त्रियो की सख्या मे भी वृद्धि होती जा रही है। रोजगार दफ्तरो मे पजीकृत महिला प्रार्थियो की सख्या निम्नलिखित थी. दिसम्बर १९५८ मे ८५,८८०, दिसम्बर १९५९ मे १,०५,८४२, दिसम्बर १९६० मे १,२१,१२४; फरवरी १९६२ मे १,४१,०९३ तथा दिसम्बर १९६३ मे १,६७,९८९; दिसम्बर १९६४ मे २ २० लाख, दिसम्बर १९६५ मे २·३१ लाख, दिसम्बर १९६६ मे २ ६० लाख और दिसम्बर १९६७ में ३·०५ लाख।

	संख्या	कुल संख्या का प्रतिशत
(१) पेशेवर, तकनीकी तथा सम्बद्ध श्रमिक	१,५३,०५८	५·८
(२) प्रशासकीय, कार्यांग तथा प्रबन्धीय श्रमिक	४,३६४	०·२
(३) क्लर्की, विक्रय तथा सम्बद्ध श्रमिक	९४,३१६	३·६
(४) कृषि, दुग्धशाला तथा सम्बद्ध श्रमिक	९,७०२	०·४
(५) खानें, पत्थर की खानें तथा सम्बद्ध श्रमिक	२,४८१	०·१
(६) यातायात व संचार धन्धों मे श्रमिक	६२,१५६	२·४
(७) शिल्पी तथा उत्पादन प्रक्रिया के श्रमिक	१,९५,३२३	७·४
(८) सेवा कर्मचारी (उदाहरणतः बावर्ची, चौकीदार, भंगी आदि)	९९,५३६	३·८
(९) कार्य अनुभवी ऐसे श्रमिक जिनका अन्य कोई वर्गीकरण नही है	१,०३,३७१	३·९
(१०) ऐसे व्यक्ति जिन्हे किसी पेशे या व्यवसाय मे प्रशिक्षण नही है अथवा ऐसे व्यक्ति जिन्हें किसी पिछले कार्य का अनुभव नहीं है—		
(क) मैट्रिक से कम (अनपढ़ों सहित)	११,७३,३४८	४४·८
(ख) मैट्रिक अथवा उससे अधिक परन्तु स्नातक से कम	६,५०,८०२	२४·८
(ग) स्नातक तथा उससे ऊँचे	७३,५९९	२·८
	२६,२२,४६०	१००·०

रोजगार तथा प्रशिक्षण के महा-निदेशक ने नमूने के आधार पर हाल ही में एक *अखिल भारतीय स्नातक रोजगार सर्वेक्षण किया है।* इस सर्वेक्षण का उद्देश्य उन स्नातको के रोजगार व आय आदि के विषय में जानकारी प्राप्त करना है जिन्होंने १९५४ मे विश्वविद्यालयो से डिग्रियाँ प्राप्त की थी। (२२,५०० स्नातकों की सूची मे से २० हजार स्नातको के पते प्राप्त हो सके थे और उन्हे प्रश्नावली भेजी गई थी। ७ हजार स्नातकों के उत्तर प्राप्त हुए)। जो सूचना मिली उसे सारिणीबद्ध किया जा रहा है। देहली विश्वविद्यालय के पिछले विद्यार्थियों को कहाँ और किस प्रकार का रोजगार मिला है उसका भी एक सर्वेक्षण हाल मे किया गया है। विभिन्न राज्यों मे रोजगार की प्रवृत्ति और सम्भावनाओ पर एक अध्ययन किया जा रहा है। १९६२ मे भारत सरकार द्वारा प्रयुक्त मानव शक्ति अनुसन्धान सस्था (Institute of Applied Man Power Research) स्थापित की गई थी जिसका उद्देश्य मानव-शक्ति के आयोजन की समस्याओं पर अनुसन्धान-कार्य करना था। इस सस्था ने देश में मानव-शक्ति के क्षेत्रीय सर्वेक्षण का कार्यक्रम सगठित किया है और इस सर्वेक्षण के प्रथम चरण के रूप मे, जुलाई १९६३ में उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले में एक मार्ग-दर्शक या अग्रगामी आयोजना चालू की गई थी।

बेरोजगारी के कारण देश को हानि

बेरोजगारी से सामाजिक तथा राजनैतिक दोनों क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ता है। बेरोजगारी बढ़ने से निर्धनता तथा असहायता उत्पन्न हो जाती है, जिनका प्रभाव पूर्ण समाज पर पड़ता है, तथा सामाजिक जीवन में गिरावट आ जाती है। इसके परिणामस्वरूप पाप, अपराध, गन्दगी तथा रोग जैसी बुराइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिनकी कोई भी समाज अवहेलना नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त, बेरोजगारी देश की राजनैतिक स्थिरता की जड़ में घुन लगा देती है। भारतीय राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थिति के वर्तमान सदर्भ में बेरोजगारी तथा इसके दुष्परिणाम की अवहेलना नहीं की जा सकती। यह मानवीय प्रश्न ही नहीं है वरन् ऐसा प्रश्न है जिस पर सरकार तथा जनता दोनों को ही गम्भीरतापूर्वक ध्यान देना चाहिये। प्रो० बी० पी० आदरकर ने गणना की है कि कार्य-कुशलता के वर्तमान स्तर पर भारत में बेरोजगारी तथा अपूर्ण बेरोजगारी के कारण वार्षिक हानि एक हजार करोड़ रुपये से अधिक होती है। यह राशि समस्त राज्य सरकारों तथा भारत सरकार के सम्मिलित बजट से भी अधिक है। परन्तु बहुत कम व्यक्ति इस बात का अनुभव करते हैं कि प्रतिवर्ष देश में इतनी विशाल रूप से हानि हो रही है। हानि का अनुभव इसलिये नहीं होता क्योंकि मुद्रात्मक हानि नहीं होती वरन् सम्भाव्य धन की हानि होती है। किन्तु धन में केवल मुद्रा ही नहीं वरन् वस्तुयें तथा वास्तविक सेवायें भी सम्मिलित की जाती है।

भारत में बेरोजगारी का उपचार

अत बेरोजगारी के उपचारों पर विचार किया जाना आवश्यक है। इस विषय में रोजगार दफ्तर बहुत अधिक सहायक हो सकते हैं। प्रथम तो, यदि रोजगार दफ्तर मालिकों तथा कर्मचारियों में निकट सम्पर्क उत्पन्न करने के लिए कुशलतापूर्वक कार्य करें तो मालिकों तथा कर्मचारियों का कार्य सरल हो जाता है तथा रोजगार दिलाने की सामाजिक व्यवस्था उचित प्रकार से कार्य कर सकती है। रोजगार दफ्तर देश में सामाजिक एवं आर्थिक अवस्थाओं के अनुसन्धान का अवसर भी प्रदान करते हैं तथा वह यह संकेत कर सकते हैं कि बेरोजगारी में कितनी वृद्धि हो रही है और इस प्रकार सरकार को अपनी नीति निर्धारित करने तथा कार्यक्रम बनाने का अवसर प्रदान करके आर्थिक विनाश से देश की रक्षा करते हैं। ये दफ्तर श्रमिकों को प्रशिक्षण प्रदान कर सकते हैं तथा श्रमिकों की गतिशीलता बढ़ा सकते हैं। भारत की राष्ट्रीय रोजगार सेवा ने कुछ उत्तम प्रकार के कार्य किये हैं परन्तु फिर भी इस संगठन में सुधार तथा इसके कार्यों में विस्तार करने की बहुत अधिक आवश्यकता है। इस समस्या का भर्ती के अध्याय के अन्तर्गत विवेचन किया जा चुका है।

विभिन्न प्रकार की बेरोजगारी के हेतु विभिन्न उपचारों का सुझाव देना आवश्यक है यद्यपि ये आपस में पूर्णतया एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। खेतीहर

बेरोजगारी की समस्या सुलझाने के लिये स्पष्ट उपचार यह है कि भारतीय कृषि का पुनर्गठन किया जाए, अर्थात् उत्तम भूमि, श्रम, पूँजी एवं संगठन हो तथा भूमि पर जनसंख्या का दबाव कम करने के लिये कुटीर एवं लघु उद्योग धन्धों को स्थापित किया जाय। भूमि का पुनरोद्धार, जुताई के उत्तम उपाय, भूमि सम्बन्धी सुधार, सिंचाई सुविधायें, सहकारी खेती, भूमि का पुन: वितरण, ग्रामीण निर्माण कार्यक्रम, आदि कुछ ऐसे उपाय है जो इस समस्या को हल करने में सहायक हो सकते हैं।

औद्योगिक बेरोजगारी का उपचार औद्योगिक कुशलता मे वृद्धि तथा औद्योगिक ढांचे का पुनर्गठन करके हो सकता है। यह समस्या पूँजी निर्माण-बचत तथा निवेश से सम्बन्धित है। पंचवर्षीय आयोजनाओं के अन्तर्गत आरम्भ किये गये विकास कार्यक्रमों से औद्योगिक बेरोजगारी कम होने की आशा की जा सकती है किन्तु कुछ तत्कालीन उपचारों की भी आवश्यकता है और इसके लिये हमे उपभोग सम्बन्धी वस्तुओं के उद्योगों का विकेन्द्रीकरण करना चाहिये तथा छोटे पैमाने के ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों के पुनर्गठन की साहसपूर्ण नीति का अनुगमन करना चाहिये। इस प्रकार निर्धनता से ग्रसित लाखों व्यक्तियों को रोजगार प्रदान किया जा सकता है। यह ध्यान में रखने योग्य बात है कि औद्योगिक क्षेत्रो मे श्रमिकों की एक बडी संख्या ग्रामीण क्षेत्रों से आती है। अत: यदि ग्रामो मे रोजगार प्रदान कर दिया जाय तो औद्योगिक बेरोजगारी का स्वत: समाधान हो जायगा।

शिक्षित बेरोजगारी का हल शिक्षा प्रणाली के पुनर्गठन से हो सकता है। इसके लिए तकनीकी तथा व्यावसायिक अध्ययन पर अधिक बल देना चाहिये तथा मध्यवर्गीय युवकों को वाणिज्य एवं कृषि सम्बन्धी रोजगार ग्रहण करने के लिये उत्साहित करना चाहिए। अत: यह समस्या भी कृषि तथा उद्योगो के विकास से सम्बन्धित है क्योंकि जब तक रोजगार के स्रोत नहीं होंगे किसी भी प्रकार की शिक्षा से समस्या हल नही हो सकेगी। विश्वविद्यालयों तथा कालिजो के छात्रों में से अधिकतर छात्र ग्रामीण परिवारो से सम्बन्धित होते है। अत: हमे विश्वास है कि यदि कृषि को आकर्षक तथा लाभप्रद व्यवसाय बना दिया जाय तो उच्च साहित्यिक शिक्षा की उत्कंठा तथा इच्छा स्वत: कम हो जायेगी। इसके अतिरिक्त हमारे देश की जनसंख्या मे तीव्र गति से वृद्धि हो रही है तथा यह अनुमान लगाया गया है कि प्रतिवर्ष २० लाख श्रम शक्ति में वृद्धि हो जाती है। परिवार नियोजन के द्वारा जन-संख्या की वृद्धि मे रोक होनी चाहिये क्योंकि जब तक देश में व्यक्तियो की संख्या तथा देश मे उपलब्ध साधनो मे उचित सामंजस्य नही होगा तथा आर्थिक विकास की गति जनसंख्या की वृद्धि की गति से नहीं बढ जाती तब तक बेरोजगारी की समस्या का समाधान नहीं हो सकता। अत: इस बुराई को दूर करने के हेतु हमारे सामाजिक तथा आर्थिक ढाँचे में संस्थात्मक परिवर्तन की आवश्यकता है।

अतः बेरोजगारी की समस्या का दीर्घकालीन दृष्टिकोण से अवलोकन होना चाहिये। बेरोजगारी का अत्युत्तम उपचार आर्थिक नियोजन है। नियोजन ही हमें इस योग्य बना सकता है कि देश के वर्तमान बेकार मानवीय तथा प्राकृतिक साधनों को धन के उत्पादन में लगा सकें। उचित आर्थिक आयोजन के द्वारा ही यह सम्भव है कि खेती, उद्योग, शिक्षा-प्रणाली आदि में सुधार किये जा सकें तथा साधनों का उचित रूप से विकसित किया जा सके। बेरोजगारी की समस्या आयोजना-बद्ध आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत हल करनी चाहिये। रूस में तथा अमरीका जैसे पूँजीपति देश में भी किये गये प्रयोगों से ज्ञात होता है कि ऐसा करना सम्भव है। यदि हम देश में बेरोजगारी की समस्या हल करना चाहते हैं तो पूँजीगत सामान के सम्भरण में काफी वृद्धि तथा संगठनात्मक ढांचे में उपयुक्त परिवर्तन होने के साथ-साथ लघु ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों के संगठन द्वारा श्रम प्रधान उपायों पर आयोजनाओं में अधिक बल दिया जाना चाहिये।

यह भी उल्लेखनीय है कि गत वर्षों में बेरोजगारी की समस्या ने उग्र रूप धारण कर लिया है तथा स्वर्गीय पण्डित नेहरू के शब्दों में, 'आज यह सबसे गहन प्रश्न है।" श्री श्रीमन नारायण ने इस समस्या को प्रथम श्रेणी का शत्रु कहा है। रोजगार दफ्तरों में पंजीकृत व्यक्तियों की संख्या तीव्रता से बढ़ रही है, जबकि रिक्त स्थानों की संख्या एवं नौकरियाँ कम होती जा रही हैं। शिक्षित वर्ग में समस्या अधिक जटिल एवं गम्भीर हो गई है। एक रिक्त पद के लिये हजारों प्रार्थना-पत्र मिलते हैं जिनमें से कुछ उच्चस्तरीय शिक्षित व्यक्तियों के भी होते हैं। भारत में आयोजनाओं का सबसे अधिक असन्तोषजनक लक्षण यही है कि भारत में बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। आयोजनाओं की सफलता भी अधिकतर इसी बात से आंकी जायगी कि आयोजना अवधि में बेरोजगार तथा अपूर्ण रोजगार वालों को किस सीमा तक नये रोजगार अवसर प्रदान किये गये हैं।

रोजगार और आयोजनायें

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में आयोजना आयोग ने बताया था कि भारत में बेरोजगारी की अपेक्षा अपूर्ण रोजगार की समस्या अधिक थी। अपूर्ण रोजगार को दूर करने तथा वास्तविक आय के बढ़ते हुये सभी स्तरों के साथ साथ रोजगार के नये अवसरों को उपलब्ध करने की समस्या वस्तुतः विकास की समस्या की पर्यायवाची ही है। बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने में आयोजना का योगदान दो प्रकार से हो सकता है प्रथम तो निवेश की दर अधिक होने से उन व्यक्तियों को रोजगार के अधिक अवसर प्राप्त हो जायेंगे जो निर्माण कार्यों में लगे हुये हैं तथा दूसरे, आर्थिक व्यवस्था में आधारभूत स्थलों में पूँजी का निर्माण करके उत्पादन कार्यों में अधिक व्यक्तियों को रोजगार देने का कार्य किया जा सकता है। प्रथम आयोजना में यह कहा गया था कि आयोजना अवधि में बड़े और छोटे पैमाने दोनों प्रकार के नये उद्योगों में लगभग ४ लाख अतिरिक्त व्यक्तियों के रोजगार पाने की

—

सम्भावना थी, १२½ लाख श्रमिकों को प्रतिवर्ष मुख्य सिचाई और शक्ति प्रायोजनाओं मे काम मिल सकता था, पुराने तालाबो, कुओं तथा जलाशयों की मरम्मत तथा छोटी सिंचाई योजनाओं मे डेढ़ लाख श्रमिको को प्रतिवर्ष रोजगार मिल सकता था, भूमि पुनरुद्धार के कारण ७½ लाख व्यक्तियो को अतिरिक्त रोजगार, भवन बनाने तथा निर्माण-कार्य में १ लाख व्यक्तियों को ; सडको के बनाने में २ लाख व्यक्तियों को तथा कुटीर उद्योगों मे २० लाख व्यक्तियों को रोजगार मिल सकने का अनुमान था।

उपरोक्त आंकड़े विशेष उत्साहवर्द्धक नही थे और प्रथम पंचवर्षीय आयोजना की यह मुख्य आलोचना थी कि इसमे बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने के लिये कोई विशेष प्रयत्न नही किये गये थे। बेरोजगारी व अपूर्ण रोजगार दो ऐसी बुराइयां हैं जिन्होंने भारत जैसे अर्ध-विकसित देश मे एक गम्भीर समस्या उत्पन्न कर दी है। आयोजना के पांच वर्षों में बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने से कुछ सहायता मिलनी चाहिये थी। परन्तु यह भी ध्यान मे रखना आवश्यक है कि प्रथम आयोजना का मुख्य रूप से उद्देश्य युद्ध और युद्ध के पश्चात् की अवधि मे अर्थ-व्यवस्था में जो असन्तुलन आ गया था उसको ठीक करना था। यही कारण है कि प्रथम आयोजना में बेरोजगारी की समस्या को पर्याप्त महत्ता नही दी जा सकी थी। रोजगार के अवसरो के सम्बन्ध मे आयोजना के उपबन्धो की कमियो को स्वयं आयोजना आयोग ने अनुभव किया था तथा आयोजन काल के मध्य मे ही आयोजना के आकार को २,०६९ करोड रुपये से बढ़ाकर २,३७८ करोड रुपये तक विस्तृत करना पड़ा था। शिक्षित बेरोजगारों को रोजगार प्रदान करने के उद्देश्य से सितम्बर १९५३ में सरकार ने एक विशेष शिक्षा प्रसार कार्यक्रम की घोषणा की थी। आयोजना आयोग ने बेरोजगारी दूर करने के लिये एक ११ सूत्री कार्यक्रम की घोषणा की। यह निम्न प्रकार था : (१) छोटे पैमाने के उद्योगो को स्थापित करने मे सहायता, (२) उन क्षेत्रों मे प्रशिक्षण सुविधाओं को देना जहाँ श्रम मानव-शक्ति की कमी है, (३) छोटे पैमाने तथा कुटीर उद्योग-धन्धो को प्रोत्साहन देने के लिये राज्य व स्थानीय अधिकारियो द्वारा उनके माल का क्रय, (४) शहरी क्षेत्रो मे वयस्क शिक्षा केन्द्र तथा ग्रामीण क्षेत्रो मे एक-अध्यापक स्कूलों को खोलना, (५) राष्ट्रीय विस्तार सेवा की तत्काल स्थापना, (६) सड़क यातायात का विकास, (७) गन्दी बस्तियों की सफाई तथा कम लागत वाले मकानों के निर्माण की योजना, (८) निजी भवन निर्माण-कार्यों को प्रोत्साहन, (९) शरणार्थी नगरों को बसाने के लिये आयोजित सहायता, (१०) निजी पूँजी द्वारा शक्ति के विकास की योजनाओं को प्रोत्साहन, तथा (११) कार्य और प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना।

परन्तु इन सब उपायों से बेरोजगारों की वर्तमान संख्या मे थोडी बहुत कमी हो सकती थी परन्तु वास्तव मे तो समस्या को दीर्घकालीन दृष्टिकोण से देखना चाहिये था। प्रथम आयोजना की प्रगति का मूल्यांकन करते हुए स्वयं आयोजना

आयोग ने यह स्वीकार किया था कि "रोजगार के अवसरो मे वृद्धि श्रम शक्ति की वृद्धि के अनुरूप नही हो पाई है। प्रथम आयोजना मे निवेश मे इतनी वृद्धि नही हो पाई थी कि रोजगार के इच्छुक नए प्रार्थियो को काम दिया जा सके। इसके अतिरिक्त पिछली बेरोजगारी और अपूर्ण रोजगार की भी समस्या है जिसको दूर करना है।"

द्वितीय आयोजना मे इस बात का उल्लेख था कि रोजगार बढाने की सुविधाओ का प्रश्न आयोजना के पूँजी निवेश सम्बन्धी कार्यक्रम से अलग नही किया जा सकता था। भारत म रोजगार अवसरो को प्रदान करने का कार्य त्रिमुखी बताया गया था (१) इस समय जो लोग बेरोजगार है उनके लिये कार्य की व्यवस्था करना, (२) श्रम-शक्ति मे जो प्राकृतिक रूप से वृद्धि होती है उसके लिय व्यवस्था करना। यह वृद्धि पाँच वर्षों की अवधि मे प्रतिवर्ष २० लाख अनुमानित की गई थी, (३) ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रो मे कृषि व घरेलू कार्यों मे जो श्रमिक अपूर्ण रोजगार ही पाते है उनके लिये अधिक कार्य की व्यवस्था करना।

निम्नलिखित तालिका मे रोजगार के उन अवसरों का अनुमान दिया गया है जो दूसरी आयोजना की अवधि मे बेरोजगारी को सर्वथा समाप्त करने के लिए उपलब्ध करने का अनुमान था—

(व्यक्तियो की सख्या—लाखो मे)

	शहरो मे	देहातो मे	योग
पिछले बेरोजगारो की, अर्थात् द्वितीय आयोजना अवधि से पूर्व बेरोजगार व्यक्तियो की, सख्या . . .	२५ ०	२८ ०	५३ ०
श्रम-शक्ति के लिये नये प्रार्थी—अर्थात् द्वितीय आयोजना अवधि म रोजगार के इच्छुक नये व्यक्ति	३८ ०	६२ ०	१०० ०
योग	६३ ०	९० ०	१५३ ०

इतने अधिक व्यक्तियो को रोजगार के अवसर प्रदान करने के अतिरिक्त अपूर्ण रोजगार की अलग समस्या थी।

आयोजना आयोग द्वारा यह कहा गया था कि समस्या की गम्भीरता को दृष्टिगत रखते हुए "यह आशा करना कि द्वितीय आयोजना की समाप्ति तक पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त कर लिया जायेगा, गलत होगा ...। हमे अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये द्वितीय आयोजना की अवधि की समाप्ति के पश्चात् भी कई वर्षों तक कई प्रकार के नियोजित प्रयत्न करने पडेंगे।" परन्तु उद्देश्य को शीघ्र प्राप्त करने के लिये 'आयोजना मे जितनी भी प्रायोजनायें है उनकी रोजगार दिलाने की क्षमता को अधिक से अधिक बढाने की ओर विशेष रूप से ध्यान देना

होगा और साथ ही हमें अपनी दीर्घकालीन आवश्यकताओं का भी ध्यान रखना होगा।"

द्वितीय आयोजना के अन्तर्गत विभिन्न कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप जो अतिरिक्त व्यक्तियों को रोजगार मिल सकता था उसका अनुमान निम्न प्रकार है—

	(व्यक्तियों की संख्या—लाखों में)
(१) निर्माण कार्य	२१·००
(२) सिंचाई एवं विद्युत	०·५१
(३) रेलें	२·५३
(४) अन्य यातायात तथा संचार	१·८०
(५) उद्योग एवं खनिज	७·५०
(६) कुटीर एवं लघु उद्योग	४·५०
(७) वन, मछली व्यवसाय, राष्ट्रीय विस्तार सेवा व सम्बन्धित कार्यक्रम	४·१३
(८) शिक्षा	३·१०
(९) स्वास्थ्य	१·१६
(१०) अन्य समाज सेवायें	१·४२
(११) सरकारी नौकरियाँ	४.३४
(१) से (११) तक का योग	५१·९९
(१२) अन्य कार्य जिनमे व्यापार और वाणिज्य भी सम्मिलित है (योग का ५२% के हिसाब से)	२७·०४
कुल योग	७९·०३
अर्थात् लगभग	८०·००

मद १२ मे जो अनुपात दिया गया है वह अनुपात १९५१ की जनगणना के अनुसार ही निकाला गया है। इस वर्ग के व्यक्तियों का, कृषि को छोड़कर, अन्य सब वर्गों के रोजगार पर लगे हुए व्यक्तियों के हिसाब से अनुपात निकाला गया था। यह अनुमान लगाया गया था कि १९६१ मे भी यही अनुपात रहेगा, यद्यपि इस अनुपात के बढ़ने की सम्भावना थी क्योंकि विकास कार्यक्रमों की वृद्धि के कारण व्यापार और वाणिज्य मे वृद्धि होगी।

उपरोक्त तालिका मे दिये गये आँकड़ो के अतिरिक्त यह आशा की गई थी कि कृषि, भूमि पुनरुद्धार योजनाओं, बागान के विकास व विस्तार की योजनाओं, उद्यान विकास की योजनाओं आदि के कारण १६ लाख नये रोजगार के इच्छुक ग्रामीण व्यक्तियों को रोजगार मिल सकेगा। ग्रामीण क्षेत्रो मे अपूर्ण रोजगार को दूर करने में सिंचाई योजनाओ तथा ग्रामीण व छोटे पैमाने के उद्योग धन्धो के विकास कार्यक्रम से भी सहायता मिलेगी।

आयोजना आयोग ने यह निष्कर्ष निकाला था कि "यद्यपि उपरोक्त बातों को देखते हुए बरोजगारी दूर करने के लिए आयोजना के रोजगार सम्बन्धी कार्यक्रमों का परिणाम महत्वपूर्ण हो सकता है, परन्तु हमें द्वितीय पचवर्षीय आयोजनाओं की अवधि में इस समस्या की ओर निरन्तर ध्यान देना पडेगा।"

आयोग ने १९५५ में शिक्षितों में बेरोजगारी दूर करने के हेतु कार्यक्रम बनाने के लिये एक विशेष अध्ययन दल की नियुक्ति की थी। दल के अनुसार वर्तमान शिक्षित बरोजगारों की सख्या ५ ५ लाख थी तथा उसने यह भी अनुमान लगाया था कि आगामी पाच वर्ष की अवधि में शिक्षित बेरोजगारों की सख्या १४ ५ लाख और बढ जायगी। इस प्रकार २० लाख शिक्षित व्यक्तियों को रोजगार दिलाने की समस्या थी। दल ने यह भी अनुमान लगाया है कि आयोजना में विभिन्न योजनाओं, निजी क्षेत्र में विकास कार्यक्रमों तथा अवकाश ग्रहण करने वाले व्यक्तियों के स्थान पर नए व्यक्तियों को रोजगार आदि के परिणामस्वरूप केवल १४ ५ लाख व्यक्तियों का ही रोजगार मिल सकेगा। इस प्रकार ५ ५ लाख व्यक्तियों को रोजगार पर लगाने की समस्या फिर भी बनी रहेगी। रोजगार में वृद्धि करने के लिये छोटे व बडे पैमाने के उद्योग, सहकारी समितियां व यातायात आदि क विकास का सुझाव दिया गया था। आयोग ने यह भी सुझाव दिया था कि इन योजनाओं को अग्रिम आधार पर चलाया जाये और इनके परिणामों को सतर्कता स देखा जाय। इस ओर भी सकेत किया गया था कि शिक्षित बरोजगारी की समस्या को सुलझाने के लिये दीर्घकालीन कदम उठाये जाने चाहियें। इन तदर्थ उपायों स स्थायी परिणाम नही प्राप्त किय जा सकते। देश की रोजगार सम्बन्धी आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा और प्रशिक्षण सुविधाओं में भी सम्बन्ध स्थापित करन की आवश्यकता थी।

सक्षेप म, द्वितीय पचवर्षीय आयोजना अवधि म कृषि को छोडकर अन्य क्षेत्रों में लगभग ८० लाख अतिरिक्त व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त होने का अनुमान था। कृषि क्षेत्र में भी रोजगार के अवसरों में कुछ वृद्धि होन की सम्भावना थी। इसके अतिरिक्त सिंचाई जैसी कृषि सुविधाओं के अधिक होने तथा भूमि पुनरुद्धार और कुटीर एव लघु उद्योगों के विकास को ग्रामीण योजनाओं के लागू करने के कारण अपूर्ण रोजगार को भी कम किया जा सकता था। शिक्षित बेरोजगारों को भी आयोजना के विकास कार्यक्रमों तथा आयोजना में दी गई उनके लिये कुछ विशेष योजनाओं के कारण लाभ हो सकता था। सब बातों को देखते हुए आयोजना म इस बात के लिये पर्याप्त योजनायें थी कि श्रम शक्ति में जो १ करोड व्यक्तियों की वृद्धि होगी उसके अनुसार श्रम की माँग में भी वृद्धि हो। परन्तु द्वितीय आयोजना में जैसा सुझाव था उसके अनुसार यदि उपलब्ध साधनों को सन्नद्ध किया जाय और उनका सर्वोत्तम रूप में प्रयोग भी किया जाय फिर भी बेरोजगारी और अपूर्ण रोजगार की इस दोमुखी समस्या के सुलझाने में इनका इतना अधिक प्रभाव नही पड़ेगा जितनी कि आवश्यकता थी। आयोग ने इस बात

पर भी विशेष जोर दिया था कि, "जैसे-जैसे आयोजना आगे चले वैसे-वैसे आयोजना के कार्यान्वित होने के कारण जो अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध हों उनका निरन्तर मूल्यांकन करते रहना चाहिये जिससे आयोजना मे रोजगार के निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने के लिये उपयुक्त कदम उठाए जा सकें।"

यह कहा गया था कि आयोजना "रोजगार प्रधान आयोजना" (Employment Oriented) थी। आयोजना का एक उद्देश्य यह माना गया था कि रोजगार के अवसरों में वृद्धि की जाय। फिर भी हमारे देश मे बेरोजगारी और अपूर्ण रोजगार की समस्या इतनी अधिक गम्भीर है कि द्वितीय आयोजना काल मे उसके पूर्णतः समाधान की कोई सम्भावना नही थी। आयोजना मे लगभग १ करोड व्यक्तियों के लिये अतिरिक्त रोजगार के अवसरों (परन्तु नौकरियां नहीं) के लिये कार्यक्रम था। पाँच वर्ष की अवधि मे रोजगार योग्य हो जाने वाले व्यक्तियों की संख्या भी १ करोड़ हो जाने का अनुमान था। इसके अतिरिक्त पिछले बेरोजगारों, अर्थात् तत्कालीन बेरोजगारों की संख्या ४५ लाख थी। इस प्रकार यह स्पष्ट था कि आयोजना के बाद भी बेरोजगारी बनी रहेगी। फिर, यह सब अनुमान इस पूर्वधारणा पर आधारित थे कि आयोजना सुचारु रूप से लागू हो सकेगी। यदि अर्थ-व्यवस्था के किसी भी क्षेत्र मे कही रुकावट आ जाये या कार्यक्रम में देरी हो जाए, (उदाहरणतः यातायात मे), तब विकास कार्यक्रम रुक जायेंगे और इसका परिणाम यह होगा कि रोजगार घट जायेगा।

यह स्पष्ट है कि रोजगार के अवसरों का विकास इतनी गति से नही हो रहा है कि बढी हुई श्रम शक्ति को संतोषजनक रूप से खपाया जा सके। "द्वितीय आयोजना के मूल्यांकन और सफलताओं की सम्भावनाओं की ज्ञापिका" मे यह उल्लेख था कि आयोजना के प्रथम दो वर्षों में कृषि को छोड कर अन्य व्यवसायों मे लगभग २० लाख व्यक्तियों के लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध हो गये थे, तथा आयोजना के तीसरे वर्ष में १० लाख व्यक्तियों के लिये अतिरिक्त रोजगार के अवसर मिलने की सम्भावना थी। ८० लाख व्यक्तियों को रोजगार प्रदान करने का जो लक्ष्य था उसमें संशोधन करना पडा था, तथा यह अनुमान लगाया गया कि द्वितीय आयोजना अवधि मे कृषि को छोड़कर अन्य व्यवसायों में लगभग ६५ लाख व्यक्तियो को ही रोजगार मिल सकेगा। परन्तु यह भी अनुमान लगाया गया था कि आयोजना के प्रथम तीन वर्षों में अधिक से अधिक ३० लाख व्यक्तियों को रोजगार मिल सका था। १९५९-६० में १५ लाख व्यक्तियों को रोजगार मिलने की सम्भावना व्यक्त की गई थी। द्वितीय आयोजना के अन्तिम वर्ष मे रोजगार का लक्ष्य महत्वाकांक्षी था क्योंकि इस वर्ष २० लाख व्यक्तियों के लिए रोजगार के अवसर प्रदान करने थे। इस प्रकार द्वितीय आयोजना अवधि में घटे हुए लक्ष्य को–अर्थात् ६५ लाख व्यक्तियों को रोजगार देना सम्भवतः प्राप्त नही किया जा सकता था। वास्तव मे स्थिति ऐसी थी कि द्वितीय आयोजना के अन्त मे बेरोजगारों की संख्या आयोजना प्रारम्भ होने के समय की संख्या से अधिक ही जाती

थी। इससे यह पता चलता है कि अर्थ-व्यवस्था मे निवेष इस प्रकार से नही हो रहा था कि श्रम शक्ति मे प्रतिवर्ष होने वाली अतिरिक्त वृद्धि को सन्तोषजनक रूप से रोजगार पर लगाया जा सके।

आयोजना मे रोजगार क्षमता के अवसरो को विशेष स्थलों पर दृढ रहने के प्रयत्न भी किये गये थे, उदाहरणत ६०,००० अध्यापको की नियुक्ति की एक योजना का अनुमोदन किया गया था। श्रम मन्त्रालय ने शिक्षित बेरोजगारो को, जब तक उन्हें पूर्ण-कालिक रोजगार नही मिल जाता, अश-कालिक रोजगार प्रदान करने की एक योजना तैयार की थी। फिटर, बिजली मिस्त्री, रेडियो मिस्त्री, लाइसमैन, बढई आदि के व्यवसायो मे शिक्षित बेरोजगारो को प्रशिक्षण देने के लिये विभिन्न राज्यो मे मुख्य मुख्य स्थानों पर प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये थे। कुछ विश्व-विद्यालयो मे रोजगार ब्यूरो की भी स्थापना की गई थी।

अक्तूबर १९५८ में त्रिदलीय आधार पर रोजगार पर ३० सदस्यो की एक केन्द्रीय समिति की स्थापना की गई जिसके अध्यक्ष श्रम मन्त्री हैं। इसका कार्य निरन्तर रूप से विभिन्न प्रकार की बेरोजगारी की समस्या पर विचार करना तथा रोजगार और रोजगार के अवसरो, राष्ट्रीय रोजगार सेवा के कार्यरूप तथा शिल्पियो आदि के प्रशिक्षण के विषय मे श्रम व रोजगार मन्त्रालय को सलाह देना है। इस समिति की पहली बैठक २५ मई १९५९ को हुई थी। इसमें रोजगार की स्थिति का पुनरावलोकन किया गया तथा तीसरी आयोजना मे रोजगार की क्या स्थिति होगी इस पर भी विचार किया गया। श्रम शक्ति आयोजित करने तथा रोजगार सम्बन्धी सूचना एकत्रित करने वाली व्यवस्था को दृढ करने के लिए राष्ट्रीय रोजगार सेवा के कार्यों पर तथा राष्ट्रीय प्रायोजनाओ के पूर्ण होने के कारण बेकार हुए श्रमिको को अन्य स्थानो पर रोजगार पर लगाने के उपायो पर समिति ने विचार किया। रोजगार नियोजन से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करने और रोजगार के नये अवसरो की सम्भावनाओं का पता लगाने के लिए इस समिति ने दो अध्ययन दलो की नियुक्ति भी की। अध्ययन दलो की एक सयुक्त बैठक १ अक्तूबर १९५९ को हुई और इसमें इस बात पर विचार किया गया कि आयोजना कार्यक्रमो मे रोजगार के अवसरो को सर्वोत्तम रूप से किस प्रकार बढाया जा सकता है। इस बैठक मे अन्य विषयो के साथ-साथ उत्तर प्रदेश के एक जिले (शाहजहाँपुर) मे रोजगार की सम्भावनाओ के विषय मे अग्रिम अध्ययन की एक रिपोर्ट पर भी विचार किया गया और यह सिफारिश की गई कि ऐसे अध्ययन सभी राज्यो के कुछ विशेष जिलो मे होने चाहियें। यह भी सिफारिश की गई कि यदि सम्भव हो तो जिला आधार पर रोजगार के अवसरो मे वृद्धि करने के कार्य को प्रोत्साहन देना चाहिये। इस बात पर भी विचार किया गया कि रोजगार को अधिकतम करने के लिये जिला स्तर पर योजनाओ की कार्यान्विति मे प्रभाव-पूर्ण ढग स समायोजन करना चाहिये। राज्य सरकारो से यह भी कहा गया है कि रोजगार दिलान के कुछ नये ढगो को प्रारम्भ करने के लिये हर सम्भव प्रयत्न

करने चाहिएं और उन तरीकों पर भी विचार करना चाहिये जिन्हें अध्ययन दल ने रोजगार उत्पन्न करने के गैर-परम्परावादी तरीके कहा है।

तीसरी आयोजना में रोजगार की स्थिति

भारत में आयोजना का एक मुख्य उद्देश्य लोगों को रोजगार दिलाना रहा है। परन्तु तृतीय आयोजना में कहा गया है कि संख्या की दृष्टि से रोजगार के पर्याप्त अवसर प्रदान करना उन अत्यन्त कठिन कार्यों में से एक है जिन्हें अगले पांच वर्षों में करना है। ग्रामीण क्षेत्रों मे बेरोजगारी और अर्द्ध बेरोजगारी, अर्थात् अपूर्ण रोजगार दोनों ही साथ-साथ दिखाई पड़ते हैं और उनके बीच कोई स्पष्ट अन्तर प्रतीत नहीं होता। ग्रामों में साधारणतया बेरोजगारी का स्वरूप अपूर्ण रोजगार है। शहरी क्षेत्रों में व्यापार, यातायात और उद्योग की स्थिति में जो उतार-चढ़ाव होता है उसी के अनुसार रोजगार में भी परिवर्तन होता है। प्रथम दो आयोजनाओं के अनुभव से यह ज्ञात होता है कि आयोजना अवधि में जो नये रोजगार अवसर उपलब्ध हुए उनमें से अधिकतर गैर कृषि क्षेत्र में थे। दूसरी आयोजना की अवधि में लगभग ८० लाख नए रोजगार अवसरों का निर्माण हुआ जिनमें से ६५ लाख गैर-कृषि क्षेत्र में थे।

रोजगार से सम्बन्धित आँकड़े इस समय अपर्याप्त हैं परन्तु फिर भी जो सीमित सूचना उपलब्ध है उसके आधार पर यह अनुमान किया गया है कि द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना के अन्त तक जिन लोगों को रोजगार नहीं दिलाया जा सका उनकी संख्या लगभग ९० लाख है। दूसरी पंचवर्षीय आयोजना की अवधि मे बेरोजगार रह जाने वाले लोगो का जो अनुमान था वह केवल ५३ लाख का था। इस अनुमान की तुलना मे बेरोजगार रहने वाले लोगों में जो वृद्धि हुई उसका यह अर्थ है कि रोजगार की समस्या पर आयोजना का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। किन्तु फिर भी श्रमिक वर्ग में नये शामिल होने वाले लोगो की संख्या मे जो निरन्तर वृद्धि हुई उस हिसाब से लोगों को रोजगार नही दिलाया जा सका।

किसी भी अवधि में श्रमिक वर्ग में जो वृद्धि होती है उनकी गणना उन पुरुषो व स्त्रियों के अनुपात से की जाती है जो १५–१६ वर्ष के आयु वर्ग में आते हैं क्योंकि यह अनुमान लगाया जाता है कि इस आयु के व्यक्ति ही या तो लाभदायक रोजगार पर लगे होते हैं या रोजगार की तलाश में होते हैं। १९६१ का जनगणना से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर यह अनुमान है कि तीसरी आयोजना की अवधि में श्रमिक वर्ग में लगभग १ करोड ७० लाख लोगों की वृद्धि होगी। इस वृद्धि में से एक तिहाई वृद्धि शहरी क्षेत्रों में होगी। इसके विपरीत यह अनुमान है कि तीसरी आयोजना में १ करोड़ ४० लाख लोगो को—१ करोड ५ लाख लोगों को गैर कृषि कार्यों मे और ३५ लाख लोगों को कृषि कार्यों में—अतिरिक्त रोजगार दिलाया जायगा। अग्रलिखित तालिका में गैर-कृषि कार्यों में रोजगार का विवरण दिया गया है।

अतिरिक्त गैर-कृषि रोजगार

(लाखो मे)

क्षेत्र	तीसरी आयोजना मे अतिरिक्त रोजगार
१ निर्माण*	२३ ००
२ सिंचाई और बिजली	१ ००
३ रेल	१ ४०
४ अन्य यातायात और सचार	८ ८०
५ उद्योग और खनिज	७ ५०
६ छोटे उद्योग	९ ००
७ वन, मछली पालन और सम्बद्ध सेवायें	७ २०
८ शिक्षा	५ ९०
९ स्वास्थ्य	१ ४०
१० अन्य सामाजिक सेवायें	० ८०
११ सरकारी सेवा	१ ५०
योग	६७ ५०
१२ 'अन्य' जिनमे उद्योग और व्यापार सम्मिलित हैं (१ से ११ तक की मदो के कुल योग का ५६ प्रतिशत)	३७ ८०
कुल योग	१०५ ३०

* चूँकि निर्माण कार्य से बहुत बडी संख्या मे रोजगार मिलता है, इसलिए विभिन्न विकास क्षेत्रो मे निर्माण कार्य मे रोजगार का निम्न रूप से दिया गया विवरण उपयोगी होगा—

(लाखो मे)

(क) कृषि और सामुदायिक विकास	६ १०
(ख) सिंचाई और बिजली	४ ९०
(ग) उद्योग और खनिज जिनमे कुटीर और लघु उद्योग भी सम्मिलित हैं	४ ६०
(घ) यातायात और सचार (रेल सहित)	३ ४०
(ङ) सामाजिक सेवायें	३ ५०
(च) विविध	० ५०
योग	२३ ००

इस प्रकार श्रमिक वर्ग मे नये शामिल होने वाले लोगो को काम दिलाने के पश्चात् ३० लाख लोगो के लिए अतिरिक्त रोजगार होना चाहिए।

तृतीय आयोजना मे यह सुझाव है कि रोजगार की समस्या को तीन मुख्य रूपो मे सुलझाना चाहिए—प्रथम, आयोजना के ढाँचे के अन्तर्गत ऐसे प्रयत्न करने होगे जिनसे पहले की अपेक्षा रोजगार के प्रभावो का फैलाव अधिक व्यापक और

सन्तुलित रूप से हो। दूसरे, ग्रामीण क्षेत्रों को औद्योगीकरण का एक बहुत बड़ा कार्यक्रम हाथ में लेना चाहिए, जिसमें इन बातों पर विशेष जोर दिया जाए--ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली लगाना, ग्रामीण औद्योगिक सम्पदाओं (Estates) का विकास, ग्रामीण उद्योगों की उन्नति और जन-शक्ति को प्रभावशाली रूप में फिर से काम में लगाना। तीसरे, लघु उद्योगों द्वारा रोजगार बढ़ाने के अन्य उपायों के अतिरिक्त ग्रामीण निर्माण कार्यक्रमों (Works Programmes) को संगठित करने का सुझाव है जिनसे लगभग २५ लाख और सम्भवतः इससे भी अधिक लोगों को वर्ष में औसतन १०० दिन तक काम मिलेगा।

ग्रामीण औद्योगीकरण और गाँवों में बिजली लगाना—यह दोनों सम्बद्ध कार्यक्रम हैं और ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिर रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए इनका सबसे अधिक महत्व है। प्रत्येक क्षेत्र में और छोटे-छोटे कस्बों और गाँवों में औद्योगिक विकास के केन्द्र स्थापित करना आवश्यक है और यह उन्नत यातायात एवं अन्य सुविधाओं के द्वारा एक दूसरे से जुड़े हुए होने चाहियें। प्रत्येक जिले में अग्रिम आयोजना के द्वारा कृषि सम्बन्धी और औद्योगिक विकास का कार्यक्रम बिजली की पूर्ति के साथ समन्वित होना चाहिए।

अपूर्ण रोजगार की समस्या के स्थायी समाधान के लिए यह आवश्यक है कि न केवल सभी लोग कृषि-कार्यों में विज्ञान का प्रयोग करें बल्कि इस हेतु ग्रामीण आर्थिक ढाँचे को विभिन्न क्षेत्रों में विकसित करना और उसे सुदृढ़ बनाना भी आवश्यक है। ग्रामीण और लघु उद्योगों तथा 'प्रोसेसिंग' उद्योगों के विकास के लिए कार्यक्रमों को और अधिक बढ़ाना होगा और ग्रामीण क्षेत्रों में नये उद्योग स्थापित करने होंगे। इस प्रकार जहाँ ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का निर्माण किया जा रहा है वहां समस्त ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक निर्माण कार्यक्रमों की आवश्यकता है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ अधिकांश लोग भूमि पर निर्भर हैं और जहाँ अधिक बेरोजगारी और अपूर्ण रोजगार है। इस कार्यक्रम में खण्ड (Block) और ग्राम-स्तर पर मुख्यतः स्थानीय निर्माण कार्य किये जायेंगे। विशेषतः कृषि के मन्दे मौसम में कार्यान्वित करने के लिए निर्माण-कार्य बनाये जायेंगे। गाँवों में जो निर्माण-कार्य होंगे उन सभी में ग्राम की प्रचलित दरों पर मजदूरी दी जायेगी। इस सम्बन्ध में हाल ही में ३४ प्रारम्भिक प्रायोजनायें (Pilot Projects) चालू की गई है। इनमें सिंचाई, वन लगाना, भूमि संरक्षण, नालियां बनाना, भूमि का पुनरोद्धार, संचार साधनों में सुधार आदि की पूरक योजना सम्मिलित है। अस्थाई रूप से यह अनुमान है कि निर्माण कार्यक्रमों द्वारा पहले वर्ष में १ लाख व्यक्तियों को रोजगार मिल जायेगा, दूसरे वर्ष में ४ लाख से ५ लाख तक व्यक्तियों को और तीसरे वर्ष में लगभग १० लाख व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त होगा और इस प्रकार बढ़ते-बढ़ते आयोजना के अन्तिम वर्ष में लगभग २५ लाख व्यक्तियों को रोजगार मिल सकेगा। आयोजना की अवधि में इस समस्त कार्यक्रम पर कुल व्यय १५० करोड़ रुपये का हो सकता है।

शिक्षित बेरोजगारों की समस्या पर दो भागो मे विचार किया जा सकता है—प्रथम, पिछले बेरोजगार तथा दूसरे, नये आने वाले बेरोजगार। रोजगार दफ्तरो के आँकडो के अनुसार पिछले शिक्षित बेरोजगारो की सख्या लगभग १० लाख है। तीसरी आयोजना की अवधि के हाई स्कूल तथा इससे ऊपर की शिक्षा प्राप्त लोगो की सख्या लगभग ३० लाख हो जाने का अनुमान है, जिन्हे रोजगार दिलाना होगा। कृषि उद्योग और यातायात की उन्नति होने से कुशल और व्यावसायिक एव तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त किये हुये व्यक्तियो को रोजगार के अधिक अवसर प्राप्त होगे। अत इस सम्बन्ध मे शिक्षा प्रणाली का पुनर्गठन बहुत महत्वपूर्ण है। हाल के वर्षो मे हाथ से काम करने के प्रति पढे लिखे व्यक्तियो के रुख मे परिवर्तन हुआ है और उन्हे विकासशील अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकताओ के अनुकूल बनाने के लिये बडे पैमाने पर कार्यक्रम हाथ मे लेने का विचार है। सहकारी समितियो और वैज्ञानिक खेती तथा लोकतान्त्रिक सस्थाओ की स्थापना हो जाने से ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत पढे-लिखे लोगो के लिये नियमित और निरन्तर रोजगार का योग काफी वढ जायेगा। ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था मे प्राप्त रोजगार मे उन्हे वास्तव मे उतनी ही आय होगी जितनी कि शहरो मे होती है। यह भी सम्भव हो जायगा कि काफी बडी सख्या मे पढे-लिखे नवयुवको को ग्रामीण केन्द्रो मे, जहाँ बिजली उपलब्ध की जा सके, छोटे-छोटे उद्योग स्थापित करने मे सहायता दी जाये।

इस बात की भी आवश्यकता है कि जो प्रायोजनायें पूरी हो चुकी हैं या पूर्ण होने वाली हैं वहाँ से कुशल कर्मचारियो को लेकर उन प्रायोजनाओ मे लगाया जाय जो आरम्भ होने वाली हैं। दूसरी आयोजना मे इस कार्य के लिये जो व्यवस्था की गई थी उसके अन्तर्गत सन्तोषजनक रूप से कार्य हुआ है। इस व्यवस्था को बनाय रखते हुये यदि इसी प्रकार की प्रायोजनाओ को और अधिक अच्छे ढग से चलाया जाय तथा पूर्व नियोजन करके इन्हें लागू किया जाय तो इस समस्या का अधिक सरलता से सामना किया जा सकता है।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि तृतीय आयोजना ने भी बेरोजगारी की बढती हुई समस्या का कोई समाधान प्रस्तुत नहीं किया। एक आयोजना से अगली आयोजना मे बेरोजगारी की वृद्धि होना बडी गम्भीर समस्या है। जब तृतीय आयोजना समाप्त हुई थी तो रोजगार के इच्छुक व्यक्तियो की सख्या लगभग १ करोड २० लाख आकी गई थी। चौथी आयोजना की प्रस्तावित रूपरेखा के अनुसार, चौथी आयोजना की अवधि मे श्रमशक्ति मे २ करोड ३० लाख की वृद्धि की आशा की जाती है जिससे रोजगार ढूँढने वालो की कुल सख्या ३ करोड ५० लाख हो जायेगी। दूसरी ओर चौथी आयोजना की रूपरेखा के जो कार्यक्रम निर्धारित किये गये हैं उनसे १ करोड ८५ लाख से लेकर १ करोड ६० लाख तक लोगो को अतिरिक्त रोजगार मिलने की आशा है—अर्थात् ४५ लाख से लेकर ५० लाख तक कृषि मे और लगभग १ करोड ४० लाख कृषि से बाहर। इस प्रकार, १६७१ मे

बेरोजगार लोगों की संख्या लगभग १ करोड ६० लाख होगी और पाँचवीं आयोजना की अवधि में, आशा यह की जाती है कि श्रम शक्ति में ३ करोड़ व्यक्तियों की और वृद्धि हो जायेगी। इस तरह, १६७१–७६ के बीच रोजगार की तलाश करने वाले व्यक्तियों की संख्या ४ करोड़ ६० लाख से भी और बढ़ने की ही सम्भावना है।

चौथी आयोजना की प्रस्तावित रूपरेखा में कहा गया है कि यह अत्यावश्यक है कि देश के अनेक भागों में रोजगार की स्थिति पर कड़ी दृष्टि रखी जाये और साथ ही रोजगार के अतिरिक्त अवसरों की व्यवस्था करने के लिये भी तैयार रहा जाये। घने बसे हुये तथा अधिक पिछड़े क्षेत्रों के लिये यह बात विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। रूपरेखा में इस बात पर भी जोर दिया गया है कि जिला तथा क्षेत्रीय स्तरो पर उपलब्ध क्षमताओं का कुशलता से उपयोग करके तथा उनको समन्वित रूप से लागू करके ऐसे प्रयास किये जाने चाहिएँ कि अधिकतम सम्भव रोजगार की व्यवस्था की जा सके। आगे कहा गया है कि ग्रामीण निर्माण कार्यक्रम भी बड़े महत्वपूर्ण हैं जिनसे यह आशा की जाती है कि वर्ष में १०० दिनों के काम के रूप मे, कृषि के मन्दे मौसम में लगभग १५ लाख लोगों को काम मिलेगा।

पूर्ण रोजगार की समस्या (Problem of Full Employment)

एक समस्या यह भी है कि भारत मे पूर्ण रोजगार सम्भव है या नहीं। पूर्ण रोजगार की समस्या पर अर्थशास्त्रियों ने काफी विचार किया है। भारत में इस समस्या पर तभी से अधिकाधिक विवेचन हो रहा है जब से आयोजना आयोग ने प्रथम पंचवर्षीय आयोजना मे इस ओर संकेत किया था कि भारत पिछड़ा देश होने के कारण पूर्ण रोजगार को अपनी आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य नहीं मान सकता। अर्थ-व्यवस्था के ढांचे की त्रुटियों को दूर करके ही पूर्ण रोजगार के कार्यक्रम को कार्यान्वित किया जा सकता है। पूर्ण रोजगार के कार्यक्रम को हाथ में लेने से पूर्व पूंजी और भूमि की कमियो को दूर कर लेना चाहिये। इस प्रकार देश में अर्थ-व्यवस्था के विस्तार और उसमें विविधता लाने की योजना बनाकर ही पूर्ण रोजगार के उद्देश्य को प्राप्त करने की सम्भावना हो सकती है।

पूर्ण रोजगार का तात्पर्य यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता की सीमा तक कार्य करता रहे वरन् इसका तात्पर्य उस रोजगार से है जो लगभग ऐसे इष्टतम बिन्दु (Optimum Point) तक पहुँच गया हो जब और अधिक वस्तुओं एवं सेवाओं की अपेक्षा मनुष्य फुर्सत (Leisure) अधिक पसन्द करने लगता है। सर विलियम बैवरिज ने पूर्ण रोजगार की परिभाषा इस प्रकार की है—पूर्ण रोजगार की व्यवस्था मे मनुष्यो की अपेक्षा रिक्त स्थान अधिक होते है। परन्तु उनका यह भी कहना है कि रिक्त स्थान अथवा काम उचित मजदूरी पर प्राप्त होने चाहिएँ और वे इस प्रकार के तथा ऐसी जगह होने चाहिएँ कि बेरोजगार व्यक्ति आसानी से उन्हें अपना सकें। प्रो० पीगू के अनुसार, पूर्ण रोजगार का तात्पर्य यह

है कि चालू मजदूरी की दरो पर यदि रोजगार-योग्य व्यक्ति कार्य करने को तैयार हो तो उन्हे काम मिल जाये। कीन्स के अनुसार, अनैच्छिक बेरोजगारी का अभाव ही पूर्ण रोजगार है। प्रो० लर्नर का कहना है कि पूर्ण रोजगार की स्थिति वह होती है जिसमे कि जितने कि रोजगार ढूंढने वाले व्यक्ति हो उतने ही व्यक्तियो की तलाश वाले रोजगार या काम हो। परन्तु उन्होने यह स्वीकार किया कि पूर्ण रोजगार मे सदा ही ऐसे लोगो की काफी मात्रा अवश्य रहती है जिन्हे कि एकदम काम नही मिल पाता। पूर्ण रोजगार की स्थिति के लिये राज्य को ध्यान रखना पड़ता है कि किसी भी समय रिक्त स्थानो की सख्या बेरोजगार व्यक्तियों से कम न हो। इसके अतिरिक्त कार्य उचित मजदूरी पर प्रदान किये जाने चाहियें और कार्य इस प्रकार स्थित होने चाहियें कि रोजगार के इच्छुक व्यक्ति इन्हे स्वीकार कर लें। यदि ये समस्त दशायें उपस्थित है तो एक कार्य के छूटने तथा दूसरे कार्य के पाने के बीच का साधारण अन्तर वास्तव मे बहुत कम हो जायेगा।

इस प्रश्न पर भी मतभेद है कि एक स्वतन्त्र व्यक्तिवादी समाज मे पूर्ण-रोजगार सम्भव है या नही। मार्क्सवादी तथा कुछ अन्य व्यक्ति विश्वास करते हैं कि पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था की अपनी प्रकृति ही श्रम की मांग तथा पूर्ति मे सामजस्य नही होने देती। परिणामस्वरूप, एक नौकरी छूटने तथा दूसरी नौकरी के मिलने के बीच का समयान्तर बहुत अनिश्चित तथा लम्बा हो जाता है। सर विलियम बैवरिज तथा अन्य व्यक्तियो ने इस बात पर बल दिया है कि यद्यपि सर्व अधिकार (Totalitarian) राज्य की अपेक्षा स्वतन्त्र समाज मे पूर्ण रोजगार कायम रखने की समस्या अधिक जटिल है तथापि एक व्यक्तिवादी अर्थ-व्यवस्था मे इस अवस्था को प्राप्त करना असम्भव भी नही है। गत युद्ध के अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि व्यक्तिवादी अर्थ-व्यवस्था मे भी बेरोजगारी दूर की जा सकती है। यदि कोई स्थिति युद्ध-काल मे प्राप्त की जा सकती है तो कोई कारण नही है कि हम इसे शान्ति काल मे प्राप्त न कर सकें। राज्य द्वारा आर्थिक क्षेत्र मे, रोजगार देने के हेतु, नियन्त्रण से पूर्व रोजगार की स्थिति प्राप्त की जा सकती है, परन्तु इससे पूर्व कि पूर्ण रोजगार सम्भव हो सके। कुछ पग उठाने आवश्यक है। उद्योगो का स्थानीयकरण इस प्रकार नियन्त्रित होना चाहिये कि उपलब्ध श्रमिको का इनमें उचित प्रकार से वितरण हो सके। श्रमिको की गतिशीलता का नियन्त्रण रोजगार दफ्तरो द्वारा होना चाहिये। सरकारी तथा निजी दोनो क्षेत्रो का कुल व्यय इतना और इस प्रकार होना चाहिये कि वस्तुओ तथा सेवाओ की मांग इतनी अधिक रहे कि यह मांग पूरी करने के लिए राष्ट्र की समस्त मानव शक्ति रोजगार मे लगा दी जाये। पूर्ण रोजगार की नीति अपनाने मे यह भी आवश्यक है कि आर्थिक नियन्त्रणो को दृढ किया जाये और उन्हे विस्तार से लागू किया जाये। इसके अतिरिक्त पूर्ण रोजगार की नीति के साथ-साथ सामाजिक सुरक्षा का कार्यक्रम भी लागू करना चाहिये अन्यथा पूर्ण रोजगार का कोई लाभ नही होगा। इस प्रकार पूर्ण रोजगार तब तक सम्भव नही हो सकता जब तक राज्य द्वारा कुछ असाधारण

अधिकार ग्रहण नहीं कर लिये जाते, जैसे—निदेशन, सामंजस्य तथा नियन्त्रण के अधिकार।

उपरोक्त बातों को भारत जैसे देश में प्राप्त करना कठिन है जहाँ मानव जाति के पाँचवें भाग को रोजगार देना दुर्लभ कार्य प्रतीत होता है। किन्तु, यदि उन व्यक्तियों की संख्या बहुत विशाल है, जिनको रोजगार दिया जाना है, तो हमारे साधन भी बहुत अधिक हैं। यदि विकास की आयोजनायें उचित प्रकार से कार्यान्वित की जायें तो हमारे जैसे देश में पूर्ण रोजगार प्राप्त करने में अधिक कठिनाई नहीं होगी। कुछ भी हो, इस समय पूर्ण रोजगार प्राप्त करने का आदर्श भारत के लिए अपनाना उचित ही है। इस आदर्श को प्राप्त करने के लिए दृढ़-संकल्प भी होना चाहिए।

मन्दी के काल तथा उसके प्रभाव का सामना करने के लिए मालिकों द्वारा उपाय (Ways Open to Employers to Meet Periods of Depression and their Effects)

अब हम एक ऐसे विषय का उल्लेख करेंगे जिसका मालिकों द्वारा किये गए उन प्रयत्नों को समझने में बहुत महत्व है, जो प्रयत्न मन्दी काल की हानियों को दूर करने के लिए इस प्रकार किए जाते हैं कि न तो उनसे राष्ट्रीय आय को हानि पहुँचे और न उनके कारण बेरोजगारी फैले। जब मन्दी आती है तब परिणाम यह होता है कि मालिकों द्वारा किये गये उत्पादन की माँग कम हो जाती है और मालिक अनुभव करने लगता है कि यदि वह पहिले जैसे स्तर पर उत्पादन करता रहा तो उसे हानि होगी। इसलिए उसे कुछ कमी करनी पड़ती है। आवश्यक कटौती निम्न तीन उपायों में से किसी एक उपाय द्वारा हो सकती है–(१) मालिक *श्रमिकों की एक विशेष संख्या को बर्खास्त कर दे और अन्य को पूर्ण रूप से* रोजगार देता रहे, (२) मालिक समस्त कर्मचारी वर्ग को कार्य में लगाये रखे किन्तु एक 'बदलती श्रमिक' (Rotation) प्रणाली को लागू कर दे, जिसके अन्तर्गत, उदाहरणतया, श्रमिक तीन सप्ताह के लिए कार्य में लगे रहें और चौथे सप्ताह खाली रहें, अथवा (३) वह समस्त कर्मचारी वर्ग को लगाये रखे परन्तु उनसे प्रत्येक सप्ताह कम समय के लिए कार्य लेता रहे। यह प्रणाली दूसरी प्रणाली से, जिसमें सविराम कार्य होता है, भिन्न होती है।

पहली योजना को, अर्थात् कुछ श्रमिकों के लिए पूर्ण रोजगार तथा अन्य श्रमिकों की बर्खास्तगी को वहाँ, जहाँ श्रमिक कुशल नहीं है, तरजीह दी जाती है और जहाँ माँग पुन. बढ़ जाने से उनकी पूर्ति भी अधिक होने की सम्भावना होती है। इसके अतिरिक्त यह प्रणाली वहाँ भी अधिक प्रचलित होगी जहाँ श्रमिकों को समयानुसार मजदूरी दी जाती है। इसमें सबसे कम कार्य-कुशल श्रमिक पहिले बर्खास्त कर दिये जाते हैं। तथापि, मालिक के लिए उन कुशल और विशेष योग्य

श्रमिको को बर्खास्त करना सम्भव नही हो सकता जो फैक्टरी मे नाजुक मशीनरी को चलाने के अभ्यस्त होते हैं या उन कार्य करने वाले व्यक्तियो को बर्खास्त नही किया जा सकता जिन्होने किसी विशेष कार्य पर कुछ समय से लगे रहने के कारण विशेष योग्यता प्राप्त कर ली है। इस उपाय को अपनाने मे दूसरी कठिनाई यह है कि इस बात का भय रहता है कि कही बर्खास्त किये गए श्रमिक व्यवसाय के विनिर्माण रहस्यो का उद्‌घाटन न कर दें। इसके अतिरिक्त मालिको को श्रमिको को बर्खास्त करते समय श्रमिक सघो के विरोध का सामना भी करना पडता है।

'बदलते श्रमिक' योजना (Rotation Plan) को असुविधा तथा जटिलता के कारण प्रबन्धको का अधिक समर्थन नही मिला है। किन्तु बेरोजगारी बीमा के विकास के साथ कुछ क्षेत्रो मे कम समय कार्य के उपाय की अपेक्षा यह उपाय अपनाया गया है। इसका कारण यह है कि यदि एक व्यक्ति चार सप्ताह मे से एक सप्ताह कार्य नही पायेगा तो वह उस सप्ताह के लिए बेरोजगारी लाभ का अधिकारी हो जायेगा जबकि यदि वह कम समय योजना के अन्तर्गत एक सप्ताह में १२ घण्टे नष्ट कर देता है तो उसे कोई लाभ नही मिलेगा। 'बदलते श्रमिक' योजना श्रमिको को बर्खास्त करने की अपेक्षा कम समय योजना (Short-time Plan) के साथ-साथ अधिक प्रचलित है क्योकि इसके अन्तर्गत पूर्ण कर्मचारी वर्ग का सस्था के रजिस्टरो मे नाम दर्ज रहता है और वे रोजगार मे लगे रहते हैं।

तीसरी योजना, अर्थात् समस्त कर्मचारी वर्ग के लिए कम समय कार्य करने की प्रणाली' को वहाँ व्यवहार मे लाया जाता है जहाँ कर्मचारियो को बर्खास्त करने तथा 'बदलते श्रमिक' योजना के लिए उचित परिस्थिति उपस्थित नही होती। यह प्रणाली वहाँ अपनाई जाती है जहाँ कार्य के कुछ घण्टो मे अन्य घन्टो की अपेक्षा अधिक व्यय पडता है, उदाहरणतया उस अवधि मे जब प्रकाश और ऊष्मा की अधिक लागत आती है। इसके अतिरिक्त, मालिक भी जब कुशल व्यक्तियो को कार्य पर लगाये रखने का इच्छुक होता है तभी इस योजना को अपनाता है। कर्मचारियो को बर्खास्त करना तो उन उद्योगो मे एक नियम सा बन जाता है जिनमे मजदूरी समयानुसार (ग्रमानी) दी जाती है, जबकि कम समय आयोजना वहाँ ग्रहण की जाती है जहा मजदूरी कार्यानुसार (उजरत) दी जाती है, क्योकि ऐसी दशाओ मे सबसे कम कुशल श्रमिको को बर्खास्त करने की इच्छा इतनी प्रबल नही होती।

यदि अन्य कोई रोजगार प्राप्त करने का अवसर है, विशेषकर जब व्यापार साधारणत समृद्धि कर रहा है, तब कर्मचारी बर्खास्त करने की योजना कम समय योजना की अपेक्षा उत्तम रहती है। किन्तु जब पूर्ण व्यापार मन्द हो तो कर्मचारी बर्खास्त करना न्यायोचित नही होता। साधारणत कम समय योजना को, जिसमे 'बदलते श्रमिक' योजना भी आ सकती है, जहाँ भी परिस्थिति विशेष रूप से अनुकूल हो, तरजीह देनी चाहिए। इसके कुछ लाभ हैं। सबसे प्रथम तो कम समय योजना कर्मचारियो को बर्खास्त करने से कम कष्टदायक होती है। इसके अतिरिक्त

कम समय योजना मे श्रमिक व्यय में कटौती करते है तथा वे अपनी अपेक्षाकृत आराम की कुछ वस्तुये छोड़ देते हैं तथा जीवन की मुख्य आवश्यकताओ पर अपना व्यय केन्द्रित कर देते हैं। यदि व्यय मे यह कटौती एक तिहाई की सीमा तक है तब घटते तुष्टिगुण के नियमानुसार समस्त बलिदान कुल तुष्टिगुण के एक तिहाई से कम होगा। किन्तु यदि इन व्यक्तियों में से दो तिहाई व्यक्ति पूर्ण रोजगार पर लगे रहते है तथा अन्य एक तिहाई हटा दिये जाते हैं तो समस्त बलिदान पहिली स्थिति की अपेक्षा अधिक होगा। इसका कारण यह है कि मुद्रा की वह मात्रा जो पूर्ण रोजगार मे लगे व्यक्तियों द्वारा आराम की वस्तुओं पर व्यय की जा रही है, यदि अब बेरोजगार हुए व्यक्तियो द्वारा जीवन की आवश्यकताओ पर व्यय की जाती है तो अपेक्षाकृत अधिक तुष्टिगुण प्रदान करेगी। दूसरे, कम समय योजना श्रमिकों को बर्खास्त करने से उत्तम है क्योंकि इसमे श्रमिक की कार्य-कुशलता तथा चरित्र-हीनता का भय कम होता है। वह व्यक्ति जो दीर्घ अवधि तक बेरोजगार रहता है अपने व्यापार से सम्पर्क खो बैठता है तथा फुटकर कार्य करने लगता है और उसके स्वभाव तथा स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। इस प्रकार वह धीरे-धीरे रोजगार के अयोग्य व्यक्तियो की श्रेणी मे आ जाता है। अत. मालिको द्वारा मन्दी का सामना करने के लिये जो उपाय किए जाते हैं, उनमे से 'कम समय उपाय' कर्मचारी बर्खास्त करने की अपेक्षा अधिक उत्तम है क्योंकि कर्मचारी बर्खास्त करने से बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है।

परिशिष्ट ग

कार्मिक प्रबन्ध (Personnel Management) तथा मानवी सम्बन्धो (Human Relations) पर एक टिप्पणी

'कार्मिक प्रबन्ध', प्रबन्ध कार्य का ही एक भाग है और मुख्यत इसका सम्बन्ध सस्थान के भीतर ही मानवी सम्बन्धो से होता है। इसका उद्देश्य इन सम्बन्धो को ऐसे स्तर पर बनाए रखना है जिसके द्वारा, प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण को ध्यान मे रखते हुए, उन तमाम व्यक्तियो को जो सस्थान मे रोजगार पर लगे हुए हैं उस सस्थान के प्रभावात्मक सचालन मे व्यक्तिगत रूप से अशदान देने के योग्य बनाना है।

इस प्रकार कार्मिक प्रबन्ध के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें आती हैं · (१) 'कल्याण दृष्टि से कार्य",–इसका सम्बन्ध श्रमिको की उन भौतिक सुविधाओ से होता है जो उनके आराम के लिए आवश्यक है। (२) "कार्मिक दृष्टि से कार्य," —इनका मनुष्य के मनोवैज्ञानिक अध्ययन से सम्बन्ध है तथा इसमे मानवी सम्बन्ध के सभी पक्ष आ जाते हैं।

कार्मिक प्रबन्ध का मुख्य आधार कर्मचारियो के मानवीय व्यक्तित्व को मान्यता प्रदान करना है। सौहाद-पूर्ण औद्योगिक सम्बन्ध बनाए रखने के लिए यह बात अत्यन्त आवश्यक भी है। अत मालिक तथा कर्मचारियो के मध्य व्यक्तिगत सम्पर्क का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए आवश्यक सहयोग और कर्मचारियो तथा प्रबन्धकर्ताओ मे सम्पर्क बनाय रखने के लिए प्रत्येक सस्थान मे एक कार्मिक विभाग होना चाहिये।

कार्मिक प्रबन्ध के अन्तर्गत बहुत ही विस्तृत कार्य आते हैं। इसका सम्बन्ध श्रमिको क लिए कल्याण-कार्य करने से ही नही है। वास्तविकता तो यह है कि कोई भी कार्य जो प्रबन्ध के प्रति श्रमिको मे विश्वास की भावना को जन्म देता है और उनके हौसले बढाता है तथा उनकी कार्य कुशलता मे सुधार करता है, कार्मिक प्रबन्ध के अन्तर्गत आ जाता है। अत इसके अन्तर्गत प्रबन्ध के वह सभी कार्य सम्मिलित होते है, जिनका सम्बन्ध भर्ती, रोजगार की शर्तों, मजदूरी, औद्योगिक सम्बन्धा, कल्याण कार्यों, दुर्घटनाओ की रोकथाम, आवास, शिक्षा तथा प्रशिक्षण, सयुक्त परामर्श तथा अनुसधान आदि से होता है। इन सभी समस्याओ पर हम पिछले पृष्ठो मे विचार कर चुके हैं। हमने इन बात पर भी बल दिया है कि यदि मालिको और श्रमिको के मध्य निकट सम्पर्क स्थापित हो जायें और मानवीय दृष्टि-कोण से सब बातो को देखा जाय तो अनेक श्रम समस्याओ का बड़ी सुगमता से

निराकरण हो सकता है। अतः कार्मिक विभागों को बड़ी कुशलतापूर्वक कार्य करना पड़ता है। कार्मिक अधिकारी एक अत्यन्त कुशल व बुद्धिमान व्यक्ति होना चाहिये, जिसको श्रम समस्याओं तथा श्रमिकों की परिस्थितियों का विशेष ज्ञान हो।[1]

यह बात उल्लेखनीय है कि उद्योग में मानवी सम्बन्धों का प्रश्न दिन-प्रतिदिन महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली होता जा रहा है। विस्तृत अर्थों में 'उद्योग में मानवी सम्बन्ध' वाक्यांश से इस बात का बोध होता है कि उद्योग में रोजगार पर लगे हुये व्यक्तियों में कैसे सम्बन्ध होने चाहियें। लेकिन व्यावहारिक जीवन में यह वाक्यांश उन सम्बन्धों की ओर सकेत करता है जो मालिकों अथवा पर्यवेक्षक को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के प्रति अपनाने चाहिये और बनाये रखने चाहियें। यह समस्या अब अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गई है क्योंकि औद्योगीकरण के विस्तार तथा यन्त्रीकरण के कारण मालिक तथा श्रमिकों के मध्य व्यक्तिगत सम्पर्क तो अब केवल अतीत की बात बनकर रह गई है। यद्यपि मजदूरी तथा कार्य करने की सन्तोषजनक दशायें अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों के लिये अत्यन्त आवश्यक है। लेकिन यह बातें स्वयं अपने आप से, संस्थान की नीति-निर्धारण में, श्रमिकों का सक्रिय सहयोग प्राप्त नहीं कर सकतीं, जब तक उनका सहयोग पाने के लिये मानवी रूप से व्यवहार नहीं किया जाता।[2] हमें यह भी याद रखना है कि श्रमिक भी मनुष्य होते हैं, वह भावुक भी होते हैं; उनमें भावनायें और इच्छायें भी होती है। यह सब उनकी मूल आवश्यकताओं और उद्यम से उत्पन्न होती है, जैसे—सुरक्षा और स्वामित्व की भावना और स्नेह, घृणा, क्रोध, भय, अभिमान, जिज्ञासा आदि की प्रवृत्तियाँ। मानवी सम्बन्धों के क्षेत्र में नीति निर्धारित करने के लिये इन सब बातों का ध्यान अवश्य रक्खा जाना चाहिये। यद्यपि हम इस बात को मानकर चलते है कि सब उद्योगों का उद्देश्य अन्य कार्यों के उद्देश्यों की भांति मनुष्य के रहन-सहन की दशाओं में उन्नति करना है अथवा अर्थशास्त्रियों के कथनानुसार, मानवीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करना है तब क्या यह अजीब सा न होगा कि इन उद्देश्यों की पूर्ति के कार्यों में मानवीय दृष्टिकोणों की उपेक्षा की जाये और अन्य बातों का ध्यान न करके श्रमिकों को केवल उनकी उत्पादन-क्षमता की दृष्टि से ही आँका जाये? यन्त्रों (मशीनों) को सम्भालना तो सरल होता है क्योंकि यदि यन्त्र में कोई दोष उत्पन्न हो जाता है तब यह पता लग सकता है कि दोष कहाँ है

१. कार्मिक विभाग के कार्यों के विवरण के लिये टी० एन० रस्तोगी की पुस्तक 'Indian Industrial Labour' तथा श्री जकारिया की पुस्तक 'Industrial Relations and Personal Problems' देखिये।

२. मेरठ कॉलिज अर्थशास्त्र परिषद के अन्तर्गत फरवरी १९५५ में श्री वी० के० आर० मेनन द्वारा दिये गये भाषण के कुछ अंश। उनके भाषण के सारांश के लिये मार्च १९५५ का 'Indian Labour Gazette' देखिये।

और यन्त्र को ठीक किया जा सकता है, परन्तु मनुष्य को सम्भालना बड़ा विषम कार्य है, क्योंकि यह कोई निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि एक व्यक्ति या व्यक्तियों के एक वर्ग पर किसी परिस्थिति की वैसी ही प्रतिक्रिया होगी जैसी किसी दूसरे व्यक्ति या दूसरे व्यक्तियों के वर्ग पर होती है। इस कारण प्रबन्धकर्त्ताओं का इसी बात में लाभ होगा कि वह न केवल औद्योगिक श्रमिकों के कल्याण में ही व्यक्तिगत रूप से रुचि लें वरन् श्रमिकों के परिवार के कल्याण में भी रुचि प्रदर्शित करें।

मानवी सम्बन्धों की नीति को निर्धारित करने के लिये जो अधिक महत्व-पूर्ण तत्व होते हैं उनको अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की 'धातु व्यापार समिति' के चौथे अधिवेशन में पारित किये गये एक प्रस्ताव से उद्धृत किया जा सकता है—(१) हर सस्थान में रोजगार पर लगे हुये प्रत्येक व्यक्ति के लिये कार्यों, कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के सुस्पष्ट विशेषीकरण के साथ-साथ उस सस्थान का सुदृढ़ सगठनात्मक ढाँचा होना चाहिये, (२) रोजगार की पर्याप्त दशायें होनी चाहियें, जैसे—उचित मजदूरी, काम करने की अच्छी दशायें आदि, (३) सस्थान में श्रमिकों को विधिपूर्वक छाँटने, नियुक्त करने तथा ठीक स्थान पर लगाने के लिये उपयुक्त नीतियाँ होनी चाहियें, (४) सबके लिये प्रशिक्षण व शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये, (५) सभी कर्मचारियों की उन्नति के लिये वास्तविक तथा समान अवसर हों तथा जब भी सम्भव हो पदोन्नति तथा वेतन वृद्धि की जाये तथा नौकरी की समाप्ति के सम्बन्ध में उपयुक्त नीतियाँ बनाई जायें, (६) उच्च प्रबन्ध का प्रतिनिधित्व का कार्य करने वाले पर्यवेक्षक वर्ग की ओर अधिक ध्यान दिया जाये क्योंकि उनसे यह आशा की जाती है कि वह श्रमिकों को प्रबन्धकों के उद्देश्यों से अवगत करायेंगे और श्रमिकों की आवश्यकताओं और समस्याओं को प्रबन्धकों के सम्मुख रख सकेंगे, (७) सस्थान में हर स्तर पर श्रमिकों और प्रबन्धकों में, श्रमिकों में तथा श्रमिकों के वर्गों में एक दूसरे से सम्पर्क बनाये रखने की व्यवस्था हो, तथा (८) सस्थान में वास्तविक सहयोग बढ़ाने के हर सम्भव प्रयत्न किये जायें तथा ऐसे ठोस व स्थायी कदम उठाये जायें जिनसे मालिकों व श्रमिकों दोनों को ही बराबर लाभ हो। इसके अतिरिक्त हर प्रयत्न में वास्तविक रूप से सद्-इच्छा होनी चाहिये अन्यथा मानवी सम्बन्धों को अच्छा बनाने के प्रयत्न सफल नहीं होंगे।

अमेरिका के एक व्यापारिक सस्थान ने मुख्य-मुख्य बातों की एक ऐसी सूची तैयार की है जो प्रबन्धकों को सदा ध्यान में रखनी चाहिये। ये बातें निम्नलिखित हैं—अधीन कर्मचारियों का वैयक्तिक रूप से सम्मान करना और उनके सम्बन्ध में व्यक्तिगत ज्ञान रखना, न्यायप्रियता, स्पष्टवादिता, निष्पक्षता, ऐसा निर्देश जिसमें आदेश की भावना न हो, अपना वायदा पूरा करने की योग्यता, दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण को समझना तथा जब भी कोई श्रमिक अच्छा काम करे उसकी प्रशंसा करना, आदि। अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने व बनाये रखने का उत्तरदायित्व मूलतः मालिकों पर ही है। मालिकों की यह ख्याति होनी चाहिये कि वह पूर्णतया

ईमानदार है और उनमें बुद्धिमत्ता है, तथा स्वयं को स्थिति के अनुकूल बनाने की क्षमता है तथा वह अपने ध्येयों के प्रति स्थिर और दृढ़ रहते हैं। इन सब बातों के पश्चात् ही श्रमिक मानवी सम्बन्धों की नीति को स्वीकार कर सकेंगे। इसके विपरीत इस सम्बन्ध में श्रमिक संघों का भी विशेष उत्तरदायित्व है। उनका कार्य केवल नकारात्मक (Negative) ही नहीं होना चाहिये। उनका प्राथमिक उत्तरदायित्व श्रमिकों के अधिकारों की सुरक्षा करना तो है ही, परन्तु तब भी उन्हें उस संस्थान के हितों को भी दृष्टिगत रखना चाहिये जिसके श्रमिकों का वह प्रतिनिधित्व करते है। उन संस्थानों में जहाँ मालिकों और श्रमिकों के शक्तिशाली संगठन है वहाँ मानवी सम्बन्धों के विकास की सम्भावनायें अधिक हैं।

कुछ देशों में विश्वविद्यालयों में मानवी सम्बन्धों के विषय मे अनुसन्धान किये गये हैं और इस उद्देश्य के लिये विशेष विभाग भी बनाये गये है। सामाजिक विज्ञान के विद्यार्थी इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते है। मानवी सम्बन्धों की नीति का उद्देश्य संस्थान के अन्दर श्रमिक का पूर्ण मनोवैज्ञानिक समाकलन (Integration) करना है। सब तत्वों में मानव तत्व को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिये। मानवी सम्बन्धों को विकसित करने में मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास आदि सामाजिक विज्ञानों का बड़ा महत्व है। हमारे देश मे इस ओर अनुसन्धान के लिये पर्याप्त क्षेत्र है।

उत्तर प्रदेश कारखाना कल्याण अधिकारी नियम, १९५५
(U. P. Factories Welfare Officers' Rules, 1955)

(अध्याय ११ भी देखिये)

उत्तर प्रदेश सरकार ने १९४९ मे पारित कारखाना कल्याण अधिकारी नियमों को समाप्त करके १९५५ में उत्तर प्रदेश कारखाना कल्याण अधिकारी नियमों का निर्माण किया। मुख्य संशोधन कल्याण अधिकारियों के पद एवं कर्त्तव्यों से सम्बन्धित है। संशोधित नियमों के अन्तर्गत कल्याण अधिकारी का पद कारखाने के अधिकारी के पद जैसा ही बना दिया गया है। महगाई, भत्ता, बोनस, प्रोविडेन्ट फण्ड, अवकाश, आवास, चिकित्सा एवं अन्य सुविधाओं के सम्बन्ध में कल्याण अधिकारियों पर वही नियम लागू होते है जो कारखाने में उसी पद और श्रेणी के कर्मचारियों पर लागू होते है। प्रत्येक उस कारखाने में जहाँ ५०० या अधिक श्रमिक कार्य करते हैं नियमानुसार कल्याण अधिकारियों की नियुक्ति करनी होगी: ग्रेड १—प्रतिदिन २,५०० या अधिक श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले कारखानों में, ५००—५०—१,००० कु० रो० ५०—१,२०० रुपये प्रति माह के वेतन मान मे; ग्रेड २—प्रतिदिन १,००० से २,४९९ तक श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले कारखानों मे, २५०—२५—४०० कु० रो० ३०—७०० कु० रो० ५०—८५० रु० प्रति माह के वेतन मान में; ग्रेड ३-प्रतिदिन ५०० से ९९९ तक श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले कारखानों मे, २००—१०—२५० कु० रो० १५—४०० रु० प्रति माह

के वेतन मान मे। जहाँ श्रमिको की सख्या २,५०० से भी अधिक है वहाँ ग्रेड १ के कल्याण अधिकारी के अधीन ग्रेड ३ का एक अतिरिक्त कल्याण अधिकारी होगा। कल्याण अधिकारी कारखानो के जनरल मैनेजर के अधीन कार्य करेंगे और उसके मातहत होंगे। कल्याण अधिकारी उत्तर प्रदेश का निवासी होना चाहिये। नियुक्ति के समय उसकी आयु २५ से ३५ वर्ष तक होनी चाहिये, हिन्दी का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिय तथा अर्थशास्त्र अथवा समाजशास्त्र की डिग्री तथा समाज-सेवा मे डिग्री या डिप्लोमा प्राप्त किये होना चाहिये। प्रथम और द्वितीय वेतन ग्रेड के अधिकारियो के लिये क्रमशः पाँच और तीन वर्ष का व्यावहारिक अनुभव होना आवश्यक है। अधि-वर्ष (अवकाश) की आयु ५५ वर्ष निश्चित की गई है। परख अवधि एक वर्ष है। परन्तु यह अवधि कार्य सन्तोषजनक न होने की अवस्था मे बढाई जा सकती है। ऐसे मामलो मे दण्ड व अपील की भी व्यवस्था है। कल्याण अधिकारी के कर्त्तव्य निम्न प्रकार है—

(१) श्रमिको और प्रबन्धको के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्धो को बढाना तथा उनके बीच सम्पर्क अधिकारी का कार्य करना, (२) कार्य की दशाओ के सम्बन्ध मे श्रमिको क' शिकायतो और कठिनाइयो को, जितना शीघ्र सम्भव हो, दूर करने का प्रयत्न करना, (३) स्वास्थ्य, सुरक्षा और कल्याण के सम्बन्ध मे श्रम कानूनो, आदेशो और वैधानिक नियमो को यदि भग किया जाता है तो उसकी सूचना कारखाने के मैनेजर या देखरेख करन वाले को देना और इस ओर इनका ध्यान दिलाना, तथा कैन्टीन, विश्राम-गृह, शिशु-गृह, पर्याप्त शौचालय सुविधायें, पीने का पानी आदि सुविधाओ के सम्बन्ध मे व्यवस्था करने के लिये उचित कदम उठाना, (४) सस्थान के क्षेत्र के अन्दर और बाहर मैत्रीपूर्ण सम्पर्क बनाकर श्रमिको के मनोभावो का अध्ययन करना तथा ऐसे मामलो को जिनसे विवाद अथवा तनाव उत्पन्न होन की सम्भावना हो मालिको के ध्यान मे लाना ताकि सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध बन रहे, (५) सयुक्त उत्पादन-कार्य समितियाँ, मालिक मजदूर समितिया, सहकारी समितियाँ, सुरक्षा प्रथम समितियाँ अथवा कल्याण समितियो के निर्माण को प्रोत्साहन देना, प्रबन्धको को अच्छी प्रकार अनुशासन बनाये रखने मे सहायता देना तथा श्रमिको के हितो मे वृद्धि करने वाले सभी उपायो को प्रोत्साहन देना, (६) श्रम कल्याण-कार्यो को सगठित करना और उनकी देखभाल करना तथा यह देखना कि कार्य की दशाओ के सम्बन्ध मे वैधानिक उपबन्धो को लागू किया जाता है या नहीं, (७) ऐसे मामलो मे जिनमे श्रम दशाओ और श्रम कल्याण के विषयो की विशेष जानकारी की आवश्यक्ता होती है प्रबन्धको को सलाह देना तथा श्रमिको की रहने की अवस्थाओ मे सुधार के लिये उचित पग उठाना, (८) वैध हडताल और तालाबन्दी के समय तटस्थ व्यवहार रखना, (९) श्रमिको पर ऐसा प्रभाव डालना कि वह अवैध हडताल न करें और मालिको पर ऐसा प्रभाव डालना कि वह अवैध तालाबन्दी घोषित न करें तथा तोड-फोड एव अन्य गैर-कानूनी कार्यो का रोकन के प्रयत्न करना, (१०) घूस व भ्रष्टाचार का पता लगाना और

रोकना तथा ऐसे मामलों को कारखाने के प्रबन्धकों के ध्यान में लाना, (११) ऐसी सड़कों, पुलों आदि की दशाओं के विषय में सम्बन्धित प्राधिकारियों के सम्मुख अभिवेदन करना जिन पर होकर श्रमिक अपने कार्य पर आते-जाते है।

अन्तर्कार्य प्रशिक्षण की योजना
(Scheme for Training within Industry)

(देखिए अध्याय ११)

इस योजना का उद्देश्य औद्योगिक संस्थानों मे पर्यवेक्षी कर्मचारी वर्ग (Supervisory Staff) की निम्नलिखित योग्यताओं का विकास करना है: (१) मार्ग-प्रदर्शन योग्यता, (२) अनुदेशन योग्यता, (३) कार्य प्रणाली मे सुधार करने की योग्यता। इस योजना मे निम्नलिखित कार्यक्रम आते हैं श्रमिक सम्बन्ध प्रशिक्षण, कार्य अनुदेशन प्रशिक्षण और कार्य प्रणाली प्रशिक्षण।

'श्रमिक सम्बन्ध प्रशिक्षण' (Job Relations) का कार्यक्रम मार्ग-प्रदर्शन की योग्यता से सम्बन्धित है। इसका उद्देश्य यह है कि पर्यवेक्षक इस बात का अनुभव कर ले कि उनको अपने कर्मचारियों के सहयोग तथा वफादारी से अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। पर्यवेक्षक को यह समझाया जाता है कि वह अपने साथ कार्य करने वालों के प्रति जैसा व्यवहार करेगा वैसा ही व्यवहार उसको श्रमिकों से अपने लिये मिलेगा। श्रमिको से वफादारी की मांग नहीं की जा सकती। इसको तो अपने ही प्रयत्नों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। यदि दूसरो मे हम सद्-व्यवहार उत्पन्न करना चाहते हैं तो यह बहुत आवश्यक है कि हममे स्वयं अनुशासन अधिक मात्रा मे होना चाहिये। अतः मानवी सम्बन्धों की देखभाल के लिए एक विशेष तकनीक पर विचार-विमर्श किया जाता है और उसको व्यवहार में लाया जाता है।

'कार्य अनुदेशन' (Job Instruction) के कार्यक्रम का उद्देश्य पर्यवेक्षकों की अनुदेशन योग्यता को विकसित करना है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत यह बताया जाता है कि अनेक कठिनाइयाँ जो सामने आती हैं वह श्रमिकों के दोष के कारण नहीं होती वरन् खराब तथा दोषपूर्ण अनुदेशन के कारण होती हैं। पर्यवेक्षकों को यह सिखाया जाता है कि जो प्रशिक्षण वह देते है उसकी पहिले से पूर्ण योजना बना लेनी चाहिए तथा अनुदेशन किस प्रकार का हो यह भी पहिले से तैयार कर लेना चाहिये ताकि कोई बात छूट न जाय। अनुदेशन को भी श्रमिको के सामने इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिये कि श्रमिक उस कार्य में, जो उन्हें सिखाया जा रहा है, लगन के साथ लग जायें और उसमें रुचि लें।

कार्य प्रणाली (Job Methods) के कार्यक्रम में पर्यवेक्षकों को यह अनुभव कराया जाता है कि अपने अनुभाग के कार्यों की प्रणाली के प्रति भी उनका कुछ उत्तरदायित्व है। यदि कार्य नीरस, गन्दा, थकाने वाला है या ऐसा है जिसमें अनावश्यक रूप से चलना-फिरना पड़ता है, या कार्य करने में कुछ खतरा होता है,

तब पर्यवेक्षक को इस बात की प्रतीक्षा नही करनी चाहिये कि कोई अन्य व्यक्ति आकर प्रणाली को ठीक कर देगा। उसमे स्वयं इतनी योग्यता होनी चाहिये कि कार्य किस प्रकार हो रहा है इसकी जांच करे तथा स्वय अपने विचारानुसार श्रमिकों के लिये कार्य सरल और अधिक सुरक्षित बना दे।

अन्तर्कार्य प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिये भारत सरकार ने १९५३ मे 'तकनीकी सहायता कार्यक्रम' (Technical Assistance Programme) के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन से एक विशेषज्ञ की सेवायें प्राप्त की जिनका नाम श्री किलीफोर्ड फी था। अहमदाबाद वस्त्र उद्योग अनुसन्धान संस्था व गुजरात मिल व उद्योग सगम, बडौदा, के लिये श्री फी ने प्रशिक्षण कार्य-क्रमो का सचालन किया। उनके कार्य-काल को दो बार और बढाया गया और इस काल मे उन्होने 'ऐसोशियेटेड सीमेट कम्पनीज लि०' तथा 'मैसर्स क्लिक इण्डस्ट्रीज' मे प्रशिक्षण कार्यक्रमो का सचालन किया। अन्तर्कार्य प्रशिक्षण के एक अन्य विशेषज्ञ श्री स्टीफन आर० पियर्सन के नवम्बर १९५४ मे आ जाने के कारण प्रशिक्षण कार्य-क्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षण सुविधाओ को सरकारी व निजी दोनों क्षेत्रो के औद्योगिक सस्थानो तक लागू करना सरल हो गया। १९५५ मे इन प्रशिक्षण कार्यक्रमो के अन्तर्गत प्रशिक्षण पाने वाले व्यक्तियो की सख्या निम्नलिखित थी—

	नागपुर	नई दिल्ली	बम्बई
कार्य अनुदेशन (Job Instruction)	१०	१५	१३
कार्य प्रणाली (Job Methods)	१०	१३	१२
श्रमिक सम्बन्ध (Job Relations)	१०	१५	१२
प्रशिक्षण कार्यक्रमो का पुन निरीक्षण (Follow up)	१०	१३	...

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षित व्यक्तियो से यह आशा की गई कि वह अपने पृथक्-पृथक् सस्थानो मे 'अन्तर्कार्य प्रशिक्षण' प्रणाली को लागू करेंगे और पर्यवेक्षी कर्मचारी वर्ग को पर्याप्त सख्या मे प्रशिक्षण देगे। परन्तु इस प्रकार प्रशिक्षण कार्यक्रमो को लागू करने से ही उद्देश्य की प्राप्ति नही होती थी। इस कारण पुन. निरीक्षण के कार्य का सचालन करना आवश्यक था। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के दोनो विशेषज्ञ उन औद्योगिक केन्द्रो मे पुन निरीक्षण के उद्देश्य से फिर गये जहाँ यह योजना प्रारम्भ की गई थी। टाटा लोहा व इस्पात कम्पनी तथा जमशेदपुर मे अन्य सहायक कम्पनियो के लिये इस सम्बन्ध मे कुछ वार्ताओ की व्यवस्था भी की गई। सौराष्ट्र और गुजरात के उन औद्योगिक सस्थानो मे जहाँ १८ से २८ अक्तूबर १९५५ तक की अवधि मे योजना को लागू किया गया था पुन निरीक्षण की व्यवस्था की गई। अपना कार्यकाल समाप्त करने के पश्चात् १९५६ के ग्रीष्म मे विशेषज्ञो ने जब भारत छोडा तब उन्होने कपडा, इस्पात, इन्जीनियरिंग, रसायन, सीमेट, तेल व खनिज आदि १०० सस्थानो के अधिकारियो को प्रशिक्षित कर दिया

था, तथा अन्तर्कार्य प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत लगभग ५,००० पर्यवेक्षकों को प्रशिक्षण दिया जा चुका था। ५० से अधिक फर्मों में नियमित रूप से पुनः निरीक्षण की योजना भी लागू की गई थी।

श्रम मन्त्रालय ने १९५४ में बम्बई में एक अन्तर्कार्य प्रशिक्षण केन्द्र (Centre) की स्थापना की। यह केन्द्र देश में अन्तर्कार्य प्रशिक्षण कार्यक्रमों को लागू करने और उनके विकास करने के लिये उत्तरदायी है। १९५७ में बम्बई व कानपुर में दो अन्तर्कार्य प्रशिक्षण प्रायोजनायें लागू की गईं और १९५८ में कोयमुत्तूर, कलकत्ता और बम्बई में भी ये प्रायोजनायें आरम्भ की गईं। १९५९ में इस केन्द्र ने बम्बई में दो प्रायोजनायें और शुरू की तथा १९६० में १ प्रायोजना बम्बई में और १ हैदराबाद में आरम्भ की। प्रत्येक प्रायोजना में सरकारी व निजी क्षेत्रों के १९५९ में १२ तथा १९६० मे ११ प्रशिक्षण अधिकारियों ने भाग लिया। १९६१ में भी बम्बई मे २ प्रायोजनायें आरम्भ की गईं जिनमें से एक में ११ तथा दूसरे में ९ व्यक्तियो ने प्रशिक्षण लिया। कलकत्ते मे एक अन्य प्रायोजना आरम्भ की गई जिसमे १६ व्यक्तियो ने भाग लिया। १९६२ मे केन्द्र द्वारा इस्पात के कारखानों तथा सिन्द्री के कृत्रिम खाद के कारखाने के कर्मचारियों के लिये कई प्रायोजना चलाई गईं। अन्तर्कार्य प्रशिक्षण केन्द्र ने मार्च १९६० तक २१७ प्रशिक्षण अधिकारियों को प्रशिक्षित किया। इन अधिकारियों ने अन्तर्कार्य प्रशिक्षण योजना के अन्तर्गत कार्य अनुदेशन, कार्य प्रणाली तथा श्रमिक सम्बन्धों में ४०,००० पर्यवेक्षकों को प्रशिक्षित किया है। अनेक फर्मों और उद्योगों ने अन्तर्कार्य प्रशिक्षण योजना को सफलतापूर्वक लागू किया है। १९५९ में इस केन्द्र ने दो नये कार्यक्रम आरम्भ किये—एक 'सम्मेलन नेतृत्व' से सम्बन्धित था तथा दूसरा 'कार्यक्रम विकास' से सम्बन्धित था। १९६० में इस केन्द्र द्वारा दो अन्य कार्यक्रम चालू किये गये। एक तो वाद-विवाद से सम्बन्धित था तथा दूसरा कार्य की सुरक्षा से। कार्य अनुदेशन, कार्यप्रणाली तथा श्रमिक सम्बन्धो के कार्यक्रम पूरे हो चुके है। मई १९६१ मे, बम्बई में एक वाद-विवाद से सम्बन्धित कार्यक्रम पूरा किया गया। १९६२ में ५ वाद-विवाद के मुख्य कार्यक्रम चलाए गये जिनमें से दो बम्बई मे थे तथा एक पूना, बंगलौर तथा रांची में था। १९६४–६५ में केन्द्र द्वारा ४ "औद्योगिक सम्बन्ध" कार्यक्रम बम्बई मे चलाये गये। कई कारखानो में केन्द्र ने अग्रगामी प्रायोजनायें चलाने में सहायता दी। सन् १९६५–६६ मे, "पर्यवेक्षण विकास-समाचार-पत्र" नामक त्रैमासिक पत्रिका जारी करने के अतिरिक्त, केन्द्र ने "मानव-सम्बन्धो" पर अनेक अधिवेशन आयोजित किये तथा तीन अन्तर्कार्य प्रशिक्षण प्रायोजनायें व "व्यक्ति अध्ययन वाद-विवाद" (Case Study Discussion) आयोजित किये। सन् १९६६–६७ तथा १९६७–६८ मे केन्द्र द्वारा 'कार्य अनुदेशन', 'कार्य-प्रणाली' तथा 'श्रमिक सम्बन्धों' पर अनेक कार्यक्रम पूरे किये गये। उत्पादकता परिषदों ने भी कई स्थानों पर 'अन्तर्कार्य प्रशिक्षण' कार्यक्रम

चालू किये । केन्द्र ने 'ग्रन्तर्कार्य प्रशिक्षण' योजना की प्रगति तथा विकास 'न्यूज लैटर' नामक एक मासिक पत्रिका का भी सचालन किया है ।

यह भी उल्लेखनीय है कि प्रथम पचवर्षीय ग्रायोजना ने ग्रन्तर्कार्य प्रशिक्षण कार्यक्रम को श्रम ग्रौर रोजगार मत्रालय के कार्यक्रम मे एक निश्चित भाग के रूप से सम्मिलित कर दिया था ग्रौर श्रम मन्त्रालय को पर्यवेक्षको की शिक्षा के विकास का उत्तरदायित्व सौंपा था । द्वितीय पचवर्षीय ग्रायोजना मे भी इस कार्यक्रम को जारी रखा गया और तीसरी ग्रायोजना मे भी ग्रन्तर्कार्य प्रशिक्षण केन्द्र के कार्य की सिफारिश की गई ।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि १९५८ के ग्रारम्भ से ही श्रम ग्रौर रोजगार मन्त्रालय ने सरकारी कार्यालयो के पर्यवेक्षक कर्मचारियो के प्रशिक्षण के लिये कुछ प्रयोग शुरू किये हैं । यह प्रयोग 'ग्रन्तर्कार्य प्रशिक्षण' के सिद्धान्तो पर ग्राधारित हैं । योजना के ग्रन्तर्गत एक प्रशिक्षित ग्रधिकारी ने ग्रनेक विचार-विमर्श दलो का ग्रायोजन किया है ।

रिक्शा चलाने का उन्मूलन

रिक्शा चलाने को समाप्त करने के प्रश्न पर श्रम मन्त्री सम्मेलन के १२वें ग्रधिवेशन मे, जो १९५५ मे ३ से ५ नवम्बर तक हुग्रा, विचार किया गया था ग्रौर यह सिफारिश की गई थी कि — (क) रिक्शा चलाने को धीरे-धीरे समाप्त कर देना चाहिये, परन्तु जहाँ इस प्रकार का उन्मूलन सम्भव न हो वहाँ रिक्शा चालको की कार्य की दशाग्रो तथा उनकी डाक्टरी परीक्षा के लिये उचित नियम बना देने चाहियें । इस सम्बन्ध मे राज्य सरकारो के मार्ग दर्शनार्थ केन्द्रीय सरकार को कुछ ग्रादर्श नियम बना देने चाहियें । (ख) जब तक रिक्शाग्रो के पूर्ण उन्मूलन का प्रश्न विचाराधीन है कोई भी नये लाइसेंस नही दिये जाने चाहियें ।

राज्य सरकारो से प्रार्थना की गई थी कि वह रिक्शा चलाने को धीरे-धीरे समाप्त करने के लिये एक योजना बनायें एव ग्रन्य उपायो के साथ-साथ निम्न बातो का भी पालन करें— (१) उस ग्रवधि को निर्धारित कर दें जिसमे हाथ से ग्रथवा साइकिल से चलने वाली रिक्शा सतोषजनक रूप से कार्य के योग्य सिद्ध हो सकती हैं ग्रौर ऐसी ग्रवधि की समाप्ति के पश्चात् ऐसी रिक्शाग्रो का चलना बन्द कर दें । (२) नई रिक्शाग्रो ग्रौर नये रिक्शा चालको के लिये नये लाइसेंस देना बन्द कर दें । (३) ऐसे क्षेत्र निर्धारित कर दें जिनमे विशेष प्रकार की रिक्शायें चल सकती हैं । एक निर्धारित योजना के ग्रनुसार ऐसे क्षेत्रो को धीरे-धीरे प्रति वर्ष कम कर दे ।

केन्द्रीय सरकार ने हाथ से खींचने वाली तथा साइकिल रिक्शाग्रो को लाइसेंस देने के विषय मे कुछ ग्रादर्श विनियम बनाये, ग्रौर इन विनियमो को ग्रपनाने के हेतु राज्य सरकारो मे परिचालित किया । स्थाई श्रम समिति ने भी इस समस्या पर १९६१ मे विचार किया ग्रौर इसकी सिफारिशो पर राज्य सरकारो से

कहा गया, कि वह स्थानीय दशाओं को देखते हुए इस समस्या पर विचार करें। एक विशेष कार्य दल के विचार से भी राज्य सरकारों को अवगत कराया गया है जिसने यह कहा था कि साइकिल-रिक्शा बन्द करना तभी सम्भव हो सकेगा जब कि उनके स्थान पर सभी नगरों में कोई वैकल्पिक यातायात, विशेष रूप से ऑटो-रिक्शा चला दी जायें और उनकी सेवा की बारम्बारता में ठोस वृद्धि की जाये। मार्च १९६६ में संसद् में कहा गया था कि यह तो मुख्यतः राज्य सरकारों का दायित्व है कि रिक्शा चलाना बन्द करें अथवा उसके बुरे प्रभावों का सामना करें। इस सम्बन्ध मे भारत सरकार ने राज्य सरकारों से निम्न सिफारिशें की हैं— (१) रिक्शा खींचने की समाप्ति का एक बहुचरणीय कार्यक्रम तैयार किया जाये और इस बीच, (२) काम की दशाओं व डाक्टरी जाँच आदि की व्यवस्था करने वाले उपयुक्त नियमों का निर्धारण किया जाये, और (३) रिक्शा चलाने वालों की सहकारी समितियों को प्रोत्साहन देकर मध्यस्थों द्वारा किये जाने वाले उनके शोषण को रोका जाये। राज्य सरकारें इस सम्बन्ध में आवश्यक पग उठा रही है किन्तु साथ ही कुछ ऐसी बातों को भी दृष्टिगत रख रही है, जैसे कि रिक्शा चालकों के लिये वैकल्पिक रोजगार की व्यवस्था और समाज के अपेक्षाकृत निर्धन वर्ग के आने जाने के लिये वैकल्पिक यातायात की व्यवस्था।

उद्योग में अनुशासन संहिता
(Code of Discipline in Industry)

(अध्याय ७ व १४ देखिये)

श्रमिकों की ओर से साधारणतः ये शिकायतें मिलती हैं कि कुछ मामलों में मालिक समझौतों अथवा अधिकरणों द्वारा दिये गये पंचाटों को लागू नही करते। दूसरी ओर मालिक यह शिकायत करते हैं कि श्रमिकों में अनुशासनहीनता बढ़ रही है। ऐसी शिकायतों को दूर करने और अनुशासन सुधारने के लिये, भारतीय श्रम सम्मेलन के १५वें अधिवेशन में, जो जुलाई १९५७ में हुआ था, एक त्रिदलीय उप-समिति की स्थापना की गई थी। इस उप-समिति ने एक ऐसी अनुशासन-संहिता का निर्माण किया जिसमे दिये हुये सिद्धान्तों का पालन मालिकों और श्रमिक संघों को करना चाहिये। स्थायी श्रम समिति ने अक्तूबर १९५७ में इस संहिता का अनुमोदन किया। मार्च १९५८ में भारतीय श्रम सम्मेलन की उप-समिति की एक बैठक मे इस संहिता को मालिकों और श्रमिकों के अखिल भारतीय संगठनों द्वारा अनुसमर्थन प्राप्त हो गया था। परन्तु औपचारिक रूप से मई १९५८ मे नैनीताल में हुये १६वें भारतीय श्रम सम्मेलन में ही इस संहिता का अनुसमर्थन किया गया। इस प्रकार यह संहिता १ जून १९५८ से कार्यान्वित की गई। इस संहिता का अनुमोदन और अनुसमर्थन करके मालिक-मजदूरों के सम्बन्धो को दृढ़ करने के लिये एक ठोस कदम उठाया गया है।

इस अनुशासन संहिता को, जिसे अक्तूबर १९५७ में स्थायी श्रम समिति

का अनुमोदन प्राप्त हुआ था, मई १९५८ मे भारतीय श्रम सम्मेलन द्वारा सशोधित किया गया। सशोधित सहिता को नीचे उद्धृत किया जाता है—

उद्योगो मे (सरकारी व निजी दोनो ही क्षेत्रो मे) अनुशासन बनाये रखने के लिये, यह होना चाहिये कि (क) कानूनो और समझौतो मे (इसमे समय समय पर विभिन्न स्तरो पर किये जाने वाले द्विदलीय व त्रिदलीय समझौते भी सम्मिलित हैं) की गई व्याख्या के अनुसार मालिक और श्रमिक दोनो ही एक दूसरे के अधिकारो और उत्तरदायित्वो को उचित प्रकार से मान्यता दें। (ख) इस प्रकार की मान्यता दे देने के पश्चात सम्बन्धित पक्ष स्वेच्छापूर्वक और उचित प्रकार से अपने दायित्वो को निभायें।

केन्द्रीय और राज्य सरकारो का यह कार्य होगा कि श्रम कानूनो के प्रशासन के लिये जो व्यवस्था की गई हो उसमे यदि कोई कमी है तो उसकी जांच करें और उसे ठीक करें।

उद्योग मे अच्छा अनुशासन लाने और बनाये रखने के लिये—

प्रबन्धक और श्रमिक सघ इन बातो पर सहमत हैं—(१) किसी भी औद्योगिक विषय पर कोई भी एक-पक्षीय कार्यवाही नही की जानी चाहिये, तथा विवादो का उचित स्तर पर निपटारा किया जाना चाहिये, (२) विवादो के निपटारे के लिये जो भी वर्तमान व्यवस्था हो उसका यथोचित रूप से उपयोग किया जाना चाहिये, (३) बिना पूर्व सूचना के कोई हडताल या तालाबन्दी नही की जायेगी, (४) प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तो मे अपने विश्वास प्रकट करते हुये वह इस बात की प्रतिज्ञा करते है कि अपने सभी मतभेदो विवादो व शिकायतो का पारस्परिक वार्तालाप सुलह और ऐच्छिक विवाचन द्वारा निपटारा करेंगे, (५) कोई भी पक्ष (क) दबाव (ख) धमकी, (ग) अत्याचार, या (घ) कार्यमन्दन जैसी नीतियो का सहारा नही लेगा, (६) दोनो पक्ष (क) मुदद्मेबाजी, (ख) हाजिर हडताल या घरना, (ग) तालाबन्दी, आदि से दूर रहने का प्रयत्न करेंगे, (७) यह अपने प्रतिनिधियो के बीच तथा श्रमिको के बीच सभी स्तरो पर स्वस्थ सहयोग को प्रोत्साहन देंगे और पारस्परिक रूप से किये गये समझौतो की भावना का आदर करेंगे, (८) पारस्परिक रूप से वह एक ऐसी शिकायत निवारण क्रियाविधि की व्यवस्था करेंगे जिसके द्वारा शीघ्र और पूर्ण रूप से जांच के पश्चात समझौते पर पहुंचा जा सके, (९) दोनो पक्ष शिकायत निवारण क्रियाविधि के विभिन्न चरणों को मानेंगे और कोई भी एक-पक्षीय ऐसा कार्य नही करगे जिससे इस व्यवस्था का उल्लघन होता हो, तथा (१०) दोनो पक्ष प्रबन्धक कर्मचारियो और श्रमिको को अपने-अपने उत्तरदायित्वो के बारे मे शिक्षा देने की व्यवस्था करेंगे।

प्रबन्धक इन बातो के लिये सहमत है—(१) बिना सहमति या समझौते के कार्य-भार नहीं बढायेंगे, (२) श्रमिको के प्रति किसी भी प्रकार का अनुचित व्यवहार नही करेग, जैसे—(क) उनके इस अधिकार म हस्तक्षेप करना कि वह श्रमिक सघो के सदस्य बन सकते है या बन रह सकते हैं, (ख) इस आधार पर कि

कोई मजदूर श्रमिक संघों की कार्यवाहियों में भाग लेता है उसके विरुद्ध भेद-भाव करना या उस पर दबाव डालना या बन्धन लगाना, (ग) श्रमिकों के प्रति अत्याचार करना या किसी भी रूप में अपने अधिकारों का दुरुपयोग करना ; (३) (क) शिकायतों का निपटारा करने, व (ख) समझौते, पंचाट, निर्णय व आदेशों को लागू करने के लिये तत्काल कार्यवाही करेंगे ; (४) संस्थान में मुख्य-मुख्य स्थानों पर इस संहिता के उपबन्धों को स्थानीय भाषाओं में लिखवा कर प्रदर्शित करेंगे ; (५) ऐसी अनुशासनात्मक कार्यवाहियों के बीच जिनमें तत्काल बर्खास्तगी न्यायोचित हो तथा जिनमें बर्खास्तगी से पूर्व चेतावनी, डाँट-डपट या मुअत्तली या अन्य किसी प्रकार की अनुशासनात्मक कार्यवाही करनी चाहिये, अन्तर को स्पष्ट करेंगे तथा इस बात की भी व्यवस्था करेंगे कि सामान्य शिकायत निवारण क्रियाविधि के माध्यम से ऐसी सभी अनुशासनात्मक कार्यवाहियों की अपील की जा सके ; (६) उन मामलों में अपने अधिकारियों तथा सदस्यों के प्रति उचित अनुशासनात्मक कार्यवाही करेंगे जहाँ जाँच-पड़ताल के परिणामस्वरूप यह पता चले कि वह ऐसे कार्यों के लिये उत्तरदायी थे जिनके कारण श्रमिको को अनुशासनहीन कार्यवाही करने के लिये मजबूर होना पड़ा ; (७) मई १९५८ में १६वें भारतीय श्रम सम्मेलन द्वारा निर्धारित जाँच आधारों पर तथा संहिता के अनुबन्ध मे दिये गये स्तर के अनुसार संघों को मान्यता देंगे।

संघ इस बात के लिये सहमत हैं—(१) किसी भी प्रकार का शारीरिक बल प्रदर्शन द्वारा दबाव नहीं डालेंगे ; (२) अशान्तिपूर्ण प्रदर्शनों को न होने देंगे तथा प्रदर्शनो मे किसी प्रकार का बलवा नहीं होने देंगे; (३) अपने सदस्यो को या अन्य श्रमिकों को कार्य के घण्टों के दौरान श्रमिक संघो की कार्यवाहियों मे भाग नही लेने देंगे जब तक कि कानून, समझौते अथवा प्रचलन द्वारा ऐसी व्यवस्था न कर दी गई हो; (४) (क) कर्तव्य की उपेक्षा, (ख) बेपरवाही से काम, (ग) सम्पत्ति को क्षति, (घ) सामान्य कार्य मे रुकावट अथवा बाधा, तथा (ङ) अवज्ञा (Insubordination) आदि जैसे अनुचित श्रम व्यवहारों को हतोत्साहित करेंगे ; (५) पंचाट समझौतो, निर्णयों, निपटारो आदि को लागू करने के लिये तत्काल कार्यवाही करेंगे ; (६) इस संहिता के उपबन्धों को स्थानीय भाषाओं में संघ के कार्यालयो मे मुख्य-मुख्य स्थानो पर प्रदर्शित करेंगे ; (७) इस संहिता की भावना के विरुद्ध कार्य करने वाले पदाधिकारियो और सदस्यों के कार्यों की निन्दा करेंगे और उनके विरुद्ध उचित कार्यवाही करेंगे।

अनुशासन संहिता मे जो उपरोक्त मुख्य सिद्धान्त बताये गये थे उनको संक्षेप मे निम्न प्रकार पुनः बताया जा सकता है : (१) मालिक और श्रमिक एक दूसरे के अधिकारो और उत्तरदायित्वों को मान्यता देंगे; (२) किसी भी औद्योगिक मामले में कोई भी ऐसी एक-पक्षीय अथवा स्वेच्छापूर्वक कार्यवाही नहीं करेंगे, जिसके कारण पारस्परिक रूप से निश्चित की गई तथा स्थापित शिकायत निवारण क्रिया-विधि की अवहेलना होती हो ; (३) बिना पूर्व सूचना दिये कोई तालाबन्दी

अथवा हड़ताल नही की जायेगी ; (४) हिंसा, प्रदर्शन, धमकी, दवाव, उकसाना, अत्याचार, भेदभाव, संघ के कार्यक्रम अथवा सामान्य कार्यों मे दखल, कर्त्तव्य के प्रति उपेक्षा, अवज्ञा अथवा अनुशासनहीनता, सम्पत्ति अथवा मशीनों की क्षति आदि जैसे कार्य कदापि नही किये जायेंगे , (५) कार्य मन्दन युक्तियाँ, हाजिर हड़ताल या धरना, मुकद्दमेबाजी आदि जैसी चालो का सहारा नही लिया जायेगा; (६) विवादो के निपटारे के लिये बनाई हुई व्यवस्था का यथोचित रूप से उपयोग किया जायेगा , (७) दोनो पक्ष इस बात के लिये सहमत होंगे कि वह अपने सब मतभेदो और शिकायतो को पारस्परिक वार्ता, सुलह और ऐच्छिक विवाचन द्वारा सुलझायेंगे , (८) पचाटो, निर्णयो, समझौतो, निपटारो आदि को शीघ्रतापूर्वक तथा तत्परता से कार्यान्वित किया जायेगा , (९) प्रत्येक ऐसे कार्य से जिससे सौहार्दपूर्ण सम्बन्धो मे बाधा पड़ती हो अथवा जो इस संहिता के सिद्धान्तो की भावना के विरुद्ध जाते हो दूर रहेंगे ।

मालिकों और श्रमिको के केन्द्रीय संघो के तथा सरकार के प्रतिनिधियो की एक 'केन्द्रीय मूल्यांकन और कार्यान्विति समिति' की स्थापना इस उद्देश्य से की गई है कि अनुशासन संहिता को किस प्रकार से लागू किया जा रहा है, इसका मूल्यांकन किया जाये। इस समिति का यह भी कार्य है कि श्रम कानूनो, पचाटो, समझौतो आदि को लागू करने मे देर होने के अथवा अप्रभावात्मक रूप से लागू करने के प्रश्नो की जाँच करे। इस समिति ने इस बात पर जोर दिया है कि संहिता मे लिखित सिद्धान्तो का शब्दानुसार ही पालन नही करना चाहिये वरन् उनके पीछे जो भावना निहित है उसका भी ध्यान रखना चाहिये। संहिता के उपबन्धो का यथासम्भव विस्तृत रूप से प्रचार करना चाहिये। केन्द्रीय मूल्यांकन और कार्यान्विति प्रभाग संहिता के कार्यान्विति की देखभाल करता है। राज्यो मे भी इसी प्रकार की 'मूल्यांकन और कार्यान्विति' व्यवस्था की गई है, (देखिये अध्याय ७)। यह प्रभाग बहुत से झगड़ो का अदालत से बाहर ही फैसला कराने मे सफल हुआ है।

दिसम्बर १९५८ मे उद्योग मे अनुशासन संहिता को लागू न करने पर कुछ उपाय अथवा शास्ति (Sanctions) निश्चित किये गये। इन उपायो को मालिकों और श्रमिको के केन्द्रीय संघो द्वारा लागू किया जायेगा। यदि कोई संघ संहिता को भंग करता है, तो उसे केन्द्रीय संगम द्वारा, जिससे संघ सम्बद्ध है, नोटिस दिया जायेगा। यदि संहिता भंग कोई गम्भीर प्रकृति की है तब केन्द्रीय संगम सम्बन्धित संघ को चेतावनी देगा या निन्दा करेगा (Censure) अथवा अन्य कोई दण्ड देगा। यदि किसी संघ द्वारा संहिता को बार बार भंग किया जाता है तो केन्द्रीय संगम ऐसे संघ को अपनी सदस्यता से अलग कर सकता है। संहिता का गम्भीर रूप मे और जान-बूझ कर उल्लंघन करने पर, ऐसे उल्लंघनो का व्यापक रूप से प्रचार किया जायेगा। २१ अगस्त १९६५ को अनुशासन संहिता कार्य संचालन पर एक विचार-गोष्ठी का आयोजन किया गया था जिसमे मालिकों, श्रमिको तथा केन्द्र व राज्य सरकारो के प्रतिनिधि सम्मिलित हुये थे। संहिता का अधिक निष्ठा के साथ लागू

करने के विषय में आश्वस्त होने के लिये गोष्ठी में अनेक रचनात्मक सुझाव दिये गये। इन सुझावों पर जुलाई १९६६ में भारतीय श्रम सम्मेलन ने विचार किया। सामान्यतः यह अनुभव किया गया कि अनुशासन संहिता ने जहाँ काफी अच्छा काम किया था, वहाँ औद्योगिक सम्बन्धी कानून तथा श्रमिक संघ कानून में इसलिये व्यापक संशोधन तथा पुनरावलोकन की आवश्यकता थी ताकि अनुशासन संहिता को अधिक प्रभावी बनाया जा सके।

जून १९५८ से जब से इस अनुशासन संहिता को लागू किया गया, दिसम्बर १९५९ तक संहिता के उल्लंघन के ७७७ मामलों की रिपोर्ट विभाग को मिली। केन्द्रीय क्षेत्र में संहिता के उल्लंघन की १९६० में ५५३, १९६१ में ७०९ और १९६२ में ९९३ शिकायतें प्राप्त हुईं। १९६२ में ९९३ शिकायतों में से २०४ ऐसी थीं जिन पर कार्यवाही की कोई आवश्यकता न थी, २३% शिकायतें जाँच करने पर निराधार पाई गईं, ५७% मामले प्रत्येक पक्ष के कहने पर ठीक कर दिये गये और बाकी मामलों की जाँच की जा रही थी।

निम्न तालिका में दिये गये आँकड़े अनुशासन संहिता तथा औद्योगिक शांति प्रस्ताव के कार्य को प्रकट करते हैं—

	१९६३	१९६४	१९६५	१९६६	१९६७
१. प्राप्त हुई शिकायतें	१२३६	१७१०	१३९९	८६४	४४२
२. वे शिकायतें जिन पर किसी कार्यवाही की आवश्यकता न थी	१७६	१६८	२३३	१५४	१००
३. वे शिकायतें जिन पर कार्यवाही करने की आवश्यकता थी	१०६०	१५४२	११६६	७१०	३४२
इनमें उन शिकायतों का प्रतिशत—					
(क) जो जाँच करने पर सिद्ध नहीं हुई	१७	९	७	१३	१२
(ख) जहाँ कि उल्लंघनों को ठीक कर लिया गया या अन्य प्रकार से मामला सुलझा लिया गया	४३	३७	४४	६२	५९
(ग) जो जाँच के अधीन थी	४०	५४	४९	२५	२९

अनुशासन संहिता के ऐच्छिक आधार पर औद्योगिक प्रजातन्त्र स्थापित करने और मालिकों व श्रमिकों के सहयोग से औद्योगिक शान्ति को बनाये रखने की सरकार की वर्तमान नीति का बोध होता है। यह ऐच्छिक नैतिक वचनबद्धता की प्रतीक है, किसी कानूनी दस्तावेज की नहीं। मालिकों और श्रमिकों दोनों ही पक्षों पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा है तथा इससे औद्योगिक विवादों के प्रति एक नई विचारधारा उत्पन्न हुई है। मालिकों और श्रमिकों के अनेक संघों ने तथा राज्य सरकारों ने इस संहिता के लागू होने पर सन्तुष्टि प्रकट की है और इसे

ऐच्छिक आधार पर स्वीकार किया है। यह निश्चय किया गया है कि संहिता को केन्द्र सरकार के विभागीय उद्यमों में भी लागू किया जाये। प्रतिरक्षा मन्त्रालय सिद्धान्त रूप में इस बात पर सहमत हो गया है कि वह संहिता में न्यूनतम संशोधन करके इसे कम्पनियों तथा निगमों के रूप में कार्य करने वाले अपने सरकारी क्षेत्र के उद्यमों पर लागू करे। बैंकिंग संस्थायें तथा जीवन बीमा निगम भी संहिता को लागू करने के लिये सहमत हो गये हैं। तृतीय आयोजना में कहा गया है कि अनुशासन संहिता पिछले तीन वर्षों में एक कसौटी सिद्ध हुई है और यह निश्चय है कि आगे चलकर औद्योगिक सम्बन्धों के दिन-प्रतिदिन के मामलों के लिये यह एक जीवन-शक्ति बन जायेगी।

सरकार अब इससे भी अधिक एक महत्वपूर्ण क्षेत्र की ओर पग उठा रही है अर्थात् 'कार्य-कुशलता और कल्याण कार्य संहिता' (Code of Efficiency and Welfare) लागू करने का विचार कर रही है। केन्द्रीय श्रम व रोजगार मन्त्रालय द्वारा इस संहिता का निर्माण किया गया है और इस संहिता को अनुशासन संहिता का पूरक कहा जा सकता है। इसका उद्देश्य उत्पादन, उत्पादकता व कल्याण सुविधाओं में सुधार करना है। इस कार्य-कुशलता संहिता पर दिसम्बर १९५९ में भारतीय श्रम सम्मेलन में विचार-विमर्श हुआ। संहिता के उद्देश्यों की पूर्ति कैसे की जा सकती है इस पर सोच-विचार करने के लिये एक समिति की नियुक्ति की गई। इस समिति ने संहिता से सम्बन्धित सूचना एकत्रित करने के लिये एक प्रश्नावली बनाई, तथा सुझाव और टिप्पणियों के लिये मालिकों और श्रमिकों के केन्द्रीय संघों में इसे परिचालित किया। यह कार्य-कुशलता तथा कल्याण-कार्य संहिता अनुशासन संहिता से भिन्न है क्योंकि उसमें तो मालिकों और श्रमिकों से कई बात न करने के लिये कहा गया है, परन्तु कार्य कुशलता और कल्याण कार्य संहिता धनात्मक हैं और इसमें मालिकों व श्रमिकों से ऐसे विशेष कार्य करने को कहा गया है जिससे सौहार्दपूर्ण औद्योगिक सम्बन्ध बढ़ें और उत्पादन अधिक हो।

संघों को मान्यता प्रदान करने के लिए शर्तें (Criteria for Recognition of Unions)

संघों को मान्यता प्रदान करने के लिये अनुशासन संहिता के अनुच्छेद में कुछ नियम दिये गये हैं। (१) जहाँ एक से अधिक संघ हैं वहाँ किसी संघ को मान्यता पाने के लिये यह आवश्यक है कि वह संघ पंजीकृत होने के पश्चात् कम से कम एक वर्ष तक कार्य करता रहा हो। जहाँ केवल एक संघ है वहाँ यह शर्त लागू नहीं होगी। (२) संघ की सदस्यता में सम्बन्धित संस्थान में कार्य करने वाले कम से कम १५ प्रतिशत श्रमिक होने चाहियें (सदस्यता केवल उन श्रमिकों की ही मानी जायेगी जिन्होंने पिछले ६ महीनों में कम से कम ३ महीनों का सदस्यता शुल्क दे दिया हो)। (३) यदि किसी स्थानीय क्षेत्र के उद्योग के २५ प्रतिशत श्रमिक किसी संघ के सदस्य होते हैं तब वह संघ एक प्रतिनिधि संघ (Represen-

tative Union) के रूप मे मान्यता पाने का दावा कर सकता है। (४) जब किसी संघ को मान्यता प्रदान कर दी गई हो तब दो वर्ष तक उसकी स्थिति मे कोई परिवर्तन नही किया जाना चाहिये। (५) जब किसी उद्योग या संस्थान में अनेक संघ हों तब मान्यता उस संघ को दी जानी चाहिये जिसकी सदस्यता सबसे अधिक हो। (५) एक "प्रतिनिधि सघ" को उद्योग के उस क्षेत्र के सभी संस्थानों के श्रमिको का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार होगा ; परन्तु यदि किसी सस्थान विशेष में कोई ऐसा सघ है जिसमें सस्थान के ५० प्रतिशत या अधिक श्रमिक सदस्य है तब उसको यह अधिकार होगा कि वह अपने सदस्यो के स्थानीय हितो के मामलों को अपने हाथ मे ले सके। जो श्रमिक सघ के सदस्य नही है वे अपनी कठिनाइयों का निवारण या तो प्रत्यक्ष रूप से अथवा प्रतिनिधि सघ के माध्यम से करा सकते हैं। (७) ऐसे श्रमिक सघो के सगमों को मान्यता प्रदान करने के प्रश्न पर अलग से विचार करना चाहिये जो सगम चार केन्द्रीय श्रम सगठनो मे किसी से सम्बद्ध नहीं है। (८) केवल वही सघ जो अनुशासन सहिता का पालन करते है, मान्यता पाने के अधिकारी होंगे।

आचरण सहिता (Code of Conduct)

मई १९५८ में नैनीताल मे बनाई गई आचरण सहिता को लागू करने का उत्तरदायित्व भी केन्द्रीय मूल्यांकन और कार्यान्वित विभाग को सौपा गया है। यह सहिता अन्तर-सघ सम्बन्धो को निर्धारित करती है तथा इसका उद्देश्य अन्तर-सघ प्रतिस्पर्धा को कम करना और श्रमिक सघ एकता व मैत्री को स्थापित करना है। चारों केन्द्रीय श्रम सगठन अन्तर-श्रमिक सघो के सौहार्दपूर्ण सम्बन्धो को बनाये रखने के लिये निम्नलिखित मूल सिद्धान्तों को मानने के लिये सहमत हो गये हैं : (१) किसी भी उद्योग अथवा सस्थान के प्रत्येक कर्मचारी को यह अधिकार होगा कि वह अपनी इच्छानुसार किसी भी सघ का सदस्य बन सकता है। इस विषय में उस पर कोई दबाव नहीं डाला जायेगा। (२) सघो की दोहरी सदस्यता नही होगी (प्रतिनिधि सघो के विषय में इस सिद्धान्त की और अधिक जाँच करने की आवश्यकता है), (३) श्रमिक सघों को प्रजातान्त्रिक रूप से कार्य करने के लिये मान्यता प्रदान की जायेगी और ऐसे कार्यों को बिना किसी संशय के स्वीकार कर लिया जायेगा। (४) श्रमिक संघो के पदाधिकारियो तथा कार्याङ्ग का निर्वाचन नियमित तथा प्रजातन्त्रात्मक ढग से होना चाहिये। (५) किसी भी सगठन द्वारा श्रमिको की अज्ञानता अथवा पिछड़ेपन का लाभ नही उठाया जायेगा। किसी भी सगठन द्वारा अत्यधिक अथवा व्यर्थ की माँगे नही की जायेंगी। (६) सभी सघ जातिवाद, साम्प्रदायिकता और प्रान्तीयता आदि से दूर रहेंगे। (७) अन्तर-संघ सम्बन्धो के विषय में किसी प्रकार की हिंसा, दबाव, धमकी और व्यक्तिगत निन्दा आदि जैसी बातें नही होंगी। (८) सभी केन्द्रीय श्रम सगठनो को मालिकों द्वारा संघ बनाने अथवा उनको चालू रखने का विरोध करना चाहिये।

आचरण सहिता भग करने की विभिन्न वर्षो मे जो शिकायतें आई वह निम्नलिखित हैं १६५८—१६, १६५६—५६, १६६०—३५, १६६१—३०, १६६२—२७, १६६३—३०, १६६४–८, १६६५—६, १६६६ –२०, और १६६७–११ । १६६७ मे सहिता भग करने की ११ शिकायतो मे से ३ मामलों पर किसी कार्यवाही की आवश्यक्ता नही थी, १ मामले मे शिकायतें निराधार थी, २ शिकायतो को उचित कार्यवाही करने के लिये सम्बन्धित दलो को सौंप दिया गया और ५ मामल राज्य क्षेत्र मे होने के कारण सम्बन्धित राज्यो को सौंप दिये गये ।

शिकायत निवारण क्रियाविधि
(Grievance Procedure)
(अध्याय ७ भी देखिये)

अहमदाबाद मे औद्योगिक सम्बन्ध अन्य स्थानो की अपेक्षा अधिक शान्त और सौहार्दपूर्ण रहे है । इसका कारण शिकायतो आदि के निवारणार्थ वहाँ सूती कपडा मिल श्रमिक सघ द्वारा विकसित की गई एक सुचारू क्रियाविधि है । अन्य स्थानो पर सामान्यत ऐसी कोई औपचारिक व्यवस्था नही पाई जाती तथा श्रमिको के लिये अपनी शिकायतो को दूर कराने को एकमात्र साधन श्रम कल्याण अधिकारी का कार्यालय ही रह जाता है । यह अधिकारी उन सस्थानो मे होते हैं जहाँ ५०० या अधिक श्रमिक कार्य करते हैं । परन्तु यह अधिकारी चाहे कितने अच्छे प्रयत्न भी क्यो न करें शिकायत निवारण क्रियाविधि का स्थान नही ले सकते । इस सम्बन्ध मे कोई वैधानिक व्यवस्था भी नही है । केवल १६४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) केन्द्रीय नियमो के अन्तर्गत बनाए गये आदश स्थायी आदेशो मे एक धारा दी हुई है, जिसके अनुसार यह व्यवस्था की गई है कि रोज गार से सम्बन्धित जितनी भी शिकायतें होगी (इन शिकायतो मे मालिको या उनके एजेन्टो द्वारा अनुचित व्यवहार और अनुचित रूप से कोई कार्य आदि कराना या कुछ गैर कानूनी वसूली करने की शिकायत भी सम्मिलित होगी) । उनको प्रबन्धक या उसके द्वारा नियुक्त किये गये किसी अन्य व्यक्ति के सम्मुख प्रस्तुत किया जायगा और मालिक के सम्मुख अपील करने का अधिकार भी रहेगा ।

जुलाई १६५७ मे, भारतीय श्रम सम्मेलन के १५वें अधिवेशन की कार्य-सूची मे एक ऐसी शिकायत निवारण क्रियाविधि की स्थापना करने का विषय रखा गया जो औद्योगिक सस्थानो के प्रबन्धको और उनमे लगे हुये श्रमिको दोनो को स्वीकार हो । औद्योगिक सम्बन्धो को सुधारने मे इसकी महत्ता पर जोर दिया गया । इस विषय पर विचार करने के लिये सम्मेलन ने एक उपसमिति नियुक्त की । मार्च १६५८ मे उपसमिति न अपनी एक बैठक मे कुछ सिद्धान्तो को बनाया इन सिद्धान्तो के अनुसार शिकायत निवारण क्रियाविधि इस प्रकार होनी चाहिये कि (१) वह चालू वैधानिक व्यवस्था की अनुपूरक हो और इस व्यवस्था का प्रयोग भी करे, (२) वह सरल और औचित्यपूर्ण हो, तथा (३) प्रबन्धको पर यह उत्तर-

दायित्व डाले कि वह ऐसे प्राधिकारियो को नामजद कर दे जिनसे विभिन्न स्तरो पर सम्पर्क बनाया जा सके। निजी सम्बन्धो से सम्बन्धित जो शिकायते हों उन्हें सबसे पहिले प्रबन्ध के उस अधिकारी के सम्मुख लाना चाहिये जो उस अधिकारी के फौरन ऊपर का अधिकारी होता है जिसके विरुद्ध शिकायत की जाती है। उसके पश्चात् शिकायत को शिकायत निवारण समिति के सम्मुख ले जाया जा सकता है। अन्य शिकायतों को, जिनका सम्बन्ध रोजगार की दशाओ से होता है, सर्वप्रथम प्रबन्धक द्वारा नामजद किये गये प्राधिकारी के सम्मुख लाना चाहिये और बाद में शिकायत निवारण समिति के सम्मुख ले जाना चाहिये। जब कोई विषय शिकायत निवारण समिति के सम्मुख सबसे पहिले आ जाता है तब उसकी अपील उच्च प्रबन्धको के सम्मुख होनी चाहिये।

भारतीय श्रम सम्मेलन ने अपने १६वें अधिवेशन में उप-समिति द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्तों का अनुमोदन किया तथा प्रार्थना की कि इन सिद्धान्तो को ध्यान मे रखते हुये, एक सरल और नम्य (Flexible) शिकायत निवारण क्रियाविधि बनानी चाहिये। परिणामस्वरूप सितम्बर १६५८ मे एक आदर्श शिकायत निवारण क्रियाविधि बनाई गई और त्रिदलीय सभा में इसको स्वीकार कर लिया गया। मालिकों के पास इसको परिचालित कर दिया गया है जिससे यदि पहले से ही उनके संस्थान मे इससे उत्तम कोई शिकायत निवारण क्रियाविधि नही है तो वह इस क्रियाविधि को लागू कर दे।

शिकायत निवारण क्रियाविधि के प्रशासन के लिये जो व्यवस्था की जाती है उसके अन्तर्गत श्रमिको द्वारा विभागीय प्रतिनिधियो का चुनाव होता है अथवा संघो द्वारा उन्हे मनोनीत कर दिया जाता है अथवा जहाँ कही मालिक मजदूर समितियाँ है वहाँ श्रमिको के प्रतिनिधियो को इस व्यवस्था के लिये ले लिया जाता है। प्रबन्धको को प्रत्येक विभाग के लिये ऐसे व्यक्ति नामजद करने होते है जिनके सम्मुख मामले को सर्वप्रथम रखा जा सके। इससे अगला पग यह होता है कि शिकायतों को विभागीय अध्यक्षों द्वारा सुना जाये। शिकायत निवारण समिति मे प्रबन्धको और श्रमिकों के इस प्रकार प्रतिनिधि होते है जिनकी सख्या ४ से ६ तक निर्धारित की गई है।

शिकायत निवारण क्रियाविधि में उन विभिन्न उपायों का विस्तृत रूप से उल्लेख किया गया है जिनके द्वारा कोई शिकायत सुनी जा सकती है। सर्वप्रथम शिकायत प्रबन्ध के विभागीय प्रतिनिधि के पास जाती है जिसको ४८ घण्टो के अन्दर अपना निर्णय देना होता है। इसमे सफलता न मिलने पर पीडित श्रमिक विभागीय अध्यक्ष के पास विभागीय अधिकारी के साथ जा सकता है। इस कार्य के लिये तीन दिन नियत हैं। इसके ऊपर शिकायत निवारण समिति द्वारा शिकायत पर विचार किया जाता है। समिति को सात दिन के अन्दर-अन्दर अपनी सिफारिशे प्रबन्धक के पास भेजनी होती हैं। शिकायत निवारण समिति की सिफारिश करने के तीन दिन के अन्दर प्रबन्धको का अन्तिम निर्णय श्रमिक के पास भेज दिया

जाता है। यदि श्रमिक को इस निर्णय से सन्तुष्टि नही होती तब वह निर्णय पर पुन विचार के लिये अपील कर सकता है तथा तब प्रबन्धको को सात दिन के अन्दर अपना निर्णय देना होता है। समझौता न होने की दशा में शिकायत को एच्छिक विवाचन के लिये सौंपा जा सकता है। जब तक पीडित श्रमिक द्वारा उच्च प्रबन्ध के अन्तिम निर्णय को अस्वीकार नहीं कर दिया जाता औपचारिक सुलह व्यवस्था का उपयोग नही किया जा सकता।

शिकायत निवारण क्रियाविधि मे अन्य और बातो का भी उल्लेख किया गया है, उदाहरणात जब कोई शिकायत प्रबन्धको द्वारा दिये गये आदेश के कारण उत्पन्न होती है तब क्रियाविधि के सम्मुख जाने से पूर्व उस आदेश को मानना आवश्यक है। शिकायत निवारण समिति मे श्रमिको के प्रतिनिधियो का किन्ही भी कागजात को देखने का अधिकार है और प्रबन्धको के प्रतिनिधियो द्वारा किसी भी गोपनीय प्रकृति के कागजात को दिखाने से इन्कार करने का अधिकार है। उस अवधि (७२ घण्टे) का भी उल्लेख है जिसमे अपील एक चरण से दूसरे चरण मे लाई जा सकती है। शिकायत दूर करने मे व्यय हुए समय के लिय भुगतान करने की भी व्यवस्था आदि है। वर्खास्तगी और अलहदगी के विषयो की शिकायत के सम्बन्ध म श्रमिक को यह अधिकार है कि वह वर्खास्त या अलग किये जाने के एक सप्ताह के अन्दर या तो वर्खास्त करने वाले प्राधिकारियो के सम्मुख या प्रबन्धको द्वारा नियुक्त किये गये प्रवर प्राधिकारी के सम्मुख अपील कर सके।

श्रमिक प्रबन्धक सहयोग
(Labour-Management Co-operation)

प्राय सभी देशो मे औद्योगिक सघर्षो को कम करने तथा मालिको द्वारा श्रम सगठनो के विरोध को कम करने के लिये श्रमिक सघो को अत्यन्त आवश्यक माना जाता है। यह बात जरूर है कि श्रम सगठनो के प्रति मालिको का विरोध पूर्णतया समाप्त नही हुआ है परन्तु फिर भी काफी सीमा तक कम हो गया है। श्रमिक सघो का मुख्य उद्देश्य यह है कि जब कभी भी मालिको और श्रमिको मे कोई मतभेद अथवा सघर्ष हो तब यह श्रमिको के हितो की रक्षा करे। उत्पादन एव अर्थ-व्यवस्था की आधुनिक प्रणाली मे, जहाँ पूंजी और श्रम भिन्न-भिन्न हाथो मे होते हैं तथा जहाँ मालिको का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना है, ऐसे विवादो का होना अवश्यम्भावी है।

हाल ही के वर्षों मे मालिको और श्रमिको के सम्बन्धो के विषय मे एक नई विचारधारा देखन मे आई है और अब इस बात पर अधिक बल दिया जा रहा है कि पारस्परिक सम्बन्ध ऐसे होन चाहिये कि सघर्ष के स्थान पर इस प्रकार सहयोग से कार्य किये जायें कि सबका हित सम्पादित हो। श्रम समस्याओ के प्रति अब मानवीय दृष्टिकोण लिया जाता है। अब श्रम को एक पदार्थ नही समझा जाता जिसको बाजार मे खरीदा अथवा बेचा जा सके, वरन् श्रमिक का 'मानव'

समझा जाता है। फिलेडेलफिया की घोषणा तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की कार्यवाहियों ने भी दृष्टिकोण में इस प्रकार के परिवर्तन होने मे काफी योगदान दिया है। इससे श्रमिक और प्रबन्धको के सहयोग से नये दृष्टिकोण आ गये है। इनके कारण अब रोजगार की संविदा के स्थान पर श्रमिको से अब साझेदारी की संविदा की जाती है, ताकि सभी के हितों के लिये प्रत्येक पक्ष अपना-अपना योगदान दे सके।

श्रमिक प्रबन्धक सहयोग का सिद्धान्त इस बात पर आधारित है कि क्योंकि श्रमिक अपनी जीविका के लिये इस बात पर निर्भर होते है कि कारखाना सुचारु रूप से चालू रहे, अतः यह स्वाभाविक है कि व्यवसाय या उद्योग के मामलो में वह रुचि लें और उनके संचालन में उनका भी कुछ हाथ हो। श्रमिक प्रबन्धक सहयोग मे सबसे आवश्यक बात यह है कि पारस्परिक रूप से परामर्श किया जाये तथा प्रबन्धकों की योजना, नीति और समस्याओ से सभी स्तर के कर्मचारियो को सूचित रखा जाये तथा श्रमिको के विचारो से प्रबन्धको को अवगत कराया जाये। इस प्रकार के परामर्श मालिक मजदूर समितियो अथवा श्रमिक प्रबन्धक समितियों के द्वारा औपचारिक रूप में अथवा कार्याङ्ग, पर्यवेक्षक और श्रमिको के बीच वाद-विवाद व अनौपचारिक वार्ता के रूप मे हो सकते हैं। इस प्रकार के सहयोग से मानव-तत्व की महत्ता को पूर्ण मान्यता मिलेगी तथा संस्थान के संचालन मे श्रमिक और अधिक रुचि लेंगे। श्रमिको मे नैराश्य और पृथकत्व की भावनाये समाप्त हो जायेंगी तथा श्रमिक और मालिक दोनो ही एक दूसरे को अपेक्षाकृत भली-भाँति समझने का प्रयत्न करेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि औद्योगिक शान्ति होगी, अधिक कार्य-कुशलता होगी, तथा अपव्यय और श्रमिकावर्त में कमी होगी और यथासम्भव अधिकतम उत्पादन होगा।

परन्तु उस समय तक कोई श्रमिक-प्रबन्धक सहयोग सफल नही हो सकता जब तक कि दोनो पक्ष सच्चे हृदय से ही सहयोग करना न चाहते हो तथा दोनों पक्षो को एक दूसरे का विश्वास एवं भरोसा न हो। प्रबन्धकों को सभी मामलो मे श्रमिको की सलाह लेनी चाहिये तथा संस्थान से सम्बन्धित सभी मामलों से उन्हे सूचित रखना चाहिये। उनको प्रशिक्षण की सुविधायें भी देनी चाहियें तथा अधिक उत्पादकता के कारण जो लाभ उत्पन्न हो उसमे से श्रमिको को भी भाग देना चाहिये। संयुक्त परामर्श व्यवस्था का उद्देश्य यह नही होना चाहिये कि श्रमिक संघो की महत्ता कम कर दी जाये। सामूहिक सौदाकारी का कार्य श्रमिक संघो पर ही छोड़ देना चाहिये।

श्रमिक-प्रबन्धक सहयोग के अनेक रूप हो सकते है। ऐसे सभी मामले जिनमे प्रबन्धकों द्वारा श्रमिकों का सहयोग लिया जाता है अथवा उनसे परामर्श किया जाता है श्रमिक प्रबन्धक सहयोग के अन्तर्गत आ सकते है। मालिक मजदूर समितियाँ, संयुक्त परामर्श समितियाँ, प्रबन्ध की संयुक्त परिषदे आदि इस सहयोग

के विभिन्न रूप हैं । हाल ही के वर्षों मे श्रमिक-प्रबन्धक सहयोग से यह तात्पर्य लिया जाता है कि श्रमिको का उद्योग के प्रबन्ध मे भाग है ।

प्रबन्ध मे श्रमिको का भाग
(Workers' Participation in Management)

द्वितीय पचवर्षीय आयोजना मे 'आयोजना को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिए प्रबन्ध मे श्रमिको के अधिक साहचर्य" पर जोर दिया गया था । इसमे बताया गया है कि ऐसे उपायो से (क) उत्पादकता बढेगी, जिससे व्यवसाय, श्रमिको और समाज का सामान्य हित होगा । (ख) उद्योग के सचालन और उत्पादन की प्रक्रियाओ मे श्रमिको का क्या भाग है यह वह अच्छी प्रकार से समझ सकेंगे और (ग) आत्म अभिव्यक्ति की श्रमिको की इच्छा भी इससे सन्तुष्ट हो जायगी । इन सबका परिणाम औद्योगिक शान्ति, उन्नत औद्योगिक सम्बन्ध और अधिक सहयोग होगा । आयोजना मे सिफारिश की गई है कि इस उद्देश्य की प्राप्ति ऐसे प्रबन्ध-परिषदो की स्थापना द्वारा की जा सकती है जिनमे प्रबन्धको, तकनीकियो तथा श्रमिको के प्रतिनिधि हो । ऐसी प्रबन्ध-परिषदो को सभी सम्बन्धित विषयो के बारे मे उचित और ठीक प्रकार से जानकारी देने का उत्तरदायित्व प्रबन्धको का होना चाहिये, जिससे परिषद प्रभावात्मक ढग से कार्य कर सकें । प्रबन्ध-परिषद् को यह अधिकार होना चाहिये कि वह सस्थान से सम्बन्धित विभिन्न प्रश्नो पर विचार-विमर्श कर सके तथा उसके अच्छे प्रकार से सचालन के उपायो की सिफारिश कर सके । परन्तु ऐसे विषय जो सामूहिक सौदाकारी से सम्बन्धित है परिषद् के विचार क्षेत्र के बाहर होने चाहियें । आरम्भ मे ऐसी व्यवस्था सगठित उद्योगो के बड-बडे सस्थानो मे प्रयोग के रूप मे लागू करनी चाहिये । ऐसी योजना को आगे बढाने का आधार विनियमित होना चाहिये तथा योजना का विस्तार प्राप्त किये अनुभवो की पृष्ठ भूमि को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिये ।

द्वितीय पचवर्षीय आयोजना मे इन सिफारिशो के अनुसार भारत सरकार ने श्रमिको के प्रबन्ध मे भाग लेने की एक विस्तृत योजना तैयार करने का निश्चय किया । इस कार्य को सरल बनाने के लिए १९५६ मे यूरोपीय देशो मे एक अध्ययन दल भेजा गया ताकि वह दूसरे देशो मे इस योजना के सचालन को स्वय देखकर अध्ययन कर सके । अध्ययन दल की रिपोर्ट १९५७ मे प्रकाशित की गई । रिपोर्ट मे दूसरे देशो मे प्रबन्ध मे श्रमिको के भाग लेने की योजना का अवलोकन किया गया है । दल ने इस बात पर विशेष जोर दिया कि भारत मे एक शिक्षा अभियान आरम्भ किया जाना चाहिये ताकि इस प्रकार की योजना के विभिन्न पहलुओ को श्रमिको, प्रबन्धको तथा पर्यवेक्षको द्वारा ठीक प्रकार से समझा जा सके । रिपोर्ट मे इस बात पर बल दिया गया है कि "सयुक्त परामर्श की स्थापना स्वय सस्थान मे ही होनी चाहिये' अर्थात् सयुक्त परामर्श का अर्थ केवल दोनो पक्षो को आपस मे मिलाकर बैठाना ही नही होना चाहिये वरन् इसका तात्पर्य यह होना चाहिये

कि सभी विषयों में संयुक्त रूप से परामर्श हो। तकनीकी विशेषज्ञ एवं पर्यवेक्षक इस संयुक्त परामर्श प्रणाली के प्रधान अंग होने चाहियें। रिपोर्ट में दृष्टिकोणों में परिवर्तन, भाग लेने की व्यवस्था से निकट रूप में सम्पर्क बनाये रखने वाले दृढ़ *आत्म-विश्वासी श्रमिक-संघों की स्थापना तथा मधुर औद्योगिक सम्बन्धों की* महत्ता पर बल दिया गया है ताकि श्रमिकों को प्रबन्ध में भाग लेने की योजना सफल हो सके। श्रमिक-प्रबन्धक की संयुक्त परिषदें श्रमिक संघों की स्थानापन्न नहीं होनी चाहियें। सामूहिक सौदाकारी के कार्य ऐसी परिषदों के क्षेत्र के बाहर होने चाहियें। इस प्रकार मजदूरी बोनस और निजी शिकायतों आदि पर ऐसी संयुक्त परिषदों द्वारा विचार नहीं किया जाना चाहिये। संयुक्त परिषदों को उदाहरणतः ऐसे प्रश्नों पर विचार करना चाहिये, जैसे—(१) स्थायी आदेशों में परिवर्तन, (२) छटनी, (३) विवेकीकरण के लिये प्रस्ताव, (४) संस्थान का बन्द करना या उत्पादन प्रक्रियाओं को कम करना या बन्द करना, (५) नई प्रणालियों को लागू करना, (६) भरती और दण्ड के लिये कार्य-विधि। परिषदों को निम्नलिखित विषयों में सूचना प्राप्त करने और सुझाव देने का अधिकार भी होना चाहिये— (१) संस्थान की सामान्य आर्थिक व्यवस्था, बाजार का रुख, उत्पादन तथा बिक्री कार्यक्रम ; (२) संस्थान का संगठन तथा सामान्य संचालन ; (३) संस्थान की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ; (४) निर्माण और कार्य की प्रणालियाँ; (५) वार्षिक तुलन-पत्र व लाभ-हानि लेखा तथा सम्बन्धित कागजात, जवाब तलबी आदि। इस भय को दूर करने के लिये परिषदों में कार्य के प्रति उदासीनता न आ जाये इन परिषदों को कुछ प्रशासनात्मक उत्तरदायित्व सौंपे जा सकते हैं, उदाहरणतः— १) कल्याण कार्यक्रमों का प्रशासन, (२) सुरक्षा उपायों की देखभाल, (३) व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा शिक्षार्थी योजनाओं का संचालन, (४) कार्य के घण्टे और आराम के लिये अनुसूची तैयार करना, (५) छुट्टियों की अनुसूची बनाना, तथा (६) महत्वपूर्ण सुझावों के लिये पारितोषिक देना। अध्ययन-दल परिषदों के बनाने में किसी भी बन्धन अथवा अनिवार्यता के विरुद्ध था और वह केवल ऐसे विधान बनाने के पक्ष में था जिसके अन्तर्गत ऐसी परिषदों के बनाने की अनुमति मात्र मिल जाये। अगर किसी संस्थान की विभिन्न स्थानों पर विभिन्न इकाइयाँ न हों तो एक संस्थान के लिये केवल एक ही परिषद् बनाने की सिफारिश की गई थी। प्रारम्भ में बाहरी व्यक्तियों का सहयोग आवश्यक हो सकता है, परन्तु उनकी संख्या सीमित ही होनी चाहिये।

अध्ययन-दल की मुख्य-मुख्य सिफारिशें जुलाई १९५७ में हुए भारतीय श्रम सम्मेलन के १५वें अधिवेशन में स्वीकृत कर ली गई थीं। १२ सदस्यों की एक उपसमिति बनाई गई थी जिसका कार्य यह था कि इस विषय में और विस्तार से जाँच-पड़ताल करे कि प्रारम्भ में ऐच्छिक आधार पर कुछ चुने हुए संस्थानों में प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने की योजना लागू हो सकती है या नहीं। इस उप-समिति ने सिफारिश की कि पहले यह योजना सार्वजनिक व निजी क्षेत्र के चुने

हुए ५० औद्योगिक सस्थानो मे चलाई जानी चाहिए। उन सस्थानो मे जहा यह योजना शुरु की जा सकती है तथा उन सस्थानो की जो इस योजना मे सहयोग देने को तैयार थे, एक सूची बनाई गई। यह निर्णय किया गया कि परीक्षण हेतु जो इकाइयाँ छाँटी जायें उनको इस आधार पर चुना जाये—(१) उनमे अच्छी प्रकार से स्थापित और शक्तिशाली श्रमिक सघ हो, (२) सस्थान मे कम से कम ५०० श्रमिक कार्य करते हो, (३) मालिक और श्रमिक सघ दोनो ही केन्द्रीय सगठनो के सदस्य हो, (४) सस्थान की इस बात मे कुछ प्रसिद्धि हो कि उसमे औद्योगिक सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण रहे है, (५) दोनो पक्ष इस योजना को सहयोग की भावना से लागू करने के लिये तैयार हो। उप समिति ने यह भी निर्णय किया कि एक पूरे सस्थान के लिये केवल एक परिषद होनी चाहिये, श्रमिको के प्रतिनिधियों को श्रमिक सघो द्वारा मनोनीत किया जाना चाहिये तथा श्रमिको के प्रतिनिधियो मे बाहरी व्यक्तियो की सख्या २५ प्रतिशत से अधिक नही होनी चाहिये। सयुक्त परिषद् मे सदस्यो की सख्या १२ से अधिक नही होनी चाहिये। सयुक्त परिषद् की बैठकें भी कार्य के घण्टो के दौरान मे ही होनी चाहियें।

नई देहली मे ३१ जनवरी एव १ फरवरी १९५८ को हुए श्रमिक प्रबन्धक सहयोग के सेमिनार मे भी उप-समिति की सिफारिशो पर विचार किया गया। केन्द्रीय श्रम व रोजगार मन्त्री श्री गुलजारी लाल नन्दा ने इस सेमिनार की अध्यक्षता की। इसमे मालिको, श्रमिको व सरकार के १०० से भी अधिक प्रतिनिधियो ने भाग लिया। इसमे से उन ३० औद्योगिक इकाइयो के प्रतिनिधि भी थे जिन्होने प्रबन्ध मे श्रमिको के भाग लेने की योजना को स्वीकार कर लिया था या पहले ही लागू कर चुके थे।

सेमिनार मे इस बात पर मतैक्य था कि सयुक्त परिषदो मे मालिको और श्रमिको के प्रतिनिधियो की सख्या बराबर बराबर होनी चाहिये तथा यह सख्या १२ से अधिक भी नही होनी चाहिये ताकि परिषदो का कार्य प्रभावात्मक हो और उनका प्रबन्ध भी ठीक प्रकार से हो सके। छोटे सस्थानो मे सदस्यो की सख्या ६ से कम नही होनी चाहिये। सेमिनार मे इस बात पर भी सब सहमत थे कि जो भी निर्णय लिये जायें वह सर्व सम्मति से हो।

सयुक्त परिषदो की स्थापना के लिये एक आवश्यक बात यह है कि सस्थान मे अच्छी प्रकार से स्थापित और शक्तिशाली श्रमिक सघ हो। इसलिए परिषदो मे प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर भी सेमिनार मे विस्तारपूर्वक विचार किया गया था। इस बात पर सब सहमत थे कि श्रमिको के प्रतिनिधि स्वय श्रमिक ही होने चाहियें। परन्तु जहाँ श्रमिक सघ यह अनुभव करें कि बाहरी व्यक्ति को भी सम्मिलित किया जाना चाहिये उस स्थिति मे ऐसे बाहरी सदस्यो की सख्या १ (अर्थात् २५% से अधिक नहीं) तक सीमित होनी चाहिये और पारस्परिक रूप से सहमत होने पर अधिक से अधिक यह सख्या २ हो सकती है। सयुक्त परिषदें इकाई आधार पर स्थापित की जानी चाहियें। जहाँ एक सस्थान मे अनेक विभाग है वहाँ के लिये

सेमिनार ने यह निर्णय किया कि संयुक्त परिषदों में प्रतिनिधित्व का प्रश्न संघ और संस्थान पर ही छोड़ देना चाहिये। एक ही क्षेत्र और एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत यदि विभिन्न संस्थान हों तो उनके सम्बन्ध में यह निर्णय किया गया कि योजना को प्रथम तो इकाई आधार पर प्रारम्भ करना चाहिये तथा तत्पश्चात् जब कुछ अनुभव हो जाये तब एक केन्द्रीय परिषद् की स्थापना की जा सकती है।

प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने के लिये उप-समिति द्वारा तैयार किये गये आदर्श समझौते पत्र पर भी सेमिनार में विचार किया गया। इस समझौते पत्र में इस बात की व्यवस्था की गई है कि संयुक्त परिषदों को, अन्य बातों के अतिरिक्त प्रबन्धकों से संस्थान की सामान्य आर्थिक स्थिति, उत्पादन और बिक्री कार्यक्रम, वार्षिक तुलन-पत्र व लाभ-हानि के लेखे तथा सम्बन्धित कागजात व संस्थान के विकास और विस्तार के लिये दीर्घकालीन योजनाओं के विषय में सूचनाओं को प्राप्त करने का अधिकार होगा। कुछ वाद-विवाद के पश्चात् यह निर्णय किया गया कि संयुक्त परिषदों को न केवल ऐसी सूचनाओं को प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिये वरन् उन पर विचार करने और सुझाव देने का अधिकार भी होना चाहिये। इस बात पर भी सहमति प्रकट की गई कि संयुक्त परिषद् को न केवल सदस्यों को सूचना और कागजात-पत्र देने की व्यवस्था करनी चाहिये वरन् उनको सूचना भी यथासम्भव शीघ्र से शीघ्र देनी चाहिये। कुछ विशेष मामलों में सूचना प्रति तिमाही दी जानी चाहिये।

सेमिनार द्वारा अन्य जिन प्रश्नों पर विचार किया गया वह एक तो ऐसी व्यवस्था के सम्बन्ध में थे जिनसे संयुक्त परिषदों तथा श्रम व रोजगार मन्त्रालय के बीच सम्पर्क स्थापित किया जा सके तथा उन संस्थानों में प्रशिक्षण कार्यक्रमों के सम्बन्ध में थे, जहाँ प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने की योजना लागू थी। सेमिनार को इस बात का दृढ़ विश्वास था कि संयुक्त परिषदें केवल पारस्परिक विश्वास और मित्र भाव के वातावरण में ही उन्नति कर सकती हैं।

बाद में यह निर्णय किया गया कि प्रबन्ध में श्रमिकों का जो भी भाग हो वह संयुक्त प्रबन्ध परिषदों के रूप में हो। इस परिषद् के तीन पृथक् कार्य होंगे : (क) ऐसे कार्य जिनके अन्तर्गत परिषद् का उत्तरदायित्व सलाह देना होगा, उदाहरणतः निम्न विषयों में—(१) स्थायी आदेशों का प्रशासन, (२) उनमें संशोधन, (३) उत्पादन की नई प्रणालियों को लागू करना जिनसे कर्मचारियों को पुनः रोजगार पर लगाया जा सके, तथा (४) कुछ प्रक्रियाओं में कमी कर देना, उन्हें कुछ समय के लिये रोक देना अथवा उन्हें पूर्णतः बन्द कर देना आदि। (ख) ऐसे कार्य जिनके अन्तर्गत परिषदों को सूचनाओं को प्राप्त करने का अधिकार होगा, उदाहरणतः निम्न विषयों में—(१) संस्थान की सामान्य चालू रहने की योग्यता, (२) बाजार की दशा, उत्पादन तथा बिक्री कार्यक्रम, (३) संस्थान में संगठन तथा सामान्य संचालन, (४) उत्पादन और कार्य की प्रणालियाँ, (५) विस्तार तथा इसी प्रकार के कार्यक्रमों की योजना आदि, तथा (ग) ऐसे कार्य जिनके

अन्तर्गत परिषद का दायित्व प्रशासनात्मक होगा, उदाहरणतः निम्न विषयों में—(१) कल्याण कार्य, (२) सुरक्षा कार्यक्रम, (३) व्यावसायिक प्रशिक्षण और शिक्षार्थी योजनायें, (४) कार्य सूची को तैयार करना, तथा (५) पारितोषिकों का देना आदि।

इस प्रकार मज्दूरी, बोनस, कार्य की सामान्य दशायें, आदि के प्रश्नों पर मालिकों और श्रमिक सघो के बीच वार्ता के लिये काफी क्षेत्र छोड दिया गया है। निजी शिकायतों को भी सयुक्त परिषदों के क्षेत्र मे सम्मिलित नही किया गया है क्योंकि यह सम्भव है कि ऐसी शिकायतों के कारण श्रमिकों व प्रबन्धकर्त्ताओं के बीच सहयोग के वातावरण पर बुरा असर पडे।

इसके पश्चात् ५० इकाइयों ने इन निर्णयों को लागू करने तथा सयुक्त प्रबन्ध परिषदों को स्थापित करने के प्रयत्न किये गये। चार सस्थान—अर्थात्, टाटा लोहा व इस्पात कम्पनी, जमशेदपुर, सिम्पसन्स ग्रुप ऑफ इण्डस्ट्रीज, मद्रास; मोदी बुनाई और कताई मिल्स लि० मोदीनगर, (उ० प्र०), तथा राजकीय परिवहन, मद्रास—अपने श्रमिकों को प्रबन्ध कार्य मे भाग देने के लिये पहले से ही सहमति प्रदान कर चुके थे। तीन सस्थानों में विभागीय उत्पादन समितियों की भी स्थापना की जा चुकी थी, अर्थात् (१) टाटा लोहा व इस्पात क०, (२) मोदी बुनाई व कताई मिल्स, तथा (३) इण्डियन एल्यूमिनियम वर्क्स लिमिटिड बेलूर, पश्चिमी बगाल। टाटा लोहा व इस्पात कम्पनी, जमशेदपुर तथा इण्डियन एल्यूमिनियम वर्क्स, बेलूर पश्चिमी बगाल मे योजना के विषय में त्रिदलीय दलों द्वारा दो अध्ययनों की रिपोर्ट भी प्रकाशित की जा चुकी है। श्रमिकों के प्रबन्ध मे भाग लेने के विषय मे इन दो सस्थानों मे जो प्रगति हुई है उसका उल्लेख इन रिपोर्टों मे किया गया है।

सितम्बर १९५९ मे केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित एक ज्ञापिका मे कहा गया कि श्रमिकों के प्रबन्ध मे भाग लेने के सम्बन्ध मे जो भी प्रगति हुई वह निराशाजनक थी। मार्च १९६० मे श्री गुलजारी लाल नन्दा ने भी कहा कि वह इस योजना की प्रगति से सन्तुष्ट नही थे। मार्च १९६० तक ५० मे से केवल २३ इकाइयों ने योजना को लागू किया था जिनमे से १५ तो सरकारी क्षेत्र मे थी तथा ८ निजी क्षेत्र मे। योजना को लागू करने वाली इकाइयों ने न तो सयुक्त परिषदों की कार्यवाहियों के विषय मे कोई ठोस सूचनायें प्रदान की है और न ही ऐसे विशेषज्ञों की नामिका से परामर्श किया है जिसको श्रम मन्त्रालय ने इन परिषदों को सहायता देने के लिये नियुक्त किया है। इस मन्द प्रगति का कारण दोनों पक्षों मे सन्देह और भय की भावना है। श्रमिक सघो मे पारस्परिक प्रतिस्पर्धा है तथा श्रमिक सघ सगठन मे अनेक दोष हैं, जिनका उल्लेख भारतीय श्रमिक सघ आन्दोलन के अध्याय मे किया जा चुका है। श्रमिकों के प्रबन्ध मे भाग लेने की योजना उस समय तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि शक्तिशाली व सुदृढ श्रमिक सघ न हो जो इस योजना के प्रति सहयोग का दृष्टिकोण अपनाने को

तैयार हों। अधिकतर श्रमिक अशिक्षित होते हैं तथा प्रबन्ध में भाग लेने के विषय पर उनके विचार अस्पष्ट होते हैं। आधुनिक औद्योगिक संस्थानों में प्रबन्ध के लिये तकनीकी, प्रशासनात्मक तथा वित्तीय क्षेत्रों मे कुशल ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है जिसका इस समय श्रमिकों में अभाव है। यदि संयुक्त प्रबन्ध परिषदों में बाहरी व्यक्ति श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करते हैं तब स्थिति और भी बुरी होगी क्योंकि बाहरी व्यक्ति श्रमिक संघवाद और औद्योगिक सम्बन्धो को तो समझ सकता है परन्तु वह प्रबन्ध तथा उद्योग की समस्याओं को नहीं समझ सकता। इनको तो कारखाने या संस्थान के अन्दर कार्य करने वाला श्रमिक ही समझ सकता है। मालिकों को भी श्रमिकों में पूर्ण विश्वास नही होता और वह उन्हे व्यापार के ऐसे भेद भी नहीं बताते जिनको ज्ञात किये बिना श्रमिक प्रबन्ध में प्रभावात्मक रूप मे भाग नहीं ले सकते। बहुत से मालिक अपने अधिकारों और प्राधिकारों को छोड़ने के लिये तैयार नहीं है और जहाँ कहीं भी यह योजनायें अपनाई गई हैं वह इस कारण नहीं कि मालिकों को उनमे कोई विशेष रुचि है वरन् कई स्थानों पर श्रमिकों को केवल बहकाने के लिये यह योजनायें लागू की गई है। कई श्रमिक संघों को इस बात का भी डर है कि यदि श्रमिकों ने इस सम्बन्ध में प्रबन्धकों को सहायता दी तो वह वर्ग-संघर्ष की विचारधारा को समाप्त कर देंगे, जिस विचारधारा में कई श्रमिक संघ अपना विश्वास रखते हैं। निदेशक मण्डल में भी श्रमिकों के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर कई बार विचार-विमर्श हुआ है। परन्तु इस प्रकार का प्रतिनिधित्व सहायक सिद्ध नहीं होगा। साधारणतः निदेशक मण्डल ऐसे प्रश्नों पर विचार करता है जिसमें श्रमिकों के प्रतिनिधियों को कोई विशेष रुचि नहीं होती और वह बैठकों में खामोश देखने वालो की भाँति बैठे रहते हैं। इस बात की भी शिकायत मिली है कि जिन संस्थानों मे यह योजना लागू की गई है वहाँ संयुक्त परिषदों में मालिकों का ही बोलबाला रहा है तथा इस योजना के कारण श्रमिक अपनी शिकायतों को सरकार द्वारा की गई औद्योगिक शान्ति की व्यवस्था के सम्मुख भी नहीं ले जा पाये है।

श्री वी० वी० गिरी का कथन है कि यदि अपरिपक्व अवस्था मे श्रमिकों को प्रबन्ध में सम्मिलित किया जायेगा तब "या तो प्रबन्धकों द्वारा उन्हें प्रभावपूर्ण रूप से चुप कर दिया जायेगा या यदि श्रमिक कठोर प्रवृत्ति के हैं तो प्रबन्धकों के प्रति उनका रवैया बाधा पहुँचाने वाला और उग्र प्रवृत्ति का होगा, चाहे उनके इरादे कितने ही अच्छे क्यों न हों।" इनमें से कोई भी स्थिति श्रम प्रबन्ध के हित में नहीं होगी और उत्पादन पर भी अच्छा प्रभाव नहीं डालेगी। अतः श्री गिरी का कहना है कि आवश्यकता तो इस बात की है कि श्रमिकों की समस्याओं पर प्रजातन्त्रात्मक तथा मानवीय रूप से विचार किया जाये।

श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने की योजना पर विचार के लिए बनाए गए अध्ययन दल ने दूसरे देशों में योजना के संचालन का भी थोड़ा सा उल्लेख किया है। श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने की व्यवस्था प्रत्येक देश में भिन्न-भिन्न है।

ग्रेट ब्रिटेन और स्वीडन में श्रमिकों का प्रबन्ध में भाग संयुक्त संस्थाओं के द्वारा होता है। इन संस्थाओं का परामर्शदात्री स्तर होता है और यह पारस्परिक समझौते द्वारा स्थापित की जाती हैं जिनके पीछे कोई कानूनी बन्धन नहीं होता। ग्रेट ब्रिटेन में सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों में संयुक्त परामर्शदात्री संस्थायें स्थापित की गई हैं (देखिए अध्याय ८)। परन्तु वहाँ श्रमिकों में इस सम्बन्ध से कोई विशेष उत्साह नहीं है क्योंकि वहाँ श्रमिकों में उद्योग में भाग लेने की सक्रिय भावना नहीं पाई जाती। स्वीडन में संयुक्त उद्यम परिषदें हैं। उनको तुलन पत्र, लाभ तथा हानि के लेखे व प्रशासन और लेखा परीक्षकों की रिपोर्टों की जाँच करने का अधिकार है। बेल्जियम, फ्रांस और जर्मनी में प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने की योजना को वैधानिक मान्यता प्राप्त है। फ्रांस और जर्मनी में तो श्रमिकों का प्रतिनिधित्व प्रबन्धक मण्डल में भी होता है। बेल्जियम में संयुक्त कार्य परिषदों तथा फ्रांस में मालिक मजदूर समितियों की स्थापना की गई है। जर्मनी में मालिक मजदूर परिषदें हैं। दूसरी ओर युगोस्लेविया है जहाँ निर्वाचित परिषद् तथा प्रबन्ध मण्डल के माध्यम से संस्थानों का स्वयं श्रमिकों द्वारा संचालन किया जाता है। १९५० में युगोस्लाविया विधानमण्डल द्वारा एक नियम पारित किया गया (Basic Law on Managements of State Economic Enterprises and Higher Economic Association by the Workers' Collectives), जिसके अन्तर्गत कारखाना, खान, रेलवे तथा अन्य सभी व्यवसायों में प्रबन्ध को श्रमिक परिषदों को सौंप दिया गया है। अब केवल यह परिषदें ही उद्योगों की प्रबन्धक हैं।

इस सम्बन्ध में विभिन्न देशों में अनेक अन्य विषयों में भी भिन्नता पाई जाती है जैसे प्रबन्ध में भाग लेने वाली व्यवस्था द्वारा किन-किन मामलों पर विचार किया जाय, इन मामलों पर किस सीमा तक उनका अधिकार हो तथा किस प्रकार श्रमिकों के प्रतिनिधियों को चुना जाय, आदि। उदाहरणतः फ्रांस में मालिक-मजदूर समितियों के कार्य ग्रेट-ब्रिटेन की तरह यद्यपि साधारणतः परामर्शदात्री ही हैं तथापि कल्याण योजनाओं का प्रशासन भी साधारणतः इन्हीं के द्वारा किया जाता है। श्रमिकों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन अक्सर सभी श्रमिकों द्वारा गुप्त मतदान से किया जाता है परन्तु कुछ देशों में निर्वाचन श्रमिक संघों द्वारा बनाई हुई उम्मीदवारों की सूची तक ही सीमित होता है। श्रमिक संघों द्वारा मनोनीत किये जाने के उदाहरण भी मिलते हैं। श्री गुलजारी लाल नन्दा का कहना है कि कुछ यूरोपियन देशों में श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने की योजना के संचालन का उन्होंने जो अध्ययन किया है उसमें दो मुख्य निष्कर्ष निकलते हैं। प्रथम तो यह है कि प्रबन्धकर्ताओं और श्रमिकों के बीच परामर्श यद्यपि कई प्रकार से होता है, तथापि उनकी सफलता के लिये जो एक महत्वपूर्ण तथ्य है वह यह है कि परामर्श उनकी आन्तरिक प्रवृत्ति है। दूसरे, इस ओर कभी प्रयत्न नहीं किया जाता कि संयुक्त परामर्श व्यवस्था की स्थापना द्वारा श्रमिक संघों की अवहेलना की जाये।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि हम दूसरे देशों के अनुभवों से लाभ उठा सकते हैं परन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि हमारे देश की परिस्थितियाँ दूसरे देशों से भिन्न है। अतः हमें ऐसी योजना बनानी चाहिये जो हमारी परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप हो। श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने के विषय पर चहुँ ओर ध्यान आकर्षित हुआ है। इस समस्या पर विभिन्न स्तरों पर विचार-विमर्श किया जा रहा है। आगरा में ३१ दिसम्बर १६५८ से २ जनवरी १६५६ तक जो द्वितीय अखिल भारतीय श्रम अर्थशास्त्र सम्मेलन हुआ था, उसमें भी इस विषय पर विचार किया गया था। सम्मेलन की अध्यक्षता श्री वी० वी० गिरि ने की थी। केन्द्रीय रोजगार व श्रम मन्त्रालय के संयुक्त सचिव, श्री के० एन० सुब्रामनियम श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने वाले विषय के अनुभाग के प्रधान थे। जहाँ तक 'भाग लेने' के ठीक-ठीक अर्थ का सम्बन्ध है, यह मत व्यक्त किया गया था कि 'भाग लेने' की कोई अनन्य और निश्चित व्याख्या नहीं की जानी चाहिये परन्तु ऐसी व्याख्या नम्य होनी चाहिये। योजना लागू होने की प्रारम्भिक अवस्था में इसका अर्थ केवल परामर्श हो सकता है परन्तु इसके पश्चात् इसको धीरे-धीरे श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने की उच्चतम सीमा तक पहुँचाया जा सकता है तथा संयुक्त प्रबन्ध परिषदों को अनेक काम सौंपे जा सकते हैं। संयुक्त परिषदों में बाह्य व्यक्तियों, फोरमेन तथा पर्यवेक्षकों की सदस्यता के प्रश्न पर तथा ऐच्छिक आधार पर योजना के लागू करने के प्रश्न पर कुछ मतभेद था। अन्य मामलों में सम्मेलन के सदस्य अध्ययन दल की तथा उप-समिति की सिफारिशों से लगभग सहमत थे। प्रधान ने अन्त में यह कहा कि इस योजना को पूर्ण सहयोग और सोच-विचार करके तथा उचित प्रकार से लागू करके हमें इसके परिणामों को देखना चाहिये। हमें यह आशा नहीं करनी चाहिये और न ही यह उद्देश्य होना चाहिये कि योजना के परिणाम कोई बहुत बड़े निकलेंगे। यदि इस योजना में सफलता प्राप्त करनी है तो हमें इसको धीरे-धीरे चलाना चाहिए और अगला कदम उठाने से पूर्व पहले कदम को ठीक प्रकार से समायोजित कर लेना चाहिए। श्री वी० वी० गिरी ने इस बात पर भी जोर दिया कि श्रमिकों का प्रबन्ध में भाग लेना वास्तविक अर्थों में सार्थक तब ही सिद्ध होगा जब श्रमिक और प्रबन्धक दोनों में यह भावना आ जाए कि उन्हें कन्धे से कन्धा मिला कर कार्य करना है और अपने-अपने उत्तर-दायित्वों को ठीक-ठीक समझना है। दोनों पक्षों को यह समझना चाहिए कि वह एक ऐसी औद्योगिक प्रणाली में सहभागी है, जो समाज की आवश्यक वस्तुयें प्रदान करती है और इसलिये जनता के हितों की रक्षा करना उनका मुख्य कार्य है।

संयुक्त प्रबन्ध परिषदों के कार्यों से जो अनुभव प्राप्त हुआ है उससे विदित होता है कि प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने के विचार की अधिक से अधिक सराहना की जा रही है। परन्तु इस प्रकार की नई योजना के सम्बन्ध में यह अवश्यम्भावी है कि आरम्भ की कुछ कठिनाइयों को दूर करने में तथा आवश्यक प्रारम्भिक

बातो को पूरा करने मे समय का व्यवधान पड जाये। इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि इस प्रश्न पर व्यापक रूप से फिर से विचार किया जाये तथा इस योजना को विस्तृत रूप से कार्यान्वित करने मे जो कठिनाइयां आ रही है उन्हें दूर करने के लिये उपाय सोचे जायें। प्रबन्ध मे श्रमिको के भाग पर द्वितीय सेमिनार ८ व ६ मार्च १९६० मे हुआ जिसम सारी स्थिति पर पुनरावलोकन किया गया।

इस सेमिनार मे जिन्होने भाग लिया उन्होने सयुक्त प्रबन्ध परिपदो के कार्य के बारे मे परस्पर अपने अनुभव बताये तथा उन कठिनाइयो का उल्लेख किया जो योजना के प्रारम्भिक चरणो मे उनके सामने आई और यह बताया कि उन कठिनाइयो को दूर करने के लिये क्या पग उठाये गये थे। इस योजना के तीव्र गति से विस्तार करने के लिये सेमिनार के मुख्य सुझाव निम्नलिखित थे—(१) केन्द्र मे योजना की प्रगति के लिये जो व्यवस्था है उसे और दृढ किया जाये और इस प्रकार की व्यवस्था राज्यो मे भी की जाये, (२) विभिन्न सस्थानो मे सयुक्त प्रबन्ध परिषदो के कार्यों के बारे मे सूचना एकत्रित करने तथा उसके प्रसार के लिये उपयुक्त व्यवस्था की जाय, (३) केन्द्र मे एक त्रिदलीय समिति की स्थापना की जानी चाहिये जिससे समय समय पर इस योजना की प्रगति का पुनरावलोकन किया जा सके और परिषदो के मार्ग मे आने वाली कठिनाइयो का पता लग सके तथा उन्हे दूर करने के उपायो का सुझाव दिया जा सके।

केन्द्रीय सरकार ने प्रबन्ध मे श्रमिको के भाग लेने की योजना की प्रगति और विस्तार के लिये तथा योजना स सम्बन्धित सब बातो की देखभाल के लिये एक विशेष इकाई की स्थापना व श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय के अन्तर्गत एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की है। मालिको और श्रमिको के केन्द्रीय सगठनो से यह प्रार्थना की गई है कि वह ऐसी उपयुक्त तथा अपने से सम्बद्ध इकाइयो के नामो का सुझाव दें जहाँ सयुक्त प्रबन्ध परिषदें बनाई जा सकती हैं। ऐसी इकाइयों के चुनने मे जहाँ यह योजना लागू हो सकती है राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् की भी सहायता ली गई है। राज्य सरकारो से भी इस योजना के लागू करने और विस्तार करने से सम्बन्धित बातो की देखभाल के लिये उपयुक्त व्यवस्था करने के लिये कहा गया है। गुजरात और जम्मू तथा कश्मीर को छोडकर अब सभी राज्यो मे ऐसी व्यवस्था कर दी गई है कि सयुक्त प्रबन्ध परिषदो की वृद्धि की जा सके और योजना के कार्य की समीक्षा की जा सके। यह भी प्रस्ताव किया गया है कि सरकारी क्षत्र के उद्यमो मे योजना को तेजी से लागू किया जाये। सेमिनार मे की गई सिफारिश के अनुसार १९६१ मे प्रबन्ध मे श्रमिको के भाग से सम्बन्धित एक त्रिदलीय समिति की भी स्थापना की जा चुकी है। इसका उद्देश्य यह है कि सयुक्त प्रबन्ध परिषदों को योजना से सम्बन्धित सभी बातो पर सलाह दे और मार्ग प्रदर्शन करे तथा उनसे सम्बन्धित सूचना को एकत्रित करने और प्रसार करने की व्यवस्था

सम्भावनाओं की खोज करे। इस समिति की पहली सभा पहली मई १९६१ को हुई। इसमें यह निश्चय किया गया कि श्रमिकों के शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम को तीव्र गति से लागू करना चाहिये ताकि श्रमिक अधिक उत्तरदायित्वों का बोझ उठाने के योग्य हो सकें। प्रबन्धकों को सयुक्त प्रबन्ध परिषदों के कार्यों से अवगत कराने के लिये सेमिनार भी आयोजित किये जाने चाहियें। १९६५ में इस समिति का पुनर्गठन किया गया और पुनर्गठित समिति की पहली मीटिंग मे, जुलाई १९६५ मे, यह सिफारिश की गई कि योजना के और अधिक व्यापक प्रचार, स्वीकृति एवं क्रियान्वयन के लिये कुछ विशेष पग उठाये जाने चाहियें।

१५ जनवरी १९६२ में विभिन्न मन्त्रालयों की एक समिति की बैठक हुई, जिसमें इस योजना की सरकारी क्षेत्र में प्रगति के ऊपर विचार किया गया। इस समिति की सिफारिशों के परिणामस्वरूप श्रमिक शिक्षा के केन्द्रीय बोर्ड ने दो सेमिनार (गोष्ठी) आयोजित किये जिनमे से एक मार्च १९६२ में कलकत्ते में किया गया तथा दूसरा जून १९६२ में बम्बई में हुआ। इन सेमिनारों का मुख्य उद्देश्य यह था कि मालिकों और श्रमिकों को सयुक्त प्रबन्ध परिषदो की तकनीक तथा सिद्धान्त से अवगत कराया जाये। सेमिनार मे भाग लेने वालो ने अनेक बातो पर बल दिया जिनमें से मुख्यतः यह कि प्रबन्धको और श्रमिको मे गहन सम्पर्क होना चाहिये तथा सयुक्त परामर्श जहाँ तक हो सकता है, इसकी महत्ता श्रमिको व प्रबन्धको दोनों को उचित प्रकार से समझानी चाहिये। सन् १९६५ मे निजी क्षेत्र मे एक उद्यम के प्रबन्धको ने भी प्रबन्ध मे श्रमिकों के भाग पर एक सेमिनार का आयोजन किया। श्रमिको की शिक्षा से सम्बन्धित केन्द्रीय बोर्ड ने फिर दो क्षेत्रीय सेमिनारों का आयोजन किया—एक तो जून १९६६ मे जलपाईगुडी मे और दूसरी सितम्बर १९६६ में चण्डीगढ मे। इन सेमिनारो का उद्देश्य मालिको एवं श्रमिको को सयुक्त प्रबन्ध परिषदो की विचारधारा एवं क्रियाविधि से परिचित कराना था।

स्वतन्त्र श्रमिक सघो के अन्तर्राष्ट्रीय संगम के द्वारा स्थापित एशियाई श्रमिक सघ कॉलिज द्वारा १४ अप्रैल १९६३ से २३ अप्रैल १९६३ तक नई देहली में श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने पर एक एशियाई गोष्ठी आयोजित की गई। इस गोष्ठी मे ११ एशियाई देशो के, जिनमे भारत भी था, ३१ व्यक्तियों ने भाग लिया। श्री गुलजारीलाल नन्दा ने इस गोष्ठी का उद्घाटन करते हुये कहा कि श्रमिकों के प्रबन्ध मे भाग लेने के अभियान पर विशेष बल दिया जाना चाहिये ताकि ससक्ति (Cohesive) सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक व्यवस्था स्थापित हो सके। श्री नन्दा ने कहा कि केवल एक या दो श्रमिको का ही प्रबन्ध मे भाग लेना काफी नही है, अधिक से अधिक श्रमिकों को इसमे भाग लेना चाहिये ताकि श्रमिक अपना सघवाद का सिद्धान्त भी बनाये रखे। योजना को सफलतापूर्वक लागू करने मे दो मुख्य बाधायें यह थी कि मालिकों में अन्तर्जातीय रूढिवाद पाया जाता था तथा अच्छे औद्योगिक सम्बन्धो का अभाव था। जो लोग भी निजी क्षेत्र

मे कार्य करते हैं उन्हे अपने विचारो को बदलना होगा तथा प्रजातान्त्रिक समाजवाद के नये तथा बढते हुये विचार मे अपने आपको ढालना होगा। इनमे से अनेक ने अपने विचारो को अन्य देशो से लिया है। परन्तु भारत की परिस्थितियो को देखते हुये दूसरे देशो की विचारधारा भारत मे लागू नही हो सकती। सेमिनार मे इस बात पर बल दिया गया कि योजना को सफलतापूर्वक चलाने के लिये यह आवश्यक है कि श्रमिको मे शिक्षा का उचित स्तर हो, वे श्रमिक सघवाद की ओर अधिक सचेत हो, श्रमिको और प्रबन्ध कर्मचारियो को उचित प्रशिक्षण मिला हो तथा उनमे योजना के प्रति उचित दृष्टिकोण हो। १९६७–६८ के अन्त तक १३१ सयुक्त प्रबन्ध परिषदें स्थापित हो चुकी थी। इनमे से ४६ सरकारी क्षेत्र मे और ८५ निजी क्षेत्र मे थी जबकि १९६६–६७ मे १४७ मे से ४७ सरकारी क्षेत्र मे और १०० निजी क्षेत्र मे थी। विभिन्न वर्षों मे इन परिषदो की सख्या इस प्रकार थी—१९५८—२३, १९५९—२२, १९६०—२८, १९६१—२०, १९६२—३४, १९६३—५३, १९६४—८०, १९६५—९७, १९६६—१४७ और १९६७—१३१। अनेक परिषदें विभिन्न इकाइयो मे चालू करने के पश्चात् अनेक कठिनाइयो के कारण समाप्त कर दी गई थी। स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया ने भी अपने अनेक स्थानीय प्रधान कार्यालयो मे सात मण्डलीय सलाहकार समितियाँ और एक केन्द्रीय सलाहकार समिति की स्थापना की है।

सयुक्त प्रबन्ध परिषदो के कार्य का मूल्याकन करने के लिये १९६१–६२ मे २३ इकाइयो मे तथा १९६२–६३ मे ७ इकाइयो मे अध्ययन किये गये। ३० इकाइयो के मूल्याकन अध्ययन प्रकाशित भी किये जा रहे हैं। सन् १९६५ मे २१ उद्यमो मे सयुक्त प्रबन्ध परिषदो के कार्य का नवीन रूप मे मूल्याकन किया गया था। मूल्याकन के इन अध्ययनो पर आधारित रिपोर्ट तैयार कर ली गई थी। इन अध्ययनो से यह ज्ञात होता है कि अधिकाश इकाइयो मे सयुक्त प्रबन्ध परिषदो ने सफलतापूर्वक कार्य किया है तथा इनके कारण औद्योगिक सम्बन्ध अच्छे हुये हैं, श्रमिक अधिक स्थायी हो गये हैं, उत्पादकता मे वृद्धि हुई है अपव्यय कम हुआ है, लाभ अधिक हुये है तथा प्रबन्धको व श्रमिको मे परस्पर मैत्री-भाव बढा है तथा एक दूसरे के दृष्टिकोण को भी अधिक समझने लगे हैं। परन्तु विश्वविद्यालयो के कुछ रिसर्च स्कालर्स के अध्ययनो से ज्ञात होता है कि सयुक्त प्रबन्ध परिषदो द्वारा कोई विशेष सफलतापूर्वक कार्य नही हुआ है जिसका कारण यह है कि मालिको व श्रमिको मे परस्पर अविश्वास की भावना फैली हुई है और विभिन्न श्रमिक सघो मे आपस म द्वेष है। इन बातो से यह विदित होता है कि इस योजना के सम्बन्ध मे एक व्यापक तथा निष्पक्ष अध्ययन की आवश्यकता है। इसमे सन्देह नही है कि योजना की सफलता मे जो भी रुकावटें आती है उन्हे दूर करने के लिये निश्छल प्रयत्न करन चाहियें। तृतीय पचवर्षीय आयोजना मे यह सुझाव है कि सयुक्त प्रबन्ध परिषदो का नये उद्योगो व नई इकाइयो मे विस्तार किया जाना चाहिये तथा यह परिषदें वर्तमान औद्योगिक प्रणाली का एक सामान्य अग बन

जाना चाहिये। आयोजना के अनुसार श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने की योजना बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसके विकास से निजी क्षेत्र एक समाजवादी व्यवस्था के ढाँचे में अपने आपको सरलतापूर्वक ढाल सकेगा।

औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव [नवम्बर १९६२]
[Industrial Truce Resolution (Nov. 1962)]

(अध्याय ७ देखिये)

अक्तूबर १९६२ में चीन के आक्रमण के पश्चात् राष्ट्रीय सुरक्षा तथा उत्पादन बढ़ाने का कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया। देश के सभी लोगों ने एकमत होकर देश की रक्षा के लिये संकल्प किये। श्रमिक तथा मालिक भी राष्ट्रीय संकट काल में पीछे नहीं रहे। मालिकों व श्रमिकों के केन्द्रीय संगठनों की ३ नवम्बर १९६२ में केन्द्रीय श्रम व रोजगार मन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा की अध्यक्षता में नई देहली में एक बैठक हुई। बैठक का आयोजन इसलिये किया गया था ताकि देश के प्रतिरक्षा-प्रयत्नों में वृद्धि करने के लिये अधिक से अधिक उत्पादन किया जावे। इस बैठक में एक व्यापक औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव स्वीकार किया गया। इस प्रस्ताव में औद्योगिक शान्ति, उत्पादन-वृद्धि, मूल्य-स्थिरता तथा बचतों की वृद्धि के सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। औद्योगिक शांति प्रस्ताव के उस भाग को लागू करने के सम्बन्ध में, जिसमें कि उत्पादन-वृद्धि के उपायों का उल्लेख किया गया है, सरकार को परामर्श देने के लिये छः सदस्यों की एक समिति भी बनाई गई थी।

यह विराम-सन्धि प्रस्ताव ५ भागों में विभाजित है। आरम्भ में इस बात का संकल्प किया गया है कि देश की सुरक्षा के प्रयत्नों में तथा अधिक से अधिक उत्पादन बढ़ाने में पूर्ण रूप से प्रयत्न किये जायेंगे। प्रस्ताव में मालिक और श्रमिक दोनों के द्वारा ही इस बात का संकल्प है कि उपरोक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिये उपयुक्त वातावरण बनाया जायेगा तथा उसे कायम रखा जायेगा। देश की सुरक्षा के लिये दोनों पक्ष संयम और सहिष्णुता बरतेंगे। दूसरे, प्रस्ताव में औद्योगिक शान्ति बनाये रखने के लिये संकल्प है ताकि उत्पादन में कोई बाधा न हो। दोनों पक्ष समान रूप से त्याग करेंगे, विवादों का पंच फैसले से निपटारा करेंगे, सार्वजनिक उपयोग सेवाओं की संख्या में वृद्धि होगी, बर्खास्तगी, अलहदगी, अत्याचार आदि की शिकायतें कम की जायेंगी तथा सरकारी औद्योगिक विवादों के निपटारे की व्यवस्था का पूर्ण रूप से उपयोग होगा। तीसरे, प्रस्ताव में उत्पादन बढ़ाने पर बल दिया गया है। मनुष्य, मशीनरी तथा सामान के उपयोग में सभी बाधाओं को दूर किया जायेगा, अधिक पारियों में कार्य किया जायेगा, अनुपस्थिति व श्रमिकावर्त को कम किया जायेगा, तकनीकी कर्मचारियों से पूरा लाभ उठाया जायेगा तथा मजदूर और श्रमिकों के कल्याण तथा स्वास्थ्य के कार्यों की उपेक्षा नहीं की जायेगी। चौथे, प्रस्ताव में कहा गया है कि इन बातों के प्रत्येक सम्भव

प्रयत्न किये जायेंगे कि कीमतें न बढ़ें, आवश्यक वस्तुयें उचित कीमतों पर मिलती रहे और उपभोक्ता सहकारी समितियाँ बनाई जायें। पाँचवें, प्रस्ताव में बचत की आवश्यकता पर बल दिया गया है ताकि सम्बन्धित पक्ष राष्ट्रीय सुरक्षा निधि तथा सुरक्षा बाण्डों में अधिक से अधिक अंशदान दे सकें।

औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव विस्तृत रूप से निम्नलिखित है—

"यह अनुभव करते हुये कि चीनी आक्रमण के कारण राष्ट्र पर भयानक संकट आ गया है तथा देश की रक्षा-व्यवस्था को समुचित रूप से तैयार करने और अपने क्षेत्र पर हुये आक्रमण को खत्म करने के लिये सभी दिशाओं में तुरन्त कदम उठाये जाने की जरूरत उठ खड़ी हुई है आज ३ नवम्बर १९६२ को नई दिल्ली में हुई केन्द्रीय मालिक और मजदूर संगठनों की यह संयुक्त बैठक यह प्रस्ताव स्वीकार करती है कि उत्पादन अधिकतम करने के लिये कोई भी प्रयत्न बाकी न छोड़ा जायेगा और देश के रक्षा-प्रयत्नों को बढ़ाने के लिये प्रबन्धक वर्ग और मजदूर वर्ग, दोनों मिलकर भरपूर मेहनत करेंगे और यह बैठक राष्ट्र के प्रति उनकी असीम निष्ठा और आस्था के प्रण की पुष्टि करती है।" इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये निम्नलिखित कदम उठाये जायेंगे—

१ वातावरण

उपर्युक्त उद्देश्य प्राप्त करने के लिये निरन्तर प्रयत्न और दृढ़ कार्यवाही के लिये उपयुक्त वातावरण बनाना और उसे कायम रखना बहुत जरूरी है। दोनों पक्षों को संयम और सहिष्णुता बरतनी चाहिये ताकि देश की रक्षा-व्यवस्था को मजबूत बनाने के संगठित प्रयत्नों में कोई बाधा न आये। प्रबन्धक वर्ग और मजदूर वर्ग में हर सम्भव तरीक़े से परस्पर रचनात्मक सहयोग बढ़ाने के लिये कारगर कदम उठाये जाने चाहिये।

२ औद्योगिक शान्ति

(क) किसी भी हालत में माल के उत्पादन और सेवाओं में न ही कोई बाधा पड़ेगी और न गति धीमी की जायेगी।

(ख) मालिक और मजदूर, दोनों अपने आर्थिक हितों के मामले में स्वेच्छा से संयम अपनायेंगे और राष्ट्र के हित तथा उसके रक्षा-प्रयत्नों को ध्यान में रखते हुये बराबर ढंग से अधिकतम त्याग करना मंजूर करते है।

(ग) झगड़ों का ऐच्छिक विवाचन से निपटारा करने का तरीका अधिक से अधिक अपनाया जायगा। इस कार्य के आवश्यक पर्याप्त इन्तजाम किये जाने चाहिये। यदि किसी मामले को विवाचन निर्णय के लिये सौंपने की जरूरत उठ ही जाय तो उससे सम्बन्धित कार्यविधि जल्दी से जल्दी पूरी की जानी चाहिये।

(घ) औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७ की पहली अनुसूची में उल्लिखित उद्योग और ऐसे अन्य उद्योग जो जरूरी समझे जायें, जैसे—पैट्रोलियम और उसके पदार्थ, रसायन पदार्थ आदि, उक्त अधिनियम के अनुभाग २ के अनुच्छेद (एन)

के उप-अनुच्छेद (४) के अन्तर्गत सार्वजनिक उपयोग की सेवायें घोषित किया जा सकता है।

(ङ) व्यक्तिगत मजदूरों को बर्खास्त करने, काम से हटाने, उन्हें सताने या उनकी छंटनी से सम्बन्धित सभी शिकायतों का निपटारा आपस में पच फैसले से किया जाना चाहिए। इस काम के लिये सुलह-सफाई कराने वाली व्यवस्था के अधिकारियों को, यदि सम्बन्धित पक्ष राजी हों तो, पच बनाया जा सकता है। जहाँ तक सम्भव हो सके मजदूरों को बरखास्त करने या काम से हटाने के कदम नहीं उठाये जाने चाहियें।

(च) केन्द्र और राज्यो के श्रम-प्रशासनों को इस तरह व्यवस्थित किया जाना चाहिये कि शिकायतों और विवादों का निपटारा जल्दी हो और मालिक-मजदूरों के बीच सम्बन्ध अच्छे बने रहें।

३. उत्पादन

(क) मनुष्य, मशीनरी और सामग्री के बेहतर और पूर्णतर उपयोग के मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को दूर किया जाना चाहिये। कोई भी मशीन अपनी निश्चित क्षमता से कम काम न करे और न ही किसी प्रकार का अपव्यय हो। प्रबन्धक वर्ग को उनके संचालन में अधिक से अधिक किफायत बरतनी चाहिये।

(ख) उत्पादन को अधिक से अधिक बढाना चाहिये। कारखानों और प्रतिष्ठानों को जहाँ तक सम्भव हो, उपयुक्त पारियों में काम करना चाहिये। निर्धारित समय से ज्यादा काम करना चाहिये और परस्पर सहमति से इतवारों व अन्य छुट्टियों को काम करना चाहिये। इस सम्बन्ध में सभी को पूरा-पूरा सहयोग देना चाहिये। मजदूरों द्वारा अधिक मेहनत करने के फलस्वरूप उद्योग को जो लाभ मिले, वह उपभोक्ताओं को जाना चाहिये और/अथवा रक्षा-प्रयत्नों के लिये उपलब्ध किया जाना चाहिये।

(ग) अनुपस्थिति और श्रमिकावर्त को निरुत्साहित किया जाना चाहिये और उनको बिलकुल कम कर देना चाहिये। अपने काम की उपेक्षा करने, मशीनों को लापरवाही से चलाने, सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाने और सामान्य काम में गड़बड़ी पैदा करने या बाधा डालने की क्रियाओं की सघों द्वारा निन्दा की जानी चाहिये। इसी तरह यदि प्रबन्धक वर्ग की ओर से कोई लापरवाही और कमी हो, जिससे रक्षा-प्रयत्नों की भावना के अनुरूप काम न होता हो तो उसकी भी निन्दा की जानी चाहिये और उसको तुरन्त ठीक किया जाना चाहिये।

(घ) ऐसे तकनीकी और दक्ष कर्मचारियों को जिनकी पूर्ति कम हो, ऐसे जरूरी कामों पर भेजना चाहिये जिनका रक्षा से सम्बन्ध हो। साथ ही शिक्षुता और अन्य प्रशिक्षण कार्यक्रमों के द्वारा तकनीकी और दक्ष कर्मचारियों की पूर्ति बढ़ाने के लिये उचित कदम उठाये जाने चाहिये।

(ड) उत्पादन बढाने के अभियान के सिलसिले मे मजदूर वर्ग के कल्याण और स्वास्थ्य के काम की उपेक्षा नही होनी चाहिये ।

४ कीमतों की स्थिरता

(क) इस बात का हर सम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिये कि औद्योगिक माल और आवश्यक चीजो की कीमतें बढने न पायें ।

(ख) मजदूर वर्ग को आवश्यक चीजें उचित कीमतो पर मिलती रहे, इसका इन्तजाम करने के लिये जब भी जरूरी हो, हरेक इकाई और औद्योगिक क्षेत्रो मे उपभोक्ता सहकारी समितियाँ बनायी जानी चाहियें ।

५ बचत

(क) मजदूर वर्ग और प्रबन्धक वर्ग, दोनो को ही यह बात अच्छी तरह समझाई जानी चाहिये कि देश के हित मे बचतो को बढाना बहुत जरूरी है और इस तरह के इन्तजाम किये जाने चाहियें, जिससे अधिक से अधिक बचत करने मे सुविधा हो ।

(ख) मजदूरो को यह कहा जा सकता है कि उन्हे राष्ट्रीय रक्षा कोष मे और/या रक्षा बॉण्डो मे हर महीने कम से कम १ दिन की कमाई की रकम देनी या लगानी चाहिये । प्रबन्धक वर्ग भी इस बात से सहमत हैं कि राष्ट्रीय रक्षा कोष मे वे उदारता से धन देंगे और रक्षा बाण्डो मे उदारता से रुपया लगायेंगे । इन दोनो मे रुपया लगाने के आधार क्या होगे, यह सरकार से सलाह-मशवरा करके तय किया जायेगा ।

इस विराम सन्धि प्रस्ताव के पारित होने के पश्चात् औद्योगिक विवादो के कारण हानि हुये कार्य दिवसो की औसत सख्या मे बहुत कमी हो गई । यह औसत सख्या जनवरी से अक्तूबर १९६२ तक ४७ लाख थी । नवम्बर १९६२ मे यह सख्या ७०,००० और दिसम्बर १९६२ मे यह सख्या केवल ११,००० थी । १९६२ मे विवादो के कारण हानि हुए कार्य दिवसो की सख्या ६१ लाख थी । १९६३ मे यह सख्या ३३ लाख रह गई । अनेक स्थानो पर श्रमिको ने छुट्टी के दिनो मे तथा अधिक घण्टो तक भी कार्य किया । कई स्थानो पर विवादो को वापिस ले लिया गया । राष्ट्रीय सुरक्षा कोष मे भी श्रमिको का अशदान उत्साहवर्धक था । प्रस्ताव मे उल्लिखित उत्पादन-वृद्धि सम्बन्धी उपायो को लागू करने के लिये केन्द्र मे एक सकटकालीन उत्पादन समिति श्री एम० एस० थैकर, सदस्य आयोजना आयोग की अध्यक्षता में स्थापित की गई । उत्पादन तथा उत्पादकता मे वृद्धि करने के लिये ऐसी समितियाँ राज्यों तथा कुछ व्यक्तिगत सस्थानो मे भी स्थापित की गईं ।

परन्तु प्रस्ताव को लागू न करने की भी शिकायतें आई है । विभिन्न वर्षो मे प्रस्ताव के उल्लघन के आँकडे अनुशासन सहिता के अन्तर्गत पीछे दिये जा चुके है । यह भी कहा गया कि अनेक स्थानो पर मालिको ने सकटकाल के नाम पर इस प्रस्ताव का अनुचित लाभ उठाया और श्रमिको का शोषण किया । अत प्रस्ताव मे

संशोधन के कुछ सुझाव रखे गये परन्तु जुलाई १६६३ मे भारतीय श्रम सम्मेलन ने अपने अधिवेशन में उन्हें माना नही। सम्मेलन ने सुझाव दिया कि एक त्रिदलीय स्थायी समिति की स्थापना करके प्रस्ताव को लागू करने के मार्ग मे आने वाली सभी कठिनाइयों को दूर कर दिया जाना चाहिये। इस समिति की स्थायी आधार पर स्थापना कर दी गई है ताकि सभी पक्षों द्वारा प्रस्ताव को लागू करने के विषय में आश्वस्त हुआ जा सके और इस सम्बन्ध में आवश्यक पग उठाये जा सके कि प्रस्ताव के अन्तर्गत निहित कर्त्तव्यो को पूरा भी किया जा रहा है या नही। श्री गुलजारी लाल नन्दा समिति के अध्यक्ष नियुक्त किये गये। समिति मे तीन प्रतिनिधि मालिकों के संगठनों के और चार प्रतिनिधि श्रमिकों के थे। समिति के कर्मचारी वर्ग की ३१ जुलाई १६६३ को घोषणा की गई थी। समिति की पहली बैठक ५ अगस्त १६६३ को और दूसरी बैठक २७ दिसम्बर १६६३ को हुई। श्रमिकों के प्रतिनिधियों ने बढ़ती हुई कीमतो की भी शिकायत की जिनके कारण श्रमिकों को भारी कठिनाइयों का सामना करना पड रहा है। अतः यह निश्चय किया गया कि जिस संस्थान में भी ३०० से अधिक श्रमिक है वहाँ उचित कीमत वाली दूकानें स्थापित की जायें। ऐसी दूकाने दो महीने की अवधि मे कम से कम ६५% संस्थानो में स्थापित कर दी जानी चाहिएँ। यह निर्णय किया गया कि उचित मूल्य की दूकानों की वित्तीय व्यवस्था मालिको द्वारा की जायेगी परन्तु उन्हे खाद्यान्न तथा कन्ट्रोल की अन्य वस्तुयें सरकारी थोक भण्डारो से प्राप्त होंगी और ये दूकाने उसी आधार पर कार्य करेंगी जिस प्रकार कि उचित मूल्य की सरकारी दूकानें कार्य करती है। उपभोक्ता सहकारी भण्डार स्थापित करने का भी निर्णय किया गया। जो भी व्यापारी अनुचित लाभ लेते है उनके विरुद्ध भारतीय सुरक्षा नियम के अन्तर्गत कठोर कार्य करने को कहा गया।

बैठक में इस बात पर भी सहमति व्यक्त की गई कि जीवन-निर्वाह सूचकांकों की शुद्धता की जाँच की जाये। अतः यह भी निर्णय किया गया कि प्रमुख औद्योगिक नगरो मे इस बात की जाँच की जाये कि निरीक्षकों द्वारा दिखलाई गई कीमतों मे और श्रमिकों द्वारा जो कीमतें दी जाती है उनमें कोई अन्तर तो नही है। इस बात की भी शिकायत की गई कि निरीक्षक कीमतों का सही अकन नही करते।

प्रस्ताव के लागू होने के फलस्वरूप, अनेक सहकारी भण्डार तथा उचित मूल्य को दूकानें स्थापित की गई (देखिये अध्याय २४ के अन्त में)। औद्योगिक विवादो के कारण हानि हुए कार्य-दिवसों की संख्या में भी प्रारम्भ मे तो कमी हुई। परन्तु प्रतीत होता है कि शीघ्र ही प्रस्ताव के वे वांछनीय प्रस्ताव पढ़ने बन्द हो गये जिनके लिये कि यह लागू किया गया था और विवादों की संख्या तथा हानि हुए कार्य-दिवसो की संख्या में तेजी से वृद्धि हो गई (देखिये अध्याय ७)। इस बात की आवश्यकता है कि औद्योगिक शान्ति बनाये रखने के लिये ऐसा

वातावरण उत्पन्न किया जाये कि मालिक व श्रमिक दोनो ही देश की सुरक्षा के लिये इस प्रस्ताव को गम्भीरता से लागू करें।

श्रम के क्षेत्र मे अनुसन्धान (Research in the Field of Labour)

श्रम क्षेत्र मे कार्य करने के मार्ग मे एक बडी बाधा यह पडती है कि श्रम से सम्बन्धित सूचनाये बहुत अपर्याप्त है। इस बात का अनुभव करते हुए द्वितीय पचवर्षीय आयोजना मे पर्याप्त आँकडे प्राप्त करने के लिए अनेक सर्वेक्षण योजनाओं की मजूरी दी गई थी। द्वितीय आयोजना अवधि मे तीन महत्वपूर्ण निम्नलिखित जाच की गई थी (१) द्वितीय कृषि श्रमिक पूछताछ (देखिए अध्याय २३), (२) मजदूरी गणना (देखिए अध्याय १५), तथा (३) पारिवारिक बजट सम्बन्धी पूछताछ (देखिए अध्याय १७)। आयोजना आयोग की अनुसन्धान कार्यक्रम समिति जो विश्वविद्यालयो और अन्य सस्थानो द्वारा अनुसधान व अन्वेषण कार्यों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती है, श्रम अनुसन्धान के विषय मे भी अधिक रुचि ले रही है और श्रम अनुसधान के लिए इसने एक विशेष उपसमिति भी बनाई है। श्रम से सम्बन्धित ऐसे विषयो पर जिन पर यह समिति अनुसधान अर्थात् अन्वेषण योजनाओ की स्वीकृति देती है, निम्न है (क) कुछ चुनी हुई औद्योगिक इकाइयो मे औद्योगिक सम्बन्धो के विषय मे अध्ययन। (ख) प्रोत्साहन योजनाओ तथा विभिन्न उद्योगो मे मजदूरी भुगतान प्रणालियो का अध्ययन। (ग) विभिन्न उद्योगो मे गैर-मजदूरी लाभ जिनमे श्रम कल्याण भी सम्मिलित है। (घ) किसी उद्योग या क्षेत्र मे मजदूरी का स्वरूप। (ड) औद्योगीकरण, स्वचालितिकरण तथा आधुनिकिकरण से श्रमिको की अभिवृत्ति (Attitude) और उनकी आय पर जो प्रभाव पडा है उसका कुछ विशेष चुने हुये उद्योगो मे मूल्याकन। (च) विशेष क्षेत्रो मे कृषि श्रमिको की मजदूरी तथा रहन-सहन की दशाओ का अध्ययन, तथा (छ) श्रम बाजार का अध्ययन।

श्रम विषयो पर अनुसन्धान कार्यक्रमो का समन्वय करने तथा उनकी प्रगति पर विचार करने के लिये नई देहली मे २२ सितम्बर १९६० को एक श्रम अनुसन्धान सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन की सिफारिशो के परिणामस्वरूप श्रम अनुसन्धान पर एक केन्द्रीय समिति की नियुक्ति की गई है। इस समिति के सदस्य सरकार, मालिको व श्रमिको के सगठनो, श्रम अनुसन्धान विषय मे रुचि लेने वाले विश्वविद्यालयो तथा अन्य सस्थानो के प्रतिनिधि हैं। इस समिति का कार्य यह है कि श्रम अनुसन्धान क्षेत्र मे जो वर्तमान सस्थाये कार्य कर रही है उनका तथा उनके साधनो का सर्वेक्षण करे, तथा विभिन्न सस्थानो मे श्रम अनुसन्धान योजनाओ का नियतन करें ताकि अति-व्यापकता (Over lapping) न हो पाये, श्रम क्षेत्र म अनुसन्धान को बढावा दें, आदि-आदि। जुलाई १९६१ मे इस समिति ने बम्बई म एक केन्द्रीय श्रम अनुसन्धान सस्था स्थापित करने का

निश्चय किया जिसका उद्देश्य यह होगा कि श्रम समस्याओं पर वस्तुनिष्ठ (Objective) तथा निष्पक्ष रूप से सूचनायें प्राप्त हो सकें। इस योजना में वित्तीय सहायता सरकार से प्राप्त होगी तथा दूसरे संस्थानों से भी सहायता प्राप्त हो सकती है। इस प्रायोजना में 'फोर्ड फाउण्डेशन' ने भी अधिक रुचि दिखाई है। इस समिति ने इस बात का भी निश्चय किया है कि विभिन्न संस्थानों में जो अनुसधान हो रहे हैं उनकी सूचना एकत्रित करने के लिये तत्काल पग उठाये जायें।

श्रम अर्थशास्त्र में अनुसन्धान के विषय पर अखिल भारतीय श्रम अर्थशास्त्र परिषद् के चौथे वार्षिक सम्मेलन में, जो दिसम्बर १९६० में चण्डीगढ़ में हुआ, विचार-विमर्श किया गया। इस सम्मेलन में निर्णय के अनुसार १३ से १८ जून १९६१ तक पूना में श्रम अर्थशास्त्र मे अनुसन्धान की पद्धति पर एक सेमिनार आयोजित किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भी जून १९६२ में अपने ४६वें अधिवेशन में 'श्रम क्षेत्र में अनुसंधान' के विषय पर एक प्रस्ताव पारित किया है, जिसमे सदस्य देशों से कहा गया है कि मानव शक्ति और श्रम सम्बन्धी विषयों पर अनुसन्धान पर अधिक बल दिया जाये। श्रम ब्यूरो द्वारा भी अनुसन्धान के क्षेत्र में कुछ सराहनीय कार्य हुये हैं तथा इसने कई प्रायोजनाएँ चलाई हैं जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं: (क) विभिन्न उद्योगों में श्रम दशाओं का अध्ययन। (ख) मजदूरी गणना। (ग) ५० औद्योगिक केन्द्रों में श्रमिक वर्ग पारिवारिक सर्वेक्षण। (घ) श्रम उत्पादकता के अन्तरिम सूचकांक बनाना। (ङ) ग्रामीण श्रमिक पूछताछ। श्रम ब्यूरो ने जून १९६३ से एक विशेष अनुसन्धान विभाग भी खोला है। केन्द्रीय तथा क्षेत्रीय श्रम संस्थानों ने भी औद्योगिक स्वास्थ्य-रक्षा, औद्योगिक चिकित्सा, औद्योगिक क्रिया-विज्ञान (Industrial Physiology) तथा कार्य-भार के समानीकरण आदि के क्षेत्र में अनेक अध्ययन किये गये हैं। श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय ने औद्योगिक सम्बन्धों के विषय में तथा सरकारी क्षेत्र के उद्यमों में श्रम कानूनों को लागू करने की स्थिति के विषय मे अनेक अध्ययन किये हैं। औद्योगिक सम्बन्धों के विषय में ऐसे ही अध्ययन विश्वविद्यालयों में तथा अनुसन्धान कार्यक्रम समिति से अनुदान-प्राप्त अनुसन्धान संस्थाओं में किये गये हैं। श्रम-अनुसन्धान को प्रोत्साहन देने के लिये बम्बई, दिल्ली तथा लखनऊ मे तीन श्रम अनुसन्धान केन्द्र स्थापित किये गये हैं।

तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में इस बात पर जोर दिया गया था कि सामान्य सरकारी स्रोतों के द्वारा श्रम-अनुसन्धान को प्रोत्साहन दिया जाये और सरकारी क्षेत्र के बाहर भी श्रम सम्बन्धी मामलों पर अनुसंधान करने के लिये संस्थानों को सुविधायें दी जायें। आयोजना में इस बात की भी सिफारिश की गई थी कि श्रम अनुसन्धान के कार्य में समन्वय लाने के लिये एक केन्द्रीय समिति का निर्माण किया जाये। चौथी आयोजना की रूपरेखा में भी इस बात पर जोर दिया गया है कि जानकारी एवं सूचनाओं के वर्तमान आधार को दृढ़ किया जाये और श्रम सम्बन्धी मामलों के अध्ययन को भी मजबूत बनाया जाये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये

यह आवश्यक है कि अध्ययन का विस्तार ऐसे क्षेत्रो तक भी कर दिया जाये जो कि अब तक इसके अन्तर्गत नही थे और गहन अनुसन्धान पर जोर देकर इसकी कोटि (quality) मे सुधार किया जाये। आयोजना मे यह भी कहा गया है कि इस क्षेत्र मे अनुसन्धान कर्त्ताओ के एक प्रशिक्षित वर्ग के निर्माण की आवश्यकता है। यह वह क्षेत्र है जिसमे मुख्य कार्य अब तक सरकार द्वारा ही किया गया है। यह भी महत्वपूर्ण होगा कि सरकारी प्रयत्नो के अनुपूरक के रूप मे अब श्रमिक सघ तथा प्रबन्धक इस क्षेत्र मे प्रवेश करें और श्रमिको के विशेष हित की समस्याओं के अध्ययन मे सुधार करे। हमे आशा है कि श्रम के क्षेत्र मे अनुसधान-कार्य को आगे बढाने के लिये उन सभी तत्वो का सहयोग प्राप्त किया जायेगा जो श्रम-अर्थशास्त्र के विषय मे रुचि रखते हैं।

श्रम पर राष्ट्रीय आयोग

सन् १९३१ मे जबकि श्रम पर शाही आयोग ने अपनी रिपोर्ट दी थी, तब से श्रम सम्बन्धी कानूनो, औद्योगिक सम्बन्धो तथा श्रमिको के कार्य करने तथा रहन-सहन की दशाओ की कोई विस्तृत रूप से समीक्षा नही की गई। श्रम जाँच समिति (१९४४–४६) ने श्रमिको के कार्य करने व रहन-सहन की दशाओ से सम्बन्धित केवल नवीनतम आँकडे प्रस्तुत किये थे और कुछ मूल्यवान् रिपोर्टें प्रस्तुत की थी। तथापि, स्वतन्त्रता के पश्चात् से औद्योगिक विज्ञान मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। मूलभूत उद्योगो तथा उपभोग्य पदार्थों के उद्योगो की निरन्तर वृद्धि, सरकारी क्षेत्र की महत्ता, प्रबन्ध-सम्बन्धी ढाँचे मे एव श्रम-शक्ति की प्रकृति तथा रचना मे होने वाले परिवर्तन श्रमिको के जीवन तथा कार्य से सम्बन्धित विकास कार्यक्रमो का प्रभाव आदि—ये स्वाधीनता के बाद होने वाली कुछ उल्लेखनीय प्रगतियाँ हैं। अत सरकार ने श्रम-नीति तथा उसकी कार्य प्रणाली की नई एव व्यापक समीक्षा करने का निश्चय किया और २४ दिसम्बर १९६६ को श्रम पर एक राष्ट्रीय आयोग (National Commission on Labour) की नियुक्ति की। भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री बी० पी० गजेन्द्र गडकर इस आयोग के अध्यक्ष हैं और आयोजना आयोग के सलाहकार श्री बी० एन० दातार इसके सदस्य-सचिव। इसके अतिरिक्त, आयोग के १४ सदस्य और है जो कि मालिको, श्रमिको, स्वतन्त्र सदस्यो तथा अर्थशास्त्रियो के प्रतिनिधि है। आयोग के विचारार्थ विषय निम्न प्रकार हैं—

(१) स्वतन्त्रता के पश्चात से श्रमिको की दशाओ मे हुये परिवर्तनों की समीक्षा करना तथा श्रमिको की वर्तमान दशाओ पर अपनी रिपोर्ट देना।

(२) श्रमिको के हितों की रक्षा के लिये बनाये गये वर्तमान वैधानिक एव अन्य उपबन्धो (Provisions) की समीक्षा करना, उनके लागू होने की प्रगति का मूल्याकन करना और इस विषय मे रिपोर्ट एव परामर्श देना कि ये उपबन्ध सविधान मे राज्यनीति के श्रम मामलो से सम्बन्धित निदेशक सिद्धान्तो को लागू

करने और समाजवादी समाज की स्थापना करने के राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति करने तथा योजनाबद्ध आर्थिक विकास की सफलता की दृष्टि से कहाँ तक उपयुक्त है।

(३) निम्न बातों का अध्ययन करना एवं उनके सम्बन्ध मे रिपोर्ट देना : (क) श्रमिकों की कमाई के स्तर, मजदूरियों से सम्बन्धित उपबन्ध, न्यूनतम मजदूरियों के निर्धारण की आवश्यकता, जिसमें राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी भी सम्मिलित है और उत्पादकता बढ़ाने के उपाय जिसमे मजदूरों की प्रेरणाओं के उपबन्ध भी सम्मिलित है ; (ख) श्रमिकों का रहन-सहन का स्तर, स्वास्थ्य, कार्य-क्षमता, सुरक्षा, कल्याण, आवास व्यवस्था, प्रशिक्षण एवं शिक्षा और केन्द्र तथा राज्यों मे श्रम-कल्याण के प्रशासन के लिये प्रचलित व्यवस्थाये ; (ग) सामाजिक सुरक्षा की वर्तमान व्यवस्थायें; (घ) मालिकों एवं श्रमिको के पारस्परिक सम्बन्धों की दशा तथा स्वस्थ औद्योगिक सम्बन्धो एव राष्ट्र के हितों की वृद्धि करने मे श्रमिक संघों एवं मालिकों के संगठनों का योगदान ; (ङ) श्रम सम्बन्धी कानून तथा ऐच्छिक व्यवस्थायें, जैसे कि अनुशासन संहिता, संयुक्त प्रबन्ध परिषदें, ऐच्छिक पंच निर्णय व मजदूरी बोर्ड और केन्द्र व राज्यों में उनके लागू होने की व्यवस्था ; (च) ग्रामीण श्रमिको तथा असंगठित श्रमिको के अन्य वर्गों की दशाये सुधारने के उपाय ; और (छ) श्रमिकों से सम्बन्धित सूचनाओं एवं अनुसधान की वर्तमान व्यवस्थायें ; और

(४) ऊपर उल्लेख किये गये विषयों के सम्बन्ध में सिफारिशें देना।

आयोग ने श्रमिकों को काम पर लगाने वाले मन्त्रालयों, राज्य सरकारों, मालिकों एवं श्रमिकों के संगठनों तथा श्रम समस्याओं में रुचि लेने वाले अन्य संगठनों के लिये एक विस्तृत प्रश्नावली भेजी। आयोग ने कुछ विशिष्ट विषयों एवं कुछ महत्वपूर्ण उद्योगों की श्रम समस्याओं के अध्ययन के लिये ३७ अध्ययन दलों तथा समितियों की स्थापना की। मौखिक गवाहियाँ एकत्र करने के लिये आयोग ने विभिन्न राज्यों का भ्रमण भी किया। अपने कार्य को पूरा करने में आयोग को कुछ ऐसी सहायता की आवश्यकता है जो कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन से प्राप्त हो सकती है। यह आशा की जाती है कि आयोग अपनी रिपोर्ट १९६९ के प्रारम्भ में प्रस्तुत कर देगा और आयोग की सिफारिशें भविष्य में श्रम-नीति के पुनर्निर्धारण में मार्ग-दर्शन करेंगी। सरकार द्वारा प्रायोजित अध्ययन दलों तथा जांचों द्वारा जो अध्ययन किये गये है उनमें से कुछ की आलोचना इसलिये की जाती है क्योंकि उनके निष्कर्ष उन अध्ययनों से भिन्न हैं जो कि स्वतन्त्र अनुसन्धान करने वाले विद्वानों द्वारा किये गये हैं। आयोग की अध्यक्षता भारत के एक भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश कर रहे हैं अतः यह आशा की जाती है कि वह देश मे श्रम मोर्चे पर घटित हो रही स्थिति का सही और वास्तविक चित्र प्रस्तुत करेगा और हमें विश्वास है कि उसकी रिपोर्ट सरकार की श्रम-नीतियों की केवल क्षमा-याचना मात्र ही नही होगी।

श्रम-कल्याण पर समिति

अगस्त १९६६ मे श्रम कल्याण के लिये एक समिति बनाई गई। भूतपूर्व उप श्रम मन्त्री श्री आर० के० मालवीय इसके अध्यक्ष थे। समिति से कहा गया कि वह सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्र मे खानो तथा बागानो सहित औद्योगिक सस्थानो मे अनेक वैधानिक तथा ऐच्छिक कल्याण योजनाओ के कार्य सचालन की जांच करे, ऐसे उद्योगो का सुझाव दे जिनमे कि कोयले तथा अभ्रक की खानो के समान कल्याण निधियो की स्थापना की जा सकती है, ग्रामीण श्रमिको विशेषकर कृषि-श्रमिको के लिये कल्याण योजनाओ को लागू करने के उपायो का सुझाव दे और चालू कल्याण योजनाओ मे सुधार के लिये तथा नई योजनाओ को लागू करने के सम्बन्ध मे अपनी सिफारिशें दे। समिति मे अध्यक्ष के अलावा केन्द्र व राज्य सरकारो के तथा मालिको व श्रमिको के प्रतिनिधि है तथा स्वतन्त्र सदस्य हैं। समिति ने उच्च स्तर का अध्ययन करने के लिय तथा श्रम-कल्याण की समस्याओ मे रुचि लेने वाले व्यक्तियो के विचारो का पता लगाने के लिये देश का भ्रमण किया है। आशा है कि समिति अपनी रिपोर्ट शीघ्र ही प्रस्तुत करेगी और श्रम का राष्ट्रीय आयोग श्रम कल्याण पर अपनी सिफारिशो को अन्तिम रूप देने के लिए उक्त रिपोर्ट का उपयोग करेगा।

कुछ नवीनतम तथ्य और आकडे

(१) जनवरी १९६८ मे, भारत मे रोजगार दफ्तरो की सख्या ३९९ थी। इनके अतिरिक्त ३९ विश्वविद्यालयो मे रोजगार सूचना तथा मार्गदर्शक ब्यूरो चालू थे। ऐसी प्रशिक्षण सस्थाओ अथवा केन्द्रो की सख्या ३५६ थी जिनमे कि ४४०५ पुरुष व ७१७ स्त्रियाँ गैर-इजीनियरिंग व्यवसायो मे और १,०४,४५३ व्यक्ति इजीनियरिंग व्यवसायो मे प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे। (देखिये अध्याय ३)।

(२) हड़तालो व तालाबन्दियो की सख्या १९६६ में २५५६ और १९६७ मे २२०० थी। इनमे सम्मिलित श्रमिको की सख्या क्रमश १४,१०,०५६ तथा १२,०४,०६४ थी और हानि हुए कार्य-दिवसो की सख्या क्रमश १,३८,४६,३२९ तथा ९९,२०,५१४ थी। विभिन्न राज्यो मे औद्योगिक सम्बन्ध व्यवस्था के समक्ष प्रस्तुत औद्योगिक विवादो की सख्या १९६६ मे २७,८७६ तथा १९६७ मे ३९,४६३ थी। (देखिये अध्याय ७)।

(३) सन् १९६७ मे, ऐसी ४२७१ मालिक-मजदूर समितियो के बनाये जाने की योजना थी जिनके अन्तर्गत १९,७७,२२१ श्रमिक आने थे किन्तु वास्तव मे बनाई गई समितियो की सख्या तथा उनके क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले श्रमिको की सख्या क्रमश २६६७ तथा १४,१४,०८४ थी। (देखिये अध्याय ७)।

(४) सन् १९६७ मे, ऐसे सस्थानो की सख्या ७३१२ थी जहाँ स्थायी आदेश बनाये जाने थे, जबकि ऐसे सस्थान ५९३० थे जहाँ प्रमाणित स्थायी आदेश बन चुके थे (देखिये अध्याय ७)।